लेखक

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

यह कोश उन गुरुओं को समर्पित है जिनके चरणों में बैठ कर लेखक ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया है। वे हैं—

आचार्य नित्यानन्द जी पाठक

साहित्याचार्य, विशारद, बी० ए०

आचार्य चन्द्रशेखर जी पाठक

व्याकरणसाहित्यायुर्वेदाचार्य, बी० ए०

आचार्य जगन्नाथराय जी शर्मा

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), साहित्यालंकार

आचार्य रामदीन जी मिश्र

साहित्यव्याकरणाचार्य

आचार्य सिद्धनाथ जी मिश्र

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), व्याकरणाचार्य

●

आमुख

विगत पचीस वर्षों से हिन्दीभाषी प्रान्तों में विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का माध्यम हिन्दी स्वीकार की जा चुकी है; फलतः इसमें विभिन्न विषयों के कोशों, सन्दर्भग्रन्थों एवं मानकग्रन्थों का निर्माण बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। संस्कृत हमारी सांस्कृतिक भाषा है और इसमें (भारतीय) दर्शन, साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं पर प्रभूत ग्रन्थ-राशि भरी पड़ी है, जिसमें प्राचीन भारतीय वैदुष्य की अखण्ड परम्परा सुरक्षित है। अन्य विषयों की भाँति संस्कृत का पठन-पाठन भी हिन्दी माध्यम से हो रहा है और विद्वानों तथा संस्कृतप्रेमी प्रकाशकों ने संस्कृत की विविध शाखाओं पर हिन्दी में प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे एवं प्रकाशित किये हैं तथा अनेक मानकग्रन्थों एवं सन्दर्भग्रन्थों का हिन्दी संस्करण प्रस्तुत किया है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रणीत अनेक विषयों के ग्रन्थ हिन्दी रूपान्तर के रूप मे प्रस्तुत किये जा चुके हैं और अनेक संस्थाएँ शेष ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने में प्रयत्नशील हैं। उपर्युक्त सभी प्रयास अभिनन्दनीय और संस्कृत के अध्ययन एवं अनुशीलन में गति प्रदान करने वाले हैं।

विगत सौ वर्षों से भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत-विषयक जो शोध-कार्य किया है और हिन्दी-माध्यम से संस्कृत का जो अनुशीलन हुआ है, उसके सार को संकलित कर एक ऐसे सन्दर्भग्रन्थ के निर्माण की आवश्यकता बनी हुई थी जिसमें अकारादिक्रम से सम्पूर्ण विषय का नियोजन एवं मूल्यांकन किया गया हो। अतः 'संस्कृत साहित्य कोश' के द्वारा इसी अभाव की पूर्ति के लिए लेखक का यह लघु प्रयास पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। विषय की महत्ता एवं उसकी विस्तृत परिधि को ध्यान में रख कर इस कोश की योजना तीन खण्डों में बनायी गयी है। इसका प्रत्येक खण्ड स्वतन्त्र एवं अपने में पूर्ण है। प्रथम खण्ड में संस्कृत के लेखक, प्रमुख कृतियाँ, संस्कृत साहित्येतिहास के विभिन्न युग एवं धाराओं का समावेश किया गया है। द्वितीय खण्ड में 'संस्कृत साहित्य शास्त्र' के विभिन्न अंगों एवं पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या एवं ऐतिहासिक विकास दिखलाया गया है। तृतीय खण्ड 'भारतीय दर्शन' से सम्बद्ध है। सभी विषयों का एक खण्ड में विवेचन संभव नहीं था और इससे कोश की आकारवृद्धि हो जाती तथा विवेच्य विषय के साथ न्याय न हो पाता। अतः पृथक्-पृथक् खण्डों में कोश-लेखन का कार्यक्रम बनाया गया। प्रथम खण्ड के विवेच्य विषयों की सूची इस प्रकार है—वैदिक साहित्य (चारो वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्,

वेदाङ्ग—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण एवं छन्द—प्रातिशाख्य एवं अनुक्रमणीग्रन्थ), रामायण, महाभारत, गीता, पुराण, उपपुराण, स्मृतिग्रन्थ, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र (निबन्धग्रन्थ), कामशास्त्र, संगीतशास्त्र, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र (चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, वेदान्त, वैष्णव-दर्शन, पाञ्चरात्र, तन्त्र), काव्यशास्त्र, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तककाव्य, सन्देशकाव्य, ऐतिहासिक महाकाव्य, चम्पूकाव्य, नाट्यसाहित्य, गद्यसाहित्य, कथाकाव्य एवं प्रमुख पाश्चात्य संस्कृतज्ञों का परिचय। कोश की प्रतिपादन-शैली इस प्रकार है—

१—किसी विषय का विवरण प्रस्तुत करते समय तद्विषयक अद्यावधि किये गए अनुसन्धानों एवं विवेचनों का समावेश कर यथासंभव अद्यतन सामग्री दी गयी है एवं सन्दर्भों का संकेत किया गया है।

२—संस्कृत साहित्य की सभी शाखाओं पर उपलब्ध अंगरेजी एवं हिन्दी के प्रामाणिक ग्रन्थों का सार-संग्रह कर, विवरण एवं टिप्पणी को पूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

३—किसी विषय का विवरण प्रस्तुत करते समय सारे आधारग्रन्थों की सूची दी गयी है और हिन्दी अनुवादों का भी संकेत किया गया है।

४—यथासंभव अनुवादकों एवं लेखकों के नाम दिये गए हैं और कहीं-कहीं केवल प्रकाशकों का ही नाम दे दिया गया है तथा यत्र-तत्र अँगरेजी एवं अन्य भाषाओं के अनुवादों का भी निर्देश है।

५—इसमें संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थकारों, ग्रन्थों, प्रवृत्तियों, विचारधाराओं एवं प्रतिमानों का संक्षिप्त विवेचन है तथा गौण विषयों की टिप्पणी दी गयी है या नामोल्लेख किया गया है।

६—उपयोगिता की दृष्टि से ललित साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है तथा दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं संगीत के प्रमुख ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों का भी परिचय दिया गया है।

७—इस कोश के माध्यम से दिखलाया गया है कि संस्कृत की सभी शाखाओं पर हिन्दी में कितने ग्रन्थ हैं और किन-किन ग्रन्थों के अनुवाद हो चुके हैं।

इसमे मेरा अपना कुछ भी नहीं है और जो कुछ है वह संस्कृत-साहित्य की विविध शाखाओं पर लिखने वाले विद्वानों का ही है। मैंने उनके विचारों, निष्कर्षों एवं अनुसन्धानों का निचोड़ रखने का प्रयास किया है। इस कार्य मे मुझे कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय विज्ञ जन ही कर सकते हैं। एक व्यक्ति प्रत्येक विषय का ज्ञाता नहीं हो सकता और न वह संस्कृत जैसे विशाल वाङ्मय की प्रत्येक

शाखा पर साधिकार कुछ कह सकता है। मैं इस कार्य में अनधिकार चेष्टा करने के लिए ही प्रवृत्त हुआ हूँ, अतः त्रुटियों का रह जाना सहज संभाव्य है। यदि विद्वान् उनकी ओर संकेत करेंगे तो आगामी संस्करण में उनका मार्जन कर दिया जायगा। ग्रन्थ की सूची प्रस्तुत करने एवं विवरण तथा टिप्पणी देने में संस्कृत के हस्तलेख-सम्बन्धी विवरणग्रन्थों, इतिहासों एवं शोधग्रन्थों से सहायता ली गयी है तथा देश-विदेश के अनेक लेखकों की रचनाओं का उपयोग किया गया है। चूँकि ऐसे लेखकों की नामावली अत्यन्त विस्तृत है, अतः सबके प्रति अपनी मौन प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मैं उन (हिन्दी) अनुवादकों का भी कृतज्ञ हूँ जिनके अनुवादों एवं भूमिकाओं की सहायता से यह कोश पूर्ण हुआ है। मैंने इसमें कतिपय नवीन सामग्री का सन्निवेश किया है और कई अज्ञात ग्रन्थों का भी परिचय दिया है। ऐसे ग्रन्थों की प्राप्ति अनेक व्यक्तियों द्वारा हुई है, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस कोश के निर्माण में मेरे पाँच (संस्कृत) गुरुओं का महत्त्वपूर्ण योग है जिनके चरणों में बैठकर मैंने संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया है। वे हैं—आ० नित्यानन्द पाठक, आ० जगन्नाथराय शर्मा, आ० चन्द्रशेखर पाठक, आ० रामदीन मिश्र एवं आ० सिद्धनाथ मिश्र। इनके आशीर्वाद एवं शुभकामना से यह कोश पूर्ण हुआ है। मैं इसे गुरुओं को समर्पित कर संतोष का अनुभव करता हूँ और कोश के माध्यम से गुरु-चरणों पर सुमन चढाता हूँ।

कोश-लेखन-काल में मेरे परिवार के सदस्यों ने मेरे साथ जिस रूप में सहयोग दिया है उसके लिए उनका आभारी हूँ। धर्मपत्नी लीला, बहिन जलपति देवी, बेटी गीता, कविता तथा चि० गोलोक बिहारी 'चुन्नू' आलोक, विष्णुलोक सभी का सहयोग अभिनन्दनीय है। मेरे भाई साहब ठाकुर इन्द्रनाथ प्रसाद सिन्हा, भागिनेय ठाकुर सुधीरनाथ 'ललन' एवं उनकी पत्नी सौभाग्यवती उर्मिला ठाकुर ने इस ग्रन्थ को देख कर हर्ष प्रकट किया है, अतः उनका अभिनन्दन करता हूँ। पूज्य भैया श्री स्व० अशर्फीलाल एवं मनोहरलाल तथा चाचा स्व० ठाकुरलाल, अखौरी केसरी लाल, भाई श्री माखनलाल एवं श्री सूरजलाल ने मेरे प्रयास पर आशीर्वाद दिया है, इसके लिए उनका आभारी हूँ। मेरे बचपन के दो मित्रों—पं० (स्व०) बाबूराम दूबे एवं पं० लालमणि दूबे ने इस कोश की प्रगति पर संतोष प्रकट किया है, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रिय शिष्य पं० निर्मलकुमार दूबे (मुखिया, नवहट्टा) तथा प्रो० नवल किशोर दूबे, श्री रामेश्वर सिंह 'मानव' ने मेरे कार्य में रुचि ली है, इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ। इस अवसर पर मैं अपने तीन (स्वर्गीय) गुरुओं का अत्यधिक अभाव अनुभव करता हूँ यदि वे जीवित रहते तो उन्हें अधिक प्रसन्नता होती; वे हैं—पं० विश्वनाथ द्विवेदी, पं० चन्द्रशेखर शर्मा बी० ए०, एल० एल० बी० तथा पं० मंगलेश्वर तिवारी।

उनके प्रति अपनी प्रणामांजलि अर्पित करता हूँ। गुरुतुल्य आ० रामचन्द्र झा (संपादक, काशी मिथिला ग्रन्थमाला), भाई डॉ० रामकुमार राय एवं पिता तुल्य पं० विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी 'अनुगामी' ने अनेक सुझाव देकर मेरे कार्य को सहज बनाया है, इसके लिए उनका कृतज्ञ हूँ। पाहुन परमानन्द तिवारी (वाराणसी) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रकाशक बन्धुओं ने विविध प्रकार की सामग्री देकर मेरे कार्य को सुगम बनाया है, इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। अन्त में, बाबा विश्वनाथ को प्रणाम करता हूँ जिनकी नगरी में रहकर ही इस कोश का कार्यारम्भ हुआ था।

जय संस्कृत, जय हिन्दी

विजया दशमी
वि० सं० २०३०

राजवंश सहाय 'हीरा'

लेखक का परिचय

रोहतास जिले (बिहार) के नौहट्टा (थाना रोहतास) नामक ग्राम में जन्म। पिता का नाम—स्व० बाबू त्रिभुवन लाल जी। प्रारम्भ में काव्य-लेखन तदनन्तर समालोचना की ओर प्रवृत्ति। १९५५ ई० में पटना विश्वविद्यालय से हिन्दी एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। १९६२ ई० में काशी हि० वि० वि० से संस्कृत एम० ए० की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी प्राप्त। १९६८ ई० में आचार्य विश्वनाथप्रसादमिश्र के निर्देशन में पी-एच० डी० की उपाधि, मगधविश्वविद्यालय बोधगया से 'अलंकारों का ऐतिहासिक विकास : भरत से पद्माकर तक' नामक विषय पर। सम्प्रति 'ध्वनि सिद्धान्त एवं पाश्चात्त्य साहित्य-चिंतन' नामक विषय पर डी० लिट्० के लिए शोधकार्य में निरत। १९५५ ई० से सच्चिदानन्द सिन्हा महाविद्यालय औरंगाबाद (बिहार) में अध्यापन।

प्रकाशित कृतियाँ—

(१) भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त (चौखम्बा प्रकाशन)
(२) अलंकारानुशीलन—(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत) ,,
(३) अलंकार-मीमांसा (चौखम्बा प्रकाशन)
(४) अलंकार शास्त्र की परम्परा ,,
(५) अपभ्रंश साहित्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ ,,
(६) संस्कृत साहित्य कोश ,,
(७) भारतीय साहित्य शास्त्र कोश (बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना)
(८) भारतीय आलोचनाशास्त्र ,,
(९) अलंकारों का ऐतिहासिक विकास ,,

शीघ्र ही प्रकाश्य ग्रन्थ—

(१) पाश्चात्त्य साहित्यशास्त्र भाग १-२
(२) श्री राधा (महाकाव्य)

यन्त्रस्थ—

संस्कृत साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास भाग १-२

संस्कृत साहित्य कोष

अ

अकालजलद—ये महाराष्ट्रीय कविचूडामणि राजशेखर के प्रपितामह हैं। [दे० राजशेखर] इनका समय ८०० ई० है। इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं होती, पर 'शार्ङ्गधरपद्धति' प्रभृति सूक्तिसंग्रहों में इनका 'भेकैः कोटरशायिभिः' श्लोक उपलब्ध होता है। राजशेखर के नाटकों में इनका उल्लेख प्राप्त होता है तथा उनकी 'सूक्ति-मुक्तावली' में इनकी (अकालजलद की) प्रशस्ति की गयी है, जो इस प्रकार है—

अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका। नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ॥

सूक्तिमुक्तावली ४।८३ ॥

आधार ग्रन्थ—संस्कृत सुकवि-समीक्षा—आ० बलदेव उपाध्याय।

अग्निपुराण—यह क्रमानुसार आठवाँ पुराण है। 'अग्निपुराण' भारतीय विद्या का महाकोश है जिसमे शताब्दियो से प्रवाहित भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान का सार संगृहीत किया गया है। डॉ० विन्टरनित्स इसे भारतीय वाङ्मय मे व्याप्त अनेक विषयो का विश्वकोश मानते है, जिसमें व्याकरण, सुश्रुत का औषधज्ञान, शब्दकोश, काव्यशास्त्र एवं ज्योतिष आदि विषयों का समावेश किया गया है। 'अग्निपुराण' के रचनाकाल के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो ने नाना प्रकार के मत प्रकट किये हैं। पर, अधिकाश विद्वान सप्तम से नवम शती के मध्य इसका रचनाकाल मानने के पक्ष मे हैं। डॉ० हाजरा और पार्जिटर के अनुसार इसका समय नवम शती का परवर्त्ती है। इस पुराण में ३८३ अध्याय एवं ११, ४५७ श्लोक है। इसमे वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—मंगलाचरण, ग्रन्थप्रणयन का उद्देश्य, मत्स्य, कूर्म, वाराहादि अवतारों का वर्णन, रामायण की कथा, कृष्णकथा, महाभारतविषयक आख्यान, बुद्ध तथा कल्कि अवतार का वर्णन, सृष्टि की उत्पत्ति, स्वयंभुवमनु, काश्यपवंशवर्णन तथा विष्णु आदि देवताओ की पूजा का विधान। कर्मकाण्ड के विविध-विधान, देवालयों के निर्माण का फल, मन्दिर, सरोवर, कूपादि के निर्माण का फल तथा प्रतिमास्थापन-विधि। विभिन्न पर्वतों, जम्बूद्वीप, गंगा, काशी और गया का माहात्म्य। श्राद्ध का विधान, भारतवर्ष

का वर्णन एवं ज्योतिषशास्त्र का निरूपण। युद्धविद्या का वर्णन, तान्त्रिक उपासना-पद्धति, वर्णाश्रमधर्म तथा विवाह-संस्कार, शौचाशौच आचार, वानप्रस्थ, यतिधर्म तथा नाना प्रकार के पाप एवं उनके प्रायश्चित्त। नरक का वर्णन, दानमहिमा, विविध पूजा का विधान, राजधर्म, दण्डनीति, यात्रा, शकुन, गोचिकित्सा एवं रत्नपरीक्षा। धनुर्विद्या का वर्णन, दायविभाग तथा कर्मकाण्ड की अनेकानेक विधियों का वर्णन। राजधर्म-विवेचन, आयुर्वेद, अश्वायुर्वेद गजायुर्वेद एवं वृक्षायुर्वेद का विवेचन। नाना प्रकार के विधि-विधान तथा विभिन्न काव्यशास्त्रीय विषयों का वर्णन। व्याकरण एवं कोश का विवेचन। योगविद्या, ब्रह्मज्ञान और गीता का सार। इस पुराण की रूपरेखा से ज्ञात होता है कि यह लोक-शिक्षण के निमित्त विविध विद्याओं एवं ज्ञानों का सार प्रस्तुत करने वाला 'पौराणिक विश्वकोश' है, जिसमें सम्पूर्णशास्त्र विषयक सामग्री का संकलन किया गया है। इसके अन्त में कहा गया है कि 'अग्निपुराण' में समस्त विद्याएँ प्रदर्शित की गयी है—'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वाविद्याः प्रदर्शिताः'। ३८३।५२ अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग—इसके ३३७वें अध्याय से ३४७वें अध्यायतक विभिन्न काव्यशास्त्रीय विषयों का वर्णन है। ३३७वें अध्याय में काव्य का लक्षण, काव्य के भेद, गद्यकाव्य एवं उसके भेदोपभेद तथा महाकाव्य का विवेचन है। इसमें ध्वनि, वर्ण, पद एवं वाक्य को वाङ्मय कहकर शास्त्र, काव्य और इतिहास तीनों को वाङ्मय के अन्तर्गत माना गया है। 'अग्निपुराण' में गद्यकाव्य के पाँच प्रकार—आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा तथा कथानिका एवं पद्य के सात भेद—महाकाव्य, कलाप, पर्याबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक और कोष—किये गए है। अध्याय ३३८ में रूपक-विवेचन है, जिसमें रूपक के भेद, अर्थप्रकृति, नाटकीय संधि तथा श्रेष्ठ नाटक के गुणों की चर्चा है। अध्याय ३३९ में शृंगारादि रसों का निरूपण है। रस के सभी अंग—स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव के वर्णन के पश्चात् नायिका-भेद का वर्णन है। इसमें ब्रह्म की अभिव्यक्ति को चैतन्य, चमत्कार या रस कहा गया है। ब्रह्म के आदिम विकार को अहंकार कहते है, जिसमें अभिमान का उदय होता है। अभिमान से ही रति की उत्पत्ति होती है और रति, व्यभिचारी आदि भावों से परिपुष्ट होकर शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाती है। शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और बीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। ३४०वें अध्याय में रीति-निरूपण है, जिसमें चार प्रकार की रीतियों—पांचाली, गौडी, वैदर्भी एवं लाटी या लाटता का निरूपण किया गया है। ३४१वें अध्याय में नृत्यादि का निरूपण तथा ३४२वें में अभिनय का विवेचन है। ३४३वें अध्याय में शब्दालंकारों का भेदोपभेद सहित विवेचन है जिसमें अनुप्रास, यमक, चित्र और बन्ध नामक आठ अलंकार है। ३४४वें अध्याय में अर्थालंकारों का विवेचन है। इसमें सर्वप्रथम आठ अर्थालंकारों का निरूपण है—स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु और सम। इसके बाद उपमा, रूपक, सहोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भेदों सहित विवेचन किया गया है। ३४५वें अध्याय में शब्दार्थालंकारों का विवेचन है, जिनकी संख्या ६ है—प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता और अभिव्यक्ति। ३४६वें अध्याय में

काव्य-गुण-विवेक एवं ३४७वें अध्याय में काव्य-दोषो का वर्णन है। गुण के तीन भेद किये गए हैं—शब्दगुण, अर्थगुण और शब्दार्थगुण। शब्दगुण के सात भेद कहे गए हैं—श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी। अर्थ के ६ प्रकार हैं—माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि एवं सामयिकत्व तथा शब्दार्थगुण के भी ६ भेद वर्णित हैं—प्रसाद, सौभाग्य यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक और राग।

आधार ग्रन्थ —१. अग्निपुराण—(अँगरेजी अनुवाद) अनुवादक एम० एन० दत्त। २. अग्निपुराण—संपादक आ० बलदेव उपाध्याय। ३. अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग—डॉ० रामलाल वर्मा। ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। ५. अग्निपुराण ए स्टडी—डॉ० एस० डी० ज्ञानी।

अङ्गिरास्मृति—इस ग्रन्थ के रचयिता अङ्गिरा नामक ऋषि हैं। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में अङ्गिरा को धर्मशास्त्रकार माना गया है और अपरार्क, मेधातिथि, हरदत्त प्रभृति धर्म-शास्त्रियो ने भी इनके धर्मविषयक अनेक तथ्यों का उल्लेख किया है। 'स्मृतिचन्द्रिका' में अंगिरा के गद्यांश उपस्मृतियों के रूप में प्राप्त होते हैं। जीवानन्द-संग्रह में 'अङ्गिरास्मृति' में केवल ७२ श्लोक प्राप्त होते है। इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—अन्त्यजो से भोज्य तथा पेय ग्रहण करना, गौ के पीटने एवं चोट पहुँचाने का प्रायश्चित्त तथा स्त्रियों द्वारा नीलवस्त्र धारण करने की विधि।

आधार ग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड १) डॉ० पी० वी० काणे, हिन्दी अनुवाद।

अथर्ववेद—'अथर्व' का अर्थ है 'जादू-टोना' या 'अथर—वाणि' तथा अथरवन् का अर्थ अग्नि-उद्बोधन करने वाला पुरोहित होता है। 'अथर्ववेद' के मूल में जादूगर और पुरोहित का भाव समाविष्ट है। इसका प्राचीन नाम अथर्वाङ्गिरस था। यह नाम उसकी हस्तलिखित प्रतियों में भी प्राप्त होता है यह शब्द अथर्व और अङ्गिरा इन दो शब्दो के योग से बना है जो दो प्राचीन ऋषिकुल हैं। आचार्य ब्लूमफील्ड के अनुसार अथर्वशब्द सात्त्विक मन्त्र का पर्याय है जिससे उत्तम विधियों का संकेत प्राप्त होता है तथा अङ्गिरस शब्द तामस मन्त्रों का पर्याय है, जो जादू-टोना एवं आभिचारिक विधियो का प्रतीक है। पहले बतलाया जा चुका है कि वैदिक कर्मकाण्ड के संचालन के लिए चार ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती थी [दे० वैदिक संहिता]। उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ब्रह्मानामक ऋत्विज का था। वह तीनों वेदों का ज्ञाता होता था, किन्तु उसका प्रधान वेद 'अथर्ववेद' था। स्वयं 'ऋग्वेद' में भी 'यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते' (१।८३।५) कह कर 'अथर्ववेद' का महत्त्व निर्दिष्ट है, जिससे इसकी प्राथमिकता के साथ-ही-साथ प्राचीनता की भी सिद्धि होती है। 'गोपथब्राह्मण' में बतलाया गया है कि तीन वेदो से यज्ञ का केवल एकपक्षीय संस्कार होता है, पर ब्रह्मा के मन से यज्ञ के दूसरे पक्ष का भी संस्कार हो जाता है। (गो० ब्रा० ३।२) अथर्व-परिशिष्ट में इस प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है कि जिस राजा के राज्य

में 'अथर्ववेद' का ज्ञाता रहता है वह राष्ट्र उपद्रव-रहित होकर उन्नतिशील होता है।
स्वरूप निरूपण—कलेवर-वृद्धि की दृष्टि से 'ऋग्वेद' के पश्चात् द्वितीय स्थान 'अथर्ववेद' का है। इसमें कुल बीस काण्ड है जिनमे ७३१ सूक्त तथा ५९८७ मन्त्रो का संग्रह है। इसमे लगभग १२ सौ मन्त्र 'ऋग्वेद' से लिये गए हैं। बीसवें काण्ड के १४३ सूक्तों में से १२ के अतिरिक्त शेष सभी सूक्त 'ऋग्वेद' (दशम मण्डल) से मिलते-जुलते है। इसके १५ एवं १६ काण्ड में २७ सूक्त है तथा तीस फुटकर सूक्त गद्यात्मक हैं। 'अथर्ववेद' के सूक्तों के सकलन मे विशिष्ट उद्देश्य एवं क्रम का ध्यान रखा गया है। इसके प्रारम्भिक सात काण्डो में छोटे-छोटे सूक्त है। प्रथम काण्ड के सूक्त चार मन्त्रों के है, द्वितीय काण्ड मे ५ मन्त्र, तृतीय काण्ड मे ६ मन्त्र तथा चतुर्थ काण्ड में सात मन्त्रों के सूक्त है। पांचवे काण्ड में आठ मन्त्र है और छठे काण्ड में १४२ सूक्त तथा प्रति सूक्त में तीन मन्त्र है। सप्तम काण्ड में सूक्तों की संख्या ११८ है जिनमे आधे सूक्त एक मन्त्र वाले है। आठ से बारह काण्डों मे बड़े-बड़े सूक्त संगृहीत है, जिनमें विषयों की भिन्नता दिखाई पडती है। १३वें काण्ड से १८वें काण्ड तक विषय की एकता है। बारहवे काण्ड के प्रारम्भ मे ६३ मन्त्र वाला पृथ्वीसूक्त है, जिसमे अनेक राजनैतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों का विवेचन है। तेरहवे काण्ड मे आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है तथा चौदहवे काण्ड मे केवल दो लम्बे सूक्त हैं, जिनमें वैवाहिक विषय का वर्णन है। इसमे मन्त्रो की संख्या १३९ है। १५वें काण्ड मे व्रात्यो के यज्ञ-सम्पादन का आध्यात्मिक विवरण है। १६वे काण्ड मे दुःस्वप्ननाशक मन्त्र १०३ है तथा १७वे काण्ड के एक ही सूक्त में (३० मन्त्र) अभ्युदय के लिए प्रार्थना करने का वर्णन है। १८वे काण्ड को श्रद्धाकाण्ड कहते है, जिसमे पितृमेध-विषयक मन्त्रो का संग्रह है। अन्तिम दो काण्ड (१९-२०) खिल काण्ड या परिशिष्ट कहे जाते है। १९वें काण्ड मे ७२ सूक्त तथा ४५३ मन्त्र है, जिनका विषय है भैषज्य, राष्ट्रवृद्धि एवं अध्यात्म। २०वे काण्ड मे लगभग ९८५ मन्त्र हैं जो, सोमयाग के लिए आवश्यक है तथा प्रधानत. ये 'ऋग्वेद' से ही संगृहीत किये गए है। कुल मिलाकर 'अथर्ववेद' का पंचम अंश 'ऋग्वेद' का ही है तथा ये मन्त्र विशेष रूप से प्रथम, अष्टम एवं दशम मण्डल से लिये गए है। अन्तिम काण्ड के 'कुन्तापसूक्त' वर्तमान 'ऋग्वेद' मे प्राप्त नहीं होते, संभवत: वे 'ऋग्वेद' की किसी दूसरी शाखा के मन्त्र है। इन सूक्तो की संख्या दस है (सूक्त १२७ से १३६ तक)। 'कौषीतकिब्राह्मण' मे इन सूक्तो का (कुन्ताप) उल्लेख है। 'गोपथब्राह्मण' में कुन्ताप का अर्थ पाप कर्म को जलाने वाला मन्त्र कहा गया है।
अथर्ववेद की शाखाएँ—पतञ्जलि कृत 'महाभाष्य' के पस्पशाह्निक में 'अथर्ववेद' की नौ शाखाओ का निर्देश है—'नवधाऽऽथर्वणो वेद:।' इसकी शाखाओ के नाम है—पिप्पलाद, स्तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य। इस समय इस वेद की केवल दो ही शाखाएँ मिलती है—पिप्पलाद तथा शौनकीय।
पिप्पलादशाखा—इसके रचयिता पिप्पलाद मुनि है। 'प्रपञ्चहृदय' के अनुसार पिप्पलादशाखा की मन्त्र-संहिता बीस काण्डो की है। इसकी एकमात्र प्रति शारदालिपि में काश्मीर में प्राप्त हुई थी जिसे जर्मन विद्वान् रॉथ ने सम्पादित किया है। **शौनकशाखा**—

आजकल 'अथर्ववेद' संहिता का प्रचलित रूप इसी शाखा का है। मौदशाखा—महाभाष्य (४।१।८६) तथा शाबरभाष्य में (१।१।३०) इसका उल्लेख है। अथर्ववेद का प्रतिपाद्य विषय—इसके ७३१ (कुछ लोगों के अनुसार ७३०) सूक्तों को विषय-विवेचन की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जाता है—आयुर्वेदविषयक १४४ सूक्त, राजधर्म एवं राष्ट्रधर्म-सम्बन्धी २१५ सूक्त, समाज व्यवस्थाविषयक ७५ सूक्त, अध्यात्मविषयक ८३ सूक्त तथा शेष २१४ सूक्तों का सम्बन्ध विविध विषयों से है। इसके विषय अन्य वेदों की अपेक्षा नितान्त भिन्न एवं विलक्षण है। इन्हें अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत के रूप में विभक्त किया जा सकता है। अध्यात्म के अन्तर्गत ब्रह्म, परमात्मा तथा चारों आश्रमों के विविध निर्देश आते है तथा अधिभूत के भीतर राजा, राज्य-शासन, संग्राम, शत्रु, वाहन आदि विषयों का वर्णन है। अधिदैवत—प्रकरण में देवता, यज्ञ एवं काल सम्बन्धी विविध विषयों का विवेचन है। 'अथर्ववेद' मन्त्र-तन्त्रों का प्रकीर्ण संग्रह है तथा इसमें संगृहीत सूक्तों का विषय अधिकांशतः गृह्य संस्कारों का है। इनमें जातेष्टि, विवाह एवं अन्त्येष्टि सदृश पारिवारिक संस्कारों का उल्लेख है तथा राजधर्म से सम्बद्ध विषय अधिकतर वर्णित है। आयुर्वेद सम्बन्धी सूक्त—इस विषय के अन्तर्गत रोग एवं उनकी चिकित्सा से सम्बद्ध मन्त्र है जिनमें बताया गया है कि नाना प्रकार के भूत प्रेतों के कारण ही रोगों की उत्पत्ति होती है। इनमें आयुर्वेद-विषयक मानव-शरीर के आपादमस्तक सभी अङ्गों का नामग्रहपूर्वक कथन है तथा मानव शरीर का वर्णन पैर के तलुये से लेकर सिर तक किया गया है। 'अथर्ववेद' में रोगों को दूर करने के लिए अनेक मन्त्रों में जादू-टोने का वर्णन है। चिकित्सा-प्रकरण में जलचिकित्सा का उल्लेख है तथा उदय होते हुए सूर्य की रश्मियों के प्रयोग पर भी बल दिया गया है। आयुष्याणि सूक्तानि—'अथर्ववेद' में अनेक ऐसे मन्त्र हैं, जिनमें दीर्घजीवन के लिए प्रार्थना की गयी है। ऐसे सूक्त विशेष रूप से मुण्डन, उपनयन आदि संस्कारों के अवसर पर प्रयुक्त होते थे। राजकर्माणि—राजाओं के सम्बन्ध में 'अथर्ववेद' में अनेक सूक्त है, जिनमें तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का चित्रण है। इसमें विशुद्ध प्रजातन्त्रात्मक राजव्यवस्था का निर्देश है—'त्वं विशो वृणतां राज्याय ३।४।२।' इस सूक्त में राजा के वरण की चर्चा है। चतुर्थ काण्ड के अष्टम सूक्त में राज्याभिषेक के समय राष्ट्रपति द्वारा यह कथन किया गया है कि मैं सदा उनका विश्वासभाजन बना रहूँगा। राष्ट्रपति सदा राष्ट्र की उन्नति में तत्पर रहता है—'बृहद्राष्ट्रं दधातु नः'। राज्य के शासन के लिए राष्ट्रपति के अतिरिक्त 'प्रवर समिति' का भी निर्देश है—(सभा च मा समितिश्चावताम् ७।१३।१) तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए राष्ट्रपति तथा राष्ट्रसभा के सदस्यों के मतैक्य की भी बात कही गयी है। स्त्रीकर्माणि—'अथर्ववेद' में ऐसे कई सूक्त है, जिनका सम्बन्ध विवाह और प्रेम से है तथा कुछ सूक्तों में पुत्रोत्पत्ति एवं नवजात शिशु की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। इसमें कुछ ऐसे भी मन्त्र है, जिनमें सपत्नी को वश में करने तथा पति-पत्नी का स्नेह प्राप्त करने के लिए जादू-टोने का वर्णन है तथा स्त्री और पुरुष को वश में करने के लिए वशीकरण मन्त्रों का विधान है। इसी प्रकार मारण, मोहन और

उच्चाटन मन्त्र भी दिये गए है। समाज-व्यवस्था—'अथर्ववेद' में सामाजिक-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी मन्त्र है। इसके कुछ मन्त्रो मे माता-पिता, पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन आदि के पारस्परिक सम्बन्धो का वर्णन है। अध्यात्मवाद—अध्यात्मवाद 'अथर्ववेद' का मुख्य प्रतिपाद्य है। नवम काण्ड का नवम सूक्त, जो 'अस्य वामस्य' के नाम से प्रसिद्ध है, अध्यात्मविद्या का रूप उपस्थित करता है। 'अथर्ववेद' में बहुदेवतावाद का निराकरण कर एकेश्वरवाद की स्थापना की गयी है। इन्द्र, वरुण, मित्र, यम आदि अलग-अलग देवता न होकर गुण-भेद से एक ही ईश्वर के भिन्न-भिन्न नाम हैं। इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यम मातरिश्वानमाहुः॥ इसमे परब्रह्म एवं परमात्मा के स्वरूप का भी विवेचन है तथा परमतत्त्व को नाना संज्ञाओ से अभिहित किया गया है। वह काल के नाम से जगत्, पृथ्वी एवं दिव् का उत्पादन एवं नियमन करता है। इसके भूमिसूक्त मे मातृभूमि की मनोरम कल्पना की गयी है तथा देशभक्ति का अत्यन्त सुन्दर चित्र खीचा गया है—माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। १२।१।१२। सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः। मन्त्र ७०। इस वेद मे वेद को माता और देव को काव्य कहा गया है—'स्तुता मया वरदा वेदमाता' तथा 'पश्य देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति' (१०।८।३२) इसमे ब्रह्मानुभूति का वर्णन रसानुभूति की तरह किया गया है—रसेन तृप्तो न कुतश्चनो नः १०।८।४४। 'अथर्ववेद' की रचना 'ऋग्वेद' के बाद हुई थी। इसका प्रमाण इसकी भाषा है, जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन प्रतीत होती है। इसमे शब्द बहुधा बोलचाल की भाषा के है। इसमे चित्रित समाज का रूप भी 'ऋग्वेद' की अपेक्षा विकास का सूचक सिद्ध होता है। 'अथर्ववेद' मे भौतिक विषयो की प्रधानता पर बल दिया गया है, जबकि अन्य वेदो मे देवताओ की स्तुति एवं आमुष्मिक विषयो का प्राधान्य है।

आधार ग्रन्थ—१. प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड १–डॉ० विण्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद), २. संस्कृत साहित्य का इतिहास–मैकडोनल, ३. वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय ४. अथर्ववेद–(हिन्दी अनुवाद)–श्री राम शर्मा।

अथर्ववेद प्रातिशाख्यसूत्र—यह 'अथर्ववेद' का (द्वितीय) प्रातिशाख्य है। इस वेद के मूल पाठ को समझने के लिए इसमे अत्यन्त उपयोगी सामग्री का संकलन है। इसका एक संस्करण (१९२३ ई० मे) आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री के संपादकत्व मे पंजाब विश्वविद्यालय की ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुआ है, जो अत्यन्त छोटा है। इसमे अथर्ववेदविषयक कुछ ही तथ्यो का विवेचन है। इसका दूसरा संस्करण डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री का भी है, जो लाहौर से १९४० ई० मे प्रकाशित हो चुका है। यह संस्करण प्रथम का ही बृहद् रूप है।

अनर्घराघव—यह मुरारि कविकृत सात अंकों का नाटक है [दे० मुरारि] इसमें संपूर्ण रामायण की कथा नाटकीय प्रविधि के रूप मे प्रस्तुत की गयी है। कवि ने विश्वामित्र के आगमन से लेकर रावणवध, अयोध्यापरावर्त्तन तथा रामराज्याभिषेक

पर्यन्त सम्पूर्ण कथा को नाटक का रूप दिया है। रामायण की कथा को एक नाटक में निबद्ध करने में कवि का प्रयास सफल न हो सका है और इसका कथानक बिखर गया है, फिर भी रोचकता तथा काव्यात्मकता का इसमें अभाव नहीं है। प्रथम अंक मे अत्यधिक लंबी प्रस्तावना का नियोजन किया गया है। तत्पश्चात् राजा दशरथ एवं वामदेव रंगमंच पर प्रवेश करते हैं। कंचुकी द्वारा उन्हें महर्षि विश्वामित्र के आगमन की सूचना प्राप्त होती है तथा महर्षि उनसे राम को यज्ञ-विध्वंस करने वाले राक्षसो का संहार करने के लिए माँगते है। राजा प्रथमतः हिचकिचाते हैं, किन्तु अन्ततः राम-लक्ष्मण को उनके साथ विदा कर देते है। द्वितीय अंक में शुनःशेप एवं पशुमेढ्र नामक दो शिष्यो द्वारा बाली, रावण, राक्षस तथा जाम्बवन्त के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त होती है। तदनन्तर राम-लक्ष्मण का मंच पर प्रवेश होता है और ताड़का के आगमन की सूचना प्राप्त होती है। राम ताडका को स्त्री जानकर मारने में संकोच करते हैं, पर महर्षि विश्वामित्र का उपदेश ग्रहण कर उसका वध कर डालते है। इसी अंक में कवि ने सूर्यास्त का अतिविस्तृत वर्णन किया है। ताडकावध के पश्चात् राम द्वारा रात्रि का वर्णन कराया गया है जो नाटकीय दृष्टि से कोई महत्त्व नही रखता। तदनन्तर विश्वामित्र मिथिला जाने का प्रस्ताव करते हैं। तृतीय अंक के विष्कम्भक मे कंचुकी द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि रावण ने सीता के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा है। इसी बीच जनकपुर मे रामचन्द्र का आगमन होता है और राजा जनक मुनि के साथ उनका स्वागत करते हैं। राजा जनक यह शर्त रखते हैं कि जो शिवजी का धनुष चढ़ा देगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा। इस पर शौष्कल (रावण का दूत) अपना अपमान समझता है और रावण की प्रशंसा करता है, पर रामचन्द्र उसका उत्तर देते हैं। रामचन्द्र धनुष तोड डालते हैं और सीता के साथ उनका विवाह होता है। शौष्कल राम से बदला लेने की घोषणा कर उन्हें चेतावनी देकर चला जाता है और दशरथ के अन्य पुत्रों का भी विवाह राजा जनक के यहाँ सम्पन्न होता है। चतुर्थ अंक मे राम से बदला चुकाने के लिए चिन्तित रावण का मंत्री माल्यवान् विचारमग्न अवस्था में प्रदर्शित किया जाता है। तत्क्षण वहाँ शूर्पणखा आती है और माल्यवान् उसे मंथरा का छद्मवेश धारण कराकर कैकेयी से राम के वनवास की योजना बनवा देता है। वह परशुराम को भी प्रभावित कर राम से युद्ध करने के लिए मिथिला भेज देता है तथा आवेश मे आकर परशुराम राम से युद्ध करते है और अन्ततः पराजित होकर चले जाते हैं। राजा दशरथ राम को अभिषेक देना चाहते है, पर कैकेयी दो वरदान माँगकर राजा की आशा पर पानी फेर देती है और वे मूच्छित हो जाते है। पंचम अंक के विष्कम्भक मे जाम्बवन्त एवं श्रमणा के वार्त्तालाप से विदित होता है कि राम वन चले गए हैं और वहाँ उन्होंने कई राक्षसों का संहार किया है। इसी अंक मे संन्यासी के वेष मे आये हुए रावण को जाम्बवन्त पहचान लेता है जो सीता-हरण के लिए आया था। इसी बीच जटायु वहाँ आकर रावण एवं मारीच की योजना को जाम्बवन्त से कहता है। जाम्बवन्त यह बात जाकर सुग्रीव को बताता है और रावण जटायु के प्रतिरोध करने पर भी सीता का हरण कर लेता है।

जटायु घायल हो जाता है और राम-लक्ष्मण विलाप करते हैं। वन में घूमते हुए राम, गुह की रक्षा करते हुए, कबन्ध का वध करते है। इसी बीच बाली मंच पर प्रवेश कर राम को युद्ध के लिए ललकारता है। बाली का वध होता है और नेपथ्य मे सुग्रीव के राज्याभिषेक तथा सुग्रीव द्वारा सीता के अन्वेषण की सूचना प्राप्त होती है। षष्ठ अंक में सारण एवं शुक नामक दो गुप्तचरो के द्वारा रावण को सूचना मिलती है कि राम की सेना ने समुद्र पर सेतु बाँध दिया है। नेपथ्य मे कुम्भकर्ण और मेघनाद के युद्ध करने की सूचना मिलती है। कवि ने दो विद्याधरो—रत्नचूड एवं हेमांगद—को रङ्गमच पर प्रवेश कराकर उनके संवाद के रूप मे राम-रावण के युद्ध का वर्णन कराया है। रावण का वध होता है। सप्तम अंक मे राम-सीता का पुर्नमिलन होता है तथा राम, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि के साथ पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या लौट आते है। मार्ग मे कवि ने सुमेरु, चन्द्रलोक आदि का सुन्दर वर्णन किया है। अयोध्या मे वशिष्ठ एवं भरत द्वारा सबका स्वागत किया जाता है और रामराज्याभिषेक के बाद नाटक की समाप्ति हो जाती है। नाटकीय सविधान की दृष्टि से 'अनर्घराघव' सफल नाट्यकृति नही है। कवि ने अपनी भावात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन कर इसमे नाटकीय असफलता प्रदर्शित की है। इसकी कथावस्तु मे प्रवाह एव गत्यात्मकता नही है तथा प्रत्येक अक मे अनावश्यक एव बेमेल वर्णनो की भरमार है, जो दृश्यकाव्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इन वर्णनो के कारण नाटकीय कथा के प्रवाह मे अवरोध उपस्थित हो गया है। प्रथम अक मे विश्वामित्र तथा राजा दशरथ का सवाद अत्यधिक लंबा है और कवि ने एक दूसरे की प्रशंसा करने मे अधिक शब्द व्यय किये हैं। इसी प्रकार द्वितीय अंक का प्रभात-वर्णन एव चन्द्रोदय-वर्णन तथा सप्तम अंक मे विमान-यात्रा का समावेश अनावश्यक है। इसमे अंक लम्बे है तथा किसी भी अक मे ५०-६० से कम पद्य नही है, यहाँ तक कि छठे और सातवे अंको में पद्यो की सख्या ९४ एव १५२ है। कवि ने भवभूति को परास्त करने की कामना से 'अनर्घराघव' की रचना की थी किन्तु उसे नाटक लिखने की कला का पूर्ण परिज्ञान नहीं था। यद्यपि उसका ध्यान पद-लालित्य एवं पद-विन्यास पर अधिक था पर वह भवभूति की कला का स्पर्श भी न कर सका। मुरारि की नाटकीय प्रविधि अत्यधिक कमजोर है और वे सस्कृत के नौसिखुआ नाटककार के रूप मे आते है। कथावस्तु, संवाद, शैली, अंकरचना, कार्यान्विति एवं व्यापारान्विति की उपयोगिता एवं विधान का इन्हे कुछ भी ज्ञान नहीं है। इन पर सर्वत्र पाण्डित्य की छाप दिखाई पड़ती है। इनमे पाँच प्रकार के दोष देखे जा सकते है—१. इनके नाटक का कथानक निर्जीव है। २ वर्णनो तथा संवादों का अत्यधिक विस्तार है। ३. असगठित एव अनिदीर्घ अंक-रचना का समावेश है। ४ सरस भावात्मकता का अभाव है। ५ कलात्मकता का प्रदर्शन है। संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—गैरोला पृ० ६०४, द्वितीय सस्करण। भवभूति की भाँति इन्होने भी अपने नाटक मे प्रकृति का चित्रण किया है किन्तु इनका महत्त्व केवल अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य के कारण है। कवि ने अतिशयोक्ति एवं वृत्त्यनुप्रास की छटा ही छहराई है। दृश्यन्ते मधुमत्तकोकिलवधू निर्धूतचूताङ्कुरप्राग्भा-

रप्रसरत्परागसिकताद्युर्गास्तटीभूमयः । याः कृच्छ्रादतिलङ्घ्य लुब्धकभयात्तैरेवरेणूत्करै-धीराबाहिभिरस्तिलुप्तपदवीनिःशेषमेणीकुलम् ॥ ५।६ ॥ "ये जनस्थान की नदियों के तटप्रदेश दिखाई दे रहे हैं, जहाँ पराग के चलने से (या वसन्त ऋतु के कारण) मस्त कोकिलाओं के द्वारा कँपाये हुए आम के बौरों से इधर-उधर बिखर कर फैलते हुए पराग की रेती इतनी सघन है कि वहाँ जाना बड़ा कठिन है। इस सघन आम्रपरागांधकार से युक्त तटियों को बडी कठिनता से पार कर शिकारी के भय से डरी हुई हिरनियाँ धाराप्रवाह में बिखरे हुए पराग-समूह मे सुरक्षित होकर इसलिए विचरण कर रही है कि उनके पद-चिह्नों को आम्रपराग की धूलि ने छिपा लिया है।"

आधार ग्रन्थ—१. संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद), २. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास, ३. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—श्री वाचस्पतिशास्त्री गैरोला, ४. अनर्घराघव (हिन्दी अनुवाद सहित)।

अनन्तदेव—राजनीति धर्म के निबन्धकार। ये सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रीय सन्त एकनाथ के पौत्र थे। इनके पिता आपदेव थे। अनन्तदेव चन्द्रवंशीय राजा बाजबहादुरचन्द्र के सभापण्डित थे। इन्होंने उन्ही के आदेश से 'राजधर्मकौस्तुभ' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इनकी अन्य रचनाएँ है—मनिकशास्त्र तथा त्रिवीर्णक धर्म। इनका रचनाकाल १६६२ ई० के आसपास है। 'राजधर्मकौस्तुभ' राजनीतिधर्म का प्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ चार खण्डो मे विभक्त है जिन्हे दीधिति कहा गया है। इन चार दीधितियो के नाम है—वास्तुकर्म-दीधिति, वास्तु योग दीधिति, राज्याभिषेक दीधिति एव प्रजापालन दीधिति। प्रथम दीधिति मे १६ अध्याय, द्वितीय में १२ अध्याय, तृतीय में २५ अध्याय एव चतुर्थ दीधिति मे ३५ अध्याय है। इस प्रकार इसमे कुल ८८ अध्याय है जिनमे राजधर्मविषयक विविध पद्धतियाँ वर्णित है। इस निबन्ध की रचना का मुख्य उद्देश्य है 'राजाओ को उनके व्यक्तिगत एव सार्वजनिक कर्त्तव्यों के विधिवत् पालन हेतु पथप्रदर्शन एव निर्देशन'। इन्होंने राजधर्म के पूर्वस्वीकृत सिद्धान्तो का समावेश कर अपने ग्रन्थ की रचना की है। बाजबहादुरचन्द्र भूपतेस्तस्यभूरियशसे प्रतन्यते। राजधर्मविषयेऽत्र कौस्तुभे अनेकपद्धतियुताऽय दीधितिः॥

आधार ग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

अन्नंभट्ट—'तर्कसंग्रह' नामक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ के रचयिता अन्नंभट्ट है। ये न्यायदर्शन के आचार्य हैं। इनका समय १७ वी शताब्दी का उत्तरार्ध है। ये तैलग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम तिरुमल या जिनकी उपाधि अद्वैतविद्याचार्य की थी। अन्नंभट्ट ने काशी में आकर विद्याध्ययन किया था। इन्होंने अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी है, पर इनकी प्रसिद्धि एकमात्र ग्रन्थ 'तर्कसग्रह' के कारण ही है। इसकी इन्होंने 'दीपिका' नामक टीका भी लिखी है। इनके अन्य टीका-ग्रन्थो के नाम है—राणको-ज्जीवनी (यह न्यायसुधा की विशद टीका है), ब्रह्मसूत्रव्याख्या, अष्टाध्यायी टीका, उद्योतन (यह कैयटप्रदीप के ऊपर रचित व्याख्यान-ग्रन्थ है), सिद्धाञ्जन (यह न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ है जो जयदेव विरचित 'मण्यालोक' के ऊपर टीका है)। 'तर्कसंग्रह'

के ऊपर २५ टीकाएँ एवं 'दीपिका' के ऊपर १० व्याख्यान प्राप्त होते हैं। इनमे गोवर्धन मिश्र कृत 'न्यायबोधिनी', श्रीकृष्णधूर्जटिदीक्षित-रचित 'सिद्धान्तचन्द्रोदय', चन्द्रजसिंह कृत 'पदकृत्य' तथा नीलकण्ठदीक्षित रचित 'नीलकण्ठी' प्रभृति टीकाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

आधार ग्रन्थ—भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

अनुक्रमणी—ऐसे ग्रन्थो को अनुक्रमणी कहते है, जिनमें वेदो के देवता, ऋषि एवं छन्दों की सूची प्रस्तुत की गयी है। वेदो की रक्षा के लिए कालान्तर मे इन ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। प्रत्येक वेद की पृथक्-पृथक् अनुक्रमणी है। शौनक और कात्यायन अनुक्रमणी के प्रसिद्ध लेखको मे हैं। शौनक ने 'ऋग्वेद' की रक्षा के निमित्त दस अनुक्रमणियों की रचना की थी, जिनके नाम है—'आर्षानुक्रमणी' 'छन्दोनुक्रमणी' 'देवतानुक्रमणी', 'अनुवाक्-अनुक्रमणी', 'सूक्तानुक्रमणी', 'ऋग्विधान', 'पादविधान', 'बृहद्देवता' 'प्रातिशाख्य' एवं 'शौनकस्मृति'। इनमे से प्रथम पाँच ग्रन्थों मे 'ऋग्वेद' के सभी मण्डलों, अनुवाको और सूक्तो की संख्या, नाम एवं अन्यान्य विषयों के अतिरिक्त दसों मण्डलों के देवता, ऋषि तथा छन्दों का विवरण दिया गया है। सभी ग्रन्थ पद्यबद्ध हैं और इनकी रचना अनुष्टुप् छन्द में हुई है। 'ऋग्विधान' मे विशेष कार्य की सिद्धि के लिए 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का प्रयोग है। बृहद्देवता—यह अनुक्रमणियो में सर्वश्रेष्ठ है। इसमे बारह सौ पद्यो मे ऋग्वेदीय देवताओ का विस्तारपूर्वक विवेचन तथा तद्विषयक सम्बन्ध समस्याओ का समाधान है। इसमे आठ अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय मे पाँच पद्यो के वर्ग हैं। प्रथम अध्याय मे १०५ पद्य भूमिका स्वरूप हैं जिनमे देवता के स्वरूप एवं स्थान का विवरण है। द्वितीय अध्याय मे ऋग्वेदीय प्रत्येक सूक्त के देवता का विवरण तथा सूक्त सबंधी आख्यानो का वर्णन है। इसका समय विक्रमपूर्व अष्टम शतक माना जाता है। [हिन्दी अनुवाद के साथ चौखम्बा विद्याभवन मे प्रकाशित, अनु० श्री रामकुमार राय] सर्वानुक्रमणी—इसके रचयिता कात्यायन हैं। इसमें 'ऋग्वेद' की ऋचाओं की संख्या, सूक्त के ऋषि का नाम और गोत्र, मन्त्रों के देवता तथा छन्दों का उल्लेख है। इस पर बृहद्देवता' का अधिक प्रभाव है। शुक्लयजु: सर्वानुक्रमसूत्र—इसके रचयिता कात्यायन है। इसमें पाँच अध्याय हैं जिनमें 'माध्यन्दिन संहिता' के देवता, ऋषि एवं छन्दो का विवरण है। इसमे छन्दों का विस्तारपूर्वक वर्णन तथा याग-विधान के नियमो के साथ-ही साथ अनुष्ठानो का भी वर्णन है। सामवेदीय अनुक्रमणी—'सामवेद' से सम्बद्ध अनुक्रमणी ग्रन्थों की संख्या अधिक है। कल्पानुपदसूत्र—यह दो प्रपाठक मे विभक्त है तथा प्रत्येक प्रपाठक में १२ पटल हैं। उपग्रन्थसूत्र—यह चार प्रपाठकों मे विभक्त है। सायण के अनुसार इसके रचयिता कात्यायन है। अनुपदसूत्र—इसमे 'पञ्चविंशब्राह्मण' की संक्षिप्त व्याख्या है। इसमे दस प्रपाठक है। निदानसूत्र—इसमे दस प्रपाठक हैं। इसके लेखक पतञ्जलि है। उपनिदानसूत्र—इसमे दो प्रपाठक है तथा छन्दो का सामान्य स्वरूप वर्णित है। पञ्चविधान—यह दो प्रपाठको में विभाजित है। लघुऋक्तन्त्र संग्रह—यह स्वतन्त्र ग्रन्थ है, ऋक्तन्त्र का

सक्षेप नहीं। संहितापाठ को पदपाठ के रूप में परिवर्तित करने के लिए इसमें विशेष नियम दिये गए हैं। (सम्पादक: डॉ० सूर्यकान्त) सामसप्तलक्षण—यह पद्यबद्ध लघुकाव्य ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन महीदास की विवृति के साथ संस्कृत सीरीज, काशी से १९३८ ई० में हुआ है। अथर्ववेदीयग्रन्थ—'अथर्ववेद' के अनेक अनुक्रमणी ग्रन्थ हैं, जिनमे अथर्व का विभाजन, मन्त्र, उच्चारण तथा विनियोग संबंधी विचार हैं। चरणव्यूह—इसमे वेद के पाँच लक्षण ग्रन्थ उल्लिखित हैं—चतुरध्यायी, प्रातिशाख्य, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधि एवं बृहसर्वानुक्रमणी। इनमे से प्रथम दो का विवरण शिक्षाग्रन्थों में है। दे० शिक्षा। १. पञ्चपटलिका—इसमें पाँच पटल या अध्याय है तथा अथर्व के काण्डों एवं मन्त्रो का विवरण दिया गया है। इसमे ऋषि और देवता का भी उल्लेख है। २. दन्त्योष्ठविधि—इसमे अथर्ववेदीय उच्चारण का विशेष विवरण प्राप्त होता है। ३. बृहत्सर्वानुक्रमणी—इसके प्रत्येक काण्ड मे सूक्तों के मन्त्र, देवता तथा ऋषि का विवरण है। यह बीस काण्डो में विभक्त है। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों का प्रकाशन दयानन्दमहाविद्यालय, लाहौर से हुआ था।

आधार ग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय।

अप्पय दीक्षित—प्रसिद्ध वैयाकरण, दार्शनिक एवं काव्यशास्त्री अप्पयदीक्षित संस्कृत के सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्वान् के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने अनेक विषयो पर १०४ ग्रन्थो का प्रणयन किया है। ये दक्षिण भारत के निवासी तथा तंजौर के राजा शाहजी के सभापण्डित थे। इनका समय १७वीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा १८वी शताब्दी का प्रथम चरण है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थो की सूची इस प्रकार है—१. अद्वैत वेदान्त विषयक ग्रन्थ—श्री परिमल, सिद्धान्तलेशसंग्रह, वेदान्त-नक्षत्रवादावली, मध्वतन्त्रमुखमर्दनम्, न्यायरक्षामणि। कुल छह ग्रन्थ। २. भक्तिविषयक २६ ग्रन्थ—शिखरिणीमाला, शिवतत्त्वविवेक ब्रह्मतर्कस्तव (लघुविवरण), आदित्य-स्तवरत्नम् इसकी व्याख्या, शिवाद्वैतनिर्णय, शिवध्यानपद्धति, पञ्चरत्न एवं इसकी व्याख्या, आत्मार्पण, मानसोल्लास, शिवकर्णामृतम्, आनन्दलहरी, चन्द्रिका, शिवमहिम-कालिकास्तुति, रत्नत्रयपरीक्षा एवं इसकी व्याख्या, अरुणाचलेश्वरस्तुति, अपीतकुचा-म्बास्तव, चन्द्रकलास्तव, शिवार्कमणिदीपिका, शिवपूजाविधि, नयमणिमाला एवं इसकी व्याख्या। ३. रामानुजमतविषयक ५ ग्रन्थ—नयनमयूखमालिका, इसकी व्याख्या, श्री वेदान्तदेशिकविरचित 'यादवाभ्युदय' की व्याख्या, वेदान्तदेशिकविरचित 'पादुका-रहस्य' की व्याख्या, वरदराजस्तव। ४. मध्यसिद्धान्तानुसारी २ ग्रन्थ—न्यायरत्नमाला एवं इसकी व्याख्या। ५ व्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थ—नक्षत्रवादावली। ६. पूर्वमीमासाशास्त्र-सम्बन्धी २ ग्रन्थ—नक्षत्रवादावली एवं विधिरसायन। ७. अलंकारशास्त्रविषयक ३ ग्रन्थ—वृत्तिवार्तिक, चित्रमीमासा एवं कुवलयानन्द। वृत्तिवार्तिक—यह शब्दशक्ति पर रचित लघु रचना है जिसमें केवल दो ही शक्तियों—अभिधा एवं लक्षणा का विवेचन है। लक्षणा के प्रकरण म ही यह ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। यह ग्रन्थ अधूरा रह गया है। वृत्तयः काव्यसरणावलंकारप्रबन्धृभिः अभिधा लक्षणा व्यक्तिरिति तिस्रो निरूपिताः॥

तत्र क्वचित्क्वचिद्वृद्धैर्विशेषानस्फुटीकृतान् । निष्टंकयितुमस्माभिः क्रियते वृत्तिवार्तिकम् ॥ पृ० १ चित्रमीमांसा मे १२ अलंकारों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है— उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम, ससन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति । चित्रमीमासा की रचना अधूरी है । संभव है इसमें इसी पद्धति पर सभी अलंकारो का विवेचन किया गया हो । विवेचित अलकारो का विवरण ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक उभय दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है । दीक्षित ने प्रत्येक अलंकार के विवेचन मे पूर्ववर्त्ती आलकारिकों के लक्षण एवं उदाहरण मे दोषान्वेषण कर उनकी शुद्ध एवं निर्भ्रान्त परिभाषाएँ दी हैं । कुवलयानन्द दीक्षित की अलंकारविषयक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है जिसमे शताधिक अलंकारों का निरूपण है । इस ग्रन्थ की रचना जयदेवकृत चन्द्रालोक के आधार पर हुई है । [दे० कुवलयानन्द]

आधार ग्रन्थ—१ भारतीय साहित्य शास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय, २ हिन्दी कुवलयानन्द—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ।

अभयदेव—(समय १२२१ ई०) ये संस्कृत के जैन कवि है, जिन्होंने १९ सर्ग मे 'जयन्तविजय' नामक महाकाव्य की रचना की है । इस महाकाव्य मे मगधनरेश जयन्त की विजय-गाथा दो सहस्र श्लोको मे वर्णित है ।

अभिनन्द (प्रथम)—इन्होने 'कादम्बरीसार' नामक दस सर्गों का महाकाव्य लिखा है । ये काश्मीरक थे । इनका समय १०वी शताब्दी है । इनके पिता प्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट थे । 'कादम्बरीसार' में अनुष्टुप् छन्द में 'कादम्बरी' की कथा कही गयी है । इन्होने 'योगवासिष्ठसार' नामक अन्य ग्रन्थ भी लिखा था । क्षेमेन्द्र ने अभिनन्द के अनुष्टुप् छन्द की प्रशसा की है । अनुष्टुप्-सततासक्ता साऽभिनन्दस्य नन्दिनी । विद्याधरस्य वदने गुलिकेव प्रभावभूः ॥ सुवृत्ततिलक ['कादम्बरीसार' का प्रकाशन *काव्यमाला संख्या ११ में बम्बई से हो चुका है*] ।

अभिनन्द (द्वितीय)—इन्होने 'रामचरित' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है । इनका समय नवम शताब्दी का मध्य है । कवि ने अपने आश्रयदाता का नाम श्रीहारवर्ष लिखा है, जिनका समय नवम शताब्दी है—नमः श्रीहारवर्षाय येन हालाद-नन्तरम् । स्वकोशः कविकोशानामाविर्भावाय संभृतः ॥ कवि के पिता का नाम शतानन्द था और वे भी कवि थे । उनके १० श्लोक 'सुभाषितरत्नकोश' मे उद्धृत है । 'रामचरित' महाकाव्य मे किष्किन्धाकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा ३६ सर्गो मे वर्णित है । यह ग्रन्थ अधूरा है । इसकी पूर्ति के लिए दो परिशिष्ट अन्त मे चार-चार सर्गो के हैं जिनमें प्रथम के रचयिता स्वयं अभिनन्द है तथा द्वितीय परिशिष्ट किसी 'कायस्थकुलतिलक' भीम कवि की रचना है । इस महाकाव्य मे प्रसाद एवं माधुर्य-गुण-युक्त विशुद्ध वैदर्भी शैली का प्रयोग हुआ है । ऋतु तथा प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे कवि की प्रकृत प्रतिभा का निदर्शन हुआ है ['रामचरित' का प्रकाशन १९३० ई० में गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से हुआ है] ।

आधार ग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डॉ० एस० के० डे तथा

डॉ० एस० एन० दासगुप्त, २. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—आ० बलदेव उपाध्याय, ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—आ० बलदेव उपाध्याय, ४ संस्कृत साहित्य का इतिहास—पी० वरदाचार्य।

अभिनव कालिदास—इनके द्वारा रचित दो चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं—'भागवत चम्पू' तथा 'अभिनव भारत चम्पू'। 'भागवत चम्पू' का प्रकाशन गोपाल नारायण कम्पनी, बुक सेलर्स, कालबादेवी, बम्बई से १९२९ ई० में हुआ है, किन्तु द्वितीय ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। 'भागवत चम्पू' का आधार 'श्रीमद्भागवत' का दशमस्कन्ध है। इसमें छह स्तवक हैं। कवि का समय ११वीं शताब्दी है। वह उत्तरी पेन्नार के किनारे स्थित विद्यानगर के राजा राजशेखर का राजकवि था। राजशेखर का समय ग्यारहवीं शताब्दी है। अभिनव कालिदास की कविता में नग्न और उत्तान शृङ्गार का बाहुल्य है और संयोगपक्ष के वर्णन में कवि की वृत्ति खूब रमी है। इनके शृङ्गार-वर्णन पर राजदरबार की विलासिता का पूर्ण प्रभाव है तथा पदों में सानुप्रासिक सौन्दर्य एवं यमक की छटा दिखाई पड़ती है। रमणीमरोजरमणीय-लोचनामधुराधराश्रयधुराधरापि का। रुचिराचिराशुरुचिराशयाशयं तरली चकार मुरली विनोदनः॥ भागवत चम्पू ३।५४। 'अभिनवभारत चम्पू' में 'महाभारत' की कथा संक्षेप में वर्णित है। इसका उल्लेख लेविसराइस केटलॉग (२४६) में है।

आधार ग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—कृष्णमाचारियर, २ चम्पूकाव्य का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन—डॉ० छबिनाथ त्रिपाठी।

अभिनवगुप्त—दर्शन एवं काव्य शास्त्र के आचार्य। ये काश्मीर-निवासी थे। इनके कथन से ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज अन्तर्वेद (दोआब) के निवासी थे किन्तु बाद में काश्मीर में आकर बस गए। इनके पिता का नाम नृसिंहगुप्त एवं पितामह का नाम वाराहगुप्त था। इनके पिता का अन्य नाम 'चुखल' और माता का नाम विमला या विमलाकला था। 'अन्तर्वेद्यामात्रिगुप्ताभिधानः प्राप्योत्पत्ति प्राविशत् प्राग्र-जन्मा। श्रीकाश्मीरांश्चन्द्रचूडणवतार-निःसंख्याकैः पावितोपान्त भागान्॥' परात्रिंशिका विवरण २८०। तस्यान्वये महति कोऽपि वराहगुप्तनामाबभूव भगवान् स्वयमन्त-काले। गीर्वाणसिन्धुलहरीकलितायहमूर्धा—यस्याकरोत् परमनुग्रहमाग्रहेण॥ तस्यात्मजः चुखुलकेति जने प्रसिद्धश्चन्द्रावदातधिषणो नरसिंहगुप्तः। यं सर्वशास्त्ररसमज्जनशुभ्रचित्तं माहेश्वरी परमतांकुरुते स्मभक्ति॥ तन्त्रालोक। अभिनव ने अपने १३ गुरुओं का विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें प्रसिद्ध है—नरसिंहगुप्त (ग्रन्थकार के पिता) वामनाथ, भूतिराजतनय, इन्दुराज, भूतिराज एवं भट्टतोत। अभिनवगुप्त प्रकाण्ड विद्वान् तथा परम शिवभक्त थे। ये आजीवन ब्रह्मचारी बने रहे। इन्होंने अनेक विषयों पर ४१ ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमें ११ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। १. बोधपञ्च-दशिका—शिवभक्तिविषयक १५ श्लोकों का लघु ग्रन्थ, २. परात्रींशिका-विवरण—तन्त्र-शास्त्र का ग्रन्थ ३ मालिनीविजयवार्त्तिक—'मालिनीविजय तन्त्र' नामक ग्रन्थ का वार्त्तिक, ४ तन्त्रालोक—तन्त्रशास्त्र का विशाल ग्रन्थ, ५–६. तन्त्रसार तन्त्रवटधानिका–

तन्त्रसार के ग्रन्थ, ७–८. ध्वन्यालोकलोचन एवं अभिनवभारती–'ध्वन्यालोक' एवं भरत नाट्यशास्त्र की टीका, ९. भगवद्गीतार्थसंग्रह—गीता की व्याख्या, १०. परमार्थसार—१०५ श्लोक का शैवागम-ग्रन्थ, ११. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी—उत्पलाचार्यकृत ईश्वरप्रत्यभिज्ञासूत्र की टीका। चार हजार श्लोको का ग्रन्थ। इनके अन्य अप्रकाशित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्ति-विमर्शिणी, क्रमस्तोत्र, भैरवस्तोत्र, देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, अनुभवनिवेदन, अनुतराष्टिका, परमार्थद्वादशिका, परमार्थचर्चा, महोपदेशविंशतिकम्, तन्त्रोच्चय, घटकर्परकुलक विवृति, क्रमकेलि, शिवदृष्ट्यालोचन, पूर्वपञ्चिका, पदार्थप्रवेशनिर्णयटीका प्रकीर्णकविवरण, काव्यकौतुकविवरण, कथामुख-तिलकम्, लध्वीप्रक्रिया, वेदवादविवरण, देवीस्तोत्रविवरण, तत्त्वाध्वप्रकाशिका, शिव-शक्त्यविनाभावस्तोत्र, बिम्बप्रतिबिम्बभाव, अनुत्तरतत्त्वविमर्शिणीवृत्ति, नाट्यालोचन, परमार्थसंग्रह, अनुत्तरशतक। अभिनवगुप्तकृत इस विशाल ग्रन्थ-राशि को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—दार्शनिक, साहित्यिक एवं तान्त्रिक। इनका काल-निर्णय अत्यन्त सुगम है। उन्होने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिणी' का रचनाकाल कलियुग का ४१५१ लिखा है जो गणनानुसार १०१४–१५ ई० है। इस प्रकार इनकी साहित्य-साधना की अवधि ९८० ई० से लेकर १०२० तक सिद्ध होती है। अभिनवगुप्त उच्चकोटि के कवि, महान् दार्शनिक एवं साहित्य समीक्षक हैं। इन्होने रस को काव्य मे प्रमुख स्थान देकर उसकी महत्ता स्वीकार की है। इनका रसविषयक सिद्धान्त 'अभिव्यक्तिवाद' कहा जाता है जिसके अनुसार श्रोताओं एवं दर्शकों के हृदय मे रस के तत्त्व (स्थायिभाव) वासना के रूप मे विद्यमान रहते है और काव्य के पढ़ने एव नाटक के देखने से वही वासना अभिव्यक्त या उद्बुद्ध होकर रस के रूप मे परिणत हो जाती है। इन्होने रस को व्यंजना का व्यापार माना है और उसकी स्थिति सामाजिक या दर्शक मे ही स्वीकार की है। अभिनवगुप्त का रससिद्धान्त मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधृत है। इन्होंने विभावन व्यापार के द्वारा विभावानुभाव आदि का साधारणीकरण होने का वर्णन किया है तथा रस को काव्य की आत्मा माना है जो ध्वनि के रूप मे व्यंजित होता है। अभिनवगुप्त प्रत्यभिज्ञादर्शन के महान् आचार्य हैं।

आधार ग्रन्थ—हिन्दी अभिनवभारती (१, ३, ६ अध्याय की व्याख्या)—व्याख्याकार आ० विश्वेश्वर।

अभिषेक—यह महाकवि भास विरचित नाटक है। इसका कथानक राम-कथा पर आश्रित है। इसमे ६ अंक हैं और बालि-वध मे रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। रामराज्याभिषेक के आधार पर ही इसका नामकरण किया गया है। कवि ने रामचन्द्र के किष्किन्धा पहुँचने, हनुमान् का लका मे जाकर सीता को सान्त्वना देने, नगरी नष्ट करने, जलाने तथा रावण द्वारा राम और लक्ष्मण के कटे हुए मस्तक को छलपूर्वक सीता को दिखाने की घटनाओं को, विशेष रूप से समाविष्ट किया है। इस नाटक मे दो अभिषेकों का वर्णन है—सुग्रीव एवं श्रीराम का। अन्तिम अभिषेक श्रीरामचन्द्र का है और वही नाटक का फल भी है। रामायण की कथा को सजाने

एवं संवारने में कवि ने अपनी मौलिकता एवं कौशल का परिचय दिया है। बालि-वध को न्यायरूप देने तथा समुद्र द्वारा मार्ग देने के वर्णन मे नवीनता है। इसी प्रकार जटायु से समाचार जानकर हनुमान् द्वारा समुद्र-संतरण करने तथा राम-रावण के युद्ध-वर्णन मे भी नवीनता प्रदर्शित की गयी है। रावण की पराजय होती है, पर वह सीता के समक्ष राम एवं लक्ष्मण की मायामयी प्रतिकृति दिखाकर उन्हे वश में करना चाहता है। उसी समय उसे सूचना मिलती है कि उसका पुत्र मेघनाद मारा गया। इसमे पात्रों के कथापकथन छोटे एवं सरल वाक्यों मे है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। 'अभिषेक' मे वीररस की प्रधानता है पर यत्र-तत्र करुणरस भी अनुस्यूत है। कथोपकथन में कहीं-कही अत्यन्त विचित्रता भी दिखाई पडती है, जिसे सुनकर दर्शक चकित हो जाते है। जैसे, रावण के इस कथन पर नेपथ्य से ध्वनि का आना—कि रामेण, रामेण—व्यक्तमिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन्नराधमे। लक्ष्मणेन सह भ्राता केन त्वं मोक्षयिष्यमे ॥ ५।१०

आधार ग्रन्थ—१. भासनाटकचक्रम् (हिन्दी अनुवाद सहित) चौखम्बा प्रकाशन २ महाकविभास—एक अध्ययन—आ० बलदेव उपाध्याय।

अभिज्ञान शाकुन्तल—यह महाकवि कालिदास का सर्वोत्तम नाटक है। [दे० कालिदास] इसमें कवि ने सात अङ्को मे राजा दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुर्नमिलन की कहानी का मनोरम वर्णन किया है।

कथानक—प्रथम अङ्क मे राजा दुष्यन्त मृगया खेलते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में चला जाता है जहाँ उसे वृक्षो का सिचन करती हुई तीन मुनि-कन्याओं से साक्षात्कार होता है। उनमें से शकुन्तला के प्रति वह अनुरक्त हो जाता है। उस समय कण्व ऋषि शकुन्तला के किसी अमङ्गल के शान्त्यर्थ सोमतीर्थ गये हुए थे। उसका जीवन-वृत्तान्त जानने के बाद वह शकुन्तला पर आकृष्ट होता है और शकुन्तला भी उस पर अनुरक्त होती है। वार्त्तालाप के क्रम मे राजा को ज्ञात हो जाता है कि शकुन्तला कण्व की पुत्री न होकर मेनका नामक अप्सरा की कन्या है, जो विश्वामित्र से उत्पन्न हुई है। दोनो ही अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए गान्धर्व-विधि से प्रणयसूत्र में आबद्ध हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क मे दुष्यन्त अपने मित्र माढव्य (विदूषक) से शकुन्तला के प्रणय की चर्चा करता है। तभी आश्रम के दो तपस्वी आकर राजा से आश्रम की रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। उसी समय हस्तिनापुर से दूत सन्देश लेकर आता है कि देवी वसुमती के उपवास के पारण के दिन राजा अवश्य आयें। शकुन्तला के प्रति मुग्ध राजा तपोवन छोडना नहीं चाहता। अन्त मे वह माढव्य को भेज देता है और उसके चञ्चल स्वभाव को जानते हुए शकुन्तला की प्रणय-गाथा को कपोलकल्पित कहकर उसे परिहास की बात कहता है। ऐसा कहकर कवि पञ्चम अङ्क की शकुन्तला-परित्याग की घटना की पृष्ठभूमि तैयार कर लेता है।

यदि माढव्य का सन्देह दूर नही किया जाता तो सम्भव था कि सामाजिक के हृदय में यह सन्देह उत्पन्न हो जाता कि जब विदूषक इस बात को जानता था तो उसने

शकुन्तला को पत्नी रूप में ग्रहण करने से राजा को क्यों नहीं मना किया ? अतः कवि इस सन्देह का निवारण द्वितीय अङ्क में ही कर देता है। तृतीय अङ्क में विरह-पीड़िता शकुन्तला के पूर्वराग का पता राजा को लग जाता है। लतागृह में पड़ी हुई शकुन्तला विरह-विदग्ध होकर राजा के पास पत्र लिखने का उपक्रम करती है और कमल के पत्ते पर पत्र लिख दिया जाता है। तत्क्षण राजा प्रकट हो जाता है और दोनों ही अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए गान्धर्व-विधि से प्रणयसूत्र मे आबद्ध हो जाते हैं। दोनो की प्रेम-क्रीडाएँ चलती हैं, तभी गोतमी रात्रि के आगमन की सूचना देती है और शकुन्तला चली जाती है। गोतमी शकुन्तला का समाचार जानने के लिए आती है और दुष्यन्त छिप जाता है।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि दुष्यन्त अपनी राजधानी मे चला गया। उसने शकुन्तला को अपनी नामांकित अंगूठी दे दी थी कि मेरे नाम के जितने अक्षर हैं उतने ही दिनों मे मैं तुम्हें राजधानी में बुला लूँगा। शकुन्तला राजा के ध्यान मे मग्न है तभी दुर्वासा का आगमन होता है और वह उनका स्वागत नही कर पाती। दुर्वासा आतिथ्य-सत्कार न होने के कारण उसे शाप दे देते हैं कि तू जिसके ध्यान मे मग्न है वह तुझे स्मरण नहीं करेगा। प्रियंवदा (शकुन्तला की सखी) दुर्वासा का अनुनय-विनय करके उन्हें प्रसन्न करती है ओर वे कहते है कि जब तेरी सखी कोई उसे अभिज्ञान दिखा देगी तो राजा पहचान जायगा। इस बीच कण्व तीर्थयात्रा से लौटकर आश्रम में आते है और उन्हे शकुन्तला के विवाह की जानकारी होती है। वे शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने की तैयारी करते है। शकुन्तला जब विदा होती है तो आश्रम मे करुण दृश्य उपस्थित हो जाता है और वनवासी कण्व द्रवीभूत हो जाते हैं।

पञ्चम सर्ग में शकुन्तला को साथ लेकर गौतमी, शार्ङ्गरव एवं शारद्वत दुष्यन्त की राजधानी मे पहुँचते हैं। राजा शापवश शकुन्तला को पहचान नही पाता। जब शकुन्तला उसकी दी हुई अंगूठी दिखाना चाहती है तभी वह मिल नहीं पाती। (जाते समय प्रियंवदा ने कहा था कि यदि तुम्हारा पति तुम्हे न पहचाने तब तुम उसे अपनी अंगूठी दिखा देना और वह तुम्हे पहचान जायगा)। गौतमी कहती है कि वह शुक्रावतार तीर्थ में अवश्य ही गिर गई होगी। राजा शकुन्तला का तिरस्कार करता है और शकुन्तला भी उसे कटुवचन कहती है। राजा द्वारा तिरस्कृत तथा आसन्नप्रसवा शकुन्तला को जब शार्ङ्गरव आदि आश्रम मे नहीं ले जाते तब राजा का पुरोहित उसे प्रसवपर्यन्त अपने यहाँ, पुत्री के समान, रखने को तैयार हो जाता है। पर, वह पुरोहित के यहाँ पहुँचती नही कि आकाश से कोई अदृश्य ज्योति उसे उठाकर तिरोहित हो जाती है।

षष्ठ अङ्क के प्रवेशक में राजा की अंगूठी बेचते हुए एक पुरुष पकडा जाता है और वह रक्षकों के द्वारा राजा के समक्ष लाया जाता है। अंगूठी देखते ही शाप का प्रभाव दूर हो जाता है और राजा पूर्व घटनाओं का स्मरण कर अपने निष्ठुर व्यवहार से

दुःखित हो जाता है। वह शकुन्तला के विरह में व्यथित होकर अपने को कोसता है। इसी बीच इन्द्र का सारथी मातलि अदृश्य होकर इस विचार से माढव्य का गला दबाता है कि विरह के कारण शान्त हुआ राजा का वीरत्व दमक उठे और वह इन्द्र पर आक्रमण करनेवाले कालनेमि प्रभृति राक्षसो का विनाश कर सके। यही बात होती भी है। राजा राक्षसों का विनाश करने के लिए प्रस्थान करता है। सप्तम अङ्क में राक्षसों का संहार कर राजा किंपुरुष पर्वत पर स्थित महर्षि मारीच के आश्रम पर जाता है। वहाँ उसे सिंह के साथ खेलता हुआ एक शिशु दिखाई पडता है। खेलते समय बालक के हाथ मे बँधी हुई अपराजित नामक औषधि खुलकर गिर जाती है और उसे राजा उठा लेता है। बालक के साथ रहने वाली तपस्विनी यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है कि इसके माता-पिता के अतिरिक्त यदि कोई अन्य व्यक्ति इसे उठायेगा तो वह औषधि उसे साँप बन कर काट देगी। जब वह तपस्विनी उस बालक को मिट्टी का पक्षी देकर उसे आकृष्ट करना चाहती है तब वह अपनी माँ की खोज करता है। तभी शकुन्तला आती है और राजा के साथ उसका मिलन होता है और मारीच दोनों को आशीर्वाद देते हैं।

कथा का स्रोत—'शकुन्तला' की मूल कथा 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' मे मिलती है। इनमे 'महाभारत' की कथा अधिक प्राचीन है। इस कथा मे सरसता नही है और यह सीधी-सादी तथा नीरस है। 'महाभारत' की कथा को कवि अपनी प्रतिभा एव कल्पनाशक्ति के द्वारा सरस तथा गरिमामयी बना देता है। उसने 'महाभारत' के हीन चरित्रो को उदात्तता प्रदान कर उन्हे प्राणवन्त बना दिया है। 'महाभारत' की कथा इस प्रकार है—एक बार चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए महर्षि कण्व के आश्रम मे प्रविष्ट हुए। उन्होने आश्रम में घुस कर पुकारा। उस समय कण्व की अनुपस्थिति मे उनकी धर्म-पुत्री शकुन्तला ने उनका सत्कार किया तथा राजा के पूछने पर अपने जन्म की कथा उनसे कह दी। उसे क्षत्रिय कन्या जानकर राजा ने उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। शकुन्तला ने कहा कि यदि आपका उत्तराधिकारी मेरा पुत्र हो तो मैं इस शर्त पर विवाह कर सकूँगी। जब राजा ने उसका प्रस्ताव मानने का वचन दिया तो दोनो ने गन्धर्व रीति से विवाह कर लिया तथा राजा ने उसके साथ सहवास किया। वह शकुन्तला को आश्वासन देकर गया कि मैं शीघ्र ही तुम्हे बुलाने के लिए सेना भेजूँगा, पर वह रास्ते मे सोचता गया कि कहीं कण्व यह बात जान लें तो मुझ पर रुष्ट न हो जायें। राजा के जाने के बाद कण्व ऋषि आश्रम मे आये और तपबल से सारी घटना को जानकर शकुन्तला के गान्धर्व विवाह की स्वीकृति दे दी। कुछ समय के पश्चात् शकुन्तला ने एक शिशु को जन्म दिया जो ६ वर्ष का होकर अपने पराक्रम से सिंह के साथ खेलने लगा। नौ वर्ष से अधिक शकुन्तला को अपने यहाँ रखना उचित न मान कर ऋषि ने उसे पुत्र सहित कुछ तपस्वियों के साथ दुष्यन्त की राजधानी में भेज दिया। दुष्यन्त ने शकुन्तला एवं उसके पुत्र को अपरिचित बता कर उन्हें स्वीकार नहीं किया। जब शकुन्तला जाने को तैयार हुई तब उसी समय

आकाशवाणी हुई कि शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है और सर्वदमन तुम्हारा पुत्र है। ऐसा सुनकर पुरोहित और मन्त्रियो की राय से राजा ने उन्हें अपना लिया। उसने लोगों से कहा कि मैं सारा वृत्तान्त जानता था पर यदि मैं पहले ही इन्हे स्वीकार कर लेता तो आप लोग शङ्का कर सकते थे, किन्तु आकाशवाणी के द्वारा देवताओं की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर इनकी शुद्धता प्रकट हो गई है।

शकुन्तला के कथानक का वैशिष्ट्य—'महाभारत' की इस निर्जीव एवं चमत्कारहीन कथा में कालिदास ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर इसे सरस एवं रोचक बनाया है। इस कथा मे दुष्यन्त का चरित्र गिर गया है और वह अत्यन्त कामी, लोलुप तथा व्यभिचारी सिद्ध होता है और शकुन्तला अपने पुत्र को राजा बनाने की शर्त लगा कर एक स्वार्थी नारी के रूप मे उपस्थित होती है। शकुन्तला का प्रेम, प्रेम न रह कर, व्यापार हो जाता है। 'महाभारत' में शकुन्तला दुष्यन्त से अपने जन्म की कथा स्वयं कहती है पर 'शकुन्तला नाटक' मे यह बात शकुन्तला की दो सखियों—अनुसूया एवं प्रियंवदा—की बातचीत से ज्ञात हो जाती है। ऐसा कर कवि ने शकुन्तला के शील एवं मुग्धत्व की रक्षा की है। 'महाभारत' की शकुन्तला विवाह के लिए शर्त रखती है और वह प्रगल्भ, स्पष्टवादिनी एवं निर्भीक तरुणी के रूप मे उपस्थित होती है। उसमे हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क का प्राधान्य है। 'शकुन्तला नाटक' की शकुन्तला मे उपर्युक्त दोष नहीं है। वह लज्जावती, प्रेमपरायण एवं निश्छल मुग्धा बालिका के रूप मे प्रस्तुत की गई है। 'महाभारत' मे कण्व फल-मूलादि लाने के लिए वन मे गये है, जहाँ मे वे एक या दो घण्टे के भीतर आ गये होगे। इसी अन्तराल मे प्रेम और विवाह की बात अयौक्तिक-सी लगती है। पर, कालिदास ने नाटक मे कण्व ऋषि को शकुन्तला के भावी अनिष्ट के शमन के लिए सोमतीर्थ मे जाने का वर्णन किया है। अत. उनकी दीर्घकालीन अनुपस्थिति मे घटित होने वाली यह घटना स्वाभाविक लगती है। कालिदास ने दुर्वासा का शाप तथा अँगूठी की बात की कल्पना कर दो महत्त्वपूर्ण नवीनताएँ जोडी हैं। इससे दुष्यन्त कामी, लोलुप, भीरु एवं स्वार्थी न होकर शुद्ध उदात्त चरित्र का व्यक्ति सिद्ध होता है। 'महाभारत' मे वह समाजभीरु है तथा जानबूझ कर शकुन्तला को तिरस्कृत करता है, पर कालिदास ने शाप की बात कहकर उसके चरित्र का प्रक्षालन किया है। शाप के अनुसार शकुन्तला का पति द्वारा तिरस्कार आवश्यक था तथा शीलस्खलन के कारण उसका अभिशप्त होना भी अनिवार्य था। इससे उसका चरित्र, दण्ड प्राप्त कर, उज्ज्वल हो जाता है। शाप की घटना के द्वारा कवि ने शकुन्तला के दण्ड का भी विधान किया है तथा अँगूठी की बात का नियोजन कर शाप-विमोचन के साधन की सृष्टि की है। राजा के पास जाने के पूर्व ही शकुन्तला की अँगूठी का गिर जाना एवं शकुन्तला के तिरस्कार के पश्चात् अंगूठी के मिलने पर राजा को उसकी स्मृति का होना, ये दोनों ही बातें अत्यन्त स्वाभाविक ढङ्ग से वर्णित है।

कथानक का वैशिष्ट्य—'शकुन्तला-नाटक' का वस्तु-विन्यास मनोरम तथा सुगठित है। कवि ने विभिन्न प्रसङ्गो की योजना इस ढङ्ग से की है कि अन्त-अन्त तक उनमें

सामंजस्य बना हुआ है। इसकी विविध घटनाएँ मूल कथा के साथ सम्बद्ध है और उनमें स्वाभाविकता बनी हुई है। इसमें एक भी ऐसा प्रसङ्ग या दृश्य नहीं है जो अकारण या निष्प्रयोजन हो। नाटक के आरम्भिक दृश्य का काव्यात्मक महत्त्व अधिक है। दुष्यन्त का रथ पर आरूढ होकर आश्रम मृग का पीछा करते हुए आश्रम मे प्रवेश करना सौन्दर्य मे पूर्ण है। द्वितीय अङ्क मे प्रणय-प्रतिमा शकुन्तला एवं प्रणयी राजा दुष्यन्त के मानसिक उद्वेलन का चित्रण है। प्रथमतः द्वन्द्व का प्रारम्भ दुष्यन्त के ही हृदय में होता है कि ब्राह्मण की कन्या होने के कारण यह क्षत्रिय नृप के लिए 'अपरिग्रह' है, पर उनके अन्तर का मानव शकुन्तला को उपभोग की वस्तु मानता है और अन्ततः सखियों द्वारा उसके (शकुन्तला) जन्म का वृत्तान्त जानकर उनका आन्तरिक संघर्ष शान्त हो जाता है। वास्तविक संघर्ष कवि शकुन्तला के जीवन में घटित करता है। "जब नवोत्थित प्रणयावेग उसे एक ओर खींचता है और उसका मुग्ध स्वभाव, तपोवनोचित संस्कार तथा कन्योचित लज्जा दूसरी ओर खींचते है।" चौथे अङ्क के विष्कम्भक में प्रातःकाल का वर्णन कर भावी दुःख एवं वियोग की सूचना दी गई है। दुर्वासा के भयङ्कर शाप जैसी महत्त्वपूर्ण घटना का सम्बन्ध इससे है जो कवि के अपूर्व नाट्यकौशल का परिचायक है। शकुन्तला की बिदाई के समय मानव हृदय की करुणा ही मुखरित हो उठी है। यहाँ कवि ने मानव एवं मानवेतर प्राणियों के हृदय में समान रूप से करुणा का भाव व्यञ्जित किया है। करुणा की भावना रानी हंसपादिका के (पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ मे) गीत मे तीव्रतर होती दिखाई पड़ती है। चतुर्थ अङ्क काव्यत्व की दृष्टि मे उत्तम है तो पाँचवे अङ्क में नाटकीय तत्त्व अधिक सबल है। छठे अङ्क के प्रवेशक मे धीवर एवं पुलिस अधिकारियों की बातचीत मे लोकजीवन की सुन्दर झाँकी मिलती है। "छठा अङ्क पाँचवे अङ्क का ही परिणाम है, जो प्रत्यभिज्ञान, अँगूठी की उपलब्धि से प्रारम्भ होता है। उसमे दुष्यन्त के अपनी प्रियतमा के प्रत्याख्यानजनित मानसिक परिताप का प्रगाढ अङ्कन है। समुद्रवणिक् की मृत्यु घटना से राजा का आग्रह अपनी प्रियतमा की ओर से हटकर अपने पुत्र के प्रति हो जाता है, और वह भी दर्शनीय है कि पुत्र के अभाव-ज्ञान से ही प्रियतमा का प्रत्यभिज्ञान होता है। यह करुण दृश्य मातलि-विदूषक के संवाद द्वारा अकस्मात् आश्चर्य, क्रोध और विनोद के दृश्य मे परिणत हो जाता है। अन्तिम अङ्क का घटनास्थल पृथिवी के उपरिवर्त्ती लोको मे है। मारीच-आश्रम की अलौकिक पवित्रता और सुन्दरता के बीच चरम नाटकीय अवस्था का शनैः-शनैः उद्घाटन होता है—राजा का अपने पुत्र और पत्नी से मिलन होता है। ऋषि और उसकी पत्नी राजा और उनके कुटुम्ब पर आशीर्वाद की वृष्टि करते हैं। ऐसे पावन और शान्त वातावरण मे नाटक समाप्त होता है।"

महाकवि कालिदास पृ० १७४

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'अभिज्ञानशाकुन्तल' उच्चकोटि का नाटक है। कवि ने 'महाभारत' के नीरस एवं अस्वाभाविक चरित्रों को अपनी कल्पना एवं प्रतिभा के द्वारा उदात्त एवं स्वाभाविक बनाया है। इनके चरित्र आदर्श एवं

उदात्तता से युक्त हैं, किन्तु उनमें मानवोचित दुर्बलताएँ भी दिखाई गयी हैं, जिससे वे काल्पनिक लोक के प्राणी न होकर भूतल के जीव बने रहते है।

दुष्यन्त—राजा दुष्यन्त 'शकुन्तला नाटक' का धीरोदात्त नायक है। कवि ने इसके चरित्र की अवतारणा मे अत्यन्त सावधानी एवं सतर्कता से काम लिया है। इसका व्यक्तित्व बहुमुखी है। वह राजा, प्रेमी, विवेकवादी तथा हृदयवादी दोनों ही रूपों में चित्रित किया गया है। दुष्यन्त इस नाटक मे दो रूपों मे चित्रित है—आदर्श-राजा एवं आदर्श-मनुष्य। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली है। स्वयं प्रियंवदा ने उसकी गम्भीर आकृति एवं मधुर वाणी की प्रशंसा की है—'दुरवगाह-गम्भीराकृतिर्मधुरमालापनप्रभुत्वदाक्षिण्यं विस्तारयति' पृ० ५४। वह वीर तथा उत्साही है। मृगया से श्रमित उसके शरीर का जिस प्रकार सेनापति द्वारा वर्णन किया गया है वह उसके शारीरिक सुगठन, परिश्रमशीलता एव बलिष्ठता का परिचायक है। (शकुन्तला २।४)। 'अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरवर्मा (पृ० ९६), नगरपरिघ प्रांशु-बाहुः (पृ० १२३) उपर्युक्त वाक्यो से उसकी शरीर-सम्पत्ति का ज्ञान होता है। राजा दुष्यन्त वीर है और उसकी वीरता का उपयोग सद्कार्यों मे होता है। वह अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा तपोवन की रक्षा करता है तथा इन्द्र के शत्रु कालनेमि-वंश के राक्षसो का दमन करता है। वह उत्साही तथा वीरता की मूर्त्ति है। इन्द्र का सारथी मातलि जब माढव्य पर आक्रमण करता है तो उसकी करुण पुकार सुनकर वह शीघ्र ही धनुष-बाण लेकर उसकी रक्षा के लिए उद्यत हो जाता है। इन्द्र के द्वारा साहाय्य के लिए बुलाया जाना उसकी वीरता की ख्याति एवं महत्त्व का परिचायक है।

वह अत्यन्त मधुरभाषी है। प्रियंवदा ने उसके मधुर भाषण की प्रशंसा की है। जब वह लडकियो से बिदा लेता है (प्रथम अंक मे) तो अपने कथन से उनको आकृष्ट कर लेता है—'दर्शनेनैव भवतीना सम्भूत सत्कारोऽस्मि' पृ० ७९। राजा वीर होते हुए भी विनयी है। "आश्रमवासी मुनिकुमारो के प्रति होने वाले शिष्ट व्यवहार में, अनुसूइया और प्रियंवदा से होने वाले वार्त्तालाप मे, मातलि द्वारा प्रशंसा करने पर इन्द्र के प्रति व्यक्त किये गए सम्मान एवं कृतज्ञतासूचक शब्दो में दुष्यन्त के हृदय की विनयशीलता उमड-सी पडी है।" संस्कृत नाटक-समीक्षा पृ० ३६।

राजा धर्मभीरु है तथा राजा के रूप मे वर्णाश्रमधर्म की रक्षा को ही अपना परम कर्त्तव्य स्वीकार करता है। प्रारम्भ मे वह मृगयाप्रिय वीर व्यक्ति के रूप में दिखाई पडता है। उसकी मृगया-सम्बन्धी मान्यताएँ मर्यादित हैं। ज्योंही उसके कान मे यह बात जाती है कि 'राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः'—त्योंही वह अपनी प्रत्यंचा ढीली कर लेता है। ऋषि-मुनियों के प्रति उसके मन में असीम सम्मान एवं श्रद्धा का भाव है। आश्रम मे प्रवेश करते ही उसके दर्शन से वह अपने को धन्य मानता है—'पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे'। वह आश्रम मे अपने सभी वस्त्राभूषणों को उतार कर विनीत वेष में प्रवेश करता है, इससे उसकी आश्रम के प्रति भक्ति एवं पूज्य भावना प्रदर्शित होती है। वह शार्ङ्गरव एवं शारद्वत को देख

कर अपने आसन से उठकर उनका अभिवादन करता है। आश्रमवासी एवं कण्व ऋषि के कल्याण की भावना उसके मन में सजग रहती है। जब शकुन्तला को लेकर आश्रमवासी उसके दरबार में जाते हैं तो वह सर्वप्रथम यही प्रश्न करता है कि— 'अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः'। वह मर्यादा का कभी भी अतिक्रमण नहीं करता। अपूर्व लावण्यवती अनिद्य सुन्दरी शकुन्तला को देखकर वह आकृष्ट होता है, किन्तु उसके प्रति प्रेम-प्रदर्शित करने के पूर्व यह जान लेना चाहता है कि वह उसके विवाह के योग्य है या नहीं। यद्यपि उसके विवेक एवं अन्तर अपने योग्य मानने को विवश करते हैं—

असंशयं क्षत्र परिग्रहक्षमा यदार्य्यमस्यामभिलाषि मे मनः।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ॥ १।२३

"इसमे सन्देह नही कि यह क्षत्रिय के ग्रहण करने योग्य है। क्योंकि मेरा साधु मन इसे चाहता है। किसी संदिग्ध वस्तु मे सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृतियाँ ही प्रमाणित होती है।"

दुष्यन्त अपने वंश की उज्ज्वल परम्परा पर गर्व करता है। वह मानता है कि जब तक कोई भी पौरव इस पृथ्वी पर राज्य करेगा तब तक तपोवन की मर्यादा तथा ऋषि-मुनियों एवं उनकी कन्याओं का कोई भी बुरा नहीं हो सकता। वह गम्भीर प्रकृति का मनुष्य है। शकुन्तला का तिरस्कार करने पर शार्ङ्गरव उसे कटूक्तियों से प्रहार करता है पर दुष्यन्त उसकी बातों को सहन कर कठोर आत्म-संयम का परिचय देता है। एक असाधारण रूपवती युवती जब उसे पति के रूप मे मानने की प्रार्थना करती है और ऋषि भी उसके लिए तर्क उपस्थित करते है, फिर भी वह उसके प्रति झुकता नहीं। उसके इस आत्म-संयम एवं दृढ़व्रत की प्रशंसा कंचुकी भी करता है— 'अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति।'

उसे हम ललित कलाओं का मर्मज्ञ एवं अनुरागी के रूप में पाते है। वह रानी हंसपादिका के गीत को सुनकर उस पर जो टिप्पणी करता है उससे उसकी कलाभिज्ञता की प्रतीति होती है—'अहो रागपरिवाहिनीगीतिः'। वह चित्रकला में भी निपुण है। शकुन्तला के वियोग मे उसने आश्रम की पृष्ठभूमि मे जो उसका चरित्रांकन किया है उसमें उसके अंगसौष्ठव के अतिरिक्त मानसिक भावों की भी अभिव्यक्ति हुई है। विदूषक एवं अप्सरा सानुमती दोनो ही उसकी चित्रकला की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते।

राजा धीरोदात्त नायक, उत्तम पति तथा उत्साही प्रेमी है। अनेक पत्नियों के साथ सम्बन्ध रहने पर भी उसमें नैतिकता का भाव बना रहता है। नवीन स्त्री पर आकृष्ट हो जाने पर भी वह अपनी अन्य स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव बनाये रखता है एवं उनके प्रति अपने कर्त्तव्य से च्युत नही होता। वह उनकी सुख-सुविधा का सदा ध्यान रखता है। शकुन्तला के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होते हुए भी वह रानी वसुमती के आगमन की सूचना प्राप्त कर शकुन्तला के चित्र को छिपा देता है। रानी हंसपादिका के गीत से यह ध्वनि निकलती है कि वह 'अभिनव मधु-लोलुप' है, पर इस नाटक मे इस वृत्ति का कोई संकेत प्राप्त नहीं होता।

कवि ने दुष्यन्त मे मानव-सुलभ दुर्बलताओ का निदर्शन कर उसे काल्पनिक या आश्चर्यजनक पात्र नहीं बनाया है। छिप कर तपस्विकन्यकाओं के रूप-दर्शन करने एवं उनके परिहासपूर्ण वार्त्तालाप सुनने, शकुन्तला की सखियों से अपना असत्य परिचय देने, माता की आज्ञा को बहाने से टाल कर अपने स्थान पर माढव्य को राजधानी भेजने आदि कार्यों मे उसकी दुर्बलताएँ व्यंजित हुई हैं। अपनी परिणीता पत्नी का तिरस्कार एवं त्याग के कारण दुष्यन्त का चरित्र गिर जाता है, पर दुर्वासा के शाप के कारण उसका काला धब्बा मिट जाता है। उसका चरित्र इस घटना के कारण परमोज्ज्वल होकर पूर्णरूप से निखर जाता है। कवि ने वियोग की ताप में दुष्यन्त को जला कर उसके वासनात्मक कलुष को निःशेष कर दिया है और उसका अन्तःकरण पवित्र होकर श्वेतकमल की भाँति प्रोज्ज्वल हो उठता है। वह शकुन्तला के विरहताप मे झुलसते हुए भी अपने धर्म एवं कर्त्तव्य का पूरा ध्यान रखता है। राजा सन्ततिविहीन धर्मबुद्धि नामक वणिक् की मृत्यु का समाचार पाकर उसके धन को राजकोष मे न मिलाकर उसकी विधवा गर्भवती पत्नी को समर्पित कर देता है। राज्यभर मे वह इस बात की घोषणा करा देता है—येनयेन वियुज्यन्ते प्रजास्निग्धेन-बन्धुना। स स पापादृते तासा दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥

इस घोषणा के द्वारा उसकी कर्त्तव्यपरायणता का ज्ञान होता है। अन्त मे राजा का चरित्र अत्यन्त स्वच्छ एवं पवित्र हो जाता है। सर्वदमन को देखते ही उसका वात्सल्य स्नेह उमड पडता है और वह स्नेह मे निमग्न हो जाता है। शकुन्तला पर दृष्टि पडते ही वह पश्चात्ताप मे पिघल कर उसके चरणो पर गिर पडता है जिससे उसकी मूक महानता मुखरित हो उठती है। मारीच के आश्रम के पवित्र वातावरण मे दुष्यन्त का प्रेम स्वस्थ एवं पावन हो जाता है और शकुन्तला के अश्रुओं को पोंछते हुए वह स्वयं अपने पापों का प्रक्षालन कर लेता है।

दुष्यन्त उच्चकोटि का शासक है एवं उसमे कर्त्तव्यपरायणता, प्रजाप्रेम, लोभ का अभाव—ये तीन गुण विद्यमान है। प्रथम अंक मे हाथियो का उपद्रव सुनते ही लड़कियों से विदा लेकर तुरत उसको दण्ड देने के लिए सन्नद्ध हो जाने एव दो तपस्वियों द्वारा तपोवन की रक्षा के लिए बुलाये जाने पर उसके इस कथन मे—'गच्छतां भवन्तौ, अहमनुपदमागत एव'—उसकी कर्त्तव्यपरायणता झलकती है। शकुन्तला के विरहताप से दग्ध होने पर भी नित्यप्रति राजकाज में भाग लेना तथा रोज मन्त्रियों के कार्य का निरीक्षण किये बिना कोई आज्ञा प्रसारित न करना, उसके वास्तविक शासक होने के उदाहरण हैं। वह स्वभाव से अविकत्थन है।

राक्षसो का संहार कर मार्ग में आते समय इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा अपने पौरुष एवं विजय की प्रशंसा सुन कर भी राक्षसो की पराजय का सारा श्रेय इन्द्र को देता है और उसमे अपना तनिक भी योग नहीं मानता। इस दृष्टि से दुष्यन्त अपना आदर्श व्यक्तित्व उपस्थित करता है।

शकुन्तला—शकुन्तला इस नाटक की नायिका है। महाकवि ने उसके शील-निरूपण में अपनी समस्त प्रतिभा एवं शक्ति को लगा दिया है। जिस सजगता के साथ

वह उसके रूप लावण्य की विवृत्ति करता है उसी प्रकार की सचेष्टता एवं कलात्मक निपुणता उसके शील को भी अनावृत्त करने में लगा देता है। निसर्गकन्या शकुन्तला तपोवन की प्रकृति की भाँति नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रतिमा है। कवि उसका चरित्रांकन करने में अपनी प्रतिभा को चरम सीमा पर पहुँचा देता है। शकुन्तला के जीवन में रोमांस की मादकता एवं यथार्थ की निर्ममता दोनों का अपूर्व संयोग है। जिसके चित्रण मे कवि की रसार्द्र चेतना ने पर्याप्त संयम का सहारा लिया है। यदि शकुन्तला के व्यक्तित्व का रोमास-रोमांस ही बन गया होता या यथार्थ मात्र यथार्थ बन कर रह गया होता तो कालिदास भारतीयता के प्रतीक न बन पाते।

[दे० महाकवि कालिदास पृ० १९३]

राजा दुष्यन्त के अनुसार शकुन्तला 'अव्याजमनोहर वपु' वाली रमणी है। वह प्रकृति की सहचरी है तथा प्रकृति की सुरम्य गोद मे लालित-पालित होने के कारण उसके हृदय मे लता-वीरुधों के प्रति भी स्नेह एवं आत्मीयता हो गयी है। तपोवन के कोमल वृक्षो के सिंचन मे उसे अपूर्व आह्लाद प्राप्त होता है। मृगछौनों के प्रति भी उसका अधिक स्नेह प्रदर्शित होता है तथा जब वह उन्हें दर्भांकुरों से आहत देखती है तो उनके मुख में हिंगोट का तेल लगाती है। ऋषि कण्व भी उसे अधिक स्नेह करते हैं तथा अतिथि सत्कार का दायित्व भी उसी के ऊपर छोड देते हैं। इस प्रकार उसके जीवन मे तपोवन की तापसी के व्यक्तित्व के अतिरिक्त गार्हस्थ्य जीवन की भावना का भी मंजुल सामंजस्य दिखाई पड़ता है। वह शान्त एवं पवित्र वातावरण में पोषित होकर भी अवस्थाजन्य चाचल्य से विभूषित है, जिसका रूप सखियों के साथ होनेवाले उसके हास-परिहास में प्रकट होता है। शकुन्तला के सभी अवयव व्यक्त हो चुके हैं, पर उसका जीवन भोली-भाली मुग्धा नायिका की भाँति है। वह राजा को देखकर अपने मन मे होनेवाली काम-विकारजन्य वेदना को सखियो से भी नही कहती। किन्तु जब वेदना व्याधि का रूप ग्रहण कर लेती है तब सखियों के पूछने पर अपने रहस्य को खोलती है—'यतः प्रभृतितपोवनरक्षिता स राजर्षिः'। राजा जब उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है तब वह लज्जावनत हो जाती है, और प्रियंवदा द्वारा विवाह की चर्चा करने पर वहाँ से भागने का उपक्रम करती है। तृतीय अंक में राजा से एकान्त में मिलने पर वह बार-बार जाने का ही प्रयास करती है। उसका स्वभाव अत्यन्त सरल है। बार-बार सखियों द्वारा परिहास किये जाने पर भी कुछ नहीं बोलती। कुलपति की कन्या होने पर भी उसे इस बात का घमण्ड नही है और वह अपनी सखियों के आदेश का सहर्ष पालन करती है—'हला ! शकुन्तले ! गच्छ, उटजात् फल मिश्रमर्घ्यभाजनमुपाहर' पृ० ५२।

शकुन्तला का राजा के साथ गन्धर्व-विवाह करना तथा प्रणयसूत्र में आबद्ध होकर गर्भ धारण करना, कतिपय आलोचकों की दृष्टि से उसके चारित्रिक स्खलन का द्योतक है। पर, कवि ने उसकी दो सखियों का समावेश कर एवं उनके समक्ष गन्धर्व विवाह की योजना कर उसके चारित्रिक औचित्य की रक्षा की है। प्रारम्भ में दुष्यन्त के प्रति

शकुन्तला का प्रेम अत्यन्त उद्दाम एवं वासनात्मक है। उसकी विचारशक्ति थोड़ी देर के लिए अवश्य ही सजग रहती है, पर प्रेम की प्रखर ऊष्मा में वह पराजित हो जाती है। उसका यह आवेगजन्य प्रेम अन्ततः विरहताप मे जलकर सुवर्ण की भाँति दमकने लगता है और उसमे अपूर्व दीप्ति आ जाती है। कवि ने शकुन्तला को कलावती के रूप मे चित्रित किया है। वह पत्र लिखते समय (राजा के पास) अपनी काव्य-रचना-शक्ति का परिचय देती है। उसके हृदय में दुष्यन्त के प्रति अपार स्नेह एवं श्रद्धा का भाव है। दुष्यन्त के द्वारा तिरस्कृत होने एवं समस्त नारी समाज पर दोषारोपण किये जाने पर थोडी देर के लिए, अवश्य ही, उसका नारीत्व जाग उठता है, पर बाद मे वह सदा अपने भाग्य को ही दोषी ठहराती है।

सखी और पुत्री के रूप मे भी शकुन्तला आदर्श रूप मे प्रस्तुत की गयी है। उसकी दोनों सखियाँ उससे अनेक प्रकार का हास-परिहास करती है, पर उन्हे वह बुरा नहीं मानती। वह अपना कोई भी रहस्य उनसे छिपाती नही। दोनो के प्रति उसके हृदय मे प्रगाढ स्नेह है। दुष्यन्त के अत्यधिक आग्रह करने पर वह उनसे कहती है कि मुझे पहले सखियो से पूछ लेने दीजिए। महर्षि कण्व उसे पुत्री के रूप मे मानते है और शकुन्तला को उनका अविचल स्नेह प्राप्त होता है। पतिगृह जाने के समय कालिदास ने शकुन्तला के प्रति कण्व के जिस स्नेह एवं भावार्द्रता का चित्रण किया है, वह अपूर्व है। जाते समय शकुन्तला अपनी चिन्ता न करने को कहती है क्योकि इससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जायगा।

शकुन्तला का व्यक्तित्व आदर्श हिन्दू रमणी का है। उसमे पति के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव है एवं पति के तिरस्कार करने पर उसके अन्तस् का आग और पानी नेत्रो के मार्ग से प्रवाहित होने लगता है। राजा द्वारा व्यंग्य करने पर उसका नारीत्व जागरूक हो जाता है और वह व्यंग्योक्तियो का उत्तर कटूक्तियो से देती हुई राजा को अनार्य भी कह देती है। उसकी कटूक्तियो मे उसके हृदय के वास्तविक स्नेह का बल है। मारीच के आश्रम में जब राजा उसके चरणो पर गिर पडता है तो वह क्षमा की अद्भुत मूर्ति बनकर सारे क्रोध और कटुता को पी जाती है और राजा के प्रति उसका सारा आक्रोश गल जाता है। पुत्र के पूछने पर कि माँ! यह कौन है? वह कहती है कि पुत्र भाग्य से पूछ। राजा को पहचान कर वह अपने मन मे जो कुछ सोचती है उसमें उसके हृदय का स्नेह लिपटा हुआ दीखता है। "धीरज धरो, मेरे हृदय! आज दैव ने पिछला सब बैर भुला कर मेरी सुन ली है। सचमुच ये तो आर्यपुत्र ही है।" वह आदर्श पत्नी की भाँति अपने पति को दोषी न ठहराकर सारे दोष को अपने भाग्य का कारण मान लेती है।

कवि ने शकुन्तला का चित्रण तीन रूपों में किया है। उसका प्रथम रूप प्रेमावेश से भरी हुई उद्दाम कामातुरा युवती का है जो लतापुंजो को आमन्त्रित करती हुई राजा को पुनः आने का संकेत करती है—'लतावलयसन्तापहारक आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय'। उसका दूसरा रूप पतिद्वारा निरादृत निरीह नारी का है जो उसे

नीच और अनार्य कह कर डाँटती-फटकारती है। उसके तीसरे रूप में गंगा की पवित्रता एवं धवलता है, जो अपूर्व क्षमादात्री के रूप में प्रकट होती है। वह राजा के सारे दोष को विस्मृत कर अपने भाग्य-विपर्यय का दोष मान कर पूर्वजन्मार्जित कृत्यों का फल स्वीकार करती है और मारीच ऋषि से दुर्वासा के शाप की बात श्रवण कर मानसिक समाधान प्राप्त कर लेती है।

इस नाटक के अन्य पात्र भी सजीव एवं निजी वैशिष्ट्य से पूर्ण है। कण्व तपस्या एवं साधना की मूर्त्ति होते हुए भी वात्सल्य स्नेह से आपूर्ण है : उनके हृदय में सद्-गृहस्थ की भावनायें भरी हुई हैं। शकुन्तला की बिदाई के समय उनके द्वारा (शकुन्तला को) दी गयी शिक्षा में भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक आदर्श का रूप व्यक्त हुआ है।

रस-परिपाक—भारतीय नाट्यशास्त्र मे नाटक के तीन तत्त्व है—वस्तु, नेता और रस। संस्कृत नाटक रसप्रधान होते है और उनमे कवि का मुख्य अभिप्रेत रस-निष्पत्ति होता है। रस-व्यंजना की दृष्टि से 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अधिक महत्त्व है। इसका अंगी-रस शृङ्गार है, जिसमे उसके दोनो रूपों—संयोग एवं वियोग—का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि ने संयोग की मादकता एव वियोग की मर्मद्रावक विह्वलता दोनो की मधुर धारा प्रवाहित की है तथा कहीं-कहीं हास्य, अद्भुत, करुण, भयानक एव वात्सल्य रस की भी मोहक ऊर्मियाँ सजा दी है। इस नाटक मे साक्षात् दर्शन के द्वारा प्रेमोदय होता है। इसके प्रथम अंक के प्रारम्भ मे मृगयाप्रेमी राजा दुष्यन्त के सामने अपने प्राण को बचाने के लिए भागते हुए आश्रम मृगों तथा हाथी द्वारा किये गए विध्वंस में भयानक रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। 'ग्रीवाभङ्गाभिरामं' इस पद्य मे आचार्य मम्मट ने भयानक रस माना है। द्वितीय अंक में माढव्य की चटुल एवं परिहासपूर्ण उक्तियो मे हास्यरस की छटा छिटकती है। चतुर्थ अंक मे शकुन्तला की चिन्ता, दुर्वासा के शाप एवं शकुन्तला की बिदाई में करुणरस की व्यंजना हुई है। पंचम अंक मे अनेक रसो का मिश्रण है। इसके प्रारम्भ मे कंचुकी द्वारा अपनी वृद्धावस्था पर खेद प्रकट करने मे कंचुकी की राजविषया रति, राजा का राजपद के प्रति निर्वेद, वैतालिकों की राजविषयारति तथा राजा और विदूषक के संवाद में हास्यरस का आस्वाद होता है। [दे० शकुन्तला-समीक्षा—शकुन्तला हिन्दी अनुवाद की भूमिका पृ० २८। चौखम्बा] हंसपादिका के गाने में राजा का दक्षिण-नायकत्व व्यक्त होता है एवं राजा और शाङ्गरव की क्रोधपूर्ण वार्त्ता में वीर रस की निष्पत्ति हुई है। दोनों ही धर्मवीर हैं और धर्म के लिए परस्पर झगड जाते हैं। किसी अदृश्य छाया द्वारा शकुन्तला को उडा कर ले जाने के समाचार में अद्भुत रस दिखाई पडता है। पंचम अंक के अंकावतार में हास्यरस है जिसमें देश की तात्कालिक स्थिति का वर्णन है। षष्ठ अंक में विप्रलम्भ शृङ्गार का प्राधान्य है। इस अंक मे राजा की बिरह-वेदना एवं उसकी मनःस्थिति का मनोरम चित्रण है। वियोग शृङ्गार की विविध स्थितियों एवं उपादानों का अत्यन्त विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। मातलि

तथा विदूषक के दृश्य में राजा के हृदय में क्रोध का भाव प्रकट होता है एवं राक्षसों से लड़ने के लिए राजा के जाने में वीररस की व्याप्ति है। कवि ने राजा के हृदय में उत्साह को उद्‌बुद्ध किया है। सप्तम अंक मे मातलि की राजविषयारति का वर्णन है तथा आकाशमार्ग मे रथ के उतरने मे अद्‌भुत रस है। मारीच ऋषि के आश्रम में विस्मय का भाव एवं मुनिविषयारति का वर्णन है। सर्वदमन के दृश्य में वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक है एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के पुनर्मिलन में सयोग शृङ्गार का वर्णन है।

भाषा-शैली—अभिज्ञान शाकुन्तल की भाषा प्रवाहमयी, प्रसादपूर्ण, परिष्कृत, परिमार्जित एव सरस है। इसमे मुख्यतः वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। शैली मे दीर्घसमस्त पदो का आधिक्य नही है। कवि ने अल्प शब्दों में गम्भीर भावों को भरने का प्रयास किया है। शकुन्तला को देख कर दुष्यन्त के हृदय मे उदित होने वाली प्रेम-भावना को अत्यन्त नैपुण्य के साथ व्यक्त किया गया है। कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर नाटक को अधिक व्यावहारिक बना दिया है। इसमें संस्कृत के अतिरिक्त सर्वत्र शौरसेनी प्राकृत प्रयुक्त हुई है। कालिदास मुख्यतः कोमल भावनाओ के कवि हैं, अतः उनके छन्द-विधान मे भी शब्दावली की सुकुमारता एवं मृदुलता दिखाई पडती है। कवि ने प्रकृति की मनोरम रंगभूमि मे शकुन्तला के कथानक का निर्माण किया है। कहीं तो प्रकृति मानव की सहचरी के रूप मे चेतन और सजीव चित्रित की गयी है और कही वर्णन के पृष्ठाधार को सजाने के लिए इसका उपयोग किया गया है। चतुर्थ अंक मे प्रकृति को शकुन्तला के जीवन में परिव्याप्त कर मानव एव मानवेतर प्रकृति के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इसमें प्रकृति-वर्णन के द्वारा बिम्बग्रहण कराते हुए भावी घटनाओं का भी संकेत हुआ है। [दे० कालिदास] यह नाटक अपनी रोचकता, अभिनेयता, काव्यकौशल, रचना-चातुर्य एवं सर्वप्रियता के कारण संस्कृत के सभी नाटको मे उत्तम माना जाता है।

आधार-ग्रन्थ—१. अभिज्ञान शाकुन्तल—हिन्दी अनुवाद (चौखम्बा) २ संस्कृत नाटक-समीक्षा—श्री इन्द्रपाल सिह 'इन्द्र' ३. महाकवि कालिदास—डॉ रमाशंकर तिवारी ४ संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद) ५ संस्कृत नाटककार—श्री कान्तिचन्द भरतिया।

अमरचन्द्र और अरिसिंह—काव्यशास्त्र के आचार्य। दोनो ही लेखक जिनदत्त-सूरि के शिष्य हैं और इन्होंने संयुक्त रूप से 'काव्यकल्पलता' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १३ वी शताब्दी का मध्य है। इस ग्रन्थ में काव्य की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने वाले तथ्यों या कविशिक्षा का वर्णन है। इसका प्रारम्भिक अंश अरिसिंह ने लिखा था और उसकी पूर्ति अमरचन्द्र ने की थी। अमरचन्द्र ने इस पर वृत्ति की भी रचना की है। 'काव्यकल्पलता' या 'काव्यकल्पलतावृत्ति' की रचना चार प्रतानों मे हुई है तथा प्रत्येक प्रतान अनेक अध्यायों में विभक्त हैं। चारों प्रतानों के वर्णित विषय हैं—छन्दःसिद्धि, शब्दसिद्धि, श्लेषसिद्धि एवं अर्थसिद्धि। 'काव्यकल्पलता-

वृत्ति' में अमरचन्द्र ने अपने कई ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे हैं—छन्दोरत्नावली, काव्यकल्पलतापरिमल, अलंकारप्रबोध। इन्होंने 'जिनेन्द्रचरित' नामक काव्यग्रन्थ की भी रचना की है जिसे 'पद्मानन्द' भी कहा जाता है। अमरसिंह के पिता लावण्यसिंह भी कवि थे। इन्होंने गुजरात के धोलकर राज्य के राणा धीरधवल के मन्त्री वस्तुपाल जैन की प्रशस्ति में 'सुहृत्सङ्कीर्तन' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था।

आधार-ग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

अमरचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध जैन कवि हैं। इनका रचनाकाल १२४१ से १२६० ई० है। इन्होंने 'बालभारत' नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमे ४४ सर्ग एवं ६९५० श्लोक है। इसमें 'महाभारत' की कथा संक्षेप मे वर्णित है। इसकी भाषा सरल तथा वैदर्भीरीति समन्वित है। इन्होंने कई ग्रन्थो की रचना की है। 'कविकल्पलता' (काव्यशिक्षा-विषयक ग्रन्थ), 'छन्दोरत्नावली', 'स्याद्शब्द-समुच्चय', 'पद्मानन्द' (काव्य) आदि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। 'बालभारत' मे एक स्थल पर वेणी की तुलना तलवार से करने के कारण ये 'वेणी-कृपाण-अमर' के नाम से 'तत्कालीन कवि-गोष्ठी मे प्रसिद्ध हुए थे। अमरचन्द्र-सूरि जिनदत्तसूरि के शिष्य तथा अणहिलपट्टन के राजा वीसलदेव के सभा-पण्डित थे। इन्होंने 'पद्मानन्द' काव्य का प्रणयन पट्टन के बनिया कोष्ठागारिक के आग्रह पर किया था।

अमरुक—ये संस्कृत के प्रसिद्ध शृंगारी कवि है जिन्होंने 'अमरुकशतक' नामक शृंगार मुक्तक की रचना की है। इसमे एक सौ से ऊपर पद्य है। इनका शतक, हस्तलेखो मे, विभिन्न दशाओ म प्राप्त होता है, तथा इसमे श्लोकों की संख्या ९० से ११५ तक मिलती हैं। इसके ५१ श्लोक ऐसे है जो समानरूप से सभी प्रतियो मे प्राप्त होते है, किन्तु उनके क्रम मे अन्तर दिखाई पड़ता है। कतिपय विद्वानो ने केवल शार्दूलविक्रीडित छन्दवाले श्लोको को ही अमरुक की मूल रचना मानने का विचार व्यक्त किया है, किन्तु इस सुझाव से केवल ६१ ही पद्य रहते हैं और शतक पूरा नहीं होता। कुछ विद्वान् 'अमरुकशतक' के प्राचीनतम टीकाकार अर्जुनवर्मदेव (समय १२१५ ई० के लगभग) के अभिस्वीकृत पाठ को ही प्रामाणिक मानने के पक्ष मे हैं, पर इस सम्बन्ध मे अभी निश्चितता नही आने पायी है।

अमरुक के जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही होता और न इनका समय ही निश्चित होता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन ने (९५० ई०) अत्यन्त आदर के साथ इनके मुक्तको की प्रशंसा कर उन्हे अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।

मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। तथा अमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव।"—ध्वन्यालोक

आनन्दवर्द्धन से पूर्व वामन ने भी अमरुक के तीन श्लोको को बिना नाम दिये ही, उद्धृत किया है (८०० ई०)। इस प्रकार इनका समय ७५० ई० के पूर्व निश्चित होता है। अर्जुनवर्मदेव ने अपनी टीका 'रसिकसञ्जीवनी' मे 'अमरुकशतक' के पद्यो का पर्याप्त सौन्दर्योद्घाटन किया है। इसके अतिरिक्त वेमभूपाल रचित 'शृङ्गार-

दीपिका' नामक टीका भी अच्छी है। अमरुक-सम्बन्धी दो प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं—

> भ्राम्यन्तु मारवग्रामे विमूढारसमीप्सवः।
> अमरुद्देश एवासौ सर्वतः सुलभो रसः ॥ सुभाषितावली १२
> अमरुककवित्वडमरुकनादेन विनिह्नुता न संचरति।
> शृङ्गारभणितिरन्या धन्याना श्रवणविवरेषु ॥ सूक्तिमुक्तावली ४।१०१

एक किवदन्ती के अनुसार अमरुक जाति के स्वर्णकार थे। ये मूलतः शृङ्गार रस के कवि हैं और इनका वास्तविक प्रतिपाद्य है शृङ्गार। कवि ने शृङ्गार रस के उभयपक्षों—संयोग एवं वियोग—का अत्यन्त हृदयग्राही एवं कलात्मक चित्र उरेहा है। 'अमरुकशतक' में शृङ्गार रस के विभिन्न अंगों—अनुभाव, नायक-नायिका आदि के सरस वर्णन प्रस्तुत किये गए हैं। कुछ विद्वानों ने यहाँ तक कह दिया है कि अमरुक ने न केवल नायक-नायिका भेदों का अपितु कामशास्त्र की तत्तत् नियम-सरणि को ध्यान में रखकर ही अपने मुक्तकों की रचना की है। पर, वास्तविकता ऐसी नहीं है। कवि ने स्वतन्त्ररूप से शृङ्गारी पदों की रचना की है जिनमे विभिन्न प्रेमिल भावो को इस प्रकार उपन्यस्त किया गया है कि उनमे नायिका भेदो एवं कामशास्त्रीय तत्वों का भी समावेश हो गया है। अमरुक ने तत्कालीन विलासी जीवन (दाम्पत्य) एवं प्रणय-व्यापार का सरस चित्र खींचा है, जिसे परवर्ती आचार्यों ने अपने लक्षणों के अनुरूप इन्हें देखकर लक्ष्य के रूप मे उदाहृत किया है। कालान्तर मे रतिविशारद आचार्यों ने अमरुक के पद्यों में वात्स्यायन की साम्प्रयोगिक पद्धतियो को भी ढूँढ कर निकाल लिया। शृङ्गार के विविध पक्षों का सफल चित्र अंकित करने मे अमरुक अपनी सानी नही रखते। इनकी तूलिका कला-विदग्ध चित्रकार की भाँति चित्र की रेखाओ की सूक्ष्मता एव भंगिमा का मनोरम रूप उपस्थित करती है। नख-शिख-वर्णन के लिए अल्प क्षेत्र के होने पर भी कवि ने नायिका के लावण्य का मनोहर चित्र खींचा है।

शैली की दृष्टि से अमरुक ने प्रसादपूर्ण कला का निदर्शन कराया है।

इनकी शैली कालिदास के समकक्ष होती हुई कलात्मकता के पुट से अधिक अलंकृत है। इनकी भाषा अभ्यासजन्य श्रम के कारण अधिक परिष्कृत एवं कलाकारिता और नक्काशी से पूर्ण है, जिसमे कालिदास की सहज स्वाभाविकता का प्राधान्य न होकर नागरताजनित लचक दिखाई पडती है। पद-पद पर सांगीतिक सौन्दर्य एवं भाषा की प्रौढ़ि के दर्शन इनके श्लोको मे होते हैं, जिनमे प्रवाह की कलकल ध्वनि तथा ध्वनि और नाद का समन्वय परिदर्शित होता है। एक उदाहरण—"दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वचस्तत् प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमात्रंवधूः। कर्णालम्बित पद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चूपुटे व्रीडार्त्ता विदधाति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥" रात मे बात करते हुए दम्पत्ति के वचनों को गृहशुक ने सुना और प्रातःकाल होते ही उसके गुरुजनों के निकट उन्हें जोर से दुहराने लगा। लज्जित वधू ने कान के लटके

हुए पद्मरागमणि के टुकड़े को उसकी चोंच के पास रख दिया जिससे सुग्गा उसे अनार का दाना समझ कर चुप हो गया और बधू उसके वाग्बन्धन में समर्थ हुई।

आधार-ग्रन्थ—१. अमरुकशतक (हिन्दी अनुवाद)—अनु० पं० प्रद्युम्न पाण्डेय चौखम्बा प्रकाशन २. अमरुकशतक—(हिन्दी अनुवाद) अनु० डॉ० विद्यानिवास मिश्र राजकमल प्रकाशन ३. अमरुकशतक (पद्यानुवाद)—मित्रप्रकाशन ४ संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास।

अमोघ राघव चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता का नाम दिवाकर है। इनके पिता का नाम विश्वेश्वर था। ग्रन्थ का रचनाकाल १२९९ ई० है। यह चम्पू अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण ट्रिवेण्ड्रम कैटलग वी० ६३६५ में प्राप्त होता है। इसकी रचना 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर हुई है। कवि ने महाकवि कालिदास की स्तुति में निम्नाङ्कित श्लोक लिखा है—

रम्याश्लेषवती प्रसादमधुरा शृङ्गारसङ्गोज्ज्वला-
चाटूक्तैरखिलप्रियैरहरहस्संमोहयन्ती मनः।
लीलान्यस्तपदप्रचाररचना सद्वर्ण संशोभिता,
भाति श्रीमतिकालिदासकविता कान्तेवतान्ते रता॥

आधार-ग्रन्थ—चम्पू काव्य का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक समीक्षा—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

अलंकारसर्वस्व—अलंकार का प्रौढ़ ग्रन्थ। इसके रचयिता राजानक रुय्यक है। [दे० राजानक रुय्यक] 'अलंकारसर्वस्व' मे ६ शब्दालंकार—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, यमक, लाटानुप्रास एवं चित्र तथा ७५ अर्थालंकारो एक मिश्रा-लंकार का वर्णन है। इसमे चार नवीन अलंकार है—उल्लेख, परिणाम, विकल्प एवं विचित्र। 'अलंकारसर्वस्व' के तीन विभाग हैं—सूत्र, वृत्ति एवं उदाहरण। सूत्र एवं वृत्ति की रचना रुय्यक ने की है और उदाहरण विभिन्न ग्रन्थों से दिये है। 'अलंकार-सर्वस्व' के सूत्र एवं वृत्ति के रचयिता के सम्बन्ध मे विद्वानो में बहुत मतभेद रहा है। इसके टीकाकार जयरथ ने सूत्र एवं वृत्ति का रचयिता रुय्यक को ही माना है। इस ग्रन्थ के मंगलश्लोक से भी इस मत की पुष्टि होती है—

नमस्तकृत्य परां वाच देवी त्रिविधविग्रहाम्।
निजालंकारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते॥ १॥

किन्तु दक्षिण भारत मे उपलब्ध होने वाली प्रतियो मे 'गुर्वलंकारसूत्राणा वृत्त्याता-त्पर्यमुच्यते' पाठ देखकर विद्वानों ने विचार किया कि वृत्ति की रचना रुय्यक के शिष्य मंखक ने की होगी। पर अब यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि दोनों के ही प्रणेता रुय्यक थे। परवर्त्ती आचार्यों मे अप्पय दीक्षित ने रुय्यक को वृत्तिकार के भी रूप में मान्यता दी है, अतः दक्षिण की परम्परा को पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

'अलंकारसर्वस्व' में सर्वप्रथम अलंकारों का वैज्ञानिक विभाजन किया गया है और उनके मुख्य पांच वर्ग किये गए हैं तथा इनके भी कई अवान्तर भेद कर सभी अर्था-

लंकारों को विभिन्न वर्गों में रखा गया है। पांच मुख्य वर्ग हैं—साहश्यवर्ग, विरोधवर्ग, शृङ्खलावर्ग, न्यायमूलवर्ग (तर्कन्यायमूल, वाक्यन्यायमूल एवं लोकन्यायमूल) तथा गूढार्थप्रतीति वर्ग।

साहश्यगर्भमूलक— इसके तीन उपविभाग है—भेदाभेदतुल्यप्रधान, अभेदप्रधान तथा भेदप्रधान। भेदाभेदतुल्यप्रधान के अन्तर्गत चार अलंकार है—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय एव स्मरण। अभेदप्रधान—इसके भी दो विभाग हैं—आरोपमूला तथा अध्यवसानमूला। प्रथमवर्ग मे ६ अलंकार है—रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख एवं अपह्नुति। द्वितीय वर्ग में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का समावेश किया गया है। साहश्यमूलक भेद के अन्तर्गत औपम्यगर्भ अलंकार के अन्तर्गत १६ अलंकार है तथा इसके भी सात वर्ग है—क. पदार्थगत-- तुल्ययोगिता एवं दीपक, ख. वाक्यार्थगत—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त एवं निदर्शना, ग भेदप्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति एवं विनोक्ति, घ विशेषणविच्छित्ति— समासोक्ति, परिकर, ङ. विशेष्यविच्छित्ति—परिकराकुर, च. विशेषणविशेष्यविच्छित्ति—श्लेष। अप्रस्तुतप्रशंसा, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, पर्यायोक्ति एवं व्याजोक्ति इसी वर्ग (गम्यौपम्य) मे है। विरोधगर्भ—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात। शृङ्खलाबन्ध—कारणमाला, मालादीपक, एकावली एव सार। तर्कन्यायमूलक —काव्यलिंग, अनुमान। वाक्यन्यायमूलक— यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय एवं समाधि। लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण एव उत्तर। गूढार्थप्रतीतिमूलक—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति। इन अलकारो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अलंकार है जिन्हें किसी भी वर्ग मे नही रखा गया है। वे है—स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, संसृष्टि, सकर तथा रस एवं भाव से सम्बद्ध सात अलंकार—रसवत्, प्रेयम्, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय. भावसन्धि एवं भावशबलता। अलंकारसर्वस्व का यह वर्गीकरण चित्तवृत्ति की दृष्टि मे किया गया है—तदेतेचित्तवृत्तिगतत्वेनालङ्कारा लक्षिताः। अ० स० पृ० २१४। इसकी अनेक टीकाएँ हुई है जिनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टीका जयरथ कृत 'विमर्शिणी' है। टीकाओ का विवरण इस प्रकार है—१. राजानक अलक—इनकी टीका सर्वाधिक प्राचीन है। इसका उल्लेख कई स्थानो पर प्राप्त होता है, पर यह टीका मिलती नही। २ जयरथ—इनकी टीका 'विमर्शिणी' काव्यमाला में मूल ग्रन्थ के साथ प्रकाशित है। इनका समय १३ वी शताब्दी का प्रारम्भ है। इनकी टीका आलोचनात्मक व्याख्या है जिसमे अनेक स्थानो पर रुय्यक के मत का खण्डन एवं मण्डन है। जयरथ ने अभिनवगुप्त के 'तन्त्रालोक' पर भी 'विवेक' नामक टीका की रचना की है। ३. समुद्रबन्ध—ये केरलनरेश रविवर्मा के समय मे थे। इनका जन्म समय १२६५ ई० है। इन्होंने अपनी टीका में रुय्यक के भावो की सरल व्याख्या की है। अनन्तशयन ग्रन्थमाला संख्या ४० से प्रकाशित। ४. विद्याधर चक्रवर्ती—इनका समय १४वीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनकी टीका का नाम 'संजीवनी' है। इन्होंने 'अलंकारसर्वस्व' की श्लोकबद्ध 'निष्कृष्टार्थकारिका' नामक अन्य टीका भी लिखी है। दोनों टीकाओं का संपादन डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी ने किया है। प्रकाशक है मोतीलाल, बनारसीदास।

'अलंकार मीमांसा' नामक शोध प्रबन्ध में हिन्दी अनुवाद के साथ। ५. अलंकार सर्वस्व का हिन्दी अनुवाद डॉ० रामचन्द्र-द्विवेदी ने किया है जो संजीवनी टीका के साथ प्रकाशित है। ६. हिन्दी अनुवाद प० रेवाप्रसाद त्रिवेदी द्वारा चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित।

आधार-ग्रन्थ—१ अलंकार-मीमांसा—डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी २. संस्कृत काव्य-शास्त्र का इतिहास—डॉ० काणे।

असंग—आर्य असंग प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु के ज्येष्ठभ्राता थे। दे० वसुबन्धु। इनका समय तृतीय शताब्दी का अन्त एवं चतुर्थ शताब्दी का मध्य है। ये योगाचार सम्प्रदाय (दे० बौद्धदर्शन) के विख्यात आचार्य थे। इनके गुरु का नाम आर्य मैत्रेय था। समुद्रगुप्त के समय में ये विद्यमान थे। इनके ग्रन्थ चीनी भाषा में अनूदित हैं, उनके संस्कृत रूप का पता नही चलता। ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—१. महायान संपरिग्रह—इसमे अत्यन्त संक्षेप मे महायान के सिद्धान्तों का विवेचन है। चीनी भाषा मे इसके तीन अनुवाद प्राप्त होते हैं। २. प्रकरण आर्यवाचा—यह ग्रन्थ ग्यारह परिच्छेदों में विभक्त है। इसका प्रतिपाद्य है योगाचार का व्यावहारिक एवं नैतिक पक्ष। ह्वेनसाङ्ग कृत चीनी अनुवाद उपलब्ध है। ३. योगाचार भूमिशास्त्र—यह अत्यन्त विशालकाय ग्रन्थ है जिसमे योगाचार के साधन मार्ग का विवेचन है। सम्पूर्ण ग्रन्थ अपने मूल रूप मे हस्तलेखो (संस्कृत में) में प्राप्त है। राहुल जी ने इसका मूल हस्तलेख प्राप्त किया था। इसका छोटा अंश (संस्कृत मे) प्रकाशित भी हो चुका है। इसमे १७ भूमि या परिच्छेद है—विज्ञानभूमि, मनोभूमि, सवितर्कसविचारा-भूमि, अवितर्कविचारमात्राभूमि, अवितर्कअविचाराभूमि, समाहिताभूमि, असमाहिताभूमि, सचित्तकाभूमि, अचित्तकाभूमि, श्रुतमयीभूमि, चिन्तामयीभूमि, भावनामयीभूमि, श्रावक-भूमि, प्रत्येकबुद्धभूमि, बोधिसत्त्वभूमि, सोपधिकाभूमि, निरुपधिकाभूमि।

आधारग्रन्थ—१. बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

अश्वघोष—महाकवि अश्वघोष संस्कृत के बौद्ध कवि हैं। इनकी रचना का प्रधान उद्देश्य है बौद्धधर्म के विचारो का, काव्य के परिवेश मे प्रस्तुत कर, जनसाधारण के बीच प्रचार करना। संस्कृत के अन्यान्य कवियों की भाँति इनका जीवनवृत्त अधिक विवादास्पद नही है। ये प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क के समसामयिक थे। कनिष्क ७८ ई० के आसपास गद्दी पर बैठा था, अत: अश्वघोष का भी यही स्थितिकाल है। बौद्धधर्म के ग्रन्थो मे भी अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध होते है जिनके अनुसार अश्वघोष कनिष्क के समकालीन सिद्ध होते है। चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष बौद्धो की चतुर्थ संगीति या महासभा में विद्यमान थे। यह सभा काश्मीर के कुण्डलवन में कनिष्क द्वारा बुलाई गयी थी। अश्वघोष को कनिष्क का समकालीन सिद्ध करने के लिए अनेक अन्त:साक्ष्य भी है—

क—अश्वघोषकृत 'बुद्धचरित' का चीनी अनुवाद ईसा की पांचवीं शताब्दी का उपलब्ध होता है। इससे विदित होता है कि भारत मे पर्याप्तरूपेण प्रचारित होने के बाद ही इसका चीनी अनुवाद हुआ होगा।

ख—सम्राट् अशोक का राज्यकाल ई० पू० २६९ से २३२ ई० पू० है, यह तथ्य पूर्णतः इतिहास-सिद्ध है। 'बुद्धचरित' के अन्त में अशोक का उल्लेख होने के कारण यह निश्चित होता है कि अश्वघोष अशोक के परवर्त्ती थे।

ग—चीनी परम्परा अश्वघोष को कनिष्क का दीक्षा-गुरु मानने के पक्ष मे है। अश्वघोष कृत 'अभिधर्मपिटक' की विभाषा नाम्नी एक व्याख्या भी प्राप्त होती है जो कनिष्क के ही समय मे रची गयी थी।

घ—अश्वघोष रचित 'शारिपुत्रप्रकरण' के आधार पर प्रो० ल्यूडर्स ने इसका रचनाकाल हुविष्क का शासनकाल स्वीकार किया है। हुविष्क के राज्यकाल मे अश्वघोष की विद्यमानता ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रामाणिक है। इनका राज्यारोहणकाल कनिष्क की मृत्यु के बीस वर्ष के बाद है। हुविष्क के प्राप्त सिक्को पर कही भी बुद्ध का नाम नहीं मिलता, किन्तु कनिष्क के सिक्कों पर बुद्ध की नाम अंकित है। कनिष्क बौद्धधर्माव-लम्बी थे और हुविष्क ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। अतः अश्वघोष का उनके दरबार मे विद्यमान होना सिद्ध नहीं होता।

ङ—कालिदास तथा अश्वघोष की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि अश्वघोष कालिदास के परवर्त्ती थे। कालिदास की तिथि प्रथम शताब्दी ई० पू० स्वीकार करने से यह मानना पडता है कि दोनो की रचनाओं में जो साम्य परिलक्षित होता है उससे कालिदास का ऋण अश्वघोष पर सिद्ध होता है।

च—कनिष्क के सारनाथ वाले अभिलेख मे किसी अश्वघोष नामक राजा का उल्लेख है। विद्वानों ने इसे महाकवि अश्वघोष का ही नाम स्वीकार किया है।

छ—चीनी एवं तिब्बती इतिहासकारो ने अश्वघोष के कई उपनामों का उल्लेख किया है, और वे है—आर्यशूर, मातृचेट आदि। बौद्धधर्म के विख्यात इतिहासकार तारानाथ भी (तिब्बती) मातृचेट एवं अश्वघोष को अभिन्न मानते है। परन्तु यह तथ्य ठीक नही है। चीनी यात्री इत्सिंग के (६०५–६९५ ई०) इस कथन मे कि मातृचेट कृत डेढ़ सौ स्तोत्रो की पुस्तक 'अध्यर्धशतक' का अश्वघोष प्रभृति प्रसिद्ध विद्वान् भी अनुकरण करते है, यह तथ्य खण्डित हो जाता है। मातृचेट का कनिष्क के नाम लिखा हुआ एक पत्र 'कणिक लेख' (जो पद्यात्मक पत्र है) तिब्बती भाषा मे प्राप्त होता है, जिसमे लिखा है कि मातृचेट वृद्धत्व के कारण कनिष्क (कणिक) के पास आने मे असमर्थ है। इस प्रकार कनिष्क एवं मातृचेट की अभिन्नता खण्डित हो जाती है।

अश्वघोष के जीवनसम्बन्धी अधिक विवरण प्राप्त नही होते। सौन्दरनन्द' नामक महाकाव्य के अन्तिम वाक्य से विदित होता है कि इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी तथा निवासस्थान का नाम साकेत था। वे महाकवि के अतिरिक्त 'भदन्त', 'आचार्य', तथा 'महावादी' आदि उपाधियों से भी विभूषित थे।

"आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्वादिनः कृतिरियम्"।

इनके ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे जाति से ब्राह्मण रहे होंगे ।

रचनाएँ—अश्वघोष का व्यक्तित्व बहुमुखी है। इन्होंने समान अधिकार के साथ काव्य एवं धर्म-दर्शनसम्बन्धी रचनाएँ की हैं। इनके कवि-पक्ष एवं धर्माचार्य-पक्ष में कौन प्रबल है, कहा नहीं जा सकता। इनके नाम पर प्रचलित ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है।

१—वज्रसूची—इसमे वर्णव्यवस्था की आलोचना कर सार्वभौम समानता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। वर्णव्यवस्था के समर्थकों के लिए सूई की तरह चुभने के कारण इसकी अभिधा वज्रसूची है। कतिपय विद्वान् इसे अश्वघोष की कृति मानने मे सन्देह प्रकट करते है।

२—महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र—यह दार्शनिक ग्रन्थ है तथा इसमें विज्ञानवाद एवं शून्यवाद का विवेचन किया गया है।

३—सूत्रालंकार या कल्पनामण्डितिका—सूत्रालंकार की मूल पुस्तक प्राप्त नहीं होती, इसका केवल चीनी अनुवाद मिलता है जिसकी रचना कुमारजीव नामक बौद्ध विद्वान् ने पंचम शती के प्रारम्भ मे की थी। कल्पनामण्डितिका मे धार्मिक एवं नैतिक भावो से पूर्ण काल्पनिक कथाओ का संग्रह है।

४—बुद्धचरित—यह अश्वघोषरचित प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमें भगवान् बुद्ध का चरित २८ सर्गों मे वर्णित है। [दे० बुद्धचरित]

५—सौन्दरनन्द—यह अश्वघोष रचित द्वितीय महाकाव्य है जिसमे महाकवि ने भगवान् बुद्ध के अनुज नन्द का चरित वर्णित किया है। [दे० सौन्दरनन्द]

६—शारिपुत्रप्रकरण—यह अश्वघोष रचित नाटक है जो खण्डितरूप मे प्राप्त है। मध्य एशिया के तुर्फान नामक क्षेत्र में प्रो० ल्यूडर्स को तालपत्रो पर तीन बौद्ध नाटको की प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं जिनमे 'शारिपुत्रप्रकरण' भी है। इसकी खण्डित प्रति में कहा गया है कि इसकी रचना सुवर्णाक्षी के पुत्र अश्वघोष ने की थी। इसकी खण्डित प्रति मे ज्ञात होता है कि यह 'प्रकरण कोटि का नाटक' रहा होगा और इसमे नव अंक थे। इस प्रकरण मे मौद्गल्यायन एवं शारिपुत्र को बुद्ध द्वारा दीक्षित किये जाने का वर्णन है। इसका प्रकाशन ल्यूडर्स द्वारा बर्लिन से हुआ है। इसमें अन्य संस्कृत नाटको की भाँति नान्दी, प्रस्तावना, सूत्रधार, गद्य-पद्य का मिश्रण, संस्कृत एवं विविध प्रकार की प्राकृतों के प्रयोग, भरत वाक्य आदि सभी नाटकीय तत्त्वो का समावेश है।

अश्वघोष की दार्शनिक मान्यताएँ—अश्वघोष ऐसे कलाकारों की श्रेणी में आते हैं जो कला की यवनिका के पीछे छिपकर अपनी मान्यताएँ प्रकाशित करते है। इन्होंने कविता के माध्यम से बौद्धधर्म के सिद्धान्तो का विवेचन कर उन्हें जनसाधारण के लिए सुलभ एवं आकर्षक बनाया है। इनकी समस्त रचनाओ मे बौद्धधर्म के सिद्धान्तों की झलक दिखाई पडती है। भगवान् बुद्ध के प्रति अटूट श्रद्धा तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता, इनके व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता है। दुःखवाद बौद्धधर्म का प्रमुख सिद्धान्त है। इसका चरम लक्ष्य है निर्वाण की प्राप्ति। अश्वघोष ने इसे इस प्रकार प्रकट किया है—

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्स्नेहक्षयात्केवलमेतिशान्तिम् ॥
एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छतिनान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेतिशान्तिम् ॥

सौन्दरनन्द १६।२८,२९

'जिस प्रकार दीपक न पृथ्वी पर जाता है, न आकाश मे, न दिशा में न किसी विदिशा में; किन्तु तेल समाप्त हो जाने पर केवल शान्ति को प्राप्त होता है, उसी प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ पुण्यात्मा न पृथ्वी पर जाता है, न आकाश मे, न दिशा में न किसी विदिशा मे, अपितु क्लेशो का क्षय हो जाने के कारण केवल शान्ति को प्राप्त हो जाता है।' यहाँ कवि ने दीपक के उदाहरण द्वारा निर्वाण के तत्त्व को सरलतापूर्वक व्यक्त किया है। 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य मे नन्द को उपदेश देते हुए बुद्ध कहते हैं—

अवाप्यकार्योऽसि परां गतिं गतो नतेऽस्तिकिञ्चित्करणीय मण्वपि ।
अतः परं सौम्य चरानुकम्पया विमोक्षयन् कृच्छ्रगतान् परानपि ॥ १८।५४

'तुमने अपना कार्य पूर्ण कर लिया है, परमगति को तुम प्राप्त कर चुके हो, तुम्हारे लिए अणुभर भी कुछ करने को अब शेष नही है। (अतः) अब से बाद मे हे सौम्य ! क्लेशो मे पड़े हुए दूसरो को भी दयापूर्वक मुक्त करते हुए विचरण करो।'

काव्य-कला—अश्वघोष की कविता सरलता की मूर्त्ति, स्वाभाविकता की खान तथा कृत्रिमता से रहित है। इनकी कविता मे माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का सुन्दर समावेश है। कवि ने महाकवि कालिदास के दाय को ग्रहण कर अपने काव्य का स्वरूप मंडित किया है। इनका व्यक्तित्व महाकाव्यकार का है और एक सफल महाकाव्य की रचना के लिए जिन गुणो की आवश्यकता है उनकी पूर्णता इनमे दिखाई पड़ती है। कवि वस्तुओ एवं कार्य-व्यापारों के मूर्त्त चित्रण मे अत्यन्त कुशल है। अश्वघोष को मानव जीवन की भावनाओ का पूर्ण परिज्ञान था तथा किन परिस्थितियो मे मनुष्य की क्या स्थिति होती है इसका चित्र उपस्थित करने मे वे पूर्ण सफल हुए हैं। 'बुद्धचरित' मे कुमार को देखने के लिए समुत्सुक रमणियो का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित करता है—

शीघ्रं समर्थापि न गन्तुमन्या गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम् ।
ह्रियप्रगल्भाविनिगूहमाना रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥ ३।१७

'दूसरी सुन्दरी ने शीघ्र जाने मे समर्थ होने पर भी अपनी चाल को रोक लिया और वह वेगपूर्वक नहीं गयी, वह संकोचशीला एकान्त मे पहने हुए आभूषणो को लज्जावश छिपाने लगी।'

इनमे निरीक्षणशक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा कल्पनाशक्ति विकसित है जिससे इन्होंने अपने चित्रों को अधिक स्वाभाविक एवं हृदयग्राही बनाया है—

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परायासित कुण्डलानि ।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानिहर्म्येष्विव पङ्कजानि ॥ ३।१९ बुद्धचरित

'वातायनों से निकले हुए स्त्रियों के मुख-कमल, जो एक दूसरों के कुण्डलों को छू रहे (क्षुब्ध कर रहे) थे, ऐसे शोभित हुए जैसे प्रासादों में कमल लगे हुए हों ।'

बाह्यप्रकृति के चित्रण में भी कवि की कुशलता अवलोकनीय है। इन्होंने प्रकृति का चित्रण शृङ्गाररस के उद्दीपन के रूप में, कहीं आलंबन के रूप में तथा कहीं नीति-विषयक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए किया है।

हिमालय के वृक्षों का सुन्दर वर्णन देखिए—

रक्तानि फुल्लाः कमलानि यत्र प्रदीपवृक्षा इव भान्ति वृक्षाः ।

प्रफुल्लनीलोत्पलरोहिणोन्ये सोन्मीलिताक्षा इव भान्तिवृक्षाः ॥ सौन्दरनन्द १०।२१

'जहाँ लाल कमलों वाले पुष्पित वृक्ष दीपकयुक्त वृक्षों के समान शोभित हो रहे हैं, विकसित नीलकमलों से युक्त वृक्ष ऐसे शोभित होते हैं जैसे उन्होंने आंखें खोली हों ।'

अश्वघोष रसविधायक कलाकार हैं। इनकी कविता में शृङ्गार, करुण एवं शान्तरस की वेगवती धारा अबाध गति से प्रवाहित होती है। इन्हें करुणरस के चित्रण में अत्यधिक दक्षता प्राप्त है। नन्द के भिक्षु बन जाने पर उनकी प्रिया सुन्दरी का करुण क्रन्दन, पत्नी के लिए नन्द का शोक, सिद्धार्थ के प्रव्रज्या-ग्रहण करने पर यशोधरा एवं उनके माता-पिता का विलाप अत्यन्त करुणोत्पादक है। इसी प्रकार की कुशलता अलंकारों के प्रयोग में भी दिखाई पडती है। इनका अलंकार-विधान स्वाभाविक एवं रसोत्कर्ष-विधायक है। बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के निरूपण के लिए ही शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का समावेश किया गया है।

अश्वघोष की भाषा कोमल, सरल एवं अकृत्रिम है। कालिदास की कवित्व प्रतिभा के निरूपण के लिए इनका महत्त्व आवश्यक है।

आधार ग्रन्थ—१ महाकवि अश्वघोष—डॉ० हरिदत्त शास्त्री २. संस्कृत-कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशकर व्यास, ३. संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री, ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ ।

अष्टाध्यायी—पाणिनि विरचित प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ। 'अष्टाध्यायी' भारतीय शब्द-विद्या का प्राचीनतम ग्रन्थ है जो अपनी विशालता, क्रमबद्धता एवं विराट् कल्पना के कारण विश्व के अपूर्व व्याकरणों मे सर्वोच्च स्थान पर अधिष्ठित हैं। इससे संस्कृत भाषा के सभी अंग भास्वर हो चुके हैं और उसमें पूर्ण वैज्ञानिकता आ गयी है। यह आठ अध्यायों मे विभक्त है। इसके प्रत्येक अध्याय मे चार पद तथा कुल ३९८१ सूत्र हैं। 'अष्टाध्यायी' के प्रत्याहार सूत्रों की संख्या १४ है जिनके योग से कुल सूत्र ३९९५ हो जाते हैं। इसके प्रथम दो अध्यायों में पदों के सुबन्त, तिङन्त-भेदों तथा वाक्य में उनके पारस्परिक सम्बन्ध का विचार किया गया है। तृतीय अध्याय मे धातुओं के द्वारा शब्द-सिद्धि का निरूपण तथा चतुर्थ और पञ्चम अध्यायों में प्रातिपदिकों एवं शब्द-सिद्धि का विवेचन है। षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में सुबन्त और तिङन्त शब्दों की प्रकृति-प्रत्ययात्मक सिद्धि तथा स्वरों का विवेचन है। अष्टम अध्याय में 'सन्निहित पदों के शीघ्रोच्चारण से वर्णों या स्वरों पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा है।' पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष पृ० १८। इस ग्रन्थ में निम्नांकित प्रतिपाद्य

विषयों की चर्चा की गयी है—संज्ञा एवं परिभाषा, स्वरों तथा व्यञ्जनों के भेद, धातु-सिद्ध क्रियापद, कारक, विभक्ति, एकदेश, समास, कृदन्त, सुबन्त, तद्धित, आगम, आदेश, स्वरविचार, द्वित्व तथा सन्धि। इसके चार नाम उपलब्ध होते हैं—अष्टक, अष्टाध्यायी, शब्दानुशासन एवं वृत्तिसूत्र। शब्दानुशासन नाम का उल्लेख पुरुषोत्तमदेव, सृष्टिधराचार्य, मेधातिथि, न्यासकार तथा जयादित्य ने किया है। महाभाष्यकार भी इसी शब्द का प्रयोग करते है।

'अथेति शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासन नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। 'महाभाष्य' की प्रथम पंक्ति।

'महाभाष्य' के दो स्थानो पर 'वृत्तिसूत्र' नाम आया है तथा जयन्तभट्ट की 'न्यायमञ्जरी' मे भी 'वृत्तिसूत्र' का उल्लेख है।

वृत्तिसूत्रं तिलाभाषाः कपत्रीकोद्रवौदनम्।
अजडाय प्रदातव्यं जडीकरणमुत्तमम्॥ न्यायमञ्जरी पृ० ४१८

'अष्टाध्यायी' मे अनेक सूत्र प्राचीन वैयाकरणो से भी लिये गए हैं तथा उनमें कही-कही किंचित् परिवर्तन भी कर दिया गया है। इसमें यत्र-तत्र प्राचीनो के श्लोकाशो का भी आभास मिलता है—

तस्मैदीयते युक्तं श्राणामासौदनाट्टिठन्, ४।४।६६,६७ वृद्धिरादैजदेङ्गुण, १।१।१,२

पाणिनि ने अनेक आपिशलि सूत्र भी ग्रहण किये है तथा 'पाणिनीय शिक्षासूत्र' भी आपिशलि के शिक्षासूत्रों से साम्य रखते है। इनके पूर्व का कोई भी व्याकरण-ग्रन्थ प्राप्त नही होता, अतः यह कहना कठिन है कि पाणिनि ने किन-किन ग्रन्थो से सूत्र ग्रहण किये। प्रातिशाख्यो तथा श्रौतसूत्र के अनेक सूत्रो की समता पाणिनीय सूत्रो के साथ दिखाई पडती है। 'अष्टाध्यायी' की पूर्त्ति के लिए पाणिनि ने धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र तथा लिङ्गानुशासन की भी रचना की है जो उनके शब्दानुशासन के परिशिष्ट रूप मे मान्य है। प्राचीन ग्रन्थकारो ने इन्हे 'खिल' कहा है।

उपदेशः शास्त्रवाक्यानि सूत्रपाठः खिलपाठश्च। काशिका १।३।२

नहि उपदिशन्ति खिलपाठे (उणादिपाठे) भर्तृहरिकृत महाभाष्यदीपिका पृ० १४९

पाश्चात्य विद्वानो ने 'अष्टाध्यायी' का अध्ययन करते हुए उसके महत्त्व को स्वीकार किया है। वेबर ने अपने इतिहास मे 'अष्टाध्यायी' को संसार का सर्वश्रेष्ठ व्याकरण माना है। क्योंकि इसमे अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ धातुओ तथा शब्द का विवेचन किया गया है। गोल्डस्टूकर के अनुसार 'अष्टाध्यायी' मे संस्कृत भाषा का स्वाभाविक विकास उपस्थित किया गया है। पाणिनि-व्याकरण की विशेषता धातुओ से शब्द-निर्वचन की पद्धति के कारण है। उन्होने लोकप्रचलित धातुओं का बहुत बडा संग्रह धातुपाठ में किया है। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' को पूर्ण, सर्वमान्य एवं सर्वमत-समन्वित बनाने के लिए अपने समग्र पूर्ववर्त्ती साहित्य का अनुशीलन करते हुए उनके मत का उपयोग किया तथा गान्धार, अंग, बंग, मगध, कलिंग आदि समस्त जनपदों का परिभ्रमण कर वहाँ की सांस्कृतिक निधि का भी समावेश किया है। अतः तत्कालीन भारतीय चाल-ढाल, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, उद्योग-धंधों, वाणिज्य-उद्योग,

भाषा, तत्कालीन प्रचलित वैदिक शाखाओं तथा सामग्रियों की जानकारी के लिए 'अष्टाध्यायी' एक खुले हुए सांस्कृतिक कोष का कार्य करती है। इनका व्याकरण इतना व्यवस्थित, वैज्ञानिक, लाघवपूर्ण एवं सर्वांगपूर्ण है कि सभी व्याकरण इसके समक्ष निस्तेज हो गए एवं उनका प्रचलन बन्द हो गया। [दे० पाणिनि]

आधार ग्रन्थ—१. अष्टाध्यायी (काशिका सहित)—चौखम्बा २. अष्टाध्यायी (आंग्ल अनुवाद)—एस० राय ३. अष्टाध्यायी (हिन्दी भाष्य) भाग १, २, श्रीब्रह्मदत्त जिज्ञासु भाग ३ डॉ० प्रज्ञाकुमारी ४. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १, २—पं० युधिष्ठिर मीमांसक ५. पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ६ पाणिनि-परिचय—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ७. पतञ्जलिकालीन भारत—डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री ८. द स्ट्रक्चर आँफ अष्टाध्यायी—पवाटे ९. पाणिनि, हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर—गोल्डस्टूकर १० पाणिनीयव्याकरण का अनुशीलन—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य ११. पाणिनीय धातुपाठ समीक्षा—डॉ० भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी।

अष्टाध्यायी के वृत्तिकार—'अष्टाध्यायी' के गूढ़ार्थ को स्पष्ट करने के लिए अनेक वृत्तियाँ लिखी गयी हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

१—पाणिनि—स्वयं पाणिनि ने अपने शब्दानुशासन पर स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी थी जिसका निर्देश 'महाभाष्य' (१।४।१), 'काशिका' (४।१।११४) तथा 'महाभाष्य-दीपिका' मे है।

२—श्वोभूति—(वि० पू० २९०० वर्ष) जिनेन्द्रबुद्धि के 'न्यास' से ज्ञात होता है कि इन्होंने 'अष्टाध्यायी' की वृत्ति लिखी थी। इनका उल्लेख 'महाभाष्य' (१।१।५६) मे भी है।

३—व्याडि (वि० पू० २९०० वर्ष)—जिनेन्द्रबुद्धि के वचन से ज्ञात होता है कि इन्होने 'अष्टाध्यायी' की किसी वृत्ति का प्रणयन किया था।

४—कुणि—(वि० पू० २००० मे भी प्राचीन)—भर्तृहरि, कैयट तथा हरदत्त प्रभृति वैयाकरणो ने इनकी वृत्ति का उल्लेख किया है। ('महाभाष्य', १।१।३८)

५—माथुर (वि० पू० २००० वर्ष मे प्राचीन)—भाषावृत्तिकार पुरुषोत्तमदेव ने 'माथुरीवृत्ति' का उल्लेख किया है (अष्टाध्यायी वृत्ति १।२।५७) तथा 'महाभाष्य' (४।३।१०१) मे भी इसका निर्देश है।

६—वररुचि—ये वार्त्तिककार वररुचि से भिन्न एवं उनके परवर्त्ती हैं। ये सम्राट् विक्रमादित्य के सभासद् तथा उनके धर्माधिकारी भी थे। इनके ग्रन्थ है—'तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यव्याख्या', 'निरुक्तसमुच्चय', 'सारसमुच्चय', 'प्रयोगविधि', 'लिङ्गविशेषविधि', 'कातन्त्र उत्तरार्ध', 'प्राकृत-प्रकाश', 'कोश', 'उपसर्गसूत्र', 'पत्रकौमुदी' तथा 'विद्यासुन्दर-प्रसंग काव्य'।

७—देवनन्दी—(वि० पू० ५०० वर्ष) इन्होंने 'शब्दावतारन्यास' नामक 'अष्टा-ध्यायी' की टीका लिखी है, किन्तु सम्प्रति अनुपलब्ध है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—'जैनेन्द्र-व्याकरण', 'वैद्यकग्रन्थ', 'तत्त्वार्थसूत्रटीका', 'धातुपाठ', 'गणपाठ' तथा 'लिङ्गानुशासन'।

८—चुल्लिभट्टि (सं० ७०० से पूर्व)—जिनेन्द्रबुद्धि विरचित 'न्यास' (भाग १ पृ० ९) एवं उसकी टीका में (तन्त्रप्रदीप) इनके 'शब्दावतार' नामक ग्रन्थ का उल्लेख है।

९—निर्लूर—(सं० ७०० से पूर्व) 'न्यास' में (भूमिका भाग पृ० ९) इनका उल्लेख मिलता है।

१०, ११—जयादित्य तथा वामन—(६५०–७०० संवत्)।

दोनों की संयुक्त वृत्ति का नाम 'काशिका' है। 'काशिका' के प्रारम्भिक पाँच अध्यायों को जयादित्य ने तथा शेष तीन अध्यायों को वामन ने लिखा है। इसमें अनेक ऐसे वृत्तिकारों के नाम हैं जिनका पहले कोई विवरण प्राप्त नहीं था। इसमें प्राचीन वृत्तियों के आधार पर अनेक सूत्रों की व्याख्या की गयी है। 'काशिका' की अनेक व्याख्यायें लिखी गयी हैं जिनमें जिनेन्द्रबुद्धि रचित 'काशिका विवरण पञ्जिका' नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह 'न्यास' के नाम से विख्यात है।

जिनेन्द्रबुद्धि बौद्ध थे और इनका समय ७ वीं शताब्दी है। 'न्यास' के ऊपर मैत्रेय-रक्षित ने 'तन्त्रप्रदीप' (१२ वीं शती), मल्लिनाथ ने न्यासोद्योत (१४ वीं शती), महामिश्र ने 'व्याकरणप्रकाश' (१५ वीं शती) तथा रत्नमति ने भी टीकाएँ लिखी हैं।

१२—विमलमति—(सं० ७०२) इन्होंने 'भागवृत्ति' नामक 'अष्टाध्यायी' की वृत्ति लिखी है जो सम्प्रति अप्राप्य है। इसके अनेक उद्धरण 'पदमञ्जरी' 'भाषावृत्ति' 'दुर्घटवृत्ति' 'अमरटीकासर्वस्व', 'शब्दकौस्तुभ' तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' प्रभृति ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

१३—मैत्रेयरक्षित (सं० ११६५)—इन्होंने 'अष्टाध्यायी' को दुर्घट वृत्ति लिखी है।

१४—पुरुषोत्तमदेव—(सं० १२०० से पूर्व) इन्होंने 'भाषावृत्ति' नामक वृत्तिग्रन्थ लिखा है।

१५—शरणदेव—(सं० १२३०) इन्होंने 'अष्टाध्यायी' के ऊपर 'दुर्घट' नामक वृत्ति की रचना की है। इनकी व्याख्या विशेष सूत्रों पर ही है। सम्प्रति यह वृत्ति उपलब्ध है तथा 'शब्दकौस्तुभ' सदृश अर्वाचीन ग्रन्थों में इसके विचारों का खण्डन किया गया है। इसमें शतशः दु.साध्य प्रयोगों के साधुत्व का निदर्शन है। ग्रन्थ का रचनाकाल १२३० संवत् (शकाब्द १०९५) दिया हुआ है।

१६—भट्टोजिदीक्षित (सं० १५१०–१६००)—इन्होंने 'शब्दकौस्तुभ' नामक वृत्ति लिखी है। (दे० भट्टोजिदीक्षित)।

१७—अप्पयदीक्षित—इनकी वृत्ति का नाम 'सूत्रप्रकाश' है जो हस्तलेख के रूप में है। [दे० अप्पयदीक्षित]।

१८—नीलकण्ठ वाजपेयी (सं० १६००–१६५०)—इनकी वृत्ति का नाम 'पाणिनीयदीपिका' है। सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

१९—अन्नभट्ट (सं० १६५०)—इन्होंने 'पाणिनीयमिताक्षरा' नामक वृत्ति लिखी है जो प्रकाशित हो चुकी है।

अष्टाध्यायी के अन्य वृत्तिकारों की सूची—

२०—विश्वेश्वर सूरि—'व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि'

२१—ओरम्भट्ट—व्याकरणदीपिका

२२—स्वामी दयानन्द सरस्वती—अष्टाध्यायी भाष्य

२३—अघन नैनार्य—प्रक्रियादीपिका

२४—नारायण सुधी—अष्टाध्यायी प्रदीप

२५—रुद्रधर—अष्टाध्यायी वृत्ति

२६—सदानन्द—तत्त्वदीपिका

इनके अतिरिक्त अनेक वृत्तिकार हैं जिनका विवरण मीमांसक जी के ग्रन्थ में है।

आधार ग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १-पं० युधिष्ठिर मीमांसक

आचार्य जयदेव—इन्होंने 'चन्द्रालोक' नामक लोकप्रिय काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। ये 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव से सर्वथा भिन्न हैं। इन्होंने 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक की भी रचना की है। तत्कालीन समाज मे ये पीयूषवर्ष के नाम से विख्यात थे। चन्द्रालोकममुं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती। चन्द्रालोक १।२ इनके पिता का नाम महादेव एवं माता का नाम सुमित्रा था—श्रवणयोरयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः। सुमित्रा कुक्षिजन्मनः, प्रसन्नराघव, प्रस्तावना १।४ गीतगोविन्दकार जयदेव के पिता का नाम भोजदेव एवं माता का नाम राधादेवी या रामादेवी था। इनका समय महराज लक्ष्मणसेन का काल है (द्वादशशतक का आरम्भ) किन्तु चन्द्रालोककार जयदेव का समय अनिश्चित है। सभवतः ये १३ वी शताब्दी के मध्य चरण मे रहे होंगे। 'प्रसन्नराघव' के कुछ श्लोक 'शार्ङ्गधरपद्धति' मे उद्धृत हैं जिसका रचनाकाल १३६३ ई० है। जयदेव ने मम्मट के काव्यलक्षण का खण्डन किया है, अतः वे उनके परवर्ती हैं। इन्होंने 'विचित्र' एवं 'विकल्प' नामक अलंकारो के लक्षण रुय्यक के ही शब्दो में दिये है, अतः ये रुय्यक के भी पश्चाद्वर्त्ती सिद्ध होते है। इस प्रकार इनका समय रुय्यक (१२०० ई०) एवं शार्ङ्गधर (१३५० ई०) का मध्यवर्त्ती निश्चित होता है। कुछ विद्वान् जयदेव एवं मैथिल नैयायिक पक्षधर मिश्र को अभिन्न सिद्ध करना चाहते हैं पर अब यह निश्चित हो गया है कि दोनो भिन्न व्यक्ति थे और पक्षधर मिश्र का समय १४६४ ई० है।

'चन्द्रालोक' काव्यशास्त्र का सरल एवं लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसमें २९४ श्लोक एवं १० मयूख है। इसकी रचना अनुष्टुप् छन्द में हुई है जिसमे लक्षण एवं लक्ष्य दोनो का निबन्धन है। प्रथम मयूख में काव्यलक्षण, काव्यहेतु, रूढ़, यौगिक आदि का विवेचन है। द्वितीय मे शब्द एवं वाक्य के दोष तथा तृतीय मे काव्य लक्षणों [नाट्यशास्त्र (भरतकृत) में वर्णित] का वर्णन है। चतुर्थ में दस गुण वर्णित है और पंचम मयूख में पाँच शब्दालंकारों एवं सौ अर्थालंकारों का वर्णन है। षष्ठ मयूख में रस, भाव, रीति एवं वृत्ति तथा सप्तम में व्यंजना एवं ध्वनि के भेदों का निरूपण है। अष्टम मयूख में गुणीभूतव्यंग्य का वर्णन है और अन्तिम दो मयूखों में लक्षण एवं अभिधा का विवेचन है।

इस ग्रन्थ की विशेषता है एक ही श्लोक में अकालंर या अन्य विषयों का लक्षण देकर उसका उदाहरण प्रस्तुत करना। इस प्रकार की समासशैली का अवलंब लेकर लेखक ने ग्रन्थ को अधिक बोधगम्य एवं सरल बनाया है। 'चन्द्रालोक' में सबसे अधिक विस्तार अलंकारो का है और इन्होंने १७ नवीन अलंकारों का वर्णन किया है— उन्मीलित, परिकराङ्कुर, प्रौढोक्ति, संभावना, प्रहर्षण, विषादन, विकस्वर, विरोधाभास, असंभव, उदारसार, उल्लास, पूर्वरूप, अनुगुण, अवज्ञा, पिहित, भाविकच्छवि एवं अन्योक्ति। अध्येताओ मे इस ग्रन्थ का अधिक प्रचार है और हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों के लिये यह ग्रन्थ मुख्य उपजीव्य था। इस युग के अनेक आलंकारिकों ने इसका पद्यानुवाद किया था। इसकी संस्कृत मे अनेक टीकाएँ हैं—

१—शरदागम टीका—इसके रचयिता प्रद्योतनभट्ट है। इन्होने कामसूत्र की भी टीका की थी (१५७७ ई० मे) और 'कंदर्पचूडामणि' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था।

२—रमा टीका—इसके रचयिता वैद्यनाथ पायगुण्ड है। ये प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजीभट्ट के शिष्य थे।

३—राकागम टीका—इसके रचयिता गागाभट्ट हैं। इनका वास्तविक नाम विश्वेश्वरभट्ट था। इनका समय १६२८ वि० सं० है।

अप्पयदीक्षित कृत 'कुवलयानन्द' एक प्रकार से चन्द्रालोक के 'पंचममयूख' की विस्तृत व्याख्या ही है। इसकी अन्य टीकाएँ भी हैं—विरूपाक्ष कृत शारदशर्वरी, वाजचन्द्रचन्द्रिका एवं चन्द्रालोकदीपिका आदि। हिन्दी में चन्द्रालोक के कई अनुवाद प्राप्त होते है। चौखम्भा विद्याभवन से संस्कृत हिन्दी टीका प्रकाशित है।

आधारग्रन्थ चन्द्रालोक-सुधा—पं० विश्वनाथ त्रिपाठी।

आचार्य दण्डी—इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक सुप्रसिद्ध अलंकारग्रन्थ का प्रणयन किया है। [दे० काव्यादर्श] [इनके जन्म एवं अन्य बातों के लिए देखिए दण्डी] ये अलंकारवादी आचार्य है और काव्य के शोभाकारकधर्म को अलंकार कहते हैं। इन्होने 'काव्यादर्श' में अलंकार, दोष, गुण एवं काव्य-रूप का वर्णन किया है। इनके अनुसार इष्ट या चमत्कारपूर्ण पदावली ही काव्य है—शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। १।१० काव्यादर्श। काव्य के हेतु पर विचार करते हुए इन्होंने प्रतिभा, अध्ययन एवं अभ्यास तीनो के संयुक्त रूप को काव्य का कारण स्वीकार किया है। ये प्राक्तन संस्कार से उत्पन्न प्रतिभा के न रहने पर भी अध्ययन एवं अभ्यास के कारण कवि मे काव्य-रचना की शक्ति को स्वीकार करते हैं—

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥ १।१०३
न विद्यते यद्यपि पूर्ववासनागुणानुबन्धिप्रतिमानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥ १।१०४

दोष के संबंध मे दण्डी की दृष्टि अत्यन्त कड़ी है। इनके अनुसार दोष-युक्त काव्य कवि की मूर्खता का द्योतक एवं दोष-रहित तथा गुणालंकारपूर्ण रचना कामधेनु के

समान होती है। दोषों के कारण काव्य उसी प्रकार अग्राह्य हो जाता है जिस प्रकार सुन्दर शरीर श्वेत कुष्ठ से युक्त होने पर गर्हित हो जाता है—

गौर्गोः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति ।।
तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन ।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ।। १।६,७

दण्डी ने सर्वप्रथम वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली रीतियों का पारस्परिक भेद स्पष्ट किया और श्लेष, प्रसाद, समता प्रभृति दस दोषों को वैदर्भीरीति का प्राण कहा— इति वैदर्भमार्गस्य प्राण्यदशगुणाः स्मृताः १।४२। दण्डी के इसी विचार के कारण आधुनिक विद्वान् इन्हें रीतिवादी आचार्य भी स्वीकार करते है। अलंकार के संबन्ध में दण्डी की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है और वे रस, रीति एवं गुण को अलंकार में ही अन्तर्भुक्त कर देते है। यद्यपि इन्होने रस, रीति एवं गुण के अस्तित्व को स्वीकार किया है पर उनकी स्वतन्त्र सत्ता नही मानते, और न उन्हें अधिक महत्त्व देते हे। इन सबो को इन्होने अलंकार के साधक तत्त्व के ही रूप में स्वीकार किया है। महाकाव्य के वर्णन मे दण्डी ने अवश्य ही रस की महत्ता स्वीकार की है। इन्होन काव्य के तीन प्रकार माने हैं—गद्य, पद्य एवं मिश्र तथा पद्य के मुक्तक, कुलक, कोष, संघात आदि भेद किये हे। पद्य के भेदो मे दण्डी ने महाकाव्य के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है—

अलंकार-विवेचन के क्षेत्र मे दण्डी की अनेक नवीन स्थापनायें हैं। इन्होंने उपमेयोपमा, प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगिता, भ्रान्तिमान् एवं संशय को उपमा का ही प्रकार माना है। इन्होने उपमा के ३३ भेद किये है जिनमे से अनेक भेदो को परवर्ती आचार्यों ने स्वतन्त्र अलंकार के रूप में मान्यता दी है। दण्डी ने भामह द्वारा निरस्त हेतु, सूक्ष्म एव लेश अलंकार को 'वाणी का उत्तम भूषण' मान कर उन्हें स्वतन्त्र अलंकार का रूप दिया तथा 'दीपकावृत्ति' नामक दीपक अलंकार के नवीन भेद की उद्भावना की। इन्होंने भामह द्वारा अप्रतिष्ठित स्वभावोक्ति अलंकार को अलंकारो की पंक्ति मे प्रथम स्थान देकर उसकी महत्ता स्वीकार की और यमक, चित्र एवं प्रहेलिका का विस्तृत विवेचन कर उनका महत्त्व दर्शाया। इन्हीं नवीन तथ्यों के विवेचन के कारण दण्डी का महत्त्वपूर्ण योग माना जाता है।

आधार ग्रन्थ—१. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १,२,—आ० बलदेव उपाध्याय २. अलंकारानुशीलन—राजवंश सहाय 'हीरा' ३. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त—'हीरा'।

आचार्य दिग्विजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता कवि बल्ली सहाय है। काव्य का रचनाकाल १५३९ ई० के आसपास है। ये बाधुल गोत्रोद्भव व्यक्ति थे। इसमें कवि ने आचार्य शंकर के दिग्विजय को वर्ण्यविषय बनाया है। इस चम्पू का आधार ग्रन्थ है आनन्दगिरि कृत 'शंकरदिग्विजय' काव्य। सम्प्रति यह चम्पू अप्रकाशित

है और इसकी प्रति खण्डित है जो सप्तम कल्लोल तक है और यह कल्लोल भी अपूर्ण है। इसके पद्य सरल तथा प्रसादगुणयुक्त है और गद्यभाग में अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग किया गया है। काव्य का प्रारम्भ शिव की वन्दना से हुआ है।

जटाबन्धोदंचच्छशिकरहृताज्ञानतमसे जगत्सृष्टिस्थेमस्लयनकलनस्फारयशसे।
वटक्ष्मारुण्यमूलप्रवणमुनिविस्मेरमनसे नमस्तस्मै कस्मैचन भुवनमान्याय महसे। १।१

इस चम्पू का विवरण डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग मद्रास १२३८० में प्राप्त होता है।

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ—इनके जीवन सम्बन्धी विवरण के लिए दे० पण्डितराज जगन्नाथ। पण्डितराज ने काव्यशास्त्रविषयक दो ग्रन्थों की रचना की है—'रसगंगाधार' एवं 'चित्रमीमांसाखण्डन'। इनमें 'चित्रमीमांसाखण्डन' स्वतन्त्र पुस्तक न होकर अप्पयदीक्षित कृत 'चित्र मीमासा' की आलोचना है। 'रसगंगाधर' संस्कृत काव्यशास्त्र का अन्तिम प्रौढ़ ग्रन्थ एवं तद्विषयक मौलिक प्रस्थान ग्रन्थ है। इसे विद्वानो ने पाण्डित्य का 'निकषग्रावा' कहा है। 'रसगंगाधर' अपने विषय का विशालकाय ग्रन्थ है जो दो आननो मे विभक्त है। प्रथम आनन के वर्णित विषय हैं—काव्यलक्षण, काव्यकारण, काव्यभेद तथा रसध्वनि का स्वरूप एवं भेद। द्वितीय आनन में संलक्ष्य-क्रमध्वनि के भेदों का निरूपण, शब्द-शक्ति-विवेचन तथा ७० अलंकारों का मीमासन है। इसमें वर्णित अलंकार है—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, असम, उदाहरण, स्मरण, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्य-योगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्त, व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, शृङ्खला, कारणमाला, एकावली, सार, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, अनुमान, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, प्रतीप, प्रौढोक्ति, ललित, प्रहर्षण, विषादन, उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, तिरस्कार, लेश, तद्गुण, अतद्गुण, समाधि एवं उत्तर। 'रसगंगाधर' अधूरे रूप मे ही प्राप्त होता है और उत्तर अलंकार के विवेचन मे समाप्त हो गया है। विद्वानों ने इसका कारण लेखक की असामयिक मृत्यु माना है। इस पर नागेशभट्ट की 'गुरुमर्मप्रकाशिका' नामक संक्षिप्त टीका प्राप्त होती है जो 'काव्यमाला' से प्रकाशित है। आधुनिक युग के कई विद्वानो ने भी इस पर टीका लिखी है इनमे आचार्य बदरीनाथ झा की चन्द्रिका टीका (चौखम्बा प्रकाशन) तथा मधुसूदन शास्त्री रचित टीका प्रसिद्ध हैं। इन्होने इस ग्रन्थ में समस्त उदाहरण अपने दिए है जिसमे इनकी उत्कृष्टकोटि की कारयित्री प्रतिभा के दर्शन होते हैं। पण्डितराज ने काव्यलक्षण के विवेचन में पूर्ववर्त्ती आचार्यों के लक्षण का परीक्षण कर 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' को ही काव्य माना है। इस दृष्टि से वे शब्द को ही काव्य मान कर उसको प्रधान तत्त्व स्वीकार करते हैं। काव्यहेतु का विवेचन करते हुए इन्होंने एकमात्र प्रतिभा को ही उसका कारण ठहराया है—तस्य च कारणं

कविगता केवल प्रतिभा। इनके अनुसार काव्य के चार भेद हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम। रस, ध्वनि, गुण तथा अलंकार के विवेचन में भी पण्डितराज ने अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत कर अपनी मौलिकता का निदर्शन किया है। इन्होंने अद्वैत-वेदान्तदर्शन के आधार पर रस-मीमांसा प्रस्तुत की। 'आत्मा पर अज्ञान का आवरण है। काव्य के प्रभाव से वह दूर हो जाता है। केवल रत्यादि का आवरण शेष रह जाता है। आत्मा के प्रकाश में वह आवरण भी प्रकाशित हो उठता है। इस प्रकार सहृदय रत्यादि से युक्त अपने ही आत्मा का आनन्द अनुभव करता है। यही काव्य-रस है।' रसगंगाधर का काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृ० २१९ से उद्धृत। इन्होंने गुण को द्रुत्यादि-प्रयोजकत्व के रूप में ग्रहण कर उसका सम्बन्ध वर्ण एवं रचना से स्थापित किया है। 'वे वर्ण एवं रचना का सीधा गुणाभिव्यञ्जन मानते हैं, रसाभिव्यंजन की मध्यस्था के साथ नही।' अलंकारों का आधार शब्दशक्तियों को सिद्ध कर पण्डितराज ने संस्कृत काव्यशास्त्र के विवेचन मे नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है।

आधार ग्रन्थ—क. रसगङ्गाधर का काव्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त ख. रसगंगाधर (हिन्दी अनुवाद ३ खण्डों में)–पं० पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ग. रसगंगाधर (हिन्दी अनुवाद ३ खण्डों मे)—पं० मदनमोहन झा घ. रसगंगाधर—हिन्दी अनुवाद—मधुसूदनशास्त्री।

आनन्दवर्द्धन—प्रसिद्ध काव्यशास्त्री एवं ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक (दे० काव्य० शास्त्र)। ये संस्कृत काव्यशास्त्र के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं और ध्वन्यालोक अपने विषय का असाधारण ग्रन्थ है। ये काश्मीर के निवासी थे और इनका समय नवम शताब्दी है। 'राजतरंगिणी' में ये काश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के समकालीन माने गए हैं—

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥ ५।४

अवन्तिवर्मा का समय ८५५ से ८८४ ई० तक माना जाता है, अतः आनन्दवर्धन का भी यही समय होना चाहिए। इनके द्वारा रचित पाँच ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है—'विषमबाणलीला', 'अर्जुनचरित', 'देवीशतक', 'तत्त्वालोक', एवं 'ध्वन्यालोक'। इनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' ही है जिसमे ध्वनि-सिद्धान्त का विवेचन किया गया है और अन्य सभी काव्यशास्त्रीय मतों का अन्तर्भाव उसी में कर दिया गया है। 'देवीशतक' नामक ग्रन्थ में इन्होंने अपने पिता का नाम 'नोण' दिया है (देवीशतक श्लोक ११०) हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में भी इनके पिता का यही नाम आया है—काव्यानुशासन पृ० २२५। इन्होंने प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्त्ति के ग्रन्थ' 'प्रमाणविनिश्चय' पर 'धर्मोत्तमा' नामक टीका की भी रचना की है।

'ध्वन्यालोक' की रचना कारिका एवं वृत्ति में हुई है। कतिपय विद्वान् इस मत के हैं कि दोनों के ही रचयिता आनन्दवर्द्धन थे पर कई पण्डितों का यह विचार है कि कारिकाएँ ध्वनिकार की रची हुई हैं जो आनन्दवर्द्धन के पूर्ववर्त्ती थे और आनन्दवर्द्धन

ने उन पर अपनी वृत्ति लिखी है। इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी निश्चित नहीं हो सका है किन्तु परम्परागत मत भी दोनों की अभिन्नता का पोषक है। आधुनिक युग के म० म० कुप्पुस्वामी शास्त्री, डॉ० सकरन्, डॉ० सत्कारि मुखर्जी, डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय, डॉ० कृष्णमूर्त्ति, पं० बलदेव उपाध्याय एवं डॉ० नगेन्द्र कारिका एवं वृत्ति दोनों का ही प्रणेता आनन्दवर्द्धन को मानते है। जब कि डॉ० बूहलर, जाकोबी, कीथ, सुशीलकुमार डे एव डॉ० काणे प्रभृति विद्वान् कारिकाओं का प्रणेता मूलध्वनिकार को मान कर आनन्दवर्द्धन को वृत्तिकार मानने के पक्ष में अपना अभिमत प्रकट करते हैं। डॉ० काणे 'ध्वन्यालोक' की प्रथम कारिका–'सहृदयमनः प्रीतये' के आधार पर मूल ग्रन्थकृत का नाम 'सहृदय' मानते है। इनके अनुसार 'ध्वन्यालोक' की कई हस्तलिखित प्रतियो में इसका नाम 'सहृदयालोक' भी लिखा है। पर अधिकांश विद्वान् 'सहृदय' शब्द को नामवाची न मानकर पाठक या सहृदय का द्योतक स्वीकार करते हैं। अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिमभट्ट एवं क्षेमेन्द्र ने आनन्दवर्द्धन को ही ध्वनिकार कहा है और स्वयं आनन्दवर्द्धन ने भी अपने को ध्वनि का प्रतिष्ठापक कहा है—इति काव्यार्थविवेको योऽयं चेतश्चमत्कृतिविधायी। सुरिभिरनुसृतसारैरस्मदुपज्ञो न विस्मार्य्यः॥ ध्वन्यालोक के अन्तिम श्लोक से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—

सत्काव्यतत्त्वविषयं स्फुरितप्रसुप्तकल्पं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।
तद्व्याकरोत् सहृदयोदयलाभहेतोरानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः॥

इस प्रकार के कथन से कारिका एवं वृत्ति दोनो का रचयिता आनन्दवर्द्धन को ही मानना उपयुक्त है। [दे० ध्वन्यालोक]

आधार ग्रन्थ—१ संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–डॉ० पा० वा० काणे २ संस्कृत पोइटिक्स–डॉ० एस० के० डे ३. थियरी ऑफ रस एण्ड ध्वनि–डॉ० संकरन् ४. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १–आ० बलदेव उपाध्याय ५ ध्वन्यालोक (हिन्दी भाष्य) की भूमिका–डॉ० नगेन्द्र।

आनन्दवृन्दावन चम्पू—इसके रचयिता का नाम परमानन्द दास था। इन्हे कवि कर्णपूर भी कहा जाता है। ये बंगाल के नदिया जिले के काचनपल्ली नामक ग्राम मे १५२४ ई० मे उत्पन्न हुए थे। इसका प्रकाशन वाराणसी से हो चुका है, डॉ० बाकेबिहारी कृत हिन्दी अनुवाद के साथ। कवि का कर्णपूर नाम उपाधिपरक था जिसे महाप्रभु चैतन्य ने दिया था। यह संस्कृत के उपलब्ध सभी चम्पू-काव्यों मे बड़ा है। इसमें कुल २२ स्तबक हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथा प्रारम्भ से किशोरावस्था पर्यन्त वर्णित है। कवि ने अपनी रचना का आधार 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कन्ध को बनाया है। इसके नायक श्रीकृष्ण है तथा नायिका राधिका। इसमें प्रधान रस शृङ्गार है, किन्तु यत्र-तत्र वीर, अद्भुत आदि रसों का भी समावेश है। कृष्ण के मित्र 'कुसुमासव' की कल्पना कर उसके माध्यम से हास्य रस की भी सृष्टि की गयी है। वैदर्भी रीति की प्रधानता होने पर भी अन्य रीतियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं। प्रारम्भ में कृष्ण की वन्दना की गयी है तथा सरस्वती की स्तुति के उपरान्त कवि अपनी विनम्रता प्रदर्शित कर खलों की निन्दा करता है।

वन्दे कृष्णपदारविन्दयुगलं यस्मिन् कुरंगीदृशां ।
वक्षोजप्रणयीकृते विलसति स्निग्धोऽङ्गरागः स्वतः ॥
काश्मीरं तलशोणिमोपरितनः कस्तूरिका नीलिमा ।
श्रीखण्डं नखचन्द्रकातलहरी निर्व्याजमातन्वते ॥ १।१

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ।

आचार्य विजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता कवि तार्किक सिंह वेदान्ताचार्य हैं। इनके पिता का नाम वेंकटाचार्य था। ये कौशिक गोत्रोत्पन्न थे। यह चम्पूकाव्य खण्डित रूप मे ही प्राप्त है जिसमे छह स्तबक हैं। इसमे प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य वेदान्तदेशिक का जीवनवृत्त वर्णित है तथा अद्वैत वेदान्ती कृष्णमिश्र प्रभृति के साथ उनके शास्त्रार्थ का उल्लेख किया गया है। वेदान्तदेशिक चौदहवीं शताब्दी के मध्य भाग मे हुए थे, अतः इसका रचनाकाल उनके बाद का ही है। कवि ने प्रारम्भ मे वेदान्तचार्यों की वन्दना की है। इसमें दर्शन एवं काव्य का सम्यक् स्फुरण दिखाई पडता है। आचार्य विजय चम्पू की भाषाशैली बाणभट्ट एवं दण्डी मे प्रभावित है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग, मद्रास, १२३६५ में प्राप्त होता है। कवि वेदान्तदेशिक की कथा को प्राचीनोक्ति कहता है—

कल्पद्रुः कविवादिहंसविदुषः प्रज्ञासुधावारिधे-
र्जातः कश्चन कल्पितार्थ विततिश्चम्पूप्रबन्धात्मना ।
प्राचीनोक्तिवतंसदेशिककथामाध्वीं भजन् षट्क-
स्तस्यासौ स्तबकः करोतु सुमनः कर्णावतंसश्रियम् ॥

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक विवरण—डॉ छविनाथ त्रिपाठी ।

आनन्दरंग विजय चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता का नाम श्रीनिवास कवि है। उनके पिता का नाम गङ्गाधर तथा माता का नाम पार्वती था। ये श्रीवत्सगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इस चम्पू की रचना आठ स्तबकों में हुई है। इसमे कवि ने प्रसिद्ध फ्रेञ्च शासक डुप्ले के प्रमुख सेवक तथा पाण्डिचेरी-निवासी आनन्दरंग के जीवनवृत्त का वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य का महत्त्व असंदिग्ध है। विजयनगर तथा चन्द्रगिरि के राजवंशो का वर्णन इसकी बहुत बडी विशेषता है। इसका निर्माण-काल १८ वीं शताब्दी है। वरकविकुलमौलिस्फारमाणिक्य कान्तिद्युमणिकिरणपुञ्ज-प्रोल्लसत्पादपद्मः। निखिलनिगममूर्तिः स्फूर्तिरीशस्य साक्षाज्जयति जगति तातो यस्य गंगाधरार्यः ॥ इस ग्रन्थ का प्रकाशन मद्रास से हो चुका है। सम्पादक है डॉ० वी० राघवन् ।

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ।

आदि पुराण—चौबीस जैन पुराणों मे सर्वाधिक प्रसिद्ध पुराण आदि पुराण है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की कथाएँ वर्णित हैं। इस पुराण में ४७ पर्व हैं तथा

जम्बूद्वीप एवं उसके अन्तर्गत सभी पर्वतों का वर्णन किया गया है। इसके रचयिता जिनसेन हैं जो शंकराचार्य के परवर्त्ती थे। 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित २४ अवतारो की कथाओ मे आठवाँ अवतार ऋषभदेव जी का है। ये अवधूत योगी थे तथा इन्होंने परमहंस धर्म का प्रचार किया था। (श्रीमद्भागवत ५।५।२८) ये नग्न एवं पागल की तरह रहा करते थे। इन्होंने कर्णाटक मे जाकर अग्नि-प्रवेश कर प्राण त्यागा था। 'आदि पुराण' में बारह हजार श्लोक है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभदेवजी का जन्म सर्वार्थसिद्धियोग, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, धनराशि, चैत्रमास की कृष्णाष्टमी को हुआ था। इनके पिता इक्ष्वाकुवंशीय थे जिनका नाम नाभि था। इनकी माता का नाम महारानी मरुदेवी था। इनकी राजधानी विनीता नामक नगर में थी। इन्होंने सृष्टितत्त्व पर विचार करते हुए शंकराचार्य के अद्वैतसिद्धान्त का खण्डन किया है। इनके अनुसार सृष्टि अनादि निधन है। इससे इस पुस्तक के समय पर प्रकाश पडता है।

आनन्द रामायण—यह रामभक्ति के रसिकोपासकों का मान्य ग्रन्थ है। इसका अनुमानित रचनाकाल १५ वीं शताब्दी है। इसमें 'अध्यात्मरामायण' के कई उद्धरण प्राप्त होते है। इस रामायण में कुल ९ काण्ड एवं १२९५२ श्लोक है। प्रथम काण्ड 'सारकाण्ड' कहा जाता है जिसमें १३ सर्ग हैं तथा रामजन्म से लेकर सीताहरण तक की कथा वर्णित है। द्वितीय काण्ड 'यात्राकाण्ड' है जिसमे ९ सर्ग हैं। इसमें रामचन्द्र की तीर्थयात्रा का वर्णन है। तृतीयकाण्ड को 'यागकाण्ड' कहते हैं। इसमे ९ सर्ग हे और रामाश्वमेध का वर्णन किया गया है। चतुर्थ काण्ड 'विलासकाण्ड' के नाम से अभिहित है। इसमे ९ सर्ग है तथा सीता का नख-शिख-वर्णन, राम-सीता की जलक्रीडा, उनके नानाविध शृङ्गारो एवं अलंकारों का वर्णन एवं नाना प्रकार के विहारो का वर्णन है। पञ्चम काण्ड 'जन्मकाण्ड' है। इसमे ९ सर्ग है तथा सीता निष्कासन एवं लवकुश के जन्म का प्रसग है। षष्ठ काण्ड का नाम 'विवाहकाण्ड' है। इसमे चारो भाइयो के आठ पुत्रो का विवाह वर्णित है। इसमे भी ९ सर्ग है। सप्तम काण्ड को 'राज्यकाण्ड' कहते है। इसमे २४ सर्ग हैं तथा रामचन्द्र की अनेक विजययात्राएँ वर्णित है। इस काण्ड मे इस प्रकार की कथा है कि रामचन्द्र को देखकर स्त्रियाँ कामातुर हो जाती है तथा रामचन्द्र अगले अवतार मे उनकी लालसा-पूर्ति करने के लिए आश्वासन देते है। राम का ताम्बूल रस पीने के कारण एक दासी को कृष्णावतार मे राधा बन जाने का वरदान मिलता है। अष्टम काण्ड को 'मनोहरकाण्ड' कहा जाता है। इसमे १८ सर्ग हैं तथा रामोपासना-विधि, रामनाम-माहात्म्य, चैत्रमाहात्म्य एवं रामकवच आदि का वर्णन है। नवम काण्ड को 'पूर्णकाण्ड' कहा गया है जिसमे ९ सर्ग है। इसमे कुश के राज्याभिषेक तथा रामादि के वैकुण्ठारोहण की कथा है। [इसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हो चुका है]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र—'आपस्तम्ब कल्पसूत्र' के दो प्रश्न २८, २९—ही 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस पर हरदत्त ने 'उज्ज्वला' नामक टीका लिखी थी। इसकी भाषा बोधायन की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और इसमें अप्रचलित एवं विरल शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में अनेक अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं।

इसमें संहिता के साथ-ही-साथ ब्राह्मणों के भी उद्धरण मिलते हैं तथा प्राचीन दस धर्मसूत्रकारों का उल्लेख है—काण्व, कुणिक, कुत्सकौत्स, पुष्करसादि, वार्ष्यायणि, श्वेतकेतु, हारीत आदि। इसके अनेक निर्णय जैमिनि से साम्य रखते है तथा मीमांसाशास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग है। इसका समय वि० पू० ६०० वर्ष से ३०० वर्ष है। आपस्तम्ब के निवासस्थान के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ० बूलर के अनुसार ये दाक्षिणात्य थे किन्तु एक मन्त्र में यमुनातीरवर्त्ती साल्वदेशीय स्त्रियों के उल्लेख के कारण इनका निवासस्थान मध्यदेश माना जाता है—यौगन्धरिरेव नो राजेति साल्वरिवादिषुः। विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने! तव॥

वर्ण्यविषय—इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—चारों वर्ण तथा उनकी प्राथमिकता, आचार्य की महत्ता एवं परिभाषा, उपनयन, उपनयन के उचित समय का अतिक्रमण करने से प्रायश्चित्त का विधान, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, आचरण, उसका दण्ड, मेखला, परिधान, भोजन एवं भिक्षा के नियम, वर्णों के अनुसार गुरुओं के प्रणिपात की विधि, उचित तथा निषिद्ध भोजन एवं पेय का वर्णन, ब्रह्महत्या, आत्रेयीनारी हत्या, गुरु या श्रोत्रिय की हत्या के लिए प्रायश्चित्त, सुरापान तथा सोने की चोरी के लिए प्रायश्चित्त, शूद्रनारी के साथ संभोग करने पर प्रायश्चित्त गुरुशय्या अपवित्र करने पर प्रायश्चित्त तथा विवाहादि के नियम आदि।

[हरदत्त की टीका के साथ कुम्भकोणम् से प्रकाशित]

आधारग्रन्थ—हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र भाग १—डॉ० पी० वी० काणे

आपिशलि—पाणिनि के पूर्ववर्त्ती संस्कृत वैयाकरण। इनका समय (मीमांसक जी के अनुसार) ३००० वि० पू० है। इनके मत का उल्लेख 'अष्टाध्यायी', 'महाभाष्य', 'न्यास' एवं 'महाभाष्यप्रदीप' प्रभृत्ति ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वा सुप्यापिशलेः। अष्टाध्यायी ६।१।९२ एवं च कृत्वाऽऽपिशलेराचार्यस्य विधिरुपपन्नो भवतिधेनुरनञिकमुत्पादयति॥ महाभाष्य ४।२।४५ 'महाभाष्य' से पता चलता है कि कात्यायन एवं पतञ्जलि के समय में ही आपिशलि के व्याकरण का प्रचार एवं लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। प्राचीन वैयाकरणों में सर्वाधिक सूत्र इनके ही प्राप्त होते है, जिनसे विदित होता है कि इनका व्याकरण पाणिनीय व्याकरण की तरह ही प्रौढ़ एवं विस्तृत रहा होगा। इनके सूत्र अनेकानेक व्याकरण ग्रन्थों में बिखरे हुए है। इन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त 'धातुपाठ, 'गणपाठ', 'उणादिसूत्र' तथा 'शिक्षा' नामक चार अन्य ग्रन्थ भी लिखे है। इनके 'धातुपाठ' के उद्धरण 'महाभाष्य' 'काशिका,' 'न्यास' तथा 'पदमञ्जरी' में उपलब्ध होते है तथा 'गणपाठ' का उल्लेख भर्तृहरिकृत 'महाभाष्यदीपिका' मे किया गया है।

उणादिसूत्र—इसके वचन उपलब्ध नहीं होते। शिक्षा—यह ग्रन्थ पाणिनीय शिक्षा से मिलता-जुलता है। इसका संपादन पं० युधिष्ठिर मीमासक ने किया है।

कोश—भानुजी दीक्षित के उद्धरण से ज्ञात होता है कि आपिशलि ने एक कोशग्रन्थ की भी रचना की थी। अक्षरतन्त्र—इसमें सामगानविषयक स्तोभ वर्णित हैं। इनका प्रकाशन सत्यव्रतसामश्रयी द्वारा कलकत्ता से हो चुका है। इनके कतिपय उपलब्ध सूत्र इस प्रकार है—उभस्योभयोऽद्विवचनटापोः—तन्त्र प्रदीप २।३।८ विभक्त्यन्तं पदम्।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

आरण्यक—आरण्यक (वैदिक वाङ्मय के अंग) उन ग्रन्थों को कहते है, जिन्हें व्यक्ति यज्ञ-यागादि से निवृत्त होकर अरण्य मे रहते हुए पढ़ा करते थे। इन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों का [दे० ब्राह्मण] परिशिष्ट माना जाता है। इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न विषयों का प्रतिपादन किया गया है। सायणाचार्य का कथन है कि अरण्य में अध्ययन किये जाने के कारण ये ग्रन्थ आरण्यक कहे जाते थे। अरण्य का शान्त वातावरण इन ग्रन्थों के मनन और चिन्तन के लिए उपयुक्त था।

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते ॥ तै० आ० भा० श्लोक ६१

नगर या ग्राम में रहकर इन ग्रन्थों का अध्ययन तथा इनमे प्रतिपादित गूढ़ रहस्यों का ज्ञान संभव नहीं था और न नगर या ग्राम का वातावरण ही इनके अनुकूल था। अतः ऐसे ग्रन्थों के सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्त्वों को जानने के लिए वन का एकान्त वातावरण अधिक उपयोगी था, जहाँ जाकर लोग गुरुमुख से इनके दार्शनिक विचारों का अध्ययन करते थे। आरण्यक ग्रन्थों का प्रतिपाद्य यज्ञ न होकर यज्ञ-यागों मे निहित आध्यात्मिक तथ्यों का मीमांसन था। इनमें यज्ञ का अनुष्ठान न होकर उसके दार्शनिक पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों मे प्राणविद्या का भी महत्त्व दर्शाया गया है। यद्यपि इस विद्या का संकेत संहिताओं में भी है किन्तु इसका अपेक्षित विस्तार आरण्यकों में ही हुआ है। 'ऐतरेय आरण्यक' में इसका सम्यक् अनुशीलन किया गया है। यहाँ सभी इन्द्रियों से प्राण की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए तद्विषयक रोचक आख्यान दिये गए हैं।

'सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः। एवं सर्वाणिभूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।
ऐत० आर० २।१।६

इसमें बताया गया है कि जबतक इस शरीर में प्राण रहेगा तभी तक आयु भी रहेगी—

'यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायु.' कौषीतकि उपनिषद्—१२।

'ऐतरेय आरण्यक' मे प्राण को ही स्रष्टा तथा पिता कहा गया है। प्राण से ही अन्तरिक्ष एवं वायु की सृष्टि हुई है। प्राण पिता है और अन्तरिक्ष तथा वायु उसकी सन्तान हैं।

प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च। अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति। अन्तरिक्षमनुशृण्वन्ति। वायुरस्मै पुण्यं गन्धमावहति। एवं एनौ प्राणपितरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्च।

'ऐतरेय आरण्यक' में प्राण का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए सभी ऋचाओं, वेदों तथा घोषों को प्राणरूप मान लिया गया है। 'तैत्तिरीय आरण्यक' में काल का पारमार्थिक और व्यावहारिक महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि काल नदी की भाँति निरन्तर प्रवाहित होता चला जा रहा है। अखण्ड संवत्सर के रूप में यही काल दृष्टि-

गोचर होता है। काल का व्यावहारिक रूप अनेक है जो मुहूर्त, दिवारात्र, पक्ष, मास आदि के रूप में एकाकार हुआ करता है—

नदीव प्रभवात् काश्चिद् अक्षय्यात् स्यन्दते यथा।
ता नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते ॥ तैत्तिरीय आरण्यक १।२

आरण्यकों का आध्यात्मिक तत्त्व उपनिषदों के तत्त्वचिंतन का पूर्व रूप है, जिसका पूर्ण विकास उपनिषदों में दिखाई पड़ता है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् आरण्यक हैं जिनका विवरण दिया गया है। 'ऋग्वेद' के दो आरण्यक है—'ऐतरेय आरण्यक' एवं शाङ्खायन आरण्यक। 'अथर्ववेद' का कोई आरण्यक प्राप्त नहीं होता। 'सामवेद' के आरण्यक का नाम 'तलवकार' है।

आधारग्रन्थ - वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय।

आर्यदेव—बौद्ध-दर्शन के माध्यमिक मत के आचार्यों में आर्यदेव का नाम महत्त्वपूर्ण है। (दे० बौद्धदर्शन) इनका समय २०० से २२४ ई० के बीच है। चन्द्रकीर्ति नामक विद्वान् के अनुसार ये सिंहल द्वीप के नृपति के पुत्र थे। इन्होंने अपने अपार वैभव का त्याग कर नागार्जुन का शिष्यत्व ग्रहण किया था। शून्यवाद के आचार्यों में इनका स्थान है। बुस्तोन नामक विद्वान् के अनुसार इनकी रचनाओं की संख्या दस है।

१ चतुःशतक—इसमें १६ अध्याय एवं चार सौ कारिकाएँ है। इसका चीनी अनुवाद ह्वेनसांग ने किया था। इसका कुछ अंश संस्कृत में भी प्राप्त होता है। इसमें शून्यवाद का प्रतिपादन है।

२. चित्तविशुद्धिप्रकरण—विद्वानों ने इसे किसी नवीन आर्यदेव की रचना मानी है। इसमें ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड का खण्डन तथा तान्त्रिक बातों का समावेश किया गया है। वार एवं राशियों के नाम प्राप्त होने से इसे आर्यदेव की रचना होने में सन्देह प्रकट किया गया है।

३ हस्तलाघवप्रकरण —इसका नाम 'मुष्टिप्रकरण' भी है। इसका अनुवाद चीनी एवं तिब्बती भाषा में प्राप्त होता है और उन्हीं के आधार पर इसका संस्कृत में अनुवाद प्रकाशित किया गया है। यह ग्रन्थ कुल ६ कारिकाओं का है जिनमें ५ कारिकाएँ जगत् के मायिक रूप का विवरण प्रस्तुत करती है और अन्तिम कारिका में परमार्थ का विवेचन है। इस पर दिङ्नाग ने टीका लिखी है।

४. अन्य ग्रन्थों के नाम है—स्खलितप्रमथनयुक्ति हेतु सिद्धि, ज्ञानसारसमुच्चय, चर्यामेलायनप्रदीप, चतुःपीठ तन्त्रराज, चतुःपीठ साधन, ज्ञान डाकिनी साधन एवं एकद्रुमपञ्जिका। चतुःशतक इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आधारग्रन्थ—१ बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।
२—भारतीय दर्शन— ,, ,,

आर्यभट्ट प्रथम—ज्योतिषशास्त्र के महान् आचार्य। भारतीय ज्योतिष का क्रमबद्ध इतिहास आर्यभट्ट से ही प्रारम्भ होता है। इनके ग्रन्थ का नाम 'आर्यभटीय' है। आर्यभट्ट (प्रथम) का जन्म-काल ४७६ ई० है। इन्होंने 'तन्त्र' नामक ग्रन्थ की

भी रचना की है। इनके दोनों ही ग्रंथ आज उपलब्ध हैं। इन्होंने सूर्य तथा तारों को स्थिर मानते हुए पृथ्वी के घूमने से रात-दिन होने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इनके अनुसार पृथ्वी की परिधि ४९६७ योजन है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्यभटीय' की रचना पटना में हुई थी। इसमे श्लोकों की संख्या १२१ है और ग्रन्थ चार भागों मे विभक्त है—गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद एवं गोलपाद। 'आर्यभटीय' पर संस्कृत मे चार टीकाएँ प्राप्त होती है—भास्कर, सूर्यदेव यज्वा, परमेश्वर एवं नीलकण्ठ की। इनमे सूर्यदेव यज्वा की टीका सर्वोत्तम मानी जाती है जिसका नाम 'आर्यभट्ट-प्रकाश' है। इसका अंगरेजी अनुवाद डाक्टर कर्न ने १८७४ ई० मे लाइडेन (हालैण्ड) मे प्रकाशित की थी। 'आर्यभटीय' का हिन्दी अनुवाद श्री उदयनारायण सिंह ने संवत् १९६३ मे किया था। इस ग्रंथ मे आर्यभट्ट ने चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के वैज्ञानिक कारणो का विवेचन किया है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष–डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री २ भारतीय ज्योतिष का इतिहास–डॉ० गोरख प्रसाद ३ हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास–श्री विभूतिभूपणदत्त तथा अवधेश नारायण सिंह (हिन्दी अनुवाद, हिन्दी समिति)

आशाधर भट्ट—काव्यशास्त्र के आचार्य। संस्कृत अलंकारशास्त्र (काव्यशास्त्र) के इतिहास मे दो आशाधर नामधारी आचार्यों का विवरण प्राप्त होता है। प्रथम का पता डॉ० पीटरसन ने १८८३ ई० मे एवं द्वितीय का पता डॉ० बूलर ने १८७१ ई० मे लगाया था। नाम सादृश्य के कारण विद्वानो ने (डॉ० हरिचन्द शास्त्री) दोनो को एक ही लेखक मान लिया है, पर दोनो ही भिन्न है। प्राचीन आशाधर व्याघ्रेरवाल वंशीय थे और आगे चल कर जैन हो गए थे। इनका जन्मस्थान अजमेर और पिता का नाम सल्लक्षण था। इन्होंने अनेक जैन ग्रन्थो की रचना की है और रुद्रट के 'काव्यालंकार' की टीका भी लिखी है। इनका समय १३ वीं शताब्दी है। इन्होने 'त्रिषष्टिस्मृति-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ का रचनाकाल १२३६ ई० दिया है।

द्वितीय आशाधर भट्ट का समय १७ वी शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके पिता का नाम रामजी एवं गुरु का नाम धरणीधर था। इन्होंने 'अलंकारदीपिका' मे अपना परिचय दिया है—

शिवयोस्तनयं नत्वा गुरुं च धरणीधरम्। आशाधरेण कविना रामजीभट्टसूनुना॥

आशाधर ने कुवलयानन्द की टीका लिखी है, अतः ये उसके परवर्ती सिद्ध होते है। इनके अलंकारशास्त्रविषयक तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है—

कोविदानन्द, त्रिवेणिका एवं अलंकारदीपिका। कोविदानन्द अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण 'त्रिवेणिका' मे प्राप्त होता है। इसमे वृत्तियो का विस्तृत विवेचन किया गया था। त्रिवेणिका के प्रथम श्लोक मे ही इस तथ्य की पुष्टि होती है—

प्रणम्य पार्वतीपुत्रं कोविदानन्दकारिणा। आशाधरेण क्रियते पुनर्वृत्तिविवेचना॥

डाक्टर भण्डारकर ने कोविन्दानन्द के एक हस्तलेख की सूचना दी है जिसमे निम्नोक्त श्लोक है—

प्राचां वाचां विचारेण शब्द-व्यापारनिर्णयम् ।
करोमि कोविदानन्दं लक्ष्यलक्षणसंयुतम् ।।

इस पर ग्रन्थकार ने स्वयं 'कादम्बिनी' नामक टीका भी लिखी थी। यह शब्दवृत्ति का उत्पन्न प्रौढ़ ग्रन्थ है। [दे० इन्ट्रोडक्शन टु त्रिवेणिका—बटुकनाथ शर्मा पृष्ठ ११]

त्रिवेणिका—यह शब्दशक्तियों का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। इसमे अभिधा को गंगा, लक्षणा को यमुना एवं व्यंजना को सरस्वती माना गया है। यह ग्रन्थ तीन परिच्छेदो मे विभक्त है और प्रत्येक मे एक-एक शक्ति का विवेचन है। इसमें अर्थज्ञान के तीन विभाग किये गए है—चारु, चारुतर एवं चारुतम। अभिधा से उत्पन्न अर्थ चारु, लक्षणा से चारुतर एवं व्यंजनाजन्य अर्थ चारुतम होता है।

तृतीय ग्रन्थ 'अलकारदीपिका' 'कुवलयानन्द' के आधार पर निर्मित है। इसमें तीन प्रकरण है और प्रथम मे 'कुवलयानन्द' की कारिकाओ की सरल व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। द्वितीय प्रकरण मे 'कुवलयानन्द' के अन्त मे वर्णित रसवत् आदि अलकारों की तदनुरूप कारिकाएँ निर्मित की गयी है। तृतीय प्रकरण मे संसृष्टि एवं संकर अलंकार के पाँचो भेद वर्णित हैं और लेखक ने इन पर अपनी कारिकायें प्रस्तुत की हैं। अलकारो के सम्यक् बोध के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। इनके अतिरिक्त आशाधर ने 'प्रभापटल' एव 'अद्वैतविवेक' नामक दो दर्शन ग्रन्थों की भी रचना की है।

'त्रिवेणिका' का प्रकाशन 'सरस्वती-भगवन-टेक्ट्स' ग्रन्थमाला, काशी से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

आयुर्वेद शास्त्र - जिस विद्या के द्वारा आयु का ज्ञान प्राप्त होता है उसे आयुर्वेद कहते है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र का वाचक है। इस शास्त्र मे आयु के लिए उपयोगी एवं अनुपयोगी बातो का वर्णन होता है। 'शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सयोग का नाम आयु है। नित्यप्रति चलने से, कभी एक क्षण भर के लिए भी न रुकने से इसे आयु कहते है। आयु का ज्ञान जिस शिल्प या विद्या से प्राप्त किया जाता है, वह आयुर्वेद है। यह आयुर्वेद मनुष्यो की भाँति वृक्ष, पशु-पक्षी आदि के साथ सम्बन्धित है, इसलिए इनके विषय मे भी संहितायें बनायी गयी।' आयुर्वेद का बृहत् इतिहास पृ० १३।

भारतीय आयुर्वेद की प्राचीनता असंदिग्ध है। 'सुश्रुत संहिता' में कहा गया है कि परमात्मा ने सृष्टि के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना कर दी थी—अनुत्पाद्यैवप्रजा आयुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत्। सूत्र १। आयुर्वेद मेवाग्रेऽसृजत् तता विश्वानि भूतानि। 'काश्यप सहिता'। 'चरक संहिता' मे आयुर्वेद को शाश्वत कहा गया है—नह्यायुर्वेदस्य भूत्वोत्पत्तिरुपलभ्यते अन्यत्रावबोधोपदेशाभ्याम्। एतद्वै द्वयमधिकृत्योत्पत्तिमुपदिशन्त्येके। सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वाद भावस्वभावनित्यत्वाच्च।' चरक सू० अ० ३०।२७

काश्यप ने आयुर्वेद को पंचमवेद की सज्ञा दी है—ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदेभ्यः **पञ्चमोऽयमायुर्वेदः।**

आयुर्वेद शब्द का अर्थ इस प्रकार है—'आयु का पर्याय चेतना अनुबन्ध, जीविता-नुबन्ध, धारी है (चरक० सू० अ० ३०।२२)। यह आयु शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इन चार का संयोग है। आयु का सम्बन्ध केवल शरीर से नहीं है और इसका ज्ञान भी आयुर्वेद नहीं है। चारो का ज्ञान ही आयुर्वेद है। इसी दृष्टि से आत्मा और मन सम्बन्धी ज्ञान भी प्राचीन मत मे आयुर्वेद ही है। शरीर आत्मा का भोगायतन, पंचमहाभूतविकारात्मक है, इन्द्रियाँ भोग का साधन हैं, मन अन्तःकरण है, आत्मा मोक्ष या ज्ञान प्राप्त करने वाला; इन चारो का अदृष्ट-कर्मवश मे जो संयोग होता है, वही आयु है। इसके लिए हित-अहित, सुख-दुःख का ज्ञान तथा आयु का मान जहाँ कही हो, उसे आयुर्वेद कहते है।' आयुर्वेद का बृहत् इतिहास पृ० १४।

जीवनोपयोगी शास्त्र होने के कारण आयुर्वेद अत्यन्त प्राचीन काल से ही श्रद्धा-भाजन बना रहा है। वैदिक साहित्य मे भी इसके उल्लेख प्राप्त होते है। ऋग्वेद में आयुर्वेद के जन्मदाता दिवोदास, भरद्वाज एवं अश्विनीकुमार आदि के उल्लेख मिलते हैं—१।१२।१६।

वेदो मे वैद्य के पाँच लक्षण बताये गए है तथा ओषधियो से रोगनाश, जलचिकित्सा, सौरचिकित्सा, वायुचिकित्सा तथा मानस चिकित्सा के विवरण प्राप्त होते है। अजुर्वेद मे ओषधियो के लिए बहुत से मन्त्र है तथा अथर्ववेद मे इसका विशेष विस्तार है। कृमिविज्ञान का भी वर्णन वेदो मे प्राप्त होता है। अथर्ववेद में अनेक वनस्पतियो का भी उल्लेख है—पिप्पली, अपामार्ग, पृश्निपर्णी, रोहिणी तथा कुष्ठरोग, क्लीबत्वनाश, हृदयरोग, मूढगर्भचिकित्सा, कामलारोग, रक्तसंचार आदि का भी वर्णन है। इसमे अनेक रोगो के नाम प्राप्त होते है और रोगप्रतीकार का भी वर्णन मिलता है। वेदो की तरह ब्राह्मणों, उपनिषदो, रामायण, महाभारत एवं पुराणो मे भी आयुर्वेद के अनेकानेक तथ्य भरे पड़े हैं जो इसकी प्राचीनता एवं लोकप्रियता के द्योतक है। दे० आयुर्वेद का बृहत् इतिहास।

आयुर्वेद की परम्परा—भारतीय चिकित्साशास्त्र के आद्यप्रणेता ब्रह्मा माने गए हैं। इन्होने ही सर्वप्रथम आयुर्वेदिक ज्ञान का उपदेश दिया था—सुश्रुत सूत्र १।६। 'चरक संहिता' के अनुसार आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को दिया और दक्ष ने अश्विनौ को तथा अश्विनौ से इन्द्र ने इसका ज्ञान प्राप्त किया। इस परम्परा से भिन्न पुराणों की परम्परा है जिसमे अयुर्वेद का जन्मदाता प्रजापति को कहा गया है। प्रजापति ने चारो वेदो पर विचार कर पंचम वेद (आयुर्वेद) की रचना की और उसे भास्कर को दिया। भास्कर द्वारा इसे स्वतन्त्र संहिता का रूप दिया गया और उसने इसे अपने सोलह शिष्यो को पढ़ाया। इनमे धन्वन्तरि, दिवोदास, काशिराज, अश्विनौ, नकुल, सहदेव, अर्की, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ तथा अगस्त्य है। इन शिष्यो ने पृथक्-पृथक् तन्त्रो का निर्माण किया है। इनके द्वारा बनाये गए ग्रन्थो का विवरण इस प्रकार है—धन्वन्तरि—चिकित्सा-तत्त्वविज्ञान; दिवोदास—चिकित्सादर्शन, काशिराज—चिकित्साकौमुदी, अश्विनौ—चिकित्सासारतंत्र तथा भ्रमघ्न; नकुल—वैद्यकसर्वस्व, सहदेव—व्याधिसिन्धुविमर्दन; यम—ज्ञानार्णव;

च्यवन—जीवदान; जनक—वैद्यसन्देह-भंजन; बुध—सर्वसार; जाबाल—तन्त्रसार; जाजलि—वेदाङ्गसार; पैल—निदान; करथ—सर्वधर; अगस्त्य—द्वैधनिर्णय। ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड अ० १६।

आत्रेय पुनर्वसु आयुर्वेदशास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य माने जाते हैं। इनका समय ई० पू० ६ सौ वर्ष से भी पहले माना जाता है। इनके शिष्य का नाम अग्निवेश था जो चरक के गुरु थे। सम्प्रति आयुर्वेद का प्राचीनतम ग्रन्थ एकमात्र 'चरक' ही उपलब्ध होता है जिसे 'चरकसंहिता' कहते हैं। चरक सम्राट् कनिष्क के समकालीन थे। [दे० चरक]

आयुर्वेद के अन्य प्राचीन ग्रन्थों मे 'भेलसंहिता' एवं 'हारीतसंहिता' के नाम आते हैं। दोनों की बहुत सारी बातें 'चरकसंहिता' से मिलती-जुलती हैं। 'भेलसहिता' की रचना सूत्रस्थान, निदान, विमान, शारीर, चिकित्सा, कल्प एवं सिद्धस्थान के रूप में हुई है। दोनो ही ग्रन्थ सम्प्रति प्राप्त होते है। [दे० भेलसंहिता एवं हारीतसंहिता] 'सुश्रुतसंहिता' आयुर्वेद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका समय अभी तक अज्ञात है। इसमे एक सौ बीस अध्याय हैं तथा चिकित्सा शास्त्र के सभी प्रमुख अंगों का विवेचन है [दे० सुश्रुतसंहिता]। आयुर्वेदशास्त्र के अनेक ग्रन्थ अब विलुप्त हो गए हैं। उनके नाम या तो टीकाओ मे प्राप्त होते है या अन्य ग्रन्थो मे। उनमे प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

कायचिकित्सा सम्बन्धी तन्त्र—अग्निवेशसंहिता, भेलसंहिता, जतुकर्णसंहिता, पाराशरसंहिता, हारीतसंहिता, क्षारपाणिसंहिता, खरनादसंहिता विश्वामित्रसंहिता, अरिन्द्रमसंहिता, अत्रिसहिता, मार्कण्डेयसहिता, आश्विनसंहिता, भारद्वाजसंहिता, भानुपुत्र-संहिता।

शल्य चिकित्सा सम्बन्धी तन्त्र—औपधेनव तन्त्र, औरभ्र तन्त्र, बृहत्सुश्रुत तन्त्र, सुश्रुत तन्त्र, पौष्कलावत तन्त्र, वैतरण तन्त्र, बृद्धभोज तन्त्र, भोज तन्त्र, कृतवीर्य तन्त्र, करवीर्य तन्त्र, गोपुररक्षित तन्त्र, भालुकी तन्त्र, कपिलबल तन्त्र, सुभूतिगोतम तन्त्र।

शालाक्य सम्बन्धी तन्त्र—विदेह तन्त्र, निमि तन्त्र, कांकायन तन्त्र, गार्ग्य तन्त्र, गालव तन्त्र, सात्यकि तन्त्र, भद्रशौनक तन्त्र, कराल तन्त्र, चक्षुष्य तन्त्र, कृष्णात्रेय तन्त्र, कात्यायन तन्त्र।

भूतविद्या सम्बन्धी तन्त्र—अथर्वतन्त्र।

कौमारभृत्य सम्बन्धी तन्त्र—वृद्धकाश्यप संहिता, काश्यप संहिता, सनक संहिता, उशन संहिता, लाट्यायन संहिता, आलम्बायन संहिता, उशन संहिता, बृहस्पति संहिता।

रसायन तन्त्र—पातञ्जल तन्त्र, व्याडि तन्त्र, वशिष्ठ तन्त्र, माण्डव्य तन्त्र, नागार्जुन तन्त्र, अगस्त्य तन्त्र, भृगुतन्त्र, कक्षपुट तन्त्र, आरोग्यमञ्जरी।

वाजीकरण तन्त्र—कुचुमार तन्त्र।

गुप्तकाल में वाग्भट नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ ने 'अष्टांगसंग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा जिसके पद्यमय संक्षिप्त रूप को 'अष्टांगहृदय' कहते है। [दे० अष्टांगसंग्रह] इस पर अनेक टीकाएँ प्राप्त होती है। सातवी शताब्दी में माधवकर ने 'माधवनिदान' ग्रन्थ

का निर्माण किया जो अपने विषय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। १२ वीं शताब्दी में शार्ङ्गधर ने 'शार्ङ्गधरसंहिता' नामक ग्रन्थ की रचना की जो अपनी लोकप्रियता के कारण आज भी प्रचलित है। आयुर्वेद के अन्य लेखकों ने भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर आयुर्वेदशास्त्र की परम्परा को प्रशस्त किया है। उनके नाम हैं—मिल्हण (१३ वीं शती)—'चिकित्सामृत', तिसट (१४ वीं शताब्दी) 'चिकित्साकलिका', भावमिश्र (१६ वीं शताब्दी) 'भावप्रकाश', लोलम्बराज (१७ वीं शताब्दी) 'वैद्यजीवन' पृथ्वीमल्ल (१५ वीं शताब्दी) 'शिशुरक्षारत्न', देवेश्वर (सत्रहवीं शताब्दी) 'स्त्री-विलास', अज्ञात लेखक (१८ वीं शताब्दी) 'योगरत्नाकर'।

आयुर्वेद में रसायनशास्त्र का पृथक् रूप से विकास देखा जाता है और इस विषय पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। रसविद्या का प्राचीन ग्रन्थ है 'रस-रत्नाकर' या 'रसेन्द्रमगल' जिसके रचयिता नागार्जुन हैं। इसका निर्माणकाल सातवीं या आठवीं शताब्दी है। इस विषय के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं वाग्भटकृत 'रसरत्न-समुच्चय' तथा नित्यानन्द रचित 'रसरत्नाकर'। रसशास्त्र के अन्य ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

'रसेन्द्रचूड़ामणि' कर्त्ता सोमदेव
रसप्रकाश सुधाकर—श्री यशोधर
रसराजलक्ष्मी—विष्णुदेव, रसेन्द्रसारसंग्रह—
गोपालभट्ट, रसकल्प—गोविन्द, स्वच्छन्दभैरव
रससार—गोविन्दाचार्य, रसेन्द्रचिन्तामणि—
ढुण्ढीनाथ, रसरत्नाकर—नित्यानाथसिद्ध आदि।

आयुर्वेद में न केवल मनुष्यों की अपितु गो, अश्व, हाथी एवं वृक्षों की भी चिकित्सा का वर्णन मिलता है, और इन विषयों पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थों की रचना हुई है। अश्वायुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—गणकृत 'अश्वलक्षण', 'हयलीलावती' तथा 'अश्वायुर्वेद', जयदत्त एवं दीपकर रचित 'अश्ववैद्यक', वर्धमानकृत 'योगमंजरी', नकुलविरचित 'शालिहोत्र' भोजराज का 'शालिहोत्र' एवं 'अश्वशास्त्र' आदि। गजचिकित्सा के ऊपर पालकाप्य रचित 'गजचिकित्सा', 'गजायुर्वेद', 'गजदर्पण', 'गजपरीक्षा' तथा बृहस्पतिकृत 'गजलक्षण' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। बृहस्पति ने 'गो-वैद्यशास्त्र' नामक ग्रन्थ की भी रचना की है। राघवभट्ट ने 'वृक्षायुर्वेद' नामक पुस्तक में वृक्ष-चिकित्सा का वर्णन किया है।

आयुर्वेद में कोश ग्रन्थों की सशक्त परम्परा दिखाई पड़ती है जिन्हें निघटु कहा जाता है। इन ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—'धन्वन्तरीय निघंटु', 'पर्यायरत्नमाला' (७०० ई०), चक्रपाणिदत्त कृत 'शब्दचन्द्रिका' (१०४० ई०), सूरपाल का 'शब्दप्रदीप', हेमचन्द्र का 'निघटुशेष', मल्लिनाथकृत 'अभिधानरत्नमाला' या 'सड्रसनिघंटु', मदनपाल का 'मदनविनोद' (१३७४ ई०), नरहरि का 'राजनिघंटु' (१४०० ई०), शिवदत्त का 'शिवप्रकाश' (१६७७) आदि।

पण्डित हंसदेव रचित 'मृगपक्षिशास्त्र' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होता है जिसमें व्याघ्र, भालू, गरुड, हंस, बाज का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन है।

आयुर्वेद के आठ अंग माने जाते हैं—शल्यचिकित्सा, शालाक्य, काय, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन एवं वाजीकरण। शल्यतन्त्र में शस्त्र-वर्णन तथा शस्त्रकर्म इन दो वस्तुओं की प्रमुखता है। सुश्रुत में यन्त्रों की संख्या १०१ है और हाथ को ही प्रधान यन्त्र माना गया है। सौ यन्त्रों का विभाग इस प्रकार है—स्वस्तिक यन्त्र २४, संदंश यन्त्र २, तालयन्त्र २, नाडी यन्त्र २०, शलाका यन्त्र २८, उपयन्त्र २५। शस्त्रकर्म के आठ प्रकार है—छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, ऐषण, आहरण, स्रावण तथा सीवन।

शालाक्यतन्त्र में शलाका का व्यवहार किया जाता है। इसमे ग्रीवा के ऊपर वाले अंगो— आँख, नाक, कान, सिर आदि के रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया जाता है। कायचिकित्सा मे आपाद मस्तक होने वाले रोगों का वर्णन एवं उनकी चिकित्सा का विधान रहता है। रोगो के वर्णन में पाँच तथ्यों का विवेचन होता है—कारण, पूर्वरूप, रूप, उपशय एवं सम्प्राप्ति। भूतविद्या—इसका सम्बन्ध मानसिक रोगो से होता है जिसके अन्तर्गत उन्माद, अपस्मार, अमानुषोपसर्ग आदि रोग आते हैं।

कौमारभृत्य—इसमे बाल-रोगों का वर्णन होता है। योनि-व्यापत्तन्त्र भी इसी के भीतर आता है।

अगदतन्त्र—इसमे विष-चिकित्सा का वर्णन होता है।

रसायन—इसमे जरा और व्याधि के नष्ट करने का वर्णन होता है।

वाजीकरण—इसका सवंध पुरुष के अंग में पुंस्त्व की वृद्धि करने से है। शुक्रदोष, नपुसकता आदि का इसमे विस्तृत विवेचन रहता है।

आयुर्वेद मे इसके आठों अंग का सम्यक् विवेचन प्राप्त होता है और प्रत्येक पर प्रभूत मात्रा मे ग्रन्थों की रचना हुई है।

आधारग्रन्थ—१. आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार २. संस्कृत साहित्य मे आयुर्वेद—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ३ भैषज्यसंहिता—श्री अत्रिदेव विद्यालकार ४. रस और रसायन—श्री अत्रिदेव विद्यालकार ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—ए० बी० कीथ ६ संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री वाचस्पति गैरोला ७. प्राचीन भारत में रसायनशास्त्र का विकास—डॉ० सत्यप्रकाश ८ वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश।

आर्यशूर—'जातकमाला' या 'बोधिसत्त्वावदानमाला' नामक ग्रन्थ के रचयिता आर्यशूर है। इन्होने बौद्धजातकों को लोकप्रिय बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अश्वघोष की भाँति बौद्धधर्म के सिद्धान्तो को साहित्यिक रूप देने में आर्यशूर का भी योगदान है। 'जातकमाला' की ख्याति भारतवर्ष के बाहर भी बौद्धदेशों मे थी। इसका चीनी रूपान्तर (केवल १४ जातकों का) ६९० से ११२७ ई० के मध्य हुआ था। इत्सिंग के यात्रा-विवरण से ज्ञात हुआ है कि सातवीं शताब्दी में इसका बहुत प्रचार

हो चुका था। अजन्ता की दीवारों पर 'जातकमाला' के कई जातकों के दृश्य अंकित है—शान्तिवादी, मैत्रीबल तथा शिविजातक के। इन चित्रों का समय ५ वीं शताब्दी है।

'जातकमाला' मे ३४ जातको का वर्णन काव्य-शैली में किया गया है। इनमे कुछ की रचना तो पालिजातको के आधार पर तथा कुछ की अनुश्रुति के रूप में हुई है। इनकी दूसरी रचना का नाम है—'पारमितासमास।' इसमे कवि ने छह पारमिताओ दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा पारमिता—का वर्णन छह सर्गों मे किया है, जिसमे ३६४ श्लोक है और शैली 'जातकमाला' की ही भाँति सरल एवं बोधगम्य है। [जातकमाला का हिन्दी अनुवाद, केवल २० जातको का, सूर्य नारायण चौधरी ने किया है] आर्यशूर का समय तृतीय या चतुर्थ शताब्दी है। इनकी शैली काव्यमयी, परिष्कृत एवं संयत है। 'आर्यशूर की शैली काव्यशैली है, जो काव्य के उपकरणो पर उनके अधिकार को दिखाती हुई भी उनकी परिष्कृत रुचि के कारण अत्युक्ति मे रहित और संयत है। उनका गद्य और पद्य समान रूप से सावधानी के साथ लिखा गया और परिष्कृत है।' आधारग्रंथ—

संस्कृत साहित्य का इतिहास—ए० बी० कीथ पृ० ८४।

आर्या सप्तशती—यह ७०० आर्या छन्दो मे रचित मुक्तक काव्य है जिसके रचयिता गोवर्धनाचार्य है। वे बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि थे जिनका समय १११६ ई० है। कवि ने स्वयं अपने ग्रन्थ मे आश्रयदाता का उल्लेख किया है।

सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुदबन्धोश्च।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राकाप्रदोषश्च ॥ ३९

गोवर्धनाचार्य के पिता का नाम नीलाम्बर था जिसका निर्देश कवि ने भी अपने ग्रन्थ मे किया है—तं तातं नीलाम्बरं वन्दे। ३८। इन तथ्यो के अतिरिक्त इनके जीवन के सम्बन्ध मे और कुछ भी ज्ञात नहीं होता। गोवर्धनाचार्य ने प्राकृत भाषा के कवि हालकृत 'गाथा सत्तसई' के आधार पर ही 'आर्या सप्तशती' की रचना की थी। इसकी रचना अकारादि वर्णानुक्रम से हुई है जिसके अक्षर क्रम को ३५ भागो में विभक्त किया गया है। ग्रन्थारम्भ व्रज्या, अकार व्रज्या, आकार व्रज्या, इकार, उकार, ऊकार, ऋकार, एकार, ककार, खकार, गकार, घकार, चकार, छकार, जकार, झकार, ढकार, तकार, दकार, धकार, नकार, पकार, बकार, भकार, मकार, यकार, रकार, लकार, वकार, शकार, षकार, सकार, हकार एवं क्षकार व्रज्या।

'आर्या सप्तशती' शृङ्गारप्रधान काव्य है जिसमे संयोग एवं वियोग शृङ्गार की नाना अवस्थाओं का चित्रण है। कवि ने नागरिक स्त्रियों की शृङ्गारिक चेष्टाओं का जितना रंगीन चित्र उपस्थित किया है ग्रामीण स्त्रियों की स्वाभाविक भाव-भंगिमाओ की भी मार्मिक अभिव्यक्ति मे उतनी ही दक्षता प्रदर्शित की है। स्वयं कवि अपनी कविता की प्रशंसा करता है

मसृणपदरीतिगतयः सज्जन हृदयाभिसारिकाः सुरसाः।
मदनाद्वयोपनिषदो विशदा गोवर्धनस्यार्याः ॥ ५१ ॥

इसमें कहीं-कहीं अश्लील शृङ्गार एवं चौर्यरत का चित्रण पराकाष्ठा पर पहुँच गया है, जिसकी आलोचकों ने निन्दा की है। 'आर्यासप्तशती' का एक अपना वैशिष्ट्य है अन्योक्ति का शृङ्गारपरक प्रयोग। इनके पूर्व किसी भी रचना में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। प्राय. अन्योक्तियों का प्रयोग नीतिविषयक कथनों में ही किया जाता रहा है, पर गोवर्धनाचार्य ने शृङ्गारात्मक सन्दर्भों में भी इसका कुशलता के साथ प्रयोग किया है और इसमे भी कवि की कलाप्रियता एवं शब्द वैचित्र्य उसका साथ नहीं छोडते।

आधारग्रन्थ—१. आर्या सप्तशती (हिन्दी अनुवाद)—अनु० पं० रामाकान्त त्रिपाठी (चौखम्बा प्रकाशन) २. संस्कृत गीतिकाव्य का विकास—डॉ परमानन्द शास्त्री।

आर्योदय महाकाव्य—इस महाकाव्य के रचयिता पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय हैं। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के नरदई ग्राम मे ६ सितम्बर १८८१ ई० को हुआ था। इन्होंने प्रयाग से अँगरेजी और दर्शन मे एम० ए० किया था। 'आर्योदय महाकाव्य' भारतीय संस्कृति का काव्यात्मक इतिहास है। इसमें २१ सर्ग एवं ११६६ श्लोक हैं। इसके दो विभाग है— पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध। पूर्वार्ध का उद्देश्य है भारत को सांस्कृतिक चेतना प्रदान करना तथा उत्तरार्ध मे स्वामी दयानन्द का जीवनवृत्त है। इसका प्रारम्भ सृष्टि के वर्णन से होता है और स्वामीजी की योधपुर दुर्घटना तथा आर्यसंस्कृत्युदय में समाप्ति हो जाती है।

जीवनं मरणं तात प्राप्यते सर्वजन्तुभिः।
स्वार्थं त्यक्त्वा परार्थाय यो जीवति स जीवति ॥ १५।४५

उपाध्याय जी कई विषयो तथा भाषा के पण्डित है। इन्होने अँगरेजी तथा हिन्दी मे अनेक उत्कृष्टकोटि के ग्रन्थों की रचना की है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है—फिलॉसफी ऑफ दयानन्द, ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद 'मीमासासूत्र एवं शाबर-भाष्य' का हिन्दी अनुवाद आदि। उपाध्याय जी आर्यसमाजी है।

आर्षेय ब्राह्मण—यह 'सामवेद' का ब्राह्मण है। इसमें तीन प्रपाठक एवं ८२ खण्ड है तथा सामगायन के प्रथम प्रचारक ऋषियों का वर्णन है और यही इसकी महत्ता का कारण है। सामगायन के उद्भावक ऋषियों का वर्णन होने के कारण यह ब्राह्मण 'सामवेद' के लिए आर्षानुक्रमणी का कार्य करता है।

क—बर्नेल द्वारा रोमन अक्षरो मे मंगलोर से १८७६ ई० मे प्रकाशित।

ख—जीवानन्द विद्यासागर द्वारा नागराक्षरो मे सायणभाष्य सहित कलकत्ता से प्रकाशित।

आर्षेयोपनिषद्—यह नवीन प्राप्त उपनिषद् है, जिसकी एकमात्र पाण्डुलिपि आड्यार लाइब्रेरी मे है और इसका प्रकाशन उसी पाण्डुलिपि के आधार पर हुआ है। यह अल्पाकार उपनिषद् है। इसमें १० अनुच्छेद है तथा विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम एवं वसिष्ठ प्रभृति ऋषियो के विचार-विमर्श के रूप में ब्रह्मोद्य या ब्रह्मविद्या का वर्णन है। ऋषियो द्वारा विचार-विमर्श किये जाने के कारण इसका नामकरण आर्षेय या ऋषि-सम्बद्ध है।

आसुरि—सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल के साक्षात् शिष्य 'आसुरि' थे। 'आसुरि' को जिन विद्वानों ने ऐतिहासिक व्यक्ति माना है, वे हैं म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज एवं डॉ० गार्बे, ['सांख्य फिलॉसफी' नामक ग्रन्थ के प्रणेता] पर डॉ० ए० बी० कीथ के अनुसार ये ऐतिहासिक पुरुष नहीं है। [द्रष्टव्य—'साख्यसिस्टम' पृ० ४७-४८] हरिभद्रसूरि [समय ७२५ ई० के आसपास] नामक जैन विद्वान् ने अपने ग्रन्थ 'षड्दर्शन-समुच्चय' मे 'आसुरि' के नाम से एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमे इनकी ऐतिहासिकता सन्देहास्पद नहीं होती है। वह श्लोक इस प्रकार है—

'विविक्ते दृक्परिणतौ बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते।
प्रतिबिम्बोदयः स्वच्छो यथा चन्द्रमसोऽम्भसि ॥"

'महाभारत' में आसुरि को पञ्चशिख का गुरु बतलाया गया है।

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम्।
पञ्चस्रोतसि निष्णातः पञ्चरात्रविशारदः ॥
पंचज्ञः पंचकृत् पंचगुणः पंचशिखः स्मृतः। शान्तिपर्व अध्याय २१८

'भागवत' में भी कपिल द्वारा विलुप्त 'साख्यदर्शन' को अपने शिष्य 'आसुरि' को उक्त दर्शन का ज्ञान देने का वर्णन है।

पञ्चमे कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरये साङ्ख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १।३।११

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर आसुरि को काल्पनिक व्यक्ति मानना उपयुक्त नही है। इनकी कोई भी रचना प्राप्त नही होती।

आधारग्रन्थ—१ भारतीयदर्शन-आ० बलदेव उपाध्याय २. साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी-प्रभा-(हिन्दी अनुवाद) डॉ आद्याप्रसाद मिश्र।

इन्दुदूत—यह सस्कृत का सन्देशकाव्य है जिसके प्रणेता विनय-विजय-गणि हैं। कवि का समय अष्टादश शतक का पूर्वार्ध है। ये वैश्य कुलोत्पन्न श्रेष्ठितेजःपाल के पुत्र थे। इनके दीक्षागुरु का नाम विजयप्रभसूरि था। इनका एक अधूरा काव्य 'श्रीपालरास' भी प्राप्त होता है जिसे इनके मित्र यशोविजय जी ने पूर्ण किया। कवि ने सस्कृत, प्राकृत एवं गुजराती मे लगभग ३५ ग्रन्थों को रचना की है। सस्कृत ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—श्रीकल्पसूत्र सुबोधिका, लोक-प्रकाश, हैमलघुप्रक्रिया, शान्तसुधारस, जिन-सहस्रनाम स्तोत्र, हैमप्रकाश, नयकर्णिका, षट्त्रिंशत् जल्पसंग्रह, अर्हन्नमस्कारस्तोत्र, श्री आदि जिन स्तवन।

'इन्दुदूत' मे कवि ने अपने गुरु विजयप्रभ सूरीश्वर महाराज के पास चन्द्रमा से सन्देश भेजा है। सूरीश्वर जी सूर्यपुर (सूरत) मे चातुर्मास बिता रहे है और कवि जोधपुर में है। प्रारम्भ में चन्द्रमा का स्वागत एवं उसके वश की महिमा का वर्णन है। इस क्रम मे कवि ने जोधपुर से सूरत तक के मार्ग का उल्लेख किया है। इस काव्य में १३१ श्लोक है और सम्पूर्ण रचना मन्दाक्रान्ता वृत्त में की गयी है। यद्यपि इसकी रचना 'मेघदूत' के अनुकरण पर हुई है तथापि इसमें नैतिक एवं धार्मिक तत्त्वों

की प्रधानता होने के कारण सर्वथा नवीन विषय का प्रतिपादन किया गया है। गुरु की महिमा मे कवि ने अनेक पद्य लिखे है तथा स्थान-स्थान पर नदियों एवं नगरों का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित किया है। इसकी भाषा में प्रवाह है और सर्वत्र प्रासादिकता दिखाई पड़ती है। इसका प्रकाशन श्रीजैन साहित्यवर्धक सभा, शिवपुर (पश्चिम खानदेश) से हुआ है। सूरत का वर्णन देखिए—

नीतान्च्छायं क्वचिदविरलैर्नागवल्लीदलौघैः शुभ्रच्छायं क्वचन कुसुमैर्विस्तृतैर्विक्रियाय।
पिगं चंगैरतिपरिणतैः कुत्र चिच्चेक्षुदण्डैर्नानावर्णं पुरमिदमिति द्योतते सर्वदाऽपि ॥ ९६

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य–डॉ० रामकुमार आचार्य

इन्दुलेखा— ये संस्कृत की कवयित्री है। इनके सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नहीं है, केवल एक श्लोक वल्लभदेव की 'सुभाषितावलि' मे प्राप्त होता है—

एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं
केचित् पावकयोगिता निजगदुः क्षीणेऽह्निचण्डार्चिषः।
मिथ्याचैतदसाक्षिकं प्रियसखि प्रत्यक्षतीव्रातपं
मन्येऽहं पुनरध्वनीनरमणीचेतोऽधिशेते रविः॥

सूर्यास्त के सम्बन्ध मे यहा सुन्दर कल्पना है—

किसी का कहना है कि सूर्य सन्ध्याकाल मे समुद्र मे प्रवेश कर जाते हैं, पर किसी के अनुसार वे लोकान्तर मे चले जाते है, पर मुझे ये सारी बाते मिथ्या प्रतीत होती है। इन घटनाओ का कोई प्रमाण नही है। प्रवासी व्यक्तियो की नारियो का चित्त विरह-जन्य बाधा के कारण अधिक सन्तप्त रहता है। ज्ञात होता है कि सूर्य इसी कोमल चित्त मे रात्रि के समय शयन करने के लिए प्रवेश करता है जिससे उसमें अत्यधिक गर्मी उत्पन्न हो जाती है।

ईश्वरकृष्ण— सांख्यदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य ईश्वरकृष्ण है, जिन्होने 'सांख्य-कारिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। [दे० साख्यदर्शन] शंकराचार्य ने अपने 'शारीरक भाष्य' मे 'साख्यकारिका' के उद्धरण प्रस्तुत किये है, अत ईश्वरकृष्ण का शंकर से पूर्ववर्त्ती होना निश्चित है। विद्वानों ने इनका आविर्भाव काल चतुर्थ शतक माना है, किन्तु ईश्वरकृष्ण इससे भी अधिक प्राचीन हैं। जैनग्रन्थ 'अनुयोगद्वारसूत्र' मे 'कणगसत्तरी' नाम आया है जिसे विद्वानो ने 'सांख्यकारिका' के चीनी नाम 'सुवर्ण-सप्तति' से अभिन्न मान कर ईश्वरकृष्ण का समय प्रथम शताब्दी के आसपास निश्चित किया है। 'अनुयोगद्वारसूत्र' का समय १०० ई० है, अतः ईश्वरकृष्ण का इससे पूर्ववर्त्ती होना निश्चित है।

'सांख्यकारिका' के ऊपर अनेक टीकाएँ एवं व्याख्या-ग्रन्थो की रचना हुई है। आचार्य माठर रचित 'माठरवृत्ति' (समय प्रथम शतक तथा कनिष्क का समकालीन) 'सांख्यकारिका' की सर्वाधिक प्राचीन टीका है। आचार्य गौड़पाद ने इस पर 'गौड़पाद-भाष्य' की रचना की है जिनका समय सप्तम शताब्दी है। शंकर ने इस पर 'जयमंगला' नाम्नी टीका की रचना की थी, पर ये शंकर अद्वैतवादी शंकर से अभिन्न थे या अन्य, इस सम्बन्ध में विद्वानों मे मतैक्य नही है। म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज ने

'जयमंगला' की भूमिका में यह सिद्ध किया है कि यह रचना शंकराचार्य की न होकर शंकर नामक किसी बौद्ध विद्वान् की है। वाचस्पति मिश्र कृत 'सांख्यतत्त्वकौमुदी', नारायण तीर्थ रचित 'चन्द्रिका' (१७ वीं शताब्दी) एवं नरसिंह स्वामी की 'सांख्य-तरु-वसन्त' नामक टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। इनमें 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' [हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित, अनु० डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र] सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टीका है। 'सांख्यकारिका' मे ७१ कारिकाएँ है जिनमे सांख्यदर्शन के सभी तत्त्वों का निरूपण है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय २ सांख्यतत्त्वकौमुदी (हिन्दी टीका) डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र।

ईशावास्य या ईश उपनिषद्—यह 'शुक्ल यजुर्वेद-संहिता' (काण्व शाखा) का अन्तिम या ४० वाँ अध्याय हैं। इसमें कुल १८ पद्य हैं तथा प्रथम पद्य के आधार पर इसका नामकरण किया गया है।

ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद् धनम् ॥ १

इसमे जगत् का संचालन एक सर्वव्यापी अन्तर्यामी द्वारा होने का वर्णन है। द्वितीय मन्त्र मे कर्म-सिद्धान्त का वर्णन करते हुए निष्कामभाव से कर्म करने का विधान है तथा सर्वभूतो मे आत्म-दर्शन तथा विद्या और अविद्या के भेद का वर्णन है। तृतीय मन्त्र में अज्ञान के कारण मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले दुःख का वर्णन तथा चौथे से सातवें में ब्रह्मविद्या-विषयक मुख्य सिद्धान्तो का वर्णन है। नवे से ग्यारहवे श्लोक में विद्या और अविद्या के उपासना के तत्त्व का निरूपण तथा कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के पारस्परिक विरोध एवं समुच्चय का विवेचन है।

ज्ञान और विवेक से रहित कोरे कर्मकाण्ड की आराधना करनेवाले व्यक्ति घोर अन्धकार मे प्रवेश कर जाते है। अत. ज्ञान और कर्म के साथ चलने वाला व्यक्ति शाश्वत जीवन तथा परमपद प्राप्त करता है। बारह से चौदह श्लोक मे सम्भूति एव असम्भूति की उपासना के तत्त्व का निरूपण है। पन्द्रह से सोलह श्लोक मे भक्त के लिए अन्तकाल मे परमेश्वर की प्रार्थना पर बल दिया गया है और अन्तिम दो श्लोको मे शरीरत्याग के समय प्रार्थना तथा परमधाम जाते समय अग्नि की प्रार्थना का वर्णन है। इसमे एक परमतत्त्व की सर्वव्यापकता, ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद का निदर्शन, निष्काम कर्मवाद की ग्राह्यता, भोगवाद की क्षणभंगुरता, अन्तरात्मा के विरुद्ध कार्य न करने का आदेश तथा आत्मा के सर्वव्यापक रूप का ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश है।

उत्तर पुराण—यह जैनियो का पुराण है जिसकी रचना जिनसेन के शिष्य गुणभद्र द्वारा उनके परिनिर्वाण के बाद हुई थी। इसे आदिपुराण (जैनियो का अन्य पुराण) का उत्तरार्द्ध माना जाता है। [दे० आदिपुराण] कहते है कि 'आदिपुराण' के ४४ सर्ग लिखने के पश्चात् ही जिनसेन जी का निर्वाण हो गया था तदनन्तर उनके शिष्य गुणभद्र ने 'आदिपुराण' के उत्तर अंश को समाप्त किया। इस पुराण में २३ तीर्थंकरों का जीवनचरित वर्णित है जो दूसरे तीर्थंकर अजितसेन से लेकर २४ वें तीर्थंकर

महावीर तक समाप्त हो जाता है। यह जैनियों २४ पुराणों का ज्ञानकोष माना जाता है जिसमें सभी पुराणो का सार संकलित है। इसमें ३२ उत्तरवर्ती पुराणों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गयी है। 'आदिपुराण' एवं 'उत्तरपुराण' में प्रत्येक तीर्थंकर का जीवनचरित वर्णन करने के पूर्व चक्रवर्ती राजाओं की कथा का वर्णन है। इनके विचार से प्रत्येक तीर्थंकर पूर्वजन्म में राजा थे। इसमें कुल मिलाकर ६३ व्यक्तियों का चरित वर्णित है, जिनमे चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ शुक्लबल तथा नौ विष्णुद्विष आते हैं। इस ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका में यह लिखा गया है कि 'समस्त शास्त्रों का सार स्वरूप यह पुराण ग्रन्थ धर्मवित् श्रेष्ठ व्यक्तिगण द्वारा ८२० शक पिंगल संवत्सर ५ आश्विन शुक्लपक्ष, बृहस्पतिवार को पूजित हुआ।' संस्कृत साहित्य का इतिहास–गैरोला पृ० ३१४।

इसमें सर्वत्र जैनधर्म की शिक्षा का वर्णन है तथा श्रीकृष्ण को त्रिखण्डाधिपति तथा तीर्थंकर नेमिनाथ का शिष्य माना गया है।

आधारग्रन्थ—१. जैन साहित्य का इतिहास–श्रीनाथूराम 'प्रेमी' २. संस्कृत साहित्य का इतिहास–गैरोला ३. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास–२ खण्डों में—बेचरदास पण्डित तथा डॉ० हीरालाल जैन।

उत्तरचम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता भगवन्त कवि हैं। इनका समय १६८७ से १७११ के आसपास है। ये नरसिंह के शिष्य तथा एकोजि के मुख्य सचिव गंगाधरामात्य के पुत्र थे। कवि ने 'वाल्मीकि रामायण' के उत्तरकाण्ड को आधार बनाकर अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया है और मुख्यतः रामराज्याभिषेक का वर्णन किया है। इसकी रचनाशैली साधारण कोटि की है और ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण तंजोर कैटलाग, ६,४०२८ में प्राप्त होता है। कवि ने ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

एकोजिक्षितिपालमुख्यसचिवश्रेष्ठस्य गंगाधरा-
मात्यस्यात्मसमुद्भवेन भगवन्ताख्येन विख्यायते।
प्रोक्तं रामचरित्रमार्यनरसिंहस्य प्रसादादिदं
श्रीमत्त्र्यम्बकवर्यवंशतिलकस्यास्तां चिरं श्रेयसे॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ छविनाथ त्रिपाठी।

उत्तररामचरित—महाकवि भवभूति विरचित उनका सर्वोत्तम नाटक। इसमें कवि की नाट्यरचना का प्रौढ़ रूप प्राप्त होता है तथा इसकी गणना संस्कृत के महान् ग्रन्थो में होती है। इस नाटक मे कवि ने श्रीरामचन्द्र के जीवन के उत्तर भाग का वर्णन किया है। राज्याभिषेक के पश्चात् इसमें रामचन्द्र का अवशिष्ट जीवन-वृत्तान्त वर्णित है। इस नाटक की रचना सात अंकों मे हुई है।

प्रथम अंक में नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार द्वारा नाटककार का परिचय दिया गया है। वन से लौट कर आने पर राम का राज्याभिषेक होता है। प्रस्तावना से विदित होता है कि राज्याभिषेक में सम्मिलित होने के लिए समागत राजे लौट रहे

हैं। राजा जनक भी मिथिला जा रहे है और उनके बिछोह मे सीता उद्विग्न हैं। राम उन्हें प्रसन्न करने एवं नाना प्रकार से उनका मनोबिनोद करने का प्रयत्न करते है। यह भी ज्ञात होता है कि महर्षि वसिष्ठ के साथ उनकी माताएँ अरुन्धती को लेकर ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए जा रही हैं। तदनन्तर लक्ष्मण का प्रवेश होता है और वे खिन्नमना गर्भिणी सीता को प्रसन्न करने के लिए रामचन्द्र के विगत जीवन की घटना को चित्रपट में दिखाते है। चित्रपट मे गंगा एवं वनस्थली का दृश्य देखकर सीता राम से उन स्थलो को देखने की इच्छा प्रकट करती हैं। राम सीता की इच्छा-पूर्त्ति का भार लक्ष्मण के ऊपर देते है और सीता विश्राम करने लगती हैं। इसी बीच दुर्मुख नामक गुप्तचर के द्वारा सीताविषयक लोकापवाद की सूचना राम को प्राप्त होती है और वे जनभावना का आदर करते हुए लक्ष्मण को सीतानिर्वासन का आदेश देते है। पहले तो यह समाचार पाकर राम बेहोश हो जाते है पर उनके स्वस्थ होने पर सीता का निर्वासन हो जाता है। लक्ष्मण उन्हे रथ पर बैठाकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

द्वितीय अंक मे बारह वर्ष के पश्चात् की घटनाओं का प्रदर्शन किया गया है। विष्कम्भक मे इस बात की सूचना प्राप्त होती है कि सीता को लव-कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए है और वे ऋषि वाल्मीकि के पास विद्याध्ययन कर रहे हैं।

इसी अंक में यह भी सूचना प्राप्त होती है कि शम्बूक नामक शूद्रमुनि का वध करने के लिए राम इसी वन में आए है और उन्होंने उसका वध किया है। कवि ने इस अंक मे शम्बूक के मुख से जनस्थान (दण्डकारण्य) का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है। प्राकृतिक दृश्यो के मोहक वर्णन की दृष्टि से यह अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, पर इसका नाटकीय व्यापार अवरुद्ध हो गया है।

तृतीय अंक मे तमसा एवं मुरला नामक दो नदियो के माध्यम से सीता के जीवन का विवरण प्राप्त होता है। जब लक्ष्मण सीता को अरक्षित छोड़कर चले गए तो वे अपमानवश गंगा में कूद पड़ी और वहीं उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पुनः उन्हे वाल्मीकि ऋषि ने अपने आश्रम में स्थान दिया। उन नदियो के वार्त्तालाप से यह भी ज्ञात होता है कि लव-कुश की बारहवीं वर्षगाँठ के अवसर पर गंगा ने सीता को सूर्य की अर्चना करने को कहा है। यह वार्त्तालाप विष्कम्भक मे होता है। विष्कम्भक के अनन्तर पुष्पक विमान से उतर कर रामचन्द्र जनस्थान मे प्रवेश करते दिखाई पड़ते है और वनदेवी वासन्ती द्वारा उनका स्वागत किया जाता है। वहीं पर छिपी हुई सीता रामचन्द्र के विरहजन्य कृशशरीर को देखती हैं और मूच्छित हो जाती हैं। सीता के साथ बिताये गए स्थानों को देखकर राम का दुःख उमड़ पड़ता है और वे सीता की स्मृति में व्यथित होकर तड़पने लगते हैं। रामचन्द्र के रुदन से दण्डकारण्य के पत्थर भी पिघलने लगते है। राम मूर्च्छित हो जाते है और उनकी यह दशा देख कर सीता भी मूर्च्छित हो जाती है। वे सीता के अदृश्य स्पर्श से पुनः संज्ञायुक्त होते हैं। वासन्ती तथा राम मे वार्त्तालाप होता है और वे अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ अंक में राजा जनक एवं कौशल्या का विषादमय चित्र एवं लव-कुश की वीरता का चित्रण है।

चतुर्थ अंक में विष्कम्भक से विदित होता है—कि ऋषि शृङ्ग का यज्ञ समाप्त होने पर सीता-निर्वासन की सूचना प्राप्त कर कौशल्या सीता-विहीन अयोध्या में न जाकर वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में चली जाती हैं। राजा जनक को भी निर्वासन का दुःखद समाचार प्राप्त होता है और वे चन्द्रदीप तपोवन में तपस्या करने के पश्चात् वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पधारते हैं। इसी कारण (इन व्यक्तियों के आगमन से) वाल्मीकि ऋषि के छात्रों का आज अनध्याय हो जाता है। इसी बीच लव का प्रवेश होता है और वह अपने को वाल्मीकि ऋषि का शिष्य एवं कुश का भ्राता बताता है। जनक और कौशल्या उसके रूप में राम एवं सीता के सौन्दर्य की छाप देखते हैं। तदनन्तर लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु यज्ञीय अश्व के साथ प्रवेश करते हैं और उसे लव वीरों की चुनौती जानकर उसका अपहरण कर देता है।

पंचम अंक में चन्द्रकेतु तथा लव में दर्प-पूर्ण विवाद होता है। लव चन्द्रकेतु की सेना को परास्त कर देता है तथा लव एवं चन्द्रकेतु का युद्ध होता है।

षष्ठ अंक के निष्कम्भक में विद्याधर एवं विद्याधरी के वार्त्तालाप में चन्द्रकेतु तथा लव के भयंकर युद्ध का वर्णन हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि शम्बूक का वध कर रामचन्द्र इसी ओर आ रहे हैं। लव को देखने पर सुमन्त्र को उनके सीता का पुत्र होने का सन्देह होता है। राम के आगमन से दोनों योद्धाओं का युद्ध बन्द हो जाता है। राम लव और कुश का परिचय प्राप्त करते हैं और उनके मन में भी, दोनों बालकों में सीता का सादृश्य प्राप्त कर, सीता-पुत्र होने का सन्देह होता है। इसी बीच अरुन्धती, वशिष्ठ, वाल्मीकि, जनक एवं कौशल्या राम के पास आते हैं।

सप्तम अंक के गर्भांक में एक नाटक का प्रदर्शन किया गया है जिसमें छह अंकों की सारी घटनायें प्रदर्शित हुई हैं। सीता के गंगा में डूबने की घटना पर राम मूर्च्छित हो जाते हैं पर लक्ष्मण उन्हें नाटक की बात कहकर आश्वस्त करते हैं। लक्ष्मण वाल्मीकि से राम की रक्षा की प्रार्थना करते हैं और वाल्मीकि मुनि के आदेश से वाद्यादि बन्द कर दिये जाते हैं। अरुन्धती सीता को लेकर प्रकट होती है और सीता की परिचर्या द्वारा राम स्वस्थ होते हैं। वाल्मीकि मुनि आकर राम को सीता, लव एवं कुश को समर्पित करते हैं और दोनों बालक अपने माता-पिता को पाकर धन्य हो जाते हैं। अरुन्धती सीता के दिव्य एवं पावन चरित्र की प्रशंसा करती हैं और नागरिकों की सम्मति जानना चाहती हैं। राम गुरुजनों की आज्ञा प्राप्त कर सीता को अंगीकार करते हैं।

इस नाटक के कथानक का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है, पर कवि ने नाट्य-रचना-कौशल प्रदर्शित करने के निमित्त मूल कथा में अनेक परिवर्त्तन किये हैं। रामायण में यह कथा दुःखान्त है और सीता अपना अपमान समझ कर पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं, पर यहाँ कवि ने राम-सीता का पुनर्मिलन दिखा कर नाटक को सुखान्त बना दिया है। प्रथम अंक में चित्रशाला की योजना कवि की मौलिक कल्पना है जिसके द्वारा

उसकी सहृदयता, भावुकता तथा कलात्मक नैपुण्य का परिचय प्राप्त होता है। इस दृश्य के द्वारा सीता के विरह को तीव्र बनाने के लिए सुन्दर पीठिका प्रस्तुत की गयी है तथा इसमें भावी घटनाओं के बीजांकुरों का आभास भी दिखाया गया है। चित्र-दर्शन के पश्चात् परिश्रान्ता सीता के शयन करने पर राम के इस कथन में भावी वियोग की सूचना है—'किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।' १।३८

द्वितीय अंक में शम्बूक की घटना के द्वारा दण्डकारण्य का मनोरम चित्र उपस्थित किया है। तृतीय अंक में बाह्य घटनाओं एवं व्यापारों का अभाव है। छाया सीता की उपस्थिति इस नाटक की महत्त्वपूर्ण कल्पना है। राम के विरह का वर्णन कर कवि ने अपने हृदय की विगलित करुण-धारा को प्रवाहित किया है। राम की करुण दशा को देखकर सीता का अनुताप मिट जाता है और राम के प्रति उनका प्रेम और भी दृढ हो जाता है। सप्तम अंक के गर्भांक के अन्तर्गत एक अन्य नाटक की योजना कवि की सर्वथा मौलिक देन है। इसके द्वारा रामायण की दुःखान्त कथा को सुखान्त बनाया गया है तथा लव-कुश को उनकी वास्तविक स्थिति का परिज्ञान कराया गया है। इस नाटक की योजना का दूसरा उद्देश्य है नाटकीय वातावरण के माध्यम से जनता के समक्ष सीता के चरित्र को पवित्र करना। 'इस प्रकार कवि आरम्भ से ही कथानक को चामत्कारिक किन्तु स्वाभाविक मोड देता हुआ, उसकी गति में काव्य-जनित शैथिल्य और नाट्यजनित क्षिप्तता लाता हुआ आनन्द के वातावरण में समाप्त करके सुखान्त बना देता है तथा नाटक की शास्त्रीय मर्यादा की रक्षा करता है।'

संस्कृत नाटक-समीक्षा, पृ० २२६

चरित्र-चित्रण—'उत्तररामचरित' नाटक में पात्रों के शील-निरूपण में अत्यन्त कौशल प्रदर्शित हुआ है। राम—इस नाटक के नायक श्रीरामचन्द्र हैं। वे सूर्यवंश के रत्न तथा धीरोदात्त नायक के सभी गुणों से विभूषित हैं। सद्यः राज्याभिषिक्त राजा होते हुए भी उन्हें प्रजापालन एवं लोकानुरंजन का अत्यधिक ध्यान है। वे राजा के कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण सचेष्ट हैं। अष्टावक्र द्वारा वसिष्ठ का सन्देश प्राप्त कर वे कहते हैं—

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥' १।११

लोकानुरंजन के लिए वे प्रेम, दया, सुख और यहाँ तक कि जानकी को भी त्याग सकते हैं।

सीताविषयक लोकापवाद के श्रवणमात्र से ही उन्होंने उनका निर्वासन कर दिया। यह कार्य उनके दृढ़ निश्चय एवं लोकानुरंजन का परिचायक है। प्रकृति-रंजन को वे राजा का प्रधान कर्त्तव्य मानते हैं—राजा प्रकृतिरञ्जनात्। पत्नी के प्रति स्वाभाविक स्नेह होने तथा उनके गर्भवती होने पर भी वे लोकानुरंजन के लिए सीता का परित्याग कर देते हैं। राम एक आदर्श पति के रूप में प्रदर्शित किये गए हैं। उनके जीवन का लक्ष्य एकपत्नीव्रत है। सीता के प्रति उनकी धारणा स्थिर एवं उदात्त है।

सीता के प्रति उनके मन की उदात्त भावना का पता इस श्लोक से लगता है—

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥ १।४३

'तुमसे संसार पवित्र है, पर तुम्हारे सम्बन्ध में लोगों की उक्तियाँ अपवित्र है। तुमसे लोक सनाथ है और तुम अनाथ होकर विपत्ति उठाओगी।'

सीता का परित्याग करने से राम अपने को क्रूरकर्मा समझने लगते हैं। अपने अंक में सिर रखकर सोई हुई सीता के सिर को हटाते हुए राम कह रहे हैं—

अपूर्वकर्मचाण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥ १।४६

तथा—

विस्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रामुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम् ।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥ १।४९

सीता के त्याग से राम को अत्यधिक दुःख एवं महती वेदना हुई है। उन्हें इसके लिए इतनी ग्लानि हुई जिसका वर्णन असंभव है। ऐसा लगता है कि उनका जीवन दुःखानुभव के लिए ही बना है और प्राण वज्रकील की भाँति हैं जो मर्म पर प्रहार तो करते हैं पर निकलते नहीं।

दुःखसंवेदनायैव रामेचैतन्यमाहितम् । मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥ १।४७

कर्त्तव्य के आवेश मे सीता का निष्कासन कर राम अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए अपने को 'अपूर्वकर्मचाण्डाल' समझते है। सीता के प्रति उनके मन मे अनन्य स्नेह है। वे उनकी गृह-लक्ष्मी तथा आँखो मे अमृतांजन है, उनका स्पर्श चन्दन की भाँति शीतल एवं उनकी बाहे मुक्ता की माला है। उन्होने कर्त्तव्य की वेदी पर अपने प्रेम की बलि देकर भीषण वज्राघात सहा है।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोरसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥१।३८

सीता-निष्कासन की उन्होने जिन शब्दो मे आज्ञा दी है उनके द्वारा उनके हृदय की व्यथा तथा राज्याधिकार के प्रति क्षोभ एवं आत्मग्लानि के भाव की मिश्रित अभिव्यक्ति होती है—'एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति'। दण्डकारण्य मे पूर्वानुभूत स्थलों एवं दृश्यो को देख कर वे सीता के विरहजन्य क्लेश से मूर्च्छित हो जाते है—

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकल: कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्-
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥ ३।३१

'शोक की व्याकुलता से हृदय विदीर्ण होता है किन्तु दो भागों में विभक्त नहीं होता, शोक से विह्वल शरीर मोह धारण करता है, पर चेतनता नहीं छोडता; अन्तर्दाह शरीर को प्रज्वलित तो करता है, किन्तु भस्म नहीं करता; मर्म को विद्ध करनेवाला भाग्य प्रहार तो करता है, लेकिन जीवन को नष्ट नहीं करता है।'

सीता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण ही रामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित करते है। सीता के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के प्रति वे आकर्षित नहीं होते। परिश्रांता सीता से सोने का अनुरोध करते हुए राम का वचन इस प्रकार है—

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यथा रामबाहुरुपधानमेष ते॥ १।३७

'विवाह के समय से लेकर शैशव मे घर में उसके अनन्तर फिर यौवन में बन में सोने का कारण, अन्य स्त्री से असेवित यह राम की भुजा तुम्हारा तकिया है।'

सीता के त्याग की वेदना राम के लिए असह्य है। शम्बूकवध के समय भी उन्हें अपनी कठोरता का ध्यान बना रहता है और वे इस कठोरता के कारण उत्पन्न शोक की व्यंजना करते दिखाई पडते है—

रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते।

कर्तव्य-पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा रखने वाले राम के हृदय मे कोमलता एवं दयालुता भी विद्यमान है। वे कोमल, नम्र एवं मृदु भी हैं। चित्र-दर्शन के प्रसङ्ग में परशुराम के दृश्य को देखकर जब लक्ष्मण उनकी प्रशंसा करना चाहते हैं तो वे उन्हें ऐसा कहने से रोक देते है। अपना उत्कर्ष एवं परशुराम का अपकर्ष सुनना उन्हे अच्छा नहीं लगता। यह उनकी महत्ता का द्योतक है। कैकेयी के कोप तथा वर-याचना के दृश्य को वे इसलिए छोड़ देते है कि इससे माता के प्रति दुर्भावना का उदय होगा। हनुमान् जी का चित्र देखकर वे कृतज्ञता से भरकर उनके उपकारो को स्वीकार करते हुए उनकी प्रशंसा करते है—

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः। यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च॥१।३२

अपने परिजनो के प्रति यह उदारभाव राम के महनीय चरित्र का परिचायक है। राम मे विनय भावना का आधिक्य है और वे आत्मप्रशंसा के भाव से रहित है।

राम गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति हैं। सीता के विरह से यद्यपि उनका हृदय दग्ध हो रहा है पर वे अपनी इस पीड़ा को कभी प्रकट नहीं करते। उनके गम्भीर स्वभाव के कारण ही यह व्यथा प्रकाशित नही होती। मिट्टी से लीपा गया पात्र जिस प्रकार अवाँ मे पकता है उसी प्रकार इनका हृदय भी दग्ध हो रहा है—

अनिर्भिन्नो गम्भीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रस॥ ३।१

इनका दुःख प्राणघाती है फिर भी वे प्रजा के कल्याण के लिए ही जीवित हैं—

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय स·। लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति॥ ७।७

उनके हृदय मे वात्सल्य प्रेम की धारा अविरल रूप से प्रभावित होती है। वे लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु को आत्मज की भाँति प्रेम करते दिखाई पडते है। राम के रूप का प्रभाव भी अद्भुत है। लव उनको देखते ही अपना सारा क्रोध भूल जाता है।

इस प्रकार राम एक आदर्श व्यक्ति के रूप मे चित्रित किये गये है। उनके व्यक्तित्व में आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श स्वामी आदि का मिश्रण है। वे क्षमा, दया, औदार्य, गम्भीरता, स्नेह, विनयशीलता आदि के साक्षात् विग्रह हैं।

कवि ने यथासम्भव राम के चरित्र को आदर्श मानव के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है पर वह उनके पूर्वगृहीत दैवी रूप से अप्रभावित नहीं रह सका। शम्बूक द्वारा वे भगवान् के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

सीता—सीता 'उत्तररामचरित' की नायिका एवं राम की सहधर्मिणी हैं। प्रारम्भ में ऋषि अष्टावक्र इनके महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए इन्हें पृथ्वी-तनया प्रजापतितुल्य राजा जनक की दुहिता एवं श्रीराम की पत्नी के रूप मे सम्बोधित करते हैं।

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।

तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥ १।९

सीता जन्म से ही गङ्गा की भाँति पावन हैं तथा पावनता के निकष पर पूर्णतया खरी उतरती हैं। वियोग की अग्नि में तप्त होकर उनकी पावनता भव्य एवं प्रोज्ज्वल हो उठती है। राम स्वयं उनकी पवित्रता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि 'जन्म से ही पवित्र के लिए अन्य पावनों से क्या? तीर्थ का जल और अग्नि दूसरी वस्तुओं से पवित्र नहीं किये जाते।'

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥ २।१३

सीता, सती, साध्वी आदर्श पत्नी हैं एवं राम के प्रति उनके मन मे असीम अनुराग है। राजा जनक भी उनके चरित्र की उच्चता का बखान करते हुए अघाते नही एवं पृथ्वी को कठोर बताते हैं।

त्वं वह्निर्मुनयो वशिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु-

र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।

विद्यां वागिव यामसूत भवता शुद्धिगतायाः पुन-

स्तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणे मृष्यथाः? ४।५

'हे कठोरहृदया पृथ्वी जिसकी महिमा तुम, अग्नि, ऋषिगण, वशिष्ठजाया, अरुन्धती, गङ्गा, रघुवंश के कुलगुरु वशिष्ठ या स्वयं सूर्यदेव जानते है और जिस प्रकार विद्या को सरस्वती उत्पन्न करती है, उसी प्रकार जिसको तुमने उत्पन्न किया है और फिर जो अग्नि से शुद्ध हो चुकी है, उस अपनी पुत्री के प्रति इस प्रकार की हिंसा को तुमने कैसे सहन किया?'

सीता की पवित्रता को गङ्गा एवं पृथ्वी ने भी स्वीकार किया है। वे सीता के सम्पर्क से भी अपने को पावन मानती है—आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते। निर्वासन की स्थिति में भी राम के प्रति सीता का अनन्य प्रेम विद्यमान रहता है। यद्यपि वे राम को 'आर्यपुत्र' के स्थान पर 'राजा' शब्द से ही संबोधित कर अपने हृदय का क्षोभ व्यक्त करती है तथापि दण्डकारण्य मे उनके मूर्च्छित होने पर अपने शीतल उपचार से उन्हे स्वस्थ कर देती हैं। राम को क्षीणकाय देखकर उनका मूर्च्छित हो जाना राम के प्रति अखण्ड स्नेह का परिचायक है। राम की विरहावस्था को देखकर तथा अपने वियोग मे आँसू बहाते हुए पाकर उनका सारा क्षोभ तिरोहित हो जाता है। अश्वमेध मे अपनी स्वर्ण-प्रतिमा के स्थापन की बात सुनकर उनकी सारी

वेदना नष्ट हो जाती है और वे सन्तोषपूर्वक कहती हैं—अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैष—मैं भी उनके हृदय की बात जानती हूँ और वे भी मेरे मन की बात जानते हैं। 'उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण'। आर्यपुत्र ने मेरे निर्वासनरूपी शल्य को उखाड दिया। राम के वियोग में उनके शरीर की जो अवस्था हो जाती है उससे उनके प्रेम की प्रतीति होती है—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकवरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्त्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥ ३।४

'पीत एवं कृश कपोलो से सुन्दर चञ्चल केश-समूह से युक्त मुख को धारण करती हुई करुणा की मूर्ति अथवा शरीरधारिणी विरह-वेदना ही जानकी के रूप में आ रही है।' सीता-त्याग के कारण वासन्ती जब राम को उपालम्भ देती है तो सीता उसे अच्छा नही मानती। उनके अनुसार वह प्रदीप्त आर्यपुत्र को और भी अधिक प्रदीप्त कर रही है—'त्वयमेव सखि वासन्ति, दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।'

सीता विशालहृदया नारी हैं तथा उदार भी। पशु-पक्षी आदि के लिए भी उनके हृदय मे स्नेह भरा हुआ है। राम के वन-गमन के समय पालित कदम्ब वृक्ष, गजशावक एवं मयूरो को देखकर उनके हृदय में वात्सल्य की धारा उमड पडती है। पशु पक्षियो एवं प्रकृति के प्रति भी वे अनुराग प्रदर्शित करती हैं। पूर्वपालित वन वृक्षो को देखकर उन्हे अपने पुत्र लव-कुश की भी याद हरी हो जाती है और फलस्वरूप उनके पयोधरो से दूध चूने लगता है।

सीता मे गम्भीरता के साथ विनोदप्रियता भी है। प्रथम अङ्क मे चित्र-दर्शन के समय जब लक्ष्मण माण्डवी एव श्रुतिकीर्त्ति का परिचय देकर उर्मिला को छोड देते है तो सीता उर्मिला की ओर संकेत करती हुई मधुर परिहास करती है—'वत्स इयमप्यरा का ?' इस प्रकार 'उत्तररामचरित' मे सीता आदर्शपत्नी, विरह की प्रतिमा, सहनशीलता की मूर्त्ति एवं निश्छल, दृढ तथा पवित्र प्रेम से पूरित चित्रित की गई है।

'उत्तररामचरित' मे दो दर्जन के लगभग पात्रो का चित्रण किया गया है, किन्तु उनमे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व सीता एवं राम का ही है। अन्य चरित्रो मे लव, चन्द्रकेतु, जनक, कौसल्या, वासन्ती एवं महर्षि वाल्मीकि भी कथावस्तु के विकास मे महत्त्वपूर्ण शृङ्खला उपस्थित करते है। इसमें कवि ने तमसा, मुरला, भागीरथी, पृथ्वी एवं वन देवता आदि प्रतीकात्मक पात्राओं का भी चरित्रांकन किया है तथा ये विशिष्ट भावों से पूर्ण भी है। विद्याधर एवं विद्याधरी भी कथानक को गति देने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। सबों के हृदय मे सीता के प्रति करुणा का भाव एवं राम के प्रति श्रद्धा है।

रस—'उत्तररामचरित' का अङ्गीरस करुण है। कवि ने करुण को प्रधान रस मानते हुए इसे निमित्त भेद से अन्य रसों मे परिवर्त्तित होते हुए दिखाया है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥ ३।४७

प्रधान रस करुण के शृङ्गार, वीर, हास्य एवं अद्भुत रस सहायक के रूप में उपस्थित किये गये हैं। इस नाटक में भवभूति की भारती करुण रस से इस प्रकार

आपूर्ण है कि चट्टान भी पिघल जाते हैं और वज्र-हृदय भी मार्मिक पीडा का अनुभव कर अश्रुप्रवाहित करने लगता है। नाटक के प्रथम अङ्क में करुण मिश्रित शृङ्गार का चित्रण किया गया है तथा चित्र-दर्शन, हास-विनोद एवं सीता का राम के वक्ष पर शयन करुण रस को अधिक गम्भीर बनाने के लिए पृष्ठाधार प्रस्तुत करते हैं। राम अपवाद की बात के श्रवण करने से ही मूच्छित हो जाते है तथा संज्ञा आने पर भी उनकी मूर्च्छा अक्षुण्ण रहती है। द्वितीय एवं तृतीय अङ्क में पूर्वानुभूत पदार्थों को देख कर विरही राम की सुप्त व्यथा मूर्तिमन्त हो जाती है। चतुर्थ अङ्क के विष्कम्भक में कवि ने हास्यरस की योजना की है किन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सके है। वस्तुतः भवभूति की गम्भीर प्रकृति हास्यरस के अनुकूल नहीं पड़ती। पञ्चम अङ्क तथा षष्ठ अङ्क के विष्कम्भक मे वीर रस का प्राधान्य है और वहाँ करुण रस गौण पड जाता है। सप्तम अङ्क के प्रारम्भ मे (गर्भाङ्क मे) करुण रस की प्रधानता है पर सीता के जल मे प्रकट होने से दर्शक चकित हो उठते हैं और वहाँ अद्भुत रस की छटा छिटक जाती है। अन्त मे राम और सीता का पुर्नमिलन दिखाकर शृंगार रस की योजना कर दी गई है।

'उत्तररामचरित' मे भवभूति की कला पूर्ण प्रौढि को प्राप्त कर कालिदास के समक्ष पहुँच गई है। कवि ने इस नाटक मे जितना गार्हस्थ जीवन एवं प्रेम का परिपाक प्रदर्शित किया है, सम्भवतः उतना किसी भी संस्कृत नाटक में न हो सका है। इसमें जीवन की नाना परिस्थितियों, भावदशाओ तथा प्राकृतिक दृश्यो का अत्यन्त कुशलता तथा पूर्ण तन्मयता के साथ चित्रण किया गया है। प्रकृति के कोमल एवं भयङ्कर तथा मोहक और रूक्ष दृश्यो के प्रति कवि ने समानरूप से रुचि प्रदर्शित कर दोनों का चित्र उपस्थित किया है। राम और सीता के प्रणय का इतना उदात्त एवं पवित्र चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। परिस्थितियों के कठोर नियन्त्रण मे प्रस्फुटित राम की कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सीता का अनन्य प्रेम इस नाटक की महनीय देन है। इसमे नाटकीय कला का चरम विकास तो होता ही है साथ ही काव्यात्मक महनीयता का भी अपना महत्त्व है। प्रेमिल भावनाओ का सजीव चित्रण तथा वियोग की यातनाओं का करुण दृश्य इस नाटक में चरमोत्कर्ष पर अधिष्ठित है। भवभूति ने इस नाटक में राम के बहुचर्चित दैवी एवं आदर्श रूप को मानवीय धरातल पर अधिष्ठित कर उन्हें प्राणवन्त बना दिया है। राम और सीता विष्णु एवं लक्ष्मी के अवतार होते हुए भी साधारण विरही के रूप में उपस्थित किये गये है और इसमें कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। 'उत्तरराम-चरित' मे आद्यन्त गम्भीरता का वातावरण बना रहता है। भवभूति के गम्भीर व्यक्तित्व मे विनोदप्रियता का सर्वथा अभाव है और यही कारण है कि इसमें विदूषक का समावेश नहीं है। संस्कृत नाटकों की प्रवृत्ति के विरुद्ध कवि ने इसमें प्रकृति के रौद्ररूप का भी पूरी तन्मयता के साथ चित्रण किया है। वाल्मीकि रामायण की करुण कथा को संयोग पर्यवसायी बनाकर भवभूति ने न केवल मौलिक सूझ का परिचय दिया है अपितु नाट्यशास्त्रीय मर्यादा की रक्षा करते हुए नैतिक दृष्टि से भी यह सिद्ध कर दिया है कि साधु पुरुषों का अन्त सुखमय होता है—धर्मोरक्षतिरक्षितः। कवि ने

राम और सीता का पुनर्मिलन अप्रत्याशित रूप से दिखाकर दर्शकों के मन में नवीन कुतूहल भर दिया है। सप्तम अङ्क में वियोग में ही संयोग करा कर बहुत बड़ा कौशल प्रदर्शित किया गया है। राम और सीता का पुनर्मिलन सदाचार, नैतिकता एवं कर्त्तव्य-निष्ठा की विजय है जिससे दर्शकों के मन में तनाव नहीं रह पाता और वे अपूर्व सन्तोष का भाव लेकर लौटते हैं। द्वितीय और तृतीय अंक मे भी कवि की चित्रण-निर्माण की पटुता दिखाई पड़ती है। इन अंको में कथा की गति मन्द पड़ गई है और इनमें घटनात्मक त्वरा का अभाव है। पर दोनों ही अंक सीता-राम के चारित्रिक प्रस्फुटन एवं काव्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन अंकों में सीता-निर्वासन के बाद की अनेक घटनाओं; जैसे—सीता के पुत्रो की उत्पत्ति की सूचना, सीता-त्याग के बारह वर्ष व्यतीत होने की सूचना एवं राम द्वारा अश्वमेध मे सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाने की घटना की सूचना प्राप्त होती है।

सभी दृष्टियो से महनीय होते हुए भी 'उत्तररामचरित' मे नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कतिपय दोष दिखाई पड़ते हैं। पंडितो ने इसका दोषान्वेषण करते हुए जो विचार व्यक्त किया है उसका सार इस प्रकार है—

'उत्तररामचरित' मे नाटक की तीन अन्वितियों की अत्यन्त उपेक्षा की गयी है, वे हैं समय की अन्विति, स्थान की अन्विति तथा कार्य की अन्विति। नाटककार के लिए 'संकलनत्रय' या अन्वितित्रय पर अत्यधिक ध्यान देना आवश्यक होता है, अन्यथा उसके नाटक में बिखराव आ जायगा। इसमे काल की अन्विति पर ध्यान नहीं दिया गया है। प्रथम तथा द्वितीय अंक की घटनाओ के मध्य बारह वर्षों का अन्तराल दिखाई पड़ता है तथा शेष अंकों की घटनाएँ अत्यन्त त्वरा के साथ घटती हैं। स्थान की अन्विति का भी इस नाटक में उचित निर्वाह नहीं किया गया है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अंक की घटनाएँ क्रमशः अयोध्या, पंचवटी एवं जनस्थान मे घटित होती हैं तथा चतुर्थ अंक की घटनाएँ वाल्मीकि आश्रम मे घटती हैं। द्वितीय से चतुर्थ अंक तक के वार्त्तालाप नाटकीय दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, भले ही उनकी गरिमा कलात्मक समृद्धि की दृष्टि मे हो। अतः फल की ओर उन्मुख होने एवं उसकी प्राप्ति की तीव्रता मे इन स्थलो का औचित्य एवं उपयोगिता नगण्य है। अतः कार्यान्विति के भी विचार मे इस नाटक को शिथिल माना गया है। समीक्षकों ने यहाँ तक विचार व्यक्त किया है कि यदि उपर्युक्त अंशों को नाटक से निकाल भी दिया जाय तो भी कथावस्तु के विकास एवं फल मे किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

इस नाटक मे एक ही प्रकार की प्रकृति के पात्रो का चित्रण किया है तथा इसमे पात्रबाहुल्य का अभाव है। राम, सीता, लक्ष्मण, शम्बूक, जनक, वाल्मीकि प्रभृति सभी पात्र गंभीर प्रकृति के है। पात्रो मे प्रकृतिगत एकरूपता के कारण दर्शकों का कौतूहल रह नहीं पाता। कवि ने द्वन्द्वमय पात्रों के चित्रण मे अभिरुचि नहीं दिखलाई है। इसके अन्य दोषो में विदूषक का अभाव, भाषा का काठिन्य एवं विलाप-प्रलापो का आधिक्य है। इसके अधिकांश पात्र फूट-फूट कर रोते हैं और प्रधान पात्रों में भी यह दोष दिखाई पड़ता है, जो चरित्रगत उदात्तता का बहुत बड़ा दोष है। इन प्रलापों से

धीरोदात्त चरित्र के विकास एवं परिपुष्टि में सहायता नहीं प्राप्त होती। कतिपय आचार्यों ने पंचम अंक के अन्तर्गत राम के चरित्र पर लव द्वारा किये गए आक्षेप को अनौचित्य-पूर्ण माना है।

> वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
> सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
> यानि त्रीण्यपराङ्मुखान्यपि पदान्यासान् खरायोधने
> यद्वा कौशलमिन्द्रसुनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः॥ ५।३५

यहाँ नायक के चरित्रगत दोषों का वर्णन करने के कारण क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा' में इसे अनौचित्यपूर्ण कहा है।

अत्राप्रधानस्य रामसूनोः कुमारलवस्य परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोर्वीररसोद्दीपनाय सकल-प्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधाननायकगतस्य वीररसस्य ताडकादमनखररणापसरण–अन्यरणसंसक्तवालिव्यापादनादिजनविहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृतः–इत्यनुचितमेतत्। पृ० १९५–१९६

औचित्यविमर्श—डॉ० राममूर्त्ति त्रिपाठी 'पर इन दोषों से भवभूति के नाटक की आभा मे कोई न्यूनता नहीं आने को। भवभूति वश्यवाच कवि हैं और सरस्वती उनकी इच्छा का अनुवर्त्तन करती हैं।' महाकवि भवभूति पृ० १२०

आधारग्रन्थ—१. उत्तररामचरित—हिन्दी अनुवाद, चौखम्बा प्रकाशन २. उत्तररामचरित—डॉ० वी० पी० काणेकृत व्याख्या (हिन्दी अनुवाद) ३. उत्तर-रामचरित—डॉ० कृष्णमणि त्रिपाठी ४ महाकवि भवभूति—डॉ० गङ्गासागर राय।

उद्धवदूत—यह संस्कृत का सन्देशकाव्य है जिसके रचयिता है माधव कवीन्द्र। इनके जीवन के विषय मे कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। डॉ० एस० के० दे के अनुसार इनका समय १७ वीं शताब्दी है। इस काव्य की रचना 'मेघदूत' के अनुकरण पर हुई है और समग्र ग्रन्थ मन्दाक्रान्ता वृत्त मे समाप्त हुआ है। इसमे कुल १४१ श्लोक हैं और अन्तिम श्लोक अनुष्टुप छन्द मे है। इस काव्य मे कृष्ण द्वारा उद्धव को अपना सन्देश गोपियो के पास भेजने का वर्णन है। कृष्ण का दूत समझकर राधा उद्धव से अपना एवं गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन करती है। राधा कृष्ण एवं कुब्जा के प्रेम को लेकर विविध प्रकार का आक्षेप करती है और अक्रूर को भी फटकारती हैं। राधा अपने सन्देश में कहती है कि कृष्ण के अतिरिक्त उनका दूसरा प्रेमी नही है यदि उनके वियोग मे उनके (राधा के) प्राण निकल जाएँ तो कृष्ण ही उन्हे जलदान दे। वे अपनी विरह-व्यथा का कथन करते-करते मूर्च्छित हो जाती है। शीतलोपचार से स्वस्थ होने के पश्चात् उद्धव उन्हे कृष्ण का सन्देश सुनाते है और शीघ्र ही कृष्णमिलन की आशा बँधाते हैं। राधा की प्रेम-विह्वलता देखकर उद्धव उनके चरणों पर अपना मस्तक रख देते हैं और कृष्ण का उत्तरीय उन्हे भेंट मे समर्पित करते है। श्रीकृष्ण के प्रेम का ध्यान कर राधा आनन्दित हो जाती है और यहीं पर काव्य समाप्त हो जाता है। राधा द्वारा कृष्ण का उपालम्भ देखें—

भक्तिप्रीतिप्रणयसहितं मानदम्भाद्यपेतं चेतोऽस्माकं गुणवदगुणं गोदुहां देहमेतत् ।
विक्रीतं ते युगपदुभयं स्वीकृतं च त्वयाथो हृद्‌गृह्णासि त्यजसि च वपुर्नाथ कोऽयं विचारः ॥

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत क्लासिकल लिटरेचर – दासगुप्त एवं दे

उद्धव सन्देश—इस सन्देशकाव्य के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रूप गोस्वामी हैं। [इनके परिचय के लिए दे० रूप गोस्वामी] यह काव्य 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कन्ध की एतद्विषयक कथा पर आश्रित है। इसमें श्रीकृष्ण अपना सन्देश उद्धव द्वारा गोपियों के पास भेजते हैं। इस काव्य का निर्माण 'मेघदूत' के अनुकरण पर किया गया है जिसमें कुल १३१ श्लोक हैं। कृष्ण की विरहावस्था का वर्णन, दूतत्व करने के लिए उनकी उद्धव से प्रार्थना, मथुरा से गोकुल तक के मार्ग का वर्णन, यमुना-सरस्वती सङ्गम, अम्बिका कानन, अक्रूर तीर्थ, कोटिकारव्यप्रदेश, सट्टिकरवन, कालियह्रद आदि का वर्णन तथा राधा की विरहविवशता एवं श्रीकृष्ण के पुनर्मिलन का आश्वासन आदि विषय इस काव्य में विशेषरूप से वर्णित हैं। सम्पूर्ण काव्य मन्दाक्रान्ता वृत्त में रचित है और कहीं-कहीं मेघदूत के श्लोकों की छाप दिखाई पड़ती है। विप्रलम्भशृंगार के अनुरूप कोमलकान्त पदावली का सन्निवेश इस काव्य की अपनी विशेषता है। श्रीकृष्ण के मुख से राधा की विरहावस्था का वर्णन देखिए—

सा पर्यंके किशलयदलैः कल्पिते तत्र सुप्ता गुप्ता नीरस्तबकितदृशा चक्रवालैः सखीनाम् ।
द्रष्टव्या ते कृशितकलिका कण्ठनालोपकण्ठस्पन्देनान्तर्वपुरनुमितप्राणसङ्गा वराङ्गी ॥ ११७

रूप गोस्वामी का दूसरा सन्देशकाव्य 'हंसदूत' है जिसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथा के आधार पर राधा हंस के द्वारा श्रीकृष्ण के पास प्रेम-सन्देश भिजवाती है। इस काव्य के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण की वन्दना की गई है। इसकी शैली मधुर एवं सरस है तथा वैदर्भी रीति एवं माधुर्य गुण दोनों का समावेश है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

उद्भट—अलंकारशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'काव्यालंकारसारसंग्रह' नामक प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ की रचना की है। [दे० काव्यालंकारसारसंग्रह] नाम से ये काश्मीरी ब्राह्मण सिद्ध होते हैं। इनका समय अष्टम शताब्दी का अन्तिम चरण एवं नवम शताब्दी का प्रथम चरण माना जाता है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' से ज्ञात होता है कि ये काश्मीरनरेश जयापीड के सभापण्डित थे और उन्हें प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन के रूप में प्राप्त होता था—

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः । भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ।।४।४९५

जयापीड का शासनकाल ७७९ ई० से ८१३ ई० तक माना जाता है। अभी तक इनके तीन ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है—भामह-विवरण, कुमारसम्भव काव्य एवं काव्यालंकारसारसंग्रह। भामह-विवरण भामह कृत 'काव्यालंकार' की टीका है जो सम्प्रति अनुपलब्ध है। [कहा जाता है कि इटली से यह ग्रंथ प्रकाशित हो गया है, पर भारत में अभी तक नहीं आ सका है] इस ग्रन्थ का उल्लेख प्रतिहारेन्दुराज ने अपनी 'लघुविवृत्ति' में किया है—विशेषोक्तिलक्षणे च भामहविवरणे भट्टोद्भटेन एकदेश-

शब्द एवं व्याख्यातो यथैवास्माभिर्निरूपितः । पृ० १३ अभिनवगुप्त, रुय्यक एवं हेमचन्द्र भी अपने ग्रन्थों में इसका संकेत करते हैं—

भामहोक्तं 'शब्दश्छन्दोभिधानार्थः' इत्यभिधानस्य शब्दाद्भेदं व्याख्यातुं भट्टोद्भटो बभाषे । ध्वन्यालोकलोचन (निर्णयसागर) पृ० १०

कुमारसम्भव—इसका उल्लेख प्रतिहारेन्दुराज की 'विवृत्ति' में है—अनेन ग्रन्थकृता स्वोपरचितकुमारसम्भवैकदेशोऽत्रोदाहरणत्वेन उपन्यस्तः । पृ० १३ इसमें महाकवि कालिदास के 'कुमारसम्भव' के आधार पर उक्त घटना का वर्णन है । 'कुमारसम्भव' के कई श्लोक 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये गये है ।

काव्यालंकारसारसंग्रह अलंकारविषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें ४१ अलंकारों का विवेचन है । इसमें १०० श्लोक 'कुमारसम्भव' से उदाहरणस्वरूप उपस्थित किये गये हैं । उद्भट के अलंकार-निरूपण पर भामह का अत्यधिक प्रभाव है । इन्होंने अनेक अलकारों के लक्षण भामह से ही ग्रहण किये है । आक्षेप, विभावना, अतिशयोक्ति, यथासंख्य, पर्यायोक्त, अपह्नुति, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, सहोक्ति, ससन्देह एवं अनन्वय तथा अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रसवत् एवं भाविक के लक्षण भामह के ही आधार पर निर्मित किये है । उद्भट भामह की भाँति अलंकारवादी आचार्य है । इन्होंने भामह द्वारा विवेचित ३९ अलंकारो मे से यमक, उत्प्रेक्षावयव एवं उपमा-रूपक को स्वीकार नही किया तथा चार नवीन अलंकारों की उद्भावना की—पुनरुक्तिवदाभास, संकर, काव्यलिंग एवं दृष्टान्त । भामह से प्रभावित होते हुए भी इन्होंने अनेक स्थलो पर नवीन तथ्य भी प्रकट किये है । जैसे, भामह ने रूपक एवं अनुप्रास के दो-दो भेद किये थे, किन्तु उद्भट ने रूपक के तीन प्रकार एवं अनुप्रास के चार भेद किये । इन्होंने परुषा, ग्राम्या एवं उपनागरिका वृत्तियो का वर्णन किया है, जब कि भामह ने इनका उल्लेख भी नही किया था । इन्होंने सर्वप्रथम अलंकारो के वर्गीकरण करने का प्रयास किया है और ४१ अलंकारो के छः वर्ग किये है । इन्होंने श्लेषालंकार के सम्बन्ध मे नवीन व्यवस्था यह दी कि जहाँ श्लेष अन्य अलंकारो के साथ होगा वहाँ उसकी ही प्रधानता होगी । इनके अनुसार शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष के रूप में श्लेष के दो प्रकार होते हैं । इनके इन दोनो मतों का खण्डन मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' के नवम उल्लास में किया है । राजानक रुय्यक ने बतलाया है कि उद्भट ने अलंकार एवं गुण को समान श्रेणी का माना है—उद्भटादिभिस्तु गुणालंकाराणां प्रायशः साम्यमेवसूचितम् ।

उद्भट के काव्यशास्त्रीय विचार अनेकानेक ग्रन्थों मे प्राप्त होते हैं जिससे परवर्ती आचार्यों पर इनके प्रभाव की सूचना मिलती है । इनकी मान्यता थी कि अर्थ के भिन्न होने पर शब्द भी भिन्न हो जाता है । 'लोचन' मे उद्भट का मत उपस्थित करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा है कि वे गुणो को रीति या संघटन का धर्म स्वीकार करते थे, रस का नहीं ।

संघटनायाः धर्मो गुणा इति भट्टोद्भटादयः ।

इन्होंने अभिधा के तीन प्रकार एवं अर्थ के दो प्रकार—अविचारितसुस्थ तथा विचारित रमणीय—माने हैं । सर्वप्रथम उपमा के (व्याकरण के आधार पर) भेदो

का वर्णन इन्होंने ही किया था। प्रतिहारेन्दुराज एवं राजानक तिलक उद्भट के दो टीकाकार हैं जिन्होंने क्रमशः 'लघुविवृत्ति' एवं 'उद्भटविवेक' नामक टीकाओं का प्रणयन किया है।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० मा० वा० काणे २. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग–१—आ० बलदेव उपाध्याय ३. अलंकारों का ऐतिहासिक विकास—भरत से पद्माकर तक (शोधप्रबन्ध) राजवंश सहाय 'हीरा'

उदयनाचार्य—भारत के प्रसिद्ध दार्शनिको मे उदयनाचार्य का नाम आता है। ये मैथिल नैयायिक थे तथा इनका जन्म दरभंगा से २० मील उत्तर कमला नदी के निकटस्थ 'मंगरौनी' नामक ग्राम मे एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनका समय ९८४ ई० है। 'लक्षणावली' नामक अपनी कृति का रचना-काल उदयनाचार्य ने ९०६ शकाब्द दिया है जो ई० स० का ९८४ ई० है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—'न्यायवार्त्तिक-तात्पर्य-टीका-परिशुद्धि', 'न्यायकुसुमाञ्जलि' तथा 'आत्मतत्त्वविवेक'। सभी ग्रन्थो की रचना बौद्ध दार्शनिकों द्वारा उठाये गए प्रश्नो के उत्तर-स्वरूप हुई थी। 'न्यायकुसुमाञ्जलि' मे ईश्वर की सत्ता को सिद्ध कर बौद्ध नैयायिको के मत का निरास किया गया है। इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य 'ईश्वर-सिद्धि' ही है। इसकी रचना कारिका एवं वृत्ति शैली मे हुई है। स्वयं उदयनाचार्य ने अपनी कारिकाओ के ऊपर विस्तृत व्याख्या लिखी है जो लेखक की प्रौढ़ता का परिचायक है। हरिदास भट्टाचार्य ने इस पर अपनी व्याख्या लिखकर ग्रन्थ के गूढ़ार्थ का उद्घाटन किया है। बौद्ध विद्वान् कल्याणरक्षित-कृत 'ईश्वरभङ्गकारिका' (८२९ वि० सं०) का खण्डन 'न्यायकुसुमाञ्जलि' मे किया गया है तथा उक्त बौद्ध दार्शनिक के अन्य दो ग्रन्थों—'अन्यापोहविचारकारिका' तथा 'श्रुतिपरीक्षा'–तथा धर्मोत्तराचार्य नामक अन्य बौद्ध दार्शनिक रचित 'अपोहनाम-प्रकरण' एवं 'क्षणभङ्गसिद्धि' के मत के निरास के लिए 'आत्मतत्त्वविवेक' की रचना हुई थी। उपर्युक्त (दोनो) बौद्ध दार्शनिको द्वारा उठाये गए प्रश्नो के उत्तर आ० उदयन के ग्रन्थो मे प्राप्त हो जाते है। उदयनाचार्य ने 'प्रशस्तपादभाष्य' ('वैशेषिक-दर्शन' का ग्रन्थ) के ऊपर 'किरणावली' नामक व्याख्या की रचना की है और इसमें भी बौद्ध-दर्शन का खण्डन किया है। 'न्यायकुसुमाञ्जलि' भारतीय-दर्शन की पाक्तेय कृतियो मे आती है और यह उदयनाचार्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

आधारग्रन्थ–क—भारतीयदर्शन–आ० बलदेव उपाध्याय ख—न्यायकुसुमाञ्जलि (हिन्दी व्याख्या) आ० विश्वेश्वर।

उदयप्रभदेव—ये ज्योतिषशास्त्र के आचार्य है। इन्होंने 'आरम्भसिद्धि' या 'व्यवहारचर्या' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १२२० के आसपास है। इस ग्रन्थ मे लेखक ने प्रत्येक कार्य के लिए शुभाशुभ मुहूर्तों का विवेचन किया है। इस पर हेमहंसगणि (रत्नेश्वरसूरि के शिष्य) ने वि० सं० १५१४ में टीका लिखी थी। इस ग्रन्थ में कुल ग्यारह अध्याय हैं जिनमें सभी प्रकार के मुहूर्तों का वर्णन है। व्यावहारिक दृष्टि से 'आरम्भसिद्धि' मुहूर्त्तचिन्तामणि के समान उपयोगी है।

सन्दर्भग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष–डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

उपनिषद्—वेद के अन्तिम भाग को उपनिषद् कहते हैं, इसी कारण इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। 'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गयी है तथा इसका प्रयोग ब्रह्मविद्या के रूप में किया गया है।

'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्'—मुण्डकोपनिषद् ३।२।११

भारतीय तत्त्वज्ञान का मूल स्रोत उपनिषदों में ही है और वेदों का सार इनमें भरा हुआ है। ब्लूमफील्ड का कहना है, कि 'हिन्दूविचारधारा का एक भी ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग नहीं है, जिसमें नास्तिक नामधारी बौद्धमत भी आता है, जिसका मूल उपनिषदों मे न मिलता हो।' रेलिज ऑफ द वेद पृ० ५१।

'उपनिषद्' शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्गों के साथ 'सद्' धातु से निष्पन्न है। 'उप' का अर्थ है निकट, 'नि' का निश्चय एवं 'षद्' का बैठना (निकट बैठना)। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ शिक्षा-प्राप्ति के लिए गुरु के पास बैठना। कालक्रम से उपनिषद् का अर्थ उस विद्या से हुआ जो ब्रह्मानुभूति करा दे और उसे गुरु के पास जाकर प्राप्त किया जा सके। उपनिषद् वैदिक भावना के ही विकसित रूप है। उनमे ज्ञान की प्रधानता है। उपनिषद्युग तत्त्वचिन्तन की दृष्टि से भारतीय विचारधारा के इतिहास मे चरम विकास का समय है जब कि भावनाप्रधान वैदिक ऋषियो की विचारधारा गम्भीर चिन्तन एवं मनन की ओर उन्मुख होने लगी थी। वेद, ब्राह्मण एवं उपनिषद् के कर्त्ताओ पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि 'वेदों के कर्त्ता कवि थे, ब्राह्मणो के पुरोहित और उपनिषदों के रहस्यवादी संत'।

उपनिषदों की संख्या के विषय मे पर्याप्त मतभेद है। साधारणतः उनकी संख्या १०८ मानी जाती है जिनमे १० या १२ उपनिषदे प्रधान है। 'मुक्तिकोपनिषद्' में उनकी संख्या १०८ दी गयी है जिनमे १० का सम्बन्ध 'ऋग्वेद' से, १९ का 'शुक्ल-यजुर्वेद' से, १२ का 'कृष्णयजुर्वेद' से, १६ का 'सामवेद' से तथा ३१ का 'अथर्ववेद' से है। आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास से कई भागो मे उपनिषदो का प्रकाशन हुआ है जिनमें १७९ उपनिषद् है। गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई से प्रकाशित 'उपनिषद्-वाक्य-महाकोश' मे २२३ उपनिषदों के नाम हैं। शंकराचार्य ने दस उपनिषदो पर भाष्य लिखा है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक। इनके अतिरिक्त कौषीतकि, श्वेताश्वतर तथा मैत्रायणीय उपनिषद् भी प्राचीन हैं।

उपनिषदों का रचनाकाल अभी तक सर्वमान्य नहीं है। डॉ० राधाकृष्णन् का कहना है, कि 'इनमे से जो एकदम प्रारम्भ की है वे तो निश्चित रूप से बौद्धकाल के पहले की है और उनमे से कुछ बुद्ध के पीछे की है। यह संभव है कि उनका निर्माण वैदिक सूक्तो की समाप्ति और बौद्धधर्म के आविर्भाव अर्थात् ईसा से पूर्व की छठी शताब्दी के मध्यवर्त्ती काल मे हुआ हो।' भारतीयदर्शन पृ० १२९।

प्रारम्भिक उपनिषदों का रचनाकाल १००१ ई० पू० से लेकर ३०० ई० पू० का माना गया है। कुछ वे उपनिषदे, जिन पर शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है, बौद्धयुग की परवर्त्ती हैं। उनका निर्माणकाल ४०० या ३०० ई० पूर्व का है। सबसे प्राचीन वे उपनिषदें हैं, जिनकी रचना गद्य में हुई है तथा जो साम्प्रदायिकता से शून्य है।

उनमे 'ऐतरेय', 'कौषीतकि', 'तैत्तिरीय', 'छान्दोग्य', 'बृहदारण्यक' एवं 'केन' के कतिपय अंश हैं। 'कठोपनिषद्' की रचना परवर्त्ती है क्योंकि इस पर योग और सांख्य का प्रभाव है। साम्प्रदायवादी उपनिषदों मे 'माण्डुक्य' को सबसे अर्वाचीन माना जाता है। 'मैत्रायणी' और 'श्वेताश्वतर' भी परवर्त्ती है क्योंकि इन पर भी योग और सांख्य का प्रभाव है। ड्यूसन के अनुसार उपनिषदों का क्रम इस प्रकार है—

क—प्राचीन गद्यात्मक उपनिषदें—बृहदारण्यक', छान्दोग्य, तैत्तिरीय, कौषीतकि, केन (जो अंश गद्यात्मक है)।

ख—छन्दोबद्ध उपनिषदें— ईश, कठ, मुण्डक एवं श्वेताश्वतर।

ग—परवर्त्ती गद्य—प्रश्न एवं मैत्रायणी।

उपनिषदों की प्राचीनता का पता अन्तःसाक्ष्य के भी आधार पर लगाया जा सकता है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' मे 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग है—

जीविकोपनिषदावौपम्ये, (१।४।७९)

'अष्टाध्यायी' के गणपाठ मे भी ग्रन्थवाची उपनिषद् शब्द विद्यमान है। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि के पूर्व उपनिषद् से सम्बद्ध व्याख्यान ग्रन्थो की रचना होने लग गयी थी। ह्विटनी के अनुसार उपनिषदों की रचना आज से तीन सहस्र वर्ष पूर्व हुई थी। तिलक जी ने ईसा पूर्व १६०० वर्ष उपनिषदों का रचनाकाल माना है।

[दे० गीतारहस्य पृ० ५५०–५२]

उपनिषदो के अनुवाद—उपनिषदो का भाषान्तर सत्रहवी शताब्दी मे दाराशिकोह द्वारा कराया गया था। १६५६ ई० में ५० उपनिषदो के फारसी अनुवाद 'सिर्रे अकबर' या 'महारहस्य' के नाम से किये गए थे। इस ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद १७२० ई० मे हुआ, जिसका नाम उपनिषद्-भाष्य' है। १७७५ ई० मे सुप्रसिद्ध फ्रेन्च यात्री एंक्वेटिल डुपेरन ने इसके दो अनुवाद फ्रेंच और लैटिन मे किये। १८०१–२ ई० मे लैटिन अनुवाद 'औपनेखत' के नाम मे पेरिस से प्रकाशित हुआ, पर फ्रेन्च अनुवाद प्रकाशित न हो सका। लैटिन अनुवाद के ही आधार पर उपनिषदो के कई अनुवाद प्रकाशित हुए। शोपेनहावर और शेलिंग ऐसे दार्शनिको ने लैटिन अनुवाद को पढ़ कर उपनिषद्-ज्ञान को विश्व की विचारधारा का पथ-प्रदर्शक माना था। राजा राममोहन राय ने मूल ग्रन्थो के साथ कुछ उपनिषदों के अँगरेजी अनुवाद १८१६–१९ ई० के बीच प्रकाशित किये थे। श्री जे० डी० लंजुईनास नामक फ्रेंच विद्वान् ने फारसी अनुवाद पर आधृत लैटिन अनुवाद का रूपान्तर फ्रेंच भाषा मे किया जिसका नाम 'भारतीयो की भाषा, वाङ्मय, धर्म तथा तत्त्वज्ञान संबंधी अन्वेषण' है। वेबर साहब ने 'इण्डिस्केनस्टुडियन' नामक पुस्तक १७ भागों में लिखी है, जिसके प्रथम भाग मे (१८५० ई०) १४ उपनिषदो का अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इसके द्वितीय भाग में १५–३९ उपनिषद् प्रकाशित हुए तथा नवम भाग में 'सिर्रे अकबर' के ४०–५० उपनिषद् लिपज़िक से प्रकाशित हुए। १८८२ ई० मे इनका जर्मन अनुवाद ड्रेसडेन से प्रकाशित हुआ। पण्डित मैक्समूलर ने 'सेक्रेड बुक्स ऑफद ईस्ट' नामक ग्रन्थमाला में १२ उपनिषदों का अँगरेजी अनुवाद १८७९ से ८४ ई० के बीच प्रकाशित किया। अन्य

दो जर्मन विद्वानों—एफ० मिशल ने १८८२ ई० में तथा बोटलिंक ने १८८९ ई० में उपनिषदों के जर्मन अनुवाद किये। तदनन्तर पालड्यूसन ने १० आथर्वण उपनिषदों के जर्मन अनुवाद १८९७ ई० में और आर० ह्यूम ने आंग्ल अनुवाद १९२१ ई० में (१३ प्रमुख उपनिषदों का) प्रकाशित किया। भारतीय विद्वानों में सीताराम शास्त्री तथा गंगानाथ झा ने आठ प्रमुख उपनिषदों का अँगरेजी अनुवाद १८९८ से १९०१ के बीच किया। डॉ० राधाकृष्णन् ने रोमन अक्षरों में प्रमुख उपनिषदों का मूल एवं आंग्लानुवाद प्रस्तुत किया है जो 'प्रिंसपल उपनिषदस' के नाम से प्रकाशित है। गीता प्रेस, गोरखपुर से तीन खण्डों मे प्रमुख उपनिषदों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और 'उपनिषद् अंक' मे १०८ उपनिषदों के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन हुआ है।

उपनिषदों के रचयिताओं के जीवन के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनमे प्रजापति, इन्द्र, नारद एवं सनत्कुमार के मुख्य संवाद हैं। उपनिषदों मे महिदास, ऐतरेय, रैक्व, शाण्डिल्य, सत्यकाम जाबाल, जैवलि, उद्दालक, श्वेतकेतु, भारद्वाज, गार्ग्यायण, प्रतर्दन, बालाकि, अजातशत्रु, वरुण, याज्ञवल्क्य, गार्गी तथा मैत्रेयी के विचार संगृहीत है और वे वक्ता के रूप मे उपस्थित हैं। उपनिषदों पर अनेक आचार्यों ने, अपने मत का प्रतिपादन करने के लिए, भाष्यों की रचना की है जिनमें शंकर, रामानुज, मध्व आदि के अतिरिक्त सायण, ज्ञानामृत, व्यासतीर्थ आदि के नाम प्रसिद्ध है। मुख्य प्रतिपाद्य है ब्रह्मविद्या, जिसे कथा और काव्य के माध्यम से वास्तविक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। इनमे तत्त्वज्ञान, नीतिशास्त्र, सृष्टिरचना, ब्रह्म, जीव, जगत्, मोक्ष, धार्मिक चेतना, पाप और दुःख, कर्म, पारलौकिक जीवन, सांख्य, योग, मनोविज्ञान आदि विषयों का निरूपण है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् उपनिषद् है।

[इस कोश मे प्रमुख २६ उपनिषदों का परिचय दिया गया है] [दे० उपनिषद् दर्शन]।

आधारग्रन्थ—१ भारतीय दर्शन भाग १—डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीय संस्कृति—औपनिषदिक धारा—डॉ० मंगलदेव शास्त्री ३ वैदिक साहित्य एवं संस्कृति—प० बलदेव उपाध्याय ४ उपनिषद् (तीन खण्डो मे)—हिन्दी अनुवाद सहित अनु० श्रीराम शर्मा ५ कन्स्ट्रक्टिव सर्वे आफ औपनिषदिक फिलॉसफी—डॉ रानाडे

उपनिषद्-दर्शन- उपनिषद् भारतीय तत्त्वचिन्तन के क्षेत्र मे प्रस्थानत्रयी (उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता) के प्रथम सोपान के रूप मे समादृत है। ये भारतीय दर्शन की वह नींव है जिनके ऊपर प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक विचारधाराओं एवं धार्मिक सम्प्रदायों की अट्टालिकाएँ खड़ी हैं। इनमें जिज्ञासु मानव की आत्मा की शान्ति के लिए आध्यात्मिक समाधान प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जो स्वतः स्फुरित काव्यात्मक उद्गार है। इनकी रचना एक समय मे नहीं हुई है; और न ये एक व्यक्ति की कृतियाँ हैं, अतः इनमे कहीं पूर्वापर विरोध एवं कुछेक अवैज्ञानिक बातें भी पायी जाती हैं। इनमे विचारशील धार्मिक मस्तिष्क की काव्यमिश्रित, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सत्य की झलक मिलती है। प्रो० जे० एस० मैकेंजी के अनुसार 'उपनिषदों में जो प्रयत्न हमारे सम्मुख रखा गया है वह विश्व के निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त का

सबसे पहला प्रयत्न है और निश्चय ही बहुत रोचक और महत्त्वपूर्ण है।' इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड एथिक्स, खण्ड ८ पृ० ५९७ दर्शनशास्त्र की मूल समस्या का समाधान ही उपनिषदो का केन्द्रीय विषय है। इनका लक्ष्य सत्यान्वेषण है। 'केनोपनिषद्' मे शिष्य पूछता है कि 'किसकी इच्छा से प्रेरित होकर मन अपने अभिलषित प्रयोजन की ओर आगे बढ़ता है ? किसकी आज्ञा से प्रथम प्राण बाहर आता है और किसकी इच्छा से हम वाणी बोलते है ? कौन-सा देव आँख या कान को प्रेरणा देता है ?'

उपनिषदों के दार्शनिक तत्त्व को अध्यात्मविद्या एवं नीतिशास्त्र दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। अध्यात्मविद्या के अन्तर्गत परमसत्ता, जगत् का स्वरूप एवं सृष्टि की समस्या का प्रतिपादन किया गया है तो नीतिशास्त्र में व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य, उसका आदर्श, कर्म का मुक्ति के साथ सम्बन्ध तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त विवेचित है।

आत्मतत्त्व—उपनिषदों मे आत्मतत्त्व का विवेचन बडी सूक्ष्मता के साथ किया गया है। 'कठोपनिषद्' मे, आत्मा की सत्ता इसी जीवन तक रहती है या जीवन के बाद भी उसका अस्तित्व बना रहता है, का विशद विवेचन है। इसके उत्तर मे [यमराज नचिकेता को बतलाते हैं] कहा गया है कि आत्मा नित्य है, वह न तो मरता है और न अवस्थादि कृत दोषो को प्राप्त करता है। [कठोपनिषद् ३–४] 'छान्दोग्यपनिषद्' मे बतलाया गया है कि आत्मा पापरहित, अजर, अमर, शोक, भूख-प्यास से विमुख, सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प है। 'यह शरीरधर्मा है, मृत्यु के वश में है। इस पर भी वह अविनाशी, अशरीर आत्मा का निवासस्थान है। शरीर मे रहते हुए, आत्मा प्रिय और अप्रिय पदार्थों से बंधा रहता है; जबतक शरीर से सम्बन्ध बना है, प्रिय और अप्रिय से छुटकारा नही होना। जब शरीर से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है, तो प्रिय-अप्रिय का स्पर्श भी नही रहता।'

ब्रह्मतत्त्व—परमतत्त्व के स्वरूप का हल निकालने के लिए उपनिषदो में अत्यन्त सूक्ष्म विचार व्यक्त किये गये है।

यहाँ ब्रह्म के दो स्वरूपो का निरूपण किया गया है—सगुण एवं निर्गुण। निर्विशेष या निर्गुण ब्रह्म को परमतत्त्व तथा सगुण और सविशेष ब्रह्म को 'अपर' ब्रह्म कह कर दोनो मे भेद स्थापित किया गया है। अपर ब्रह्म को शब्द ब्रह्म भी कहा जाता है। निर्विशेष ब्रह्म की निर्गुण, निरुपाधि तथा निर्विकल्प अभिधा दी गई है। उपनिषदो में विश्व-विवेचन एवं आत्म-विवेचन के आधार पर ब्रह्मतत्त्व का समाधान किया गया है। प्राकृतिक जगत् की सारी शक्तियों को यथार्थ रूप मे ब्रह्म की ही शक्ति कहा गया है। 'निश्चय ही यह सब ब्रह्म है; यह ब्रह्म से उत्पन्न होता है, ब्रह्म मे लीन होता है; उसी पर आश्रित है।' छान्दोग्य उपनिषद् ३।१४।१। इसमें ब्रह्म को भूमा कहा गया है। जहाँ सभी ज्ञान समाप्त हो जाय वही भूमा या महान् है। ब्रह्म सत्य तथा ज्ञानस्वरूप है। वह रसरूप है। रसरूप ब्रह्म को प्राप्त कर जीवात्मा आनन्दित होता है। ब्रह्म से ही सभी प्राणी उत्पन्न होते है, जीवित रहते है तथा अन्त में उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म को अक्षर, अविनाशी एवं मूल तत्त्व कहा गया है। वह आनन्दरूप, अजर और

प्रकाशमान है। वह शुद्ध तथा समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों का प्रकाशक, निर्मल, निष्कल (अवयवरहित) तथा हिरण्मय (ज्योतिर्मय) परमकोश में स्थिर रहता है। 'बृहदारण्यक' मे कहा गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है। यह महान्, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत और अभय है। जो ऐसा जानता है वह ब्रह्म हो जाता है। 'केनोपनिषद्' के अनुसार ब्रह्म विदित तथा अविदित उभय प्रकार के पदार्थों से भिन्न और परे है। अन्ततः उपनिषदे 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) कहकर ब्रह्म का स्वरूप प्रकट करने मे असमर्थता प्रकट करती है। वह अवाङ्मनसगोचर है।

जगत्—उपनिषदे ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण मानती हैं। जिस प्रकार मकडी जाला को अपने शरीर से ही बनाती है और निगल जाती है, जिस प्रकार पुरुष के केश और लोम उत्पन्न होते है उसी प्रकार यह समस्त विश्व अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होता है। मुण्डकोपनिषद्, १।१।७

उपनिषदो का नीतिशास्त्र—उपनिषदो मे नीति-विवेचन के अतिरिक्त नैतिक उपदेशों का भी आधिक्य है। इनमे नीति के मूल सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे भी सुनिश्चित विचार प्राप्त होते हैं। 'कठोपनिषद्' मे श्रेय और प्रेय का विवेक उपस्थित किया गया है। श्रेय और प्रेय दोनो ही मनुष्य के समक्ष उपस्थित है। दोनों भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को रखते हुए मनुष्य को बाँधते है। बुद्धिमान् मनुष्य सम्यक् विचार करते हुए प्रेयस् को छोड कर श्रेयस् को ग्रहण करता है। जो श्रेय को चुनता है उसका कल्याण होता है और जो प्रेय को चुनता है वह उद्देश्य मे च्युत हो जाता है। यहाँ प्रेयवाद (भोगवाद) को त्याज्य एवं श्रेयवाद को ग्राह्य कहा है। [कठोपनिषद्, २।२] 'ईशावास्योपनिषद्' क अनुसार मनुष्य कर्त्तव्य बुद्धि मे प्रेरित होकर अनासक्तभाव से कर्म करे, वह कभी भी अनुचित कर्म न करे। उपनिषदो मे परमसत्ता की समस्या के समाधान के अतिरिक्त जीवन को उच्च एवं आदर्श रूप बनाने के लिए ऐसे सिद्धान्तो का भी निरूपण किया गया है, जो सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक हैं। इनका आत्माद्वैत का सिद्धान्त विश्वचिंतन के क्षेत्र मे अमूल्य देन के रूप मे स्वीकृत है।

आधारग्रन्थ—१. एकादशोपनिषद्–शांकरभाष्य–गीता प्रेस, गोरखपुर (तीन खण्डो मे हिन्दी अनुवाद) २ भारतीयदर्शन—डॉ० एस० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) ३ भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय ४. दर्शन-संग्रह—डॉ० दीवानचन्द ५ भारतीय संस्कृति का विकास (औपनिषदिकधारा)–डॉ० मंगलदेव शास्त्री ६. पूर्वी धर्म और पाश्चात्य विचार—डॉ० एस० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) ७. कन्सट्रक्टिव सर्वे ऑफ औपनिषदिक फिलॉसफी–डॉ० रानाडे।

उपनिषद् ब्राह्मण—यह सामवेदीय ब्राह्मण है। इसे छान्दोग्य ब्राह्मण भी कहा जाता है। इसमे दो प्रपाठक एवं प्रत्येक मे आठ-आठ खण्ड हैं तथा मन्त्रों की संख्या २५७ है। प्रथम प्रपाठक के मन्त्रो का सम्बन्ध विवाह, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, चूडाकरण, उपनयन, समावर्त्तन एवं गो-वृद्धि से है। द्वितीय प्रपाठक में भूतबलि, आग्रहायणीकर्म, पितृपिण्डदान, देवबलिहोम, दर्शपूर्णमास, आदित्योपस्थान नवगृह-

प्रवेश, स्वस्त्ययन और प्रसाद-प्राप्ति के मन्त्र हैं। इस पर गुणविष्णु एवं सायण ने भाष्य लिखे हैं। इसकी भाषा बोधगम्य, आकर्षण एवं प्रसादगुणयुक्त है।

क—प्रो० दुर्गामोहन भट्टाचार्य द्वारा गुणविष्णु तथा सायण-भाष्य के साथ कलकत्ता से प्रकाशित—

ख—१८९० ई० में सत्यव्रतसामश्रमी द्वारा 'मन्त्रब्राह्मण' के नाम से टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित—

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय।

उभयकुशल—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ये फलित ज्योतिष के मर्मज्ञ थे। इनका स्थितिकाल वि० सं० १७३७के आसपास है। 'विवाह-पटल' एवं 'चमत्कार-चिन्तामणि' इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं और दोनों का ही सम्बन्ध फलित ज्योतिष से है। ये मुहूर्त्त तथा जातक दोनों अंगों के पण्डित थे।

सहायक ग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

उमापति शर्मा द्विवेद 'कविपति'—(जन्म-संवत् १९५२) शर्मा जी का जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के पकड़ी नामक ग्राम मे हुआ था। आपने कई ग्रन्थो की रचना की है जिनमे 'शिवस्तुति' एवं 'वीरविंशतिका' प्रसिद्ध हैं। द्वितीय ग्रन्थ मे हनुमान् जी की स्तुति है। 'पारिजातहरण' कवि का सर्वाधिक प्रौढ़ महाकाव्य है, जिसका प्रकाशन १९५८ ई० मे हुआ है। इसमे २२ सर्ग है और 'हरिवंशपुराण' की प्रसिद्ध 'पारिजातहरण' की कथा को आधार बनाया गया है। प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण मे कवि की दृष्टि परम्परागत है तथा शैली के विचार से वे पुराणपन्थी है। इस महाकाव्य का मुख्य रस शृङ्गार है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोमल एवं मसृण शब्दो का चयन किया गया है।

उमास्वाति—ये जैनदर्शन के आचार्य है। इन्होंने विक्रम संवत् के प्रारम्भ मे 'तत्त्वार्थसूत्र' या 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इनका जन्म मगध मे हुआ था। इन्होंने स्वयं इसका भाष्य लिखा है। 'तत्त्वार्थसूत्र' जैनदर्शन के मन्तव्यों को प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के ऊपर अनेक जैनाचार्यों ने वृत्तियाँ एवं भाष्यो की रचना की है जिनमे पूज्यपाद देवनन्दी, समन्तभद्र, सिद्धसेन दिवाकर, भट्टअकलंक तथा विद्यानन्दी प्रसिद्ध हैं। उमास्वाति का महत्त्व दोनो ही जैन सम्प्रदायों—श्वेताम्बर एवं दिगम्बर—मे समान है। दिगम्बर जैनी इन्हे उमास्वामी कहते हैं।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन भाग-१ डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

उद्योतकर—'वात्स्यायन भाष्य' के ऊपर उद्योतकर ने 'न्यायवार्त्तिक' नामक टीका ग्रन्थ की रचना की है। [दे० वात्स्यायन] इस ग्रन्थ की रचना दिङ्नाग प्रभृति बौद्ध नैयायिकों के तर्कों का खण्डन करने के निमित्त हुई थी। [दे० दिङ्नाग]। इनका समय विक्रम की षष्ठ शताब्दी माना जाता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में बौद्धमत का पाण्डित्यपूर्ण निरास कर ब्राह्मणन्याय की निर्दुष्टता प्रमाणित की है। सुबंधु कृत 'वासवदत्ता'

में उद्योतकर की महत्ता प्रतिपादित की गयी है—न्यायसंगतिमिव उद्योतकर-स्वरूपाम् । स्वयं उद्योतकर ने अपने ग्रन्थ का उद्देश्य निम्नांकित श्लोक में प्रकट किया है—

यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद ।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतोः, करिष्यते तस्य मया प्रबन्धः ॥

इस ग्रन्थ में मुख्यतः दिङ्नाग एवं नागार्जुन के तर्कों का खण्डन है और दिङ्नाग को सर्वत्र 'भदन्त' शब्द से सम्बोधित किया गया है, जो बौद्ध भिक्षुकों के लिए आदरास्पद शब्द माना जाता है। ये भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण तथा पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी थे—इति श्रीपरमर्षिभारद्वाजपाशुपताचार्यश्रीमदुद्योतकरकृतौ न्यायवार्त्तिके पञ्चमोऽध्यायः ॥

आधारग्रन्थ—१. इण्डियन फिलॉसफी-भाग २ डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ३. भारतीयदर्शन—डॉ० उमेश मिश्र ४ हिन्दी तर्कभाषा—आ० विश्वेश्वर ५ हिन्दी न्यायकुसुमाञ्जलि—आ० विश्वेश्वर ।

ऊरुभङ्ग—यह महाकवि भास विरचित नाटक है। 'महाभारत' की कथा के आधार पर इसमे भीम द्वारा दुर्योधन के उरुभङ्ग की कथा वर्णित है। नाटक की विशिष्टता इसके दुःखान्त होने के कारण है। इसमें एक ही अंक है और समय तथा स्थान की अन्विति का पूर्णरूप से पालन किया गया है। कुरुराज दुर्योधन एवं भीमसेन के गदा-युद्ध के वर्णन में वीर एवं करुणरस की पूर्ण व्याप्ति हुई है। भीम एवं दुर्योधन की दर्पोक्तियों में वीररस दिखाई पडता है तो गांधारी, धृतराष्ट्र आदि के विलाप मे करुण रस की व्याप्ति है। कवि ने दुर्योधन के चरित्र को अधिक प्रखर एवं उज्ज्वल बनाया है। उसके चरित्र मे वीरता के अतिरिक्त विनयशीलता भी दिखलाई पडती है, जो भास की नवीन कल्पना है। दुर्योधन एवं भीम के गदायुद्ध पर इस नाटक की कथावस्तु केन्द्रित है, अत इसका नामकरण सार्थक है। इसका नायक दुर्योधन है। नाटककार ने रंगमंच पर ही नायक की मृत्यु दिखलाई है जो शास्त्रीय दृष्टि से अनौचित्यपूर्ण है। कवि ने दुर्योधन के चरित्र को अधिक प्रखर एवं उज्ज्वल बनाया है।

आधारग्रन्थ—१. भासनाटकचक्रम् (हिन्दी अनुवाद सहित)—चौखम्बा प्रकाशन २. महाकवि भास—आ० बलदेव उपाध्याय ।

ऋक्तन्त्र—यह 'सामवेद' की कौथुमशाखा का प्रातिशाख्य है। ग्रन्थ की पुष्पिका में इसे 'ऋक्तन्त्रव्याकरण' कहा गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच प्रपाठकों में विभाजित है, जिसमें सूत्रों की संख्या २८० है। इसके प्रणेता शाकटायन हैं और यास्क तथा पाणिनि के ग्रन्थो में भी शाकटायन को ही इसका रचयिता माना गया है। प्राचीन आचार्यों ने 'ऋक्तन्त्र' के रचयिता के सम्बन्ध में मतवैभिन्य प्रकट किये है। भट्टोजिदीक्षित ने 'शब्दकौस्तुभ' में 'ऋक्तन्त्र' का रचयिता औदव्रजि को माना है तथा उनका एक सूत्र भी उद्धृत किया है। पर आधुनिक विद्वान् औदव्रजि को व्यक्तिगत नाम एवं शाकटायन को गोत्रज नाम मान कर दोनों में समन्वय स्थापित करते हैं। [दे० वैदिक

साहित्य और संस्कृति पृ० ३०९] इसमे पहले अक्षर के उदय तथा प्रकार का वर्णन कर व्याकरण के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो के लक्षण दिये गए है। अक्षरो के उच्चारण, स्थान-विवरण एवं सन्धि का विस्तृत वर्णन है। 'गोभिलसूत्र' के व्याख्याता भट्टनारायण के अनुसार इसका सम्बन्ध राणायनीय शाखा के साथ है। [डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा टीका के साथ १९३४ ई० मे लाहौर से प्रकाशित]

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय।

ऋग्वेद—यह वैदिक वाङ्मय का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। भारतीय प्राचीन आर्यों के धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, कला तथा साहित्यविषयक उपलब्धियो का एकमात्र स्रोत यही ग्रंथ है। इसके सम्बन्ध मे मैक्समूलर का कहना है कि महीतल में जबतक गिरि और सरिताएँ विद्यमान हैं तबतक 'ऋग्वेद' की महिमा बनी रहेगी। [दे० मैक्समूलर]

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावदृग्वेदमहिमा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

संहिताओ मे 'सामवेद' और 'यजुर्वेद' का अधिक सम्बन्ध तो यज्ञो मे है, किन्तु 'ऋग्वेद' नाना दृष्टियो से अधिक महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य मनीषियो के अनुसार 'ऋग्वेद' भाषा एवं भाव की दृष्टि से अन्य वेदो से अधिक मूल्यवान् है। भारतीय विद्वानो के अनुसार इसकी महत्ता गूढ दार्शनिक विचारो एवं अभ्यहितत्व की दृष्टि से है। प्राचीन ग्रन्थों ने भी इसकी महत्ता मुक्तकण्ठ मे प्रतिपादित की है। 'तैत्तिरीयसंहिता' मे कहा गया है कि 'साम' एवं 'यजुः' के द्वारा जो यज्ञानुष्ठान किया जाता है, वह शिथिल होता है, किन्तु 'ऋग्वेद' के द्वारा विहित विधान दृढ होता है।

यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते।
शिथिलं तत्, यद् ऋचा तद् दृढमिति॥

तैत्तिरीय संहिता (६।५।१०।३)

इसकी कई ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह वैदिक साहित्य मे उच्चस्थान का अधिकारी है। इसमे ऋषियो का स्वतन्त्र चिन्तन है, किन्तु अन्य वेदो में इन बातों का सर्वथा अभाव है। 'यजु.' और 'सामवेद' 'ऋग्वेद' की विचारधारा से पूर्णतः प्रभावित हैं। 'सामवेद' की ऋचाएँ 'ऋग्वेद' पर पूर्णत· आश्रित है, उनका कोई पृथक् अस्तित्व नही है। अन्यान्य संहिताये भी 'ऋग्वेद' के आधार पर पल्लवित हैं। यही नहीं, ब्राह्मणो मे जितने विचार आये है, उनका मूल रूप 'ऋग्वेद संहिता' मे ही मिलता है। आरण्यको और उपनिषदो मे जितने आध्यात्मिक चिन्तन है उन सबका आधार 'ऋग्वेद' है। उनका निर्माण 'ऋग्वेद' के उन अंशों से हुआ है जो पूर्णतः चिन्तनप्रधान हैं। ब्राह्मणों मे नवीन मत की स्थापना नहीं है और न स्वतन्त्र चिंतन का प्रयास है। उनमें 'ऋग्वेद' के ही मन्त्रो की विधि तथा भाषा की छानबीन की गयी है एवं ईश्वरसम्बन्धी विचारों को पल्लवित किया गया है। विषय की दृष्टि से भी 'ऋग्वेद' का महत्त्व बढ़ा हुआ है। 'सामवेद' के सभी सूक्त ऋग्वेद के है। थोड़े-से मन्त्र इधर-उधर के हैं। अन्तर इतना ही है कि जहाँ 'ऋग्वेद' पठनीय है वहाँ

'सामवेद' गेय है। 'यजुर्वेद' में 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का यज्ञ में उपयोग किया जाता था। इसमें गद्यमय जो सूक्त प्राप्त होते हैं, वे ही विषय की दृष्टि से नवीन हैं। 'अथर्ववेद' में मारण, मोहन और उच्चाटन आदि मन्त्रों एवं जादू-टोनों का वर्णन है। कर्म, भक्ति या ज्ञान की दृष्टि से अन्य वेदों में कोई नवीनता नहीं है। ऋग्वेद में विचारों की मौलिकता, स्वतन्त्र चिन्तन एवं प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन है। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों विचारधाराओं के सूत्र इसमे विद्यमान हैं। अतः प्राचीनता, विषय, ज्ञान, विस्तार तथा भाषा की दृष्टि से 'ऋग्वेद' वैदिक वाङ्मय का सुमेरु सिद्ध होता है।

ऋग्वेद के विभाग—ऋक् का अर्थ है 'स्तुतिपरक मन्त्र' तथा 'वेद' का अर्थ ज्ञान होता है। 'ऋग्वेद' स्तुतिपरक मन्त्रो का ज्ञान है। इसमे मुख्यतः देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत है। इसके दो प्रकार के विभाग हैं—अष्टकक्रम तथा मण्डलक्रम। अष्टकक्रम के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ भागों में विभाजित किया जाता है जिन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय है। इस प्रकार पूरे ग्रन्थ में ६४ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय के भी अवान्तर विभाग किये गए हैं, जिन्हें 'वर्ग' कहा जाता है। ऋचाओ का समूह ही वर्ग कहलाता है, किन्तु वर्गों में ऋचाओ की संख्या नियत नहीं है। सम्पूर्ण वर्गों की सख्या दो हजार छह है।

'ऋग्वेद' का दूसरा विभाग अत्यन्त महत्त्वशाली है, साथ ही इसे ऐतिहासिक एवं अधिक वैज्ञानिक माना जाता है। इस क्रम के अन्तर्गत समग्र वेद दस खण्डों मे विभक्त है, जिन्हे 'मण्डल' कहते है। इसीलिए निरुक्तादि ग्रन्थो मे इसकी संख्या 'दशतयी' है। मण्डलों को 'अनुवाक्' के अन्तर्गत बाँटा गया है एवं प्रत्येक अनुवाक् के भीतर 'सूक्त' आते हैं। सूक्तों के अन्तर्गत 'ऋचाएँ' है, जिन्हें 'मन्त्र' भी कहा जाता है। 'ऋग्वेद' के शुद्ध पाठ को अक्षुण्ण रखने के लिए एवं उसकी वैज्ञानिकता पर आँच न आने देने के लिए प्राचीन ऋषियो ने मंत्रो की ही नहीं, अक्षरो तक की गणना कर डाली है। महर्षि कात्यायन ने अपने ग्रन्थ 'सर्वानुक्रमणी' में समस्त मन्त्रो की गणना कर एकत्र किया है। 'ऋग्वेद' के दसो मण्डलो मे पचासी अनुवाक् है तथा सूक्तो की संख्या एक हजार सत्रह है। इनके अतिरिक्त ग्यारह सूक्त ऐसे हैं, जिन्हें 'बाल्यखिल्य' कहा जाता है। सूक्तों की ऋचाओ की संख्या १०५८०) है, शब्दों की एक लाख तिरपन हजार आठ सौ छब्बीस और अक्षर चार लाख बत्तीस हजार है। खिल (परिशिष्ट) सूक्तो का न तो पदपाठ मिलता है और न इनकी अक्षर-गणना की गयी है। खिल का अभिप्राय परिशिष्ट या पीछे जोड़े गए मन्त्रों से है। ये सूक्त अष्टम मण्डल के ४९ से ५९ सूक्त तक हैं।

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्॥
शाकल्यदृष्टे पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्रयुक्तम्।
शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि॥

अनुवाकानुक्रमणी श्लोक ४३,४५

'चत्वारि शतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि' अनुवाक् का अन्त ।

'ऋग्वेद' में 'ऋग्' मन्त्रों की गणना अत्यन्त जटिल समस्या है जिसका समाधान प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों ने विभिन्न ढंग से किया है ।

वंश मण्डल—पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद' में प्राचीन एवं अर्वाचीन मन्त्रो का संग्रह है । ये लोग सम्पूर्ण मण्डलों को प्राचीन नहीं स्वीकार करते । इनके अनुसार द्वितीय से लेकर सप्तम मण्डल तक का भाग प्राचीन है तथा शेष भाग अर्वाचीन है । 'ऋग्वेद' के प्रत्येक मण्डल का सम्बन्ध किसी-न-किसी ऋषि अथवा उनके वंशजो से है । द्वितीय के ऋषि गृत्समद, तृतीय मण्डल के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पञ्चम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज एवं सप्तम के वसिष्ठ है । अष्टम मण्डल का सम्बन्ध कण्व एवं अंगिरा वंश से है । नवम मण्डल के समग्र मन्त्र 'सोम' देवता से सम्बद्ध हैं । सोम को पवमान कहा गया है, अतः सोम से सम्बद्ध मन्त्रो के समुदाय को पवमान मण्डल कहा जाता है । दशम मण्डल सबसे अर्वाचीन है । इसकी नवीनता का प्रमाण इसकी भाषा, छन्द, नवीन दार्शनिक तथ्यों की कल्पना एवं नवीन देवता है । भारतीय दृष्टि से इन मण्डलों का संकलन एवं विभाजन एक व्यक्ति द्वारा किया गया है ।

'ऋग्वेद' की शाखायें—इस वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतैक्य नही है । महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार 'ऋग्वेद' की २१ शाखाये हैं—'चत्वारो वेदाः साङ्गा सरहस्या बहुधा भिन्नाः । एकशतमध्वर्युशाखाः । सहस्रवर्त्मा सामवेदः । एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् । नवधार्थं वर्णोविदः । पस्पशाह्निक । चरणव्यूह के अनुसार इनमे पाँच शाखायें प्रधान हैं—शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शाख्यायन तथा माण्डू-कायन । इन शाखाओं की भी कई उपशाखाये थी, किन्तु इस समय शाकल शाखा की एकमात्र शैशरीय उपशाखा ही प्राप्त होती है । शाकल नामक ऋषि ही शाकल शाखा के मन्त्रपाठों के प्रवर्त्तक थे । इन्होने मन्त्रो के पदो में सन्धि-विच्छेद करके स्मरण रखने की रीति चलाई थी । 'ऋग्वेद' की प्रचलित संहिता शाकलशाखा ही है । शेष शाखाएँ नही मिलती तथा उनके उल्लेख मात्र प्राप्त होते है । शाकलशाखा वैदिक साहित्य का शिरोरत्न है । 'सामवेद' की कौथुमशाखा के सारे मन्त्र (केवल ७५ मन्त्रो को छोड कर) शाकलशाखा के ही है । 'कृष्ण यजुर्वेद' की तैत्तिरीय-शाखा तथा 'शुक्ल यजुर्वेद' की वाजसनेय संहिता के अधिकाश मन्त्र शाकलशाखा के ही है तथा 'अथर्ववेद' की शौनक संहिता के १२०० मन्त्र भी शाकलशाखा में पाये जाते हैं ।

विषयविवेचन—'ऋग्वेद' मे नाना प्रकार की प्राकृतिक शक्तियो एवं देवताओं के स्तोत्रो का विशाल संग्रह है । विभिन्न सुन्दर भावो से ओतप्रोत उद्गारों में अपनी इष्टसिद्धि के निमित्त देवताओं से प्रार्थना की है । देवताओ में अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि की स्तुति में अधिक मन्त्र कहे गए है । देवियों मे उषा की अधिक स्तुति की गयी है । उषा की स्तुति में काव्य की सुन्दर छटा प्रदर्शित की गयी है । इनके अतिरिक्त 'ऋग्वेद' के प्रधान देवता हैं—सविता, पूषा, मित्र, विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य

आदि। यास्क ने 'निरुक्त' में वैदिक देवताओं के तीन प्रकार माने हैं—[दे० निरुक्त] पृथ्वीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय तथा द्युस्थानीय। [दे० वैदिक देवता] पृथ्वीस्थानीय प्रधान देवता है—अग्नि, अन्तरिक्षस्थानीय प्रधान देवता वायु एवं इन्द्र हैं तथा द्युस्थानीय सूर्य है। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में बताया गया है कि पृथ्वीस्थानीय ११, अन्तरिक्षस्थानीय ११ तथा द्युस्थानीय ११ मिलकर देवताओ की संख्या ३३ है। [१।१३९।११] इसमें दो स्थानो पर देवताओं की संख्या ३३३९ दी गयी है—त्रीणि शतात्रीसहस्राण्यग्नि त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। ३।९।९ तथा १०।५२।६ सायण के अनुसार देवता तो ३३ है पर उनकी महिमा बतलाने के लिए ३३३९ देवों का उल्लेख है। [दे० सायण] 'ऋग्वेद' मे श्रद्धा, मन्यु, धातृ, अदिति तथा ऋभु, अप्सरा, गन्धर्व, गो, ओषधि आदि की भी प्रार्थनाएँ की गयी हैं। 'जिस सूक्त के ऊपर जिस देवता का नाम लिखा रहता है उस सूक्त मे उसी देवता का प्रतिपादन और स्तवन है। किन्तु जहाँ जल, ओषधि आदि की स्तुति की गयी है वहाँ जलादि वर्णनीय हैं और उनके अधिष्ठाता देवतास्तवनीय है। आर्य लोग प्रत्येक जड पदार्थ का एक अधिष्ठाता देवता मानते थे। इसीलिए उन्होने जड की स्तुति चेतन की भाँति की है'। वैदिकसाहित्य पृ० ८ पब्लिकेशन डिवीजन। ऋग्वेद में अनेक देवताओ की पृथक्-पृथक् स्तुति की गयी है, जिसे देख कर अनेक आधुनिक विद्वानो ने यह सन्देह प्रकट किया है कि तत्कालीन ऋषियों को ईश्वर का ज्ञान नहीं था। पर यह धारणा आधारहीन है। एक मन्त्र में कहा गया है कि देवों की शक्ति एक है, दो नहीं—महद्देवानामसुरत्वमेकम्।

दानस्तुति—'ऋग्वेद' मे कतिपय ऐसे मन्त्र हैं जिन्हे 'दानस्तुति' कहते है। कात्यायन की 'ऋक् सर्वानुक्रमणी' मे केवल २२ सूक्तो का कथन है, पर आधुनिक विद्वानो के अनुसार ६८ दानस्तुतियाँ है। डॉ० मैक्डोनल का कथन है कि 'ऋग्वेद मे कुछ लौकिक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें ऐतिहासिक सन्दर्भ निहित हैं। इन्हे दानस्तुति कहते है। ये स्तुतियाँ ऋत्विजो के द्वारा अपने राजाओ के उन उदार दानो के प्रशंसात्मक कथन हैं जो यज्ञ के अवसर पर दिये गए थे। उनमे काव्यशैली की दृष्टि से चमत्कार कम है। ऐसा लगता है कि वे कुछ बाद की रचना हों, कारण, ऐसे सूक्त केवल संहिता के प्रथम और दशम मण्डल मे तथा अष्टम मण्डल के बालखिल्य भाग मे ही मिलते हैं। इस प्रकार की स्तुतियो मे दो या तीन ही मन्त्र हैं और ये आठवें मण्डल के इतर विषय पर दिये हुए सूक्तो के परिशिष्ट रूप में पाये जाते हैं। यद्यपि इन सूक्तों का मुख्य विषय दानीय वस्तु तथा प्रदत्त राशि का उल्लेख मात्र है तथापि प्रसंगवश उसमे दाताओ के कुल एवं वंश-परम्परा सम्बन्धी तथा वैदिक जातियों के नाम और घर का भी वर्णन मिलता है, जो ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करता है। दान की राशि कहीं-कहीं पर अत्युक्तिपूर्ण है; जैसे, एक दाता ने षष्टि सहस्र गोदान किया था। तथापि हम मान सकते हैं कि दान बहुत अधिक होता था और वैदिक युग के राजाओ के पास अतुल धन सम्पत्ति होती थी।' संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ११८–११९। 'दानस्तुति' में दान की महिमा का ओजस्वी वर्णन है। ऋग्वेद

के एक मन्त्र में कहा गया है कि जो मनुष्य अपने धन का दान न कर स्वयं अपने लिए उपयोग करता है, वह पाप को खाता है। इन दानस्तुतियों के स्वरूप एवं तात्पर्य को समझने में विद्वानों ने गहरा मतभेद प्रकट किया है। आधुनिक युग के विद्वान् इन्हें किसी दानी राजा के धन से आप्यायित ऋषियों के उद्गार मानते हैं, किन्तु भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय मानती चली आ रही है, इसलिए आधुनिक विद्वानों के कथन को वह युक्तियुक्त नहीं मानती। उनके अनुसार दानस्तुतियों के आधार पर आगे चल कर आख्यानों की कल्पना कर ली गयी है। प्राचीन मन्त्र व्याख्याओं का अध्ययन करते हुए अनेक भारतीय विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये दानस्तुतियाँ अनेक स्थानों पर वास्तविक दानस्तुति न होकर उसका आभास-मात्र है। निरुक्तकार एवं दुर्गाचार्य प्रभृति टीकाकारों ने इन्हें दानस्तुति माना ही नहीं है [दे० युधिष्ठिर मीमांसक—ऋग्वेद की कतिपय दानस्तुतियों पर विचार पृ० ३–७]

संवादसूक्त—ऋग्वेद के कतिपय संवादसूक्तों में नाटक एवं काव्य के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। कथोपकथन की प्रधानता के कारण इन्हें संवादसूक्त कहा जाता है। इन संवादों में भारतीय नाटक एवं प्रबन्धकाव्यों के सूत्र मिलते हैं। ऐसे सूक्तों की संख्या २० के लगभग है जिनमें तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—पुरूरवा-उर्वशी-संवाद (१०।९५), यम-यमी-संवाद (१०।१०) तथा सरमापणि-संवाद (१०।१३०)। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद में रोमांचक प्रेम का निदर्शन है तो यम-यमी-संवाद में यमी द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभन देने पर भी यम का उसमें अनैसर्गिक सम्बन्ध स्थापित न करने का वर्णन है। दोनों ही संवादों का साहित्यिक महत्त्व अत्यधिक है तथा ये हृदयावर्जक एवं कलात्मक हैं। तृतीय संवाद में पणि लोगों द्वारा आर्य लोगों की गाय चुरा कर अंधेरी गुफा में डाल देने पर इन्द्र का अपनी शुनी सरमा को उनके पास भेजने का वर्णन है, जो आर्यों के शौर्य एवं पौरुष का वर्णन कर उन्हें धमकाती है। इसमें तत्कालीन समाज की एक झलक दिखलाई पड़ती है।

ऋग्वेद में अनेक लौकिक सूक्त हैं जिनमें लौकिक या ऐहिक विषयों तथा यन्त्र-मन्त्र की चर्चा है। ऐसे सूक्त दशम मण्डल में हैं और इनकी संख्या तीस से अधिक नहीं है। दो छोटे-छोटे ऐसे भी सूक्त हैं जिनमें शकुनशास्त्र का वर्णन है। एक सूक्त राजयक्ष्मा से विमुक्त होने के लिए उपदिष्ट है। लगभग २० ऐसे सूक्त हैं, जिनका सम्बन्ध सामाजिक रीतियों, दाताओं की उदारता, नैतिक प्रश्न तथा जीवन की कतिपय समस्याओं से है। दशम मण्डल का ८५ वां सूक्त विवाह सूक्त है, जिसमें विवाह-सम्बन्धी कुछ विषयों का वर्णन है तथा ५ सूक्त ऐसे हैं जो अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बद्ध हैं। ऐहिक सूक्तों में ही चार सूक्त नीतिपरक हैं, जिन्हें हितोपदेशसूक्त कहा जाता है।

दार्शनिकसूक्त—ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों के अन्तर्गत नासदीयसूक्त (१०।१२९) पुरुषसूक्त (१०।९०), हिरण्यगर्भसूक्त (१०।१२१) तथा वाक्सूक्त (१०।१४५) आते हैं। इनका सम्बन्ध उपनिषदों के दार्शनिक विवेचन से है। नासदीयसूक्त में भारतीय रहस्यवाद का प्रथम आभास प्राप्त होता है तथा दार्शनिक चिंतन का अलौकिक रूप दृष्टिगत होता है। इसमें पुरुष के विश्वव्यापी रूप का वर्णन है।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर—वेबर (चौखम्बा १९६६ ई०) २. हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट संस्कृत लिटरेचर—मैक्समूलर ३ रिलीजन ऑफ दी वेद—ब्लूमफील्ड ४. लेक्चर्स ऑन ऋग्वेद—घाटे (पूना) ५. वैदिक एज—भारतीय विद्याभवन, बम्बई ६. प्राचीन भारतीय साहित्य—भाग १, खण्ड १ विन्टरनित्स ७. वैदिकदर्शन—कीथ (हिन्दी अनुवाद) ८. संस्कृत साहित्यक का इतिहास—मैक्डोनल ९. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग—१—पं० भगवद्दत्त १०. वैदिक साहित्यक—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी ११. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय १२. ऋग्वेद रहस्य—श्री अलगूराय शास्त्री १३. वैदिक सम्पत्ति—पं० रघुनन्दन शर्मा १४ वेद-रहस्य—श्री अरविन्द (हिन्दी अनुवाद) १५. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति — म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी १६. वेदविद्या—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल १७. वेदिक बिब्लोओग्राफी—भाग १, २—आर० एन० दाण्डेकर १८ वैदिक इण्डिया—लूई रेनो १९ वैदिक संस्कृति—डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' २०. वैदिक संस्कृति—हिन्दी-समिति, लखनऊ २१. वैदिक साहित्य—पब्लिकेशन, डिवीजन।

ऋतुसंहार—यह महाकवि कालिदास रचित ६ सर्गों का लघुकाव्य है, जिसके प्रत्येक सर्ग मे एक ऋतु का वर्णन है। इसमे कवि ने ऋतुओ का मनोरम वर्णन उद्दीपन के रूप मे किया है। कतिपय विद्वानो के अनुसार यह महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य-कृति है क्योकि इसमे महाकवि की अन्य काव्यो मे उपलब्ध होनेवाली 'उच्चाशयता एवं अभिव्यक्ति की चारुता' के दर्शन नहीं होते। कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए छह ऋतुओं का वर्णन किया है। इसका प्रारम्भ ग्रीष्म की प्रचण्डता के वर्णन से हुआ है और समाप्ति हुई है वसन्त की मादकता में। इसके प्रत्येक सर्ग मे १६ से २८ तक की श्लोक-संख्या प्राप्त होती है। ऋतुसंहार की भाषा सरल एवं बोधगम्य है तथा शैली मे प्रसाद गुण की छटा प्रदर्शित हुई है। विद्वानो ने भाषाशैली की सहजता, उद्दाम-प्रेमभावना का चित्रण, ध्वनि का अभाव एवं नैतिक गुणराहित्य के कारण इसे कालिदास की रचना मानने मे सन्देह प्रकट किया है। पर, कवि की युवावस्था की रचना होने के कारण उपर्युक्त सभी दोषो का मार्जन हो सकता है। इसके सम्बन्ध मे अन्य आक्षेप है—मल्लिनाथ का इस पर टीका न लिखना एव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे इसका उद्धरण नही मिलना। इन आक्षेपो का कीथ महोदय ने युक्तियुक्त उत्तर दिया है। 'वास्तव मे ऋतुसंहार कालिदास के सर्वथा योग्य है और यदि वह काव्य उनकी कृति न ठहराया जाय तो उनकी प्रसिद्धि को यथार्थ रूप मे हानि पहुँचेगी। मल्लिनाथ ने उनके अन्य तीन काव्यो पर टीका लिखी, परन्तु इस पर नहीं लिखी, इस आपत्ति का समाधान इस विचार से हो जाता है कि इसकी सरलता के कारण उस विद्वान् टीकाकार को टीका लिखना खिलवाड के समान प्रतीत हुआ। अलंकारशास्त्र के लेखक ऋतुसंहार में से उद्धरण नहीं देते, इस बात का भी सीधा उत्तर इसी तथ्य में निहित है, ये लेखक साधारण वस्तु मे जरा भी रुचि प्रदर्शित नहीं करते और उदाहरणों को दिखाने के लिए वे बाद की कविताओं से भरपूर सामग्री प्राप्त कर सकते थे।' संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १०१, १०२। वत्सभट्टि के

ग्रन्थ में ऋतुसंहार के दो श्लोक उद्धृत हैं तथा उसने इसकी उपमाएँ भी ग्रहण की हैं। इससे उसकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। वस्तुतः ऋतुसंहार महाकवि की प्रामाणिक रचना है। षड्ऋतुओं के वर्णन मे कवि ने केवल बाह्यरूप का ही चित्रण नहीं किया है परन्तु अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का प्रदर्शन करते हुए प्रत्येक ऋतु की विशिष्टताओं का अंकन किया है।

आधारग्रन्थ—१ कालिदास ग्रन्थावली–सम्पादक आ० सीताराम चतुर्वेदी २. कालिदास के काव्य–पं० रामप्रसाद शास्त्री ३ संस्कृत साहित्य का इतिहास–श्री ए० बी० कीथ ४. महाकवि कालिदास–डॉ० रमाशंकर तिवारी।

ऋषिपुत्र—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनके संबंध में कोई प्रामाणिक विवरण प्राप्त नहीं होता। इन्हे जैनधर्मानुयायी ज्योतिषी माना जाता है। 'कैटलोगस कैटा-गोरूम' (आफ्रेट कृत) मे इन्हे आचार्य गर्ग (प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री) का पुत्र कहा है। गर्गाचार्य के सम्बन्ध मे यह श्लोक प्रसिद्ध है।

जैन आसीज्जगद्वन्द्यो गर्गनामा महामुनिः। तेन स्वयं हि निर्णीतं यं सत्पाशात्रकेवली ॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम्। प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मना ॥

ऋषिपुत्र का लिखा हुआ 'निमित्तशास्त्र' नामक ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध है तथा इनके द्वारा रचित एक संहिता के उद्धरण 'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पली टीका मे प्राप्त होते है। ये वराहमिहिर (ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान्) के पूर्ववर्त्ती ज्ञान होते हैं। वाराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' के २६ वे अध्याय मे ऋषिपुत्र का प्रभाव स्वीकार किया है—मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरा चकार। [दे० वराह-मिहिर]

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष–डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

ऐतरेय आरण्यक—यह ऋग्वेद का आरण्यक तथा [दे० आरण्यक] ऐतरेय-ब्राह्मण का परिशिष्ट भाग है। इसमे पाँच आरण्यक है और उन्हे स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है। प्रथम आरण्यक मे महाव्रत का वर्णन है जो 'ऐतरेयब्राह्मण' के 'गवामयन' का ही एक अश है। द्वितीय प्रपाठक के प्रथम तीन अध्यायों मे उक्थ, प्राणविद्या एवं पुरुष का वर्णन है। तृतीय आरण्यक को 'संहितोपनिषद्' भी कहते है। इसमे शाकल्य एवं माण्डूय के मत वर्णित है और संहिता, पद, क्रमपाठो का वर्णन तथा स्वर-व्यंजनादि के स्वरूपो का विवेचन है। इस अंश को प्रातिशाख्य और निरुक्त से भी पूर्ववर्त्ती माना गया है। इसमे निर्भुज (संहिता) प्रतृण्ण (पद), सन्धि, संहिता आदि पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग हुआ है। चतुर्थ आरण्यक अत्यन्त छोटा है। अन्तिम आरण्यक मे निष्केवल्य शस्त्र का वर्णन है। पाँच आरण्यको मे प्रथम तीन के ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वलायन और पंचम के लेखक शौनक हैं। डॉ० ए० बी० कीथ के अनुसार इसका समय वि० पू० षष्ठ शतक है।

क—इसका प्रकाशन सायणभाष्य के साथ आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली संख्या ३८, पूना से १८९८ ई० में हुआ था।

ख—डॉ० कीथ द्वारा आंग्लानुवाद आक्सफोर्ड से प्रकाशित।

ग—आर० मित्र द्वारा सम्पादित एवं बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता से १८७६ ई० में प्रकाशित।

आधारग्रन्थ— वैदिक साहित्य और संस्कृति—आ० बलदेव उपाध्याय।

ऐतरेय उपनिषद्— यह ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक का चौथा, पाँचवाँ और छठा अध्याय है। इसमे तीन अध्याय हैं और सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्यात्मक है। एकमात्र आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन ही इसका प्रतिपाद्य है। प्रथम अध्याय मे विश्व की उत्पत्ति का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि आत्मा से ही सम्पूर्ण जडचेतनात्मक सृष्टि की रचना हुई है। प्रारम्भ मे केवल आत्मा ही था और उसी ने सर्वप्रथम सृष्टि-रचना का संकल्प किया। १।१।२

द्वितीय अध्याय में जन्म, जीवन एवं मृत्यु मनुष्य की तीन अवस्थाओं का वर्णन है। अन्तिम अध्याय मे 'प्रज्ञान' की महिमा का बखान करते हुए आत्मा को उसका (प्रज्ञान) रूप माना गया है। यह प्रज्ञान ब्रह्म है।

प्रज्ञाननेत्रो लोकः। प्रज्ञा प्रतिष्ठा। प्रज्ञानं ब्रह्म। ५।३

मानव मे आत्मा के प्रवेश का इसमें सुन्दर वर्णन है। परमात्मा ने मनुष्य के शरीर की सीमा (शिर) को विदीर्ण कर उसके शरीर में प्रवेश किया। उस द्वार को 'विदृति' कहते है। यही आनन्द या ब्रह्म-प्राप्ति का स्थान है।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति–पं० बलदेव उपाध्याय।

ऐतरेय ब्राह्मण— यह ऋग्वेद से सम्बद्ध ब्राह्मण है। इसके रचयिता हैं ऋषि महिदास ऐतरेय। ऐतरेय का अर्थ है ऋत्विज्। इसमे ४० अध्याय है, जो पाँच-पाँच परिच्छेदों की आठ पञ्चिकाओ मे विभक्त हैं। इसमें कण्डिकाओं की संख्या २८५ है तथा होतृ नामक ऋत्विज् के विशेष कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रथम और द्वितीय पञ्चिका मे 'अग्निष्टोम' यज्ञ मं होतृ के विधि–विधान एवं कर्त्तव्य वर्णित है। तृतीय और चतुर्थ पञ्चिका मे प्रातः सायं सवन विधि देकर अग्निहोत्र का प्रयोग बतलाया गया है। इनके अतिरिक्त अग्निष्टोम की विकृतियों–उक्थ, अतिरात्र एवं षोडशी–नामक यागो का भी संक्षिप्त विवेचन है। चतुर्थ पञ्चिका में द्वादशाह यागो का एवं षष्ठ मे सप्ताहो तक समाप्त होने वाले सोम यागों एवं उनके होता तथा सहायक ऋत्विजों के कार्य वर्णित है। सप्तम पञ्चिका में राजसूय का वर्णन एवं शुनःशेप की कहानी दी गयी है। अष्टम पञ्चिका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे 'ऐन्द्र महाभिषेक' का वर्णन करते हुए चक्रवर्त्ती राजाओं के महाभिषेक का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का प्रधान विषय सोमयाग का प्रतिपादन है। इसमें अग्निहोत्र एवं राजसूय का भी विवेचन किया गया है। इसके अन्तिम १० अध्याय प्रक्षिप्त माने जाते है। इस पर तीन भाष्य लिखे गए हैं—सायणकृत भाष्य (यह आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना से प्रकाशित है), षड्गुरुशिष्य-रचित 'सुखप्रदा' नामक लघुव्याख्या (इसका प्रकाशन अनन्तशयन ग्रन्थमाला सं० १४९ त्रिवेन्द्रम से १९४२ ई० में हुआ है), गोविन्द स्वामी की व्याख्या (अप्रकाशित)।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति–पं० बलदेव उपाध्याय।

ऐतिहासिक महाकाव्य—संस्कृत मे इतिहास को आधार बना कर लिखे गए काव्यों की संख्या बहुत अधिक है। ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर निर्मित महाकाव्य पृथक् वर्ग का साहित्य उपस्थित करते है। 'राजकीय दान और समारोहों के अवसर पर रचित प्रशंसात्मक काव्यों से ही इस वर्ग की उत्पत्ति हुई थी जो बाद मे शैली और काव्य-रूप के प्रभाव के कारण महाकाव्य के आकार तक पहुँच गए।' संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास पृ० २००-२०१। कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के यश को स्थायी बनाने के लिए उनके वृत्त को मनोरम शैली मे लिखा है। इन काव्यो की गणना शुद्ध साहित्य मे ही होती है, इतिहास मे नही। इनमे किसी आश्रयदाता विशेष के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन होता है अथवा उनकी वंश-परम्परा की कहानी प्रस्तुत की जाती है। इन ग्रन्थो मे ऐतिहासिक तथ्यो की अपेक्षा भाषा-सौष्ठव तथा वर्णवैचित्र्य का प्राधान्य रहता है। ऐतिहासिक महाकाव्यो के रचयिता अधिकाशतः राज्याश्रित होते थे, अत. वे ऐसी घटनाओ या तथ्यों के समावेश करने मे पूर्णतया स्वतन्त्र नही थे, जो उनके आश्रयदाता की रुचि के प्रतिकूल हो। इनमे मुख्यत. उच्चकोटि का काव्य-तत्त्व विद्यमान रहता था। अभिलेखों मे कतिपय राजाओ की उत्कीर्ण प्रशस्तियाँ इतिहास का सुन्दर रूप प्रस्तुत करती हैं। ऐसे ऐतिहासिक काव्यो मे पद्मगुप्त परिमल रचित 'नवसाहसाङ्कचरित', बिल्हण का 'विक्रमाकदेवचरित', कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' आदि ग्रन्थ उत्कृष्ट कोटि के है। 'विक्रमाकदेवचरित' मे धारा के प्रसिद्ध राजा भोजराज के पिता सिन्धुराज एवं शशिप्रभा की प्रणयकथा वर्णित है। इसकी रचना १००५ ई० मे हुई थी। कल्हण की 'राजतरगिणी' मे आठवी शताब्दी के शंकुक कवि का 'भुवन अभ्युदय' नामक महाकाव्य का उल्लेख है, जो उपलब्ध नही होता। इसमे मम्म एव उत्पल दो सामन्तों के बीच हुए दारुण संघर्ष का चर्चा थी। सम्भवतः यह ग्रन्थ प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य होगा। महाकवि बिल्हण ने १०८८ ई० मे 'विक्रमाकदेवचरित' नामक महाकाव्य की रचना की। [दे० बिल्हण] इसमे विक्रमादित्य एवं उनके वंश का विस्तृत वर्णन है तथा ऐतिहासिक विवरणों एवं तथ्यो की दृष्टि से यह उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। महाकवि कल्हणकृत 'राजतरगिणी' संस्कृत ऐतिहासिक काव्य की महान् उपलब्धि है। इसमे काश्मीर के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं भौगोलिक तथ्यो का रसात्मक वर्णन है। इसका रचनाकाल १०५० ई० है। [दे० कल्हण] जैन आचार्य हेमचन्द्रकृत 'कुमारपालचरित' सुन्दर ऐतिहासिक काव्य है। इसमे कुमारपाल तथा उनके पूर्वज गुजरात के राजाओ का वर्णन है। इनका समय १०८९ मे ११७३ ई० है। [दे० हेमचन्द्र] विक्रम की तेरहवीं शताब्दी मे सोमेश्वर ने 'सुरथोत्सव' नामक महाकाव्य मे गुजराज-नरेश वस्तुपाल का चरित वर्णित किया था। अरिसिह कृत 'सुकृतसंकीर्त्तन' नामक काव्य में राजा वस्तुपाल का जीवनचरित ग्यारह सर्गों मे वर्णित है। रणथम्भौर के राजा हम्मीर के शौर्य का चित्रण नयचन्द्रसूरि नामक कवि ने 'हम्मीर महाकाव्य' में किया है। [दे० हम्मीरमहाकाव्य] जयानक कवि कृत 'पृथ्वीराजविजय' नामक महाकाव्य उनकी समसामयिक रचना है [दे० पृथ्वीराजविजय] सर्वानन्द का

'जगडूचरित' एक जैन धर्मात्मा सेठ का प्रशस्तिकाव्य है। इसकी रचना सात सर्गों में हुई है। इसमें एक साधारण व्यापारी की जीवन-गाथा वर्णित है, जिसने १२५६–५८ के बीच पड़े दुर्भिक्ष मे गुजरात-वासियो की अत्यधिक सहायता की थी। सोलहवीं शती मे रुद्रकवि ने मयूरगिरि के शासकों की प्रशस्ति मे 'राष्ट्रौढवंश' नामक काव्य लिखा था, जिसका प्रकाशन १९१७ ई० मे हुआ है। इसमें बीस सर्ग है। दो महिलाओ– तंजोर के राजा की पत्नी रामभद्राम्बा तथा गंगादेवी ने क्रमशः 'रघुनाथाभ्युदय' तथा 'मधुराविजय' नामक काव्यो की रचना की है। गंगादेवी ने 'मधुराविजय' में अपने पति की ही विजय-गाथा का गान किया है।

सोलहवी शती से बीसवी शती तक संस्कृत मे अनेक ऐतिहासिक काव्यों की रचना हुई है। उनका विवरण इस प्रकार है—रुद्रकवि ने द्वितीय काव्य 'जहाँगीर शाहचरित' लिखा है जिसमे आठ उल्लासों मे जहाँगीर की यशगाथा है। मिथिला के वैद्यनाथ नामक कवि ने १६ वीं शती मे 'ताराचन्द्रोदय' नामक महाकाव्य लिखा जिसमे बीस सर्ग है। इसमें मैथिलनरेश ताराचन्द्र का जीवनवृत्त है। इसी शती मे चन्द्रशेखर ने 'राजमुर्जनचरित' नामक महाकाव्य का बीस सर्गों मे प्रणयन किया। कवि विश्वनाथ कृत 'जगत्प्रकाश' काव्य सोलहवी शती मे लिखा गया है। इसमे राणकवंशी नरेश कामदेव तथा जगतसिंह का चौदह सर्गों में वर्णन है। सोलहवी शताब्दी के अन्तिम भाग मे वाणीनाथ कवि ने कच्छ के जामवंशी नरेशो का 'जामविजय' महाकाव्य मे वर्णन किया है। मुसलमानी राज्य की स्थापना के पश्चात् अनेक कवियो ने कई बादशाहों का जीवनवृत्त लिखा है। उदयराज कवि ने अपने 'राजविनोद' नामक काव्य मे सुल्तान मुहम्मद का प्रशस्तिगान किया है। रामराज कवि का 'महमूदचरित' भी एक प्रसिद्ध रचना है। कालिदास विद्याविनोद नामक कवि ने शिवा जी का जीवनवृत्त 'शिवाजी चरित' नामक काव्य मे प्रस्तुत किया है। १८ वी शती के पूर्वार्द्ध मे लक्ष्मीधर कवि ने 'अब्दुल्लाह चरित' की रचना की जिसमे अब्दुलाह नामक मन्त्री की कथा है। इसमे मुगल साम्राज्य की संध्या का यथार्थ चित्र अंकित है तथा लगभग २०० अरबी-फारसी शब्दो को संस्कृत रूप मे सयोजित किया गया है। अँगरेजी राज्य की स्थापना एवं प्रसार के पश्चात् अँगरेज राजाओ की प्रशस्ति मे कई ऐतिहासिक काव्य लिखे गए है। १८१३ ई० मे 'इतिहास-तमोमणि' नामक काव्यग्रन्थ मे अँगरेजों के भारतवर्ष पर आधिपत्य प्राप्त करने का वृत्तान्त वर्णित है। विनायक भट्ट कवि कृत 'अँगरेज-चन्द्रिका' १८०१ ई० में लिखी गयी, जिसमे अँगरेजी राज्य की स्थापना का वर्णन है। इस विषय के अन्य ग्रन्थ है—रामस्वामी राजा रचित 'राजाङ्गलमहोद्यान', राजवर्मा-लिखित 'आंग्लसाम्राज्य' तथा परवस्तुरंगाचार्य कृत 'आंग्लाधिराज-स्वागत'।

गणपति शास्त्री (जन्म १८६० ई०) ने विक्टोरिया की यशगाथा 'चक्रवर्तिनी-गुणमाला' नामक काव्य में वर्णित की है। विजयराघवाचार्य ने (जन्म १८८४ ई०) 'गान्धी माहात्म्य', 'तिलक वैदग्ध्य', तथा 'नेहरू-विजय' नामक ग्रन्थो की रचना कर महात्मा गान्धी, बालगंगाधर तिलक एवं पं० मोतीलाल नेहरू की राष्ट्रसेवाओ का वर्णन किया है। बंगाल के श्रीश्वर विद्यालंकार कवि ने विक्टोरिया के जीवन पर १२ सर्गों

में 'विजयिनी काव्य' की रचना की थी। गया (बिहार) के जिला स्कूल के शिक्षक पं० हरिनन्दन भट्ट कृत 'सम्राट्चरितम्' उत्कृष्ट कोटि का काव्य है, जिसमें पंचम जार्ज एवं मेरी का जीवनवृत्त वर्णित है [दे० सम्राट्चरितम्] पं० शिवकुमार शास्त्री (१८४८-१९१९ ई०) ने अपने ग्रन्थ 'लक्ष्मीश्वरप्रताप' में दरभंगा के राजाओं का वंशवृत्त उपस्थित किया है। संस्कृत में ऐतिहासिक काव्यों की रचना अभी भी होती जा रही है। पटना (बिहार) के प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० विष्णुकान्त झा ने देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के ऊपर 'राजेन्द्र-वंश-वृत्तम्' नामक काव्य की रचना की है। संस्कृत का ऐतिहासिक महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों, भाषागत सौष्ठव एवं कलात्मक वैभव के अतिरिक्त भावात्मक गरिमा के लिए प्रसिद्ध है और इसकी धारा अद्यावधि मन्द नहीं पड़ने पायी है।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० ए० बी० कीथ (हिन्दी अनुवाद) २. संस्कृत साहित्य का इतिहास–पं० बलदेव उपाध्याय ३. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर–दासगुप्त एवं डे ४. संस्कृत साहित्य नवीन इतिहास–कृष्ण चैतन्य (हिन्दी अनुवाद) ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास–श्रीगैरोला ६. संस्कृत साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास–डॉ० रामजी उपाध्याय ७. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत क्लासिकल लिटरेचर–कृष्णामाचारियार।

कठोपनिषद्—यह 'कृष्ण यजुर्वेद' की कठशाखा का अंश है। इसमें दो अध्याय एवं प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ है। यह सभी उपनिषदों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी रचना नचिकेता और उद्दालक के रोचक आख्यान के रूप में हुई है तथा गम्भीर अद्वैततत्त्व की स्थापना रूपक के द्वारा की गयी है। नचिकेता के विशेष आग्रह पर उसे यमराज अद्वैततत्त्व की शिक्षा देते है। इसकी रचना पद्य में हुई है। 'कठोपनिषद्' में सांख्य और योग के भी विचार उपलब्ध होते है। प्रथम अध्याय मे श्रेय-प्रेय का विवेचन, वैराग्य की प्रशंसा तथा अविद्या मे लीन पुरुषों की दुर्दशा, निष्काम भाव की महिमा, परब्रह्म एवं परमात्मा की महिमा, नाम-महत्त्व, आत्मा का स्वरूप, परमात्म-स्वरूप, जीवात्मा एवं परमात्मा के नित्य सम्बन्ध, रथ और रथी के रूप मे परमात्म-प्राप्ति के उपाय, इन्द्रियों को असत् मार्ग से रोक कर भगवान् की ओर लगाना तथा परमात्म-प्राप्ति के साधन का विवेचन है। द्वितीय अध्याय में परमेश्वर की सर्वरूपता एवं सर्वत्र परिपूर्णता, जीवात्मा की गति, परमेश्वर का स्वरूप एवं उसकी सर्वप्रकाशकता का प्रतिपादन, योग का स्वरूप एवं साधन, भगवद्विश्वास से भगवत्प्राप्ति, मृत्यु के पश्चात् जीव की गति तथा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति आदि विषयों का वर्णन है। इसमें परमेश्वर को गूढ़, सर्वव्यापी, संसार के गहन वन में छिपा हुआ तथा सनातन कहा गया है, जिसकी प्राप्ति आत्मविषयक योग-साधना से ही होती है। इस स्थिति मे मनुष्य हर्ष एवं शोक की मनःस्थिति से ऊपर उठ जाता है।

कर्णभार—यह महाकवि भासविरचित नाटक है। इसमें 'महाभारत' की कथा के आधार पर कर्ण का चरित वर्णित है। महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य की मृत्यु

के पश्चात् कर्ण को सेनापति बनाया जाता है, अतः इसे 'कर्णभार' कहा गया है। सर्वप्रथम सूत्रधार का रंगमंच पर आना वर्णित है। सेनापति बनने पर कर्ण अपने सारथी शल्य को अर्जुन के रथ के पास उसे ले चलने को कहता है। वह मार्ग में अपनी अस्त्र-प्राप्ति का वृत्तान्त तथा परशुराम के साथ घटी घटना का कथन करता है। उसी समय नेपथ्य से एक ब्राह्मण की आवाज सुनाई पड़ती है कि 'मैं बहुत बडी भिक्षा माँग रहा हूँ'। ब्राह्मण और कोई नहीं इन्द्र हैं, जो कर्ण से कवच-कुण्डल माँगने के लिए आये थे। पहले तो कर्ण देने से हिचकिचाता है और ब्राह्मण को सुवर्ण एवं धन मांगने के लिए कहता है। पर, ब्राह्मण अपने हठ पर अडा रहता है और अभेद्य कवच की मांग करता है। कर्ण अपना कवच-कुण्डल दे देता है और उसे इन्द्र द्वारा 'विमला' शक्ति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् कर्ण और शल्य अर्जुन के रथ की ओर जाते हैं और भरतवाक्य के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है।

इसमे कवि ने घटनाओ की सूचना कथोपकथन के रूप में देकर इसकी नाटकीयता की रक्षा की है। यद्यपि इसका वर्ण्य-विषय युद्ध और युद्ध-भूमि है तथापि इसमे करुण रस का ही प्राधान्य है।

कणाद—वैशेषिकदर्शन के प्रवर्त्तक। प्राचीन ग्रन्थों में इनके विभिन्न नाम (कणभुक्, कणभक्ष) प्राप्त होते है। उदयनाचार्य ने (न्यायदर्शन के आचार्य) अपनी रचना 'किरणावली' मे कणाद को कश्यप मुनि का पुत्र कहा है। श्रीहर्षकृत 'नैषध महाकाव्य' (२२।२६) में वैशेषिक-दर्शन की अभिधा औलूक दी गयी है। 'वायुपुराण' मे कणाद शिव के अवतार एवं सोमशर्मा के शिष्य (प्रभासनिवासी) कहे गए है तथा 'त्रिकाण्ड-कोष' मे इनका अन्य नाम 'काश्यप' दिया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर कणाद काश्यपगोत्री उलूक मुनि के पुत्र सिद्ध होते हैं। इनके गुरु का नाम सोमशर्मा था।

इन्होंने 'वैशेषिकसूत्र' की रचना की है, जो इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ दस अध्यायो मे है जिसमे कुल ३७० सूत्र है। इसका प्रत्येक अध्याय दो आह्निकों मे विभक्त है। इसके प्रथम अध्याय मे द्रव्य, गुण एवं कर्म के लक्षण एवं विभाग वर्णित है। द्वितीय अध्याय में विभिन्न द्रव्यों एवं तृतीय मे नौ द्रव्यो का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय मे परमाणुवाद का तथा पंचम मे कर्म के स्वरूप और प्रकार का वर्णन है। षष्ठ अध्यम मे नैतिक समस्याएँ एवं धर्माधर्म-विचार है तो सप्तम का विषय है गुण-विवेचन। अष्टम, नवम तथा दशम अध्यायों मे तर्क, अभाव, ज्ञान और सुखदुःख-विभेद का निरूपण है। वैशेषिकसूत्रों की रचना न्यायसूत्र से पहले हो चुकी थी, इसका रचना-काल ई० पू० ३०० शतक माना जाता है। 'वैशेषिकसूत्र' पर सर्वाधिक प्राचीन भाष्य 'रावणभाष्य' था, पर यह ग्रन्थ उपलब्ध नही होता और इसकी सूचना ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य की टीका 'रत्नप्रभा' में प्राप्त होती है। भरद्वाज ने भी इस पर वृत्ति की रचना की थी, किन्तु वह भी नहीं मिलती। 'वैशेषिकसूत्र' का हिन्दी भाष्य पं० श्रीराम शर्मा ने किया है। इस पर म० म० चन्द्रकान्त तर्कालंकार कृत अत्यन्त उपयोगी भाष्य है जिसमें सूत्रों की स्पष्ट व्याख्या है।

आधारग्रन्थ—१. इण्डियन फिलॉसफी भाग २–डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीयदर्शन आ० बलदेव उपाध्याय।

कपिल—सांख्यदर्शन के आद्याचार्य महर्षि कपिल है जिनकी गणना विष्णु के अवतारो मे होती है। 'श्रीमद्भागवतपुराण' मे इन्हे विष्णु का पञ्चम अवतार कहा गया है। इनके सम्बन्ध मे 'महाभारत', 'भागवत' आदि ग्रन्थो मे परस्पर विरोधी कथन प्राप्त होते हैं, अत: कई आधुनिक विद्वानों ने इन्हे ऐतिहासिक व्यक्ति न मान कर काल्पनिक माना है। स्वयं 'महाभारत' मे ही इनके विषय मे दो प्रकार के विचार हैं। प्रथम कथन के अनुसार कपिल ब्रह्मा के पुत्र एवं द्वितीय वर्णन मे अग्नि के अवतार कहे गए है।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥
सप्तैते ब्रह्मणः पुत्राः। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २१८
कपिलं परमर्षिञ्च यं प्राहुर्यतयः सदा।
अग्निः स कपिलो नाम साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तकः॥ वही,

[योगसूत्र (१, २५) की टीका मे वाचस्पति मिश्र (प्रसिद्ध नैयायिक) इन्हे हिरण्यगर्भ कहते है—आदि विद्वान् कपिल इति। '''''कपिलो नाम विष्णोरवतार-विशेषः प्रसिद्धः। स्वयम्भूहिरण्यगर्भस्तस्यापि साङ्ख्ययोगप्राप्तिर्वेदे श्रूयते, स एवेश्वर आदि विद्वान् कपिलो विष्णु. स्वयम्भूरिति भावः। तत्त्व वैशारदी टीका उपर्युक्त कथनो के आधार पर 'कीथ' ने कपिल को हिरण्यगर्भ मे अभिन्न स्वीकार किया है। 'कीथ' का कहना है कि चूँकि ये कही अग्नि, कही विष्णु तथा कतिपय स्थलों पर शिव के अवतार माने गए है, अतः इन्हे ऐतिहासिक व्यक्ति न मान कर हिरण्यगर्भ ही कहा जा सकता है। [दे० साख्य सिस्टम–ले० डॉ० ए० बी० कीथ पृ० ९] मैक्समूलर एवं कोलब्रुक प्रभृति पाश्चात्य विद्वान् एवं म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज तथा डॉ० हरदत्त शर्मा प्रभृति भारतीय विद्वान् भी इन्हे ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार करने मे सन्देह प्रकट करते हे।

[दे० डॉ० गोपीनाथ कविराज कृत 'जयमंगला' की भूमिका तथा डॉ० हरदत्त-शर्मा कृत 'सांख्यतत्त्वकौमुदी', पूना संस्करण की भूमिका पृ० १४]

पर प्राचीन परम्परा में आस्था रखने वाले विद्वान् उपर्युक्त निष्कर्षों में विश्वास न कर कपिल को सांख्यदर्शन का आदि प्रवर्त्तक मानते है। 'गीता' मे भगवान् श्रीकृष्ण अपने को सिद्धो मे कपिल मुनि कहते है—सिद्धाना कपिलो मुनिः, गीता १०।२६। ब्रह्मसूत्र के 'शाङ्करभाष्य' मे शङ्कराचार्य ने इन्हे सांख्यदर्शन का आद्य उपदेष्टा एवं राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रो को भस्म करने वाले कपिलमुनि से भिन्न स्वीकार किया है। 'या तु श्रुतिः कपिलस्य ज्ञानातिशयं दर्शयन्ती प्रदर्शिता, न तया श्रुतिविरुद्धमपि कापिलं मतं श्रद्धातुं शक्यं, कपिलमिति श्रुतिसामान्यमात्रत्वात्। अन्यस्य च कपिलस्य सगरपुत्राणां प्रतप्तुर्वासुदेवनाम्नः स्मरणात्।' ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य २।१।१॥ इन विवरणों के आधार पर कपिल के अस्तित्व के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् गार्बे ने अपने ग्रन्थ 'सांख्य फिलॉसफी' में मैक्समूलर तथा कोलब्रुक के निष्कर्षों का खण्डन कर कपिल को ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध किया है। महर्षि कपिल रचित दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है—'तत्त्वसमास' एवं 'सांख्यसूत्र'। 'तत्त्वसमास' में कुल २२ सूत्र हैं और 'सांख्यसूत्र' ६ अध्याय मे विभक्त है जिसमें सूत्रों की संख्या ५३७ है। 'सांख्यसूत्र' के प्रथम अध्याय मे विषयप्रतिपादन, द्वितीय मे कार्यों का विवेचन, तृतीय में वैराग्य, चतुर्थ मे सांख्यतत्त्वों का आख्यायिकाओं के द्वारा विवेचन, पञ्चम मे परपक्ष का खण्डन तथा षष्ठ मे सिद्धान्तों का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है। कपिल के शिष्य का नाम आसुरि था जो सांख्यदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। कपिल के प्रशिष्य पञ्चशिख है और वे भी सांख्यदर्शन के आचार्य हैं।

आधारग्रन्थ—१ इण्डियन फिलॉसफी भाग–२ डॉ० राधाकृष्णन् २ भारतीय-दर्शन–आ० बलदेव उपाध्याय ३. सांख्यदर्शन का इतिहास–श्री उदयवीर शास्त्री ४ सांख्यतत्त्वकौमुदी–प्रभा (हिन्दी व्याख्या) डॉ० आद्या प्रसाद मिश्र।

कमलाकर भट्ट—ये १७ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार है। इनके पिता का नाम रामकृष्ण भट्ट था। इनका रचनाकाल १६१० से १६४० ई० तक माना जाता है। ये न्याय, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त, साहित्यशास्त्र, वेद एवं धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या २२ है जिनमें अधिकांश पुस्तकें धर्मशास्त्र-विषयक है। निर्णयसिन्धु, दानकमलाकर, शान्तिरत्न, पूर्तकमलाकर, सर्वतीर्थविधि, व्रतकमलाकर, प्रायश्चित्तरत्न, विवादताण्डव, बह्वृचाह्निक, गोत्रप्रवर-दर्पण, कर्मविपाकरत्न, शूद्रकमलाकर आदि इनके ग्रन्थ हैं। इनमें शूद्रकमलाकर, विवाद-ताण्डव एवं निर्णयसिन्धु अति प्रसिद्ध है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास–डॉ० पा० वा० काणे भाग १ (हिन्दी अनुवाद)

कमलाकर भट्ट—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना सं० १५८० में की है। इन्हें गोल एवं गणित दोनों का मर्मज्ञ बतलाया जाता है। ये प्रसिद्ध ज्योतिषी दिवाकर के भ्राता थे [दे० दिवाकर] और इन्होंने उनसे ही इस विषय का ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने भास्कराचार्य के सिद्धान्त का अनेक स्थलों पर खण्डन किया है और सौरपक्ष की श्रेष्ठता स्वीकार कर ब्रह्मपक्ष को अमान्य सिद्ध किया है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

कल्प—वेदाङ्ग साहित्य में कल्प का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'कल्प' का अर्थ है वेद-विहित कर्मों का क्रमपूर्वक कल्पना करने वाला ग्रन्थ या शास्त्र—कल्पो वेद-विहितानां कर्माणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्। ऋग्वेद प्रातिशाख्य की वर्गद्वय वृत्ति पृ० १३। विवाहोपनयन अथवा यज्ञयागादि के क्रमबद्ध रूप से वर्णन करने वाले सूत्रग्रन्थ ही कल्प कहे जाते हैं। इन सूत्रों का साक्षात् सम्बन्ध ब्राह्मणों और उपनिषदों से भी है। इनमें यज्ञ के प्रयोगों का समर्थन किया जाता है। कल्पसूत्रों का निर्माण यज्ञों के विधान को

संक्षिप्त रूप देने एवं व्यवस्थित करने के लिए ही हुआ था। इन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एवं शुल्वसूत्र।

१ श्रौतसूत्र—इसमें श्रुतिप्रतिपादित यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन होता है। ऐसे यज्ञों के नाम है—दर्श, पूर्णमास, पिण्डपितृयाग, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढपशु, सोमयाग, सत्र (१२ दिनों तक चलने वाला यज्ञ), गवामयन (एक वर्ष तक समाप्त होने वाला यज्ञ), वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, एकाहयाग, अहीन (दो दिनों से लेकर ग्यारह दिनों तक चलने वाला यज्ञ)। धार्मिक दृष्टि से इन ग्रन्थों का अधिक महत्त्व है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् श्रौतसूत्र है। ऋग्वेद के दो श्रौतसूत्र हैं—आश्वलायन एवं शाङ्खायन। आश्वलायन श्रौतसूत्र में बारह अध्याय हैं। इसके लेखक आश्वलायन हैं। शाङ्खायन श्रौतसूत्र में १८ अध्याय हैं। इसका सम्बन्ध शाङ्खायन ब्राह्मण से है। यजुर्वेद का केवल एक ही श्रौतसूत्र है जिसे कात्यायन श्रौतसूत्र कहते हैं। इसमें २६ अध्याय हैं तथा शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट यज्ञों के क्रम का अनुवर्त्तन है। इस पर कर्काचार्य ने विस्तृत भाष्य लिखा है। कृष्णयजुर्वेद के कई श्रौतसूत्र हैं—बोधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशीय, सत्याषाढ़, वैखानस, भारद्वाज एवं मानव श्रौतसूत्र। सामवेद के श्रौतसूत्र है—लाट्यायन—इसका सम्बन्ध कौथुमशाखा से है। जैमिनीय श्रौतसूत्र—यह जैमिनि शाखा से सम्बद्ध है। द्राह्यायण श्रौतसूत्र—इसका सम्बन्ध राणायनीय शाखा से है। अथर्ववेद का श्रौतसूत्र है वैतान। इसमें अनेक अंशों में गोपथ-ब्राह्मण का अनुसरण किया गया है।

गृह्यसूत्र—इसमें गृहाग्नि में सम्पन्न होने वाले यज्ञ, उपनयन, विवाह और श्राद्ध आदि का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। सभी वेदों के पृथक्-पृथक् गृह्यसूत्र है। ऋग्वेद के दो गृह्यसूत्र हैं—आश्वलायन एवं शाङ्खायन गृह्यसूत्र। प्रथम में चार अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय कई खण्डों में विभक्त है। इसमें गृह्यकर्म एवं संस्कार वर्णित हैं तथा वेदाध्ययन का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। शाङ्खायन में ६ अध्याय हैं। इसमें आश्वलायन के ही विषय वर्णित है तथा कहीं-कहीं गृह-निर्माण और गृह-प्रवेश का भी वर्णन है। इसके लेखक सुयज्ञ है। ऋग्वेद का तृतीय गृह्यसूत्र कौषीतक है। इसके रचयिता का नाम शाम्बव्य या शाम्भव्य है जो कुरुदेशवासी हैं। इसमें विवाहसंस्कार, जातशिशु का परिचय, उपनयन, वैश्वदेव, कृषिकर्म तथा श्राद्ध का वर्णन है। यजुर्वेद का एकमात्र गृह्यसूत्र है पारस्कर गृह्यसूत्र। इसमें तीन काण्ड है। प्रथम काण्ड में आवसथ्य अग्नि का आधान, विवाह तथा गर्भधारण से अन्नप्राशन तक के संस्कार वर्णित हैं। द्वितीय काण्ड में चूडाकरण, उपनयन, समावर्त्तन, पञ्चमहायज्ञ, श्रावणकर्म तथा सीतायज्ञ का वर्णन है। तृतीय काण्ड में श्राद्ध एवं अवकीर्ण प्रायश्चित्त आदि विषय वर्णित हैं। इसकी कई टीकाएँ है। टीकाकारों के नाम है—कर्क जयराम, गदाधर, हरिहर तथा विश्वनाथ। 'कृष्णयजुर्वेद' के गृह्यसूत्र हैं बौधायन, आपस्तम्ब, भारद्वाज एवं काठक गृह्यसूत्र। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में २३ खण्ड है जिनमें विवाह, उपनयन, उपकर्मोत्सर्जन, समावर्त्तन, मधुपर्क तथा सीमन्तोन्नयन आदि विषयों का वर्णन है। सामवेद के तीन गृह्यसूत्र हैं—गोभिल, खादिर तथा जैमिनीय गृह्यसूत्र। गोभिल

गृह्यसूत्र का सम्बन्ध कौथुमशाखा से है। खादिर गृह्यसूत्र पर रुद्रस्कन्ध की टीका मिलती है। अथर्ववेद का गृह्यसूत्र है कौशिक गृह्यसूत्र।

धर्मसूत्र—इन ग्रन्थों मे चार वर्णों एवं चार आश्रमों के कर्त्तव्यों तथा राजाओं के कर्त्तव्यों का वर्णन है। [इनके विवरण के लिए दे० धर्मशास्त्र] शुल्बसूत्र—इसमें यज्ञ के निमित्त वेदी के निर्माण का वर्णन है। इन ग्रन्थों में प्राचीन आर्यों के ज्यामिति-विषयक ज्ञान का निरूपण है। शुल्ब का अर्थ है रस्सी। इस शास्त्र में रज्जु या रस्सी द्वारा नापी गयी वेदी का वर्णन है। इसके तीन प्राचीन ग्रन्थ हैं—बोधायन, आपस्तम्ब तथा कात्यायन शुल्बसूत्र। दे० वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

कल्याणवल्ली कल्याण—यह चम्पू काव्य है जिसके रचयिता हैं श्री रामानुज देशिक। ये 'रामानुजचम्पू' नामक काव्य के रचयिता रामानुजाचार्य के पितृव्य थे। इस प्रकार इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तर चरण है। 'लिंगपुराण' के गौरी-कल्याण के आधार पर इस चम्पूकाव्य की रचना हुई है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है इसका विवरण डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग मद्रास २१।८२७५ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

कल्याणवर्मा—ये भारतीय ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका समय ५७८ ई० है, पर पं० सुधाकर द्विवेदी (आधुनिक युग के प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री) के अनुसार इनका समय ५०० ई० है। [दे० गणक तरंगिणी पृ० १६] इन्होंने 'सारावली' नामक जातकशास्त्र की रचना की है जिसमें ४२ अध्याय है। यह ग्रन्थ वराहमिहिर रचित 'बृहज्जातक' से भी आकार मे बडा है। लेखक ने स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ की रचना वराहमिहिर, यवनज्योतिष एवं नरेन्द्रकृत 'होराशास्त्र' के आधार पर हुई है और उनके मत का सार-संकलन किया गया है। भट्टोत्पल नामक ज्योतिषशास्त्री ने 'बृहज्जातक' की टीका में इनके श्लोकों को उद्धृत किया है। 'सारावली' मे ढाई हजार से कुछ अधिक श्लोक है। इन्होंने अपने सम्बन्ध मे एक श्लोक लिखा है—

देवग्रामपयः प्रपोषणबलाद् ब्रह्माण्डसत्पञ्जरं
कीर्त्तिः सिंहविलासिनीव सहसा यस्येह भित्वा गता।
होरां व्याघ्रभटेश्वरो रचयति स्पष्टां तु सारावलीं
श्रीमान् शास्त्रविचारनिर्मलमनाः कल्याणवर्मा कृती॥

(डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री–भारतीय ज्योतिष मे उद्धृत पृ० १२६

'सारावली' का प्रकाशन 'निर्णयसागर प्रेस' मे हुआ है।

आधारग्रन्थ—१ भारतीय ज्योतिष—शंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद, हिन्दी-समिति) २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ३. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद।

कविमनोरंजक चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता कवि सीताराम सूरि है। इनका जन्म तिरुकुडङ्गि ग्राम में हुआ था जो तिरुनेलवेलि जिले में है। कवि का जन्म

१८३६ ई० में हुआ था और निधन १९०६ ई० मे हुआ। ग्रन्थ का रचनाकाल १८७० ई० है। इस काव्य मे चार उल्लास है और सीताराम नामक किसी परम-भागवत ब्राह्मण की कथा वर्णित हैं। इसमे मुख्यत तीर्थयात्रा का वर्णन है और नगरों के वर्णन मे कवि ने अधिक रुचि ली है। द्वितीय उल्लास मे अयोध्या का वर्णन करते हुए संक्षेप मे रामायण की सम्पूर्ण कथा का उल्लेख किया गया है। इसके गद्य एवं पद्य दोनों ही प्रौढ़ है तथा यत्रतत्र यमक एवं श्लेष से युक्त पंक्तियाँ भी दिखाई पडती है। कथा का प्रारम्भ इन पंक्तियो से होता है—

वेदव्रातविरुद्धसूक्तितरुणीवेणीकृपाणीभव-
द्वाणीदुग्धतरंगिणीशशरणीभृतान्तरंगो गुरुः।
कारुण्यार्जववीचिकान्तरसदासंचारशीनीभव-
त्स्वान्तः स्वां मतिमातनोत्त्रिपथगायात्रामिषाद्रक्षणे ॥ ११८२

इस ग्रन्थ का प्रकाशन १९५० ई० मे दि यूनिवर्सिटी मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम से हो चुका है।

आधारग्रन्थ— चम्पूकाव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

कविराज धोयी—'पवनदूत' नामक संदेशकाव्य के रचयिता। इस काव्य की रचना महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत के अनुकरण पर हुई है। धोयी के कई नाम मिलते हैं—धुयि, धोयी, धोई और धोयिक। ये बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि थे। इनका समय विक्रम संवत् द्वादश शतक का उत्तरार्ध एवं त्रयोदश शतक का पूर्वार्ध है। श्रीधरदास कृत 'सदुक्तिकर्णामृत' में धोयी के पद्य उद्धृत है जो शक सं० ११२७ या १२०६ ई० का है। इनके सम्बन्ध मे अन्य कोई सूचना नही प्राप्त होती। इनकी जाति के सम्बन्ध मे भी विवादास्पद मत प्रचलित है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार धोयी पालधिगणि तथा कश्यप गोत्र के राढीय ब्राह्मण है। इनके वैद्य-जातीय होने का आधार वैद्यवंशावली ग्रन्थो मे दुहिसेन या धूयिसेन नाम का उल्लिखित होना है।

पुण्डरीकाक्षसेनस्य दुहिसेन. सुतोऽभवत्।
धरस्य त्रिपुराख्यस्य तनयागर्भसम्भवः ॥ (कवि कण्ठहार)
सुधांशुरत्रेरिव पुण्डरीकसेनात्तनूजोऽजनि धूयिसेन । (चन्द्रप्रभा पृ० २१३)

'गीतगोविन्द' १।४ से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसेन के दरबार में उमापतिधर, शरण, गोवर्धन, धोयी और जयदेव कवि रहते थे। इन्हे कविराज की उपाधि प्राप्त हुई थी। 'पवनदूत' के श्लोक सं० १०१ एवं १०३ मे कवि ने अपने को 'कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती' एवं 'कवि नरपति' कहा है।

दंतिव्यूहं कनकलतिका चामरं हैमदण्डं
यो गौडेंद्रादलभत कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती।
श्रीधोयीकः सकलरसिकप्रीतिहेतोर्मनस्वी
काव्यं सारस्वतमिव महामंत्रमेतज्जगाद ॥ (पवन० १०१)

लक्ष्मणसेन के दरबार के पाँच रत्नों का भी उल्लेख प्राप्त होता है—

> गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
> कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु ॥

पवनदूत की कथा इस प्रकार है—गौडदेश के नरेश लक्ष्मणसेन दक्षिण दिग्विजय करते हुए मलयाचल तक पहुँचते हैं। वहाँ कनक नगरी में रहने वाली कुवलयवती नामक अप्सरा उनसे प्रेम करने लगती है। राजा लक्ष्मणसेन के राजधानी लौट आने पर कुवलयवती उनके विरह मे तड़पने लगती है। वसन्त ऋतु के आगमन पर वह वसन्तवायु को दूत बनाकर अपना विरह-सन्देश भिजवाती है। कवि ने मलय पर्वत से बंगाल तक के मार्ग का अत्यन्त ही मनोरम वर्णन किया है जो कवित्वमय एवं आकर्षक है तथा राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर का वर्णन करते हुए कुवलयवती की वियोगावस्था का करुण रूप अंकित किया है। अन्त मे कुवलयवती का सन्देश है।

पवनदूत मे मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग है और कुल १०४ श्लोक । अन्तिम चार श्लोको मे कवि ने अपना परिचय दिया है। इसमे मेघदूत की तरह पूर्व भाग एवं उत्तर भाग नहीं है। मेघदूत का अनुकरण करते हुए भी कवि ने नूतन उद्भावनाएँ की है। माल्यवान् पर्वत मे प्रवाहित होने वाले जल प्रपातो की कल्पना राम के अश्रु के रूप मे की गयी है—

> तत्राद्यापि प्रतिझरजलैर्जर्जरा: प्रस्थभागा ।
> सीतारामौ पृथुतरगुण: सूचयन्त्यश्रुपातान् ॥ १८ ॥

"माधुर्य-व्यंजक वर्णों से समन्वित ललित भाषा मे क्लिष्ट समासो का परिहार करते हुए वैदर्भी रीति मे यह काव्य लिखा गया है।" संस्कृत के सन्देशकाव्य पृ० २४४। सर्वप्रथम म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने इसके अस्तित्व का विवरण स्वरचित संस्कृत हस्तलिखित पोथियो के विवरण सम्बन्धी ग्रन्थ के प्रथम भाग मे दिया था। तत्पश्चात् १९०५ ई० मे श्रीमनमोहन घोष ने इसका एक सस्करण प्रकाशित किया किन्तु वह एक ही हस्तलेख पर आधृत होने के कारण भ्रष्ट पाठो से युक्त था। अभी हाल मे ही कलकत्ते मे इसका शुद्ध संस्करण प्रकाशित हुआ है।

कविराज विश्वनाथ—इन्होने 'साहित्य-दर्पण' नामक अत्यन्त लोकप्रिय काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया है। [दे० साहित्य-दर्पण] इनका जन्म उत्कल के प्रतिष्ठित पण्डित-कुल मे हुआ था। इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर था जिन्होने 'पुष्पमाला' एवं 'भाषार्णव' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनका उल्लेख 'साहित्य-दर्पण' मे है। इनके पिता विद्वान्, कवि एवं सान्धिविग्रहिक थे। नारायण नामक विद्वान् इनके पितामह या वृद्धपितामह थे। इनका समय १२०० ई० से लेकर १३५० के मध्य है। 'साहित्य-दर्पण' मे एक अल्लावदीन नृपति का वर्णन है जो सन्धि के समय सर्वस्व-हरण के लिए विख्यात था—

> सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः ।
> अल्लावदीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः ॥ ४।४

यह श्लोक दिल्ली के बादशाह अल्लाउदीन खिलजी से ही सम्बद्ध है जिसका समय

१२९६ से १३१६ ई० तक था। इस प्रकार विश्वनाथ का समय १३०० ई० से १३५० के मध्य किसी समय हो सकता है। ये कवि, नाटककार एवं सफल आचार्य थे। इन्होंने राघवविलास (संस्कृत महाकाव्य), कुवलयाश्वचरित (प्राकृत काव्य), प्रभावती-परिणय एवं चन्द्रकला (नाटिका), प्रशस्तिरत्नावली, काव्यप्रकाशदर्पण (काव्यप्रकाश की टीका) एव 'साहित्यदर्पण' नामक पुस्तको का प्रणयन किया था। इनकी कीर्त्ति का स्तम्भ एकमात्र 'साहित्य-दर्पण' ही है जिसमे दस परिच्छेद है और काव्यशास्त्र के सभी विषयो एवं नाट्यशास्त्र का विवेचन है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसी कारण इसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। काव्य के लक्षण, भेद, प्रयोजन, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, रीति, गुण, दोष, अलंकार एवं काव्य के भेद-दृश्य एवं श्रव्य तथा नायक-नायिका-भेद का इसमे विस्तृत विवेचन है। विश्वनाथ रसवादी आचार्य है। इन्होने रस को ही काव्य की आत्मा माना है और उसका स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया है, मम्मट की भाँति उसे ध्वनि का अंग नही माना।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १ - आ० बलदेव उपाध्याय।

कल्हण ये संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक महाकाव्यकार है। इन्होने 'राजतरंगिणी' नामक सुप्रसिद्ध काव्य की रचना की है। कल्हण काश्मीर निवासी थे। इनका जन्म आढ्यवंशीय ब्राह्मण कुल मे हुआ था। प्राचीन ग्रन्थो मे कल्हण का कुछ भी विवरण प्राप्त नहीं होता, उन्होने अपने सम्बन्ध मे जो कुछ अंकित किया है वही उनके जीवन-वृत्त का आधार है। 'राजतरंगिणी' के प्रत्येक तरंग की समाप्ति मे 'इति काश्मीरिक महामात्य श्रीचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्यकृतौ राजतरङ्गिण्या'' ' यह वाक्य अंकित है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम चम्पक था और वे काश्मीरनरेश हर्ष के महामात्य थे। ये राजा हर्ष के विश्वासपात्र अधिकारी होने के कारण उनके हर्ष-शोक, सुख-दुःख तथा उन्नति-अवनति मे समभाव से एकनिष्ठा के साथ सेवा करते थे। काश्मीर-नरेश हर्ष का शासनकाल १०८९–११०१ ई० तक था। राजा की हत्या किये जाने के बाद इन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया था। चम्पक के नाम का कल्हण ने अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख किया है जिससे उनके पिता होने मे किसी प्रकार का सन्देह नही रह गया है। इन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि चम्पक प्रति वर्ष अपनी अर्जित सम्पत्ति का नन्दिक्षेत्र मे सात दिनो तक व्ययकर उसका सदुपयोग किया करते थे—

नन्दिक्षेत्रे व्ययीकृत्य प्रत्यब्दं सप्तवासरान्।
चम्पकः सफलां चक्रे सर्वकालार्जितां श्रियम्॥ राज० ७।९५४
नन्दिक्षेत्रे स तत्राद्यैः प्रणीतश्चम्पकादिभिः। वही ८।२३६५

कल्हण ने चम्पक के अनुज कनक का भी उल्लेख किया है जो हर्ष के कृपापात्रों तथा विश्वासी अनुजीवियो मे से थे। कहा जाता है कि इनकी गान-विद्या से प्रसन्न होकर राजा ने इन्हे एक लाख सुवर्ण मुद्रा पुरस्कार के रूप मे दी थी। राज० ७।१११७, १११८ कल्हण ने परिहारपुर को कनक का निवास-स्थान कहा है तथा यह भी उल्लेख किया है कि जब राजा हर्ष बुद्ध की प्रतिमाओ का विध्वंस कर रहे थे तब कनक ने अपने जन्म-स्थान की बुद्ध की प्रतिमा की रक्षा की थी। [दे० राज-

तरंगिणी ७।१०९७] कल्हण के इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनका जन्म-स्थान परिहारपुर था तथा ये स्वयं बौद्ध न होने पर भी बौद्धधर्म का आदर करते थे। राजा हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कनक बाराणसी चले गए और वहीं पुण्य कार्य में लग गए। [राज० ८।१२] कल्हण जाति के शैव ब्राह्मण थे। इसकी पुष्टि राजतरंगिणी के प्रत्येक तरंग मे अर्धनारीश्वर शिव की वन्दना से होती है। कल्हण का वास्तविक नाम कल्याण था तथा वे अलकदत्त नामक किसी पुरुष के आश्रय मे रहते थे। इन्होंने सुस्सल के पुत्र राजा जयसिंह के राज्यकाल मे (११२७—११५९ ई०) राजतरंगिणी का प्रणयन किया था। इस ग्रन्थ का लेखन दो वर्षों मे हुआ था—११४८—११५० ई०।

कल्हण शैवमतानुयायी होते हुए भी बौद्धधर्म के अहिंसातत्त्व के पूर्ण प्रशंसक थे। इन्होने बौद्धो की उदारता, अहिंसा एव भावनाओ की पवित्रता की अत्यधिक प्रशंसा की है। राजा के गुणो की ये बोधिसत्त्व से तुलना करते हैं—

बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल कोऽपि सत्त्वोजितव्रतः।
कारुण्यं प्राणिषु दृढं यस्येदृक्ते महात्मन.॥ राज० १।१३४
लोके भगवतो लोकनाथादारभ्य केचन।
ये जन्तवो गतक्लेशा बोधिसत्त्वानवेहि तान्॥ १।१३८

'श्रीकण्ठचरित' मे कल्हण की प्रशस्ति प्राप्त होती है—

श्रीमानलकदत्तोऽयमनल्पं काव्यशिल्पिषु।
स्वपरिश्रमसर्वस्वन्यासमभ्यममन्यत ॥ २५।७८
तथोच्चस्करे येन निजवाङ्मयदर्पणः।
विह्लणप्रौढिसंक्रान्तौ यथायोग्यत्वमग्रहीत्॥ २५।७९
तत्तद्वहुकथाकेलिपरिश्रमनिरङ्कुशम्।
तं प्रश्रयप्रयत्नेन कल्याणं सममीमनत्॥ २५।८०

कल्हण की एकमात्र रचना राजतरंगिणी प्राप्त होती है जिसमे कवि ने अत्यन्त प्राचीनकाल मे लेकर बारहवीं शताब्दी तक काश्मीर का इतिहास लिखा है। यह महाकाव्य आठ तरंगो मे विभक्त है। इसमें कवि ने ऐतिहासिक शुद्धता एवं रचनात्मक साहित्यिक कृति दोनो आवश्यकताओ की पूर्ति की है। कवि ने ऐतिहासिक तथ्यो का विवरण कई स्रोतो से ग्रहण कर इसे पूर्ण बनाया है। विशेष विवरण के लिए [दे० राजतरंगिणी]।

कल्हण का व्यक्तित्व एक निष्पक्ष एवं प्रौढ ऐतिहासिक का है। राजतरंगिणी के प्रारम्भ मे कवि ने यह विचार व्यक्त किया है कि 'वही श्रेष्ठ-बुद्धि कवि प्रशंसा का अधिकारी है जिसके शब्द एक न्यायाधीश के वाक्य की भाँति, अतीत का चित्रण करने मे घृणा अथवा प्रेम की भावनाओ से मुक्त होते है।' 'श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेष-बहिष्कृता। भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥ १।७ कल्हण ने इतिहास के वर्णन मे इस आदर्श का पूर्णत: परिपालन किया है। राजतरंगिणी के वर्णनों, प्रयोगों तथा उपमाओ आदि के पर्यवेक्षण से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि कल्हण ने अपने अनेक पूर्ववर्ती लेखको की रचनाओं एवं महाकाव्यो का अध्ययन किया था एवं उनसे सामग्री

ग्रहण कर अपने ग्रन्थ को पूर्ण बनाने का प्रयास किया था। वे काश्मीरक कवि बिल्हण रचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' तथा बाणलिखित 'हर्षचरित' के अतिरिक्त 'रामायण' एवं 'महाभारत' से भी पूर्ण परिचित थे।

कवि के रूप में कल्हण का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर है। इन्होंने अपने को इतिहास-वेत्ता न मानकर कवि के रूप में ही प्रस्तुत किया है। यह जानकर कि सुकवि की वाणी अमृतरस को भी तिरस्कृत करने वाली होती है वे अपने को कवि क्यों नहीं कहते? अमृत के पान करने से केवल पीने वाला ही अमर होता है, किन्तु सुकवि की वाणी कवि एवं वर्णित पात्रों, दोनों के ही शरीर को अमर कर देती है—

वन्द्य कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।
येनायाति यशःकाये स्थैर्यं स्वस्य परस्य च॥ १।३

ऐतिहासिक शुद्धता एवं निष्पक्षता का व्रत लेने के कारण एवं साथ-ही-साथ एक काव्य की रचना में प्रवृत्त होने के लिए सचेष्ट रहने से कल्हण का काव्य अलंकृत शैली के महाकाव्यों से काफी दूर है। इनका व्यक्तित्व कवि और इतिहासकार के बीच सामंजस्य उपस्थित करने वाला है। इन्होंने समस्त साहित्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचय प्राप्त कर उनका समावेश राजतरंगिणी में किया है तथा जहाँ कहीं अवसर प्राप्त होने पर परम्परागत अधीत ज्ञान का पूर्ण प्रदर्शन किया है। इनके उत्कृष्ट कवित्व ने ही काश्मीर के इतिहास को आकर्षक बना दिया है। इनकी कविता में अलंकार और गुणों का अत्यन्त संयत रूप में ही प्रयोग किया गया है। कथावस्तु के विस्तार एवं वर्ण्य-विषय की विशदता के कारण ही इन्होंने अलंकारों एवं विचित्र प्रयोगों से अपने को दूर रखा है। राजतरंगिणी में इतिहास का प्राधान्य होने के कारण इसकी रचना वर्णनात्मक शैली में हुई है पर यत्र-तत्र कवि ने, आवश्यकतानुसार, वार्तालापात्मक एवं संलापणात्मक शैली का भी आश्रय लिया है। कहीं-कहीं अवश्य ही इनमें शैलीगत दुरूहता दिखाई पड़ती है, पर ऐसे स्थल अल्पमात्रा में हैं। राजतरंगिणी में शान्तरस को रसराज मानकर उसका वर्णन किया गया है।

आलोक्य शारदां देवीं यत्र सम्प्राप्यते क्षणात्।
तरङ्गिणी मधुमती वाणी च कविसेविता॥ १।३७
क्षणभङ्गिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते।
मूर्धाभिषेकः शान्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम्॥ १।२३

अलंकारों के प्रयोग में इन्होंने अनुपम कौशल प्रदर्शित किया है और नये नये उपमानों का प्रयोग कर अपने अनुभव की विशालता का परिचय दिया है। अधिकांशतः उपमान प्रकृति क्षेत्रों से ही ग्रहण किये गए हैं। उदये संविभेजे सभृत्यान् कारार्विनिर्गतान्। मधौ प्रफुल्लः शाखीव भृगान् भूविवरास्थितान्॥ ७।८९३ 'राजा हर्ष ने अभिषेक होने पर भृत्यों पर वैसे ही अनुग्रह किया, जैसे बसन्तऋतु में कुसुमित वृक्ष पृथ्वी के छिद्रों से निकले हुए भृङ्गों का।'

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद) २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—दासगुप्त एवं डे। ३. संस्कृत साहित्य का

इतिहास—आ० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—आ० बलदेव उपाध्याय। ५ संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ६ संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—कृष्णचैतन्य (हिन्दी अनुवाद)। ७ संस्कृत के कवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय। ८ राजतरंगिणी कोश—श्रीरामकुमार राय। ९. राजतरंगिणी (हिन्दी अनुवाद सहित)—पण्डित पुस्तकालय, काशी।

कवि कर्णपूर—अलंकारशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १६वी शताब्दी है। कवि पर्णपूर के पिता का नाम शिवानन्द था जो महाप्रभु चैतन्य के शिष्य थे। कवि कर्णपूर का नाम परमानन्ददास सेन था और ये बंगाल के नदिया जिले के निवासी थे। इनका जन्मकाल १५२४ ई० है। 'अलंकारकौस्तुभ' की रचना दस किरणो (अध्यायो) मे हुई है और काव्य-लक्षण, शब्दार्थ, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, रसभावभेद, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार, रीति एवं दोष का वर्णन किया गया है। इस पर तीन टीकाएँ हुई है—दीधितिप्रकाशिका श्री वृन्दावनचन्द्र तर्कालंकार चक्रवर्ती कृत, सारबोधिनी श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती कृत (प्रकाशन, मूलग्रन्थ के साथ मुर्शिदाबाद से) तृतीय टीका के रचयिता लोकनाथ चक्रवर्ती थे। इन्होने 'काव्यचन्द्रिका' नामक अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की थी किन्तु यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। महाप्रभु चैतन्य के जीवन पर रचित 'चैतन्यचन्द्रोदय' नामक नाटक की रचना कवि कर्णपूर ने १५७२ ई० मे की थी।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग—१, आ० बलदेव उपाध्याय।

काकुत्स्थविजय चम्पू—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता बल्लीसहाय है। दे० आचार्य दिग्विजय चम्पू। [इनका जीवनवृत्त 'आचार्य दिग्विजय चम्पू' के विवरण में है]। इसमे कवि ने 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर रामचन्द्र की कथा का वर्णन किया है। यह काव्य आठ उल्लासो मे समाप्त हुआ है और अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण इण्डिया आफिस कैटलॉग, ४०३८।२५२८ मे है। इस चम्पूकाव्य की रचनाशैली अत्यन्त साधारण है। इसमे कवि ने अपने गुरु का नाम नारायण दिया है।

काकुत्स्थविजयसंज्ञं काव्यं बल्लीसहायकविरचितम्।
पर्याप्तमनुलभाग्यादुल्लासेनाष्टमेन च सहैव॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

कार्तवीर्य प्रबन्ध—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता युवराज अश्विन श्रीरामवर्मा है। ये ट्रावनकोर के युवराज थे। इनका स्थितिकाल १७६५ से १७९४ ई० है। इसमे कवि ने रावण और कार्तवीर्य के युद्ध एवं कार्तवीर्य की विजय का वर्णन किया है। ग्रन्थ मे वीररस की प्रधानता है और रचनाशैली मे प्रौढता परिलक्षित होती है। युद्ध-वर्णन मे ओजस्विता का चित्र देखने योग्य है—

रे दोर्मदान्ध ! दशकन्धर चन्द्रहासः, प्रत्यर्थिपार्थिवकरोटिनिशातधारः।
आलिम्पतस्तव परं निजदोषपंकैः, कष्ठं कटूक्तिसरणिं तरसा छिनत्तु॥ २६॥

इस ग्रन्थ का प्रकाशन यूनिवर्सिटी मैन्यूस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, नं० ४ में १९४७ में हो चुका है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

कात्यायन—'अष्टाध्यायी' पर वार्त्तिक लिखने वाले प्रसिद्ध वैयाकरण, जिन्हे वार्त्तिककार कात्यायन के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। 'महाभाष्य' मे इनका उल्लेख वार्त्तिककार के ही नाम से किया गया है। इनका स्थितिकाल वि० पू० २७०० वर्ष है। [श्री युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार] 'न स्म पुरानद्यतन इति ब्रुवता कात्यायनेनेह। स्यादिविधि पुरान्तो यद्यविशेषेण भवति, कि वार्त्तिककार. प्रतिषेधेन करोति—न स्म पुरानद्यतन इति' महाभाष्य ३।२।११८।

सस्कृत व्याकरण के मुनित्रय मे पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि का नाम आता है। पाणिनीय व्याकरण को पूर्ण बनाने के लिए ही कत्यायन ने अपने वार्त्तिको की रचना की थी जिनमे अष्टाध्यायी के सूत्रों की भाँति ही प्रौढ़ता एवं मौलिकता के दर्शन होते है। इनके वार्त्तिक पाणिनीय व्याकरण के महत्त्वपूर्ण अंग है जिनके बिना वह अपूर्ण लगता है। प्राचीन वाङ्मय मे कात्यायन के लिए कई नाम आते है—कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु, मेधाजित तथा वररुचि तथा कई कत्यायनो का उल्लेख प्राप्त होता है—कात्यायनकौशिक, आङ्गिरस, भार्गव एवं कात्यायन द्व्यामुष्यायण। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार कात्यायन के पितामह का नाम याज्ञवल्क्य, पिता का नाम कात्यायन एवं इनका पूरा नाम वररुचिकात्यायन है। मीमांसक जी ने इसे प्रसिद्ध वार्त्तिककार कात्यायन का ही विवरण स्वीकार किया है।

कात्यायनसुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम्। कात्यायनाभिधं चैव यज्ञविद्याविचक्षणम्॥
पुत्रो वररुचिर्यस्य बभूव गुणसागर.॥ स्कन्दपुराण १३१।४८,४९।

कात्यायन बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। इन्होने व्याकरण के अतिरिक्त काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र तथा अन्य अनेक विषयो पर स्फुट रूप से लिखा है। इनके ग्रन्थो का विवरण इस प्रकार है-

स्वर्गारोहण काव्य—इसका उल्लेख 'महाभाष्य' (४।३।११०) में 'वाररुच' काव्य के रूप मे प्राप्त होता है तथा समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' में भी इसका निर्देश है—

य स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि। काव्येन रुचिरेणैव ख्यातां वररुचिः कविः॥

इसके अनेक पद्य 'शार्ङ्गधरपद्धति', 'सदुक्तिकर्णामृत' तथा 'सूक्तिमुक्तावली' में प्राप्त होते हैं। इन्होने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी लिखा था जो सम्प्रति अनुपलब्ध है किन्तु इसका विवरण 'अभिनवभारती' एवं 'शृङ्गारप्रकाश' मे है। यथोक्तं कात्यायनेन—

वीरस्य भुजदण्डानां वर्णने स्रग्धरा भवेत्।
नायिकावर्णनं कार्यं वसन्ततिलकादिकम्॥
शार्दूललीला प्राच्येषु मन्दाक्रान्ता च दक्षिणे॥

अभिनवभारती भाग २, पृ० २४५-४६।

इनके अन्य ग्रन्थों के नाम हैं—'भ्राजसंज्ञकश्लोक', 'स्मृतिकात्यायन' तथा 'उभय-सारिकाभाण'।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक २ पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष—डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री।

कात्यायन स्मृति—इस स्मृति के रचयिता कात्यायन नामक व्यक्ति है जो वार्त्तिककार कात्यायन से भिन्न सिद्ध होते हैं। डॉ० पी० वी० काणे के अनुसार इनका समय ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दी है। कात्यायन का धर्मशास्त्रविषयक अभी तक कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है। विविध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों मे इनके लगभग ९०० सौ श्लोक उद्धृत है। दस निबन्ध ग्रन्थो मे व्यवहार सम्बन्धी उद्धृत श्लोकों की संख्या नो सौ मानी जाती है। एकमात्र 'स्मृतिचन्द्रिका' मे ही इनके ६०० श्लोको का उल्लेख है। जीवानन्द संग्रह मे कात्यायन कृत ५०० श्लोकों का एक ग्रन्थ प्राप्त होता है जो तीन प्रपाठको एव २९ खण्डो में विभक्त है। इसके श्लोक अनुष्टुप मे है किन्तु कहीं-कहीं उपेन्द्रवज्रा का भी प्रयोग है। यही ग्रन्थ 'कर्मप्रदीप' या 'कात्यायनस्मृति' के नाम से विख्यात है। इसमे वर्णित विषयो की सूची इस प्रकार है—यज्ञोपवीत पहनने की विधि, जल का छिड़कना एव जल से विविध अंगो का स्पर्श करना, प्रत्येक कार्य मे गणेश तथा १८ मातृ-पूजा, कुश, श्राद्ध-विवरण, पूताग्निप्रनिष्ठा, अरणियों, स्रुक्, स्रुव का विवरण, प्राणायाम, वेद-मन्त्रपाठ, देवता तथा पितरो का श्राद्ध, दन्तधावन एवं स्नान की विधि, सन्ध्या, महाह्निकयज्ञ, श्राद्धकर्त्ता का विवरण, मरण के समय का अशौच काल, पत्नीकर्त्तव्य एवं नाना प्रकार के श्राद्ध। इस ग्रन्थ के अनेक उद्धरण मिताक्षरा एव अपरार्क ने भी दिये है। इसका लेखक कौन है यह भी विवादास्पद है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड १) डा० पी० वी० काणे हिन्दी अनुवाद।

कादम्बरी—यह संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठतम गद्यकाव्य है, जिसके रचयिता है महाकवि बाणभट्ट। (दे० बाणभट्ट) इसके दो भाग है—पूर्व भाग एवं उत्तर भाग। कहा जाता है कि पूर्व भाग बाण की रचना है और उत्तर भाग को उनके पुत्र (पुलिन्दभट्ट) ने पूर्ण किया है। इसके प्रारम्भ मे बीस श्लोको की प्रस्तावना है। आरम्भिक तीन श्लोको मे देवताओं की स्तुति है। तत्पश्चात् गुरु-वन्दना, खलनिन्दा आदि का वर्णन कर, कवि स्ववंशक्रम का उल्लेख करता है। इसके बाद कथा का प्रारम्भ होता है। कवि ने विदिशा के राजा शूद्रक की राज-सभा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। एक चाण्डाल-कन्या वैशम्पायन नामक तोते को लेकर सभा में उपस्थित होती है। वह तोता पण्डित तथा मनुष्य की भाँति बोलने वाला है। वह राजा की प्रशंसा करते हुए एक आर्या का पाठ करता है। राजा उसकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर उसे अपनी कथा सुनाने को कहता है। तोता विस्तारपूर्वक विन्ध्याटवी, उसके आश्रम एवं पम्पासर का वर्णन कर शाल्मली तरु के कोटर मे अपने निवासस्थान का परिचय

देता है। उसी कोटर में उसका जन्म हुआ है। एक दिन एक शबर-सेनापति अपनी सेना के साथ उसी मार्ग से निकलता है। एक वृद्ध शबर उस कोटर में स्थित उसके माता-पिता को मार डालता है और नीचे गिर जाने के कारण वैशम्पायन बच जाता है। दैवयोग से हारीत नामक एक ऋषि आकर उसे आश्रम में ले जाते है और उसे अपने पिता जाबालि के आश्रम में रखते है। जाबालि ने पवित्र जल से उसे प्रक्षालित कर बताया कि यह अपनी धृष्टता का फल पा रहा है। पुनः वे ऋषियो के पूछने पर उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाते है।

यहीं से वैशम्पायन एवं शूद्रक के पूर्वजन्म की कथा विदित होती है। उज्जयिनी के राजा तारापीड की रानी विलासवती सन्तान के अभाव में दुःखित है। उसने एक दिन रात्रि में स्वप्न देखा कि उसके मुख में चन्द्रमण्डल प्रवेश कर रहा है। निश्चित समय पर रानी को पुत्र होता है जिसका नाम चन्द्रापीड रखा जाता है। राजा के अमात्य शुकनास की पत्नी मनोरमा को भी उसी समय पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम वैशम्पायन रखा जाता है। दोनों गुरुकुल में एक ही साथ शिक्षा प्राप्त करते है। चन्द्रापीड युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाता है और बाद मे अपने मित्र वैशम्पायन को लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़ता है। दिग्विजय करने के पश्चात् वह आखेट के लिए निकलता है और किन्नरमिथुन की खोज करता हुआ अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। वहीं पर उसे शिवसिद्धायतन में एक सुन्दरी कन्या से भेंट होती है। युवराज के पूछने पर वह अपनी कथा सुनाती है। उस कन्या का नाम महाश्वेता है और वह हंस नामक गन्धर्व एवं गौरी नाम्नी अप्सरा की पुत्री है। जब वह स्नान करने के लिए अच्छोद सरोवर पर आयी थी तभी उसने वहाँ पुण्डरीक नामक ऋषि कुमार को देखा था जो अत्यन्त सुन्दर था। दोनों एक दूसरे को देखकर परस्पर आकृष्ट हो गये। जब महाश्वेता पुण्डरीक के सहचर कपिंजल से उसके सम्बन्ध में पूछती है तो वह बताता है कि वह महर्षि श्वेतकेतु तथा देवी लक्ष्मी का मानस पुत्र है। कपिंजल उससे पुण्डरीक के मदनावेग की बात कहता है और महाश्वेता उससे मिलने के लिए चल पड़ता है किन्तु दुर्भाग्य से उसके पहुँचने के पूर्व ही पुण्डरीक का निधन हो जाता है। महाश्वेता उसके साथ सती होने का उपक्रम करती है तभी चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष आकर पुण्डरीक के मृत शरीर को लेकर उड़ जाता है और उसे (महाश्वेता को) आश्वासन देता है कि उसे इसी शरीर से पुण्डरीक प्राप्त होगा, अतः वह मरने का प्रयास न कर पुण्डरीक की प्राप्ति की अवधि तक जीवित रह कर उसकी प्रतीक्षा करे। कपिंजल भी दिव्य पुरुष के साथ चला जाता है और महाश्वेता उसके वचन पर विश्वास कर अपनी सखी तरलिका के साथ उसी सरोवर पर रहती है। युवराज चन्द्रापीड उसकी कथा सुनकर उसे सान्त्वना देकर रात्रि वहीं व्यतीत करता है। बातचीत के क्रम में युवराज को ज्ञात होता है कि महाश्वेता की सखी कादम्बरी है जिसने महाश्वेता के अविवाहित रहने के कारण स्वयं भी विवाह न करने का निर्णय किया है। महाश्वेता कादम्बरी से मिलने के लिए जाती है और उसके आग्रह पर चन्द्रापीड भी उसका अनुसरण करता है। चन्द्रापीड और कादम्बरी एक

दूसरे को देखकर परस्पर प्रेम करने लगते है, पर पिता का पत्र पाकर चन्द्रापीड राजधानी लौट जाता है। उज्जयिनी पहुँचने पर चन्द्रापीड कादम्बरी की स्मृति मे विकल हो उठता है। कुछ दिनों के उपरान्त पत्रलेखा नामक स्त्री के द्वारा उसे कादम्बरी का वृत्तान्त ज्ञात होता है। वह कादम्बरी की विरहावस्था का वर्णन कर उसका सन्देश सुनाती है। [इसी प्रकरण मे कादम्बरी का पूर्वभाग समाप्त हो जाता है] बाणपुत्र ने आठ पद्यों मे शिव, पार्वती, नरसिंह एवं विष्णु की आर्थना की है तदनन्तर अपने पिता को प्रणाम कर ग्रन्थ का शेषांश पूर्ण किया है। कादम्बरी की विरहावस्था का समाचार सुनकर चन्द्रापीड उससे मिलने को व्याकुल हो उठता है। तत्क्षण कादम्बरी का भेजा हुआ सन्देश लेकर केयूरक आता है और उसकी विरहावस्था का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है। चन्द्रापीड द्रवित होकर गन्धर्व लोक मे जाने को आतुर हो उठता है तभी उसे सुनाई पडता है कि उसकी सेना दशपुर तक लौट आयी है। वह पत्रलेखा से कादम्बरी के पास अपना सन्देश भेजकर पिता की आज्ञा से वैशम्पायन को वापस लाने के लिए चल पडता है, पर उसकी वैशम्पायन से भेट नहीं होती। उसके पूछने पर अधिकारी वर्ग बताते हैं कि अच्छोद सरोवर पर पहुचने के बाद वैशम्पायन को न जाने क्या हो गया है कि वह वहाँ से आने का भी नाम नही ले रहा है। चन्द्रापीड वैशम्पायन के विषय मे विचार करता हुआ अपनी राजधानी उज्जयिनी चला आता है। पुन: वह माता-पिता की अनुमति लेकर अच्छोद सरोवर पर वैशम्पायन से मिलने के लिए चल पडता है। बहुत खोज करने के बाद भी उसे वैशम्पायन नही मिलता है तो वह महाश्वेता के आश्रम म चला जाता है। वहाँ उसकी शोकाकुल अवस्था मे महाश्वेता से भेट होती है। चन्द्रापीड के पूछने पर महाश्वेता बताती है कि उसकी एक ऐसे ब्राह्मण युवक से भेट हुई है जो अपरिचित होते हुए भी उससे प्रणय-याचना करता है। पुण्डरीक से ही एकमात्र प्रेम करने वाली महाश्वेता अन्तत: उसे शुक हो जाने का शाप दे देती है। वैशम्पायन की मृत्यु हो जाती है तब महाश्वेता को ज्ञात होता है कि वह चन्द्रापीड का मित्र है। इस प्राणान्तक घटना के पश्चात् चन्द्रापीड की भी मृत्यु हो जाती है। कादम्बरी उसके शव को लेकर विलाप करती है तथा अपना भी शरीर-त्याग करना चाहती है। उसी समय आकाशवाणी होती है कि चन्द्रापीड का शरीर दिव्य-लोक में सुरक्षित है, अत. शाप की अवधि तक कादम्बरी उसके शरीर की सुरक्षा करे। उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से चन्द्रमा की भाँति दिव्य ज्योति निकलती है। अचेत पडी हुई पत्रलेखा संज्ञा प्राप्त करने पर मृत चन्द्रापीड के लिए वाहन लाने के विचार से इन्द्रायुध के साथ अच्छोद सरोवर मे कूद पडती है। उसी समय सरोवर से कपिञ्जल निकलता है और महाश्वेता के पुण्डरीक के सम्बन्ध मे पूछने पर वह उसकी मृत्यु के बाद की सारी घटना कहता है। जब कपिञ्जल पुण्डरीक के मृतक शरीर के साथ चन्द्रलोक मे पहुँचा तो उसे ज्ञात हुआ कि उसके मित्र के शव को चन्द्रमा ही उठा ले गया है। चन्द्रमा द्वारा ज्ञात हुआ कि पुण्डरीक ने चन्द्रमा को भी शाप दे दिया कि 'जिस प्रकार तुमने मेरे प्रणय-प्रसंग को भंग करके मेरे प्राण-हरण किये हैं, उसी प्रकार तुम्हें भी प्रेम-पीडा सहकर प्राण त्यागने होंगे।' इस

पर चन्द्रमा ने भी क्रुद्ध होकर उसे अपने सदृश दुःख का भागी बनने का शाप दे दिया था, पर महाश्वेता की स्थिति को ध्यान मे रख कर शाप की अवधि पर्यन्त उसके (पुण्डरीक) शरीर को सुरक्षित रखने के लिए चन्द्रलोक ले गया। तत्पश्चात् कपिंजल को, एक वैमानिक ने अपना मार्ग लाँघ देने के कारण मृत्युलोक मे, घोडा बन जाने का शाप दे दिया। कपिंजल के विनय करने पर उसने शाप मे छूट दी कि अश्वरूप मे रहने का उसका शाप तब समाप्त होगा जब कि वह अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जल मे स्नान करेगा। (इन्द्रायुध चन्द्रापीड का अश्व था) वैमानिक ने दिव्य दृष्टि के द्वारा कपिंजल को बता दिया कि चन्द्रमा उज्जयिनी नरेश तारापीड के पुत्र, पुण्डरीक अमात्य शुकनास के पुत्र एवं कपिंजल चन्द्रापीड के वाहन के रूप मे अवतरित होंगे। पत्रलेखा के सम्बन्ध मे कपिंजल ने कुछ भी नहीं बताया कि आगामी जन्म में वह क्या होगी। इतनी कथा कहने के पश्चात् कपिंजल महर्षि श्वेतकेतु के पास सारा वृत्तान्त सुनाने के लिए जाता है। कादम्बरी तथा महाश्वेता कुमार चन्द्रपीड के शव की यत्न के साथ रक्षा करती है। जाबालि ऋषि ने अपनी कथा समाप्त करते हुए बताया कि यह शुक प्रथम जन्म मे कामासक्त होने के कारण दिव्यलोक से मृत्युलोक में वैशम्पायन के रूप में आया और पुन: अपनी धृष्टता के कारण इसे शुक-योनि प्राप्त हुई है।

तदनन्तर शुक अपने जन्मान्तर के सम्बन्ध मे तथा चन्द्रापीड के सम्बन्ध मे ऋषि जाबालि से सूचना प्राप्त करना चाहता है पर जाबालि उसे डाँट कर बतलाते है कि इस कार्य मे वह शीघ्रता न कर अपने पंख उगने तक आश्रम मे रुके। पर, शुक अपनी प्रेमिका महाश्वेता से मिलने को आतुर होकर उड जाता है और मार्ग मे एक चाण्डाल द्वारा पकड लिया जाता है। वह उसे अपनी पुत्री को दे देता है और चाण्डालपुत्री उसे पिजड़े म बन्दकर राजा के पास ले आती है। राजा शूद्रक के समक्ष कही गयी (शुक द्वारा) कथा की यही समाप्ति हो जाती है। चाण्डाल राजा को बता देता है कि यह चाण्डाल-कन्या न होकर वैशम्पायन की जननी लक्ष्मी है। चाण्डाल-कन्या ने बताया कि वह छाया की भाँति इसके साथ रहती है। अब इसके शाप की अवधि समाप्त हो चुकी है और मै तुम दोनो को सुखी बनाने के लिए इसे तुम्हारे निकट ले आई हूँ। अब तुम दोनों ही अपने शरीर का त्याग कर प्रियजनो के साथ सुख प्राप्त करो। शूद्रक पूर्वजन्म का चन्द्रापीड था। उसे अपना वृत्तान्त याद हो गया। दोनो के शरीर नष्ट हो जाते है और चन्द्रापीड अपना शरीर धारण कर लेता है। पुण्डरीक भी आकाश मार्ग से उतरता है और दोनो अपनी प्रेमिकाओ—कादम्बरी एव महाश्वेता—को सुखी बनाने के लिए चल पडते है। पत्रलेखा के सम्बन्ध मे ज्ञात होता है कि वह चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी के रूप में चन्द्रलोक मे स्थित रहती है।

'कादम्बरी' की कथा कल्पित एवं निजंधरी है। इसके घटनाचक्र मे एक व्यक्ति के तीन-तीन जीवन का वृत्तान्त है। मगध का राजा शूद्रक प्रथम जन्म मे चन्द्रमा, द्वितीय जन्म मे चन्द्रापीड एवं तृतीय जन्म मे शूद्रक था। इसी प्रकार वैशम्पायन पहले श्वेतकेतु का पुत्र पुण्डरीक, द्वितीय जन्म में वैशम्पायन एवं तृतीय जन्म मे तोता

हुआ। इसकी कथा का स्रोत 'बृहत्कथा' के राजा सुमनस की कहानी मे दिखाई पड़ता है, क्योंकि इसमें भी 'बृहत्कथा' की भाँति शाप एवं पुनर्जन्म की कथानक-रूढ़ियाँ प्रयुक्त हुई है। इसमें एक कथा के भीतर दूसरी कथा की योजना करने मे 'बृहत्कथा' की ही रूढ़ि ग्रहण की गयी है। लोककथा की अन्य कहानियों की भांति इसमें प्रथम पुरुष की शैली अपनायी गयी है तथा जाबालि की कथा में अन्य पुरुष की शैली प्रयुक्त हुई है। इसमे कवि ने लोक-कथा की अनेक रूढ़ियों का प्रयोग किया है, जैसे मनुष्य की भाँति बोलने वाला सर्वशास्त्रविद् शुक, त्रिकालदर्शी महात्मा जाबालि, किन्नर, गन्धर्व एवं अप्सराएँ, शाप से आकृति-परिवर्त्तन, पुनर्जन्म की मान्यता तथा पुनर्जन्म के स्मरण की कथा। इसके पात्र दण्डी आदि की तरह जगत् के यथार्थवादी धरातल के पात्र न होकर चन्द्रलोक, गन्धर्वलोक एवं मर्त्यलोक में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने वाले आदर्शवादी पात्र है। कवि ने पात्रों के चारित्रिक पार्थक्य की अपेक्षा कथा कहने की शैली के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि इसमे चारित्रिक सूक्ष्मताओं का विश्लेषण कम है। "कादंबरी के चरित्र भले ही आदर्शवादी बाण के हाथ की कठपुतली जरूर हैं, पर बाण ने उनका संचालन इतनी कुशलता से किया है कि उनमे चेतनता संक्रान्त हो गयी है। शुकनास का बुद्धिमान् तथा स्वामिभक्त चरित्र, वैशंपायन की सच्ची मित्रता और महाश्वेता के आदर्श प्रणयी चरित्र की रेखाओ को बाण की तूलिका ने स्पष्टतः अंकित किया है। पर बाण का मन तो नायक-नायिका की प्रणय-दशाओ, प्रकृति के विविध चित्रो और काव्यमय वातावरण की सृष्टि करने मे विशेष रमता है।" संस्कृत-कवि-दर्शन—प्रथम संस्करण पृ० ५००–१

डा० कीथ का कहना है कि—"वास्तव मे, यह एक विचित्र कहानी है, और उन लोगो के प्रति जिनको पुनर्जन्म म अथवा इस मर्त्यजीवन के अनन्तर पुनर्मिलन में भी विश्वास नही है इसकी प्ररोचना गम्भीर रूप से अवश्य ही कम हो जानी चाहिए। उनको यह सारी कथा, निकम्मी नहीं तो, असंगत अद्भुत कथा के रूप मे ही प्रतीत होती है, जिसके आकर्षण से हीन पात्र एक अवास्तविक वातावरण मे ही रहते है। परन्तु भारतीय विश्वास की दृष्टि से वस्तु-स्थिति बिल्कुल भिन्न है। कथा को हम औचित्य के साथ मानवीय प्रेम की कोमलता, दैवी आश्वासन की कृपा, मृत्युजनित शोक और कारुण्य, और प्रेम के प्रति अविचल सच्चाई के परिणामस्वरूप मृत्यु के पश्चात् पुनर्मिलन की स्थिर आशा से परिपूर्ण मान सकते हैं। कथा में अद्भुत घटनाओ का अंश भी भारतीय विचार धारा के लिए विशेष आकर्षण का विषय है, चन्द्रमा और पुण्डरीक के आश्चर्य से पूर्ण इतिवृत्त मे भी उस विचार-धारा के लिए कोई ऐसी बात नहीं है जो आकर्षक न हो।" संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३८४।

'कादम्बरी' का महत्त्व साहित्यिक एवं सास्कृतिक दोनो ही दृष्टियो से है। कवि ने तत्कालीन भारतीय जीवन-दर्शन एवं सास्कृतिक परम्परा को दृष्टि में रख कर उस युग के लोक-मानस की अभिव्यक्ति की है। बाण ने 'कादम्बरी' के अद्भुत कथा-शिल्प को राज-प्रासाद की भाँति सजाया है। "कादम्बरी के अद्भुत कथा-शिल्प को राजप्रासाद

के विन्यास से भी मिला कर देखा जा सकता है। राजप्रासाद के शिल्प में द्वारप्रकोष्ठ सहित प्रथम कक्ष्या आती है। शूद्रक की राजसभा में वैशम्पायन सुग्गे के आने से लेकर उसके द्वारा कथा के आरम्भ तक कादम्बरी कथा की भूमिका है। इसमें कवि ने पहले शूद्रक और उसकी राजसभा का विस्तृत वर्णन, फिर सुग्गे को लेकर लक्ष्मीरूपी चाण्डाल-कन्या का आगमन और सुग्गे द्वारा कथा के आरम्भ करने का वर्णन किया है। यही राजप्रासाद की भव्य तोरणद्वार युक्त प्रथम कक्ष्या है।

द्वारप्रकोष्ठ में प्रविष्ट दर्शक पहली कक्ष्या पार करके दूसरी कक्ष्या में प्रवेश करता था, जहाँ राजभवन में बाह्यस्थान-मण्डप का निर्माण किया जाता था। विन्ध्याटवी, पम्पासर एवं जाबालि आश्रम में भगवान् जाबालि द्वारा कथा का आरम्भ दूसरी कक्ष्या के समान है। उज्जयिनी इस राजप्रासाद की तीसरी कक्ष्या है। तीसरी कक्ष्या में ही धवलगृह होता था जहाँ राजकुल के अन्तरंग दर्शन मिलते थे। वैसे ही उज्जयिनी में कथानक के अन्तरंग पात्रों के चरित्र का प्रथम दर्शन होता है। राजा तारापीड और रानी विलासवती का परिचय, कुमार चन्द्रापीड का जन्म, शिक्षा, यौवराज्याभिषेक और दिग्विजय यात्रा के लिए प्रयाण, ये उस तीसरी कक्ष्या में स्थित राजकुल के अन्तरंग दृश्य हैं। किन्तु वहाँ तक पहुंच कर भी दर्शक को वास्तविक अन्तःपुर के उस सुखमन्दिर का दर्शन अवशिष्ट रहता है जहाँ नायक-नायिका का एकान्त सम्मिलन होता था। वही कादम्बरी कथा-शिल्प का हेमकूट लोक है जो कैलास के उत्संग में बसा है। स्थापत्य की परिभाषा में धवलगृह के उस अन्तरंग भाग को कैलास या सुखवासी भी कहा जाता था। कादम्बरी देवलोक की अध्यात्म विभूति है। उसी की साधना के लिए चन्द्रापीड का जीवन समर्पित है।" कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन— भूमिका पृ० ४-५।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कादम्बरी की कथा के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन करते हुए इसके दो उद्देश्य स्थिर किये हैं—बाह्यरूप एवं आन्तरिक स्वरूप। इसके बाह्यरूप का धरातल मानवी है पर आन्तरिक स्वरूप में देवतत्त्व की लीला की व्याख्या की गई है। प्रथम मानवी जीवन के अनित्य कर्मों तक सीमित है तो दूसरा नित्य रस-तत्त्व से संपृक्त। 'कादम्बरी' में बाण ने अपनी अर्थवती भाषा में जीव की सर्वोच्च समस्या कामवासना तथा शुद्ध प्रेम के तारतम्य को पहचान कर उसे जीवन में प्रत्यक्ष किया है। "मानव अपनी वासना के कारण सृष्टि के ब्रह्मसूत्र से विचलित या नित्य विधान से च्युत हो जाता है। उसी की संज्ञा शाप है। तपश्चर्या से उस शाप का अन्त होता है। शाप के अन्त में पुनः उसी स्वाभाविक स्थिति, उसी उच्च स्वर्गीय पदवी, उसी भगवत्तत्त्व, उसी शिवतत्त्व की उपलब्धि सम्भव होती है। यक्ष, यक्षपत्नी, उर्वशी, पुरूरवा, शकुन्तला, दुष्यन्त, पुण्डरीक, महाश्वेता, चन्द्रापीड, कादम्बरी सबके आध्यात्मिक जीवन की समस्या वासनामय स्नेह के अभिशाप से ऊपर उठकर नित्य अविचल प्रेमतत्त्व की प्राप्ति है। शाप से जब उनका छुटकारा होता है तो वे प्रेम के नित्यसुख प्राप्त करते हैं। वासना अनित्य है, प्रेम नित्य है। इस दृष्टि से कादम्बरी

के पात्रों के नाम और उनके जीवन की घटनायें साभिप्राय हैं।" कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन—भूमिका पृ० २–३।

आधारग्रन्थ— १ संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० ए० बी० कीथ २. संस्कृत कवि-दर्शन–डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ३. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ४. कादम्बरी (संस्कृत-हिन्दी टीका)–चौखम्बा प्रकाशन ५. कादम्बरी (हिन्दी अनुवाद)–अनुवादक ऋषीश्वरचरण भट्ट।

कालिदास—महाकवि कालिदास संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं नाटककार तथा कविता कामिनी के विलास है। ये भारतीय साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विभूति तथा प्राचीन भारतीय अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्त्व सन्निहित है। ये सौन्दर्य-तत्त्व के चितेरे तथा सुन्दरम् को शिवम् के पुनीत आदर्श लोक की ओर मोड़ने वाले महान् सत्य-स्रष्टा हैं। भारतीय सौन्दर्य-दर्शन की सभी विभूतियाँ इनके साहित्य में समाहित हो गयी है। ऐसे रससिद्ध कवि का जीवन अद्यापि अंधकाराच्छन्न होकर अनुमान का विषय बना हुआ है। महाकवि ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे इनकी प्रकृति का पता चलता है। 'रघुवंश' [दे० रघुवंश] महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे कवि ने अपनी विनम्र प्रकृति का परिचय दिया है। महान् प्रतिभाशाली कवि की उक्ति मे भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र प्रतिध्वनित होता है कि उच्च पद पर अधिष्ठित होकर भी गर्व न करे। अपनी प्रतिभा को हीन सिद्ध करता हुआ कवि रघु जैसे तेजस्वी कुल के वर्णन मे अपने को असमर्थ पाता है तथा तिनको मे निर्मित छोटी नाव के द्वारा सागर को पार करने की तरह अपनी मूर्खता प्रदर्शित करता है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥
अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥ १।२–४

कवि विद्वानो की महत्ता स्वीकार करते हुए उनकी स्वीकृति पर ही अपनी रचना को सफल मानता है।

आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ शाकुन्तल १।२

कवि होने पर भी उसमे आलोचक की प्रतिभा विद्यमान है। वह प्रत्येक प्राचीन वस्तु को इसलिए उत्तम नही मानता कि वह पुरानी है और न नये पदार्थ को बुरा मानता है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

मालविकाग्निमित्र १।२

अनेक व्यक्तियों ने कालिदास की प्रशस्तियाँ की हैं तथा अनेक ग्रन्थों में उनकी प्रशंसा के पद्य प्राप्त होते हैं—

१—एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥ राजशेखर

२—लिप्ता मधुद्रवेनासन् यस्य निर्विवशा गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥ दण्डी

३—निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ हर्षचरित बाण १।१६

४—म्लायन्ति सकलाः कालिदासेनासन्नवर्तिना ।
गिरः कवीना दीपेन मालतीकलिका इव ॥ तिलकमंजरी २५

५—प्रसादोत्कर्षमधुरा कालिदासीर्वयं स्तुमः ।
पीतवाग्देवतास्तन्यरसोद्गारायिता गिरः ॥ सुभा० १०, हरिहर

६—साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्ती ॥ आर्यासप्तशती ३५

७—स्वत कृतिः सोऽपि हि कालिदासः
शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्र-
सिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः ॥ सोड्ढल

८—कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ।
पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम् ॥ कृष्णभट्ट

९—कालिदास कविर्जातः श्रीरामचरितस्य यत् ।
स एव शर्करायोगः पयसः समपद्यत ॥ सोमेश्वर

१०—काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्रश्लोकचतुष्टयम् ॥

११—अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ॥ श्रीकृष्ण कवि

१२—भासयत्यपि भासादौ कविवर्गे जगत्त्रयीम् ।
के न यान्ति निबन्धारः कालिदासस्य दासताम् ॥ भोज

१३—कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयश्चापलमात्रं परं दधते ॥
सुभाषितरत्न ० २।१९

१४—पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥ वही २।२१

कविकुलकमलदिवाकर कालिदास के जीवन एवं तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतवैभिन्न्य है। इस विभिन्नता एवं अनिश्चितता के कई कारण बताये गए हैं। स्वयं कवि का अपने विषय में कुछ नहीं लिखना, इनके नाम पर कई प्रकार की किंवदन्तियों

का प्रचलित होना तथा कृत्रिम नामों का जुड़ जाना एवं कालान्तर में संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम का उपाधि हो जाना। किंवदन्तियों के अनुसार ये जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में मूर्ख थे और देवी काली की कृपा से आगे चल कर महान् पण्डित बने। किंवदन्तियाँ इन्हें विक्रम की सभा का नवरत्न एवं भोज का दरबारी कवि भी बतलाती है।

धन्वतरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभाया रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

इनके सम्बन्ध में लंका में भी एक जनश्रुति प्रचलित है जिसके अनुसार लंका के राजा कुमारदास की कृति 'जानकीहरण' की प्रशंसा करने पर ये राजा द्वारा लंका बुलाये गए थे। इसी प्रकार इन्हें 'सेतुबन्ध' महाकाव्य के प्रणेता प्रवरसेन का मित्र कहा जाता है एवं ये मातृचेट से अभिन्न माने जाते है। इनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी यही बात है। कोई इन्हें बंगाली, कोई काश्मीरी, कोई मालव-निवासी, कोई मैथिल एवं कोई बाखर के पास का रहने वाला बतलाता है। कालिदास की कृतियों में उज्जैन के प्रति अधिक मोह प्रदर्शित किया गया है अतः अधिकांश विद्वान् इन्हें मालव-निवासी मानने के पक्ष में है। इधर विद्वानों का झुकाव इस तथ्य की ओर अधिक है कि इनकी जन्मभूमि काश्मीर और मालवा कर्मभूमि थी।

कालिदास के स्थिति-काल को लेकर भारतीय तथा पाश्चात्य पण्डितों में अत्यधिक वाद-विवाद हुआ है। इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक माना जाता रहा है। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार महाकवि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। इनके ग्रन्थों में भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है। कहा जाता है कि 'शकुन्तला' का अभिनय विक्रम की 'अभिरूप भूयिष्ठा' परिषद् में ही हुआ था। 'विक्रमोर्वशीय' में भी विक्रम का नाम उल्लिखित है। 'अनुत्सेकः विक्रमालंकारः' इस वाक्य से भी ज्ञात होता है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध रहा होगा। 'रामचन्द्रमहाकाव्य' के इस कथन से भी विक्रम के साथ महाकवि के सम्बन्ध की पुष्टि होती है—'ख्याति कामपि कालिदासकवयो नीताशकारातिना'। इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास विक्रम की सभा में रहे होंगे।

कालिदास के समय-निरूपण के सम्बन्ध में तीन मत प्रधान है— क. कालिदास का आविर्भाव षष्ठ शतक में हुआ था। ख. इनकी स्थिति गुप्तकाल में थी। ग विक्रम संवत् के आरम्भ में ये विद्यमान थे। प्रथम मत के पोषक फर्ग्युसन, हॉर्नली आदि विद्वान् है। इनके मतानुसार मालवराज यशोधर्मन के समय में कालिदास विद्यमान थे। इन्होंने छठी शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त कर उसकी स्मृति में ६०० वर्ष पूर्व की तिथि देकर मालव संवत् चलाया था। यही संवत् आगे चलकर विक्रम संवत् के नाम से प्रचलित हुआ। इन विद्वानों ने 'रघुवंश' में वर्णित हूणों की विजय के आधार पर कवि का समय छठी शताब्दी माना है।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥ ४।६८

पर, यह अमान्य हो गया है क्योंकि (४७३ ई०) कुमारगुप्त की प्रशस्ति के रचयिता वत्सभट्टि की रचना मे ऋतुसंहार के कई पद्यो का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है ।

द्वितीय मत के अनुसार कालिदास गुप्त युग मे हुए थे । इसमें भी दो मत है—एक के अनुसार कालिदास कुमारगुप्त के राजकवि थे तथा द्वितीय मत में इन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना जाता है । प्रो० के० बी० पाठक ने इन्हें स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन कवि माना है । इनके अनुसार वल्लभदेव कृत निम्नांकित श्लोक ही इस मत का आधार है—

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कंधाल्लिग्नकुंकुमकेसरान् ।।

पाश्चात्य विद्वानो ने इन्हें शकों को पराजित कर भारत से निकालने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना है । रघुवंश के चतुर्थ सर्ग मे वर्णित रघुविजय समुद्रगुप्त की दिग्विजय मे साम्य रखता है तथा इन्दुमती के स्वयंवर में प्रयुक्त उपमा के वर्णन मे चन्द्रगुप्त के नाम की ध्वनि निकलती है ।

'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि.', 'इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै'

[इसमें चन्द्रमा एव इन्दु शब्द चन्द्रगुप्त के द्योतक माने गए हैं] पर, यह मत भी अप्रामाणिक है क्योकि द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे और इनसे भी प्राचीन मालवा मे राज्य करने वाले एक विक्रम का पता लगता है, अत कालिदास की स्थिति गुप्तकाल मे नही मानी जा सकती ।

तृतीय सिद्धान्त के अनुसार कालिदास ईसा के ५८ वर्ष पूर्व माने जाते हैं । कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नो मे प्रमुख माने गए है । हाल की गाथा 'सप्तशती' मे दानशील विक्रम नामक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है । इस पुस्तक का रचनाकाल स्मिथ के अनुसार ७० ई० के आसपास है ।

संवाहण सुहरस–तोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम् ।
चलणेन विक्रमादित्त चरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा ।। ५।६८

विद्वानों ने इसके आधार पर विक्रम का समय एक सौ वर्ष पूर्व माना है । इसी विक्रमादित्य को शकारि की उपाधि प्राप्त हुई थी । ईसा के १५० वर्ष पूर्व शकों के भारत पर आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है अतः इसमे 'शकारि' उपाधि की भी संगति मे किसी प्रकार की बाधा नहीं पडती । भारतीय विद्वानो ने इस विक्रम को ऐतिहासिक व्यक्ति मान कर उनके दरबार मे कालिदास की स्थिति स्वीकार की है । अभिनन्द ने अपने 'रामचरित' मे इस बात का उल्लेख किया है कि कालिदास को शकारि द्वारा यश प्राप्त हुआ था ।

'ख्याति कामपि कालिदासकृतयो नीतः शकारातिना' ।

कालिदास के आश्रयदाता विक्रम का नाम महेन्द्रादित्य था । कवि ने अपने नाटक 'विक्रमोर्वशीय' मे अपने आश्रयदाता के नाम का संकेत किया है । बौद्धकवि अश्वघोष ने, जिनका समय विक्रम का प्रथम शतक है, कालिदास के अनेक पद्यों का अनुकरण किया है, इससे कालिदास का समय विक्रम संवत् का प्रथम शतक सिद्ध होता है ।

कालिदास की सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनमे चार काव्य एवं तीन नाटक है— 'ऋतुसंहार', 'कुमारसम्भव', 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' एवं 'शाकुन्तल या अभिज्ञानशाकुन्तल'। [सभी ग्रन्थों का परिचय पृथक्-पृथक् दिया गया है, उनके नामों के सम्मुख देखें]।

कालिदास की काव्य-कला—कालिदास भारतीय संस्कृति के रसात्मक व्याख्याता हैं। भारतीय संस्कृति के तीन महान् विषयों—तप, तपोवन एवं तपस्या का इन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'शकुन्तला', 'रघुवंश' एवं 'कुमारसम्भव' मे तीनो का उदात्त रूप अंकित है। कालिदास के काव्य मे भारतीय सौन्दर्य-तत्त्व का उत्कृट रूप अभिव्यक्त हुआ है। इनकी सौन्दर्य दृष्टि बाह्य जगत् के चित्रण में दिखाई पडती है, जहाँ कवि ने मनोरम सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति की है। मनुष्य एवं प्रकृति दोनों का मधुर संपर्क एवं अद्भुत एकरसता दिखाकर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होनेवाले हृदय को पहचाना है। इनका प्रकृति-प्रेम पदे-पदे प्रशंसनीय है। 'शकुन्तला', 'मेघदूत', 'ऋतुसंहार' तथा अन्य ग्रन्थों के प्रकृति-वर्णन कवि को महान् देन के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनके अधिकाश प्रकृति-वर्णन स्वाभाविकता से पूर्ण एवं रसमय है। कवि ने प्रकृति को भावो का आलम्बन बना कर उसके द्वारा रसानुभूति करायी है। 'कुमारसम्भव' एवं 'शकुन्तला' मे पशुओ पर प्रकृति के मादक एवं करुण प्रभाव का निदर्शन हुआ है। 'कुमारसम्भव' मानो कवि की सौदर्य-चेतना की रमणीय रंगशाला है। इसमे हिमालय की गोद मे होने वाली घटनाएँ प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। कवि ने हिमालय का बडा ही मनोग्राही एवं सरस वर्णन किया है, जिसमे उसकी दिव्यता प्रदीप्त हो उठी है। हिमालय को कवि ने जड सृष्टि का रूप न देकर देवात्मा कहा है, जहाँ पर सभी देवता आकर वास करते है।

कालिदास भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के कवि है। इनकी कविता मे कलात्मक समृद्धि एवं भावो का उदात्त रूप दिखाई पडता है तथा उसमें मानववादी स्वर मुखरित हुआ है, जिसमे प्रेम, सौन्दर्य एवं मानवता को उन्नीत करनेवाले शाश्वत भावो की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी सभी रचनाओ मे प्रकृति की मनोरम प्रतिच्छवि उतारी गयी है। निसर्गकन्या शकुन्तला के अनिद्य सौन्दर्य-वर्णन में तथा 'मेघदूत' की विरह-विदग्धा यक्षिणी के रूप-चित्रण मे कवि की सौन्दर्यप्रियता का चरम विकास प्रदर्शित हुआ है। अपने दोनो महाकाव्यो—'रघुवंश' एवं 'कुमारसम्भव' में कवि की दृष्टि सौन्दर्याभिव्यक्ति, प्रकृति-प्रेम, उदात्त चरित्र, भाषा की समृद्धि एवं कलात्मक उन्मेष की ओर लगी हुई है। कवि सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तर दोनो ही पक्षो का उद्घाटन करता है। 'रघुवंश' के द्वितीय सर्ग मे सुदक्षिणा एवं दिलीप के उदात्त स्वरूप के चित्रण मे मानवचरित्र के अन्तःसौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तदनुरूप उपमाओं का नियोजन कर उसे अधिक प्रभावोत्पादक बनाया है। कालिदास उपमा के सम्राट् है। इनकी उपमाओ की रसात्मकता एवं रसपेशलता अत्यन्त हृदयहारिणी है। 'रघुवंश' के इन्दुमता स्वयंवर में दीपशिखा की उपमा देकर कवि 'दीपशिखा कालिदास' के नाम से विख्यात हो गया है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

इनकी उपमा मे स्थानीय रंजन का वैशिष्ट्य दिखाई पडता है तथा कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति प्रकट होती है। कवि उपमेय के लिंग, वचन और विशेषण को उपमान मे भी उपन्यस्त कर अपनी अद्भुत चातुरी एवं कलात्मकता का परिचय देता है। कालिदास के उपमा-प्रयोग की यह बहुत बडी विशेषता है। कवि के प्रकृति-वर्णन की विशेषता यह है कि प्रकृति-चित्रण के समय वह स्थान एवं समय पर अधिक बल देता है। जिस स्थान की जो विशेषता होती है और जो वस्तु जहाँ उत्पन्न होती है कवि उनका वही वर्णन करता है। प्रत्येक पुस्तक मे वह इस तथ्य पर सदा ध्यान रखता है। 'रघुवंश' महाकाव्य मे बिहार के प्रकृति-चित्रण मे ईख एवं धान दोनो खेतो की रक्षा करती हुई ग्रामवधू का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित किया गया है—

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥

कालिदास ने नागरिक जीवन की जहाँ समृद्धि एवं विलासिता का चित्र अंकित किया है वही तपोनिष्ठ साधको के पवित्र वासस्थान का भी स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। यह कहना कि कवि का मन केवल विलासी नागरिक जीवन के ही वर्णन मे रमता है, वस्तुस्थिति से अपने को दूर रखना है। कवि का मन जितना उज्जयिनी, अलका एवं अयोध्या के वर्णन मे रमा है उससे कम उसकी आसक्ति पार्वती की तपनिष्ठा एवं कण्व के आश्रम वर्णन मे नही दिखाई पडती।

कालिदास रसवादी कलाकार है। इन्होने सरस एवं कोमल रसो का ही वर्णन किया है। इसका मूल कारण कवि का प्रधानतः शृङ्गाररस के प्रति आकर्षण होना ही है। शृङ्गार, प्रकृति-वर्णन एवं विलासी नागरिक जीवन को अंकित करने मे कालिदास संस्कृत मे अकेले है, इनका स्थान कोई अन्य ग्रहण नही कर सकता। शृङ्गार के दोनो ही पक्षो का सुन्दर वर्णन 'रघुवंश', 'मेघदूत', 'कुमारसंभव' एवं 'शकुन्तला' मे पूरे उत्कर्ष पर दिखाई पडता है। संयोग के आलम्बन एवं उद्दीपन का– दोनो पक्षों का—सुन्दर चित्र 'कुमारसम्भव' के तृतीय सर्ग मे उपलब्ध होता है। वसन्त के मादक प्रभाव को कवि ने चेतन एवं अचेतन दोनो प्रकार के प्राणियो पर समान रूप से दर्शाया है। भौंरा अपनी प्रिया के प्रति प्रेमोन्मत्त होते दिखाया गया है—

मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥ ३।३६

अज-विलाप, रति-विलाप एवं यक्ष के अश्रुसिक्त सन्देश-कथन मे करुणा का स्रोत उमड पडता है। रति-विलाप एवं अज-विलाप को आचार्यों ने कालिदास की उत्कृष्ट 'करुणगीति' माना है। इसमे अतीत की प्रणय-क्रीडा की मधुर स्मृति के चित्र रह-रह कर पाठको के हृदय के तार को झंकृत कर देते है।

सफल नाटककार होने के कारण कालिदास ने अपने दोनो प्रबन्धकाव्यों मे नाटकीय संवादों का अत्यन्त सफलता के साथ नियोजन किया है। दिलीप-सिंह-संवाद, रघु-

इन्द्र संवाद, कौत्स-रघु संवाद, कुश-अयोध्या संवाद तथा पार्वती-ब्रह्मचारी संवाद उत्कृष्ट संवादकला का निदर्शन करते हैं।

कालिदास उदात्त प्रेमिल भावों के कवि हैं। इनकी प्रेम-भावना में क्रमिक विकास के सोपान दिखाई पड़ते हैं। 'ऋतुसंहार' इनकी प्रथम काव्य कृति है, अतः उसमें तरुण-तरुणियों के उद्दाम प्रेम का चित्रण किया गया है। पर 'शकुन्तला', 'मेघदूत', 'रघुवंश' एवं 'कुमारसम्भव' में कवि ने ऐसे प्रेम का चित्रण किया है जो वासना एवं बाह्यरूपासक्ति से रहित होकर कठोर साधना पर आधृत है। कालिदास ने वियोग की भट्ठी में वासना के कलुष को भस्मीभूत कर उसके दिव्य एवं पावन रूप का वर्णन किया है। इनका प्रेम-वर्णन मर्यादित एवं स्वस्थ पारिवारिक स्नेह का रूप उपस्थित करता है। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट अनुराग होने के कारण कवि ऐसे प्रेम का वर्णन नहीं करता जो लोकधर्म के साथ सामंजस्य स्थापित न करे। वह पति-पत्नी के वैवाहिक उदात्त प्रेम को अपने काव्य का आदर्श मानकर उसमें सदाचार एवं लोकरंजन का समावेश करता है। कवि अमर्यादित एवं उच्छृङ्खल अस्वाभाविक प्रेम को गर्हित मानकर उसके प्रति ध्यान भी नहीं देता।

कवि ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर समस्त भारतीय विद्या के प्रौढ़ अनुशीलन का परिचय दिया है। कालिदास की राजनैतिक तथा दार्शनिक मान्यताएँ ठोस आधार पर अधिष्ठित हैं तथा इनकी निजी सामाजिक स्थापनाएँ भी हैं। कतिपय विद्वानों ने इन तथ्यों का उद्घाटन कर कालिदास की सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना का व्याख्यान किया है। इन्होंने जीवन के शाश्वत एवं सार्वभौमिक तत्त्वों का रसात्मक चित्र प्रस्तुत कर सच्चे अर्थ में विश्व कवि की उपाधि प्राप्त की है। इनके काव्यात्मक भाव एवं काव्यात्मक शैली, उपयुक्त पद योजना, मूर्त्तिविधान की असाधारण क्षमता, शब्दगत संगीत एवं मधुर तथा रसपेशल भाषा इन्हें संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने में सर्वथा उपयुक्त हैं।

आधारग्रन्थ - १ ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर-मैकडोनल। २ ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-विण्टरनित्स (भाग ३)। ३. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर-कीथ। ४ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर-कीथ। ५ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर-दासगुप्त एवं डे। ६. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर-कृष्णमाचारियार। ७ कालिदास—भाग १,२-के० एस० रामस्वामी शास्त्री। ८. कालिदास—दि नेशनल पोयट ऑफ इण्डिया-डॉ० एस० एस० भावे। ९. कालिदास—दि ह्यूमन मीनिंग ऑफ हिज वर्क्स-वाल्टररुवेन। १० कालिदास-अरविन्द। ११. कालिदास—सेकण्ड सिरिज-अरविन्द। १२ दि डेट ऑफ कालिदास-चट्टोपाध्याय। १३. दि बर्थ प्लेस ऑफ कालिदास-लक्ष्मीधर कल्ला। १४ संस्कृत ड्रामा एण्ड ड्रामाटिस्ट-के० पी० कुलकर्णी। १५ कालिदास-जे० सी० झाला। १६ संस्कृत ड्रामा-प्रो० जागीरदार। १७ संस्कृत ड्रामा-इंदुशेखर। हिन्दी—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास-(हिन्दी अनुवाद) कीथ। २ संस्कृत नाटक-(हिन्दी अनुवाद) कीथ। ३ संस्कृत साहित्य का इतिहास-पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत सुकवि-समीक्षा-पं० बलदेव उपाध्याय

५. संस्कृत-कवि-दर्शन–डॉ० भोलाशंकर व्यास। ६ संस्कृत-काव्यकार–डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ७. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–गैरोला (द्वितीय संस्करण)। ८. कालिदास–प्रो० मिराशी। ९ कालिदास और भवभूति–द्विजेन्द्रलाल राय अनु० रूप-नारायण पाण्डेय। १०. कालिदास और उनकी कविता–पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी। ११. कालिदास–प० चन्द्रबली पाण्डेय। १२. विश्वकवि कालिदास : एक अध्ययन–पं० सूर्यनारायण व्यास। १३. कालिदासकालीन भारत–डॉ० भगवतशरण उपाध्याय। १४. कालिदास के सुभाषित–डॉ० भगवतशरण उपाध्याय। १५. राष्ट्रकवि कालिदास–डॉ० सीताराम सहगल। १६–कालिदास–जीवन कला और कृतित्व–जयकृष्ण चौधरी। १७ कालिदास : एक अनुशीलन–पं० देवदत्त शास्त्री। १८ कालिदास और उसकी काव्यकला–वागीश्वर विद्यालंकार। १९. कालिदास के पशु-पक्षी–हरिदत्त वेदालंकार। २० कालिदास की लालित्य-योजना–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी। २१ महाकवि कालिदास–डॉ० रमाशंकर तिवारी। २२ कालिदास के ग्रन्थो पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति–डॉ० गायत्री वर्मा। २३. कालिदास की कला-संस्कृति–डॉ० देवीदत्त शर्मा। २४ मेघदूत : एक पुरानी कहानी–आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी। २५. भारतीय राजनीतिकोश–कालिदास खण्ड। २६. कालिदासं नमामि–डॉ० भगवतशरण उपाध्याय। २७. उपमा कालिदासस्य–डॉ० शशिभूषण दास गुप्त (हिन्दी अनुवाद)। २८ कालिदास का प्रकृति-चित्रण–निर्मला उपाध्याय।

काव्यालंकार—काव्यशास्त्र का ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० रुद्रट है। [दे० रुद्रट] 'काव्यालंकार' अलंकार शास्त्र का अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है जिसमे भामह एवं दण्डी आदि की अपेक्षा अधिक विषयो का विवेचन है। यह ग्रन्थ सोलह अध्यायो मे विभक्त है जिसम ७३४ श्लोक हैं (इनमे ४९५ कारिकाएँ एवं २५३ उदाहरण है)। 'काव्यालंकार' के १२ वें अध्याय के ४० वें श्लोक के बाद १४ श्लोक प्रक्षिप्त है, अतः विद्वानो ने उनकी गणना नही की है। यदि उन्हे भी जोड दिया जाय तो श्लोको की कुल संख्या ७४८ हो जायगी। प्रथम अध्याय में गौरी एवं गणेश की वन्दना के पश्चात् काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु एवं कविमहिमा का वर्णन है। इसमे कुल २२ श्लोक हैं। द्वितीय अध्याय के वर्णित विषय हैं—काव्यलक्षण, शब्दप्रकार (पाँच प्रकार के शब्द), वृत्ति के आधार पर त्रिविध रीतियाँ, वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष एवं चित्रालंकार का निरूपण, वैदर्भी, पांचाली, लाटी तथा गौडी रीतियों का वर्णन, काव्य मे प्रयुक्त छह भाषाएं—प्राकृत, संस्कृत, मागध, पैशाची, शौरसेनी एवं अपभ्रंश तथा अनुप्रास की पाँच वृत्तियाँ–मधुरा, ललिता, प्रौढा, परुषा, भद्रा का विवेचन। इस अध्याय मे ३२ श्लोक प्रयुक्त हुए है। तृतीय अध्याय मे यमक का विवेचन ५८ श्लोको मे किया गया है तथा चतुर्थ एवं पंचम मे (क्रमशः) श्लेष और चित्रालंकार का विस्तृत वर्णन है। इनमे क्रमशः ५९ एवं ३५ श्लोक हैं। षष्ठ अध्याय मे दोष-निरूपण है जिसमे ४७ श्लोक हैं। सप्तम अध्याय में अर्थ का लक्षण, वाचक शब्द के भेद एवं २३ अर्थालंकारों का विवेचन है। इसमें वास्तवगत भेद के अन्तर्गत २२ अलंकारों का वर्णन है। विवेचित अलंकारों के नाम इस प्रकार हैं—सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव,

पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिकर, परिवृत्ति, परिसंख्या, हेतु कारणमाला, व्यतिरेक, अन्योन्य, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित, एकावली। इस अध्याय में १११ श्लोक हैं। अष्टम अध्याय में ११० श्लोक है और औपम्यमूलक २१ अलंकारों का विवेचन है। वर्णित अलंकार हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, उभयन्यास भ्रान्तिमान्, आक्षेप, प्रत्यनीक, दृष्टान्त, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य, स्मरण। नवम अध्याय मे अतिशयगत १२ अलंकारों का वर्णन है। इस अध्याय मे ५५ श्लोक है। अलंकारों के नाम है—पूर्व, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक, विरोध, विषम, असंगति, पिहित, व्याघात, अहेतु। दशम अध्याय मे अर्थश्लेष का विस्तृत वर्णन है तथा उसके दस भेद वर्णित है—अविशेषश्लेष, विरोधश्लेष, अधिकश्लेष, वक्रश्लेष, व्याजश्लेष, उक्तिश्लेष, असम्भवश्लेष, अवयवश्लेष, तत्त्वश्लेष, विरोधाभासश्लेष। इसमे २९ श्लोक हैं। एकादश अध्याय में अर्थदोष वर्णित है—अपहेतु, अप्रतीत, निरागम, बाधयन्, असम्बद्ध, ग्राम्य, विरस, तद्वान्, अतिमात्र, उपमादोष। इस अध्याय मे श्लोको की संख्या ३६ है। द्वादश अध्याय मे काव्य-प्रयोजन, काव्य में रस की अनिवार्यता, लौकिकरस, काव्य-रस, शृङ्गाररस, नायक-नायिकाभेद, नायक के चार प्रकार तथा अगम्य नारियो का विवेचन है। इस अध्याय मे ४७ श्लोक हैं। त्रयोदश अध्याय मे संयोग शृंगार, देशकालानुसार नायिका की विभिन्न चेष्टाएँ, नवोढ़ा का स्वरूप तथा नायक को शिक्षा वर्णित है। इस अध्याय में १[illegible] श्लोक हैं। चतुर्दश अध्याय मे विप्रलम्भ शृंगार के प्रकार, काम की दस दशा, अनुराग, मान, प्रवास, करुण, शृंगाराभास एवं रीति-प्रयोग के नियम वर्णित है। इसमे ३८ श्लोक है। पञ्चदश अध्याय मे वीर, करुण, बीभत्स, भयानक, अद्भुत, हास्य, रौद्र, शान्त एवं प्रेयान् तथा रीति-नियम वर्णित है। इस अध्याय मे २१ श्लोक हैं। षोडश अध्याय में वर्णित विषयो की सूची इस प्रकार है—चतुर्वर्गफलदायक काव्य की उपयोगिता, प्रबन्धकाव्य के भेद, महाकाव्य, महाकथा, आख्यायिका, लघुकाव्य तथा कतिपय निषिद्ध प्रसंग। इस अध्याय मे ४२ श्लोक है।

रुद्रटकृत 'काव्यालंकार' की एकमात्र टीका नमिसाधु की प्राप्त होती है। यह ग्रन्थ टीका सहित निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। सम्प्रति इसकी दो हिन्दी व्याख्याएँ उपलब्ध है—

क—डॉ० सत्यदेव चौधरीकृत व्याख्या वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली १९६५ ई०। ख—नमिसाधु की टीका सहित काव्यालंकार का हिन्दी भाष्य—श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १९६६ ई०। वल्लभदेव एवं आशाधर नामक काव्यालंकार के दो संस्कृत टीकाकार भी है किन्तु इनके ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते।

आधारग्रन्थ—क. दोनों ही (हिन्दी भाष्य)। ख काव्यालङ्कार (नमिसाधु की टीका) निर्णयसागर प्रेस। ग. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे।

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—रीतिसम्प्रदाय (काव्यशास्त्र का एक सिद्धान्त) का युगविधायक ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० वामन है। [दे० वामन] इस ग्रन्थ का

विभाजन अधिकरणो मे हुआ है जिसमें पाँच अधिकरण हैं। प्रत्येक अधिकरण मे कई अध्याय है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे पाँच अधिकरण, १२ अध्याय एवं ३१९ सूत्र हैं। इस पर लेखक ने स्वय वृत्ति की भी रचना की है—

प्रणम्य च परं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।
काव्यालंकारसूत्राणां स्वेषा वृत्तिर्विधीयते ॥

प्रथम अधिकरण मे काव्यलक्षण, काव्य और अलंकार, काव्य के प्रयोजन (प्रथम अध्याय मे), काव्य के अधिकारी, कवियों के दो प्रकार, कवि तथा भावक का सम्बन्ध, काव्य की आत्मा (रीति को काव्य की आत्मा कहा गया है) रीति के तीन प्रकार—वैदर्भी, गौडी एवं पाञ्चाली, रीति-विवेचन (द्वितीय अध्याय) काव्य के अंग, काव्य के भेद—गद्य-पद्य, गद्य काव्य के तीन प्रकार, पद्य के भेद-प्रबन्ध एवं मुक्तक, आख्यायिका के तीन प्रकार (तृतीय अध्याय) आदि विषयों का विवेचन है। द्वितीय अधिकरण मे दो अध्याय है। प्रथम अध्याय मे दोष की परिभाषा, पाँच प्रकार के पददोष, पाँच प्रकार के पदार्थदोष, तीन प्रकार के वाक्यदोष, विसन्धिदोष के तीन प्रकार एवं सात प्रकार के वाक्यार्थ दोष का विवेचन है। द्वितीय अध्याय मे गुण एवं अलंकार का पार्थक्य तथा दस प्रकार के शब्दगुण वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय मे दस प्रकार के अर्थदोषो का वर्णन है। चतुर्थ अधिकरण मे मुख्यत: अलकारो का वर्णन है। इसमे तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे शब्दालंकार—यमक एवं अनुप्रास का निरूपण एवं द्वितीय मे उपमा-विचार है। तृतीय अध्याय मे प्रतिवस्तु, समासोक्ति, अप्रस्तुत-प्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, क्रम, दीपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि, उपमारूपक एवं उत्प्रेक्षावयव नामक अलंकारों का विवेचन है। पचम अधिकरण मे दो अध्याय है। दानो मे शब्दशुद्धि एवं वैयाकरणिक प्रयोग पर विचार किया गया है। इस प्रकरण का सम्बन्ध काव्यशास्त्र से न होकर व्याकरण से है। वामन ने प्रत्येक अधिकरण एवं अध्याय का वर्णित विषयो के आधार पर नामकरण किया है। अधिकरणो के नाम है—शारीर, दोषदर्शन, गुण-विवेचन, आलंकारिक एवं प्रयोगिक। इस ग्रन्थ के तीन विभाग है—सूत्र, वृत्ति एवं उदाहरण। सूत्र एव वृत्ति की रचना वामन ने की है और उदाहरण विभिन्न ग्रन्थो से लिये गए है। 'काव्यालंकारसूत्र' भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ है जिसमे सूत्र-शैली का प्रयोग किया गया है। इस पर सहदेव नामक व्यक्ति ने टीका लिखी थी। गोपेन्द्रतिप्पभूपाल की भी 'काव्यालंकारसूत्र' पर टीका प्राप्त होती है जो कई बार प्रकाशित हो चुकी है। 'काव्यालंकार-सूत्र' रीति सम्प्रदाय का प्रस्थापक ग्रन्थ माना जाता है। इसमे रीति को काव्य की आत्मा कहा गया है। इस ग्रन्थ का हिन्दी भाष्य आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि ने किया है। 'काव्यालंकारसूत्र' की कामधेनु टीका (गोपेन्द्रतिप्पभूपाल कृत) सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमे गोपालभट्ट नामक टीकाकार का भी उल्लेख है।

आधारग्रन्थ—क काव्यालंकारसूत्रवृत्ति-हिन्दी भाष्य-सं० २०११ (संस्करण) ख संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० गुणे।

काव्यालङ्कारसारसंग्रह—काव्यशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० उद्भट हैं। [दे० उद्भट] यह ग्रन्थ मुख्यत. अलंकार-ग्रन्थ है। इसमें छह वर्ग एवं ७९ कारिकाएँ हैं तथा ४१ अलंकारों का विवेचन है। अलंकारों का विवेचन वर्गक्रम से इस प्रकार है—प्रथम वर्ग—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, त्रिविधअनुप्रास, (परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या या कोमला) लाटानुप्रास, रूपक, उपमा, दीपक, (आदि, मध्य, अन्त) प्रतिवस्तूपमा। द्वितीय वर्ग—आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति। तृतीय वर्ग—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति। चतुर्थ वर्ग—प्रेय, रसवत्, उर्जस्वित् , पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त (द्विविध), श्लिष्ट। पंचम वर्ग—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमेयोपमा, सहोक्ति, संकर (चार प्रकार का), परिवृत्ति। षष्ठ वर्ग—अनन्वय, ससंदेह, संसृष्टि, भाविक, काव्यलिंग, दृष्टान्त। 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में लगभग १०० उदाहरण उद्भट ने स्वरचित काव्य 'कुमारसंभव' से दिये हैं। इस पर प्रतीहारेन्दुराज ने 'लघुवृत्ति' नामक टीका लिखी है। इसका प्रकाशन १९२५ ई० में बम्बई संस्कृत सीरीज में हुआ है जिस पर डॉ० बनहट्टी ने अपनी टिप्पणी एवं अंगरेजी भाष्य प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम कर्नल जैकब द्वारा ज० रो० ए० सो० में १८९७ ई० में पृ० ८२९–८४७ में प्रकाशित। १९१५ ई० में लघुवृत्ति के साथ निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित। लघुवृत्ति सहित काव्यालंकारसारसंग्रह का हिन्दी अनुवाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशनाधीन। अनु० डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी।

आधारग्रन्थ—क. काव्यालङ्कारसारसंग्रह–बनहट्टी संस्करण। ख. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–डॉ० पा० वा० काणे।

काव्यप्रकाश—काव्यशास्त्र का महनीय ग्रन्थ। इसके प्रणेता आचार्य मम्मट हैं। [दे० मम्मट] यह ग्रन्थ दस उल्लास में विभक्त है तथा इसके तीन विभाग हैं—कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण। कारिका एवं वृत्ति के रचयिता स्वयं मम्मट हैं और उदाहरण विभिन्न ग्रन्थों से लिए गए हैं। इसके प्रथम उल्लास में काव्य के हेतु, प्रयोजन, लक्षण एवं भेद—उत्तम, मध्यम एवं तथा अवर—का वर्णन है। द्वितीय उल्लास में शब्दशक्तियों का एवं तृतीय में व्यंजना का वर्णन है (आर्थी व्यंजना)। चतुर्थ उल्लास में उत्तम काव्य ध्वनि के भेदोपभेद एवं रस का निरूपण है। पंचम उल्लास में गुणीभूतव्यंग्य (मध्यमकाव्य) का स्वरूप, भेद तथा व्यंजना के विरोधी तर्कों का निरास एवं उसकी स्थापना है। षष्ठ उल्लास में अधम या चित्रकाव्य के दो भेदों—शब्दचित्र एवं अर्थचित्र—का वर्णन है और सातवें उल्लास में ७० प्रकार के काव्य-दोष वर्णित हैं। अष्टम उल्लास में गुण-विवेचन एवं नवम में शब्दालङ्कारों—वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र एवं पुनरुक्तवदाभास—का वर्णन है और दशम उल्लास में ६० अर्थालङ्कार एवं दो मिश्रालङ्कारों—संकर एवं संसृष्टि—का विवेचन है। मम्मट द्वारा

वर्णित अर्थालंकार हैं—उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, उत्प्रेक्षा, ससंदेह, रूपक, अपह्नुति, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, दीपक, मालादीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, यथासंख्य, अर्थान्तरन्यास, विरोध, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्ति, भाविक, काव्यलिङ्ग, पर्यायोक्त, उदात्त, समुच्चय, पर्याय, अनुमान, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सूक्ष्म, सार, असंगति, समाधि, सम, विषम, अधिक, प्रत्यनीक, मीलित, एकावली, स्मरण, भ्रान्तिमान्, प्रतीप, सामान्य, विशेष, तद्गुण, अतद्गुण, व्याघात।

'काव्यप्रकाश' मे शताब्दियों से प्रवाहित काव्यशास्त्रीय विचारधारा का सार-संग्रह किया गया है और अपनी गंभीर शैली के कारण यह ग्रन्थ शाकरभाष्य एवं महाभाष्य की भांति महनीय बन गया है। इसी महत्ता के कारण इस पर ७५ के लगभग टीकाएँ लिखी गयी है। इसकी सर्वाधिक प्राचीन टीका माणिक्यचन्द्र कृत 'संकेत' है जिसका समय ११६० ई० है। आधुनिक युग के प्रसिद्ध टीकाकार वामन झलकीकर ने अपनी 'बालबोधिनी' टीका मे (१७७४ ई०) ४६ टोकाकारो का विवरण दिया है—१ माणिक्यचन्द्रकृत 'संकेत' टीका, २ सरस्वतीतीर्थकृत 'बालचित्तानुरञ्जिनीटीका' (सं० १२९८), ३ जयन्तभट्टकृत 'दीपिका' टीका (स० १३५०), ४ सोमेश्वरकृत 'काव्यादर्श' टीका, ५ विश्वनाथकृत 'दर्पण' टीका, ६ परमानन्ददासकृत 'विस्तारिका' टीका, ७ आनन्दकविकृत 'निदर्शना' टीका, ८ श्रीवत्सलाञ्छनकृत 'सारबोधिनी' टीका, ९ महेश्वरकृत 'आदर्श' टीका, १० कमलाकरभट्टकृत 'विस्तृता' टीका, ११ नरसिंहकृत 'नरसिंहमनीषा' टीका, १२ भीमसेनकृत 'सुधासागर' टीका, १३ महेन्द्रचन्द्ररचित 'तात्पर्यविवृति' टीका, १४ गोविन्दकृत 'प्रदीपच्छाया' व्याख्या, १५ नागेशभट्टकृत 'लघ्वी' टीका, १६ नागेशभट्टकृत 'बृहती' टीका, १७ वैद्यनाथकृत 'प्रदीप' की 'उद्योत' नामक टीका, १८ वैद्यनाथकृत 'प्रभा' टीका, १९ वैद्यनाथविरचित 'उदाहरणचन्द्रिका' टीका, २० राघवरचित 'अवचूरि' टीका, २१ श्रीधरकृत टीका, २२ चण्डीदासकृत टीका, २३ देवनाथकृत टीका, २४ भास्करकृत 'साहित्यदीपिका' टीका, २५ सुबुद्धिमिश्रकृत टीका, २६ पद्मनाभकृत टीका, २७ मिथिलेश के मन्त्री अच्युतकृत टीका, २८ अच्युततनय रत्नपाणिकृत टीका, २९ भट्टाचार्यकृत 'काव्यदर्पण' टीका, ३० भट्टाचार्य के पुत्र रविरचित 'मधुमती' टीका, ३१ 'तत्त्वबोधिनी' टीका (अज्ञात), ३२ कौमुदीटीका (रचयिता का नाम अज्ञात), ३३ 'आलोक' टीका, ३४ रुचककृत 'संकेत' टीका, ३५ जयरामकृत 'प्रकाशतिलक' टीका, ३६ यशोधरकृत टीका, ३७ विद्यासागर निर्मित टीका, ३८ मुरारीमिश्रकृत टीका, ३९ मणिसारकृत टीका, ४० पक्षधरकृत टीका, ४१ सुरिकृत 'रहस्यप्रकाश' टीका, ४२ रामनाथकृत 'रहस्यप्रकाश' टीका, ४३ जगदीशकृत टीका, ४४ गदाधरकृत टीका, ४५ भास्करकृत 'रहस्यनिबन्ध' टीका, ४६ रामकृष्णकृत 'काव्यप्रकाश भावार्थ' टीका, ४७ वाचस्पतिमिश्रकृत टीका, ४८ वामन झलकीकरकृत 'बालबोधिनी' टीका। इन टीकाओं के अतिरिक्त विद्याधरचक्रवर्तीकृत संजीवनी टीका (आंग्लानुवाद सहित प्रकाशित मोतीलाल बनारसीदास,

अनु० डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी) तथा आधुनिक युग की 'नागेश्वरी टीका' (चौखम्बा प्रकाशन)। माणिक्यचन्द्र से लेकर वामनाचार्य तक के ५०० वर्षों में काव्यप्रकाश पर लगभग ५० टीकाएँ लिखी गयी है। अँगरेजी में 'काव्यप्रकाश' के अनेक अनुवाद हुए है जिनमे डॉ० गंगानाथ झा, सुखथंकर एवं डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी के अनुवाद अधिक प्रसिद्ध है। हिन्दी में 'काव्यप्रकाश' की तीन व्याख्याएँ एवं एक अनुवाद है। इसका सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद पं० हरिमंगल मिश्र ने किया था, जो हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित है (सम्प्रति अप्राप्य)। पुनः इसका भाष्य डॉ० सत्यव्रत सिंह (चौखम्बा प्रकाशन), डॉ० हरदत्तशास्त्री एवं आचार्य विश्वेश्वर (ज्ञानमण्डल, वाराणसी) ने किया। इसके अन्य भाष्य भी प्रकाशनाधीन है। 'रीतिकाल' में काव्य-प्रकाश के अनेक हिन्दी पद्यानुवाद हुए है एवं इसके आधार पर कई आचार्यों ने रीतिग्रन्थों की रचना की है। 'काव्यप्रकाश' के प्रति पण्डितों का प्रेम अभी भी बना हुआ है और आशा है भविष्य मे भी इसके सुन्दर हिन्दी भाष्य प्रस्तुत होंगे।

आधारग्रन्थ—क काव्यप्रकाश–हिन्दी भाष्य आ० विश्वेश्वर। ख. वामनाचार्यकृत 'सुबोधिनी' व्याख्या।

काव्य-मीमांसा—यह संस्कृत का कवि-शिक्षा-विषयक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसके प्रणेता आचार्य राजशेखर है। [दे० राजशेखर] सम्प्रति यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप मे ही प्राप्त है जिसमे १८ अध्याय हैं। इसके प्रथम अध्याय में काव्यशास्त्र के उद्भव की कथा दी गयी है जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार काव्य-पुरुष ने अष्टादश अधिकरणवाली काव्यविद्या का उपदेश अपने शिष्यों को दिया था। अट्ठारह विद्वानों के अष्टादश ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—कविरहस्य-सहस्राक्ष, उक्ति-उक्तिगर्भ, रीतिनिर्णय-सुवर्णनाभ, यमक-यम, अनुप्रास-प्रचेता, चित्रकाव्य-चित्राङ्गद, शब्दश्लेष-शेष, स्वाभावोक्ति-पुलस्त्य, उपमा-औपकायन, अतिशयोक्ति-पराशर, अर्थश्लेष-उतथ्य, उभयालंकार-कुबेर, हास्य-कामदेव, रूपक-भरत, रस-नन्दिकेश्वर, दोष-धिषण, गुण-उपमन्यु, औपनिषदिक विषय-कुचमार। द्वितीय अध्याय मे शास्त्रनिर्देश है जिसमे वाङ्मय के दो प्रकार किये गए है—काव्य और शास्त्र। इसी अध्याय मे साहित्य को पाँचवी विद्या का स्थान दिया गया है। तृतीय अध्याय मे काव्यपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय का विवेच्य है पदवाक्य का विवेक। इसमे कवियों के प्रकार तथा प्रतिभा का विवेचन है। प्रतिभा के दो प्रकार कहे गए हैं—कारयित्री एवं भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा कवि की उपकारिका है जिसके तीन प्रकार हैं—सहजा, आहार्या एवं औपदेशिकी। भावयित्री प्रतिभा आलोचक की उपकारिका होती है। इस अध्याय मे आलोचकों के कई प्रकार वर्णित है। पंचम अध्याय में व्युत्पत्ति एवं काव्यपाक का वर्णन है। इसमें कवि के तीन प्रकार कथित है—शास्त्रकवि, काव्य-कवि एवं उभयकवि। पुनः शास्त्रकवि के तीन प्रकार, एवं काव्यकवि के आठ प्रकार बताये गए है। अन्त मे काव्यपाक के नौ भेद वर्णित है। षष्ठ अध्याय मे पद का तथा सप्तम अध्याय मे वाक्य का विश्लेषण है। सप्तम अध्याय मे काकु का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। अष्टम अध्याय में काव्यार्थ के स्रोत का वर्णन

है तथा उसकी सोलह योनियाँ बतलायी गयी हैं। नवम अध्याय में अर्थ के सात प्रकारों का वर्णन एवं मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य का विवेचन है। दशम अध्याय का वर्ण्य विषय कवि एवं राजचर्या है। इसमे कवि के गृह, मित्र, परिचारक, लेखक एवं उसकी भाषा की चर्चा की गयी है और इसी क्रम मे बतलाया गया है कि कवि किस प्रकार काव्य-पाठ करे। राजाओं के लिए कविगोष्ठियों के आयोजन का भी निर्देश किया गया है। एकादश अध्याय मे शब्दहरण का वर्णन है और उसके दोष-गुण वर्णित हैं। द्वादश अध्याय का विषय अर्थ-हरण है और उसके कई प्रकारो का विवेचन है। त्रयोदश अध्याय मे अर्थहरण के आलेख्य एवं प्रख्य आदि भेद वर्णित हैं। चतुर्दश से षोडश अध्याय तक कविसमय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सप्तदश अध्याय का सम्बन्ध भूगोल से है। इसमे देश-विभाग का वर्णन है जो भारत के प्राचीन भूगोल विद्या का सुन्दर निदर्शन है। अष्टादश अध्याय का नाम कालविभाग है। इसमे प्राचीन भारतीय कालविभाग का निरूपण किया गया है। इस अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि कवि किस विषय का किस ऋतु मे वर्णन करे। 'काव्यमीमांसा' मे वर्णित विषयो को देखकर ज्ञात होता है कि यह विविध विषयो का ज्ञान देनेवाला विशाल ज्ञानकोश है। इस पर पण्डित मधुसूदन शास्त्री ने संस्कृत मे 'मधुसूदनी' विवृति लिखी है जो चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है। काव्यमीमांसा के दो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं—

आधारग्रन्थ – क प० केदारनाथ शर्मा 'सारस्वत' कृत अनुवाद बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना सं० २०११ ख डॉ० गंगासागरराय कृत अनुवाद चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई०।

काव्यादर्श—काव्यशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० दण्डी हैं। [दे० आचार्य दण्डी] यह अलंकार सम्प्रदाय एवं रीतिसम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'काव्यादर्श' तीन परिच्छेदो मे विभक्त है। इसमे कुल मिलाकर ६६० श्लोक हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य-लक्षण, काव्य-भेद-गद्य, पद्य एवं मिश्र, आख्यायिका एवं कथा, वैदर्भी तथा गौडी-मार्ग, दस गुण-विवेचन, अनुप्रास-वर्णन तथा कवि के तीन गुण-प्रतिभा, श्रुति एवं अभियोग का निरूपण है। द्वितीय परिच्छेद मे अलंकारो का विशद वर्णन है। इसमे अलंकार की परिभाषा तथा ३५ अलंकारो के लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किये गए है। वर्णित अलंकार है—स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म लेश, यथासंख्य, प्रेयः, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त अपह्नुति, श्लेष, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजोक्ति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संकीर्ण एवं भाविक। तृतीय परिच्छेद मे यमक एवं उसके ३१५ प्रकारों का निर्देश, चित्रबन्धगोमूत्रिका, सर्वतोभद्र एवं वर्ण नियम, १६ प्रकार की प्रहेलिका एवं दस प्रकार के दोषों का विवेचन है। 'काव्यादर्श' पर दो प्रसिद्ध प्राचीन टीकाएँ है—प्रथम टीका के लेखक हैं तरुण वाचस्पति एवं द्वितीय टीका का नाम 'हृदयंगमा' है जो किसी अज्ञात लेखक की रचना है। मद्रास से प्रकाशित प्रो० रङ्गाचार्य

के (१९१० ई०) संस्करण में 'काव्यादर्श' के चार परिच्छेद मिलते हैं जिसमें तृतीय परिच्छेद के ही दो विभाग कर दिये गए है। इसके चतुर्थ परिच्छेद मे दोष-विवेचन है। 'काव्यादर्श' के तीन हिन्दी अनुवाद हुए हैं—ब्रजरत्नदासकृत हिन्दी अनुवाद, आचार्य रामचन्द्र मिश्र कृत हिन्दी एवं संस्कृत टीका (चौखम्बा संस्करण २०१५ वि०) एवं श्रीरणवीर सिंह का हिन्दी अनुवाद (अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय)। काव्यादर्श के ऊपर रचित अन्य अनेक टीकाओ के भी विवरण प्राप्त होते है—(क) मार्जन टीका—इसके रचयिता म० म० हरिनाथ थे। इनके पिता का नाम विश्वधर तथा अग्रज का नाम केशव था। इसका विवरण भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट स्थित राजकीय ग्रन्थ, संग्रहालय, ग्रन्थसूची भाग १२, संख्या ८४ में है। इसका प्रतिलिपिकाल संवत् १७४६ है। (ख) काव्यतत्त्वविवेककौमुदी—इसके रचयिता कृष्णकंकर तर्कवागीश थे। ये गोपालपुर (बंगाल) के निवासी थे। इसका विवरण इण्डिया ऑफिस सूचीपत्र पृ० २२१ मे प्राप्त होता है। (ग) श्रुतानुपालिनी टीका—इसके लेखक वादिघङ्घल है। इसका विवरण डॉ० सो० हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह, संख्या ३, १९१९–२४ ई०, ग्रन्थसूची भाग १२, संख्या १२५ मे है। (घ) वैमल्यविधायिनी टीका—जगन्नाथ के पुत्र मल्लिनाथ ने इस टीका की रचना की थी। (ङ) विजयानन्द कृत व्याख्या। (च) यामुन कृत व्याख्या। (छ) रत्न श्री संज्ञक टीका—इसके लेखक रत्न श्री ज्ञान नामक लंकानिवासी विद्वान् थे। मिथिला रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दरभंगा से श्री अनन्तलाल ठाकुर द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित, १९५७ ई० मे। (ज) बोथलिंक द्वारा जर्मन अनुवाद १८९० ई० मे।

आधारग्रन्थ—क काव्यादर्श—(संस्कृत-हिन्दी व्याख्या) आ० रामचन्द्र मिश्र—चौखम्बा संस्करण। ख. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे (हिन्दी अनुवाद)।

काव्यालंकार—इस ग्रन्थ के रचयिता है आ० भामह [दे० भामह]। यह भारतीय काव्यशास्त्र की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे सर्वप्रथम काव्यशास्त्र का स्वतन्त्ररूप मे विवेचन किया गया है। अथवा यों कहा जाय कि भामहकृत 'काव्यालंकार' मे ही काव्यशास्त्र को स्वतन्त्र शास्त्र का रूप दिया गया है तो कोई अत्युक्ति नहीं। यह ग्रन्थ छह परिच्छेदों में विभक्त है तथा इसमें श्लोकों की संख्या चार सौ के लगभग है। इसमे पाँच विषयों का वर्णन है—काव्यशरीर, अलंकार, दोष, न्याय-निर्णय एवं शब्द-शुद्धि। प्रथम परिच्छेद में काव्य-प्रयोजन, कवित्व-प्रशंसा, प्रतिभा का स्वरूप, कवि के ज्ञातव्य विषय, काव्य का स्वरूप एवं भेद, काव्य-दोष एवं दोष-परिहार का वर्णन है। इसमे ५९ श्लोक हैं। द्वितीय परिच्छेद में गुण, शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का विवेचन है। तृतीय परिच्छेद में भी अर्थालंकार निरूपित है और चतुर्थ परिच्छेद मे दोषों का विवेचन है। पंचम परिच्छेद का संबंध न्याय-निर्णय से है और षष्ठ परिच्छेद में व्याकरणविषयक अशुद्धियों का वर्णन है। प्रत्येक परिच्छेद में कारिकाओं या श्लोकों की संख्या इस प्रकार है—५९ + ९६ + ५८ + ५१ + ६९ +

६६ — ३९९ पुस्तक के अन्त में वर्णित विषयों एवं उनसे सम्बद्ध श्लोकों का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्याल्वलङ्कृतिः।
पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः॥
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येव वस्तुपञ्चकम्।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैर्भामहेन क्रमेण वः॥ काव्यालंकार ६।६५,६६॥

इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आ० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने किया है जो राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना से प्रकाशित है। इसके निम्नांकित संस्करण प्राप्त हैं—१. श्री के० पी० त्रिवेदी का संस्करण—'प्रतापरुद्रयशोभूषण' के परिशिष्ट के रूप में मुद्रित 'काव्यालंकार' (बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज १९०९ ई०)। २—श्री नागनाथ शास्त्रीकृत आंग्ल अनुवाद सहित (काव्यालंकार) तंजोर से १९२७ ई० में प्रकाशित। ३—काव्यालंकार—सं० पं० बटुकनाथ शर्मा एवं पं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९२७ ई०। ४—श्री शैलताताचार्य द्वारा रचित संस्कृत वृत्ति के साथ प्रकाशित काव्यालंकार, श्रीनिवास प्रेस, तिरुवदी, १९३४ ई०। ५—श्री संकरराम शास्त्री द्वारा संपादित काव्यालंकार, श्री बालमनोरमा प्रेस, मद्रास १९५६ ई०।

आधारग्रन्थ—क आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा संपादित काव्यालंकार, प्रकाशन काल २०१९ वि० सं०। ख संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० पा० वा० गुणे (हिन्दी अनुवाद) मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६६।

काव्यशास्त्र—जिस शास्त्र के द्वारा काव्य के सौन्दर्य की परख की जाती है उसे काव्यशास्त्र कहते हैं। इसमें सामान्य रूप से काव्यानुशीलन के सिद्धान्त का वर्णन होता है जिसके आधार पर काव्य या साहित्य की मीमांसा की जाती है। संस्कृत में इस शास्त्र के लिए कई नाम प्रयुक्त हुए हैं—अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, काव्यालंकार, साहित्यविद्या एवं क्रियाकल्प। इनमें सर्वाधिक प्राचीन नाम 'क्रियाकल्प' है। इसका उल्लेख वात्स्यायनकृत कामसूत्र में ६४ कलाओं के अन्तर्गत किया गया है जो 'काव्यक्रियाकल्प' का संक्षिप्त रूप है। 'ललितविस्तर' नामक बौद्ध ग्रन्थ में भी इस शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के ही अर्थ में हुआ है और उसके टीकाकार जयमङ्गलार्क के अनुसार इसका अर्थ है—क्रियाकल्प इति काव्यकरणविधि काव्यालंकार इत्यर्थः। इस प्रकार 'क्रियाकल्प' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के ही अर्थ हुआ प्रतीत होता है। 'वाल्मीकि रामायण' में भी यह शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। लव-कुश का संगीत सुनने के लिए रामचन्द्र की सभा में उपस्थित व्यक्तियों में वैयाकरण, नैगम, स्वरज्ञ एवं गान्धर्व आदि विद्याओं के विशेषज्ञों के अतिरिक्त क्रियाकल्प एवं काव्यविद् का भी उल्लेख है—

क्रियाकल्पविदश्चैव तथा काव्यविदो जनान्॥ उत्तरकाण्ड ९४-७।३

आलोचनाशास्त्र के लिए अन्य प्राचीन नाम 'अलंकारशास्त्र' मिलता है। यह नाम उस युग का है जब काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व अलंकार माना जाता था। भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट प्रभृति आचार्यों के ग्रन्थों के नाम इसी तथ्य की पुष्टि

करते हैं—काव्यालंकार, काव्यालंकारसारसंग्रह, काव्यालंकारसूत्र एवं काव्यालंकार। आचार्य वामन ने अलंकार का महत्त्व प्रतिष्ठित करते हुए इसे सौन्दर्य का वाचक बना दिया जिससे अलंकार शब्दार्थ का बाह्य शोभाधायक तत्त्व न रह कर उसका मूलभूत तत्त्व सिद्ध हुआ—काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् । सौन्दर्यमलङ्कारः—काव्यालंकारसूत्र—१।१।२। भामह प्रभृति आचार्य अलंकारवादी थे, अतः उन्होंने अपने ग्रन्थों में अलंकार का प्राधान्य सिद्ध करते हुए इसी अभिधा का प्रयोग किया। वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आ० कुंतक ने भी 'वक्रोक्तिजीवित' को काव्यालंकार की अभिधा प्रदान की है—

काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते। वक्रोक्तिजीवित १।२

कालान्तर में (मध्य युग में) इस शास्त्र के लिए साहित्यशास्त्र का अभिधान प्रचलित हुआ। सर्वप्रथम राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में 'पञ्चमी साहित्यविद्या इति यायावरीयः' (पृ० ४) कह कर इसका प्रयोग किया और आगे चलकर रुय्यक एवं विश्वनाथ ने इस अभिधान को अधिक लोकप्रिय बनाया। रुय्यक ने 'साहित्यमीमांसा' एवं विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' की रचना कर इस शब्द का गौरव बढ़ा दिया। ग्यारहवीं शताब्दी मे भोजराज ने काव्यशास्त्र को शास्त्र का रूप देकर इसके लिए काव्यशास्त्र का प्रयोग किया है और यह शब्द तभी से अधिक लोकप्रिय हो गया है। भोज ने ज्ञान के छह कारणों का उल्लेख किया है—काव्य, शास्त्र, इतिहास, काव्यशास्त्र, काव्येतिहास एवं शास्त्रेतिहास।

काव्य शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्॥ सरस्वतीकण्ठाभरण २।१३९

इस प्रकार काव्यशास्त्र के लिए अनेक नामों का प्रयोग होता रहा किन्तु अन्त में इसके लिए दो शब्द अधिक लोकप्रिय हुए—काव्यशास्त्र एवं साहित्यशास्त्र।

भारतीय काव्यशास्त्र के मूल उत्स वेदों मे प्राप्त होते हैं और इसकी प्राचीनता वैदिक वाङ्मय के समान ही सिद्ध होती है। 'ऋग्वेद' में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास प्रभृति अलंकार तथा शृंगारादि रसों के भी पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते है। 'निरुक्त' मे तो उपमालंकार का शास्त्रीय विवेचन भी किया गया है और उससे भी स्पष्ट रूप से इसका विवेचन पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' में मिलता है। उपमानानि सामान्य वचनैः। अष्टाध्यायी २।१।५५ 'अष्टाध्यायी' मे शिलालि एवं कृशाश्व द्वारा रचित नटसूत्रों का उल्लेख होने से ज्ञात होता है कि पाणिनि से पूर्व काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थों का (पराशर्यशिलाभिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। अष्टाध्यायी, ४।३।७१०) निर्माण हो चुका था। 'निरुक्त' मे वर्णित कर्मोपमा, भूतोपमा, अर्थोपमा, सिद्धोपमा आदि उपमा के प्रकार भी संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास को अधिक प्राचीन सिद्ध करते है। 'वाल्मीकि रामायण' में नौ रसों का उल्लेख मिलता है और अलंकारो तथा अन्य काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के प्रभूत उदाहरण प्राप्त होते है। इससे यह सिद्ध होता है कि काव्यशास्त्र का निरूपण अत्यन्त प्राचीनकाल से, संभवतः ईसा से दो सहस्र पूर्व, हो चुका था किन्तु उस समय के ग्रन्थों की प्राप्ति नहीं होती। भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में भी अनेक 'आनुवंश्य' श्लोकों

की संख्या है जिनसे ज्ञात होता है कि ये श्लोक 'परम्पराप्रवाह' में रचित हुए थे। भरत ने स्वयं 'द्रुहिण' नामक आचार्य का उल्लेख किया है जिन्होंने नाट्यरसों का विवेचन किया था। सम्प्रति 'नाट्यशास्त्र' ही भारतीय काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ प्राप्त होता है और भरत को इस शास्त्र का आद्याचार्य माना जाता है। इनका समय ई० पू० ५०० से २०० वर्ष तक माना गया है। भरत ने नाटक के विवेचन में रस, अलंकार, गुण आदि का निरूपण किया था और काव्यशास्त्र को नाटक का अंग मान लिया था। पर, आगे चल कर इसका विकास स्वतन्त्रशास्त्र के रूप मे हुआ जिसका श्रेय आ० भामह को है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा भरत से लेकर विश्वेश्वर पण्डित तक अक्षुण्ण रही है और इसमे छह प्रसिद्ध सिद्धान्तों की स्थापना हुई है—रस-सम्प्रदाय, अलंकारसम्प्रदाय, रीतिसम्प्रदाय, ध्वनिसम्प्रदाय, वक्रोक्तिसम्प्रदाय एवं औचित्यसम्प्रदाय। काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों में भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनञ्जय, कुंतक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, भोज, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर पण्डित हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा इस शास्त्र का रूप अत्यन्त प्रौढ़ एवं वैज्ञानिक बनाया है। [इनका परिचय इसी कोश में इनके नामो मे देखें]

संस्कृत काव्यशास्त्र की उत्पत्ति की कथा राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में दी गयी है जिसमे १७ व्यक्तियों द्वारा काव्यविद्या के विविध अंगो के निरूपण का उल्लेख है—सहस्राक्ष इन्द्र ने कविरहस्य का, उक्तिगर्भ ने उक्तिविषयक ग्रन्थ का, सुवर्णनाभ ने रीतिविषयक ग्रन्थ, प्रचेता ने अनुप्रासविषयक, यम ने यमक सम्बन्धी, चित्राङ्गद ने चित्रकाव्य का, शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव या स्वभावोक्ति, औपकायन ने उपमा, पराशर ने अतिशयोक्ति, उतथ्य ने अर्थश्लेष, कुबेर ने उभयालङ्कार, कामदेव ने विनोदविषयक ग्रन्थ, भरत ने नाट्यशास्त्र, धिषण ने दोष, उपमन्यु ने गुण, कुचमार ने औपनिषदिक विषयों पर तथा नन्दिकेश्वर ने रसशास्त्र का निर्माण किया था। इस विषय का उल्लेख अन्य किसी भी ग्रन्थ मे प्राप्त नहीं होता, अतः इस आख्यायिका की प्रामाणिकता असंदिग्ध नही है। इसमें अवश्य ही कुछ लेखकों के नाम आ गए हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगो पर ग्रन्थलेखन किया था।

रससम्प्रदाय—संस्कृत काव्यशास्त्र का सर्वाधिक प्राचीन सिद्धान्त रससम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक भरतमुनि हैं। 'नाट्यशास्त्र' में रस का अत्यन्त सूक्ष्म, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विवेचन है तथा उसकी संख्या आठ मानी गयी है। भरत ने रस का स्रोत अथर्ववेद को माना है—रसानाथर्वणादपि १।१७ राजशेखर के कथनानुसार सर्वप्रथम नन्दिकेश्वर ने ब्रह्मा के आदेश से रसविषयक ग्रन्थ का प्रणयन किया था किन्तु सम्प्रति उनका ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। अतः इस सिद्धान्त के आद्य संस्थापक भरत सिद्ध होते हैं। इन्होंने नाट्य से सम्बद्ध होने के कारण इसे 'नाट्यरस' के रूप में निरूपित किया है और विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति या उत्पत्ति मानी है—विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। कालान्तर मे अनेक आचार्यों ने 'नाट्यशास्त्र' की व्याख्या करते हुए इस सूत्र की अनेकधा व्याख्या उपस्थित

की। इन व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। भट्टलोल्लट का सिद्धान्त उत्पत्तिवाद, श्रीशंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक का भुक्तिवाद एवं अभिनवगुप्त का सिद्धान्त अभिव्यक्तिवादके नाम से प्रसिद्ध है। आगे चलकर रुद्रट, रुद्रभट्ट आदि आचार्यों ने रस की महत्ता प्रतिष्ठित करते हुए इसे काव्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोषित किया और ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने रस को व्यंग्य मानकर इसे ध्वनि का ही अंग सिद्ध किया। इनके अनुसार ध्वनि के तीन विभाग हैं—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि एवं रसध्वनि। इनमे रसध्वनि ही ध्वनि का उत्कृष्टतम रूप है। भोज ने 'शृंगारप्रकाश' में रस को अधिक महत्त्व देकर शृंगार के अन्तर्गत ही सभी रसो को अन्तर्मुक्त किया और 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में वाङ्मय को तीन भागों—स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति एवं रसोक्ति–मे विभक्त कर रसोक्ति को ही काव्य का मुख्य तत्त्व स्वीकार किया। 'अग्निपुराण' एवं राजशेखर ने रस को काव्य की आत्मा के रूप मे स्वीकार किया है। 'अग्निपुराण' के अनुसार उक्तिवैचित्र्य का प्राधान्य होते हुए भी रस ही काव्य का जीवित है—'वाक्-वैदग्ध्य प्रधानेपि रसएवात्रजीवितम्' (३३६।३३)। आगे चलकर भानुदत्त एवं विश्वनाथ ने रस को अधिक महत्त्व देकर इसे स्वतन्त्र काव्य-सिद्धान्त के रूप मे अधिष्ठित किया और ध्वनि से पृथक् कर इसकी स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा की। विश्वनाथ के अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'। पण्डितराज ने 'रसगंगाधर' मे वेदान्त की दृष्टि से रस-विवेचन उपस्थित कर इसे दार्शनिक पीठिका प्रदान की। 'रससिद्धान्त' भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय है जो काव्यानुशीलन का शाश्वत एवं सार्वभौमरूप उपस्थित करता है। न केवल साहित्यिक दृष्टि से अपितु सौन्दर्यशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी इसकी महत्ता स्वीकार की गयी है।

अलंकार सम्प्रदाय—काव्य के शोभाकारक धर्म को अलङ्कार कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के पोषक आचार्य अलङ्कार को ही काव्य का 'जीवातु' समझ कर अन्य तत्त्वों या सिद्धान्तो को उसी मे गतार्थ कर देते है। अलङ्कार-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य भामह हैं और इसके पोषक है—दण्डी, उद्भट, रुद्रट, प्रतिहारेन्दुराज एवं जयदेव। भामह के अनुसार अलङ्कारो के बिना कविता उसी प्रकार सुशोभित नहीं हो सकती जिस प्रकार आभूषणों के बिना कामिनी विभूषित नहीं हो पाती। इन्होने रस को भी अलङ्कारों मे समाविष्ट कर रस-सिद्धान्त के प्रति अनास्था प्रकट की है। भामह ने रस को गौण स्थान देते हुए रसवत् अलङ्कारो में ही उसका अन्तर्भाव किया—'रसवत् दर्शितस्पष्ट शृङ्गारादिरसं यथा'॥ काव्यालङ्कार ३।६ भरत ने केवल चार अलङ्कारों का विवेचन किया था किन्तु अप्पयदीक्षित तक इनकी संख्या १२५ हो गई। संस्कृत काव्य-शास्त्र में न केवल अलङ्कारवादियो ने अपितु ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में अलङ्कारों को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर इसका वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। सच तो यह है कि अलङ्कारवादी आचार्यों की अपेक्षा ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों ने ही अलङ्कारों का प्रौढ़ विवेचन प्रस्तुत किया और काव्य मे इसकी उपयोगिता,

वर्गीकरण एवं एक अलङ्कार का अन्य अलङ्कार के साथ अन्तर स्थापित करते हुए इसके प्रयोग की भी सीमा निर्धारित की। मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, पण्डितराज तथा विश्वेश्वर पण्डित की अलङ्कार-मीमांसा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक है।

अलङ्कारवादी आचार्यों में भामह ने ३८ (३९), दण्डी ने ३७ (२ + ३५), उद्भट ने ४१, रुद्रट ने ६८ एवं जयदेव ने १०० अलङ्कारों का वर्णन किया है। उद्भट एवं रुद्रट ने अलङ्कारो के वर्गीकरण का भी प्रयास किया है और क्रमशः ६ एवं ४ वर्ग किये हैं। रुद्रट का वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण है—वास्तवमूलक, औपम्यमूलक, अतिशयमूलक एवं श्लेषमूलक। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलङ्कार को काव्य का बाह्यशोभाधायक तत्त्व स्वीकार कर इन्हें 'अस्थिरधर्म' की संज्ञा दी और तभी से इनका महत्त्व गौण हो गया। इन आचार्यों ने अलङ्कारकाव्य को अवर या अधम काव्य माना और अलङ्कार के बिना भी काव्य की कल्पना की। रुय्यक ने ८२ अलङ्कारों का वर्णन किया और उन्हें सात वर्गों में विभक्त किया—साधर्म्यमूलक, विरोधमूलक, शृङ्खलामूलक, तर्कन्यायमूलक, वाक्यन्यायमूलक, लोकन्यायमूलक एवं गूढार्थप्रतीतिमूलक। मम्मट ने ६८, विश्वनाथ ने ८६, पण्डितराज ने ७० तथा विश्वेश्वर ने ६२ अलङ्कारों का विवेचन किया है। रुद्रट ने अलङ्कारो की संख्या मे वृद्धि की और रुय्यक, शोभाकरमित्र, जयदेव, अप्पय दीक्षित तथा पण्डितराज ने इसमे सम्यक् योग दिया किन्तु विश्वेश्वर पण्डित ने बढ़ाये गये सभी अलङ्कारो का खण्डन कर मम्मट द्वारा वर्णित अलङ्कारों मे ही उन्हें गतार्थ कर अलङ्कार-संख्या का परिसीमन कर दिया। विश्वेश्वर का यह कार्य अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण एवं प्रौढ़ता का द्योतक है। अलङ्कारवादी आचार्य जयदेव ने अलङ्कारविहीन काव्य को उष्णतारहित अग्नि की भाँति व्यर्थ मान कर काव्य मे अलङ्कार की अनिवार्य सत्ता का उद्घोष किया था किन्तु परवर्ती आचार्यों ने इसे अमान्य ठहरा दिया।

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

अलङ्कार के सम्बन्ध में ध्वनिवादी आचार्यो की चाहे जो भी मान्यताएँ रही हों किन्तु इसका जितना सूक्ष्म-विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र मे हुआ उतना सम्भवतः किसी सिद्धान्त का नहीं हुआ। अलङ्कारों का गम्भीर पर्यवेक्षण ही उसकी महत्ता का परिचायक है।

रीति-सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के संस्थापक हैं आचार्य वामन। इन्होंने रीति को ही काव्य की आत्मा मानकर इसका महत्त्व प्रतिष्ठित किया है—'रीतिरात्माकाव्यस्य', काव्यालङ्कारसूत्र १।२।६। वामन के अनुसार विशिष्ट पद-रचना ही रीति है और यह वैशिष्ट्य गुण के ही कारण आता है। अर्थात् रचना मे माधुर्यादि गुणों के समावेश से ही विशिष्टता आती है—विशेषो गुणात्मा १।२।७। इस प्रकार इन्होंने गुण एवं रीति में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है। इन्होंने अलङ्कार की अपेक्षा गुण की विशेष महत्ता सिद्ध की। वामन के अनुसार गुण काव्यशोभा का उत्पादक होता है और अलङ्कार केवल उसकी शोभा का अभिवर्द्धन करते हैं। इन्होंने रीतियों के तीन प्रकार मान कर उनका वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। वे हैं—वैदर्भी, गौड़ी एवं पाञ्चाली।

परवर्ती आचार्यों ने रीति की महत्ता स्वीकार करते हुए भी उसे काव्य की आत्मा नहीं माना और इसे शरीरावयवों की भाँति काव्य का अङ्ग स्वीकार किया। रीति-सम्प्रदाय काव्य के प्राण तत्त्व का विवेचन न कर उसके बाह्य रूप का ही निरूपण करता है। इसमें रसानुकूल वर्णों एवं वर्णनानुकूल पद-विन्यास पर अधिक बल दिया जाता है। फलतः यह काव्य का बाह्यधर्मी तत्त्व सिद्ध होता है।

ध्वनि-सम्प्रदाय—यह सिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र का अप्रतिम सिद्धान्त तथा काव्यालोचन का प्रौढ़ तत्त्व है। इस सिद्धान्त की आधारशिला व्यञ्जना है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्त्तक आनन्दवर्द्धन हैं और पोषक हैं अभिनवगुप्त, मम्मट, रुय्यक तथा पण्डितराज जगन्नाथ। ध्वनि सिद्धान्त को प्रबलतम विरोध का भी सामना करना पडा है। भट्टनायक, धनञ्जय, कुन्तक एवं महिमभट्ट ने इसका खण्डन कर इसके अस्तित्व को ही नष्ट करना चाहा था किन्तु ध्वनि सिद्धान्त अपनी आन्तरिक शक्ति के कारण जीवित रहा। आचार्य मम्मट ने ध्वनि-विरोधी आचार्यों के तर्कों का निरास कर उनकी धज्जियाँ उडा दीं और काव्य के अन्तस्तत्त्व के रूप में ध्वनि की प्रतिष्ठा की। इस सिद्धान्त के आचार्यों ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर उसके तीन प्रकार किये—वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि एवं रसध्वनि। ध्वनिवादी आचार्य काव्य के प्रतीयमान अर्थ की खोज करते हैं। जब वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अधिक चारु या आकर्षक होता है तो उसे ध्वनि कहते हैं। रमणी के विविध शरीरावयवो से जिस प्रकार लावण्य की पृथक् सत्ता होती है उसी प्रकार काव्य में प्रतीयमान अर्थ उसके अङ्गों से पृथक् महाकवियों की वाणी में नित्य प्रतिभासित होता है। आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि के स्वरूप, भेद एवं अन्य काव्य-सिद्धान्तों के साथ इसके सम्बन्ध का मूल्याङ्कन कर ध्वनि सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की है। इन्होंने रसध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। ध्वनि सिद्धान्त में काव्य के अन्तस्तत्त्व का प्रथम विवेचन एवं उसमे कल्पना के महत्त्व को अधिक दर्शाया गया है।

वक्रोक्ति सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आ० कुन्तक है जिन्होंने 'वक्रोक्ति-जीवित' नामक युग प्रवर्त्तक ग्रन्थ की रचना कर वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है। वक्रोक्ति की सर्वप्रथम महत्ता भामह ने स्थापित की थी और इसके बिना अलङ्कार के अस्तित्व को ही खण्डित कर दिया था। कुंतक ने वक्रोक्ति को अलङ्कार के पद से हटाकर स्वतन्त्र काव्य-सिद्धान्त का रूप दिया और ध्वनि के भेदों को वक्रोक्ति मे ही गतार्थ कर इसकी गरिमा बढ़ा दी। इन्होने वक्रोक्ति के छः भेद किये—वर्णवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदोत्तरार्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता एवं प्रबन्धवक्रता तथा उपचारवक्रता नामक भेद के अन्तर्गत ध्वनि के अधिकांश भेदों का अन्तर्भाव कर दिया है। वक्रोक्ति से कुन्तक का अभिप्राय चतुरतापूर्ण कविकर्म के कौशल की शैली या कथन से है। अर्थात् 'असाधारण प्रकार की वर्णनशैली ही वक्रोक्ति कहलाती है।'

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ॥ १।१०

भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का मूलतत्त्व माना था किन्तु कुंतक ने इसे काव्य का मूलतत्त्व स्वीकार कर इसे काव्यसिद्धान्त का महत्त्व प्रदान किया।

औचित्य सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र हैं। इन्होंने 'औचित्य-विचारचर्चा' नामक पुस्तक मे औचित्य को काव्यसिद्धान्त के रूप में उपस्थित किया है। यद्यपि औचित्य को काव्य का जीवित या प्राणतत्त्व मानने का श्रेय क्षेमेन्द्र को है फिर भी इसका विवरण अत्यन्त प्राचीनकाल से प्राप्त होता है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' मे पात्रो की वेश-भूषा के निरूपण में औचित्य का व्यावहारिक विधान प्राप्त होता है और 'ध्वन्यालोक' मे अनौचित्य को रस-भंग का प्रधान कारण मान कर इसकी गरिमा स्थापित की गयी है :—

अनौचित्याद् ऋते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा॥ ३।१५ ध्वन्या०

क्षेमेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा मान कर औचित्य को उसका जीवित स्वीकार किया।

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। ५। औचित्य०

क्षेमेन्द्र ने औचित्य के २८ प्रकार किये है और इसमें रस, अलंकार, गुण, पद, वाक्य, कारक, क्रिया आदि के औचित्य का भी निर्देश किया है। औचित्य की परिभाषा देते हुए क्षेमेन्द्र ने कहा कि उचित का भाव ही औचित्य है। जिस वस्तु का जिससे मेल मिलता है उसे उचित कहते हैं और उचित का भाव औचित्य कहा जाता है—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावः, तदौचित्यं प्रचक्षते॥ ३। औचित्यविचारचर्चा

संस्कृत का काव्यशास्त्र अत्यन्त प्रौढ़ एवं महनीय काव्यालोचन का रूप प्रस्तुत करने वाला है। दो सहस्र वर्षों की अनवरत साधना के फलस्वरूप आचार्यों की चिंतन-सरणि मे जिन छह सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव हुआ उनमे संस्कृत काव्यशास्त्र का स्वरूप निखर गया। आचार्यों ने मुख्यतः काव्य के स्वरूप, कारण, प्रयोजन, भेद आदि के सम्बन्ध मे अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विचार कर उसके वर्ण्य विषयो का भी निरूपण किया। काव्य के उत्तम, मध्यम एवं अधम तीन भेद किये गए और ध्वनि को सर्वोत्कृष्ट रूप माना गया। मध्यम काव्य के अन्तर्गत गुणीभूत व्यंग्य को स्थान मिला और अलंकार-काव्य को अवर या अधम काव्य की संज्ञा प्राप्त हुई। अन्य दृष्टि से भी काव्य के कई प्रकार किये गए और उसका विभाजन श्रव्य एवं दृश्य के रूप मे किया गया। श्रव्यकाव्य के भी प्रबन्ध एवं मुक्तक के रूप मे कई भेद हुए। प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य एवं खण्डकाव्य का विवेचन किया गया और इनके स्वरूप का विस्तृत विवेचन हुआ। दृश्यकाव्य के अन्तर्गत रूपक का विवेचन हुआ जिसके रूपक एवं उपरूपक के नाम से दो भेद किये गए। रूपक के १० एवं उपरूपक के १८ प्रकार मानकर इनके स्वरूप का विश्लेषण कर संस्कृत आचार्यों ने भारतीय नाट्यशास्त्र का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। गद्यकाव्य के कथा, आख्यायिक, परिकथा, कथालिका आदि भेद किये गए। क्रमशः काव्यशास्त्र का विकास होता गया और इसकी नीव सुदृढ़ होती गयी; फलतः ध्वनि, रस एवं अलंकार सिद्धान्त के रूप मे भारतीय काव्यशास्त्र के तीन मीलस्तम्भ स्थित हुए। भारतीय काव्यशास्त्र मे सौन्दर्यान्वेषण का कार्य पूर्ण

प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ और प्रीति तथा विस्मय के रूप में काव्यशास्त्र की दो आधार-शिलाएँ स्थापित हुईं जिनका प्रतिनिधित्व रस एवं अलंकार ने किया। रस को व्यंग्य मान कर उसे ध्वनि का एक रूप माना गया और अन्ततः तीन सिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र के अप्रतिम सिद्धान्त बने।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १, २—आ० बलदेव उपाध्याय।

कामन्दक—प्राचीन भारतीय राजशास्त्र के प्रणेता। इन्होंने 'कामन्दक-नीति' नामक राजशास्त्र-विषयक ग्रन्थ की रचना की है। इनके समय-निरूपण के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर के अनुसार 'कामन्दक-नीति' का रचनाकाल ५०० ई० के लगभग है। इस ग्रन्थ मे भारतीय राजशास्त्र के कतिपय लेखकों के नाम उल्लिखित हैं जिससे इसके लेखनकाल पर प्रभाव पड़ता है। मनु, बृहस्पति, इन्द्र, उशना, मय, विशालाक्ष, बहुदन्तीपुत्र, पराशर एवं कौटिल्य के उद्धरण इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कामन्दक का आविर्भाव कौटिल्य के बाद ही हुआ होगा। कामन्दक ने अपने ग्रन्थ मे स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ के लेखन में अर्थशास्त्र की विषयवस्तु का आश्रय ग्रहण किया गया है। 'कामन्दक-नीति' की रचना १९ सर्गों मे हुई है जिसमे ग्यारह सौ तिरसठ छन्द है।

'कामन्दक-नीति' के प्रारम्भ में विद्याओं का वर्गीकरण करते हुए उनके चार विभाग किये गए हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता एवं दण्डनीति। इसमे बताया गया है कि नय एवं अन्यक सम्यक् बोध कराने वाली विद्या को दण्डनीति कहते है। इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त, राजा की उपयोगिता, राज्याधिकार-विधि, राजा का आचरण, राजा के कर्त्तव्य, राज्य की सुरक्षा, मन्त्रिमण्डल, मन्त्रिमण्डल की सदस्यसंख्या, कार्यप्रणाली, मन्त्र का महत्त्व, मन्त्र के अंग, मन्त्र-भेद, मन्त्रणास्थान, राजकर्मचारियों की आवश्यकता, राजकर्मचारियों के आचार-नियम, दूत का महत्त्व, योग्यता, प्रकार एवं कर्त्तव्य, चर एवं उसकी उपयोगिता, कोश का महत्त्व, आय के साधन, राष्ट्र का स्वरूप एवं तत्त्व, सैन्यबल, सेना के अंग आदि। कामन्दककृत विविध राजमण्डलों के निर्माण का वर्णन भारतीय राजशास्त्र के इतिहास में अभूतपूर्व देन के रूप मे स्वीकृत है।

आधारग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

काशकृत्स्न—संस्कृत के प्राचीन वैयाकरण। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय ३१०० वर्ष वि० पू० है। इनके व्याकरण, मीमांसा एवं वेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'महाभाष्य' मे इनके 'शब्दानुशासन' नामक ग्रन्थ का उल्लेख है—पाणिनिनाप्रोक्तं पाणिनीयम् आपिशलम् काशकृत्स्न इति। महाभाष्य प्रथम आह्निक का इनके ग्रन्थो का विवरण इस प्रकार है—काशकृत्स्न शब्दकलाप धातुपाठ—सम्प्रति 'काशकृत्स्न व्याकरण' के लगभग १४० सूत्र उपलब्ध हो चुके हैं।

धातुपाठ—इसका प्रकाशन चन्नवीर कवि की कन्नड टीका के साथ हो चुका है। 'उणादिपाठ'—इसका उल्लेख 'महाभाष्य' तथा भास के 'यज्ञफलक' नाटक मे है।

'बौधायन गृह्यसूत्र' तथा भट्टभास्कर द्वारा उद्धृत प्रमाणों से ज्ञात होता है कि काशकृत्स्न ने यज्ञ सम्बन्धी ग्रन्थ की भी रचना की थी।

आधारग्रन्थ—१. काशकृत्स्न व्याकरणम्—सम्पादक पं० युधिष्ठिर मीमांसक २. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १, २—लेखक युधिष्ठिर मीमांसक।

काशीनाथ उपाध्याय—१८वीं शताब्दी के धर्मशास्त्रियों में इनका नाम अत्यन्त महत्त्व का है। इन्होंने 'धर्मसिन्धुसार' या 'धर्माब्धिसार' नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७९० ई० है। उपाध्याय जी का स्वर्गवास १८०५ ई० में हुआ था। इनका जन्म महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के अन्तर्गत गोलावली ग्राम में हुआ था। ये कर्हाड़े ब्राह्मण थे। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ है—'प्रायश्चित्तशेखर' तथा 'विट्ठल-ऋग्मन्त्रसाभाष्य'। 'धर्मसिन्धुसार' तीन परिच्छेदों में विभक्त है तथा तृतीय परिच्छेद के भी दो भाग किये गए है। इस ग्रन्थ की रचना 'निर्णयसागर' के आधार पर हुई है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे भाग १ (हिन्दी अनुवाद)।

काश्यप—पाणिनि के पूर्ववर्त्ती वैयाकरण जिनका समय ३००० वर्ष वि० पू० है। [पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार] इनके मत के दो उद्धरण 'अष्टाध्यायी' में प्राप्त होते हैं—'तृषिमृषिकृषेः काश्यपस्य'–१।२।२५ 'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्'। ८।४।६७ 'वाजसनेय प्रातिशाख्य' मे भी शाकटायन के साथ इनका उल्लेख है—'लोपं काश्यपशाकटायनौ' ४।५ इनका व्याकरण-ग्रन्थ सम्प्रति अप्राप्य है। इनके अन्य ग्रन्थों का विवरण :—

१. कल्प—कात्यायन (वार्त्तिककार) के अनुसार अष्टाध्यायी (४।३।१०३) में 'काश्यपकल्प' का निर्देश है। २. छन्दःशास्त्र—पिंगल के 'छन्दःशास्त्र' मे (७।९) काश्यप का मत दिया गया है कि इन्होंने तद्विषयक ग्रन्थ की रचना की थी। ३. आयुर्वेद संहिता—नेपाल के राजगुरु पं० हेमराज शर्मा ने 'आयुर्वेद संहिता' का प्रकाशन सं० १९९५ में कराया है। ४. पुराण—'सरस्वतीकण्ठाभरण' की टीका में 'काश्यपीय-पुराणसंहिता' का उल्लेख है। (३।२२९) 'वायुपुराण' से पता चलता है कि इसके प्रवक्ता का नाम 'अकृतव्रणकाश्यप' था। ५. काश्यपीयसूत्र—'न्यायवार्त्तिक' मे (१।२।२३) उद्योतकार ने 'कणादसूत्रों' को काश्यपीयसूत्र के नाम से उद्धृत किया है।

आधारग्रन्थ—व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

काश्यपसंहिता—यह आयुर्वेद का प्राचीन ग्रन्थ है जिसके रचयिता (उपदेष्टा) मारीच काश्यप हैं। यह ग्रन्थ खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है जिसे नेपाल के राजगुरु पं० हेमराज शर्मा ने प्रकाशित किया है। इसके सम्पादक हैं श्री यादव जी त्रिकमजी आचार्य। उपलब्ध काश्यप संहिता मे सूत्रस्थान, विमानस्थान, शरीरस्थान, इन्द्रियस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान एवं खिलस्थान हैं। इसमें अनेक विषय चरक संहिता से लिए गए हैं, विशेषतः—आयुर्वेद के अंग, उसकी अध्ययनविधि, प्राथमिकतन्त्र का स्वरूप आदि। इस संहिता में पुत्रजन्म के समय होने वाली छठी की पूजा का महत्त्व

दर्शाया गया है। दाँतों के नाम, उनकी उत्पत्ति आदि का विस्तृत वर्णन, फक्करोग (रिकैट) तथा कटुतैल कल्प का वर्णन 'काश्यपसंहिता' की अपनी विशेषतायें हैं। इसके अध्यायों के नाम 'चरकसंहिता' के ही आधार पर प्राप्त होते हैं—अतुल्यगोत्रीय (चरक में), असमानशारीरगोत्रीय (काश्यप संहिता में), गर्भावक्रान्ति, जातिसूत्रीय। इसमें नाना प्रकार के धूपों एवं उसके उपयोग का महत्त्व बतलाया गया है। श्री सत्यपाल विद्यालङ्कार ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालङ्कार।

किरातार्जुनीयम्—महाकवि भारवि रचित महाकाव्य। [दे० भारवि] इसका कथानक 'महाभारत' पर आधृत है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गयी अर्जुन की तपस्या ही इस महाकाव्य का वर्ण्य-विषय है जिसे कवि ने १८ सर्गों में लिखा है।

प्रथम सर्ग—इसकी कथा का प्रारम्भ द्यूतक्रीडा में हारे हुए पाण्डवों के द्वैतवन में निवास करने से हुआ है। युधिष्ठिर द्वारा नियुक्त किया गया वनेचर (गुप्तचर) उनसे आकर दुर्योधन की सुन्दर शासन-व्यवस्था, प्रजा के प्रति व्यवहार एवं रीति-नीति की प्रशंसा करता है। शत्रु की प्रशंसा सुनकर द्रौपदी का क्रोध उबल पडता है और वह युधिष्ठिर को कोसती हुई उन्हे युद्ध के लिए प्रेरित करती है।

द्वितीय सर्ग—भीम द्रौपदी की बातों का समर्थन कर कहते हैं कि पराक्रमी पुरुषों को ही समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। युधिष्ठिर उनके विचार का प्रतिवाद करते हैं। सर्ग के अन्त मे व्यास का आगमन होता है।

तृतीय सर्ग—युधिष्ठिर एवं व्यास के वार्त्ताक्रम में अर्जुन को शिव की आराधना कर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का आदेश मिलता है। व्यास अर्जुन को योग-विधि बतलाकर अन्तर्धान हो जाते हैं। तभी व्यास द्वारा भेजा गया एक यक्ष प्रकट होता है और उसके साथ अर्जुन प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ सर्ग—इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन एवं यक्ष का प्रस्थान तथा शरद् ऋतु का वर्णन।

पञ्चम सर्ग—हिमालय का मोहक वर्णन तथा यक्ष द्वारा अर्जुन को इन्द्रियों पर संयम करने का उपदेश।

षष्ठ सर्ग—अर्जुन संयतेन्द्रिय होकर घोर तपस्या मे लीन हो जाते है और उनके व्रत में विघ्न उपस्थित करने के लिए इन्द्र की ओर से अप्सरायें भेजी जाती हैं।

सप्तम सर्ग—गन्धर्वों एवं अप्सराओं का अर्जुन की तपस्या भंग करना। वन-विहार तथा पुष्पचयन का वर्णन।

अष्टम सर्ग—अप्सराओं की जलक्रीडा का मोहक वर्णन।

नवम सर्ग—सन्ध्या, चन्द्रोदय, मान, मान-भंग एवं दूती-प्रेषण का मोहक वर्णन।

दशम सर्ग—अप्सराओं की असफलता एवं गृह-प्रयाण।

एकादश सर्ग—अर्जुन की सफलता देखकर इन्द्र मुनि का वेश धारण कर आते हैं

और उनकी तपस्या की प्रशंसा करते है। उनसे तपश्चरण का कारण पूछते हैं शिव की आराधना का आदेश देकर अन्तर्धान हो जाते हैं।

द्वादश सर्ग—अर्जुन प्रसन्न चित्त होकर शिव की तपस्या में लीन हो जाते हैं। तपस्वी लोग उनकी साधना से व्याकुल होकर शिवजी से जाकर उनके सम्बन्ध मे कहते है। शिव उन्हें विष्णु का अंशावतार बतलाते है। अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर मूक नामक दानव शूकर का रूप धारण कर उन्हे मारने के लिए आता है पर किरातवेशधारी शिव एवं उनके गण उनकी रक्षा करते हैं।

त्रयोदश सर्ग—एक वराह अर्जुन के पास आता है और उसे लक्ष्य कर शिव एवं अर्जुन दोनो बाण मारते हैं। शिव का किरातवेशधारी अनुचर आकर कहता है कि शूकर मेरे बाण से मरा है, तुम्हारे बाण से नहीं।

चतुर्दश सर्ग—अर्जुन एवं किरातवेशधारी शिव मे युद्ध।

पञ्चदश सर्ग—दोनो का भयंकर युद्ध।

षष्ठदश सर्ग—शिव को देखकर अर्जुन के मन में तरह-तरह का सन्देह उत्पन्न होना एवं दोनो का मल्लयुद्ध।

सप्तदश सर्ग—इसमें भी युद्ध का वर्णन है।

अष्टदश सर्ग—अर्जुन के युद्ध-कौशल मे शिव प्रसन्न होते है और अपना रूप प्रकट कर देते है। अर्जुन उनकी प्रार्थना करते है तथा शिव उन्हे पाशुपतास्त्र प्रदान करते है। मनोरथपूर्ण हो जाने पर अर्जुन युधिष्ठिर के पास चले जाते है।

'किरातार्जुनीय' महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्री.' शब्द से होता है और समाप्ति 'लक्ष्मी' शब्द के साथ होती है। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त मे 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त है। कवि ने अल्प कथानक को इसमे महाकाव्य का रूप दिया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर एवं आकर्षक संवाद, काल्पनिक चित्र तथा रमणीय वर्णन के द्वारा इसके आधार फलक को विस्तृत कर दिया है। चतुर्थ एवं पञ्चम सर्ग के शरद एवं हिमालय-वर्णन तथा सप्तम, अष्टम, नवम एवं दशम सर्ग मे अप्सराओ का विलास एवं अन्य शृंगारिक चेष्टाएँ मुक्तक काव्य की भाँति है। वास्तव मे इन सर्गों में कथासूत्र टूट गया है और ये स्वतन्त्र प्रसंग के रूप मे पुस्तक मे समाविष्ट किये गए से प्रतीत होते है। ग्यारहवे सर्ग मे पुन. कथासूत्र नियोजित होता है और अन्त तक अत्यन्त मन्दगति से चलता है। इसके नायक अर्जुन धीरोदात्त हैं तथा प्रधानरस वीर है। अप्सराओ का विहार शृंगाररस है जो अंगी रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्यों की परिभाषा के अनुसार इसमे सन्ध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी आदि का वर्णन है तथा वस्तुव्यंजना के रूप में जलक्रीडा, सुरत आदि का समावेश किया गया है। कवि ने सम्पूर्ण १५वे सर्ग का वर्णन चित्रकाव्य के रूप मे किया है। 'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा मे कलात्मक शैली का प्रौढ़ ग्रन्थ है। इस पर मल्लिनाथ ने संस्कृत मे टीका लिखी है।

आधारग्रन्थ—१. किरातार्जुनीयम्—(संस्कृत-हिन्दी टीका) चौखम्बा प्रकाशन। २. किरातार्जुनीयम्—(हिन्दी अनुवाद)—अनुवादक रामप्रताप शास्त्री। ३. भारवि

का अर्थान्तरन्यास—श्री उमेशचन्द्र रस्तोगी । ४. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ।

कीथ ए० बी० —महापण्डित कीथ का पूरा नाम आर्थर बेरिडोल कीथ था। ये प्रसिद्ध संस्कृत प्रेमी आंग्ल विद्वान् थे। इनका जन्म १८७९ ई० में ब्रिटेन के नेडाबार नामक प्रान्त मे हुआ था। इनकी शिक्षा एडिनबरा एवं ऑक्सफोर्ड में हुई थी। ये एडिनबरा विश्वविद्यालय में संस्कृत एवं भाषाविज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए जिस पद पर ये तीस वर्षों तक रहे। इनका निधन १९४४ ई० मे हुआ। इन्होंने संस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में मौलिक अनुसन्धान किया। इनका 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' अपने विषय का सर्वोच्च एवं सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इन्होंने संस्कृत साहित्य एवं दर्शन के अतिरिक्त राजनीतिशास्त्र पर भी कई प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें अधिकांश का सम्बन्ध भारत से है। ये मैक्डोनल के शिष्य थे। इनके ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है—

१. ऋग्वेद के ऐतरेय एवं कौषीतकी ब्राह्मण का दस खण्डो मे अंग्रेजी अनुवाद, १९२०, २ शाखायन आरण्यक का अंग्रेजी अनुवाद, १९२२; ३ कृष्णयजुर्वेद का दो भागो में अंग्रेजी अनुवाद, १९२४; ४. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, १९२८; ५. वैदिक इण्डैक्स (मैक्डोनल के सहयोग से); ६. रेलिजन ऐण्ड फिलासफी ऑफ वेद ऐण्ड उपनिषद्स ७ बुद्धिस्ट फिलासफी इन इण्डिया ऐण्ड सीलोन; ८. संस्कृत ड्रामा ।

कुट्टनीमतम्—इसके रचयिता दामोदर गुप्त हैं। 'राजतरंगिणी' तथा स्वयं इस ग्रन्थ की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर नरेश जयापीड (७७९–८१३ ई०) के प्रधान अमात्य थे। दामोदरगुप्त की यह रचना तत्कालीन समाज के एक वर्गविशेष (कुट्टनी) पर व्यंग्य है। इसमे लेखक ने युग की दुर्बलता को अपनी पैनी दृष्टि से देखकर उसकी प्रतिक्रिया अपने ग्रन्थ में व्यक्त की थी तथा उसके सुधार एवं परिष्कार का प्रयास किया था। 'कुट्टनीमतम्' भारतीय वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध मे रचित ग्रन्थ है। इसमे एक युवती वेश्या को, कृत्रिम ढंग से प्रेम का प्रदर्शन करते हुए तथा चाटुकारिता की समस्त कलाओं का प्रयोग कर, धन कमाने की शिक्षा दी गयी है।

कवि ने कामदेव की बन्दना से पुस्तक का प्रारम्भ किया है—

स जयति संकल्पभवो रतिमुखशतपत्रचुम्बनभ्रमर.।
यस्यानुरक्तललनानयनान्तविलोकितं वसति ॥

कवि ने विकराला नामक कुट्टनी के रूप का बडा ही सजीव चित्रण किया है तथा उसकी अभव्य आकृति को प्रस्तुत करने मे अपनी चित्रांकनकला को शब्दो में रूपायित किया है। इसकी रचना आर्या छन्द में हुई है जिसमें कुल १०५९ आर्याएँ हैं। इसकी शैली प्रसादमयी तथा भाषा प्रवाहपूर्ण है। यत्र-तत्र श्लेष का मनोरम प्रयोग है और उपमाएँ नवीन तथा चुभती हुई हैं। जैसे चुम्बक से वेश्याओं की उपमा—

परमार्थकठोरा अपि विषयगतं लोहकं मनुष्यं च।
चुम्बकपाषाणशिला रूपाजीवाश्च कर्षन्ति ॥ आर्या० ३२०

'कुट्टनीमतम्' के तीन हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं—

१. श्री अत्रिदेव विद्यालंकार कृत हिन्दी अनुवाद, काशी से प्रकाशित। २. आचार्य जगन्नाथ पाठक कृत अनुवाद—मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद। ३. चौखम्बा प्रकाशन का संस्करण (हिन्दी अनुवाद)।

कुमारदास—ये 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य के प्रणेता हैं। इनके सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य प्राप्त हैं—(क) कुमारदास की जन्मभूमि सिंहल द्वीप थी। (ख) यह सिंहल के राजा नहीं थे। (ग) सिंहल के इतिहास में यदि किसी राजा का नाम कवि के नाम से मिलता-जुलता था तो वह कुमार धातुसेन का था। परन्तु वे कुमारदास से पृथक् व्यक्ति थे। (घ) कवि के पिता का नाम मानित और दो मामाओं का नाम मेघ और अग्रबोधि था। उन्हीं की सहायता से कुमारदास ने अपने महाकाव्य की रचना की थी। (ङ) कुमारदास का समय सन् ६२० ई० के लगभग है।

'जानकीहरण' २० सर्गों का विशाल काव्य है जिसमे रामजन्म से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा दी गयी है। उनकी प्रशस्ति मे सोड्ढल एवं राजशेखर ने अपने उद्गार व्यक्त किये हैं।

बभूवुरन्योऽपि कुमारदासभासादयो हन्त कवीन्दवस्ते।
यदीयगोभिः कृतिना द्रवन्ति चेतांसि चन्द्रोपलनिर्मितानि॥ सोड्ढल
जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ॥ राजशेखर, सूक्तिमुक्तावली ४।८६

कुमारदास कालिदासोत्तर (चमत्कारप्रधान महाकाव्यों की) युग की उपलब्धि हैं। उनके 'जानकीहरण' पर 'रघुवंश' का प्रभाव होते हुए भी अलंकृत काव्यों का पर्याप्त ऋण है। उन्होंने भारवि के पथ का अनुसरण करते हुए नगर, नायक-नायिका, उद्यान-क्रीडा, जल-क्रीड़ा, रतोत्सव, पानगोष्ठी, सचिवमन्त्रणा, दूतसम्प्रेषण तथा युद्ध का परम्परागत वर्णन करते हुए भी अनुचित ढंग से उनका विस्तार नहीं किया है और इन्हे कथा का अंग बनाया है। अनेक स्वाभाविक वर्णनों के होते हुए भी चित्रकाव्य के मोह ने कुमारदास को महाकवि होने में व्याघात उपस्थित कर दिया। अलङ्कारों के प्रति उग्र आकर्षण होने के कारण प्रकृत काव्य का रूप 'जानकीहरण' में उपस्थित न हो सका। भारवि द्वारा प्रवर्त्तित मार्ग को गति देते हुए कुमारदास ने एकाक्षर एवं द्वयक्षर श्लोकों का प्रणयन किया। यमकों के मायाजाल में पड़ कर उनकी कला-प्रवणता अवरुद्ध हो गयी और पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए उन्होंने भी पाद यमक, आदि यमक, आद्यन्त यमक, निरन्तरानुप्रास, द्वयक्षरानुप्रास, अर्धप्रतिलोम, गोमूत्रिका, मुरजबन्ध एवं सर्वतोभद्र आदि की रचनाएँ की। इन वर्णनो के द्वारा रस-सिद्धि एवं कवि की कल्पना-प्रवणता विजडित हो जाती है। एक ओर कुमारदास की कविता कलात्मक काव्य की ऊँचाई का संस्पर्श करती है तो दूसरी ओर परम्परागत कविता के शिल्प एवं भाव-विधान को भग्न कर उससे आगे बढ़ने का प्रयास नहीं करती।

आधारग्रन्थ—१. जानकीहरणम्—(हिन्दी अनुवाद) अनु० पं० ब्रजमोहन व्यास। २ संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय।

कुमार भार्गवीय—इस चम्पूकाव्य के रचयिता भानुदत्त हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण एवं अठारहवीं शताब्दी का प्रथम भाग है। कवि के पिता का नाम गणपति था। यह ग्रन्थ बारह उच्छ्वासों में विभक्त है और इसमे कुमार कार्त्तिकेय के जन्म से लेकर तारकासुर के वध तक की घटना का वर्णन है। प्रकृति का मनोरम चित्र, भावानुरूप भाषा का गठन तथा अनुप्रास, यमक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा की छटा इस ग्रन्थ की निजी विशिष्टता है। यह चम्पू अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण इण्डिया ऑफिस कैटलाग, ४०४०।४०८ पृ० १५४० मे प्राप्त होता है। कुमार की युद्ध-यात्रा का वर्णन देखिये—

करेण कोदण्डलतां विधूत्य मातुर्नमस्कृत्य पदारविन्दम्।
इत्थं स नाथं वसुधाधिनाथं जेतुं भवानीतनयः प्रतस्थे ॥ १०।१

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

कुमारसंभव—यह महाकवि कालिदास विरचित महाकाव्य है जिसमे शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है। विद्वानों के अनुसार इसकी रचना 'रघुवंश' के पूर्व हुई थी। सम्प्रति 'कुमारसंभव' के दो रूप प्राप्त होते है। सम्पूर्ण 'कुमारसंभव' १७ सर्गों में है जिसमें शिव-पार्वती के पराक्रमशाली पुत्र कार्त्तिकेय के जन्म एवं उनके द्वारा भयंकर असुर तारक के वध का वर्णन किया गया है। इसका दूसरा रूप अष्टसर्गात्मक है। विद्वानो का अनुमान है कि मूल 'कुमारसंभव' आठ सर्गों मे ही रचा गया था और शेष सर्ग किसी अल्प प्रतिभाशाली कवि द्वारा जोड़े गए है। इस पर मल्लिनाथ की टीका आठवें सर्ग तक ही प्राप्त होती है तथा प्राचीन आलंकारिक ग्रन्थों में आठवें सर्ग के उदाहरण दिए गए है। किवदन्ती ऐसी है कि आठवे सर्ग में महाकवि ने शिव-पार्वती के संभोग का बडा ही नग्न चित्र उपस्थित किया था जिससे क्रुद्ध होकर पार्वती ने उन्हे शाप दिया कि तुम्हे कुष्ट रोग हो जाय और इसी कारण यह काव्य अधूरा रह गया। आठवे सर्ग की कथावस्तु से भी पुस्तक के नामकरण की सिद्धि हो जाती है क्योंकि शिव-पार्वती के संभोग वर्णन से कुमार के भावी जन्म की घटना की सूचना मिल जाती है।

इसके प्रथम सर्ग मे शिव के निवास-स्थान हिमालय का प्रोज्ज्वल वर्णन है। हिमालय का मेना से विवाह एवं पार्वती का जन्म, पार्वती का रूप-चित्रण, नारद द्वारा शिव-पार्वती के विवाह की चर्चा तथा पार्वती द्वारा शिव की आराधना आदि घटनाएँ वर्णित है। दूसरे सर्ग मे तारकासुर से पीडित देवगण ब्रह्मा के पास जाते हैं तथा ब्रह्मा उन्हें उक्त राक्षस के संहार का उपाय बताते है। वे कहते हैं कि शिव के वीर्य से सेनानी का जन्म हो तो वे तारकासुर का वध कर देवताओं के उत्पीड़न को नष्ट कर सकते हैं। तृतीय सर्ग में इन्द्र के आदेश से काम शिव के आश्रम में जाता है और वह वसंत ऋतु का प्रभाव चारो ओर दिखाता है। उमा सखियों के साथ आती है और उसी समय कामदेव अपना बाण शिव पर छोड़ता है। शिव की समाधि भंग होती है और उनके मन में अद्भुत विकार दृष्टिगोचर होने से क्रोध उत्पन्न होता है।

वे कामदेव को अपनी ओर बाण छोडने के लिए उद्यत देखते हैं और तृतीय नेत्र खोल कर उसे भस्मभूत कर देते हैं। चतुर्थ सर्ग में काम की पत्नी करुण विलाप करती है। वसन्त उसे सान्त्वना देता है पर वह सन्तुष्ट नहीं होती। वह वसन्त से चिता सजाने को कह कर अपने पति का अनुसरण करना ही चाहती है कि उसी समय आकाशवाणी उसे इस कार्य को करने से रोकती है। उसे अदृश्य शक्ति के द्वारा यह वरदान प्राप्त होता है कि उसका पति के साथ पुनर्मिलन होगा। पंचम सर्ग में उमा शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या के निमित्त माता से आज्ञा प्राप्त करती है। वह फलोदय पर्यन्त घोर साधना में निरत होना चाहती है। माता-पिता के मना करने पर भी स्थिर निश्चय वाली उमा अन्ततः अपने हठ पर अटल रहती है और घोर तपस्या में संलग्न होकर नाना प्रकार के कष्टों को सहन करती है। उसकी साधना पर मुग्ध होकर बटुरूपधारी शिव का आगमन होता है और वे शिव के अवगुणों का विश्लेषण कर उमा का मन उनकी ओर से हटाने का अथक प्रयत्न करते हैं। पर, उमा अभीष्ट देव का उद्वेगजनक चित्रण सुनकर भी अपने पथ पर अडिग रहती है और उग्रता एवं तीक्ष्णता के साथ ब्रह्मचारी के आरोपों का प्रत्युत्तर देती है। तदनन्तर प्रसन्न होकर साक्षात् शिव प्रकट होते और उमा को आशीर्वाद देते है। षष्ठ सर्ग में शिव का सन्देश लेकर सप्तर्षिगण हिमवान् के पास आते है। मुनिगण शिव के पास जाकर उनकी स्तुति करते है और शिव उन्हे सन्देश देकर विदा करते है। सप्तम सर्ग मे शिव-पार्वती-विवाह का वर्णन है। शिव एवं उनकी बारात को देखने के लिए उत्सुक नारियो की चेष्टाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। आठवे सर्ग में शिव-पार्वती का रति-विलास तथा कामशास्त्रानुसार आमोद-प्रमोद का वर्णन है। 'कुमारसंभव' मे कवि की सौन्दर्य-भावना रूप चित्रण एवं प्राकृत-वर्णन मे मुखरित हुई है। पार्वती के नख-शिख-वर्णन मे कवि ने अंग-अंग में रुचि लेकर उसके प्रत्येक अवयव का प्रत्यक्षीकरण कराया है।

आधारग्रन्थ—१. कालिदास ग्रन्थावली–अनु० पं० सीताराम चतुर्वेदी। २. कुमारसंभव (अष्ट सर्ग तक)—संस्कृत हिन्दी टीका, चौखम्बा प्रकाशन।

कुमारलात—बौद्धदर्शन के अन्तर्गत सौत्रान्तिक मत के (दे० बौद्ध-दर्शन) प्रतिष्ठापक आचार्य कुमारलात हैं। ये तक्षशिला के रहने वाले थे। बौद्ध परम्परा के अनुसार ये 'चार-प्रकाशमान सूर्यों' में हैं जिनमे अश्वघोष, देव एवं नागार्जुन आते हैं। इनका समय द्वितीय शतक है। इनके ग्रन्थ का नाम है 'कल्पनामण्डतिक दृष्टान्त' जो तूरफान मे डॉ० लूडर्स को हस्तलिखित रूप मे प्राप्त हुआ था। इस ग्रन्थ मे आख्यायिकाओं के माध्यम से बौद्धधर्म की शिक्षा दी गयी है। मूल ग्रन्थ गद्य में है किन्तु बीच-बीच मे श्लोकों का भी संग्रह किया गया है। इस ग्रन्थ का महत्त्व साहित्यिक एवं सास्कृतिक दोनो ही दृष्टियों से है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में लेखक बौद्धधर्म की किसी मान्य शिक्षा को उद्धृत कर उसके प्रमाण में आख्यायिका प्रस्तुत करता है।

दे०. बौद्धदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

कुमारसम्भव चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता तंजोर के शासक महाराज शरफोजी द्वितीय (शरभोजी) हैं। इनका शासनकाल १८०१ ई० से १८३२ तक

है। इन्होने अन्य तीन ग्रन्थों की भी रचना की है—स्मृतिसारसमुच्चय, स्मृतिसंग्रह एवं मुद्राराक्षस छाया। यह काव्य चार आश्वासों मे विभक्त है और महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव से प्रभाव ग्रहण कर इसकी रचना की गयी है।

आलोक्यैनं गिरीशं हिमगिरितनया वेपमानांगयष्टिः।
पादं सोत्क्षेप्तुकामा पथिगिरिरचितस्वोपरोधा नदीव॥
नो तस्थौ नो ययौ वा तदनु भगवता सोदिता ते तपोभिः।
क्रीतो दासोऽहमस्मीत्यथ नियममसावुत्ससर्जाप्तकामा॥ ८।३१

इसका प्रकाशन वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम् से १९३९ ई० में हो चुका है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

कुमारिल भट्ट—मीमांसा-दर्शन के भाट्ट मत के प्रतिष्ठापक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं। [दे० मीमांसा-दर्शन] इनके जन्म-स्थान के विषय मे विद्वानों में मतभेद है, पर अधिकांश विद्वान् इन्हें मैथिल मानते है। प्रसिद्ध दार्शनिक मण्डन मिश्र कुमारिल भट्ट के प्रधान शिष्य थे। इनका समय ६०० ई० से ६५० ई० के मध्य है। कहा जाता है कि इन्होंने बौद्धधर्म का त्याग कर हिन्दूधर्म मे प्रवेश किया था और बौद्धों के सिद्धान्त का खण्डन कर वैदिकधर्म एवं वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध की थी। 'शाबरभाष्य' (प्रसिद्ध मीमांसक आचार्य शबरस्वामी की कृति) के ऊपर कुमारिल ने तीन वृत्ति ग्रन्थो की रचना की है—'श्लोकवार्त्तिक', 'तन्त्रवार्त्तिक' तथा 'टुप्टीका'। 'श्लोकवार्त्तिक' कारिकाबद्ध रचना है जिसमें 'मीमासाभाष्य' के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद की व्याख्या की गयी है। इस पर उम्बेकभट्ट ने 'तात्पर्य टीका', पार्थसारथि मिश्र ने 'न्यायरत्नाकर' तथा सुचरित मिश्र ने 'काशिका' नामक टीकाएँ लिखी हैं। 'तन्त्र-वार्त्तिक' मे 'मीमासाभाष्य' के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद से तृतीय अध्याय तक की व्याख्या है। इस पर सोमेश्वर ने 'न्यायसुधा', कमलाकर भट्ट ने 'भावार्थ', गोपाल भट्ट ने 'मिताक्षरा', परितोषमिश्र ने 'अजिता', अन्नभट्ट ने 'राणकोजीवनी' तथा गंगाधर मिश्र ने 'न्यायपारायण' नामक टीकाएँ लिखी है। टुप्टीका मे 'शाबरभाष्य' के अन्तिम नौ अध्यायो पर संक्षिप्त टिप्पणी है। यह साधारण रचना है। इस पर पार्थसारथिमिश्र ने 'तन्त्ररत्न', वेंकटेश ने 'वार्त्तिकाभरण' तथा उत्तमश्लोकतीर्थ ने 'लघुन्यायसुधा' नामक टीकाएँ लिखी हैं। 'बृहट्टीका' एवं 'मध्यटीका' नामक अन्य दो ग्रन्थ भी कुमारिल भट्ट की रचना माने जाते है, पर वे अनुपलब्ध है।

आधारग्रन्थ—(क) इण्डियन फिलॉसफी भाग २—डॉ० राधाकृष्णन्। (ख) भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। (ग) मीमांसा-दर्शन—पं० मंडन मिश्र।

कुंतक—वक्रोक्ति-सम्प्रदाय के प्रवर्तक (काव्यशास्त्र का एक सिद्धान्त दे० काव्यशास्त्र) कुंतक का दूसरा नाम कुंतल भी है। इन्होंने 'वक्रोक्तिजीवित' नामक सुप्रसिद्ध काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसमें वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मान कर उसके भेदोपभेद का विस्तारपूर्वक विवेचन है। कुंतक ने अपने ग्रन्थ में 'ध्वन्यालोक' की आलोचना की है और ध्वनि के कई भेदों को वक्रोक्ति में अन्तर्भुक्त किया है। महिमभट्ट

ने कुन्तक के एक श्लोक में अनेक दोष दर्शाये हैं। इससे ज्ञात होता है कि कुन्तक आनन्दवर्द्धन एवं महिमभट्ट के मध्य हुए होंगे। कुन्तक एवं अभिनवगुप्त एक दूसरे को उद्धृत नहीं करते, अतः वे समसामयिक ज्ञात होते हैं। इस प्रकार कुन्तक का समय दशम शतक का अन्तिम चरण निश्चित होता है। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवित' ही है [विशेष विवरण के लिए दे० वक्रोक्तिजीवित] जो वक्रोक्ति सम्प्रदाय का प्रस्थान ग्रन्थ एवं भारतीय काव्यशास्त्र की अमूल्य निधि है। इसमें ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने वाले विचार का प्रत्याख्यान कर वह शक्ति वक्रोक्ति को ही प्रदान की गयी है। इसमे वक्रोक्ति अलङ्कार के रूप मे प्रस्तुत न होकर एक व्यापक काव्यसिद्धान्त के रूप में उपन्यस्त की गई है। 'वक्रोक्तिजीवित' मे वक्रोक्ति के छः विभाग किये गये हैं—वर्णवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदोत्तरार्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता एवं प्रबन्धवक्रता। उपचारवक्रता नामक भेद के अन्तर्गत कुन्तक ने समस्त ध्वनिप्रपंच का (उसके अधिकाश भेदों का) अन्तर्भाव कर दिया है। इन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥ १।७।

'कुन्तक के अनुसार काव्य उस कवि-कौशलपूर्ण रचना को कहते हैं जो अपने शब्द-सौन्दर्य और अर्थ-सौन्दर्य के अनिवार्य सामंजस्य द्वारा काव्य-मर्मज्ञ को आह्लाद देती है।' कुन्तक ने बतलाया है कि वक्रोक्ति में (लोकोत्तर) अपूर्व चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति है। यह काव्य का साधारण अलङ्कार न होकर अपूर्व अलङ्कार है।

लोकोत्तरचमत्कारकारि वैचित्र्यसिद्धये।
काव्यस्याऽयमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते ॥ १।२

वक्रोक्ति का लक्षण उपस्थित करते हुए कुन्तक का कहना है कि 'प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णनशैली ही वक्रोक्ति है। 'चतुरतापूर्ण कविकर्म (काव्य निर्माण) का कौशल, उसकी भङ्गी शैली या शोभा उससे भणिति अर्थात् (वर्णन) कथन करना। विचित्र (असाधारण) प्रकार की वर्णन-शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है।' (हिन्दी वक्रोक्तिजीवित—आ० विश्वेश्वर पृ० ५१)

उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलङ्कृतिः।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ॥ १।१०

कुन्तक ने काव्य के तीन प्रयोजन माने हैं—धर्मादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति की शिक्षा, व्यवहारादि के सुन्दर रूप की प्राप्ति एवं लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि।

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।
काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः ॥
व्यवहारपरिस्पन्दसौंदर्यव्यवहारिभिः।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥
चतुर्वर्गफलस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ॥ १।३,४,५

कुन्तक सालङ्कार शब्दार्थ को काव्य मानते हैं। इनके अनुसार वे ही शब्दार्थ काव्य में ग्रहण किये जा सकते है जो अलंकारयुक्त हों। वे अलंकार को काव्य का धर्म न मान कर उसका स्वरुप या आत्मा स्वीकार करते है। इन्होंने स्वभावोक्ति एवं रसवद् अलंकार को अलंकार्य माना है, अलंकार नहीं। इस दृष्टि से स्वभावोक्ति को अलंकार मानने वालों की वे आलोचना भी करते हैं। वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मान कर कुन्तक ने अपूर्व मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और युगविधायक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना की है।

आधारग्रन्थ—वक्रोक्तिजीवितम् (भूमिका)—हिन्दी व्याख्या आचार्य विश्वेश्वर।

कुन्दकुन्दाचार्य—जैन-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य। इनका जन्म द्रविड देश में हुआ था। ये दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य थे। कुन्दकुन्दाचार्य का समय प्रथम शताब्दी माना जाता है। इन्होंने 'कुन्दकुन्द' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसका द्राविडी नाम 'कोण्डकुण्ड' है। इनके अन्य चार ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। जिन्हें जैन आगम का सर्वस्व माना जाता है। वे हैं—नियमसार, पंचास्तिकायसार, समयसार एवं प्रवचनसार। अन्तिम तीन ग्रन्थ जैनियो में नाटकत्रयी के नाम से विख्यात हैं।

आधारग्रन्थ—१ भारतीयदर्शन—(भाग १) डॉ० राधाकृष्णन्, (हिन्दी अनुवाद) २. भारतीयदर्शन—आचार्य बलदेव उपाधाय।

कुवलयानन्द—अलंकार का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० अप्पयदीक्षित हैं। [दे० अप्पयदीक्षित] इसमें १२३ अर्थालंकारो का विस्तृत विवेचन किया गया है। 'कुवलयानन्द' की रचना जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' के आधार पर हुई है और इसमें उसके सभी अलंकारो का वर्णन हुआ है। दीक्षित ने इसमे 'चन्द्रालोक' की ही शैली अपनायी है जिसमे एक ही श्लोक मे अलंकार की परिभाषा एवं उदाहरण प्रस्तुत किये गए है। 'चन्द्रालोक' के अलंकारो के लक्षण 'कुवलयानन्द' मे ज्यो के त्यो ले लिये गए है और दीक्षित ने उनके स्पष्टीकरण के लिए अपनी ओर से विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। दीक्षित ने अनेक अलंकारों के नवीन भेदो की कल्पना की है और लगभग १७ नवीन अलंकारों का भी वर्णन किया है। वे हैं—प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारकदीपक, मिथ्याध्यवसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एवं विधि। यद्यपि इन अलंकारो के वर्णन भोज, शोभाकर मित्र एवं यशस्क के ग्रन्थों मे भी प्राप्त होते है पर इन्हें व्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय दीक्षित को ही है। 'कुवलयानन्द' अलंकार विषयक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है और प्रारम्भ से ही इसे यह गुण प्राप्त है। इस पर दस टीकाओ की रचना हो चुकी है। (क) रसिकरंजिनी टीका—इसके रचयिता का नाम गंगाधर वाजपेयी या गंगाध्वराध्वरी है। ये तंजौरनरेश राजाशाह जी के आश्रित थे (सन् १६५४–१७११ ई०)। इस टीका का प्रकाशन सन् १८९२ ई० में कुम्भकोणम् से हो चुका है जिस पर हालास्य नाथ की टिप्पणी भी है। (ख) अलंकारचन्द्रिका—इसके लेखक वैद्यनाथ तत्सत् है। (ग) अलंकारदीपिका—इसके प्रणेता का नाम आशाधर भट्ट है। यह टीका कुवलयानन्द के केवल कारिका भाग पर है। (घ) अलंका-

रसुधा एवं विषमपदव्याख्यानषट्पदानन्द—दोनों ही ग्रन्थों के रचयिता सुप्रसिद्ध वैयाकरण नागोजीभट्ट हैं। इनमें प्रथम पुस्तक टीका है और दीक्षितकृत कुवलयानन्द के कठिन पदों पर व्याख्यान के रूप में रचित है। दोनों ही टीकाओं के उद्धरण स्टेनकोनो की ग्रन्थ-सूची में प्राप्त होते हैं। (ङ) काव्यमंजरी—इस टीका के रचयिता का नाम न्यायवागीश भट्टाचार्य है। (च) कुवलयानन्द टीका—इसकी रचना मथुरानाथ ने की है। (छ) कुवलयानन्द टिप्पण—इस टीका के रचयिता का नाम कुरवीराम है। (ज) लघ्वलंकारचन्द्रिका—इसके रचयिता देवीदत्त हैं। (झ) बुधरंजिनी—इस टीका के रचयिता वेंगलसूरि हैं। कुवलयानन्द का हिन्दी भाष्य डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ने किया है जो चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है।

आधारग्रन्थ—(क) भारतीय काव्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय। (ख) हिन्दी कुवलयानन्द (भूमिका)—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास।

कूर्मपुराण—क्रमानुसार १५ वाँ पुराण। यह वैष्णव पुराण है। इसमें विष्णु के एक अवतार कूर्म या कछुए का वर्णन है, अतः इसे 'कूर्मपुराण' कहा जाता है। इसका प्रारम्भ कूर्मावतार की स्तुति से होता है। प्राचीन समय में देव एवं दानवों के द्वारा जब समुद्र-मंथन हुआ था तब उस समय विष्णु ने कूर्म का अवतार ग्रहण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया था। 'कूर्मपुराण' में विष्णु की इसी कथा का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। 'मत्स्यपुराण' में कहा गया है कि विष्णु ने कूर्म का रूप धारण कर इन्द्र के समीप राजा इन्द्रद्युम्न को इस पुराण की कथा, लक्ष्मीकल्प में सुनाई थी, जिसमें अट्ठारह सहस्र श्लोक थे। इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पदार्थों का माहात्म्य बतलाया गया था। 'नारदपुराण' के अनुसार इसमें सत्रह हजार श्लोक हैं। इसके दो विभाग हैं—पूर्व तथा उत्तर। पूर्व भाग में ५३ एवं उत्तर भाग में ४६ अध्याय हैं। 'कूर्मपुराण' से ज्ञात होता है कि इसमें चार संहिताएँ थीं—ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी। सम्प्रति केवल ब्राह्मी संहिता ही प्राप्त होती है जिसमें ६ हजार श्लोक हैं। इसका प्रथम प्रकाशन सन् १८९० ई० में नीलमणि मुखोपाध्याय द्वारा 'बिब्लोथिका इण्डिका' में हुआ था जिसमें ६ हजार श्लोक थे। इस पुराण में 'पुराणपञ्चलक्षण' का पूर्णतः समावेश है तथा सृष्टि, वंशानुक्रम एवं इसी क्रम में विष्णु के कई अवतारों की कथा कही गई है। इसमें काशी और प्रयाग के माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन है जिसमें ध्यान और समाधि के द्वारा शिव का साक्षात्कार प्राप्त करने का निर्देश है। इस पुराण में शक्ति-पूजा पर अधिक बल दिया गया है और उनके सहस्र नाम प्रस्तुत किये गये हैं।

'कूर्मपुराण' में भगवान् विष्णु को शिव के रूप में तथा लक्ष्मी को गौरी की प्रतिकृति के रूप में वर्णित किया गया है। शिव को देवाधिदेव के रूप में वर्णित कर उन्हीं की कृपा से कृष्ण को जाम्बवती की प्राप्ति का उल्लेख है। यद्यपि इसमें शिव को प्रमुख देवता का स्थान प्राप्त है फिर भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश में सर्वत्र अभेद-स्थापन किया गया है तथा उन्हें एक ही ब्रह्म का पृथक्-पृथक् रूप माना गया है। इस दृष्टि से यह पुराण साम्प्रदायिक संकीर्णता से सर्वथा शून्य है। इसके उत्तर भाग में 'व्यासगीता'

का वर्णन है जिसमें गीता के ढङ्ग पर व्यास द्वारा पवित्र कर्मों एवं अनुष्ठानों से भगवत् साक्षात्कार का वर्णन है। इसके कतिपय अध्यायों मे पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन है तथा एक अध्याय मे सीता जी की ऐसी कथा वर्णित है जो रामायण में प्राप्त नहीं होती। इस कथा में बताया गया है कि सीता को अग्निदेव ने रावण से मुक्त कराया था। 'कूर्मपुराण' के पूर्वार्ध (अध्याय १२) में महेश्वर की शक्ति का अत्यधिक वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया गया है और उसके चार प्रकार माने गये हैं—शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति। 'व्यासगीता' के ११ वें अध्याय मे पाशुपत योग का विस्तारपूर्वक वर्णन है तथा उसमें वर्णाश्रम धर्म एवं सदाचार का भी विवेचन है। पाशुपत मत के प्राधान्य के कारण विद्वानों ने 'कूर्मपुराण' का समय षष्ठ-सप्तम शती निर्धारित किया है। डॉ० हाज़रा के अनुसार 'कूर्मपुराण' पाञ्चरात्रमत-प्रतिपादक प्रथम पुराण है। 'पद्मपुराण' के पाताल खण्ड में 'कूर्मपुराण' का नाम आता है तथा उसका एक श्लोक भी उद्धृत है।

कूर्मपुराण की विषय-सूची—इसमें चार संहिताएँ है। पूर्वभाग मे पुराण का उपक्रम, लक्ष्मी इन्द्रद्युम्न संवाद, कूर्म तथा महर्षियों की वार्ता, वर्णाश्रम सम्बन्धी आचार का कथन, जगत् की उत्पत्ति का वर्णन, कालसंख्या-निरूपण, प्रलय के अन्त मे भगवान् की स्तुति, सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन, शंकर-चरित्र, पार्वती सहस्र नाम, योगनिरूपण, भृगुवंश वर्णन, स्वायम्भुवमनु एवं देवताओं की उत्पत्ति, दक्ष-यज्ञ का विध्वंस, दक्ष-सृष्टि-कथन, कश्यपवंश का वर्णन, श्रीकृष्ण-चरित, मार्कण्डेय-कृष्ण-संवाद, व्यास-पाण्डव-संवाद, युगधर्म-वर्णन, व्यास-जैमिनि-कथा, काशी तथा प्रयाग का माहात्म्य, तीनो लोकों का वर्णन तथा वैदिक शाखा-निरूपण। उत्तरभाग—ईश्वरीय गीता तथा व्यास-गीता का वर्णन, नाना प्रकार के तीर्थों का वर्णन एवं उनका माहात्म्य-प्रदर्शन, प्रतिसर्ग या प्रलय का वर्णन। (सभी विषय ब्राह्मी संहिता में वर्णित है) भागवती संहिता—ब्राह्मणों के सदाचार की स्थिति, क्षत्रियों की वृत्ति का वर्णन, वैश्यवृत्ति तथा शूद्रों की वृत्ति का वर्णन। इसके पञ्चमपाद मे संकर जाति की वृत्ति का निरूपण है।

आधार ग्रन्थ—१ कूर्मपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, २ पुराणतत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, ३. पुराण-विमर्श—आचार्य बलदेव उपाध्याय, ४. पुराण विषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय, ५. प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २—विन्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद)।

कृष्णानन्द—इन्होंने १५ सर्गों मे 'सहृदयानन्द' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसमें राजा नल का चरित वर्णित है। इनका समय १४ वी शताब्दी है। ये जगन्नाथपुरी के निवासी थे। इनका एक पद्य 'साहित्यदर्पण' (विश्वनाथ कविराज विरचित) में उद्धृत है।

[हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित]

केनोपनिषद्—यह 'सामवेद' की तलवकार शाखा के अन्तर्गत नवम अध्याय है जिसे तलवकारोपनिषद्, जैमिनीय-उपनिषद् या केनोपनिषद् कहते है। इसके प्रारम्भ में 'केन' शब्द आया है (केनेषितं पतति) जिसके कारण इसे 'केनोपनिषद्' कहा जाता है। इसके छोटे-छोटे चार खण्ड हैं जो अंशतः गद्यात्मक तथा अंशतः पद्यात्मक हैं। प्रथम

खण्ड मे उपास्य ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म में अन्तर स्थापित किया गया है तथा द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय रूप का वर्णन है। तृतीय और चतुर्थ खण्डों मे उमाहैमवती के आख्यान के माध्यम से परब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता एवं देवताओ की अल्पशक्तिमत्ता निरूपित है। इस उपनिषद् की रचना संवादात्मकशैली—गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में—हुई है। प्रथम खण्ड मे शिष्य द्वारा यह प्रश्न पूछा गया है कि इन्द्रियो का प्रेरक कौन है ? इसके उत्तर मे गुरु ने इन्द्रियादि को प्रेरणा देने वाला परब्रह्म परमात्मा को मानते हुए उनकी अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन किया है। द्वितीय खण्ड में जीवात्मा को परमात्मा का अंश बताकर सम्पूर्ण इन्द्रियादि की शक्ति को ब्रह्म की ही शक्ति माना गया है तथा तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में अग्नि प्रभृति वैदिक देवताओ को ब्रह्ममूलक मानकर उनकी महत्ता स्थापित की गई है। इसमें ब्रह्मविद्या के रहस्य को जानने के साधन तपस्या, मन, इन्द्रियो के दमन तथा कर्त्तव्यपालन बतलाये गये हैं।

केरलाभरणम्—इस चम्पू काव्य के प्रणेता रामचन्द्र दीक्षित हैं। ये सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरभाग मे हुए थे। इनके पिता का नाम केशव दीक्षित था जो रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित के परिवार से सम्बद्ध थे। इसमे इन्द्र की सभा में वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के इस विवाद का वर्णन है कि कौन-सा देश अधिक रमणीय है—

कतमो देशो रम्यः कस्याचारो मनोहरो महताम्।
इति वादिनि देवपतौ संघर्षोऽभूद्वशिष्ठगाधिजयोः ॥ १८

इन्द्र के आदेशानुसार मिलिन्द एव मकरन्द नामक दो गन्धर्व देशो का भ्रमण करने निकलते है और केरल की रमणीय प्रकृति पर मुग्ध होकर उसे ही सर्वश्रेष्ठ देश घोषित करते है। इसकी भाषा सरस, सरल, अनुप्रासमयी एवं प्रौढ है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण तंजोर कैटलाग संख्या ४०३१ मे प्राप्त होता है। मंगलाचरण का वर्णन अत्यन्त मधुर एवं सरस है—

उल्लोलमदकल्लोलहल्लोहालितगल्लया।
लीलया मण्डितं चित्तं मम मोदकलोलया ॥ १ ॥

आधार ग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

केशव—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ये पश्चिमी समुद्र तटवर्त्ती नन्दिग्राम के निवासी थे। इनका आविर्भावकाल सन् १४५६ ई० है। इनके पिता एवं गुरु का नाम क्रमशः कमलाकर एवं वैद्यनाथ था। इनके द्वारा रचित ग्रन्थो के नाम है—'ग्रहकौतुक', 'वर्षग्रहसिद्धि', 'तिथिसिद्धि', 'जातकपद्धति', 'जातकपद्धतिविवृत्ति', 'ताजिकपद्धति', 'सिद्धान्तवासनापाठ', 'मुहूर्त्ततत्त्व', 'कायस्थादिधर्मपद्धति', 'कुण्डाष्टकलक्षण' तथा 'गणित-दीपिका'। ये ग्रहगणित एवं फलित ज्योतिष दोनों के ही मर्मज्ञ थे।

सन्दर्भ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

केशव मिश्र—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'अलङ्कारशेखर' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १६वीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। 'अलंकारशेखर' की रचना काँगड़ा नरेश माणिक्यचन्द्र के आग्रह पर की गई थी। इस ग्रन्थ में आठ रत्न या

अध्याय हैं तथा कारिका, वृत्ति और उदाहरण इसके तीन विभाग है। अध्यायों का विभाजन २२ मरीचियों में हुआ है। स्वयं लेखक ने कारिका एवं वृत्ति की रचना की है और उदाहरण अन्य ग्रन्थों से लिए हैं। इसमे वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है :— १. काव्य-लक्षण, २. रीति, ३ शब्दशक्ति, ४. आठ प्रकार के पददोष, ५ अठारह प्रकार के वाक्य-दोष, ६. आठ प्रकार के अर्थदोष, ७ पाँच प्रकार के शब्दगुण, ८. अलंकार, ९ रूपक। लेखक के अनुसार इसकी कारिकाओं की रचना 'भगवान् शुद्धोदनि' के अलंकार ग्रन्थ के आधार पर हुई है।

आधार ग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र—(भाग १)—आ० बलदेव उपाध्याय।

केशवमिश्र—न्यायदर्शन के लोकप्रिय लेखकों मे केशवमिश्र का नाम अधिक प्रसिद्ध है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'तर्कभाषा' है। केशवमिश्र का समय सन् १२७५ ई० है। संस्कृत मे तर्कभाषा के तीन लेखक है और तीनों भिन्न-भिन्न दर्शन के अनुयायी हैं। बौद्धतर्कभाषा के लेखक का नाम मोक्षाकर गुप्त है जो ११०० ई० में हुए थे। इस ग्रन्थ मे बौद्ध न्याय का निरूपण है। द्वितीय 'तर्कभाषा' का सम्बन्ध जैनन्याय से है और इसके लेखक हैं श्री यशोविजय। इनका समय सन् १६८८ ई० है। केशवमिश्र के शिष्य गोवर्धन मिश्र ने 'तर्कभाषा' के ऊपर 'तर्कभाषा-प्रकाश' नामक व्याख्या लिखी है। गोवर्धन ने अपनी टीका मे अपने गुरु का परिचय भी दिया है। केशव मिश्र के पिता का नाम 'बलभद्र' था तथा उनके 'विश्वनाथ' एवं 'पद्मनाभ' नामक दो ज्येष्ठ भ्राता थे। अपने बडे भाई से तर्कशास्त्र का अध्ययन करके ही केशव मिश्र ने 'तर्कभाषा' की रचना की थी।

श्रीविश्वनाथानुज-पद्मनाभानुजो गरीयान् वलभद्रजन्मा।
तनोति तर्कानधिगत्य सर्वान् श्रीपद्मनाभाद्विदुषो विनोदम्॥
विजयश्रीतनूजन्मा गोवर्धन इति श्रुतः।
तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मिताम्॥

'तर्कभाषा' मे न्याय के पदार्थों का अत्यन्त सरल ढंग से वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ विद्वानो एवं छात्रो में अत्यन्त लोकप्रिय है। इस पर १४ टीकाएँ लिखी गयी हैं जिनमें सबसे प्राचीन गोवर्धन मिश्र कृत टीका (सन् १३०० ई०) है। नागेशभट्ट ने भी इस पर 'युक्तिमुक्तावली' नामक टीका लिखी है। इसका हिन्दी भाष्य आ० विश्वेश्वर ने किया है।

आधारग्रन्थ—हिन्दी तर्क भाषा (भूमिका)—आ० विश्वेश्वर (चौखम्बा प्रकाशन)।

कैयट—वैयाकरण एवं 'महाभाष्य' के प्रसिद्ध टीकाकार। मीमांसक जी के अनुसार इनका समय ११वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनके पिता का नाम जैयट था। इन्होंने 'महाभाष्यप्रदीप' नामक 'महाभाष्य' की प्रसिद्ध टीका लिखी है। इस पर १५ टीकाएँ लिखी गयी हैं और सबों का विवरण प्राप्त होता है। टीकाकारों के नाम हैं— चिन्तामणि ('महाभाष्य कैयट प्रकाश' तथा 'प्रक्रिया कौमुदी टीका', समय १५वीं शती का पूर्व) नागनाथ (१६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ग्रन्थ का नाम है 'महाभाष्य प्रदीपोद्योतन'), रामचन्द्र (१६वीं एवं १७वीं शती, ग्रन्थ का नाम 'विवरण'),

ईश्वरानन्द ('महाभाष्यप्रदीपविवरण', समय १६वीं एवं १७वीं शती), अन्नंभट्ट ('महाभाष्यप्रदीपोद्योतन', १६वी १७वी शती), नारायणशास्त्री ('महाभाष्यप्रदीप-व्याख्या' १८वीं शताब्दी), नागेशभट्ट ('महाभाष्यप्रदीपोद्योतन' समय १७वीं शताब्दी का पूर्व), वैद्यनाथ पायगुण्डे ('महाभाष्यप्रदीपोद्योतन' १८वीं शताब्दी), मल्लयज्वा तथा रामसेवक ।

कोकसन्देश—इस सन्देशकाव्य के रचयिता विष्णुत्रात कवि है। इनका समय विक्रम का षोडश शतक है। कवि के सम्बन्ध मे अन्य प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं होती। ग्रन्थ मे कवि का परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—

आसीद् विप्रो हरिनतिरतः कोऽपि रम्भाविहारे,
विष्णुत्रातो द्विजपरिवृढब्रह्मदत्तैकमित्रः।
तेनैतस्मिन् सपदि रचिते कोकसन्देशकाव्ये,
पूर्णस्तावत् समजनि रसैश्चाप्यसौ पूर्वभागः॥ १।१२०

इस काव्य मे एक राजकुमार श्री बिहारपुर से अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजता है। इसमे नायक अपनी प्रिया से एक यन्त्र-शक्ति के द्वारा वियुक्त हो जाता है। ग्रन्थ की रचना मेघदूत के अनुकरण पर हुई है और पूर्वभाग मे १२० एवं उत्तरभाग में १८६ श्लोक रचे गए है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मन्दाक्रान्तावृत्त मे लिखा गया है। इसमे वस्तु वर्णन का आधिक्य है और प्रेयसी के गृहवर्णन मे ५० श्लोक लिखे गए है। सन्देश के अन्त में नायक अपने स्वस्थ होने के लिए कुछ अभिज्ञानो का भी वर्णन करता है—

बाले पूर्वं खलु मणिमये नौ निशान्ते निशायाम्,
प्राप्ता स्वीया तनुमपि ममोपान्तभित्तौ स्फुरन्तीम्।
दृष्ट्वा रोषाद् वलितवदनाऽभूस्तदाऽभ्येत्य तूर्णं,
गाढाश्लिष्टा कथमपि मया बोधिताऽरं यथार्थम्॥ २।१८०

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

कोकिलसन्देश—इस सन्देशकाव्य के रचयिता उद्दण्ड कवि है। इनका समय १६वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। ये कालीकट के राजा जमूरिन के सभा कवि थे। इनके पिता का नाम रङ्गनाथ एवं माता का नाम रङ्गाम्बा था। कवि वंधुलगोत्रीय ब्राह्मण वंश मे उत्पन्न हुआ था। इसने 'कोकिल सन्देश' के अतिरिक्त 'मल्लिकामारुत' नामक दस अंको के एक प्रकरण की भी रचना की है जो भवभूति के मालतीमाधव से प्रभावित है। 'कोकिल सन्देश' की रचना मेघदूत के अनुकरण पर हुई है। इसमें भी पूर्व एवं उत्तर दो भाग हैं और सर्वत्र मन्दाक्रान्तावृत्त का प्रयोग किया गया है। इस काव्य की कथा काल्पनिक है। कोई प्रेमी जो प्रासाद मे प्रिया के साथ प्रेमालाप करते हुए सोया हुआ था, प्रातःकाल अप्सराओं के द्वारा कम्पा नदी के तट पर स्थित कांची नगरी के भवानी के मन्दिर मे अपने को पाता है। उसी समय आकाशवाणी हुई कि यदि वह पाँच मास तक यहाँ रहे तो पुनः उसे प्रिया का वियोग नही होगा। वहाँ रहते हुए जब तीन माह व्यतीत हो जाते है तो उसे प्रिया की याद आती है और वह कोकिल के द्वारा उसके पास सन्देश भेजता है। बसन्तऋतु मे कोकिल का कलकूजन

सुनकर ही उसे अपनी प्रिया की स्मृति हो जाती है। यहाँ कांची नगरी से लेकर जयन्त-मंगल (चेन्नमंगल) तक के मार्ग का मनोरम चित्र अंकित किया गया है। इस काव्य की भाषा शृंगाररसोपयुक्त ललित एवं प्रसादगुणयुक्त है। प्रेमी का स्वयं कथन देखें—

अन्तस्तोषं मम वितनुषे हन्त ! जाने भवन्तं,
स्कन्धावारप्रथमसुभटं पंचबाणस्य राज्ञः।
कूजाव्याजाद्वितमुपदिशन् कोकिलाव्याजबन्धो।
कान्तैः सार्कं ननु घटयसे मानिनीर्मानभाजः ॥ १७

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

कौटिलीय अर्थशास्त्र—चाणक्य या कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता है। वे मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त के मन्त्री एवं गुरु थे। उन्होंने अपने बुद्धिबल एवं अद्भुत प्रतिभा के द्वारा नन्दवंश का नाश कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। 'अर्थशास्त्र' मे भी इस तथ्य के संकेत है कि कौटिल्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के लिए अनेक शास्त्रो का मनन एव लोकप्रचलित शासनो के अनेकानेक प्रयोगो के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की थी।

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ अर्थशास्त्र १०।२।६५

कौटिल्य के नाम की ख्याति कई नामो से है। चणक के पुत्र होने के कारण इन्हें चाणक्य कहा जाता है तथा कुटिल राजनीतिज्ञ होने से ये कौटिल्य के नाम से विख्यात हैं। ये दोनो ही नाम वंशज नाम या उपाधि नाम हैं, पितृप्रदत्त नाम नही। कामन्दक के 'नीतिशास्त्र' से ज्ञात होता है कि इनका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था।

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ॥ ६

अर्थशास्त्र की प्रामाणिकता—आधुनिक युग के कतिपय पाश्चात्य विद्वान् तथा भारतीय पण्डित भी इस मत के पोषक हैं कि अर्थशास्त्र चाणक्य विरचित नही है। जॉली, कीथ एवं विन्टरनित्स ने अर्थशास्त्र को मौर्यमन्त्री की रचना नही माना है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति मौर्य ऐसे विस्तृत साम्राज्य की स्थापना मे लगा रहा उसे इतना समय कहाँ था जो इस प्रकार के ग्रन्थ की रचना कर सके। किन्तु यह कथन अनुपयुक्त है। सायणाचार्य ऐसे व्यस्त जीवन व्यतीत करने वाले महामन्त्री ने वेद भाष्यों की रचना कर इस कथन को असिद्ध कर दिया है। स्टाइन एव विन्टरनित्स का कथन है कि मेगास्थनीज ने अपने भ्रमणवृत्तान्त में कौटिल्य की चर्चा नहीं की है। पर इस कथन का खण्डन डॉ० काणे ने कर दिया है। उनका कहना है कि "मेगास्थनीज की 'इण्डिका' केवल उद्धरणों मे प्राप्य है, मेगास्थनीज को भारतीय भाषा का क्या ज्ञान था कि वह महामन्त्री की बातों को समझ पाता ? मेगास्थनीज की बहुत-सी बातें भ्रामक भी है। उसने तो लिखा है कि भारतीय लिखना नहीं जानते थे। क्या यह सत्य है ?" धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग १) पृ० ३० (हिन्दी अनुवाद)। जॉली, विन्टरनित्स तथा कीथ ने अर्थशास्त्र को तृतीय शताब्दी की रचना माना है, किन्तु

आर० जी० भण्डारकर के अनुसार इसका रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी है। परन्तु डॉ० श्याम शास्त्री एवं डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी स्थापनाओं के द्वारा यह सिद्ध किया है कि अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के महामन्त्री की ही रचना है। अर्थशास्त्र एवं उसके प्रणेता के सम्बन्ध मे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने जो तर्क दिये हैं उनका सार यहाँ उपस्थित किया जाता है। पं० शामशास्त्री ने अर्थशास्त्र को कौटिल्य की कृति माना तथा बतलाया कि वह अपने मूलरूप में विद्यमान है। शास्त्री जी के इन दोनो कथनो का समर्थन हिलेब्रान्ट, हर्टल, याकोबी एवं स्मिथ ने किया। स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'अर्ली हिस्ट्री' के तृतीय संस्करण (सन् १९१४ ई०) में शास्त्री जी के मत का समावेश कर उसकी प्रामाणिकता की पुष्टि की। इसके ठीक आठ वर्षों के पश्चात् पाश्चात्य विद्वानों के एक दल ने इसे तीसरी शताब्दी की एक जाली रचना सिद्ध करने का असफल प्रयास किया। ओटो स्टाइन ने 'मेगस्थनीज़ ऐण्ड कौटिल्य' तथा डॉ० जॉली ने 'अर्थशास्त्र एण्ड कौटिल्य' (सन् १९२३ ई०) नामक ग्रन्थों मे कौटिल्य को कल्पित व्यक्ति एवं अर्थशास्त्र को जाली ग्रन्थ सिद्ध किया था। इन सभी विद्वानो के तर्कों का खण्डन कर डॉ० जायसवाल ने (हिन्दूराजतन्त्र भाग १) कौटिल्य को सम्राट् चन्द्रगुप्त का मन्त्री एवं अर्थशास्त्र को ई० पू० ४०० वर्ष की रचना माना। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने भी पाश्चात्य विद्वानों के मत का खण्डन कर अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना माना है। इस प्रकार भारतीय विद्वानो के सुचिंतित मत के द्वारा पाश्चात्य विद्वानो की स्थापनाएँ खण्डित हो गयीं और अर्थशास्त्र तथा कौटिल्य दोनों का अस्तित्व स्वीकार किया गया।

अर्थशास्त्र का वर्ण्यविषय—अर्थशास्त्र की रचना सूत्र और श्लोक दोनो में हुई है। इसके कुछ अंश गद्यबद्ध हैं तथा कुछ श्लोकबद्ध। इसमें १५ प्रकरण, १५० अध्याय तथा छ: सहस्र श्लोक हैं। अर्थशास्त्र में प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन का चित्र खींचा गया है। इसके वर्ण्यविषयों की अधिकरणगत सूची इस प्रकार है :—

प्रथम अधिकरण—प्रथम अधिकरण का नाम विनयाधिकारिक है। इसमें निम्नांकित विषयो का विवेचन है—राजानुशासन, राजा द्वारा शास्त्राध्ययन, वृद्धजनों की संगति, काम-क्रोधादि छः शत्रुओं का परित्याग, राजा की जीवनचर्या, मन्त्रियों एवं पुरोहितों के गुण एवं कर्त्तव्य, गुप्त उपायों के द्वारा आमात्यों के आचरण की परीक्षा, गुप्तचरों की नियुक्ति, सभा-बैठक, राजदूत, राजकुमार-रक्षण, अन्तःपुर की व्यवस्था, राजा की सुरक्षा, नजरबन्द राजकुमार तथा राजा का पारस्परिक व्यवहार, राजदूतों की नियुक्ति, राजभवन का निर्माण तथा राजा के कर्त्तव्य।

द्वितीय अधिकरण—इसका नाम अध्यक्ष प्रचार है तथा वर्ण्यविषयों की सूची इस प्रकार है—जनपदों की स्थापना, ग्राम-निर्माण, दुर्गों का निर्माण, चारागाह, वन, सन्निधाता के कर्तव्य, कोषगृह का निर्माण, चारागाह, वन, सन्निधाता के कर्त्तव्य, समाहर्ता का कर-संग्रह कार्य, भूमि, खानो, वनो, मार्गों के करों के अधिकारी, आय-व्यय निरीक्षक का कार्यालय, जनता के धन का गबन, राजकीय स्वर्णकारों के कर्त्तव्य, पण्य

का अध्यक्ष, आयुधागार का अध्यक्ष, आबकारी विभाग, अश्व विभाग, गजशाला के अध्यक्ष, रथ-सेना, पैदल सेना के अध्यक्षों तथा सेनापतियों के कार्यों का निरीक्षण, मुद्रा-विभाग, मद्यशाला के अध्यक्ष, बधस्थान, वेश्यालय, परिवहन विभाग, पशु विभाग।

तृतीय अधिकरण—इसका नाम धर्मस्थानीय है। इसमें वर्णित विषय हैं—शर्तनामों का लेखन प्रकार एवं तत्सम्बन्धी विवाद, न्याय-विवाह-सम्बन्ध, धर्म-विवाह, स्त्री-धन, स्त्री का पुनर्विवाह, पति-पत्नी-सम्बन्ध, दाय-विभाग, उत्तराधिकार नियम, गृहनिर्माण, ऋण, धरोहर सम्बन्धी नियम, दास एवं श्रमिक सम्बन्धी नियम, दान के नियम, साहस तथा दण्ड के नियम।

चतुर्थ अधिकरण—इसका नाम कंटकशोधन है। इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—शिल्पकारो तथा व्यापारियों की रक्षा, दैवी विपत्तियों से प्रजा की रक्षा, सिद्धवेषधारी गुप्तचरो द्वारा दुष्टों का दमन, शंकित पुरुषों की पहचान, सन्देह पर अपराधियों को बन्दी बनाना, सभी प्रकार के राजकीय विभागों की रक्षा, विविध प्रकार के दोषों के लिए आर्थिक दण्ड, बिना पीडा या पीडा के साथ मृत्यु-दण्ड, रमणियों के साथ समागम, कुमारी कन्या के साथ संभोग का दण्ड।

पञ्चम अधिकरण—इसका नाम योगवृत्त है। इसके अन्तर्गत वर्णित विषय इस प्रकार है—राजद्रोही उच्चाधिकारियो के सम्बन्ध मे दण्ड-व्यवस्था, दरबारियों का आचरण, विशेष अवसर पर राज्यकोष को सम्पूरित करना, राज्यकर्मचारियो के वेतन, राज्यशक्ति की संस्थापना, व्यवस्था का यथोचित पालन, विपत्तिकाल में राज-पुत्र का अभिषेक तथा एकछत्र राज्य की प्रतिष्ठा।

षष्ठ अधिकरण—इसका नाम मण्डलयोनि है। इसमे प्रकृतियो के गुण तथा शान्ति और उद्योग का वर्णन है।

सप्तम अधिकरण—इसका नाम षाड्गुण्य है। इसमे वर्णित विषय है—छः गुणों का उद्देश्य तथा क्षय, स्थान एवं वृद्धि का निश्चय, बलवान् का आश्रय, सम, हीन तथा बलवान् राजाओ के चरित्र और हीन राजा के साथ सम्बन्ध, राज्यो का मिलान, मित्र, सोना या भूमि की प्राप्ति के लिए सन्धि, मित्रसन्धि और हिरण्यसन्धि आदि।

अष्टम अधिकरण—इस अधिकरण का नाम व्यसनाधिकारिक है। इसके विषय इस प्रकार हैं—सार्वभौम सत्ता के तत्त्वो के व्यसनो के विषय मे राजा और राज्यों के कष्ट, सामान्य पुरुषो के व्यसन, पीडन वर्ग, स्तम्भ वर्ग और कोषसङ्ग वर्ग, सेना-व्यसन तथा मित्र-व्यसन।

नवम अधिकरण—इसका नाम अभियास्यत्कर्म है। इसके अन्तर्गत वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—शक्ति, देश, काल, बल-अबल का ज्ञान और आक्रमण का समय, सैन्य-संग्रह का समय, सैन्यसंगठन और शत्रुसेना का सामना, बाह्य तथा आभ्यन्तर आपत्ति, राजद्रोही तथा शत्रुजन्य आपत्तियाँ, अर्थ-अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियाँ और उनके प्रतिकार के उपाय से प्राप्त होने वाली सिद्धियो का वर्णन।

दशम अधिकरण—इस अधिकरण का नाम सांग्रामिक अधिकरण है। इसमे इन विषयो का वर्णन है—युद्ध के बारे मे सेना का पड़ाव डालना, सेना का अभियान,

समराङ्गण, पदाति, अश्वसेना तथा हस्तिसेना के कार्य, पक्ष, कक्ष तथा उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सेना के परिमाण के अनुसार दो विभाग, सार तथा फल्गु बलों का विभाग और चतुरङ्ग सेना का युद्ध, प्रकृतिव्यूह, विकृतिव्यूह और प्रतिव्यूह की रचना।

एकादश अधिकरण—इसका नाम वृत्तसंघ है। इसमें भेदक प्रयोग और उपांशुदण्ड का वर्णन है।

द्वादश अधिकरण—इसका नाम आबलीयस है। इसमें वर्णित विषय हैं—दूतकर्म, मन्त्रयुद्ध, सेनापतियो का वध तथा राजमण्डल की सहायता, शस्त्र, अग्नि तथा रसो का गूढ़ प्रयोग और विविध आसार तथा प्रसार का नाश, दण्डप्रयोग के द्वारा तथा आक्रमण के द्वारा विजय की प्राप्ति।

त्रयोदश अधिकरण—इसका नाम दुर्गलम्भोपाय है। इसमें दुर्ग का जीतना, फूट और कपट के द्वारा राजा को लुभाना, गुप्तचरो का शत्रुदेश मे निवास, शत्रु के दुर्ग को घेर कर अपने अधिकार मे करना, विजित देश मे शान्तिस्थापन।

चतुर्दश अधिकरण—इस अधिकरण का नाम औपनिषदिक है। इसके वर्णित विषय हैं—गुप्तसाधन, शत्रुवध के प्रयोग, प्रलम्भन योग मे अद्भुत उत्पादन, प्रलम्भनयोग मे ओषधि तथा मन्त्र का प्रयोग, शत्रु द्वारा किये गए घातक प्रयोगो का प्रतीकार।

पञ्चदश अधिकरण—इसका नाम तन्त्रयुक्ति है। इसमें अर्थशास्त्र की युक्तियाँ तथा चाणक्य-सूत्र हैं।

आधार ग्रन्थ—अर्थशास्त्र की दो प्राचीन टीकाएँ है भट्टस्वामीकृत 'प्रतिपदपंचिका' तथा माधव यज्वा कृत 'नयचन्द्रिका', पर दोनों ही अपूर्ण हैं।

१—स्टडीज इन ऐश्येण्ट इण्डियन पालिटी—श्रीनरेन्द्र नाथ ला २—हिस्ट्री ऑफ हिन्दू पोलिटिकल थ्योरीज—डॉ० घोषाल ३—हिन्दू पोलिटी—डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ४—पोलिटिकल इन्स्टीट्यूशंस एण्ड थ्योरीज ऑफ द हिन्दूज—श्री बिनय-कुमार सरकार ५—हिन्दूराजशास्त्र (दो भागो मे) (हिन्दी अनुवाद)—डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ६—प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्र और शासन—डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ७—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ श्यामलाल पाण्डेय ८—प्राचीन भारत मे राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ—डॉ० परमात्माशरण ९—धर्मशास्त्र का इतिहास-भाग—१ डॉ० पी० वी० काणे (हिन्दी अनुवाद) १०—हिन्दू पोलिटी एण्ड इट्स मेटाफिजिकल फाउन्डेसन्स—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ११—अर्थशास्त्र—(हिन्दी अनुवाद) श्री वाचस्पतिशास्त्री गैरोला १२—अर्थशास्त्र (अँगरेजी अनुवाद)—डॉ० श्याम शास्त्री १३—अर्थशास्त्र [संस्कृत टीका | श्रीमूल—म० म० गणपति शास्त्री।

कौषीतकि उपनिषद्—यह ऋग्वेदीय उपनिषद् है। इसमें चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में देवयान या पितृयान का वर्णन है जिसमें मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा का पुनर्जन्म ग्रहण कर दो मार्गों से प्रयाण करने का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में आत्मा के प्रतीक प्राण का स्वरूप-विवेचन है। तृतीय अध्याय में प्रतर्दन का इन्द्र द्वारा ब्रह्मविद्या सीखने का उल्लेख है तथा प्राणतत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन है। अन्तिम दो अध्यायो में ब्रह्मवाद का विवेचन करते हुए मुक्ति के साधन तथा ज्ञान की

प्राप्ति करनेवाले साधकों को कर्म एवं ज्ञान के विषय का मनन करने की शिक्षा दी गयी है।

क्षेमीश्वर—ये संस्कृत के नाटककार हैं। इन्होंने 'नैषधानन्द' एवं 'चण्डकौशिक' नामक दो नाटकों की रचना की है। ये राजशेखर के समसामयिक कवि थे। इन्होंने कन्नौज नरेश महीपाल के आश्रय में रहकर 'चण्डकौशिक' की रचना की थी। इनका समय ९०० के आसपास है। 'नैषधानन्द' में सात अंक हैं तथा 'महाभारत' की कथा के आधार पर नल-दमयन्ती की प्रणय-कथा को नाटकीय रूप प्रदान किया गया है।

'चण्डकौशिक' मे राजा हरिश्चन्द्र की सत्य-परीक्षा का वर्णन है। इनके दोनो ही ग्रन्थो की भाषा सरल है तथा साहित्यिक दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नही है। राजा हरिश्चन्द्र किसी यज्ञ मे विश्वामित्र को कुमारी का बलिदान करते हुए देखकर उनकी भर्त्सना करते है। ऋषि की साधना मे इससे बाधा हुई और राजा ने अपने अपराध को क्षमा करने के लिए ऋषि को सारा राज्य एवं एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ दीं। मुद्राओं की प्राप्ति के लिए अपने को, अपनी पत्नी एवं पुत्र को चाण्डाल के हाथ बेचा। एक दिन जब उनके मृत पुत्र को लेकर उनकी पत्नी श्मशान घाट पर आयी तो उस परीक्षा में राजा उत्तीर्ण हुए। 'चण्डकौशिक' नाटक मे एक अभिनव प्रकार की कथावस्तु को अपनाया गया है।

क्षेमेन्द्र—इन्होंने काव्य-शास्त्र एवं महाकाव्य दोनो पर समान अधिकार के साथ लेखनी चलाई है। ये काश्मीर देशीय कवि तथा 'दशावतार-चरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता थे। इन्होने रामायण और महाभारत का संक्षिप्त वर्णन 'रामायण-मंजरी' एवं 'महाभारत-मंजरी' मे किया है। इनका रचनाकाल १०३७ ई० है। इन ग्रन्थो में मूल ग्रन्थों की कथाओं को इस प्रकार रखा गया है जिससे कि उनके प्राचीन पाठ को निर्णीत करने में पूरी सुविधा प्राप्त हो सके। इन्होंने राजा शालिवाहन (हाल) के सभापण्डित गुणाढ्य के पैशाची भाषा में लिखित अलौकिक ग्रन्थ का 'बृहत्कथा-मंजरी' के नाम से संस्कृत पद्य मे अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ १८ लम्बकों मे समाप्त हुआ है जिसमे प्रधान कथा के अतिरिक्त अनेक अवान्तर कथाएँ भी कही गयी है। इसका नायक वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है जो अपने बल-पौरुष से अनेक गन्धर्वों को परास्त कर उनका चक्रवर्तित्व प्राप्त करता है। वह अनेक गन्धर्व सुन्दरियों के साथ विवाह करता है। उसकी पटरानी का नाम है मदनमंचुका। इस कथा का प्रारम्भ उदयन एवं वासवदत्ता के रोमांचक आख्यान से होता है। इनकी दूसरी कथा-कृति 'बोधिसत्त्वावदान कल्पलता' है। इसमे भगवान् बुद्ध के प्राचीन जीवन से सम्बद्ध कथाये पद्य में वर्णित हैं। इसमें १०८ पल्लव या कथाये है जिनमे से अन्तिम पल्लव की रचना क्षेमेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र सोमेन्द्र ने की थी। 'दशावतारचरित' मे क्षेमेन्द्र ने अपने को 'व्यासदास' लिखा है (१०।४१)। प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त क्षेमेन्द्र के गुरु थे, जिसका उल्लेख 'बृहत्कथामंजरी' मे है (१९।३७)। ये काश्मीर के दो नृपों-अनन्त (१०१८—१०६३ ई०) एवं कलश (१०६३—१०८९) के शासनकाल में विद्यमान थे, अतः इनका समय ११ वी शताब्दी है। इन्होंने 'औचित्यविचारचर्चा',

'कविकण्ठाभरण' एवं 'सुवृत्ततिलक' नामक तीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। ये औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। [इनके काव्यशास्त्रीय विचार के लिए दे० आ० क्षेमेन्द्र] क्षेमेन्द्र के नाम पर ३३ ग्रन्थ प्रचलित हैं, जिनमे १८ प्रकाशित एवं १५ अप्रकाशित है। प्रकाशित ग्रन्थों का नाम इस प्रकार है—रामायणमंजरी, भारतमंजरी, बृहत्कथामंजरी, दशावतारचरित, बौद्धावदानकल्पलता, चारुचर्याशतक, देशोपदेश, दर्पदलन, चतुर्वर्गसंग्रह, कलाविलास, नर्ममाला, कविकण्ठाभरण, औचित्यविचारचर्चा, सुवृत्ततिलक, लोकप्रकाशकोष, नीतिकल्पतरु एवं व्यासाष्टक। अप्रकाशित रचनाओं के नाम इस प्रकार है—नृपाली (इसका निर्देश राजतरंगिणी तथा कविकण्ठाभरण मे है), शशिवंश महाकाव्य, पद्यकादम्बरी, चित्रभारतनाटक, लावण्यमंजरी, कनकजानकी, मुक्तावली, अमृततरङ्गमहाकाव्य, पवनपंचाशिका, विनयवल्ली, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला, कविकर्णिका। इनकी तीन संदिग्ध रचनाये भी है—हस्तिप्रकाश, स्पन्दनिर्णय तथा स्पन्दसन्दोह।

उपर्युक्त ग्रन्थो की संख्या से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा से सम्पन्न थे। इन कृतियो में इन्होंने अनेकानेक विषयों का विवेचन किया है। 'दशावतारचरित' इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमे विष्णु के दस प्रसिद्ध अवतारों का वर्णन किया गया है। भाषा पर क्षेमेन्द्र का पूर्ण प्रभुत्व है। इन्होंने विषयानुरूप भाषा का प्रयोग कर उसे प्राणवन्त बनाया है। व्यंग्य एवं हास्योत्पादक रचना के तो ये संस्कृत के एकमात्र प्रयोक्ता हैं।

आधार ग्रन्थ—१ आचार्य क्षेमेन्द्र—डॉ० मनमोहन गोतम। २. क्षेमेन्द्र—ए स्टडी—डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री।

खण्डदेव मिश्र—ये भाट्टमत के (मीमासा-दर्शन का एक सिद्धान्त) अनुयायी थे। इनका जन्म काशी मे हुआ था। इनका समय (निधन-काल १७२२) विक्रम संवत् है। पण्डितराज जगन्नाथ ('रसगंगाधर' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता) के पिता पेरुभट्ट के ये गुरु थे। खण्डदेव मिश्र ने भाट्ट मत के इतिहास में 'नव्यमत' की स्थापना कर नवयुग का समारम्भ किया था। नव्यन्याय (न्याय दर्शन की एक शाखा) की भाँति इन्होंने मीमासा दर्शन मे 'नव्यमत' की उद्भावना की थी। जीवन के अन्तिम दिनो मे इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया था। इनके पिता का नाम रुद्रदेव था। संन्यासी हो जाने के पश्चात् खण्डदेव मिश्र का नाम 'श्रीधरेन्द्रयतीन्द्र' हो गया था। इन्होंने तीन उच्चस्तरीय ग्रन्थो की रचना की है, वे हैं—,मीमासा-कौस्तुभ' (भाट्टकौस्तुभ), 'भाट्टदीपिका' एवं 'भाट्टरहस्य'। 'भाट्टकौस्तुभ' मीमांसासूत्रों पर रचित विशद टीका ग्रन्थ है। भाट्टदीपिका इनका सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसके ऊपर तीन टीकाएँ प्राप्त होती है—शम्भुभट्टरचित 'प्रभावली,' भास्करराय कृत 'भाट्टचन्द्रिका' एवं वाञ्छेश्वरयज्वा प्रणात 'भाट्टचिन्तामणि'। 'भाट्टरहस्य' का विषय शाब्दबोध है। नैयायिक प्रणाली पर रचित होने के कारण इसकी भाषा भी दुरूह हो गयी है। इस ग्रन्थ में प्रसंगानुसार लेखक ने भावार्थ एवं लकारार्थ प्रभृति विषयों का विवेचन मीमांसक की दृष्टि से किया है। खण्डदेव मीमांसा-दर्शन के प्रौढ़ लेखक हैं।

आधार ग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय २. मीमांसा-दर्शन—पं० मण्डन मिश्र।

गणेश—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका जन्म १५१७ ई० में हुआ था। इन्होंने तेरह वर्ष में ही 'ग्रहलाघव' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः लक्ष्मी एवं केशव था। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणिटीका, लीलावतीटीका, विवाहवृन्दावन टीका, मुहूर्ततत्त्वटीका, श्राद्धादिनिर्णय, छन्दार्णवटीका, सुधीररंजनीतर्जनीयन्त्र, कृष्णजन्माष्टमीनिर्णय, होलिकानिर्णय।

सहायक ग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्रशास्त्री।

गदनिग्रह—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। इसके रचयिता का नाम सोढल है। ये गुजरात के निवासी तथा जोशी थे। इनका समय १३ वीं शताब्दी का मध्य है। गदनिग्रह दस खण्डों में विभक्त है जिसके प्रथम खण्ड मे चूर्ण, गुटिका, अवलेह, आसव, घृत, तैलविषयक छः अधिकार हैं। इसमे ५८५ के लगभग योगों का संग्रह भी है तथा अवशिष्ट नौ खण्डो मे कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्य, भूततन्त्र, बालतन्त्र, विषतन्त्र, वाजीकरण, रसायन एवं पञ्चकर्माधिकार नामक प्रकरण है। इसमें अनेक कल्पों का भी वर्णन है—सुवर्णकल्प, कुंकुमकल्प, अम्लवेतसकल्प। सोढल ने 'गुणसंग्रह' नामक चिकित्साग्रन्थ की भी रचना की है जिसमे अपने को वैद्यनन्दन का पुत्र एवं संघदयालु का शिष्य बतलाया है—

वत्सगोत्रान्वयस्तत्र वैद्यनन्दननन्दनः।
शिष्यः संघदयालोश्च रायकवालवंशजः॥
सोढलाख्यो भिषग् भानुपदपङ्कजषट्पदः।
चकारेमं चिकित्सायाः समग्रं गुणसंग्रहम्॥

गदनिग्रह का हिन्दी अनुवाद सहित (दो भागों मे) प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

गदाधर भट्टाचार्य—नवद्वीप (बंगाल) के प्रसिद्ध नव्यनैयायिकों मे गदाधर भट्टाचार्य का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

[नव्यन्याय न्याय दर्शन की एक शाखा है जिसके प्रतिष्ठापक हैं मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक गंगेश उपाध्याय। दे० न्यायदर्शन] इनका समय १७ वी शताब्दी है। इन्होंने रघुनाथ शिरोमणि के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ [दे० रघुनाथ शिरोमणि नवद्वीप के प्रसिद्ध नव्यन्यायाचार्य] 'दीधिति' के ऊपर विशद व्याख्या-ग्रन्थ की रचना की है जो इनके नाम पर 'गादाधरी' की अभिधा से विख्यात है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या ५२ बतलायी जाती है। इन्होने उदयनाचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आत्मतत्त्व-विवेक' एवं गंगेश उपाध्याय के 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थों की टीका लिखी है जो 'मूलगादाधरी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'तत्त्वचिन्तामणि' के कुछ ही भागों पर टीका लिखी गयी है।

'शक्तिवाद' तथा 'व्युत्पत्तिवाद' इनके न्यायविषयक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ हैं। 'शक्तिवाद' मे नैयायिकों के मतानुसार शक्तिग्रह कैसे होता है, इसका वर्णन है।

आधार ग्रन्थ—भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

गरुड़ पुराण —पुराणो के क्रम मे १७ वाँ पुराण। यह वैष्णव पुराण है जिसका नामकरण, विष्णु के वाहन गरुड़ (एक पक्षी) के नाम पर किया गया है। इसमे विष्णु ने गरुड को विश्व की सृष्टि का उपदेश दिया है, अतः इसी आधार पर इसका नाम 'गरुड़पुराण' पड़ा है। यह हिन्दुओं का अत्यन्त लोकप्रिय एवं पवित्र पुराण है क्योंकि किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् श्राद्धकर्म के अवसर पर इसका श्रवण आवश्यक माना जाता है। इसमे सभी उपयोगी विषयों का समावेश है, अतः यह भी 'अग्निपुराण' की भाँति 'पौराणिक महाकोश' माना जाता है। इसके दो विभाग हैं—पूर्वखण्ड एव उत्तरखण्ड। पूर्वखण्ड में अध्यायो की संख्या २२९ एवं उत्तरखण्ड मे ३५ है। इसकी श्लोकसंख्या १८ हजार है, पर 'श्रीमद्भागवत' एवं 'रेवामाहात्म्य' में यह संख्या १९ हजार मानी गयी है। 'मत्स्यपुराण' मे भी इसकी श्लोकसंख्या १९ हजार बतायी गयी है तथा उसमे यह विचार व्यक्त किया गया है कि गरुडकल्प के अवसर पर ब्रह्माण्ड से गरुड का जन्म हुआ था जिसे विष्णु ने १९ हजार श्लोकों मे कहा था। वैष्णव पुराण होने के कारण इसका मुख्य ध्यान विष्णु-पूजा, वैष्णवव्रत, प्रायश्चित तथा तीर्थों के माहात्म्य-वर्णन पर केन्द्रित रहा है। इसमे पुराण-विषयक सभी तथ्यो का समावेश है और शक्ति-पूजा के अतिरिक्त पंचदेवोपासना (विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य तथा गणेश) की भी विधि का उल्लेख किया गया है। इसमे 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'हरिवंश' के प्रतिपाद्य विषयो की सूची है तथा सृष्टिकर्म, ज्योतिष, शकुनविचार, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, छन्द, व्याकरण, रत्नपरीक्षा एवं नीति के सम्बन्ध मे भी विभिन्न अध्यायों मे तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं।

'गरुडपुराण' मे याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र के एक बड़े भाग का भी समावेश है तथा एक अध्याय मे पशुचिकित्सा की विधि एवं नाना प्रकार के रोगों को हटाने के लिए विभिन्न प्रकार की औषधियो का वर्णन किया गया है। इस पुराण मे छन्दशास्त्र का छः अध्यायों में विवेचन है तथा एक अध्याय मे 'गीता' का भी साराश दिया गया है। अध्याय १०८ से ११५ तक राजनीति का सविस्तर विवेचन है तथा एक अध्याय मे सांख्ययोग का निरूपण किया गया है। इसके १४४ वे अध्याय मे कृष्णलीला कही गई है तथा आचारकाण्ड मे श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ पत्नियो का उल्लेख है, किन्तु उनमे राधा का नाम नहीं है। इसके उत्तरखण्ड में, जिसे प्रेतकल्प कहा जाता है, मृत्यु के उपरान्त जीव की विविध गतियो का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। प्रेतकल्प मे गर्भावस्था, नरक, यम, यमनगर का मार्ग, प्रेतगणो का वासस्थान, प्रेतलक्षण, प्रेतयोनि से मुक्ति, प्रेतों का स्वरूप, मनुष्यो की आयु, यमलोक का विस्तार, सपिण्डीकरण का विधान, वृषोत्सर्ग-विधान आदि विविध विषयो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। 'गरुड़-पुराण' में गया का माहात्म्य एवं इसके श्राद्ध का विशेष रूप से महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। विद्वानों ने इसका समय नवम शती के लगभग माना है। डॉ० हाजरा के

अनुसार इसका उद्भवस्थान मिथिला है। इसमें 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के अनेक कथन कतिपय परिवर्त्तन एवं पाठान्तर के साथ संगृहीत है। इसके १०७ वें अध्याय में 'पराशरस्मृति' का सार ३८१ श्लोकों में दिया गया है।

आधार ग्रंथ—१. भारतीय साहित्य भाग-१, खण्ड-२—विन्टरनित्स, २. पुराण-तत्त्वमीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, ३ पुराण-विमर्श—आ० बलदेव उपाध्याय, ४. पुराणम् (खण्ड ६, संख्या १, जनवरी १९६४), ५ पुराणम् (चतुर्थ खण्ड) पृ० ३५४–३५५, ६ गरुडपुराण विषयानुक्रमणी—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, ७. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (कलकत्ता), जिल्द ६, १९३०, पृ० ५५३–६०, ८. गरुणपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, ९ गरुडपुराण— हिन्दी अनुवाद) श्रीखूबचन्द्रशर्माकृत अनुवाद, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

गोदापरिणयचम्पू—यह चम्पू काव्य श्रीवेदाधिनाथभट्टाचार्य केशवनाथ द्वारा रचित है। इसका निर्माणकाल सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इसमें पाँच स्तबक है और तमिल की प्रसिद्ध कवयित्री गोदा (आण्डाल) का श्रीरङ्गम् के देवता रंगनाथ जी के साथ विवाह का वर्णन है। ग्रन्थ के आरम्भ मे गोदा की वन्दना की गयी है।

> कल्याणं करुणासारशीतलापांगवीक्षणे ।
> कुर्वती पातु मा नित्यं गोदावेदान्तदीपिका ॥ १।१
> गोविन्दानन्दजननीं कोमलार्थपदावलिम् ।
> गोदा ददातु मे वाणी मोदाय कविचेतसाम् ॥ १।२

यह रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२२३० मे प्राप्त होता है।

आधार ग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

गोपाल—राजधर्म के निबन्धकार। इन्होने 'राजनीतिकामधेनु' नामक निबन्ध ग्रन्थ का प्रणयन किया था जो सम्प्रति अनुपलब्ध है। इनका समय १००० ई० के आसपास है। राजनीति निबन्धकारो में गोपाल सर्वप्रथम निबन्धकार के रूप में आते है। चण्डेश्वरकृत 'राजनीतिरत्नाकर' एवं 'निबन्धरत्नाकर' मे गोपाल की चर्चा की गई है—गोपालस्य च कामधेनुरपणं काम्यार्थदुग्धं स्वयं, दुग्धे स्वयमेकस्य भवने सेव्यो न रत्नाकरः।

आधार ग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्रप्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

गोपालचम्पू—इसके रचयिता जीवराज नामक कवि थे जो महाप्रभु चैतन्य के समकालीन तथा परम वैष्णव थे। ये महाराष्ट्र निवासी तथा भारद्वाज गोत्रोत्पन्न कामराज के पौत्र थे। इसमें कवि ने 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर गोपाल के चरित का वर्णन किया है। स्वयं कवि ने इस पर टीका भी लिखी है। इसका प्रकाशन वृंदावन मे बंगाक्षरों में हुआ है तथा विवरण मित्रा कैटलॉग, वाल्यू० १ नं० ७२ मे है। कवि के ही शब्दों में इसका परिचय इस प्रकार है।

इति श्रीविद्वत्कदम्बहेरम्बसकलविपुलकविकुलतिलकमहाराष्ट्रदेशवारिधिसुधानिधि-भारद्वाजकुलकासारराजहंसकाशीस्थजगद्गुरुश्रीमद्दीक्षितकविसोमराजसूरिवरसूनुश्रीकामराजसूरिवरतनयश्रीव्रजराजकविराजात्मकबालकविश्रीजीवराजविरचितायां चम्पूविहारसमाख्याया स्वनिर्मितगोपालचम्पूव्याख्यायां पूर्वार्धं समाप्तम् ।

आधार ग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ।

गौतम—[समय विक्रम पूर्वचतुर्थ शतक] न्यायसूत्र के रचयिता महर्षि गौतम हैं। [दे० न्यायदर्शन] न्यायशास्त्र के निर्माण का श्रेय इन्हें ही दिया जाता है, यद्यपि इस सम्बन्ध मे मत विभिन्नता भी कम नहीं है। 'पद्मपुराण' (उत्तरखण्ड अध्याय २६३), 'स्कन्दपुराण' (कालिकाखण्ड, अध्याय १७), 'नैषधचरित' (सर्ग १७) 'गान्धर्वतन्त्र' तथा 'विश्वनाथवृत्ति' प्रभृति ग्रन्थों मे गौतम को ही न्यायशास्त्र का प्रवर्त्तक कहा गया पर, ठीक इसके विपरीत कतिपय ग्रन्थो मे अक्षपाद को न्यायशास्त्र का रचयिता बतलाया गया है। ऐसे ग्रन्थो मे 'न्यायभाष्य', 'न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका' तथा 'न्यायमञ्जरी' के नाम हैं। एक तीसरा मत कविवर भास का है जिनके अनुसार न्यायशास्त्र के रचयिता मेधातिथि हैं। प्राचीन विद्वानो ने गौतम को ही अक्षपाद कहा है और इस सम्बन्ध में एक कथा भी प्रसिद्ध है। [दे० हिन्दी तर्क भाषा–भूमिका पृ० २०–२१ आ० विश्वेश्वर] पर, आधुनिक विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे अनेक विवादास्पद विचार व्यक्त किये हैं जिससे यह प्रश्न अधिक उलझ गया है। डॉ० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी' भाग २ पृ० ३९३–९४ में गौतम को काल्पनिक व्यक्ति मानकर न्यायसूत्र का प्रणेता अक्षपाद को स्वीकार किया है। पर, विद्वान् इनके मत से सहमत नहीं है। 'महाभारत' मे गौतम और मेधातिथि को अभिन्न माना गया है।

मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थित: । शान्तिपर्व, अध्याय २६५।४५

यहाँ एक नाम वंशबोधक तथा द्वितीय नामबोधक है। इस समस्या का समाधान न्यायशास्त्र के विकास की दो धाराओ के आधार पर किया गया है जिसके अनुसार प्राचीन न्याय की दो पद्धतियाँ थी—अध्यात्मप्रधान एवं तर्कप्रधान। इनमे प्रथम धारा के प्रवर्त्तक गौतम एवं द्वितीय के प्रतिष्ठापक अक्षपाद माने गये है। 'इस प्रकार प्राचीन न्याय का निर्माण महर्षि गौतम और अक्षपाद इन दोनो महापुरुषो के सम्मिलित प्रयत्न का फल है।' हिन्दी तर्क भाषा-भूमिका पृ० २४।

न्यायसूत्र में पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय दो आह्निकों मे विभक्त है। इसमें षोडश पदार्थों का विवेचन है—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति एवं निग्रहस्थान। इनके विवरण के लिए दे० न्यायदर्शन। सन्दर्भ— १. भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय, २. हिन्दी तर्कभाषा—आ० विश्वेश्वर।

गौरी मायूर माहात्म्य चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता अप्पा दीक्षित हैं। ये मयूरवरम् के निकट किल्लपुर के रहने वाले थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम एवं अट्ठारहवीं शताब्दी का आदि चरण है। यह चम्पू पाँच तरङ्गों में विभक्त

है और सूत तथा ऋषियों के वार्त्तालाप के रूप में रचित है। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण तंजोर कैटलॉग ४०३५ में प्राप्त होता है। कवि ने पुस्तक के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है :—

भोजादिभिः कृतपदं कविभिर्महद्भिश्चम्पूक्तिसौधमधिरोढुमहं यतिष्ये।
निःशङ्कमम्बरतलं पततः पतत्रिराजस्य मार्गमनुसर्तुमिवाण्डजोन्यः॥ १।५

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

गङ्गादेवी—ये संस्कृत की कवयित्री हैं। इन्होंने 'मधुराविजय' या 'वीरकम्परायचरित' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की है। ये विजयनगर के राजा कम्पण की महिषी एवं महाराज बुक्क की पुत्रवधू थीं। इन्होंने वीर एवं पराक्रमी पति की विजययात्रा का इस महाकाव्य में वर्णन किया है। यह काव्य अधूरा है और आठ सर्गों तक ही प्राप्त होता है। इसकी शैली अलंकृत एवं शब्द-चयन सुन्दर है। एक उदाहरण—

वनभुवः परितः पवनेरितैर्नवजपाकुसुमैः कुलदीपिकाः।
प्रथममेव नृपस्य निदेशतो, विजयिनस्तुरगाननिराजयन्॥

गंगावतरण चम्पू प्रबन्ध—इस चम्पू के प्रणेता शंकर दीक्षित हैं। इनके विवरण के लिए दे० शंकर चेतोविलास चम्पू।

इस चम्पू में कवि ने सात उच्छ्‌वासों में गंगावतरण की कथा का वर्णन किया है। इसकी शैली अनुप्रासमयी है। कवि ने प्रारम्भ में वाल्मीकि, कालिदास एवं भवभूति प्रभृति कवियों का भी उल्लेख किया है। इन्होंने 'प्रद्युम्न विजय' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। 'गंगावतरणचम्पू' के अन्त में सगर-पुत्रों की मुक्ति का वर्णन किया गया है—

कपिलमुनिसुकोपप्रौढदावानलोद्यल्—ललिततरशिखाभिः प्लुष्टसर्वांगसाराः।
भसितलसितदेहाः सागरा वल्गुगंगा-चरणशरणचित्ता मुक्तिभावं गतास्ते॥ ७।९५॥

यह रचना अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण इण्डिया ऑफिस कैटलॉग ७,४०४।११४ डी० में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

गंगेश उपाध्याय—न्यायदर्शन के अन्तर्गत नव्यन्याय नामक शाखा के प्रवर्त्तक प्रसिद्ध मैथिल नैयायिक आचार्य गंगेश उपाध्याय हैं। इन्होंने 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रन्थ की रचना कर न्यायदर्शन में युगान्तर का आरम्भ किया था और उसकी धारा ही पलट दी थी। 'नव्यन्याय' [दे० न्यायदर्शन] भारतीय दर्शन का अद्भुत सिद्धान्त है जिसमें भारतीय वैदुष्य एवं तर्कपद्धति का चरमविकास दिखाई पड़ता है। नव्यन्याय में प्राचीन नैयायिकों की सूत्रशैली का परित्याग कर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ-निर्माण किया गया है। इसमें पदार्थों (न्याय के षोडश पदार्थों, दे० न्यायदर्शन) में से कुछ को अधिक महत्त्व दिया गया और कुछ की महत्ता कम कर दी गयी। इस शाखा में प्रकरण ग्रन्थों की अधिक रचना हुई है। शास्त्र के एक अंश के प्रतिपादक तथा अन्य

शास्त्रों के आवश्यक एवं उपयोगी अंशों का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ प्रकरण-ग्रन्थ के नाम से अभिहित किये जाते हैं। गंगेश उपाध्याय ने १२०० ई० के आस-पास 'तत्त्व-चिन्तामणि' का प्रणयन किया था। इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं जिनमें प्रत्यक्षादि चार प्रमाणो का पृथक्-पृथक् खण्डो मे विवेचन है। मूल ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या ३०० पृष्ठ है पर इसके ऊपर रची गयी टीकाओं की पृष्ठ-संख्या दश लाख से भी अधिक है। इस पर पक्षधरमिश्र (१३ शतक का अन्तिम चरण) ने 'आलोक' नाम्नी टीका की रचना की है। गंगेश के पुत्र वर्धमान उपाध्याय ने भी अपने पिता की कृति पर टीका लिखी है जिसका नाम 'प्रकाश' है। ये अपने पिता के ही समान बहुत बड़े नैयायिक थे।

आधारग्रन्थ—१. इण्डियन फिलॉसफी–भाग २—डॉ० राधाकृष्णन् पृ० ३९–४१ २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ३. हिन्दी तर्क भाषा—आ० विश्वेश्वर।

गार्ग्य—पाणिनि के पूर्ववर्त्ती संस्कृतवैयाकरण। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय ३१०० वि० पू० है। पाणिनिकृत अष्टाध्यायी मे इनका उल्लेख तीन स्थानों पर है—

अङ्गार्ग्यगालवयोः ।७।३।९९
ओतो गार्ग्यस्य। ८।३।२०
नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्। ८।४।६७

इनके मतो के उद्धरण 'ऋक् प्रातिशाख्य' तथा 'वाजसनेय प्रातिशाख्य' में प्राप्त होते हैं जिनसे इनके व्याकरणविषयक ग्रन्थ की पौढ़ता का परिचय मिलता है। इनका नाम गर्ग था और ये प्रसिद्ध वैयाकरण भारद्वाज के पुत्र थे। यास्ककृत 'निरुक्त' मे भी एक गार्ग्य नामधारी व्यक्ति का उल्लेख है तथा 'सामवेद' के पदपाठ को भी गार्ग्य रचित कहा गया है। मीमांसक जी के अनुसार निरुक्त मे उद्धृत मतवाले गार्ग्य एवं वैयाकरण गार्ग्य अभिन्न है।

तत्र नामानि सर्वाण्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणाना चैके॥ निरुक्त १।१२॥

प्राचीन वाङ्मय मे गार्ग्य रचित कई ग्रन्थो का उल्लेख प्राप्त होता है, वे हैं—'निरुक्त', 'सामवेद' का पदपाठ, 'शालाक्यतन्त्र' 'भूवर्णन' 'तक्षशास्त्र,' 'लोकायनशास्त्र,' 'देवर्षिचरित', एवं 'सामतन्त्र'। इनमे सभी ग्रन्थ वैयाकरण गार्ग्य के ही है या नही यह विचारणीय विषय है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—पं० युधिष्ठिर मीमासक।

गालव—संस्कृत के प्राक्पाणिनि वैयाकरण। प० युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय ३१०० वि० पू० है। आचार्य गालव का पाणिनि ने चार स्थानों पर उल्लेख किया है—

अष्टाध्यायी ६।३।६१, ८।४।६७, ७।१।७४ तथा अङ् गार्ग्यगालवयोः ७।३।९९।

अन्यत्र भी इनकी चर्चा की गयी है, जैसे 'महाभारत' के शान्तिपर्व (३४२।१०३, १०४) मे गालव 'क्रमपाठ' तथा 'शिक्षापाठ' के प्रवक्ता के रूप में वर्णित हैं। इन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त अन्यान्य ग्रन्थों की भी रचना की थी जिनके नाम हैं—संहिता',

'ब्राह्मण', 'क्रमपाठ', 'शिक्षा', 'निरुक्त', 'दैवतग्रन्थ', 'शालाक्यतन्त्र', 'कामसूत्र' तथा 'भूवर्णन'। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण के अनुसार गालव धन्वन्तरि के शिष्य थे। इनके पिता का नाम गलु या गलव माना जाता है। भगवद्दत्त जी के अनुसार ये शाकल्य के शिष्य थे।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक २. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २—पं० भगवद्दत्त।

गीता—यह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर 'महाभारत' के भीष्मपर्व का अंश है। इसका प्रणयन महर्षि वेदव्यास ने किया है। [दे० व्यास] इसमे ७०० श्लोक एवं १८ अध्याय है तथा नैतिक, व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'गीता' मे मुख्यतः उपनिषद, सांख्य, कर्ममीमांसा, योग, पाञ्चरात्र आदि के दार्शनिक तत्त्वो का अत्यन्त प्राञ्जल एवं सुबोध भाषा में आध्यात्मिक समन्वय उपस्थित किया गया है। इसकी महत्ता इसी से प्रमाणित होती है कि भारतीय दार्शनिको ने प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत इसे स्थान दिया और इसे वही गौरव प्राप्त हुआ जो 'ब्रह्मसूत्र' और उपनिषदों को मिला था। इस पर प्राचीन समय से ही अनेकानेक भाष्य लिखे गए और आधुनिक युग तक विद्वानो ने इस पर टीकाओं एवं भाष्यो की रचना की है। विभिन्न मतावलम्बी आचार्यो ने अपने मत की पुष्टि के लिए गीता पर भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त की श्रेष्ठता प्रमाणित की है जिनमें शंकर, रामानुज, तिलक, गांधी, अरविन्द, राधाकृष्णन् एवं विनोबाभावे के नाम उल्लेखनीय है। न केवल भारत में अपितु विश्व के अनेक उन्नत देशो में भी गीता की लोकप्रियता बनी हुई है और संसार की ऐसी कोई भी भाषा नही है जिसमे इसका अनुवाद न हुआ हो। विश्व के अनेक विद्वानो ने मुक्तकण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। विलियम वॉन हम्बोल्ट के अनुसार यह "सबसे सुन्दर और यथार्थ अर्थों में संभवतः एकमात्र दार्शनिक गीत है जो किसी ज्ञात भाषा में लिखा गया हो।" गीता मे कर्त्तव्यनिष्ठा का जो सदेश दिया गया है उसका क्षेत्र सार्वभौम है तथा उसका आधार हिन्दू धर्म का दार्शनिक विचार है। इसमे न केवल दार्शनिक विचारधारा का आख्यान किया गया है अपितु भक्ति के प्रति उत्साह तथा धार्मिक भावना की मधुरता का भी सम्यक् निरूपण है।

गीता का स्वरूप-विधान दार्शनिक पद्धति एवं उच्च काव्यात्मक प्रेरणा का मध्यवर्त्ती है। इसमे दार्शनिक विचार को काव्य का रूप प्रदान किया गया है जिसके कारण इसका प्रभाव अखण्ड है तथा इसकी लोकप्रियता भी बनी हुई है। इसमे जीवन की समस्या का प्रयत्नसाध्य बौद्धिक समाधान प्रस्तुत किया गया है, अतः इसमें दार्शनिक सुझावो का रूप प्राप्त नहीं होता। इसकी योजना के पीछे मानसिक अव्यवस्था तथा आन्तरिक क्लेशो के निवारण की भावना क्रियाशील है तथा जीवन की जटिल परिस्थितियों का सामना करने के लिए सुदृढ़ आधार तैयार किया गया है।

गीता की रचना ऐसे समय में हुई थी जब महाभारत का प्रलयंकरी संग्राम प्रारम्भ होने वाला था। पाण्डवों और कौरवों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में आ डटी थीं।

जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को रणक्षेत्र के मध्य लाकर खड़ा किया और दोनों ओर से भेरी, मृदंग आदि की तुमुल ध्वनि होने लगी तो अर्जुन दोनों दल के व्यक्तियों को देखकर, जिसमें अपने ही वंश के लोग लड़ने के लिए प्रस्तुत थे, सोचने लगे कि यह युद्ध अनुचित तथा अपने वंश का संहार करने वाला है। उनके सामने यही समस्या उत्पन्न हुई कि मैं युद्ध करूँ या न करूँ। इसी विषम समस्या के समाधान के रूप में गीता का उदय हुआ है। इसकी रचना श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में हुई है। कृष्ण ने अर्जुन के मन मे उत्पन्न भ्रम का आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत कर उन्हें युद्ध में प्रवृत्त किया तथा इस कार्य के लिए ऐसी उक्तियाँ प्रस्तुत कीं जिनका प्रभाव उनके मन पर स्थायी रहा। श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से जीवन का मनोहर तत्त्वज्ञान प्रस्तुत किया तथा नैतिक दृष्टि से युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध की। आत्मा का अमरत्व प्रतिपादित करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि "जो पुरुष आत्मा को मरनेवाला समझता है, और जो इसे मरा मानता है, वे दोनो ही जानते नहीं; आत्मा मरता है, न मारा जाता है। २।१९॥ यदि आत्मा सदा जन्म-मरण के बन्धन में फँसा है, तो भी मृत्यु शोक का कारण नहीं, मरना तो इन सबको है ही, थोड़े समय का आगे पीछे का भेद ही है।" २।२६।

गीता का अध्यात्मपक्ष—गीता मे ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण उभय रूपो का वर्णन है तथा दोनों को अभिन्न माना गया है—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ १३।१४॥

इसमे ब्रह्मतत्त्व का विवेचन उपनिषदों के ही समान है तथा एक मात्र ब्रह्म की ही मूलसत्ता स्वीकार की गयी है। ब्रह्माण्ड मे जो कुछ भी हो रहा है वह सब ब्रह्म की ही मूलसत्ता स्वीकार की गयी है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी हो रहा है वह सब ब्रह्म की ही शक्ति से हो रहा है। श्रीकृष्ण ने अपने को ब्रह्म से अभिन्न बतलाया है। ब्रह्म सत् है, असत् है और सत् तथा असत् से परे भी है—सदसत् तत्परं यत् ११।३७। वह भूतो के बाहर एवं भीतर दोनों स्थानों पर है तथा चर, अचर, दूरस्थ एवं अन्तिकस्थ है—१३।१५। भगवान् जगत् की उत्पत्ति तथा लयस्थान है वह समस्त प्राणियों में निवास करता है। भगवान् में ही सारा जगत् अनुस्यूत हैं। इसमें भगवान् के दो भाव कहे गए हैं—अपर तथा पर। जब ईश्वर एक ही भाव मे, एक ही अंश से योगमाया से युक्त रहकर जगत् में अभिव्यक्त होता है या एक अंश से ही जगत् मे व्याप्त रहता है तो उसे अपर भाव या विश्वानुग रूप कहा जाता है। 'परन्तु भगवान् केवल जगन्मात्र नहीं है, प्रत्युत् वह इसे अतिक्रमण करने वाले भी हैं। यह उनका वास्तव रूप है। इस अनुत्तम, अव्यक्तरूप का नाम है—परभाव, विश्वातिग रूप।" भारतीय दर्शन पृ० ९८। गीता के अनुसार ब्रह्म ऐसी अनन्त सत्ता है जो सभी सीमित पदार्थों मे आधार रूप से विद्यमान है और उनमें जीवन का संचार करती है।

जीवतत्त्व—जीव चैतन्य है और वह परमात्मा की पराप्रकृति या उत्कृष्ट विभूति है। कृत कर्मों का फल धारण करने के कारण इसे 'क्षेत्र' कहते हैं तथा क्षेत्र का

ज्ञाता 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है। "यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है। अथवा यह होकर फिर न होगा, ऐसा भी नहीं है। शरीर का नाश होने पर इसका नाश नहीं होता।" २।२०

गीता आत्मा को अमर और सनातन मानती है। यह अनादि, अखण्ड, काला-बाधित और स्वयम्भू है। शरीर अस्थायी एवं क्षणिक है पर आत्मा अजर और अमर। जीव नाना होकर भी एक है। जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र को उतार कर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार जीव प्रारब्ध भोग के द्वारा जीर्ण शरीर का त्याग कर नवीन शरीर प्राप्त करता है। स्वयं अविकार, अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य तथा नित्य, सर्वव्यापी अचल एवं सनातन है। जीव परमेश्वर का ही सनातन अंश है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ १५।७

जगत् तत्त्व—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के कारण भगवान् हैं। भगवान् ही सब भूतो के सनातन बीज हैं। जिस प्रकार बीज वृक्ष से उत्पन्न होकर पुनः बीज मे ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार यह जगत् भी भगवान् से उत्पन्न होकर उसमें ही लीन हो जाता है। गीता सांख्य के प्रतिकूल भगवान् को ही प्रकृति का अध्यक्ष स्वीकार करती है। इसके अनुसार जगत् न तो काल्पनिक है और न मायिक हो अपितु यह सत्य और यथार्थ है।

गीता और साख्ययोग—गीता भिन्न-भिन्न भारतीय मार्गों का समन्वय उपस्थित करती है। इसके अनुसार सांख्य और योग में भेद नहीं है, दोनों एक हैं। कृष्ण ने अपने को व्यास और कपिल दोनो कहा है। १३ वें अध्याय में प्रकृति और पुरुष को 'क्षेत्र' तथा 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है एवं दोनों के ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान माना गया है। सांख्य मे पुरुष और प्रकृति में भेद माना गया है तथा मूल प्रकृति को एक मान कर पुरुष बहुत्व की कल्पना की गयी है। गीता में भी सर्वत्र पुरुष बहुत्व मान्य है तथा कहा गया है कि प्रकृति का विकास गुणों का सामंजस्य टूटने से होता है। पुरुष और प्रकृति के भेद को स्वीकार कर बताया गया है कि प्रकृति के संयोग से पुरुष स्वयं बन्धन में पड़ जाता है। गीता पुरुष और प्रकृति में भेद करने को ही बन्धन से छूटना मानती है।

गीता और योग—अर्जुन कृष्ण को योगी कह कर सम्बोन्धित करते हैं तथा उन्हें योगेश्वर भी कहा गया है। कृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि "अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ, सब भूतो का आदि, मध्य और अन्त मैं ही हूँ।" योग-दर्शन मे यम और नियम को योग का प्राथमिक तत्त्व माना गया है। गीता भी दैवी सम्पत्ति वालों के गुणो का वर्णन करते समय यम और नियम को सम्मिलित करती है तथा मन को काबू में लाने के लिए अभ्यास और वैराग्य का सहारा लेती है। योग-दर्शन और गीता में अन्तर यह है कि पतंजलि ने ने ध्यान को कर्म से ऊँचा स्थान दिया है जबकि गीता में निष्काम कर्म को ज्ञान तथा ध्यान से बढ़कर माना गया है। गीता कर्म-फल-त्याग पर बल देती है।

गीता और मीमांसा—पूर्वमीमांसा की भाँति गीता में भी धर्मतत्त्व पर विचार किया

गया है। कृष्ण अर्जुन को सभी धर्मों का त्याग कर अपनी शरण में आने का संदेश देते हैं। गीता यज्ञ के महत्त्व को भी स्वीकार करती है। 'ब्रह्मसदा यज्ञ मे प्रतिष्ठित है'। "यज्ञ से बचे हुए को खानेवाले सन्त सब पापों से छूट जाते हैं; जो पापी अपने लिए पकाते है, वे तो पाप ही खाते है।"

गीता का व्यवहार पक्ष—अध्यात्मपक्ष की भाँति गीता का व्यवहारपक्ष भी अत्यन्त रमणीय है। इसमें कर्म, ज्ञान एवं भक्ति तीनो को महत्त्व प्रदान कर इनका समन्वय किया है तथा काम, क्रोध तथा लाभ को पतन का मार्ग बताया गया है। गीता कर्म-योग का प्रतिपादन करती हुई निष्काम कर्म पर बल देती है। इसके कर्म योग के तीन सोपान हैं—फलाकांक्षा का वर्जन कर्तृत्व के अभिमान का त्याग तथा ईश्वरार्पण।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ २।४७

यह कर्मयोग का महामन्त्र है जिसमे कर्म का त्याग न कर कर्मफल का त्याग वर्णित है। पक्के कर्मयोगी के लिए गीता ज्ञान एवं भक्ति के अवलम्बन का भी सन्देश देती है। ज्ञानी पुरुष ही निष्काम कर्म की साधना कर सकता है और भक्तिभाव के प्राधान्य से ही ईश्वर मे कर्मो का समर्पण संभव है। गीता के ज्ञानयोग मे सर्वभूतो मे एक आत्मतत्त्व का दर्शन वर्णित है। सर्वभूतो मे आत्मा का दर्शन करने वाला पुरुष 'समदर्शन' कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि मे विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मण, बैल, चाण्डाल, हाथी तथा कुत्ता समान होते हैं।

गीता के छठे अध्याय मे ध्यान योग का वर्णन है। चचल मन को एकाग्र करने के लिए इसमे आसन, प्राणायाम आदि यौगिक साधनो के प्रयोग का उपदेश दिया गया है, इसमें योगी का महत्त्व तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी से भी अधिक है। इसलिए भगवान् अर्जुन को बनने की मन्त्रणा देते है। भक्तियोग इसका सर्वोत्तम तत्त्व है। यह राजगुह्य या समस्त विद्याओ का रहस्य है। भक्ति ही गीता का हृदय है तथा बिना भक्ति के मनुष्य का जीवन अपूर्ण है। अनन्या भक्ति के द्वारा ही जीव भगवान् को प्रत्यक्ष देख सकता है। ज्ञानी भक्त को भगवान् ने आत्मा कहा है। गीता कर्म, योग, ज्ञान एवं भक्ति को स्वतन्त्र साधन-सरणि न मानकर सबका समन्वय करती है तथा आध्यात्मिक पथ के लिए सबको उपयुक्त समझती है।

आधार ग्रन्थ—१. गीता—तिलककृत भाष्य (हिन्दी अनुवाद) २. गीता—डॉ० राधाकृष्णन् कृतभाष्य (हिन्दी अनुवाद) ३. गीता पर निबन्ध-अरविन्द (हिन्दी अनुवाद) ४ गीता—गीता प्रेस गोरखपुर ५. भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ६. दर्शन संग्रह—डॉ० दीवान चन्द ७. भारतीय दर्शन—डॉ० राधाकृष्णन् भाग १. (हिन्दी अनुवाद) ८ गीता—(हिन्दी भाष्य ३ खण्डो में) म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी।

गोपथब्राह्मण—यह 'अथर्ववेद' का एक मात्र ब्राह्मण है। इसके दो भाग है—पूर्व गोपथ एवं उत्तरगोपथ। प्रथम भाग में पाँच अध्याय या प्रपाठक हैं एवं द्वितीय मे

६ अध्याय। प्रपाठक कण्डिकाओं में विभक्त हैं जिनकी संख्या २५८ है। यह ब्राह्मणों में सबसे परवर्ती माना जाता है। इसके रचयिता गोपथ ऋषि हैं। यास्क ने इसके मन्त्रों को 'निरुक्त' में उद्धृत किया है, इससे इसकी 'निरुक्त' से पूर्वभाविता सिद्ध होती है। ब्लूमफील्ड ने इसे 'वैतानसूत्र' से अर्वाचीन माना है, किन्तु डॉ० कैलेण्ड एवं कीथ के मत से यह प्राचीन है। इसका अनुमानित समय वि० पू० चार हजार वर्ष है। इसमे 'अथर्ववेद' की महिमा का बखान करते हुए उसे सभी वेदों में श्रेष्ठ बताया गया है। इसके प्रथम प्रपाठक में ओंकार एवं गायत्री की महिमा प्रदर्शित की गयी है। द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का वर्णन तथा तृतीय और चतुर्थ मे ऋत्विजों के कार्यकलाप एवं दीक्षा का कथन है। पञ्चम प्रपाठक मे सम्वत्सर का वर्णन है तथा अन्त मे अश्वमेध, पुरुषमेध, अग्निष्टोम आदि अन्य यज्ञ वर्णित हैं। उत्तर भाग का विषय उतना सुव्यवस्थित नहीं है। इसमे विविध प्रकार के यज्ञो एवं उनसे सम्बद्ध कथाओ का उल्लेख किया गया है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी इसमे अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य भरे हुए है।

आधार ग्रन्थ—१. अथर्ववेद एण्ड गोपथ ब्राह्मण—ब्लूमफील्ड २. अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण—(उपर्युक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद) अनु० डॉ० सूर्यकान्त १९६५, चौखम्बा प्रकाशन ३ वैदिक साहित्य और संस्कृति आ० बलदेव उपाध्याय।

गोविन्द चरितामृत—इस महाकाव्य की रचना श्री कृष्णदास कविराज ने की है। इसमे २३ सर्ग एवं २५११ श्लोक है। कवि ने राधाकृष्ण की अष्टकालिक लीलाओ का इसम वर्णन किया है। इन्होने बंगला मे चैतन्य महाप्रभु की जीवनी 'चैतन्य चरितामृत' के नाम से लिखी है।

गौतम धर्मसूत्र—यह धर्मसूत्रो मे प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके अध्येता, विशेषतः 'सामवेद' के अनुयायी होते थे। कुमारिल के अनुसार इसका सम्बन्ध सामवेद से है। चरणव्यूह की टीका से ज्ञात होता है कि गौतम सामवेद की राणायनीय शाखा की नौ अवान्तर शाखाओ मे से एक उपविभाग के आचार्य थे। सामवेद के लाट्यायन श्रौतसूत्र (१।३।३, १।४।१७) एव द्राह्यायण श्रौतसूत्र (१,४,१७। ९,३, १४) मे गौतम नामक आचार्य का कई बार उल्लेख है तथा सामवेदीय 'गोभिल गृह्यसूत्र' मे (३।१०।६) उनके उद्धरण विद्यमान हैं। इससे ज्ञात होता है कि श्रौत, गृह्य तथा धर्म के सिद्धान्तों का समन्वित रूप 'गौतमसूत्र' था। इस पर हरदत्त ने टीका लिखी थी। इसका निर्देश याज्ञवल्क्य, कुमारिल, शङ्कराचार्य एवं मेधातिथि द्वारा किया गया है। गौतम यास्क के परवर्ती हैं। उनके समय मे पाणिनि-व्याकरण या तो था ही नही और यदि था भी तो उसकी महत्ता स्थापित न हो सकी थी। इस ग्रन्थ का पता बौधायन एवं वसिष्ठ को था। इससे इसका रचनाकाल ईसा पूर्व ४००–६०० वर्ष है। टीकाकार हरदत्त के अनुसार इसमे २८ अध्याय हैं और सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य में रचित है। इसकी विषय-सूची इस प्रकार है—धर्म के उपादान, मूल वस्तुओ की व्याख्या के नियम, चारो वर्णों के उपनयन का काल, यज्ञोपवितविहीन व्यक्तियों के नियम, ब्रह्मचारी के नियम, गृहस्थ के नियम, विवाह का समय, अवस्था तथा विवाह के आठो प्रकार,

विवाहोपरान्त संभोग के नियम, ब्राह्मण की वृत्तियाँ, ४० संस्कार, अपमान लेख, गाली, आक्रमण, चोर, बलात्कार तथा कई जातियों के व्यक्ति के लिए चोरी के नियम, ऋण देने, सूदखोरी, विपरीत सम्प्राप्ति, दण्ड देने के विषय में ब्राह्मणों का विशेषाधिकार, जन्म-मरण के समय अपवित्रता के नियम, नारियों के कर्त्तव्य, नियोग तथा उनकी दशाएँ पाँच प्रकार के श्राद्ध तथा श्राद्ध के समय न बुलाये जाने वाले व्यक्तियों के नियम, प्रायश्चित्त के अवसर एवं कारण, ब्रह्महत्या, बलात्कार, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गाय या किसी अन्य पशु की हत्या से उत्पन्न पापों के प्रायश्चित्त, पापियों की श्रेणियाँ, महापातक, उपपातक तथा दोनों के लिए गुप्त प्रायश्चित्त, चान्द्रायणव्रत, सम्पत्ति-विभाजन, स्त्रीधन, द्वादश प्रकार के पुत्र तथा वसीयत आदि।

सर्व प्रथम डॉ० स्टेंज्लर द्वारा १८७६ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित, हरदत्त की टीका के साथ भास्करी भाष्य मैसूर से प्रकाशित, अँगरेजी अनुवाद सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट भाग २ मे डॉ० बुहलर द्वारा प्रकाशित]

गौतमधर्मसूत्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद)—अनुवादक डॉ० उमेशचन्द्र; चौखम्बा प्रकाशन।

चतुर्भाणी—यह गुप्तयुग में रचित चार भाणों में (रूपक के प्रकार) संग्रह है। वे है—'उभयाभिसारिका', 'पद्मप्राभृतक', 'पादताडितक' एवं 'धूर्त विट-संवाद'। इनके रचयिता क्रमशः वररुचि, शूद्रक, श्यामिलक एवं ईश्वरदत्त है। 'पद्मप्राभृतक' एवं 'पादताडितक' का कार्यक्षेत्र उज्जयिनी तथा 'धूर्त विट-सवाद' और 'उभयाभिसारिका' का कार्यस्थल पाटलिपुत्र है। सभी भाणो का विषय समान है और इनमे शृङ्गार रस की प्रधानता है। इनमें वेश्याओं तथा उनके फेरे मे पड़ने वाले व्यक्तियों की अच्छी-बुरी बातें भरी हुई हैं। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने बताया है कि इनमें तत्कालीन भारत की सास्कृतिकनिधि पड़ी हुई है तथा इनके वर्णनो मे स्थापत्य, चित्र, वस्त्र, वेष-भूषा, खानपान, नृत्य, संगीत, कला, शिष्टाचार आदि से सम्बद्ध अत्यन्त रोचक एवं उपादेय सामग्री है। गुप्त-युग की सास्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए इनभाणो की उपयोगिता असंदिग्ध है।

चतुर्भाणी के सम्पादक डॉ० मोतीचन्द्र के अनुसार इनका समय चतुर्थ शताब्दी का अन्त एवं पाँचवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इसके लेखकों ने तत्कालीन समाज के अभिजातवर्ग की कामुकता एवं विलासिता के ऊपर फबतियाँ कसते हुए उनका मजाक उड़ाया है। यत्र-तत्र इनमें अश्लीलता भी दिखाई पड़ती है किन्तु विटो तथा आकाश-भाषित पात्रों की संवाद-शैली की मनोहरता, हास्य एवं व्यंग्य के समक्ष यह दोष दब जाता है। डॉ० मोतीचन्द्र ने बताया है कि इनमें आधुनिक बनारसी दलालों, गुण्डों एवं मनचलो की भाषा का आभास होता है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास मे चतुर्भाणी का महत्त्व असंदिग्ध है। लेखकों ने तत्कालीन समाज के दुर्बल पक्ष पर व्यंग करते हुए अत्यन्त जीवन्त साहित्य की रचना की है।

चतुर्भाणी का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से

हुआ है। अनुवादक एवं सम्पादक हैं—डॉ० स्व० वासुदेव शरण अग्रवाल एवं डॉ० मोतीचन्द्र]

चक्रदत्त—आयुर्वेदशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम चक्रपाणि दत्त है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी है। लेखक के पिता का नाम नारायण था जो गौड़ाधिपति नयपाल की पाकशाला के अधिकारी थे। चक्रपाणि सर्वतोमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। इन्होंने वैद्यक ग्रन्थों के अतिरिक्त शिशुपालवध, कादम्बरी, दशकुमारचरित एवं न्यायसूत्र की भी टीका लिखी थी। चिकित्साशास्त्र-विषयक इनके ग्रन्थों के नाम हैं—वैद्यकोष, आयुर्वेददीपिका (चरक की टीका), भानुमति (सुश्रुत की टीका) द्रव्यगुणसंग्रह, सारसंग्रह, व्यंग्यदरिद्रशुभंकरणम् तथा चक्रदत्त (चिकित्सासंग्रह)। चक्रदत्त को लेखक ने 'चिकित्सासंग्रह' कहा है पर वह चक्रदत्त के ही नाम से विख्यात है। इस ग्रन्थ की रचना वृन्द कृत 'सिद्धयोग' के आधार पर हुई है। इसमें वृन्द की अपेक्षा योगो की संख्या अधिक प्राप्त होती है तथा भस्मों और धातुओं का प्रयोग भी अधिक है। इस पर श्री निश्चल ने रत्नप्रभा तथा शिवदास सेन ने तत्त्वचन्द्रिका नामक टीकायें लिखी हैं। इसकी हिन्दी टीका श्रीजगदीश्वर प्रसाद त्रिपाठी ने की है।

आधार ग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

चण्डेश्वर—संस्कृत के राजधर्मनिबन्धकार। ये मिथिला नरेश हरिसिंहदेव के मन्त्री थे। इनके पिता का नाम वीरेश्वर एवं पितामह का नाम देवादित्य था। चण्डेश्वर का समय चौदहवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। इन्होंने 'निबन्धरत्नाकर' नामक विशाल ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ सात भागो में विभक्त है जिसके (भागों के) नाम है—कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, विवादरत्नाकर एवं गृहस्थरत्नाकर। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—राजनीति-रत्नाकर, शिववाक्यावली एवं देववाक्यावली। राजनीतिरत्नाकर सोलह तरंगों में विभक्त है जिसके प्रतिपाद्य राजनीति-विषयक विविध विषय है। इसके सोलह तरंगों के विषयो की सूची इस प्रकार है—राज्ञोनिरूपण, अमात्यनिरूपण, पुरोहितनिरूपण, प्राड्विवाक निरूपण, सभ्यनिरूपण, दुर्गनिरूपण, मन्त्रिनिरूपण, कोशनिरूपण, बलनिरू-पण, सेनानीनिरूपण, दूतादिनिरूपण, राजकृत्यनिरूपण, दण्डनिरूपण, राजकृत्यराज्यदानम्, पुरोहितादिकृत राज्य दानम् तथा अभिषेकनिरूपण। चण्डेश्वर ने राजनीतिरत्नाकर के विषय का चयन करते समय धर्मशास्त्रों, रामायण, महाभारत तथानीतिग्रन्थो के वचनों को भी उद्धृत किया है। राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति, राजा की आवश्यकता तथा उसकी योग्यता, राजा के भेद, उत्तराधिकार विधि, अमात्य की आवश्यकता, मन्त्रणा, पुरोहित, सभा, दुर्ग, कोश, शक्ति, बल, बल-भेद, सेना के पदाधिकारी, मित्र, अनुजीवी, दूत, चर, प्रतिहार, षाड्गुण्य मन्त्र आदि विषयो पर चण्डेश्वर ने विद्वतापूर्ण विचार व्यक्त किया है। इनके कुछ वचन देखें—

प्रजारक्षको राजेत्यर्थः। राजशब्दोऽपि नात्र क्षत्रियजातिपरः। अमात्यं बिना राज्य-कार्यं न निर्वहति बहुभिः सह न मंत्रयेत्।

आधारग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय ।

चन्द्रकीर्त्ति—माध्यमिक सम्प्रदाय (बौद्ध दर्शन) के प्रतिनिधि आचार्यों में चन्द्रकीर्त्ति का नाम आता है। इनका समय ६०० से ६५० ई० के मध्य है। ये दक्षिण भारतीय बुद्धिपालित नामक विद्वान् के शिष्य कमलबुद्धि के शिष्य थे जिनसे इन्होंने शून्यवाद का अध्ययन किया था। महायान दर्शन के ये प्रकाण्ड पण्डित माने जाते थे। इन्हे नालन्दा महाविहार में अध्यापक का पद प्राप्त हुआ था। इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है। माध्यमिक सम्प्रदाय के लिए दे० बौद्धदर्शन।

१. माध्यमिकावतार—इसका मूल रूप प्राप्त नहीं होता, किन्तु तिब्बती भाषा में इसका अनुवाद उपलब्ध है। इसमें लेखक ने शून्यवाद का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

२. प्रसन्नपदा—यह मौलिक ग्रन्थ न होकर नागार्जुन रचित 'माध्यमिककारिका' की टीका है। इसकी शैली प्रसादपूर्ण एवं सरल है।

३ चतुःशतक टीका—यद आर्यदेव रचित 'शतुःशतक' नामक ग्रन्थ की टीका है।

आधार ग्रन्थ—बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

चन्द्रसेन—ये ज्योतिषशास्त्र के आचार्य है। इन्होने 'केवलज्ञानहोरा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय सप्तम शताब्दी है। ये कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। इन्होने अपने ग्रन्थ मे बीच-बीच मे कन्नडभाषा का भी प्रयोग किया है। यह अपने विषय का विशालकाय ग्रन्थ है जिसमे चार हजार के लगभग श्लोक है। इसके विवेच्य विषयों की सूची इस प्रकार है—हेमप्रकरण, दाम्य, शिला, मृत्तिका, वृक्ष, कार्पासगुल्म-वल्कालतृण-रोम-चर्मपट-प्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्य-प्रकरण, निर्वाह-प्रकरण, अपत्य-प्रकरण, लाभालाभप्रकरण, स्वप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, वास्तुविद्य प्रकरण, भोजनप्रकरण, देहलोहदोक्षाप्रकरण, अंजनविद्याप्रकरण तथा विषविद्याप्रकरण। विषय-सूची के अनुसार यह होरा विषयक ग्रन्थ न होकर सहिता-विषयक रचना सिद्ध होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में लेखक ने अपनी प्रशंसा स्वयं की है—

> होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्धितम् ।
> ज्योतिर्ज्ञनैकसारं च भूषणं बुधपोषणम् ॥
> आगमैः सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः ।
> केवलीसदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥

केवलज्ञानहोरा—जैनसिद्धान्त भवन, आरा।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्रशास्त्री।

चम्पूरामायण युद्धकाण्ड—इस चम्पू-काव्य के रचयिता लक्ष्मण कवि हैं। इस पर भोज कृत 'चम्पूरामायण' का अत्यधिक प्रभाव है और यह 'चमूरामायण' के ही साथ प्रकाशित है। प्रारम्भ मे कवि ने भोज की वन्दना की है। इस पर महाकवि-कालिदास के 'रघुवंश' के रामप्रत्यागमन की छाया दिखाई पड़ती है। बन्दरों के विचरण का वर्णन देखिए—

सरसपटीरकुञ्जवनसञ्जवनाभिपतन्
मृगमदगन्धगन्धवहमेदुरितेम्बुनिधिः ।
तटनिकटे लुठत्पनसतालरसालफलै-
रुदितमदा विचेरुरुदरंभरयो हरयः ॥ ११ ॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ पाण्डेय ।

चरकसंहिता—आयुर्वेदशास्त्र का सर्वोत्तम ग्रन्थ । इस ग्रन्थ के प्रतिसंस्कर्त्ता चरक हैं । इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास है । विद्वानों का कहना है कि चरक एक शाखा है जिसका सम्बन्ध वैशम्पायन से है । 'कृष्ण यजुर्वेद' से सम्बद्ध व्यक्ति चरक कहे जाते थे उन्हीं में से किसी एक ने इस संहिता का प्रतिसंस्कार किया था । कहा जाता है कि चरक कनिष्क का राजवैद्य था, पर इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । उपनिषदों में चरक शब्द का प्रयोग बहुवचन के रूप में मिलता है—मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम (बृहदारण्यक ३।३।१) । 'चरक संहिता' में मुख्य रूप से कायचिकित्सा का वर्णन है । इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—रसायन, वाजीकरण, ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, राजयक्ष्मा उन्माद, अपस्मार, क्षत, शोथ, उदर, अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, श्वास, कास, अतिसार, छर्दि, विसर्प, तृष्णा, विष, मदात्यय, द्विव्रणीय, त्रिमर्मीय, ऊरुस्तम्भ, वातव्याधि, वातशोणित एवं योनिव्यापद । 'चरकसंहिता' में दर्शन एवं अर्थशास्त्र के भी विषय वर्णित हैं तथा अनेक स्थानों एवं व्यक्तियों के संकेत के कारण इसका सांस्कृतिक महत्त्व अत्यधिक बढ़ा हुआ है । यह ग्रन्थ भारतीय चिकित्साशास्त्र की अप्रतिम रचना के रूप में प्रतिष्ठित है जिसका अनुवाद संसार की प्रसिद्ध भाषाओं में हो चुका है । इसकी हिन्दी व्याख्या (विद्योतिनी) पं० काशीनाथ शास्त्री एवं डॉ० गोरखनाथ चतुर्वेदी ने की है ।

आधारग्रन्थ—१ आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार २. चरक का सांस्कृतिक अध्ययन—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ३. चरक संहिता का निर्माणकाल—वैद्य रघुवीर शरण शर्मा ४ वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्य प्रकाश ५. प्राचीन भारत में रसायनशास्त्र—डॉ सत्य प्रकाश ६. प्राचीन भारत में विज्ञान—डॉ सत्य प्रकाश ।

चिरंजीवभट्टाचार्य—इनके द्वारा रचित दो चम्पू काव्यों का प्रकाशन हो चुका है । वे हैं—'विद्वन्मोदतरंगिणी' (श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से १९२८ ई० से प्रकाशित) तथा 'माधवचम्पू' (कलकत्ता से प्रकाशित) । इनका जन्म गौड़देशीय राढापुर के निवासी काशीनाथ के घर हुआ जो इनके पिता थे । ये काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे । इनका वास्तविक नाम वामदेव था पर पिता ने इन्हें स्नेह वश चिरंजीव नाम दे दिया था । इनका समय १५१२ ई० है । 'विद्वन्मोदतरंगिणी' आठ तरंगों में विभक्त है । प्रथम तरंग में कवि ने अपने वंश का वर्णन किया है । द्वितीय में वैष्णव, शाक्त, शैव, अद्वैतवादी, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा-वेदान्त, सांख्य तथा पातंजल योग के ज्ञाता, पौराणिक, ज्योतिषी, आयुर्वेदज्ञ, वैयाकरण, आलंकारिक तथा नास्तिकों का समागम

वर्णित है। तृतीय से अष्टम तरंग तक प्रत्येक मत का अनुयायी अपने मत का प्रतिपादन कर पर पक्ष का खण्डन करता है। अन्तिक तरंग में समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है। इसमे पद्य का बाहुल्य एवं गद्य की अल्पता है, पर गद्य अत्यन्त चुभने वाले एवं छोटे-छोटे वाक्यों वाले हैं। उपसंहार में समन्वयवादी विचार है—

शिवे तु भक्तिः प्रचुरा यदि स्याद् भजेच्छिवत्वेन हरिं तथापि।
हरौ तु भक्तिः प्रचुरा यदि स्याद् भजेद्धरित्वेन शिवं तथाऽपि॥ ८।१३३

इस चम्पू मे कवि का पाण्डित्य एवं दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। 'माधव चम्पू' मे पाँच उच्छ्वास हैं जिसमे कवि ने माधव एवं कलावती की प्रणय-गाथा का वर्णन किया है। यह काव्य शृङ्गार प्रधान है जिसमें प्रणय की समग्र दशायें तथा शृङ्गार के सम्पूर्ण साधन वर्णित हैं। यहाँ माधव काल्पनिक व्यक्ति न होकर श्रीकृष्ण ही है।

श्रीमाधवाख्यो वसुदेवसूनुर्वृन्दावने किंच कृताधिवासः।
समागतोऽयं मृगया विधानश्रान्तोऽत्र विश्रान्तिकृते चिराय॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

चन्द्रमहीपति—यह बीसवी शताब्दी का सुप्रसिद्ध संस्कृत उपन्यास है जिसकी रचना 'कादम्बरी' की शैली मे हुई है। इसके रचयिता राजस्थान निवासी कविराज श्री निवास शास्त्री है। ग्रन्थ का निर्माणकाल १९९१ विक्रम संवत् एवं प्रकाशन काल सं० २०१६ है। लेखक ने स्वयं इसकी 'पार्वती विवृति' लिखी है। इस कथाकृति मे राजा चन्द्रमहीपति के चरित्र का वर्णन है जो प्रजा के कल्याण के लिए अपनी समस्त सम्पत्ति का त्याग कर देता है। लेखक ने सर्वाभ्युदय की स्थापना को ध्यान मे रख कर ही नायक के चरित्र का निर्माण किया है। पुस्तक में नौ अध्याय (निश्वास) एवं २९६ पृष्ठ है। गद्य के बीच-बीच में श्लोक भी पिरोये गए हैं। इसकी भाषा सरस, सरल एवं साहित्यिक गरिमा से पूर्ण है।

चन्द्रशेखर चम्पू—इस चम्पू-काव्य के रचयिता रामनाथ कवि है। इनके पिता का नाम रघुनाथ देव था। कवि की मृत्यु-तिथि १९१५ ई० है। यह काव्य पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागो में विभक्त है। पूर्वार्द्ध मे पाँच उल्लास है। इसमें ब्रह्मावर्त्तनरेश पौष्य के जीवन वृत्त विशेषतः—पुत्रोत्सव, मृगया, आदि का वर्णन है। उत्तरार्द्ध अपूर्ण रूप मे प्राप्त होता है। पूर्वार्द्ध का प्रकाशन कलकत्ता और वाराणसी से हो चुका है। इस काव्य के प्रारम्भ मे शिव-पार्वती की स्तुति की गयी है।

मौलिं वीक्ष्य पुरद्विषः सुरधुनी कृच्छ्राद् गतां कृष्णतां
क्वापि प्रेयसि रागतः कमलजाकारं वहन्त्यः क्वचित्।
प्राप्ताः क्वापि न तत्प्रसादविशदीभावाच्छिवाकारतां
पार्वत्यास्त्रिगुणोद्भवा इव दृशा भासो भवन्तु श्रिये॥ १।२

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

चम्पूकाव्य का विकास—यह काव्य का वह स्वरूप है जिसमें वर्ण्य विषय का निरूपण गद्य एवं पद्य की मिश्रित शैली में किया जाता है। सर्वप्रथम दण्डी ने इसकी परिभाषा दी है—

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥ काव्यादर्श १।३१

आगे चलकर हेमचन्द्र ने मिश्रशैली के अतिरिक्त चम्पू का सांग एवं सोच्छ्वास होना भी आवश्यक माना है—

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासचम्पूः ॥ काव्यानुशासन ८।९

विश्वनाथ ने भी गद्यपद्यमयी रचना को चम्पू कहा—

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ॥ साहित्यदर्पण ६।३३६

किसी अज्ञात व्यक्ति की परिभाषा में चम्पू काव्य में उक्ति, प्रत्युक्ति एवं विष्कम्भ की शून्यता को सम्मिलित किया गया है—

गद्यपद्यमयं साका सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता ॥

इन सारे लक्षणों के आधार पर चम्पू की निम्नांकित विशेषताएँ सूचित की जा सकती है—चम्पू का गद्यपद्यमय होना, इसका सांक होना, चम्पू का उच्छ्वासों मे विभाजित होना, उक्ति-प्रत्युक्ति का न होना तथा विष्कम्भ शून्यता का होना। चम्पूकाव्य महाकाव्य की भाँति आठ से अधिक परिच्छेदो में भी रचा जा सकता है तथा खण्ड काव्य की तरह इसमे आठ से कम सर्ग भी होते है। यह स्तवक, उल्लास या उच्छ्वास में विभक्त होता है। इसके मूल स्रोत पुराण होते है, पर सामान्य विषयों का भी वर्णन किया जा सकता है। संस्कृत के चम्पूकारो ने वर्णन विस्तार की ओर अधिक ध्यान दिया है, वस्तुविवेचन पर कम। इसका नायक देवता, गन्धर्व, मानव, पक्षी पशु कोई भी हो सकता है। इसके एक से अधिक नायक भी हो सकते हैं तथा नायकों के गुण लक्षण ग्रन्थो मे वर्णित गुणो के ही समान है। चम्पू काव्य के लिए नायिका का होना आवश्यक नहीं है। इसमे पात्रों की संख्या का कोई नियम नहीं है तथा कवि का ध्यान मुख्य पात्र के चरित्र-निरूपण की ही ओर अधिक होता है। इसका अंगीरस शृङ्गार, वीर एवं शान्त मे से कोई भी हो सकता है तथा अन्य रसों का प्रयोग गौण रूप से होता है। चम्पू मे गद्य-पद्य दोनो में ही अलंकरण की प्रवृति होती है तथा गद्य वाला अंश समासबहुल होता है। इसमे वर्णिक एवं मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्द प्रयुक्त होते है तथा कहीं-कहीं गीतो का भी प्रयोग हो सकता है। महाकाव्य की तरह चम्पूकाव्य में भी मंगलाचरण, खलनिन्दा एवं सज्जनो की स्तुति होती है। इसमें फलश्रुति एवं भरतवाक्य या मंगलवाक्य का भी विधान किया जाता है।

चम्पू काव्य का विकास—संस्कृत में गद्यपद्य मिश्रितशैली का प्रारम्भ वैदिक साहित्य से ही होता है। 'कृष्णयजुर्वेद' की तीनों ही शाखाओं में गद्यपद्य का निर्माण है। 'अथर्ववेद' का छठा अंश गद्यमय है। ब्राह्मणों में प्रचुर मात्रा में गद्य का प्रयोग मिलता है तथा उपनिषदों में भी गद्य-पद्य का मिश्रण है। प्रारम्भ में (संस्कृत में) मिश्रशैली

के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं—नीति और उपदेश प्रदकथात्मकरूप, पौराणिकरूप तथा दृश्यकाव्यात्मक रूप।

संस्कृत में चम्पू काव्यों का निर्माण प्रथम शताब्दी के पूर्व से ही प्रारम्भ हो गया है। संस्कृत का सर्वाधिक प्राचीन चम्पू त्रिविक्रमभट्ट रचित 'नलचम्पू' है जिसे 'नलदमयन्ती' कथा भी कहते है। इसका रचनाकाल ९१५ ई० है। तब से चम्पूकाव्य का विशाल साहित्य प्रस्तुत हुआ है और लगभग २४५ ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है जिनमे से ७४ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। चम्पूकाव्य के ग्यारह वर्ग निर्धारित किये गए है।

१—रामायण की कथा के आधार पर रचित चम्पू—इस वर्ग में ३६ ग्रन्थ आते हैं—रावणचम्पू, अमोघराघव, काकुत्स्थविजय, रामचन्द्रचम्पू, रामायणचम्पू, रामकथा सुधोदय, रामचरितामृत, रामाभ्युदय, रामचम्पू, अभिनवरामायणचम्पू आदि।

२—महाभारत के आधार पर बने चम्पू—'महाभारत' की कथा पर आश्रित चम्पू काव्यों की संख्या २७ है। भारतचम्पू, भारत चम्पूतिलक, भारतचरितचम्पू, अभिनवमहाभारतचम्पू, राजसूयप्रबन्ध, पांचाली स्वयम्बर, सुभद्राहरण, द्रौपदीपरिणय, शंकरानन्दचम्पू, कर्णचम्पू, नलचम्पू आदि।

३—भागवत के आधार पर निर्मित चम्पूकाव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत ४५ चम्पू काव्य हैं। भागवतचम्पू, रुक्मिणी, परिणयचम्पू, आनन्द वृन्दावन, गोपालचम्पू, माधवचम्पू, आनन्दकन्दचम्पू, नृगमोक्षचम्पू, बालकृष्णचम्पू, उषापरिणय आदि।

४—'शिवपुराण' की रुद्रसंहिता एवं 'लिंगपुराण' पर आश्रित चम्पूकाव्यो की संख्या ६ है। इनके अतिरिक्त अन्य वर्ग है—पुराणो पर आश्रित चम्पू, जैनपुराण पर आश्रित चम्पू, चरितचम्पू काव्य, यात्राप्रबन्धात्मक चम्पू, स्थानीय देवताओ एवं महोत्सवो का वर्णन करने करने वाले चम्पू, काल्पनिक कथा पर आश्रित तथा दार्शनिक चम्पूकाव्य।

दसवी शताब्दी मे हरिश्चन्द्र तथा सोमदेव ने 'जीवन्धरचम्पू' एवं 'यशस्तिलकचम्पू, की रचना की है। दोनो ही जैन मुनि थे। हरिश्चन्द्र का ग्रन्थ 'उत्तरपुराण' की कथा पर आश्रित है। 'भोजराज ने रामायणचम्पू', अभिनव कालिदास ने (११ वी शती) ने 'उदय सुन्दरी कथा' तथा सोमेश्वर ने 'कीर्ति कौमुदी' नामक ग्रन्थ लिखे है। १५ वी शताब्दी में वासुदेवरथ ने 'गंगावशानुचरित', अनन्तभट्ट ने 'भारतचम्पू', तिरुलम्बाने 'वरदराजाम्बिका परिणयचम्पू' नामक ग्रन्थो का निर्माण किया है। १६ वीं शताब्दी के चम्पूकारो मे राजचूडामणिदीक्षित (भारतचम्पू), जीवगोस्वामी (गोपालचम्पू) चिदम्बर (भागवतचम्पू), शेषकृष्ण (भागवतचम्पू) प्रसिद्ध है। १७ वी शताब्दी के लेखको मे चक्रकवि (द्रौपदीपरिणयचम्पू), वेंकटाध्वरी (चार चम्पू के प्रणेता) तथा १८ वीं शताब्दी के चम्पूकारों में बाणेश्वर (चित्रचम्पू) कृष्णकवि (मन्दारमीरन्दचम्पू) एव अनन्त (चम्पूभारत) के नाम उल्लेख हैं।

संस्कृत मे चम्पूकाव्यों की समस्त प्रवृत्तियों का विकास १० वीं शताब्दी मे १६ वीं शताब्दी तक होता रहा। सोलहवीं शताब्दी चम्पूकाव्यो के निर्माण का स्वर्णयुग है क्योंकि इसी युग में अधिकांश ग्रन्थों की रचना हुई है। दो सौ से अधिक चम्पूकाव्य

तो इसी युग में रचे गए हैं। इस शताब्दी तक आकर चम्पूकाव्यों ने नवीन विषयों एवं नवीन दृष्टिकोण का समावेश हुआ और यात्राप्रबन्धों तथा स्थानीय देवताओं का वर्णन कर इसके वर्ण्यविषय मे नवीनता आयी और यह काव्य नवजीवन के समीप आ गया।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

चारायण—संस्कृत के प्राक्पाणिनि वैयाकरण। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय ३१०० वि० पू० है। ये वेद-व्याख्याता, वैयाकरण एवं साहित्य-शास्त्री थे। 'लौगाक्षिगृह्यसूत्र' के व्याख्याता देवपाल (५।१) की टीका मे चारायण अपर नाम चौरायणि का एक सूत्र व्याख्या सहित उद्धृत है। इनका उल्लेख 'महाभाष्य (१।१।७३) में पाणिनि तथा रौढि के साथ किया गया है। वात्स्यायन 'कामसूत्र' तथा कौटिल्यकृत 'अर्थशास्त्र' (५।५) मे भी किसी चारायण आचार्य के मत का उल्लेख है। चारायण को 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'चारायणीयशाखा' का रचयिता भी माना जाता है जिसका 'चारायणीयमन्त्रार्षाध्याय' नामक अंश उपलब्ध है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं 'चारायणीयशिक्षा' तथा 'चारायणीय संहिता'। इन्होने साहित्यशास्त्र सम्बन्धी किसी ग्रन्थ की भी रचना की थी जिसका उल्लेख सागरनन्दी कृत 'नाटकलक्षणरत्नकोश' (पृ० १६) मे है।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १ पं० युधिष्ठिर मीमांसक २. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी (जुलाई १८७६ ई०)—डॉ० कीलहार्न।

चारुदत्त—यह महाकवि भास रचित उनका अन्तिम नाटक है। इसकी सहसा समाप्ति लेखक के असामयिक निधन का परिचायक है। इसके आरम्भ और अन्त के श्लोक नहीं मिलते। यह नाटक चार अंको मे विभक्त है। शूद्रक रचित 'मृच्छकटिक' नामक प्रकरण का आधार यही नाटक है। इसकी कथा वही है जो 'मृच्छकटिक' की है। [दे० मृच्छकटिक] कवि ने दरिद्र चारुदत्त एवं वेश्या वसन्तसेना की प्रणय-कथा का इसमे वर्णन किया है। वे ही दोनो इसके नायक-नायिका है। शकार प्रतिनायक के रूप म चित्रित है। घनघोर वर्षा मे वसन्तसेना का चारुदत्त के घर जाने के वर्णन में ही अचानक नाटक समाप्त हो जाता है।

चार्वाक दर्शन—प्राचीन भारतीय जडवादी या भौतिकवादी दर्शन जिसके अनुसार भूत ही एक मात्र तत्त्व है तथा मन या चैतन्य की उत्पत्ति जड या भूत से ही होती है। इसका दूसरा नाम 'लोकायत' दर्शन भी है। अवैदिक या नास्तिक दर्शनों मे चार्वाक दर्शन सर्वाधिक प्राचीन तत्त्वज्ञान है। इसका प्रचलन किसी-न-किसी रूप में प्राचीन काल से ही है और वेदो, उपनिषदो, पुराणो, रामायण, महाभारत तथा दार्शनिक ग्रन्थों मे भी इसका उल्लेख किया गया है। इस पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता और न इसके समर्थकों का कोई सुसंगठित सम्प्रदाय ही दिखाई पडता है। भारतीय दर्शनों मे इसके मत का खण्डन करते हुए जो विचार व्यक्त किये गए हैं उसी से ही इसका परिचय प्राप्त होता है।

चार्वाक का मूल अर्थ क्या था, इसका पता नहीं है। पर कुछ विद्वानों के अनुसार चार्वाक नामक ऋषि ही इसके प्रवर्त्तक थे। चार्वी नामक एक ऋषि का उल्लेख 'काशिकावृत्ति' मे है—नपते चार्वो कोकायते जिसके अनुसार लोकायतशास्त्र में चार्वी नामक आचार्य के द्वारा *जडवाद की व्याख्या का करने का निर्देश है। इस दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन बृहस्पति के शिष्य किसी चार्वाक नामक ऋषि ने ही किया था। उनके ही अनुयायी चार्वाक नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ विद्वानों के अनुसार 'चारुवाक्' या मीठे वचन के कारण इन्हें चार्वाक कहा जाता है, क्योंकि इनके वचन बड़े मीठे होते थे। ये 'खाओ, पीओ मौज उड़ाओ, का उपदेश देते हुए चारु या सुन्दर वचन कहते थे। वाल्मीकीय रामायण में इस दर्शन को 'लोकायत' कहा गया है तथा इसके ज्ञाता या अनुयायी लोकायित के नाम से अभिहित है। इनकी विशेषता थी धर्मशास्त्र का निरादर कर तर्क युक्त बुद्धि के द्वारा निरर्थक बातें करना—

कच्चिन्न लौकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः॥
धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते॥

अयोध्याकाण्ड १०२।३८,३९॥

लोकायत का अर्थ है लोक मे आयत या विस्तृत या व्याप्त। जो सिद्धान्त लोक-प्रसिद्ध या लोक में विस्तृत हो उसे लोकायत कहा जाता है। इसके दोनों ही नाम प्रचलित है—लोकायत एवं चार्वाक।

चार्वाक के सिद्धान्त ब्रह्मसूत्र (शाङ्कर भाष्य) (३।३।५३–५४) कमलशील रचित 'तत्त्वसंग्रहपंजिका' 'विवरणप्रमेयसंग्रह', 'न्यायमंजरी', 'सर्वसिद्धान्तसंग्रह', 'सर्वदर्शन-संग्रह' 'नैषधीयचरित' (१७ वां सर्ग) तथा 'प्रबोधचन्द्रोदय' (नाटक) आदि ग्रन्थों मे बिखरे हुए है। इस मत का सैद्धान्तिक विवेचन भट्टजयराशि कृत 'तत्त्वोपप्लवसिंह' मे उत्तर पक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया गया है तथा इसके प्रवर्त्तक बृहस्पति के कतिपय सूत्र भी कई ग्रन्थों में उद्धृत हैं जिन्हें 'बार्हस्पत्यसूत्र' कहा जाता है।

पृथिव्यप्–तेजोवायुरिति। तत्त्वानि। तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषय संज्ञा। तेभ्य-श्चैतन्यम्। किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद विज्ञानम्। भूतान्येव चेतयन्ते।

चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः। काम एवैकः पुरुषार्थः। मरणमेव अपवर्गः। परलो-किनोऽभावात् परलोकाभावः। प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्।

चार्वाक की ज्ञानमीमांसा—इस दर्शन में एक मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण की प्रधानता उद्घोषित की गयी है और अनुमान, उपमानादि को अमान्य ठहरा दिया गया है। ये इन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही विश्वसनीय मानते हैं और इन्द्रिय से प्राप्त ज्ञान ही प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् इन्द्रियज्ञान ही एक मात्र यथार्थ ज्ञान है, इसलिए अनुमान एवं शब्दादि इसी आधार पर खण्डित हो जाते हैं। इनके अनुसार इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्षीकृत जगत् हीं सत्य है और उससे परे सभी पदार्थ नितान्त मिथ्या या असत् हैं। जब तक अनुमान द्वारा प्राप्त संशय-रहित और वास्तविक नहीं होता तब तक उसे

प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा सकता। इनके अनुसार शब्द भी प्रमाण नहीं है। चार्वाक शब्द को वहाँ तक प्रमाण मानने के लिए तैयार हैं जहाँ तक इसका ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा हो सके, किन्तु जब शब्द से प्रत्यक्ष के बाहर पदार्थों का ज्ञान होने लगे तो ऐसी स्थिति में इसे निर्दोष नहीं कहा जा सकता। ये वेद में भी विश्वास नहीं करते। इनके अनुसार वेद के कर्त्ता भण्ड, निशाचर एवं धूर्त थे।

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्भरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥ स० द० सं० पृ० ४

तत्त्वमीमांसा—चार्वाक आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पंचभूतों मे से आकाश के अस्तित्व को स्वीकार नही करते। चूँकि आकाश का ज्ञान अनुमान के द्वारा होता है, इनके लिए उसकी स्वीकृति असंभव है। चार्वाक के मत से संसार चार प्रकार के भूतों से ही बना हुआ है। तत्त्वों के संयोग से ही प्राणियों का जन्म होता है और मृत्यु के पश्चात् वे पुनः भूतों में ही समा जाते हैं। चार्वाक आत्मा की सत्ता को स्वीकार नही करता। उसके अनुसार प्रत्यक्ष के द्वारा ही चैतन्य का बोध होता है और आत्मा कभी भी प्रत्यक्ष नही होती, अतः उसकी सत्ता असिद्ध है। जड या भूतों से निर्मित शरीर ही प्रत्यक्ष होता है और चैतन्य शरीर का ही गुण है, आत्मा का नही। इसलिए चेतन शरीर ही आत्मा है। जब शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व नही है तब उसका अमर या नित्य होना बकवास मात्र है। मृत्यु के साथ शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवन भी नष्ट हो जाता है, अतः पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, कर्मभोग आदि निराधार एवं अविश्वसनीय हैं। ईश्वर की सत्ता अनुमान एवं शब्द प्रमाण से सिद्ध होती है, पर प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने के कारण चार्वाक उसे स्वीकार नहीं करता। ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता, अतः चार्वाकदर्शन मे ईश्वर की सत्ता असिद्ध है। इनके अनुसार स्वभावतः जगत् की सृष्टि एवं लय की प्रक्रिया होती है तथा उसकी सृष्टि का कोई प्रयोजन नही होता।

आचार मीमासा—चार्वाक के अनुसार काम ही प्रधान पुरुषार्थ है और उसका सहायक है अर्थ। अतः ऐहिक सुख की प्राप्ति को ही ये जीवन का प्रधान सुख मानते हैं। इनका प्रसिद्ध वाक्य है कि जब तक जीये सुख से जीये और ऋण करके भी घृत पीये क्योंकि भस्म हुआ शरीर फिर आ नही सकता—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत.॥

भोगविलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण चार्वाक की आचारमीमांसा आधिदैविक सुखवाद पर आश्रित है। चार्वाक ऐहिक सुख-भोग को जीवन का चरमलक्ष्य मानते हुए भी सामाजिक नियमों की अवहेलना नहीं करता। वह सामाजिक जीवन को आदर्श जीवन मानते हुए उच्छृङ्खलता का विरोधी है। अतः आधिभौतिक सौख्यवाद का समर्थक होते हुए भी इसने ईहलौकिक जीवनकी सुख-समृद्धि का आकर्षण उत्पन्न कर जीवन के प्रति अनुराग का संदेश दिया।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) २. भारतीय-दर्शन—डॉ० डी० एम० दत्त (हिन्दी अनुवाद) ३. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ४. चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा—डॉ० सर्वदानन्द पाठक ५. सर्वदर्शन संग्रह (हिन्दी अनुवाद)—चौखम्बा प्रकाशन ।

चित्रचम्पू—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता का नाम श्री बाणेश्वर विद्यालंकार है। इनके पिता का नाम रामदेव तर्कवागीश्वर एवं पितामह का नाम विष्णु सिद्धान्त-वागीश्वर था। इस चम्पू का निर्माणकाल १७४४ ई० है। यह काव्य महाराज चित्रसेन (वर्दमान नरेश) के आदेश से लिखा गया था। इसमें यात्राप्रबन्ध एवं भक्तिभावना का मिला हुआ रूप है। इसमें २९४ पद्य तथा १३१ गद्य चूर्णक हैं। इसमें कवि ने राजा के आदेश से मनोरम वन का वर्णन किया है। प्रारम्भ में गणेश, शिव, शक्ति, राधा तथा माधव की वन्दना की गयी है। राधा-माधव की वन्दना इस प्रकार है—

यद्गोलोकविलासकेलिरसिकं भ्रूभंगभंगीनव-
क्रीडाविष्कृतसर्गसंस्थितिलयं सारं श्रुतीनामपि ।
वृन्दावल्यलिकुंजपुंजभवनं तन्मेमनः पंजरे
राधामाधवसंज्ञितं विजयामद्वन्द्वमाद्यं महः ॥ ५ ॥

इस चम्पूकाव्य का प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छबिनाथ त्रिपाठी।

चेतोदूत—यह संस्कृत का ऐसा सन्देशकाव्य है जिसका लेखक अज्ञात है और रचनाकाल का भी पता नहीं है। इसमें किसी शिष्य द्वारा अपने गुरु के चरणो मे उनकी कृपादृष्टि को प्रेयसी मानकर अपने चित्त को दूत बनाकर भेजने का वर्णन है। गुरु की वन्दना, उनके यश का वर्णन तथा उनकी नगरी का वर्णन किया गया है। अन्त में गुरु की प्रसन्नता एवं शिष्य के अन्तःतोष का वर्णन है। इसमें कुल १२९ श्लोक है और मन्दाक्रान्ता वृत्त का प्रयोग किया गया है। चित्त को दूत बनाने के कारण इसका नाम चेतोदूत रखा गया है। इसकी रचना मेघदूत के श्लोकों की समस्यापूर्ति के रूप मे की गयी है। ग्रन्थ का प्रकाशन वि० सं० १९७० में जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से हो चुका है। इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण एवं प्रसादमयी है तथा शृंगार के स्थान पर शान्तरस एवं धार्मिकता का वातावरण उपस्थित किया गया है। कवि अपने काव्य में गुरु की कृपादृष्टि को ही सर्वस्व मानता है—

सन्ति श्रीमत्परमगुरवः सर्वदाऽपि प्रसन्ना-
स्तेषां शिष्यः पुनरनुपमात्यन्तभक्तिप्रणुन्नः ।
तन्माहात्म्यादपि जडमतिर्मेघदूतान्त्यपादैः
चेतोदूताभिधमभिनवं काव्यमेतद् व्यधत्त ॥ १२९ ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

चैतन्यमत—(अचिन्त्यभेदाभेदवाद)—यह वैष्णवदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय है जिसके प्रवर्त्तक (वंगदेशनिवासी) महाप्रभु चैतन्य थे। इनका जन्म नवद्वीप

में हुआ था (१४८५-१५३३ ई०)। चैतन्य महाप्रभु पर जयदेव एवं विद्यापति के गीतों का बहुत बड़ा प्रभाव था। इनका नाम विश्वम्भर मिश्र था। इन्होंने नदिया (पूर्व बंगाल) के प्रसिद्ध विद्वान् गंगादास से विद्याध्ययन किया था। इनकी कोई रचना नहीं मिलती पर 'दशमूलश्लोक' को इनके शिष्यों ने इनकी रचना माना है। चैतन्य महाप्रभु के दो प्रसिद्ध शिष्यों-रूपगोस्वामी एवं जीवगोस्वामी—ने प्रामाणिक शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना कर इस सम्प्रदाय के विचारों की प्रतिष्ठा की। रूपगोस्वामी ने 'उज्ज्वलनीलमणि' एवं 'भक्तिरसामृतसिन्धु' नामक भक्तिरसविषयक प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना की है। [दे० रूपगोस्वामी] रूपगोस्वामी के ज्येष्ठ भ्राता श्री सनातन ने 'बृहद्भागवतामृत' श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की 'वैष्णवतोषिणी' नामक टीका लिखी तथा 'हरिभक्तिविलास' गौडीयवैष्णवमत के सिद्धान्त एवं आचार दर्शन का प्रतिपादन किया। जीवगोस्वामी द्वारा रचित 'भागवतसन्दर्भ' अचिन्त्यभेदाभेद का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। इस सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों में विश्वनाथ चक्रवर्त्ती (१७वीं शताब्दी) का नाम विशेषरूप से उल्लेख्य है। उन्होंने श्रीमद्भागवत की 'सारार्थ-दर्शिनी' टीका लिखी है।

चैतन्यमत 'गौडीयवैष्णव' मत के भी नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राधाकृष्ण की उपासना की प्रधानता है और राधा कृष्ण की प्रेमिका के रूप में चित्रित हैं। इस मत मे परकीयाभाव की भक्ति पर अधिक बल दिया गया है। माध्वमत से प्रभावित होते हुए भी चैतन्यमत की दार्शनिक दृष्टि भिन्न है। इसके सिद्धान्त को अचिन्त्यभेदाभेद कहते हैं। इसके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण परमतत्त्व है एवं उनकी शक्तियाँ अनन्त है। शक्ति और शक्तिमान् मे न तो परस्पर भेद है और न अभेद। इनका सम्बन्ध तर्क से सिद्ध नही किया जा सकता। वह अचिन्त्य है।

एकत्वं च पृथक्त्वं च तथांशत्वमुतांशिता।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानन्तशक्तितः॥

लघुभागवतामृत १।५०

इस मत में ब्रजाधिपति के तनय (नन्दसुत) भगवान् श्रीकृष्ण को आराध्य माना जाता है जिनका धाम वृन्दावन है। इनकी तीन लीलाएँ हैं—वृन्दावनलीला, मथुरालीला तथा द्वारिकालीला। इनमे प्रथम की मान्यता अधिक है, क्योंकि यहाँ की लीला गोपिकाओं के साथ सम्पन्न होने के कारण माधुर्यपूर्ण है। इस लीला को छोड़कर भक्त नीरस लीला की ओर प्रवृत्त नहीं होता। वृन्दावनधाम माधुर्य की खान तथा आनन्द का निकेतन है। चैतन्यमत में ब्रजगोपिकाओं के द्वारा की गयी उपासना ही मुख्य आधार है जिसका बीज रागात्मिका या अनुरागमूलक भक्ति है। यह उपासना अहैतुकी एवं स्वार्थरहित है। रुक्मिणी आदि पटरानियों की उपासना वैधी भक्ति की उपासना है जिसमें हृदय का अनुराग कम एवं विधिविधान का प्राधान्य है। इस मत में 'श्रीमद्भागवत' को ही उत्तम शास्त्र माना गया है चार पुरुषार्थों की मान्यता है—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष,—पर चैतन्य ने पंचम पुरुषार्थ प्रेमा को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। इसकी प्राप्ति मानव जीवन की चरम उपलब्धि है। चैतन्यमत

में भगवान् को अनन्त गुणों का निवास तथा विज्ञानानन्दविग्रह कहा गया है। भगवान् में सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, सर्वविद्वत्व, सर्वज्ञत्व आदि गुण उनसे पृथक् नहीं हैं तथा उनका स्वरूप गुणों से भिन्न नहीं हैं। शंकराचार्य की भाँति चैतन्यमत में भी ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद से शून्य है तथा उसे अखण्ड और सच्चिदानन्द पदार्थ माना जाता है। भगवान् की अचिन्त्य एवं अनन्त शक्तियाँ हैं जिनमें तीन प्रमुख हैं—स्वरूपशक्ति, तटस्थशक्ति तथा मायाशक्ति। स्वरूपशक्ति चित्शक्ति या अन्तरंगाशक्ति भी कही जाती है। यह भगवद्रूपिणी होती है तथा सत्, चित् और आनन्द के कारण एक होने पर भी तीन रूपों में प्रकट होती है—सन्धिनी, संवित् एवं ह्लादिनी। सन्धिनी शक्ति के द्वारा भगवान् स्वयं सत्ता धारण कर दूसरों को भी सत्ता प्रदान करते हुए स्वतन्त्र, देश, काल एवं द्रव्यो मे परिव्याप्त रहते हैं। संवित् शक्ति से भगवान् स्वयं जानते हुए दूसरों को भी ज्ञान देते हैं तथा ह्लादिनी शक्ति से स्वयं आनन्दित होकर दूसरों को भी आनन्दित करते हैं।

तटस्थशक्ति—परिछिन्न स्वभाव तथा अणुत्व विशिष्ट जीवो के आविर्भाव का जो कारण बनती है उसे तटस्था कहते हैं। यह जीव शक्ति भी कही जाती है। मायाशक्ति प्रकृति एवं जगत् के आविर्भाव का साधन है। जब इन तीनो शक्तियों का समुच्चय होता है तो इनकी संज्ञा 'पराशक्ति' हो जाती है। भगवान् स्वरूपशक्ति से जगत् के उपादान एवं निमित्त दोनो ही कारण होते हैं। चैतन्य मत मे जगत् सत्य है क्योंकि वह भगवान् की मायाशक्ति के द्वारा आविर्भूत होता है। भगवान् भक्ति के द्वारा ही भक्त के वश में होते है। इस मत मे भगवान के दो रूप मान्य हैं—ऐश्वर्य एवं माधुर्य। ऐश्वर्य में भगवान् के परमैश्वर्य का विकास होता है तथा माधुर्य मे वे नरतनधारी होकर मनुष्य की तरह चेष्टाएँ किया करते है। माधुर्य रूप की भक्ति, सख्य, वात्सल्य, दास्य एवं दाम्पत्य भाव के रूप में होती है। चैतन्यमत मे माधुर्य रूप से ही भगवद्प्राप्ति पर बल दिया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द की सेवा करते हुए आनन्द प्राप्त करना मोक्ष से भी बढ़कर माना गया है।

आधारग्रन्थ—भागवत सम्प्रदाय—आ० बलदेव उपाध्याय।

चोलचम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता विरूपाक्ष कवि है। इनकी एक अन्य रचना 'शिवविलासचम्पू' भी है (अप्रकाशित विवरण तंजोर कैटलाग, ४१६० में प्राप्त)। 'चोलचम्पू' के संपादक डॉ० वी० राघवन के अनुसार कवि का अनुमानित समय सत्रहवीं शताब्दी है। ये कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे और इनकी माता का नाम गोमती एवं पिता का नाम शिवगुरु था। इस चम्पू के वर्ण्य विषयो की सूची इस प्रकार है—खर्वटग्रामवर्णन, कुलोतुङ्गवर्णन, कुलोतुङ्ग की शिव-भक्ति, वर्षागम, शिव-दर्शन, शिव द्वारा कुलोतुङ्ग को राज्यदान, कुबेरागमन, तंजापुर की कथा, कुबेर की प्रेरणा से कुलोतुङ्ग का राज्यग्रहण, राज्य का वर्णन, चन्द्रोदयवर्णन, पत्नी कोमलांगी के साथ संभोग, प्रभात-वर्णन, पुत्रजन्म, महोत्सव, राजकुमार को अनुशासन, कुमार चोलदेव का विवाह तथा पट्टाभिषेक, अनेक वर्षों तक कुलोतुङ्ग का राज्य करने के पश्चात् सायुज्य-प्राप्ति और देवचोल के शासन करने की सूचना। इसमें मुख्यतः शिव-

भक्ति का वर्णन है। यह रचना मद्रास गोवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरीज एल० १२, तंजोर सरस्वती महल सीरीज नं० ५५ मद्रास से प्रकाशित हो चुकी है। 'शिवविलासचम्पू' में कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

तातो यस्य शिवोगुरुश्च नितरां दासः शिवस्यैव यो
माता यस्य तु गोमती स हि विरूपाक्षाभिधेयं कविः।
श्रीमत्कौशिकगोत्रजः शिवविलासाख्यं शिव-प्रीतये
चम्पूकाव्यमिदं करोति दिशतात्स्फूर्ति परां शारदा ॥ १॥

'विरूपाक्षचम्पू' में चार उल्लास हैं और शिव-भक्ति की महिमा प्रदर्शित की गयी है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छबिनाथ त्रिपाठी।

छन्द—यह वेदांगो में पाँचवाँ अंग है। [दे० वेदांग] वेद-मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्द-ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में न तो मन्त्रों का सम्यक् उच्चारण संभव है और न पाठ ही। प्रत्येक सूक्त के लिए देवता, ऋषि एवं छन्द का ज्ञान आवश्यक है। कात्यायन का कहना है कि बिना छन्द, ऋषि एवं देवता के ज्ञान के मन्त्रो का अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करना निष्फल है। इससे किसी कार्य मे सफलता नहीं मिल सकती—

यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो-दैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति। सर्वानुक्रमणी १।१

इस विषय पर पिंगलाचार्य का 'छन्दःसूत्र' अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों मे है जिसके चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दो के लक्षण हैं। इस पर हलायुधभट्ट ने 'मृतसंजीवनी' नामक टीका लिखी है।

'पाणिनीयशिक्षा' में छन्द को वेदो का पाद कहा गया है—छन्दःपादौ तु वेदस्य। यास्क ने इसकी व्युत्पत्ति देते हुए बताया है कि ये 'ढकने वाले साधन है'—छन्दांसि छादनात् (निरुक्त ७।१९) वैदिक छन्दो में अक्षर-गणना नियत होती है अर्थात् उसमे लघु-गुरु का कोई क्रम नही होता। वैदिक छन्द एक, दो या तीन पाद वाले होते हैं। प्रधान वैदिक छन्द हैं—गायत्री (८ अक्षर), उष्णिक (८ अक्षर) पुरउष्णिक् (१२ अक्षर), ककुप् (८ अक्षर), अनुष्टुप् (८ अक्षर), बृहती (८ अक्षर), सतोबृहती (१२ अक्षर), पङ्क्ति (८ अक्षर), प्रस्तार पंक्ति (१२ अक्षर), त्रिष्टुभ् (११ अक्षर) और जगती (१२ अक्षर) कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' मे 'ऋग्वेद' के मन्त्र निर्दिष्ट है—गायत्री-२४६७, उष्णिक् ३४१, अनुष्टुप् ८८५, बृहती १८१, पंक्ति ३१२, त्रिष्टुभ् ४२५३, जगती १३५८ ॥

आधारग्रन्थ—(क) वैदिक छन्दोमीमासा-पं० युधिष्ठिर मीमांसक (ख) वैदिक साहित्य और संस्कृति-आ० बलदेव उपाध्याय (ग) दि वैदिक मीटर-आरनाल्ड, आक्सफोर्ड।

छागलेयोपनिषद्—इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि अड्यार लाइब्रेरी में मिलती है। इसका प्रकाशन तीन स्थानों से हो चुका है। यह अल्पाकार उपनिषद् है। इसमें कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले बालिश नामक ऋषियों द्वारा कवषऐलूष को उपदेश देने का वर्णन है। इसके अन्त में 'छागलेय' शब्द का एक बार उल्लेख हुआ है। इसमें रथ का दृष्टान्त देकर उपदेश दिया गया है। सरस्वती-तीरवासी ऋषियों ने 'कवषऐलूष' को 'दास्याःपुत्र' कह कर उसकी निन्दा की तथा 'कवष' ने उनसे ज्ञान प्राप्त करने की प्रार्थना की। इस पर ऋषियो ने उसे कुरुक्षेत्र मे बालिशों के पास जाकर उपदेश-ग्रहण करने का आदेश दिया। वहाँ 'कवषऐलूष' ने एक वर्ष तक रहकर ज्ञान प्राप्त किया।

छान्दोग्य उपनिषद्—यह 'छान्दोग्य ब्राह्मण' का अन्तिम आठ प्रपाठक है। इसकी रचना गद्यबद्ध है तथा निगूढ दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिपादन आख्यायिकाओं के द्वारा किया गया है। प्रथम पाँच प्रपाठकों में परमात्मा की अनेक प्रकार की प्रतीकोपासनाएँ वर्णित हैं तथा अन्तिम तीन मे तत्त्वज्ञान का निरूपण है। इसके प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में अनेक विद्याओं का वर्णन है तथा ॐकार एवं साम के गूढ़रहस्य का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्त में 'शैव–उद्गीथ' के अन्तर्गत भौतिक आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए यज्ञ का विधान तथा सामगान करने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है। तृतीय अध्याय में देवमधु के रूप में सूर्य की उपासना, गायत्री का वर्णन, घोरआंगिरस द्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को अध्यात्म-शिक्षा एवं अण्ड से सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल की कथा, रैक्य का दार्शनिक तथ्य एवं सत्यकाम जाबाल द्वारा उपकोशल को ब्रह्मज्ञान देने का वर्णन है। पंचम अध्याय में प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र एवं मन की उपयोगिता पर विचार किया गया है तथा सृष्टि सम्बन्धी तथ्य वर्णित हैं। छठें अध्याय में श्वेतकेतु की कथा दी गयी है और वटवृक्ष के रूपक द्वारा ब्रह्मतत्त्व का विवेचन है। इसमे आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान दिया है। सातवें अध्याय से 'भूमादर्शन' का स्वरूप विवेचित है तथा आठवें अध्याय मे इन्द्र और विरोचन की कथा के माध्यम से 'आत्म-प्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का' संकेत है। इसमे ज्ञानपूर्वक कर्म की प्रशंसा की गयी है।

जगदीश भट्टाचार्य—नवद्वीप (बंगाल) के सर्वाधिक प्रसिद्ध नैयायिकों में जगदीश भट्टाचार्य या तर्कालंकार का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका समय १७वीं शताब्दी है। इन्होंने नव्यन्याय सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। [नव्यन्याय न्यायदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसके प्रवर्त्तक हैं मैथिल नैयायिक गंगेश उपाध्याय। दे० न्यायदर्शन] जगदीश ने रघुनाथ शिरोमणि के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दीधिति' [दे० रघुनाथ शिरोमणि] की विशद एवं प्रामाणिक टीका लिखी है। यह टीका 'जगदीशी' के नाम से दार्शनिक जगत् में विख्यात है। इनका द्वितीय ग्रन्थ 'शब्दशक्ति प्रकाशिका' है जिसमें साहित्यिकों की व्यंजना नामक शब्दशक्ति का खण्डन किया गया है। यह शब्दशक्तिविषयक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय २. ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—डॉ० भोलाशंकर व्यास ।

जयन्तभट्ट—'न्यायमञ्जरी' नामक प्रसिद्ध न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता आ० जयन्तभट्ट है। इनका समय नवम शतक का उत्तरार्ध है। इस ग्रन्थ में 'गौतमसूत्र' के कतिपय प्रसिद्ध सूत्रों पर (दे० न्यायदर्शन) 'प्रमेयबहुला' वृत्ति प्रस्तुत की गयी है। जयन्तभट्ट ने अपने ग्रन्थ मे चार्वाक, बौद्ध, मीमासा तथा वेदान्तमतावलम्बियों के मत का खण्डन भी किया है। इनके ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त रमणीय एवं रोचक है। 'न्यायमञ्जरी' मे वाचस्पति मिश्र एवं ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का उल्लेख है, अतः इनका समय नवम शतक का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है। जयन्तभट्ट की रचना न्यायशास्त्र के ऊपर स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित है।

आधारग्रन्थ—१. इण्डियन फिलॉसफी भाग २—डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ३. हिन्दी तर्कभाषा (भूमिका) आ० विश्वेश्वर।

जयतीर्थ—माध्वदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य वनमाली मिश्र है। [दे० माध्वदर्शन] ये इस दर्शन के सर्वाधिक विद्वान् आचार्यों मे से थे। इनका समय १४वी शताब्दी है। इन्होने टीकाओ के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से मौलिक ग्रन्थों की रचना कर माध्वदर्शन को परिपुष्ट किया था। इन्होंने मध्वरचित 'सूत्रभाष्य' पर 'तत्त्वप्रकाशिका', 'तत्त्वोद्योत', 'तत्त्वविवेक', 'तत्त्वसंख्यान', 'प्रमाणलक्षण' टीकाएँ लिखी हैं तथा 'गीताभाष्य' (मध्वरचित) के ऊपर 'न्यायदीपिका' नामक टीका की रचना की है। इनके मौलिक ग्रन्थो मे 'प्रमाणपद्धति' एवं 'वादावली' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं जिनमें अद्वैतवाद का खण्डन कर द्वैतमत का स्थापन किया गया है। 'प्रमाणपद्धति' के ऊपर आठ टीकाएँ प्राप्त होती है।

आधारग्रन्थ—दे० भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

जयदेव—ये संस्कृत के युगप्रवर्तक गीतिकार है। इन्होने 'गीतगोविन्द' नामक महान् गीतिकाव्य की रचना की है। ये बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के सभा कवि थे। इनका समय १२वी शती का उत्तरार्ध है। 'गीतगोविन्द' मे राधाकृष्ण की ललित लीला का मनोरम एवं रसस्निग्ध वर्णन है। इस पर राजा कुम्भकर्ण एवं एक अज्ञातनामा लेखक की टीकाएँ प्राप्त होती हैं जो निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हैं। जयदेव का निवास-स्थान 'केन्दुबिल्व' या 'केन्दुली' (बंगाल) था पर कतिपय विद्वान् इन्हें बंगाली न मानकर उत्कल निवासी कहते हैं। जयदेव के सम्बन्ध में कतिपय प्रशस्तियाँ प्राप्त होती है तथा कवि ने स्वयं भी अपनी कविता के सम्बन्ध मे प्रशंसा के वाक्य कहे हैं।

आकर्ण्य जयदेवस्य गोविन्दानन्दिनीर्गिरः।
बालिशाः कालिदासाय स्पृहयन्तु वयं तु न ॥ हरिहर—सुभाषितावली १७
गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु ॥ प्राचीनपद्य
स्ववचन—यदि हरिस्मरणे सरसंमनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
कलितकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम् ॥ गीतगोविन्द १–३

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि,
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति केत्वाममृतममृतमसिक्षीरनीरं रसस्ते।
माकन्द क्रन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्तिभावं
यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥ गीतगोविन्द

यद्यपि 'गीतगोविन्द' की रचना गेय पदशैली में हुई है तथापि इसमे १२ सर्ग है। प्रत्येक सर्ग गीतो से युक्त है तथा सर्ग की कथा के सूत्र को निर्देश करने वाले वर्णनात्मक पद्य भी दिये गए है। सर्वप्रथम कवि ने चार श्लोको में मंगलाचरण, प्रस्तावना, रचनोद्देश्य एवं कवि परिचय दिया है। तत्पश्चात् एक श्लोक मे दशावतारों का वर्णन किया है। इसके बाद मूलग्रन्थ प्रारम्भ होता है। एक सखी द्वारा राधिका के समक्ष वसन्त वर्णन कराया गया है। वह बिरहोत्कण्ठिता राधिका को दूर से ही गोपागनाओ के साथ रासासक्त कृष्ण को दिखाती है। इस पर ईर्ष्या की भावना से भरकर राधिका मान करती है। जब कृष्ण को इसका पता चलता है तब वे अन्य गोपागनाओ को छोडकर, राधा की विरह-दशा का अनुभव कर, यमुना-तट के एक कुंज मे उसका स्मरण करते है तथा उसके पास एक दूती भेजते हैं, जो राधा के निकट जाकर कृष्ण की बिरह-वेदना का वर्णन करती है। राधा की सखी भी कृष्ण के पास जाकर उसकी विरहावस्था का वर्णन कर कृष्ण को मिलन के लिए प्रेरित करती है। तत्क्षण चन्द्रमा का उदय होता है और राधिका कृष्ण की प्रतीक्षा करती है, पर उनके न आने पर पुनः मानिनी बन जाती है। कृष्ण आकर राधा के मान-भंग का प्रयास करते है पर वे असफल हो जाते हैं। कृष्ण चले जाते हैं और सखी राधिका को समझाती है तथा उसे अभिसरण करने की राय देती है। तत्पश्चात् राधा का प्रसाधन होता है तथा कवि उसकी अभिलाषा का वर्णन करता है। सखी कृष्ण की उत्कण्ठा का वर्णन कर शीघ्र ही राधा को अभिसार करने के लिए कहती है। अभिसार के सम्पन्न होने पर कृष्ण की रतिश्रान्ति तथा राधा का पुनः कृष्ण से प्रसाधन के लिए निवेदन करने का वर्णन है। अन्त मे 'गीतगोविन्द' की प्रशंसा कर कवि काव्य की समाप्ति करता है।

'गीतगोविन्द' के इस कथानक से ज्ञात होता है कि कवि ने मुख्यतः इसमे रासलीला का ही वर्णन किया है। इसमे 'श्रीमद्भागवत' के रास वर्णन से एक विशेषता अवश्य दिखाई पड़ती है और वह है—वसन्त ऋतु में रास का वर्णन करना। 'श्रीमद्भागवत' की रासलीला शरद् ऋतु मे हुई है। कवि ने कहीं-कही 'श्रीमद्भागवत' से भी सहायता ली है फलतः इसमे कई स्थलो पर 'श्रीमद्भागवत' की छाया दिखाई पडती है—

यह शृङ्गारपरक काव्य है। इसमें शृङ्गाररस के उभय पक्षों—संयोग एव वियोग का सुन्दर एव हृदयग्राही वर्णन किया गया। जयदेव को अपने समय की प्रचलित साहित्यिक परम्पराओं एवं शृंगाररस के विविध पक्षो का पूर्ण ज्ञान था। अतः इनकी कविता मे न केवल शृगार अपितु काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगो का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। जयदेव ने पुस्तक के प्रारम्भ मे ही कह दिया है कि इसमें भक्ति, कलाविलास तथा कलित-कोमलकान्त पदावली का मंजुल संमिश्रण है। इनके समय से पूर्व की गीतिकाव्य की दो प्रमुख धाराएँ शृंगारिक तथा धार्मिकता—'गीतगोविन्द' में

आकर पूर्णतः मिल गयी हैं। इन्होंने विभिन्न शृंगारिक परिस्थितियों की कल्पना कर राधा को विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के रूप में चित्रित किया है—

उत्कण्ठिता—सखि हे केशीमथनमुदारम् ।
रमय मया सह मदनमनोरथ भावितया सविकारम् ॥ ५ ॥

प्रोषितपतिका— निन्दतिचन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयासमीरम् ।
माधव मनसिजविशिखभयादिव भावनयात्वयिलीना ।
सा विरहे तव दीना ॥ गीतगोविन्द ६ ॥

"हे सखि। केशी के संहारक उदार कृष्ण से मेरा मिलन करा दो। मैं काम-पीड़ित हूँ"।

"हे माधव! वह तुम्हारे विरह मे अत्यन्त दीन हो गयी है, चन्दन और चन्द-किरणों की निन्दा करती है। मलयानिल को सर्प-निलय के सपर्क के कारण गरल तुल्य समझती है और काम के बाणो से भयभीत सी भावना से तुम मे लीन है।"

'गीतगोविन्द' में गौडी एवं वैदर्भी रीति का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है तथा समास बहुल पदों का खुल कर प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं तो गीत की एक पंक्ति में एक ही समस्त पद मिलता है—

ललित-लवंगलता-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे ।
मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-कूजित-कुञ्जकुटीरे ॥

सम्पूर्ण रचना मे एक भी ऐसा पद नही मिलता जो भावनानुरूप कामल न हो। इसमे कवि ने संस्कृत के वर्णिकवृत्त तथा संगीत के मात्रिक पदो का विचित्र समन्वय किया है। प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ मे एक या अधिक पदों मे राधा और कृष्ण की चेष्टादि का वर्णन किया गया है, तत्पश्चात् किसी राग में आबद्ध गेय पद का प्रयोग है। प्रत्येक सर्ग मे पदों की संख्या मे भिन्नता दिखाई पड़ती है। कहीं तो एक-एक या दो-दो पद हैं तो कहीं चार-चार पदो का भी समावेश किया गया है। पदो के बीच तथा सर्ग के अन्त मे भी वर्णिक वृत्तो का नियोजन किया गया है। विषय की दृष्टि से पदो मे अन्तर पड़ता है। कुछ तो कवि की स्वयं की उक्तियाँ हैं और कतिपय पद कृष्ण, राधा या दूती की उक्तियो के रूप मे कथित है।

'गीतगोविन्द' के स्वरूप-विधान को लेकर विद्वानो मे पर्याप्त मत-भेद पाया जाता है। विलियम जोन्स ने इसे पशुचारण नाटक (पैस्टोरल ड्रामा) कहा है तो लासेन संगीतकाव्यात्मक रूपक कहते है (लिरिक ड्रामा)। पिशेल के मतानुसार 'गीतगोविन्द' मधुररूपक (मेलोड्रामा) है तो वानश्रोउर इसे परिष्कृत यात्रा की श्रेणी मे रखते हैं। सिलवाँ लेवी ने इसे गीत और रूपक का मध्यवर्ती काव्य माना है। जयदेव ने प्रबन्ध-काव्य लिखने के उद्देश्य से इसे सर्गों मे विभक्त किया था उनका विचार इसे नाटकीय रूप देने का नहीं था। वस्तुतः यह प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य है जिसमे प्रबन्ध एवं गीति दोनों के ही तत्त्व अनुस्यूत हो गए हैं। डॉ० कीथ का कहना है कि "इस प्रकार

गीतगोविन्द का कोई बँधा हुआ एक ही रूप नहीं है, पाठ्य और गीत, कथा, वर्णन और भाषण, इन सबको उसमें एक निश्चित उद्देश्य के साथ कुशलतापूर्वक कर दिया गया है। प्रस्तुत काव्य का विभाग सर्गों के साथ ही प्रबन्धों मे भी किया गया है। प्रत्येक गीत एक प्रबन्ध माना गया है और सम्पूर्ण काव्य में ऐसे चौबीस प्रबन्ध हैं। संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) पृ० २३२।

'गीतगोविन्द' के अनेक गद्यानुवाद एवं पद्यानुवाद हिन्दी मे उपलब्ध होते हैं। आधुनिक युग के अनुवादों मे डॉ० विनयमोहन शर्माकृत पद्यानुवाद अधिक सुन्दर है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत कविदर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास।

जयदेव—(नाटककार) इन्होने 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक की रचना की है। ये गीतगोविन्दकार जयदेव से सर्वथा भिन्न है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' मे इनका एक श्लोक 'कदली कदली' ध्वनि के प्रकरण मे उद्धृत किया है, अतः ये त्रयोदश शतक के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते है। नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम महादेव एवं माता का नाम सुमित्रा था। ये कौडिन्य गोत्रीय ब्राह्मण तथा मिथिलानिवासी थे। ये न्यायशास्त्र के आलोक नामक टीका लिखने वाले जयदेव से अभिन्न थे।

'प्रसन्नराघव' नामक नाटक के अतिरिक्त इन्होंने 'चन्द्रालोक' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की है जो अपनी लोकप्रियता के कारण प्रसिद्ध है। 'प्रसन्नराघव' की रचना सात अंकों मे हुई है तथा इसका कथानक रामायण पर आधृत है। कवि ने मूलकथा मे, नाट्यकौशल के प्रदर्शनार्थ, अनेक परिवर्त्तन किये हैं तथा प्रथम चार अंको में बालकाण्ड की ही कथा का वर्णन किया है। प्रथम अंक में मंजीरक एवं नुपूरक नामक बन्दीजनों के द्वारा सीता-स्वयवर का वर्णन किया गया है। इस अंक में रावण तथा बाणासुर अपने-अपने बल की प्रशंसा करते हुए एवं परस्पर संघर्ष करते हुए प्रदर्शित किये गए है। द्वितीय अंक मे जनक की वाटिका में पुष्पावचय करते हुए राम एवं सीता के प्रथम दर्शन का वर्णन किया गया है। तृतीय अंक मे विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का स्वयवर-मण्डप मे पधारने का वर्णन है। विश्वामित्र राजा जनक को राम-लक्ष्मण का परिचय देते हैं और राजा जनक उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर अपनी प्रतिज्ञा के लिए मन-ही-मन दुःखित होते है। विश्वामित्र का आदेश प्राप्त कर रामचन्द्र शिव-धनुष को तोड डालते है। चतुर्थ अंक में परशुराम का आगमन एवं राम के साथ उनके वाग्युद्ध का वर्णन है। पंचम अंक में गंगा, यमुना एवं सरयू के संवाद के रूप राम-वनगमन एवं दशरथ की मृत्यु की घटनाओ की सूचना प्राप्त होती है। हंस नामक पात्र ने सीताहरण तक की घटनाओं को सुनाया है। षष्ठ अंक में विरही राम का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। हनुमान का लंका जाना एवं लंका-दहन की घटना का वर्णन इसी अंक मे है। शोकाकुल सीता दिखाई पडती हैं और उनके मन में इस प्रकार का भाव है कि राम को उनके चरित्र के सम्बन्ध में शंका तो नहीं है या राम का उनके प्रति अनुराग तो नहीं नष्ट हो गया है ? उसी समय रावण आता है और उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट करता है। सीता

उससे घृणा करती हैं। रावण उन्हें कृपाण से मारने के लिए दौड़ता है, किन्तु उसी समय उसे हनुमान द्वारा मारे गये अपने पुत्र अक्षय का सिर दिखाई पड़ता है। सीता हताश होकर, चिता से, अपने को जला देना चाहती हैं, पर अंगार मोती के रूप में परिणत हो जाता है। हनुमान द्वारा अंगूठी गिराने की भी घटना का वर्णन किया गया है। हनुमान् प्रकट होकर उनसे राम के एक पत्नीव्रत का समाचार सुनाते हैं जिससे सीता को संतोष होता है।

सप्तम अध्याय मे प्रहस्त द्वारा रावण को एक चित्र दिखाया जाता है जिसे माल्यवान् ने भेजा है। इस चित्र मे शत्रु के आक्रमण एवं सेतु-बन्धन का दृश्य चित्रित है, पर रावण इसे कोरी कल्पना मान कर इस पर ध्यान नही देता। कवि ने विद्याधर एवं विद्याधरी के संवाद के रूप मे युद्ध का वर्णन किया है। अन्ततः सपरिवार रावण मारा जाता है। अन्त में राम, सीता, लक्ष्मण, विभीषण एवं सुग्रीव के द्वारा बारी-बारी सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का वर्णन कराया गया है।

आधारग्रन्थ—प्रसन्नराघव—हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा से प्रकाशित।

ज्योतिषशास्त्र—ज्योतिषशास्त्र में सूर्यादि ग्रहों एवं काल का बोध होता है—ज्योतिषा सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्। 'इसमे प्रधानतः ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु, आदि ज्योतिः पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओ का निरूपण एवं ग्रह, नक्षत्रो की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलो का कथन किया जाता है।' भारतीय ज्योतिष पृ० ४ (चतुर्थ संस्करण)।

भारत में ज्योतिषशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और वैदिक वाङ्मय में भी इसका अस्तित्व सर्वत्र प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत 'वेदांग' में ज्योतिष को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हुआ है। वेदों मे सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों के सम्बन्ध मे कतिपय स्तुतिपरक मन्त्र प्राप्त होते हैं और उनमे ग्रह-नक्षत्रों के रूप-रंग तथा रहस्यमयता के अतिरिक्त उनके प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है। आगे चल कर यज्ञो के विधि-विधान मे ऋतु, अयन, दिनमान एवं लग्न के शुभाशुभ पर विचार करने के लिए ज्योतिषशास्त्र का विकास हुआ और वेदांगो मे इसे महनीय स्थान की प्राप्ति हुई। प्रारम्भ मे ज्योतिषशास्त्र के दो भेद किये गए थे—गणित एवं फलित, किन्तु कालान्तर में इसके पाँच अंगो का विकास हुआ जिन्हें-होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त कहा गया। होरा ज्योतिषशास्त्र का वह अंग है जिसमे जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के फलाफल का विचार किया जाता है। इसे जातकशास्त्र भी कहते हैं। इसमें मुख्यतः जन्मकुण्डली के द्वादश भावों के फलाफल का विचार किया जाता है और मनुष्य के सुख-दुःख, इष्ट, अनिष्ट, उन्नति, अवनति एवं भाग्योदय का वर्णन होता है। भारतीय ज्योतिर्विदों मे इस शास्त्र (होरा) के प्रतिनिधि आचार्य है—वाराहमिहिर, नारचन्द्र, सिद्धसेन, ढुण्ढिराज, केशव, श्रीपति एवं श्रीधर। गणित ज्योतिष में कालगणना, सौर-चान्द्रमानो का प्रतिपादन, ग्रह गतियों का निरूपण, व्यक्त-अव्यक्त गणित का प्रयोजन, प्रश्नोत्तर-विधि, ग्रह, नक्षत्र की स्थिति,

नाना प्रकार के यन्त्र-निर्माण की विधि (तुरीय नलिका आदि) तथा अक्षक्षेत्रविषयक अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या, समशंकु इत्यादि के आनयन का विवेचन होता है। क्रमशः इसके सिद्धान्तों का विकास होता गया और सिद्धान्त, तन्त्र तथा करण के रूप में इसके तीन भेद किये गए। संहिता के विवेच्य विषय होते हैं—भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, गृहोपकरण, इष्टिकाद्वार, गेहारम्भ, गृहप्रवेश, जलाशय-निर्माण, मांगलिक कार्यों के मुहूर्त्त, उल्कापात, वृष्टि, ग्रहों के उदयास्त का फल, ग्रहाचार का फल तथा ग्रहण-फल। प्रश्नज्योतिष में प्रश्नाक्षर, प्रश्नलग्न एवं स्वरविज्ञान की विधि का वर्णन होता है तथा प्रश्नकर्त्ता को तत्काल फल बतलाया जाता है। इसमे प्रश्नकर्त्ता के हाव-भाव, चेष्टा आदि के द्वारा उसकी मनःस्थिति का भी विश्लेषण होता है। अतः ज्योतिषशास्त्र के इस अंग का सम्बन्ध मनोविज्ञान के साथ स्थापित हो जाता है। शकुन-ज्योतिष मे प्रत्येक कार्य के शुभाशुभ फलो का पूर्व ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसका दूसरा नाम निमित्तशास्त्र भी है।

ज्योतिषशास्त्र का इतिहास—अन्य शास्त्रों के समान भारतीय ही ज्योतिषशास्त्र के जन्मदाता माने गए हैं। इस शास्त्र की प्राचीनता के सम्बन्ध में देशी एवं विदेशी विद्वानो ने एक स्वर मे समान विचार व्यक्त किये है। (१) डॉ० गौरीशंकर ओझा ने लिखा है—"भारत ने अन्य देशवासियों को जो अनेक बाते सिखायीं, उनमे सबसे अधिक महत्व अंकविद्या का है। संसार-भर मे गणित, ज्योतिष, विज्ञान आदि की आज जो उन्नति पायी जाती है, उसका मूल कारण वर्त्तमान अंक-क्रम है, जिसमे १ से ९ तक के अंक और शून्य इन १० चिह्नो से अंक विद्या का सारा काम चल रहा है। यह क्रम भारतवासियो ने ही निकाला और उसे सारे संसार ने अपनाया।" मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १०८।

(२) डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर का कहना है कि "८ वी शती में अरबी विद्वानो ने भारत से ज्योतिषविद्या सीखी और भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तों का 'सिन्दहिन्द' नाम से अरबी मे अनुवाद किया।" हण्टर इण्डियन-गजेटियर-इण्डिया पृ० २१८।

अलबरूनी के अनुसार "ज्योतिषशास्त्र मे हिन्दू लोग संसार की सभी जातियों से बढ़कर है। मैंने अनेक भाषाओ के अंको के नाम सीखे है, पर किसी जाति में भी हजार से आगे की संख्या के लिए मुझे कोई नाम नही मिला। हिन्दुओ मे अठारह अंकों तक की संख्या के लिए नाम है, जिनमें अन्तिम संख्या का नाम परार्द्ध बताया गया है।" अलबेरूनीकालीन भारत भाग १, पृ० १७४–१७७ (अंगरेजी)।

(३) मैक्समूलर का कथन है कि "भारतवासी आकाश-मण्डल और नक्षत्र-मण्डल आदि के बारे मे अन्य देशो के ऋणी नही है। मूल आविष्कर्त्ता वे ही इन वस्तुओं के हैं।" इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस पृ० ३६०-६३ [उपर्युक्त सभी उद्धरण 'भारतीय ज्योतिष' नामक ग्रन्थ से लिये गए हैं—ले० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री]।

भारतीय ज्योतिष के विद्वानो ने ज्योतिषशास्त्र के ऐतिहासिक विकास (कालवर्गीकरण की दृष्टि से) निम्नांकित युगो में विभाजित किया है—

अन्धकारकाल—ई० पू० १०००० वर्ष के पहले का समय ।
उदयकाल—ई० पू० १०००० ई० पू० ५०० तक ।
आदिकाल—ई० पू० ४९९–ई० ५०० तक ।
पूर्वमध्यकाल—ई० ५०१–ई० १००० तक ।
उत्तरमध्यकाल—ई० १००१–ई० १६०० तक ।
आधुनिककाल—ई० १६०१–ई० १९४६ तक ।

वेदमन्त्रों मे ज्योतिषशास्त्र के अनेक सूत्र बिखरे हुए है और इन सूत्रों की व्याख्या के आधार पर कालान्तर मे बृहद्शास्त्र का निर्माण हुआ। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में (१, १६४, ११) बारह राशियों की गणना के द्वारा ३६० दिन के वर्ष का वर्णन है जो ज्योतिष की राशि-चक्र-गणना की प्राचीन स्थिति का द्योतक है। डॉ० शामशास्त्री ने 'वेदांगज्योतिष' नामक ग्रन्थ की भूमिका मे सिद्ध किया है कि अयन, मलमास, क्षयमास, नक्षत्रभेद, सौरमास, चान्द्रमास प्रभृति ज्योतिष संबंधी विषय वेदों के ही समान प्राचीन है। 'ऋग्वेद' मे समय-ज्ञान की सीमा के लिए 'युग' का प्रयोग किया गया है और 'तैत्तिरीयसंहिता' मे पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यो, सूर्य तथा चन्द्रादि ग्रहों पर विचार करते हुए सूर्य का आकाशमण्डल की परिक्रमा करने का वर्णन है। उसी प्रकरण में बतलाया गया है कि चन्द्रमा नक्षत्रमण्डल की परिक्रमा करता है और वायु अन्तरिक्षलोक की। वहाँ अग्नि पृथ्वी स्थानीय कहे गए है। [तैत्तिरीयसंहिता ७।५।१३] 'ऋग्वेद' मे कृतिका नक्षत्र से काल-गणना का निर्देश एवं 'अथर्ववेद' में अट्ठाईस नक्षत्रों के नाम एवं उनके आधार पर काल-गणना के संकेत है। 'ऋग्वेद' में बारह राशियाँ मानी गयी है। [दे० अथर्ववेदसंहिता १९।२२ तथा ऋग्वेद संहिता १।१६४।११,४९] ब्राह्मण, उपनिषद् आदि में संहिताओं की अपेक्षा ज्योतिषशास्त्र के विभिन्न अंगों का विस्तारपूर्वक विवेचन प्राप्त होता है। ब्राह्मणों में नक्षत्र का सुन्दर वर्णन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।२।३) मे प्रजापति नक्षत्र के प्रतीक माने गए है और चित्रा, हस्त, स्वाति आदि नक्षत्रों को उनका अंग कहा गया है। इसी प्रकार 'कल्पसूत्र', 'निरुक्त', 'अष्टाध्यायी' आदि ग्रन्थों मे भी ज्योतिष के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। वैदिक युग मे मास, ऋतु, अयन, वर्ष, ग्रहकक्षा, नक्षत्र, राशि, ग्रहण, दिनवृद्धि आदि से सम्बद्ध बड़े ही प्रामाणिक तथ्य प्राप्त होते हैं। आदि युग मे आकर इस विषय पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थालेखन होने लगता है। इस युग तक आकर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष एवं छन्द (वेदांग के छह अंग) प्रकट हो चुके थे। इस युग में 'वेदांगज्योतिष' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना हुई जिसके संग्रहकर्ता लगध नामक ऋषि हैं। इसका संकलन-काल ई० पू० ५८० के आस-पास है। यह ज्योतिषशास्त्र का प्रारम्भिक ग्रन्थ है। [दे० वेदांगज्योतिष] ई० १००–३०० तक ज्योतिषशास्त्र का विकास अधिक हो चुका था और इस समय तक इस शास्त्र के प्रवर्त्तक १८ आचार्यों का प्रादुर्भाव हो चुका था। इन आचार्यों के नाम है—सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, काश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, भृगु एवं शौनक। उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त अन्य ज्योतिषशास्त्रियों ने भी इस

युग में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनके सिद्धान्त उन ग्रन्थों के प्रणेताओं के नाम से विख्यात हुए। इनका विवरण वराहमिहिर रचित 'पंचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। ये सिद्धान्त हैं—पितामहसिद्धान्त, वसिष्ठसिद्धान्त, रोमकसिद्धान्त, पौलिशसिद्धान्त एवं सूर्यसिद्धान्त। 'पितामहसिद्धान्त' में सूर्य एवं चन्द्रमा के गणित का वर्णन है। 'वसिष्ठसिद्धान्त' पितामहसिद्धान्त की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। इसमें केवल १२ श्लोक हैं। ब्रह्मगुप्त के अनुसार इसके कर्त्ता विष्णुचन्द्र नामक कोई व्यक्ति थे पर डॉ० थीबो ने इन्हें इसका कर्त्ता न मान कर संशोधक बतलाया है। [दे० 'पंचसिद्धान्तिका' की अंगरेजी भूमिका—डॉ थीबो]।

रोमकसिद्धान्त—इसके व्याख्याता का नाम लाटदेव है। इसकी रचना-शैली से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण किसी ग्रीकसिद्धान्त के आधार पर हुआ है। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि यह सिद्धान्त अलकजेण्ड्रिया के विख्यात ज्योतिषशास्त्री टालमी के सिद्धान्त के आधार पर निर्मित है। इसका रचना काल १००–२०० के बीच माना जाता है। इसका गणित अधिक स्थूल है।

पौलिशसिद्धान्त—इस मत की रचना अलकजेण्ड्रियावासी पौलिश के यूनानी सिद्धान्त के आधार पर हुई थी। पर अनेक विद्वान् इससे असहमत हैं। इसका भी ग्रहगणित अतिस्थूल है।

सूर्यसिद्धान्त—इसके कर्त्ता सूर्य नामक ऋषि है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसका रचनाकाल ई० पू० १८० या १०० ई० माना है। यह ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार, उदयास्ताधिकार, शृंगोन्नत्यधिकार, पाताधिकार तथा भूगोलाध्याय।

इसी युग के अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों में 'नारदसंहिता' एवं 'गर्गसंहिता' नामक ग्रंथ आते हैं, पर इनका रचनाकाल असंदिग्ध नहीं है। 'गर्गसंहिता' के कुछ ही अंश प्राप्त होते हैं जो न केवल ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से अपितु भारतीय संस्कृति के विचार से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

ज्योतिष के प्राचीन आचार्यों में ऋषिपुत्र का नाम मिलता है जिनके सिद्धान्त का विवरण 'बृहत्संहिता' की टीका में भट्टोत्पल द्वारा किया गया है। ये गर्गमुनि के पुत्र बताये गए हैं। इस युग के अन्य महान् आचार्यों में आर्यभट्ट प्रथम (४७६ ई० जन्म) ने 'आर्यभट्टीय' तथा 'तन्त्रग्रन्थ' द्वितीय आर्यभट्ट ने 'महाआर्यभट्ट सिद्धान्त' लल्लाचार्य ने 'धीवृद्धतन्त्र' तथा 'रत्नकोश' प्रभृति उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रणयन किया।

पूर्वमध्यकाल ज्योतिषशास्त्र के सम्बर्द्धन का युग है। इस युग में होरा, सिद्धान्त एवं संहिता प्रभृति ज्योतिष के विभिन्न अंगों तथा बीजगणित, अंकगणित, रेखागणित एवं फलित ज्योतिष का अद्भुत विकास हुआ। आचार्य वराहमिहिर का आविर्भाव इसी युग में हुआ था जिन्होंने 'बृहज्जातक' नामक असाधारण एवं विलक्षण ग्रंथ की रचना की थी। ये सम्राट् विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से थे। 'सारावली' नामक यवन होराशास्त्र के रचयिता कल्याणवर्मा (५७७ ई० के आसपास) ने ढाई हजार श्लोकों

का जातक ग्रन्थ लिखा था और वाराहमिहिर के पुत्र पृथुयशाकृत फलित ज्योतिष का ग्रन्थ 'षट्पञ्चाशिका' छठीं शताब्दी मे ही लिखा गया जिस पर भट्टोत्पल ने टीका लिखी। इस युग के अन्य प्रसिद्ध आचार्य ब्रह्मगुप्त जिन्होंने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' तथा 'खण्डखाद्यक' नामक करण ग्रन्थ का प्रणयन किया। पूर्वमध्यकाल के अन्य ज्योतिष-शास्त्रियो का विवरण इस प्रकार है—

मुंजाल—लघुमानस,

महावीर—ज्योतिषपटल, गणितसारसंग्रह।

श्रीपति—पाटीगणित, बीजगणित, सिद्धान्तशेखर, श्रीपतिपद्धति, रत्नावली, रत्नसार एवं रत्नमाला (दशम शताब्दी का उत्तरार्द्ध)।

श्रीधराचार्य—गणितसार, ज्योतिर्ज्ञान। पूर्वमध्यकाल में फलित ज्योतिष के संहिता एवं जातक अंगो का अधिक प्रणयन किया गया तथा ग्रहगणित चरमसीमा पर पहुँच गया। छठीं शताब्दी के आसपास भारतीय ज्योतिषशास्त्र का संपर्क ग्रीक, अरब एवं फारस देशो के भी साथ हो गया और 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' प्रभृति ग्रन्थों के अरबी भाषा मे अनुवाद भी हुए।

ज्योतिषशास्त्र का उत्तरमध्यकाल व्याख्या, आलोचना तथा मौलिक-ग्रन्थ-लेखन का युग था। इस युग मे अनेक नवीन आविष्कार हुए जिनमे गोलगणित, केन्द्राभिकर्षिणी तथा केन्द्राभिचारिणी आदि क्रियात्मक शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इस युग के आचार्यों ने सूर्य को गतिशील तथा पृथ्वी को स्थिर माना। आचार्यों ने अनेक यन्त्रों का निर्माण कर ग्रहवेध-निरीक्षण के तरीको को निकाल कर आकाशमण्डलीय ग्रहों का अध्ययन किया। इस युग मे फलितज्योतिष के भी विभिन्न अंगो का निर्माण हुआ और जातक, मुहूर्त्त, सामुद्रिक, ताजिक, रमल एवं प्रश्न प्रभृति इसके अंग प्रथम-प्रथम निर्मित हुए। रमल एवं ताजिक इस युग के दो ऐसे अंग हैं जो भारतीय ज्योतिष मे यवन-प्रभाव के कारण निर्मित हुए। इसी युग ने महान् ज्योतिषी भास्कराचार्य को जन्म दिया था जिन्होने अपने सिद्धान्तों के द्वारा भारतीय ज्योतिष को विश्वव्यापी महत्त्व प्रदान किया। इनका समय १११४ ई० है। इन्होंने 'सिद्धान्तशिरोमणि' एवं 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामक ग्रन्थों की रचना की है और फलित-विषयक ग्रन्थों का भी निर्माण किया जो सम्प्रति अनुपलब्ध हैं। [दे० भास्कराचार्य] मिथिलानरेश लक्ष्मणसेन के पुत्र बल्लालसेन ने 'अद्‌भुतसागर' नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के सिद्धान्तों का संग्रह है। यह ग्रन्थ आठ हजार श्लोकों का है। नीलकण्ठ दैवज्ञ ने 'ताजिकनीलकण्ठी' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन किया जो अरबी-फारसी भाषा के ज्योतिषगन्थो के आधार पर निर्मित है। इनके अनुज राम दैवज्ञ (१५२२ ई०) ने 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया तथा अकबर के आदेश से 'रामविनोद' एवं टोडरमल की प्रसन्नता के लिए 'टोडरानन्द' की रचना की। इस युग मे अनेक टीका ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमे इस शास्त्र का अधिक विकास हुआ। उत्तरमध्यकाल के अन्य ग्रन्थकारों में शतानन्द, केशवार्क, कालिदास, महादेव, गंगाधर, भक्तिलाभ, हेमतिलक, लक्ष्मीदास, ज्ञानराज, अनन्तदैवज्ञ, दुर्लभराज, हरिभद्रसूरी, विष्णुदैवज्ञ, सूर्यदैवज्ञ, जगदेव, कृष्ण-

दैवज्ञ, रघुनाथशर्मा, गोविन्ददैवज्ञ, विश्वनाथ, विट्ठलदीक्षित आदि के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक काल—यवन-साम्राज्य की स्थापना के कारण भारतीय ज्योतिष को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था और मध्ययुग में इसका विकास अवरुद्ध-सा हो गया था। आधुनिक युग में पाश्चात्य-सभ्यता के सम्पर्क के कारण भारतीय ज्योतिषशास्त्र मे विकास का नवीन चरण प्रारम्भ हुआ और अंगरेजी अनुवादों के द्वारा इसकी नवीन पद्धति विकसित हुई। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ज्योतिष का अध्ययन किया तथा पाश्चात्य विज्ञान एवं भारतीय ज्योतिष के तुलनात्मक अध्ययन के भी गम्भीर प्रयत्न किये गए। पाश्चात्य गणितशास्त्र के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद संस्कृत मे किये गए और रेखागणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति के ग्रन्थो का निर्माण किया गया। आधुनिक युग के ज्योतिषशास्त्रियो मे बापूदेवशास्त्री तथा पं० सुधाकर द्विवेदी ने मौलिक ग्रन्थो का प्रणयन कर गणित ज्योतिष को समृद्ध किया। इस युग के अन्य ज्योतिषियों मे मुनीश्वर, दिवाकर, कमलाकरभट्ट, नित्यानन्द, महिमोदय, मेघगणिविजय, उभयकुशल, लब्धिचन्द्रगणि, बाघजी मुनि, यशस्वत-सागर, जगन्नाथ सम्राट्, नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, शिवलाल पाठक, परमानन्द पाठक, बालकृष्ण ज्योतिषी, बालगंगाधर तिलक, डॉ० सम्पूर्णानन्द, डॉ० गोरखप्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भारतीय ज्योतिष के वैज्ञानिक अध्ययन मे महाराज सवाई जयसिंह का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी एवं मथुरा मे वेधशालाओं का निर्माण करा कर ज्योतिषशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन का समारम्भ किया था। इन्होने कई विद्वानो से ज्योतिषविषयक ग्रन्थो का लेखन करवाया तथा स्वयं भी वेध पर छोटा-सा ग्रन्थ लिखा था। भारतीय ज्योतिष के संबंध मे आधुनिक युग मे अनेक प्रकार के अनुसन्धान सम्भव हैं। आशा है, विद्वानो का ध्यान इस शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर जायगा। भारतीय ज्योतिष का गणित-पक्ष अभी तक उपेक्षित है। अतः विद्वानो का कर्त्तव्य है कि शीघ्रातिशीघ्र उसका अनुशीलन कर इस भाग को पुष्ट करे। प्राचीन भारत मे अनेकानेक वैज्ञानिक एवं यन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थो का निर्माण हुआ था किन्तु काल की गति से ये ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। इस समय इन ग्रन्थो की खोज की जानी चाहिए और उनके वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास होना चाहिए। भारतीय ज्योतिष का साहित्य अत्यन्त प्रौढ एवं समृद्ध है। सम्प्रति विद्वानो का ध्यान इसके वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुशीलन की ओर जाना चाहिए। भारतीय ज्योतिष के प्रमुख आचार्यों के परिचय इस कोश में प्रस्तुत किये गए है। उनका विवरण उनके नामों के सम्मुख देखना चाहिए।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ गोरख प्रसाद २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्रशास्त्री ३ भारतीय ज्योतिष—पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद) ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ ५ संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्रीवाचस्पति शास्त्री गैरोला।

जानकी चरितामृत (महाकाव्य)—इस महाकाव्य के रचयिता श्रीराम-सनेहीदास वैष्णव कवि हैं। इसका रचनाकाल १९५० ई० एवं प्रकाशनकाल १९५७ ई० है। यह महाकाव्य १०८ अध्यायों में विभक्त है जिसमें सीता के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा वर्णित है। सम्पूर्ण काव्य संवादात्मक शैली में रचित है। इसमें प्रसादगुण की प्रधानता है—

अहिंसायाः परो धर्मो नास्तिकोऽपि जगत्त्रये।
नाधर्मोऽप्यस्ति हिंसाया अधिकप्रियबान्धवः॥

जीमूतवाहन—ये बंगाल के प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हैं। इनके तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—'कालविवेक', 'व्यवहारमातृका' तथा 'दायभाग'। इनका समय १०९० से ११३० ई० के मध्य माना जाता है। लेखक ने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। ये राढा नामक स्थान के निवासी तथा परिभद्र कुल में उत्पन्न हुए थे। 'कालविवेक' मे वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—ऋतु, मास, धार्मिक-क्रिया-संस्कार के काल, मलमास, सौर तथा चान्द्रमास मे होने वाले उत्सव, वेदाध्ययन के उत्सर्जन तथा उपाकर्म, अगस्त्योदय, चतुर्मास, कोजागर, दुर्गोत्सव, ग्रहण आदि का विवेचन।

'व्यवहारमातृका' का प्रतिपाद्य है व्यवहार विधियों का विवेचन। इनके तृतीय ग्रन्थ 'दायभाग' की श्रेष्ठता असंदिग्ध है। इसमे हिन्दू कानूनों का विस्तारपूर्वक विवेचन है और विशेषतः रिक्थ, विभाजन, स्त्रीधन तथा पुर्नमिलन का अधिक विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। दायभाग मे पुत्रो को पिता के धन पर जन्मसिद्ध अधिकार नहीं दिया गया है, अपितु पिता के मरने या संन्यासी होने या पतित हो जाने पर ही सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होने का वर्णन है। पिता की इच्छा होने पर ही उसके एवं उसके पुत्रों मे धन का विभाजन संभव है। इसमें यह भी बताया गया है कि पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा का अधिकार न केवल पति के धन पर अपितु उसके भाई के संयुक्त धन पर भी हो जाता है। इसमे अनेक विचार 'मिताक्षरा' के विपरीत व्यक्त किये गए हैं। ['मिताक्षरा' के लिए दे० विज्ञानेश्वर]

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग—१ (हिन्दी अनुवाद) डॉ० पा० वा० काणे।

जैन दर्शन—भारतीय दर्शन के अन्तर्गत एक तत्त्वज्ञान जिसका सम्बन्ध जैनियों या जैनधर्मानुयायियों से है। 'जिन' के अनुयायी को जैन कहा जाता है। 'जिन' का अर्थ है विजेता, जो निम्नकोटि के स्वभाव या राग-द्वेष को जीत कर निर्वाण प्राप्त कर ले या सर्वोच्च सत्ता की उपलब्धि कर ले उसे 'जिन' कहते हैं। महावीर जिन या वर्धमान जैनियों के अन्तिम या चौबीसवे तीर्थंकर थे और यह उपाधि उनको उनके अनुयायियों के द्वारा प्राप्त हुई थी। जैनमत शब्द इस धर्म के नैतिक आधार का द्योतक है। अर्थात् इससे विदित होता है कि जैनधर्म का मुख्याधार आचारनिष्ठा है। जैनधर्म के प्रचारक सिद्धों को तीर्थंकर कहा जाता है जिनकी संख्या २४ है। इसके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनका समय प्रागैतिहासिक काल है। इस मत के अन्तिम तीर्थंकर का समय ६५६

वि० पू० है जो बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिले के वैशाली के रहने वाले क्षत्रिय राजकुमार थे। तीस वर्ष की वय मे वे घर-द्वार छोड कर तपस्या करने चले गए और ज्ञान-प्राप्त करने के बाद महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जैनमत मे ईश्वर की सत्ता मान्य नहीं है और वे तीर्थंकरों ही उपासना करते हैं। तीर्थंकरो को मुक्त माना जाता है। जैनियों के मतानुसार सभी बंधनयुक्त जीव तीर्थंकरों के मार्ग पर चल सकते हैं और साधना के द्वारा उन्हीं के समान ज्ञानी, सिद्ध एवं पूर्णशक्तिमान् बन कर आनन्दोपभोग करते है। इनके दो सम्प्रदाय हैं—दिगम्बर एवं श्वेताम्बर, पर इनके सिद्धान्तों में कोई मौलिक भेद नही है। श्वेताम्बर श्वेत वस्त्रों का प्रयोग करते हैं किन्तु दिगम्बर वस्त्र का व्यवहार न कर नग्न रहा करते हैं। श्वेतवस्त्रधारी होने के कारण पहले को श्वेताम्बर एवं नग्न होने के कारण द्वितीय को दिगम्बर कहा जाता है। दोनों सम्प्रदायो में नैतिक सिद्धान्तविषयक मतभेद अधिक है, दार्शनिक सिद्धान्त में अधिक अन्तर नहीं दिखाई पडता।

जैन साहित्य—जैन धर्म मे ८४ ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते है। इसमे तत्त्वज्ञान सम्बन्धी साहित्य की अपेक्षा आचारविषयक साहित्य की बहुलता है। यह साहित्य अत्यन्त समृद्ध है और बहुलांश प्राकृत भाषा मे रचित है। पर, कालान्तर मे संस्कृत भाषा मे भी रचनाएँ हुई। इनके ४१ ग्रन्थ सूत्ररूप मे है तथा कितने ही प्रकीर्ण हैं, तथा कुछ वर्गीकरण से रहित भी हैं। ४१ सूत्रों का विभाजन पाँच भागों में किया गया है—अंग ११, उपाग १२, छेद ५, मूल ५ तथा विविध ८। जैन दर्शन को सुव्यवस्थित करनेवाले तीन विद्वान उल्लेखनीय हैं—उमास्वाति, कुन्दकुन्दाचार्य तथा समन्तभद्र। उमास्वाति के ग्रन्थ का नाम है 'तत्त्वार्थसूत्र' या 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र'। समय-समय पर प्रसिद्ध आचार्यों ने इसकी वृत्ति, टीका एवं भाष्य लिखे है। ये विक्रम के प्रारम्भिक काल में हुए थे, इनका वासस्थान मगध था। कुन्दकुन्दाचार्य ने 'नियमसार', 'पंचास्तिकायसार', 'समयसार' तथा 'प्रवचन' नामक ग्रन्थो का प्रणयन किया जिनमें अन्तिम तीन का महत्त्व 'प्रस्थानत्रयी' की तरह है। समन्तभद्र ने 'आत्ममीमांसा' (१४ कारिकाओं का ग्रन्थ), 'युक्त्यानुसन्धान,' 'स्वम्भूस्तोत्र' (१४३ पद्यों में तीर्थंकरो की स्तुति), 'जिनस्तुतिशतक', 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' आदि सिद्धसेन दिवाकर (५ वी शती) ने 'कल्याणमन्दिरस्तोत्र', 'न्यायावतार,' 'सन्मतितर्क' आदि ग्रन्थो की रचना कर जैनन्याय की अवतारणा की। वादिराजसूरि (नवमशतक) कृत 'न्यायविनिश्चयनिर्णय' भी न्यायशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। हेमचन्द्र सूरि (११७२ ई०) प्रसिद्ध जैन विद्वान हैं जिन्होंने 'प्रमाणमीमांसा' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है। १७ वीं शताब्दी के यशोविजय ने 'जैनतर्कभाषा' नामक सरल एवं संक्षिप्त पुस्तक लिखी है। अन्य जैन दार्शनिक ग्रन्थों में नेमिचन्द्र का 'द्रव्यसंग्रह', मल्लसेनकृत 'स्याद्वादमंजरी' तथा प्रभाचन्द्र विरचित 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

तत्त्वमीमांसा जैनदर्शन वस्तुवादी या बहुसत्तावादी तत्त्वचिंतन है जिसके अनुसार दिखाई पड़नेवाले सभी द्रव्य सत्य हैं। संसार के मूल में दो प्रकार के तत्त्व हैं—जीव

और अजीव, जिनमें परस्पर सम्पर्क रहता है। परस्पर सम्पर्क के द्वारा ही जीव को नाना प्रकार की शक्तियों का अनुभव होता है। प्रत्येक सजीव द्रव्य में जीव को स्थिति विद्यमान रहती है, चाहे उसका रूप कोई भी क्यों न हो। इसलिए जैन लोग अहिंसा तत्त्व पर अधिक बल देते हैं। जैनमत अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद का पोषक है। यह अन्य मतों के प्रति भी आदर का भाव रखता है जिसका कारण उसका अनेकान्तवादी होना ही है। अनेकान्तवाद बतलाता है कि वस्तु मे अनेक प्रकार के धर्म निहित रहते हैं। इसे अवैदिक दर्शन कहा जाता है, क्योंकि इसके अनुसार वेदों की प्रामाणिकता अमान्य है।

ज्ञानमीमांसा—जैनमत में जीव को चैतन्य माना गया है और उसकी उपमा सूर्य से दी गयी है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से सूर्य भी प्रकाशित होता है, उसी प्रकार आत्मा या चैतन्य के द्वारा अन्य पदार्थ तो प्रकाशित होते ही हैं, वह अपने को को भी प्रकाशित करता है। इसमें जीव को अनन्त ज्ञानविशिष्ट माना गया है, पर कर्मों के आवरण मे उसका शुद्ध चैतन्य रूप छिपा रहता है। ज्ञान के दो प्रकार हैं— प्रत्यक्ष एवं परोक्ष। आत्मसापेक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और इन्द्रिय तथा मन के द्वारा प्राप्त ज्ञान परोक्ष कहा जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान की उपलब्धि में आत्मा स्वयं कारण बनती है और उसके लिए अन्य पदार्थों की आवश्यकता नही पडती। परोक्ष ज्ञान के दो प्रकार है—मति तथा श्रुत जो इन्द्रिय तथा मन की सहायता से ही उत्पन्न होते है। प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन भेद है—अवधि, मनःपर्याय और केवल। ये केवल आत्मा की योग्यता से ही उत्पन्न होते हैं, इनके लिए इन्द्रिय और मन की सहायता की आवश्यकता नही होती। मति—जब इन्द्रिय और मन की सहायता से ज्ञान का विषय उत्पन्न हो तो उसे 'मतिज्ञान' कहते है। इसे स्मृति, संज्ञा, चिन्ता तथा समुद्भूत ज्ञान भी कहते हैं। मति ज्ञान भी दो प्रकार का होता है—इन्द्रियजन्य एवं अनिन्द्रिय। बाह्य इन्द्रियों के द्वारा समुद्भूत ज्ञान इन्द्रियजन्य एवं मानस ज्ञान अनिन्द्रियजन्य होता है। जो शब्द ज्ञान से उत्पन्न होता है उसे 'श्रुतज्ञान' कहते है। मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान में अन्तर यह है कि प्रथम की स्थिति केवल विद्यमान पदार्थ मे ही होती है, जब कि द्वितीय भूत, भविष्य एवं वर्तमान त्रैकालिक विषयो में होता है। अवधि ज्ञान में दूरस्थ, सूक्ष्म तथा अस्पष्ट द्रव्यों का भी ज्ञान होता है, इससे परिमित पदार्थों का ही ज्ञान प्राप्त होता है। अपने कर्मों को अंशतः नष्ट करने पर मनुष्य को ऐसी शक्ति प्राप्त होती है जिससे कि वह दूरस्थ सूक्ष्म वस्तुओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। मनःपर्याय उस ज्ञान को कहते है जब मनुष्य अन्य व्यक्तियों के विचारों को जान सके। वह राग-द्वेषादि मानसिक बाधाओं को जीत कर ऐसी स्थिति में आ जाता है कि दूसरे के भूत एवं वर्तमान विचार भी जाने जा सकते हैं। केवल ज्ञान—यह ज्ञान केवल मुक्त जीव को ही होता है। इसमे ज्ञान के बाधक सभी कार्य नष्ट हो जाते हैं तब अनन्त ज्ञान की प्राप्ति होती है। जैन मत मे प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीनों ही प्रमाण स्वीकृत हैं। प्रत्यक्ष तो सर्वमान्य है ही, लोकव्यवहार की दृष्टि से इन्होंने अनुमान को भी प्रामाणिक स्वीकर किया है।

स्याद्वाद-जैनमत का यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इस धर्म में प्रत्येक वस्तु अनेक-धर्मक होती है जिसका ज्ञान केवल मुक्त पुरुष को होता है। साधारण मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक वस्तु के समस्त धर्मों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सके। वह वस्तु का एक ही धर्म जान सकता है। वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म का ज्ञान प्राप्त करने को 'नय' कहते है। इसका अर्थ यह हुआ कि दृष्टि-भेद से एक ही वस्तु अनेक प्रकार की दिखाई पडती है, एक वस्तु का एक ही रूप एक प्रकार से नही रह पाता। इस मत मे वस्तु का सत् और असत् (अभाव) ऐसा विभाजन नहीं होता। सत् को ही द्रव्य कहते हैं, इसमें असत् का स्वतन्त्र रूप नहीं माना जाता। कोई भी वस्तु जो एक दृष्टि से सत् होती है अन्य दृष्टि से असत् भी हो जा सकती है। प्रत्येक वस्तु का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है और वह उसी वस्तु में निहित होता है। अतः संसार मे न तो कोई वस्तु सत् है और न असत्। यही सिद्धान्त अनेकान्तवाद के नाम से प्रसिद्ध है और इसी को स्याद्वाद भी कहा जाता है। जैन दार्शनिकों तथा अजैन दार्शनिकों ने स्याद्वाद की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। अजैनियों के अनुसार स्याद्वाद 'संशयवाद' का ही दूसरा नाम है। स्यात् का अर्थ है शायद और इसी अर्थ के आधार पर वे 'संशयवाद' की स्थिति स्वीकार करते हैं। पर जैन दार्शनिकों के आधार 'स्यात्' का अर्थ 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा से' है। अतः अपेक्षावाद को ही स्याद्वाद कहा गया है। जैनमत मे यह सिद्धान्त मान्य है कि अपेक्षा की दृष्टि से ही संसार की कोई वस्तु सत् और असत् होती है। स्यात् शब्द से यह संकेत होता है कि उसके साथ के प्रयुक्त वाक्य की सत्यता प्रसंग-विशेष पर ही निर्भर करती है अन्य प्रसंग मे वह मिथ्या भी हो सकता है। उदाहरण के लिए घर के काले रंग के घड़े को देख कर यह नही कहा जाय कि यह घडा है; अपितु कहना चाहिए कि 'स्यात्' घडा है। स्यात् के प्रयोग से यह विदित होगा कि घड़े का अस्तित्व कालविशेष, स्थानविशेष एवं गुणविशेष के अनुसार है तथा उसके प्रयोग से (स्यात् के) यह भी भ्रम दूर हो जायगा कि घडा नित्य एवं सर्वव्यापी है। घडा है कहने पर अनेकशः भ्रान्त ज्ञान होने लगेगा। [दे० भारतीय दर्शन—डॉ० धीरेन्द्रमोहन दत्त, हिन्दी अनुवाद पृ० ५३-५४] स्याद्वाद की अभिव्यक्ति 'सप्तभंगी नय' के द्वारा होती है। जैनियो ने सत्ता के सापेक्षरूप को स्वीकार करने के लिए सात प्रकार का परामर्श माना है, इसे ही 'सप्तभंगी नय' कहते हैं। इन्होने प्रत्येक नय के साथ स्यात् शब्द जोड़ दिया है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि किसी भी नय की सत्यता एकान्त या निरपेक्ष रूप में नहीं है। अतः 'सप्तभंगीनय' मे किसी भी पदार्थ के रूप को प्रकट करने के लिए सात प्रकार के ढङ्ग कथित हैं—

१—स्यात् अस्ति (किसी अपेक्षा से कोई वस्तु विद्यमान है)।

२—स्यान्नास्ति (किसी अपेक्षा से कोई वस्तु अविद्यमान है)।

३—स्यादस्ति च स्यान्नास्ति (किसी अपेक्षा से कोई वस्तु एक साथ विद्यमान और अविद्यमान दोनो है)।

४—स्यात् अवक्तव्यम् (किसी अपेक्षा से वस्तु का रूप निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता)।

५—स्यादस्ति च स्यादवक्तव्यम् (किसी अपेक्षा से वस्तु का रूप है भी तथा अवक्तव्य भी है)।

६—स्यान्नास्ति च स्याद् अवक्तव्यम् (कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है)।

७—स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च (कथंचित् है, नहीं है तथा अवक्तव्य है)।

तत्त्वसमीक्षा—जैनदर्शन में सत् द्रव्य का लक्षण है तथा सत् का लक्षण है—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद उत्पत्ति का, व्यय विनाश का तथा ध्रौव्य स्थिरता का द्योतक है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जिस वस्तु में प्रत्येक समय उत्पत्ति, विनाश एवं स्थिरता विद्यमान रहे, उसे सत् कहा जायगा। इस मत में द्रव्य एक मात्र तत्त्व माना गया है और उसके ६ प्रकार होते हैं—
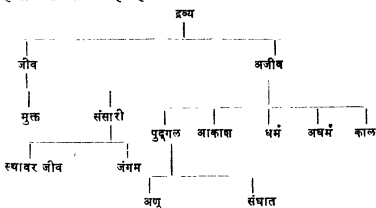
द्रव्य में सत्ता के तीनो ही लक्षण विद्यमान रहते है। वह अपने गुण के द्वारा नित्य होता है क्योंकि गुण परिवर्तित नही होता तथा परिवर्तनशील पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश अवश्यंभावी है। अतः इसमे ये दोनों ही तत्त्व विद्यमान है।

जीव—चेतन द्रव्य ही जीव या आत्मा कहा जाता है क्योंकि इसमें चैतन्य के तत्त्व विद्यमान रहते हैं, पर भिन्न-भिन्न जीवों मे स्वरूप एवं मात्रा का अनुपात भिन्न होता है। जीव नित्य एवं प्रकाशमान है और वह अन्य पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। वही ज्ञान प्राप्त करता है और कर्म भी करता है। उसे ही दुःख-सुख भोगना पड़ता है और उसकी अवस्थाएँ परिवर्तित होती रहती हैं। वह कर्त्ता और भोक्ता दोनो ही है तथा सम्पूर्ण शरीर मे परिव्याप्त रहता है। उसके दो प्रकार है—संसारी और मुक्त। संसारी जीव कर्म-बन्धन के वश मे होकर जन्म और मरण प्राप्त करता है, पर मुक्त बन्धनो से मुक्त रहता है।

अजीव—जिन द्रव्यों में चैतन्य का अभाव होता है, वे अजीव कहे जाते हैं। अजीव में चेतना नहीं होती पर उसे स्पर्श, स्वाद एवं घ्राण के द्वारा जाना जा सकता

है। अजीव की भी दो श्रेणियाँ हैं। एक वे है जिनकी आकृति नहीं होती; जैसे धर्म, अधर्म, देश, काल। दूसरे की आकृति होती है, वे है—पुद्गल पदार्थ या भौतिक पदार्थ। पुद्गल को विश्व का भौतिक आधार कहा जाता है तथा स्पर्श, स्वाद, गन्ध, वर्ण और शब्द का सम्बन्ध इसी से है। जैनियो की मान्यता है कि आत्मा एवं आकाश के अतिरिक्त सारी चीजे प्रकृति से उत्पन्न होती है। उनके अनुसार विश्व का निर्माण परमाणुओं से होता है तथा अणु का आदि, मध्य या अन्त कुछ नही होता। यह अत्यन्त सूक्ष्म, नित्य एवं निरपेक्ष सत्ता है तथा इसका निर्माण एवं विनाश नही होता। भौतिक पदार्थ अणुओ के परस्पर संयोग से ही उत्पन्न होते है।

जैन आचार-दर्शन—बन्धन से मुक्ति ही जैनधर्म का प्रधान लक्ष्य है। शरीर धारण करने के कारण ही जीव को दुःख भोगना पडता है और बन्धन के दुःख का भोक्ता वही है। तीर्थकरो ने जगत् के दुःख-निवारण को ही प्रधान समस्या माना है। दुःखो के समुदाय के कारण ही जीव का जीवन क्षुब्ध रहता है। अतः दुःखजनित क्षोभ से आत्मा को छुटकारा दिलाना ही जीवन का प्रधान लक्ष्य है। जैनशास्त्रो ने वासनाओ की दासता से मुक्ति पर अधिक बल दिया है। कर्म के कारण ही जीव को बन्धन मे पडना पडता है और दासता का कारण भी कर्म ही है। कैवल्य या मोक्ष के प्रतिबन्धक चार प्रकार के कर्म होते हैं—मोहनीय, ज्ञानावरणीय, संवेदनीय एवं अन्तराय। इनमे मोहनीय सबसे बलवान है और इसके नष्ट हो जाने पर ही और कर्मों का नाश सम्भव है।

मोक्ष—जैनधर्म में मोक्ष के तीन साधन हैं—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य। दर्शन का अर्थ श्रद्धा है, अतः मोक्ष चाहने वाले साधक के लिए सम्यक् श्रद्धा आवश्यक है। तीर्थकरो के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो एव मार्गों मे श्रद्धा रखना मोक्षकामी साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान की चरितार्थता सम्यक् चारित्र्य मे होती है। इन्हे ही जैनधर्म मे 'त्रिरत्न' या रत्नत्रय की अभिधा प्रदान की गयी है। सम्यक् चरित्र के द्वारा ही जीव बन्धन-मुक्त होता है। ज्ञानी या श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए पाँच प्रकार के आचरण होते हैं—अहिंसा, उदारता, सत्यभाषण, सदाचरण, अस्तेय एवं वाणी, विचार तथा कर्म से पवित्रता और समस्त सांसारिक स्वार्थों का त्याग। अहिंसा का अभिप्राय केवल हिंसा के त्याग से ही न होकर समस्त प्राणियों एवं सृष्टि के प्रति तथा सहानुभूति का प्रदर्शन भी है।

ईश्वर—जैनधर्म अनिश्वरवादी है। यह जगत् के सृजन एवं संहार के लिए ईश्वर की सत्ता स्वीकार नही करता। इसके अनुसार असंख्य जीवों तथा पदार्थों की प्रतिक्रिया के कारण ही विश्व का विकास होता है—'विद्यमान पदार्थों का नाश नही हो सकता और न ही असत् से सृष्टि का निर्माण सम्भव है। जन्म अथवा विनाश वस्तुओ के अपने गुणो एवं प्रकारो के कारण होता है।' भारतीयदर्शन—डॉ० राधाकृष्णन् पृ० ३०२।

इस धर्म में ईश्वर का वह रूप मान्य नहीं है जिसके अनुसार वह 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुं समर्थः' किसी वस्तु के करने, न करने अन्यथा कर देने में समर्थ होता है।

परमात्मा की अनादि सिद्ध सत्ता के प्रति वह अविश्वास प्रकट करता है। इस मत में अनेक ईश्वर मान्य हैं और इसके अन्तर्गत वे जीव आते हैं जो अर्हन्तपद एवं सिद्धपद को प्राप्त कर लेते हैं। जैनमत में तीर्थंकर ही ईश्वर हैं, किन्तु वे लोकप्रसिद्ध ईश्वर नहीं होते। वे संसार से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते और न तो सृष्टि की रचना करते है और न उसका संचालन। तीर्थंकर मुक्ति प्राप्त कर संसार के व्यक्तियों को भी मुक्ति का साधन बतलाते है। तीर्थंकर ईश्वर के ही रूप में पूजित होते हैं क्योंकि उनमें ईश्वर के गुण विद्यमान रहते हैं।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—(भाग १) डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) २. भारतीयदर्शन—डॉ० धी० मो० दत्त (हिन्दी अनुवाद) ३. भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय ४. जैनदर्शन—श्री महेन्द्र ५. भारतीयदर्शन—डॉ० उमेश मिश्र ६. भारतीय संस्कृति मे जैनधर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन ७. जैन-दर्शन—न्याय-विजय ८. सर्वदर्शन-संग्रह—(हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन अनुवादक श्री उमाशंकर 'ऋषि'।

जैन मेघदूत—इस सन्देश काव्य के रचयिता जैन विद्वान् मेरुतुङ्ग हैं। इनका जन्म सं० १४०३ मे मारवाड के नाणी ग्राम मे हुआ था। ये पोरवाल वंशीय क्षत्रिय थे। इनके पिता का नाम वहोरा वैरसिंह एव माता का नाम नालदेवी था। इन्होंने सुप्रसिद्ध जैन आचार्य श्री महेन्द्रप्रभसूरि से दीक्षा ली थी। इनका पहला नाम 'वस्तिक' या वस्तपाल था किन्तु दीक्षा-ग्रहण करने के पश्चात् ये मेरुतुंग कहलाने लगे। इनका स्वर्गवास वि० स० सं० १४२६ मे पाटन नामक स्थान में हो गया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—सप्तिका भाष्यटीका, लघुशतपदी, धातुपारायण, षड्दर्शन-समुच्चय, बालबोधव्याकरण, वृत्ति (इस व्याकरण की स्वरचित वृत्ति), सूरिमन्त्रकल्प-सारोद्धार। 'जैन मेघदूत' मे नेमिनाथजी (जैन आचार्य) के पास उनकी पत्नी राजीमती के द्वारा प्रेषित सन्देश का वर्णन है। जब नेमिनाथ जी मोक्षप्राप्ति के लिए घर-द्वार त्याग कर रैवतक पर्वत पर चले गए तो इस समाचार को प्राप्त कर उनकी पत्नी मूर्च्छित हो गयीं। उन्होंने विरह-व्यथा से व्यथित होकर अपने प्राणनाथ के पास सन्देश भेजने के लिए बादल का स्वागत एवं सत्कार किया। सखियों ने उन्हें समझाया और अन्ततः वे वीतराग होकर मुक्ति-पद को प्राप्त कर गयीं। इस काव्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है जिसकी संख्या १९६ है। सम्पूर्ण काव्य को चार सर्गों में विभक्त किया गया है। अलंकारों की भरमार एवं श्लिष्ट-वाक्य-रचना के कारण यह ग्रन्थ दुरूह हो गया है। इसका प्रकाशन जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से हो चुका है। राजीमती की विरहावस्था का वर्णन देखिए—

एकं तावद्विरहिहृदयद्रोहकृन्मेघकालो
द्वैतीयीकं प्रकृतिगहनो यौवनारम्भ एषः।
तार्तीयीकं हृदयदयितः सैष भोगाद् व्यराङ्क्षीत्
तुर्यं न्याय्यान्न चलति पथो मानसं भावि हा किम् ॥ ४ ॥

आधार ग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

जैमिनि—मीमांसा-दर्शन के सूत्रकार के रूप में महर्षि जैमिनि का नाम प्रसिद्ध है। इनका समय वि० पू० ३०० संवत् है। इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। एक मात्र विष्णुशर्मा कृत 'पञ्चतन्त्र' में हाथी द्वारा जैमिनि के कुचल दिये जाने की घटना का उल्लेख है।

सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनिम्॥
मित्रसम्प्राप्ति ३६ श्लोक॥

महर्षि जैमिनि मीमांसा-दर्शन के प्रवर्त्तक न होकर उसके सूत्रकार माने जाते हैं, क्योंकि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती तथा समसामयिक आठ आचार्यों का नामोल्लेख किया है, वे हैं—आत्रेय, आश्मरथ्य, कार्ष्णाजिनि, बादरि, ऐतिशायन, कामुकायन, लाबुकायन एवं आलेखन। पर इन आचार्यों के कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते। जैमिनि कृत 'मीमांसासूत्र' १६ अध्यायों में विभक्त है जिसमे इस दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का निरूपण है। इसके प्रारम्भिक १२ अध्याय 'द्वादशलक्षणी' के नाम से अभिहित किये जाते हैं एवं शेष चार अध्यायों का नाम 'संकर्षणकांड' या 'देवताकांड है। मीमांसा-सूत्रों की कुल संख्या २६४४ है जो ९०९ अधिकरणों में विभक्त हैं। इसके १२ अध्यायों में क्रमश निम्नांकित विषयो का विवेचन है—धर्मविषयक प्रमाण, एक धर्म का अन्य धर्म से भेद, अङ्गत्व, प्रयोज्यप्रयोजक, क्रम, यज्ञकर्ता के अधिकार, अतिदेश (सप्तम एवं अष्टम में एक ही विषय का वर्णन है) ऊह, बाध, तन्त्र तथा प्रसङ्ग। इस पर अनेक वृत्तियों एवं भाष्यों की रचना हुई है। आचार्य उपवर्ष 'मीमांसासूत्र' के प्राचीनतम वृत्तिकार हैं जिनका उल्लेख शबरस्वामी कृत मीमासाभाष्य' (१।१।५) तथा शंकर रचित 'शारीरकभाष्य' (३।३।५३) में है। इनका समय १०० से २०० ई० पू० है। भवदास नामक अन्य प्राचीन वृत्तिकार का समय यही है। कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्त्तिक के प्रतिज्ञासूत्र श्लोक ६३ मे इनका उल्लेख किया है। [मीमांसासूत्र का हिन्दी अनुवाद श्रीराम शर्मा ने किया है]।

आधार ग्रन्थ—१. इण्डियन फिलॉसफी-भाग-२—डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

जैमिनीय ब्राह्मण—यह 'सामवेद' का ब्राह्मण है जो पूर्णरूप से अभी तक प्राप्त नही हो सका है। यह ब्राह्मण विपुलकाय एवं यागानुष्ठान के महत्त्व का प्रतिपादक है। डॉ० रघुवीर द्वारा सम्पादित होकर नागपुर से १९५४ ई० में प्रकाशित।

ढुण्ढिराज—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ये पार्थपुरा के निवासी थे। इनके पिता का नाम नृसिंह दैवज्ञ एवं गुरु का नाम ज्ञानराज था। इनका आविर्भाव काल १५४१ ई० है। इन्होने 'जातकाभरण' नामक फलितज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जिसमें दो हजार श्लोक हैं।

आधार ग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री।

तन्त्र—भारतीयदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग। तन्त्र का व्याकरणसम्मत अर्थ है विस्तार, जो—विस्तारार्थक तन् धातु से औणादिक ष्ट्रन् के योग से निष्पन्न होता है—सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्, उणादि सूत्र ६०८। जिस शास्त्र के द्वारा ज्ञान का विस्तार हो उसे तन्त्र शास्त्र कहते हैं—तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्। साधकों के प्राण की रक्षा करने के कारण भी इसे तन्त्र कहा जाता है, शैवसिद्धान्त के 'कामिक-आगम' मे तन्त्र की यही व्युत्पत्ति प्रस्तुत की गयी है—

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

पर तन्त्र शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में भी होता है जिसके अनुसार शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान तथा विज्ञानविषयक ग्रन्थ इसके द्योतक हो जाते हैं। शंकराचार्य ने 'सांख्य' के लिए तन्त्र शब्द का प्रयोग किया है। तन्त्र का दूसरा नाम 'आगम' है। "आगम वह शास्त्र है जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं।" भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय पृ० ५४२, ७ वां संस्करण।

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः। तत्त्ववैशारदी १।७, वाचस्पति मिश्र।

निगम या वेद से अन्तर स्थापित करने के लिए ही तन्त्र का नाम 'आगम' रखा गया है। "कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम (वेद) बतलाता है। तथा इनके साधन-भूत उपायों को आगम सिखलाता है।" भारतीयदर्शन पृ० ५४२। तन्त्र की महिमा कलियुग के लिए अधिक है। चारों युगों में पूजा की पृथक्-पृथक् विधियाँ बतलायी गयी हैं—सत्ययुग में वैदिक उपासना, त्रेता मे स्मार्तपूजा, द्वापर में पुराण एवं कलियुग में तान्त्रिकी उपासना।

विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गति प्रिये। महानिर्वाण।
कृते श्रुत्यक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः॥ कुलार्णवतन्त्र।

महानिर्वाण मे कहा गया है कि शंकर ने कलि के मानवों के कल्याण के लिये तन्त्र का उपदेश पार्वती को दिया था। अनेक ग्रन्थो में तन्त्र की विभिन्न परिभाषायें प्राप्त होती हैं। वाराही ग्रन्थ में उन ग्रन्थो को तन्त्र कहा गया है जिनमें सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्म (शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण), साधन एवं ध्यान योग का वर्णन हो।

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम्। साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः। सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः॥

तन्त्र ग्रन्थों की दूसरी परिभाषा यह है—"देवता के स्वरूप, गुण, कर्म आदि का जिनमें चिन्तन किया गया हो, तद्विषयक मन्त्रों का उद्धार किया गया हो, उन मन्त्रों को यन्त्र में संयोजित कर देवता का ध्यान तथा उपासना के पाँच अंग—पटल, पद्धति, कवच, नामसहस्र और स्तोत्र—व्यवस्थित रूप से दिखलाये गये हों, उन ग्रन्थों को तन्त्र

कहते हैं।" भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय पृ० ५४२। तन्त्र ग्रन्थ दो प्रकार के होते हैं—वेदानुकूल एवं वेदबाह्य। तन्त्रों के कई सिद्धान्त तथा आचार वेदानुकूल है तथा इनका स्रोत वेदों में दिखाई पडता है; जैसे पाञ्चरात्र एवं शैवागम के कई सिद्धान्त। शाक्त आगम वेदानुकूल न होकर वेद बाह्य होता है। पर इसके भी कुछ सिद्धान्त वैदिक हैं। तन्त्र के तीन विभाग माने जाते है—ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन तन्त्र। ब्राह्मण तन्त्र के भी तीन विभाग हैं—वैष्णवागम (पाञ्चरात्र या भागवत) शैवागम एवं शाक्तागम। इन तीनो के क्रमशः तीन उपास्य देव हैं—विष्णु, शिव तथा शक्ति। तीनो के परिचय पृथक्-पृथक् दिये गए है। तन्त्र का साहित्य अत्यन्त विपुल एवं प्रौढ़ है किन्तु इसका अधिकाश अभी तक अप्रकाशित है।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

तत्त्वगुणादर्श—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता श्री अण्णयार्य है। इनका समय १६७५ से १७२५ ई० के आसपास है। इनके पिता का नाम श्रीदास ताताचार्य एवं पितामह का नाम अण्णयाचार्य था जो श्रीशैल परिवार के थे। इस चम्पू मे वार्त्तालाप शैली में शैव एवं वैष्णव सिद्धान्त की अभिव्यंजना की गयी है। तत्त्वार्थनिरूपण एवं कवित्व चमत्कार दोनों का सम्यक् निदर्शन इस काव्य मे किया गया है। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२२९५ मे प्राप्त होता है। कवि ने रचना का उद्देश्य इन शब्दों में प्रकट किया है—

तत्त्वनिर्धारणबुद्धेः स्तम्भनादतथात्वहक्। वैष्णवस्त्वभवद् भूष्णुः सत्त्वतस्तत्त्ववित्तमः॥ ६॥

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

ताण्ड्य या पञ्चविंश ब्राह्मण—इसे ताण्ड्य महाब्राह्मण भी कहा जाता है। इसका सबंध 'सामवेद' की ताण्डि शाखा से है, इसीलिए इसका नाम ताण्ड्य है। इसमे पचीस अध्याय है, अतः इसे 'पञ्चविंश' भी कहते हैं। विशालकाय होने के कारण इसकी संज्ञा 'महाब्राह्मण' है। इस महाब्राह्मण मे यज्ञ के विविध रूपों का प्रतिपादन किया गया है जिसमे एक दिन से लेकर सहस्रों वर्षों तक समाप्त होनेवाले यज्ञ वर्णित हैं। प्रारम्भिक तीन अध्यायों मे त्रिवृत, पञ्चदश, सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियाँ विस्तारपूर्वक वर्णित है तथा चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों मे 'गवामयन' का वर्णन किया गया है। षष्ठ अध्याय मे ज्योतिष्टोम, उक्थ एवं अहिरात्र का वर्णन एवं सात से नवम अध्याय मे प्रातः सवन, माध्यंदिन सवन, सायं सवन और रात्रि पूजा की विधि कथित है। दशम से १५ अध्याय तक द्वादशाह यागों का विधान है। इनमें एक दिन से प्रारम्भ कर दसवें दिन तक के विधानों एवं सामों का वर्णन है। १६ से १९ अध्याय तक अनेक प्रकार के एकाह यज्ञ वर्णित हैं एवं २० से २२ अध्याय तक अहीन यज्ञों का विवरण है। (अहीन यज्ञ उस यज्ञ सोमभाग को कहते हैं जिसमे तीनों वर्णों का अधिकार रहे) २३ से २५ तक सत्रों का वर्णन किया गया है। इस ब्राह्मण का मुख्य विषय है

साम तथा सोम यागों का वर्णन। कहीं-कहीं सामों की स्तुति एवं महत्व प्रदर्शन के लिए मनोरंजक आख्यान भी दिये गए हैं तथा यज्ञ के विषय से सम्बद्ध विभिन्न ब्रह्म-वादियों के अनेक मतों का भी उल्लेख किया गया है।

क—इसका प्रकाशन बिब्लोथिका इण्डिका (कलकत्ता) में १८६९–७४ मे हुआ था जिसका सम्पादन ए० वेदान्तवगीश ने किया था। ख—श्री आनन्दचन्द्र सम्पादित, कलकत्ता १८४० ई०। ग—सायण भाष्य सहित चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित। घ—डा० कैलेण्ड द्वारा आंग्ल अनुवाद बिब्लोथिका, कलकत्ता से १९३२ में विशिष्ट भूमिका के साथ प्रकाशित।

तीर्थ-यात्रा-प्रबन्ध चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता का नाम समरपुंगव दीक्षित है। ये वाधूलगोत्रीय ब्राह्मण थे और इनका जन्म दक्षिण के वटवनाभिधान संज्ञक नगर मे हुआ था। ये अप्पय दीक्षित के शिष्य थे अतः इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके पिता का नाम वेंकटेश तथा माता का नाम अनन्तम्मा था। इसमें नौ उछ्वास हैं और उत्तर एवं दक्षिण भारत के अनेक तीर्थों का वर्णन किया गया है। इस चम्पू मे नायक द्वारा तीर्थाटन का वर्णन है पर कहीं भी उसका नाम नही है। कवि के भ्राता सूर्यनारायण ही इसके नायक ज्ञात होते है। कवि ने स्थान-स्थान पर प्रकृति के मनोरम चित्र का अंकन किया है। तीर्थयात्रा के प्रसंग मे शृङ्गार के भयानक चित्र भी स्थल-स्थल पर उपस्थित किये गए हैं और दूतिप्रेषण, चन्द्रोपालम्भ एवं कामपीडा के अतिरिक्त भयानक रतियुद्ध का भी वर्णन किया गया है। भारत का काव्यात्मक भौगोलिक चित्र प्रस्तुत करने मे कवि पूर्णतः सफल हुआ है। सेतुवर्णन का चित्र रमणीय है—

चलकङ्कणैः पयोनिधिशयने वेलावधूर्मिहस्तैर्यः।
आस्फालितोरुभागः स्वपितीव चकास्ति सेतुराजोऽयम्॥ ५।२७

इसका प्रकाशन काव्यमाला (३६) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से १९३६ में हो चुका है। इसी कवि का दूसरा ग्रन्थ 'आनन्दकन्द चम्पू' है जो अप्रकाशित है। इसमे आठ आश्वास हैं और रचनाकाल १६१३ ई० है। इस चम्पू में शैव सन्तों तथा सन्तिनियो का जीवनवृत्त वर्णित है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डा० छबिनाथ त्रिपाठी।

तैत्तिरीय आरण्यक—यह 'ऋग्वेद' का आरण्यक है जिसमे दस प्रपाठक या परिच्छेद हैं। इन्हें 'अरण' कहा जाता है तथा इनका नामकरण प्रत्येक अध्याय के आदि पद के अनुसार किया गया है; जैसे भद्र, सहवै, चित्ति, युञ्जते, देववै, परे, शीक्षा, ब्रह्नविद्या, भृगु एवं नारायणीय। इसके सप्तम्, अष्टम एवं नवम प्रपाठकों (सम्मिलित) को 'तैत्तिरीय उपनिषद्' कहा जाता है। प्रपाठक अनुवाकों मे विभाजित है तथा नवम प्रपाठक तक अनुवाकों की संख्या १७० है। इसमे 'ऋगवेद' की बहुत सी ऋचाओं के उद्धरण दिये गये हैं। प्रथम प्रपाठक में आरुण केतुक संज्ञक अग्नि की उपा-

सना का वर्णन है तथा द्वितीय में स्वाध्याय और पञ्चमहायज्ञ वर्णित हैं। इस प्रपाठक में गंगा-यमुना के मध्य देश की पवित्रता स्वीकार कर मुनियों का निवास-स्थान बतलाया गया है। तृतीय प्रपाठक मे चतुर्होत्र चिति के उपयोगी मंत्र वर्णित हैं तथा चतुर्थ मे प्रवर्ग्य के उपयोग में आनेवाले मंत्रो का चयन है। इसमें शत्रु का विनाश करने के लिये अभिचार मंत्रो का भी वर्णन है। पञ्चम में यज्ञीय संकेत एवं षष्ठ में पितृमेधविषयक मन्त्र हैं। इसका प्रकाशन १८९८ ई० में पूना, आनन्दाश्रम सीरीज से हुआ है जिसके सम्पादक हैं एच्० एन्० आप्टे।

तैत्तिरीय-उपनिषद्—यह उपनिषद 'कृष्ण यजुर्वेद' की तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अंश है। 'तैत्तिरीय आरण्यक' मे दस प्रपाठक या अध्याय हैं एवं इसके सातवें, आठवे एवं नवे अध्याय को हो तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। इसके तीन अध्याय क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली एवं भृगुवल्ली के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका सम्पूर्ण भाग गद्यात्मक है। 'शिक्षावल्ली' नामक अध्याय में वेद मन्त्रों के उच्चारण के नियमो का वर्णन है तथा शिक्षा समाप्ति के पश्चात् गुरु द्वारा स्नातकों को दी गई बहुमूल्य शिक्षाओं का वर्णन है। 'ब्रह्मानन्द-वल्ली' में ब्रह्मप्राप्ति के साधनो का निरूपण एवं ब्रह्मविद्या का विवेचन है। प्रसंग-वशात् इसी वल्ली में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पञ्चकोशों का निरूपण किया गया है। इसमे बताया गया है कि ब्रह्म हृदय की गुहा मे ही स्थित है अतः मनुष्यो को उसके पास तक पहुँचने का मार्ग खोजना चाहिए; किन्तु वह मार्ग तो अपने ही भीतर है। ये मार्ग है—पंचकोश या शरीर के भीतर एक के अन्दर एक पाँच कोठरियाँ। अन्तिम कोठरी अर्थात् आनन्दमय कोश मे ही ब्रह्म का निवास है जहाँ पहुँच कर जीव रस को प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करता है। 'भृगुवल्ली' मे ब्रह्मप्राप्ति का साधन तप एवं पञ्चकोषों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इस अध्याय में अतिथि-सेवा-महत्त्व एव उसके फल का वर्णन भी है। इसमे ब्रह्म को आनन्द मान कर सभी प्राणियों की उत्पत्ति आनन्द मे ही कही गई है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य—इस प्रातिशाख्य का सम्बन्ध 'तैत्तिरीय संहिता' के साथ है। यह दो खण्डों मे विभाजित है एवं प्रत्येक में १२ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ की रचना सूत्रात्मक है। प्रथम प्रश्न या अध्याय मे वर्ण-समाम्नाय, शब्दस्थान, शब्द की उत्पत्ति अनेक प्रकार की स्वर एवं विसर्ग सन्धि तथा मूर्धन्य-विधान का विवेचन है। द्वितीय प्रश्न में णत्वविधान, अनुस्वार, अनुनासिक, अननुनासिक, स्वरितभेद तथा संहितारूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसपर अनेक व्याख्याएँ प्राप्त होती है जिनमें तीन प्रकाशित हो चुकी हैं। माहिषेय कृत 'पाठक्रम सदन', सोमचार्य कृत 'त्रिभाष्य-रत्न' तथा गोपालयज्वा कृत "वैदिकाभरण'। इनमे प्रथम भाष्य प्राचीनतम है।

क—इसका प्रकाशन ह्विटनी द्वारा सम्पादित 'जर्नल ऑव द अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, भाग ९, १८७१ में हुआ था। ख—रंगाचार्य द्वारा सम्पादित, मैसूर से प्रकाशित १९०६।

तैत्तिरीय ब्राह्मण—यह 'कृष्ण यजुर्वेदीय' शाखा का ब्राह्मण है। इसमे तीन अध्याय हैं। यह तैत्तिरीय संहिता से भिन्न न होकर उसका परिशिष्ट ज्ञात होता है। इसका पाठ स्वरयुक्त उपलब्ध होता है जिससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इसके अध्यायों को काण्ड कहा जाता है। प्रथम एवं द्वितीय काण्ड में अध्याय या प्रपाठक हैं एवं तृतीय में १२ अध्याय हैं। तैत्तिरीय संहिता में न हुए कई यज्ञों का विधान इस ब्राह्मण में किया गया है तथा सहिता में प्रतिपादित यज्ञों की प्रयोग विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसके प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, सोम, नक्षत्रेष्टि एवं राजसूय का वर्णन है तथा द्वितीय मे अग्निहोत्र, उपहोम, सोत्रमणि, बृहस्पतिसव, वैश्यसव आदि अनेकानेक सवो का विवरण है। इसमें 'ऋग्वेद' के अनेक मन्त्र उद्धृत है और अनेक नवीन भी हैं। तृतीय काण्ड की रचना अवान्तरकालीन मानी गई है। इसमें सर्वप्रथम नक्षत्रेष्टि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और 'सामवेद' को सभी वेदो मे शीर्ष स्थान प्रदान कर मूर्त्ति और वैश्य की उत्पत्ति ऋक से, गति एवं क्षत्रिय की उत्पत्ति यजुष से एवं ज्योति और ब्राह्मण की उत्पत्ति सामवेद से बतलाई गई है। ब्राह्मण की उत्पत्ति होने के कारण सामवेद का स्थान सर्वोच्च है। अश्वमेध का विधान केवल क्षत्रिय राजाओं के लिए किया गया है तथा इसका वर्णन बड़े विस्तार के साथ है। इसमे शूद्र को यज्ञ के लिए अपवित्र मान कर उसके द्वारा दूहे गए गाय के दूध को यज्ञ के लिए अग्राह्य बतलाया गया है। पुराणों की कई (अवतार सम्बन्धी) कथाओ के संकेत यहाँ हैं तथा वराह अवतार का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें वैदिक काल के अनेक ज्योतिषविषयक तथ्य भी उल्लिखित हैं। इसका प्रथम प्रकाशन एवं सम्पादन आर० मित्र द्वारा हुआ था। (बिब्लोथिका इण्डिका मे १८५५–७०) आनन्दाश्रम सीरीज, पूना से १९९८ मे प्रकाशित तथा श्री एन० गोडबोले द्वारा सम्पादित। श्री सामशास्त्री सम्पादित, मैसूर १९२१।

त्रिपुरविजय चम्पू—(द्वितीय)—इस चम्पू काव्य के रचयिता नृसिंहाचार्य थे। ये तंजोर के भोंसलानरेश एकोजि के अमात्यप्रवर थे। भारद्वाज गोत्रोत्पन्न आनन्द यज्वा इनके पिता थे। 'त्रिपुरविजयचम्पू' साधारण कोटि का काव्य है जिसमें कुल ३८ श्लोक हैं। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है तथा इसका विवरण तंजोर कैटलाग संख्या ४०३६ मे प्राप्त होता है। इसका समय सोलहवीं शताब्दी के मध्य के आसपास रहा होगा। प्रारम्भ में गणेश एवं शिव की वन्दना करने के पश्चात् कैलाश पर्वत का वर्णन किया गया है। इसमें त्रिपुरदाह की पौराणिक कथा का संक्षेप में वर्णन है। इसका अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

ब्रह्मादयोपि ते सर्वे प्रणम्य परमेश्वरम्।
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा स्वं स्वं धाम प्रपेदिरे॥ ३८॥

आधार ग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

त्रिपुरविजय चम्पू—(प्रथम) इस चम्पू काव्य के रचयिता अतिरात्रयाजिन् हैं। ये नीलकण्ठ दीक्षित (दे० नीलकण्ठविजय चम्पू) के सहोदर भ्राता थे, अतः इनका समय सत्रहवीं शती का मध्य सिद्ध होता है। यह ग्रन्थ चार आश्वास में प्राप्त हुआ है और अभी तक अप्रकाशित है। इसके प्रथम तथा चतुर्थ आश्वास के क्रमशः प्रारम्भ एवं अन्त के कतिपय पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसका विवरण तंजोर कैटलाग संख्या ४०३७ में प्राप्त होता है। इसके अन्त में यह श्लोक है—

> दृष्टीभूतभुजंगलोकमभितो व्याकीर्णरत्नोत्करं।
> व्यावल्गज्जलजन्तुशान्तवडवावक्त्रानलाडम्बरम् ।
> कल्लोलैः स्थलत क्षणात् स्वयमुपर्युत्प्लुत्य दुग्धार्णवः
> प्रायेणायतबुद्बुदाकृतिधरस्तूणीरभावं य—॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

त्रिविक्रमभट्ट—ये 'नलचम्पू' नामक चम्पू काव्य के रचयिता हैं। [दे० नलचम्पू] इनकी कृति संस्कृत साहित्य का प्राचीनतम चम्पूकाव्य है। इन्होंने 'नलचम्पू' में अपने कुलगोत्रादि का जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके अनुसार इनका जन्म शाण्डिल्य गोत्र में हुआ था। इनके पितामह का नाम श्रीधर तथा पिता का नाम नेमादित्य या देवादित्य था।

> तेषां वंशे विशदयशसा श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्-
> देवा (नेमा) दित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः।
> उत्कल्लोला दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं
> यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कूणिताक्षाः पिबन्ति ॥ १।१९
> तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम्।
> तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ १।२० ॥
> अस्ति······················क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य
> शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेवंशः। महाभारतिकाश्च ये रङ्गोपजीविनः।
>
> नलचम्पू की प्रथम गद्यपंक्ति (चौखम्बा संस्करण पृ० १३)

'नलचम्पू' का समय उसके अन्तरंग एवं बहिरंग प्रमाणों के आधार पर निश्चित किया गया है। इसके प्रारम्भ में कवि ने अनेक कवियों का उल्लेख किया है जिनमें गुणाढ्य तथा बाण हैं। धाराधीश महाराज भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'नलचम्पू' के षष्ठ उच्छ्वास का एक श्लोक प्राप्त होता है। इन दो संकेतों के आधार पर त्रिविक्रमभट्ट का समय सुगमतापूर्वक निर्धारित किया जा सकता है। महाकवि बाण महाराज हर्षवर्धन के सभा-कवि थे, जिनका समय ६०६–६४७ या ४८ ई० है तथा भोज का समय १०१५–१०५५ ई० है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रकूटवंशीय नृप इन्द्र तृतीय का ९१४ ई० (शकवर्ष ८३६) का एक शिलालेख गुजरात के बगुम्रा नामक ग्राम में प्राप्त

हुआ है जिसमें लेखक के रूप में नेमादित्य-तनय त्रिविक्रमभट्ट का नाम है। इन प्रमाणों के आधार पर त्रिविक्रमभट्ट का समय दशम शताब्दी का प्रथमार्ध निश्चित होता है।

त्रिविक्रमभट्ट इन्द्रराज तृतीय के सभापण्डित थे। इन्द्रराज के सम्बन्ध में दो शिलालेख गुजरात में एवं एक शिलालेख महाराष्ट्र में भी प्राप्त हुआ है। इतिहास के विविध ग्रन्थों में भी इन्द्रराज तृतीय का विवरण प्राप्त होता है। [दे० श्री विश्वनाथ रेऊ रचित 'भारत के प्राचीन राजवंश' (राष्ट्रकूट) भाग ३ पृ० ५०—५२] इन्द्रराज तृतीय ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर अनेक प्रकार के दान दिये थे उनका उल्लेख अभिलेख में किया गया है तथा इन प्रशस्तियों के लेखक त्रिविक्रम भट्ट ही बताये गए हैं—

श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सूनुना।
कृता शस्ता प्रशस्तेयमिन्द्रराजाङ्घ्रिसेवया॥

इन्द्रराज की प्रशस्ति के श्लोक की श्लेषमयी शैली 'नलचम्पू' के श्लेषबहुल पद्यों से साम्य रखती है—

कृतगोवर्धनोद्धार—हेलोन्मूलित मेरुणा। उपेन्द्रमिन्द्रराजेन जित्वा येन न विस्मितम्॥

त्रिविक्रम भट्ट के नाम पर दो ग्रन्थ प्रचलित हैं—'मदालसाचम्पू' एवं 'नलचम्पू'। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर दोनों का लेखक एक ही व्यक्ति सिद्ध नहीं होता। 'नलचम्पू' की शैली श्लेष-प्रधान है पर 'मदालसाचम्पू' में श्लेष का अभाव है। 'नलचम्पू' उच्छ्वासों में विभक्त है और 'मदालसाचम्पू' का विभाजन उल्लास में किया गया है। 'नलचम्पू' में ग्रन्थकार ने अपने गोत्रादि का परिचय दिया है पर 'मदालसाचम्पू' में इस प्रकार के कोई संकेत नहीं है। नौसारी का शिलालेख, जिसमे त्रिविक्रमभट्ट ने अपने आश्रयदाता का प्रशस्तिगान किया है, रचना-शैली की दृष्टि से उत्तम काव्य का रूप प्रस्तुत करता है और उसकी शैली 'नलचम्पू' से मिलती-जुलती है।

जयति विबुधबन्धुर्विन्ध्यविस्तारिवक्षः—स्थलविमलविलोलत्कौस्तुभः कंसकेतुः।
मुखसरसिजरङ्गे यस्य नृत्यन्ति लक्ष्म्याः स्मरभरपरिताम्यत्तारकास्ते कटाक्षाः॥

'नलचम्पू' में महाराज नल एवं दमयन्ती के प्रणय का वर्णन है। यह ग्रन्थ सात उच्छ्वासों में है। इसमे नल की सम्पूर्ण जीवन-गाथा न होकर अधूरा जीवन चित्रित है तथा ग्रन्थ बीच मे ही समाप्त हो जाता है। नल द्वारा देवताओं का सन्देश दमयन्ती को सुनाने तक की कथा ही इसमे वर्णित है। पंडितों में 'नलचम्पू' के अधूरा रहने की एक किम्वदन्ती प्रचलित है।

"किसी समय समस्त शास्त्रों में निष्णात देवादित्य नाम के राजपण्डित थे। उनका लड़का त्रिविक्रम था। प्रारम्भ मे उसने कुकर्म ही सीखे थे किसी शास्त्र का अभ्यास नहीं किया था। एक समय किसी कार्यवश देवादित्य दूसरे गाँव चले गए। राजनगर मे उनकी अनुपस्थिति जान कर एक विद्वान् राजभवन आया और राजा से कहा, राजन् मेरे साथ किसी विद्वान् से शास्त्रार्थ कराइये, अन्यथा मुझे विजय-पत्र दीजिए।' राजा ने दूत को आदेश दिया कि वह देवादित्य को बुला लाये। राजदूत के द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि देवादित्य कहीं बाहर गए हैं तो उसने उनके पुत्र त्रिविक्रम को ही शास्त्रार्थ के लिये

बुलवा लिया। त्रिविक्रम बड़ी चिन्ता मे पड़े। शास्त्रार्थ का नाम सुनते ही उनका माथा ठनक गया। अन्ततः उन्होंने सरस्वती की स्तुति की—"माँ भारती मुझ मूर्ख पर कृपा करो। आज यहाँ पर आये हुए इस महापण्डित से आप के भक्त का यश क्षीण न हो जाय। उसके साथ शास्त्रार्थ मे मुझे विजयी बनाओ।" पितृ-परम्परा से पूजित कुलदेवी सरस्वती ने उसे वर दिया, "जब तक तुम्हारे पिता लौट कर नहीं आते हैं तुम्हारे मुख में निवास करूँगी।"

वर की महिमा से राजसभा मे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर राजा द्वारा बहुविध सम्मान पाकर त्रिविक्रम लौटा। घर आकर उसने सोचा कि पिता जी के आगमन-काल तक सरस्वती मेरे मुख में रहेगी। तब तक यश के लिए मैं कोई प्रबन्ध क्यो न लिख डालूँ। अतः उसने पुण्यश्लोक नल के चरित्र को गद्य-पद्य मे लिखना शुरू किया। इस तरह सातवे उछ्वास की समाप्ति के दिन पिताजी का आगमन हो गया और सरस्वती उनके मुख से बाहर चली गई। इसलिए नलचम्पू ग्रन्थ अपूर्ण रह गया।" नलचम्पू की भूमिका (चौखम्भा संस्करण) पृ० ११–१२ से उद्धृत। पर इस किंवदन्ती में अधिक सार नहीं है क्योंकि त्रिविक्रमभट्ट की अन्य रचनाएँ भी प्राप्त होती है।

'नलचम्पू' की रचना श्रीहर्षचरित 'नैषधचरित' से प्रभावित है। दोनों की कथाओ एवं वर्णनों मे आश्चर्यजनक साम्य देखकर अनुमान किया जाता है कि त्रिविक्रमभट्ट ने उक्त महाकाव्य से प्रेरणा ग्रहण की होगी। संस्कृत-साहित्य मे श्लेष-प्रयोग के लिए त्रिविक्रमभट्ट की अधिक प्रसिद्धि है। इनकी श्लेष-योजना की विशेषता उसकी सरलता में है तथा उसमे सभंग पदो का आधिक्य है। छोटे छोटे अनुष्टुप् छन्दों मे सभंग पदो की योजना कर कवि ने अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि की है—

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतव ।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ १ । ६

पदो के प्रयोग मे अनिपुण (कविता के प्रति) लोगो मे वैराग्य उत्पन्न कर देने वाले तथा बहुत-सी असार बातो के कहने वाले कवि उन बच्चो की तरह हैं जो (पृथ्वी पर) पद (पैर) रखने में अनिपुण, माता क प्रेमोत्पादक (जननीरागहेतु), तथा बहुत-सी अव्यक्त बातो को कहते या बहुत लार पीते है। श्लेष-प्रिय होने के कारण शाब्दीक्रीडा के प्रति इनका रुझान अधिक है, अतः कवि कथा के इतिवृत्त की परवा न कर श्लेष-योजना एवं वर्णन-बाहुल्य के द्वारा ही कवित्व का प्रदर्शन करता है। यह शाब्दीक्रीडा सर्वत्र दिखाई पडती है और भावात्मक स्थलों मे भी कवि इसके प्रयोग से चूकता नहीं। इनका प्रकृति-चित्रण भी श्लेष के भार से बोझिल दिखाई पडता है। कवि ने मुख्यतः प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के ही रूप मे किया है। 'नलचम्पू' के टीकाकार चण्डपाल ने इनकी प्रशस्ति में निम्नोक्त श्लोक लिखा है—

शक्तिस्त्रिविक्रमस्येव जीयाल्लोकातिलंघिनी ।
दमयन्ती प्रबन्धेन सदाबलिमतोदिता ॥

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत-कवि-दर्शन —डॉ० भोलाशंकर व्यास २. संस्कृत सुकवि समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय ३. नलचम्पू–हिन्दी टीका सहित—चौखम्बा प्रकाशन ।

दक्षस्मृति—इस स्मृति के रचयिता दक्ष नामक ऋषि हैं। इनका उल्लेख याज्ञवल्क्यस्मृति में भी हुआ है तथा विश्वरूप, मिताक्षरा एवं अपरार्क ने दक्षस्मृति के उद्धरण दिये हैं। जीवानन्दसंग्रह में उपलब्ध 'दक्षस्मृति' मे ७ अध्याय तथा २२० श्लोक है। इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—चार आश्रम का वर्णन, ब्रह्मचारियों के दो प्रकार, द्विज के आह्निक धर्म, कर्मों के विविध प्रकार, नौ प्रकार के कर्मों का विवरण, नौ प्रकार के विकर्म, नौ प्रकार के गुप्तकर्म, खुलकर किये जाने वाले नौ कर्म, दान में न दिये जाने वाले पदार्थ, दान, अच्छी पत्नी की स्तुति, शौच के प्रकार, जन्म एवं मरण के समय होने वाले अशौच का वर्णन, योग तथा उसके षडंग, साधुओं द्वारा त्याज्य आठ पदार्थों का वर्णन। दक्षकृत निम्नांकित दो श्लोक अत्यन्त प्रचलित हैं।

सामान्यं याचितं न्यस्तमाधिर्दाराश्च तद्धनम् ।
अन्वाहितं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति ॥
आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि पण्डितैः ।
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड १)—डॉ० पी० वी० काणे हिन्दी अनुवाद ।

दत्तात्रेय चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता दत्तात्रेय कवि हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके पिता का नाम वीरराघव एवं माता का नाम कुप्पमा था। ये मीनाक्ष्याचार्य के शिष्य थे। इस चम्पू काव्य मे विष्णु के अवतार दत्तात्रेय का वर्णन किया गया है जो तीन उल्लासों में समाप्त हुआ है। काव्य का मंगलाचरण गणेश की बन्दना से हुआ है। इसकी रचना साधारण कोटि की है और ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३००० में प्राप्त होता है।

भजे गनाननं चित्ते प्रत्यूहविनिवृत्तये ।
देवासुरमृधे स्कन्दो यमंचति सतीसुतम् ॥ १।१ ॥
दत्तात्रेयोदयकथामधिकृत्य गरीयसीम् ।
दत्तात्रेयकविश्चक्रे चम्पूकाव्यमनुत्तमम् ॥ १।५ ॥

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ।

दण्डी—महाकवि दण्डी संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकाव्यकार हैं। किंवदन्ती की परम्परा के अनुसार उन्होंने तीन प्रबन्धों की रचना की थी। इनमें एक 'दशकुमार-चरित' है और दूसरा 'काव्यादर्श'। तीसरी रचना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। पिशेल ने बताया है कि तीसरी कृति 'मृच्छकटिक' ही है जो भ्रमवश यह शूद्रक

की रचना के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत की पुष्टि उन्होंने 'मृच्छकटिक' एवं 'दशकुमार-चरित' में वर्णित सामाजिक सम्बन्धो के साहश्य के कारण की है। उन्होंने अपने कथन को सिद्ध करने के लिए 'मृच्छकटिक' एवं 'काव्यादर्श' में प्राप्त होने वाले इस श्लोक को 'लिपतीव तमोंगानि' आधार बनाया है। उनका कहना है कि दण्डी ने बिना नाम दिये ही इस श्लोक को 'काव्यादर्श' मे उद्धृत किया है। पर, इतने भर से ही दण्डी 'मृच्छ-कटिक' के रचयिता सिद्ध नही होते। कुछ विद्वानों ने 'छन्दोविचिति' को दण्डी की तृतीय कृति माना है, क्योंकि इसका संकेत 'काव्यादर्श' मे भी प्राप्त होता है। पर डॉ० कीथ इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार 'छन्दोविचिति' तथा 'कालपरिच्छेद' दण्डी की स्वतन्त्र रचना न होकर 'काव्यादर्श' के दो परिच्छेद थे। 'काव्यादर्श' एवं 'दशकुमारचरित' के रचयिता की अभिन्नता के सम्बन्ध में भी सन्देह प्रकट किया गया है। 'काव्यादर्श' मे दण्डी ने गद्यकाव्य के जिन नियमो का प्रतिपादन किया है उनका पालन 'दशकुमारचरित' में नहीं किया जा सका है। अतः एक ही व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की अपने ग्रन्थ में अवहेलना करने से विद्वान् इसे दण्डी की रचना नहीं मानते। पर दोनों ग्रन्थों की भिन्नता का समाधान इस प्रकार किया गया है कि 'दशकुमारचरित' कवि की युवावस्था की कृति है, अतः इसमें सभी नियमो का पालन नहीं किया जा सका है। 'काव्यादर्श' की रचना इन्होंने प्रौढ़ावस्था मे की होगी। दण्डी की तीसरी रचना 'अवन्तिसुन्दरी कथा' को कहा जाता है। यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में प्रकाशित हो चुका है और अधिकांश विद्वान् इस (अपूर्ण) ग्रन्थ को ही दण्डी की तीसरी रचना मानने के पक्ष मे है। इस प्रकार परम्परागत विचार की पुष्टि हो जाती है—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

राजशेखर—सूक्तिमुक्तावली ४।७४

'अवन्तिसुन्दरीकथा' में दण्डी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। यह रचना पद्यबद्ध है जिसकी एक रचना के अनुसार दण्डी भारवि के प्रपौत्र सिद्ध होते हैं। पर बाद में इसका नवीन पाठ प्राप्त होने पर भारवि दण्डी के प्रपितामह दामोदर के मित्र सिद्ध हुए।

स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने॥ १।२३

दण्डी के काल-निर्धारण मे भी मतैक्य नहीं दिखाई पड़ता है। 'काव्यादर्श' के आधार पर इनका समय-निर्धारण आसान हो गया है। दण्डी को बाण से २०-२५ वर्ष पूर्व माना जाता है। साम्प्रतिक विद्वानों के मतानुसार दण्डी का समय सप्तम शती का उत्तरार्ध है। इस मत के पोषक प्रो० आर० नरसिंहाचार्य, डॉ० बेलबेलकर एवं आचार्य बलदेव उपाध्याय आदि हैं। पर यह मत बाण और दण्डी के ग्रन्थों की तुलना करने पर अमान्य ठहर जाता है। दण्डी बाण के पूर्ववर्ती थे। उनका गद्य बाण की

अपेक्षा कम अलंकृत एवं श्लेष-वक्रोक्ति अलंकारों से बोझिल न होकर प्रसाद गुण युक्त है। यदि दण्डी बाण के परवर्त्ती होते तो उनकी शैली भी निश्चित रूप से अलंकृत होती। दूसरी बात यह है कि 'दशकुमारचरित' में जिस समाज का चित्रण किया गया है वह हर्षवर्धन के पूर्व भारत से सम्बद्ध है। उन्होंने गुप्त साम्राज्य के ह्रासोन्मुख होने के कारण भारतीय समाज में व्याप्त अव्यवस्था एवं स्वच्छन्दता का चित्रण किया है। अतः वे निश्चित रूप से हर्षवर्धन के पूर्ववर्त्ती हैं और इस दृष्टि से उनका समय ६०० ईस्वी के आस पास निश्चित होता है।

'काव्यादर्श' अलंकार ग्रन्थ है। 'दशकुमारचरित' में आठ कुमारों की रोचक कथा वर्णित है। [दे० दशकुमार चरित] इस समय प्राप्त होने वाले 'दशकुमारचरित' मे दो पीठिकाएँ है—पूर्व पीठिका एवं उत्तरपीठिका। पूर्व पीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं और आठ उच्छ्वासों में पुन: कथा का वर्णन है। उत्तरपीठिका पांच या छह पृष्ठों की है। पूर्वपीठिका के सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि यह दण्डी की रचना न होकर परवर्त्ती जोड है तथा इसका मंगलाचरण 'ब्रह्माण्डच्छत्रदण्ड:' भी दण्डी कृत नहीं है। पूर्वपीठिका के इस रूप को ग्यारहवीं शताब्दी से प्राचीन माना जाता है क्योंकि यही श्लोक भोज रचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' मे भी प्राप्त होता है। पूर्वपीठिका की शैली कृत्रिम है और उस पर बाणोत्तर काल की ह्रासोन्मुखी काव्यशैली का प्रभाव है। इसकी शैली मे शाब्दी एवं आर्थी क्रीडा का संघात दिखाई पडता है। दण्डी रचित मूल 'दशकुमारचरित' मे राजवाहन एवं उनके सात साथियों की कथा है। पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका के दृष्टिकोण में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। 'दशकुमारचरित' का दृष्टिकोण यथार्थवादी है किन्तु पूर्वपीठिका में आदर्शवादी दृष्टि अपनायी गयी है। पूर्व-पीठिका में देवता यज्ञादि का उपयोग करते हैं तथा ब्राह्मण पृथ्वी के देवता कहे गए हैं। इसके सभी पात्र कर्त्तव्य-कर्म पर विश्वास न कर अपने को दैवाधीन मानते हैं। इसमे अनेक अतिमानवीय घटनाओं एवं शापादि के कारण होने वाले भयंकर परिवर्त्तनों का वर्णन है। किन्तु दण्डी रचित कथाभाग में चारित्रिक विकास पर अधिक बल दिया गया है। इस प्रकार की भिन्नताओ के कारण 'दशकुमारचरित' का पूर्वपीठिका वाला अंश दण्डी कृत नही माना जाता। दण्डी को भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने आख्यान का सरल एवं सुबोध वर्णन करते हुए भाषागत दोष पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया है। पात्रों के कथनों एवं भाषणो मे उन्होंने भाषा सम्बन्धी जटिलता एवं दुरूहता तथा विस्तार के दोष से अपने को दूर रखा है। किसी विषय का वर्णन करते समय वे मुख्यतः वैदर्भी रीति को अपनाते हुए पद-लालित्य में सबों को पीछे छोड देते हैं। वर्णनों में उनकी प्रतिभा प्रदर्शित होती है और भाषा पर अपूर्व अधिकार दिखाई पडता है। विषयानुसार भाषा को परिवर्त्तित कर देना दण्डी की अपनी विशेषता है। अभिव्यक्ति की यथार्थता एवं अर्थ की स्पष्टता पर भी उनका ध्यान गया है और कर्णकटु ध्वनियों एवं शब्दाडम्बर से भी वे अपने को बचाते हैं। उन्होंने प्रकृतिका भी मनोरम चित्र अंकित किया है और सूर्योदय तथा सूर्यास्त का

बड़ा ही रमणीय चित्र चित्रित किया है। अभिव्यंजना शैली के निर्वाह में संतुलन उपस्थित कर दण्डी ने संस्कृत गद्यकाव्य में नवीन पद्धति प्रारम्भ की है। शाब्दीक्रीड़ा अथवा आर्थीक्रीड़ा की ओर कभी-कभी उनका ध्यान अवश्य जाता है पर इससे अर्थ-प्रतीति में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं होता। चरित्र-चित्रण की विशिष्टता दण्डी की निजी विशेषता है। उन्होंने अपनी कृति में हास्य एवं व्यंग्य का पुट देकर उसे और भी अधिक आकर्षक बनाया है। सम्पूर्ण ग्रंथ मे दण्डी ने राजकुमारों के विचित्र अनुभव का बड़ा ही हास्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर दण्डी विषय-चयन अभिव्यंजना तथा शैलीगत अति के दोष से रहित है। संयम तथा अनुपात का उन्होंने सर्वत्र ध्यान रखा है और असंयत समासान्त पदावली, निरर्थक वाक्याडंबर, जटिल श्लेषयोजना तथा दूरारूढ़ कल्पना से अपने को मुक्त रखा है। पर दण्डी की शैली को अनलंकृत भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि उन्होंने संक्षिप्त, सूक्ष्म तथा संयमपूर्ण वर्णन शैली के द्वारा अपनी रचना मे प्रभावोत्पादकता को अक्षुण्ण रखा है। द्वितीय उच्छ्वास में राजकुमारी का सौन्दर्य वर्णन देखिए—

'रक्ततलांगुली यवमत्स्यकमलकलशाद्यनेकपुण्यलेखालाञ्छितौ करौ, समगुल्फसंधी मांसलावशिरालौ चांघ्री, जंघे चानुपूर्ववृत्ते······ सकृद्विभक्तचतुरस्रः ककुन्दरविभागशोभी रथांगाकारसंस्थितश्च नितम्बभागः, तनुतरमीषन्निम्नं गम्भीरं नाभिमण्डलम्, वलित्रयेण चालंकृतमुदरम्, उरोभागव्यापिनावुन्मग्नचूचुकौ विशालरंभशोभिनौ पयोधरौ, धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिह्नलेखालाञ्छिततले स्निग्धोदग्रकोमलनखमणी ऋज्वनुपूर्ववृत्तताम्रांगुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ निमग्नपर्वसंधी च बाहुतले,······इन्द्रनील शिलाकाररम्यालकपंक्तिद्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाललितलम्बश्रवणपाशयुगलमाननकमलम्, अनतिभंगुरो बहुलः पर्यन्तेऽप्यकपिलरुचिरायामवानेकैकनिसर्गसमस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धजकलापः। षष्ठ उच्छ्वास पृ० २२१–२२३

दण्डी के सम्बन्ध में कई प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं—

जाते जगति वाल्मीकौ शब्दः कविरिति स्थितः।
व्यासे जाते कवी चेति कवयश्चेति दण्डिनि॥
आचार्य दण्डिनो वाचामाचान्तामृतसंपदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणः॥

आधार ग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास–कीथ (हिन्दी अनुवाद) २ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर–एस० के० डे० एवं दासगुप्त ३ संस्कृत कवि-दर्शन–डॉ० भोलाशंकर व्यास ४. दशकुमारचरित–(हिन्दी अनुवाद चौखम्बा)।

दशकुमारचरित—यह महाकवि दण्डी विरचित प्रसिद्ध गद्यकाव्य है। [दे० दण्डी]। इस ग्रन्थ का विभाजन दो पीठिकाओं—पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका—के रूप मे किया गया है। दोनों पीठिकाएं उच्छ्वासों में विभक्त हैं। इसमें दस कुमारों का चरित वर्णित है किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ जिस रूप में उपलब्ध है वह दण्डी की मूल रचना न होकर उसका परिवर्द्धित रूप है। पुस्तक की पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका

के बीच मूलग्रन्थ है जिसके आठ उच्छ्वासों में आठ कुमारों का चरित वर्णित है। पूर्व-पीठिका के पाँच उच्छ्वासों मे दो कुमारों की कहानी है तथा उत्तरपीठिका में किसी की कहानी न होकर ग्रन्थ का उपसंहार मात्र है। वस्तुतः पूर्व एवं उत्तरपीठिकाएं दण्डी की मूल रचना न होकर परवर्त्ती जोड है, किन्तु इन दोनों के बिना ग्रन्थ अधूरा प्रतीत होता है। पूर्वपीठिका को अवतरणिका स्वरूप तथा उत्तरपीठिका को उपसंहार स्वरूप कहा गया है। दोनों पीठिकाओं को मिला देने पर यह ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में दण्डी ने सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी किन्तु कालान्तर में इसका अन्तिम अंश नष्ट हो गया और किसी कवि ने पूर्व एवं उत्तर-पीठिकाओं की रचना कर ग्रंथ को पूरा कर दिया। पूर्वपीठिका तथा मूल 'दशकुमार-चरित' की शैली में भी अन्तर दिखाई पडने से यह बात और भी अधिक पुष्ट हो जाती है।

मूल ग्रन्थ में दण्डी ने राजा राजवाहन एवं उनके साथ मित्रों की कथा का वर्णन किया है। प्रथम उच्छ्वास में राजा राजवाहन की कथा वर्णित है। उसके सात साथी आकर उससे मिलते हैं और वह उनके अनुभवों की कथा कहने को कहता है। पूर्वपीठिका, जो परवर्त्ती रचना है, में मगधनरेश राजहंस की कथा वर्णित है। राजहंस अपने शत्रु मानसर से पराजित होकर विन्ध्यवन मे निवास करता है। वहीं पर उसकी संरक्षकता मे दशकुमार रहते हैं जिनमें एक राजा का पुत्र, राजवाहन, सात उस राजा के मंत्रियो के पुत्र एवं दो मिथिला के राजकुमार हैं। सभी राजकुमार अपनी शिक्षा समाप्त कर दिग्विजय करने निकलते हैं तथा विन्ध्यवन में पहुँच कर एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं, बिछुड जाते हैं। राजवाहन अपने मित्रों की खोज करता हुआ उज्जयिनी आता है जहाँ एक बगीचे मे उसे उसका मित्र सोमदत्त, एक सुन्दरी के साथ, दिखाई पडता है। सोमदत्त राजवाहन से अपनी कहानी कहते बताता है कि किस तरह, जब लाटनरेश ने उज्जयिनीनरेश की राजकुमारी वामलोचना से विवाह करने के लिए उज्जयिनी पर चढ़ाई की तो, मैंने उज्जयिनीनरेश की सहायता कर लाटनरेश का वध कर दिया। इस पर मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उज्जयिनी-नरेश ने अपनी पुत्री का मुझसे विवाह कर मुझे युवराज बना दिया। उसी समय राजवाहन का द्वितीय मित्र पुष्पोद्भव भी आ पहुचा और अपना वृत्तान्त सुनाने लगा। उसने बताया कि वह उज्जयिनी पहुँचा जहाँ उसे एक व्यापारी की कन्या, जिसका नाम बालचन्द्रिका है, से प्रेम हो गया और उसने उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

मूल 'दशकुमारचरित' के प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन की कथा वर्णित है। इसकी कथा के पूर्व भाग को पूर्वपीठिका के पंचम उच्छ्वास में जोड़ा गया है। राजवाहन उज्जयिनी में भ्रमण करता हुआ अपने शत्रु मानसार की कन्या अवन्तिसुन्दरी पर अनुरक्त हो उससे प्रेम करने लगा। उस समय उज्जयिनी का शासक था दारुवर्मन् का भाई चण्डवर्मा और उसने इन दोनों के प्रेम पर क्रुद्ध होकर राजवाहन को कारागृह में

डाल दिया। उसी समय जब चण्डवर्मा चम्पानरेश से युद्ध करने गया था, राजवाहन के मित्र अपहारवर्मा द्वारा मारा गया। तत्पश्चात् अपहारवर्मा तथा राजवर्मा के सभी मित्र मिल गये और अपहारवर्मा ने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया। अपहारवर्मा की कथा के साथ काममंजरी वेश्या एवं मारीच ऋषि की भी कथा जुड गयी है। वह राजवाहन की खोज करता हुआ मरीचि ऋषि के आश्रम में पहुँचा और ऋषि से उसने आप बीती सुनाई। दूसरे दिन अपहारवर्मा को चम्पानगरी जाते समय एक भिक्षु मिला जो काममंजरी द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति छीन लिये जाने के कारण भिक्षु बन गया था। अपहारवर्मा ने उसे उसकी सम्पत्ति दिला देने का आश्वासन दिया और स्वयं चम्पानगरी में जाकर चौर्य कर्म मे लग गया। वहाँ उसने एक युवती को उसके प्रेमी से मिलने में सहायता की और स्वयं भी काममंजरी की छोटी बहिन रागमंजरी से प्रेम करने लगा। अन्ततः वह चण्डवर्मा को मार कर राजवाहन के पास पहुँचा।

अब उपहारवर्मा की बारी आई और वह अपनी कथा कहने लगा। वह भ्रमण करते हुए अपनी जन्मभूमि मिथिला में पहुँचा जहाँ उसके पिता प्रहारवर्मा को कैद कर विकटवर्मा राज्य करने लगा था। उपहारवर्मा ने छल से विकटवर्मा की हत्या कर उसकी पत्नी से अपना विवाह कर लिया। तत्पश्चात् उसने अपने माता-पिता को कैद से निकाला। जब वह चम्पानरेश की सहायता करने के लिए गया था तभी उसकी राजवाहन से भेंट हुई।

अब अर्थपाल ने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया। उसने बताया कि जब वह भ्रमण करते हुए काशी पहुँचा तो ज्ञात हुआ कि उसके पिता कामपाल को, जो काशीनरेश के मन्त्री थे, वहाँ के दुष्ट युवराज सिंहघोष ने कैद कर उनकी आँखे निकाल लेने का आदेश दे दिया है। उसने युक्ति से अपने पिता को मुक्त कर और राजकुमार को सोते हुए बन्दी बना लिया। वह वहाँ की राजकुमारी से विवाह कर काशी का युवराज बन गया। जब सिंहवर्मा की सहायता के लिए वह चम्पा आया तभी उसकी राजवर्मा से भेंट हुई।

प्रमति अपना वृत्तान्त प्रारम्भ करते हुए कहता है कि वन मे घूमते हुए थक कर वह एक वृक्ष की छाया मे सो गया। उस समय उसके निकट एक सुन्दरी कन्या दिखाई पड़ी। प्रमति ने जगने पर देखा कि वहाँ एक देवी प्रकट हुई है जिसने बताया कि उन्होंने अपने प्रभाव से श्रावस्तीनरेश की राजकुमारी के निकट उसे सुला दिया था। देवी ने बताया कि यदि प्रमति चाहे तो वह कन्या उसे प्राप्त हो सकती है। प्रमति राजकुमारी के प्रति आकृष्ट होकर तथा काम-पीडित हो श्रावस्ती नगरी की ओर चला। उसे मार्ग में एक ब्राह्मण मिला जिसने उसके कार्य मे सहायता देने का वचन दिया तथा राजकन्या को प्राप्त करने की योजना बनाई। ब्राह्मण ने बताया कि वह कन्या बनेगा और प्रमति उसे अपनी पुत्री कहकर श्रावस्ती नरेश के अन्तःपुर में रहने के लिए उनसे निवेदन करे। राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ब्राह्मण को आश्रय दिया। एक दिन स्त्रीवेषधारी ब्राह्मण ने झूठ का डूबने का बहाना किया और रूप

बदल कर कन्या के भावी पति के रूप में आ गया। प्रमति ने राजा से अपनी कन्या की मांग की और न देने पर आत्महत्या करने की धमकी दी। अन्त में राजा ने ब्राह्मण कन्या के भावी पति से अपनी लड़की का ब्याह कर उसे युवराज बना दिया। इस प्रकार प्रमति की अभिलाषा पूर्ण हुई और वह सिंहवर्मा के सहायतार्थ चम्पानगरी आने पर राजवाहन से मिला।

मातृगुप्त ने अपनी कथा इस प्रकार प्रारम्भ की—वह भ्रमण करता हुआ दामलिप्त आया जहाँ वह राजकुमारी कन्दुकावती के प्रणय-सूत्र में आबद्ध हुआ। दामलिप्त नरेश को विन्ध्यवासिनी देवी ने उसके पुत्र भीमधन्वा एवं पुत्री कन्दुकावती के सम्बन्ध में उनके जन्म से पूर्व ही दो आदेश दे रखे थे। प्रथम, यह कि राजा को कन्या के साथ एक पुत्र होगा और उसे कन्या के पति के अधीन रहना पड़ेगा तथा द्वितीय, यह कि राजकुमारी गेंद खेलती हुई अपने पति का स्वेच्छा से चयन करे। कन्दुकावती ने स्वेच्छानुसार मातृगुप्त को अपना पति बना लिया किन्तु भीमधन्वा ने मातृगुप्त के अधीन रहना स्वीकार न कर उसे समुद्र में फेंकवा दिया। किसी प्रकार मातृगुप्त ने अपना प्राण बचाया और भीमधन्वा को बन्दी बना लिया। वहाँ से लौट कर उसने एक ब्रह्मराक्षस के प्रश्नों का उत्तर देकर उसे प्रसन्न किया तथा एक राक्षस द्वारा ले जाती हुई कन्दुकावती को ब्रह्मराक्षस ने लड़कर मुक्त किया। मातृगुप्त कदुन्कावती को लेकर दामलिप्त आया और राजा ने उसे अपने जामाता के रूप मे स्वीकार किया। जब वह सहवर्मा की सिहायता के लिए चम्पा आया तो उसकी राजवाहन से भेंट हुई।

अब मन्त्रगुप्त ने अपनी कहानी सुनाई। उसने बताया कि वह कलिंग गया जहाँ उसने एक सिद्ध को मार कर कनकलेखा को मुक्त किया। इस पर दोनों एक दूसरे को प्यार करने लगे और वह छिप कर अन्तःपुर मे राजकुमारी के साथ रहने लगा। इसी बीच आन्ध्र प्रदेशाधिपति ने कनकलेखा से विवाह करने की इच्छा से कलिंग-नरेश को स्त्रियों के साथ बन्दी बना लिया। उस समय यह बात प्रकट हुई कि राजकुमारी पर किसी व्यक्ति ने अधिकार कर लिया है, यदि आन्ध्रनरेश उस पर विजय प्राप्त कर ले तो वे कनकलेखा से विवाह कर सकेंगे। मन्त्रगुप्त ने रासायनिक का वेष धारण किया और आन्ध्र चला गया। वहाँ उसने आन्ध्रनरेश के शरीर को लोहमय बना देने के लिए छल से उसे तालाब में घुसा कर मार डाला। उसने कलिंग-नरेश को छुड़ाया तथा राजकुमारी से ब्याह कर कलिंग लौट आया। वहाँ से सिंहवर्मा के सहायतार्थ आने पर उसकी राजवाहन से भेंट हुई।

अन्तिम कथा विश्रुत की है। उसने बताया कि उसे बालक लिये हुए एक वृद्ध मिला जिससे पता चला कि यह बालक विदर्भ का राजकुमार भास्करवर्मा है तथा उसके पिता को मारकर वसन्तभानु ने विदर्भ पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। विदर्भनरेश की पत्नी अपने पुत्र एवं पुत्री मंजुवादिनी के साथ महिष्मती के शासक मित्रवर्मा की शरण में है। वहाँ भी उन्हें राजकुमार की सुरक्षा पर सन्देह हुआ और उन्होंने उसे वृद्ध के साथ लगा दिया। विश्रुत ने बालक की सहायता करने का आश्वासन

दिया। इसी बीच पता चला कि मित्रवर्मा मंजुवादिनी का विवाह प्रचण्डवर्मा के साथ कराना चाहता है। विश्रुत ने भास्करवर्मा की मृत्यु का झूठा समाचार प्रसारित कर स्वयं प्रचण्डवर्मा को मार डाला और एक विषयुक्त हार के द्वारा मित्रवर्मा की भी हत्या करा दी। तत्पश्चात् विश्रुत भास्करवर्मा के साथ युक्ति से एक मन्दिर की मूर्त्ति से प्रकट हुआ और उसने मंजुवादिनी के साथ ब्याह कर लिया। उसने वसन्तवर्मा का वध कराकर विदर्भ के राज्य पर पुनः भास्करवर्मा को अधिष्ठित किया। वह स्वयं भास्करवर्मा का सचिव हुआ और चम्पा आने पर उसकी राजवाहन से भेंट हुई। अन्त में दसों राजकुमारों को एक दूत के द्वारा राजा राजहंस का सन्देश प्राप्त हुआ और वे पुष्पपुर आये। वहाँ उन्होंने अपने शत्रु मालवेश मानसार को मार कर सुखपूर्वक राज्य किया।

उपर्युक्त कथा में दण्डी ने कई अन्य कथाओं का भी गुंफन किया है जैसे, अपहार-वर्मा की कथा में तपस्वी मरीचि एवं काममंजरी की कथा तथा मित्रगुप्त की कथा में धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती एवं नितम्बवती की कथाएँ। इसमे 'पंचतन्त्र' की भांति (दे० पंचतन्त्र) एक कथा मे दूसरी कथा को जोड़ने वाली परिपाटी अपनाई गयी है और उसे अन्ततः मूल कथा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। इन सभी कहानियों के द्वारा दण्डी ने यह विचार व्यक्त किया है कि चातुर्य के द्वारा ही व्यक्ति जीवन मे सफलता प्राप्त कर सकता है। इन कहानियों का उद्देश्य 'पंचतन्त्र' आदि की तरह कथा के माध्यम से नीतिशास्त्र की शिक्षा देना न होकर दण्डी का एकमात्र लक्ष्य है सहृदयों का अनुरंजन करना, और इस उद्देश्य मे वे पूर्णतया सफल रहे हैं।

'दशकुमारचरित' के कई हिन्दी अनुवाद प्राप्त होते हैं। यहाँ 'चौखम्बा प्रकाशन' की (हिन्दी टीका सहित) पुस्तक का उपयोग किया गया है।

दशरूपक—नाट्यशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता धनञ्जय है। [दे० धनञ्जय] इस ग्रन्थ की रचना 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर हुई है और नाटकविषयक तथ्यों को सरस ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'दशरूपक' पर अनेक टीका ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनमे धनिक (धनञ्जय के भ्राता) की 'अवलोक' नामक व्याख्या अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसके अन्य टीकाकारों के नाम हैं—बहुरूपभट्ट, नृसिंहभट्ट, देवपाणि, क्षोणी-धरमिश्र तथा कूरवीराम।

'दशरूपक' की रचना कारिका में हुई जिनकी संख्या तीन सौ है। यह ग्रन्थ चार प्रकाशों मे विभक्त है। प्रथम प्रकाश मे रूपक के लक्षण, भेद, अर्थप्रकृतियाँ, अवस्थाएं, सन्धियां, अर्थोपक्षेक, विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य प्रवेशक एवं अंकावतार तथा वस्तु के सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य नामक भेद वर्णित है। इस प्रकाश मे ६८ कारिकायें (श्लोक) हैं। द्वितीय प्रकाश में नायक-नायिका-भेद, नायक-नायिका के सहायक, नायिकाओं के बीस अलंकार, वृत्ति—कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा नाट्य पात्रो की भाषा का वर्णन है। इस प्रकाश में ७२ कारिकायें है। तृतीय प्रकाश में पूर्वरङ्ग अंकविधान तथा रूपक के दस भेद वर्णित हैं। इसमें ७६ कारिकायें हैं।

चतुर्थ प्रकाश में रस का स्वरूप, उसके अंग, तथा नौ रसों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इस अध्याय में रसनिष्पत्ति, रसास्वादन के प्रकार तथा शान्त रस की अनुपयोगिता पर विशेषरूप से प्रकाश डाला गया है। इस प्रकाश में ८६ कारिकाएँ हैं। दशरूपक के तीन हिन्दी अनुवाद प्राप्त हैं—

क—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत कृत दशरूपक का अनुवाद, ख—डॉ० भोलाशंकर व्यास कृत दशरूपक एवं धनिक की अवलोक व्याख्या का अनुवाद (चौखम्बा विद्या-भवन), ग—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी अनुवाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

दिङ्नाग—ये 'कुन्दमाला' नामक नाटक के प्रणेता हैं। इस नाटक की कथा 'रामायण' पर आधृत है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र रचित 'नाट्यदर्पण' में 'कुन्दमाला' का उल्लेख है, अतः इसका समय एक हजार ईस्वी के निकट माना गया है।

इसके कथानक पर भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें ६ अंक हैं तथा रामराज्याभिषेक के पश्चात् सीता-निर्वासन एवं पृथ्वी द्वारा सीता की पवित्रता घोषित करने पर राम-सीता के पुर्नमिलन तक की घटना वर्णित है। प्रथम अंक राम द्वारा सीता के लोकापवाद की सूचना पाकर लक्ष्मण को गर्भवती सीता को गंगातट पर छोड़ने के लिए आदेश का वर्णन है। लक्ष्मण उन्हे वन में पहुचा देते हैं और वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम मे शरण देते है। द्वितीय अंक मे लव-कुश का जन्म तथा वाल्मीकि द्वारा दोनों को 'रामायण' की शिक्षा देने का वर्णन है। तृतीय अंक मे सीता लव-कुश के साथ गोमती के किनारे जाती है और उसी समय राम-लक्ष्मण वही टहलते हुए आते है। राम को कुन्द पुष्पों की एक बहती हुई माला दिखाई पडती है जिसे वे सीता की माला समझ कर विलाप करते हैं। सीता कुञ्ज पे छिप कर सारे दृश्य को देखती है। इसी के आधार पर इस नाटक की अभिधा 'कुन्दमाला' हुई है। चतुर्थ अक मे तिलोतमा नामक अप्सरा का सीता का रूप धारण कर राम को संतप्त करने का वर्णन है। पंचम अंक में लव-कुश द्वारा राम के दरबार में रामायण का पाठ करना वर्णित है। षष्ठ अंक में पृथ्वी प्रकट होकर सीता की पवित्रता प्रकट करती है तथा राम अपना शेष जीवन सीता एवं अपने पुत्रो के साथ व्यतीत करते है।

'उत्तररामचरित' की भाति 'कुन्दमाला' मे भी 'वाल्मीकि रामायण' की घटना में परिवर्त्तन कर ग्रन्थ को सुखान्त पर्यवसायी बनाया गया है। इनके प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन पर महाकवि कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। राम द्वारा सीता के परित्याग पर पशु-पक्षी भी विलाप करते हुए दिखाये गए है। सीता की करुण दशा को देख कर हरिणों ने तृण-भक्षण छोड दिया है तथा शोकार्त हंस अश्रु प्रवाहित करते प्रदर्शित किये गए हैं।

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति।

नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्गता वरमयी न परं मनुष्या ॥ १।१८

दिङ्नाग—बौद्धन्याय के जनक के रूप में आचार्य दिङ्नाग का नाम सुविख्यात है। (दे० बौद्धदर्शन) ये बौद्ध-दर्शन के वर्चस्वी विद्वानों में हैं और भारतीय दार्शनिकों की प्रथम पंक्ति के युगद्रष्टाओं में इनका स्थान सुरक्षित है। तिब्बती परम्परा इन्हें कांजी के समीपस्थ सिंहवक्र नामक स्थान का निवासी मानती है। इनका जन्म सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनका समय चतुर्थ शताब्दी का उत्तरार्ध या पंचम शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनका नाम 'नागदत्त' था किन्तु बाद में आचार्य वसुबन्धु से दीक्षा लेने के पश्चात् इनका नाम दिङ्नाग हो गया। इनका निर्वाण उडीसा के ही एक वन मे हुआ था। इन्होने शास्त्रार्थ के निमित्त महाराष्ट्र, उडीसा तथा नालन्दा का भी परिभ्रमण किया था। इनके शिष्यों में शान्तरक्षित, कर्मशील एवं शंकरस्वामी है। न्याय-दर्शन के सम्बन्ध मे इनके द्वारा सौ ग्रन्थो के प्रणयन की बात कही जाती है। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'प्रमाण समुच्चय'। यह ग्रन्थ मूलरूप (संस्कृत) में उपलब्ध नहीं होता पंडित हेमवर्मा द्वारा अनूदित तिब्बती अनुवाद ही सम्प्रति प्राप्त होता है। इसके ६ परिच्छेदो में न्यायशास्त्र के समस्त सिद्धान्तो का निरूपण है जिसकी विषय-सूची इस प्रकार है—प्रत्यक्ष, स्वार्थानुमान, परार्थानुमान, हेतु दृष्टान्त, अपोह एवं जाति। इनके अन्य ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—१—प्रमाणसमुच्चयवृत्ति—यह 'प्रमाण समुच्चय' की व्याख्या है। इसका भी मूल रूप प्राप्त नहीं होता, तिब्बती अनुवाद उपलब्ध है। २—न्याय प्रवेश—यह मूल संस्कृत मे प्राप्त होनेवाला दिङ्नाग कृत एकमात्र ग्रन्थ है। ३—हेतु चक्रहमरु—इसमे नौ प्रकार के हेतु वर्णित हैं। इसका तिब्बती अनुवाद मिलता है जिसके आधार पर दुर्गाचरण चटर्जी ने इसका संस्कृत मे फिर से अनुवाद किया है। ४—प्रमाणशास्त्रन्यायप्रवेश, ५—आलम्बन-परीक्षा, ६—आलम्बन परीक्षा विधि, ७—त्रिकालपरीक्षा एवं ८—मर्मप्रदीपवृत्ति आदि अन्य ग्रन्थ हैं। दे० बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव।

दिवाकर—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका जन्म-समय १६०६ ई० है। इनके चाचा शिवदैवज्ञ अत्यन्त प्रसिद्ध ज्योतिषी थे जिनसे इन्होने इस शास्त्र का अध्ययन किया था। दिवाकर ने 'जातकपद्धति' नामक फलितज्योतिष के ग्रन्थ की रचना की है। इसके अतिरिक्त मकरन्दविवरण एवं केशवीयपद्धति की प्रौढ़ मनोरम संज्ञक टीका ग्रन्थो की भी इन्होने रचना की है। इनका दूसरा मौलिक ग्रन्थ 'पद्धतिप्रकाश' है जिसकी सोदाहरण टीका स्वयं इन्होने ही लिखी थी।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

द्वितीय आर्यभट्ट—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ये भास्कराचार्य के पूर्ववर्ती थे (दे० भास्कराचार्य)। इन्होने 'महाआर्यसिद्धान्त' नामक ज्योतिषशास्त्र के अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ १८ अध्यायों में विभक्त है जिसमें ६२५ आर्या छन्द हैं। भास्कराचार्य के 'सिद्धान्तशिरोमणि' में इनके मत का उल्लेख प्राप्त होता है।

'महाआर्यसिद्धान्त' में अन्य विषयों के अतिरिक्त पाटीगणित, क्षेत्र-व्यवहार तथा बीज-गणित का भी समावेश है। इनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद ३. भारतीय ज्योतिष—शंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद)।

दिव्यचाप विजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता का नाम चक्रवर्ती वेंकटाचार्य है। इनके पिता का नाम शैलवार्य एवं पितामह का नाम वेंकटाचार्य था। इस चम्पू मे छह् स्तबक हैं जिसमे सुप्रसिद्ध पौराणिक कथा 'दर्भशयनम्' का वर्णन है। कथा का प्रारम्भ पौराणिक शैली मे किया गया है तथा प्रसंगतः राम कथा का भी वर्णन है। कवि ने कथा के माध्यम से 'तिरुपुल्लाणि' की पवित्रता एवं धार्मिक महत्ता का प्रतिपादन किया है। यह काव्य अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३०२ मे प्राप्त होता है। काव्य रचना का कारण कवि के शब्दों में इस प्रकार है—

कवयः कति वानसन्ति तेषां कृतयो वातुलचातुरी गुणाः।
रचयन्ति तथापि काव्यमन्ये रसयन्त्येव तदग्रपंडिता.॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

दूतघटोत्कच—इस नाटक के रचयिता महाकवि भास है। इसमें 'महाभारत' के पात्रो को आधार बना कर नवीन कथा कही गयी है। इसमे हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच द्वारा जयद्रथ के पास जाकर दौत्यकर्म करने का वर्णन है। अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा करने पर, श्रीकृष्ण के आदेश से, घटोत्कच धृतराष्ट्र के पास जाता है तथा युद्ध के भयंकर दुष्परिणाम की ओर उनका ध्यान लगाता है। धृतराष्ट्र दुर्योधन को समझाते है, पर शकुनि की सलाह से वह उनकी एक भी नहीं सुनता। दुर्योधन एवं घटोत्कच में वाद-विवाद होने लगता है और घटोत्कच दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारता है, पर धृतराष्ट्र उसे शान्त कर देते हैं। अन्त मे घटोत्कच अर्जुन द्वारा अभिमन्यु का बदला लेने की बात कह कर धमकी देते हुए चला जाता है। इसमें भरतवाक्य नही है और इसका कथानक काल्पनिक है। घटोत्कच के दूत बन कर जाने के कारण ही इसका नाम 'दूतघटोत्कच' है। इसका नायक घटोत्कच है और वह वीररस के प्रतीक के रूप मे चित्रित है। वह अपनी अवमानना सहन नही करता और मुष्टि-प्रहार करने को प्रस्तुत हो जाता है। वीरत्व के साथ-ही-साथ उसमे शालीनता एवं शिष्टता भी समान रूप से विद्यमान है। दुर्योधन, कर्ण एवं शकुनि का चरित्र परम्परागत है और वे अभिमानी एवं क्रूर व्यक्ति के रूप मे चित्रित हैं। इस नाटक में वीर एवं करुण दोनों रसों का मिश्रण है। अभिमन्यु की मृत्यु के कारण करुण रस का वातावरण है तो घटोत्कच एवं दुर्योधनादि के विवाद में वीर रस की स्थिति है।

दूतवाक्य—यह महाकवि भास विरचित एक अंक का व्यायोग है (रूपक का एक भेद)। इसमें महाभारत के विनाशकारी युद्ध से बचने के लिए पाण्डवों द्वारा कृष्ण को अपना दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजने का वर्णन है। नाटक का प्रारम्भ कंचुकी की घोषणा से होता है कि आज महाराज सुयोधन समागत नरेशों के साथ मन्त्रणा करनेवाले हैं। दुर्योधन के सभा में बैठते ही कंचुकी प्रवेश कर कहता है कि पाण्डवों की ओर से पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण दूत बन कर आये हैं। श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम कहने पर दुर्योधन उसे डाँट कर ऐसा कभी नहीं कहने को कहता है। वह अपने सभासदों से कहता है कि 'कोई भी व्यक्ति कृष्ण के प्रवेश-समय अपने आसन से खड़ा न हो। जो व्यक्ति कृष्ण के आने पर अपने आसन से खड़ा होगा उसे द्वादश सुवर्ण भार का दण्ड होगा।' वह श्रीकृष्ण का अपमान करने के लिए चीर-कर्षण के समय का द्रौपदी का चित्र देखता है तथा भीम, अर्जुन आदि की तत्कालीन भंगियों पर व्यंग्य करता है। श्रीकृष्ण के प्रवेश करते ही दरबारी सहसा उठ कर खड़े हो जाते है और दुर्योधन उन्हें दण्ड का स्मरण कराता है, पर स्वयं भी घबराहट से गिर जाता है। श्रीकृष्ण अपना प्रस्ताव रखते हुए पाण्डवों का आधा राज्य मांगते है। दुर्योधन कहता है कि क्या दायाद्य मांगते हैं ? मेरे चाचा पाण्डु तो वन मे आखेट के समय मुनिशाप को प्राप्त हुए थे और तभी से स्त्रीप्रसंग से विरत रहे; तो फिर दूसरों से उत्पन्न पुत्रो को दायाद्य कैसा ? इस पर श्रीकृष्ण भी वैसा ही कटु उत्तर देते हैं। दोनो का उत्तर-प्रत्युत्तर बढ़ता जाता है और दुर्योधन उन्हे बन्दी बना देने का आदेश देता है, पर किसी का साहस नहीं होता। स्वयं दुर्योधन उन्हें पकडने के लिए आगे बढ़ता है, पर श्रीकृष्ण अपना विराट् रूप प्रकट कर उसे स्तंभित कर देते हैं। कृष्ण क्रुद्ध होकर सुदर्शन चक्र का आवाहन करते हैं तथा उसे दुर्योधन का वध करने का आदेश देते हैं, पर वह उन्हें वैसा करने से रोकता है। श्रीकृष्ण शान्त हो जाते हैं। जब वे पाण्डव-शिविर में जाने लगते हैं तभी धृतराष्ट्र आकर उनके चरणो पर गिर पडते हैं और श्रीकृष्ण के आदेश से लौट जाते हैं। तत्पश्चात् भरतवाक्य के बाद नाटक की समाप्ति हो जाती है।

इसमे वीर रस की प्रधानता है तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिए आरभटी वृत्ति की योजना की गयी है। शास्त्रीय दृष्टि से यह व्यायोग है। इसका (व्यायोग का) नायक गर्वीला होता है और कथा ऐतिहासिक होती है। इसमे स्त्री पात्रो का अभाव होता है और युद्धादि की प्रधानता होती है। दूतवाक्य मे व्यायोग के सभी लक्षण घट जाते हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे वीररस से पूर्ण वचनो की भरमार है। पाण्डवों की ओर से कौरवो के पास जाकर श्रीकृष्ण के दूतत्व करने में इस नाटक के नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है।

देवताध्यायब्राह्मण—यह सामवेद का ब्राह्मण है तथा सामवेदीय सभी ब्राह्मणों में छोटा है। यह तीन खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में सामवेदीय देवताओं के नाम निर्दिष्ट हैं; जैसे अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, सोम, वरुण, त्वष्टा, अंगिरस, पूषा, सरस्वती

एवं इन्द्राग्नी। द्वितीय खण्ड में छन्दों के देवता और वर्णों का तथा तृतीय खण्ड में छन्दों की निरुक्तियों का वर्णन है। इनकी अनेक निरुक्तियों को यास्क ने भी ग्रहण किया है। इसका प्रकाशन तीन स्थानों से हो चुका है—

क—बर्नेल द्वारा १८७३ ई० मे प्रकाशित ख—सायणभाष्य सहित जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित एवं कलकत्ता से १८८१ ई० मे प्रकाशित ग—केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति से १९६५ ई० में प्रकाशित।

देवकुमारिका—ये संस्कृत की कवयित्री हैं। इनके पति उदयपुर के राणा अमरसिंह थे। इनका समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने 'वैद्यनाथप्रासाद-प्रशस्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसका प्रकाशन 'संस्कृत पोयटेसेज' नामक ग्रन्थ में कलकत्ता से (१९४० ई० मे) हो चुका है। इस ग्रन्थ में १४२ पद्य हैं जो पाँच प्रकरणों में विभक्त हैं। प्रथम प्रकरण में उदयपुर के राणाओं का संक्षिप्त वर्णन है तथा द्वितीय में राणा संग्राम सिंह का अभिषेक वर्णित है। शेष प्रकरणों में मन्दिर की प्रतिष्ठा का वर्णन है।

गुञ्जद् भ्रमद्-भ्रमरराजि-विराजितास्यं
स्तम्बेरमाननमहं नितरां नमामि।
यत्-पादपङ्कज-पराग-पवित्रितानां
प्रत्यूहराशय इह प्रशमं प्रयान्ति॥

देवणभट्ट—राजधर्म के निबन्धकार। इन्होंने 'स्मृतिचन्द्रिका' नामक राजधर्म के निबन्ध की रचना की है। इनके पिता का नाम केशवादित्य भट्टोपाध्याय था। इन्होंने अपने ग्रन्थ मे मामा की पुत्री से विवाह करने का विधान किया है जिसके आधार पर डॉ० शामशास्त्री इन्हें आन्ध्र प्रदेश का निवासी मानते हैं। इनका समय १२६० ई० के आसपास है। 'स्मृतिचन्द्रिका' संस्कृत निबन्ध साहित्य की अत्यन्त मूल्यवान् निधि के रूप मे स्वीकृत है। इसका विभाजन काण्डो मे हुआ है जिसके पाँच ही काण्डों की जानकारी प्राप्त होती है। इन काण्डो को संस्कार, आह्निक, व्यवहार, श्राद्ध एवं शौच कहा जाता है। इनके अतिरिक्त इन्होंने राजनीति काण्ड का भी प्रणयन किया है। देवणभट्ट ने राजनीतिशास्त्र को धर्मशास्त्र का अंग माना है और उसे धर्मशास्त्र के ही अन्तर्गत स्थान दिया है। धर्मशास्त्र द्वारा स्थापित मान्यताओं के पोषण के लिए इन्होने अपने ग्रन्थ मे यत्र-तत्र धर्मशास्त्र, रामायण तथा पुराण आदि के भी उद्धरण प्रस्तुत किये है।

आधारग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्रप्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

देवप्रभसूरि (१२५० ई०)—ये जैन कवि हैं। इन्होने 'पाण्डवचरित' नामक महाकाव्य की रचना १८ सर्गों मे की है जिसमें अनुष्टुप् छन्द मे महाभारत की कथा का संक्षेप में वर्णन है।

देवविमल गणि (१७ शतक)—ये जैन कवि हैं। इन्होंने 'हीरसौभाग्य'

नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें हरविजयसूरि का चरित वर्णित है। सूरिजी ने अकबर को जैनधर्म का उपदेश दिया था। इस महाकाव्य मे १७ सर्ग हैं।

देवी भागवत—देवी या शक्ति के नाम पर प्रचलित पुराण। सम्प्रति 'भागवत' संज्ञक दो पुराणों की स्थिति विद्यमान है—श्रीमद्भागवत' एवं 'देवी भागवत' तथा दोनों को ही महापुराण कहा गया है। 'श्रीमद्भागवत' मे भगवान् विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित किया है और 'देवी भागवत' मे शक्ति की महिमा का बखान है। इस समय प्राप्त दोनो ही भागवतों में १८ सहस्र श्लोक एवं १२ स्कन्ध हैं। 'पद्म', 'विष्णु', 'नारद', 'ब्रह्मवैवर्त', 'मार्कण्डेय', 'वाराह', 'मत्स्य' तथा 'कूर्म महापुराणों' में पौराणिक क्रम से भागवत को पंचम स्थान प्राप्त है किन्तु 'शिवपुराण' के 'रेवा माहात्म्य' में 'श्रीमद्भागवत' नवम् स्थान पर अधिष्ठित कराया गया है। अधिकांशतः पुराणों में 'भागवत' को ही महापुराण की संज्ञा दी गयी है किन्तु यह तथ्य अस्पष्ट रह गया है कि दोनों में से किसे महापुराण माना जाय 'पद्मपुराण' मे सात्त्विक पुराणों के अन्तर्गत 'विष्णु', 'नारद', 'गरुड', 'पद्म', एवं 'वाराह' के साथ 'श्रीमद्भागवत' का भी उल्लेख है।

वैष्णवीयं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गरुडं च तथा पद्मं वाराहं शुभदर्शने॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।

'गरुडपुराण' एवं 'कूर्मपुराण' में भी यह मत व्यक्त किया गया है कि जिसमें हरि या विष्णु का चरित वर्णित है, उसे सात्त्विक पुराण कहते है।

अन्यानि विष्णोः प्रतिपादकानि,
सर्वाणि तानि सात्त्विकानीति चाहुः। गरुडपुराण
सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥ कूर्मपुराण

इस दृष्टि से देवी भागवत का स्थान सात्त्विक पुराणो में नहीं आता। वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कालिका उपपुराण एवं आदित्य उपपुराण देवी भागवत को महापुराण मानते हैं जबकि पद्म, विष्णुधर्मोत्तर, गरुड, कूर्म तथा मधुसूदन सरस्वती के सर्वार्थ संग्रह एवं नागोजीभट्ट के धर्मशास्त्र में इसे उपपुराण कहा गया है।

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं न तु देवीपुराणकम्॥
वायुपुराण, उत्तरखण्ड, मध्यमेश्वरमाहात्म्य ५

पुराणों मे स्थान-स्थान पर 'भागवत' के वैशिष्ट्य पर विचार करते हुए तीन लक्षण निर्दिष्ट किये गए हैं जो 'श्रीमद्भागवत' मे प्राप्त हो जाते हैं। वे हैं—गायत्री से समारम्भ, वृत्रवध का प्रसंग तथा हयग्रीव ब्रह्मविद्या का विवरण।

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुर-वधोपेते तद्भागवतमिष्यते॥ मत्स्य, ५३।२०

हयग्रीव-ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या स समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः॥ वामनपुराण

निबन्ध ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों में 'श्रीमद्भागवत' के ही श्लोक उद्धृत किये गए हैं, देवी भागवत के नहीं। इससे श्रीमद्भागवत की प्राचीनता सिद्ध होती है। बल्लालसेन के 'दानसागर' (समय ११६९ ई०) में कई पुराणों के उद्धरण दिये गए हैं किन्तु 'श्रीमद्भागवत' के सम्बन्ध में कहा गया है कि दानविषयक श्लोकों के न रहने के कारण इसके श्लोक नहीं उद्धृत किये गए।

भागवतं च पुराणं ब्रह्माण्डं चैव नारदीयं च।
दानविधिशून्यमेतत् त्रयमिह न निबद्धमवधार्यं॥

उपोद्घात श्लोक ५७

देवी भागवत के एक पूरे अध्याय (९।३०) मे दान सम्बन्धी पद्य हैं। यदि 'देवी भागवत' उनकी दृष्टि मे 'भागवत' के रूप मे प्रसिद्ध होता तो वे अवश्य ही उसके तत्सम्बन्धी श्लोक को उद्धृत करते। अतः बल्लालसेन के अनुसार 'वैष्णव भागवत' ही भागवत के नाम से कथित होता है। अलबेरूनी (१०३० ई०) के ग्रन्थ मे श्रीमद्भागवतपुराण को वैष्णव पुराणो मे अन्यतम मानकर स्थान दिया गया है किन्तु इसकी किसी भी सूची में 'देवी भागवत' का नाम नही है। इससे इसके अस्तित्व का अभाव परिलक्षित होता है। 'नारदीय पुराण' के पूर्वभाग के ९६ अध्याय में 'श्रीमद्भागवत' के जिन वर्ण्य-विषयो का उल्लेख है वे आज भी भागवत में प्राप्त हो जाते हैं, पर 'देवी भागवत' से उनका मेल नही है। 'श्रीमद्भागवत' में 'देवीभागवत' का कहीं भी निर्देश नहीं है पर 'देवी भागवत' के अष्टम स्कन्ध के भौगोलिक वर्णन पर 'श्रीमद्भागवत' के पंचम स्कन्ध की छाया स्पष्ट है। भुवनकोष के अन्य विभागो के वर्णन मे भी 'देवी भागवत' पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। देवी भागवत में १८ पुराणों के अन्तर्गत भागवत का भी नाम है, तथा उपपुराणो में भी भागवत का नाम दिया गया है। [१।३।१६] उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है, कि वास्तव में श्रीमद्भागवत ही महापुराण का अधिकारी है, तथा इसकी प्राचीनता देवो भागवत से असंदिग्ध है। देवी भागवत में शक्तितत्त्व का प्राधान्य है, और देवी को आदि शक्ति मान कर उनका वर्णन किया गया है।

आधारग्रन्थ—१. देवी भागवत–मूलमात्र, गुटका (पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी) २. देवीभागवत (हिन्दी अनुवाद) गीता प्रेस, गोरखपुर ३. पुराण-विमर्श–पं० बलदेव उपाध्याय।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र—बीसवीं शताब्दी के लेखक और कवि। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ हैं—'यजुर्वेदभाष्यम्', 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाप्रकाशः', 'वेदतत्त्वालोचनम्' 'संस्कृत-साहित्यविमर्शः' एवं 'स्वराज्यविजय' (महाकाव्य)। 'संस्कृतसाहित्यविमर्शः' संस्कृत में रचित संस्कृत साहित्य का बृहत् इतिहास है। इसमें संस्कृत-साहित्य की सभी शाखाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसका रचनाकाल १९५६ ई० है।

'स्वराज्यविजय' महाकाव्य की रचना १९६० ई० में हुई है। इसमें १८ सर्ग हैं तथा भारत की पूर्व समृद्धिशालिता के वर्णन से विदेशियों के आक्रमण, कांग्रेस का जन्म, तिलक, सुभाष, पटेल, गान्धी आदि महान् राष्ट्रीय उन्नायकों के कर्त्तृत्व का वर्णन, क्रान्तिकारियों तथा आतंकवादियों के पराक्रम का उल्लेख किया गया है। भारतीय राष्ट्रीयता एवं युगजीवन की भावनाओं को स्वर देनेवाला यह ग्रन्थ बीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण संस्कृत-रचना है।

द्विसन्धान काव्य—इसके रचयिता का नाम धनंजय है। यह द्व्यर्थी काव्यों में सर्वथा प्राचीन है। भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में महाकवि दण्डी तथा धनंजय के 'द्विसन्धान काव्य' का उल्लेख है। दण्डी की इस नाम की कोई रचना प्राप्त नही होती पर धनंजय की कृति अत्यन्त प्रख्यात है, जो प्रकाशित हो चुकी है। इसका दूसरा नाम 'राघवपाण्डवीय' भी है। इस पर विनयचन्द्र के शिष्य नेमिचन्द्र ने विस्तृत टीका लिखी थी जिसका सार-संग्रह कर जयपुर के बदरीनाथ दाधीच ने 'सुधा' नाम से प्रकाशित किया है। [काव्यमाला, बम्बई से १८९५ ई० मे प्रकाशित] इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त मे धनंजय का नाम लिखा हुआ है। 'सूक्तिमुक्तावली' मे राजशेखर ने इसकी प्रशस्ति की है—

द्विसंधाने निपुणता सतां चक्रे धनञ्जयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः॥

धनंजय का समय दशमी शती के पूर्वार्द्ध से पूर्व है। इन्होने 'नाममाला' नामक कोश की रचना की थी जिससे इन्हे नैघण्टुक धनंजय भी कहा गया है। द्विसन्धान में १८ सर्ग है तथा श्लेषपद्धति से इसमे 'रामायण' एवं 'महाभारत' की कथा कही गयी है।

देशोपदेश—यह क्षेमेन्द्र रचित हास्योपदेश काव्य (सटायर या व्यंग्यकाव्य) है। [दे० क्षेमेन्द्र] इसमे कवि ने काश्मीरी समाज तथा शासक वर्ग का रंगीला एवं प्रभावशाली व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया है [इसका प्रकाशन १९२४ ई० मे काश्मीर संस्कृत सीरीज संख्या ४० से श्रीनगर से १९२४ ई० मे हो चुका है] 'देशोपदेश' मे आठ उपदेश हैं। प्रथम में दुर्जन एवं द्वितीय में कदर्य या कृपण का तथ्यपूर्ण वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में वेश्या के विचित्र चरित्र का वर्णन तथा चतुर्थ मे कुट्टनी की काली करतूतो की चर्चा की गयी है। पंचम में विट एवं षष्ठ मे गोडदेशीय छात्रों का भण्डाफोड किया गया है। सप्तम उपदेश में किसी वृद्ध सेठ की नवीन वयवाली स्त्री का वर्णन कर मनोरंजन के साधन जुटाये गए हैं। अन्तिम उपदेश मे वैद्य, भट्ट, कवि, बनिया, गुरु, कायस्थ आदि पात्रो का व्यंग्यचित्र उपस्थित किया गया है।

[हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा प्रकाशन से प्रकाशित]

द्रौपदी परिणय चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता चक्र कवि हैं। इनके पिता का नाम लोकनाथ एवं माता का नाम अम्बा था। ये पाण्ड्य तथा चेर नरेश के सभा-कवि थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनकी अन्य रचनाएं भी हैं—रुक्मिणीपरिणय, जानकीपरिणय, पार्वतीपरिणय एवं चित्ररत्नाकर। इनमें

जानकीपरिणय तथा चित्ररत्नाकर प्रकाशित हो चुके हैं। द्रौपदीपरिणयचम्पू का प्रकाशन श्रीवाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम् से हो चुका है। यह चम्पू ६ आश्वासों में विभाजित है। इसमें पांचाली के स्वयंवर से लेकर धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देने तथा युधिष्ठिर के राज्य करने तक की घटनायें वर्णित हैं। इसकी कथा का आधार महाभारत के आदिपर्व की एतद्विषयक घटना है। कवि ने अपनी ओर से कोई परिवर्तन नहीं किया है। ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय में कवि-परिचय दिया गया है—

पुत्रं चक्रकवि गणैकवसतिः श्रीलोकनाथः सुधी–
रम्बा सा च पतिव्रता प्रसुषुवे यं मानितं सूरिभिः।
तस्याभूद् द्रुपदात्मजापरिणये चम्पू-प्रबन्धे महा–
नाश्वासः प्रथमो विदर्भतनया पाणिग्रहभ्रातरि॥ पृ० १७

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

धनञ्जय—नाट्यशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'दशरूपक' नामक सुप्रसिद्ध नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है [दे० दशरूपक]। इनका समय दशमशताब्दी का अन्तिम चरण है। धनञ्जय के पिता का नाम विष्णु एवं भाई का नाम धनिक था। धनिक ने 'दशरूपक' की 'अवलोक' नामक टीका लिखी है जो अपने में स्वतन्त्र ग्रन्थ है। परमारवंशी राजा मुञ्ज के दरबार में दशरूपक का निर्माण हुआ था। मुञ्ज का शासन काल ९७४ से ९९४ ई० तक है। स्वयं लेखक ने भी इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है—

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्॥ दशरूपक ४।८६

'दशरूपक' में चार प्रकाश एवं तीन सौ कारिकायें हैं। इस पर धनिक की व्याख्या के अतिरिक्त बहुरूप मिश्र की भी टीका प्राप्त होती है। धनिक के 'अवलोक' पर भी नृसिंह की टीका है। इन्होंने भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' की भी टीका लिखी है। दशरूपक में रूपक सम्बन्धी प्रमुख प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है और रस के सम्बन्ध में अनेक नवीन तथ्य प्रकट किये गए हैं। धनञ्जय एवं धनिक दोनों ही ध्वनि विरोधी आचार्य हैं। ये रस को व्यंग न मान कर भाव्य मानते हैं। अर्थात् इनके अनुसार रस और काव्य का सम्बन्ध भाव-भावक का है। न रसादीनांकाव्येन सह व्यंग्यव्यंजकभावः किं तर्हि भाव्यभावकसम्बन्धः। काव्यं हि भावकं भाव्या रसादयः। अवलोकटीका, दशरूपक ४।३०।

इन्होंने शान्त रस को नाटक के लिए अनुपयुक्त माना है क्योंकि शम की अवस्था में व्यक्ति की लौकिक क्रियाएँ लुप्त हो जाती है, अतः उसका अभिनय संभव नहीं है। इनकी यह भी मान्यता है कि रस का अनुभव दर्शक या सामाजिक को होता है अनुकार्य को नहीं।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात् ।
नानुकार्यस्य वृत्तत्वात् काव्यस्यातत्परत्वतः ॥ ४।३८ ।

आधारग्रन्थ—१. हिन्दी दशरूपक–डॉ० भोलाशङ्कर व्यास २. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–डॉ० पा० वा० काणे ।

धनेश्वर सूरि (६१० ई०)—ये प्रसिद्ध जैनाचार्य थे। इन्होंने 'शत्रुञ्जय' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसमें १४ सर्गों मे राजाओं की प्रसिद्ध दन्तकथा का वर्णन है।

धर्मकीर्त्ति—बौद्धप्रमाणशास्त्र के अद्भुत विद्वानों मे आचार्य धर्मकीर्त्ति का नाम लिया जाता है (दे० बौद्धदर्शन)। ये आचार्य दिङ्नाग की शिष्य परम्परा के आचार्य ईश्वरसेन के शिष्य थे। इनका उल्लेख चीनी यात्री इत्सिङ्ग के ग्रन्थ मे है। तिब्बती परम्परा के अनुसार ये कुमारिल भट्ट (दे० कुमारिल) के भागिनेय माने जाते हैं। इनका जन्म चोलदेश के अन्तर्गत 'तिरुमलई' नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। किंवदन्तियाँ इन्हें, ब्राह्मणदर्शन के अध्ययन के हेतु, कुमारिल के यहाँ सेवक के रूप में रहने का भी कथन करती है। पर, सारी बातें कपोलकल्पित हैं। नालन्दा के तत्कालीन पीठस्थविर धर्मपाल से दीक्षा ग्रहण कर ये धर्मसंघ मे दीक्षित हुए थे। इनका समय ६२५ ई० के लगभग है। बौद्धप्रमाणशास्त्र पर इन्होंने सात ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनमे 'प्रमाणवार्त्तिक' एवं 'न्यायबिन्दु' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

१. प्रमाणवार्त्तिक—यह १५०० श्लोकों मे रचित बौद्धन्याय का युगप्रवर्त्तक ग्रन्थ हैं। स्वयं धर्मकीर्त्ति ने इस पर टीका लिखी है। इसमे चार परिच्छेद है। जिनमें क्रमशः स्वार्थानुमान, प्रमाणसिद्धि, प्रत्यक्षप्रणाम एवं परार्थानुमान का विशद विवेचन है।

२. प्रमाण विनिश्चय—इसकी रचना १३४० श्लोकों में हुई है, किन्तु मूलग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

३. न्यायबिन्दु—यह बौद्धन्याय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी रचना सूत्रशैली में हुई है। यह ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में है। प्रथम परिच्छेद में प्रमाण एवं प्रत्यक्ष का विवेचन है तथा द्वितीय में अनुमान के दो प्रकारों–स्वार्थ एवं परार्थानुमान तथा हेत्वाभास का निरूपण है। तृतीय परिच्छेद में परार्थानुमान एवं तत्संबंधी विविध विषय वर्णित हैं। (हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा संस्कृत सरीज में प्रकाशित)।

४. सम्बन्ध—परीक्षा एवं ५ हेतुबिन्दु दोनों लघु ग्रन्थ हैं।

६ वादन्याय में वादों का वर्णन है।

७. सन्तानान्तर सिद्धि—यह लघु ग्रन्थ है जिसमें ७२ सूत्र हैं।

आधारग्रन्थ—१. बौद्धदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय २. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास—डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डे।

धर्मविजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता नल्ला दीक्षित हैं जिनका समय

१६८४ से १७१० ई० के आसपास है। इनके गुरु का नाम रामभद्र दीक्षित था तथा ये उनके ही परिवार से सम्बद्ध थे। इस चम्पू मे तंजोर के शासक शाहजी की जीवन-कथा वर्णित है। इसमे चार स्तबक हैं। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग ४२३१ में प्राप्त होता है। इसके प्रारम्भ में श्रीरामचन्द्र की स्तुति है—

विबुधकुलसमृद्धिः सुस्थिरा येन क्लृप्ता प्रणमदभयदाने यस्य दीक्षा प्रतीता।
जनकनृपतिकन्याधन्यपार्श्वः स देवः सहृजिनरपतीन्दोः श्रेयसे भूयसेऽस्तु ॥ १ ॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

धर्मसूत्र—इन्हें कल्प का अंग माना जाता है [दे० कल्प]। धर्मसूत्रों का सम्बन्ध आचार-नियमो से था अतः आर्य लोग इन्हें प्रमाण स्वरूप मानते थे। वर्ण्यविषय एवं प्रकरण की दृष्टि से धर्मसूत्रो का गृह्यसूत्रों से अत्यन्त नैकट्य दिखाई पड़ता है। इनमें विवाह, संस्कारों, विद्यार्थियो, स्नातकों, श्राद्ध तथा मधुपर्क आदि का विवेचन है। धर्मसूत्रों मे गृह्यजीवनविषयक संस्कारों की चर्चा बहुत अल्प परिणाम में हुई है किन्तु इनका मुख्य लक्ष्य आचार, विधि-नियम एवं क्रियासंस्कारों की चर्चा करना था। प्रसिद्ध धर्मसूत्र है—'गौतमधर्मसूत्र', 'बौधायनधर्मसूत्र', 'आपस्तम्बधर्मसूत्र', 'हिरण्यकेशिधर्मसूत्र', 'वसिष्ठधर्मसूत्र', 'विष्णुधर्मसूत्र', 'हारीतधर्मसूत्र' तथा 'शंखधर्मसूत्र'। इनमे से अन्तिम दो को छोड कर सभी का प्रकाशन हो चुका है। कुमारिलभट्ट के 'तन्त्रवार्तिक' में विभिन्न वेदो के धर्मसूत्रों का उल्लेख है। 'गौतमधर्मसूत्र' का सामवेदी लोग अध्ययन करते थे, 'वसिष्ठधर्मसूत्र' ऋग्वेदी लोगों के अध्ययन का विषय था, शंखकृत धर्मसूत्र का अध्ययन 'वाजसनेयी संहिता' के अनुयायियों द्वारा होता था एवं आपस्तम्ब और बोधायन-धर्मसूत्रो को तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी पढा करते थे।

ध्वन्यालोक—ध्वनिसम्प्रदाय (काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय) का प्रस्थान ग्रन्थ। इसके रचयिता आ० आनन्दवर्धन है [दे० आनन्दवर्धन]। 'ध्वन्यालोक' भारतीय काव्यशास्त्र का युगप्रवर्त्तक ग्रन्थ है जिसमें ध्वनि को सार्वभौम सिद्धान्त का रूप देकर उसका सांगोपांग विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ चार उद्योतों में विभक्त है और इसके तीन भाग है—कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण। प्रथम उद्योत में ध्वनि सम्बन्धी प्राचीन आचार्यों के मत का निर्देश करते हुए ध्वनि विरोधी तीन सम्भाव्य आपत्तियों का निराकरण किया गया है। इसी उद्योत मे ध्वनि का स्वरूप बतलाकर उसे काव्य का एकमात्र प्रयोजक तत्त्व स्वीकार किया गया है और बतलाया गया है कि किसी भी काव्यशास्त्रीय—अलंकार, रीति, वृत्ति, गुण आदि—सम्प्रदाय में ध्वनि का समाहार नही किया जा सकता प्रत्युत् उपर्युक्त सभी सिद्धान्त ध्वनि में ही समाहित किये जा सकते हैं। द्वितीय उद्योत में ध्वनि के भेदो का वर्णन तथा इसी के एक प्रकार असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के अन्तर्गत रस का निरूपण है। रसवदलंकार एवं रसध्वनि का पार्थक्य प्रदर्शित करते हुए गुण एवं अलंकार का स्वरूप-निदर्शन

किया गया है। तृतीय उद्योत इस ग्रन्थ का सबसे बडा अंश है जिसमे ध्वनि के भेद एवं प्रसंगानुसार रीतियों तथा वृत्तियों का विवेचन है। इसी उद्योत में भाट्ट एवं प्रभाकर प्रभृति तार्किकों एवं वेदान्तियों के मतों में ध्वनि की स्थिति दिखलाई गयी है और गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य का वर्णन किया गया है। चतुर्थ उद्योत मे ध्वनि सिद्धान्त की व्यापकता एवं उसका महत्त्व वर्णित कर प्रतिभा के आनन्त्य का वर्णन है।

'ध्वन्यालोक' के अन्य नाम भी प्रसिद्ध हैं— सहृदयालोक एवं काव्यालोक। इस पर एकमात्र टीका अभिनवगुप्त कृत 'लोचन' प्राप्त होती है। अभिनव ने अपने ग्रन्थ में चन्द्रिका नामक टीका का भी उल्लेख किया है किन्तु यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। आधुनिक युग में आचार्य बदरीनाथ झा ने इस पर टीका की रचना की है जो चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है।

सम्प्रति 'ध्वन्यालोक' एवं 'लोचन' के कई हिन्दी अनुवाद एवं भाष्य प्राप्त होते है। इसमें कुल १०७ कारिकाएँ है—१९ + ३३ + ४८ + १७ = १०७।

क—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि कृत हिन्दी भाष्य–ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी। ख—आचार्य बदरीनाथ कृत हिन्दी टीका–चौखम्बा प्रकाशन। ग— डॉ० रामसागर त्रिपाठी कृत ध्वन्यालोक एवं 'लोचन' का 'तारावती' नामक हिन्दी भाष्य–मोतीलाल बनारसीदास। घ—आचार्य जगन्नाथ पाठक कृत ध्वन्यालोक एवं लोचन का हिन्दी भाष्य–चौखम्बा प्रकाशन। ङ—ध्वन्यालोक एवं लोचन के प्रथम उद्योत की हिन्दी टीका–श्रीमती आशालता। च—डॉ० कृष्णमूर्त्ति कृत ध्वन्यालोक का अंगरेजी अनुवाद। छ—डॉ० जैकोबी कृत ध्वन्यालोक का जर्मन अनुवाद।

आधार ग्रन्थ—आ० विश्वेश्वर कृत टीका तथा डॉ० नगेन्द्र रचित भूमिका।

नन्दिकेश्वर—इन्होंने 'अभिनय-दर्पण' नामक नृत्यकलाविषयक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में काव्यविद्या की उत्पत्ति पर विचार करते हुए काव्य पुरुष के १८ स्नातकों का उल्लेख किया है जिनमे नन्दिकेश्वर का भी नाम है। इन्होने रसविषय पर ग्रन्थ लिखा था, ऐसा विचार राजशेखर का है—'रसाधिकारिकंनन्दिकेश्वरः'। बहुत दिनो तक भरत एवं नन्दिकेश्वर को एक ही माना जाता था, किन्तु 'अभिनयदर्पण' के प्रकाशित हो जाने से यह भ्रम दूर हो गया। नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रन्थ में भरत द्वारा निर्मित 'नाट्यशास्त्र' का उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि दोनो ही व्यक्ति भिन्न थे एवं नन्दिकेश्वर भरत के परवर्त्ती थे।

नाट्यवेदं ददौ पूर्वं भरताय चतुर्मुखः।
ततश्च भरतः सार्धं गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥ २॥
नाट्यं नृत्तं तथा नृत्यमग्रे शम्भोः प्रयुक्तवान्॥

डॉ० मनमोहन घोष ने 'अभिनयदर्पण' के आँग्लानुवाद की भूमिका मे सिद्ध किया है कि नन्दिकेश्वर का समय ५ वीं शताब्दी है, पर अनेक विद्वान् इनका समय १२ वीं–

१३ वीं शताब्दी के बीच मानते हैं। 'अभिनयदर्पण' में ३२४ श्लोक हैं और भगवान् शंकर की वन्दना करने के उपरान्त नाट्यशास्त्र की परम्परा एवं अभिनयविधि का वर्णन है। इसमें अभिनय के तीन भेद बताये गए हैं—नाट्य, नृत्त और नृत्य और तीनों के प्रयोगकाल का भी निर्देश है। नाट्य के छह तत्त्व कहे गए है—नृत्य, गीत, अभिनय, भाव, रस और ताल। इनमे से अभिनय के चार प्रकार बताये गए हैं—आंगिक, वाचिक आहार्य और सात्त्विक। इसमें मुख्य रूप से सोलह प्रकार के अभिनय एवं उनके भेदो का वर्णन है और अभिनयकाल तथा १३ हस्तमुद्राओं का उल्लेख है। हस्तगति की भाँति इसमें पादगति का भी वर्णन है और उसके भी तेरह प्रकार माने गए हैं। शास्त्र एवं लोक दोनो के ही विचार से 'अभिनय-दर्पण' एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसका अँगरेजी अनुवाद डॉ० मनमोहन घोष ने किया है। हिन्दी अनुवाद श्रीवाचस्पति-शास्त्री 'गैरोला' ने किया है।

आधारग्रन्थ—भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय-दर्पण—श्री वाचस्पति शास्त्री।

नर्ममाला—यह हास्योपदेशक या व्यंग्य काव्य है जिसके रचयिता क्षेमेन्द्र हैं। पुस्तक की रचना के उद्देश्य पर विचार करते हुए लेखक ने सज्जनों के विनोद को ही अपना लक्ष्य बनाया है।

अपि सुजन-विनोदायोम्भिता हास्यसिद्धैः।
कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम् ॥ ३।१४४ नर्ममाला ॥

इसमे तीन परिच्छेद या परिहास है। इनमे कायस्थ, नियोगी आदि अधिकारियो की घृणित लीलाओं का सूक्ष्म दृष्टि से वणन है। कवि ने समकालीन समाज एवं धर्म का पर्यवेक्षण करते हुए उनकी बुराइयों का चित्रण किया है, किन्तु कहीं-कही वर्णन ग्राम्य, भोडा एवं उद्वेगजनक हो गया है। इसमें घूस लेना, जालसाजी या कूटलेख का वर्णन बडा ही हृदयग्राही है। क्षेमेन्द्र की यह रचना संस्कृत-साहित्य मे सर्वथा नवीन क्षितिज का उद्घाटन करने वाली है।

नरचन्द्र उपाध्याय—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका समय चौदहवी शताब्दी है। इन्होने ज्योतिषशास्त्रविषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, किन्तु सम्प्रति 'बेडाजातकवृत्ति', 'प्रश्नशतक' 'प्रश्नचतुर्विंशतिका', 'जन्मसमुद्रसटीक', 'लग्नविचार' तथा 'ज्योतिषप्रकाश' नामक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। 'बेडाजातकवृत्ति' का रचनाकाल सं० १३२४ माघ सुदी ८ रविवार बतलाया जाता है। इस ग्रन्थ मे १०५० श्लोक है। 'ज्योतिषप्रकाश' फलित ज्योतिष की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमे मुहूर्त्त एवं संहिता का सुन्दर विवेचन है। 'बेडाजातकवृत्ति' मे लग्न तथा चन्द्रमा के द्वारा सभी फलों पर विचार है।

आधारग्रंथ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

नरसिंह कवि—अलंकारशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'नञ्जराजयशोभूषण' नामक की रचना विद्यानाथ कृत 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' के अनुकरण पर की है। यह ग्रन्थ मैसूर राज्य के मन्त्री नञ्जराज की स्तुति में लिखा गया है। इसमें सात विलास हैं

जिसमें नायक, काव्य, ध्वनि, रस, दोष, नाटक एवं अलंकार का विवेचन है। प्रत्येक विषय के उदाहरण में नञ्जराज सम्बन्धी स्तुतिपरक श्लोक दिये गए हैं और नाटक के विवेचन मे षष्ठ विलास मे स्वतन्त्ररूप से एक नाटक की रचना कर दी गयी है। दक्षिण नायक का उदाहरण देखिए—

धम्मिल्ले नवमल्लिकाः स्तनतटे पाटीरचर्यां गले,
हारं मध्यतले दुकूलममलं दत्वा यशःकैतवात्।
यः प्राग् दक्षिणपश्चिमोत्तरदिशाः कान्ताः समं लालय-
त्यास्ते निस्तुलचातुरीकृतपदः श्रीनञ्जराजाग्रणीः॥

इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियन्ट सीरीज ग्रन्थ सं० ४७ से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १, आ० बलदेव उपाध्याय।

नलचम्पू—यह महाकवि त्रिविक्रमभट्ट विरचित संस्कृत का प्रसिद्ध चम्पू काव्य है। इसमे निषध नरेश महाराज नल एवं भीमसुता दमयन्ती की प्रणयकथा वर्णित है। पुस्तक का विभाजन उच्छ्वासो मे हुआ है और कुल सात उच्छ्वास है [दे० त्रिविक्रमभट्ट]। प्रथम उच्छ्वास—इसका प्रारम्भ चन्द्रशेखर भगवान् शंकर तथा कवियो के वाग्विलास की प्रशंसा से हुआ है। सत्काव्य-प्रशंसा, खलनिन्दा एवं सज्जन-प्रशंसा के पश्चात् वाल्मीकि, व्यास, गुणाढ्य एवं बाण की प्रशंसा की गयी है। तदनन्तर कवि स्वकाव्य का उद्देश्य एवं अपने वंश का वर्णन करता है। चम्पूकाव्य की प्रशंसा, आर्यावर्त्त-वर्णन, आर्यावर्त्त के निवासियो का सौख्यवर्णन, आर्यावर्त्त के अन्तर्गत विविध जनपदो एवं निषधा नगरी का वर्णन करने के पश्चात् नल एवं उनके मन्त्री का वर्णन किया गया है जिसका नाम श्रुतशील है। नल का व्यावहारिक जीवन-वर्णन, वर्षा-वर्णन करने के बाद एक उपद्रवी सूकर का कथन किया गया है जिसे मारने के लिए राजा आखेट के लिए प्रस्थान करता है। चिरकाल तक युद्ध करने के पश्चात् सूकर सम्राट् के ऊपर नल नरेश विजय प्राप्त करते है। आखेट के बाद उजड़े हुए वन का वर्णन तथा आखेट के कारण थके हुए नल का शालवृक्ष के नीचे विश्राम करना वर्णित है। इसी बीच दक्षिण देश से एक पथिक का आगमन होता है और वह वार्त्तालाप के क्रम मे दक्षिण दिशा-तीर-भूमि एवं युवती, दमयन्ती, का वर्णन करता है। पथिक ने यह भी सूचना दी कि उस युवती (दमयन्ती) के समक्ष एक युवक (राजा नल) की भी प्रशंसा किसी पथिक द्वारा हो रही थी। उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुन कर दमयन्ती के प्रति नल का आकर्षण होता है और पथिक चला जाता है। तत्पश्चात् कवि ने कामक्लान्त नल का वर्णन किया है।

द्वितीय उच्छ्वास—वर्षा-काल की समाप्ति तथा शरद् ऋतु का आगमन, किन्नर मिथुन द्वारा गाये गए तीन श्लोक, गीत ध्वनि से उत्कण्ठित राजा का वन-विहार तथा वन-पालिका द्वारा वन-सुषमा वर्णन। मनोविनोद के हेतु घूमते हुए नल के समक्ष श्वेत पंखों से पृथ्वी को सुशोभित करती हुई हंसों की मंडली का उतरना एवं भूख की तृप्ति के लिए कमलनाल का तोड़ने लगना। कौतुकवश नल का उन्हें पकड़ने का

यत्न करना तथा उनमें से एक को पकड़ लेना। हंस द्वारा राजा की स्तुति तथा हंस के वचन पर नल का आश्चर्यित होना। हंस को पकडा गया देख कर कुपित होकर हंसी का श्लिष्ट कथन तथा नल का उसका उत्तर देना, हंसी तथा हंस के प्रणय-कलह का वर्णन, हंस द्वारा राजा एवं राजहंस की समानता का वर्णन तथा अनुकूल कलत्र सुख का वर्णन। आकाशवाणी द्वारा यह सूचना प्राप्त होना कि दमयन्ती को आकृष्ट करने के लिए यह हंस दूतत्व करेगा। राजा का दमयन्ती के विषय में हंस से प्रश्न पूछना तथा हंस का दक्षिण देश, कुण्डिनपुर, राजा भीम एवं उनकी पत्नी प्रियङ्गुमञ्जरी का वर्णन करना। अपने बच्चे को लेकर जाती हुई एक बन्दरी को देखकर सन्तान के उत्कण्ठित प्रियंगुमंजरी का महेश्वर की आराधना में संलग्न होना। चन्द्रिका का वर्णन।

तृतीय उच्छ्वास—प्रियगुमंजरी का स्वप्न मे भगवान् शंकर का दर्शन करना और दमनक मुनि के आनमन की सूचना, प्रभात-वर्णन एवं प्रियंगुमंजरी द्वारा सूर्य की स्तुति। प्रातःकाल में प्रियंगुमंजरी का प्रसन्न होना तथा राजा भीम का भी स्वप्न में भगवान् शंकर का दर्शन करना एवं पुरोहित द्वारा स्वप्न का फल कहा जाना। दमनक मुनि का आगमन तथा मुनि को कन्या-लाभ का वरदान देना। कन्या-लाभ के वरदान मे असन्तुष्ट प्रियंगुमंजरी की श्लेषमाध्यम से कटूक्तियाँ तथा दमनक मुनि का प्रतिवचन। रानी द्वारा क्षमायाचना एवं मुनि का प्रस्थान, मध्याह्न वर्णन, राजा का स्नान एवं आहारादि का वर्णन। प्रियंगुमजरी का गर्भधारण, दमयन्ती का जन्म, नामकरण, उसके शैशव, शिक्षा एवं तारुण्य का वर्णन।

चतुर्थ उच्छ्वास—हंस द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन सुन कर राजा नल की उत्कण्ठा, हंस-विहार, हंस का कुण्डिनपुर जाना तथा राजा नल के रूप-गुण का वर्णन करना, 'नल' का नाम सुनते ही दमयन्ती का रोमांचित हो जाना। दमयन्ती का नल सम्बन्धी विविध प्रश्न पूछना एवं हंस का नलोत्पत्ति वर्णन, नल की शिक्षा, तारुण्य एवं उसके मन्त्री श्रुतशील का वर्णन, नल के लिए सालङ्कायन का उपदेश, वीरसेन का सालङ्कायन की नीति का समर्थन, नल का राज्याभिषेक-वर्णन, पत्नी के साथ वीरसेन का वानप्रस्थ अवस्था व्यतीत करने के लिए वन-प्रस्थान तथा पिता के अभाव मे नल की उदासीनता का वर्णन।

पंचम उच्छ्वास—नल का गुण श्रवण करने के पश्चात् दमयन्ती के मन में नल-विषयक उत्कण्ठा का होना, दमयन्ती का हंस को हारलता देना तथा हंस का प्रस्थान। दमयन्ती की नलविषयक उत्सुकता, राजहंसो का निषेधोद्यान में उतरना एवं सरोवर रक्षिका का राजा को हंसों के आगमन की सूचना देना। वनपालिका का राजा के निकट हंस को लाना तथा हंस द्वारा राजा की स्तुति। हंस का प्रारम्भ से हारलता समर्पण पर्यन्त दमयन्ती का वृत्तान्त कहना तथा हंस का नल को हारलता देना। हंस-नल-संवाद एवं हंस का प्रस्थान, नल तथा दमयन्ती का वियोग-वर्णन। दमयन्ती के स्वयंवर की तैयारी, उत्तरदिशा में निमन्त्रण देने जाने वाले दूत से दमयन्ती

की श्लिष्ट बातचीत, उत्तर दिशा से आये हुए दूत से नल का वृत्तान्त-श्रवण। सेना के साथ नल का विदर्भदेश के लिए प्रस्थान करना तथा श्रुतशील द्वारा अरण्यशोभा-वर्णन, नर्मदा के तट पर सैन्यवास-निर्माण, इन्द्रादि लोकपालों का आगमन, लोकपालों द्वारा दमयन्ती दौत्यकार्य में नल की नियुक्ति तथा लोकपालों का दूत बनने के कारण नल का चिंतित होना। श्रुतशील का नल को सान्त्वना देना, श्रुतशील सहित नल का एकान्त में मनोविनोद के लिए गमन, वहाँ किरात कामिनियों का दर्शन, दूसरा स्थान दिखाने के बहाने श्रुतशील द्वारा नल की मनोवृत्ति को दूसरी ओर फेरना, रेवा-पुलिन-दर्शन। स्वयंवर में नल की सफलता के संबंध में श्रुतशील का कुछ तर्क उपस्थित करना। सन्ध्या-वर्णन।

षष्ठ उच्छ्वास—प्रभातवर्णन, तम्बू आदि का बटोरा जाना एवं पुनः अग्रिम यात्रा की तैयारी, नल का भगवान् सूर्य एवं नारायण की स्तुति करना, विन्ध्याटवी का वर्णन, विदर्भदेश के मार्ग मे दमयन्ती के दूत पुष्कराक्ष का नल से मिलना और दमयन्ती के प्रणय-पत्र को नल को अर्पित करना, नल और पुष्कराक्ष का संवाद, मध्याह्न-वर्णन, पयोष्णी-तट पर सेना का विश्राम, पयोष्णी-तट एवं वहाँ के निवासी मुनियों का वर्णन, मुनियो का राजा को आशीर्वाद देना, दमयन्ती द्वारा प्रेषित किन्नर मिथुन से नल का मिलन, सन्ध्यावर्णन, नल का किन्नर मिथुन आदि के साथ शिविर की ओर परावर्त्तन, रात मे सुन्दरक तथा विहङ्गवागुरिका नाम वाले किन्नर मिथुन द्वारा दमयन्ती-वर्णनविषयक गीत, रात मे नल का विश्राम, प्रातः वर्णन, अग्रिम यात्रा की तैयारी, पुष्कराक्ष के साथ जाते हुए नल द्वारा अपनी प्रिया मे अनुरक्त एक हाथी का अवलोकन, हाथी का वर्णन, विन्ध्याचल-वर्णन, विदर्भानदी, विदर्भ की प्रजा, अग्रहारभूमि का वर्णन, नल का चित्र बनाती हुई ग्राम्य स्त्रियों का वर्णन, शाकवाटिका-उद्यान, वरदाविदर्भा-संगम, सैन्य-शिविर-वर्णन, कुण्डिनपुर मे नल के आगमन के उपलक्ष्य मे हर्ष।

सप्तम उच्छ्वास—नल के समीप विदर्भ-सम्राट् का आगमन, अन्योऽन्य कुशल-प्रश्न, विदर्भेश्वर का विनय-प्रदर्शन, विदर्भेश्वर का अपने राजभवन के लिए प्रस्थान तथा नल का औत्सुक्य, दमयन्ती द्वारा भेजी गयी उपहारसहित कुबडी, नाटी और किरात कन्याओं का नल के समीप आगमन तथा नल को देखकर उनका विस्मय। नल के कुशल-प्रश्न के बाद उन कन्याओं का दमयन्ती-भवन के लिए प्रस्थान। नल द्वारा प्रवंतक, पुष्कराक्ष और किन्नर-मिथुन का दमयन्ती के पास भेजा जाना। दोपहर के समय नल एवं उसकी सेना का भोजन वर्णन, नल का मनोविनोद तथा औत्सुक्य, दमयन्ती के यहाँ से पर्वतक का लौटना तथा अन्तःपुर एवं दमयन्ती का वर्णन, नल का देवदूत होना जानकर दमयन्ती विषण्ण होती है एवं पर्वतक उसका वर्णन करता है। सन्ध्या एवं चन्द्रोदय-वर्णन। इन्द्र के वरप्रभाव से नल का कन्यान्तःपुर में प्रवेश एवं दमयन्ती का पर्यवेषण तथा उसका स्वगत-वर्णन। कन्यान्तःपुर में नल का प्रकट होना तथा दमयन्ती एवं उसकी सखियों का विस्मय, नल-विहङ्गवागुरिका

संवाद, दमयन्ती का अन्योऽन्यदर्शन और तन्मूलक रसानुभूति, नल द्वारा परतन्त्रता की निन्दा। नल द्वारा दमयन्ती के समक्ष इन्द्र का सन्देश सुनाया जाना, दमयन्ती का देवताओं के प्रति अनिच्छा प्रकट करना तथा नल का देव-वैभव वर्णन करना, दमयन्ती का विषण्ण होना एवं प्रियंवदिका का नल को उत्तर देना, नल का दमयन्ती के भवन से प्रस्थान करना। उत्कण्ठा-पूर्ण स्थिति में हरचरणसरोज ध्यान के साथ किसी-किसी तरह नल द्वारा रात्रियापन।

'नलचम्पू' मे नल-दमयन्ती की पूरी कथा वर्णित न होकर आधे वृत्त का ही वर्णन किया गया है। यह शृङ्गारप्रधान रचना है, अतः इसकी सिद्धि के लिए कई मनोरंजक घटनाओ की योजना की गई है। (अन्य विवरण के लिए देखिए—त्रिविक्रमभट्ट)।

आधार ग्रन्थ—नलचम्पू–(हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन अनु० श्री कैलासपति त्रिपाठी।

नागार्जुन—बौद्धदर्शन के असाधारण विद्वानो में नागार्जुन का नाम लिया जाता है। ये शून्यवाद (बौद्धदर्शन का एक सिद्धान्त) के प्रवर्त्तक थे। ये विदर्भ के एक ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न हुए थे और आगे चल कर बौद्धधर्म मे दीक्षित हुए। [शून्यवाद के लिए दे० बौद्धदर्शन]। इनका समय १६६ से १९६ ई० माना जाता है। इन्होने सर्वप्रथम शून्यवाद को दार्शनिक रूप दिया था। चीनी तथा तिब्बती भाषा मे इनके २० ग्रन्थो के अनुवाद प्राप्त होते है जिनमे १२ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी रचनाओं के नाम है—माध्यमिक कारिका (माध्यमिक शास्त्र), दशभूमिविभाषाशास्त्र, महाप्रज्ञापारिमितासूत्र—कारिका, उपायकौशल्य, प्रमाण-विध्वंसन, विग्रह-व्यावर्तिनी, चतुःस्तव, युक्ति-षष्ठिका, शून्यता-सप्तति, प्रतीत्यसमुत्पादहृदय, महायान विंशक तथा सुहृल्लेख, इनमे से केवल दो ही ग्रन्थ मूलरूप मे (संस्कृत मे) उपलब्ध होते है—'माध्यमिक कारिका' एवं 'विग्रह-व्यावर्तिनी'।

'माध्यमिक कारिका' की रचना २७ प्रकरणो मे हुई है और 'विग्रहव्यावर्तिनी' में ७२ कारिकाएँ है। दोनो ग्रन्थो में शून्यवाद का प्रतिपादन कर विरोधियो के तर्क का निरास किया गया है।

आधार ग्रन्थ—१. बौद्धदर्शन–आ० बलदेव उपाध्याय २. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास–डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास–गैरोला।

नागानन्द—यह पाँच अंको का नाटक है जिसके प्रणेता महाकवि हर्षवर्धन है। इसमे कवि ने विद्याधरराज के तनय जीमूतवाहन की प्रेमकथा एवं त्यागमय जीवन का वर्णन किया है। इस नाटक का स्रोत बौद्ध-कथा है जिसका मूल 'बृहत्कथा' एवं 'वैताल-पञ्चविंशति' में प्राप्त होता है।

प्रथम अंक—विद्याधरराज जीमूतकेतु वृद्ध होने पर वानप्रस्थ ग्रहण करते हैं। वे इस अभिलाषा से वन की ओर प्रस्थान करते हैं कि उनके पुत्र जीमूतवाहन का राज्याभिषेक हो जाय; किन्तु पितृभक्त जीमूतवाहन राज्य का त्याग कर पिता की सेवा के निमित्त अपने मित्र आत्रेय के साथ वन प्रस्थान करता है। वह पिता के स्थान की

खोज करता हुआ मलय पर्वत पर पहुँचता है जहाँ देवी गौरी के मन्दिर में अर्चना करती हुई उसे मलयवती दिखाई पडती है। दोनों मित्र गौरी देवी के मन्दिर में जाते हैं और मलयवती के साथ उनका साक्षात्कार होता है। मलयवती को स्वप्न में देवी गौरी उसका भावी पति जीमूतवाहन को बतलाती हैं। जब वह स्वप्न-वृत्तान्त को अपनी सखी से कहती है तभी जीमूतवन झाडी में छिपकर उनकी बातें सुन लेता है। विदूषक दोनों के मिलन की व्यवस्था करता है, किन्तु एक सन्यासी के आने से उनका मिलन सम्पन्न नही होता।

द्वितीय अंक में मलयवती का चित्रण कामाकुल स्थिति में किया गया है। जीमूतवाहन भी प्रेमातुर है। इसी बीच मित्रवसु आता है और अपनी बहिन मलयवती की मनःव्यथा को जानकर वह उसका विवाह किसी अन्य राजा से करना चाहता है। मलयवती को जब यह सूचना प्राप्त होती है तब वह प्राणान्त करने को प्रस्तुत हो जाती है, पर सखियो द्वारा यह कृत्य रोक लिया जाता है। जब मित्रवसु को ज्ञात होता है कि उसकी बहिन उसके मित्र से विवाह करना चाहती है तो वह प्रसन्न चित्त होकर उसका विवाह जीमूतवाहन से कर देता है।

तृतीय तथा चतुर्थ अंक में नाटक के कथानक में परिवर्त्तन होता है। एक दिन भ्रमण करते हुए जीमूतवाहन तथा मित्रवसु समुद्र के किनारे पहुच जाते है जहां उन्हे तत्काल वध किये गए सर्पों की हड्डियो का ढेर दिखाई पडता है। वहाँ पर उन्हे शंखचूड नामक सर्प की माता विलाप करती हुई दिखाई पडती है जिससे विदित होता है कि ये हड्डियाँ गरुड के प्रतिदिन आहार के रूप मे खाये गये सर्पों की है। इस वृत्तान्त को जान कर जीमूतवाहन अत्यन्त दुःखित होता है और अपने मित्र को एकाका छोड कर वह बलिदान-स्थल पर जाता है जहाँ शंखचूड की मा विलाप कर रही है, क्योकि उस दिन उसके पुत्र की बलि होनेवाली है। जीमूतवाहन प्रतिज्ञा करता है कि वह स्वयं अपना प्राण देकर इस हत्याकाण्ड को बन्द करेगा।

पञ्चम अंक मे जीमूतवाहन पूर्वनिश्चय के अनुसार बलिदान के स्थान पर जाता है जिसे गरुड अपने चंचु में लेकर मलयपर्वत पर चल देता है। जीमूतवाहन को लौटा हुआ न देखकर उसके परिवार के लोग उद्विग्न हो जाते हैं। इसी बीच रक्त एवं मास से लथपथ जीमूतवाहन की चूडामणि उसके पिता के समीप गिर पडती है और सभी लोग चिन्तित होकर उसकी खोज में निकल पडते है। मार्ग मे जीमूतवाहन के लिए रोता हुआ शंखचूड़ मिलता है और सारा वृत्तान्त कह सुनाता है। सभी लोग गरुड के पास पहुँचते हैं। गरुड जीमूतवाहन को खाते-खाते उसका अद्भुत धैर्य देखकर उससे परिचय पूछते हैं और चकित हो जाते हैं। इसी बीच शङ्खचूड के साथ जीमूतवाहन के माता-पिता पहुँचते हैं और शंखचूड गरुड को अपनी गलती बतलाता है। गरुड अत्यधिक पश्चात्ताप करते हुए आत्महत्या करना चाहता है, पर जीमूतवाहन के उपदेश से भविष्य मे हिंसा न करने का संकल्प करता है। जीमूतवाहन घायल होने के कारण मृतप्राय हो जाता है और गरुड़ उसे जीवित करने के लिए अमृत लाने चला जाता है।

उसी समय गौरी प्रकट होकर जीमूतवाहन को जीवित कर देती हैं और वह विद्याधरों का चक्रवर्त्ती बना दिया जाता है। गरुड आकर अमृत की वर्षा करता है और सभी सर्प जीवित हो उठते है। सभी आनन्दित हो जाते हैं और भरतवाक्य के बाद नाटक समाप्त हो जाता है।

आधारग्रन्थ—१. नागानन्द (हिन्दी अनुवाद सहित)—चौखम्बा प्रकाशन २. संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद)—डॉ० कीथ ३. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास।

नागेशभट्ट—प्रसिद्ध वैयाकरण। इनका समय १७ वीं शताब्दी के पूर्व है। इन्होने व्याकरण के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, ज्योतिष एवं काव्यशास्त्र की भी रचना की है। ये महाराष्ट्री ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम शिवभट्ट एवं माता का नाम सती देवी था। ये शृङ्गवेरपुर के राजा रामसिंह के सभापण्डित थे। इनका अन्य नाम नागोजिभट्ट था। इन्होने 'महाभाष्य प्रदीप' (कैयट रचित) की टीका लिखी है जिसका नाम है 'महाभाष्यप्रदीपोद्योतन'। नागेश ने काव्यशास्त्र के ग्रन्थो पर भी टीका लिखी है। वे है—'काव्यप्रकाश' की प्रदीप टीका की टीका 'उद्योत', भानुदत्त की 'रसमंजरी' की टीका तथा पण्डितराज जगन्नाथ कृत 'रसगंगाधर' की 'गुरुमर्मप्रकाश' टीका। इन्होंने अपनी टीकाओ मे अनेक स्थलों पर स्वतन्त्र विचार भी व्यक्त किया है। इनके व्याकरण-विषयक अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं—'लघुशब्देन्दुशेखर', 'बृहद्‌शब्देन्दुशेखर', 'परिभाषेन्दुशेखर', 'लघुमंजूषा', 'स्फोटवाद' तथा 'महाभाष्यप्रत्याख्यान-संग्रह'। उपर्युक्त सभी ग्रन्थो की गणना महान् ग्रन्थो मे होती है और साम्प्रतिक विद्वानो मे उनका अत्यधिक प्रचार है।

नाटककार कालिदास—कवि के रूप में तो कवि कालिदास की ख्याति है ही, नाटककार के रूप में भी इनकी कला की चरम समृद्धि देखी जाती है। इन्होंने अपने पूर्व के संस्कृत नाट्य-साहित्य को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रौढ़ता प्रदान की है। कालिदास के पूर्व भास ने तेरह नाटकों की रचना की थी, जिनमे संस्कृत नाट्य-कला का प्रारम्भिक विकास दिखाई पडता है। कालिदास ने अपनी रचनाओ के द्वारा उसे समृद्ध किया। इन्होंने तीन नाटको की रचना की है, जिनमें इनकी कला का क्रमिक विकास दिखाई पडता है। 'मालविकाग्निमित्र' इनकी प्रथम नाट्य-कृति है, अतः इसमे उनकी कला का अकुर दिखाई पडता है। 'विक्रमोर्वशीय' में उसका सहज विकास है तथा 'शकुन्तला' मे कवि की नाट्य कला का चरमोत्कर्ष दिखायी पडता है।

कालिदास के नाटक भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुरूप हैं या यो कहा जाय कि भरत द्वारा प्रतिपादित नाट्यसिद्धान्तो का कवि ने प्रायोगिक रूप प्रदर्शित किया है, तो कोई अत्युक्ति नही। भारतीय नाट्यशास्त्र मे नाटक के प्रमुख तीन तत्त्व माने गए है—वस्तु, नेता और रस। इनमे सर्वाधिक महत्त्व रस-योजना को ही प्राप्त हुआ है। अर्थात् भारतीय नाटक रसप्रधान हुआ करते हैं क्योकि प्रारम्भ में रसों का निरूपण नाटको के ही लिए किया गया था। भारतीय नाटक प्रायः सुखान्त हुआ करते हैं और

इनमें मृत्यु आदि घटनाएं प्रदर्शित नहीं की जातीं, अतः इनका सुखान्त होना आवश्यक है। कालिदास के तीनों ही नाटक सुखान्त हैं और सबों का प्रतिपाद्य विषय शृङ्गार है। 'मालविकाग्निमित्र' की कथा ऐतिहासिक है तथा इसके सारे कार्य-व्यापार मालविका एवं अग्निमित्र के प्रणय-कथा को ही केन्द्र बना कर अग्रसर होते हैं। इसका नायक विदिशा का राजा अग्निमित्र है जो धीरललित कोटि का (नायक) है। मालविका इसकी नायिका है और वह विदर्भराज की भगिनी है। इसमें नृत्य, गीत, चित्र, शिल्प एवं विदूषक की चातुरी के सौन्दर्य की सृष्टि की गयी है। 'विक्रमोर्वशीय' एवं 'शकुन्तला' दोनो का कथानक पौराणिक है। कवि ने अपनी कथा की योजना 'ऋग्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण', 'महाभारत' एवं 'मत्स्यपुराण' आदि ग्रन्थों के आधार पर की है। 'विक्रमोर्वशीय' मे पुरुरवा उर्वशी की प्रणयगाथा वर्णित है जिसका प्रथम सूत्र ऋग्वेद मे प्राप्त होता है। 'शकुन्तला' का कथानक महाभारत से प्रभावित है। इसमें कवि की नाट्यकला का चरम परिपाक है। शकुन्तला में कथावस्तु का इस प्रकार गठन किया गया है कि छोटी-छोटी घटनाओ का भी महत्त्व बना हुआ है। कवि ने कथा में विभिन्न घटनाओं का इस प्रकार नियोजन किया है कि उसके विकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता। इन्होने अपने तीनों ही नाटको मे नायिकाओ को प्रथमतः दयनीय दशा मे उपस्थित किया है और वे नायक द्वारा किये गए उपकार के कारण उसकी ओर आकृष्ट होती है। मालविका को दासी के रूप मे देखकर अग्निमित्र उसके प्रति सदय होता है और 'विक्रमोर्वशीय' मे राक्षस के चपेट मे आई हुई उर्वशी को विपद् से बचाकर पुरुरवा उसका कृपाभाजन बनता है। 'शाकुन्तल' मे दुष्यन्त भौंरे के बिघ्न से शकुन्तला की रक्षा करता है और इस उपकार के कारण उसका प्रेम प्राप्त करता है। अतः कालिदास के नाटकों की वस्तु-योजना का प्रथम सूत्र नायक द्वारा किये गए उपकार से उसके प्रति नायिका का आकृष्ट होना है—और यही आकर्षण उनके मिलन का केन्द्रबिन्दु बनता है। कालिदास ने अपने कथानक मे नायक अथवा नायिका द्वारा एक दूसरे की स्थिति को छिप-छिप कर देखने का वर्णन किया है। 'विक्रमोर्वशीय' मे उर्वशी छिप जाती है और 'शकुन्तला' मे राजा दुष्यन्त उसकी विरहावस्था का छिप कर अवलोकन करता है।

कालिदास ने चरित्र-चित्रण मे नाट्यशास्त्र के नियमों को ही आधार बना कर धीरोदात्त एवं धीरललित नायकों की योजना की है। नाटको मे पात्रो की योजना अत्यन्त कौशल के साथ की गयी है और छोटे-छोटे तथा गौण पात्रो का भी कथा के विकास मे महत्त्वपूर्ण योग रहता है एवं उनके व्यक्तित्व की निजी विशिष्टताएं होती हैं। कवि ने पात्रों के चित्रण में अत्यन्त सूक्ष्मता प्रदर्शित की है और प्रायः एक समान लगने वाले पात्रो के आचरण, विचार एवं व्यक्तित्व में अन्तर प्रदर्शित किया है। कवि जीवन की उदात्त भावनाओं का चित्रण कर अपने चरित्रों के माध्यम से जीवन को उन्नतशील बनाने वाले स्वस्थ विचारो का उद्योतन किया है। "कालिदास का शकुन्तला नाटक प्रेम-संवलित जीवन का आदर्श अभिनय है। इसका एक-एक पद और एक-एक

वाक्य अपनी जगह पर बिधा रखा है और कथा को आगे बढ़ाने में अनिवार्य वड़ी का काम कर रहा है। शब्दों के चुनाव में एक ऐसे पारखी का हाथ दीख पड़ता है, जिसकी दृष्टि मे शब्द और अर्थ घुल-मिल कर एक हो चुके है और जिसकी चुटकी मे अर्थ-रहित शब्द-पुष्प आने ही नही पाता" डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री-भारतीय नाट्यसाहित्य, नामक ग्रन्थ मे 'संस्कृत नाटककार' निबन्ध पृ० १४०।

कालिदास ने जीवन के विस्तृत क्षेत्रों से पात्रों का चयन किया है। राजकीय जीवन, तपोवन एवं निम्न श्रेणी के जीवन को स्पर्श कर कवि ने अपनी विशाल जीवन-दृष्टि का परिचय दिया है। कण्व तपोनिष्ठ ऋषि हैं किन्तु वे स्नेहशील पिता का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। 'शकुन्तला' के तृतीय अंक के विष्कम्भक में अत्यन्त निम्न श्रेणी के पात्र चित्रित किये गए है तथा तत्कालीन पुलिस वर्ग का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। मालविका राजकन्या होकर भी एक साधारण परिचारिका के रूप में अंकित है। उर्वशी एक दैवी चरित्र के रूप मे उपस्थित की गयी है तो शकुन्तला तपोवन की अबोध बाला का प्रतिनिधित्व करती है। इनके सभी नाटको के नायक राजा है, जो प्रेमी के रूप मे अंकित है।

कालिदास की नाट्यकला की उत्कृष्टता का बहुत बड़ा कारण उनकी काव्य कला है। यों तो कही भी कवि अपने कवित्व के बोझ से नाटकीय-विधान को भाराक्रान्त नहीं करता और काव्य तथा नाटक के शिल्प मे सदा औचित्य एवं सन्तुलन बनाये रहता है पर उसका कवित्व उसके नाटको को गरिमामय बना देता है, इसमें किसी प्रकार की द्विधा नही है। इसके अतिरिक्त कालिदास की नैसर्गिक अलंकार-योजना उनकी रस-व्यंजना मे उपस्कारक सिद्ध होती है। कालिदास के नाटक इसी काव्यात्मकता के कारण भावनावादी अधिक है, और काव्य की भाँति वे आदर्शवादी वातावरण की सृष्टि करते है, किन्तु यथार्थ से अछूते नही है भले ही मृच्छकटिक जैसी कठोर यथार्थता वहाँ न मिले। भारतीयनाट्य-साहित्य पृ० २१५।

कालिदास ने अपने नाटको मे कोरा शृङ्गारी वातावरण ही नहीं उपस्थित किया है, अपितु वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था करने वाले राजाओं का चित्रण कर एक नया आदर्श उपस्थित किया हे। इनके पात्र जीवन्त प्राणी हैं और वे इसी धरती की उपज है। कवि का मुख्य लक्ष्य रसव्यंजना है अतः उसके चरित्रचित्रण मे मनोवैज्ञानिक स्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्व के संघर्ष का अभाव दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य कारण भारतीय नाटको का रसात्मक होना ही है। कालिदास मुख्यत. शृङ्गार रस के कवि हैं किन्तु उन्होने हास्य, करुण, भयानक एवं वीररसो का भी अत्यन्त सफलता के साथ प्रयोग किया है। कवि विदूषक की व्यंग्यपूर्ण एव हास्यप्रधान उक्तियों के द्वारा हास की योजना करने मे दक्ष सिद्ध होता है। दुष्यन्त के डर से भाग कर जाते हुए हरिण के चित्रांकन मे भयानक रस का मार्मिक रूप दिखलाया गया है। शकुन्तला की बिदाई का दृश्य तो करुणा से सिक्त है ही।

इनके नाटकों मे शिष्ट एवं पुरुष पात्र संस्कृत का प्रयोग करते हैं और शेष पात्र

प्राकृत बोलते हैं। कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर संवादकला का सुन्दर नियोजन किया है। 'शाकुन्तल' के षष्ठ अंक के प्रवेशक के अतिरिक्त सभी जगह शौरसेनी प्राकृत प्रयुक्त हुई है और छठे अंक में मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। 'विक्रमोर्वशीय' मे—पुरुरवा के प्रलाप मे कई स्थानों पर अपभ्रंश की भी छाया दिखाई पडती है। कालिदास के नाटकों में सर्वत्र वैदर्भी रीति प्रयुक्त हुई है और ये उसके सिद्धहस्त लेखक हैं।

नाट्यशास्त्र—यह भारतीय नाट्यशास्त्र एवं काव्यशास्त्र का आद्य ग्रन्थ है। इसके रचयिता आ० भरत है [दे० भरत]। इसके रचनाकाल के संबंध मे विद्वानों में मतभेद है, फलतः इसका समय वि० पू० पंचम शताब्दी से लेकर विक्रम की प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थों मे 'नाट्यशास्त्र' के दो नाम मिलते हैं—षट्साहस्री एवं द्वादशसाहस्री। सम्प्रति 'नाट्यशास्त्र' का षट्साहस्री रूप ही उपलब्ध है जिसके कुछ संस्करणों मे ३७ अध्याय एवं कुछ में ३६ अध्याय हैं।

'नाट्यशास्त्र' में न केवल नाट्यनियमों का अपितु उससे सम्बन्ध रखने वाली सभी कलाओं का प्रतिपादन किया गया है। अर्थात् नाट्यकला, नृत्यकला, संगीतशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलंकार-विधान, रस-निरूपण तथा रंग-निर्माण आदि सभी विषय इसमे वर्णित है। स्वयं नाट्यशास्त्र मे भी इस तथ्य का उल्लेख है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ॥ १।११६ ॥

इसके वर्ण्य विषय की सूची इस प्रकार है—इसके प्रथम एवं द्वितीय अध्याय मे क्रमशः नाट्योत्पत्ति तथा नाट्यशाला का और तृतीय अध्याय मे रंगदेवता का पूजन-प्रकार वर्णित है। चतुर्थ अध्याय मे ताण्डव सम्बन्धी १०८ करण, ९२ प्रकार के अंगहार और चार प्रकार के रेचकों का वर्णन है और पंचम अध्याय मे पूर्वरंग की विधि का विवेचन किया गया है। षष्ठ एवं सप्तम अध्याय मे रस का विस्तृत विवेचन एवं आठवें अध्याय में चार प्रकार के अभिनय—आंगिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्य—वर्णित हैं। नवम अध्याय में हस्ताभिनय और दशम मे शारीराभिनय का एवं एकादश तथा द्वादश अध्यायों में चारी तथा मण्डल की विधि का वर्णन है। त्रयोदश अध्याय मे रसानुकूल गति प्रचार का तथा चतुर्दश, पंचदश एवं सोलहवे अध्याय मे वाचिक अभिनय का वर्णन है और सोलहवे अध्याय में ही छन्द का निरूपण किया गया है। सत्रहवे अध्याय मे प्राकृत आदि भाषाओं का तथा अठारहवे अध्याय में 'दशरूपक' का लक्षण है। उन्नीसवे अध्याय मे नाट्य सन्धियों का और बीसवे में भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी वृत्तियां वर्णित हैं। इक्कीसवे अध्याय में आहार्याभिनय का एवं बाईसवें मे सामान्याभिनय का विधान है। इसी अध्याय में नायक-नायिका-भेद का भी वर्णन है। तेईसवें अध्याय मे वेश्या तथा वैशिक लोगों का एवं चौबीसवें में तीन प्रकार के पात्रों—उत्तम, मध्यम एवं अधम का वर्णन है। पच्चीसवें अध्याय मे चित्राभिनय और

छब्बीसवें में विकृताभिनय वर्णित हैं। सत्ताईसवें अध्याय में अभिनय की सिद्धि एवं उनके विघ्नों का वर्णन है तथा अट्ठाईसवें से तेतींसवे अध्याय तक संगीतशास्त्र का वर्णन है। चौतीसवें अध्याय में पात्र की प्रकृति का विचार और पैंतीसवें में पारिपाश्विक एवं विदूषक का वर्णन है। छत्तीसवें या अन्तिम अध्याय में नाट्य के भूतल पर आने का वर्णन है। 'नाट्यशास्त्र' का प्रथम प्रकाशन काव्यमाला संस्कृत सीरीज के निर्णय सागर प्रेस से १८९४ ई० में हुआ था। इसमे छह हजार श्लोक हैं। गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बडौदा से 'अभिनयभारती' सहित 'नाट्यशास्त्र' का प्रकाशन चार खण्डों मे हुआ है। चौखम्बा संस्कृत सीरीज से भी पं० बटुकनाथ शर्मा एवं पं० बलदेव उपाध्याय के संपादकत्व में 'नाट्यशास्त्र' का प्रकाशन १९३५ ई० में हुआ था जिसे अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध माना जाता है। 'नाट्यशास्त्र' का आंग्लानुवाद डॉ० मनमोहन घोष ने किया है और १ से ७ अध्याय तक के दो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम के अनुवादक डॉ० रघुवंश (मोतीलाल बनारसीदास) एवं द्वितीय के अनुवादक पं० बाबूलाल शुक्ल है (चौखम्बा प्रकाशन)।

'नाट्यशास्त्र' के तीन रूप है—सूत्र, भाष्य एवं कारिका। आ० बलदेव उपाध्याय का कहना है कि "ऐसा जान पडता है कि मूल ग्रन्थ सूत्रात्मक था जिसका रूप ६ और ७ वे अध्याय में आज भी देखने को मिलता है। तदनन्तर भाष्य की रचना हुई जिसमे भरत के सूत्रो का अभिप्राय उदाहरण देकर स्पष्ट समझाया गया है। तीसरा तथा अन्तिम स्तर कारिकाओ का है जिनमें नाटकीय विषयो का बड़ा ही विपुल तथा विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।" भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १ पृ० २७ प्रथम संस्करण।

'नाट्यशास्त्र' मे अधिकतर अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है पर कहीं-कही आर्या छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ६ ठें एवं सातवें अध्याय मे कई सूत्र एवं गद्यात्मक व्याख्यान भी प्राप्त होते है। कहा जाता है कि 'नाट्यशास्त्र' में अनेक ऐसे श्लोक हैं (जिनकी संख्या अधिक है) जिनकी रचना भरत से पूर्व हुई थी और भरत ने अपने विचार की पुष्टि के लिए उन्हें उद्धृत किया था। इन श्लोको को 'आनुवंश्य' श्लोक की संज्ञा दी गयी है। अभिनवगुप्त ने भी इस कथन का समर्थन किया है—

ता एता ह्यार्या एकप्रघट्टकतया पूर्वाचार्यैर्लक्षणत्वेन पठिताः, मुनिना तु सुखसंग्रहाय यथास्थानं निवेशिताः ॥ अभिनवभारती, अध्याय ६।

'नाट्यशास्त्र' के वर्त्तमान रूप के सम्बन्ध मे विद्वानों का कहना है कि इसकी रचना अनेक व्यक्तियों द्वारा हुई है तथा इसका यह इसका यह रूप 'अनेक शताब्दियो के दीर्घ-व्यापार का परिणत फल' है। इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। 'नाट्यशास्त्र' का रचना काल एवं रचयिता आदि के सम्बन्ध में पुनः गाढ़ानुशीलन करने की आवश्यकता है। 'नाट्यशास्त्र' के अनेक टीकाकार हो चुके हैं पर सम्प्रति एकमात्र भाष्य अभिनवगुप्त रचित 'अभिनवभारती' ही उपलब्ध है।

अभिनवगुप्त एवं शार्ङ्गधर ने (संगीतरत्नाकर) नाट्यशास्त्र के नौ व्याख्याकारों का उल्लेख किया है—उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, राहुल, भट्टयन्त्र, अभिनवगुप्त, कीत्तिधर एवं मातृगुप्ताचार्य। (इस विषय के विवरण के लिए दे० लेखक का ग्रन्थ भारतीय काव्यालोचन)।

आधारग्रन्थ—क—संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–डॉ० पा० वा० काणे ख—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १–आ० बलदेव उपाध्याय ग—हिन्दी अभिनव भारती–(भूमिका)·आ० विश्वेश्वर।

नाथमुनि—ये वैष्णवों में रंगनाथ मुनि के नाम से विख्यात हैं तथा विशिष्टाद्वैत-वाद नामक वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य हैं। इनका समय ८२४ से ९२४ ई० है। इन्होंने तमिलवेद का पुनरुद्धार किया था। ये शठकोपाचार्य की शिष्य-परम्परा मे आते हैं। इन्होंने 'न्यायतत्त्व' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जो विशिष्टाद्वैत मत का प्रथम न्याय ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित है। वेदान्तदेशिक ने 'योगरहस्य' नामक ग्रन्थ का प्रणेता नाथमुनि को ही माना है।

आधारग्रन्थ—भारतीय दर्शन–आचार्य बलदेव उपाध्याय।

नाथमुनि विजय चम्पू—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता है कवि रामानुजदास। ये मैत्रेय गोत्रोद्भव कृष्णाचार्य के पुत्र थे। इनका समय अनुमानतः सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इस चम्पू काव्य मे नाथमुनि से रामानुज पर्यन्त विशिष्टाद्वैतवाद के आचार्यों का जीवनवृत्त वर्णित है। इसका कवित्वपक्ष दुर्बल है और विवरणात्मकता का प्राधान्य है। कवि की अन्य कृतियाँ है—'वेगशार्यगुरुपरम्परा', 'उपनिषदर्थविचार' तथा 'तथ्य–निरूपण'। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका उल्लेख डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग मद्रास १२३०६ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

नारदपुराण या बृहन्नारदीय पुराण—पौराणिक क्रम से छठाँ पुराण। 'मत्स्य-पुराण' में कहा गया है कि "जिस पुराण की कथा मे नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग में धर्म का उपदेश दिया है, वह नारदीय पुराण कहा जाता है। इसका प्रमाण पच्चीस सहस्र श्लोकों का है।" नारद या नारदीय उपपुराण से अन्तर स्थापित करने के लिए इसकी संज्ञा बृहन्नारदीय है। इसके दो खण्ड हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्वखण्ड मे १२५ अध्याय तथा उत्तर मे ८२ अध्याय है। जोडने पर इसके श्लोको की सख्या १८११० होती है।

'नारदपुराण' पूर्णरूपेण वैष्णव पुराण है। इसमें वैष्णवों के अनुष्ठानों और उनके सम्प्रदायो की दीक्षा के विधान विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। इसके उत्तर भाग में वैष्णव सम्प्रदाय को विशेष स्थान दिया गया है, किन्तु पूर्व भाग मे साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह नही है। इस पुराण में अठारहो पुराण की विषयानुक्रमणिका (अध्याय ९२ से १०९

तक पूर्व भाग मे) प्रस्तुत की गयी है । इसके आधार पर यह सर्वाधिक अर्वाचीन पुराण सिद्ध होता है । पर, यह विवरण अवश्य ही अर्वाचीन होगा और परवर्त्ती प्रक्षेप भी । 'विष्णुपुराण' मे नारदपुराण को रचनाक्रम से ६ ठा स्थान प्रदान किया गया है, जिससे इसकी सर्वाधिक अर्वाचीनता संदिग्ध हो जाती है । प्रो० एच० एच० विल्सन के अनुसार इसका रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी है । उन्होंने इसे महापुराण नहीं माना है क्योंकि इसमें कुल तीन हजार श्लोक है । उनके अनुसार इसमे पुराणो के पंचलक्षणों का अभाव है और यह विष्णुभक्ति-प्रतिपादक एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ है । पर, यह तथ्य निराधार है । 'नारदपुराण' न तो इतना अर्वाचीन है और न 'पुराणपंचलक्षणम्' से विरहित ही । अल्बेरूनी ने इसका उल्लेख किया है जिसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है । इसमें अनेक विषयों का निरूपण है जिनमे मुख्य है—मोक्ष, धर्म, नक्षत्र एवं कल्प-निरूपण, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, गृहविचार, मन्त्रसिद्धि, देवताओं के मन्त्र, अनुष्ठान-विधि, अष्टादशपुराण-विषयानुक्रमणिका, वर्णाश्रमधर्म, श्राद्ध, प्रायश्चित्त, सांसारिक कष्ट एवं भक्ति द्वारा मोक्ष के सुख । इसमे विष्णु-भक्ति को ही मोक्ष का एकमात्र साधन माना गया है तथा अनेक अध्यायो मे विष्णु, राम, हनुमान्, कृष्ण, काली और महेश के मन्त्रो का सविधि निरूपण है । सूत-शौनक-सवाद के रूप मे इस पुराण की रचना हुई है । इसके प्रारम्भ मे सृष्टि का संक्षेप मे वर्णन किया गया है तदनन्तर नाना प्रकार की धार्मिक कथायें वर्णित है । पुराणो मे 'नारदीयपुराण' के अतिरिक्त एक 'नारदीय उपपुराण' भी उपलब्ध होता है जिसमे ३८ अध्याय एवं ३६०० श्लोक है । यह वैष्णव मत का प्रचारक एवं विशुद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थ है जिसमे पुराण के लक्षण नहीं मिलते है । कतिपय विद्वानो ने इसी ग्रन्थ को 'नारदपुराण' मान लिया है । इसका प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता से हुआ है ।

आधारग्रन्थ—१. नारदपुराण (हिन्दी अनुवाद)—गीता प्रेस, गोरखपुर २. नारदपुराण (हिन्दी अनुवाद)—अनु० रामचन्द्र शर्मा, मुरादाबाद ३. प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २—(हिन्दी अनुवाद) विन्टरनित्स ४. पुराणतत्त्वमीमांसा—श्री कृष्णमणि त्रिपाठी ५ पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय ६. पुराणम्—खण्ड ५, १९६३ ७ विष्णुपुराण—(संपादक) एच० एच० विल्सन ।

नारदस्मृति—इसके रचयिता नारद हैं जिन्हें विश्वरूप ने प्रसिद्ध दस धर्मशास्त्रकारो मे से एक माना है । इसके लघु एव बृहद् दो संस्करण उपलब्ध है जिनका सम्पादन डॉ० जॉली ने किया है । 'नारदस्मृति' मे १०२८ श्लोक है । इसके प्रारम्भिक तीन अध्यायों मे न्याय सम्बन्धी विधि वर्णित है । तत्पश्चात् ऋण-दान, उपनिधि (जमा, बन्धक) सम्भूयसमुत्थान (सहकारिता), दत्ताप्रदानिक, अभ्युपेत-अशुश्रूषा (नौकर के टेके का तोड़ना), वेतनस्यअनपाकर्म (वेतन न देना), अस्वामिविक्रय, विक्रीया सम्प्रदान (विक्री के उपरान्त न छुड़ाना), क्रीतानुशय (खरीदगी का खण्डन), समयस्यान-पाकर्म, (निगम, श्रेणी आदि की परम्पराओ का विरोध), सीमाबन्ध, स्त्री पुंसयोग, दायभाग (बँटवारा तथा वसीयत), साहस (डकैती), वाक्या पारुष्य (मानहानि तथा

पिशुनवचन) तथा दण्डपारुष्य (नाना प्रकार की चोटें), प्रकीर्णक एवं अनुक्रमणिका का वर्णन है।

'नारदस्मृति' में कुल १८ प्रकरण है जिनमे 'मनुस्मृति' के विषयो को संक्षिप्त रूप से रखा गया है। कतिपय नामो के भेद के अतिरिक्त दोनों में अत्यधिक साम्य है। डॉ० विन्टरनित्स ने इसमे 'दीनार' शब्द को देखकर इसका समय द्वितीय या तृतीय शताब्दी माना है। पर, डॉ० कीथ इसका काल १०० ई० से ३०० ई० के बीच मानते हैं। इसे 'याज्ञवल्क्यस्मृति' का परवर्त्ती माना जाता है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—(हिन्दी अनुवाद) भाग १—डॉ० पा० वा० काणे, अनु० पं० अर्जुन चौबे काश्यप।

नारायण—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका स्थिति-काल १५७१ ई० है। इनके पिता का नाम अनन्तनन्दन था जो टापर ग्राम के निवासी थे। इन्होंने 'मुहूर्त्त-मार्तण्ड' नामक मुहूर्त्तविषयक ग्रन्थ की रचना की है जो शार्दूलविक्रीडित छन्द में लिखा गया है। नारायण नामक एक अन्य विद्वान् ने भी ज्योतिषविषयक ग्रन्थ की रचना की है जिनका समय १५८८ ई० है। 'केशवपद्धति' के ऊपर रचित इनकी टीका प्रसिद्ध है। इन्होने बीजगणित का भी एक ग्रन्थ लिखा था।

सहायकग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

नारायणभट्ट—इनका जन्म केरल मे हुआ था। ये १५६० से १६६६ ई० के मध्य विद्यमान थे। इन्होने चौदह चम्पूकाव्यो की रचना की है। वे हैं—मत्स्यावतार-प्रबन्ध, राजसूयप्रबन्ध, पांचालीस्वयंवर, स्वाहासुधाकरचम्पू, कोटिविरह, नृगमोक्ष, सुभद्राहरण, पार्वतीस्वयंवर, नारायणीचरित, कौन्तेयाष्टक, दूतवाक्य, किरात, निरनुनासिकचम्पू, दक्षयाग एवं व्याघ्रालयेशाष्टमी महोत्सवचम्पू। इनमे मत्स्यावतारप्रबन्ध, राजसूयप्रबन्ध, स्वाहासुधाकरचम्पू एवं कोटिविरह प्रकाशित हो चुके है। इनके पिता का नाम मातृदत्त था जो प्रसिद्ध मीमासाशास्त्री थे। इन्होंने 'नारायणीय' नामक एक काव्य की भी रचना की है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त प्रक्रिया सर्वस्व (व्याकरण) तथा मानमेयोदय (मीमांसा) भी इनकी रचनाएँ हैं। 'मत्स्यावतार' मे कुल ६७ पद्य एवं १२ गद्य के खण्ड है। इसमे पुराणो मे वर्णित मनु एव मत्स्यावतार की कहानी है। 'राजसूयप्रबन्ध' में युधिष्ठिर के राजसूय का वर्णन है। 'स्वाहास्वधाचम्पू' मे कवि ने अग्नि की पत्नी स्वाहा तथा चन्द्रमा के प्रणय का वर्णन किया है। 'कोटिविरह' मे विरह और मिलन की काल्पनिक कहानी है। 'नृगमोक्ष' मे श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध मे वर्णित कथा के आधार पर राजा नृग की कहानी का वर्णन है।

आधारग्रन्थ—१. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी २ केरली साहित्य-दर्शन—रत्नमयी दीक्षित।

निघण्टु—यह वैदिक शब्दो का समुच्चय है जिसमे वेद के कठिन शब्दों का चयन है। 'निघण्टु' की शब्द-संख्या एवं रचना के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मत-वैभिन्न्य है। जिस 'निघण्टु' पर यास्क की टीका है, उसमें पाँच अध्याय हैं। प्रथम तीन अध्याय

नैघण्टुककाण्ड कहे जाते हैं तथा इनके शब्दों की व्याख्या निरुक्त के द्वितीय एवं तृतीय अध्यायों में की गयी है। इनकी शब्द-संख्या १३४१ है जिनमें से २३० शब्दों की ही व्याख्या की गयी है। चतुर्थ अध्याय को नैगमकाण्ड एवं पञ्चम को दैवतकाण्ड कहते हैं। नैगमकाण्ड में तीन खण्ड हैं जिनमें ६२, ८४ तथा १३२ पद हैं। ये किसी के पर्याय न होकर स्वतन्त्र हैं। नैगमकाण्ड के शब्दों का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। दैवत-काण्ड के ६ खण्डों की पद-संख्या ३,१३,३६, ३२,३६ तथा ३१ है जिनमें विभिन्न देवताओं के नाम हैं। इन शब्दों की व्याख्या 'निरुक्त' के सातवें से बारहवें अध्याय तक हुई है। डॉ० लक्ष्मण सरूप के अनुसार 'निघण्टु' एक व्यक्ति की रचना नहीं है पर राजवाडे ने इनके कथन का सप्रमाण खण्डन किया है।

'महाभारत' में प्रजापति काश्यप को 'निघण्टु' का रचयिता माना गया है।

वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मा प्रजापतिः॥

महाभारत मोक्षधर्मपर्व, ३४२।८६-८७

कतिपय विद्वान् इस विचार को प्रामाणिक न मानकर निरुक्त और निघण्टु दोनों का ही रचयिता यास्क को ही स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानन्द एवं पं० भगवद्दत्त जी के अनुसार जितने निरुक्तकार हैं वे सभी निघण्टु के रचयिता है। आधुनिक विद्वान् रॉथ, कर्मकर, लक्ष्मण सरूप तथा प्राचीन टीकाकार स्कन्द, दुर्ग एवं महेश्वर ने निघण्टु के प्रणेता अज्ञातनामा लेखक को माना है। दुर्ग ने लिखा है—"तस्यैषा ······ सा पुनरियं, त इमं गवादिदेवपत्न्यन्त समाम्नातवन्तः।" इनके अनुसार निघण्टु श्रुतर्षियों द्वारा किया गया संग्रह है। अभी तक निश्चित रूप से यह मत प्रकट नहीं किया जा सका है कि निघण्टु का लेखक कौन है। सम्प्रति निघण्टु की एक ही व्याख्या उपलब्ध है, जिसके लेखक है देवराज यज्वा।

आधारग्रन्थ—१. निरुक्त—(हिन्दी व्याख्या) पं० भगवद्दत्त २. हिन्दी निरुक्त—पं० उमाशंकर 'ऋषि' ३. निघण्टु और निरुक्त—(हिन्दी अनुवाद)—डॉ लक्ष्मण सरूप ४. वैदिक वाङ्मय का इतिहास—पं० भगवद्दत्त।

नित्यानन्द—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका समय १७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इन्होंने १६३९ ई० में 'सिद्धान्तराज' संज्ञक महनीय ज्योतिषग्रन्थ की रचना की थी। ये इन्द्रप्रस्थपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम देवदत्त था। ये गौड वंशीय ब्राह्मण थे। 'सिद्धान्तराज' ग्रहगणित का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्णित विषयों के शीर्षक इस प्रकार हैं—

मीमांसाध्याय, मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, भ-ग्रहयुत्यधिकार, भ-ग्रहों के उन्नतांश-साधनाधिकार, भुवनकोश, गोलबन्धाधिकार तथा यात्राधिकार।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

निम्बार्क मत—द्वैताद्वैतवाद नामक प्रसिद्ध वैष्णव सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य निम्बार्क थे। इनका समय १२ वीं शताब्दी है। ये तैलंग ब्राह्मण थे तथा इनका वास्तविक नाम नियमानन्द था। कहा जाता है कि निम्ब वृक्ष पर रात्रि के समय सूर्य का साक्षात् दर्शन होने के कारण इनका नाम निम्बार्क या निम्बादित्य पडा। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं—'वेदान्तपारिजात सौरभ' (ब्रह्मसूत्र का स्वल्पकाय भाष्य), 'दशश्लोकी' (सिद्धान्त प्रतिपादक दस श्लोको का संग्रह) 'श्रीकृष्णस्तवराज' (इसमे २५ श्लोकों में निम्बार्क मत का प्रतिपादन किया गया है) ब्रह्म या जीव के सम्बन्ध मे निम्बार्क का सिद्धान्त भेदाभेद वा द्वैताद्वैत का प्रतिपादक है। इनके अनुसार जीव अवस्था भेद से ब्रह्म से भिन्न एवं अभिन्न दोनों ही है। इन्होने रामानुज की भाँति चित्, अचित् तथा ईश्वर के स्वरूप का निरूपण किया है। चित् या जीव के स्वरूप को ज्ञानमय कहा गया है। जीव प्रत्येक दशा मे कर्त्ता रहता है। इसलिए उसे कर्त्ता कहा गया है। वह संसारी दशा में तो कर्त्ता होता ही है, मुक्त दशा मे भी कर्त्ता रहता है। इन्द्रियो के द्वारा विषय का भोग करने के कारण उसे भोक्ता कहते है। ज्ञान एवं भोग को प्राप्त करने के लिए उसे ईश्वर पर आश्रित होना पड़ता है, वह स्वतन्त्र नही होता। ईश्वर स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र। वह चैतन्य गुण एवं ज्ञानाश्रय होने के कारण ईश्वर के सदृश होते हुए भी नियम्यत्व गुण के कारण उससे पृथक् है। ईश्वर जीव का नियन्ता है और जीव नियम्य। ईश्वर स्वतन्त्र एवं नियन्ता होने के कारण इच्छानुसार जीव के साथ वर्ताव कर सकता है पर जीव सब प्रकार से ईश्वर पर आश्रित रहता है। जीव परिमाण मे अणु है, किन्तु ज्ञान लक्षण के कारण उसे सुख-दुःख का अनुभव होता है। वह ईश्वर का अंश रूप एवं संख्या मे अपरिमित है। ईश्वर अंशी अर्थात् सर्व-शक्तिमान् है किन्तु जीव उसका अंश है। जीव ईश्वर का शक्तिरूप है। अंशो हि शक्ति रूपो ग्राह्यः। २। ३। ४२। पर कौस्तुभ अचित् या चेतना से रहित पदार्थ को जगत् कहते है। इसके तीन प्रकार है—प्राकृत, अप्राकृत और काल।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्य शुक्तादिभेदाश्च समेऽपि तत्र ॥ दशश्लोकी ३।

ईश्वर—निम्बार्क ने ईश्वर की कल्पना सगुण रूप मे की है जो समस्त अविद्यादि प्राकृत दोषों से रहित, अशेष ज्ञान एवं कल्याण गुणों की राशि है।

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥ दशश्लोकी ४

संसार मे जो कुछ भी दिखाई पडता है या सुना जाता है उसके अन्तर एवं बाहर सभी जगह नारायण स्थित हैं—

यच्च किञ्चिज्जगद्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ ५ ॥

सिद्धान्त जाह्नवी पृ० ५३

परमात्मा के परब्रह्म, नारायण भगवान्, कृष्ण एवं पुरुषोत्तम आदि नाम हैं।

जीव ब्रह्म से पृथक् होते हुए अभिन्न भी है। मोक्ष की स्थिति में भी जीव ब्रह्म मे अपने स्वरूप को खो नहीं देता और ब्रह्म से अभिन्न होकर भी अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रहता है। भक्ति के द्वारा ही भगवत्साक्षात्कार होता है तथा प्रपत्ति के द्वारा ही भगवान् भक्तों पर अनुग्रह करता है। भक्ति के द्वारा भगवत्साक्षात्कार होने पर जीव भगवत्भावापन्न होकर सभी प्रकार के क्लेशो से छुटकारा पा जाता है। भगवान् के चरण की सेवा के अतिरिक्त जीव के लिए अन्य कोई उपाय नही है। निम्बार्क मत में कृष्ण ही परमात्मा माने गए है जिनकी वन्दना ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवगण करते है। तस्मात् कृष्ण एव परोदेवः, तं ध्यायेत् तं रसेत् तं भजेत् तं यजेत् ओं तत् सदिति (दशश्लोकी टीका पृ० ३६।) हरिव्यास कृष्ण की प्राप्ति भक्ति द्वारा ही संभव है जो पाँच भावों से युक्त होती है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल। निम्बार्क ने भगवान् की प्रेमशक्तिरूपा राधा की भी उपासना पर बल दिया है। इस मत के आराध्यदेव श्रीकृष्ण माने गए है जिन्हें सर्वेश्वर कहा गया है और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा हैं। राधा का स्वरूप 'अनुरूप सौभगा' है या वे श्रीकृष्ण के अनुरूप हैं। कृष्ण और राधा दोनो ही सर्वेश्वर एवं सर्वेश्वरी हैं। दोनो मे अविनाभाव-सम्बन्ध है और वे क्रीड़ा के निमित्त एक ही ब्रह्म के दो रूप में उत्पन्न हुए है। इस सम्प्रदाय में अनुरागात्मिका पराभक्ति (प्रेमलक्षणा) को ही साधनामार्ग मे श्रेष्ठ माना गया है।

आधारग्रन्थ—१. भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय २. भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय ३ वैष्णवधर्म—पं० परशुराम चतुर्वेदी ४. भक्तिकाल—श्री रतिभानुसिंह 'नाहर'।

निरुक्त—इसके लेखक महर्षि यास्क है जिनका समय (आधुनिक विद्वानो के अनुसार) ७०० ई० पू० है। निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने अपनी वृत्ति में १४ निरुक्तो का संकेत किया है। (दुर्गावृत्ति १।१३)। यास्क कृत 'निरुक्त' में भी बारह निरुक्तकारो के नाम हैं—अग्रायण, औपमन्यव, औदुम्बरायण, और्णनाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि तथा स्थौलाष्ठीवि। इनमें से शाकपूणि का मत 'बृहद्देवता' में भी उद्धृत है।

यास्क कृत 'निरुक्त' में बारह अध्याय है तथा अन्त के दो अध्याय परिशिष्ट रूप है। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में यास्क का नाम निरुक्तकार के रूप में आया है। इस दृष्टि मे इनका समय और भी अधिक प्राचीन सिद्ध हो जाता है।

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान्।
शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनामधरो ह्ययम्॥ ७२॥
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः।
यत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमभिजग्मिवान्॥ ७३॥

अध्याय ३४२

'निरुक्त' में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है तथा यह बतलाया गया है कि कौन सा शब्द किसी विशिष्ट अर्थ मे रूढ क्यों हुआ। इसके प्रतिपाद्य विषय हैं—वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश तथा धातु का उसके अर्थातिशय से योग।

सायणाचार्य के निरुक्त की व्याख्या करते हुए बताया है कि अर्थावबोध के लिए स्वतन्त्र रूप से पदों का संग्रह ही निरुक्त है। निरुक्तकार ने शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करते हुए धातु के साथ विभिन्न प्रत्ययों का भी निर्देश किया है। यास्क समस्त नामों को धातुज मानते हैं। इसमें आधुनिक भाषाशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का पूर्वरूप प्राप्त होता है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्याख्या के अतिरिक्त व्याकरण, भाषाविज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र एवं इतिहास प्रभृति विषयों का भी प्रसंगवश विवेचन है। यास्क ने वैदिक देवताओं के तीन विभाग किये हैं—पृथ्वीस्थान (अग्नि), अन्तरिक्षस्थान (वायु और इन्द्र) तथा स्वर्गस्थान (सूर्य)।

निरुक्त के भाष्यकार—इसके अनेक टीकाकार हो चुके हैं, किन्तु सभी टीकाएँ उपलब्ध नहीं होती। एकमात्र प्राचीन टीका दुर्गादास की ही प्राप्त होती है जिसमें उनके पूर्ववर्त्ती टीकाकारों के मत दिये गये हैं। सबसे प्राचीन टीकाकार है स्कन्दस्वामी। उन्होंने सरल शब्दों मे 'निरुक्त' के बारह अध्यायों की टीका लिखी थी। डॉ० लक्ष्मण सरूप के अनुसार उनका समय ५०० ई० है।

देवराज यज्वा—इन्होने 'निघण्टु' की भी टीका लिखी है। (दे० निघण्टु) इनका समय १३०० ई० है। दुर्गाचार्य—इनकी टीका सर्वोत्तम मानी जाती है। इनका समय १३००–१३५० ई० है। महेश्वर—इनका समय १५०० ई० है। इनकी टीका खण्डशः प्राप्त होती है जिसे डॉ० लक्ष्मणसरूप ने तीन खण्डो मे प्रकाशित किया है। आधुनिक युग में निरुक्त के अँगरेजी एवं हिन्दी मे कई अनुवाद प्रकाशित हुए है।

आधारग्रन्थ—१. इस्ट्रोडक्शन टू निरुक्त—डॉ० लक्ष्मण सरूप २. (उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद)—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (प्रकाशक) ३. यास्काज निरुक्त एण्ड द साइंस ऑफ एटीमोलॉजी—श्री विष्णुपद भट्टाचार्य ४. निरुक्त—दुर्गाचार्य टीका एवं मुकुन्द झा बक्शी कृत संस्कृत टीका ५. हिन्दी निरुक्त—पं० उमाशंकर 'ऋषि' ६ निरुक्त—(हिन्दी अनुवाद) चन्द्रमणि विद्यालंकार (अधुना अनुपलब्ध) ७. निरुक्त (हिन्दी अनुवाद)—पं० सीताराम शास्त्री (सम्प्रति अप्राप्य) ८. निरुक्तशास्त्रम् (हिन्दी अनुवाद)—पं० भगवद्दत्त ९. निरुक्तम् (हिन्दी अनुवाद)—आ० विश्वेश्वर १०. निरुक्त (आंग्लानुवाद एवं भूमिका)—श्रीराजवाडे ११. एटीमोलोजी ऑफ यास्क—डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा।

नीतिविषयक उपदेशात्मक काव्य—संस्कृत में कुछ ऐसे काव्य मिलते हैं जिनमें नीतिसम्बन्धी सूक्तियों की प्रधानता है तथा उनमें उपदेशात्मक तत्त्व भी गौणरूप से विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार कतिपय ऐसी भी रचनाएँ है जिनमें उपदेश के तत्व प्रधान होते हैं और नीतिविषयक सूक्तियाँ गौण होती हैं। इस प्रकार के काव्यों में नीति और उपदेश के तत्वों का मिश्रण होता है। नीतिविषयक सूक्तियों में आचार की प्रधानता के कारण धर्म और दर्शन दोनो का ही प्रभाव दिखाई पडता है। इन काव्यों में सूक्तिकारों ने सुख-दुःख का विवेचन करते हुए इनका सम्बन्ध जीवन के साथ स्थापित किया है तथा जीवन की उन्नति को ध्यान में रखते हुए कुमार्ग तथा सुमार्ग

की परीक्षा की है। इनमें भाग्य एवं पुरुषार्थ, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों के बीच मैत्रीभावना, जीवन को उदात्त बनाने वाले तत्त्वों का विश्लेषण एवं दैन्य, कार्पण्य, शोषण, असमानता आदि सामाजिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक शैली के द्वारा प्रहार किया गया है। इस प्रकार की कृतियो की संस्कृत में विशाल परम्परा है। संस्कृत में नीतिपरक मुक्तकों के तीन रूप दिखाई पडते है—अन्योक्ति वाले मुक्तक, नीतिमुक्तक तथा वैराग्य सम्बन्धी शान्त रसपरक मुक्तक। नीतिपरक मुक्तकों में उपदेश की प्रधानता है और इसी का सहारा लेकर ही इनकी रचना हुई है। अन्योक्ति वाले मुक्तको का महत्त्व काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से अधिक है, क्योंकि इनमे उपदेश वाच्य न होकर व्यंग्य होता है। अन्य दोनों प्रकार के मुक्तको में उपदेश का शाब्द होने के कारण काव्यपक्ष गौण पड जाता है।

इन मुक्तकों का प्रारम्भ कब से हुआ, यह कहना कठिन है, पर ग्रन्थ रूप में 'चाणक्यनीति-दर्पण' या 'चाणक्यशतक' अत्यन्त प्राचीन रचना है। इसमें ३४० श्लोक हैं। जनाश्रय कृत 'छन्दोविचिति' (७०० ई०) में कुछ नीतिविषयक श्लोक उद्धृत हैं जिनके रचयिता मदुरानिवासी सुन्दर पाण्ड्य कहे जाते हैं। इन्होंने 'नीतिद्विषष्टिका' नामक नीतिग्रन्थ की रचना की थी। इनका समय ५ वी शताब्दी है। कुमारिल तथा शंकराचार्य के ग्रन्थों में सुन्दर पाण्ड्य के श्लोक उधृत हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होने एतद्विषयक अन्य ग्रन्थ भी लिखा था। बौद्ध विद्वान् शान्तिदेव (६०० ई०) कृत नीतिविषयक तीन ग्रन्थ है—'बोधिचर्यावतार', 'शिक्षासमुच्चय', तथा 'सूत्रसमुच्चय'। ७५० वि० सं० मे भल्लट ने 'भल्लटशतक' नामक अन्योक्तिप्रधान मुक्तकों की रचना की थी। इन्होने हाथी, भौंरा, चातक, मृग, सिंह आदि के माध्यम से मानव जीवन पर घटित होने वाले कई विषयों का वर्णन किया है। अन्योक्तिमुक्तक लिखनेवालों में पण्डितराज जगन्नाथ अत्यन्त प्रौढ़ कवि हे। इन्होने 'भामिनीविलास' मे अत्यन्त सुन्दर अन्योक्तियाँ लिखी है। नीतिपरक मुक्तककारों मे भर्तृहरि का स्थान सर्वोपरि है। इन्होंने दोनो प्रकार के मुक्तकों को दो भिन्न ग्रन्थों मे उपस्थित किया है—'नीतिशतक' एवं 'वैराग्यशतक' मे। 'नीतिशतक' में सम्पूर्ण मानव जीवन का सर्वेक्षण करते हुए विद्या, वीरता, साहस, मैत्री, उदारता, परोपकारिता, गुणग्राहकता, आदि विषयो का वर्णन प्रभावोत्पादक शैली मे किया गया है। 'वैराग्यशतक' मे जीवन की क्षणभङ्गुरता प्रदर्शित कर विषयासक्त प्राणी का दयनीय एवं उपहासास्पद चित्र खींचा गया है। एतद्विषयक अन्य ग्रन्थो के नाम है—'कालिविडम्बन' (नीलकण्ठदीक्षित कृत १७ वीं शती), 'सभारंजनशतक,' 'शान्तिविलास' तथा 'वैराग्यशतक' वेंकटाध्वरी (१७ वीं शती) रचित 'सुभाषितकौस्तुभ' वल्लाल कवि कृत 'वल्लालशतक', शम्भु कृत 'अन्योक्तिमुक्तमाला' तथा वीरेश्वर रचित 'अन्योक्तिशतक'।

नीलकण्ठ—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः पद्मा एवं अनन्त दैवज्ञ था। नीलकण्ठ का जन्म-समय १५५६ ई० है। इन्होने 'ताजिकनीलकण्ठी' नामक फलितज्योतिष के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जो

फारसी ज्योतिष के आधार पर रचित है। इसमे तीन तन्त्र हैं—संज्ञातन्त्र, वर्षतन्त्र एवं प्रश्नतन्त्र तथा इक्कबाल, इन्दुबार, इत्थशाल, इशराफ, नक्त, यमया, मणऊ, कम्बूल, गैरकम्बूल, खल्लासर, रद्द, दुफाली, कुत्थ, दुत्थोत्थदवीर, तुम्बीर, रकुत्थ एवं दुरफा प्रभृति सोलह योग अरबी ज्योतिष से ही गृहीत हैं।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

नीलकण्ठभट्ट—ये संस्कृत के प्रसिद्ध राजनिबन्धकार एवं धर्मशास्त्री है। इनका समय सत्रहवी शताब्दी का मध्य है। इनके ज्येष्ठ भ्राता कमलाकर भट्ट भी प्रसिद्ध धर्मशास्त्री थे जिन्होंने 'निर्णयसिन्धु' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इनके पिता का नाम शंकरभट्ट एवं पितामह का नाम नारायणभट्ट था। नीलकण्ठ के पिता ने भी अनेक ग्रन्थो की रचना की थी—'द्वैतनिरूपण' एवं 'सर्वधर्मप्रकाश'। इनके पुत्र शंकर भी कुण्डभास्कर नामक निबन्ध ग्रन्थ के प्रणेता माने जाते है। नीलकण्ठ बुन्देला सामन्त राजा भगवन्तदेव के सभा-पण्डित थे। इन्होने भगवन्तदेव के सम्मान मे 'भगवद्भास्कर' नामक बृहद्‌काय ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ बारह मयूखो मे विभक्त है—संस्कारमयूख, कालमयूख, श्राद्ध, नीति, व्यवहार, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, शुद्धि एवं शान्तिमयूख। नीलकण्ठ ने अन्य ग्रन्थों का भी प्रणयन किया है, वे है—व्यवहारतत्त्व, दत्तकनिरूपण एवं भारतभावदीप (महाभारत की संक्षिप्त व्याख्या)। इन्होंने 'नीतिमयूख' मे राजशास्त्र-विषयक सभी तथ्यो पर विचार किया है। इस ग्रन्थ मे सर्वप्रथम राज्याभिषेक के कृत्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है तत्पश्चात् राज्य के स्वरूप एवं सप्तागो का निरूपण है। इसके निर्माण मे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति, कामन्दकनीतिसार, वराहमिहिर, महाभारत एवं चाणक्य के विचारो से पूर्णतः सहायता ली गयी है तथा स्थान-स्थान पर इनके वचन भी उद्धृत किये गए है। इसमे राज्यकृत्य, अमात्यप्रकरण, राष्ट्र, दुर्ग, चतुरंगबल, दूताचार, युद्ध युद्धयात्रा, व्यूह-रचना, स्कन्धावार, युद्धप्रस्थान के समय के शकुन एवं अपशकुन आदि विषय अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित है।

आधारग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

नीलकण्ठविजयचम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता नीलकण्ठ दीक्षित है। ये सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पयदीक्षित के भ्राता अच्चादीक्षित के पौत्र थे। इनके पिता का नाम नारायणदीक्षित था। इस चम्पू का रचनाकाल १६३६ ई० है। कवि ने स्वयं अपने ग्रन्थ की निर्माण तिथि दी है—कल्यब्द ४७३८।

अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु ।
कलिवर्षेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम् ॥ १।१०

'नीलकण्ठविजयचम्पू' मे देवासुरसंग्राम की प्रसिद्ध पौराणिक कथा वर्णित है। इसमें पाँच आश्वास है। प्रारम्भ में महेन्द्रपुरी का विलासमय चित्र है जिसके माध्यम से नायिकाभेद का भी रूप प्रदर्शित किया गया है। प्रकृति का मनोरम चित्र, विरोधाभास का वर्णन, क्षीरसागर का सुन्दर चित्र, शिव एवं शैवमत के प्रति श्रद्धा एवं तात्त्विक ज्ञान

की अभिव्यक्ति इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। इसमें श्लोकों की संख्या २७९ है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग संख्या ४०३७ में प्राप्त होता है। विलास-वर्णन का चित्र देखिए—

मन्दानिलव्यतिकरच्युतपल्लवेषु मन्दारमूलवलीगृहमंडपेषु।
पुष्पाणि वेणिवलयेषु गलन्ति तस्यां साद्धं वहन्ति सुरवासकसज्जिकानाम् ॥ १।१६
गायन्ति चाटु कथयन्ति पदा स्पृशन्ति, पश्यन्ति गाढमपि तत्र परिष्वजन्ते।
कल्पद्रुमानपि समेत्य सुपर्वकान्ता मुग्धा द्रुमैस्तदितरैश्चिरविप्रलब्धाः ॥ १।१७

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

नीलाम्बर झा—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका समय १८२३ ई० है। ये मैथिल ब्राह्मण थे और इनका जन्म पटना मे हुआ था। अलवरनरेश शिवदास सिंह इनके आश्रयदाता थे। इन्होने 'गोलप्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की है जो क्षेत्रमिति तथा त्रिकोणमिति के आधार पर निर्मित है। यह ग्रन्थ पाँच अध्यायो मे है—ज्योत्पत्ति, त्रिकोणमितिसिद्धान्त, चापीरेखागणितसिद्धान्त, चापीयत्रिकोणमितिसिद्धान्त तथा प्रश्न।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद।

नैषधीयचरित—यह श्रीहर्ष कवि रचित महाकाव्य है जिसमें २२ सर्गों में नल-दमयन्ती की प्रणयगाथा वर्णित है [दे० श्रीहर्ष]। प्रथम सर्ग—इसमे नल के प्रताप एवं सौन्दर्य का वर्णन है। राजा भीम की पुत्री दमयन्ती नल के यश-प्रताप का वर्णन सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होती है और राजा नल भी उसके सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उस पर अनुरक्त होता है। उद्यान मे भ्रमण करते समय नल को एक हंस मिलता है और राजा उसे पकड़कर छोड देता है। द्वितीय सर्ग—हंस राजा के समक्ष दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करता है और वह नल का सन्देश लेकर कुण्डिनपुर दमयन्ती के पास जाता है। तृतीय सर्ग—हंस एकान्त मे नल का सन्देश दमयन्ती को सुनाता है और वह भी नल के प्रति अपनी अनुरक्ति प्रकट करती है। चतुर्थ सर्ग—इसमे दमयन्ती की पूर्वरागजन्य वियोगावस्था का चित्रण तथा उसकी सखियों द्वारा भीम से दमयन्ती के स्वयंवर के संबंध मे वार्त्तालाप का वर्णन है। पंचम सर्ग—नारद द्वारा इन्द्र को दमयन्ती के स्वयंवर की सूचना प्राप्त होती है और वे उससे विवाह करना चाहते है। वरुण, यम एवं अग्नि के साथ इन्द्र राजा नल से दमयन्ती के पास संदेश भेजने के लिए दूतत्व करने की प्रार्थना करते हैं। नल को अदृश्य शक्ति प्राप्त हो जाती है और वह अनिच्छुक होते हुए भी इस कार्य को स्वीकार कर लेता है। षष्ठ सर्ग—इसमे नल का अदृश्य रूप से दमयन्ती के पास जाने का वर्णन है। वह वहाँ इन्द्रादि देवताओं द्वारा प्रेषित दूतियों की बातें सुनता है। दमयन्ती उन्हे स्पष्ट रूप से कह देती है कि वह नल का वरण कर चुकी है। सप्तम सर्ग—नल का दमयन्ती के नख-शिख का वर्णन। अष्टम सर्ग—इस

सर्ग मे नल अपने को प्रकट कर देता है । वह इन्द्र, यम, वरुण आदि का सन्देश कहता है । नवम सर्ग—नल देवताओं मे से किसी एक को दमयन्ती को वरण करने के लिए कहता है, पर वह राजी नहीं होती । वह उसे भाग्य का खेल समझकर दृढ़तापूर्वक देवताओ का सामना करने की बात कहता है । इसी अवसर पर हंस आकर उन्हें देवताओ से भयभीत न होने की बात कहता है । दमयन्ती नल से स्वयंवर में आने की प्रार्थना करती है और वह उसकी बात मान लेता है । दशम सर्ग मे स्वयंवर का उपक्रम वर्णित है । ग्यारहवे एवं बारहवें सर्ग मे सरस्वती द्वारा स्वयंवर मे आये हुए राजाओ का वर्णन किया गया है । तेरहवे सर्ग मे सरस्वती नल सहित चार देवताओं का परिचय श्लेष मे देती है । सभी श्लोको का अर्थ नल तथा देवताओ पर घटित होता है । चौदहवें सर्ग मे दमयन्ती वास्तविक नल का वरण करने के लिए देवताओं की स्तुति करती है जिससे देवगण प्रसन्न होकर सरस्वती के श्लेष को समझने की उसमे शक्ति देते हैं । भैमी वास्तविक नल का वरण कर उसके गले में मधूक पुष्प की माला डाल देती है । पंद्रहवे सर्ग मे विवाह की तैयारी एवं पाणि-ग्रहण तथा सोलहवें में नल का विवाह एवं उनका राजधानी लौटना वर्णित है। सत्रहवे सर्ग मे देवताओं का विमान द्वारा प्रस्थान एवं मार्ग मे कलि-सेना का आगमन वर्णित है । सेना मे चार्वाक, बौद्ध आदि के द्वारा वेद का खण्डन और उनके अभिमत सिद्धान्तो का वर्णन है । कलि देवताओं द्वारा नल-दमयन्ती के परिणय की बात सुनकर नल को राजच्युत करने की प्रतिज्ञा करता है और नल की राजधानी मे चला जाता है । वह उपवन मे जाकर विभीतक वृक्ष का आश्रय लेता है और नल को पराजित करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा मे रहता है । अठारहवें सर्ग में नल-दमयन्ती का विहार तथा पारस्परिक अनुराग वर्णित है । उन्नीसवे सर्ग मे प्रभात मे वैतालिक द्वारा नल का प्रबोधन सूर्योदय एवं चन्द्रास्त का वर्णन है । बीसवे सर्ग मे नल-दमयन्ती का परस्पर प्रेमालाप तथा इक्कीसवे मे नल द्वारा विष्णु, शिव, वामन, राम-कृष्ण प्रभृति देवताओ की प्रार्थना का वर्णन है । बाईसवे सर्ग मे सन्ध्या एवं रात्रि का वर्णन, वैशेषिक के अनुसार अन्धकार का स्वरूप-चित्रण तथा चन्द्रोदय एवं दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन कर ग्रन्थ की समाप्ति की गयी है ।

'नैषधचरित' महाकाव्य की पूर्णता के प्रश्न को लेकर विद्वानो मे मतभेद है । इसमें कवि ने २२ सर्गों मे नल के जीवन का एक ही पक्ष प्रस्तुत किया है । वह केवल दोनों के विवाह एवं प्रणय-क्रीडा का ही चित्रण करता है तथा शेष अंश अवर्णित ही रह जाते हैं । कुछ विद्वान् तो २२ वे सर्ग में ही इस काव्य की समाप्ति मानते है, पर कुछ के अनुसार यह महाकाव्य अधूरा है । उनके अनुसार इसके शेष भाग या तो लुप्त हो गए हैं या कवि ने अपनी रचना पूर्ण नहीं की है । वर्त्तमान 'नैषधचरित' को पूर्ण मानने वाले विद्वानो में कीथ, श्री व्यासराज शास्त्री तथा विद्याधर (हर्षचरित के टीकाकार) है । डॉ० कीथ का कहना है कि संस्कृत के उपलब्ध महाकाव्यों मे 'नैषध-चरित' सर्वाधिक विस्तृत ग्रन्थ है, पर यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि श्रीहर्ष ने

इसे और भी अधिक बढ़ाया होगा। नैषध के टीकाकार नारायण के मत का समर्थन करते हुए श्रीव्यासराज शास्त्री ने कहा है कि इसके अन्त में समाप्ति-सूचक मंगलाशा है। इस पर जितनी भी टीकाएँ उपलब्ध हैं वे सभी २२ सर्ग तक ही प्राप्त होती है। विद्याधर की प्राचीनतम टीका २२ सर्ग तक ही है तथा इसकी अनेक हस्तलिपियों में इतने ही सर्ग हैं। पुस्तक की समाप्ति की सूचना २२ वे सर्ग में हो जाती है क्योंकि इस सर्ग के १४९ वें श्लोक के पश्चात् चार श्लोक कवि एवं काव्य की प्रशंसा से सम्बद्ध हैं। इससे ज्ञात होता है कि कवि यहीं पर ग्रन्थ को समाप्त करना चाहता है।

इस मत के विपरीत कतिपय विद्वानों ने अपनी सम्मति दी है। 'नैषधचरित' के नामकरण से ज्ञात होता है कि कवि ने नल के सम्पूर्ण जीवन की घटना का वर्णन किया था। पर, वर्त्तमान रूप मे जो काव्य मिलता है वह नल का सम्पूर्ण वृत्त उपस्थित नहीं करता। इसके और भी कितने नाम प्राप्त होते हैं जिनमे भी इसे चरित कहा गया है—नलीयचरित, वैरसेनीचरित तथा भैमीचरित। विद्वानों का कहना है कि यदि यह काव्य नल-दमयन्ती के मिलन में ही समाप्त हो जाता तो इसका नाम 'नल-दमयन्ती-विवाह' या 'नल-दमयन्ती-स्वयंवर' रखना उचित था। नैषध काव्य के अन्तर्गत कई ऐसी घटनाओं का वर्णन है जिनकी संगति वर्त्तमान काव्य से नहीं बैठती। जैसे कलि द्वारा नल का भविष्य में परिभव करने की घटना। नल-दमयन्ती-विवाह के समय पुरोहित द्वारा नल के वस्त्र को दमयन्ती के उत्तरीय के साथ बाँधने पर कवि ने कल्पना की है कि "मानों इस सर्वज्ञ (पुरोहित) ने भविष्य में वस्त्र को काट कर जाने वाले नल के प्रति अविश्वास को कहा।" इस कल्पना के द्वारा स्पष्ट रूप से 'महाभारत' मे वर्णित नल के जीवन की घटना का संकेत प्राप्त होता है। देवताओं द्वारा दिये गए नल और दमयन्ती के वरदान भी भावी घटनाओं के सूचक है। इन्द्र ने कहा कि वाराणसी के पास अस्सी के तट पर नल के रहने के लिए उनके नाम से अभिहितनगर (नलपुर) होगा। देवगण एवं सरस्वती ने दमयन्ती को यह वर दिया कि जो तुम्हारे पातिव्रत को नष्ट करने का प्रयास करेगा वह भस्म हो जायगा [नैषधचरित १४।७२]। भविष्य मे नल द्वारा परित्यक्ता दमयन्ती जब एक व्याध द्वारा सर्प से बचाई जाती है तब वह उसके रूप को देखकर मोहित हो जाता है और उसका पातिव्रत भंग करना चाहता ही है कि उसकी मृत्यु हो जाती है। नैषध काव्य में इस वरदान की संगति नहीं बैठती। विद्वानों की राय है कि निश्चित रूप से इस महाकाव्य की रचना २२ से अधिक सर्गों मे हुई होगी। १७ वे सर्ग में कलि का पदार्पण एवं उसकी यह प्रतिज्ञा कि वह निश्चित रूप से नल के राज्य एवं दमयन्ती को उससे पृथक् करायेगा (१७।१३७) से ज्ञात होता है कि कवि ने नल की सम्पूर्ण कथा का वर्णन किया था क्योंकि इस प्रतिज्ञा की पूर्त्ति वर्त्तमान काव्य से नहीं होती। श्री मुनि जिनविजय ने हस्तलेखों की प्राचीन सूची में श्रीहर्ष के पौत्र कमलाकर द्वारा रचित एक विस्तृत भाष्य का विवरण दिया है जिसमें साठ हजार श्लोक थे। 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार अच्युताचार्य ने अपनी पुस्तक साहित्यकार की टीका में बतलाया है कि नैषध में सौ सर्ग थे। मंगलसूचक तथा

कवि-प्रशस्ति से सम्बद्ध श्लोकों को असंदिग्ध माना गया है, अतः उनके आधार पर कोई निश्चित निर्णय देना ठीक नहीं है। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर वर्तमान नैषध काव्य अधूरा लगता है।

नल-दमयन्ती की कथा अत्यन्त लोकप्रिय है। इसका वर्णन 'महाभारत', पुराण एवं 'कथासरित्सागर' में प्राप्त होता है। श्रीहर्ष की कथावस्तु का स्रोत 'महाभारत' ही है किन्तु कवि ने नूतन उद्भावनाशक्ति एवं कल्पना के बल पर इसमें नवीन भाव भर दिया है।

आधारग्रन्थ—१. नैषधचरित (हिन्दी अनुवाद)—अनु० डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल २. नैषधचरित (हिन्दी अनुवाद)—डॉ० हरिदत्त शास्त्री कृत अनुवाद ३. नैषध-चरित—(मल्लिनाथ कृत संस्कृत टीका एवं हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन ४. नैषधपरिशीलन—(शोधप्रबन्ध) डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल।

न्यायदर्शन—भारतीय दर्शन का एक सम्प्रदाय जिसमें प्रमाणों के द्वारा वस्तु-तत्त्व की परीक्षा की जाती है—प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः १।१।१, वात्स्यायनभाष्य। न्यायदर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि गौतम है जिन्हें अक्षपाद भी कहा जाता। है [दे० गौतम]। उन्होंने 'न्यायसूत्र' की रचना की है जो इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है। 'न्यायसूत्र' में पाँच अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय दो-दो आह्निको मे विभाजित है। इसमें षोडश विषयों के उद्देश्य, लक्षण एवं परीक्षण किये गये है। उनके नाम है—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति तथा निग्रहस्थान। 'न्यायसूत्र' पर वात्स्यायन ने विस्तृत भाष्य लिखा है जो 'वात्स्यायनभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। न्यायदर्शन के प्रसिद्ध आचार्यों मे उद्योतकर (न्यायवार्त्तिक), जयन्तभट्ट (न्यायमंजरी), उदयनाचार्य (आत्मतत्त्वविवेक एवं न्यायकुसुमाञ्जलि), गंगेश उपाध्याय (तत्त्वचिन्तामणि), जगदीशतर्कालंकार (शब्द-शक्तिप्रकाशिका), गदाधर भट्टाचार्य (व्युत्पत्तिवाद एवं शक्तिवाद)। न्यायशास्त्र के तीन अन्य लोकप्रिय ग्रन्थ हैं जिनमे इसके सिद्धान्तों को सरल रूप दिया गया है; वे हैं—विश्वनाथ भट्टाचार्य कृत 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली', केशवमिश्र रचित 'तर्कभाषा' तथा अन्नंभट्ट कृत 'तर्कसंग्रह' [उपर्युक्त सभी आचार्यों का परिचय इस कोश मे देखें, उनके नामों के सम्मुख]। कालान्तर में न्यायदर्शन की दो धाराएँ हो गयी—प्राचीनन्याय एवं नव्यन्याय। नव्यन्याय के प्रवर्त्तक गंगेश उपाध्याय (मैथिल नैयायिक) है जिन्होंने 'तत्त्वचिन्तामणि' की रचना कर न्यायदर्शन में युगप्रवर्त्तन कर उसकी धारा को मोड़ दिया। नव्यन्याय के अन्य आचार्य हैं—जगदीश तर्कालंकार एवं गदाधर भट्टाचार्य। गौतमसूत्र तथा उसके भाष्य के विरुद्ध किये गए आक्षेपों के खण्डन के लिए जो ग्रन्थ लिखे गए उन्हें प्राचीन न्याय कहा जाता है। नव्यन्याय के विकास मे मिथिला एवं नदिया (पूर्व बंगाल) के नैयायिकों का महत्त्वपूर्ण योग है।

न्याय-प्रमाण-मीमांसा—न्यायदर्शन का विषय है शुद्ध विचार एवं तार्किक आलोचना के नियमों के द्वारा परमतत्त्व का स्वरूप उद्घाटित करते हुए मोक्ष की प्राप्ति

करना। सम्पूर्ण न्यायदर्शन को चार भागों में विभक्त किया गया है प्रथम भाग में प्रमाण सम्बन्धी विचार, द्वितीय में भौतिक जगत् की मान्यताएँ, तृतीय मे आत्मा एवं मोक्ष सम्बन्धी कथन एवं चतुर्थ मे ईश्वर सम्बन्धी विवेचन है। न्याय के सोलह पदार्थों का वर्णन—

१. प्रमाण—यथार्थ ज्ञान का असाधारण कारण ही प्रमाण है। अर्थात् इसके द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

२. प्रमेय—प्रमा के विषय प्रमेय कहे जाते है। अर्थात् प्रमाण के द्वारा जिनका ज्ञान हो, वे प्रमेय हैं। इनकी संख्या १२ है—आत्मा, शरीर, पंचज्ञानेन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म, जो अच्छे एवं बुरे कर्मों के कारण हो), फल, दुःख तथा अपवर्ग।

३ संशय—एक ही धर्मी मे विरुद्ध नाना धर्मों का परिज्ञान संशय कहा जाता है। यह मन की वह स्थिति है जब मन मे दो या दो से अधिक विकल्प उपस्थित हो जाते है। जैसे—यह स्थाणु है या पुरुष।

४. प्रयोजन—जिससे प्रयुक्त होकर व्यक्ति किसी कार्य में प्रयुक्त हो, उसे प्रयोजन कहते है। इसका मुख्य उद्देश्य है सुख की प्राप्ति एवं दुःख का नाश।

५. दृष्टान्त—जो वादी एवं प्रतिवादी दोनो के एकमत्य का विषय होता है, उसे दृष्टान्त कहते है। इसे सर्वसम्मत उदाहरण कहा जा सकता है जो सबको मान्य हो तथा इससे किसी कथन या युक्ति की पुष्टि हो सके। यह दो प्रकार का है—साधर्म्य-एवं वैधर्म्य।

६ सिद्धान्त—किसी दर्शन के अनुसार युक्ति-युक्त सत्य का माना जाना ही सिद्धान्त है। अर्थात् प्रामाणिक रूप से स्वीकार किये जाने वाले अर्थ को सिद्धान्त कहते हैं। इसके चार प्रकार होते है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण तथा अभ्युपगम सिद्धान्त। जो सिद्धान्त सभी शास्त्रों मे मान्य हो वह सर्वतन्त्र, जो किसी विशेष शास्त्र मे माना जाय, अन्य शास्त्रों मे नही, वह प्रतितन्त्र सिद्धान्त है। अधिकरण वहाँ होता है जो आधारभूत ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करे कि जिसके सिद्ध होने पर अन्य अनेक बाते स्वत सिद्ध हो जाएँ। अभ्युपगम सिद्धान्त वह है "जब अपना अभिमत न होने पर अर्थ की विशेष परीक्षा के लिए थोडी देर को स्वीकार कर लिया जाय।"

७ अवयव—अनुमान के एक देश को अवयव कहा जाता है। अनुमान के पाँच अग है—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, अपनय तथा निगमन। (इनका विवेचन आगे है)।

८ तर्क—अनिष्ट प्रसंग को तर्क कहते है। दो व्याप्ति-युक्त धर्मों मे से व्याप्य को स्वीकार करने से अनिष्ट व्यापक की प्रसक्ति होना तर्क है। जैसे—'यदि यहाँ घडा होता तो भूतल की तरह दिखाई देता'।

९. निर्णय—किसी विषय का निश्चित ज्ञान ही निर्णय कहा जाता है। यह निश्चयात्मक ज्ञान तथा प्रमाणों का फल है।

१०. वाद—तत्त्वज्ञान के इच्छुकों—वादी-प्रतिवादी—की कथा को वाद कहते हैं। इसमें तर्क एवं प्रमाण के आधार पर परमत का खंडन करते हुए स्वमत की स्थापना की जाती है। इसका उद्देश्य तत्त्व का परिज्ञान या वस्तु के स्वरूप की अवगति है। वादी एवं प्रतिवादी दोनों का ही ध्येय यथार्थज्ञान की प्राप्ति है।

११. जल्प—प्रतिवादी के कोरे बकवास को जल्प कहते हैं, जिसका उद्देश्य यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना नहीं होता। यहाँ दोनों का ही उद्देश्य केवल विजय प्राप्त करना होता है।

१२. वितण्डा—जब वादी अपने पक्ष की स्थापना न कर केवल प्रतिपक्षी के पक्ष का खण्डन करते हुए अपने मत का समर्थन करे तो वहाँ वितण्डा होता है। इसका उद्देश्य केवल परपक्ष का दूषण होता है।

१३. हेत्वाभास—जो वास्तविक हेतु न होकर हेतु की भाँति प्रतीत हो उसे हेत्वाभास कहते है। सत् हेतु के अभाव मे अयथार्थ अनुमान ही हेत्वाभास कहा जाता है। इसमे अनुमान के दोष विद्यमान रहते हैं।

१४. छल—अभिप्रायान्तर से प्रयोग किये गए शब्द की अन्य अर्थ मे कल्पना कर दोष दिखाना छल है। अर्थात् प्रतिवादी के अन्य अभिप्राय से कथित शब्दो का अन्यार्थ कल्पित कर उसमे दोष निकालना छल है।

१५ जाति—असत या दुष्ट उत्तर ही जाति है और उत्कर्षमना और अपकर्षमना भेद से यह चौबीस प्रकार की होती है।

१६. निग्रहस्थान—वाद-विवाद में शत्रु की पराजय सिद्ध कर देने वाले पदार्थ को निग्रहस्थान कहा जाता है। यह पराजय का हेतु होता है तथा न्यून, अधिक, अपसिद्धान्त, अर्थान्तर, अप्रतिभा, मतानुज्ञा, विरोध आदि के भेद से २२ प्रकार का होता है।

प्रमाण-विचार—न्यायदर्शन में यथार्थज्ञान की प्राप्ति के लिए चार प्रमाण है— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। ज्ञान के दो प्रकार है—प्रमा और अप्रमा। यथार्थानुभव को प्रमा कहा जाता है। जो वस्तु प्रमा या यथार्थज्ञान की उत्पत्ति में साधन बने उसे प्रमाण कहते हैं। जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप मे ग्रहण प्रमा एवं उससे भिन्न रूप में ग्रहण करने को अयथार्थज्ञान या अप्रमा कहते है। प्रमा के चार प्रकार होते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

क. प्रत्यक्ष—"प्रत्यक्ष उस असंदिग्ध अनुभव को कहते हैं जो इन्द्रिय संयोग से उत्पन्न होता है और यथार्थ भी होता है।" अर्थात् इन्द्रिय के सम्पर्क से प्राप्त होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष के कई प्रकार से भेद किये गए हैं। प्रथमतः इसके दो भेद है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक भी दो प्रकार का होता है—बाह्य और आन्तर (मानस)। बहिरिन्द्रियों के द्वारा साध्य प्रत्यक्ष बाह्य होता है। जैसे—आँख, नाक, कान, त्वचा एवं जिह्वा के द्वारा होने वाला प्रत्यक्ष। केवल मन के द्वारा या मानस अनुभूतियों से होने वाला प्रत्यक्ष आन्तर होता है। पंचज्ञानेन्द्रियों के द्वारा

साध्य होने के कारण बाह्य प्रत्यक्ष पाँच प्रकार का होता है—चाक्षुष, श्रावण, स्पार्शन, रासन तथा घ्राणज। मानस प्रत्यक्ष एक ही प्रकार का होता है—अतः लौकिक प्रत्यक्ष के कुल ६ प्रकार हुए। अलौकिक प्रत्यक्ष तीन प्रकार का होता है—सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण तथा योगज। अन्य प्रकार से भी प्रत्यक्ष के तीन भेद किये गए हैं—सविकल्पक, निर्विकल्पक एवं प्रत्यभिज्ञा। जब किसी वस्तु के स्वरूप की प्रतीति के साथ ही साथ उसके नाम और जाति का भी भान हो सके तो सविकल्पक प्रत्यक्ष होगा। नाम, जाति आदि की कल्पना से रहित प्रत्यक्षज्ञान निर्विकल्पक होता है।

निर्विकल्पक ज्ञान का उदाहरण बालक एवं गूंगे का ज्ञान है। किसी को देखते ही साक्षात् ज्ञान का होना प्रत्यभिज्ञा है। 'पहचान' को ही प्रत्यभिज्ञा कहते है। लौकिक प्रत्यक्ष के लिए इन्द्रिय तथा अर्थ का सन्निकर्ष छह प्रकार का होता है—संयोग, संयुक्त-समवाय, संयुक्त समवेतसमवाय, समवाय, समवेत समवाय तथा विशेष्यविशेषणभाव। "चक्षु से घट के प्रत्यक्ष होने पर संयोग, घट के रूप (कृष्ण, पीत, रक्त आदि वर्ण) के प्रत्यक्ष मे संयुक्तसमवाय, घटरूपत्व के प्रत्यक्ष में संयुक्त-समवेत-समवाय सन्निकर्ष होते है। श्रोत आकाशरूप ही है; अतः शब्द के प्रत्यक्ष होने मे समवाय-सन्निकर्ष होगा, क्योकि गुण-गुणी का वास्तव में सम्बन्ध समवाय होता है। शब्दत्व का प्रत्यक्ष समवेत-समवाय से तथा अभाव का प्रत्यक्ष विशेषण-विशेष्यभाव सन्निकर्ष से होता है।" भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय पृ० २४४।

ख अनुमान—अनुमान का अर्थ है प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात लिङ्ग द्वारा अर्थ के अनु अर्थात् पीछे से उत्पन्न होने वाला ज्ञान—'मितेन लिङ्गेन अर्थस्य अनुपश्चान्मान-मनुमानम्' न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्य, १,१,३। 'अनु' का अर्थ है पश्चात् एवं 'मान' का अर्थ है ज्ञान। अनुमान उस ज्ञान को कहा जायगा जो पूर्वज्ञान के बाद आये। इसमे किसी लिंग या हेतु के द्वारा किसी अन्य पदार्थ का ज्ञान होता है। अर्थात् प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की सिद्धि ही अनुमान है। अनुमान के (न्यायशास्त्र में) तीन प्रकार बतलाये गए है—पूर्ववत्, शेषवत् एवं सामान्यतोदृष्ट। कारण से कार्य का अनुमान करना या ज्ञान प्राप्त करना पूर्ववत् है। शेषवत् उसे कहते है जहा कार्य से कारण का अनुमान किया जाय। जैसे, आकाश में काले बादलो को देखकर वर्षा होने का अनुमान पूर्ववत् है तथा नदी की बाढ़ को देख कर वर्षा का अनुमान करना शेषवत् है। सामान्यतोदृष्ट का अर्थ है सामान्य मात्र का दर्शन। इसमे वस्तु की विशेष सत्ता का अनुभव नही होता बल्कि उसके सामान्य रूप का ही ज्ञान होता है। इसमें सामान्य धारणा (व्यापक धारणा) के द्वारा चल कर उसे वाद का आधार बनाया जाता है। अनुमान के अन्य दो भेद हैं—स्वार्थानुमान एवं परार्थानुमान। जब अपने ज्ञान के लिए या अपने समझने के लिए अनुमान किया जाय तब स्वार्थानुमान और दूसरे को समझाने के लिए अनुमान का प्रयोग करने पर परार्थानुमान होता है। इसका प्रयोजन दूसरा व्यक्ति होता है।

परार्थानुमान पंच अवयवो द्वारा व्यक्त होता है। इसे पंचावयव वाक्य या न्याय

कहते है। वे हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। पहला वाक्य प्रतिज्ञा कहलाता है। यह सिद्ध की जाने वाली वस्तु का निर्देश करता है। दूसरा वाक्य है हेतु। इसमे अनुमान को सिद्ध करने वाले हेतु का निर्देश होता है। तीसरे वाक्य को उदाहरण कहते है, "जिसमे उदाहरण के साथ हेतु और साध्य के नियत साहचर्य नियम का उल्लेख किया जाता है।" चौथे वाक्य उपनय से व्याप्ति विशिष्ट पद का ज्ञान होता है। अनुमान के द्वारा प्रतिज्ञा की सिद्धि का होना 'निगमन' है। यह पंचम वाक्य होता है। उदाहरण—

अ—यह पर्वत अग्निमान् है (प्रतिज्ञा)

ब—क्योकि यह धूमयुक्त है (हेतु)

स—जो-जो धूमयुक्त होता है वह वह्नियुक्त भी होता है (उदाहरण)

द—यह पर्वत भी उसी प्रकार धूमयुक्त है (उपनय)

इ—अतः यह पर्वत अग्निमान् है (निगमन)

हिन्दी तर्कभाषा पृ० ८० से उद्धृत आ० विश्वेश्वर कृत व्याख्या। अनुमान का अन्य प्रकार से भी विभाजन किया गया है—केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी तथा अन्वयव्यतिरेकी। यह वर्गीकरण नव्यन्याय के अनुसार है। केवलान्वयी अनुमान मे साधन तथा साध्य में नियम साहचर्य होता है। इसकी व्याप्ति केवल अन्वय से ही द्वारा स्थापित होती है तथा यहाँ व्यतिरेक (निषेध) का नितान्त अभाव होता है। केवलव्यतिरेकी—जब हेतु साध्य के साथ केवल निषेधात्मक रूप से सम्बद्ध रहे तो केवलव्यतिरेकी अनुमान होगा।

अन्वयव्यतिरेकी—इसमें हेतु और साध्य का सम्बन्ध दोनो ही प्रकार से अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा—स्थापित होता है।

ख. *हेत्वाभास*—*जब हेतु वास्तविक न होकर उसके आभास से युक्त हो तो हेत्वाभास* होता है। इसमें हेतु सच्चा नही होता। अर्थात् हेतु के न होने पर भी हेतु जैसा प्रतीत होता है। हेत्वाभास अनुमान का दोष है। इसके पाच प्रकार है—सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध तथा बाधित। जब हेतु और साध्य का सम्बन्ध एकान्ततः ठीक न हो तो सव्यभिचार होता है। विरुद्ध हेतु उस अनुमान मे दिखाई पडता है जब वह साध्य से विरुद्ध वस्तु को ही सिद्ध करने मे समर्थ हो। यह अनुमान की भ्रान्ति है।

सत्प्रतिपक्ष—जब एक अनुमान का कोई अन्य प्रतिपक्षी अनुमान संभव हो तो यह दोष होता है। अर्थात् किसी हेतु के द्वारा निश्चित किये गए साध्य का अन्य हेतु के द्वारा उसके विपरीत तथ्य का अनुमान करना। असिद्ध—इसे साध्यसम भी कहते हैं। जो हेतु साध्य की तरह स्वयं असिद्ध हो उसे साध्यसम या असिद्ध कहते है। स्वयं असिद्ध होने के कारण यह निगमन की सत्यता को निश्चित नहीं कर पाता। बाधित—अनुमान के हेतु का किसी अन्य प्रमाण से बाधित हो जाना है और इसी दोष को बाधित हेत्वाभास कहते हैं।

ग. उपमान—उपमान न्यायशास्त्र का तृतीय प्रमाण है। 'प्रसिद्ध साधर्म्य (समानता) से साध्य के साधने को उपमान कहते है।' अत्यन्त सादृश्य तथा अल्प सादृश्य से उपमान की सिद्धि नहीं होती तथा प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की सिद्धि होने के कारण उपमान भी अनुमान का ही एक रूप है। [दे० दर्शन-संग्रह पृ० १२७, डॉ० दीवानचन्द] इसमें पूर्वानुभूत पदार्थ के सादृश्य के कारण नये पदार्थ का ज्ञान होता है। जैसे, कहा जाय कि गो को सदृश गवय (नीलगाय) होता है, तो उपमान होगा। इसका आधार समानता है।

घ. शब्द—आप्त पुरुष (प्रसिद्ध पुरुष) के वाक्य को शब्द कहते हैं। सूत्रकार के अनुसार 'आप्त का उपदेश शब्द है'। यथाभूत अर्थ का उपदेश करनेवाला पुरुष आप्त कहा जाता है, और उसके वाक्य को शब्द प्रमाण कहते हैं। शब्द दो प्रकार के हैं—वैदिक और लौकिक। वैदिक शब्द ईश्वर के वचन माने गए है अतः वे निर्दोष तथा निर्भ्रान्त है, पर लौकिक शब्द सभी सत्य नहीं होते। वे ही लौकिक शब्द सत्य हो सकते है जो किसी विशिष्ट अधिकारी या आप्त पुरुष द्वारा कथित हो।

आत्मा और मोक्ष—न्यायदर्शन का उद्देश्य है जीवात्मा को यथार्थ ज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करना। इसमे आत्मा सम्बन्धी मत 'वस्तुवादी' है। इसके अनुसार आत्मा एक प्रकार का द्रव्य है जिसमे बुद्धि (ज्ञान) सुख-दुःख, राग-द्वेष, इच्छा, कृति, प्रयत्न आदि गुण के रूप मे विद्यमान रहते है। ये गुण जड द्रव्यो के गुण से भिन्न होते है। भिन्न-भिन्न शरीरधारियो मे आत्मा भिन्न-भिन्न होती है; क्योकि इनके अनुभव परस्पर भिन्न होते है। कतिपय प्राचीन नैयायिको के अनुसार आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति का होना संभव नही है। इसका ज्ञान दो प्रकार मे होता है—आप्तवचन के द्वारा तथा इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख तथा बुद्धि आदि उसके प्रत्यक्ष गुणो के द्वारा। इसीसे आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। नव्यनैयायिको के मतानुसार मानस प्रत्यक्ष के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान होता है।

मुक्ति या अपवर्ग—नैयायिको के अनुसार दुःख से पूर्ण निरोध की अवस्था को अपवर्ग या मोक्ष कहते है, जिसमे शरीर तथा इन्द्रियो के बन्धन से आत्मा को पूर्ण मुक्ति प्राप्त होती है। मोक्ष की स्थिति मे आत्मा का सुख-दुःख के साथ सम्पर्क टूट जाता है तथा दुःख का सदा के लिए विनाश हो जाता है। जब तक आत्मा शरीर मे युक्त रहता है तब तक उसे दुःख से छुटकारा नहीं मिलता और न दुःख का पूर्ण विनाश ही संभव है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए शरीर तथा इन्द्रियों के बंधन से छुटकारा पाना आवश्यक है। मोक्ष-प्राप्ति के साधन है—धर्मग्रन्थो के आत्मविषयक उपदेश, श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इन साधनो से मनुष्य आत्मा से शरीर को भिन्न समझते हुए वासनाओं तथा कुप्रवृत्तियों से दूर हो जाता है और उनका इस पर प्रभाव नहीं पडता। इस स्थिति मे वह सारा काम निष्काम भाव से करता है और अन्ततः संचित कर्मों का फल भोगते हुए जन्म-ग्रहण के चक्र से मुक्त हो जाता है और दुःख का सदा के लिए अन्त हो जाता है। मुक्ति के लिए योग का भी अभ्यास आवश्यक है।

ईश्वर—न्याय-दर्शन में ईश्वर एक मौलिक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है। ईश्वर के अनुग्रह के बिना जीव को न तो प्रमेयों का वास्तविक ज्ञान हो पाता है और न उसे जागतिक दुःखों से छुटकारा ही मिल पाता है। न्यायदर्शन में ईश्वर संसार का रचयिता, पालक तथा संहारक माना जाता है। ईश्वर सृष्टि की रचना नित्य परमाणुओं, दिक्, काल, आकाश, मन तथा आत्माओं के द्वारा करता है। वही संसार की व्यवस्था करता है। अतः वह विश्व का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं। नैयायिकों ने ईश्वर-सिद्धि के प्रबल एवं तर्कसंगत प्रमाण उपस्थित किये हैं। प्रथम प्रमाण कार्य-कारण के सम्बन्ध में है। विश्व के सभी पदार्थ कार्य है। इसके प्रमाण दो है, पहला यह कि वे सावयव हैं, अवयव या अंशों से युक्त है और परिमाण मे सीमित भी है। इन कार्यों का कर्त्ता कोई अवश्य होगा। घट और कुम्भकार का उदाहरण प्रत्यक्ष है। क्योंकि बिना कोई कुशल कर्त्ता के इनका वैसा आकार संभव नहीं है। उसे निश्चित रूप से सर्वज्ञ होना चाहिए तथा सर्वशक्तिमान् एवं व्यापक भी। विश्व का अन्तिम उपादान है परमाणु, जो जड होता है। अतः जब तक उस जड परमाणु को चेतन अध्यक्ष का संरक्षण नहीं प्राप्त होता तब तक सुव्यवस्थित एवं नियम से परिचालित विश्व की सृष्टि नहीं हो सकती।

ईश्वर अदृष्ट का अधिष्ठाता है। संसार मे मनुष्यों के भाग्य में अन्तर दिखाई पडता है। कुछ सुखी है तो कुछ दुःखी, कुछ मूर्ख तो कुछ महान् पण्डित। इसका कारण क्या है? ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ये सारी घटनाएँ अकारण हैं। अत ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन की सारी घटनाओं का कोई कारण अवश्य है। हमारे जीवन के सुख-दुःख निश्चित रूप से इस जीवन के कर्म-फल हैं। कर्म-नियम के अनुसार मनुष्य को सुकर्मों से सुख एवं कुकर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है। इससे प्रत्येक कार्य का कारण होता है और कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, यह विचार सिद्ध हो जाता है। संसार का स्रष्टा ईश्वर को मानने पर सुकर्म एवं कुकर्म का सुखद एवं दुःखद फल होना आवश्यक है। अतः कर्मानुसार फल के सिद्धान्त के आधार पर ईश्वर की सत्ता प्रामाणिक हो जाती है।

पाप और पुण्य के फल या कर्म-फल के बीच अधिक समय के अन्तर को देखकर यह प्रश्न उठता है कि दोनों के बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध संभव नहीं है। जीवन के बहुतेरे दुःखों का कारण जीवन में प्राप्त नहीं होता। युवावस्था के पाप-कर्म का फल वृद्धावस्था मे मिलता है, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि पाप-पुण्य का संचय अदृष्ट के रूप में होता है तथा पाप-पुण्य के नष्ट हो जाने पर भी वे आत्मा में विद्यमान रहते हैं। ईश्वर ही हमारे अदृष्ट का नियन्ता होता है और सुख-दुःख (प्राणियों के) का वही सम्पादन भी करता है। इस प्रकार कर्मफल-दाता एवं अदृष्ट का नियन्त्रण करने के कारण ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। धर्मग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा अप्रवचन भी ईश्वर-सिद्धि के कारण है। हमारे यहाँ वेदों का प्रामाण्य सर्वसिद्ध है। वेद जिसे धर्म कहता है; वही धर्म है और जिसका वह निषेध करता है, वह अधर्म होता है। वेदों के

आप्तवचन निश्चितरूप से प्रमाणित करते हैं कि ईश्वर की सत्ता है। न्यायदर्शन के अनुसार वेदों की प्रामाणिकता ईश्वर के ही कारण है।

न्यायदर्शन की शास्त्रीय विवेचनात्मक पद्धति भारतीय तत्त्वज्ञान की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके द्वारा निरूपित प्रमाणों को, किंचित् परिवर्त्तन के साथ, सभी दर्शन स्वीकार करते है। इसमें हेत्वाभास का सूक्ष्म विवेचन कर अनुमान को दोष-मुक्त कर दिया गया है तथा आत्मा को शरीर एवं इन्द्रियों से सर्वथा स्वतन्त्र एवं मुक्त मान कर उसकी नित्यता सिद्ध की गयी है, जिससे चार्वाक एवं बौद्धों की तद्विषयक मान्यताएँ खंडित हो जाती हैं। इसकी तर्क-पद्धति अत्यन्त प्रौढ़ एवं संतोषप्रद है, किन्तु इसका तत्त्वज्ञान एवं ईश्वर-विषयक मान्यताएँ उतनी सशक्त नहीं हैं। इसमे जगत् को ज्ञान से पृथक् एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में चित्रित किया गया है तथा इसमे अनेक पदार्थ; जैसे—दिक्, काल, आकाश, मन, परमाणु आदि भी नित्य माने गए हैं। अनेक वस्तुओ को नित्य मानने के पीछे कोई औचित्य नहीं दिखाई पडता तथा ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मान कर उसमें मानवसुलभ दुर्बलताओ का समावेश कर दिया गया है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए एक ही परम सत्ता का अस्तित्व स्वीकार नही करता और इस तरह अद्वैतवाद का समर्थन नही करता। इस दृष्टि से इसका तत्त्वज्ञान सांख्य और वेदान्त से हलका पड जाता है।

आधारग्रन्थ—१ इण्डियन फिलॉसफी—डॉ. एस राधाकृष्णन्। २ भारतीय दर्शन—दत्त और चटर्जी (हिन्दी अनुवाद)। ३ भारतीय दर्शन—पं बलदेव उपाध्याय। ४ तर्कभाषा—हिन्दी भाष्य—आ० विश्वेश्वर। ५ न्यायकुसुमाञ्जलि—(हिन्दीभाष्य—आ० विश्वेश्वर। ६ न्यायदर्शन—हिन्दी अनुवाद—श्रीराम शर्मा। ७ हिन्दी न्यायदर्शन—पं० ढुण्ढिराज शास्त्री। ८ पदार्थशास्त्र—आनन्द झा। ९ दर्शन-संग्रह—डॉ० दीवानचन्द। १० न्यायमुक्तावली—हिन्दी अनुवाद। ११ भारतीय दर्शन-परिचय-न्याय—पं० हरिमोहन झा।

नृसिंह चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता दैवज्ञ सूर्य है। इनका रचना-काल सोलहवीं शती का मध्य भाग है। इन्होने अपने ग्रन्थ में अपना परिचय दिया है (५।७६–७८)। इसके अनुसार ये भारद्वाजकुलोद्भव नागनाथ के पौत्र एवं ज्ञानराज के पुत्र थे। इनका जन्म गोदावरी तटस्थ वार्था संज्ञक नगर मे हुआ था। इन्होने अनेक ग्रन्थो की रचना की है जिनमें 'लीलावती' एवं 'बीजगणित' की टीकाएँ भी हैं। 'नृसिंह चम्पू' पाँच उच्छ्वासों मे विभक्त है जिसमें नृसिंहावतार की कथा का वर्णन है। प्रथम उच्छ्वास मे केवल दश श्लोक हैं जिनमे वैकुण्ठ एवं नृसिंह की बन्दना की गयी है। द्वितीय में हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद की प्रताडना का वर्णन है। तृतीय उच्छ्वास में हिरण्यकशिपु का वध तथा चतुर्थ अध्याय मे देवताओं एवं सिद्धों द्वारा नृसिंह की स्तुति का वर्णन है। पञ्चम उच्छ्वास में नृसिंह का प्रसन्न होना वर्णित है। इस चम्पू काव्य में श्लोकों की संख्या ७५ एवं गद्य के १९ चूर्णक हैं। इसमें भयानक, रौद्र, वीर, बीभत्स, अद्भुत, हास्य, शृंगार एवं शान्त रस का समावेश है। इस चम्पू-काव्य का प्रधान

रस वीर है किन्तु अन्त मे रमा को उपस्थित करा कर कवि शृंगार की सृष्टि कर देता है।

सौन्दर्येण भृशं दृशोर्नरहरेः साफल्यमातन्वती
सभ्रूभङ्गमपांगवीक्षणवशादाकर्षयन्ती मनः।
स्फूर्जत्कंकणकिंकिणीगणक्षणत्कारैः कृतार्थे सुधी-
कुर्वन्ती शनकैर्जगाम जगतामाद्यर्धदात्री रमा ॥ ५।३

इसका प्रकाशन कृष्ण ब्रदर्स जालन्धर मे हुआ है सम्पादक हैं डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री।

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

नृसिंह चम्पू या प्रह्लाद चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता केशव भट्ट है। गौलाक्षी परिवार के केशव भट्ट इनके पितामह थे और पिता का नाम अनन्त था। इनका जन्म गोदावरी जिले के पुण्यस्तंब संज्ञक नगर मे हुआ था। 'नृसिंह चम्पू' का रचना-काल १६८४ ई० है। इसमे छह स्तबको मे नृसिंहावतार की कथा का वर्णन है। यह साधारण कोटि की रचना है और इसमे भ्रमवश प्रह्लाद के पिता को उत्तमपाद कहा गया है। मंगलाचरण इस प्रकार है—

कनकरुचिदुकूलः कुण्डलोल्लासिगण्डः शमितभुवनभारः कोपि लीलावतारः।
त्रिभुवनसुखकारी शैलधारी मुकुन्दः परिकलितरथांगो मंगलं नस्तनोतु ॥ १।१

इसका प्रकाशन कृष्णाजी गणपत प्रेस, बम्बई से १९०९ ई० मे हो चुका है। संपादक हैं हरिहर प्रसाद भागवत।

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

पञ्चतन्त्र—संस्कृत पशु-कथा का महान ग्रन्थ। इसके लेखक विष्णुशर्मा हैं। यह ग्रन्थ विश्व-पशु आख्यायिका की परम्परा मे भारत की एक महान् देन है। इसमें सरल भाषा मे अनेक पशु-कथाएँ वर्णित है जिनमे जीवन की विविध समस्याओं का समाधान किया गया है। ये कथाएँ मूलतः गद्य मे है किन्तु बीच-बीच मे प्रचुर मात्रा में पद्यो का भी समावेश कर विषय को अधिक स्पष्टता प्रदान की गयी है। 'पंचतन्त्र' की कहानियाँ नितान्त प्राचीन है। इसके विभिन्न शताब्दियों मे विभिन्न प्रान्तो मे विभिन्न संस्करण हुए है। इसका सर्वाधिक प्राचीन संस्करण 'तन्त्राख्यायिका' के नाम से विख्यात है तथा इसका मूल स्थान काश्मीर है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० हर्टेल ने अत्यन्त श्रम के साथ इसके प्रामाणिक संस्करण को खोज निकाला था। इनके अनुसार 'तन्त्राख्यायिका' या 'तन्त्राख्यान' ही पंचतन्त्र का मूल रूप है। इसमे कथा का रूप भी संक्षिप्त है तथा नीतिमय पद्यो के रूप मे समाविशित पद्यात्मक उद्धरण भी कम है। सम्प्रति 'पंचतन्त्र' के चार भिन्न-भिन्न संस्करण उपलब्ध होते हैं—

क—मूलग्रन्थ का पहलवी अनुवाद, जो प्राप्त नहीं होता पर इसका रूप सीरियन एवं अरबी अनुवादों के रूप में सुरक्षित है।

ख–'पंचतन्त्र' का दूसरा रूप गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' में दिखाई पड़ता है। 'बृहत्कथा' की रचना पैशाची भाषा में हुई थी, किन्तु इसका मूलरूप नष्ट हो गया है और क्षेमेन्द्ररचित 'बृहत्कथामंजरी' तथा सोमदेव लिखित 'कथासरित्सागर' उसी के अनुवाद है।

ग–तृतीय संस्करण मे तन्त्राख्यायिका एवं उसमे सम्बद्ध जैन कथाओं का संग्रह है। आधुनिक युग का प्रचलित 'पंचतन्त्र' इसका रूप है।

घ–चतुर्थ संस्करण दक्षिणी 'पंचतन्त्र' का मूलरूप है तथा इसका प्रतिनिधित्व नैपाली 'पंचतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' करते हैं। इस प्रकार 'पंचतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर 'एक विपुल साहित्य का प्रतिनिधि' है। रचना-काल अनिश्चित है किन्तु इसका प्राचीन रूप डॉ० हर्टेल के अनुसार, दूसरी शताब्दी है। इसका प्रथम पहलवी अनुवाद छठी शताब्दी मे हुआ था। हर्टेल ने पचास भाषाओ में इसके दो सौ अनुवादों का उल्लेख किया है। 'पंचतन्त्र' का सर्वप्रथम परिष्कार एवं परिबृंहण प्रसिद्ध जैन विद्वान् पूर्णभद्रसूरि ने संवत् १२५५ में किया है और आजकल का उपलब्ध संस्करण इसी पर आधृत है। पूर्णभद्र के निम्नोक्त कथन से पंचतन्त्र के पूर्ण परिष्कार की पुष्टि होती है।

प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्रीपूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम्॥

'पंचतन्त्र' मे पाँच तन्त्र या विभाग है—मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धि-विग्रह, लब्ध-प्रणाश एवं अपरीक्षित-कारक। इसके प्रत्येक अंश में एक मुख्य कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ गुंफित होती हैं। प्रथम तन्त्र की अंगी कथा के पूर्व दक्षिण मे महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति की कथा दी गयी है। उन्हे इस बात का दुःख है कि उनके पुत्र मन्दबुद्धि है और वे किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने मे असमर्थ है। वे विष्णुशर्मा नामक महापण्डित को अपने पुत्रों को सौंप देते है और वे उन्हें छह मास के भीतर आख्यायिकाओ के माध्यम से शिक्षित करने का कठिन कार्य सम्पन्न करने मे सफल होते है। तत्पश्चात् मित्रभेद नामक भाग की अंगी कथा में एक दुष्ट सियार द्वारा पिंगलक नामक सिंह के साथ संजीवक नामक बैल की शत्रुता उत्पन्न कराने का वर्णन है जिसे सिंह ने आपत्ति से बचाया था और अपने दो मन्त्रियों—करकट और दमनक—के विरोध करने पर भी उसे अपना मित्र बना लिया था। द्वितीय तन्त्र का नाम मित्र-सम्प्राप्ति है। इसमें कपोतराज चित्रग्रीव की कथा है। तृतीय तन्त्र में युद्ध और सन्धि का वर्णन किया गया है। इसमे उलूकों की गुहा को कौओ द्वारा जला देने की कथा कही गयी है। चतुर्थ तन्त्र में लब्ध-प्रणाश का उदाहरण एक बन्दर तथा ग्राह की कथा द्वारा प्राप्त होता है। पंचम तन्त्र में बिना विचारे काम करने वालों को सावधान करने की कथा कही गयी है।

'पंचतन्त्र' की कथा के माध्यम से लेखक ने अनेक सिद्धान्त-रूप वचन कहे हैं जिनमें नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक जीवन के सामान्य नियम अनुस्यूत हैं। इसकी भाषा सरल, ललित एवं चुभनेवाली है। वाक्य छोटे तथा प्रभावशाली अधिक हैं।

भाषा मे व्यावहारिकता अधिक है और लेखक ने उसे जीवन के निकट ला दिया है। यत्र-तत्र विशेषणों एवं कल्पनाओं का समावेश कर इसमे काव्यात्मक प्रवाह प्रकट किया गया है, पर वहाँ भी भाषा अलंकारों के भार से बोझिल नहीं बनी है। ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ पर शास्त्रनिष्ठ, व्यवहार-कुशल एवं नीतिपटु व्यक्ति का व्यक्तित्व झाँकता है। इसकी मुहावरेदार तथा सरल भाषा मे विनोदप्रियता एवं व्यंग्यात्मकता झलकती रहती है। कहीं भी वाक्य-विन्यास मे दुरूहता एवं दुर्बोधता के दर्शन नही होते। लेखक ने महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थो—रामायण, महाभारत तथा प्राचीन नीति ग्रन्थो—से सूक्तियों को लेकर अपने विचारो की पुष्टि की है। "लेखक की भाषा स्पष्टतः सुन्दर है, और विशेषरूप से पद्यो में हम परिष्कृत तथा जटिल छन्दो के साथ-साथ श्लेष तथा परिष्कृत शैली के अन्य चिह्न भी पाते हैं। कुछ पद्यो मे काव्य की सरलतर शैली में प्रचलित समासो की अपेक्षा कुछ बड़े समास भी पाये जाते है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ अर्थ की वास्तविक जटिलता मूल-ग्रन्थ मे बताई जा सके। यह स्पष्ट है कि लेखक सुरुचि से युक्त था और यह समझता था कि बाल राजकुमारो के लिए अभिप्रेत रचना मे भाषाशैली की अत्यधिक कृत्रिमता अनुपयुक्त है।" संस्कृत साहित्य का इतिहास (कीथ) हिन्दी अनुवाद पृ० ३०६-३०७। डॉ० हर्टेल ने सर्वप्रथम 'पंचतन्त्र' का सम्पादन कर हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज संख्या १३ मे प्रकाशित कराया था।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २ संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ३ पंचतन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन। ४ पंचतन्त्र (केवल हिन्दी अनुवाद)—डॉ० मोतीचन्द्र।

पञ्चरात्र—यह महाकवि भास विरचित तीन अंकों का समवकार (नाटक का एक प्रकार) है। इसकी कथा 'महाभारत' के विराटपर्व पर आधृत है, पर कवि ने इसे भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। इसकी कथा अनैतिहासिक है पर नाटककार ने अत्यन्त मौलिक दृष्टि से इसका वर्णन किया है। पञ्चरात्र की कथावस्तु अत्यन्त कौतूहलपूर्ण है। इसमे 'महाभारत' की कथा को उल्टी दिशा मे मोड कर युद्ध को समाप्त कर दिया गया है। कविने ऐतिहासिक घटना मे काफी स्वतन्त्रता दिखाई है पर वह उसे 'महाभारत' के कथानक की भाँति प्रभावोत्पादक नही बना सका। इसमे द्रोणाचार्य शिष्यवत्सल आचार्य के रूप मे दिखाये गए है। इसकी कथा इस प्रकार है—

प्रथम अंक—द्यूतक्रीडा में पराजित होकर पाण्डव वनवास कर रहे हैं और एक वर्ष का अज्ञातवास बिताने के लिए राजा विराट् के यहाँ रहते हैं। इसी समय कुरुराज दुर्योधन यज्ञ करता है और उसके यहाँ बहुत से राजे आते हैं। यज्ञ पूर्ण समारोह के साथ सम्पन्न होता है। तदनन्तर दुर्योधन द्रोणाचार्य से दक्षिणा मांगने के लिए कहता है। द्रोणाचार्य पाण्डवों को आधा राज्य देने की दक्षिणा मांगते हैं। इस पर शकुनि उद्विग्न होकर ऐसा नही करने को कहता है। गुरु द्रोण रुष्ट हो जाते हैं पर वे भीष्म द्वारा शान्त किये जाते है। शकुनि दुर्योधन को बताता है कि यदि पाँच रात्रि मे पाण्डव प्राप्त हो जाएँ तो इस शर्त पर यह बात मानी जा सकती है। द्रोणाचार्य यह शर्त मानने को

तैयार नहीं होते । इसी बीच विराट् नगर से एक दूत आकर सूचना देता है कि कीचक सहित सौ भाइयों को किसी व्यक्ति ने बाहों से ही रात्रि में मार डाला इसलिए राजा यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुए । भीष्म को विश्वास हो जाता है कि अवश्य ही यह कार्य भीम ने किया होगा । अतः वे द्रोण से दुर्योधन की शर्त मान लेने को कहते हैं । द्रोण इस शर्त को स्वीकार कर लेते हैं और यज्ञ में आये हुए राजाओं के समक्ष उसे सुना दिया जाता है । भीष्म विराट् के ऊपर चढ़ाई कर उसके गोधन को हरण करने की सलाह देते है जिसे दुर्योधन मान लेता है । द्वितीय अंक मे विराट् के जन्मदिन के अवसर पर कौरवों द्वारा गोधन के हरण का वर्णन है । युद्ध में भीमसेन द्वारा अभिमन्यु पकड़ लिया जाता है और वह राजा विराट् के समक्ष निर्भय होकर बातें करता है । युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन सभी प्रकट हो जाते हैं पर राजा विराट् उन्हें गुप्त होने के लिए कहते हैं । इस पर युधिष्ठिर कहते हैं कि अज्ञातवास पूरा हो गया है । तृतीय अंक का प्रारम्भ कौरवों के यहाँ से हुआ है । सूत द्वारा यह सूचना मिली कि अभिमन्यु शत्रुओं द्वारा पकड़ लिया गया है । सूत ने बताया कि कोई व्यक्ति पैदल ही आकर अभिमन्यु को पकड़ ले गया । भीष्म ने कहा कि निश्चितरूप से वह भीमसेन होगा । इसी समय युधिष्ठिर का संवाद लेकर दूत आता है । गुरु द्रोण दुर्योधन को गुरुदक्षिणा पूरी करने को कहते है । दुर्योधन उसे स्वीकार कर कहता है कि उसने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया । भरतवाक्य के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है ।

आधारग्रन्थ—भासनाटकचक्रम्—चौखम्बा प्रकाशन ।

पञ्चशिख—सांख्यदर्शन को व्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध करने वाले प्रथम आचार्य के रूप में पञ्चशिख का नाम आता है । ये आचार्य आसुरि [सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल के शिष्य] के शिष्य थे । इनके सिद्धान्त-वाक्य अनेक ग्रन्थों में उद्धृत है जिन्हें 'पाञ्चशिख-सूत्र' कहा जाता है । इनमें से प्रधान सूत्रों को उद्धृत किया जाता है—

१ एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम् [योगभाष्य १।४]
२ तमणुमात्रमात्मानमनुविद्याऽस्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते [योग० १।३६]
३ बुद्धितः परं पुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन् कुर्यात्तत्रात्मबुद्धिं मोहेन । वही २।६
४. तत्संयोगहेतुविवर्जनात्स्यादयमात्यन्तिको दुःखप्रतीकारः । योग-भाष्य २।१७, ब्रह्मसूत्र-भामती २।२।१०
५. अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते । योग-भाष्य २।२०

चीनी परम्परा इन्हें 'षष्टितन्त्र' का रचयिता मानती है जिसमें साठ हजार श्लोक थे । इनके सिद्धान्तों का विवरण 'महाभारत' (शान्तिपर्व, अध्याय ३०२–३०८) में भी प्राप्त होता है । 'षष्टितन्त्र' के रचयिता के संबंध में विद्वानों मे मतभेद है । श्री उदयवीर शास्त्री एवं कालीपद भट्टाचार्य 'षष्टितन्त्र' का रचयिता कपिल को मानते हैं ।

भास्कराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य मे कपिल को ही उक्त ग्रन्थ का प्रणेता कहा है— 'कपिलमहर्षिप्रणीतषष्टितन्त्राख्यस्मृतेः' । ब्रह्मसूत्र २।१।१ पर म० म० डॉ गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'षष्टितन्त्र' के रचयिता पञ्चशिख हैं—जयमंगला की भूमिका ।

आधारग्रन्थ —१ भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय । २ सांख्यदर्शन का इतिहास—श्री उदयवीर शास्त्री । ३ साख्यतत्त्वकौमुदी—डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र ।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास—ये उन्नीसवी शताब्दी के प्रसिद्ध गद्यलेखक, कवि एवं नाटककार हैं। इनका समय १८५८ से १९०० ई० है। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे, किन्तु पीछे आकर इनके पिता वाराणसी में बस गए। व्यासजी पटना राजकीय संस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापक थे और उक्त पद पर जीवन पर्यन्त रहे। इनकी ग्रन्थों की सख्या ७५ है। इन्होने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में समान अधिकार के साथ रचनाएँ की हैं।

व्यासजी ने छत्रपति शिवाजी के जीवन पर 'शिवराजविजय' नामक महान् गद्यकाव्य की रचना की है जो 'कादम्बरी' की शैली में रचित है। इनका 'सामवतम्' नामक नाटक उन्नीसवी शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसकी शैली अलंकृत एवं पाण्डित्यपूर्ण है तथा अलंकारो के प्रयोग में स्वाभाविकता एवं अपूर्व रचनाशक्ति का परिचय दिया गया है। एक उदाहरण ले—

कदाऽहं कान्ताया नलिननयनाया करतलं
गृहीत्वा सानन्दं निजकरतलेनातिरुचिरम् ।
सुधाधारावाराप्लुतमिव मन स्वं विरचयन्
शचीयुक्त जिष्णु चिरमुपहसिष्यामि मुदित ॥ ७।७ ।

पण्डितराज जगन्नाथ—ये महान् काव्यशास्त्री एवं कवि हैं। इनका युगप्रवर्तक ग्रन्थ 'रसगगाधर' है जो भारतीय आलोचनाशास्त्र की अन्तिम प्रौढ रचना है। पण्डितराज तैलङ्ग ब्राह्मण तथा शाहजहाँ के सभापण्डित थे। शाहजहाँ के द्वारा ही इन्हें 'पण्डितराज' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनके पिता का नाम पेरुभट्ट या पेरमभट्ट एवं माता का नाम लक्ष्मी था।

पाषाणादपि पीयूषं स्यन्दते यस्य लीलया ।
त वन्दे पेरभट्टाख्य लक्ष्मीकान्तं महागुरुम् ॥ रसगंगाधर १।३

पण्डितराजकृत 'भामिनीविलास' से ज्ञात होता है कि इन्होने अपनी युवावस्था दिल्लीश्वर शाहजहाँ के आश्रय मे व्यतीत की थी।

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि सम्भाविता-
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतन्नवीनं वयः ॥ ४।४५

ये चार नरेशों के आश्रय मे रहे—जहाँगीर, जगतसिंह, शाहजहाँ एवं प्राणनारायण। "पण्डितराज ने प्रारम्भ के कुछ वर्ष जहाँगीर के आश्रय मे बिताया। १६२७ ई० के बाद वे उदयपुर-नरेश जगतसिंह के यहाँ चले गए। कुछ दिन वहाँ रहे और उनकी प्रशंसा मे 'जगदाभरण' की रचना की क्योकि जगतसिंह भी गद्दी पर १६२८ ई०

मे ही बैठा जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा था। कुछ दिन बाद शाहजहाँ ने पण्डितराज को पुनः अपने यहाँ बुला लिया। परन्तु हमारे विचार से जगतसिंह के यहाँ से आसफ खाँ ने इन्हे अपने पास बुलाया और ये आसफ खाँ के ही आश्रय मे रहे तथा शाहजहाँ ने आसफ खाँ की प्रेरणा से इन्हें अपने यहाँ बुलाया और पण्डितराज की उपाधि देकर सम्मानित किया।"

"शाहजहाँ की मृत्यु के बाद ये एक-आध वर्ष के लिए प्राणनाथ के पास गए होंगे और फिर वहाँ से आकर अपनी वृद्धावस्था मथुरा में बितायी होगी। इस तरह पण्डितराज का रचनाकाल १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध तथा कुछ उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ स्वीकार किया जा सकता है।" [भामिनीविलास (हिन्दी अनुवाद) की भूमिका पृ० १३ अनुवादक पं० राधेश्याम मिश्र]

पण्डितराज की कृतियाँ—१ रसगंगाधर—इसके विवरण के लिए दे० रसगंगाधर। २ चित्रमीमासाखण्डन—दे० आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ अप्पयदीक्षित कृत 'चित्रमीमासा' नामक ग्रन्थ का इसमे खण्डन है। ३ गंगालहरी—इसे 'पीयूषलहरी' भी कहते हैं। इसमे ५२ श्लोको मे कवि ने गंगाजी की स्तुति की है। ५३ वाँ पद्य फलस्तुति है। ४ अमृतलहरी—इसमें १० पद्यों (शार्दूलविक्रीडित) मे यमुना जी की स्तुति है। ११ वे पद्य मे कवि ने अपना परिचय दिया है। ५ करुणालहरी—इसमें ५५ पद्य है तथा विष्णु की स्तुति है। ६ लक्ष्मीलहरी—इसमे ४१ शिखरिणी वृत्त मे लक्ष्मीजी की स्तुति है। ७ सुधालहरी—इसमे ३० स्रग्धरा छन्द मे सूर्य की स्तुति की गयी है। ८ आसफविलास—इसमे शाहजहाँ के मामा नवाब आसफ खाँ का चरित्र आख्यायिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। ९ प्राणाभरण—इसमे कामरूपनरेश प्राणनारायण की प्रशस्ति है। १० जगदाभरण—इसमे उदयपुर के राजा जगतसिंह का वर्णन है। प्राणाभरण से इसमे अधिक साम्य है। ११ भामिनीविलास—इसमे पण्डितराज के फुटकर पद्य संगृहीत है। ग्रन्थ मे चार विलास है—प्रास्ताविकविलास (१२९ पद्य), शृंगार-विलास (१८३ पद्य), करुण-विलास (१९ पद्य) तथा शान्तविलास (४६ पद्य)। इनका व्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थ है—मनोरमाकुचमर्दन।

पतञ्जलि—ये 'महाभाष्य' नामक महान् व्याकरण ग्रन्थ के रचयिता है। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थो मे पतञ्जलि के अनेक नामो का उल्लेख मिलता है—गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत्, शेषराज, शेषाहि, चूर्णिकार तथा पदकार। 'यादवप्रकाश' आदि कोशकारो ने गोनर्दीय नाम का प्रयोग किया है—

गोनर्दीयः पतञ्जलिः। पृ० ९६ श्लोक १५७

कैयट और राजशेखर ने भी इन्हे गोनर्दीय के नामान्तर के रूप मे स्वीकार किया है। भाष्यकारस्त्वाह-प्रदीप १।१।२१, गोनर्दीयपदं व्याचष्टे भाष्यकार इति। उद्योत १।१।२१

यस्तु प्रयुङ्क्ते तत्प्रमाणमेवेतिगोनर्दीयः। काव्यमीमासा पृ० ६

परन्तु डॉ० कीलहार्न तथा श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने अपनी युक्तियो से गोनर्दीय को

पतञ्जलि से भिन्न सिद्ध किया। [दे० जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द ५२, पृ० २४१ तथा इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द १४, पृ० ४०]। पं० युधिष्ठिर मीमांसक भी गोनर्दीय को पतञ्जलि से अभिन्न नहीं मानते। [दे० संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग १ पृ० ३०३]। 'महाभाष्य' में गोणिकापुत्र के मत का उल्लेख है— उभयथा गोणिकापुत्र इति। महाभाष्य १।१।५१। नागेश मत से गोणिकापुत्र पतञ्जलि से अभिन्न हैं। वात्स्यायन कामसूत्र में भी गोणिकापुत्र का उल्लेख है—

गोणिकापुत्रो भाष्यकार इत्याहुः।
गोणिकापुत्रः पारदारिकम्। १।१।१६, कामसूत्र

विद्वानों ने पतञ्जलि को गोणिकापुत्र से भिन्न माना है। कैयट 'महाभाष्य' की व्याख्या में पतञ्जलि के लिए 'नागनाथ' नामान्तर का प्रयोग करते हैं तथा चक्रपाणि ने 'चरक' (वैद्यक-ग्रन्थ) की टीका में 'अहिपति' का प्रयोग किया है। 'तत्रजात इत्यत्र तु सूत्रेऽस्य लक्षणत्वमाश्रित्यैतेषां सिद्धिमभिधास्यति नागनाथः। महाभाष्य ४।२।९३ की व्याख्या।

वल्लभसेन कृत 'शिशुपालवध' की टीका में पतञ्जलि शेषाहि के नाम से अभिहित किये गए हैं। पदं शेषाहिविरचितं भाष्यम्। शिशुपालवध २।११२ स्कन्दस्वामी की निरुक्तटीका में (१।३) 'महाभाष्य' का एक पाठ पदकार के नाम से उद्धृत किया गया है। पदकार आह—उपसर्गश्च पुनरेवमात्मकाः⋯क्रियामाहुः। निरुक्त टीका १।३

संस्कृत वाङ्मय में पतञ्जलि के नाम पर तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—सामवेदीयनिदान-सूत्र' 'योगसूत्र' तथा 'महाभाष्य'। आयुर्वेद की 'चरकसंहिता' को भी पतञ्जलि द्वारा परिष्कृत करने का उल्लेख है तथा 'सांख्यकारिका' की 'युक्तदीपिका' टीका में पतञ्जलि के सांख्यविषयक मत के उद्धरण दिये गए हैं। मैक्समूलर ने षड्गुरुशिष्य के पाठ को उद्धृत करते हुए योगदर्शन एवं निदानसूत्र का रचयिता एक ही व्यक्ति को माना है। भर्तृहरि ने भी 'वाक्यपदीय' में पतञ्जलि को योगसूत्र, व्याकरणमहाभाष्य एवं चरक वार्त्तिकों का कर्त्ता स्वीकार किया है। वैयाकरणों की परम्परा में भी एक श्लोक प्रसिद्ध है जिसमें पतञ्जलि का स्मरण योगकर्त्ता, महावैयाकरण एवं वैद्य के रूप में किया गया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकिरत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

प्रो० चक्रवर्त्ती तथा लिबिख ने योगकर्त्ता पतञ्जलि एवं वैयाकरण पतञ्जलि को अभिन्न माना है, किन्तु चरक के रचयिता पतञ्जलि ईसा की दूसरी शती में उत्पन्न हुए थे और योगसूत्रकर्त्ता पतञ्जलि का आविर्भाव ३ री या चौथी शताब्दी में हुआ था। प्रो० रेनो ने दोनों को भिन्न माना है। इनके अनुसार प्रत्याहार, उपसर्ग, प्रत्यय तथा विकिरण का अर्थ योग में व्याकरण से भिन्न है तथा च, वा आदि का भी उसमें प्रयोग नहीं है। न तो योगसूत्र व्याकरण के नियमों को मानता है। 'लघुशब्देन्दुशेखर' के भैरव-मिश्र कृत टीका में 'महाभाष्य' के कर्त्ता, योगसूत्र के प्रणेता तथा 'चरकसंहिता' के रच-

पिता को एक ही व्यक्ति कहा गया है। लैसेन एवं गार्बे ने भाष्यकार तथा योगसूत्रकार को एक ही माना है। परस्पर असम्बद्ध विषयों पर समान अधिकार के साथ प्रामाणिक ग्रन्थ लिखने के कारण मैक्समूलर ने तीनो लेखक को एक ही माना है। भारतीय परम्परा महाभाष्यकार पतञ्जलि का 'चरकसंहिता' तथा योगदर्शन के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए तीनो का कर्त्ता एक ही व्यक्ति को मानती है। पर कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि 'पातंजलशाखा' 'निदानसूत्र' एवं योगदर्शन के लेखक एक ही पतञ्जलि थे और वे अति प्राचीन ऋषि है। पाणिनि ने भी उपकादि गण में (२।४।६९) पतञ्जलि पद रखा है, अतः महाभाष्यकार पतञ्जलि इनसे भिन्न व्यक्ति सिद्ध होते हैं। महाभाष्यकार उपर्युक्त तीनो ग्रन्थों के रचयिताओ से सर्वथा भिन्न है और अर्वाचीन भी।

पतञ्जलि के जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है। रामभद्र दीक्षितकृत 'पतञ्जलिचरित' के अनुसार ये शेषावतार थे। पर कोई आवश्यक नहीं कि इस काव्य की सारी बातें सही हो। पतञ्जलि गोनर्द के निवासी थे और उनकी माता का नाम गोणिका था।

पतञ्जलि की रचनाएँ—महाराज समुद्रगुप्तकृत 'कृष्णचरित' मे पतञ्जलि को १–महानन्द' या 'महानन्दमय' काव्य का रचयिता कहा गया है—

महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम्।
योगव्याख्यानभूतं तद् रचितं चित्तदोषहृत्॥

'सदुक्तिकर्णामृत' मे भाष्यकार के नाम से अधोलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

यद्यपि स्वच्छभावेन दर्शयत्यम्बुधिर्मणीन्।
तथापि जानुदघ्नोयमिति चेतसि मा कृथाः॥

महानन्द काव्य मे काव्य के बहाने योग का वर्णन किया गया है।

२ साहित्यशास्त्र—शारदातनय रचित 'भावप्रकाशन' मे किसी वासुकि आचार्यकृत साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ का उल्लेख है जिसमे भावों द्वारा रसोत्पत्ति का कथन किया गया है।

उत्पत्तिस्तु रसानां या पुरा वासुकिनोदिता।
नानाद्रव्यौषधैः पाकैर्व्यञ्जनं भाव्यते यथा।
एवं भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह।
इति वासुकिनाऽप्युक्तो भावेभ्यो रससम्भवः। पृ० ४७

इससे ज्ञात होता है कि पतञ्जलि ने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा होगा।

३. लोहशास्त्र—शिवदास कृत 'चक्रदत्त' (वैद्यक ग्रन्थ) की टीका में लोहशास्त्र नामक ग्रन्थ के रचयिता पतञ्जलि बताए गए हैं।

४ सिद्धान्तसारावली—इसके भी रचयिता पतञ्जलि कहे गए हैं।

५ कोश—अनेक कोश-ग्रन्थो की टीकाओं में वासुकि, शेष, फणिपति तथा भोगीन्द्र आदि नामो द्वारा रचित कोश-ग्रन्थ के उद्धरण प्राप्त होते है।

६. महाभाष्य—व्याकरणग्रन्थ [दे० महाभाष्य]

पतञ्जलि का समय—बहुसंख्यक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार पतञ्जलि का समय १५०ई० पू० है। पर मीमांसक जी ने जोर देकर बताया है कि पतञ्जलि विक्रम संवत् से दो हजार वर्ष पूर्व हुए थे। इस सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है। पर अन्त:साक्ष्य के आधार इनका समयनिरूपण उतना कठिन नहीं है। 'महाभाष्य' के वर्णन से पता चलता है कि पुष्यमित्र ने किसी ऐसे विशाल यज्ञ का आयोजन किया था जिसमें अनेक पुरोहित थे और उनमें एक पतञ्जलि भी थे। वे स्वयं ब्राह्मण याजक थे और इसी कारण उन्होंने क्षत्रिय याजक पर कटाक्ष किया है—

यदि भवद्विध: क्षत्रियं याजयेत् ३-३-१४७ पृ० ३३२

पुष्यमित्रो यजते, याजका: याजयन्ति। तत्र भवितव्यम् पुष्यमित्रो याजयते, याजका: याजयन्तीति यज्यादिषु चाविपर्यासो वक्तव्य:। महाभाष्य पृ० ७४, ३।१।२६

इससे पता चलता है कि पतञ्जलि का आविर्भाव कालिदास के पूर्व एवं पुष्यमित्र के राज्यकाल में हुआ था। 'मत्स्यपुराण' के मत से पुष्यमित्र ने ३६ वर्षों तक राज्य किया था। पुष्यमित्र के सिंहासनासीन होने का समय १८५ ई० पू० है और ३६ वर्ष कम कर देने पर उसके शासन की सीमा १४९ ई० पू० निश्चित होती है। गोल्डस्टुकर ने 'महाभाष्य' का काल १४० से १२० ई० पू० माना है। डॉ० भण्डारकर के अनुसार पतञ्जलि का समय १५८ ई० पू० के लगभग है। पर प्रो० वेबर के अनुसार इनका समय कनिष्क के बाद अर्थात् ई० पू० २५ वर्ष होना चाहिए। डॉ० भण्डारकर ने वेबर के इस कथन का खण्डन कर दिया है। बोथलिंक पतञ्जलि का समय २०० ई० पू० मानते हैं (पाणिनिज ग्रामेटिक पृ० ११) जिसका समर्थन मैक्समूलर ने भी किया है। कीथ के अनुसार पतञ्जलि का समय १५० ई० पू० है किन्तु अपने ग्रन्थ 'संस्कृत ड्रामा' में इन्होंने इसे १४० ई० पू० मान लिया है।

पतञ्जलि का निवासस्थान—पतञ्जलि ने कात्यायन को दाक्षिणात्य कहा है। 'लघुशब्देन्दुशेखर' तथा 'पतञ्जलिचरित' काव्य में पता चलता है कि इनका निवासस्थान गोनर्द था और यही प्रामाणिक भी लगता है। डॉ० भण्डारकर के अनुसार वर्त्तमान अवध का गोंडा ही गोनर्द का अपभ्रंश है। 'महाभाष्य' के एक वाक्य के अनुसार महाभाष्यकार का निवासस्थान साकेत एवं पाटलिपुत्र के मार्ग में था। 'योऽयमध्वागत आपाटलिपुत्रात्तस्य यत्परं साकेतात्।' इनके निवासस्थान के विषय में अभी तक कोई निश्चित विचार नहीं आ सका है।

आधारग्रन्थ—१ हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर—मैक्समूलर। २ इण्डियन लिटरेचर—वेबर। ३ इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली—जिल्द ८, पृ० ३९ प्रो० बी० के० ठाकुर। ४ इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, जिल्द २, १८७२, पृ० २९९, भण्डारकर। ५ कलेक्टेड वर्क्स ऑफ डॉ० भण्डारकर भाग १। ६ पाणिनिज ग्रामेटिक—बोथलिंक। ७ पाणिनी—गोल्डस्टुकर। ८ जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, भाग १६। ९ इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग २, पृ० ५७ वेबर— ऑन द डेट ऑफ पतंजलि। १० हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—कीथ। ११ संस्कृत ड्रामा—कीथ। १२ पाणिनीकालीन भारतवर्ष—

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। १३ पतञ्जलिकालीन भारत—डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री। १४ संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—भाग १, २, पं० युधिष्ठिर मीमांसक। १५ संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त इतिहास—पं० रमाकान्त मिश्र।

पद्मगुप्त परिमल—ये संस्कृत के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य 'नवसाहसाङ्कचरित' के प्रणेता हैं। इसमें धारानरेश भोजराज के पिता सिन्धुराज या नवसाहसाङ्क का शशिप्रभा नामक राजकुमारी से विवाह वर्णित है। परिमल सिन्धुराज के ज्येष्ठ भ्राता राजा मुंज के सभापण्डित थे। यह ग्रन्थ १००५ ई० के आसपास लिखा गया था। इसमें १८ सर्ग हैं जिसके १२ वे सर्ग मे सिन्धुराज के समस्त पूर्वपुरुषो (परमारवंशी राजाओं) का कालक्रम से वर्णन है, जिसकी सत्यता की पुष्टि शिलालेखों से होती है। इसमे कालिदास की रससिद्ध सुकुमार मार्ग की पद्धति अपनायी गयी है। यह इतिहास एवं काव्य दोनों ही दृष्टियों से समान रूप से उपयोगी है।

[हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित]

पद्मपुराण—इसे पुराणो मे क्रमानुसार द्वितीय स्थान प्राप्त है। यह बृहदाकार पुराण लगभग पचास हजार श्लोकों से युक्त है तथा इसमे कुल ६४१ अध्याय है। इसके दो संस्करण प्राप्त है - देवनागरी तथा बंगाली। आनन्दाश्रम से सन् १८९४ ई० में बी० एन० माण्डलिक द्वारा यह पुराण चार भागो मे प्रकाशित हुआ था जिसमे छह खण्ड है—आदि, भूमि, ब्रह्मा, पाताल, सृष्टि एवं उत्तरखण्ड। इसके उत्तरखण्ड में इस बात का उल्लेख है कि मूलतः इसमे पाँच ही खण्ड थे, छह खण्डो की कल्पना परवर्ती है। 'पद्मपुराण' की श्लोक संख्या भिन्न भिन्न पुराणो मे भिन्न-भिन्न है। 'मत्स्यपुराण' के ५३ वे अध्याय मे इसकी श्लोक संख्या ५५ हजार कही गयी है, किन्तु 'ब्रह्मपुराण' के अनुसार इसमे ५९ हजार श्लोक है। इसी प्रकार खण्डो के क्रम मे भी मतभेद दिखाई पडता है। बंगाली संस्करण हस्तलिखित पोथियो मे ही प्राप्त होता है जिसमें पाँच खण्ड मिलते है।

१. सृष्टिखण्ड—इसका प्रारम्भ भूमिका के रूप मे हुआ है जिसमें ८२ अध्याय हैं। इसमे लोमहर्षण द्वारा अपने पुत्र उग्रश्रवा को नैमिषारण्य मे एकत्र मुनियों के समक्ष पुराण सुनाने के लिए भेजने का वर्णन है तथा वे शौनक ऋषि के अनुरोध पर ऋषियो को 'पद्मपुराण' की कथा सुनाते हैं। इसके इस नाम का रहस्य बताया गया है कि इसमे सृष्टि के प्रारम्भ मे कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति का कथन किया गया था। सृष्टिखण्ड भी पाँच पर्वों मे विभक्त है। इसमे इस पृथ्वी को पद्म कहा गया है तथा कमल पुष्प पर बैठे हुए ब्रह्मा द्वारा विस्तृत ब्रह्माण्ड की सृष्टि का निर्माण करने के सम्बन्ध मे किये गए सन्देह का इसी कारण निराकरण किया गया है कि पृथ्वी कमल है—

तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्।
यत्पद्मं सा रसादेवी पृथिवी परिचक्षते॥ सृष्टिखण्ड अध्याय ४०।

क. पौष्करपर्व - इस खण्ड मे देवता, पितर, मनुष्य एवं मुनि सम्बन्धी नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन किया गया है। सृष्टि के सामान्य वर्णन के पश्चात् सूर्यवंश तथा

श्रीकृष्ण के साथ चन्द्रवंश का वर्णन है। इसमें पितरों एवं उनके श्राद्धों से सम्बद्ध विषयों का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा देवासुरसंग्राम का भी वर्णन है। इसी खण्ड में पुष्कर तालाब का वर्णन है जो ब्रह्मा के कारण पवित्र माना जाता है और उसकी तीर्थ के रूप में वन्दना भी की गयी है।

ख. तीर्थपर्व—इस पर्व मे अनेक तीर्थों, पर्वत, द्वीप एवं सप्तसागरों का वर्णन किया गया है। इसके उपसंहार मे कहा गया है कि समस्त तीर्थों मे श्रीकृष्ण भगवान् का नाम स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है तथा इनके नाम का उच्चारण करने वाले व्यक्ति सारे संसार को तीर्थमय बना देते है।

तीर्थाना तु परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः।
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः॥

ग तृतीयपर्व—इस पर्व मे दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन किया गया है तथा चतुर्थपर्व मे राजाओं का वंशानुकीर्त्तन है।

अन्तिम पर्व (पञ्चमपर्व) मे मोक्ष एवं उसके साधन वर्णित है। इसी खण्ड मे निम्नांकित कथाएँ विस्तारपूर्वक वर्णित है—समुद्र-मंथन, पृथु की उत्पत्ति, पुष्कर तीर्थ के निवासियो का धर्म-वर्णन, वृत्रासुर-सग्राम, वामनावतार, मारकण्डेय एवं कार्तिकेय की उत्पत्ति, रामचरित तथा तारकासुरवध। असुरसंहारक विष्णु की कथा तथा स्कन्द के जन्म एवं विवाह के पश्चात् इस खण्ड की समाप्ति हो जाती है।

२. भूमिखण्ड—इस खण्ड का प्रारम्भ सोमशर्मा की कथा से होता है जो अन्तत विष्णुभक्त प्रह्लाद के रूप मे उत्पन्न हुआ। इसमे भूमि का वर्णन तथा अनेकानेक तीर्थों की पवित्रता की सिद्धि के लिए अनेक आख्यान दिये गए है। इसमें सकुला की ऐसी कथा का उल्लेख है जिसमे दिखाया गया है कि किस प्रकार पत्नी भी तीर्थ बन जा सकती है। इसी खण्ड मे राजा पृथु, वेन, ययाति एवं मातलि के आध्यात्म-सम्बन्धी वर्त्तालाप तथा विष्णु-भक्ति की महनीयता का वर्णन है। इसमे च्यवन ऋषि का आख्यान तथा विष्णु एवं शिव की एकताविषयक तथ्यो का विवरण है।

३ स्वर्गखण्ड—इस खण्ड मे अनेक देवलोकों, देवता, बैकुण्ठ, भूतो, पिशाचों, विद्याधरो, अप्सरा एवं यक्षो के लोक का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे अनेक कथाएँ एवं उपाख्यान हैं जिनमे शकुन्तलोपाख्यन भी है जो 'महाभारत' की कथा से भिन्न एवं महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के निकट है। अप्सराओ एवं उनके लोकों के वर्णन मे राजा पुरूरवा और उर्वशी का उपाख्यान भी वर्णित है। इसमे कर्मकाण्ड, विष्णुपूजा-पद्धति, वर्णाश्रमधर्म एवं अनेक आचारो का भी वर्णन है।

४. पातालखण्ड—इस खण्ड मे नागलोक का वर्णन है तथा प्रसंगवश रावण का उल्लेख होने के कारण इसमे सम्पूर्ण रामायण की कथा कह दी गयी है। रामायण की यह कथा महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' से अत्यधिक साम्य रखती है किन्तु रामायण के साथ इसकी आंशिक समानता ही दिखाई पडती है। इसमे शृंगी ऋषि की कथा भी है जो 'महाभारत' से भिन्न ढंग से वर्णित है। 'पद्मपुराण' के इस खण्ड मे भवभूतिकृत

'उत्तररामचरित' की कथा से साम्य रखने वाली उत्तररामचरित की कथा वर्णित है। इसके बाद अष्टादश पुराणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर 'श्रीमद्भागवत' की महिमा का आख्यान किया गया है।

५. उत्तरखण्ड—यह सबसे बड़ा खण्ड है जिसमें नाना प्रकार के आख्यानों एवं वैष्णवधर्म से सम्बद्ध व्रतों तथा उत्सवों का वर्णन किया गया है। विष्णु के प्रिय माघ एवं कार्तिक मास के व्रतों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर शिव-पार्वती के वार्त्तालाप के रूप मे राम एवं कृष्णकथा दी गयी है। उत्तरखण्ड के परिशिष्ट रूप में 'क्रियायोगसार' नामक अध्याय मे विष्णु-भक्ति का महत्त्व बतलाते हुए गंगास्नान एवं विष्णु-सम्बन्धी उत्सवों की महत्ता प्रदर्शित की गयी है।

'पद्मपुराण' वैष्णवभक्ति का प्रतिपादन करने वाला पुराण है जिसमे भगवन्नाम-कीर्तन की विधि एवं नामापराधों का उल्लेख है। इसके प्रत्येक खण्ड मे भक्ति की महिमा गायी गयी है तथा भगवत्स्मृति, भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्वज्ञान एव भगवत्तत्त्व साक्षात्कार को ही मूल विषय मानकर इनका विशद विवेचन किया गया है। इसमें निम्नांकित विषयो का समावेश कर उनका व्याख्यान किया गया है—श्राद्धमाहात्म्य, तीर्थ-महिमा, आश्रमधर्म-निरूपण, नाना प्रकार के व्रत तथा स्नान, ध्यान एवं तर्पण का विधान, दान-स्तुति, सत्संग का माहात्म्य, दीर्घायु होने के सहज साधन, त्रिदेवों की एकता, मूर्त्तिपूजा, ब्राह्मण एवं गायत्री मन्त्र का महत्त्व, गौ एवं गोदान की महिमा, द्विजोचित आचार-विचार, पितृ एवं पतिभक्ति, विष्णुभक्ति, अद्रोह, पञ्च महायज्ञो का माहात्म्य, कन्या-दान का महत्त्व, सत्यभाषण तथा लोभत्याग का महत्त्व, देवालय-निर्माण, पोखरा-खुदाना, देवपूजन का महत्त्व, गगा, गणेश एवं सूर्य की महिमा तथा उनकी उपासना के फलों का महत्त्व, पुराणो की महिमा, भगवन्नाम, ध्यान, प्राणायाम आदि। साहित्यिक दृष्टि से भी इस पुराण का महत्त्व असंदिग्ध है। इसमे अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य बड़े-बड़े छन्द भी प्रयुक्त हुए है।

'पद्मपुराण' के काल-निर्णय के सम्बन्ध मे अभी तक कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हो सका है और इस विषय मे विद्वानो मे मतैक्य नहीं है। 'श्रीमद्भागवत' का उल्लेख, राधा के नाम की चर्चा, रामानुजमत का वर्णन आदि के कारण यह रामानुज का पर-वर्त्ती माना जाता है। श्री अशोक चैटर्जी के अनुसार 'पद्मपुराण' में राधा नाम का उल्लेख श्री हितहरिवंश द्वारा प्रवर्त्तित राधावल्लभी सम्प्रदाय का प्रभाव सिद्ध करता है, जिनका समय १५८५ ई० है; अतः इसका उत्तरखण्ड १६ वीं शताब्दी के बाद की रचना है। [दे० पुराण बुलेटिन भाग ५ पृ० १२२–२६] विद्वानों का कथन है कि 'स्वर्गखण्ड' मे शकुन्तला की कथा महाकवि कालिदास से प्रभावित है तथा इस पर 'रघुवंश' एवं 'उत्तररामचरित' का भी प्रभाव है, अतः इसका रचनाकाल पाँचवी शताब्दी के बाद का है। डॉ० विन्टरनित्स एवं डॉ० हरदत्त शर्मा (पद्मपुराण एण्ड कालि-दास, कलकत्ता १९२५ ई०, कलकत्ता ओरियन्टल सिरीज न० १७) ने यह सिद्ध किया है कि महाकवि कालिदास ने 'पद्मपुराण' के आधार पर ही 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की

रचना की थी, न कि उनका 'पद्मपुराण' पर ऋण है। इस पुराण के रचनाकाल एवं अन्य तथ्यों के अनुसन्धान की अभी पूर्ण गुंजाइश है, अतः इसका समय अधिक अर्वाचीन नहीं माना जा सकता।

आधारग्रन्थ—१ प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १ खण्ड २—डॉ० विन्टरनित्स। २ पुराणतत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ३ पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ पुराण बुलेटिन- अखिल भारतीय, काशिराज न्यास। ५ पद्मपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई। ६ पद्मपुराण—(हिन्दी अनुवाद) गीता प्रेस, गोरखपुर। ७ पद्मपुराण—(हिन्दी अनुवाद सहित) श्रीराम शर्मा। ८ एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन--पार्जिटर। ९ पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय।

पदाङ्कदूत—इस दूतकाव्य के रचयिता कृष्णसार्वभौम हैं। इनका समय वि० सं० १७८० है। इनका निवासस्थान शान्तिपुर नामक स्थान (पश्चिम बंगाल) था। इन्होंने नवद्वीप के राजा रघुरामराय की आज्ञा से 'पदाङ्कदूत' की रचना की थी। काव्य के अन्त में ग्रन्थकार ने निम्नांकित श्लोक में इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है।

शाके सायकवेदषोडशमिते श्रीकृष्णशर्मार्पय-
श्चानन्दप्रदनन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्दं हृदि।
चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतमखिलं प्रीतिप्रदं शृण्वता
धीरश्रीरघुरामरायनृपतेराज्ञा गृहीत्वादरात्॥४६॥

इस काव्य में श्रीकृष्ण के एक पदाङ्क को दूत बनाकर किसी गोपी द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजा गया है। प्रारम्भ में श्रीकृष्ण के चरणाङ्क की प्रशंसा की गयी है और यमुना तट से लेकर मथुरा तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। इसमें कुल ४६ छन्द हैं। एक श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द का है तथा शेष छन्द मन्दाक्रान्ता के हैं। गोपी के सन्देश का उपसंहार इन शब्दों में किया गया है—

मूर्खा एव क्षणिकमनिशं विश्वमाहुर्न धीरा-
स्तापोऽस्माकं हरिविरहजः सर्वदैवास्ति चित्ते।
नान्यः शब्दो वचनमपि यत्तादृशं तस्य किन्तु
प्रेमैवास्मत्प्रियतमकृतं तच्च गोपाङ्गनासु॥४२॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

पद्मप्रभसूरि—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका समय वि. सं. १२९४ के आसपास है। इन्होंने 'भुवन-दीपक' नामक ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें कुल १७० श्लोक हैं। इसकी सिंहतिलकसूरि ने वि. सं. १३२६ में 'विवृति' नामक टीका लिखी थी। इस ग्रन्थ के वर्ण्य विषय हैं—राशिस्वामी, उच्चनीचत्व, मित्रशत्रु, राहु का गृह, केतुस्थान, ग्रहों का स्वरूप, विनष्टग्रह, राजयोगों का विवरण, लाभालाभविचार, लग्नेश की स्थिति का फल, प्रश्न के द्वारा गर्भ-विचार तथा प्रसवज्ञान, इष्टकालज्ञान, यमजविचार, मृत्युयोग, चौर्यज्ञान, आदि। इन्होंने 'मुनिसुव्रतचरित' 'कुन्थुचरित' तथा 'पार्श्वनाथ स्तवन' नामक ग्रन्थों की भी रचना की है।

द्रष्टव्य—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

पराशरस्मृति—यह पराशर द्वारा रचित स्मृति है जो उनके नाम से प्रसिद्ध है। गरुडपुराण में (अध्याय १०७) 'पराशरस्मृति' के ३९ श्लोक के लिए गए हैं जिससे इसकी प्राचीनता का पता चलता है। कौटिल्य ने भी पराशर के मत का ६ बार उल्लेख किया है। इसका प्रकाशन कई स्थानो से हुआ है, पर माधव की टीका के साथ बम्बई संस्कृतमाला का संस्करण अधिक प्रामाणिक है। इसमें बारह अध्याय एवं ५९२ श्लोक है। इसकी विषय-सूची इस प्रकार है—१-पराशर द्वारा ऋषियों को धर्मज्ञान देना, युगधर्म तथा चारों युगों का विविध दृष्टिकोण से अन्तर्भेद, स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वैदिक अध्ययन, देवपूजा, वैश्वदेव तथा अतिथिसत्कार, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की जीविकावृत्ति के साधन। २-गृहस्थधर्म। ३-जन्म-मरण से उत्पन्न अशुद्धि का पवित्रीकरण। ४-आत्महत्या, दरिद्र, मूर्ख या रोगी पति को त्यागने पर स्त्री को दण्ड, स्त्री का पुनर्विवाह। पतिव्रता नारियों के पुरस्कार। ५-कुत्ता काटने पर शुद्धि। ६-पशु-पक्षियों, शूद्रों, शिल्पकारो, स्त्रियों, वैश्यों तथा क्षत्रियो को मारने पर शुद्धिकरण, पापी ब्राह्मण एवं ब्राह्मण-स्तुति। ७-धातु, काष्ठ आदि के बर्तनों की शुद्धि, ८-मासिक धर्म के समय नारी। ९-गाय, बैल को मारने के लिए छडी की मोटाई। १०-वर्जित नारियों से संभोग करने पर चान्द्रायण या अन्य व्रत से शुद्धि। ११-चाण्डाल से लेकर खाने पर शुद्धि, खाद्याखाद्य के नियम, १२-दुःस्वप्न देखने, वमन करने, बाल बनवाने आदि पर पवित्रीकरण, पाँच स्नान।

आधारग्रन्थ—१ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ (हिन्दी अनुवाद) डॉ० पा० वा० काणे। २. पराशरस्मृति—'प्रकाश' हिन्दी टीका सहित—चौखम्बा प्रकाशन।

पराशर—फलित ज्योतिष के प्राचीन आचार्य। इनकी एकमात्र रचना 'बृहत्पाराशरहोरा' है। पराशर का समय अज्ञात है, पर विद्वानों ने 'बृहत्पाराशरहोरा' के अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि ये वराहमिहिर के पूर्ववर्ती थे [दे० वराहमिहिर]। इनका समय संभवतः ५ वी शती एवं पश्चिम भारत रहा होगा। 'बृहत्पाराशरहोरा' ९७ अध्यायों मे विभक्त है। इसमे वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—ग्रहगुणस्वरूप, राशिस्वरूप, विशेषलग्न, षोडशवर्ग, राशिदृष्टिकथन, अरिष्टाध्याय, अरिष्टभंग, भावविवेचन, द्वादशभाव-फलनिर्देश, ग्रहस्फुटदृष्टिकथन, कारक, कारकांशफल, विविधयोग, रवियोग, राजयोग, दारिद्र्ययोग, आयुर्दाय, मारकयोग, दशाफल, विशेषनक्षत्रदशाफल, कालचक्र, अष्टकवर्ग, त्रिकोणशोधन, पिण्डशोधन, रश्मिफल, नष्टजातक, स्त्रीजातक, अंगलक्षणफल, ग्रहशान्ति, अशुभजन्मनिरूपण, अनिष्टयोगशान्ति आदि।

पराशर के नाम पर अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जैसे 'पराशरस्मृति'। कौटिल्य ने भी पराशर का नाम एवं उनके मत का छह बार उल्लेख किया है। पर विद्वानो का कहना है कि स्मृतिकार पराशर ज्योतिर्विद् पराशर से भिन्न है। कलियुग मे पराशर के ग्रन्थ का अधिक महत्त्व दिया गया है—कलौपाराशरः स्मृतः। 'बृहत्पाराशरहोरा' के प्रारम्भ में यह श्लोक है—अथैकदामुनिश्रेष्ठं त्रिकालज्ञं पराशरम्। प्रपच्छोपेत्य मैत्रेयः प्रणिपत्य

कृताञ्जलिः ।। ग्रन्थ के अन्त में कहा गया है—इत्थं पाराशरेणोक्तं होराशास्त्रचमत्कृतम् । नवं नवजनप्रीत्यै विविधाध्याय संयुतम् ।। श्रेष्ठं जगद्धितायेदं मैत्रेयाय द्विजन्मने । ततः प्रचरितं पृथ्व्यामादृतं सादरं जनैः ।।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ।

पवनदूत—इस सन्देशकाव्य के रचयिता वादिचन्द्र सूरि हैं। इनका समय १७ वीं शताब्दी के आसपास है। इनके गुरु का नाम शान्तिनाथ था। लेखक दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के भक्त थे। इन्होंने 'ज्ञानसूर्योदय' नामक नाटक भी लिखा था। इस नाटक का प्रकाशन जैन ग्रन्थावली बम्बई से हो चुका है। इस काव्य की रचना मेघदूत के अनुकरण पर हुई है जिसकी कथा काल्पनिक है। इसमें कुल १०१ श्लोक हैं तथा मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें कवि ने विजयनरेश नामक उज्जयिनी के एक राजा का वर्णन किया है जो अपनी पत्नी के पास पवन से सन्देश भेजता है। विजयनरेश की पत्नी तारा को अशनिवेग नामक विद्याधर हर कर ले जाता है। रानी के वियोग मे दुःखित होकर राजा पवन से उसके पास सन्देश भेजता है। पवन उसकी प्रिया के पास जाकर उसका सन्देश देता है और अशनिवेग की सभा मे जाकर तारा को उसके पति को समर्पित करने को प्रार्थना करता है। विद्याधर उसकी बात मान कर तारा को पवन के हाथ मे दे देता और वह अपने पति के पास आ जाती है। इसका प्रकाशन (हिन्दी अनुवाद सहित) हिन्दी जैन-साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई से हो चुका है। इस काव्य की भाषा सरस एवं सरल है तथा उसमें सर्वत्र प्रवाह विद्यमान है। पवन को दूत बनाते समय कवि का कथन देखिए—पुत्र' मीता दशमुखहृतां तावको दूरनार्था तत्सन्देशैर्ज्ञपित कुशलैः जीवयामास वेगात् । तत्कि चित्रं त्वकमिह पदे संस्थितस्तां च पैञ्ये प्रायः कार्यं लघुजनकृतं नाधिके चित्रकारी ।। १३ ।।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य ।

पाञ्चरात्र—आगम वैष्णवागम या वैष्णवतन्त्र को 'पाञ्चरात्र' कहा जाता है। महाभारत मे इसके लिए भागवतधर्म, पाञ्चरात्र, ऐकान्तिक, नारायण, वासुदेव, वैष्णव तथा सात्वत आदि नाम आये है—नूनमेकान्तधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः ।।४।। परस्पराङ्गान्येतानि पाचरात्रं च कथ्यते । एष एकान्तिनां धर्मो नारायणपरात्मकः ।। ८२ ।। एष ते कथितो धर्मः सात्वतः कुरुनन्दनः ।। ८४ ।। महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ३४८ ।

पाञ्चरात्र की प्राचीनता के सम्बन्ध मे अधिक प्रामाणिक साधन प्राप्त नहीं होते । इसका सर्वप्रथम विवेचन महाभारत के 'नारायणीयोपाख्यान' (शान्तिपर्व अध्याय ३३५–३४६) मे प्राप्त होता है। उसमें बताया गया है कि नारदमुनि ने इस तन्त्र के तत्त्व को भारत के उत्तर मे स्थित श्वेत द्वीप में जाकर नारायण ऋषि से प्राप्त किया था और आने पर इसका प्रचार किया। इस प्रकार नारायण ऋषि ही पाञ्चरात्र के प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। पाञ्चरात्र का संबंध वेद की एक शाखा 'एकायन' के साथ स्थापित कर इसे वेद का ही एक अंश स्वीकार किया गया है। क—एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सर्वतो भुवि । ईश्वरसंहिता १।४३ ख—वेदमेकायनं नाम वेदानां

शिरसि स्थितम्। तदर्थकं पाञ्चरात्रं मोक्षदं तत्क्रियावताम्॥ प्रश्नसंहिता ग—ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि वाकोवाक्यमेकायनम्। छान्दोग्य ७।१।२

उत्पलाचार्य की 'स्पन्दकारिका' (१० म शताब्दी) मे पाञ्चरात्र के तीन विभागों के निर्देश प्राप्त होते है—पाञ्चरात्र श्रुति, पाञ्चरात्र उपनिषद् एवं पाञ्चरात्रसंहिता। पाञ्चरात्रश्रुतावपि—यद्वत् सोपानेन प्रासादमारोहेत्, प्लवनेन वा नदी तरेत्। तद्वत् शास्त्रेण हि भगवान् शास्ता अवगन्तव्यः। स्पन्दकारिका पृ० २। पाञ्चरात्रोपनिषद् च—ज्ञाता च ज्ञेयश्च वक्ता च भोक्ता च भोज्यञ्च। वही पृ० ४०।

इन उल्लेखों के आधार पर पाञ्चरात्र महाभारत से प्राचीन सिद्ध होता है और इसकी सीमा उपनिषत्काल मे चली जाती है। पाञ्चरात्रविषयक विपुल साहित्य प्राप्त होता है जो अत्यन्त प्राचीन भी है। 'कपिञ्जलसंहिता' मे पाञ्चरात्र संहिताएँ २१५ बतलायी गयी हैं जिनमें अगस्तसंहिता, काश्यपसहिता, नारदीयसंहिता, विष्णुरहस्यसंहिता मुख्य है। अभी तक १३ संहिताएँ प्रकाशित हैं—अहिर्बुध्न्यसंहिता, ईश्वरसंहिता, कपिञ्जल-संहिता, पराशरसंहिता, पाद्मतन्त्र, बृहत् ब्रह्मसंहिता, जयाख्यसंहिता भारद्वाजसंहिता, लक्ष्मीतन्त्र, विष्णुतिलक, श्रीप्रश्नसंहिता, विष्णुसंहिता एवं सात्वतसंहिता। अहिर्बुध्न्य-संहिता—इसका प्रकाशन अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास से हुआ है। इसमे अहिर्बुध्न्य द्वारा तपस्या करने के पश्चात् संकर्षण से सुदर्शन स्वरूप के सत्यज्ञान प्राप्त करने का वर्णन है। ईश्वरसंहिता—इसका प्रकाशन कंजीवरम से १९२३ ई० में हुआ है। इसमे २४ अध्याय हैं और १६ अध्यायो मे पूजा की विधि का वर्णन है। शेष अध्यायों में मूर्त्तियों के विवरण, दीक्षा, ध्यान, मन्त्र, प्रायश्चित्त, संयम तथा यादव गिरि की पवित्रता का वर्णन है। जयाख्यसंहिता का प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज संख्या ४५ से हो चुका है। पराशरसंहिता—इसमे ईश्वर के नाम-जप की विधि दी गयी है।

'पाञ्चरात्र' नाम के भी कई कारण प्रस्तुत किये जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में (१३।६।१) 'पाञ्चरात्रसत्र' का वर्णन है जिसे समस्त प्राणियो पर आधिपत्य जमाने के लिए नारायण को पाँच दिनों तक करना पडा था। 'महाभारत' मे कहा गया है कि वेद एवं सांख्ययोग के समावेश होने के कारण इस मत का नाम पाञ्चरात्र पडा है। ईश्वरसंहिता के अनुसार पाँच ऋषियों—शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्जायन, कौशिक एवं भारद्वाज ने मिलकर इसका उपदेश पाँच रातो में दिया था इसलिए यह पाञ्चरात्र कहलाया। पद्मसंहिता के अनुसार अन्य पाँच शास्त्रो के इसके समक्ष रात्रि के समान मलिन पड जाने के कारण इसकी अभिधा पाञ्चरात्र है। सांख्यं योगं पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। आत्मप्रमाणान्येतानि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥ श्रीभाष्य २।२।४२ 'नारद-पाञ्चरात्र' के अनुसार पाँच विषयों का विवेचन होने के कारण इसे पाञ्चरात्र कहते है। वे पाँच तत्त्व है—परमतत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग एवं विषय। रात्रञ्च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्—नारदपाञ्चरात्र १।४४।

पाञ्चरात्र में परब्रह्म को अद्वितीय, दुःखरहित, निःसीमसुखानुभवरूप, अनादि एवं अनन्त माना गया है जो समस्त प्राणियो में निवास करने वाला तथा सम्पूर्ण जगत् में

व्याप्त होकर स्थिर रहने वाला है। वह निरवद्य एवं निर्विकार होता है तथा देश, काल एवं आकार से रहित होने के कारण पूर्ण, नित्य एवं व्यापक होता है। वह भगवान, वासुदेव और परमात्मा के नाम से विख्यात है। षाड्गुण्य योग के कारण उसे भगवान्, समस्त भूतों मे निवास करने के कारण वासुदेव तथा सभी आत्माओं मे श्रेष्ठ होने के कारण परमात्मा कहते है। पाञ्चरात्र मे परब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों ही रूपो में स्वीकृत है। वह न तो भूत है और न भविष्य और न वर्त्तमान ही। सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्। षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्॥ अहि० सं० २।५३ परब्रह्म के छह गुण है—ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य तथा तेज। भगवान् की शक्ति को लक्ष्मी कहते है। दोनो का सम्बन्ध आपाततः अद्वैत प्रतीति का माना जाता है, पर वस्तुतः दोनो मे अद्वैत नही होता। भगवान् ससार के मंगल के लिए अपने को चार रूपो मे प्रकट करते है—व्यूह, विभव, अर्चावतार एव अन्तर्यामी। संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध भगवान् के तीन रूप हैं। संकर्षण मे ज्ञान एवं बल की प्रधानता होती तो प्रद्युम्न मे ऐश्वर्य एवं वीर्य का प्राधान्य होता है तथा अनिरुद्ध मे शक्ति और तेज विद्यमान रहते है। संकर्षण जगत् की सृष्टि कर पाञ्चरात्र का उपदेश देते है। प्रद्युम्न पाञ्चरात्र-सम्मत क्रिया की शिक्षा देते है और अनिरुद्ध मोक्ष-तत्त्व की शिक्षा प्रदान करते है। विभव अवतार को कहते है जिनकी सख्या ३९ मानी गयी है। विभव के दो प्रकार है—मुख्य और गौण। मुक्ति के निमित्त 'मुख्य' की उपासना होती है और 'गौण' की पूजा का उद्देश्य 'भुक्ति' है। अर्चावतार भगवान् की मूर्ति की पूजा को कहते है। भगवान् का समस्त प्राणियों के हृत्पुण्डरीक मे निवास करना ही अन्तर्यामी रूप है। इस संसार को भगवान् की लीला का विलास माना गया है और उनकी संकल्प-शक्ति को सुदर्शन कहते हैं जो अनन्त रूप होने पर भी पाँच प्रकार का है। सुदर्शन की पाँच शक्तियाँ है—उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाशकारिणी शक्ति, निग्रह तथा अनुग्रह। जीवों की दीन-हीन अवस्था को देख कर भगवान् उन पर करुणा की वर्षा करते हैं। इसी स्थिति मे जीव वैराग्य तथा विवेक की ओर अग्रसर होकर मोक्ष की प्राप्ति करता है। पाञ्चरात्र का प्रधान साधन भक्ति मानी गयी है। शरणागति के द्वारा ही भगवान् की अनुग्रहण-शक्ति उद्दीप्त होती है। शरणागति ६ प्रकार की है—आनुकूल्यसंकल्प, प्रातिकूल्यवर्जन, रक्षिष्यतीति विश्वासः, गोप्तृत्ववरणं, आत्मनिक्षेप एवं कार्पण्य। भक्त को 'पञ्चकालज्ञ' कहा जाता है। वह अपने समय को पाँच भागो मे विभक्त कर भगवान् की आराधना या पूजा करता रहता है। उपासना के द्वारा ही भक्त 'मोक्ष' की प्राप्ति करता है और भगवान् मे मिलकर तदाकार हो जाता है। इससे उसे ससार मे पुनः नही आना पड़ता। मुक्ति को 'ब्रह्मभावापत्ति' भी कहते है।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

पाणिनि—ये संस्कृत के विश्वविख्यात वैयाकरण हैं, जिन्होंने 'अष्टाध्यायी' नामक अद्वितीय व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की है [दे० अष्टाध्यायी]। पाश्चात्य एवं अन्य आधुनिक भारतीय विद्वानों के अनुसार इनका समय ई० पू० ७०० वर्ष है किन्तु पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार पाणिनि वि० पू० २९०० वर्ष मे हुए थे। अद्यावधि इनका

जीवनवृत्त तमसावृत है। प्राचीन ग्रन्थों में इनके कई नाम उपलब्ध होते है—पाणिन, पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय तथा आहिक। इन नामों के अतिरिक्त पाणिनेय तथा पणिपुत्र नामक अन्य दो नाम भी प्राप्त होते है। पुरुषोत्तमदेव कृत 'त्रिकाण्डशेष' नामक कोष-ग्रन्थ मे सभी नाम उल्लिखित है—पाणिनिस्त्वाहिको दाक्षीपुत्रः शालङ्किपाणिनौ। शालोत्तरीयः''''''। सालातुरीयको दाक्षीपुत्रः पाणिनिराहिकः। वैजयन्ती पृ० ९५ दाक्षीपुत्रः पाणिनेयो येदेनं व्याहृतं भुवि—पाणिनीयशिक्षा—यजुष् पाठ पृ० ३८।

कात्यायन एवं पतञ्जलि ने पाणिनि नाम का ही प्रयोग किया है। पतञ्जलि की एक कारिका में पाणिनि के लिए दाक्षीपुत्र का भी प्रयोग है। दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः, महाभाष्य १। १। २० पाणिन नाम का उल्लेख 'काशिका' एवं 'चान्द्रवृत्ति' मे प्राप्त होता है—पाणिनोपज्ञमकालकं व्याकरणम्। पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीय', काशिका ४।३।३९ दाक्षीपुत्र नाम का उल्लेख 'महाभाष्य' समुद्रगुप्तकृत 'कृष्णचरित' एव श्लोकात्मक 'पाणिनीयशिक्षा' मे है। शालातुरीय नाम का निर्देश भामहकृत 'काव्यालङ्कार', 'काशिकाविवरणपञ्जिका', 'न्यास' तथा 'गुणरत्नमहोदधि' में प्राप्त होता है। शालातुरीयस्तत्रभवान् पाणिनिः। गुणरत्नमहोदधि पृ० १। वंश एवं स्थान—पं० शिवदत्त शर्मा ने 'महाभाष्य' की भूमिका मे पाणिनि के पिता का नाम शङ्कु एवं उनका पितृव्यपदेशज नाम शालङ्कि स्वीकार किया है। शालातुर अटक के निकट एक ग्राम था जो लाहुर कहा जाता है, पाणिनि को वही का रहने वाल बताया जाता है। वेबर के अनुसार पाणिनि उदीच्य देश के निवासी थे क्योंकि शालंकियों का सम्बन्ध वाहीक देश से था। श्यूआङ् चुआङ् के अनुसार पाणिनि गान्धार देश के निवासी थे। इनका निवासस्थान शालातुर गान्धार देश (अफगानिस्तान) मे ही स्थित था जिसके कारण ये शालातुरीय कहे जाते थे। मा का नाम दाक्षी होने के कारण ये दाक्षीपुत्र कहे जाते है। कुछ विद्वान् इन्हे कौशाम्बी या प्रयाग का निवासी मानने के पक्ष मे है किन्तु अधिकाश मत शालातुर का ही पोषक है। पाणिनि के गुरु का नाम वर्ष तथा उनके (वर्ष के) भाई का नाम उपवर्ष, पाणिनि के भाई का नाम पिंगल एव उनके शिष्य का नाम कौत्स मिलता है। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार पाणिनि ने गो पर्वत पर तपस्या की जिससे उन्हे वैयाकरणो मे महत्त्व प्राप्त हुआ।

गोपर्वतमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितं पुरा। यत्र पाणिनिनालेभे वैयाकरणिकाग्रता॥ अरुणाचल माहात्म्य, उत्तरार्ध २।६८।

मृत्यु—'पञ्चतन्त्र' के एक श्लोक मे पाणिनि, जैमिनि तथा पिङ्गल के मृत्यु-कारण पर विचार किया गया है जिससे ज्ञात होता है कि पाणिनि सिंह द्वारा मारे गए थे। पञ्चतन्त्र, मित्रसंप्राप्ति श्लोक ३६। एक किवदन्ती के अनुसार इनकी मृत्यु त्रयोदशी को हुई, अतः अभी भी वैयाकरण उक्त दिवस को अनध्याय करते है। पाणिनि के ग्रन्थ—'महाभाष्य प्रदीपिका' से ज्ञात होता है कि पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' के अतिरिक्त 'धातुपाठ', 'गणपाठ', उणादिसूत्र, 'लिङ्गानुशासन' की रचना की है। कहा जाता है कि पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' के सूत्रार्थपरिज्ञान के लिए वृत्ति लिखी थी, किन्तु वह अनुपलब्ध है; पर उसका उल्लेख 'महाभाष्य' एवं 'काशिका' में है। शिक्षासूत्र—पाणिनि ने शब्दोच्चारण

के ज्ञान के लिए 'शिक्षासूत्र' की रचना की थी जिसके अनेक सूत्र विभिन्न व्याकरण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। पाणिनि के मूल 'शिक्षासूत्र' का उद्धार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया तथा इसका प्रकाशन 'वर्णोच्चारणशिक्षा' नाम से सं० १९३६ मे किया।

जाम्बवतीविजय या पातालविजय—वैयाकरणो की प्रचलित दन्तकथा के अनुसार पाणिनि ने 'पातालविजय' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया था जिसके कतिपय श्लोक लगभग २६ ग्रन्थो मे उपलब्ध होते है। राजशेखर, क्षेमेन्द्र तथा शरणदेव ने भी उक्त महाकाव्य का उल्लेख करते हुए इसका रचयिता पाणिनि को ही माना है। इनके द्वारा रचित अन्य काव्य-ग्रन्थ 'पार्वती-परिणय' भी कहा जाता है। राजशेखर ने वैयाकरण पाणिनि को कवि पाणिनि (जाम्बवती के प्रणेता) से अभिन्न माना है। क्षेमेन्द ने अपने 'सुवृत्ततिलक' नामक ग्रन्थ में सभी कवियो के छन्दो की प्रशंसा करते हुए पाणिनि के 'जाति' छन्द की भी प्रशंसा की है—नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह। आदौ व्याकरणं, काव्यमनु जाम्बवती जयम्। कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान्, जैसे पीटर्सन एवं भण्डारकर कवि एवं वैयाकरण पाणिनि को अभिन्न नही मानते। इनके अनुसार शुष्क वैयाकरण पाणिनि, ऐसे सरस एवं अलंकृत श्लोक की रचना नही कर सकता। साथ ही इस ग्रन्थ के श्लोको मे बहुत से ऐसे प्रयोग हैं जो पाणिनि-व्याकरण से सिद्ध नही होते अर्थात् वे अपाणिनीय या अशुद्ध है। पर रुद्रटकृत 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमिसाधु के इस कथन से यह बात निर्मूल सिद्ध हो जाती है। उनके अनुसार पाणिनिकृत 'पातालविजय' महाकाव्य मे 'सन्ध्यावधूं गृह्यकरेणभानु' मे 'गृह्य' शब्द पाणिनीय व्याकरण के मत से अशुद्ध है। उनका कहना है कि महाकवि भी अपशब्दो का प्रयोग करते हैं और उसी के उदाहरण मे पाणिनि का श्लोक प्रस्तुत किया है। डॉ० ऑफ्रेक्ट तथा डॉ० पिशेल ने पाणिनि को न केवल शुष्क वैयाकरण अपितु सुकुमार हृदय कवि भी माना है। अतः इनके कवि होने मे सन्देह का प्रश्न नहीं उठता। श्रीधरदास-कृत 'सदुक्तिकर्णामृत' (सं० १२००) मे सुबन्धु, रघुकार (कालिदास), हरिश्चन्द्र, शूर, भारवि तथा भवभूति ऐसे कवियो के साथ दाक्षीपुत्र का भी नाम आया है, जो पाणिनि का ही पर्याय है। सुबंधो भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्। विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारवि गिरस्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥

महाराज समुद्रगुप्त रचित 'कृष्णचरित' नामक काव्य मे १० मुनियो का वर्णन है किन्तु उसके प्रारम्भिक १२ श्लोक खण्डित है। आगे के श्लोकों से ज्ञात होता है कि पूर्व श्लोको मे पाणिनि का भी वर्णन हुआ होगा। वररुचि या कात्यायन के प्रसंग मे निम्नांकित श्लोक दिया गया है जिसमे बताया गया है कि वररुचि ने पाणिनि के व्याकरण एवं काव्य दोनो का ही अनुकरण किया था। न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरित-वार्त्तिकैयः। काव्येऽपिभूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कवि कर्मदक्षः ॥ 'जाम्बवती-विजय' मे श्रीकृष्ण द्वारा पाताल में जाकर जाम्बवती से विवाह एवं उसके पिता पर विजय प्राप्त करने की कथा है। दुर्घटवृत्तिकार शरणदेव ने 'जाम्बवतीविजय' के १८ वें सर्ग का एक उद्धरण अपने ग्रन्थ में दिया है, जिससे विदित होता है कि उसमे कम-से

कम १८ सर्ग अवश्य होंगे। त्वया सहार्जितं यच्च यच्च संख्यं पुरातनम्। चिरायचेतसि पुरुस्तरुणीकृतमद्यते ॥ इत्यष्टादशे। दुर्घट वृत्ति ४।३।२३, पृ० ८२। पाणिनि के श्लोक अत्यन्त सरस एवं काव्य के उच्च गुण से सम्पन्न है। निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः। धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥ बिजली रूपी नेत्र से, रात्रि के समय अभिसारिकाओं को देख कर बादल को यह सन्देह हुआ कि हमारी धारा-सम्पात से क्या चन्द्रमा तो पृथ्वी पर नहीं गिर गया है। ऐसा सोच कर ही बादल गर्जना करते हुए रो रहे हैं।

पाणिनि का समय—इनके काल-निर्णय के सम्बन्ध में विद्वानो में मतैक्य नहीं है। डॉ० पीटर्सन के अनुसार अष्टाध्यायीकार पाणिनि एवं वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' के कवि पाणिनि एक है और इनका समय ईस्वी सन् का प्रारम्भिक भाग है। वेबर एवं मैक्समूलर ने वैयाकरण एवं कवि पाणिनि को एक मानते हुए इनका समय ईसा पूर्व ५०० वर्ष माना है। डॉ० ओटोबोथलिक ने 'कथासरित्सागर' के आधार पर पाणिनि का समय ३५० ई० पू० निश्चित किया है, पर गोल्डस्टूकर एवं डॉ० रामकृष्ण भंडारकर के अनुसार इनका समय ७०० ई० पूर्व है। डॉ० वेलवल्कर ने इनका समय ७०० से ६०० ई० निर्धारित किया है और डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पाणिनि का समय ५०० ई० पू० मानते हैं। इन सबो के विपरीत पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कहना है कि पाणिनि का आविर्भाव वि० पू० २९०० वर्ष हुआ था। मैक्समूलर ने अपने काल-निर्णय का आधार 'अष्टाध्यायी' (५।१।१८) मे उल्लिखित सूत्रकार शब्द को माना है जो इस तथ्य का द्योतक है कि पाणिनि के पूर्व ही सूत्रग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। मैक्समूलर ने सूत्रकाल को ६०० ई० पू० से २०० ई० पू० तक माना है, किन्तु उनका काल-विभाजन मान्य नही है। वे पाणिनि और कात्यायन को समकालीन मान कर, पाणिनि का काल ३५० ई० पू० स्वीकार करते है क्योंकि कात्यायन का भी यही समय है। गोल्डस्टूकर ने बताया है कि पाणिनि केवल 'ऋग्वेद', 'सामवेद' और 'यजुर्वेद' से ही परिचित थे, पर आरण्यक, उपनिषद्, प्रातिशाख्य, वाजसनेयी-संहिता, शतपथ ब्राह्मण, अथर्ववेद तथा दर्शनग्रन्थो से वे अपरिचित थे। किन्तु डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस मत का खण्डन कर दिया है। उनका कहना है कि 'स्पष्ट ही यह मत उस विवेचन के बाद जो पाणिनीय साहित्य के विषय मे हमने किया है, ग्राह्य नहीं माना जा सकता। पाणिनि को वैदिक साहित्य के कितने अंश का परिचय था, इस विषय मे विस्तृत अध्ययन के आधार पर थीमे का निष्कर्ष है कि ऋग्वेद, मैत्रायणीसंहिता, काठकसहिता, तैत्तिरीयसहिता, अथर्ववेद, संभवतः सामवेद, ऋग्वेद के पदपाठ और पैप्पलाद शाखा का भी पाणिनि को परिचय था, अर्थात् यह सब साहित्य उनसे पूर्व युग मे निर्मित हो चुका था (थीमे, पाणिनि और वेद, १९३५ पृ० ६३)। इस संबंध में मार्मिक उदाहरण दिया जा सकता है। गोल्डस्टूकर ने यह माना था कि पाणिनि को उपनिषत् साहित्य का परिचय नहीं था, अतएव उनका समय उपनिषदो की रचना के पूर्व होना चाहिए। यह कथन सारहीन है, क्योंकि सूत्र १।४।७९ में पाणिनि ने उपनिषत् शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थ मे किया है, जिसके विकास के लिए

उपनिषद् युग के बाद भी कई शती का समय अपेक्षित था। कीथ ने इसी सूत्र के आधार पर पाणिनि को उपनिषदों के परिचय की बात प्रामाणिक मानी थी। तथ्य तो यह है कि पाणिनिकालीन साहित्य की परिधि वैदिक ग्रन्थों से कहीं आगे बढ़ चुकी थी।' पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४६९। पाणिनि के समय-निर्णय पर अभी सम्यक् अनुसंधान अपेक्षित है। उनके काल-निर्णय के सम्बन्ध मे अद्यावधि जितनी शोध हो चुकी है उसके आधार पर उनका काल ईसा पूर्व ७०० वर्ष माना जा सकता है।

पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' भारतीय जनजीवन एवं तत्कालीन सांस्कृतिक परिवेश को समझने के लिए स्वच्छ दर्पण है। इसमे अनेकानेक ऐसे शब्दो का सुगुंफन है जिनमें उस युग के सांस्कृतिक जीवन के चित्र का साक्षात्कार होता है। तत्कालीन भूगोल, सामाजिक जीवन, आर्थिक अवस्था, शिक्षा और विद्यासम्बन्धी जीवन, राजनैतिक और धार्मिक जीवन, दार्शनिक-चिन्तन, रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान का सम्यक् चित्र 'अष्टाध्यायी' में सुरक्षित है जिसके प्रत्येक सूत्र मे विगत भारतीय जीवन की सांस्कृतिक निधि का उद्घोष सुनाई पडता है।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—डॉ० एन० एन० दासगुप्त एवं डॉ० एस० के० डे। २. दि रिपोर्ट ऑफ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स—पीटर्सन। ३. पाणिनिज ग्रैमेटिक—बोथलिंक। ४. पाणिनि—हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर—गोल्ड-स्टूकर। ५. स्टडीज ऑन पाणिनीज ग्रामर—फैडरगन। ६ सिस्टिम्स ऑफ संस्कृत ग्रामर—बेलवेलकर। ७ संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १, २, पं० युधिष्ठिर, मीमांसक। ८ पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ९ पाणिनि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। १० संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ११ संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। १२ संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। १३ पतञ्जलिकालीन भारत—डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री। १४ संस्कृत व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास—पं० रामाकान्त मिश्र। १५. दि स्ट्रक्चर ऑफ अष्टाध्यायी—फैडरगन। १६ पाणिनि व्याकरण अनुशीलन—डॉ० रामाशंकर भट्टाचार्य। १७ इण्डिया इन पाणिनि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

पार्थसारथि मिश्र—मीमांसा-दर्शन के भाट्टमत के आचार्यों मे पार्थसारथि मिश्र का स्थान है [दे० मीमांसा-दर्शन]। इनके पिता का नाम यज्ञात्मा था। ये मिथिला निवासी थे तथा इनका समय १२ वी शताब्दी है। इन्होंने अपनी रचनाओ के द्वारा भट्ट-परम्परा को अधिक महत्त्व एव स्थायित्व प्रदान किया। मीमांसा-दर्शन पर इनकी चार रचनाएँ उपलब्ध होती है जिनमे दो टीकाएँ एवं दो मौलिक रचनाएँ हैं। तन्त्ररत्न, न्यायरत्नाकर, न्यायरत्नमाला एवं शास्त्रदीपिका। तन्त्ररत्न कुमारिल भट्ट प्रसिद्ध मीमांसक [दे० कुमारिल] रचित टुप्टीका नामक ग्रन्थ की टीका है। 'न्यायरत्नाकर' भी कुमारिलभट्ट की रचना श्लोकवार्तिक की टीका है। 'न्यायरत्नमाला' इनकी मौलिक रचना है जिसमे स्वतःप्रामाण्य एवं व्याप्ति प्रभृति सात विषयो का विवेचन है। इस पर रामानुजाचार्य ने (१७ वीं शताब्दी) 'नाणकरत्न' नामक व्याख्या ग्रन्थ की रचना की

है। शास्त्रदीपिका—यह ग्रन्थ मीमांसा-दर्शन की स्वतन्त्र रचना है। यह पार्थसारथि मिश्र की सर्वाधिक प्रौढ़ कृति है जिसके कारण इन्हें 'मीमांसा-केसरी' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसमें बौद्ध, न्याय, जैन, वैशेषिक, अद्वैत वेदान्त तथा प्रभाकरमत [मीमांसक दर्शन का एक सिद्धान्त दे० मीमांसा-दर्शन] का विद्वत्तापूर्ण खण्डन कर आत्मवाद, मोक्षवाद, सृष्टि तथा ईश्वर प्रभृति विषयों का विवेचन है। इस पर १४ टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। सोमनाथ तथा अप्पयदीक्षित की 'मयूखमालिका' एवं 'मयूखावलि' नामक टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

आधारग्रन्थ—१ भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २ मीमांसा-दर्शन—पं० मंडन मिश्र।

पारिजातहरण—यह सोलहवीं शताब्दी के महाकवि कर्णपूर द्वारा रचित महाकाव्य है। इसकी रचना 'हरिवंशपुराण' की कथा 'पारिजातहरण' के आधार पर हुई है। कथा इस प्रकार है—एकबार नारद ने पारिजातपुष्प कृष्ण को उपहार के रूप में दिया जिसे श्रीकृष्ण ने आदरपूर्वक रुक्मिणी को समर्पित किया। इस पर सत्यभामा को रोष हुआ और श्रीकृष्ण ने उन्हें पारिजात-वृक्ष देने का वचन दिया। उन्होंने इन्द्र के पास यह समाचार भेजा पर वे पारिजात देने को तैयार न हुए। इस पर श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न, सात्यकि एवं सत्यभामा के साथ गरुड पर चढ़कर इन्द्र पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पराजित कर पारिजात-वृक्ष ले लिया। इसकी भाषा सरल एवं लोकप्रिय है। इसमें सारे भारत का वर्णन कर कवि ने सांस्कृतिक एकता का परिचय दिया है। यो बिर्भात भुवनानि नितान्तं शेषतामुपगतो गुरुसारः। तं रसातलनिवासिनमीशं सादरं नतदृशः प्रणमामः। १५।४९। [इसका प्रकाशन मिथिला संस्कृत विद्यापीठ, दरभंगा से १९५६ ई० में हुआ है]।

पारिजातहरण चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता का नाम शेषकृष्ण है जो सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुए थे। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा पारिजात-हरण की कथा का वर्णन है जो 'हरिवंशपुराण' की तद्विषयक कथा पर आश्रित है। शेषकृष्ण नरसिंह सूरि के पुत्र थे। कवि ने इस पुस्तक का प्रणयन महाराजाधिराज नरोत्तम का आदेश प्राप्त कर किया था। इस चम्पू-काव्य में ५ स्तबक हैं और प्रधान रस शृंगार है तथा अन्तिम स्तबक में युद्ध का वर्णन है। नारद मुनि श्रीकृष्ण के पास आकर उन्हें पारिजात का पुष्प देते हैं जिसे श्रीकृष्ण रुक्मिणी को भेंट करते हैं। इस घटना से सत्यभामा को ईर्ष्या होती है और वे श्रीकृष्ण से मान करती है। श्रीकृष्ण नारद द्वारा इन्द्र के पास पारिजात-पुष्प प्रदान करने का सन्देश देते है, पर इन्द्र इसे अस्वीकार कर देते है। अन्ततः यादवों द्वारा पारिजात-पुष्प का अपहरण किया जाता है और सत्यभामा प्रसन्न हो जाती है। यही इस चम्पू की कथा है। इसमें कवि ने मान एवं विरह का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है। सत्यभामा के सौकुमार्य का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। किं खिद्यसे मलयजैर्मलयानिलैर्वा किं वा मृणालवलयैर्नलिनीदलैर्वा। संशीलितापि ननु शीतलसंविधानैर्हा हन्त हन्त हृदयं मम दन्दहीषि॥ २।६०। इसका प्रकाशन

काव्यमाला बम्बई से १९२६ ई० में हुआ था। इसकी भाषा मधुर अनुप्रासमयी एवं प्रसादगुण-युक्त है तथा भावानुरूप भाषा का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक विवेचन—डॉ० छबिनाथ त्रिपाठी।

पार्श्वाभ्युदय—यह संस्कृत का सन्देश-काव्य है जिसके रचयिता हैं जिनसेनाचार्य। इनका समय वि० का नवम शतक है। इस काव्य की रचना राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्ष प्रथम के शासन-काल में हुई थी। राजा अमोघवर्ष जिनसेन को अति सम्मान देते थे। जिनसेन के गुरु का नाम वीरसेन था। काव्य के अन्त मे कवि ने इस तथ्य की स्वीकारोक्ति की है—इतिविरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकम् भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥ श्री वीरसेनमुनिपाद पयोजभृंगः श्रीमान्भूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्। तच्चोदितेन जिनसेन मुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टित मेघदूतम्॥ इस काव्य की रचना मेघदूत के पदों को ग्रहण कर समस्यापूर्ति के रूप मे की गयी है। कवि ने (मन्दाक्रान्ता छन्द की) दो पंक्तियाँ मेघदूत की ली हैं और दो पंक्तियाँ अपनी ओर से लिखी हैं। यह काव्य चार सर्गों मे विभक्त है जिसमें क्रमशः ११८, ११८, ५७ एवं ७१ श्लोक है। चतुर्थ सर्ग के अन्त के पाँच श्लोक मालिनी छन्द मे निर्मित है और छठा श्लोक वसन्ततिलका वृत्त मे है। शेष सभी छन्द मन्दाक्रान्ता वृत्त में है। इसमे कवि ने पाश्र्वनाथ का (जैन तीर्थंकर) का चरित्र वर्णित किया है पर समस्यापूर्ति के कारण कथानक शिथिल हो गया है। समस्यापूर्ति के रूप में लिखित होने पर भी यह काव्य कलात्मक वैभव एवं भावसौन्दर्य की दृष्टि से उच्चकोटि का है। यत्र-तत्र कालिदास के मूलभावों को सुन्दर ढंग से पल्लवित किया गया है। जैजैर्बाणैः कुसुम धनुषो दूरपातैरमोघैर्मर्मविद्भि दृढपरिचितभ्रूधनुर्यष्टि मुक्तैः।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

पितामहस्मृति—इस स्मृति के रचयिता पितामह है। विश्वरूप ने पितामह को धर्मवक्ताओं मे स्थान दिया है तथा 'पितामहस्मृति' के उद्धरण 'मिताक्षरा' मे भी प्राप्त होते है। पितामह ने बृहस्पति का उल्लेख किया है, अतः इनका समय ४०० ई० के आसपास पड़ता है। (डॉ० काणे के अनुसार) 'पितामहस्मृति' मे वेद, वेदाङ्ग, मीमांसा, स्मृति, पुराण एवं न्याय को भी धर्मशास्त्र मे परिगणित किया गया है। 'स्मृतिचन्द्रिका' मे 'पितामहस्मृति' के व्यवहार-विषयक २२ श्लोक प्राप्त होते हैं। पितामह ने न्यायालय मे आठ करणों की आवश्यकता पर बल दिया है—लिपिक, गणक, शास्त्र, माध्यपाल, सभासद, सोना, अग्नि तथा जल। 'पितामहस्मृति' में व्यवहार का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग १)—डॉ० पी० काणे (हिन्दी अनुवाद)।

पुराण—संस्कृत साहित्य के ऐसे ग्रन्थ जिनमे इतिहास, काव्य एवं पुरातत्त्व का संमिश्रण है तथा उनकी संख्या १८ मानी गयी है। पुराण भारतीय संस्कृति की आधारशिला है अथवा इन्हें भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। उनमें भारतीय सृष्टिक्रम-व्यवस्था, प्रलय, वंशानुचरित के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय भूगोल,

रीति-नीति तथा राजनीति का भी उपबृंहण किया गया है। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति—अति प्राचीन वैयाकरणों—पाणिनि, यास्क आदि ने पुराण की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है। पाणिनि के अनुसार 'पुरा + नी + ड' इन तीनों के मिलने से पुराण शब्द निष्पन्न होता है। 'पुरा अव्ययपूर्वक णीञ् प्रापणे धातु से 'ड' प्रत्यय करने के बाद टिलोप और णत्व कार्य करने पर पुराण शब्द सिद्ध होता है।' पुराण तत्त्व-मीमांसा पृ० ३८। पाणिनि ने पुरातन शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—'पुराभवम्' (प्राचीन काल मे होने वाला) इस अर्थ मे 'सायं चिरं प्राह्णे-प्रागेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट च' (पाणिनि सूत्र ४।३।२३) इस सूत्र से 'पुरा' शब्द से 'ट्यु' प्रत्यय करने तथा 'तुट्' के आगमन होने पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु पाणिनि ने ही अपने दो सूत्रों—'पूर्वकालैक सर्वजरतपुराण नव केवलाः समानाधिकरणेन' (२।१।४९) तथा पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु (४।३।१०५)–मे पुराण शब्द का प्रयोग किया है जिससे तुडागम का अभावनिपातनात् सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि की प्रक्रिया के अनुसार 'पुरा' शब्द से 'ट्यु' प्रत्यय अवश्य होता है परन्तु नियमप्राप्त 'तुट' का आगम नहीं होता। पुराण-विमर्श पृ० १। पुराण शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इसका उल्लेख ऋग्वेद के अनेक स्थलो पर किया गया है जिसका अर्थ विशेषणरूप में है—प्राचीन या पूर्वकाल मे होने वाला। महर्षि यास्क ने निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन करते हुए बताया कि जो प्राचीन होकर भी नवीन हो उसे पुराण करते है—पुराणं कस्मात् ? पुनानवं भवति ३।१९।२४। गीता में भगवान् भी पुराण पुरुष कहे गए है—'कविपुराणमनुशासितारम्।' स्वयं पुराणों ने भी पुराण शब्द की व्युत्पत्ति दी है। वायुपुराण के अनुसार जो प्राचीन काल मे जीवित हो उसे पुराण कहते है। पद्मपुराण मे (५।२।५३) प्राचीनता की कामना करने वाले को पुराण कहा गया है। यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥ वायुपुराण १।२०३।

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय मे पुराण शब्द के अनेक पर्याय उपलब्ध होते हैं—प्रतन, प्रत्न, पुरातन, चिरन्तन आदि। पर 'पुराण' शब्द भागवतादि पुराणो के लिए रूढ हो गया है। भारतीय वाङ्मय मे 'पुराण-इतिहास' शब्द पुराणो के लिए कालान्तर में प्रचलित हो गया और पुराण इतिहास का द्योतक हुआ। इतिहास के साथ पुराण का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से प्राचीन संस्कृत साहित्य मे भी दोनो का मिश्रित रूप प्रयुक्त हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् मे इतिहास-पुराण को पञ्चम वेद कहा गया है तथा यास्क के अनुसार ऋग्वेद मे भी त्रिविध ब्रह्म के अन्तर्गत 'इतिहास-मिश्र' मन्त्र आये है। ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। छान्दोग्य ७।१। त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ। तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्रमृङ्मिश्रं-गाथामिश्रं भवति ॥ निरुक्त ४।६। इतिहास-पुराण यह संयुक्त नाम उपनिषद् युग तक आकर प्रसिद्धि प्राप्त कर गया था। यास्क के 'निरुक्त' मे भी ऋचाओ के स्पष्टीकरण के समय ब्राह्मणग्रन्थों की कथाएँ इतिहास के नाम से उद्धृत हैं एवं उन्हें 'इति-

हासमाचक्षते' कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में इतिहास का भी स्वतन्त्ररूप से प्रयोग हुआ है जहाँ इसका अर्थ है 'प्राचीनकाल में निश्चितरूप से घटित होने वाली घटना का'। निदानभूतः इति ह एवमासीन् इति य उच्यते स इतिहासः, निरुक्त २।३।१ दुर्गाचार्य की वृत्ति। समयान्तर से पुराणों में इतिहास शब्द इतिवृत्त का वाचक होता गया और काल्पनिक कथा के लिए पुराण एवं वास्तविक घटना के लिए इतिहास शब्द का व्यवहार होने लगा तथा इस प्रकार दोनों के अर्थ-भेद की सीमा बाँध दी गई।

राजशेखर ने इतिहास के दो प्रकार मान कर इसे परिक्रिया एव पुराकल्प कहा है। परिक्रिया मे एक नायक की कथा होती है और पुराकल्प मे अधिक नायकों की कथा का वर्णन होता है। इस दृष्टि से 'रामायण' को पुराकल्प एवं 'महाभारत' को परिक्रिया कहा गया। आगे चलकर पुराण शब्द का इतना अर्थ-विस्तार हुआ कि उसमें न केवल इतिहास अपितु उन सभी वाङ्मयों का समावेश हो गया जो मानव जाति के कल्याण के साधन होते हैं। शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्। यस्मिन् ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्॥ नारदीयपुराण १।९२।२१।

पुराणों के प्राचीन उल्लेख—वेदों मे पुराण शब्द का प्रयोग मिलता है। प्राचीन साहित्य मे पुराण दो अर्थों मे प्रयुक्त है। प्रथम अर्थ प्राचीन वृत्त से सम्बद्ध विशिष्ट विद्या या शास्त्र के लिए है तो द्वितीय विशिष्ट साहित्य के लिए। 'ऋग्वेद' में पुराण शब्द केवल प्राचीनता के ही अर्थ मे व्यवहृत है, पर 'अथर्ववेद' में इसका प्रयोग इतिहास, गाथा एवं नाराशंसी के रूप मे हुआ है। इसमें पुराण को 'उच्छिष्ट' नामक ब्रह्म से उदित कहा गया है। ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः॥ अथर्ववेद ११।७।२४। वेदों मे जो दानस्तुति या नाराशंसी हैं उनका सम्बन्ध पुराण से ही है। येन आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धा तय इद विदुः। यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्॥ अथर्व वेद ११।८।७ ब्राह्मण साहित्य मे भी पुराण का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। 'गोपथब्राह्मण' मे कहा गया है कि कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वयाख्यान एवं पुराण के साथ सब वेदों का निर्माण हुआ। इसी प्रकार आरण्यकों एवं उपनिषदों मे भी पुराण का उल्लेख है। शतपथब्राह्मण तो पुराण को वेद कहता है—'पुराणं वेदः। सोऽयमिति-किञ्चित् पुराणमाचक्षीत, १३।४, ३।१३। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से जो तथ्य उपलब्ध होते हैं उन्हें इस प्रकार सूचित किया जा सकता है

(क) वेदशास्त्र की भाँति उच्छिष्टब्रह्म या महाभूत ब्रह्म ने ही इतिहास पुराणों को उत्पन्न किया है। (ख) वेद के समान पुराणों को भी अनित्य माना जाना चाहिए। (ग) इतिहास और पुराण को पञ्चम वेद कहा गया है। (घ) पुराण प्राचीन समय मे मौखिक न होकर पुराणविद्या के रूप में या पुराण वेद के रूप मे प्रचलित थे। (ङ) आरण्यक युग तक आकर पुराण एक न होकर अनेक हो गए, भले ही वह ग्रन्थ रूप मे न रहे हों पर उनका अस्तित्व आख्यान रूप में निश्चय ही विद्यमान था। कल्पसूत्रों मे भी पुराणों का अस्तित्व है। 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' मे अनेक

भागो पर पुराणो के पठन का उल्लेख हुआ है तथा इतिहास और पुराणो के अध्ययन को स्वाध्याय के अन्तर्गत माना गया है (अध्याय ३, खण्ड ४)। याज्ञवल्क्य-स्मृति ने चतुर्दश विद्याओं मे पुराणविद्या को भी मान्यता दी है तथा स्मृतिकार पुराण, न्याय, मीमासा, धर्मशास्त्र, चार वेद, छह वेदांग को चौदह विद्याएँ मानते हुए इन्हें धर्म का स्थान कहते है। पुराणन्याय-मीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदास्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ उपोद्घात् श्लोक ३।

महाभारतकार ने पुराणो का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए बताया है कि 'इतिहास और पुराणों के द्वारा ही वेद का उपबृंहण करना चाहिए।' इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। पुराणो के वर्ण्यविषयो की चर्चा करते हुए महाभारतकार कहते हैं कि इसमें अनेक दिव्य कथाएँ होती है तथा विशिष्ट विद्वानो के आदिवंश का विवरण होता है—पुराणे हि कथा दिव्या आदि वंशाश्च धीमताम्। कथ्यन्ते ये पुरास्माभि श्रुतपूर्वाः पितुस्तव ॥ आदिपर्व ५।२। बाल्मीकि रामायण मे सुमन्त्र को पुराणवित् बतलाकर पुराणो की सत्ता की स्पष्ट घोषणा की गई है तथा यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि राजा दशरथ ने सन्तानहीनता के निवारण की बात पुराणो मे सुनी थी। इत्युक्त्वान्त पुरद्वारमाजगाम पुराणवित्। अयोध्याकांड १५।१८। श्रूयतां यत् पुरावृत्तं पुराणेषु यथाश्रुतम्। बालकाण्ड ९।१। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे अनेक स्थानों पर पुराण एवं इतिहास का स्पष्ट निर्देश है। इसमे मन्त्री द्वारा इतिहास एवं पुराण के आधार पर राजा को कुपथ से रोकने का वर्णन है। मुख्यैरवगृहीत वा राजानं तत् प्रियाश्रितः। इतिवृत्त पुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥ अर्थशास्त्र ५।६। याज्ञवल्क्यस्मृति, मनुस्मृति, व्यासस्मृति प्रभृति ग्रंथो एवं दर्शनो मे भी पुराण का निर्देश है तथा कुमारिल, शङ्कर आदि दार्शनिकों एवं बाणभट्ट जैसे कवियों ने भी अपने ग्रन्थो मे पुराणो का उल्लेख किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुराणविद्या का उदय अथर्ववेद के ही समय से हो चुका था। जिस प्रकार ऋषियो ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित किया उसी प्रकार पुराणों का भी वर्गीकरण एवं सम्पादन उनके ही द्वारा हुआ। पर, इतना निश्चित है कि वैदिक युग तक पुराणो का रूप मौखिक परम्परा मे ही सुरक्षित था एवं उसका स्वरूप धूमिल बना रहा, जिससे कि उसके वर्ण्यविषय का स्पष्ट निर्देश उस समय तक न हो सका। स्मृतियो मे पुराणो को विद्यास्थानो का पद प्राप्त हुआ है एवं श्राद्ध के अवसर पर मनुस्मृति के अनुसार पुराणो के पाठ को पुण्ययुक्त बतलाया गया है।

पुराण का लक्षण एवं वर्ण्यविषय—पुराणों को पंचलक्षणसमन्वित माना जाता है जिनमे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित आते है। सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ विष्णुपुराण ३।६।२४। सर्ग—सर्ग का अर्थ है सृष्टि की उत्पत्ति। संसार या उससे सम्बद्ध नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति ही सर्ग है। प्रतिसर्ग—प्रतिसर्ग सर्ग का विपरीत है जिसे प्रलय कहते है। इसके बदले 'प्रतिसंचर' एवं 'संस्था' शब्द का भी प्रयोग होता है। इस ब्रह्माण्ड का स्वाभाविक रूप से ही प्रलय होता है जो चार प्रकार है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य

एवं आत्यंतिक। वंश—ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गए सभी राजाओं की भूत, भविष्य एवं वर्तमानकालीन सन्तान परम्पराएँ वंश कही जाती हैं। इसमे ऋषिवंश की भी परम्पराएँ आ जाती है। मन्वन्तर—मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषि तथा भगवान् के अंशावतार ये छह प्रकार की घटनाएँ मन्वन्तर कही जाती हैं। मन्वन्तर शब्द पुराणानुसार विभिन्न प्रकार की कालगणना करने वाला शब्द है। मन्वन्तर १४ है और प्रत्येक मन्वन्तर के अधिपति को मनु कहते है। वंश्यानुचरित—विभिन्न वंशो मे उत्पन्न विशिष्ट वंशधरो तथा उनके मूल पुरुषों के चरित्र के वर्णन को वंशानुचरित कहते हैं। इसमे राजाओ एवं महर्षियो का चरित वर्णित होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे 'पुराणं पंचलक्षणम्' का नया संकेत प्राप्त होता है। सृष्टि-प्रवृत्ति-संहार-धर्म-मोक्ष प्रयोजनम्। ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पंचलक्षणम्॥ १।५। इसमे पुराणविषयक पंचलक्षणो की नवीन व्याख्या है तथा धर्म को भी पुराण का एक अविभाज्य लक्षण मान लिया गया है। श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण मे महापुराण के दस लक्षण कथित है तथा उपर्युक्त पंचलक्षण क्षुल्लकपुराण के लक्षण स्वीकार किये गये हैं। सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्तीरक्षान्तराणि च। वंशो वंशानुचरितं संस्थाहेतुरपाश्रयः॥ भागवत, १२।७।९। वे है—सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा अपाश्रय। इन दस एवं पूर्वोक्त पाँच लक्षणो मे अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता। सर्ग—यह सर्ग भी पूर्वोक्त सर्ग मे मिलता-जुलता है। विसर्ग—जीव की सृष्टि ही विसर्ग है। अर्थात् परमात्मा की कृपा से सृष्टि करने के सामर्थ्य से युक्त होकर जब ब्रह्मा महत् तत्त्व आदि कर्मों के आधार पर सत् अथवा असत् भावनाओ के प्राधान्य से चराचर शरीरात्मक उपाधि से विशिष्ट जीवो की सृष्टि करते हैं तो उसे 'विसर्ग' कहा जाता है। एक प्राणी से अन्य प्राणी की सृष्टि ही विसर्ग है। वृत्ति—प्राणियो के जीवन-निर्वाह की सामग्री को वृत्ति कहते हैं। रक्षा—रक्षा का अर्थ है विविध शरीर धारण कर भगवान् द्वारा संसार की रक्षा करना अथवा वेद-विरोधियो का संहार करना। इसका सम्बद्ध भगवान् के अवतारो से ही है। अन्तराणि—यह मन्वन्तर के ही समान है। **वंश** तथा **वंशानुचरित** पूर्ववत् है। संस्था—प्रतिसर्ग ही संस्था या प्रलय है। हेतु—हेतु का अभिप्राय जीव से है। वह अविद्या के कारण ही कर्म का कर्त्ता है। जीव ही अपने अदृष्ट के द्वारा विश्व-सृष्टि एवं प्रलय का कारण बनता है। अपाश्रय—ब्रह्म को ही अपाश्रय कहा जाता है जो जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीनो दशाओं से परे तुरीय तत्त्व के ही द्वारा परिलक्षित होता है।

सर्ग—सर्ग पुराणों का आद्य विषय है। इसे सृष्टिविद्या कहते हैं। पौराणिक सृष्टिक्रम पर सांख्यदर्शन मे वर्णित सृष्टिक्रम का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। पर कई दृष्टियो से इसका अपना पृथक् अस्तित्व भी है। सांख्यीय सृष्टिविद्या निरीश्वर है, किन्तु पौराणिक सृष्टिविद्या मे सेश्वर तत्त्व का प्राधान्य है। सांख्य मे प्रकृति और पुरुष के संसर्ग से ही सृष्टि का निर्माण होता है जो अनादि और अनन्त माने गये हैं।

'विष्णुपुराण' ने स्पष्टतः इसे स्वीकार किया है कि विष्णु के रूप से ही प्रधान और पुरुष दो रूप होते हैं एवं विष्णु के तृतीय रूप–कलात्मक रूप–से ही यह सृष्टि के समय संयुक्त एवं प्रलयकाल मे वियुक्त होते है। विष्णोः स्वरूपात् परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र। तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपान्तरं यद् द्विजकाल संज्ञम्॥ विष्णुपुराण १।२।२४। पुराणो में सृष्टि के नौ प्रकार कहे गए है। सर्ग के तीन प्रकार है—प्राकृत, वैकृत तथा प्राकृत-वैकृत सर्ग। प्राकृत सर्ग तीन प्रकार का, वैकृत पाँच प्रकार का एवं प्राकृत-वैकृत एक प्रकार का होता है। प्राकृत सर्ग के तीन प्रकार है—ब्रह्म सर्ग, भूत सर्ग, एवं वैकारिक सर्ग।

१–ब्रह्म सर्ग—महत् तत्त्व का सर्ग ही ब्रह्म सर्ग है। २–भूत सर्ग—पञ्च तन्मात्राओ की सृष्टि भूत सर्ग है। ३–वैकारिक सर्ग—एकादश इन्द्रियविषयक सृष्टि वैकारिक सर्ग है। वैकृत सर्ग के पाँच प्रकार हैं—मुख्य सर्ग, तिर्यक् सर्ग, देव सर्ग, मानुष सर्ग तथा अनुग्रह सर्ग। ४–मुख्य सर्ग—जड सृष्टि को ही मुख्य सर्ग कहते है जिसमे वृक्ष, गुल्म, लता, तृण एवं वीरुध् आते हैं। इसे मुख्य सर्ग इसलिए कहा गया कि पृथ्वी पर चिरस्थायिता के विचार से पर्वतादि की ही प्रधानता है—मुख्या वै स्थावराः स्मृताः, विष्णुपुराण १।५।२१। सृष्टि के आदि में पूर्ववत् ब्रह्मा द्वारा सृष्टि का चिन्तन करने के पश्चात् पुनः धारण करने पर जो सृष्टि हुई उसे मुख्य सर्ग कहा गया। ५ तिर्यक सर्ग—मुख्य सृष्टि को अनुपयुक्त समझकर जब ब्रह्मा ने उसे पुरुषार्थ के लिए अनुपयुक्त समझ कर पुनः ध्यान किया तो तिर्यक् योनि के जीव उत्पन्न हुए। इस वर्ग मे पशु-पक्षी आते है जो अज्ञानी, तमोमय एवं विवेक-रहित होते हैं। स्थावर के पश्चात् इनकी सृष्टि जङ्गम के रूप मे हुई। ६–देवसर्ग—तिर्यक् सृष्टि से सन्तोष न पाकर ब्रह्मा ने देवसर्ग या परम पुरुषार्थ या मोक्ष के साधक की सृष्टि की। यह प्राणी ऊर्ध्व स्रोत एवं ऊर्ध्वलोक में निवास करने वाला है। ७–मानुष सर्ग—इस सर्ग के प्राणी पृथ्वी पर निवास करने वाले एवं सत्त्व, रज, तम से युक्त होते है तथा इसी कारण ये दुःखबहुल प्राणी होते हैं। ये सदा क्रियाशील एवं बाह्याभ्यन्तर ज्ञान से मुक्त होते हैं। इन्हें मनुष्य कहते है। ८–अनुग्रह सर्ग—समस्त प्राकृत सर्ग ही अनुग्रह सर्ग है। ९–कौमार सर्ग—कुछ आचार्यों के अनुसार यह सृष्टि देव, मनुष्य दोनों की है। सृष्टिक्रम मे यह भी विचार किया गया है कि तमोगुण का आधिक्य होने से ब्रह्मा ने असुरो की सृष्टि की जो उनकी जांघ से उत्पन्न हुए। तदनन्तर ब्रह्मा ने तामसी देह का परित्याग कर सात्त्विक शरीर का आश्रय ग्रहण करते हुए अपने मुख से सुरों को उत्पन्न किया तथा पुनः रजोदेह धारण कर रजोगुणप्रधान मनुष्यों का निर्माण किया। उन्होंने आंशिक सत्त्व देह से पितरो की सृष्टि की। उपर्युक्त चार प्राणिवर्गों का सम्बन्ध चार कालों से भी है—असुर का रात्रि से, सुर का दिन से, पितरों का संध्या से एवं मनुष्य का प्रातःकाल से। सृष्टि के अन्य तीन प्रकार भी माने गये हैं—ब्राह्मी सृष्टि, मानसी सृष्टि एवं रौद्री सृष्टि। प्रतिसर्ग—प्रतिसर्ग या प्रलय के लिए पुराणों मे कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

अन्तरप्रलय, अन्तराला-उपसंहृति, आभूत संप्लव, उदाप्लुत, निरोध, संस्था, उप-संहृति, एकार्णवास्था, तत्त्वप्रतिसंयम आदि। प्रलय के चार प्रकार होते हैं—नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक एवं नित्य।

(क) नैमित्तिक प्रलय—प्रलय के अवसर पर जब ब्रह्मा एवं शेषशायी विष्णु विश्व को आत्मलीन कर सो जाते हैं तब उनके शयन को निमित्त मान कर ही प्रलय होता है जो ब्रह्मा के एक दिन व्यतीत होने पर होता है। (ख) प्राकृत प्रलय—ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष होने पर यह प्रलय होता है। इस स्थिति में सात प्रकृतियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ, अहंकार एवं महत्तत्त्व अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाते हैं एवं संसार मे भीषण संहार के दृश्य परिलक्षित हो जाते हैं। नैमित्तिक प्रलय ब्रह्मा की आयु शेष होने पर ही होता है। (ग) आत्यन्तिक प्रलय—इसके समय का कोई सीमा नही है। यह कभी भी हो सकता है। इसके उदय की साधन-सामग्री जब कभी उपस्थित हो जाती है, तभी यह सम्भव होता है। अत्यन्त दु:ख-निवृत्ति को ही आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। (घ) नित्य प्रलय—पुराणों मे यह कहा गया है कि सृष्टि और प्रलय दोनों ही नित्य हैं। ब्रह्मा से लेकर हर प्राणी एवं तिनके भी सभी जन्मते एवं मरते है और इस प्रकार सृजन एवं संहार की लीला सदा चलती रहती है। मन्वन्तर का विवरण—चारो युगो का मान ४३२०००० वर्षों का है। जब चारो युग एक हजार बार व्यतीत हो जाते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। एक ब्राह्म दिन को ही कल्प कहते है और एक कल्प मे १४ मनु अधिपति बनते है। एक मनु से दूसरे मनु तक आने वाला समय अन्तराल कहा जाता है और इसे ही मन्वन्तर कहते है। युगो का मान—

कृतयुग (सत्ययुग)	१७,२८,००० वर्ष।
त्रेतायुग	१२,९६,००० वर्ष।
द्वापर	८,६४,००० वर्ष।
कलियुग	४,३२,००० वर्ष।
	४३,२०,००० वर्ष।

मन्वन्तरों के नाम—स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, तत्तम मनु, तामस मनु, रैवत मनु, चाक्षुस मनु, वैवस्वत मनु, सावर्णि मनु, दक्षसावर्णि, ब्रह्म-सावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि तथा इन्द्र सावर्णि। पुराणो के अन्य विषयों मे धर्मशास्त्रीय विषय आते है। इनमे पूतधर्म, तीर्थमाहात्म्य, राजधर्म आदि का विवेचन किया गया है। अन्य वर्णित विषय हैं—अश्वशास्त्र, आयुर्वेद, रत्नपरीक्षा, वास्तुविद्या, ज्योतिष, सामुद्रिकशास्त्र, धनुर्विद्या, अनुलेपनविद्या, पद्मिनीविद्या, जालन्धरीविद्या आदि। पुराणों मे भौगोलिक वर्णन भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते है। इनमें ब्रह्माण्ड एवं चौदहो भुवन का विस्तारपूर्वक वर्णन है। पुराणो का वंशवृत्त ऐतिहासिक विवरणों से पूर्ण है। वंशो का प्रारम्भ मनु से होता है। इसमें दो मनुओ को अधिक महत्त्व प्राप्त है—स्वायम्भुव मनु (प्रथम) तथा

वैवस्वतमनु (सप्तम मनु) स्वायम्भुव मनु को ब्रह्मा का प्रथम पुत्र माना जाता है जो पृथ्वी के प्रथम सम्राट् थे। वैवस्वत मनु सूर्यवंश के प्रथम राजा थे। इनसे ही चन्द्रवंश एवं सौद्युम्नवंश भी प्रवर्त्तित हुआ।

पुराणों के नाम एवं संख्या—प्राचीनकाल से ही पुराणों की संख्या १८ मानी जाती है। 'देवीभागवत' में आद्य अक्षर के अनुसार पुराणों का नाम इस प्रकार है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् । अनापद् लिङ्ग-कू-स्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक् ॥

मकारादि मे से दो–मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भकारादि से दो–भागवत तथा भविष्य। ब्रत्रयम्–ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त एवं ब्रह्माण्ड। वचतुष्टयम्–वामन, विष्णु, वायु, वाराह, अ-ना-प-लि-ग-कू-स्क–अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड, कूर्म एवं स्कन्द। विष्णु एवं भागवत में पुराणों का वर्णन क्रमानुसार है—

ब्रह्म	···	१० हजार।
पद्म	···	५५ हजार।
विष्णु	···	२३ हजार।
शिव	···	२४ हजार।
भागवत	···	१८ हजार।
नारद	···	२५ हजार।
मार्कण्डेय	···	९ हजार।
अग्नि	···	१५ हजार ४ सौ।
भविष्य	···	१४ हजार ५ सौ।
ब्रह्मवैवर्त्त	···	१८ हजार।
लिङ्ग	···	११ हजार।
वराह	··	२४ हजार।
स्कन्द	···	८१ हजार।
वामन	···	१० हजार।
कूर्म	··	१७ हजार।
मत्स्य	···	१४ हजार।
गरुड	···	१९ हजार।
ब्रह्माण्ड	···	१२ हजार।

पुराणों का क्रम—विष्णुपुराण मे पुराणों का जो क्रम दिया गया है वह बहुसम्मत से मान्य है। सम्प्रदायवेत्ता विद्वानो के अनुसार उक्त पुराण का क्रम साभिप्राय है। पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य है सर्ग या सृष्टि जिसका पर्यवसान प्रतिसर्ग या प्रलय के रूप मे होता है। इसी तत्त्व के आधार पर पुराणों के क्रम की संगति बैठ जाती है। सृष्टि के लिए ब्रह्म ने ब्रह्मा का रूप धारण किया, अतः वही सृष्टि का मूल है। सूची मे ब्रह्म-पुराण को प्रथम स्थान आदि कर्त्ता ब्रह्मा के ही कारण दिया गया है। ब्रह्मा के विषय

में जो जिज्ञासा होती है उसका उत्तर पद्मपुराण मे प्राप्त होता है। ब्रह्मा का उदय पद्म से हुआ था। विष्णुपुराण में कहा गया है कि विष्णु की नाभि से जो कमल प्रकट हुआ उससे ही ब्रह्मा का जन्म हुआ और उन्होंने घोर तपस्या करके नवीन सृष्टि की। पद्म-सम्भव ब्रह्मा के वर्णन के कारण विष्णुपुराण को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। चतुर्थ स्थान वायुपुराण का है जिसमें शेषशायी भगवान् एवं शेष शय्या का निरूपण है। शेषशायी भगवान् का निवास क्षीरसागर है जिसका रहस्य श्रीमद्भागवत में बतलाया गया है। भागवत के अनन्तर नारदपुराण का नाम आता है। चूंकि नारदजी संतत भगवान् का मधुर स्वर मे गुणानुवाद करते है, अतः भागवत के बाद नारद-पुराण को स्थान दिया गया। प्रकृतिरूपिणी देवी को ही इस सृष्टि-चक्र का मूल माना गया है जिसका विवरण मार्कण्डेयपुराण में है, अत सप्तम स्थान इसे ही प्राप्त है। घट के भीतर प्राण की भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर अग्नि क्रियाशील रहती है; इसका प्रतिपादन अग्निपुराण करता है, अत इसे आठवाँ स्थान प्राप्त हुआ। अग्नि का तत्त्व सूर्य पर आधृत है और सूर्य का सर्वातिशायी महत्त्व भविष्यपुराण मे वर्णित है, अतः इसे नवाँ स्थान दिया गया है। पुराणो के अनुसार जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और संसार ब्रह्म का विवर्त्त रूप मान कर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म के नानावतार होते है और वह विष्णु और शिव के रूप मे प्रकट होता है। लिंग एवं स्कन्दपुराण का सम्बन्ध शिव के साथ वाराह, वामन, कूर्म एवं मत्स्य का सम्बन्ध विष्णु के साथ है। गरुडपुराण में मरणान्तर स्थिति का वर्णन है तथा अन्तिम पर, ब्रह्माण्ड जिसमे दिखलाया गया है कि जीव अपने कर्म की गति के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार सभी पुराणों के क्रम का निर्वाह सृष्टिविद्या के अनुसार हो जाता है।

तमिल ग्रन्थो मे पुराणो के पाँच वर्ग किये गए हैं—१. ब्रह्मा—ब्रह्म तथा पद्म-पुराण २. सूर्य—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ३. अग्नि—अग्निपुराण ४. शिव—शिव, स्कन्द, लिङ्ग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय तथा ब्रह्माण्ड। ५. विष्णु—नारद, श्रीमद्भागवत, गरुड, विष्णु।

उपपुराण—पुराणों की भाँति उपपुराणों का भी संस्कृत वाङ्मय मे महनीय स्थान है। कतिपय विद्वानो के अनुसार उपपुराणो की भी संख्या १८ ही है, किन्तु इस विषय मे विद्वानो में मत-वैभिन्न्य है। ऐसा कहा जाता है कि पुराणों के बाद ही उपपुराणो की रचना हुई है, पर प्राचीनता अथवा मौलिकता के विचार से उपपुराणों का भी महत्त्व पुराणो के ही समान है। उपपुराणों मे स्थानीय संप्रदाय तथा पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों की धार्मिक आवश्यकता पर अधिक बल दिया गया है। उपपुराणों की सूची इस प्रकार है—सनत्कुमार उपपुराण, नरसिंह, नान्दी, शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, *मानव, उशनस् ब्रह्माण्ड, वरुण,* कालिका, वसिष्ठ, लिङ्ग, महेश्वर, साम्ब, सौर, पराशर, *मारीच, भार्गव। कुछ अन्य पुराणों के भी नाम मिलते हैं*—आदित्य आदि, मुद्गल, कल्कि, देवीभागवत्, बृहद्धर्म, परानन्द, पशुपति हरिवंश तथा विष्णुधर्मोत्तर।

जैनपुराण—जैनधर्म में भी वेद, उपनिषद् एवं पुराणों की रचना हुई है और

उनका भी अपना महत्त्व है। जिन ग्रन्थों में जैन महापुरुषों का चरित वर्णित है उन्हें पुराण कहा जाता है। जैनियों के ६३ प्रभावशाली व्यक्ति प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध रहे हैं जिन्हें 'शलाकापुरुष' कहा जाता है। इनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव हैं। इन्हीं महापुरुषों का जीवन पुराणों में वर्णित है। इन पुराणों की संख्या २४ है। दिगम्बर लोग इन ग्रन्थों को पुराण की अभिधा देते हैं तथा श्वेताम्बर लोगों ने इन्हें चरित्र कहा है।

पुराणों के नाम—आदिपुराण, अजितनाथपुराण, संभवनाथपुराण, अभिनन्दपुराण, सुमतिनाथपुराण, पद्मप्रभपुराण, सुपार्श्वपुराण, चन्द्रप्रभपुराण, पुष्पदन्तपुराण, शीतलनाथपुराण, श्रेयांशपुराण, वासुपूज्यपुराण, विमलानाथपुराण, अनन्तजीतपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, कुन्थुनाथपुराण, अमरनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, मुनिसुव्रतपुराण, नेमिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, सम्मतिपुराण।

आधारग्रन्थ—१ पौराणिक रेकार्डस ऑफ द हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम—प्रो० ह० सी० हाजरा। २ स्टडीज इन द उपपुराणाज—संस्कृत कॉलेज, कलकता ले० श्री हाजरा। ३ पुराण इन्डेक्स २ भागों में—प्रो० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार। ४. स्टडीज इन एपिक एण्ड पुराणाज ऑफ इण्डिया—डॉ० ए० डी० पुसालकर, बम्बई। ५. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र डॉ० पी० वी० काणे, भाग ५, खण्ड २। ६. आउट लाइन ऑफ रिलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया—जे० एन० फर्कुहर। ७. इन्ट्रोडक्शन टू इङ्गलिश ट्रान्सलेशन ऑफ विष्णुपुराण—एच० एच० विल्सन। ८. पुराण रेकार्डस ऑफ द कलिऐज—एफ० ई० पार्जिटर। ९. एन्सियन्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रैडीशन—पार्जिटर। १० वामनपुराण—ए स्टडी—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ११. मत्स्यपुराण—ए स्टडी—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल। १२. भागवतपुराण—पूर्णेन्दुनाथ सिंहा, मद्रास १३ अग्निपुराण-आंग्लानुवाद—चौखम्बा प्रकाशन १४. अग्निपुराण—ए स्टडी—चौखम्बा प्रकाशन। १५. हिन्दुत्व—प्रो० रामदास गौड। १६. पुराणविषयानुक्रमणी—डॉ० राजबली पाण्डेय। १७. पुराण-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। १८. भागवत-दर्शन—डॉ० हरवंशलाल शर्मा। १९ इतिहास-पुराण का अनुशीलन—डॉ० रामाशंकर भट्टाचार्य। २०. गरुडपुराण विषयानुक्रमणिका—डॉ० रामाशंकर भट्टाचार्य। २१ पुराणस्थ वैदिक सामग्री का अनुशीलन—डॉ० रामाशंकर भट्टाचार्य। २२. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। २३. अग्निपुराण—सं० प० बलदेव उपाध्याय। (चौखम्बा)। २४. प्राचीन भारतीय साहित्य खण्ड १, भाग २—विन्टरनित्स। २५. अष्टादशपुराण-परिचय—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। २६. पुराणशास्त्र एवं जनकथाएँ—मैक्समूलर। २७ पुराणम्-अंक १९५९–६८ तक काशिराज ट्रस्ट।

पुरुदेव चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता अर्हत् या अर्हदास नामक व्यक्ति है जो आशाधर के शिष्य थे। इसमें जैन संत पुरुदेव का वृत्तान्त है। अर्हदास का समय त्रयोदश शताब्दी का अन्तिम चरण है। इन्होंने 'मुनि सुव्रत काव्य' तथा 'भव्यजन कण्ठाभरण' नामक ग्रन्थों की भी रचना की है। लेखक ने इस चम्पू के प्रारम्भ में जिन की वन्दना की है तथा अपने काव्य के सम्बन्ध मे कहा है कि इसका उद्‌भव भगवान्

की भक्तिरूपी बीज से हुआ है। नाना प्रकार के छन्द (विविध वृत्त) इनके पल्लव हैं और अलंकार पुष्प-गुच्छ। इसकी रचना 'कोमल-चारु शब्द-निचय' से पूर्ण है तथा गद्य की भाषा 'अनुप्रासमयी-समस्त पदावली' से युक्त है। पुस्तक का अन्त अहिंसा के प्रभाव-वर्णन से हुआ है और श्रोताओं को सभी जीवों पर दया प्रदर्शित करने की ओर मोड़ने का प्रयास है। यह बम्बई से प्रकाशित हुआ है। जातेयं कवितालता भगवतो भक्त्याख्यबीजेन मे, चंचत्कोमलचारुशब्दनिचयैः पद्यैः प्रकामोज्ज्वला। वृत्तैः पल्लविता ततः कुसुमितालंकारविच्छित्तिभिः, सम्प्राप्ता वृषभेशकल्पसुतरुं व्यंग्यश्रिया वर्धते ॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

पुलस्त्यस्मृति—इस स्मृति के रचयिता पुलस्त नामक धर्मशास्त्री हैं। इसका रचनाकाल डॉ० काणे के अनुसार, ४०० से ७०० ई० के मध्य है। वृद्ध याज्ञवल्क्य ने पुलस्त को धर्मशास्त्र का प्रवक्ता माना है। विश्वरूप ने शरीरशौच के सम्बन्ध मे 'पुलस्त्यस्मृति' का एक श्लोक दिया है और 'मिताक्षरा' मे भी इसके श्लोक उद्धृत है। अपरार्क ने इस ग्रन्थ से उद्धरण दिये हैं और 'दानरत्नाकर' मे भी मृगचर्म-दान के संबंध मे 'पुलस्त्यस्मृति' के मत का उल्लेख करते हुए इसके श्लोक उद्धृत किये गए है। इस ग्रन्थ मे श्राद्ध मे ब्राह्मण के लिए मुनि का भोजन, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए मास तथा शूद्र के लिए मधु खाने की व्यवस्था की गयी है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पी० वी० काणे भाग—१ (हिन्दी अनुवाद)।

पुष्पसूत्र—यह सामवेदीय प्रातिशाख्य है जिसके रचयिता पुष्प नामक ऋषि थे। इसमें दस प्रपाठक या अध्याय हैं तथा इसका संबध गानसंहिता से है। इसमे स्तोम का विशेषरूप से वर्णन है तथा उन स्थलो और मन्त्रो का विवरण दिया गया है जिनमे स्तोम का विधान अथवा अपवाद होता है। इस पर उपाध्याय अजातशत्रु ने भाष्य लिखा है जो प्रकाशित हो चुका है। (चौखम्बा सस्कृत सीरीज से उपाध्याय का भाष्य सहित १९२२ ई० में प्रकाशित) "इसमे प्रधानतया वेयगान तथा अरण्य गेयगान मे प्रयुक्त सामो का ऊहन अन्य मन्त्रो पर कैसे किया जाता है, इस विषय का विशद विवेचन है।" वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ० ३०७।

पृथ्वीराज विजय—अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज की विजय का वर्णन करने वाला यह ऐतिहासिक महाकाव्य जयानक कवि की रचना है। सम्प्रति यह अपूर्ण रूप मे उपलब्ध है जिसमे १२ सर्ग है। इन सर्गो मे पृथ्वीराज के पूर्वजो का वर्णन तथा उनके (पृथ्वीराज के) विवाह का उल्लेख है। इसमे स्पष्टरूप से कवि का नाम कहीं भी नहीं मिलता, पर अन्तरंग अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसका रचयिता जयानक कवि था। इसकी एक टीका भी प्राप्त होती है जिसका लेखक जोनराज है। जयानक काश्मीरक था और उसने संभवतः ११९२ ई० मे इस महाकाव्य की रचना की थी। इसका महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक है। पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषो एवं उनके आरम्भिक दिनों का इतिहास जानने का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक साधन है। इसमे

काव्य का उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है तथा कवि ने अनेक स्थलों पर श्लेषालंकार के द्वारा चमत्कार भर दिया है। ज्वलन्ति चेत् दुर्जन सूर्यकान्ताः किं कुर्वते सत्कवि-सूर्य-भासाम्। महीभृतां दोः शिखरे तु रूढां पार्श्वस्थितां कीर्तिलतां दहन्ति ॥

पौष्करसादि—संस्कृत व्याकरण के प्राचीन आचार्य, पं० युधिष्ठिर मीमांसक के के अनुसार इनका समय ३१०० वर्ष वि० पू० है। इनका उल्लेख 'महाभाष्य' के एक वार्तिक मे हुआ है। चयो द्वितीया शरिपौष्करसादेः। ८।४।४८ इनके पिता का नाम 'पुष्करत्' था तथा निवास-स्थान अजमेर के निकट 'पुष्कर' नामक स्थान था। 'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य' (५।४०) के माहिषेयभाष्य में कहा गया है कि पौष्करसादि ने 'कृष्ण यजुर्वेद' की एक शाखा का प्रवचन किया था। इनके मत 'हिरण्यकेशीयगृह्यसूत्र' (१।६।८) एवं 'अग्निवेश्यगृह्यसूत्र' (१।१ पृ० ९) में भी उल्लिखित हैं तथा 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में भी (१।१९।७, १।२८।१) पुष्करसादि आचार्य का नाम आया है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

प्रकरण—रूपक का एक प्रकार। इसके तत्त्व नाटक से मिलते है। नाटक से इसमें अन्तर इस बात मे होता है कि इसका नायक धीर प्रशान्त, ब्राह्मण, मन्त्री अथवा वणिक् होता है। इसमें दस अंक होते हैं। मृच्छकटिक संस्कृत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'प्रकरण' है। दे० मृच्छकटिक। भवभूतिकृत 'मालतीमाधव' भी संस्कृत का उत्तम प्रकरण है। (दे० मालतीमाधव)। अन्य प्रकरणों का परिचय दिया जा रहा है—

मल्लिकामारुत—इसका प्रकाशन जीवानन्द विद्यासागर द्वारा हो चुका है। इसके प्रणेता उद्दण्ड कवि हैं। इनका समय १७ वीं शताब्दी का मध्य है। ये कालिकट के राजा के दरबार मे रहते थे। यह प्रकरण दस अंकों में है और इसका कथानक 'मालती-माधव' से मिलता-जुलता है।

कौमुदीमित्रानन्द—इसका प्रकाशन १९१७ ई० में भावनगर से हो चुका है। इसके रचयिता हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र हैं। इसका रचनाकाल ११७३–७६ ई० के निकट है। इस प्रकरण मे अभिनय के तत्त्वों का अभाव पाया जाता है।

प्रबुद्ध रौहिणेय—इस प्रकरण के रचयिता रामभद्रमुनि हैं (समय १३ वीं शताब्दी)। इसमें जैनधर्म के एक प्रसिद्ध आख्यान का वर्णन है।

मुद्रितकुमुदचन्द्र—इस प्रकरण का प्रकाशन काशी से हो चुका है। इसके रचयिता यशश्चन्द्र हैं जो पद्मचन्द्र के पुत्र थे। इसमें ११२४ ई० मे सम्पन्न एक शास्त्रार्थ का वर्णन है जो श्वेताम्बर मुनि देवसूरि तथा दिगम्बर मुनि कुमुदचन्द्र के बीच हुआ था। शास्त्रार्थ में कुमुदचन्द्र का मुख-मुद्रण हो गया था अतः इसी के आधार पर प्रकरण का नामकरण किया गया।

आधारग्रन्थ—संस्कृत साहित्य का इतिहास—आ० बलदेव उपाध्याय।

प्रजापतिस्मृति—इस स्मृति के रचयिता प्रजापति कहे गए हैं। आनन्दाश्रम संग्रह मे 'प्रजापतिस्मृति' के श्राद्ध-विषयक १९८ श्लोक प्राप्त होते हैं। इनमें अधिकांश श्लोक अनुष्टुप् हैं किन्तु यत्रतत्र इन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका एवं स्रग्धरा छन्द

भी प्रयुक्त हुए हैं। बौधायनधर्मसूत्र' मे प्रजापति के उद्धरण प्राप्त होते हैं। 'मिताक्षरा' एवं अपरार्क ने भी प्रजापति के श्लोक उद्धृत किये हैं। 'मिताक्षरा' के एक उद्धरण मे परिव्राजकों के चार भेद वर्णित है—कुटीचक्र बहूदक, हंस तथा परमहंस। प्रजापति ने कृत तथा अकृत के रूप मे दो प्रकार के गवाहों का वर्णन किया है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पी० वी० काणे भाग १ (हिन्दी अनुवाद)।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह महाकवि भास विरचित नाटक है। इसमे कौशाम्बी-नरेश वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के हरण का वर्णन है। प्रथम अंक मे मन्त्री यौगन्धरायण सालक के साथ रंगमंच पर दिखाया गया है। वार्त्तालाप के क्रम मे ज्ञात होता है कि महाराज उदयन कल प्रातःकाल वेणुवन के निदटस्थ नागवन मे जाएँगे। उदयन हाथी का शिकार करने के लिए महासेन के राज्य मे जाते है तथा कृत्रिम हाथी के द्वारा पकड लिये जाते है। जब यह समाचार उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण को मिलता है तो वह प्रतिज्ञा करता है कि 'यदि राहुग्रस्त चन्द्रमा की भाँति शत्रुओं द्वारा पकडे गए स्वामी उदयन को मैं मुक्त न कर दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।' इसी बीच महर्षि व्यास वहाँ आकर राजकुल के अभ्युदय का आशीर्वाद देकर और अपना वस्त्र छोडकर चले जाते हैं। यौगन्धरायण उसी वस्त्र को पहन कर अपना वेश बदल लेता है।

द्वितीय अंक में प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता के विवाह की चर्चा होती है। उसी समय कंचुकी आकर राजा से कहता है कि उदयन बन्दी बना लिये गए हैं। राजा ने उसे राजकुमार के सदृश उदयन का सत्कार कर उनके पास ले जाने को कहा। रानी ने वासवदत्ता के लिए योग्यवर उदयन को ही बतलाया।

तृतीय अंक मे महासेन प्रद्योत की राजधानी मे वत्सराज का विदूषक तथा उनके चर एवं अमात्य वेश परिवर्त्तित कर दिखाई पडते हैं। चतुर्थ अंक मे वत्सराज के चर अपना वेश परिवर्त्तित कर घूमते हुए प्रद्योत की राजधानी मे रहते हैं। उन्हें मालूम होता है कि बन्दीगृह मे वत्सराज वासवदत्ता को वीणा सिखा रहे थे और वहीं दोनो एक दूसरे पर अनुरक्त हो गए और उदयन वासवदत्ता को भगा कर राजधानी चले गए। वत्सराज के चले जाने पर उनके सभी गुप्तचर पकड लिये गए और मन्त्री यौगन्धरायण कारागृह में डाल दिया गया। वहाँ उसे प्रद्योत के मन्त्री भरतरोहक से भेट हो गयी। उसने वत्सराज के कार्यों की निन्दा की पर यौन्धरायण ने उसके सारे आक्षेपो का उत्तर दे दिया। रोहक उसे स्वर्णपात्र पुरस्कार मे देने लगा पर उसने उसे नहीं लिया। पर जब उसे पता चला कि वत्सराज के भाग जाने पर उसका अनुमोदन करते हुए प्रद्योत ने चित्रफलक के द्वारा दोनों का विवाह कर दिया तो उसने भृंगार नामक स्वर्णपात्र ग्रहण कर लिया तदनन्तर भरतवाक्य के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है।

यह नाटक उदयन के अमात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा पर आधृत है, अतः इसका नामकरण (प्रतिज्ञायौगन्धरायण) उपयुक्त है। इसमे भास की नाट्यकला की पूर्ण प्रौढि दिखलाई पड़ती है। कथासंगठन, चरित्रांकन, संवाद तथा प्रभान्विति सभी दृष्टियो से यह

सफल नाटक है। कवि ने कथावस्तु का विन्यास इस प्रकार किया है कि सारी घटनाएँ अत्यन्त त्वरा के साथ घटती हुई दिखाई गयी है। कथा की शीघ्रता को प्रदर्शित करने के लिए इसमें सूच्यांशों का आधिक्य है। इसके सभी चरित्र अत्यन्त आकर्षक हैं। उदयन कलाप्रेमी, रूपवान् तथा शौर्य के प्रतीक के रूप में चित्रित है तो यौगन्धरायण नीति-विशारद के रूप मे।

प्रतिमा नाटक—इसके रचयिता महाकवि भास है। इसमें कवि ने रामवनगमन से लेकर रावणवध तक की घटना को स्थान दिया है। यह नाटक सात अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक मे प्रतीहारी और कंचुकी की बातो से राजा दशरथ द्वारा रामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी का वर्णन है। उसी समय कंचुकी आकर राम को बतलाता है कि कैकेयी ने राज्याभिषेक को रोक दिया है और महाराज इस समाचार को सुनकर मूच्छित हो गए है और आप को बुला रहे है। लक्ष्मण यह सुनकर राम को भडकाते हैं, पर रामचन्द्र सबको शान्त कर देते है। रामचन्द्र के साथ सीता और लक्ष्मण बन को प्रयाण करते है। द्वितीय अंक में राजा दशरथ राम को वन जाने से विरत करने से असमर्थ होकर उनके वियोग मे प्राण-त्याग करते है। तृतीय अंक मे कंचुकी से ज्ञात होता है कि अयोध्या मे मृत इक्ष्वाकुवंशीय राजाओ की प्रतिमा स्थापित होती है और महाराज दशरथ की भी प्रतिमा स्थापित की गयी है। उसका दर्शन करने के लिए कौशल्यादि रानियाँ आने वाली है। उसी समय भरत रथारूढ होकर नगर में प्रवेश करते हैं। भरत सून मे अयोध्या का समाचार पूछते है। उसने राजा की मृत्यु के सम्बन्ध मे नही बताया और उनको कृत्तिका नक्षत्र के व्यतीत होने पर नगर मे प्रवेश करने को कहा। वे राजाओं के प्रतिमागृह मे ठहर जाते हैं। वहाँ उसका संरक्षक उन्हें इक्ष्वाकुवंशीय मृत नृपतियो का परिचय देता है और बतलाता है कि यहाँ केवल मृत नृपतियो की ही प्रतिमायें रखी जाती है। अचानक भरत की दृष्टि दशरथ की प्रतिमा पर जाती है और वे शोक से मूर्च्छित हो जाते हैं। उन्हे देवकुलिक से ही अयोध्या की सारी घटनाये ज्ञात हो जाती है। चतुर्थ अंक मे भरत सुमन्त्र के साथ राम-लक्ष्मण को मनाकर अयोध्या लौटाने के लिए जाते है, पर राम उन्हे पिता के वचन को सत्य करने की बात करते हैं। भरत इस शर्त पर उनकी बात मान लेते है कि आप चौदह वर्ष के बाद आकर अपना राज्य लौटा लें और मैं न्यास के रक्षक के रूप मे रहूगा। पंचम अंक में स्वर्णमृग की कथा तथा रावण द्वारा सीताहरण, सुग्रीव की मैत्री, वालि-बध आदि घटनाये कहलायी गयी हैं। भरत यह सुन कर अपनी सेना तैयार कर लंका में आक्रमण करना चाहते है। सप्तम अंक मे एक तापस द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि राम ने सीता का हरण करने वाले रावण का संहार कर दिया है और वे सदल-बल अयोध्या आ रहे हैं। राम-भरत का मिलन होता है और सबकी इच्छा से अमात्य राम का अभिषेक करते हैं। भरतवाक्य के बाद नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक का नामकरण इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा-निर्माण के महत्त्व पर आश्रित है। भरत ने राजा दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही उनकी मृत्यु की कल्पना कर ली। प्रतिमा को अधिक महत्त्व देने के कारण इसकी अभिधा उपयुक्त सिद्ध

होती है। इसमें कवि ने मौलिकता का समावेश कर सम्पूर्ण प्रचलित कथा से भिन्न घटनाओं का वर्णन कर, नाटकीय दृष्टि से, अधिक कौतूहल भर दिया है। प्रथम अंक में परिहास में सीता का वल्कल धारण करना और तृतीय में प्रतिमा का प्रसंग भास की मौलिक उद्भावनायें है। पंचम अंक मे सीता-हरण प्रकरण मे भी नवीनता प्रदर्शित की गयी है। राम उटज मे विद्यमान रहते है तभी रावण आकर उन्हे राजा दशरथ के श्राद्ध के लिए कांचनपार्श्वमृग लाने को कहता है तथा कंचन मृग को दिखाकर उन्हें दूर हटा देता है। सुमन्त्र का वन में जाना तथा राम की कुटिया को सूना देखकर सीताहरण की बात जाकर भरत को सुनाना आदि नवीन तथ्य उपस्थित किये गए हैं। भरत के कोसने पर कैकेयी का यह कहना कि श्रवण के पिता के शाप को सत्य करने के लिए ही मैंने राम को वन भेजा था, यह कवि की नई कल्पना है। इसमे कवि ने कैकेयी के चरित्र को परिमार्जित करने का सफल प्रयास करते हुए राम-कथा में नया मोड दिया है। कैकेयी ने भरत को बतलाया कि उसने १४ दिनो के लिए ही वनवास का वरदान मांगा था पर मानसिक विकलता के कारण मुख से १४ वर्ष निकल गया। उसके अनुसार यह वरदान सभी ऋषियो द्वारा अनुमोदित था। इसमे पात्रों का चारित्रिक उत्कर्ष दिखलाया गया है तथा इतिवृत्त को नया रूप देकर नाटकीय कौतूहल को अक्षुण्ण रखा गया है।

आधार ग्रन्थ—महाकवि भास—पं० बलदेव उपाध्याय।

प्रबोधचन्द्रोदय—यह संस्कृत का सुप्रसिद्ध प्रतीक नाटक है जिसके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हैं। लेखक जैजाकभुक्ति के राजा कीर्त्तिवर्मा के राजकाल मे विद्यमान था। कीर्त्तिवर्मा का एक शिलालेख १०९८ ई० का प्राप्त हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि कृष्णमिश्र का समय ११०० ई० के निकट था। 'प्रबोधचन्द्रोदय' शान्तरस प्रधान नाटक है। इसमे रचयिता ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है। श्रद्धा, भक्ति, विद्या, ज्ञान, मोह, विवेक, दम्भ, बुद्धि इत्यादि अमूर्त्त भावमय पदार्थ इसमे नर-नारी के रूप मे प्रस्तुत किये गए है। इसमे दिखाया गया है कि पुरुष राजमोह के जाल मे फँस कर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है तथा उसका यथार्थ ज्ञान जाता रहता है। विवेक के द्वारा मोह के पराजित होने पर पुरुष को शाश्वत ज्ञान प्राप्त होता है तथा विवेकपूर्वक उपनिषद् के अध्ययन एवं विष्णु-भक्ति का आश्रय ग्रहण करने से ज्ञान-स्वरूप चन्द्रोदय होता है। इसमे कवि ने वेदान्त एवं वैष्णव-भक्ति का सम्मिश्रण अत्यन्त सुन्दर युक्ति से किया है। इसमे कुल छह अंक हैं तथा पात्र अत्यन्त प्राणवन्त है। द्वितीय अक में दम्भ तथा अहकार के वार्त्तालाप में हास्यरस की छटा छिटकायी गयी है।

आधार ग्रन्थ—'संस्कृत साहित्य का इतिहास' वाचस्पति गैरोला।

प्रभाकर मिश्र—मीमांसा-दर्शन के अन्तर्गत गुरुमत के प्रतिष्ठापक आ० प्रभाकर मिश्र हैं [दे० मीमांसा-दर्शन]। ये कुमारिलभट्ट (मीमांसा-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य)

के प्रसिद्ध शिष्यों में हैं। कहा जाता है कि अपने शिष्य की प्रखर मेधा से प्रसन्न होकर कुमारिल ने इन्हें 'गुरु' की उपाधि दे दी थी। उस समय से इनका मत मीमांसा के इतिहास में 'गुरुमत' के नाम से विख्यात हो गया है। पर, कुमारिल और प्रभाकर के सम्बन्ध को लेकर आधुनिक विद्वानों ने नाना प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। डॉ० ए० बी० कीथ एवं डॉ० गंगानाथ को इनकी गुरुशिष्यता स्वीकार्य नहीं है और वे कुमारिल को प्रभाकर का परवर्त्ती मानते है। इनके अनुसार प्रभाकर का समय ६०० से ६५० ई० के मध्य है। प्रभाकर ने अपने स्वतन्त्र मत की प्रतिष्ठापना करने लिए 'शाबरभाष्य' के ऊपर दो टीकाओं का निर्माण किया है जिन्हें 'बृहती' या निबन्धन एवं 'लघ्वी' या विवरण कहते हैं। इनमें द्वितीय ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। 'निबन्धन' की रचना १२ हजार श्लोकों में हुई है और 'विवरण' में ६ हजार श्लोक है। प्रभाकर के पट्टशिष्य शालिकनाथ मिश्र थे और ये गुरुमत के ही अनुयायी थे। इन्होंने अपने गुरु के दोनों ग्रन्थों पर 'दीपशिखा' तथा 'ऋजुविमला' नामक टीकाओं की रचना कर इस मत को गति दी थी। शालिकनाथ मिश्र ने 'प्रकरण पञ्चिका' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की भी रचना की है। ये मिथिला के निवासी थे, पर कतिपय विद्वान् इन्हें बंगाल का रहने वाला कहते है।

आधारग्रन्थ—१ भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २. मीमांसा-दर्शन—पं० मण्डन मिश्र।

प्रशस्तपाद्—वैशेषिकदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य प्रशस्तपाद (प्रशस्तदेव) हैं जिन्होंने 'पदार्थधर्मसंग्रह' नामक मौलिक ग्रन्थ की रचना की है [दे० वैशेषिकदर्शन]। इनका समय ई० सन् की चतुर्थ शताब्दी का अन्तिमचरण माना जाता है। इस ग्रन्थ का चीनी भाषा में ६४८ ई० मे अनुवाद हो चुका था। प्रसिद्ध जापानी विद्वान् डॉ० उई ने इसका आंग्लभाषा में अनुवाद किया है। यह ग्रंथ वैशेषिक सूत्रों का व्याख्या न होकर तद्विषयक स्वतंत्र एवं मौलिक ग्रन्थ है। इन्होंने न्याय-दर्शन से प्रभावित होकर अपने ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रंथ की व्यापकता एवं मौलिकता के कारण इस पर अनेक टीकायें लिखी गयी है। (१) दाक्षिणात्य शैवाचार्य व्योमशिखाचार्य ने 'व्योमवती' संज्ञक भाष्य की रचना की है जो 'पदार्थसंग्रह' का सर्वाधिक प्राचीन भाष्य है। ये हर्षवर्धन के समसामयिक थे। इन्होने प्रत्यक्ष और अनुमान के अतिरिक्त शब्द को भी प्रमाण माना है। (२) उदयनाचार्य (प्रसिद्ध नैयायिक) ने 'किरणावली' नामक भाष्य की रचना की है। (३) 'पदार्थधर्मसंग्रह' के तृतीय भाष्यकार वंगदेशीय विद्वान् श्रीधराचार्य थे। इन्होंने 'न्यायकन्दली' नामक भाष्य का प्रणयन किया। इनका समय ९९१ ई० है। वैशेषिक सूत्र के पश्चात् इस दर्शन का अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ प्रशस्तपादभाष्य माना जाता है। ['पदार्थधर्मसंग्रह' की प्रसिद्धि प्रशस्तपादभाष्य के रूप में है] यह वैशेषिक-दर्शन का आकर ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे जगत् की सृष्टि एवं प्रलय, २४ गुणो का विवेचन, परमाणुवाद एवं प्रमाण का विस्तारपूर्वक विवेचन है और ये विषय कणाद के सिद्धान्त के निश्चित बढ़ाव के द्योतक हैं।

आधारग्रन्थ—[प्रशस्तपादभाष्य का हिन्दी अनुवाद—चौखम्बा] १. इण्डियन-फिलॉसफी भाग २—डॉ० राधाकृष्णन् । २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ।

प्रश्नोपनिषद्—यह 'अथर्ववेद' की पिप्पलादशाखा का ब्राह्मणभाग है। इसमें पिप्पलाद ऋषि ने सुकेशा, सत्यवान् (शिवि के पुत्र) आश्वलायन, भार्गव, कात्यायन और कबन्धी नामक ६ व्यक्तियों के प्रश्नो का उत्तर दिया है, इसलिए इसे 'प्रश्नोपनिषद्' कहते है। यह उपनिषद् गद्यात्मक है तथा इसमे उठाये गए सभी प्रश्न अध्यात्म-विषयक है। (क) समस्त प्राणी जगत् या प्रजा की उत्पत्ति कहाँ से होती है? (ख) कितने देवता या दैवी शक्तियाँ प्रजाओ को धारण करती हैं? उन्हे कौन प्रकाशित करता है तथा उन दैवी शक्तियो मे कौन श्रेष्ठतम है। (ग) प्राणों की उत्पत्ति किससे होती है? वे इस मनुष्य-शरीर मे कैसे प्रवेश करते है? तथा वे अपने को किस प्रकार विभाजित कर शरीर मे रहते है? (घ) मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओ का आध्यात्मिक रहस्य क्या है? तथा जीवन की समस्त शक्ति या सबके-सब देवता किसमें सर्वभाव से स्थित रहते हैं? (ङ) ओंकार की उपासना का रहस्य क्या है? तथा इससे किस लोक की प्राप्ति होती है? (च) षोडसकला-सम्पन्न पुरुष कहाँ है और उसका स्वरूप क्या है? इन्हीं प्रश्नो के उत्तर मे अध्यात्मविषयक सभी समस्याओ का समाधान किया गया है। सभी प्रश्नो के उत्तर मे प्राण की महिमा, उसका स्वरूप, ओंकार की उपासना, सोलह कलासम्पन्न पुरुष या परब्रह्म का आध्यात्मिक दृष्टि से वर्णन तथा अक्षर ब्रह्म को इस जगत् का अधिष्ठाता माना गया है।

आधार ग्रन्थ—कठोपनिषद्—चौखम्बा प्रकाशन ।

प्राक्पाणिनि कतिपय वैयाकरण—रौढि—पं० युधिष्ठिर मीमासक के अनुसार इनका समय ३००० वि० पू० है। इनका उल्लेख 'काशिका' मे वैयाकरण के रूप मे है (६।२।३६)। शौनकि—समय ३००० वि० पू०। इनका विवरण 'चरकसंहिता' के टीकाकार जज्झट के एक उद्धरण से प्राप्त होता है। २।२७। गौतम—इनका विवरण 'महाभाष्य' मे है जहाँ इन्हे आपिशलि, पाणिनि प्रभृति वैयाकरणो की पंक्ति मे बैठाया गया है (६।२।३६)। इस समय गौतम रचित 'गौतमीशिक्षा' प्राप्त होती है और वह काशी से प्रकाशित हो चुकी है। इन्होने 'गौतमगृह्यसूत्र' तथा 'गौतमधर्मशास्त्र' की भी रचना की थी। व्याडि—इनके अनेक मतो के उद्धरण 'शौनकीय ऋक्प्रातिशाख्य' मे उपलब्ध होते हैं। पुरुषोत्तमदेव ने भी गालव के साथ भाषावृत्ति मे (६।१।७०) व्याडि के मत का उल्लेख किया है। परम्परा मे ये पाणिनि के मामा कहे गए हैं।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास— पं० युधिष्ठिर मीमांसक ।

प्रातिशाख्य—इन्हे शिक्षा नामक वेदांग का अंग माना जाता है [दे० वेदांग]। इनके प्रतिपाद्य विषय है—उच्चारण, स्वरविधान, सन्धि, ह्रस्व का दीर्घ-विधान एवं संहिता-पाठ से सम्बद्ध अन्य विषय। संहिता-पाठ का पद-पाठ के रूप मे परिवर्तित होने वाले विषयो का भी वर्णन इनमें होता है। कुछ प्रातिशाख्यो मे वैदिक छन्दों का भी वर्णन है। इनका महत्त्व दो दृष्टियो से अधिक है। प्रथम तो ये भारतीय व्याकरण-

शास्त्र की ऐतिहासिक शृंखला को जोडते हैं, द्वितीय इनमें वैदिक संहिताओ के पाठ एवं स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। प्रातिशाख्यों से ही संस्कृत भाषा का व्याकरण प्रारम्भ होता है। ये स्वयं व्याकरण न होकर व्याकरण-संबंधी कतिपय विषयों का निरूपण करते हैं। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् प्रातिशाख्य प्राप्त होते हैं। 'ऋग्वेद' का प्रातिशाख्य है 'ऋक्प्रातिशाख्य', 'शुक्लयजुर्वेद' का 'वाजसनेयिप्रातिशाख्य'। 'तैत्तिरीय-संहिता' के प्रातिशाख्य का नाम 'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य' है। सामवेदीय प्रातिशाख्यो की संख्या दो है—'पुष्पसूत्र' एवं 'ऋक्तन्त्र'। 'अथर्ववेद' के भी दो प्रातिशाख्य है—'शौनकीया चतुरध्यायिका' तथा 'अथर्ववेद प्रातिशाख्य'। [उपर्युक्त सभी प्रातिशाख्यो के विवरण इस कोश मे प्रस्तुत किये गए है।]

प्रियदर्शिका—यह हर्षवर्धन रचित नाटिका है [दे० हर्षवर्धन]। इसमें चार अंक है तथा इसका नामकरण इसकी नायिका प्रियदर्शिका के नाम पर किया गया है। इसकी कथावस्तु गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से ली गयी है तथा रचनाशैली पर महाकवि कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्र' का प्रभाव है। इसमें कवि ने वत्स-नरेश महाराज उदयन तथा महाराज दृढवर्मा की दुहिता प्रियदर्शिका की प्रणय-कथा का वर्णन किया है। नाटिका के प्रारम्भ मे कंचुकी विनयवसु दृढ़वर्मा का परिचय प्रस्तुत करता है। इसमे यह सूचना प्राप्त होती है कि दृढवर्मा ने अपनी राजकुमारी प्रियदर्शिका का विवाह कौशाम्बीनरेश वत्सराज के साथ करने का निश्चय किया था, पर कलिंगनरेश की ओर से कई बार प्रियदर्शिका की याचना की गयी थी। कलिंगनरेश दृढवर्मा के निश्चय मे क्रुद्ध होकर उसके राज्य मे विद्रोह कर देता है और दोनो पक्षो मे उग्र संग्राम होने लगता है। कलिंगनरेश दृढ़वर्मा को बन्दी बना लेता है, किन्तु दृढवर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका की रक्षा कर कंचुकी उसे वत्सराज उदयन के प्रासाद मे पहुचा देता है और वहाँ वह महारानी वासवदत्ता की दासी के रूप में रहने लगती है। उसका नाम आरण्यका रखा जाता है। द्वितीय अंक में वासवदत्ता के निमित्त पुष्पावचय करती हुई आरण्यका के साथ सहसा उदयन का साक्षात्कार होता है तथा दोनो एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जाते है। जब प्रियदर्शिका रानी के लिए कमल का फूल तोड़ रही है उसी समय भौंरों का झुण्ड आता है और उनके भय से वह बेचैन हो उठती है। तत्क्षण विदूषक के साथ भ्रमण करता हुआ राजा आता है और लताकुञ्ज मे मँड़राने वाले भ्रमरों को दूर कर देता है। यही से दोनो मे प्रथम प्रेम के बीज का वपन होता है। प्रियदर्शिका की सखी दोनों को एकाकी छोड़कर चली जाती है और वे स्वतन्त्रतापूर्वक वार्त्तालाप करने का अवसर प्राप्त करते हैं। तृतीय अंक मे उदयन एवं प्रियदर्शिका की परस्पर अनुरागजन्य व्याकुलता का दृश्य उपस्थित किया गया है। लोक के मनोरंजन के लिए तथा वासवदत्ता के विवाह पर आधृत रूपक के अभिनय की व्यवस्था राजदरबार मे की जाती है। नाटक मे वत्सराज उदयन स्वयं अपनी भूमिका अदा करते हैं एवं आरण्यका वासवदत्ता का अभिनय करती है। यह नाटक केवल दर्शकों के मनोरंजन का साधन न बन कर वास्तविक

हो जाता है और सबों पर राजा और आरण्यका की प्रीति प्रकट हो जाती है। वासवदत्ता सारे रहस्य को जान कर क्रोधित हो उठती है। चतुर्थ अंक में प्रियदर्शिका (आरण्यका) रानी वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाकर कारागार में डाल दी जाती है। इसी बीच रानी की माता का एक पत्र प्राप्त होता है कि उसके मौसा दृढ़वर्मा कलिंग-नरेश के यहाँ बन्दी हैं। रानी दुःखित हो जाती है, पर राजा उसी समय आकर उसकी चिन्ता दूर कर देता है कि उसने कलिंग को नष्ट कर दृढ़वर्मा को छुड़ाने के लिए अपनी सेना भेज दी है। इसी बीच विजयसेन कलिंग को परास्त कर दृढ़वर्मा के कंचुकी के साथ प्रवेश करता है और कंचुकी राजा को बधाई देता है। वह राज-कुमारी प्रियदर्शिका को न पाये जाने पर दुःख प्रकट करता है। तत्क्षण यह सूचना प्राप्त होती है कि आरण्यका ने विषपान कर लिया है। वह शीघ्र ही रानी द्वारा राजा के पास मँगवायी जाती है क्योंकि वह मन्त्रोपचार से विष का प्रभाव दूर कर देते है। मृतप्राय आरण्यका के उपस्थित होने पर कंचुकी उसे पहचान कर अपने स्वामी की पुत्री घोषित करता है। मन्त्रोपचार से वह स्वस्थ हो जाती है तथा रानी वासवदत्ता प्रसन्न होकर उसका हाथ राजा के हाथ मे दे देती है। भरतवाक्य के पश्चात् नाटिका की समाप्ति हो जाती है। इस नाटिका मे शृंगाररस की प्रधानता है और इसका नायक उदयन धीरललित है।

बाणभट्ट—महाकवि बाणभट्ट संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कथाकार एवं संस्कृत गद्य के सार्वभौम सम्राट् हैं। सुबन्धु द्वारा प्रवर्तित कृत्रिम गद्यशैली का प्रौढ एवं स्निग्ध रूप इनकी रचना मे प्राप्त होता है। संस्कृत के सभी साहित्यकारों मे एकमात्र बाण ही ऐसे कवि है, जिनके जीवन के सम्बन्ध मे पर्याप्त रूप से प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है। इन्होंने 'हर्षचरित' की प्रस्तावना एवं 'कादम्बरी' के प्रारम्भ में अपना परिचय दिया है। इनके पूर्वज सोननद के निकटस्थ प्रीतिकूट नामक नगर के निवासी थे। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह स्थान बिहार प्रान्त के आरा जिले मे 'पियरो' नामक ग्राम है तो कुछ कुछ विद्वान् गया जिले के 'देव' नामक स्थान के निकट पिटो नामक ग्राम को मानते हैं। बाण का कुल विद्वता एवं पाण्डित्य के लिये विख्यात था। ये वात्स्यायनगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके प्राचीन पूर्वज का नाम कुबेर था, जो प्रसिद्ध कर्मकाण्डी एवं वेद के विद्वान् थे। इनके यहाँ छात्र यजुर्वेद तथा सामवेद का पाठ किया करते थे। कुबेर के चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था और अर्थपति के ग्यारह पुत्र थे जिनमें चित्रभानु के पुत्र बाणभट्ट थे। इनकी माता का नाम राजदेवी था। बाल्यावस्था मे ही इनकी माता का देहान्त हो चुका था और पिता द्वारा इनका पालन-पोषण हुआ। चौदह वर्ष की उम्र मे इनके पिता की मृत्यु हुई और योग्य अभिभावक के संरक्षण के अभाव में ये अनेक प्रकार की शैशवोचित चपलताओं मे फँस गए और देशाटन करने के लिए निकले। इन्होंने अनेक गुरुकुलों मे विद्याध्ययन किया एवं कई राज-कुलों को भी देखा। विद्वत्ता के प्रभाव से इन्हे महाराज हर्षवर्धन की सभा में स्थान

मिला। कुछ दिनों तक वहाँ रहकर ये अपनी जन्मभूमि में आये और इन्होंने लोगों के आग्रह पर 'हर्षचरित' की रचना कर महाराज हर्षवर्धन की जीवन-गाथा सुनाई। 'हर्षचरित' की रचना करने के बाद इन्होंने अपने महान् ग्रन्थ 'कादम्बरी' का प्रणयन किया किन्तु इनके जीवनकाल मे यह ग्रन्थ पूर्ण न हो सका। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र ने 'कादम्बरी' के उत्तर भाग को पूरा किया और पिता की शैली मे ही ग्रन्थ की रचना की। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि कई स्थलों मे बाण-तनय ने अपने पिता से भी अधिक प्रौढ़ता प्रदर्शित की है। बाण की सन्तति के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का उल्लेख नही है। धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' में बाण-तनय पुलिंध्र का वर्णन है जिसके आधार पर विद्वानो ने इसका नाम पुलिनभट्ट निश्चित किया है। केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्। किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पलिन्ध्रकृतसन्निधिः॥

'कादम्बरी के उत्तर भाग मे बाणतनय ने पुस्तक-रचना के सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त किया है। इसने बताया है कि पिता के स्वर्गवासी होने पर उनका कथा-प्रबन्ध अपूर्ण रह गया जिससे सहृदय अत्यन्त दुःखित हुए। सज्जनो के दुःख को देखकर मैंने इसका लेखन प्रारम्भ किया है, कवित्व के दर्प से नहीं। पिता जी के प्रभाव से ही मैं उनकी तरफ से लिख सका हूँ। 'कादम्बरी' का स्वाद लेकर तो मैं बिलकुल मतवाला हो गया हूँ। याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः। दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एष च मया न कवित्व-दर्पात्॥ गद्ये कृतेऽपि गुरुणा तु तदान्तराणि यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः। + + + कादम्बरीरसभरेण समस्त एवं मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्। भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः॥ बाणकृत प्रसिद्ध तीन ग्रन्थ हैं— 'हर्षचरित', 'कादम्बरी' एवं 'चण्डीशतक'। 'हर्षचरित' मे आठ उच्छ्वास हैं और इसमे महाराज हर्षवर्धन की जीवन-गाथा वर्णित है। यह संस्कृत की सर्वाधिक प्राचीन आख्यायिका है [दे० हर्षचरित]। कादम्बरी की कथा काल्पनिक है और शास्त्रीय दृष्टि से इसे कथा कहा जाता है [दे० कादम्बरी]। 'चण्डीशतक' में कवि ने स्रग्धरा छन्द मे भगवती दुर्गा की स्तुति एक सौ पदों में लिखी है। इनकी अन्य दो कृतियाँ भी प्रसिद्ध है—'पार्वती-परिणय' और 'मुकुटताडितक' पर विद्वान् इन्हें किसी अन्य बाणभट्ट नामधारी लेखक की रचना मानते हैं। बाणभट्ट के सम्बन्ध में अनेक कवियो की प्रशस्तियाँ उपलब्ध होती है, उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि। प्रागल्भ्यमधिक-माप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥ आर्यासप्तशती ३७। (२) बाणस्य हर्षचरिते निशिता-मुदीक्ष्य शक्ति न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति। मान्द्यं न कस्य च कवेरिह कालिदास-वाचां रसेन रसितस्य भवत्यधृष्यम्॥ (३) वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दमर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे। रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि॥ उदय-सुन्दरी–सोड्ढल। (४) कादम्बरीसहोदर्या सुधया वै बुधे हृदि। हर्षाख्यायिकयाऽख्या-

यि बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥ तिलकमंजरी—२७। (५) सहर्षरचिता शश्वद्-धृतकादम्बरीस्यदा। बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा चरति क्षितौ॥ राजशेखर सू० मु० ४।६५। (६) बाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः। भवेत् (प्रायः) कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥ राजशेखर सू० मु० ४।६७। (७) दण्डिन्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पता मनः। प्रविष्टे त्वान्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते॥ हरिहर, सुमा० ११। (८) युक्तं कादम्बरी श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः। बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः॥ सोमेश्वर, की० कौ० १।१५। (९) उच्छ्वासोऽपि न निर्याति बाणे हृदयवर्तिनि। किं पुनर्विकटाटोप-पदबन्धा सरस्वती॥ सु० र० को० ५०।२३ (१०) यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः। गत्या गत्यामियं देवी विचित्रा हि सरस्वती॥ सरस्वतीकण्ठाभरण—२।२०। बाणभट्ट का समय महाराज हर्षवर्धन का शासन-काल—६०७ ई० से ६४८ ई० तक है।

बाणभट्ट अत्यन्त प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। इन्होने 'कादम्बरी' की रचना कर संस्कृत कथा-साहित्य मे युग-प्रवर्त्तन किया है। बाण की वर्णन-शैली अत्यन्त निपुण है और ये कृत्रिम आलंकारिक शैली के पक्षधर है। 'हर्षचरित' की प्रस्तावना मे इनकी शैली सम्बन्धी मान्यता का पता चलता है। इनके पूर्व वक्रोक्ति-रहित स्वभावोक्तिपूर्ण रचनाएँ प्रचलित थीं जिसे इन्होने हेय दृष्टि से देखा है और उन्हे 'असंख्य-श्वान' की संज्ञा दी है। इनके अनुसार आदर्श गद्य-शैली मे 'नूतन एव चमत्कारपूर्ण अर्थ, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्पष्टरूप से प्रतीत होने वाला रस तथा अक्षरो की दृढबन्धता' आवश्यक है। नवाऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः। विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥ ७ हर्षचरित प्रस्तावना। बाण ने अपने कथा-काव्य मे इन तत्वो का पूर्णरूप से पालन किया है। इनमे चित्रग्राहिणी बुद्धि एवं नवीन उद्भावना की अपूर्व क्षमता थी। इन्होने चित्र की भाँति प्रत्येक विषय का वर्णन किया है। अपनी सूक्ष्मदर्शिका शक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गए चित्र के प्रत्येक दृश्य का सागोंपाग चित्रण करने मे बाण अपनी सानी नहीं रखते। इनके वर्णन संस्कृत काव्य की निधि हैं। धनपाल ने इन्हें अमृत उत्पन्न करने वाला गम्भीर समुद्र कहा है। "बाण वर्णनात्मक शैली के धनी है। ' '''''बाण के वर्णन ही उनके काव्य की निधि है। इन वर्णनो से उकताना ठीक नहीं। इनके भीतर पैठकर युक्ति से इनका रस लेना चाहिए। जब एकबार पाठक इन वर्णनो को अणुवीक्षण की युक्ति से देखता है तो उनमे उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है, एवं बाण की अक्षरा-डम्बरपूर्ण शैली के भीतर छिपे हुए रसवाही सोते तक पहुँच जाता है। उस समय यह इच्छा होती है कि कवि ने अपने वर्णन के द्वारा चित्रपट पर जो चित्र लिखा है उसकी प्रत्येक रेखा सार्थक है और चित्र का समग्र रूप प्रस्तुत करने मे सहायक है। जिस प्रकार रङ्गवल्ली की विभिन्न आकृतियों से भूमि सजाई जाती है उसी प्रकार बाण ने अपने काव्य की भूमि का मण्डन करने के लिए अनेक वर्णनों का विधान किया है। महाप्रतिभाशाली इस लेखक ने अपनी विशेष प्रकार की श्लेषमयी वर्ण-

नात्मक शैली के द्वारा जो हमें कुछ दिया है वह पर्याप्त है और उसके लिए हमें उनका कृतज्ञ रहना चाहिए।" डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन (प्रथम संस्करण) पृ० २।

बाण की गद्यशैली तीन प्रकार की है—दीर्घसमासवती, अल्पसमासवती एवं समासरहित। इन्हें क्रमशः उत्कलिका, चूर्णक एवं आविद्ध कहा गया है। बड़े-बड़े वर्णनों में कवि ने उत्कलिका का प्रयोग किया है। बाण किसी विषय का वर्णन करते समय विभिन्न अलंकारों का सहारा लेकर उसे सौन्दर्यपूर्ण बनाते हैं। इन्होंने विशेष रूप से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधा एवं परिसंख्या अलंकार का प्रयोग किया है। परिसंख्या अलंकार तो इनका अपना अलंकार है। पाश्चात्य पण्डित बेवर ने बाण की शैली की आलोचना करते हुए इसे उस सघन भारतीय अरण्याणी की तरह कहा था जिसमें पद-पद पर अप्रचलित क्लिष्ट शब्द, श्लिष्टपद-योजना एवं समासान्त पदों के लम्बे-लम्बे वाक्य विचित्र एव भयंकर जन्तु का रूप धारण कर भय उत्पन्न कर देते हैं। पर सर्वत्र ऐसी बात नही है। बाण ने कही भी औचित्य का त्याग नही किया है। विषय एवं स्थिति के अनुसार इन्होंने छोटे-छोटे वाक्यो एवं संवादों का भी प्रयोग किया है। इनके गद्य मे काव्य की गति विद्यमान है तथा प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण की शक्ति भी है। हिमालय, अच्छोद सरोवर, महाश्वेता का निवास वर्णन एवं कई स्थानो पर संध्या-वर्णन मे (हर्षचरित एवं कादम्बरी) इनकी चित्रणकला एवं प्रकृति-प्रेम के दर्शन होते है। बाण अपनी वर्णन-चातुरी के लिए प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध रहे है और आचार्यों ने इनके इस गुण पर मुग्ध होकर–'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'—तक कह दिया है। इनके आलोचकों ने शैली की क्लिष्टता, आलंकारिक प्रेम, दीर्घवाक्यता समूहीकृत विशेषणो से समन्वित वाक्यो, श्लिष्ट प्रयोग एवं असाधारण तथा अप्रचलित पदावली के प्रयोग की निन्दा की है पर तत्कालीन साहित्य-रूप एवं लेखक की मान्यता को देखते हुए इन दोषों पर विचार करना बाण के साथ अन्याय करना है। बाण अपनी रसप्रवणता कलात्मक सौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यंजना प्रणाली तथा सानुप्रास समासान्त पदावली के प्रयोग के लिए अमर रहेंगे।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी)। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ६. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

बाणासुरविजय चम्पू—इस चम्पू के प्रणेता वेंकट या वेंकटार्य कवि हैं। इनका निवासस्थान सुरसिद्धगिरि नगर में था और ये श्रीनिवासाचार्य के पुत्र थे। इस चम्पू में छह उल्लास हैं और 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर उषा-अनिरुद्ध की कथा वर्णित है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण या अट्ठारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण

डी० सी० मद्रास १२३१९ में प्राप्त होता है। मंगलाचरण का श्लोक इस प्रकार है—
श्रीलक्ष्मीकान्तनाभीकमलमधुझरीलोललोलम्बमाला झंकारस्सम्पदोघं दिशतु विधिवत्मुख्यु-
दीर्णागमानाम् । तादात्म्यं ख्यापयन् यस्स्वरनिकरमयः पादपद्मानतानामिन्द्रेशानादिदेव-
प्रवरपरिषदा कामितार्थामरद्रुः ॥ १

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ।

बापूदेव शास्त्री—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य । ये पूना के निवासी थे । इनका जन्म १८२१ ई० में हुआ था । इनके पिता का नाम सीताराम था । इन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की है—'त्रिकोणमिति', 'बीजगणित' एवं 'अव्यक्तगणित' । भारतीय ज्योतिष एवं पाश्चात्य गणित पर इनका समान अधिकार था और ये दोनों के ही मर्मज्ञ माने जाते थे । ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलिज में अध्यापक थे । इनका निधन १८९० ई० में हुआ ।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ।

बालचरित—यह महाकवि भास द्वारा रचित नाटक है । इसमें पाँच अंक है तथा 'हरिवंशपुराण' के आधार पर श्रीकृष्ण के बालचरित का वर्णन है । कृष्ण-जन्म से लेकर कंस-वध तक की घटना दी गयी है । प्रथम अंक में कृष्ण-जन्म का वर्णन एवं वासुदेव द्वारा उन्हें गोकुल (नन्द के यहाँ) पहुँचाने का उल्लेख है । प्रारम्भ में नारदजी रंगमंच पर आकर श्रीकृष्ण का दर्शन करते है । द्वितीय अंक में कंस द्वारा यशोदा की कन्या को पत्थर पर पटकने तथा तृतीय में पूतना, केशी, शकट तथा धेनुक आदि दानवों के वध का वर्णन है । चतुर्थ अंक में कृष्ण द्वारा कालियनाग को यमुना से भगाने तथा पंचम में कृष्ण-बलराम दोनों भाइयों द्वारा चाणूर, मुष्टिक से मल्लयुद्ध होने एवं दोनों भाइयों द्वारा उनके मारने का वर्णन है । इसी अंक में कंस का वध वर्णित है । इस नाटक में वीररस की प्रधानता है और अरिष्ट, चाणूर एवं कंस का रंगमंच पर ही वध दिखलाया गया है । यह विषय नाट्यशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार निषिद्ध है । इसमें कवि ने श्रीकृष्ण के जन्म के समय कई अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया है ।

बालरामायण—यह राजशेखर कृत दस अंकों का महानाटक है । इस नाटक की रचना कवि ने निर्भयराज के लिए की थी । रामकथा के आधार पर इसकी रचना हुई है तथा सीता-स्वयंवर से लेकर राम के अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा का वर्णन है । प्रथम अंक का नाम 'प्रतिज्ञापौलस्त्य' है । इस अंक में रावण का सीता-स्वयंवर में जनकपुर जाने तथा सीता के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा का वर्णन है । वह महाराज जनक से सीता को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता है किन्तु जनक द्वारा इस प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने के पश्चात् क्रोधाभिभूत होकर चला जाता है । द्वितीय अंक को 'रामरावणीय' कहा गया है । इसमें रावण द्वारा अपने सेवक मायामय को परशुराम के पास भेजने का वर्णन है । रावण का प्रस्ताव सुनते ही परशुराम क्रोध से आगबबूला होकर उस पर बरस पड़ते हैं और उससे युद्ध करने को उतारू हो जाते हैं;

किन्तु किसी प्रकार युद्ध टल जाता है। तृतीय अंक को 'लङ्केश्वर अंक' की अभिधा प्राप्त है। इस अंक में सीता को प्राप्त नहीं करने के कारण दुःखित रावण को प्रसन्न करने के लिए सीता-स्वयंवर की घटना को रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है। जब राम द्वारा धनुषभंग एवं सीता के वरण का दृश्य दिखाया जाता है तो उसे देखकर रावण क्रोधित हो उठता है; पर वास्तविक स्थिति को जानकर उसका क्रोध शमित हो जाता है। चतुर्थ अंक को 'भार्गव भंग' अंक कहा गया है। इसमे राम-परशुराम के संघर्ष का वर्णन है। देवराज इन्द्र मातलि के साथ परशुराम-राम-संघर्ष को आकाश से देखते हैं और राम की विजय पर प्रसन्न होते हैं। पंचम अंक का नाम 'उन्मत्त-दशानन' अंक है। इस अंक मे सीता के वियोग में रावण की व्यथा वर्णित है। वह सीता की काष्ठ-प्रतिमा बनाकर मन बहलाते हुए दिखाया गया है। षष्ठ अंक 'निर्दोष दशरथ' के नाम से अभिहित है। इस अंक मे शूर्पणखा तथा मायामय अयोध्या को कैकेयी और दशरथ का रूप धारण करते हुए दिखाया गया है। इन्हीं के द्वारा राम के वन-गमन की घटना प्रदर्शित की गयी है। रत्नशिखण्ड द्वारा राजा दशरथ को राम बनवास की घटना का ज्ञान होता है। सप्तम अंक 'असमपराक्रम' के रूप में कथित है। इसमे राम और समुद्र के संवाद का वर्णन है। समुद्र के किनारे बैठे हुए राम के पास रावण द्वारा निर्वासित उसका भाई विभीषण आकर मिलता है। तत्पश्चात् समुद्र पर सेतु बाँधा जाता है और राम लंका मे प्रवेश करते है। अष्टम अंक को 'वीर-विलास' कहा गया है। इस अंक मे राम-रावण का घमासान युद्ध वर्णित है। मेघनाद तथा कुम्भकर्ण मारे जाते है और रावण, माया के द्वारा, राम की सेना के समक्ष सीता का कटा हुआ मस्तक फेंक देता है। पर वह सफल नही हो पाता। नवम अंक में रावण का वध वर्णित है। अन्तिम अंक का नाम 'सानन्द रघुनाथ' है। इसमें सीता की अग्निपरीक्षा एवं विजयी राम का पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या आगमन का वर्णन है। सकल अयोध्यावासी राम का का स्वागत करते है और रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया जाता है।

इस नाटक मे कवि ने कथानक का अनावश्यक विस्तार किया है। राम से सम्बद्ध घटनाओ की अपेक्षा रावण से सम्बद्ध घटनाएँ अधिक हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे स्रग्धरा एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दो का अधिक प्रयोग है। यह ग्रन्थ नाट्यकला की दृष्टि से सफल नहीं है पर काव्यत्व के विचार से महत्त्वपूर्ण है। कार्यान्विति की योजना अत्यन्त सफलता के साथ की गयी है किन्तु कथानक मे गत्यात्मकता का अभाव है।

बालचन्द्रसूरी—(१३ शतक) इन्होने 'वसन्तविलास' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है। इसमे राजा वस्तुपाल का जीवनचरित वर्णित है, जिसे कवि ने उनके पुत्र (वस्तुपाल) के मनोरंजनार्थ लिखा था। प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह काव्य वस्तुपाल को इतना अधिक रुचिकर हुआ कि उन्होंने इस पर कवि को एक सहस्र सुवर्ण मुद्राएँ दीं तथा उन्हें आचार्य पद पर अभिषिक्त किया।

बाष्कलमन्त्रोपनिषद्—यह नव-प्राप्त उपनिषद् है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि

आड्यार पुस्तकालय मे उपलब्ध है। इसे 'ऋग्वेद' को बाष्कल शाखा का अंश माना गया है जो सम्प्रति अप्राप्य है। इसमें कुल २५ मन्त्र हैं और आत्म-तत्त्व का प्रतिपादन ही इसका प्रधान लक्ष्य है।

आधारग्रंथ—वैदिक संशोधन मण्डल, पूना से अष्टादश उपनिषद् के अन्तर्गत प्रकाशित।

बिल्हण—ये काश्मीरी कवि हैं जिन्होने 'विक्रमांकदेवचरित' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य को रचना की है। इसमें १८ सर्ग है तथा कवि के आश्रयदाता विक्रमादित्य के पूर्वजो के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन है। चालुक्यवंशीय राजा विक्रमादित्य षष्ठ दक्षिण के नृपति थे जिनका समय १०७६–११२७ ई० है। ऐतिहासिक घटनाओं के निदर्शन में बिल्हण अत्यन्त जागरूक रहे है। ये वैदर्भी मार्ग के कवि है। 'विक्रमांक-देवचरित' मे वीर रस का प्राधान्य है, पर शृंगार और करुण रस का भी सुन्दर रूप उपस्थित किया गया है। इसके प्रारम्भिक सात सर्गों मे मुख्यतः ऐतिहासिक सामग्री भरी पडी है। आठवे से ग्यारहवे सर्ग तक राजकुमारी चन्दल देवी का नायक से परिणय, प्रणय-प्रसग, वसन्त ऋतु का शृङ्गारो चित्र, नायिका का रूप-सौन्दर्य तथा काम-केलि आदि का वर्णन है। बारह, तेरह तथा सोलह सर्ग मे जलक्रीडा, मृगया आदि का वर्णन तथा चौदहवें एवं पंद्रहवे सर्ग मे कौटुम्बिक कलह का उल्लेख है। सत्रहवे सर्ग मे चोली की पराजय तथा १८वे मे कविवंशवृत्त एवं भारत-यात्रा का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। बिल्हण ने राजाओ के यश को फैलाने एवं अपकीर्ति के प्रसारण का कारण कवियो को माना है—

> लङ्कापतेः संकुचित यशो यत् यत् कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्र.।
> स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीया कवयः क्षितीन्द्रैः॥

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन जी० बूलर द्वारा बी० एस० एस० १४, १८७५ ई० मे हुआ। हिन्दी अनुवाद के साथ चौखम्बा विद्याभावन से प्रकाशित।

बुद्धघोष—ये प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य है जिन्होने १० सर्गों में 'पद्यचूडामणि' नामक महाकाव्य की रचना की है। ये पालिलेखकों तथा बौद्धधर्म के व्याख्याकारो मे महनीय स्थान के अधिकारी है। इन्होने 'विसुद्धिमग्ग' नामक बौद्धधर्मविषयक ग्रन्थ का प्रणयन किया है तथा 'महावंश' और 'अट्ठकथाये' भी इनके नाम पर प्रचलित हैं। ये ब्राह्मण से बौद्ध हुए थे। इनका समय ४०० ई० के आसपास है। इनके एक ग्रन्थ का चीनी अनुवाद ४८८ ई० मे हुआ था।

बुद्धचरित—इस महाकाव्य के रचयिता बौद्ध कवि अश्वघोष है। सम्प्रति मूल ग्रन्थ १४ सर्गों तक ही उपलब्ध है किन्तु इसम २८ सर्ग थे जो चीनी एवं तिब्बती अनुवादो मे प्राप्त होते है। इसका प्रथम सर्ग अधूरा ही मिला है तथा १४ वें सर्ग के ३१ श्लोक तक के ही अंश अश्वघोष कृत माने जाते है। प्रथम सर्ग मे राजा शुद्धोदन एवं उनकी पत्नी का वर्णन है। मायादेवी (राजा की पत्नी) ने एक रात को सपना देखा कि एक श्वेत गजराज उनके शरीर में

प्रवेश कर रहा है। लुम्बिनी के वन में सिद्धार्थ का जन्म होता है। उत्पन्न बालक ने यह भविष्यवाणी की कि मैं 'जगत् के हित के लिए तथा ज्ञान अर्जन के लिए जन्मा हूँ।' द्वितीय सर्ग—कुमार की मनोवृत्ति को देखकर राजा ने अपने राज्य को अत्यन्त सुखकर बनाकर उनके मन को (सिद्धार्थ को) विलासिता की ओर लगाना चाहा तथा वन में चले जाने के भय से उन्हें सुसज्जित महल में रखा। तृतीय सर्ग—उद्यान में एक वृद्ध, रोगी एवं मुर्दे को देखकर कुमार के मन में वैराग्य की उत्पत्ति होती है। इसमें उनकी वैराग्य-भावना का वर्णन है [दे० अश्वघोष]। चतुर्थ सर्ग—नगर एवं उद्यान में पहुँच कर सुन्दरी स्त्रियों द्वारा कुमार को मोहने के प्रयत्न पर कुमार का उनसे प्रभावित न होना। पंचम सर्ग—वनभूमि देखने के लिए कुमार का गमन तथा वहाँ उन्हे एक श्रमण का मिलना। नगर मे प्रवेश करने पर कुमार का गृह-त्याग का संकल्प एवं महाभिनिष्क्रमण। षष्ठ सर्ग—कुमार द्वारा छन्दक को लौटाया जाना। सप्तम सर्ग—गौतम का तपोवन मे प्रवेश तथा कठोर तपस्या में संलग्न होना। अष्टम सर्ग—कंथक नामक घोडे पर छन्दक का कपिलवस्तु लौटना, कपिलवस्तुवासियो तथा यशोधरा का विलाप। नवम सर्ग—राजा द्वारा कुमार का अन्वेषण तथा कुमार का नगर न लौटना। दशम सर्ग—बिम्बसार का कुमार को कपिलवस्तु लौटने का आग्रह करना। एकादश सर्ग—राजकुमार का राज्य एवं सम्पत्ति की निन्दा करना एवं नगर में जाने से इन्कार करना। द्वादश सर्ग—राजकुमार का अराड मुनि के आश्रम मे जाना तथा अराड का अपनी विचारधारा का प्रतिपादन करना जिसे मानकर गौतम के मन मे असंतोष होना। तत्पश्चात् कठोर तपस्या मे लग जाना तथा नन्दबाला से पायस की प्राप्ति। त्रयोदश सर्ग—मार (काम) का बुद्ध की तपस्या में बाधा डालना तथा उसे पराजित होना। चतुर्दश सर्ग मे गौतम को बुद्धत्व की प्राप्ति। शेष सर्गों में धर्मचक्र प्रवर्त्तन तथा बुद्ध का अनेक शिष्यो को दीक्षित करना, पिता-पुत्र का समागम, बुद्ध के सिद्धान्तो एवं शिक्षा का वर्णन तथा निर्वाण की प्रशंसा की गयी है। बुद्धचरित मे काव्य के माध्यम से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया गया है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से प्रारम्भिक पाँच सर्ग, अष्टम एवं त्रयोदश सर्ग के कुछ अंश अत्यन्त सुन्दर है।

इसका हिन्दी अनुवाद सूर्यनारायण चौधरी ने किया है।

बूलर जे० जी०—जर्मनी के प्राच्यविद्या-विशारद। इनका जन्म जर्मनी में १९ जुलाई १८३७ को हुआ था। इनके पिता एक साधारण पादरी थे जो हनोवर राज्य के अन्तर्गत बोरलेट नामक ग्राम के निवासी थे। पादरी की सन्तान होने के कारण शैशवकाल से ही ये धार्मिक रुचि के व्यक्ति हुए। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये गाटिंजन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए जहाँ उन्होंने संस्कृत के अनूदित ग्रन्थों का अध्ययन किया। इन्होने १८५८ ई० में डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की और भारतीय विद्या के अध्ययन में निरत हुए। आर्थिक संकट रहने पर भी अपनी ज्ञानपिपासा के उपशमन के लिए इन्होंने बड़ी लगन के साथ भारतीय

हस्तलिखित पोथियों का खोजकार्य प्रारम्भ किया। इस कार्य के लिए वे पेरिस, लंदन एवं आक्सफोर्ड के इण्डिया आफिस स्थित विशाल ग्रन्थागारों में रखी गयी सामग्रियों का आलोडन करने के लिए गये। संयोगवश, इन्हे लंदन मे मैक्समूलर का साक्षात्कार हुआ और इन्हे इस कार्य मे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। लन्दन में ये विडसर के राजकीय पुस्तकालय मे सह-पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे नियुक्त हुए तथा अन्ततः गाटिजन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे सह-पुस्तकाध्यक्ष के रूप में इनकी नियुक्ति हुई। भारतीय विद्या के अध्ययन की उत्कट अभिलाषा के कारण ये भारत आए और मैक्समूलर की संस्तुति के कारण बम्बई के तत्कालीन शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष हार्वड महोदय ने इन्हे बम्बई शिक्षा-विभाग मे स्थान दिया, जहाँ ये १८६३ ई० से १८८० तक रहे। विश्वविद्यालय का जीवन समाप्त करने के बाद इन्होंने लेखन-कार्य मे अपने को लगाया और 'ओरिएण्टल ऐड ऑवसीडेंट' नामक पत्रिका मे भाषा-विज्ञान तथा वैदिकशोध-विषयक निबन्ध लिखने लगे। इन्होंने 'बम्बई संस्कृत-सीरीज' की स्थापना की और वहाँ से 'पंचतन्त्र,' 'दशकुमारचरित' तथा 'विक्रमांकदेवचरित' का सम्पादन कर उन्हे प्रकाशित कराया। इन्होने १८६७ ई० मे सर रेमाडवेस्ट नामक विद्वान् के सहयोग से 'डाइजेस्ट आफ हिन्दू ला' नामक पुस्तक का प्रणयन किया। इन्होने संस्कृत हस्तलिखित पोथियो की खोज का कार्य अक्षुण्ण रखा और १८६८ ई० मे एतदर्थ शासन की ओर से बंगाल, बम्बई और मद्रास मे संस्थान खुलवाया। डॉ० कीलहार्न, बूलर, पीटर्सन, भाण्डारकर एवं बर्नेल प्रभृति विद्वान भी इस कार्य मे लगे। बूलर को बम्बई शाखा का अध्यक्ष बनाया गया। बूलर ने लगभग २३०० पोथियो को खोजकर उनका उद्धार किया। इनमें से कुछ पोथियाँ एलिफिंसटन कालेज के पुस्तकालय मे रखी गयी, कुछ बलिन विश्वविद्यालय मे गयी तथा कुछ को इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लदन मे रखा गया। इन्होने १८८७ ई० मे लगभग ५०० जैन ग्रन्थों के आधार पर जर्मन भाषा मे जैनधर्म-विपयक एक ग्रन्थ की रचना की जिसे बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई। अनेक वर्षों तक अनुसंधान कार्य मे निरत रहने के कारण इनका स्वास्थ्य गिरने लगा, फलतः ये जलवायु-सेवन के लिए वायना (जर्मनी) चले गए। वहाँ वायना विश्वविद्यालय मे भारतीय साहित्य एवं तत्त्वज्ञान के अध्यापन का कार्य इन्हे मिला। वहाँ इन्होने १८८६ ई० मे 'ओरिऐटल इस्टिट्यूट' की स्थापना की और 'ओरिऐटल जर्नल' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। इन्होंने तीस विद्वानो के सहयोग से 'एंन्साइक्लोपीडिया आफ इन्डो-आर्यन रिसर्च' का संपादन करना प्रारम्भ किया जिसके केवल नौ भाग प्रकाशित हो सके। अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण श्रीबूलर विश्वविश्रुत विद्वान् हो गए। एडिनबरा विश्वविद्यालय ने इन्हे डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया। ८ अप्रैल १८९८ ई० में कैंस्टैंस झील मे नौकाविहार करते हुए ये अचानक जल-समाधिस्थ हो गए। उस समय इनकी अवस्था ६१ वर्ष की थी।

ब्रह्मगुप्त—गणित-ज्योतिष के सुप्रसिद्ध आचार्य। इनका जन्म ५९८ ई० मे पंजाब के 'भिन्नमालका' स्थान में हुआ था। इन्होने '**ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त**' एवं '**खण्ड-खाद्यक**'

नामक ग्रन्थों की रचना की है। ये ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् एवं बीजगणित के प्रवर्त्तक माने जाते है। इनके दोनों ही ग्रन्थों के अनुवाद अरबी भाषा में हुए हैं। 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' को अरबी में 'असिन्द हिन्द' एवं 'खण्डखाद्यक' को 'अलकंन्द' कहा जाता है। आर्यभट्ट के पृथ्वी-चलन सिद्धान्त का खण्डन कर इन्होंने पृथ्वी को स्थिर कहा है। 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' में २४ अध्याय हैं और 'खण्डखाद्यक' मे १०। अपने ग्रन्थों में ब्रह्मगुप्त ने अनेक स्थलों पर आर्यभट्ट, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र प्रभृति आचार्यों के मत का खण्डन कर उन्हें त्याज्य माना है। इनके अनुसार इन आचार्यों की गणना-विधि से ग्रहों का स्पष्ट स्थान शुद्धरूप में नहीं आता। सर्वप्रथम इन्होंने ज्योतिष तथा गणित के विषयो को पृथक् कर उनका वर्णन अलग-अलग अध्यायों मे किया है तथा गणित-ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की है। आर्यभट्ट का निन्दक होते हुए भी इन्होने 'खण्डखाद्यक' के प्रथम आठ अध्यायों में उनके मत का अनुकरण किया है। इन्होंने ज्योतिष-विषयक तथ्यो के अतिरिक्त बीजगणित, अंकगणित एवं क्षेत्रमिति के संबंध में अनेक मौलिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं जिनका महत्व आज भी उसी रूप मे है। [ब्रह्म-स्फुट सिद्धान्त—मूल एवं लेखक कृत टीका के साथ काशी से प्रकाशित, १९०२—सम्पादक सुधाकर द्विवेदी। मूल तथा आमराजकृत संस्कृत टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित अंगरेजी अनु० पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता।]

आधारग्रन्थ—१ भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद।

बृहत्कथा—इसके रचयिता गुणाढ्य थे, जिन्होने पैशाची भाषा मे 'बड्डकहा' के नाम से इस ग्रन्थ की रचना की है; किन्तु इसका मूल रूप नष्ट हो चुका है। इसका उल्लेख सुबन्धु, दण्डी एवं बाणभट्ट ने किया है, जिसमे इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है। दशरूपक एवं उसकी टीका अवलोक मे भी बृहत्कथा के साक्ष्य है। त्रिविक्रमभट्ट ने अपने 'नलचम्पू' तथा सोमदेव ने 'यशस्तिलक' मे इसका उल्लेख किया है। कम्बोडिया के एक शिलालेख (८७५ ई०) मे गुणाढ्य के नाम का तथा प्राकृत भाषा के प्रति उसकी विरक्तता का उल्लेख किया गया है। इन सभी साक्ष्यो के आधार पर गुणाढ्य का समय ६०० ई० से पूर्व माना जा सकता है। गुणाढ्य के ग्रन्थ का संस्कृत अनुवाद बृहत्कथा के रूप मे उपलब्ध है। गुणाढ्य राजा हाल के दरबारी कवि थे। सम्प्रति बृहत्कथा के तीन संस्कृत अनुवाद प्राप्त होते हैं—क—बुधस्वामी कृत बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह—ये नेपाल निवासी थे। इनका समय ८ वीं ९ वीं शताब्दी है। ये बृहत्कथा के प्राचीनतम अनुवादक है। ख—बृहत्कथामंजरी—इसके लेखक क्षेमेन्द्र हैं। यह बृहत्कथा का सर्वाधिक प्रामाणिक अनुवाद है जिसकी श्लोक संख्या ७५०० सहस्र है। (इसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है, किताब महल, इलाहाबाद)। इसका समय ग्यारहवीं सदी है। ग—सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर'—सोमदेव काश्मीर नरेश अनन्त के समसामयिक थे। इन्होंने २४ सहस्र श्लोकों में बृहत्कथा का अनुवाद किया है। [इसका हिन्दी

अनुवाद राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से दो खण्डों में हो चुका है] सोमदेव की शैली सुन्दर, सरस तथा प्रवाहपूर्ण है।

बृहस्पतिस्मृति—इस ग्रन्थ के रचयिता बृहस्पति हैं जो प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ माने जाते है। 'मिताक्षरा' तथा अन्य भाष्यों मे बृहस्पति के लगभग ७०० श्लोक प्राप्त होते है जो व्यवहार-विषयक हैं। इनको कौटिल्य ने प्राचीन अर्थशास्त्री के रूप मे वर्णित किया है। 'महाभारत' के शान्तिपर्व मे (५९, ८०—८५) बृहस्पति को ब्रह्मा द्वारा रचित धर्म, अर्थ एवं काम-विषयक ग्रन्थो को तीन सहस्र अध्यायों में संक्षिप्त करने वाला कहा गया है। महाभारत के वनपर्व में 'बृहस्पतिनीति' का उल्लेख है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' मे बृहस्पति 'धर्मवक्ता' कहे गए है। 'बृहस्पतिस्मृति' अभी तक सम्पूर्ण रूप मे प्राप्त नही हुई है। डॉ० जॉली ने इनके ७११ श्लोको का प्रकाशन किया है। इसमे व्यवहार-विषयक सिद्धान्त तथा परिभाषाओ का वर्णन है। उपलब्ध 'बृहस्पतिस्मृति' पर 'मनुस्मृति' का प्रभाव दिखाई पडता है और अनेक स्थलो पर तो ये मनु के संक्षिप्त विवरणो के व्याख्याता सिद्ध होते है। अपरार्क एवं कात्यायन के ग्रन्थो मे बृहस्पति के उद्धरण प्राप्त होते है। डॉ० पी० वी० काणे के अनुसार बृहस्पति का समय दो सौ ई० से चार सौ ई० के बीच माना जा सकता है। स्मृतिचन्द्रिका, मिताक्षरा, पराशरमाधवीय, निर्णय-सिन्धु एवं संस्कारकौस्तुभ मे बृहस्पति के अनेक उद्धरण प्राप्त होते है। बृहस्पति के संबंध में अभी तक विद्वान् कुछ निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुच सके है। अपरार्क एवं हेमाद्रि ने वृद्धबृहस्पति एवं ज्योतिर्बृहस्पति का भी उल्लेख किया है। बृहस्पति प्रथम धर्मशास्त्रज्ञ है जिन्होंने धन तथा हिंसा के भेद को प्रकट किया है।

आधारग्रन्थ— धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड १) पी० वी० काणे (हिन्दी अनुवाद)।

बृहदारण्यक उपनिषद्—यह उपनिषद् 'शतपथब्राह्मण' की अन्तिम दो शाखाओ मे सम्बध है। इसमे तीन काण्ड एवं प्रत्येक में दो-दो अध्याय हैं। तीन काण्डों को क्रमशः मधुकाण्ड, याज्ञवल्क्यकाण्ड (मुनिकाण्ड) और खिलकाण्ड कहा जाता है। इसके प्रथम अध्याय मे मृत्यु द्वारा समस्त पदार्थों को ग्रस लिए जाने का, प्राणी की श्रेष्ठता एवं सृष्टि-निर्माण संबंधी सिद्धान्तो का वर्णन रोचक आख्यायिका के द्वारा किया गया है। द्वितीय अध्याय मे गार्ग्य एवं काशीनरेश अजातशत्रु के संवाद हैं तथा याज्ञवल्क द्वारा अपनी दो पत्नियों—मैत्रेयी एवं कात्यायनी—मे धन का विभाजन कर, वन जाने का वर्णन है। उन्होने मैत्रेयी के प्रति जो दिव्य दार्शनिक सन्देश दिये हैं, उनका वर्णन इसी अध्याय मे है। तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायो मे जनक तथा याज्ञवल्क की कथा है। तृतीय मे राजा जनक की सभा मे याज्ञवल्क द्वारा अनेक ब्रह्मज्ञानियों का परास्त होना तथा चतुर्थ अध्याय में महाराज जनक का याज्ञवल्क से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। पञ्चम अध्याय मे कात्यायनी एवं मैत्रेयी का आख्यान तथा नानाविध आध्यात्मिक विषयो का निरूपण है जैसे नीतिविषयक, सृष्टिसंबंधी तथा परलोकविषयक। षष्ठ अध्याय मे अनेक प्रकार की प्रतीकोपासना एवं पञ्चाग्नि-

विद्या का वर्णन है। इस उपनिषद् के मुख्य दार्शनिक याज्ञवल्क हैं और सर्वत्र उन्हीं की विचारधारा परिप्लावित हो रही है। यह ग्रन्थ गद्यात्मक है और इसमे आरण्यक तथा उपनिषद् दोनों ही अंश मिले हुए हैं।

इसमें संन्यास की प्रवृत्ति का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन तथा एषणात्रय (लोकैषणा, पुत्रैषणा एवं वित्तैषणा) का परित्याग, प्रव्रजन, (सन्यास) और भिक्षाचर्या का उल्लेख है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' मे अश्वमेध के रहस्य का विवेचन करते हुए उसे विश्वरूप बताया गया है। प्रथम अध्याय मे प्राण को आत्मा का प्रतीक मानकर आत्मा या ब्रह्म मे जगत् की सृष्टि कही गयी है और उसे ही समस्त प्राणियो का आधार माना गया है।

आधारग्रन्थ—बृहदारण्यक—गीता प्रेस गोरखपुर का संस्करण (हिन्दी अनुवाद सहित)।

बौधायन धर्मसूत्र—कृष्ण यजुर्वेद के आचार्य बौधायन द्वारा लिखित यह धर्मशास्त्र उनके कल्पसूत्र का अंश है। बौधायन गृह्यसूत्र मे इसका उल्लेख है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप मे उपलब्ध नही है। इसमे आठ अध्याय है तथा अधिकांश श्लोकबद्ध है। इसमे आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ के अनेक सूत्र अक्षरश. प्राप्त होते है। यह धर्मसूत्र 'गौतमधर्मसूत्र' से अर्वाचीन माना जाता है। इसका समय वि० पू० ५०० से २०० वर्ष है। इसमे वर्णित विषयो की सूची—धर्म के उपादानो का वर्णन, उत्तर और दक्षिण के विभिन्न आचार व्यवहार, प्रायश्चित्त. ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य की महत्ता, शारीरिक तथा मानसिक अशौच, वसीयत के नियम, यज्ञ के लिए पवित्रीकरण, मांस और भोजन का निषेधानिषेध, यज्ञ की महत्ता, यज्ञ-पात्र, पुरोहित, याज्ञिक एवं उसकी स्त्री, घी, अन्नदान, सोम तथा अग्नि के विषय मे नियम। राजा के कर्त्तव्य, पंच-महापातक एव उनके सम्बन्ध में दण्डविधान, पक्षियो के मारने का दण्ड, अष्ट विवाह, ब्रह्महत्या तथा अन्य पापकर्मों के लिए प्रायश्चित्त का विधान, ब्रह्मचर्य तोडने पर ब्रह्मचारी द्वारा सगोत्र कन्या से विवाह करने का नियम, छोटे-छोटे पाप, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रों का वर्णन, वसीयत का विभाजन, ज्येष्ठ पुत्र का भाग, औरस पुत्र के स्थान पर अन्य प्रति व्यक्ति, वसीयत के निषेध, पुरुष या स्त्री द्वारा व्यभिचार करने पर प्रायश्चित्त, नियोग-विधि, अग्निहोत्र आदि गृहस्थकर्म, सन्यास के नियम आदि। [गोविन्दस्वामी के भाष्य के साथ काशी संस्कृत सिरीज से प्रकाशित तथा आंग्लानुवाद सेक्रेट बुक्स ऑफ द ईस्ट भाग १४ मे]।

बौद्ध-दर्शन—यह भारत का प्रसिद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय है जो बौद्धमतवाद पर आश्रित है। भगवान् बुद्ध ने बौद्धधर्म का प्रवर्त्तन किया था। उनका समय ईसा पूर्व षष्ठ शताब्दी माना जाता है पर अनेक विद्वान इन्हें ईसा से १८०० वर्ष पूर्व मानते हैं। (श्री पी० एन० ओक रचित एतद्विषयक निबन्ध दैनिक आयावर्त्त १९।५।६८) बुद्ध (सिद्धार्थ) का जन्म कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के यहाँ हुआ था। उनकी माता का नाम मायादेवी एवं पत्नी का नाम यशोधरा था। बचपन से ही जरा-मरण के

दुःख को देखकर उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने वन में जाकर तपस्या की तथा सन्यास ग्रहण कर लिया। ज्ञान प्राप्त होने पर उपदेश देकर उन्होंने भिक्षुओं के संघ की स्थापना की तथा 'मागधी' भाषा मे अपने मत का प्रचार किया। ८० वर्ष की अवस्था मे उनकी मृत्यु कुशीनगर मे हुई तथा उनके अनुयायियों ने उनके मत का प्रचार देश-देशान्तर मे किया। गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके उपदेशों को तीन ग्रन्थों मे संकलित किया गया। उनके उपदेश मौखिक भाषा मे हुआ करते थे। ये उपदेश 'सुत्तपिटक', 'विनयपिटक' एवं 'अभिधम्मपिटक' नामक ग्रन्थो में संगृहीत हैं। प्रथम मे बुद्ध के उपदेश है तथा द्वितीय मे उनके आचार-सम्बन्धी विचारो का संग्रह है। तृतीय दार्शनिक विचार का ग्रन्थ है। इन्हें ही बौद्धधर्म मे त्रिपिटक की अभिधा प्राप्त है। पिटक का अर्थ पिटारी है। यहाँ इसका अभिप्राय नैतिक नियमों की पिटारी से है। कालान्तर मे बौद्धधर्म दो सम्प्रदायों मे बँट गया—हीनयान एवं महायान। हीनयान के मत का निरूपण पालि भाषा मे किया गया है, किन्तु महायान का सिद्धान्त संस्कृत मे निबद्ध है। इसके आचार एवं तत्त्वज्ञानविषयक ग्रन्थो मे नौ प्रधान है—'सद्धर्मपुण्डरीक' (हिन्दी अनुवाद के साथ राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित), 'प्रज्ञापारमितासूत्र', 'गण्डव्यूहसूत्र', 'दशभूमिकसूत्र', 'रत्नकूट', 'समाधिराजसूत्र', 'सुखावतीव्यूह', सुवर्णप्रभाससूत्र' तथा 'लंकावतारसूत्र'।

बुद्ध की शिक्षा—उनका उद्देश्य तर्क के सहारे अध्यात्मवाद की गुत्थियो का सुलझाना न होकर क्लेशबहुल प्रपंच से छुटकारा पाने के लिए आचार के मार्ग का ही निर्देश करना था। आचारशास्त्र के सम्बन्ध मे बुद्ध ने चार आर्यसत्यों का विवेचन किया है। संसार का जीवन दुःखपूर्ण है—सर्व दुःखम्, इन दुःखो के कारण विद्यमान हैं—दुःखसमुदयः, इन दुःखो से वास्तविक मुक्ति की प्राप्ति संभव है—दुःखनिरोधः, इस निरोध की प्राप्ति के लिए उचित मार्ग या उपाय है—दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद। इस प्रकार चार आर्यसत्य हुए—दुःख की विद्यमानता, उसके कारण की विद्यमानता, उसके निरोध की संभाव्यता एवं उसमे सफलता प्राप्त करने का मार्ग। प्रथम आर्यसत्य के अनुसार जीवन दुःखमय है और संसार मे मृत्यु का दुःख सबसे बडा दुःख है जिसमे बचना असम्भव है। सभी पदार्थ क्षणिक और नाशवान् है। सभी प्रकार के दुःखो से बचने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि संसार को ही छोड दिया जाय। इससे यह ज्ञात होता है कि बुद्ध ने संसार की सभी वस्तुओ के अन्धकारमय पक्ष पर ही अधिक बल दिया था। दुःख के कारण—भगवान् बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार दुःख के कारण को जानने का प्रयास किया है। इसमें बताया गया है कि संसार मे अकारण कोई भी वस्तु नहीं है प्रत्येक विषय का कारण होता है। अतः कारण के अभाव में दुःख की उत्पत्ति संभव ही नही है। संसार में दो ही दुःख प्रधान हैं—जरा और मरण। शरीरधारण करने के कारण ही जरा-मरण का दुःख भोगना पडता है, यदि शरीर-धारण न हो तो दोनो ही दुःखो से छुटकारा मिल जा सकता है। तृतीय आर्यसत्य है दुःखनिरोध या निर्वाण। इससे यह प्रकट होता है कि दुःख का कारण होता है और दुःख के कारण

का अन्त हो जाने पर दुःख का भी अन्त निश्चित है। दुःखनिरोध या दुःख के नाश के साधन को ही निर्वाण कहते हैं। इसकी प्राप्ति जीवन के रहते भी संभव है। मोक्ष ही निर्वाण है और जो व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है उसे अर्हत कहते हैं। निर्वाण के द्वारा पुनर्जन्म का अन्त हो जाता है और उसके साथ-ही-साथ दुःख से भी मुक्ति मिल जाती है। निर्वाण की अवस्था पूर्ण शान्ति, स्थिरता एवं तृष्णाविहीनता की है। चतुर्थ आर्यसत्य है दुःख-निरोध-मार्ग। जिन कारणों से दुःख उत्पन्न होता है यदि उन कारणों का ही अन्त कर दिया जाय तो उस उपाय या साधन को निर्वाण का मार्ग कहते है। बुद्ध ने ऐसे मार्गों की संख्या आठ मानी है। सम्यक् दृष्टि—वस्तु के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान देना। सम्यक् संकल्प—दृढ़ निश्चय पर अटल रहना। सम्यक् वाक्—सत्य-भाषण तथा मिथ्या का त्याग। सम्यक् कर्मान्त—अहिंसा, अस्तेय तथा इन्द्रियसंयम। सम्यक् आजीव—न्यायपूर्ण जीविका चलाना। सम्यक् व्यायाम—सद्कर्म करने के लिए सन्तत उद्योग करना। सम्यक् स्मृति—लोभ आदि चित्तसंताप से दूर रहना। सम्यक् समाधि—रागद्वेष से रहित चित्त की एकाग्रता।

बुद्ध के दार्शनिक विचार—बुद्ध के धर्मोपदेश तीन दार्शनिक विचारो पर अवलम्बित हैं—प्रतीत्यसमुत्पाद, कर्मक्षणिकवाद तथा आत्मा का अनस्तित्व। प्रतीत्यसमुत्पाद—प्रतीत्य का अर्थ है 'किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर समुत्पाद या अन्य वस्तु की उत्पत्ति'। इसे कारणवाद भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार बाह्य अथवा मानस संसार की जितनी भी घटनाएँ होती हैं, उनका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होता है। यह नियम स्वतः परिचालित होता है इसका संचालन किसी चेतनशक्ति के द्वारा नही होता। इसके अनुसार वस्तुएँ नित्य नहीं है, किन्तु उनके अस्तित्व पर सन्देह नहीं किया जा सकता। उनकी उत्पत्ति अन्य पदार्थों से होती है पर 'उनका पूर्ण विनाश नही होता और उनका कुछ कार्य या परिणाम अवश्य रह जाता है'। प्रतीत्यसमुत्पाद मध्यम मार्ग है जो न तो पूर्ण नित्यवाद है और न पूर्ण विनाशवाद। इस दृष्टि से शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद दोनो ही एकांगी हैं।

कर्म—प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वारा कर्मवाद की प्रतिष्ठा होती है। इसके अनुसार मनुष्य का वर्त्तमान जीवन पूर्व जीवन के ही कर्मों का परिणाम है तथा वर्त्तमान जीवन का भावी जीवन के साथ संबध लगा हुआ है। कर्मवाद यह बतलाता है कि वर्त्तमान जीवन मे जो हम कम करेंगे उसका फल भविष्य के जीवन मे प्राप्त होगा।

क्षणिकवाद—बुद्ध के मत से संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्त्तनशील एवं नाशवान् हैं। किसी कारण से ही कोई वस्तु उत्पन्न होती है, अतः कारण के नष्ट होने पर उस वस्तु का भी अन्त हो जाता है। बौद्धदर्शन का क्षणिकवाद अनित्यवाद का ही रूप है। क्षणिकवाद का अर्थ केवल यह नहीं है कि कोई वस्तु नित्य या शाश्वत नहीं है, किन्तु इसके अतिरिक्त इसका अर्थ यह भी है कि किसी भी वस्तु का अस्तित्व कुछ काल तक भी नही रहता, बल्कि एक क्षण के लिए ही रहता है।' अनात्मवाद—बौद्धदर्शन में आत्मा का अस्तित्व मान्य नहीं है, अतः इसे अनात्मवादी दर्शन कहते हैं। यहाँ पर

यह मत मान्य नहीं है कि आत्मा नाम की वस्तु शाश्वत एवं चिरस्थायी है और एक शरीर के नष्ट हो जाने पर वह अन्य शरीर में प्रवेश कर जाता है तथा शरीर का अन्त होने पर भी विद्यमान रहता है। बौद्धदर्शन में परिवर्तनशील दृष्ट धर्मों के अतिरिक्त किसी अदृष्ट द्रव्य की सत्ता मान्य नहीं है। बुद्ध ने बताया कि यदि आत्मा को नित्य समझ लिया जाय तो आसक्ति बढ़ेगी और दुःख उत्पन्न होगा। भ्रान्त व्यक्ति ही आत्मा को सत्य मानते हैं; फलतः उसकी ओर उनकी आसक्ति बढ़ती है।

ईश्वर—बौद्ध-दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है तथा ईश्वर की सत्ता मानने वाले सभी आधारों का खण्डन किया गया है। उन्होंने सोचा कि ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने पर संसार के अच्छे या बुरे कार्यों का कारण उसे मानना होगा और मनुष्य की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी। ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानने पर उसके द्वारा पापी भी महात्मा बन सकता है, ऐसी स्थिति में चरित्र-निर्माण एवं धार्मिक जीवन के प्रति मनुष्य उदासीन हो जायगा। अतः बुद्ध ने इसका विरोध किया और केवल इसी संसार की सत्ता स्वीकार की। ईश्वर और देवता की कल्पना से मनुष्य निष्क्रिय हो जायगा और सारा उत्तरदायित्व उन्हीं पर छोड़ देगा। उन्होंने कर्म-विधान को ही मान्यता दी जिसके समक्ष सभी दैवी-विधान फीके हो जायेंगे। कर्म के बिना संसार का कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। उन्होंने बिना किसी शासक देव के ही सृष्टि की उत्पत्ति संभव मानी है। जिस प्रकार बीज से अंकुर और अंकुर वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार सृष्टि का निर्माण स्वतः हो जाता है। उनके अनुसार संसार का कारण स्वयं संसार ही होता है। संसार दुःखमय है अतः इस अपूर्ण संसार का रचयिता एक पूर्ण स्रष्टा कैसे हो सकता है? बौद्ध-दर्शन के सम्प्रदाय—बौद्ध-दर्शन के चार सम्प्रदाय हैं वैभाषिक, माध्यमिक, सौत्रान्तिक एवं योगाचार।

वैभाषिक—इसमें संसार के बाह्य एवं आभ्यन्तर सभी पदार्थों को सत्य माना जाता है तथा इसका ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा होता है। इसे सर्वास्तिवाद भी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय का सर्वमान्य ग्रन्थ है कात्यायनीपुत्र कृत 'अभिधर्मज्ञानप्रस्थानशास्त्र'। अन्य ग्रन्थों में वसुबन्धु का 'अभिधर्मकोश' प्रसिद्ध है। सौत्रान्तिक—इस मत के अनुसार भी बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों ही पदार्थ सत्य हैं। इसमें बाह्य पदार्थ को प्रत्यक्षरूप से सत्य न मानकर अनुमान के द्वारा माना जाता है। बाह्य वस्तुओं का अनुमान करने के कारण ही इसे बाह्यानुमेयवाद कहते हैं। इस मत के चार प्रसिद्ध आचार्य हैं—कुमारलात, श्रीलात, वसुमित्र तथा यशोमित्र। योगाचार—इसे विज्ञानवाद भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक मैत्रेय हैं जिन्होंने 'मध्यान्तविभाग', 'अभिसमयालंकार', 'सूत्रालंकार,' 'महायान उत्तरतन्त्र' एवं धर्मधर्मताविभंग नामक ग्रन्थ लिखे। इस सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध आचार्य हैं—दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति एवं धर्मपाल। इस मत के अनुसार बाह्य पदार्थ असत्य हैं। बाह्य दिखाई पड़ने वाली वस्तु तो चित्त की प्रतीति मात्र है। इसमें चित्त या विज्ञान को एकमात्र सत्य माना गया है, इसलिए इसे विज्ञान-

वाद कहते हैं। माध्यमिक—शून्यवाद या माध्यमिक मत के प्रवर्त्तक नागार्जुन थे। इन्होंने 'माध्यमिकशास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस मत के अनुसार सारा संसार शून्य है। इसके बाह्य एवं आन्तर सभी विषय असत् हैं। धार्मिक मतभेद के कारण बौद्धधर्म दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया—हीनयान एवं महायान। हीनयान में बौद्धधर्म का प्राचीन रूप सुरक्षित है और यह अनीश्वरवादी है। यह ईश्वर के बदले कर्म एवं धर्म को महत्त्व देता है। इसकी रूपरेखा बुद्धदेव के उपदेशों के ही आधार पर निर्मित है। इसमें बुद्ध, धर्म एवं संघ तीनों पर बल दिया जाता है। इसके अनुसार मनुष्य अपने प्रयत्न से ही निर्वाण की प्राप्ति करता है। महायान—महायान हीनयान की अपेक्षा बड़ा पंथ है और इसमें अनेक व्यक्ति जीवन के लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। यह उदारपंथियों का सम्प्रदाय था, फलतः इस मत का प्रचार और विस्तार चीन, जापान, कोरिया आदि में हुआ। महायानियों ने परसेवा पर अधिक आग्रह प्रदर्शित किया है। उनके अनुसार मनुष्य का उद्देश्य केवल अपनी मुक्ति न होकर अन्य को भी मुक्ति दिलाने का प्रयत्न होना चाहिए।

आधारग्रन्थ—१ भारतीयदर्शन भाग १ - डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद)। २ भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ३ बौद्ध-दर्शन-मीमांसा—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ दर्शन दिग्दर्शन—महापण्डित राहुल साकृत्यायन। ५. बौद्धदर्शन—महापण्डित राहुल साकृत्यायन। ६—बौद्धसंस्कृति—महापण्डित राहुल साकृत्यायन। ७ बौद्धदर्शन एवं अन्य भारतीयदर्शन भाग १, २—डॉ० भरतसिंह उपाध्याय। ८ जातककालीन संस्कृति—पं मोहनलाल महतो 'वियोगी' ९. बौद्धधर्म और दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव। १० बौद्धधर्म का उद्भव और विकास—डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय। ११ महात्माबुद्ध—श्री धर्मानन्द कौशाम्बी। १२. बौद्धविज्ञानवाद—डॉ० राजू (हिन्दी अनुवाद)। १३. जातककालीन भूगोल—डॉ० भरतसिंह उपाध्याय १४. बौद्धधर्म और बिहार—पं० हवलदार त्रिपाठी। १५ उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास—श्री नलिनाक्ष दत्त। १६. बौद्धन्याय—हिन्दी अनुवाद—अनु० श्री रामकुमार राय।

ब्रह्मपुराण—यह समस्त पुराणों में आद्य या अग्रिम पुराण के रूप में परिगणित होता है। 'विष्णुपुराण' एवं स्वयं 'ब्रह्मपुराण' से ही इस कथन की पुष्टि होती है। इसे 'ब्राह्मपुराण' भी कहा जाता है। आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते। अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥ विष्णु ३।६।२० इसमें अध्यायों की कुल संख्या २४५ तथा लगभग चौदह हजार श्लोक है। पर श्लोकों के सम्बन्ध में विभिन्न पुराण भिन्न-भिन्न संख्या प्रकट करते है। 'नारदपुराण' में श्लोकों की सख्या दस हजार तथा यही संख्या 'विष्णु', 'शिव', 'ब्रह्मवैवर्त्त', 'श्रीमद्भागवत' एवं 'मार्कण्डेयपुराण' में भी है, किन्तु 'मत्स्यपुराण' में तेरह सहस्र श्लोक होने की बात कही गयी है। आनन्दाश्रम संस्करण मे १३७८३ श्लोक है। 'लिंग', 'वाराह', 'कूर्म' एवं 'पद्मपुराण' भी 'ब्रह्मपुराण' की श्लोक-संख्या तेरह सहस्र स्वीकार करते है। ब्रह्मपुराण के दो विभाग किये गए हैं—पूर्व एवं उत्तर। यह वैष्णवपुराण है। इसमें पुराणविषयक सभी विषयों का

आकलन किया गया है तथा पुराने तीर्थों के माहात्म्य-वर्णन के प्रति विशेष आकर्षण प्रदर्शित किया गया है। प्रारम्भ मे सृष्टिरचना का वर्णन करने के उपरान्त सूर्य तथा चन्द्रवंश का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है और पार्वती उपाख्यान को लगभग २० अध्यायों (३०–५०) मे स्थान दिया गया है। प्रथम पाँच अध्यायों में सर्ग और प्रतिसर्ग तथा मन्वन्तर कथा का विवरण है एवं आगामी सौ अध्यायों मे वंश तथा वंशानुचरित परिकीर्तित हुए हैं। इसमे वर्णित अन्य विषयों में पृथ्वी के अनेक खण्ड, स्वर्ग तथा नरक, तीर्थ माहात्म्य, उत्कल या ओण्ड्रदेश स्थित तीर्थों—विशेषत. सूर्यपूजा है। 'ब्रह्मपुराण' के बड़े भाग मे श्रीकृष्णचरित वर्णित है जो ३२ अध्यायो मे समाप्त हुआ है (१८० से २१२ तक)। इसके अन्तिम अध्यायों मे श्राद्ध एवं धार्मिक जीवन के नियम, वर्णाश्रमधर्म, स्वर्ग के भोग, नरक के दुःख एवं विष्णुपूजा के द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्यो का वर्णन है। इसमें साख्ययोग का अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचन दस अध्यायों मे (२३४ से २४४ तक) किया गया है। इसमे ध्यान देने योग्य बात यह है कि साख्य के अनेक विषय अवान्तरकालीन विषयो से भिन्न हैं; जैसे साख्य के २६ तत्त्वो का कथन जब कि परवर्ती ग्रन्थो मे २५ तत्त्वों का ही निरूपण है। यहा साख्य निरीश्वरवादी दर्शन नही माना गया है तथा ज्ञान के साथ-ही-साथ इसमें भक्ति के भी तत्त्व सन्निविष्ट किए गए है।

इस पुराण मे 'महाभारत', 'वायु', 'विष्णु' एवं 'मार्कण्डेयपुराण' के भी अनेक अध्यायो को अक्षरश. उद्धृत कर लिया गया है। विद्वानो का कथन है कि मूलत· यह पुराण प्रारम्भ मे १७५ अध्यायो मे ही समाप्त हो जाता है तथा १७६ से २४५ तक के अध्याय प्रक्षिप्त है या पीछे जोड़े गए है। इस पुराण के कतिपय अंशों को कई ग्रन्थो ने उद्धृत किया है, जैसे 'कल्पतरु' मे लगभग १५०० श्लोक उद्धृत किये गए है तथा 'तीर्थचिन्तामणि' मे भी तीर्थविषयक अनेक श्लोक गृहीत हुए है। 'तीर्थचिन्तामणि' के प्रणेता वाचस्पति मिश्र का समय १५ वीं शती का उत्तरार्ध है, अत· इसके आधार पर 'ब्रह्मपुराण' का रचनाकाल १२ वी शताब्दी है। इसके काल-निर्णय के सम्बन्ध मे विद्वानों मे मतैक्य नही है। डॉ० विन्टरनित्स ने उडीसा के मन्दिरो के वर्णन होने के कारण इसका समय १३ शताब्दी निश्चित किया है। पर, परम्परावादी भारतीय विद्वान 'ब्रह्मपुराण' का रचनाकाल इतना अर्वाचीन नही मानते। इनके अनुसार 'यह सर्वविदित है कि देवमूर्तिक्षेत्र एवं माहात्म्य प्राचीन काल के हैं और मन्दिर नित नये बनते हैं'। अतः मन्दिरो के आधार पर जिनका वर्णन इस पुराण मे है, इसका काल-निर्धारण युक्तियुक्त नही है। दे० पुराणतत्त्व-मीमांसा पृष्ठ १२। इन विद्वानों के अनुसार इसका समय श्रीकृष्ण के गोलोक पधारने के बाद ही (द्वापर) का है।

आधारग्रन्थ—१. प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १ खण्ड २—डॉ० विन्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद)। २. पुराणतत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ३ पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. पुराण दिग्दर्शन—श्रीमाधवाचार्य शास्त्री। ५. हिंदुत्व—प्रो० रामदास गौड़ ६. पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय।

ब्रह्मवैवर्तपुराण—यह क्रमानुसार १० वाँ पुराण है। 'शिवपुराण' में कहा गया है कि इसे ब्रह्म के विवर्त्त प्रसंग के कारण ब्रह्मवैवर्त्त कहते हैं—विवर्त्तनाद् ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार इसमें अठारह हजार श्लोक हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ माहात्म्य के प्रतिपादन के लिए ब्रह्म वाराह के उपदेश का वर्णन किया गया है। इसके चार खण्ड है—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड तथा कृष्णजन्मखण्ड। इस पुराण का प्रधान उद्देश्य है श्रीकृष्ण के चरित का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए वैष्णव तथ्यों का प्रकाशन करना। इसमे राधा का नाम आया है और वे कृष्ण की पत्नी एवं उनकी शक्ति के रूप मे चित्रित हुई हैं। 'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' में राधा-कृष्ण की लीला अत्यन्त सरस ढंग से वर्णित है तथा गौडीय वैष्णव, वल्लभसम्प्रदाय एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय मे जिन साधनात्मक रहस्यो का वर्णन किया गया है उनका मूल रूप इसमें सुरक्षित है। इसमे राधा को सृष्टि की आधारभूत शक्ति एवं श्रीकृष्ण को उसका बीजरूप कहा गया है—'सृष्टेराधारभूतात्वं बीजरूपोऽहमच्युत'। 'नारदपुराण' में कहा गया है कि इसमे स्वयं श्रीकृष्ण ने ब्रह्मतत्त्व का प्रकाशन किया था अतः इसका नाम ब्रह्मवैवर्त्त पडा है।

१ ब्रह्मखण्ड—इस खण्ड मे श्रीकृष्ण द्वारा संसार की रचना करने का वर्णन है जिसमें कुल तीस अध्याय है। इसमे परब्रह्म परमात्मा के तत्त्व का निरूपण किया गया है और उन्हे सबका बीजरूप माना गया है। २ प्रकृतिखण्ड—इसमे देवियों का शुभचरित वर्णित है। इस खण्ड मे प्रकृति का वर्णन दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा के रूप मे है। इसमे वर्णित अन्य प्रधान विषय है—तुलसीपूजन-विधि, रामचरित तथा द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त, सावित्री की कथा, छियासी प्रकार के नरककुण्डों का वर्णन, लक्ष्मी की कथा, भगवती स्वाहा, स्वधा, देवी षष्ठी आदि की कथा एवं पूजन-विधि, महादेव द्वारा राधा के प्रादुर्भाव एव महत्त्व का वर्णन, श्रीराधा के ध्यान एवं षोडशोपचार पूजन-विधि, दुर्गाजी की सोलह नामों की व्याख्या, दुर्गाशनस्तोत्र एवं प्रकृति कवच आदि का वर्णन। ३. गणेशखण्ड—इस खण्ड में गणेश-जन्म, कर्म एवं चरित का परिकीर्त्तन है एवं उन्हें कृष्ण के अवतार के रूप मे परिदर्शित किया गया है। ४. श्रीकृष्णजन्मखण्ड—इसमे श्रीकृष्ण-लीला बड़े विस्तार के साथ कही गयी है और राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण कथा के अतिरिक्त इसमें जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, वे हैं—भगवद्भक्ति, योग, सदाचार, वैष्णव एवं भक्त-महिमा, मनुष्य एवं नारी के धर्म, पतिव्रता एवं कुलटाओं के लक्षण, अतिथि-सेवा, गुरुमहिमा, माता-पिता की महिमा, रोग-विज्ञान, स्वास्थ्य के नियम, औषधो की उपादेयता, वृद्धत्व के न आने के साधन, आयुर्वेद के सोलह आचार्यों एवं उनके ग्रन्थो का विवरण, भक्ष्याभक्ष्य, शकुन, अपशकुशन एवं पाप-पुण्य का प्रतिपादन। इनके अतिरिक्त इसमे कई सिद्धमन्त्रो, अनुष्ठानो एवं स्तोत्रों का भी वर्णन है। इस पुराण का मूल उद्देश्य है परमतत्त्व के रूप मे श्रीकृष्ण का चित्रण तथा उनकी स्वरूपभूता शक्ति को राधा के नाम से कथन करना। इसमें वही श्रीकृष्ण महाविष्णु,

विष्णु, नारायण, शिव एवं गणेश आदि के रूप में चित्रित हैं तथा राधा को दुर्गा, सरस्वती, महालक्ष्मी आदि अनेक रूपों में वर्णित किया गया है। अर्थात् श्रीकृष्ण के रूप में एकमात्र परम सत्य तत्त्व का कथन है तो राधा के रूप में एकमात्र सत्यतत्त्वमयी भगवती का प्रतिपादन। ब्रह्मवैवर्तपुराण, गीता प्रेस पृ० १०।

आधारग्रन्थ—१ ब्रह्मवैवर्तपुराण—हिन्दी अनुवाद, गीता प्रेस, गोरखपुर। २. विष्णुपुराण—(अँगरेजी अनुवाद) विल्सन। ३ प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १, खण्ड २— डॉ० विन्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद)। ४ पुराणतत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ५. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ६ पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय। ७ पुराणम्—खण्ड ३, भाग १—जनवरी १९६१ पृ० १००–१०१।

ब्रह्माण्डपुराण—यह पुराणों में क्रमानुसार अन्तिम या १८ वाँ पुराण है। 'नारदपुराण' एवं 'मत्स्यपुराण' में इस पुराण की जो विषय-सूची दी गयी है उससे पता चलता है कि इसमें १०९ अध्याय तथा बारह हजार श्लोक हैं। 'मत्स्यपुराण' में कहा गया है कि ब्रह्माण्ड के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए ब्रह्मा ने जिस पुराण का उपदेश दिया था और जिसमें भविष्य एवं कल्पों का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णित है, वह 'ब्रह्माण्डपुराण' कहा जाता है। [मत्स्यपुराण अध्याय ५३]। समस्त ब्रह्माण्ड का वर्णन होने के कारण इसे 'ब्रह्माण्डपुराण' कहा जाता है। इस पुराण में समस्त विश्व का सांगोपांग वर्णन किया गया है। 'नारदपुराण' के अनुसार इसमें चार पाद या खण्ड थे—प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात तथा उपसंहार किन्तु वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित प्रति में केवल दो ही पाद हैं, प्रक्रिया तथा उपोद्घात। 'कूर्मपुराण' में इसे 'वायवीय ब्रह्माण्ड' कहा गया है जिससे अनेक पाश्चात्य विद्वान् भ्रमवश इसका मूल 'वायुपुराण' को मानते हैं। पार्जिटर एवं विन्टरनित्स दोनों ने ही मूल 'ब्रह्माण्डपुराण' को 'वायुपुराण' का ही प्राचीनतर रूप माना है, किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। 'नारदपुराण' के अनुसार वायु ने व्यासजी को इस पुराण का उपदेश दिया था। 'ब्रह्माण्डपुराण' के ३३ से ५८ अध्यायों तक ब्रह्माण्ड का विस्तारपूर्वक भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम खण्ड में विश्व का विस्तृत, रोचक एवं सांगोपांग भूगोल दिया गया है, तत्पश्चात् जम्बूद्वीप और उसके पर्वत एवं नदियों का विवरण ६६ से ७२ अध्यायों तक है। इसके अतिरिक्त भद्राश्व, केतुमाल, चन्द्रद्वीप, किंपुरुषवर्ष, कैलाश, शाल्मली द्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप एवं पुष्कर द्वीप आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसमें ग्रहों, नक्षत्रमण्डल तथा युगों का भी रोचक वर्णन है। इसके तृतीय पाद में विश्वप्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है उसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। 'नारदपुराण' की विषय-सूची से ज्ञात होता है कि 'अध्यात्मरामायण' 'ब्रह्माण्डपुराण' का ही अंश है, किन्तु उपलब्ध पुराण में यह नहीं मिलता। 'अध्यात्मरामायण' में दार्शनिक दृष्टि से रामचरित का वर्णन है। इसके बीसवें अध्याय में कृष्ण के आविर्भाव एवं उनकी ललित लीला का गान किया गया है। इसमें रामायण की कथा, अध्यात्म रामायण के अन्तर्गत, बड़े

विस्तार के साथ सात खण्डों में वर्णित है। ऐसा कहा जाता है कि पांचवी शताब्दी में 'ब्रह्माण्डपुराण' यवद्वीप गया था और वहाँ की 'कवि' भाषा में इसका अनुवाद भी हुआ था। इसमें परशुराम की कथा १५५० श्लोकों में २१ से २७ अध्याय तक दी गयी है। इसके बाद राजा सगर एवं भगीरथ द्वारा गंगा अवतारण की कथा ४८ से ५७ अध्याय तक वर्णित है तथा ५९ वे अध्याय में सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन है। विद्वानों का कहना है कि चार सौ ईस्वी के लगभग 'ब्रह्माण्डपुराण' का वर्तमान रूप निश्चित हो गया होगा। इसमें 'राजाधिराज' नामक राजनीतिक शब्द का प्रयोग देखकर विद्वानों ने इसका काल गुप्तकाल का उत्तरवर्ती या मौखरी राजाओं का समय माना है। इष्ट्वाजनैरासाद्यो महाराजाधिराजवत्। ३।२२।=८ इस पर महाकवि कालिदास एवं उनकी वैदर्भी रीति का प्रभाव माना गया है। इन सभी विवरणों के आधार पर इसका समय ६०० ई० के आसपास है।

आधारग्रन्थ—१ ब्रह्माण्डपुराण—वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई (१९०६ ई०)। २. पुराणम् भाग ५, संख्या २—जुलाई १९६३ पृ० ३५०–३१९। ३ प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १ खण्ड २—विन्टरनित्स। ४ पुराणतत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ५. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ६. धर्मशास्त्र का इतिहास—काणे (हिन्दी अनुवाद भाग १)। ७ पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय। ८ एन्सियन्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडीशन—पारजिटर।

ब्राह्मण—वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत ऐसे ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते है जिनमें हिन्दूधर्मव्यवस्था तथा यज्ञयाग आदि के सम्बन्ध में सहस्रों नीति नियमों एवं विधि-व्यवस्थाओं का निरूपण है। इनमे मुख्यतः कर्मकाण्ड का विवेचन किया गया है। वैदिक संहिताओं के पश्चात् एक ऐसा युग आया जिसमें विभिन्न प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ, ब्राह्मण उसी युग की देन हैं। इन ग्रन्थों की रचना गद्यात्मक है तथा इनमे मुख्यतः यज्ञ-याग सम्बन्धी प्रयोगविधान हैं। इन ग्रन्थो का मुख्य लक्ष्य था यागादि अनुष्ठानो से परिचित जनसमुदाय के समक्ष उनका धार्मिक महत्त्व प्रदर्शित करते हुए नियम निर्धारित करना। प्राचीन समय में इन्हे भी वेद कह कर संबोधित किया जाता था। आपस्तम्ब ने मन्त्रसंहिता एवं ब्राह्मण दोनों को ही वेद कहा है। 'आपस्तम्ब-परिभाषासूत्र' मे 'मन्त्रब्राह्मणोयज्ञस्य प्रमाणम्', 'मन्त्रब्राह्मणात्मकोवेदः' (३३, ३४) कह कर ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद की अभिधा प्रदान की गयी है। चूंकि इन ग्रंथों मे यज्ञ या ब्रह्म का प्रतिपादन किया जाता था, अतः ये ब्राह्मण ग्रन्थ कहे गए। [यज्ञ को प्रजापति एवं प्रजापति को यज्ञ माना गया है—'एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः' शतपथ ब्राह्मण, ४।३।४।३। ब्राह्मणो मे मन्त्रो, कर्मों एवं विनियोगो की व्याख्या की गयी है। नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते। वाचस्पतिमिश्र। शाबरभाष्य में ब्राह्मणग्रन्थो के प्रतिपाद्य विषयों का विवरण है—हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण कल्पना॥ उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु। २।१।८ इसमें दस विषयों का

उल्लेख है, पर उनमें चार ही प्रधान है—विधि, अर्थवाद, उपनिषद् एवं आख्यान। विधिभाग में कर्मकाण्डविषयक विधानों का वर्णन या यज्ञ करने के प्रयोग सम्बन्धी नियमों का निरूपण है। विधि का अर्थ है—'यज्ञ तथा उसके अङ्गों-उपाङ्गों के अनुष्ठान का उपदेश।' यज्ञ के किसी विशेष भाग मे किस प्रकार अग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाय, वेदी का आकार क्या हो, दर्शपौर्णमासादि यज्ञ करनेवाले व्यक्ति का आचरण क्या हो, अध्वर्यु, होता, उद्गाता तथा ब्रह्मा किस प्रकार किस दिशा में मुंह करके बैठे, तथा वे किस हाथ मे कुश ले, इन सारी बातों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थो में होता है।

विनियोग—ब्राह्मणो मे मन्त्रो के विनियोग का भी विधान किया गया है। किस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किस मन्त्र का प्रयोग किया जाय इसकी व्यवस्था ब्राह्मण ग्रन्थो मे की गयी है। हेतु—कर्मकाण्ड की विशेष विधि के लिए जिन कारणो का निर्देश किया जाता है वे हेतु कहे जाते है। अर्थवाद—इसके अन्तर्गत प्ररोचनात्मक विषयो का वर्णन होता है। इसमे उपाख्यान अथवा प्रशंसात्मक कथाओं के माध्यम से यज्ञीय प्रयोगो का महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है तथा ऐसे निर्देश-वाक्य प्रयुक्त किये जाते हैं जिनमे यज्ञो के विधान उल्लिखित रहते हैं। उदाहरण के लिए, किस यज्ञ-विशेष के द्वारा किस फल की प्राप्ति होगी, किसी यज्ञविशेष के लिए किन-किन विधियो की आवश्यकता होगी, इन सभी आज्ञाओं का निर्देश 'अर्थवाद' के अन्तर्गत किया जाता है। यज्ञ मे निषिद्ध पदार्थों की निन्दा एवं विधि का अनुकरण करने वाले वाक्य ही 'अर्थवाद' कहे जाते है। उदाहरण के लिए यज्ञ मे माष या उडद का प्रयोग निषिद्ध है इसलिए वाक्य मे इसकी निन्दा की जाती है—अमेध्या वै माषा (तै० सं० ५।१।८।१)। अनुष्ठानों, हव्यद्रव्यो एवं देवताओ की प्रशंसा ब्राह्मण ग्रन्थो मे अतिविस्तार के साथ की गयी है। निरुक्ति—ब्राह्मण ग्रन्थो मे शब्दो की ऐसी निरुक्तियाँ दी गयी हैं जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है। निरुक्त की व्युत्पत्तियो का स्रोत ब्राह्मणों मे ही है। ब्राह्मणो मे शुष्क अर्थवादो को समझाने के लिए अत्यन्त सरस और रोचक आख्यानो का सहारा लेकर विषय को समझाया गया है। इन आख्यानो का मूल उद्देश्य विधि-विधानों के स्वरूप की व्याख्या करना है। ब्राह्मणो के कतिपय लौकिक आख्यान आनेवाले इतिहासपुराण ग्रन्थों के प्रेरणास्रोत रहे है। इनमे सृष्टि के विकास-क्रम का आख्यान, आर्यों के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन एवं आर्यों तथा अनार्यों के युद्ध के आख्यान प्राप्त होते है। 'शतपथब्राह्मण' मे जलप्लावन की कथा सृष्टि-विद्या की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। पुरुरवा और उर्वशी का आख्यान, शुनःशेप की कथा आदि साहित्यिक स्तर के आख्यान है।

भाषा-शैली—ब्राह्मण गद्यबद्ध है। इनमे गद्य का परिमार्जित एवं प्रौढ़ रूप मिलता है। ऐसे नवीन शब्दों एवं धातुओ का प्रयोग किया गया है जो वेदो में प्राप्त नहीं होते। ब्राह्मणों में लोकव्यवहारोपयोगी संस्कृत भाषा का रूप प्राप्त होता है। ब्राह्मण-साहित्य अत्यधिक विशाल था किन्तु सम्प्रति सभी ब्राह्मण उपलब्ध नहीं होते। कतिपय महत्त्वपूर्ण ब्राह्मणों की केवल नामावली प्राप्त होती है और कई के केवल उद्धरण ही

मिलते हैं। 'शाट्यायन ब्राह्मण' नहीं मिलता, किन्तु इसके ७० उद्धरण प्राप्त होते हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण अनुपलब्ध ब्राह्मणों के नाम इस प्रकार हैं—भाल्लविब्राह्मण । यह सामवेदीय ब्राह्मण था जिसका निर्देश 'काशिका' (४।२।६६, ४।३।१०५) तथा 'महाभाष्य ४।२।१०४ में उपलब्ध है। जैमिनीय तलवकार ब्राह्मण (सामवेदीय जैमिनी शाखा से सम्बद्ध, इसके उद्धरण प्राप्त नहीं होते। आह्वरक ब्राह्मण, केकति ब्राह्मण, कालबवि ब्राह्मण, चरक ब्राह्मण, छागलेय ब्राह्मण, जाबालि ब्राह्मण, पैंगायनि ब्राह्मण, काठक ब्राह्मण, खाण्डिकेय, औखेय, गालव, तुम्बरु, आरुणेय, सौलभ तथा पराशर ब्राह्मण। [इन ब्राह्मणो का विवरण डॉ० बटकृष्ण घोष कृत 'कलेक्शन ऑफ फाग्मेन्ट्स् ऑफ लॉस्ट ब्राह्मणाज, कलकत्ता १९३५ तथा पं० भगवद्दत्त रचित 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' भाग २ है]

अधुना उपलब्ध ब्राह्मणो की संख्या पर्याप्त है और प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण है। ऋग्वेद—ऐतरेय एवं शांखायन ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेद—शतपथ ब्राह्मण, कृष्ण यजुर्वेद—तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामवेद—ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, दैवत, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितोपनिषद्, वंश ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण, अथर्ववेद—गोपथ ब्राह्मण।

उपर्युक्त सभी ब्राह्मणो का परिचय उनके नामो के सामने देखे।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

भट्ट अकलंक—जैनदर्शन के आचार्य। ये दिगम्बर मतावलम्बी जैन आचार्य थे। इनका समय ८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनके तीन प्रसिद्ध लघु ग्रन्थ प्राप्त होते है—लघीयस्त्रय, न्याय विनिश्चय एवं प्रमाण संग्रह। तीनो ही ग्रन्थों का प्रतिपाद्य जैन-न्याय है। इनके अतिरिक्त भट्ट अकलंक ने कई जैन ग्रन्थो का भाष्य भी लिखा है। तत्त्वार्थसूत्र पर 'राजवार्तिक' तथा आप्तमीमांसा पर 'अष्टशती' के नाम से इन्होंने टीका-ग्रन्थ की रचना की है।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आचार्य बलदेव उपाध्याय।

भट्टनायक—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'हृदयदर्पण' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था जो उपलब्ध नहीं होता [दे० हृदयदर्पण]। इनके विचार अभिनवभारती व्यक्तिविवेक, काव्यप्रकाश, काव्यानुशासन एवं माणिक्यचन्द्र कृत काव्यप्रकाश की संकेत टीका मे उद्धृत हैं। इन्होने भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' की टीका भी लिखी थी। भरत के रससूत्र के तृतीय व्याख्याता के रूप मे भट्टनायक का नाम आता है। इन्होंने रसविवेचन के क्षेत्र में 'साधरणीकरण' के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में युगप्रवर्त्तन किया है। इनका समय नवम शतक का अन्तिम चरण या दशम शतक का प्रथम चरण है। इनके रसविषयक सिद्धान्त को भुक्तिवाद कहते हैं जिसके अनुसार न तो रस की उत्पत्ति होती है और न अनुमिति बल्कि भुक्ति होती है। इन्होंने रस की स्थिति सामाजिकगत मानी है। भट्टनायक के अनुसार शब्द की तीन शक्तियां हैं—अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व। इनके मतानुसार अभिधा से काव्य के जिस अर्थ का ज्ञान होता है 'उसे शब्द का 'भावकत्व' व्यापार परिष्कृत कर सामाजिक के उपयोग के

योग्य बना देता है। काव्य से जो अर्थ अभिधा द्वारा उपस्थित होता है वह एक विशेष नायक और विशेष नायिका की प्रेमकथा आदि के रूप मे व्यक्तिविशेष से सम्बद्ध होता है। इस रूप में सामाजिक के लिए उसका कोई उपयोग नहीं होता है। शब्द का 'भावकत्व' व्यापार इस कथा में परिष्कार कर उसमे से व्यक्तिविशेष के सम्बन्ध को हटाकर उसका 'साधारणीकरण' कर देता है। उस 'साधारणीकरण' के बाद सामाजिक का उस कथा के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अपनी रुचि या संस्कार के अनुरूप सामाजिक उस कथा का एक पात्र स्वयं बन जाता है। इस प्रकार असली नायक-नायिका आदि की जो स्थिति उस कथा मे थी, 'साधारणीकरण' व्यापार के द्वारा सामाजिक को लगभग वही स्थान मिल जाता है। यह शब्द का 'वाचकत्व' नामक दूसरे व्यापार का प्रभाव हुआ'। हिन्दी काव्यप्रकाश—आ० विश्वेश्वर पृ० १०६ (द्वितीय संस्करण)। भावकत्व व्यापार से ही साधारणीकरण होता है जिसके द्वारा विभाव एवं स्थायी साधारणीकृत हो जाते हैं। अर्थात् दुष्यन्त एवं शकुन्तला अपने व्यक्तिगत गुण का त्याग कर सामान्य नायक-नायिका के रूप मे उपस्थित होते हैं। भोजकत्व नामक तृतीय व्यापार के द्वारा रस का साक्षात्कार होता है। इसी को भट्टनायक भुक्तिवाद कहते है। भट्टनायक ने काव्यशास्त्र मे 'भावकत्व' एवं 'भोजकत्व' नामक दो अन्य शब्दशक्तियो की उद्भावना कर सामाजिक की रसस्थिति का निरूपण किया है। भोजकत्व की स्थिति रस के भोग करने की होती है। इस स्थिति मे दर्शक के हृदय के राजस एवं तामस भाव सर्वथा तिरोहित हो जाते है ओर (उन्हें दबाकर) सतोगुण का उद्रेक हो जाता है। भट्टनायक ध्वनि विरोधी आचार्य है जिन्होने 'हृदय-दर्पण' की रचना ध्वनि के खण्डन के लिए ही की थी।' 'ध्वन्यालोकलोचन' मे भट्टनायक के मत अनेक स्थानो पर बिखरे हुए है, उनसे पता चलता है कि ध्वनिसिद्धान्त का खण्डन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया गया था। भट्टनायक काश्मीरक थे। 'हृदयदर्पण' का उल्लेख महिमभट्ट के 'व्यक्तिविवेक' मे भी है जिसमे लेखक का कहना है कि सहसा यश की प्राप्ति के लिए उनकी बुद्धि बिना 'दर्पण' को देखे ही 'ध्वन्यालोक' के खण्डन म प्रवृत्त हुई है। [सहसायशोभिसर्तुं समुद्यताट्टष्टदर्पणा मम धीः। स्वालंकार विकल्पप्रकल्पने वेत्ति कथमिवावद्यम् ॥ १।४ ॥]

आधारग्रंथ—१. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। २. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. हिन्दी काव्यप्रकाश—व्याख्याता आ० विश्वेश्वर।

भट्ट तौत—भट्टतौत अभिनवगुप्ताचार्य के गुरु थे। इन्होने 'काव्यकौतुक' नामक काव्यशास्त्रविषयक ग्रन्थ मे शान्तरस को सर्वश्रेष्ठ रस सिद्ध किया है। 'काव्य-कौतुक' के ऊपर अभिनव ने 'विवरण' नामक टीका लिखी थी जिसका विवरण 'अभिनवभारती' मे है। 'काव्यकौतुक' उपलब्ध नही है किन्तु इसके मत 'अभिनव-भारती', 'औचित्यविचारचर्चा' (क्षेमेन्द्र कृत), हेमचन्द्र कृत 'काव्यानुशासन' एवं माणिक्यचन्द्र कृत 'काव्यप्रकाश' की संकेत टीका मे बिखरे हुए दिखाई पड़ते है। 'अभिनवभारती' के अनेक स्थलो मे अभिनवगुप्त ने भट्टतौत के मत को उपाध्यायाः या

गुरवः के रूप में उद्धृत किया है। इनके उल्लेख से ज्ञात होता है कि भट्टतौत ने 'नाट्यशास्त्र' की टीका लिखी थी। पठितोद्देशक्रमस्तु अस्मदुपाध्यायपरम्परागत। भट्टतौत का रचनाकाल ९५० से ९८० के बीच माना जाता है। भट्टतौत के मत से मोक्षप्रद होने के कारण शान्तरस सभी रसों में श्रेष्ठ है—मोक्षफलत्वेन चायं (शान्तोरसः) परमपुरुषार्थनिष्ठत्वात्सर्वरसेभ्यः प्रधानतमः। सचायमस्मदुपाध्यायभट्टतौतेन काव्यकौतुके अस्माभिश्च तद्विवरणे बहुतरकृतनिर्णयः पूर्वपक्षसिद्धान्त इत्यलं बहुना।' लोचन पृ० २२१ कारिका ३. २६। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे काव्यकौतुक के तीन श्लोक उद्धृत किये हैं—

'नागऋषिकविरित्युक्तमृषिश्च किला दर्शनात्।
विचित्र भावधर्मांशतत्वप्रख्या च दर्शनम् ॥
स तत्त्वदर्शनादेवशास्त्रेषु पठितः कविः।
दर्शनाद्वर्णनाच्चाथरूढालोके कवि श्रुतिः ॥
तथाहि दर्शने स्वच्छेनित्येप्यादिकविर्मुनि(नेः?)।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ॥'

काव्यानुशासन पृ० ३१६ मैसूर संस्करण।

आधारग्रन्थ—संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे।

भट्टलोल्लट—काव्यशास्त्र के आचार्य। ये भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' के प्रसिद्ध टीकाकार एवं उत्पत्तिवाद नाम रससिद्धान्त के प्रवर्त्तक हैं। सम्प्रति इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता पर अभिनवभारती, काव्यप्रकाश (४।५), काव्यानुशासन (पृ० ६७), ध्वन्यालोकलोचन, (पृ० १८४), मल्लिनाथ की तरला टीका (पृ० ८५, ८८) तथा गोविन्द ठक्कुर कृत काव्यप्रदीप (४।५) इनके विचार एवं उद्धरण प्राप्त होते है। राजशेखर तथा हेमचन्द्र के ग्रन्थों मे इनके कई श्लोक 'आपराजिति' के नाम से उपलब्ध होते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम अपराजित था। नाम के आधार पर इनका काश्मीरी होना सिद्ध होता है। ये उद्भट के परवर्त्ती थे, क्योंकि अभिनवगुप्त ने उद्भट के मत का खण्डन करने के लिए इनके नाम का उल्लेख किया है। भरतसूत्र के व्याख्याकारो मे लोल्लट का नाम प्रथम है। इनके अनुसार रस की उत्पत्ति अनुकार्य मे या मूल पात्रों मे होती है और गौणरूप मे अनुसन्धान के कारण नट को भी इसका अनुभव होता है। 'विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य राम आदि मे रस की उत्पत्ति होती है। उनमे भी विभाव सीता आदि मुख्य रूप से इनके उत्पादक होते है। अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करने वाले होते हैं और व्यभिचारीभाव उस उत्पन्न रस के परिपोषक होते है। अतः स्थायीभावो के साथ विभावो का उत्पाद्य-उत्पादक, अनुभावो का गम्य-गमक और व्यभिचारियो का पोष्य-पोषक सम्बन्ध होता है।' काव्यप्रकाश व्याख्या आ० विश्वेश्वर पृ० १०१। काव्यमीमांसा मे भट्टलोल्लट के तीन श्लोक उद्धृत हैं—"अस्तु नाम निस्सीमा अर्थसार्थः। किन्तु रसवत एवं निबन्धो

युक्तः, न तु नीरसस्य" इति अपराजितिः। यदाह मज्जन-पुष्पावचय-सन्ध्या-चन्द्रोदया-दिवाक्यमिह। सरसमपि नाति बहुलं प्रकृतिरसान्वितं रचयेत्॥ यस्तुसरिदद्रिसागरपुरतु-रगरथादिवर्णने यत्नः। कविशक्तिख्यातिफलः विततधियां नो मतः स इह॥ यमका-नुलोमतदितरचक्रादिभिदोऽतिरसविरोधिन्यः। अभिमानमात्रमेतद् गड्डरिकादि-प्रवाहो वा॥
आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १, २—आ० बलदेव उपाध्याय।

भट्टनारायण—कविवर भट्टनारायण 'वेणीसंहार' नामक नाटक के रचयिता है [दे० वेणीसंहार]। इनके जीवन का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इनकी एकमात्र रचना 'वेणीसंहार' उपलब्ध होती है। इनका दूसरा नाम (या उपाधि) मृगराज-लक्ष्म था। एक अनुश्रुति के अनुसार बङ्गराज आदिशूर द्वारा गौड देश में आर्यधर्म की प्रतिष्ठा कराने के लिए बुलाये गये पाँच ब्राह्मणो मे भट्टनारायण भी थे। 'वेणीसंहार' के अध्ययन से पता चलता है कि ये वैष्णव सम्प्रदाय के कवि थे। 'वेणीसंहार' के भरतवाक्य से पता चलता है कि ये किसी सहृदय राजा के आश्रित रहे होगे। स्टेन कोनो के कथनानुसार आदिशूर आदित्यसेन था जिसका समय ६७१ ई० है। रमेशचन्द्र मजूमदार भी माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन का समय ६७५ ई० के लगभग मानते हैं जो शक्तिशाली होकर स्वतन्त्र हो गया था। आदिशूर के साथ सम्बद्ध होने के कारण भट्टनारायण का समय ७ वी शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है। विलसन महोदय ने 'वेणीसंहार' का रचनाकाल आठवीं या नवीं शताब्दी माना है। परम्परा म एक श्लोक मिलता है—वेदवाणाङ्कशाके तु नृपोऽभूच्चादिशूरकः। वसुकर्माङ्कके शाके गौडेविप्राः समागताः॥ इसके अनुसार आदिशूर का समय ६५४ शकाब्द या ७३२ ई० है। पर, विद्वानों ने छानबीन करने के पश्चात् आदित्यसेन और आदिशूर को अभिन्न नही माना है। बङ्गाल में पालवंश के अभ्युदय के पूर्व ही आदिशूर हुए थे और पालवंश का अभ्युदय ७५०—६० ई० के आसपास हुआ था। इससे पूर्व होने वाले आदिशूर ही भट्टनारायण के आश्रयदाता थे। वामन ने अपने 'काव्यालङ्कारसूत्र' में भट्टनारायण का उल्लेख किया है, अतः इनका समय अष्टम शती का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। सुभाषित संग्रहों मे भट्टनारायण के नाम से अनेक पद्य प्राप्त होते है जो 'वेणीसंहार' मे उपलब्ध नही होते। इसमे ज्ञात होता है कि इनकी अन्य कृतियाँ भी होगी। प्रो० गजेन्द्रगडकर के अनुसार 'दशकुमार-चरित' की पूर्वपीठिका के रचयिता भट्टनारायण ही थे। 'जानकीहरण' नामक नाटक की एक पाण्डुलिपि की सूची इनके नाम से प्राप्त होती है। पर कतिपय विद्वान् इस विचार के है कि ये ग्रन्थ किसी अन्य भट्टनारायण के रहे होगे। प्रामाणिक आधारो के अभाव मे भट्टनारायण को एकमात्र 'वेणीसंहार' का रचयिता माना जा सकता है। 'वेणीसंहार' में महाभारत के युद्ध को वर्ण्यविषय बना कर उसे नाटक का रूप दिया गया है। इसमे कवि ने मुख्यतः द्रौपदी की प्रतिज्ञा का वर्णन किया है जिसके अनुसार उसने दुर्योधन के शोणित से अपने केश बाँधने का निश्चय किया था। अन्त में गदा-युद्ध में भीमसेन दुर्योधन को मार कर उसके रक्त से रञ्जित अपने हाथों द्वारा द्रौपदी

के वेणी का संहार (गूँथना) करता है। इसी कथानक की प्रधानता के कारण इसका नाम 'वेणीसंहार' है।

आलोचकों ने नाट्यकला की दृष्टि से 'वेणीसंहार' को दोषपूर्ण माना है, पर इसका कलापक्ष या काव्यतत्त्व अधिक सशक्त है। भट्टनारायण इस नाटक में एक उच्चकोटि के कवि के रूप मे दिखाई पड़ते हैं। इनकी शैली भी नाटक के अनुरूप न होकर काव्य के अनुकूल है। इनकी शैली पर कालिदास, माघ एवं बाण का प्रभाव है। 'वेणीसंहार' में वीररस का प्राधान्य होने के कारण कवि ने तदनुरूप गौडी रीति का आश्रय लिया है और लम्बे-लम्बे समास तथा गम्भीर ध्वनि वाले शब्द प्रयुक्त किये हैं। 'इसमें सन्देह नहीं कि अपने शब्द-चयन और अपनी लम्बी-लम्बी समासो से युक्त भाषा से वे वीर-रसानुरूप ओजगुण को प्रदर्शित करने मे पर्याप्त सफल हुए हैं। उनकी गौडी-रीति भीमसेन द्वारा दुन्दुभी की ध्वनि के वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा।' संस्कृत-काव्यकार पृ० ३९५। मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्ट चण्डः। कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्॥ १।१२ इस दुन्दुभि को किसने बजाया ? इसकी ध्वनि समुद्र-मंथन के समय मन्थन-दण्ड से प्रक्षिप्त जल से परिपूरित कन्दरायुत, मन्दराचल के भ्रमण कालीन गम्भीर ध्वनि की भाँति है, प्रलयकालीन गर्जते हुए मेघमालाओ के परस्पर प्रताडित होने पर निकलने वाले भीषण गर्जन के समान, द्रौपदी के क्रोध का सूचक, सुयोधन के नाश के लिए उत्पातकालीन झंझावात के समान और हम लोगो के सिंहनाद की भाँति इससे भीषण ध्वनि निकल रही है। भट्टनारायण समास-बहुला गौडी शैली का प्रयोग गद्य में भी करते हैं। न केवल संस्कृत मे अपितु प्राकृत मे भी यही शैली अपनायी गयी है। नाटक की दृष्टि से यह शैली उपयुक्त नही मानी जाती है। कहीं-कहीं इन्होने पांचाली एव वैदर्भी शैली का भी प्रयोग किया है किन्तु ऐसे श्लोको की संख्या अल्प है। गौड़ी शैली का प्रयोग कर कवि ने वीररस-पूर्ण उक्तियो का समावेश किया है और इस कार्य में पूर्ण सफल हुआ है। भीम के इस कथन मे वीररस टपकता है—चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य। स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः॥ १।२१। 'हे देवि ! तुम निश्चिन्त रहो। यह भीम इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि शीघ्र ही अपने दोनों हाथों से घुमाई हुई कठोर गदा की चोट से दुर्योधन की दोनो जाँघों को तोड कर उसके गाढ़े चिकने खून से रँगे हाथों से तुम्हारे केशो को सँवारेगा।' यत्र-तत्र सरस शैली का प्रयोग करते हुए भी कवि ने क्रोध की भावना को अभिव्यक्त किया है; जैसे भीम के इस कथन मे—मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद् दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः। सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन॥ १।१५। अलंकारो के प्रयोग मे भट्टनारायण काफी सचेत दिखलाई पडते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक तथा अर्थालंकारों मे रूपक, उपमा, परिकर आदि के प्रति कवि का अधिक आकर्षण दिखाई पडता है। उपमा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है—यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम्। तत्प्रावृडिव कृष्णेयं

मूनं संवर्धयिष्यति । १।१४ 'आर्य भीमसेन के क्रुद्ध होने पर विद्युत्प्रकाश के सदृश जो ज्योति बढ़ी, अब उसे वर्षा ऋतु की भाँति कृष्णा अवश्य ही बढ़ायेगी ।' भट्टनारायण ने विविध छन्दों का प्रयोग कर अपनी विदग्धता प्रदर्शित की है। 'वेणीसंहार' में अट्ठारह प्रकार के छन्दो का प्रयोग है जिनमे मुख्य हैं—वसन्ततिलका (३९), शिखरिणी (३५), शार्दूलविक्रीडित (३२) तथा स्रग्धरा (२०)। कवि ने शौरसेनी एवं मागधी दो प्रकार की प्राकृतो का प्रयोग किया है। मागधी का प्रयोग राक्षस-राक्षसियों के वार्त्तालाप में हुआ है (केवल तृतीय अंक के विष्कम्भक में)।

आधारग्रन्थ—१ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डॉ० डे तथा दासगुप्त। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ५. संस्कृत-कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ६. संस्कृत के महाकवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय। ७ संस्कृत-काव्यकार–डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ८. द वेणीसंहार–ए क्रिटिकल स्टडी—प्रो० ए० वी० गजेन्द्रगदकर।

भट्टि—भट्टिकाव्य या 'रावणवध' महाकाव्य के रचयिता महाकवि भट्टि है। उन्होने संस्कृत मे शास्त्र-काव्य लिखने की परम्परा का प्रवर्त्तन किया है। भट्टि मूलत: वैयाकरण और अलङ्कारशास्त्री है जिन्होने व्याकरण और अलङ्कार की, (सुकुमारमति राजकुमारो या काव्यरसिको को) शिक्षा देने के लिये अपने महाकाव्य की रचना की थी। उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य है व्याकरणशास्त्र के शुद्ध प्रयोगो का संकेत करना, जिसमे वे पूर्णत: सफल हुए हैं। कतिपय विद्वानो ने भट्टि शब्द को 'भर्तृ' शब्द का प्राकृत रूप मानकर उन्हें भर्तृहरि से अभिन्न माना है, पर यह बात सत्य नहीं है। डॉ० बी० सी० मजूमदार ने (१९०४ ई० मे जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी पृ० ३०६ एफ में) एक लेख लिख कर यह सिद्ध करना चाहा था कि भट्टि मन्दसोर शिलालेख के वत्सभट्टि एवं शतकत्रय के भर्तृहरि से अभिन्न हैं। पर इसका खण्डन डॉ० कीथ ने उसी पत्रिका मे (१९०९ ई०) निबन्ध लिख कर किया (पृ० ४३५)। डॉ० एस० के० डे० ने भी कीथ के कथन का समर्थन किया है। [दे० हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० १८० द्वितीय संस्करण] भट्टि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त नही होती। ग्रन्थ के अन्त में उन्होने अपने सम्बन्ध में यह श्लोक लिखा है—काव्यमिदं विहितम् मया वलभ्या श्रीधरसेन नरेन्द्रपालितायाम्। कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य क्षेमकर: क्षितिपो यत: प्रजानाम् ॥ इससे पता चलता है कि भट्टि को वलभीनरेश श्रीधरसेन की सभा मे अधिक सम्मान प्राप्त होता था। शिलालेखों मे वलभी के चार श्रीधरसेन संज्ञक राजाओ का उल्लेख मिलता है। प्रथम का काल ५०० ई० के लगभग एवं अन्तिम का समय ६५० के आसपास है। श्रीधर द्वितीय के एक शिलालेख मे किसी भट्टि नामक विद्वान् को कुछ भूमि देने की बात उल्लिखित है। इस शिलालेख का समय ६१० ई० के निकट है अत: भट्टि का समय सातवीं सदी के मध्यकाल से पूर्व निश्चित होता है। उनका ग्रन्थ 'रावधवध' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें २२ सर्ग एवं

१६२४ श्लोक हैं। इसमें श्रीरामचन्द्र के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया गया है। इस काव्य का प्रकाशन 'जयमंगला' टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से १८८७ ई० में हुआ था। मल्लिनाथ की टीका के साथ सम्पूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद चौखम्बा संस्कृत सीरीज से हुआ है।

भट्टि ने अपने महाकाव्य को चार खण्डों में विभाजित किया है—प्रकीर्णखण्ड,—प्रथम पाँच सर्ग प्रकीर्ण काण्ड के नाम से अभिहित किये गए हैं। इस खण्ड में रामजन्म से लेकर राम-वनगमन तक की कथा वर्णित है। इन खण्डों में व्याकरणिक दृष्टि से कोई निश्चित योजना नहीं दिखाई पड़ती। इनमे कवि का वास्तविक कवित्व परिदर्शित होता है। अधिकार काण्ड—६ ठे से लेकर नवम सर्ग को अधिकार काण्ड कहा जाता है। इनमे कुछ पद्य प्रकीर्ण है तथा कुछ मे व्याकरण के नियमों मे दुहादि द्विकर्मक धातु (६, ८–१०) ताच्छीलिककृदधिकार, (७, २८–३३), भावे कर्तरि प्रयोग (७, ६८–७७), आत्मने पदाधिकार (८, ७०–८४) तथा अनभिहितेऽधिकार (३, ९४–१३१) पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रसन्नकाण्ड—तीसरे काण्ड का संबंध अलकार से है। इसके अन्तर्गत दशम, एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश सर्ग हैं। दशम सर्ग मे शब्दालंकार तथा अर्थालंकार के अनेक भेदोपभेदो के प्रयोग के रूप मे श्लोको का निर्माण किया गया है और एकादश तथा द्वादश मे माधुर्य और भाविक का एवं त्रयोदश मे भाषासम संज्ञक श्लेष-भेद का निदर्शन है। तिङन्तकाण्ड—इस काण्ड में संस्कृत व्याकरण के नौ लकारो—लिङ्, लुङ्, लृट, लङ्, लट्, लिङ्, लोट, लृट, लुट—का व्यवहारिक रूप मे १४ से २२ वे सर्ग तक प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक लकार का वर्णन एक सर्ग मे है।

भट्टि ने स्वयं पुस्तक-लेखन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह महाकाव्य व्याकरण के ज्ञाताओ के लिए दीपक की भांति अन्य शब्दो को भी प्रकाशित करनेवाला है। किन्तु व्याकरण-ज्ञान से रहित व्यक्तियों के लिए यह काव्य अन्धे के हाथ में रखे गए दर्पण की भांति व्यर्थ है—दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षण चक्षुषाम्। हस्तादर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणा ते॥ २२।२३ भट्टि ने अपने महाकाव्य मे काव्योचित सरसता के अतिरिक्त व्याकरणसम्मत शब्दो का व्यावहारिक रूप से संकलन किया है। वे संस्कृत काव्यो की उस परम्परा का अनुवर्त्तन करते हैं जिसमें कवित्व तथा पाण्डित्य का सम्यक् स्फुरण है। 'रावणवध' में काव्य की सरसता का निर्वाह करते हुए पाण्डित्य का भी प्रदर्शन किया गया है। कवि ने अपने काव्य के सम्बन्ध मे स्वयं दर्पोक्ति की है कि यह व्याख्या के द्वारा सुधी लोगों के लिए बोधगम्य हो सकता है पर व्याकरण-ज्ञान से रहित व्यक्ति तो इसे समझ नही सकते। व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्। हतादुर्मेधसाश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया तया॥ २२।३४२ यद्यपि इस काव्य का निर्माण व्याकरण की रीति से किया गया है तथापि इसमे काव्य-गुणो का पूर्ण समावेश है। कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण मे उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा का परिचय दिया है। इसमे महाकाव्योचित सभी तत्त्वों का सुन्दर निबन्धन है। पुस्तक के कितने पात्रों के भाषण बड़े ऊँचे दर्जे के हैं और उनमे काव्यगत गुणो एवं भाषण सम्बन्धी विशेषताओं का

पूर्ण नियोजन है। विभीषण के राजनीतिक भाषण मे कवि के राजनीतिशास्त्रविषयक ज्ञान का पता चलता है तथा रावण की सभा में उपस्थित होकर भाषण करनेवाली शूर्पणखा के कथन मे वक्तृत्वकला की उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। (पंचम सर्ग मे)। बारहवें सर्ग का 'प्रभातवर्णन' प्राकृतिक दृश्यों के मोहक वर्णन के लिए संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। कवि ने द्वितीय सर्ग में भी शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन किया है। व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य के कारण ही उनका काव्य उपयोगी हुआ है। भले ही भट्टि-काव्य में इस रूप का रसवादी दृष्टि से अधिक महत्त्व न हो पर उनके व्याकरण-सम्बन्धी पाण्डित्य का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। प्रयास्यतः पुण्यवनाय जिष्णो रामस्य रोचिष्णु मुखस्य धृष्णुः ॥ १।२५ यहाँ जिष्णोः (जिष्णु का षष्ठी एकवचन) रोचिष्णु, धृष्णुः क्रमशः √जि, √रुच एवं √धृष् धातुओं तथा इनके साथ ग्स्नु, इष्णच् एवं क्नु प्रत्ययों से बने हैं। इन तीनों का एक साथ प्रयोग कर भट्टि ने अर्थ एवं व्याकरण-सिद्धि की दृष्टि से इनके तात्त्विक अन्तर का संकेत किया है।

कवि ने १० वे सर्ग मे अनेकानेक अलंकारो के उदाहरण प्रस्तुत कर अपने आलं-कारिक रूप का निदर्शन किया है। ये भामह और दण्डी के पूर्ववर्त्ती है। विद्वानो ने इनकी गणना अलंकारशास्त्रियो मे की है। वर्णन-कौशल की दृष्टि मे 'भट्टिकाव्य' मे नावीन्य का अभाव दिखाई पडता है। किसी विषय का वर्णन करते समय कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का उपयोग नही किया है तथा कथा के मार्मिक स्थलो की पहचान मे भी अपनी पटुता प्रदर्शित नही की है। सीतापरिणय एवं राम-वन-गमन ऐसे मार्मिक प्रसंगो की ओर कवि की उदासीनता उसके महाकवित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाती है। राम-विवाह का एक ही श्लोक मे संकेत किया गया है। रावण द्वारा हरण करने पर सीता-विलाप का वर्णन अत्यल्प है और न उसमे रावण की दुष्टता तथा अपनी असमर्थता का कथन किया गया है। प्रकृति-चित्रण मे भट्टि ने पटुता प्रदर्शित की है तथा प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन को स्वतन्त्र न कर कथा का अंग बनाया है। इसमे प्रकृति के जड और चेतन दोनो रूपो का निदर्शन है जिसमे इनकी कमनीय कल्पना एवं सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। यत्र-तत्र उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा भी कवि ने इस महाकाव्य को सजाया है।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डॉ० एस० एन० दासगुप्त एवं डॉ० एस० के० डे। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ३. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५ संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरदत्त शास्त्री।

भट्टोजि दीक्षित—इन्होने *'अष्टाध्यायी'* (*पाणिनिकृत व्याकरण ग्रन्थ*) के क्रम के स्थान पर कौमुदी का प्रचलन कराया है। 'सिद्धान्तकौमुदी' की रचना कर दीक्षित ने संस्कृत व्याकरण अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र मे नया मोड उपस्थित किया। इनका समय सं० १५१० से १६०० के मध्य तक है। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनका वंशवृक्ष इस प्रकार है—
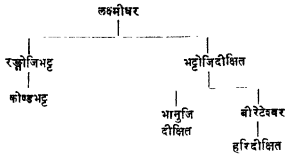
पण्डितराज जगन्नाथ विरचित 'प्रौढमनोरमाखण्डन' से विदित होता है कि इनके गुरु शेषकृष्ण थे। भट्टोजिदीक्षित ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। 'अष्टाध्यायी' पर 'शब्दकौस्तुभ' नामक टीका, 'सिद्धान्तकौमुदी', 'प्रौढमनोरमा' 'वेदभाष्यसार' (यह 'ऋग्वेद' के प्रथम अध्याय पर रचित सायणीय भाष्य का सार है) तथा अमर टीका। इनका 'शब्दकौस्तुभ' पाणिनीय व्याकरण की सूत्रपाठानुसारी व्याख्या है। 'सिद्धान्त-कौमुदी' अष्टाध्यायी की प्रयोगक्रमानुसारी व्याख्या है। 'प्रौढमनोरमा' इनके द्वारा रचित 'सिद्धान्तकौमुदी' की व्याख्या है। दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित ने 'प्रौढमनोरमा' की दो टीकाएँ लिखी है जिन्हे 'बृहच्छब्दरत्न' एवं 'लघुशब्दरत्न' कहा जाता है। इनमे 'लघु-शब्दरत्न' प्रकाशित है और साम्प्रतिक वैयाकरणो मे अधिक लोकप्रिय है। 'शब्द-कौस्तुभ' की सात टीकाएँ प्राप्त होती है—क. नागेश्वर की 'विषमपदी', ख वैद्यनाथ-पायगुण्डे—प्रभा, ग विद्यानाथ शुक्ल—उद्योत, घ. राघवेन्द्राचार्य-प्रभा, ङ. कृष्णमित्र—भावप्रदीप, च भास्कर दीक्षित—शब्दकौस्तुभदूषण, ज जगन्नाथ—शब्दकौस्तुभखण्डन। 'सिद्धान्तकौमुदी' पर अनेक टीकाए प्राप्त होती है। उनका विवरण इस प्रकार है—नीलकण्ठ वाजपेयी—सुखबोधिनी (समय सं० १६००–१६५०), रामानन्द (सं० १६८०–१७२०)—तत्त्वदीपिका (हलन्त स्त्रीलिंग तक प्राप्त), नागेशभट्ट बृहच्छब्देन्दुशेखर तथा लघुशब्देन्दुशेखर, रामकृष्ण रत्नाकर, रंगनाथ यज्वा—पूर्णिमा, वासुदेव वाजपेयी—बालमनोरमा (अत्यन्त सरल एवं लोकप्रिय टीका), कृष्णमित्र—रत्नार्णव। 'प्रौढमनोरमा' पर पण्डितराज जगन्नाथ ने 'मनोरमाकुचमर्दन' नामक खण्डन ग्रन्थ लिखा है।

आधारग्रन्थ—सस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १–पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

भट्टोत्पल या उत्पल—ये ज्योतिष ग्रन्थो के प्रसिद्ध टीकाकार है। इनका महत्त्व उसी प्रकार है जिस प्रकार कि मल्लिनाथ का है। ये वराहमिहिर (ज्योतिषशास्त्र के विश्वविश्रुत लेखक) के सिद्धहस्त टीकाकार माने जाते है। इनका समय ९६३ ई० के आसपास है। इन्होंने वराहमिहिर के सभी ग्रन्थो की टीका लिखी है तथा उनके पुत्र पृथुयशाकृत 'षट्पंचाशिका' की भी टीका प्रस्तुत की है। 'ब्रह्मगुप्त (प्रसिद्ध ज्योतिष-शास्त्री) रचित 'खण्डखाद्यक' नामक ग्रन्थ के ऊपर भी भट्टोत्पल ने टीका की रचना की है। इन्होने सात सौ आर्याओ में 'प्रश्नज्ञान' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का भी प्रणयन किया है। इनकी टीकाओं में सभी आचार्यों के वचनों का संकलन है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। 'प्रश्नज्ञान' के अन्त मे निम्नोक्त श्लोक

लिखा है—भट्टोत्पलेन शिष्यानुकम्पयावलोक्य सर्वशास्त्राणि। आर्यासप्तशत्यैवं प्रश्नज्ञानं समासतो रचितम् ॥

आधारग्रन्थ— १. भारतीय ज्योतिष–श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद)। २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। ३. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद।

भरत—भारतीय काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र एवं अन्य ललित कलाओं के आद्य आचार्य। इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है 'नाट्यशास्त्र' जो अपने विषय का 'महाकोश' है, [दे० नाट्यशास्त्र]। संस्कृत साहित्य में भरत नामधारी पाँच व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है—दशरथपुत्र भरत, दुष्यन्ततनय भरत, मान्धाता के प्रपौत्र भरत, जड भरत तथा नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत। इनमें से अन्तिम व्यक्ति ही भारतीय काव्यशास्त्र के आद्याचार्य माने जाते है। भरत का समय अद्यावधि विवादास्पद है। डॉ० मनमोहन घोष ने 'नाट्यशास्त्र' के आंग्लानुवाद की भूमिका मे भरत को काल्पनिक व्यक्ति माना है (१९५० ई० मे प्रकाशित रायल एशियाटिक सोसाइटी, बङ्गाल)। पर अनेक परवर्ती ग्रन्थों मे भरत का उल्लेख होने के कारण यह धारणा निर्मल सिद्ध हो चुकी है। महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'विक्रमोर्वशीय' मे भरतमुनि का उल्लेख किया है—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयः प्रयुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः स लोकपालः ॥ २ । १८

अश्वघोष कृत 'शारिपुत्रप्रकरण' पर 'नाट्यशास्त्र' प्रभाव का दिखाई पडता है। इनका समय विक्रम का प्रथम शताब्दी है, अतः भरत का काल विक्रमपूर्व सिद्ध होता है। इन्हीं प्रमाणो के आधार पर भरत का समय वि० पू० ५०० ई० से लेकर एक सौ ई० तक माना जाता है। भरत बहुविध प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ज्ञात होते हैं। इन्होने नाट्यशास्त्र, सङ्गीत, काव्यशास्त्र, नृत्य आदि विषयो का अत्यन्त वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म विवेचन किया है। इन्होने सर्वप्रथम चार अलङ्कारों का विवेचन किया था—उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक। नाटक को दृष्टि मे रख कर भरत ने रस का निरूपण किया है और अभिनय की दृष्टि मे आठ ही रसो को मान्यता दी है। भरत का रस-निरूपण अत्यन्त प्रौढ एवं व्यावहारिक है। इसी प्रकार सङ्गीत के सम्बन्ध में भी इनके विचार अत्यन्त प्रौढ सिद्ध होते हैं। नाटकीय विविध विधि-विधानो के वर्णन के क्रम मे तत्सम्बन्धी अनेक विषयो का वर्णन कर भरत ने संस्कृत वाङ्मय मे अपना महान् व्यक्तित्व बना लिया है।

आधारग्रन्थ—क—सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। ख—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

भरतेश्वराभ्युदय चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता (दिगम्बर जैनी) आशाधर है। इनका समय वि० सं० १३०० के आसपास है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण मद्रास कैटलग संख्या १२४४४ मे है। आशाधर के अन्य ग्रन्थ हैं—'जिनयज्ञकल्प', 'सागर धर्मामृत', 'अनागारधर्मामृत', 'सहस्रनामस्तोत्र',

'त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र' तथा 'प्रमेयरत्नाकर'। इस चम्पू में ऋषभदेव के पुत्र भरत के चरित्र को आधार बनाकर उनकी कथा कही गयी है।

भर्तृमेण्ठ—ये 'हयग्रीववध' नामक महाकाव्य के रचयिता हैं जो अभी तक अनुपलब्ध है। इसके श्लोक क्षेमेन्द्र विरचित 'सुवृत्ततिलक', भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृङ्गारप्रकाश' तथा 'काव्यप्रकाश' प्रभृति रीतिग्रन्थों तथा सूक्तिग्रन्थों में उद्धृत किये गये है। इनका विवरण कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' मे है। कहते है कि मेण्ठ हाथीवान् थे [मेण्ठ शब्द का अर्थ भी महावत होता है]। लोगो का अनुमान है कि ये महावत थे, किन्तु विलक्षण प्रतिभा के कारण महाकवि बन गए। इनके आश्रयदाता काश्मीरनरेश मातृगुप्त थे। इनका समय पाँचवी शताब्दी है। सूक्तिग्रन्थो मे कुछ पद्य 'हस्तिपक' के नाम से उपलब्ध होते हैं जिन्हें विद्वानों ने भर्तृमेण्ठ की ही रचना स्वीकार किया है। इनकी प्रशंसा मे धनपाल का एक श्लोक मिलता है जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार हाथी महावत के अंकुश की चोट खाकर बिना सिर हिलाये नही रह सकता उसी प्रकार भर्तृमेण्ठ की वक्रोक्तियो का श्रवण कर सहृदय भी आनन्द से विह्वल होकर सिर हिलाये बिना नहीं रहता। वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम्। अविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्धानं कविकुञ्जराः॥ 'राजतरंगिणी' मे कहा गया है कि 'हयग्रीववध' काव्य की रचना करने के पश्चात् भर्तृमेण्ठ किसी गुणग्राही राजा की खोज में निकले और काश्मीरनरेश मातृगुप्त की सभा में आकर उन्होंने अपनी मनोहर कविता सुनाई। काव्य की समाप्ति होने पर भी राजा ने उसके गुण-दोष के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कहा। राजा के इस मौनालम्बन से कवि को अत्यन्त दुःख हुआ और वे अपना काव्य वेष्टन मे बाँधने लगे। इस पर राजा ने पुस्तक के नीचे सोने की थाल इस भाव से रख दी कि कहीं काव्य-रस पृथ्वी पर न चू जाय। राजा की इस सहृदयता एवं गुणग्राहिता से भर्तृमेण्ठ अत्यन्त प्रसन्न हुए और इसे उन्होंने अपना सत्कार माना तथा राजा द्वारा दी गई सम्पत्ति को पुनरुक्त के सदृश समझा [राजतरङ्गिणी ३। २६४–२६६]। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' के रसदोष के अन्तर्गत (सप्तम उल्लास मे) 'अङ्गस्याप्यतिविस्तृतिः' नामक दोष के उदाहरण में 'हयग्रीववध' को रखा है। इस दोष के अनुसार महाकाव्य में मुख्य पात्र का विस्तार के साथ वर्णन होना चाहिये, परन्तु अमुख्य पात्र का विस्तार करने पर साहित्यिक दृष्टि से दोष उपस्थित हो जायगा। 'हयग्रीववध' मे नायक विष्णु है (अङ्गी हैं), किन्तु प्रतिनायक या अङ्ग का विस्तारपूर्वक वर्णन होने के कारण इसमें उक्त दोष आ गया है। क्षेमेन्द्र के अनुमान से 'हयग्रीववध' का प्रथम श्लोक निम्नांकित है—आसीद् दैत्यो हयग्रीवः सुहृद्वेश्मसु यस्य ताः। प्रथयन्ति बलं बाह्वोः सितच्छत्रस्मिताः श्रियः॥ मेण्ठ के सम्बन्ध मे अनेक कवियों की प्रशस्तियाँ प्राप्त होती है—इह कालिदास-भर्तृमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः। हरिश्चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्॥ 'काव्यप्रकाश' मे 'हयग्रीववध' के श्लोक प्राप्त होते हैं। एक श्लोक उद्धृत है—विनिगतंमानदमात्ममन्दिरात्भवत्युपश्रुत्य सदृच्छयपि यम्।

ससंभ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीवभियामरावती ॥ दे० संस्कृत सुकवि-समीक्षा— पं० बलदेव उपाध्याय।

भर्तृहरि—शतकत्रय–'शृङ्गारशतक', 'नीतिशतक' एवं 'वैराग्यशतक' के रचयिता। महाकवि भर्तृहरि का जीवन और आविर्भावकाल अभी तक अज्ञात है। दन्तकथाएँ उन्हें राजा एवं विक्रमादित्य का ज्येष्ठ भ्राता मानती हैं। पर कतिपय विद्वानों का मत है कि उनके ग्रन्थों में राजसी भाव का पुट नहीं; अतः उन्हें राजा नहीं माना जा सकता। अधिकांश विद्वानों ने इत्सिग (चीनी यात्री) के कथन में आस्था रखते हुए उन्हें महावैयाकरण भर्तृहरि से (वाक्यपदीय के रचयिता) अभिन्न माना है। पर भारतीय विद्वान् उन्हें वैयाकरण भर्तृहरि से अभिन्न नहीं मानते। इनका समय सप्तम शताब्दी है। इनके ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इन्हें ऐसी प्रियतमा से निराशा हुई थी जिसे ये बहुत प्यार करते थे। 'नीतिशतक' के प्रारम्भिक श्लोक में भी निराश प्रेम की झलक मिलती है। या चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता साप्यन्यमिच्छति जनो सजनोऽन्यसक्तः। अस्मत् कृते च परितुष्यति काचिदन्या धिक् ता च तं च मदनं च इमां च मां च॥ किंवदन्ती के अनुसार प्रेम में धोखा खाने पर इन्होंने वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इनके तीनों ही शतक संस्कृत कविता का उत्कृष्टतम रूप उपस्थित करते हैं। इनके काव्य के प्रत्येक पद्य मुख्यतः अपने में पूर्ण है तथा उसमें एक की, चाहे वह शृङ्गार, नीति या वैराग्य हो, पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। संस्कृत गाथा का सूत्रात्मक रूप इनमें चरम सीमा तक पहुंच गया है। इनके अनेक पद्य व्यक्तिगत अनुभूति से अनुप्राणित है तथा उनमें आत्म-दर्शन का तत्त्व पूर्णरूप से दिखाई पड़ता है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० ए० बी० कीथ (हिन्दी अनुवाद)।

भर्तृहरि—प्रसिद्ध वैयाकरण एवं 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ के रचयिता [दे० वाक्यपदीय]। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय वि० पू० ४०० वर्ष है। पुण्यराज के अनुसार इनके गुरु का नाम वसुरात था। ये 'शतकत्रय' के रचयिता भर्तृहरि से भिन्न हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—'महाभाष्यदीपिका', 'वाक्यपदीय', 'भागवृत्ति' (अष्टाध्यायी की वृत्ति) 'मीमांसासूत्रवृत्ति' तथा शब्दधातुमीमांसा'।

भल्लट—संस्कृत गीतिकाव्य के अत्यन्त प्रौढ़ कवि भल्लट है जिनकी एकमात्र रचना 'भल्लटशतक' है। इनके पद्यों के उद्धरण 'ध्वन्यालोक', 'अभिनवभारती', 'काव्यप्रकाश' तथा 'औचित्यविचारचर्चा' आदि ग्रन्थों में प्राप्त होते है जिससे इनका समय नवम शताब्दी से पूर्व ज्ञात होता है। ये काश्मीरक कवि थे। 'भल्लटशतक' में मुक्तक पद्य संगृहीत हैं तथा उसमें अन्योक्ति का प्राधान्य है। एक उदाहरण देखें—विशालं शाल्मल्या नयन सुभगं वीक्ष्य कुसुमं शुकस्यासीद् बुद्धिः फलमपि भवेदस्य सदृशम्। इति ध्यात्वोपास्तं फलमपि च दैवात् परिणतं विपाके तूलोऽन्तः सपदि मरुता सोऽप्यपहृतः॥

भवभूति—ये संस्कृत नाट्य साहित्य में युग-प्रवर्त्तन करने वाले प्रतिभाशाली कलाकार हैं जो कई दृष्टियों से महाकवि कालिदास को भी पीछे छोड देते हैं। नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा। उत्तरेरामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥ ये अपने युग के सशक्त एवं विशिष्ट नाटककार थे। किन्तु उस युग के आलोचक इनकी प्रतिभा का वास्तविक मूल्यांकन उपस्थित करने में असमथ रहे, फलतः कवि के मन में अन्तःक्षोभ की अग्नि धधकती दिखाई पडती है। वे केवल प्रतिभाशाली कवि ही नही थे अपितु सांख्य, योग, उपनिषद् और मीमांसा प्रभृति विद्याओं में भी निष्णात थे। इनके आलोचकों ने इनके सम्बन्ध मे कटूक्तियों का प्रयोग किया था जिससे मर्माहत होकर कवि ने उन्हें चुनौती दी थी कि निश्चय ही एक युग ऐसा आयेगा जब मेरे समानधर्मा कवि उत्पन्न होकर मेरी कला का आदर करेंगे क्योंकि काल निरवधि या अन्तहीन है और पृथ्वी भी विपुल है—ये नाम केचिदिह न. प्रथयन्त्यवज्ञा जानन्ति ते किमपि तान् प्रतिनैष यत्नः। उत्पस्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥६॥ गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत्। यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥७॥ यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदा सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके। यत् प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः ॥ ८ मालतीमाधव अंक—एक।

भवभूति ने अपना पर्याप्त परिचय अपने नाटकों की प्रस्तावना मे दिया है, फलतः इनका जीवनवृत्त अन्य साहित्यकारो की भाति अन्धकाराच्छन्न नहीं है। इनका जन्म कश्यपवंशीय उदुम्बर नामक ब्राह्मण परिवार के घर में हुआ था। ये विदर्भ के अन्तर्गत पद्मपुर के निवासी थे। इनका कुल 'कृष्णयजुर्वेद' की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनके पितामह का नाम भट्ट गोपाल था और वे स्वयं महाकवि भी थे। इनके पिता का नाम नीलकण्ठ एवं माता का नाम जतुकर्णी था। इन्होने अपना सर्वाधिक विस्तृत विवरण 'महावीरचरित' की प्रस्तावना मे प्रस्तुत किया है—अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरंनामनगरम्। तत्र केचित् तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयोधृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेयाजिनो महाकवे पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्र पवित्र कीर्तेर्नीलकण्ठस्य आत्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पद वाक्य प्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमित्यत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु।

कहा जाता है कि इनका वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था और भवभूति उपनाम था। स्वयं कवि ने भी अपने श्रीकण्ठ नाम का संकेत किया है। इसी प्रकार का परिचय किंचित् परिवर्त्तन के साथ 'मालतीमाधव' नामक नाटक मे भी प्राप्त होता है। इन्होने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि दिया है। कहा जाता है कि देवी पार्वती की प्रार्थना मे बनाये गए एक श्लोक पर चमत्कृत होकर तत्कालीन पण्डितमण्डली ने इन्हें भवभूति की उपाधि प्रदान की थी—गिरजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ। तपस्वीका गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविवि ॥ इनके टीकाकार वीरराघव ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है—श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पितृकृतनामेदम्।''''''भवभूतिर्नाम 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्र-

भूतिः' श्लोकरचनासन्तुष्टेन राज्ञाभवभूतिरिति ख्यापितः। 'मालतीमाधव' के टीकाकार जगद्धर के मतानुसार इनका नाम श्रीनीलकण्ठ था—'नाम्ना श्रीकण्ठः प्रसिद्धया भवभूतिरित्यर्थः। इस सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि क्या भवभूति उम्बेकाचार्य से अभिन्न थे। 'मालतीमाधव' के एक हस्तलेख के तृतीय अंक की पुष्पिका मे इसके लेखक का नाम उम्बेक दिया गया है। उम्बेक मीमांसाशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् और कुमारिलभट्ट के शिष्य थे। इन्होने कुमारिल रचित 'श्लोकवार्त्तिक' की टीका भी लिखी है। म० म० कुप्पुस्वामी शास्त्री, म० म० पा० वा० गुणे, एस० आर० रामनाथ शास्त्री उम्बेक एवं भवभूति को एक ही व्यक्ति मानते हैं। पण्डित बलदेव उपाध्याय भी इसी मत का समर्थन करते हैं। पर कुछ विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया है। डॉ० कुन्हन राजा एवं म० म० डॉ० मिराशी ने भवभूति एवं उम्बेक को भिन्न व्यक्ति माना है। कुन्हन राजा भवभूति के मीमांसक होने पर भी सन्देह प्रकट करते हैं। इनके अनुसार इनका आग्रह वेदान्त पर अधिक था। पर डॉ० राजा का कथन इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि भवभूति ने स्वयं अपने को 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' कहा है। डॉ० मिराशी के अनुसार दोनो का समय भिन्न है। उम्बेक का रचनाकाल ७७५ ई० है और भवभूति आठवीं शती के आदि चरण में हुए थे। विशेष विवरण के लिए देखिए—क. प्रोसीडिंग्स ऑफ सेकेण्ड ओरियण्टल कान्फ्रेन्स (१९२३), म० म० कुप्पुस्वामी शास्त्री पृ० ४१०–१२, ख. उत्तररामचरित—काणे द्वारा सम्पादित (भूमिका) तथा धर्मशास्त्र का इतिहास (अंगरेजी) भाग ५ पृ० ११८८–९९, ग. तात्पर्य टीका की प्रस्तावना—डॉ० कुन्हन राजा पृ० ३०, घ स्टडीज इन इण्डोलाजी भाग १, पृ० ४५, डॉ० मिराशी—भवभूति और उम्बेक की एकता प्राचीन काल से ही चली आ रही है अतः दोनो को पृथक्-पृथक् व्यक्ति स्वीकार करना ठीक नही है।

भवभूति ने लिखा है कि उनके नाटक कालप्रियनाथ के उत्सव पर खेलने के लिए ही लिखे गए थे। विद्वानो ने कालप्रियनाथ का तादात्म्य मालवास्थित उज्जैन के महाकाल से किया है। अत्र खलु भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि—उत्तररामचरित पृ० ४ काणे सम्पादित भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्राः समादिशन्ति। महावीरचरित (चौखम्बा) पृ० २। भवभूति ने नाटकों की प्रस्तावना मे अपना समय निर्दिष्ट नहीं किया है अतः इनका काल-निर्णय विवादास्पद बना हुआ है। इनके सम्बन्ध मे प्रथम उल्लेख वाक्पतिराज कृत 'गउडवहो' मे मिलता है। इसमें कवि ने भवभूतिरूपी सागर से निकलते हुए काव्यामृत की प्रशंसा की है—भवभूतिजलधि—निर्गतकाव्यामृतरसकणाइवस्फुरन्ति। यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥ ७९९ ॥ वाक्पतिराज कान्यकुब्जनरेश यशोवर्मा के सभाकवि थे जिनका समय ७५० ई० है। भवभूति भी जीवन के अन्तिम दिनों में यशोवर्मा के आश्रित हो गये थे। 'राजतरंगिणी' मे लिखा है कि यशोवर्मा की सभा में भवभूति आदि कई कवि थे—कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः। जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥४।१४४॥ वामन के 'काव्यालंकार' में भवभूति के पद्य उद्धृत हैं—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

१।२।१२। वामन का समय आठवीं शती का उत्तरार्ध या नवीं शती का चतुर्थांश है। अतः भवभूति का समय सातवीं शताब्दी का अन्तिम चरण या आठवीं शताब्दी का प्रथम चरण हो सकता है।

भवभूति की तीन ही रचनाएँ प्राप्त होती हैं और तीनों ही नाटक हैं—'मालती-माधव', 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित'। इनमे 'मालतीमाधव' प्रकरण है और शेष नाटक है। 'मालतीमाधव' मे दस अंक है और कथा कल्पित है। इसमें मालती एवं माधव की प्रणय-कथा वर्णित है [विशेष विवरण के लिए दे० मालती-माधव]। 'महावीरचरित' में सात अङ्क है और रामायण की कथा को नाटक का रूप दिया गया है [दे० महावीर चरित]। 'उत्तररामचरित' भवभूति का सर्वश्रेष्ठ एवं अन्तिम रचना है। इसमे सीता-निर्वासन की करुण गाथा वर्णित है। [दे० उत्तर-रामचरित]। भवभूति के सम्बन्ध में विविध कवियों की उक्तिया—१–स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता। नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना॥ तिलकमंजरी ३०, धनपाल। २—जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा। ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसतः स्म स्तनावपि॥ हरिहर, सुभाषितावली १३। ३–भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥ गोवर्धनाचार्य आर्यासप्तशती ३६। स्वयं कवि की उक्ति—क–यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। उत्तरं रामचरितं तत् प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥ उत्तरराम० प्रथम अंक। ख–पापमभ्यश्च पुनातु वर्धयतु च श्रेयांसि सेयं कथा। मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च। तामेतां परिभावयन्त्व-भिनयैर्विन्यस्तरूपा बुधाः शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम् ७।२१।

भवभूति नाटककारो के कवि कहे जाते हैं। इन्हें कालिदास के बाद संस्कृत का सर्वोच्च नाटककार माना जाता है। इन्हे विशुद्ध नाटककार नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनकी अधिकांश रचनायें गीतिनाट्य (लिरिकल ड्रामा) है। अत इनके (नाटको के) अध्येताओं को इस तथ्य को ध्यान मे रखकर ही इनके नाटको की समीक्षा करनी चाहिए। भवभूति की भाव-प्रवणता इनकी कला का 'प्राण है। इन्होने भावमय कवित्व के समक्ष कलापक्ष के आकर्षण को भी छोड़ दिया है। 'वैसे भवभूति भी कलापक्ष के मोह से छूटे हुए नही है, किन्तु ज्यो-ज्यों भवभूति की भारतीय परिपक्व होती गई है और जहाँ भाव फूट पडना चाहते हैं, वहाँ भवभूति का पाण्डित्य भी रसप्रवाह मे बह निकलता है।' संस्कृत कवि-दर्शन पृ० ३८१। भवभूति के भावपक्ष मे वैविध्य एवं विस्तार दिखाई पडता है। ये कालिदास की भांति केवल कोमल भावो के ही कवि नही हैं, प्रत्युत् इन्होने कोमल के साथ-ही-साथ गम्भीर एवं कठोर भावो का भी चित्रण किया है। विप्रलम्भ एवं करुण रस के अतिरिक्त इनकी दृष्टि वीर, रौद्र तथा बीभत्स रसो की ओर भी समानभाव से जाती है। भवभूति की शैली इनके कथन के अनुरूप है जिसके शब्दों मे प्रौढ़ि, उदारता एव अर्थ का गौरव रहता है। यत्प्रौढित्व-मुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं तच्चेदस्ति ततस्तदेवगमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययो॥ मालतीमाधव १।१०। भावानुसार भावो को मोड देना भवभूति की निजी विशेषता है। पर्वत-कुहरों में गद्गद् नाद से प्रवाहित होती नदी का चित्र इन्होने भाषा के माध्यम से

खींच दिया है। उत्तररामचरित में–एतेषु कुहरेषु गद्गदनद्गोदावरीवारयो मेघालम्बित-मौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणः। अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—रुत्तालास्तइमे गभीरपयसः पुण्याः सरित् संगमाः॥ २।३। कवि वाणी की प्रौढता के द्वारा वन-प्रदेश की भयंकरता का स्वाभाविक चित्र अनुप्रासच्छटा के माध्यम से प्रस्तुत कर देता है। इनके वर्णनों मे कालिदास की भाँति सादगी नहीं दिखाई पड़ती, यहाँ तो विस्तार एवं क्लिष्टता के दर्शन होते हैं। गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः। एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिता. कूजितैरुद्वेल्लन्तिपुराणरोहिणतरुस्कन्धेषुकुम्भीनसाः॥ २।२९ उत्तर०। 'यह क्रौंचावत पर्वत है जो गूञ्जते हुए कुञ्ज-कुटीरों से उल्लूओं के समूह की घू घू ध्वनि से बढे हुए कीचक (फटे हुए और हवा के कारण शब्द करते हुए बाँस) के समूह की ध्वनि के कारण शब्द-शून्य कौओं के समूह वाला है। इसमे घूमते हुए मयूरो के कूजन से डरे हुए सर्प पुराने चन्दनवृक्षों के स्कन्धप्रदेशों में लिपटे हुए हैं।' ध्वन्यात्मक चित्र प्रस्तुत करने की कला में भवभूति पूर्ण दक्ष हैं।

भवभूति की शैली मे गौडी रीति का प्राबल्य है। इन्होंने गद्य की भाषा सानुप्रास एवं समास-बहुल पद-विन्यास से युक्त रखी है। इनकी शैली का प्रमुख वैशिष्टय इनकी उदात्तता है। इन्होने प्रकृति का चित्रण सच्चे प्रकृति पुजारी की भाँति अत्यन्त अभिनिवेश के साथ किया है जिसमे कोमल, उग्र, सुहावने एवं भयंकर सभी प्रकार के चित्र उभरे हुए है। इनके संवादों मे लम्बे-लम्बे समास-बहुल वाक्य प्रयुक्त होते है जिसे विद्वानो ने इनका दोष भी माना है। भाषा पर इनका अधिकार है और ये समर्थ कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। 'भवभूति की भाषा मे भावव्यंजना की अपूर्व शक्ति है। एक ओर जहाँ वह मूर्त पदार्थों की वर्णना में उनको साकार उपस्थित कर देती है वहाँ दूसरी ओर अमूर्त भाव पदार्थों की वर्णना में भी उनका सागोपांग वर्णन कर पाठक के मन मे उनकी सम्यक् उद्बुद्धि कर देती है।…… पदवाक्य प्रमाणज्ञ भवभूति वाणी के धनी हैं।' महाकवि भवभूति पृ० १२७। इन्होने रूप-सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म एवं हृदयग्राही किया है। किसी चित्र का अंकन करते समय इनका कवि रस की उद्बुद्धि किये बिना नहीं रहता। विरहिणी सीता के करुण रूप के अंकन मे कारुण्य-भावना का रूप देखने योग्य है—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधतीविलोलकबरीकमाननम्। मूर्त्तिरथवाशरीणी विरहव्ययेव वनमेतिजानकी॥ उत्तर० ३।४। भवभूति के छन्द प्रयोग में भी वैविध्य प्रदर्शित होता है। इन्होंने छोटे-बड़े सभी छन्दों का प्रयोग किया है। अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, उपजाति, इन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, शालिनी, आर्या, वंशस्थ, रथोद्धता, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा आदि इनके प्रिय छन्द हैं। क्षेमेन्द्र ने शिखरिणी छन्द के प्रयोग मे इनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। 'महावीरचरित' मे १७, 'मालतीमाधव' में २४ एवं 'उत्तररामचरित' में २४ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनमे अलंकार वैचित्र्य भी अधिक पाया जाता है। इनके प्रिय अलंकार हैं—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, प्रतिवस्तूपमा, अतिशयोक्ति, आक्षेप,

काव्यलिग, सन्देह एवं स्वभावोक्ति। इन्होंने उपमा अलंकार के प्रयोग में नवीनता प्रदर्शित की है। सूक्ष्म मनोभावों की तुलना स्थूल पदार्थों से करने में इन्होंने अधिक रुचि प्रदर्शित की है—करुणस्य मूर्त्तिरथवाशरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी। नाटककार के रूप में आलोचकों ने इन्हें उच्चकोटि का नहीं माना है और इनके अनेक दोषों का निर्देश किया है। इनमें अन्वितित्रय का अभाव, वस्तु का अबाधगत्या दूर तक विस्तृत वर्णन, हास्य की कमी, भाषा की दुरूहता, संवादों के वाक्यों की दुरूहता एवं दीर्घविस्तारी वाक्यों का प्रयोग आदि नाट्यकला की दृष्टि से दोष बतलाये गये हैं। इन दोषों के होते हुए भी भवभूति संस्कृत भाषा के गौरव हैं—

आधारग्रन्थ—१–हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डॉ० दासगुप्त एवं एस० के० डे०। २–उत्तररामचरित—सं० काणे (हिन्दी अनुवाद)। ३–भवभूति—आर० करमरकर (अँगरेजी)। ४–संस्कृत नाटक—डॉ० ए० बी० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ५–कालिदास और भवभूति—डी० एल० राय। ६–महाकवि भवभूति—डॉ० गंगासागर राय। ७–संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ८–भवभूति और उनका उत्तर-रामचरित—पं० कृष्णमणि त्रिपाठी। ९–संस्कृत नाटककार—श्री कान्तिचन्द भरतिया। १०–संस्कृत काव्यकार—डॉ हरदत्त शास्त्री।

भविष्यपुराण—क्रमानुसार नवाँ पुराण। 'भविष्यपुराण' के नाम से ही ज्ञात होता है कि इसमें भविष्य की घटनाओं का वर्णन है। इस पुराण का रूप समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है, अतः प्रतिसंस्कारों के कारण इसका मूलरूप अज्ञेय होता चला गया है। इसमें समय-समय पर घटित घटनाओं को विभिन्न युगों या समयों के विद्वानों ने इस प्रकार जोडा है कि इसका मूलरूप परिवर्तित हो गया है। ऑफ्रेट ने तो १९०३ ई० में एक लेख लिखकर इसे 'साहित्यिक धोखेबाजी' की संज्ञा दी है। वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'भविष्यपुराण' में इतनी सारी नवीन बातों का समावेश है जिससे इस पर सहसा विश्वास नहीं होता। 'नारदीयपुराण' में इसकी जो विषय-सूची दी गयी है, उससे पता चलता है कि इसमें पाँच पर्व हैं—ब्राह्मपर्व, विष्णुपर्व, शिवपर्व, सूर्यपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व। इसकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित 'भविष्यपुराण' में दो खण्ड है,—पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध एवं उनमें क्रमशः ४१ और १७१ अध्याय है। इसकी जो प्रतियाँ उपलब्ध है उनमें 'नारदीय-पुराण' की विषय-सूची पूर्णरूपेण प्राप्त नही होती। इस पुराण में मुख्य रूप से ब्राह्म-धर्म, आचार एवं वर्णाश्रमधर्म का वर्णन है तथा नागों की पूजा के लिए किये जाने वाले नागपंचमी व्रत के वर्णन में नाग, असुरों एवं नागों से सम्बद्ध कथाएँ दी गयी हैं। इसमे सूर्यपूजा का वर्णन है तथा उसके सम्बन्ध में एक कथा दी गयी है कि किस प्रकार कृष्ण के पुत्र शाम्ब को कुष्ठ रोग हो जाने पर उनकी चिकित्सा के लिए गरुड द्वारा शाक द्वीप से ब्राह्मणों को बुलाकर सूर्य की उपासना के द्वारा रोग-मुक्त कराया गया था। इस कथा में भोजक एवं मग नामक दो सूर्यपूजकों का उल्लेख किया गया है। अल-बेरुनी ने इसका उल्लेख किया है, अतः इसके आधार पर विद्वानों ने इसका समय १०वीं शताब्दी माना है। इसमे सृष्टि की उत्पत्ति के साथ-ही-साथ भौगोलिक वर्णन भी

उपलब्ध होते हैं तथा सूर्य का ब्रह्मरूप में वर्णन कर उनकी अर्चना के निमित्त नाना प्रकार के रङ्गों के फूलों को चढ़ाने का कथन किया गया है। 'भविष्यपुराण' में उपासना और व्रतों का विधान, त्याज्य पदार्थों का रहस्य, वेदाध्ययन की विधि, गायत्री का महत्व, सन्ध्या-वन्दन का समय तथा चतुर्वर्ण विवाह-व्यवस्था का भी निरूपण है। इस पुराण में कलि के अनेकानेक राजाओं का वर्णन है जो रानी विक्टोरिया तक आ जाता है। इसके प्रतिसर्ग पर्व की बहुत-सी कथाओं को आधुनिक विद्वान् प्रक्षेप मानते हैं। इसके भविष्य कथन भी अविश्वसनीय है।

आधारग्रन्थ—१-प्राचीन भारतीय साहित्य-भाग १, खण्ड २-डॉ० विन्टरनित्स। २-अष्टादशपुराणदर्पण—पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र। ३-पुराण तत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ४-पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ५-पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय। ६-भविष्यपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

भागवत चम्पू—इस चम्पू काव्य की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें से दो तंजोर मे एवं एक मद्रास में है। तंजोर वाली प्रति मे इसके रचयिता का नाम रामचन्द्र भद्र तथा मद्रास वाली प्रति में राजनाथ कवि है। विद्वानो ने इसका लेखक राजनाथ को ही माना है। इनका पूरा नाम अय्यल राजुरामभद्र था जो नियोजी ब्राह्मण थे। इनका समय १६ वीं शताब्दी का मध्य है। कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कंसवध तक की घटनाओं का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग मद्रास २१।८२७५ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भागीरथी चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता का नाम अच्युत शर्मा है। इनका निवासस्थान जनस्थान था। इनके पिता का नाम नारायण एवं माता का नाम अन्नपूर्णा था। 'भागीरथीचम्पू' मे सात मनोरथ (अध्याय) है जिसमें राजा भगीरथ की वंशावली एवं गङ्गावतरण की कथा वर्णित है। इनकी शैली प्रवाहपूर्ण एवं भाषा भावानुगामिनी है। इसका प्रकाशन गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई से हो चुका है। इस ग्रन्थ का पद्यभाग गद्यभाग की अपेक्षा अधिक मनोरम है। गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गरिङ्गणगणैराकाशरङ्गाङ्गणे। साङ्गोपाङ्गकुरङ्गसङ्गिरुचिरापाङ्गायमानाङ्कैः। रिङ्गन्तीव सरङ्गमङ्गलमहासंभङ्गवाराङ्गना-भङ्गीभङ्गमृदङ्गभङ्गुररवैः सत्यं समाप्लावयत् ॥४।४१

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भागुरि—संस्कृत के प्राचीन वैयाकरण। मीमांसक जी के अनुसार इनका समय ४००० वि० पू० है। इनके कतिपय नवीन वचनों (व्याकरण-सम्बन्धी) के उद्धरण जगदीश तर्कालंकारकृत 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' मे उपलब्ध होते है। इनके पिता का सम्भवतः भागुर नाम था तथा इनकी बहिन लोकायतशास्त्र की प्रणेत्री भागुरी थी

[दे० महाभाष्य ७।२।४५]। विद्वानों का कथन है कि भागुरि का व्याकरण 'अष्टाध्यायी' से भी विस्तृत था तथा 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' के उद्धृत वचनों से ज्ञात होता है कि उसकी रचना श्लोक में हुई थी [शब्दशक्तिप्रकाशिका पृ० ४४४, काशी]। इनकी कृतियों के नाम हैं—'भागुरि व्याकरण', 'सामवेदीयशाखा', 'ब्राह्मण', 'अलंकार ग्रन्थ', 'त्रिकाण्डकोश', 'सांख्यभाष्य' तथा 'दैवतग्रन्थ'। सोमेश्वर कवि ने 'साहित्यकल्पद्रुम' में भागुरि का मत प्रस्तुत किया है जो यथासंख्य अलंकार के प्रकरण में है। अभिनवगुप्त-कृत 'ध्वन्यालोकलोचन' में भी भागुरि का रसविषयक विचार उद्धृत है [तृतीय उद्योत पृ० ३८६]। भागुरि की प्रतिभा बहुमुखी थी और इन्होंने कई शास्त्रों की रचना की थी।

आधारग्रन्थ—१—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। २—वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग—१ पं० भगवद्दत्त।

भाण—रूपक का एक प्रकार जिसमें धूर्त एवं विट का वर्णन होता है। इसमें एक अंक रहता है। संस्कृत में 'भाण' का अधिक महत्त्व है और इस पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। 'चतुर्भाणी' के नाम से केरल में रचित चार भाग प्रकाशित हो चुके है जिनके रचयिता वररुचि, ईश्वरदत्त, श्यामलिक एवं शूद्रक है [दे० चतुर्भाणी]। अन्य भाणों का विवरण इस प्रकार है—उभयाभिसारिका—इसके प्रणेता वररुचि माने जाते हैं जिनका समय ई० पू० तृतीय शतक है। इसकी भाषा-शैली सशक्त एवं प्रौढ़ है। पद्मप्राभृतक—इस भाण के रचयिता 'शूद्रक' है [दे० शूद्रक]। इसके उद्धरण अनेक ग्रन्थों मे प्राप्त होते है। हेमचन्द्र के 'काव्यानुसासन' (पृ० १८८) मे भी इसका एक पद्य प्राप्त होता है। इसमें प्राचीन समय के कलाकार मूलदेव की कथा वर्णित है। धूर्तविटसंवाद—इसके लेखक ईश्वरदत्त हैं। इसमें विट एवं धूर्त के संवाद कामिनियो एवं वेश्याओ के विषय मे प्रस्तुत किये गये हैं। इसके उद्धरण भोजकृत 'शृङ्गारप्रकाश' एवं हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में प्राप्त होते हैं। पादताडितक—इसके रचयिता श्यामिलक है। इसका एक पद्य क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्य-विचारचर्चा' मे प्राप्त होता है। अभिनवगुप्त ने भी श्यामिलक के नाम का निर्देश किया है, अतः इनका समय ८ वीं एवं नवीं शताब्दी के बीच निश्चित होता है। संस्कृत के अन्य भाणों में वामनभट्ट रचित (१६ वीं शताब्दी के बाद) 'शृङ्गार-भूषण', रामभद्रदीक्षित कृत 'शृङ्गारतिलक,' वरदाचार्य कृत 'वसन्ततिलक', शंकर कवि विरचित 'शारदातिलक', नल्लाकवि विरचित 'शृङ्गारसर्वस्व' (सत्रहवीं सदी) तथा युवराज रचित 'रससदन भाण' प्रसिद्ध हैं।

आधारग्रन्थ—संस्कृत साहित्य का इतिहास—आ० बलदेव उपाध्याय।

भानुदत्त—अलंकारशास्त्र के आचार्य। इनका समय १३ वीं शताब्दी का अन्तिम चरण एवं चौदहवीं शताब्दी का आरम्भिक काल है। ये मिथिला निवासी थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'रसमंजरी' में अपने को 'विदेहभूः' लिखा है जिससे इनका मैथिल होना सिद्ध होता है। इनके पिता का नाम गणेश्वर था। तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालंकारचूडामणिः। देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित् कल्लोलकीर्मीरिता॥ रस-

मंजरी, अन्तिम श्लोक। इन्होंने छह ग्रन्थों की रचना की है—रसमंजरी, रसतरङ्गिणी, अलङ्कारतिलक, चित्रचन्द्रिका, गीतगौरीश एवं कुमारभार्गवीय। इनके द्वारा रचित 'शृङ्गारदीपिका' नामक ग्रन्थ भी हस्तलेख के रूप में प्राप्त होता है किन्तु निश्चित रूप से उसके लेखक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। 'रसमंजरी' नायक-नायिका भेद का अत्यन्त प्रौढ ग्रन्थ है जिसकी रचना सूत्रशैली में हुई है और स्वयं भानुदत्त ने उस पर विस्तृत वृत्ति लिख कर उसे अधिक स्पष्ट किया है। इसमें अन्य रसो को शृङ्गार में गतार्थ कर आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसपर आचार्य गोपाल ने १४२८ ई० मे 'विवेक' नामक टीका की रचना की है। आधुनिक युग में कविशेखर पं० बदरीनाथ शर्मा ने सुरभि नामक संस्कृत व्याख्या लिखी है जो चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है। इसकी हिन्दी व्याख्या (आ० जगन्नाथ पाठक कृत) चौखम्बा से ही प्रकाशित हो चुकी है। 'रसतरङ्गिणी' रस-सम्बन्धी वैज्ञानिक विवेचन करने वाला ग्रन्थ है। इसमें आठ तरङ्ग है जिनमें भाव एवं स्थायिभाव, विभाव एवं उसके भेद, कटाक्षादि अनुभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारीभाव, नौ रस तथा शृङ्गार रस का विवेचन, हास्य तथा अन्य रस, स्थायी एवं व्यभिचारिभावों का विवेचन है। इसमे रससम्बन्धी अनेक नवीन विषयो का निरूपण है। 'अलंकारतिलक' मे पाँच परिच्छेद है तथा 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का अनुकरण किया गया है। इसमे ६ शब्दालकार एवं ७१ अर्थालंकार वर्णित है। 'गीतगौरीश' गीतिकाव्य है जिसमे दस सर्ग है। इसकी रचना गीतगोविन्द के आधार पर हुई है। अलङ्कारतिलक मे काव्य के विभिन्न अङ्गों—अलङ्कार, गुण, रीति, दोष तथा काव्यभेद का वर्णन है।

भानुदत्त की प्रसिद्धि मुख्यतः 'रसमंजरी' एवं 'रसतरङ्गिणी' के कारण है। ये रसवादी आचार्य है। इन्होने दोनो ही ग्रन्थों मे शृङ्गार का रसराजत्व स्वीकार करते हुए अन्य रसो का उसी मे अन्तर्भाव किया है। इन्होने रस को काव्य की आत्मा माना है। ये काव्य को शरीर, गति, रीति, वृत्ति, दोषहीनता, गुण और अलङ्कार को इन्द्रियाँ, व्युत्पत्ति को प्राण एवं अभ्यास को मन मानते है। [अलङ्कार-तिलक मे] काव्य के तीन प्रकार हैं—उत्तम, मध्यम एव अधम तथा भाषा के विचार से भानुदत्त काव्य के चार प्रकार मानते हैं—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं मिश्र। ये शब्द और अर्थ को काव्य एवं रीतियों को काव्य का धर्म मानते है। इन्होंने रस के अनुकूल विकार को भाव कहा है तथा इन्हें रस का हेतु भी माना है। भानुदत्त ने रस के दो प्रकार माने है—लौकिक एवं अलौकिक। लौकिक रस के अन्तर्गत शृङ्गारादि रसों का वर्णन है और अलौकिक के तीन भेद किये गए हैं—स्वाप्निक, मानोरथिक एव औपनायिक। इन्होने 'रसतरंगिणी' के सप्तम तरंग मे माया रस का वर्णन किया है। 'रसतरंगिणी' का हिन्दी टीका के साथ प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से हुआ है।

आधारग्रन्थ—१—संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। २—भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त—राजवंश सहाय 'हीरा' चौखम्बा प्रकाशन।

भामह—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'काव्यालंकार' नामक ग्रन्थ की रचना की है [दे० काव्यालंकार]। भामह अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इन्होंने अलङ्कार को ही काव्य का विधायक तत्त्व स्वीकार किया है। इनका समय षष्ठ शतक का मध्य माना जाता है। इसकी पुष्टि 'काव्यालङ्कार' में उद्धृत बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग कृत प्रत्यक्ष के लक्षण से होती है—प्रत्यक्षं कल्पनापोढम् (पंचम परिच्छेद)। दिङ्नाग का समय ५०० ई० के आसपास है। भामह का मत धर्मकीर्त्ति (दिङ्नाग के टीकाकार, समय ६२० ई०) के संशोधित मत से भिन्न है। अत: ये दिङ्नाग के परवर्त्ती एवं धर्मकीर्त्ति के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। भामह को धर्मकीर्त्ति के मत का ज्ञान नहीं था, अन्यथा वे उनके विचार को भी अवश्य ही स्थान देते। अनेक आचार्यों ने दण्डी को भामह से पूर्ववर्त्ती माना है पर अब निश्चित हो गया है कि दण्डी भामह के परवर्त्ती थे। भामह के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। ग्रन्थ के अन्त मे इन्होंने अपने को 'रक्रिलगोमिन्' का पुत्र कहा है। सुजनावगमाय भामहेन, ग्रथितं रक्रिलगोमिसूनुनेदम् ॥ काव्यालङ्कार ६।६४। 'रक्रिल' नाम के आधार पर अनेक विद्वानों ने भामह को बौद्ध माना है, पर अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। भामह ने पुस्तक के आरम्भ (मङ्गल-श्लोक मे) 'सर्वज्ञ' की प्रार्थना की है—'प्रणम्य सार्व सर्वज्ञं मनोवाक् कायकर्मभिः' जिसे विद्वान् बुद्ध का पर्याय मान कर इन्हें बौद्ध स्वीकार करते है। पर 'सर्वज्ञ' शब्द शङ्कर के लिये भी प्रयुक्त होता है; अतः इस पर पण्डितों ने आपत्ति प्रकट की है। भामह ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी बुद्ध की चर्चा नहीं की है और सर्वत्र, रामायण एवं महाभारत के नायकों का वर्णन किया है। अत: ये निश्चित रूप से वैदिकधर्मावलम्बी ब्राह्मण थे। ये काश्मीर-निवासी माने जाते हैं।

भामह ने सर्वप्रथम काव्यशास्त्र को स्वतन्त्रशास्त्र का रूप प्रदान किया और काव्य मे अलङ्कार की महत्ता स्वीकार की। इनके अनुसार अलङ्कारों के बिना कविता-कामिनी उसी प्रकार सुशोभित नहीं हो सकती जिस प्रकार भूषणो के बिना कोई रमणी सुशोभित नहीं होती। इन्होने रस को 'रसवत्' आदि अलङ्कारो मे अंतर्भुक्त कर उसकी महत्ता कम कर दी है।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

भारत चम्पू—इसके रचयिता अनन्तभट्ट है। इन्होंने 'भारत चम्पू' एवं 'भागवत चम्पू' नामक दो चम्पू काव्यो की रचना की है। इनका समय अज्ञात है। कहा जाता है कि 'भागवत चम्पू' के रचयिता अभिनव कालिदास की प्रतिस्पर्द्धा के कारण इन्होंने दोनो ग्रन्थो का प्रणयन किया था। इस दृष्टि से इनका समय ११ वीं शताब्दी है। 'भारतचम्पू' पर मानवदेव की टीका प्रसिद्ध है जिसका समय १६ वी शताब्दी है। यह एक विशाल ग्रन्थ है जिसमे सम्पूर्ण 'महाभारत' की कथा कही गई है। इसमे श्लोको की संख्या १०४१ एवं गद्य-खण्डों की संख्या २०० से ऊपर है। 'भारतचम्पू' वीररसप्रधान काव्य है। इसका प्रारम्भ राजा पाण्डु के मृगया-वर्णन से होता है।

पं० रामचन्द्र मिश्र की हिन्दी टीका के साथ भारत चम्पू का प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन से १९५७ ई० में हो चुका है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत चम्पू काव्य का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भारतचम्पूतिलक—इस चम्पू के प्रणेता लक्ष्मणसूरि हैं। इनका निवास-स्थान शनगर था। ये अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में विद्यमान थे। इनके पिता का नाम गङ्गाधर एवं माता का नाम गंगाम्बिका था। 'भारतचम्पू' में महाभारत की उस कथा का वर्णन है जिसका सम्बन्ध पाण्डवों से है। पाण्डवो के जन्म से लेकर युधिष्ठिर के राज्य करने तक की घटना इसमे वर्णित है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३३२ मे प्राप्त होता है। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपना परिचय दिया है—इत्थं लक्ष्मणसूरिणा शनगरग्रामावतंसायितश्रीगंगाधरधीरसिन्धुविधुना गंगाम्बिकासूनुना। श्राव्ये भारतचम्पुकाव्यतिलके भव्ये प्रणीते महत्याश्वासोभिनवार्थ-शब्दघटनासार्थश्चतुर्थोगमत्।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भारत पारिजात महाकाव्य—बीसवीं शताब्दी का महाकाव्य। इसके रचयिता श्री भगवदाचार्य हैं। इसमें महात्मा गान्धी का जीवन-चरित तीन भागों मे वर्णित है। प्रथम भाग मे २५ सर्ग हैं जिसमे दांडी प्रयाण तक की कथा है। द्वितीय भाग में १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन तक की घटना २९ सर्गों में वर्णित है। तृतीय भाग मे २१ सर्गों मे नोवाखाली तक की यात्रा का उल्लेख है। इसमे कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है गान्धी-दर्शन को लोकप्रिय बनाना और इसमे उसकी भाषा की सरलता सहायक हुई है। नानापराधं हरिमन्दिरेषु यैवा प्रवेशः प्रतिषिद्ध आसीत्। तेषां ममो हर्षभरो न चित्ते संचिन्त्य सर्वोद्धृतिकृत्प्रसूतिम्॥ २।२८।

भारतीय-दर्शन—दर्शन शब्द का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है—जिसके द्वारा देखा जाय दृश्यते अनेन इति दर्शनम्। यहाँ 'देखना' शब्द 'पर्यालोचन' या 'विश्लेषण' का द्योतक है। दर्शन शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ (तत्त्व-चिन्तन के अर्थ में) में किया जाता है। जिस शास्त्र के द्वारा विश्व के मूल तत्त्व का पर्यालोचन किया जाय तथा वस्तु के सत्यभूत तात्त्विक स्वरूप का विवेचन हो, वह दर्शन है। भारतीय-दर्शन मे धर्म और दर्शन (अध्यात्म) का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया है। भारतीय जीवन के आध्यात्मिक प्रयोजन ने ही दर्शन पर धर्म का रङ्ग भर दिया है। यहाँ 'भारतीय-दर्शन' का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया गया है। संस्कृत माध्यम से रचित तत्त्व-चिन्तन की विविध धाराओ का विवेचन ही हमारा प्रतिपाद्य है। प्राचीन समय से ही भारतीय दर्शन के दो विभाग किये गए हैं—आस्तिक तथा नास्तिक। मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक की गणना आस्तिक दर्शनो में होती है। इन्हें 'षड्दर्शन' भी कहा जाता है। आस्तिक शब्द का अर्थ ईश्वरवादी न होकर वेद में आस्था रखनेवाला है। षड्दर्शनों में भी सभी-सभी ईश्वर को नहीं मानते, पर

इन्हें आस्तिक दर्शन इसलिए कहा जाता है कि ये वेद में श्रद्धा रखते हैं। नास्तिक दर्शनों में में चार्वाक, बौद्ध एवं जैन आते हैं। चूँकि ये वेदों को नहीं मानते, अतः इन्हें नास्तिक-दर्शन कहा जाता है। भारतवर्ष में परस्पर विरोधी (आस्तिक और नास्तिक) दर्शनों की परम्परा अति प्राचीन है। भारतीय-दर्शन के मूलस्रोत वेद हैं। प्रायः सभी दर्शनों—विशेषतः षड्दर्शनों के मूलभाव वेदों में सुरक्षित हैं। भारतीय दर्शन को चार कालों में विभक्त किया जाता है—वैदिककाल (१५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक) महाकाव्यकाल (६०० ई० पू० से २०० ई० पश्चात् तक), सूत्रकाल (२०० ईस्वी) तथा टीकाकाल। वैदिककाल मे भारतीय तत्त्व-चिन्तन का बीजारोपण हो गया था और विविध प्राकृतिक शक्तियों की आराधना के निमित्त ऋषियों ने जो उद्‌गार व्यक्त किए थे उनमे दार्शनिक पुट भी मिला हुआ था। कालान्तर में इन्हीं वेद मन्त्रों से विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। वैदिक मन्त्रों में निहित तात्त्विक विचारों की पूर्णता उपनिषदों मे दिखाई पड़ी और इस समय तक आकर भारतीय तत्त्व-चिंतन की सुदृढ परम्परा स्थापित हुई।

महाकाव्यकाल—'रामायण' एवं 'महाभारत' में विविध दार्शनिक सम्प्रदायों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'रामायण' मे तो 'चार्वाकदर्शन' की भी चर्चा है और उसके उन्नायक बृहस्पति माने गए हैं। बौद्ध, जैन, शैव तथा वैष्णव मत की पद्धतियाँ इसी युग में स्थापित हुई हैं। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में पाँच दार्शनिक सम्प्रदायों का उल्लेख है—साङ्ख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद तथा पाशुपत, [शान्तिपर्व अध्याय ३४९]। सूत्रकाल—यह युग षड्दर्शनो के मूल ग्रन्थों के लेखन का है जब सूत्ररूप में तत्त्व-चिन्तन के तथ्य उपस्थित किये गए। टीकाकाल—इस काल में भारतीय तत्त्व-चिन्तन के महान् आचार्यों का आविर्भाव हुआ जिन्होने अपनी प्रतिभा के द्वारा विभिन्न भाष्यों की रचना कर दार्शनिक सिद्धान्तो के निगूढ़ तत्त्वो की व्याख्या की। ऐसे विचारकों में कुमारिल, शंकर, श्रीधर, रामानुज, मध्व, वाचस्पति मिश्र, उदयन, भास्कर, जयन्तभट्ट, विज्ञानभिक्षु तथा रघुनाथ आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। मध्यकाल में कतिपय विद्वानों ने सभी भारतीय दर्शनो का सार-संचय करते हुए इतिहास ग्रन्थो की रचना की है। ऐसे ग्रन्थो मे हरिभद्र रचित 'षड्दर्शन समुच्चय' (छठी शती), सामन्तभद्र लिखित 'आत्म-मीमासा' भावविवेक कृत 'तर्कज्वाला' आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध है। ऐसे संग्रहो मे प्रसिद्ध वेदान्ती माधवाचार्य का 'सर्वदर्शनसंग्रह' (१४ वीं शताब्दी) अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमे सभी भारतीय-दर्शनों का सार दिया गया है। भारतीय-दर्शन के निम्नांकित प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं—चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, शैवदर्शन, तन्त्र एवं वैष्णवदर्शन। [सभी दर्शनों का परिचय उनके नामों के सामने देखें]

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) भाग १।

भारद्वाज—संस्कृति के प्राक्‌पाणिनि वैयाकरण तथा अनेक शास्त्रो के निर्माता। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय ९३०० वर्ष वि० पू० है। इनकी व्याकरणविषयक रचना 'भारद्वाजतन्त्र' थी जो सम्प्रति अनुपलब्ध है। 'ऋक्तन्त्र' (१।४)

में इन्हें ब्रह्मा, बृहस्पति एवं इन्द्र के पश्चात् चतुर्थ वैयाकरण माना गया है। इसमें यह भी उल्लिखित है कि भारद्वाज को इन्द्र द्वारा व्याकरणशास्त्र की शिक्षा प्राप्त हुई थी। इन्द्र ने उन्हें घोषवत् एवं ऊष्म वर्णों का परिचय दिया था। 'ऋक्तन्त्र'—१।४। 'वायुपुराण' के अनुसार भारद्वाज को पुराण की शिक्षा तृणंजय से प्राप्त हुई थी [१०३। ६३]। 'अर्थशास्त्र' (कौटिल्य कृत) से ज्ञात होता है कि भारद्वाज ने किसी अर्थशास्त्र की भी रचना की थी [१२।१]। भारद्वाज बहुप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की थी। 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार उनका आश्रम प्रयाग में गङ्गा-यमुना के संगम पर था [अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४]। उनकी कई रचनाएँ हैं जिनमें अभी दो ही प्रकाशित हुई हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं— 'भारद्वाज व्याकरण', 'आयुर्वेदसंहिता', 'धनुर्वेद', 'राजशास्त्र', 'अर्थशास्त्र'। प्रकाशित ग्रन्थ —क—यन्त्रसर्वस्व (विमानशास्त्र)—आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा, दिल्ली से प्रकाशित, ख—शिक्षा—भण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास–पं० युधिष्ठिर मीमांसक भाग १।

भारवि—संस्कृत के महान् कवि। संस्कृत महाकाव्य के इतिहास में 'अलंकृत-शैली' का प्रवर्तक होने का श्रेय इन्हें ही है। 'किरातार्जुनीय' भारवि की एकमात्र अमर कृति है। इनका प्रामाणिक जीवन-वृत्त अभी तक अन्धकारमय है। इसका समय-निर्धारण पुलकेशी द्वितीय के समय के एक एहोल के शिलालेख से होता है जिसमें कवि रविकीर्त्ति ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में महाकवि कालिदास के साथ भारवि का भी नाम लिया है। इस शिलालेख में जैन मन्दिर के निर्माण एवं पुलकेशी द्वितीय की गौरवगाथा है। उसी क्रम में कवि रविकीर्त्ति ने अपने को कालिदास एवं भारवि के मार्ग पर चलने वाला कहा है। शिलालेख का निर्माणकाल ६३४ ई है। येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदास-भारविकीर्त्तिः॥ कवि ने जैन मन्दिर का निर्माण ६३४ ई० में कराया था। इससे सिद्ध होता है कि इस समय तक दक्षिण में भारवि का यश फैल गया था। इनके स्थिति-काल का पता एक दानपत्र से भी लगता है। यह दानपत्र दक्षिण के किसी राजा का है जिसका नाम पृथ्वीकोगणि था। इसका लेखनकाल ६९८ शक (७७६ ई०) है। इसमें लिखा है कि राजा के सात पीढ़ी पूर्व दुर्विनीत नामक व्यक्ति ने भारवि कृत 'किरातार्जुनीय' के पन्द्रहवें सर्ग की टीका रची थी। इस दानपत्र से इतना निश्चित हो जाता है कि भारवि का समय सप्तम शती के प्रथम चरण के बाद का नहीं हो सकता। वामन एवं जयादित्य की 'काशिकावृत्ति' में भी, जिसका काल ६५० ई० है, किरातार्जुनीय के श्लोक उद्धृत हैं। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में अपने पूर्ववर्त्ती प्रायः सभी कवियों का नामोल्लेख किया है, किन्तु उस सूची में भारवि का नाम नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि ६०० ई० तक भारवि उतने प्रसिद्ध नहीं हो सके थे। भारवि पर कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है और माघ पर भारवि का प्रभाव पड़ा है। अतः इस दृष्टि से भारवि कालिदास के परवर्त्ती एवं माघ के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। विद्वानों ने भारवि का काल ५५० ई० स्वीकार किया है जो बाणभट्ट के पचास वर्ष पूर्व का है।

"इसलिए ५०० ई० की अपेक्षा ५५० ई० के लगभग ही उनके समय को मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।" संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ पृ० १३३। ऐहोल के शिलालेख का रचनाकाल इस प्रकार है—पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥ गंगनरेश दुर्विनीत का साक्ष्य दानपत्र में इस प्रकार अंकित है—शब्दावतारकारेण देवभारती-निबद्धवड्डकथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन । राजशेखरकृत 'अवन्तीसुन्दरीकथा' के अनुसार भारवि परम शैव थे। 'किरातार्जुनीय' की कथा से भी यह बात सिद्ध होती है। यतः कौशिककुमारो (दामोदरः) महाशैवं महाप्रभावं गवां प्रभवं प्रदीप्रभासं भारविं रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्य कर्मणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात् ।

राजशेखर ने इस आसय का उल्लेख किया है कि कालिदास की तरह उज्जयिनी में भारवि की भी परीक्षा हुई थी—श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकार-परीक्षा—इह-कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः। हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्। कहा जाता है कि रसिकों ने भारवि के काव्य पर मुग्ध होकर इन्हें 'आतपत्रभारवि' की उपाधि दी थी। किरात के निम्नांकित श्लोक में इसका प्रमाण प्राप्त होता है—उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः। वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥ किरात ५।३९। "स्थल कमलों से वनप्रदेश भरा हुआ है, इनसे भी पराग झर रहे है। वायु झोंके से वह रही है। वह पराग को उड़ा कर आकाश में फैला रही है। इस पर कमल का पराग स्वर्णमय छत्र की शोभा धारण कर रहा है।" भारवि के सम्बन्ध में सुभाषित संग्रहों में कतिपय प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—सुभाषितवली २।४। १—लक्ष्मीबंधकिनं वध्वा भारवीयं सुभाषितम्। प्रक्रान्तपुत्रहत्यायां निशिघं माघं न्यवारयत ॥ हरिहर। २—जनितार्जुनतेजस्कं तमीश्वरमुपाश्रिता। रात्रेव भारवेर्भाति कृतिः कुवलयप्रिया ॥ सोमेश्वर (कौ० कौ० १।४)। ३—विमर्दे व्यक्तसौरभ्या भारती भारवेः कवेः। धत्ते बकुलमालेव विदग्धानां चमत्क्रियाम् ॥ अज्ञात। ४—प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना। सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिव नोपजीव्या ॥ अज्ञात। ५—भारवेरर्थगौरवम्—मल्लिनाथ। ६—नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः—वही। ७—वृतच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता। प्रतिभा भारवेर्येन 'सच्छायेनाधिकीकृता ॥ क्षेमेन्द्र सुवृत्ततिलक। भारवि ने एकमात्र महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' की रचना की है जिसमें 'महाभारत' (वनपर्व) के आधार पर अर्जुन एवं किरात वेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन है। इसमें १८ सर्ग है तथा तत्कालीन प्रचलित महाकाव्य के शास्त्रीय स्वरूप का पूर्ण निदर्शन है। (विशेष विवरण के लिए दे० किरातार्जुनीय)। मल्लीनाथ ने किरातार्जुनीय का परिचय इस प्रकार दिया है—नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजस्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः। शृङ्गारादिरसोऽयमत्र विजयी वीरप्रधानोरसः शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम् ॥ भारवि ने महाकाव्य के लक्षणानुसार इसमें वस्तुव्यंजना के अन्तर्गत बीच-बीच में षड्ऋतु, पर्वत, सूर्यास्त, जलक्रीडा आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। चतुर्थ सर्ग में शरद्ऋतु का वर्णन, पंचम में हिमालय

पर्वत, षष्ठ में युवतिप्रस्थान, अष्टम में सुराङ्गना-विहार एवं नवम सर्ग में सुरसुन्दरी-संभोग का वर्णन है। किरातार्जुनीय का प्रारम्भ 'श्री' शब्द (श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनीम्) से हुआ है तथा प्रत्येक शब्द के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द आया है। इसमे कथावस्तु के संग्रथन में अन्य अनेक विषय भी अनुस्यूत हो गए हैं—जैसे, राजनीति-नैपुण्य, मुनि-सहकार, पर्वतारोहण, व्यास-मुनि, अप्सरा, शिविर-सन्निवेश, गन्धर्व तथा अप्सराओं का पुष्पावचय, सायंकाल, चन्द्रोदय, पानगोष्ठी, प्रभात, अर्जुन की तपस्या एवं युद्ध।

भारवि मुख्यतः, कलापक्ष के कवि हैं। इनका ध्यान पदलालित्य एवं अर्थ-गाम्भीर्य दोनों पर ही रहता है। इनमे भी अर्थगाम्भीर्य भारवि का प्रिय विषय है। शाब्दी-क्रीडा प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति इनमे है अवश्य, किन्तु वह परिमित क्षेत्र मे दिखाई पडती है। कवि ने पंचम एवं पंचदश सर्गों में शाब्दी-क्रीडा का प्रदर्शन किया है। सम्पूर्ण पन्द्रहवाँ सर्ग चित्रकाव्य मे रचित है जिसमे पूरे के पूरे श्लोक एकाक्षर है। डॉ० कीथ ने इनकी इस प्रवृत्ति की आलोचना की है—"विशेषतया पन्द्रहवे सर्ग मे उन्होंने अत्यन्त मूर्खतापूर्ण ढङ्ग से अत्यधिक श्रम-साध्य चित्रकाव्य की रचना का प्रयत्न किया है जो अलेग्जेंड्रियन कवियों की अत्यन्त कृत्रिमता का स्मरण दिलाता है। इस प्रकार एक पद्य मे पहली और तीसरी, तथा दूसरी और चौथी पंक्तियाँ समान हैं। एक दूसरे पद्य मे चारो समान हैं; एक मे लगभग च और र का ही प्रयोग किया गया है; दूसरे मे केवल स, श, य और ल वर्ण ही है, अन्य पद्यों मे प्रत्येक पंक्ति उल्टी तरफ से ठीक उसी प्रकार पढ़ी जाती है जैसे आगे वाली पंक्ति, या पूरा पद्य ही उल्टा पढ़ा जाने पर अगले पद्य के समान हो जाता है; एक पद्य के तीन अर्थ निकलते है; दो में कोई ओष्ठ्य वर्ण नही हैं; अथवा प्रत्येक पद्य सीधी तथा उल्टी ओर से एक ही रूप में पढ़ा जा सकता है।" संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १६९। एक उदाहरण—न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु। नुन्नोऽनुन्नो न नुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ किरात १५।१४। "अरे अनेक प्रकार के मुख वालो! निकृष्ट व्यक्ति द्वारा विद्ध किया गया पुरुष पुरुष नहीं है और निकृष्ट व्यक्ति जो विद्ध करता है वह भी पुरुष नही है। स्वामी के अविद्ध होने पर विद्ध भी पुरुष अविद्ध ही है और अतिशय पीड़ित व्यक्ति को पीडा पहुचाने वाला व्यक्ति निर्दोष नही होता।" भारवि ने काव्यादर्श के सम्बन्ध मे 'किरातार्जुनीय' मे विचार किया है और यथासम्भव उस पर चलने का प्रयास भी किया है। युधिष्ठिर के शब्दों में अपनी काव्यशैली के आदर्श को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—स्फुरता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्। रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥ २।२७। इसमें चार तत्त्वों का विवेचन है—क—पदों के द्वारा अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति का होना, ख—अर्थगाम्भीर्य, ग—नये-नये अर्थों की अभिव्यक्ति तथा घ—वाक्यो मे परस्पर सम्बन्ध का होना अर्थात् अभीष्ट अर्थ प्रदर्शित करने की शक्ति का होना। भारवि काव्य मे कोमलकान्त पदावली श्रुतिमधुर शब्दों के प्रयोग के भी पक्ष में है—विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ॥ १४।३। इन्हीं विशेषताओं के कारण भारवि की प्रसिद्धि संस्कृत साहित्य में अधिक है। काव्य

में उपयुक्त शब्दावली की योजना तथा अर्थ की स्पष्टता एवं गम्भीरता के लिए भारवि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'सर्वमनोरमागिरः' कहकर इसी अभिप्राय को व्यंजित किया है। स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं, विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः। इति स्थितायां प्रतिपूरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥ १४।५

'किरातार्जुनीय' संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्यों में माना जाता है। इसमे जो आख्यान चुना गया है वह महाकाव्य की कथावस्तु के सर्वथा अनुपयुक्त है, पर कवि ने अपनी रचना-चातुरी के द्वारा इसे अठारह सर्गों में लिख कर विशालकाय काव्य का रूप दिया है। इसका विपुल विस्तार कवि की अद्भुत वर्णन-शक्ति, उर्वर मस्तिष्क एवं मौलिक उद्भावना-शक्ति का परिचायक है। महाकाव्य मे जिस प्रकार की स्वाभाविक कथावस्तु का प्रवाह होना चाहिये उसका यहाँ अभाव है। प्रकृति आदि के वर्णनों का समावेश कर कवि ने कथा की क्षीणता को भरने का प्रयास किया है, पर इनके वर्णन स्वतन्त्ररूप से गुंफित मुक्तक काव्य की तरह लगते हैं और कथा-प्रसङ्ग के साथ उनका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। 'किरातार्जुनीय' वीर-रसप्रधान महाकाव्य है तथा शृङ्गारादि रस अङ्गीभूत हैं। कवि ने वीररस की निष्पत्ति के लिए रसानुकूल वर्णों का विन्यास कर वीरता के वातावरण को झंकृत किया है। भीम एवं अर्जुन की उक्तियों तथा कार्य-व्यापार के द्वारा वीररस की व्यंजना हुई है। किरात वेशधारी शिव के साथ अर्जुन के मल्लयुद्ध को रूपायित करने में कवि ने वीरता का भाव भर दिया है। द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः। प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः ॥ किरात० २।२३। "कौन है शत्रुओ मे से ऐसा जो दिदिगन्तों मे विख्यात, दिग्गजो और चारों समुद्रो की भाति युद्धस्थल की ओर प्रस्थान करते हुए, इन्द्र के समान पराक्रमी आपके चार कनिष्ठ भ्राताओ के पराक्रम को सहन कर सके।"

भारवि का शृङ्गार वर्णन मर्यादित न होकर ऐद्रिक अधिक है। इनके शृङ्गार मे शृङ्गाररसोचित तरलता का भाव न होकर ऐन्द्रियता का प्राधान्य है जिससे शृङ्गार रस में वासनामय चित्र अंकित हो गए हैं। इतना होने पर भी उनमें सरसता है—प्रियेऽपरा यच्छति वाचमुन्मुखी निबद्धदृष्टिः शिथिलाकुलोच्चया। समादधे नांशुकमाहितं वृथा विवेद पुष्पेषु न पाणिपल्लवम् ॥ ८।१५ "बोलते हुए अपने प्रियतम के ऊपर निबद्ध दृष्टि वाली ओर ऊपर को मुख उठाये दूसरी स्त्री ने गाँठ के शिथिल होकर खुल जाने पर भी अपना अधोवस्त्र नहीं सँभाला और न वह फूलों पर व्यर्थ ही प्रसारित अपने पाणि-पल्लव को जान सकी।" प्रगल्भा नायिका की रतिविशारदता का चित्र—व्यपोहितं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किल पुष्पजं रजः। पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥ ८।१९ "प्रिय को अपने नेत्र मे गिरे हुए पुष्प-पराग को मुँह की हवा से निकालने में असमर्थ पाकर किसी नायिका ने उन्मत्त होकर अपने उन्नत तथा कठोर (पुष्ट) स्तनों के द्वारा प्रिय के वक्षःस्थल पर (इसलिए) जोर से मारा (कि नायक उसकी आँख से

पराग निकालने के बहाने चुम्बन करना चाहता था।)" किरातार्जुनीय मे कई स्थलों पर शारीरिक सौन्दर्य के उद्घाटन के लिए अङ्गो का वर्णन किया गया है तथा नारी के रूप वर्णन के अतिरिक्त उनके हावभावो के चित्रण में सौन्दर्य की विवृत्ति हुई है। दसवें सर्ग मे अप्सराओ तथा गन्धर्व युवतियों की वासनामय चेष्टाओं तथा कृत्रिम भाव-भंगियो का प्रदर्शन अमर्यादित शृङ्गार की सीमा पर पहुच गया है। भारवि ने प्रथम सर्ग मे द्रौपदी के चुभते हुए शब्दो मे भाषणकला का सुन्दर विकास दिखलाया है। द्रौपदी-संवाद संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि के रूप मे प्रतिष्ठित है। युधिष्ठिर के जीवन की विषमता का चित्र खींच कर द्रौपदी उनके मन में उत्साह का भाव जगाना चाहती है—पुराधिरूढ. शयनं महाधनं विबोध्यसे यः स्तुतिगीतमङ्गलैः। अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः॥ पुरोपनीतं नृप रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा। तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः॥ "पहले आप बहुमूल्य पलंगों पर शयन करते थे एवं वन्दी भाटो की स्तुति के द्वारा आप की नीद टूटती थी, पर अब आप कुश आदि कठोर घास से आच्छादित पृथ्वी पर सोते है और स्यारिनो के अमङ्गलमय शब्दो से जागते हैं। राजन्! पहले आप का यह शरीर द्विजातियों को खिलाकर बचे हुए अन्न से सुन्दर पुष्टि को प्राप्त हुआ था, अब आप वनैले फलो को खाकर गुजर करते है, जिससे आप का शरीर और यश दोनो क्रमशः क्षीण हो जाते हैं।

भारवि कवि के अतिरिक्त महान् पण्डित एवं राजनीति-विशारद भी ज्ञात होते है। इनके महाकाव्य मे नीति-बोध तथा जीवन-विवेक के तथ्य प्राप्त होते है। 'किरातार्जुनीय' मे कई स्थलो पर नैतिक आदर्शों का निरूपण किया गया है। प्रथमतः प्रथम सर्ग में वनेचर एवं युधिष्ठिर-संवाद मे इसका विवेचन है तत्पश्चात् द्वितीय सर्ग मे भीम एवं युधिष्ठिर-संवाद मे। द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः समूलमुन्मूलयतीव मे मनः। परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्॥ १।४१। "आप की यह (सोचनीय) दशा शत्रुओ के कारण है, इसलिए वह मुझे विशेष कष्ट देती है। जिन मानी वीरो की शौर्य-सम्पत्ति शत्रुओं द्वारा निहत नही होती, उनकी विपत्ति भी उत्सव के समान है।" किरातार्जुनीय मे युधिष्ठिर, भीम, एवं द्रौपदी तीनो ही नीतिज्ञो के रूप मे चित्रित है। इनके कथन में राजा का ध्येय शक्ति, समृद्धि एवं विजय है। इसमे अनेक सूक्तियाँ जीवनादर्श से विभूषित हैं—क—हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। १।४, ख—व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु येन मायिनः ।।१।३०, ग—निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धय. ॥ २।१५, घ—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ १।३०, भारवि की शैली प्रभावशाली, प्रांजल तथा हृदयहारिणी है। इन्होंने अलंकारों के प्रयोग में भी चतुरता से काम लिया है। अर्थान्तरन्यास अलंकार के तो ये मानो सम्राट् हैं। जीवन का सूक्ष्म अनुभूति को गुंफित करते हुए कवि ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का सहारा लिया है। इनकी छन्द-योजना रसानुकूल एवं मनोरम है। 'किरातार्जुनीय' में पंचम सर्ग से १८ वें तक सोलह प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इन्द्रवज्रा, उपजाति,

द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, वैतालीय, प्रमिताक्षरा, स्वागता एवं पुष्पिताग्रा इनके अत्यन्त प्रिय छन्द हैं। इनकी शैली अलंकृत होते हुए भी सरस है।

आधारग्रन्थ—१—संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २—संस्कृत-कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ३—संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ४—संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ५—संस्कृत के महाकवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय। ६—भारतीय संस्कृति—डॉ० देवराज। ७—किरातार्जुनीयम्—हिन्दी टीका—रामप्रताप शास्त्री।

भावप्रकाश—आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। इस ग्रन्थ की गणना आयुर्वेदशास्त्र के लघुत्रयी के रूप मे होती है। प्रणेता भावमिश्र हैं जो श्रीमिश्रलटक के पुत्र थे। 'भावप्रकाश' की एक प्राचीन प्रति १५५८ ई० की प्राप्त होती है, अतः इसका रचनाकाल इसी के लगभग ज्ञात होता है। फिरङ्ग रोग का वर्णन होने के कारण विद्वानो ने इसका समय १५ वी शताब्दी के लगभग माना है। फिरंग रोग का सम्बन्ध पोर्चगीज रोग से है। इसमे तीन खण्ड है—पूर्व, मध्य एवं उत्तर। प्रथम खण्ड मे अश्विनीकुमार तथा आयुर्वेद की उत्पत्ति का वर्णन है तथा इसी खण्ड में गर्भप्रकरण, दोष तथा धातुवर्णन, दिनचर्या, ऋतुचर्या, धातुओ का जारण-मारण, पंचकर्म विधि आदि का विवेचन है। मध्यम खण्ड मे ज्वरादि की चिकित्सा तथा अन्तिम खण्ड मे वाजीकरण अधिकार है। इस ग्रन्थ मे लेखक ने समसामयिक प्रचलित सभी चिकित्साविधि का वर्णन किया है। भावमिश्र ने 'गुणरत्नमाला' नामक चिकित्सा-विषयक ग्रन्थ की भी रचना की थी जो हस्तलेख के रूप मे इण्डिया ऑफिस पुस्तकालय में है [दे० जोली मेडिसिन पृ०]। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन से हो चुका है। टीका का नाम विद्योतिनी हिन्दी टीका है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

भास्कराचार्य—भारतवर्ष के अत्यन्त प्रतिभाशाली ज्योतिर्विद्। इनका जन्मकाल १११४ ई० है। ये विज्जडविड नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम महेश्वर उपाध्याय था जो इनके गुरु भी थे। इनके कथन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषा प्रयत्नः। लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणितं लघु भास्करेण॥ इन्होने लीलावती, बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल एवं सर्वतोभद्र नामक ग्रन्थो की रचना की है। 'सिद्धान्तशिरोमणि' मे ब्रह्मगुप्त, पृथूदक स्वामी, आर्यभट्ट एवं लल्ल के सिद्धान्तो का प्रभाव है। इन्होने स्वयं इस ग्रन्थ पर 'वासना' नामक भाष्य की भी रचना की है। 'सिद्धान्तशिरोमणि' मे उसका निर्माणकाल भी दिया हुआ है। रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः। रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणीरचितः॥ इसके अनुसार इसका रचनाकाल ११५० ई० है। 'लीलावती' ग्रन्थ लीलावती संज्ञक लडकी को सम्बोधित कर लिखा गया है जो प्रश्नोत्तर के रूप मे है। यह पाटीगणित एवं क्षेत्रमिति का ग्रन्थ है। भास्कराचार्य ने मुख्यतः गणित ज्योतिष का ही वर्णन किया है, फलित

ज्योतिष पर इनके ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते, किन्तु 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' की 'पीयूषधारा' टीका में इनके फलितज्योतिषविषयक श्लोक प्राप्त होते हैं।

आधारग्रन्थ—१—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। २—भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद।

भास—संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार। इन्होंने तेरह नाटकों की रचना की है जो सभी प्रकाशित हो चुके है। [भास के सभी नाटकों का हिन्दी अनुवाद एवं संस्कृत टीका के साथ प्रकाशन 'भासनाटकचक्रम्' के नाम से 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' से हो चुका है]। विभिन्न ग्रन्थों में भास के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रशंसा-वाक्य प्राप्त होते हैं १—सूत्राधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ हर्षचरित १।१५। २—भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्। स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥ राजशेखर। ३—सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्त-लक्षण-वृत्तिभिः। परतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥ दण्डी—अवन्तिसुन्दरीकथा। ४—भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्स रहुआरे। सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो॥ [भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे। सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दः॥] गउडवहो, गाथा ८००। संस्कृत साहित्य के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों ने भी भास का महत्त्व स्वीकार किया है। महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक की प्रस्तावना मे भास की प्रशंसा की है (पृ० २)। प्रथितयशसा भाससौमिल्लिककविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः। महाकवि के इस कथन से ज्ञात होता है कि उनके समय तक भास के नाटक अधिक लोकप्रिय हो चुके थे। कालिदास के परवर्ती कवियो एवं आचार्यों ने भी भास को आदर की दृष्टि से देखा है।

दुर्भाग्यवश भास के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनके नाटक बहुत दिनों तक अज्ञानान्धकार मे पड़े हुए थे और उनका स्वरूप लोगों को अज्ञात था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्व तो भास के सम्बन्ध में कतिपय उक्तियाँ ही प्रचलित थीं–भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। प्रसन्नराघवकार जयदेव। वाक्पतिराज ने अपने महाकाव्य में भास को 'ज्वलनमित्र' कहा है। कतिपय विद्वान् इस विशेषण की संगति वासवदत्ता की मिथ्या दाह की क्रिया से जोड़ते हैं। जयदेव इन्हें कविता-कामिनी के हास के रूप मे सम्बोधित करते हैं। इस विशेषण के द्वारा भास के हास्य की कुशलता व्यंजित होती है। 'नाट्यदर्पण' (१२ वीं शती रामचन्द्रगुणचन्द्र रचित) एवं (शारदातनयकृत) 'भावप्रकाशन' नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे भी भास का उल्लेख प्राप्त होता है तथा अभिनवभारती एवं 'शृङ्गारप्रकाश' में भी भास रचित सुप्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' का निर्देश है। यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराज—नाट्यदर्पण। क्वचित्क्रीडा। तथावासवदत्तायाम्—अभिनवभारती। वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। शृङ्गारप्रकाश। भास के नाटकों का सर्वप्रथम उद्धार म० म० टी० गणपति

शास्त्री ने १९०९ ई० में किया। इन्हें पद्मनाभपुरम् के निकट मनल्लिकारमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा ऊरुभङ्ग की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई। इन्हें 'दूतवाक्य' की एक खण्डित हस्तलिखित प्रति भी तालपत्र पर प्राप्त हुई थी। सभी हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। आगे चल कर गणपति शास्त्री को त्रिवेन्द्रम के राजाप्रासाद पुस्तकागार में प्रतिमा तथा अभिषेक नाटक की प्रतियाँ प्राप्त हुई। शास्त्री जी ने इनका सम्पादन कर १९१२ ई० मे (भास कृत तेरह नाटकों को) प्रकाशित किया। ये सभी नाटक अनन्तशयन-संस्कृत ग्रन्थावली में प्रकाशित हुए हैं।

भास के नाटकों के सम्बन्ध में विद्वानों के तीन दल हैं। प्रथम मत के अनुसार ये सभी नाटक भासकृत ही हैं। इन नाटकों की रचना-प्रक्रिया, भाषा एवं शैली के आधार पर इनका लेखक एक ही व्यक्ति ज्ञात होता है तथा ये सभी नाटक कालिदास के पूर्व के ही जान पडते हैं। इन सभी नाटको का रचयिता 'स्वप्नवासवदत्तम्' नामक नाटक का ही लेखक है। दूसरा दल इन नाटको को भास कृत नहीं मानता और इनका रचयिता या तो 'मत्तविलास प्रहसन' का प्रणेता युवराज महेन्द्रविक्रम को या 'आश्चर्यचूडामणि' नाटक के लेखक शीलभद्र को मानता है। श्री बर्नेट का मत है कि इन नाटको की रचना पाण्ड्य राजा राजसिंह प्रथम के शासनकाल (६७५ ई०) मे हुई थी [बुलेटिन ऑफ स्कूल ऑफ ओरियन्टल स्टडिज भाग ३ पृ० ५२०-२१]। अन्य विद्वानों के अनुसार इन नाटकों का रचना काल सातवीं-आठवीं शताब्दी है और इनका रचयिता कोई दाक्षिणात्य कवि था। प्रो० सिलवाँ लेवी, विंटरनित्स तथा सी० आर० देवधर इसी मत के पोषक है। तीसरा दल ऐसे विद्वानों का है जो इस नाटकों का कर्त्ता तो भास को ही मानता है किन्तु इनके वर्तमान रूप को उनका संक्षिप्त एवं रङ्गमंचोपयोगी रूप मानता है। ऐसे विद्वानो मे डॉ० लेस्नी, प्रिन्ट्ज, बैनर्जी शास्त्री तथा सुक्थनकर आदि है। दे० थॉमस—जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी १९२८ पृ० ८७६ एफ० एफ० तथा हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—दासगुप्त एवं दे पृ० १०७-१०८]। पर सम्प्रति अधिकतर विद्वान् प्रथम मत के ही पोषक हैं। म० म० पं० रामावतार शर्मा भी तृतीय मत के थे [दे० शारदा संस्कृत पत्रिका वर्ष १, संख्या १]। डॉ० पुसालकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भास : ए स्टडी' एवं श्री ए० एस० पी० अय्यर ने 'भास' नामक (अंग्रेजी ग्रन्थ) पुस्तक में प्रथम मत की ही पुष्टि अनेक प्रमाणों के आधार पर की है। इनके मत का सार इस प्रकार है—

१—उपर्युक्त सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' से प्रारम्भ होते हैं किन्तु परवर्त्ती नाटको मे यहाँ तक कि कालिदास के नाटको में भी नान्दी पाठ के बाद यह वाक्य होता है। इसीलिए भास के नाटक 'सूत्रधारकृतारम्भः' कहे जाते हैं। २—इनमे प्रस्तावना का प्रयोग न होकर सर्वत्र 'स्थापना का व्यवहार किया गया है। 'स्थापना' मे नाटक एवं नाटककार का भी संकेत नहीं है। अन्य संस्कृत नाटकों में प्रस्तावना में नाटक एवं नाटककार के विषय मे भी कहा जाता है, अतः ये नाटक शास्त्रीय परम्परा के पूर्व रचित हुए हैं। ३—सभी नाटकों के भरतवाक्य का प्रयोग

'इहामपि महींकृत्स्नां राजसिंह प्रशास्तु नः' या इसी भाव के पद्य से होता है। ४–इनमें भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतः निर्वाह नहीं किया गया है। भरत जिन दृश्यों को रङ्गमंच पर वर्जित मानते हैं उन्हें भी इन नाटकों में दिखलाया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये नाटक उस समय लिखे गए थे जबकि नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त पूर्णरूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पाये थे। ५—सभी नाटकों के प्रारम्भिक श्लोक में मुद्रालंकार दिखाई पड़ता है और इनमें समान संघटना प्राप्त होती है। ६—राजशेखर प्रभृति कई आचार्यों ने इन नाटकों में से एक नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है। ७—भास कृत नाटकों के कई उद्धरण अनेक अलंकार ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। जैसे, वामन ने स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं चारुदत्त के उद्धरण दिये हैं तथा भामह ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण की पंक्तियाँ उद्धृत की हैं। दण्डी ने 'लीम्पतीव तमोंगानिवर्षती-वाजन नभः' आदि पद्यों को उद्धृत किया है। अभिनवगुप्तकृत 'अभिनवभारती' एवं 'लोचन' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया गया है। ८—इन नाटकों की भाषा में अनेक अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं, अतः इनकी संस्कृत को शुद्ध शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। इनकी शैली सरल है एवं इनमें कालिदासीय स्निग्धता का अभाव है। इनमें प्रयुक्त प्राकृत भी कालिदास से प्राचीन सिद्ध होती है तथा इनकी भाषा एवं शैली में व्यापक समानता दिखाई पड़ती है। ९—सभी नाटकों में समान शब्दों एवं दृश्यों का विधान किया गया है। बालि, दुर्योधन तथा दशरथ सभी को मृत्यु के पश्चात् नदी का दर्शन करने का वर्णन है तथा सभी के लिए देव-विमान आते हैं। १०—कई नाटकों में समान वाक्य प्रयुक्त किये गये हैं। जैसे जन-समुदाय के राज-मार्ग पर बढ़ जाने पर मार्ग को साफ रखने के लिए इस वाक्य का प्रयोग 'उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह ! ११—इसमें समान नाटकीय संघटना अवतारणा की गयी है। उदाहरणार्थ 'अभिषेक' एवं 'प्रतिमा' नाटकों में सीता रावण की प्रार्थना को अस्वीकार कर उसे शाप दे देती है तथा 'चारुदत्त' नाटक में वसन्तसेना द्वारा शकार के प्रणय-निवेदन को अस्वीकृत कर देने का वर्णन है। १२—प्रायः सभी नाटकों में युद्ध की सूचना भाट एवं ब्राह्मण आदि द्वारा दी गयी है। भावों की समानता भी सभी नाटकों में दिखाई पड़ती है। इन समानताओं के कारण सभी नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति सिद्ध होता है।

भास की निश्चित तिथि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने इनका समय ईस्वी पूर्व ६ठी शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक स्वीकार किया है। अन्तः एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर इनका समय ई० पू० चतुर्थ एवं पञ्चम शतक के मध्य निर्धारित किया गया है। अश्वघोष एवं कालिदास दोनों ही भास से प्रभावित हैं। अतः इनका दोनों का पूर्ववर्त्ती होना निश्चित है। कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शती माना गया है। भास में अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता देखकर इनकी प्राचीनता सन्देह से परे सिद्ध हो जाती है। अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के मत का ऊहापोह करने के पश्चात् आ० बलदेव उपाध्याय ने अपना निर्णय इस प्रकार दिया है। "इस प्रकार बाह्य साक्ष्यों से भास का समय ४ थी सदी ई० पू० मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं पड़ती तथा ये बाह्य साक्ष्य

अन्य समयों के मानने का विरोध करते हैं। अतः ई० पू० चतुर्थ शतक तथा पञ्चम शतक के बीच भास का समय मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।" महाकवि भास : एक अध्ययन पृ० १५५। इतिवृत्त के आधार पर भास कृत तेरह नाटक चार वर्गों में विभक्त किये गए हैं—१—रामायण-नाटक—प्रतिमा, अभिषेक २—महाभारत-नाटक—बालचरित, पञ्चरात्र, मध्यम-व्यायोग, दूतवाक्य, ऊरुभंग, कर्णभार एवं दूत घटोत्कच, ३—उदयन, नाटक—स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगंधरायण, ४—कल्पित नाटक—अविमारक एवं दरिद्र चारुदत्त [उपर्युक्त सभी नाटकों का परिचय पृथक्-पृथक् इस कोश मे दिया गया है, उनके नाम के आगे देखें]

नाटकीय संविधान की दृष्टि से भास के नाटकों का वस्तु-क्षेत्र विविध है तथा इससे उनकी प्रतिभा की मौलिकता सूचित होती है। इतना सब होने पर भी सभी नाटको में समान रूप से नाट्य-कौशल नही दिखाई पडता। रामायण-सम्बन्धी नाटकों का कथा-संविधान शिथिल है, किन्तु महाभारत के आधार पर निर्मित नाटक इस दोष से रहित है और उनमे भास की प्रतिभा का प्रौढ़त्व प्रदर्शित होता हैं। इन्हें अपेक्षाकृत सर्वाधिक सफलता लोक-कथाओं के आधार पर निर्मित प्रेम-प्रवण नाटकों में मिली है जिनमे कवि ने उदयन के रूमानी प्रेम का आकर्षक चित्र खींचा है। इस दृष्टि से 'स्वप्न-वासवदत्तम्' एवं 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' भास के सर्वोत्तम नाटक सिद्ध होते हैं और इनमें भी प्रथम का स्थान ऊपर है। इन्होने कतिपय नाटको में मौलिक उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए 'प्रतिमा' नाटक मे प्रतिमा वाला सम्पूर्ण प्रसंग भास की नवीन कल्पना है। "इसी प्रकार कैकेयी का यह कहना भी भासीय कल्पना का ही प्रसाद है कि उसने मात्र ऋषि-वचन की सत्यता के लिये राम का वनवास माँगा। परन्तु इतने बड़े क्षेत्र में अपनी मौलिकता के साथ सञ्चरण करने पर भी भास के पैर कहीं नहीं लडखडाये हैं। उन्होंने बडी कुशलता के साथ इन कथाओ का विन्यास किया है। कथावस्तु का विन्यास सदैव दर्शक की कुतूहल-वृत्ति का विवर्धक रहा है।" महाकवि भास : एक अध्ययन पृ० १३७। विस्तृत क्षेत्र से कथानक ग्रहण करने के कारण इनके पात्रो की संख्या अधिक है और उनकी कोटियाँ भी अनेक है। इतने अधिक पात्रों के चरित्र का वर्णन कर इन्होंने दृष्टि-विस्तार एवं विशद अनुभव का परिचय दिया है। भास के सभी पात्र प्राणवन्त एवं इसी लोक के प्राणी है, उनमे कृत्रिमता नाममात्र को नहीं है। इतना अवश्य है कि ब्राह्मणीय संस्कृति एवं वैदिक धर्म का प्रभाव कई नाटकों पर जानबूझ कर प्रदर्शित किया गया है। 'मध्यमव्यायोग' एवं 'अविमारक' दो नाटक ऐसे ही हैं। इनके पात्र सर्वत्र उदात्त आदर्शों से प्रेरित दिखलाये गए हैं। इन्होंने यथासम्भव अपने पात्रो के प्रोज्ज्वल चरित्र को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है और इसके लिए इन्हे कथानक मे भी परिवर्त्तन करना पडा है। पात्रों के संवाद नाटकीय विधान के सर्वथा अनुरूप है। भास ने संवादों की योजना में विशेषरूप से दक्षता दिखलाई है। इनके संवाद लघु हैं तथा उनमें वाग्विस्तार का परिहार सर्वत्र दिखाई पड़ता है। वार्त्तालापों के द्वारा ही कवि सभी दृश्यों को उपस्थित करता है और सरल शब्दावली का नियोजन कर संवादों को यथासाध्य सार्वजनीन बनाया गया है। रस परिपाक की

दृष्टि से भी इनके नाटक उत्तम है। इन्होंने नवो रसों का प्रयोग कर अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। वैसे भास मुख्यतः वीर, शृङ्गार एवं करुण रस के वर्णन में विशेष दक्ष हैं। इनका हास्य-वर्णन अत्यन्त उदात्त है और इसकी स्थिति प्रायः विदूषक में दिखलायी गयी है। इनके सभी नाटक अभिनय-कला की दृष्टि से सफल सिद्ध होते है। कथानक, पात्र, भाषा-शैली, देशकाल, एवं संवाद किसी के कारण उनकी अभिनेयता में बाधा नहीं पड़ती। इनके नाटक उस समय निर्मित हुए थे जब नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, फलतः इन्होंने कई ऐसे दृश्यों का भी विधान किया है जो शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित हैं, जैसे वध, अभिषेक आदि। पर ये दृश्य इस प्रकार रखे गए है कि इनके कारण नाटकीयता मे किसी प्रकार की बाधा नही उपस्थित होती।

भास की शैली सरल एवं अलंकारविहीन अकृत्रिम है। इनकी कवित्वशक्ति भी उच्चकोटि की है। इनके सभी पद्य घटनाओं एवं पात्रों से सम्बद्ध है और ऊपर से जोड़े हुए स्वतन्त्र पद्यों की तरह नहीं लगते। अपने वर्ण्य-विषयों को इन्होने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ रखा है। किसी दृश्य का वर्णन करते समय ये *उसके प्रत्येक पक्ष को अत्यधिक सूक्ष्मता के साथ प्रदर्शित करते है और पाठक को* उसका पूर्णरूप से बिम्ब ग्रहण हो जाता है। इनका प्रकृति-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं आकर्षक है। खगावासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजनः प्रदीपोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्। परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥ स्वप्नवासवदत्तम् १।१६। 'सायंकाल हो रहा है। पक्षी अपने नीडों की ओर चले गए है। मुनियों ने जलाशय मे स्नान कर लिया है। सायंकालीन अग्निहोत्र के लिए जलाई गई अग्नि सुशोभित हो रही है, और उसका धुआँ मुनिवन में फैल रहा है। सूर्य भी रथ से उतर गया है उसने अपनी किरणें समेट ली हैं, और रथ को लौटाकर वह धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रविष्ट हो रहा है।'

आधारग्रन्थ—१–भास ए स्टडी—डॉ० पुसालकर। २–भास—ए० एस० पी० अय्यर (अंगरेजी)। ३–संस्कृत नाटक—डॉ० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ४–संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५–महाकवि भास–एक अध्ययन—पं० बलदेव उपाध्याय। ६–भास नाटकचक्रम्—(हिन्दी अनुवाद सहित) चौखम्बा प्रकाशन। ७–भास की भाषा सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषताएँ—डा० जगदीश दत्त दीक्षित।

भासर्वज्ञ—काश्मीर निवासी भासर्वज्ञ ने 'न्यायसार' नामक प्रसिद्ध न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है जिनका समय नवम शतक का अन्तिम चरण है। 'न्यायसार' न्यायशास्त्र का ऐसा प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें न्याय के केवल एक ही प्रमाण का वर्णन है और शेष १५ पदार्थों को प्रमाण में ही अन्तर्निहित कर दिया गया है। भासर्वज्ञ ने अन्य नैयायिकों के विपरीत प्रमाण के तीन ही भेद माने है—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। जब कि अन्य आचार्य 'उपमान' प्रमाण को भी मान्यता देते हैं। इस ग्रन्थ (न्यायसार) की रचना नव्यन्याय की शैली पर हुई है [दे० न्यायदर्शन]। इस पर १८ टीकाएँ लिखी गई है जिनमें निम्नांकित चार टीकाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

क—विजयसिंह गुणी कृत 'न्यायसार टीका'। ख—जयतीर्थ रचित 'न्यायसार टीका'। ग—भट्टराघवकृत 'न्यायसार विचार'। घ—जयसिंह सूरि रचित 'न्यायतात्पर्यदीपिका'।

आधारग्रन्थ—१–भारतीय दर्शन–आ० बलदेव उपाध्याय। २–हिन्दी तर्कभाषा (भूमिका) आ० विश्वेश्वर।

भिल्लकन्या परिणय चम्पू—इस चम्पूकाव्य का प्रणेता कोई नृसिंह भक्त अज्ञातनामा कवि हैं। यह रचना अपूर्ण है और इसमे नृसिंह देवता तथा वनाटपति हेमाग की पुत्री कनकांगी का परिणय वर्णित है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण ट्रीनियल कैटलाग वौल० १, पार्ट १, ९१०–१३ में प्राप्त होता है। कनकांगी के शब्दों में उसका परिचय इस प्रकार है—भिल्लान्वये जनिर्मे जनको हेमांगको वनाटपतिः। कनकागी जानीहि त्वं मां भो देवदेवेश॥

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भुशुण्डी रामायण—यह रामभक्ति की रसिक शाखा का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमे ३६ हजार श्लोक हैं। इसका निर्माणकाल १४ वीं शताब्दी के आस-पास है। इसकी तीन पाण्डुलिपियाँ प्राप्त है जिनके आधार पर डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने इसका सम्पादन किया है—क–मथुरा प्रति—लिपिकाल सं० १७७९ ख–रीवाँ प्रति–लिपिकाल सं० १८९९। ग—अयोध्या प्रति—लिपिकाल १९२१ वि० सं०। 'भुशुण्डी रामायण' की कथा ब्रह्मा-भुशुण्डी के संवादरूप में कही गई है। इसके चार खण्ड हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। पूर्व-खण्ड मे १४६ अध्याय है जिनमें ब्रह्मा के यज्ञ मे ऋषियों के राम-कथा-विषयक विविध प्रश्न तथा राजा दशरथ की तीर्थ-यात्रा का वर्णन है। पश्चिम-खण्ड मे ७२ अध्याय हैं तथा भरत और राम-संवाद में सीता-जन्म से लेकर स्वयम्वर तक की कथा वर्णित है। दक्षिण-खण्ड में २४२ अध्याय है जिसमें रामराज्याभिषेक की तैयारी, वनगमन, सीता-हरण, रावणवध तथा लंका से लौटते समय भारद्वाज मुनि के आश्रम में राम-भरत-मिलन तक की कथा है। उत्तर-खण्ड मे ५३ अध्याय हैं और देवताओं द्वारा रामचरित की महिमा का गान है। इस रामायण में राम-भक्ति की पोषक शुद्ध भगवल्लीला का वर्णन है तथा राम पूर्ण ब्रह्म के साथ-ही-साथ लीला पुरुषोत्तम के रूप में वर्णित हैं। [दो खण्डों में विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाश्यमान]।

भेलसंहिता—यह आयुर्वेद का ग्रन्थ है। इसके रचयिता का नाम भेल है जो पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य थे। 'भेलसंहिता' का उपलब्ध रूप अपूर्ण है और इस पर 'चरकसंहिता' का प्रभाव है; दे० चरक। इस ग्रन्थ का प्रकाशन कलकत्ता विश्व-विद्यालय से हुआ है। इसके अध्यायों के नाम तथा बहुत से वचन 'चरकसंहिता' के ही समान हैं। इसका रचनाकाल ई० पू० ६०० वर्ष माना जाता है। इसकी रचना सूत्रस्थान, निदान, विमान, शारीर, चिकित्सा, कल्प तथा सिद्धस्थान के रूप में हुई है। यों तो इसके विषय बहुत कुछ 'चरकसंहिता' से मिलते-जुलते हैं पर इसमें

अनेक ऐसी बातों का भी विवेचन है जिनका अभाव उक्त ग्रन्थ (चरक) में है। इसमें 'सुश्रुतसंहिता' (दे० सुश्रुतसंहिता) की भाँति कुष्ठरोग में खदिर के उपयोग पर भी बल दिया गया है। इसका हृदय-वर्णन सुश्रुत से साम्य रखता है—पुण्डरीकस्य संस्थानं कुम्भिकायाः फलस्य च। एतयोरेव वर्णं च विभर्त्ति हृदयं नृणाम्॥ यथाहि संवृत्तं पद्मं रात्रौ चाहनि पुष्यति। हृत्तदा संवृत्तं स्वप्ने विवृत्तं जाग्रतः स्मृतम्॥ भेल० सूत्रसंस्थान अ० २१।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—अत्रिदेव विद्यालंकार।

भोज—धारानरेश महाराज भोज ने अनेक शास्त्रों का निर्माण किया है। इनका समय एकादश शतक का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने ज्योतिष-सम्बन्धी 'राजमृगांक' नामक ग्रन्थ की रचना १०४२–४३ ई० मे की थी। इनके पितृव्य मुंज की मृत्यु ९९४ से ९९७ ई० के मध्य हुई थी। तदनन्तर इनके पिता सिन्धुराज शासनासीन हुए और कुछ दिनों तक गद्दी पर रहे। भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह नामक राजा का समय १०५५–५६ ई० है क्योंकि उनका एक शिलालेख मान्धाता नामक स्थान मे उपर्युक्त ई० का प्राप्त होता है। अतः भोज का समय एकादश शतक का पूर्वार्द्ध उपयुक्त है। राजा भोज की विद्वता एवं दानशीलता इतिहास प्रसिद्ध है। 'राजतरंगिणी' मे काश्मीर-नरेश अनन्तराज एवं मालवाधिपति भोज को समान रूप से विद्वत्प्रिय बताया गया है—स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ। सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ॥ ७।२५९। भोजराज ने ८४ ग्रन्थों का प्रणयन किया है और विविध विषयों पर समान अधिकार के साथ लेखनी चलायी है। धर्मशास्त्र, ज्योतिष,, योगशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि विषयों पर इन्होंने ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने 'शृङ्गारमंजरी' नामक कथा-काव्य एवं 'मन्दारमरन्दचम्पू' नामक चम्पू काव्य का भी प्रणयन किया है। वास्तुशास्त्र पर इनका 'समरांगणसूत्रधार' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमे सात हजार श्लोक हैं। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' इनका व्याकरण-सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो आठ प्रकाशों मे विभक्त है। इन्होंने युक्तिप्रकाश एवं तत्त्वप्रकाश नामक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की है और औषधियों के ऊपर ४१८ श्लोकों मे राजमार्तण्ड नामक ग्रन्थ लिखा है। योगसूत्र पर 'राजमार्तंड' नामक इनकी टीका भी प्राप्त होती है। काव्य-शास्त्र पर इन्होंने 'शृङ्गारप्रकाश' एवं 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक दो प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें तद्विषयक सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

इन्होंने अपने दोनों काव्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थों मे काव्य के स्वरूप, भेद, रस, अलंकार, नाटक, रीति, वृत्ति, साहित्य, नायक-नायिका-भेद, शब्दशक्ति, ध्वनि आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और इनके सम्बन्ध मे कई नवीन तथ्य प्रस्तुत किये हैं। इनके अनुसार काव्य के तीन प्रकार हैं—वक्रोक्ति, रसोक्ति एवं स्वभावोक्ति और इनमे रसोक्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काव्य-विधा है। वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम्। सर्वासु ग्राहिणीं तासु रसोक्तिं प्रतिजानते॥ सरस्वतीकण्ठाभरण ५।८। इन्होंने रस का महत्त्व स्थापित करते हुए काव्य को रसवत् कहा है और 'शृंगारप्रकाश' में रस

की दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इन्होंने शृङ्गार रस का महत्त्व स्थापित करते हुए सभी रसों का अन्तर्भाव उसी (शृंगार) में कर दिया है। शृङ्गार-वीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्यबीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः। आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु शृङ्गारमेव रसनाद् रसमामनामः॥ शृङ्गारप्रकाश। इन्होंने रस, अहंकार, अभिमान एवं शृङ्गार को पर्यायवाची शब्द मान कर रस को अहंकार से उत्पन्न माना है। शृंगार को मूल रस मानकर भोज ने अलंकारशास्त्र के इतिहास में नवीन व्यवस्था स्थापित की है। इन्होंने अलंकारों के तीन भेद—शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार मान कर तीनों के २४-२४ प्रकार से ७२ भेद किये हैं और पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ प्रत्येक के १६ भेदों का निरूपण किया है। इनके अनुसार शब्द एवं अर्थ प्रत्येक के २४ गुण होते हैं। भोज के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के परिचय के लिए दे० सरस्वतीकण्ठाभरण एवं शृङ्गारप्रकाश। इन्होंने पूर्ववर्त्ती सभी काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन कर समन्वयवादी परम्परा की स्थापना की है और इसी दृष्टि से इनका महत्त्व है।

आधारग्रन्थ—१–शृङ्गारप्रकाश—डॉ० वी० राघवन्। २—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

भैष्मीपरिणय चम्पू—इस चम्पू के रचयिता श्री निवासमखिन् हैं। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का मध्योत्तर है। इस चम्पू में श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। इसमें गद्य एवं पद्य दोनों में यमक का सुन्दर समावेश किया गया है। यह चम्पू अप्रकाशित है और इसका अपूर्ण हस्तलेख उपलब्ध है। इसका विवरण डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, मद्रास १२३३३ में प्राप्त होता है। ध्वन्यध्वन्यधिकं चमत्कृतियुता अस्याद्भुताः सूक्तयः। सारस्येन सुधां सुधां विदधिरे तां शर्करां शर्कराम्॥

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भोजप्रबन्ध—यह बल्लाल सेन द्वारा रचित अपने ढंग का अनूठा काव्य है। इसकी रचना गद्य एवं पद्य दोनों में ही हुई है। 'भोजप्रबन्ध' का रचनाकाल १६ वीं शताब्दी है। इसमें धारा-नरेश महाराज भोज की विभिन्न कवियों द्वारा की गयी प्रशस्ति का वर्णन है। इसका गद्य साधारण है किन्तु पद्य रोचक एवं प्रौढ़ हैं। इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह है कि रचयिता ने कालिदास, भवभूति, माघ तथा दण्डी को भी राजा भोज के दरबार में उपस्थित किया है। इसमे अल्प प्रसिद्ध कवियों का भी विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही इसका महत्त्व न हो पर साहित्यिक दृष्टि से यह उपादेय ग्रन्थ है। 'भोजप्रबन्ध' की लोकप्रियता का कारण इसके पद्य हैं। [हिन्दी अनुवाद के साथ चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित]।

भोसल वंशावली चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता वेंकटेश कवि हैं। ये शरभोजी के राजकवि थे। कवि का रचनाकाल १७११ से १७२८ ई० के मध्य है।

इस चम्पू में भोसल बंश का वर्णन किया गया है और मुख्यतः शरभोजी का जीवनवृत्त वर्णित है। यह काव्य एक ही आश्वास मे समाप्त हुआ है और अभी तक अप्रकाशित है। इसका विवरण तंजोर कैटलाग ४२४० में प्राप्त होता है। ग्रन्थ के उपसंहार में कवि ने अपना परिचय दिया है—"इति श्रीभोसलवंशावलिचम्पुप्रबन्धे श्रीशरभोजिराज-चरितवर्णनं नाम प्रथमाश्वासः समाप्तः।"

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

भृंगदूत—यह संस्कृत का दूतकाव्य है जिसके रचयिता शतावधानकवि श्रीकृष्ण-देव हैं। इनका समय विक्रम का अष्टादश शतक है। इस काव्य के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अनेक स्रोतों के आधार पर ग्रन्थकार सोरों या मैनपुरी निवासी सिद्ध होता है। इस पुस्तक का प्रकाशन नागपुर विश्वविद्यालय पत्रिका सं० ३, दिसम्बर १९३७ ई० मे हो चुका है। मेघदूत की काव्य-शैली पर इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है। इसमें कुल १२६ मन्दाक्रान्ता छन्द है। श्रीकृष्ण के विरह मे व्याकुल होकर कोई गोपी भृंग के द्वारा उनके पास सन्देश भिजवाती है। सन्देश के प्रसंग में वृन्दावन, नन्दगृह, नन्द-उद्यान एवं गोपियो की विलासमय चेष्टाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। सन्देश के अन्त होते ही श्री कृष्ण का प्रकट होकर गोपी को परमपद देने का वर्णन है। गोपी अपनी विरहावस्था का वर्णन इस प्रकार करती है—शोणाब्जानां ततिषु चरणाकार-मिन्दीवरेषु छायामांगीमधरसुषमां बन्धुजीवावलीषु। नेत्रालोकश्रियमपि च ते पुण्डरीकेषु बाला निध्यायन्ती कथमपि बलाज्जीवितं सा बिभर्ति ॥ ११३

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ रामकुमार आचार्य।

भृंग-सन्देश—इस सन्देश-काव्य के रचयिता वासुदेव कवि हैं। इनका समय १५ वी एवं सोलहवी शताब्दी का मध्य है। वासुदेव कवि कालीकट के राजा जमूरिन के सभा-कवि थे। इन्होंने पाणिनि के सूत्रो पर व्याख्या के रूप मे 'वासुदेवविजय' नामक एक काव्य लिखा था जो अधूरा है और बाद मे इनके भानजे नारायण कवि ने इसे पूरा किया। इनकी अन्य रचनाओं मे 'देवीचरित' (यमक काव्य, ६ आश्वासों का), 'शिवोदय' एवं 'अच्युतलीला' नामक काव्य हैं। 'भृङ्ग-सन्देश' की कथा काल्पनिक है। इसमे किसी प्रेमी विरही द्वारा स्यान्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से श्वेतदुर्ग (कोट्टक्कल) मे स्थित अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजा गया है। यह सन्देश एक भृङ्ग के द्वारा भेजा जाता है। इस काव्य की रचना 'मेघदूत' के आधार पर हुई है। कवि ने इसके दो विभाग—पूर्व एवं उत्तर—किये हैं और सर्वत्र मन्दाक्रान्ता वृत्त का प्रयोग किया है। इसके पूर्वभाग में ९५ तथा उत्तरभाग में ८० श्लोक हैं। सन्देश में नायक अपनी पत्नी को अपने शीघ्र ही आने की सूचना देता है—इत्थं तस्यै कथय सुदति ! त्वां प्रियो मन्मुखेन व्यक्तं ब्रूते नवमनुभवन्नीदृशं विप्रयोगम्। पादाम्भोजं तव सुवदने ! चूडितुं प्रस्थितोऽहं तावन्मा मा तनु तनुलतां दीपिते तापबह्नौ २।५४।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मण्डन मिश्र—मिथिला के प्रसिद्ध दार्शनिक तथा कुमारिल भट्ट के अनुयायी आ० मण्डन मिश्र का भारतीयदर्शन के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये भट्ट-परम्परा के [मीमांसा-दर्शन की एक शाखाविशेष जिसके प्रवर्तक कुमारिल भट्ट थे,] आचार्य थे। इनका जन्म मिथिला में हुआ था और ये शंकराचार्य के समकालीन थे। शंकराचार्य से इनका शास्त्रार्थ इतिहास-प्रसिद्ध है जिसकी मध्यस्थता इनकी पत्नी ने की थी [दे० शंकराचार्य]। इनकी पत्नी का नाम भारती था जो पति के समान ही महाविदुषी थीं। इनका समय ६२० ई० से ७१० के मध्य माना जाता है। कहा जाता है कि शंकर द्वारा मण्डन मिश्र के पराजित हो जाने पर भारती ने उनसे काम-शास्त्र-विषयक प्रश्न किया था जिसका कि वे उत्तर नहीं दे सके और एतदर्थ उन्होंने ६ मास की अवधि मांगी थी। मण्डन मिश्र कर्मकाण्ड के असाधारण विद्वान् थे और उनके ग्रन्थो मे इनका अखण्ड वैदुष्य प्रतिभासित होता है। इनके ग्रन्थ हैं—विधिविवेक, विभ्रमविवेक, भावनाविवेक, मीमांसानुक्रमणिका, स्फोटसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, नैष्कर्म्यसिद्धि तथा तैत्तिरीय और बृहदारण्यक उपनिषद भाष्य पर वार्तिक। 'विधिविवेक' में विधि-लिङ्ग का विवेचन है तथा 'विभ्रमविवेक' में पाँच प्रकार की ख्यातियो की व्याख्या की गयी है। 'भावनाविवेक' मे भावना के स्वरूप का विवेचन है जिस पर इनके शिष्य उम्बेक (महाकवि भवभूति) की टीका है। 'मीमांसानुक्रमणिका' प्रकरण ग्रन्थ है जिसमें मण्डनमिश्र का मीमांसा-विषयक ज्ञान प्रोद्भासित होता है। 'स्फोटसिद्धि' में वर्णवादियों के विचार का खण्डन कर मीमांसा-दर्शन के प्राणभूत तत्त्व स्फोट-सिद्धान्त का निरूपण किया गया है। इनके पुत्र जयमिश्र भी मीमांसा-दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होने उम्बेक रचित 'तात्पर्यटीका' की पूर्ति की थी।

आधारग्रन्थ—१—भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्यय। २—मीमांसादर्शन—पं० मण्डन मिश्र।

मथुरानाथ—नवद्वीप (बङ्गाल) के प्रसिद्ध नव्य नैयायिक मथुरानाथ हैं। [नव्य न्याय के लिए दे० न्यायदर्शन]। इनका समय १६ वीं शताब्दी है। इन्होंने नव्यन्याय के तीन प्रसिद्ध ग्रन्थों—आलोक, चिन्तामणि एवं दीधिति—के ऊपर 'रहस्य' नामक टीका लिखी है। इनकी टीकाएँ दार्शनिक जगत् में मौलिक ग्रन्थ के रूप में मान्य है और इनमें मूल ग्रन्थो के गूढ़ार्थ का सम्यक् उद्घाटन किया गया है।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

मनोदूत—इस सन्देश-काव्य के रचयिता तैलङ्ग व्रजनाथ हैं। इस काव्य का रचनाकाल वि० सं० १८१४ है। इसकी रचना कवि ने वृन्दावन में की थी। कवि के पिता का नाम श्रीरामकृष्ण एवं पितामह का नाम भूधरभट्ट था। कवि पञ्चनद का रहने वाला माना जाता है। 'मनोदूत' की रचना का आधार 'मेघदूत' है। इसमे २०२ शिखरिणी छन्द है और चीर-हरण के समय असहाय द्रौपदी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजने का वर्णन है। द्रौपदी अपने मन को श्रीकृष्ण के पास दूत बनाकर भेजती है। कवि ने प्रारम्भ में मन की अत्यधिक प्रशंसा की है। तत्पश्चात् द्वारकापुरी का रम्य वर्णन है। इसमें कृष्णभक्ति एवं भगवान् की अनन्त-

शक्ति का प्रभाव दर्शाया गया है। द्यूतसभा मे कौरवों द्वारा घिरी हुई असहाय द्रौपदी का चित्र देखें—अथासौ दुःखार्ता द्रुपदतनया वीक्ष्य दयितान् परित्रातुं योग्यानपि समयबद्धान् विधिवशात्। सभायामानीता शरणरहिता जालपतिता कुरङ्गीव त्रासाद् भृशतरमसौ कम्पमभजत् ॥ १३२ ॥

आधारग्रंथ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मनोदूत—इस सन्देशकाव्य के रचयिता कवि विष्णुदास हैं। इनका समय विक्रम संवत् षोडश शतक का पूर्वार्ध है। ये महाप्रभु चैतन्य के मातुल कहे जाते हैं। 'मनोदूत' शान्तरसपरक सन्देशकाव्य है जिसमें कवि ने अपने मन को दूत बनाकर भगवान् के चरणकमलों मे अपना सन्देश भेजा है। वह अपने मन को यमुना, वृन्दावन एव गोकुल में जाने को कहता है। सन्देश के क्रम मे यमुना एवं वृन्दावन की प्राकृतिक छटा का मनोरम वर्णन है। इस काव्य की रचना मेघदूत के अनुकरण पर हुई है। इसमें कुल १०१ श्लोक हैं। भाव, विषय एवं भाषा की दृष्टि से यह काव्य उत्कृष्ट कृति के रूप में समादृत है। भगवान् के कोटि-कोटि नामो को जपने की प्रबल आकांक्षा कवि के शब्दो में देखिए—ईहामहे न हि महेन्द्रपदं मुकुन्द स्वीकुर्महे चरणदैन्यमुपागतं वा। आशां पुनस्तव पदाब्ज कृताधिवासाम् आशास्महे चिरमियं न कृशा यथा स्यात् ॥ ८२ ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मन्दार-मरन्द चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता श्रीकृष्ण कवि है। से सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण एवं सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण मे थे। ग्रन्थ के उपसंहार में कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार इनका जन्म गुहपुर नामक ग्राम में हुआ था और इनके गुरु का नाम वासुदेव योगीश्वर था। इस इस चम्पू की रचना लक्षण ग्रन्थ के रूप हुई है जिसमे दो सौ छन्दो के सोदाहरण लक्षण तथा नायक, श्लेष, यमक, चित्र, नाटक, भाव, रस एक सौ सोलह अलङ्कार, सत्तासी दोष-गुण तथा शब्दशक्ति पदार्थ एवं पाक का निरूपण है। इसका वर्ण्यविषय ग्यारह बिन्दुओ में विभक्त है। भूमिका भाग मे कवि ने प्रबन्धत्व की सुरक्षा के लिए एक काल्पनिक गन्धर्व-दम्पती का वर्णन किया है और कहीं-कहीं राधा-कृष्ण का भी उल्लेख किया है। ये सभी वर्णन छन्दो के लक्षण एवं उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किये गए हैं। कवि के शब्दों मे उसकी रचना का विभाजन एवं उद्देश्य इस प्रकार है—चम्पूप्रबन्धे मन्दारमरन्दाख्ये कृतौ मम। वृत्तसारश्लिष्टचित्रबन्धगुप्ताः घनसंज्ञाः ॥ १।७ शुद्धरम्यव्यंग्यशेषा इत्येकादश बिन्दवः। तत्रादिमे वृत्तबिन्दौ वृत्तलक्षणमुच्यते ॥ १।८ प्राचीनानां नवीनानां मतान्यालोच्य शक्तितः। रचितं बालबोधाय तोषाय विदुषामपि ॥ पृ० १९६। इसका प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (काव्यमाला ५२) से १९२४ ई० में हुआ है।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

मद्रकन्या परिणय चंपू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता गंगाधर कवि हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। ये उदय परिवार के दत्तात्रेय के पुत्र थे। इनकी अन्य दो रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं—'शिवचरित्र चम्पू' तथा 'महानाटक-सुधानिधि। यह चम्पू चार उल्लासों में विभक्त है। इसमे लक्ष्मणा एवं श्रीकृष्ण के परिणय का वर्णन 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर किया गया है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३३४ में प्राप्त होता है। शुक के मुख से कृष्ण के स्नेह की बात सुनकर लक्ष्मणा की उनके प्रति आसक्ति का वर्णन अत्यन्त सरस है–शुकनिगदितवाचं राजकन्या निशम्य स्फुटित सुहृदया सा मोदखेदा-दिभावैः। करनिहितकपोला प्रांशुनिश्वासधारोद्गमनचलदुरांजा नैव किञ्चिज्जगाद॥

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

मम्मट—काव्यशास्त्र के अप्रतिम आचार्य। इनके नाम से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर-निवासी रहे होंगे। इन्होने 'काव्यप्रकाश' नामक युगप्रवर्तक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसकी महत्ता एवं गरिमा के कारण ये 'वाग्देवतावतार' कहे जाते है [दे० काव्यप्रकाश]। 'काव्यप्रकाश' की 'सुधासागर' नामक टीका के प्रणेता भीमसेन ने इन्हें काश्मीरदेशीय जैयट का पुत्र तथा पतञ्जलिकृत 'महाभाष्य' के टीका-कार कैयट एवं चतुर्वेदभाष्कर उव्वट का ज्येष्ठ भ्राता माना है। शब्दब्रह्म सनातनं न विदितं शास्त्रैः क्वचित् केनचित् तद्देवी हि सरस्वती स्वयमभूत् काश्मीरदेशे पुमान्। श्रीमज्जैयटगेहिनीसुजरठराज्जन्माप्य युग्मानुजः श्रीमन्मम्मटसंज्ञयाश्रिततनुं सारस्वतीं सूचयन्॥ पर इस विवरण को विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते। इसी प्रकार नैषधकार श्रीहर्ष को मम्मट का भागिनेय कहने की भी अनुश्रुति पूर्णतः संदिग्ध है क्योकि श्रीहर्ष काश्मीरी नहीं थे। भीमसेन का उक्त विवरण मम्मट की मृत्यु के ६०० वर्ष बाद का है (१७२३ ई० में), अतः विद्वान् उसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट करते हैं। मम्मट का समय ग्यारहवी शताब्दी का उत्तर-चरण प्रतीत होता है। 'अलंकार सर्वस्व' के प्रणेता रुय्यक ने 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है और इसका उल्लेख भी किया है। रुय्यक का समय (११२८–११४९ ई०) के आसपास है। अतः मम्मट का समय उनके पूर्व ही सिद्ध होता है। यह अवश्य है कि रुय्यक मम्मट के ४० या ५० वर्ष बाद ही हुए होंगे।

'काव्यप्रकाश' के प्रणेता के प्रश्न को लेकर विद्वानों मे पर्याप्त मत-भेद है कि मम्मट ने सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना अकेले नहीं की है। इसमे काश्मीरक विद्वान अल्लट का भी योग है, इस बात पर मम्मट के सभी टीकाकारों की सहमति है। कई टीकाकारों के अनुसार मम्मट ने काव्यप्रकाश के दशम परिच्छेद के 'परिकरालंकार' तक के भाग का ही प्रणयन किया था और शेष अंश की पूर्ति अल्लट ने की थी—कृतः श्रीमम्मटा-चार्यवर्यैः परिकरावधिः। ग्रन्थः सम्पूरितः शेषो विधायाल्लटसूरिणा॥

काव्यप्रकाश की टीका निदर्शना से उद्धृत (राजानक आनन्दकृत १६८५ ई०]।

कई ग्रन्थो में सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रणेता के रूप मे लेखक-द्वय (मम्मट एवं अल्लट) का नाम आता है और लेखक के स्थान पर द्विवचन का उल्लेख मिलता है। 'काव्यप्रकाश' के कतिपय हस्तलेखों मे तीन लेखकों तक के नाम मिलते हैं—मम्मट, अलक (मल्ल) एवं रुचक। इति श्रीमद्राजानकमल्लमम्मटरुचकविरचिते निजग्रन्थकाव्यप्रकाशसंकेते प्रथम उल्लासः। [काव्यप्रकाश की संकेत टीका]। पर विद्वानों का विचार है कि 'काव्यप्रकाश' की 'संकेत टीका' के लेखक रुचक ने अपना नाम समाविष्ट कर दिया है। 'काव्यप्रकाश' के 'युग्मकर्तृत्व सिद्धान्त' से सम्बद्ध एक दूसरा मत यह है कि इसके कारिका भाग के निर्माता भरतमुनि हैं और वृत्ति की रचना मम्मट ने की है। पर दूसरे कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो कारिका एवं वृत्ति दोनों का ही रचयिता मम्मट को स्वीकार करते हैं। इसके विरोध में विद्वानो ने अनेक पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर इस मत को निस्सार सिद्ध कर दिया है। इस सिद्धान्त का प्रारम्भ बङ्गदेशीय विद्वानों द्वारा हुआ था। साहित्यकौमुदीकार विद्याभूषण एवं 'काव्यप्रकाश' की 'आदर्श' टीका के रचयिता महेश्वर ने उपर्युक्त मत प्रकट किये थे। मम्मटाद्युक्तिमाश्रित्य मितां साहित्यकौमुदीम्। वृत्ति भरतसूत्राणां श्रीविद्याभूषणो व्यधात्॥ भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया था। किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में भरत के अन्य ग्रन्थ का विवरण प्राप्त नही होता। 'काव्यप्रकाश' मे भरत-कृत तीन सूत्र ज्यो-के-त्यों प्राप्त होते है, शेष सभी सूत्र मम्मट के अपने है। 'काव्य प्रकाश' के प्रारम्भ मे एक ही मंगलश्लोक है। यदि कारिका एवं वृत्ति के रचयिता भिन्न होते तो मंगलश्लोक भी दो होते। अतः दोनो ही भागो का रचयिता एक व्यक्ति सिद्ध होता है। मम्मट ने जहाँ कहीं भी भरतमुनि के सूत्रो को उद्धृत किया है, वहाँ 'तदुक्तं भरतेन' लिखा है। यदि सम्पूर्ण सूत्र भरतकृत होते तो केवल एक दो स्थानो पर ही ऐसा लिखने की आवश्यकता नहीं पडती। अन्य अनेक भी ऐसे प्रमाण है जिनके आधार पर आ० मम्मट ही इस ग्रन्थ के निर्माता सिद्ध होते हैं। [दे० काव्यप्रकाश का हिन्दी भाष्य—आ० विश्वेश्वर की भूमिका]।

'काव्यप्रकाश' भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में महान् समन्वयकारी ग्रन्थ के रूप मे समादृत है। इसमे भरतमुनि से लेकर भोजराज तक के बारह सौ वर्षों के अलङ्कारशास्त्रविषयक अध्ययन का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया गया है। इसमें पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा स्थापित अनेक सिद्धान्तों की त्रुटियों को दर्शा कर उनका मार्जन किया गया है और अत्यन्त निर्भ्रान्त एवं स्वस्थ काव्यशास्त्रीय विचार व्यक्त किये गए हैं। काव्यशास्त्र के अनेक अङ्गों—शब्दशक्ति, ध्वनि, रस, गुण, दोष, अलङ्कार—का इसमे सर्वप्रथम यथार्थ मूल्यांकन कर उनकी महत्ता प्रतिपादित की गई है और उन्हे उसी अनुपात मे महत्त्व दिया गया है जिसके कि वे अधिकारी है। मम्मट ध्वनिवादी आचार्य हैं और सर्वप्रथम इन्होंने प्रबल ध्वनि विरोधी आचार्यों की धज्जियाँ उडाकर उनके मत को निरस्त कर दिया है। इन्होंने अलंकार को काव्य का आवश्यक तत्त्व स्वीकार न कर अलङ्कार के बिना भी काव्य की स्थिति मानी है। इनके

अनुसार दोषरहित, सगुण शब्दार्थ ही काव्य है। मम्मट ने दस गुणों के स्थान पर तीन गुणों—माधुर्य, ओज एवं प्रसाद की स्थापना की और अनेक अनावश्यक अलङ्कारों को अमान्य ठहराकर छह शब्दालंकार, ६० अर्थालङ्कार एवं सङ्कर-संसृष्टि (मिश्रालंकार) की महत्ता स्वीकार की।

आधारग्रन्थ—१-संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—पा० वा० काणे। २-काव्यप्रकाश (हिन्दी भाष्य)—आ० विश्वेश्वर।

मयूरसन्देश—इस सन्देश-काव्य के रचयिता का नाम उदय कवि है। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी है। इनके सम्बन्ध में अन्य विवरण कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इन्होंने ध्वन्यालोक लोचन के ऊपर 'कौमुदी' नामक एक टीका भी लिखी थी जो प्रथम उद्योत पर ही प्राप्त होती है। इसके अन्त में निम्नांकित श्लोक प्राप्त होता है—इत्थं मोहतमोनिमीलितदृशां ध्वन्यर्थमार्गे यतां व्याख्याभासमहोष्मलज्वरजुषां प्रेक्षावतां प्रीतये। उत्तुङ्गादुदयक्षमाभृत उदैयुष्यामुष्यामयं कौमुद्यामिह लोचनस्य विवृतावुद्योत आद्यो गतः॥ इस श्लोक से पता चलता है कि उदय नामक राजा (क्षमाभृत्) ही इस पुस्तक का लेखक होगा। 'मयूरसन्देश' रचना मेघदूत के अनुकरण पर हुई है। यह काव्य भी पूर्व एवं उत्तर भागों में विभाजित है और दोनों में क्रमशः १०७ एवं ९२ श्लोक हैं। इसका प्रथम श्लोक मालिनी छन्द में है जिसमें गणेश जी की वन्दना की गई है और शेष सभी श्लोक मन्दाक्रान्ता वृत्त में लिखे गये हैं। इसमें विद्याधरों द्वारा हरे गए किसी राजा ने अपनी प्रेयसी के पास मयूर से सन्देश दिया है। एक बार जब मालाबार नरेश के परिवार का कोई व्यक्ति अपनी रानी भारचेमन्तिका के साथ विहार कर रहा था विद्याधरों ने उसे शिव समझ लिया। इसपर राजा उनके भ्रम पर हंस पड़ा। विद्याधरों ने उसे एक माह के लिये अपनी पत्नी से दूर रहने का शाप दे दिया और राजा की प्रार्थना पर उसे स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम) में रहने की अनुमति प्राप्त हुई। वर्षाऋतु के आने पर राजा ने एक मोर को देखा और उसके द्वारा अपनी पत्नी के पास सन्देश भेजा। इसकी भाषा कवित्वपूर्ण तथा शैली प्रभावमयी है। कवि ने केरल की राजनैतिक एवं भौगोलिक स्थिति पर पूर्ण प्रकाश डाला है। विरही राजकुमार का अपनी प्रेयसी के अङ्गों के उपमानों को देखकर जीवन व्यतीत करने का वर्णन देखिये—अम्भोदाम्भोरुहशशिसुधा शैलशैवालवल्ली व्योमश्रीमत्पुलिनकदलीकाण्डबालप्रवालैः। त्वदङ्गाग्रश्रीग्रहणसुभगंभावुकैश्चित्तरम्यैस्तैस्तैर्भावैः कथमपि कुरङ्गाक्षि कालं क्षिपामि॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मल्लिसेन—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका आविर्भावकाल १०४३ ई० है। इनके पिता जैनधर्मावलम्बी थे जिनका नाम जिनसेनसूरि था। ये दक्षिण भारत के धारवाड जिले में स्थित तगद तालुका नामक ग्राम के निवासी थे। प्राकृत तथा संस्कृत दोनों ही भाषाओं के ये प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने 'आयसद्भाव' नामक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ की रचना १९५ आर्या छन्दों में

हुई है और अन्त में एक गाथा भी है। इसमें आठ आयों—ध्वज, सिंह, मण्डल, वृष, खर, गज तथा वायस—के फलाफल तथा स्वरूप का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने बताया है कि ज्योतिषशास्त्र के द्वारा भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान का ज्ञान होता है और यह विद्या किसी अन्य को न दी जाय। अन्यस्य न दातव्यं मिथ्यादृष्टेस्तु विशेषतोऽवधेयम्। शपथं च कारयित्वा जिनवरदेव्याः पुरः सम्यक्।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

महाभारत—यह भारतीय जीवन, विशेषतः हिन्दू जनता का, जातीय इतिहास है जिसकी रचना एक लाख श्लोकों में हुई है। इसके रचयिता हैं महर्षि वेदव्यास। [दे० व्यास]। विण्टरनित्स ने इसे सीमित अर्थ में इतिहास और काव्य कहा है। पर उनके अनुसार "वास्तव में एक अर्थ में महाभारत एक काव्य-कृति है ही नहीं, अपने में पूरा साहित्य है।" प्राचीन भारतीय साहित्य, खण्ड १ भाग २ पृ० ६। यह काव्य और इतिहास के अतिरिक्त अपने में भारतीय सांस्कृतिक चेतना को छिपाये हुए एक महान् सांस्कृतिक निधि है, स्वयं एक संस्कृति है। इसमें कवि ने कौरवों और पाण्डवों की कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विशाल चित्र अंकित किया है। इसमें संघर्ष-संकुल भारतीय जीवन की यथार्थ कहानी है जिसमें दो जीवन मूल्यों का चित्र उरेहा गया है तथा तत्कालीन सम्पूर्ण विचार-धाराओं एवं युग-चेतना को समेटने का सफल प्रयास किया गया है। इसीलिए कहा गया है कि यन्न भारते तन्न भारते—भारत में जो नहीं है वह महाभारत में भी नहीं है। भारत का अर्थ है—भारतों का युद्ध (भारतः संग्रामः, अष्टाध्यायी ४।२।५६)। महाभारत का अर्थ है 'भारत लोगों के युद्ध का महान् आख्यान्'। इतिहास, धर्म, राजनीति तथा साहित्य सभी दृष्टियों से यह महान् उपलब्धि है। इसे हिन्दूधर्म के समस्त स्वरूप को निरूपित करने वाला पञ्चम वेद माना जाता रहा है। स्वयं इसके रचयिता की ऐसी गर्वोक्ति है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ है, वही अन्यत्र भी है और जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है। धर्मे, ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ 'महाभारत' शान्तिपर्व में जीवन की समस्याओं के समाधान के नानाविध तत्त्वों का वर्णन है, अतः यह हिन्दू जाति के बीच धर्मग्रन्थ के रूप में समादृत है। भारतीय साहित्य एवं चिन्तन-पद्धति का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'गीता' 'महाभारत' का ही एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्र-मोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ 'महाभारत' के ही भाग हैं। उपर्युक्त पाँच ग्रन्थ 'पञ्चरत्न' के ही नाम से अभिहित होते हैं। सम्प्रति 'महाभारत' में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं, अतः इसे 'शतसाहस्री संहिता' कहा जाता है। इसका यह रूप १५०० वर्षों से है, क्योंकि इसकी पुष्टि गुप्तकालीन एक शिलालेख से होती है जहाँ 'महाभारत' के लिए 'शतसाहस्री' संहिता का प्रयोग किया गया है। इसका वर्त्तमान रूप अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है, इस प्रकार की धारणा आधुनिक

विद्वानों की है। अत्यन्त प्राचीनकाल से इस देश में ऐसे आख्यान प्रचलित थे जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का उल्लेख था। वैदिक ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र 'महाभारत' के पात्रों की कहानियाँ प्राप्त होती हैं तथा 'अथर्ववेद' में परीक्षित का आख्यान दिया हुआ है। वेदव्यास ने उन्हीं गाथाओं एवं आख्यानों को एकत्र कर काव्य का रूप दिया है जिसे हम 'महाभारत' कहते हैं। इसके विकास के तीन क्रमिक सोपान है—जय, भारत तथा महाभारत। 'महाभारत' के मङ्गलश्लोक में नारायण, नर एवं सरस्वती देवी की वन्दना करते हुए 'जय' नामक काव्य के पठन का विधान है। 'विद्वानो का कथन है कि यह जय काव्य ही 'महाभारत' का मूल-रूप है। नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ 'महाभारत' में ही लिखा गया है कि यह 'जय' नामक इतिहास है—जयनामेतिहासोऽयम्। इसकी दूसरी स्थिति भारत नाम की है जिसमे केवल युद्ध का वर्णन था और उपाख्यानो का समावेश नहीं किया गया था। उस समय इसमें चौबीस हजार श्लोक थे तथा यही ग्रन्थ वैशम्पायन द्वारा राजा जनमेजय को सुनाया गया था। *चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावत् भारतं* प्रोच्यते बुधैः॥ 'महाभारत' नाम तृतीय अवस्था का द्योतक है जब कि 'भारत' में उपाख्यानो का समावेश हुआ। विक्रम से पाँच सौ वर्ष पूर्व विरचित 'आश्वलायन-गृह्यसूत्र' म भारत के साथ ही 'महाभारत' नाम का भी निर्देश है। इसके उपाख्यान कुछ तो ऐतिहासिक है तथा कुछ का सम्बन्ध प्राचीन राजाओ एवं ऋषि-महर्षियों से है। 'हरिवंश' को लेकर 'महाभारत' के श्लोकों की संख्या एक लाख हो जाती है। इस समय 'महाभारत' के दो संस्करण प्राप्त होते है—उत्तरीय तथा दाक्षिणात्य। उत्तर भारत के संस्करण के पाँच रूप हैं तथा दक्षिण भारत के तीन रूप। इसके दो संस्करण क्रमशः बम्बई एवं एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हैं। बम्बई वाले संस्करण मे एक लाख तीन हजार पाँच सौ पचास श्लोक हैं तथा कलकत्ते वाले की श्लोक संख्या एक लाख सात हजार चार सौ अस्सी है। उत्तर भारत मे गीता प्रेस, गोरखपुर का हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण अधिक लोकप्रिय है। भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से प्रकाशित संस्करण अधिक वैज्ञानिक माना जाता है।

'महाभारत' का रचनाकाल अभी तक असंदिग्ध है। ४४५ ई० के एक शिलालेख में 'महाभारत' का नाम आया है—शतसाहस्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्। इससे ज्ञात होता है कि इसके २०० वर्ष पूर्व अवश्य ही 'महाभारत' का अस्तित्व रहा होगा। कनिष्क के सभापण्डित अश्वघोष द्वारा 'वज्रसूची उपनिषद्' में 'हरिवंश' तथा 'महाभारत' के श्लोक उद्धृत है इससे ज्ञात होता है कि लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत' कनिष्क के समय तक प्रचलित हो गया था। इन आधारो पर विद्वानों ने महाभारत को ई० पू० ६०० वर्ष से भी प्राचीन माना है। बुद्ध के पूर्व अवश्य ही 'महाभारत' का निर्माण हो चुका था। पर इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित विचार नहीं आ सका है। कतिपय आधुनिक विद्वान् बुद्ध का समय १९००

ई० पू० मानते हैं। 'महाभारत' मे १८ पर्व या खण्ड हैं—आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहणपर्व।

१–आदिपर्व की विषयसूची—'महाभारत' की रचना की कथा, ब्रह्माजी की कृपा से गणेश द्वारा 'महाभारत' का लेखन, चन्द्रवंश का इतिहास तथा कौरवों-पाण्डवों की उत्पत्ति, विदुर, कर्ण, कृष्ण, सात्यकि, कृतवर्मा, द्रोण, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न आदि के जन्म की कथा, कुन्ती और माद्री के गर्भ से धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों द्वारा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव की उत्पत्ति, शिखण्डी का जन्म, दुष्यन्त और शकुन्तला का आख्यान, दक्ष, वैवस्वत मनु एवं उनके पुत्रों की जन्म-कथा, कच-देवयानी की कथा, शान्तनु और गङ्गा के विवाह की कथा तथा भीष्म द्वारा आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा। सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य का जन्म, शान्तनु तथा चित्रांगद की मृत्यु एवं विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक। विचित्रवीर्य की मृत्यु पर माता सत्यवती के अनुरोध से कुरुवंश की वृद्धि के लिये व्यास द्वारा विचित्रवीर्य की पत्नियों से धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर का जन्म। धृतराष्ट्र एवं पाण्डु का विवाह, धृतराष्ट्र के सौ पुत्र तथा पाण्डवों की जन्म-कथा, द्रोण का परशुराम से अस्त्र प्राप्त करना तथा राजा द्रुपद से अपमानित होकर हस्तिनापुर आना एवं राजकुमारों की शिक्षा के लिये उनकी नियुक्ति, दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में पाण्डवों को मारने की योजना तथा उसकी विफलता, हिडिम्ब का वध कर भीम का उसकी बहिन हिडिम्बा से ब्याह करना तथा घटोत्कच की उत्पत्ति। द्रौपदी का स्वयम्बर तथा अर्जुन का लक्ष्यवेध कर द्रौपदी को प्राप्त करना, पाँचों भाइयों का द्रौपदी के साथ विवाह, द्रोण और विदुर के परामर्श से पाण्डवों का आधा राज्य प्राप्त कर इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाना, मणिपुर में चित्रांगदा के साथ अर्जुन का विवाह, द्वारिका में सुभद्रा-हरण एवं अर्जुन के साथ विवाह, खाण्डववन का दाह।

२—सभापर्व—मय दानव द्वारा अद्भुत सभा का निर्माण तथा नारद का आगमन, युधिष्ठिर का राजसूय करने की इच्छा प्रकट करना, राजसूय का वर्णन, भीष्म के कहने पर श्रीकृष्ण की पादपूजा, शिशुपाल का विरोध तथा कृष्ण द्वारा उसका वध, दुर्योधन की ईर्ष्या, द्यूतक्रीडा के लिए युधिष्ठिर का आह्वान, शकुनी की चाल से युधिष्ठिर की हार, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदी को हार जाना, दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीरहरण, युधिष्ठिर आदि का वनगमन।

३—वनपर्व—पाण्डवों का काम्यक् वन में प्रवेश तथा विदुर और श्रीकृष्ण का आगमन। व्यास जी के आदेश से पाण्डवों का इन्द्रकील पर्वत पर जाकर इन्द्र का दर्शन करना, अर्जुन की तपस्या एवं शिव जी से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, उर्वशी का अर्जुन पर आसक्त होना, अर्जुन का तिरस्कार करना तथा उर्वशी द्वारा उनका शापित होना, नल-दमयन्ती की कथा, परशुराम, अगस्त्य, वृत्रवध, सगर, भगीरथ, गंगावतरण ऋष्यशृङ्ग,

च्यवन, मांधाता आदि की कथा, हनुमान-भीम मिलन, सर्परूपी नहुष से संवाद एवं उसकी मुक्ति, द्रौपदी-सत्यभामा संवाद, दुर्योधन का गन्धर्वों से युद्ध एवं उसकी पराजय, पाण्डवों द्वारा उसकी रक्षा एवं दुर्योधन की आत्मग्लानि, सावित्री-उपाख्यान, इन्द्र का कर्ण से कवच कुण्डल का दान रूप में ग्रहण तथा दिव्यशक्ति देना, यक्ष-युधिष्ठिरसंवाद।

४—विराटपर्व—अज्ञातवास के लिए पाण्डवों का विराट्नगर में प्रस्थान, कीचक का द्रौपदी को अपमानित करना तथा भीम द्वारा उसका वध, सुशर्मा से पाण्डवों का राजा विराट् की रक्षा करना, कौरवों का विराट् पर आक्रमण तथा पाण्डवों की सहायता से विराट् की विजय। विराट् की पुत्री उत्तरा के साथ अभिमन्यु का विवाह।

५—उद्योगपर्व—विराटनगर में श्रीकृष्ण के परामर्श से द्रुपद-पुरोहित का हस्तिनापुर जाना, अर्जुन तथा दुर्योधन दोनों को सहायता करने का श्रीकृष्ण का आश्वासन, पाण्डवों की सैनिक तैयारी, संजय का दूत बनकर आना और पाण्डवों का कौरवों को सन्देश, धृतराष्ट्र का चिन्तित होना, पाण्डवों का दूत बन कर श्रीकृष्ण का दुर्योधन की सभा में जाना और उनकी वार्त्ता का विफल होना, कुरुक्षेत्र में दोनों दलों की सैन्य-योजना एवं व्यूह की रचना।

६—भीष्मपर्व—व्यास जी द्वारा संजय को दिव्य दृष्टि की प्राप्ति, धृतराष्ट्र के पूछने पर संजय का युद्ध का विवरण देना, दस दिनों तक भीष्म द्वारा घनघोर युद्ध तथा शिखण्डी की सहायता से भीष्म का पतन, भीष्म की शरशय्या तथा प्राणत्याग के लिए उनकी उत्तरायण की प्रतीक्षा।

७—द्रोणपर्व—अभिमन्यु का युद्ध, द्रोण द्वारा चक्रव्यूह का निर्माण एवं अभिमन्यु की मृत्यु, अर्जुन द्वारा जयद्रथ का मारा जाना, कर्ण की शक्ति से घटोत्कच की मृत्यु, द्रोणाचार्य का घोर युद्ध तथा धृष्टद्युम्न द्वारा उनका वध, अश्वत्थामा का क्रोध कर उसका नारायणास्त्र का प्रयोग, श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डव सेना एवं भीम की रक्षा।

८—कर्णपर्व—कर्ण का सेनापति बनना, कर्ण द्वारा युधिष्ठिर की पराजय तथा पलायन, अश्वत्थामा को पराजित कर अर्जुन का युधिष्ठिर का समाचार लेने के लिए आना, युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन का तिरस्कार तथा अर्जुन का युधिष्ठिर को मारने के लिए उद्यत होना। कृष्ण की शिक्षा से दोनों का प्रसन्नतापूर्वक मिलन, कर्णवध तथा युधिष्ठिर द्वारा शल्य का मारा जाना, दुर्योधन का सरोवर में प्रवेश।

९—गदापर्व—भीमसेन की ललकार सुनकर दुर्योधन का सरोवर से निकलना तथा भीमसेन के साथ गदा-युद्ध, भीम का दुर्योधन की जांघ तोड़ देना, बलराम का आना और क्रोध प्रकट करना, दुर्योधन की दशा देखकर अश्वत्थामा का शोक करना तथा उसका सेनापतित्व ग्रहण करना।

१०—सौप्तिकपर्व—अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पांच पुत्रों तथा अन्य वीरों का वध, अर्जुन का अश्वत्थामा को दण्ड देना तथा मणि देकर अश्वत्थामा का पलायन।

११—स्त्रीपर्व—जल प्रदानादि कर्म, धृतराष्ट्र का विलाप, संजय एवं विदुर का

उन्हें समझाना, गान्धारी का क्रोध करना तथा व्यास जी का उसे समझाना, स्त्री-पुरुषों द्वारा अपने संबंधियों को जलांजलि देना।

१२—शान्तिपर्व—युधिष्ठिर द्वारा महर्षि नारद से कर्ण का वृत्तान्त जानकर शोक प्रकट करना, क्रमशः भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी का गृहस्थधर्म, राज्य तथा धन की प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिर को समझाना, श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के शोक-निवारण का प्रयत्न करना तथा सोलह राजाओं का उपाख्यान सुनाना, श्रीकृष्ण के कहने पर युधिष्ठिर का भीष्म के पास जाना तथा भीष्म का युधिष्ठिर को राजधर्म, आपत्तिग्रस्त राजा के कर्त्तव्य एवं धर्म की सूक्ष्मता का उपदेश देना। नाना प्रकार के आख्यान, अनेक गीताएँ तथा आख्यान, मोक्ष के साधन का वर्णन, यज्ञ में हिंसा की निन्दा तथा अहिंसा की प्रशंसा, सांख्ययोग का वर्णन, जनक तथा शुकदेव आदि ऋषियों की कथा।

१३—अनुशासनपर्व—युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए भीष्म का अनेक कथाएँ कहना, लक्ष्मी के निवास करने तथा न करने योग्य पुरुष-स्त्री और स्थानों का वर्णन, शरीर, मन और वाणी के पापो के परित्याग का उपदेश, दान-महिमा-व्रत, उपवास आदि के फल, हिंसा तथा मांस-भक्षण की निन्दा, भीष्म का प्राणत्याग।

१४—आश्वमेधिकपर्व—युधिष्ठिर का शोक करना तथा श्रीकृष्ण का उन्हें समझाना, अर्जुन से श्रीकृष्ण का मोक्ष-धर्म का वर्णन करना, उत्तंक की कथा, अभिमन्यु का श्राद्ध, मृत बालक परीक्षित का कृष्ण द्वारा पुनरुज्जीवन, यज्ञ का आरम्भ तथा अर्जुन द्वारा अश्व की रक्षा, विभिन्न प्रकार के दान एवं व्रत का वर्णन।

१५—आश्रमवासिकपर्व—धृतराष्ट्र का गान्धारी तथा कुन्ती के साथ वन जाना, गान्धारी तथा कुन्ती का मृत पुत्रों को देखने के लिए व्यास जी से अनुरोध करना तथा परलोक से मृत पुत्रो का आना एवं दर्शन देना धृतराष्ट्र, गान्धारी एवं कुन्ती की मृत्यु।

१६—मौसलपर्व—मौसल युद्ध मे यदुवंशियो का नाश।

१७—महाप्रस्थानिकपर्व—पाण्डवो द्वारा वृष्णि-वंशियों का श्राद्ध करके हिमालय की ओर प्रस्थान, युधिष्ठिर के अतिरिक्त सभी भाइयों का पतन, युधिष्ठिर का सदेह स्वर्ग में जाना।

१८—स्वर्गारोहणपर्व—स्वर्ग में नारद तथा युधिष्ठिर मे वार्त्तालाप, युधिष्ठिर का नरक देखना तथा भाइयों का क्रन्दन सुन कर नरक मे रहने का निश्चय करना, इन्द्र तथा धर्म का युधिष्ठिर को समझाना, युधिष्ठिर का दिव्य लोक मे जाना तथा अर्जुन, कृष्ण आदि से भेंट करना। महाभारत का उपसंहार और माहात्म्य। 'महाभारत' में अनेक रोचक आख्यानो का वर्णन है जिनमे मुख्य है शकुन्तलोपाख्यान (आदि पर्व ७१ वां अध्याय), मत्स्योपाख्यान (वनपर्व), रामोपाख्यान, शिवि उपाख्यान (वनपर्व, १३० अध्याय), सावित्री उपाख्यान (वनपर्व २३९ अध्याय), नलोपाख्यान (वनपर्व ५२ से ७९ अध्याय तक)। इसमें राजा नल और दमयन्ती की कहानी दी गयी है।

महाभारत के टीकाकार—'महाभारत' की अनेक टीकाएँ हैं जिनकी संख्या ३६ है।

१–देवबोध—इनकी टीका का नाम 'ज्ञानदीपिका' है जो सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध टीका है। यह टीका आदि, सभा, भीष्म तथा उद्योगपर्व पर है। २–वैशम्पायन—इनकी टीका मोक्षधर्म या शान्तिपर्व पर उपलब्ध होती है। इनका समय ११५० ई० से पहले है। ३–विमलबोध—इनकी टीका का नाम 'विषमश्लोकी' या 'दुर्घटार्थ-प्रकाशिनी' है। यह टीका सम्पूर्ण महाभारत पर है। इसका समय १०५० ई० है। ४–नारायण सर्वज्ञ—इनकी टीका विराट् एवं उद्योगपर्व पर प्रकाशित है। इनका समय ११३०–१३०० ई० के बीच है। ५–चतुर्भुज मिश्र—इनका समय १३ वीं शती का अन्तिम भाग है। इनकी टीका का नाम 'भारतोपायप्रकाश' है। ६–आनन्दपूर्ण विद्यासागर—इनकी टीका आदि, सभा, भीष्म, शान्ति तथा अनुशासनपर्व पर है। इनका समय १४ वीं शती का मध्य है। ७–नीलकण्ठ—इनकी टीका का नाम 'भारतभावदीप' है जो १८ पर्वों पर प्रकाशित एकमात्र टीका है। इनका समय १६५०–१७०० ई० के बीच है। यह टीका अनेक भागों में चित्रशाला प्रेस, पूना से प्रकाशित हो चुकी है।

'महाभारत' के ऊपर भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं में अनेकानेक ग्रन्थ निकले हैं तथा इसका अनुवाद विश्व की प्रसिद्ध भाषाओं में हो चुका है। सम्पूर्ण 'महाभारत' का अँगरेजी गद्यानुवाद किशोरीमोहन गांगुली तथा प्रतापचन्द्र राय ने (१८८४–१८९६ ई०) किया था। प्रथम दश पर्वों का फ्रेंच अनुवाद श्री एच० फाके ने पेरिस से (१८६३–१८७०) में प्रकाशित किया। श्री पी० ई० पावलिनी ने इतालवी भाषा में इसके कई अंशों का अनुवाद १९०२ ई० में तथा एफ० बोप्प ने किया। विन्टर-नित्स ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद १९१२ ई० में किया है जिसका नाम है—'दस स्लैगनोपफरदेस महाभारत'। हाल्टमैन ने दो खण्डों में जर्मन भाषा में महाभारत पर आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा है। सोरेन्सन ने अँगरेजी में 'महाभारत इन्डेक्स' लिखा जिसमें महाभारत के नामों एवं विषयों की सूची है।

इसका हिन्दी अनुवाद 'महाभारतकोष' के नाम से ५ खण्डों में प्रकाशित है, अनु० श्रीरामकुमार राय।

'महाभारत' भारत की नैतिक एवं धार्मिक परम्परा का प्रमुखतम स्रोत है तथा जन-मानस को अधिक प्रभावित करने के कारण, कलात्मक ढंग से जीवन को प्रति-बिम्बित करने के कारण महान् काव्यकृति के रूप में समादृत है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसे काव्य कहा गया है तथा ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन के द्वारा इसे काव्य के ही रूप में शास्त्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। पर, इसमें विशुद्ध काव्य की तरह सौन्दर्यदृष्टि का प्राधान्य न होकर कर्म की प्रधानता है। इसमें प्रकृति-चित्रण अथवा किसी नायिका के रूप वर्णन के प्रति लेखक रस लेते हुए नहीं दिखाई पड़ता। 'महाभारत' युगधर्म को चित्रित करने वाला अपूर्व काव्य है। इसमें जिस जीवन का चित्रण है उसमें अनेक प्रकार के अन्तर्विरोध एवं बाह्य द्वन्द्व का विस्तार है तथा उनकी मार्मिक और तीव्र अभिव्यक्ति है। इसका प्रधान विषय संघर्ष है और वह अर्थ एवं काम का संघर्ष है जो धर्म के दायरे में प्रवाहित हुआ है। 'महाभारत' में स्थान-स्थान पर नैतिक

उपदेश, आध्यात्मिक तथ्य तथा राजधर्मसम्बन्धी विचार व्यक्त किये गए हैं। इसके शान्तिपर्व में राजधर्म का वर्णन भारतीय राजनीतिशास्त्र के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। 'महाभारत' के अनेक आख्यानों एवं विषयों को देखकर वह भावना मन में उठती है कि यह एक व्यक्ति की रचना न होकर कई व्यक्तियों की कृति है, परन्तु आन्तरिक प्रमाणों एवं शैली के आधार पर यह सिद्ध होता है कि इसे एकमात्र व्यास ने ही लिखा है। भाषा तथा शैली की एकरूपता इसे एक ही व्यक्ति की रचना सिद्ध करती है।

आधारग्रन्थ—१–महाभारत (हिन्दी अनुवाद सहित)—गीता प्रेस, गोरखपुर। २–महाभारत की विषयानुक्रमणिका—गीता प्रेस, गोरखपुर। ३–महाभारत कोष—(पाँच खण्डों मे) अनु० श्री रामकुमार राय (चौखम्बा प्रकाशन)। ४—महाभारत-परिचय—गीता प्रेस, गोरखपुर। ५–महाभारत-मीमांसा—श्री माधवराव सप्रे। ६–संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ७–भारतसावित्री (भाग १, २, ३,)—डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवाल। ८–भारतीय संस्कृति–डॉ० देवराज। ९–संस्कृत साहित्य का इतिहास–श्री गैरोला। १०–भारतीय प्रज्ञा—मोनियर विलियम हिन्दी अनु० श्री रामकुमार राय। ११–संस्कृति के चार अध्याय–श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'। १२–महाभारतकालीन समाज—डॉ० सुखमय भट्टाचार्य, अनु० डॉ० वनमाला भवालकर। १३–प्राचीन भारतीय साहित्य–खण्ड १ भाग २—डॉ० विण्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद)। १४–प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका—डॉ० रामजी उपाध्याय। १५–महाभारत का आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो पर प्रभाव—डॉ० विनयकुमार।

महाभाष्य—यह व्याकरण का युगप्रवर्त्तक ग्रन्थ है जिसके लेखक है पतञ्जलि [दे० पतञ्जलि]। यह पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' की व्याख्या है, अतः इसकी सारी योजना उसी पर आधृत है। इसमें कुल ८५ आह्निक (अध्याय) हैं। भर्तृहरि के अनुसार 'महाभाष्य' केवल व्याकरणशास्त्र का ही ग्रन्थ न होकर समस्त विद्याओं का आकर है। कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना। सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने॥ वाक्यप्रदीय, २।४८६। पतञ्जलि ने समस्त वैदिक तथा लौकिक प्रयोगों का अनुशीलन करते हुए तथा पूर्ववर्त्ती सभी व्याकरणों का अध्ययन कर समग्र व्याकरणिक विषयो का प्रतिपादन किया है। इसमें व्याकरणविषयक कोई भी प्रश्न अछूता नहीं रह गया है। इसकी निरूपणशैली तर्कपूर्ण एवं सर्वथा मौलिक है। 'महाभाष्य' की रचना के पश्चात् पाणिनिव्याकरण के समस्त रहस्य स्पष्ट हो गए और उसी का पठन-पाठन होने लगा। इसमें 'अष्टाध्यायी' के चौदह प्रत्याहार सूत्रों को मिलाकर ३९९५ सूत्र विद्यमान हैं, किन्तु १६८९ सूत्रों पर ही भाष्य लिखा गया है, तथा शेष सूत्रों को उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है। पतञ्जलि ने कतिपय सूत्रों में वार्त्तिककार के मत को भ्रान्त ठहराते हुए पाणिनि के ही मत को प्रामाणिक माना तथा १६ सूत्रों को अनावश्यक सिद्ध कर दिया। उन्होंने कात्यायन के अनेक आक्षेपों का उत्तर देते हुए पाणिनि का पक्ष लिया जिसे विद्वानों ने पाणिनि के प्रति उनकी अतिशय भक्ति या पक्षपात स्वीकार किया है। उन्होंने पाणिनि के लिये भगवान्, आचार्य, मांगलिक,

सुहृद आदि विशेषण प्रयुक्त किये हैं। उनके अनुसार पाणिनि का एक भी कथन अशुद्ध नहीं है। कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्–आ० १ पृ० १३।

'महाभाष्य' में संभाषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है तथा विवेचन के मध्य में 'किवक्तव्यमेतत्', 'कथं तर्हि', 'अस्ति प्रयोजनम्' आदि संवादात्मक वाक्यों का समावेश कर विषय को रोचक बनाकर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। उसकी व्याख्यान-पद्धति के तीन तत्त्व हैं—सूत्र का प्रयोजन-निर्देश, पदों का अर्थ करते हुए सूत्रार्थ निश्चित करना एवं 'सूत्र की व्याप्ति बढ़ाकर या कम कर के सूत्रार्थ का नियन्त्रण करना'। महाभाष्य का उद्देश्य ऐसा अर्थ करना था जो पाणिनि के अनुकूल या इष्टसाधक हो। अतः जहाँ कहीं भी सूत्र के द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता न दिखाई पड़ा वहाँ पर या तो सूत्र का योग-विभाग किया गया है या पूर्व प्रतिषेध को ही स्वीकार कर लिया गया है। पतञ्जलि ने सूत्रकार का समर्थन करने के लिए वार्त्तिककार के विचारों का खण्डन भी किया है। पर आवश्यकतानुसार उन्होंने पाणिनि के दोष-दर्शन भी किये हैं, किन्तु ऐसे स्थल केवल दो ही हैं— 'एतदेकमाचार्यस्य मङ्गलार्थमृष्यताम्' तथा 'प्रमादकृतमेतदाचार्यस्य शक्यमकर्त्तुम्।' 'महाभाष्य' में स्थान-स्थान पर सहज, चटुल, तिक्त एवं कड़वी शैली का भी प्रयोग है। व्यंग्यमयी कटाक्षपूर्ण शैली के उदाहरण तो इसमें भरे पड़े हैं। क–किं पुनरनेन वर्ण्येन ? किं न महता कष्टेन नित्यशब्द एवोपात्तो यस्मिन्नुपादीयमाने सन्देहः स्यात्। ख–आहोपुरुषिका मात्रं तु भवानाह। पतञ्जलि के कतिपय न्यायों की भी उद्भावना की है—कूपखानकन्याय, कुम्भीधान्यन्याय, काकतालीयन्याय, प्रासादवासिन्यन्याय।

'महाभाष्य' में व्याकरण के मौलिक एवं महनीय सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है। पतञ्जलि के अनुसार शब्द एवं अर्थ का सम्बन्ध नित्य है तथा वे यह भी स्वीकार करते हैं कि शब्दों में स्वाभाविक रूप से ही अर्थाभिधान की शक्ति विद्यमान रहती है। उन्होंने पद के चार अर्थ स्वीकार किये—गुण, क्रिया, आकृति तथा द्रव्य। आकृति को जाति कहा जाता है जो द्रव्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी स्वयं छिन्न-भिन्न नहीं होती। आकृति के बदल जाने पर भी द्रव्य वही रहा करता है तथा गुण और क्रिया द्रव्य में ही विद्यमान रहते हैं। पतञ्जलि के मतानुसार शब्द जाति एवं व्यक्ति दोनों का ही निर्देशक है, केवल जाति या केवल व्यक्ति का नहीं। इसी प्रकार उन्होंने शब्दों के प्रयोग, वाक्य में उनका स्थान, सामर्थ्य तथा शब्दों के नियत विषयत्वादि के सम्बन्ध में भी मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने बताया कि लिंग का अनुशासन व्याकरण द्वारा नहीं होता, बल्कि वह लोकाश्रित होता है। व्याकरण का कार्य है व्यवस्था करना। वह पदों का संस्कार कर उन्हें प्रयोग के योग्य बनाता है। लोक को प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है। 'महाभाष्य' में लोक-विज्ञान तथा लोक-व्यवहार के आधार पर मौलिक सिद्धान्त की स्थापना की गयी है तथा व्याकरण को दर्शन का स्वरूप प्रदान किया गया है। इसमें स्फोटवाद की मीमांसा कर शब्द को ब्रह्म का रूप मान लिया गया है। इसके प्रारम्भ में ही यह विचार व्यक्त किया गया है कि शब्द उस ध्वनि को कहते हैं जिसके व्यवहार करने में पदार्थ का ज्ञान

हो। लोक में ध्वनि करने वाला बालक शब्दकारी कहा जाता है, अतः ध्वनि ही शब्द है।

यह ध्वनि स्फोट का दर्शक होती है। शब्द नित्य है और उस नित्य शब्द का ही अर्थ होता है। नित्य शब्द को ही स्फोट कहते हैं। स्फोट की न तो उत्पत्ति होती है और न नाश होता है। बोलते समय ध्वनि द्वारा वह नित्य स्फोटरूपी शब्द ही प्रकाशित होता है। महाभाष्यकार ने स्फोट तथा ध्वनि का दो स्वरूप माना और शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य स्वीकार किया। शब्द के दो भेद है—नित्य और कार्य। स्फोटस्वरूप शब्द नित्य होता है तथा ध्वनिस्वरूप शब्द कार्य। स्फोटवर्ण नित्य होते है, वे उत्पन्न नहीं होते। उनकी अभिव्यक्ति व्यंजक ध्वनि के ही द्वारा होती है।

आधारग्रन्थ—१. महाभाष्य—प्रदीपोद्योत—सम्पादक म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। २. महाभाष्य (हिन्दी अनुवाद) दो खण्डों मे—अनु० पं० चारुदत्त शास्त्री। ३. महाभाष्य (हिन्दी अनुवाद)—चौखम्बा प्रकाशन। ४. कत्यायन एण्ड पतञ्जलि—कीलहार्न। ५ लेक्चर्स ऑन पतञ्जलिज महाभाष्य—श्री पी० एस० पी० शास्त्री। ६. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं युधिष्ठिर मीमासक। ७ पतञ्जलिकालीन भारत—डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री। ८ द फिलासफी ऑफ संस्कृत ग्रामर—श्री चक्रवर्त्ती।

महाभाष्य के टीकाकार—'महाभाष्य' की अनेक टीकाये हुई है जिनमें कुछ तो नष्ट हो चुकी हैं, और जो शेष हैं, उनका भी विवरण प्राप्त नही होता। अनेक टीकाएँ हस्तलेख के रूप मे वर्त्तमान है। प्रसिद्ध टीकाकारो का विवरण इस प्रकार है—१. भर्तृहरि—इनकी टीका उपलब्ध टीकाओ मे सर्वाधिक प्राचीन है। इसका नाम है 'महाभाष्यदीपिका' [दे० भर्तृहरि]। २. कैयट—'महाभाष्यप्रदीप' [दे० कैयट]। ३. ज्येष्ठकलक, मैत्रेयरक्षित—इनकी टीकाएँ अनुपलब्ध है। ५. पुरुषोत्तमदेव—बंगाल निवासी, टीका का नाम 'प्राणपणा', समय स० १२००। ६. शेषनारायण—'सूक्तिरत्नाकर' नामक टीका, समय सं० १५०० से १५५०। ७. नीलकण्ठ वाजपेयी—'भाषातत्त्वविवेक' समय-सं० १५७५—१६२५। ८. शेषविष्णु—'महाभाष्यप्रकाशिका', समय सं० १६००—१६५०। ९ शिवरामेन्द्र सरस्वती—'महाभाष्यरत्नाकर' समय सं० १६०० के पश्चात। १० प्रयागवेङ्कटाद्रि—'विद्वन्मुखभूषण'। ११ तिरुमल्लयज्वा—'अनुपदा' समय सं० १६५० के आसपास। १२. नारायण (महाभाष्य विवरण) दे० संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमासक।

महावीर-चरित—यह महाकवि भवभूति विरचित नाटक है जिसमे सात अंक हैं [दे० भवभूति]। इसमे रामायण के पूर्वार्द्ध की कथा वर्णित है। अर्थात् कवि ने राम-विवाह से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया है। रामचन्द्र को साद्यान्त एक वीर पुरुष के रूप मे प्रदर्शित करने के कारण इसकी अभिधा 'महावीर-चरित' है। कवि का मुख्य उद्देश्य रामचन्द्र के चरित का वीरत्वप्रधान अंश चित्रित करना रहा है। 'महावीरस्य रामस्य चरितं यत्र अथवा महावीरस्य चरितं महावीर-चरितम् तदधिकृत्य कृतं नाटकम् महावीरचरितम्।' इसमें कवि ने मुख्य घटनाओं की

सूचना कथोपकथनों के माध्यम से दी है तथा कथा को नाटकीयता प्रदान करने के लिए मूल कथा में परिवर्तन भी किया है। प्रारम्भ से ही रावण को राम का विरोध करते हुए प्रदर्शित किया गया है, तथा उनको नष्ट करने के लिए वह सदा षड्यन्त्र करता रहता है।

प्रथक अंक—विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आकर यज्ञ-रक्षणार्थ राम और लक्ष्मण की याचना करते हैं। राजा अनिच्छापूर्वक उन्हें मुनि को सौंप देते हैं। मुनि यज्ञ करते है और उसको देखने के लिए जनकपुर के लोग पधारते है। विश्वामित्र के आश्रम मे ही राम और लक्ष्मण विदेहराज जनक की कन्याओं–सीता और उर्मिला–को देखकर उन पर अनुरक्त हो जाते हैं। इसी बीच रावण का दूत आकर सीता को वरण करने के लिए राजा जनक को सन्देश देता है। दूत अपनी बातें पूरी भी नहीं करता; कि आश्रम में भारी कोलाहल मच जाता है, और ताडका प्रवेश करती है। विश्वामित्र के आदेश मे राम उसका वध कर डालते हैं। रामचन्द्र को विश्वामित्र द्वारा दिव्यास्त्रो की प्राप्ति होती है, ओर उनके समक्ष यह शर्त रखी जाती है कि; यदि रामचन्द्र शिवधनु को झुका दे तो उनका विवाह सीता के साथ कर दिया जायगा। राम शिव-धनुष को भंग कर देते हैं, और रावण का दूत क्रुद्ध होकर चला जाता है।

द्वितीय अंक मे रावण का मन्त्री माल्यवान् अपनी अनुभूत पराजय का बदला चुकाने के लिये अपनी बहिन शूर्पणखा के साथ षड्यन्त्र करता है। वह परशुराम के पास पत्र लिख कर शिव-धनुष को भङ्ग करने वाले राम के साथ बदला चुकाने के लिए उभाडता है और वे उसके बहकावे में आ जाते है, और मिथिला जाकर राम को अपमानित कर युद्ध के लिए ललकारते है। तृतीय अंक मे राम एवं परशुराम का वाक्-युद्ध चलता है, तथा वशिष्ठ, विश्वामित्र, जनक, शतानन्द एवं दशरथ द्वारा उनके युद्ध को रोकने का प्रयास किया जाता है; किन्तु सारा प्रयत्न निष्फल हो जाता है। चतुर्थ अंक मे ज्ञात होता है कि परशुराम हार कर राम की वंदना करते हुए चले जाते है। इसी बीच माल्यवान् राम को पराजित करने के लिए नये षड्यन्त्र की योजना बनाता है। जब राम मिथिला मे थे तभी शूर्पणखा ने मन्थरा का वेश बनाकर और कैकेयी का एक पत्र लेकर राम को दिया, जिसमे लिखा हुआ था कि राम दशरथ द्वारा दिये गए दो वरदानो को—भरत का राज्याभिषेक एवं राम का चौदह वर्ष के लिए वनवास—पूर्ण कराये। इधर जब भरत और उनके मामा युधाजित् दशरथ से राम का राज्याभिषेक करने की बात कहते है, उसी समय राम आकर कैकेयी की दो मांगों के सम्बन्ध मे सूचना देकर सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन-प्रयाण करते है, तथा भरत राज्य की देख-भाल करने के लिए छोड दिये जाते हैं। पंचम अंक मे जटायु तथा सम्पाति के वार्त्तालाप में राम द्वारा राक्षसो के संहार एवं उनके अन्य कृत्यो की सूचना प्राप्त होती है। संपाति जटायु को राम की देखभाल करने को कहता है, और जटायु अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ रावण द्वारा चुराई गयी सीता की रक्षा के लिए अपना प्राण भी दे देता है। इधर शोकग्रस्त राम-लक्ष्मण वनों मे घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं, और एक तपस्वी

की रक्षा कर उससे कतिपय सूचनाएँ प्राप्त करते है। रावण द्वारा लंका से निष्कासित उसका अनुज विभीषण राम से ऋष्यमूक पर मिलने की इच्छा प्रकट करता है; जहाँ पर सीता ने अपने वस्त्राभूषणों को गिराया था। माल्यवान् की प्रेरणा से बाली नामक बन्दरो का राजा राम को ऋष्यमूक प्रवेश से रोकता है। राम बाली का वध करते है और उसका छोटा भाई सुग्रीव राम को सीता की खोज करने मे सहायता करने का वचन देता है। षष्ठ अक मे अपनी योजनाओ की असफलता पर विषण्ण माल्यवान् के दर्शन होते है, और उसे हनुमान् द्वारा लंका जलाने का समाचार प्राप्त होता है। रावण सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए प्रवेश करता है और मन्दोदरी उससे बढ़े हुए उसके शत्रु के सम्बन्ध मे चेतावनी देती है, पर रावण उसकी एक नही सुनता। राम का दूत अंगद आकर रावण को लक्ष्मण का शरण मे आने की बात कहता है, पर रावण न केवल उसकी बातो को ही अनसुनी करता है, अपितु उसे दण्ड देने का भी आदेश देता है। अंगद कूद कर भाग जाता है और राम द्वारा लंका पर चढाई कर दी जाती है। रावण युद्ध मे प्रयाण करता है और आकाश मे इन्द्र तथा चित्ररथ उसके युद्ध का वर्णन करते है। रावण वीरता का प्रदर्शन करते हुए अन्ततः सपरिवार मारा जाता है। सप्तम अंक मे शोकाकुल लंका का प्रवेश एवं अलका द्वारा उसे सान्त्वना दिलाई गयी है। इस अक मे यह सूचना प्राप्त होती है कि अग्नि-परीक्षा के द्वारा सीता की पवित्रता सिद्ध की गयी है। पुनः विजयी राम अपनी सेना के साथ पुष्पकारूढ़ होकर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते है, और उनकी माताएँ एवं भाई उनका स्वागत करते है। विश्वामित्र द्वारा राम का राज्याभिषेक होता है और नाटक की समाप्ति होती है।

'महावीर-चरित' भवभूति की प्रथम रचना है, अतः उसमे नाटकीय प्रौढ़ता के दर्शन नही होते। कवि ने प्रसिद्ध राम-कथा मे पर्याप्त परिवर्तन न करते हुए इस नाटक की रचना की है। माल्यवान् द्वारा प्रेरित होकर परशुराम का राम से बदला चुकाने के लिए मिथिला जाना तथा राम-वन गमन का सम्पूर्ण प्रसग भवभूति की मौलिक उद्भावना है। कवि ने राम द्वारा बालि-वध की घटना में व्यापक रूप से परिवर्त्तन किया है तथा पात्रो के चरित्र का उत्कर्षाधान करने के लिए मूल घटनाओ को परिवर्तित किया है। भवभूति ने इस नाटक मे सम्पूर्ण राम-चरित का नियोजन कर बहुत बडी पटुता प्रदर्शित की है। इतने बड़े कथानक में सन्तुलन लाने तथा कथा को नाटकीय रूप देने के लिए मूल कथा मे अनेक परिवर्त्तन किये गए हैं, एवं कथानक को अधिक मनोवैज्ञानिक बनाया गया है। यद्यपि कथानक को प्रशस्त बनाने के लिए कवि की ओर से हर संभव प्रयास किये गए है, तथापि इस नाटक मे त्रुटियाँ कम नहीं है। परशुराम, जनक, दशरथ तथा राम आदि के संवाद एवं वाग्युद्ध दो अंको में व्याप्त हैं; जो कवि की नाटकीय असफलता के द्योतक होकर दर्शकों मे वैरस्य उत्पन्न करने वाले है। यद्यपि इन संवादो का काव्यत्व की दृष्टि से अवश्य ही महत्त्व है, पर नाटकीय कला के विचार से ये अनुपयुक्त हैं। पद्यों का बाहुल्य इसके नाटकीय सन्निकर्ष को गिरा देता है। सम्पूर्ण षष्ठ अंक इन्द्र एवं चित्ररथ के संवादों के रूप में

वर्णित होने के कारण नाटकीय कम एवं वर्णनात्मक अधिक है जो नाटक की अपेक्षा काव्य के अधिक निकट है। नाटककार का उद्देश्य रङ्गमंच पर युद्ध को नहीं दिखाना ही रहा है। किन्तु इसमें वह कृतकार्य नहीं हो सका है। भवभूति के संवाद अत्यन्त परिष्कृत एवं विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने में पर्याप्त समर्थ हैं। इनमें नाटकीय संविधान के साथ-ही-साथ काव्य-कौशल भी प्रदर्शित किया गया है। कहीं-कहीं संवाद आवश्यकता से अधिक लम्बे भी हैं। कवि ने वीर एवं अद्भुत रसों की योजना अत्यन्त मार्मिकता से की है। इनके अतिरिक्त करुण एवं शृङ्गार रस की भी व्यंजना हुई है। पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी नाटक उत्तम है। कवि ने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ मानव-जीवन का चित्रण किया है। सप्तम अंक में पुष्पक विमानारूढ़ राम द्वारा विभिन्न प्रदेशों का वर्णन प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से मनोरम है।

महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित—आप संस्कृत के आधुनिक विद्वानों में प्रसिद्ध है। आप का जन्म १८७८ ई० में हरदोई जिले के भावनगर में हुआ है। संस्कृत में रचित ग्रन्थों की संख्या २४ है जिनमे ६ नाटक है। ग्रन्थों के नाम—'कुण्डगोलकनिर्णय', 'अभिधानराजेन्द्रकोष', 'पाली-प्राकृतव्याकरण', प्राकृत-प्रदीप', 'मातृदर्शन', 'पाणिनीय सिद्धान्तकौमुदी', 'कवितारहस्य', केलिकुतूहल' तथा 'रोगीमृत्युदर्पण'। नाटको के नाम है—'वीरप्रताप', 'शंकरविजय', 'पृथ्वीराज', 'भक्तसुदर्शन', 'गान्धीविजयनाटकम्' तथा 'भारतविजयनाटकम्'। अन्तिम ग्रन्थ बीसवीं शताब्दी का श्रेष्ठ नाटक माना जाता है।

मार्कण्डेयपुराण—पौराणिक क्रम से ७ वाँ पुराण। मार्कण्डेय ऋषि के नाम से अभिहित होने के कारण इसे 'मार्कण्डेयपुराण' कहा जाता है। 'शिवपुराण' में कहा गया है कि जिस पुराण मे महामुनि मार्कण्डेय ने वक्ता होकर कथा की थी, और जो पौराणिक क्रम से सातवाँ पुराण है, उसे 'मार्कण्डेयपुराण' कहते हैं। इस पुराण म ९ सहस्र श्लोक एवं १३८ अध्याय है। 'नारदपुराण' की विषय-सूची के अनुसार इसके ३१ वे अध्याय के बाद इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामकथा, कुशवंश, सोमवंश, पुरूरवा, नहुष तथा ययाति का वृत्तान्त, श्रीकृष्ण की लीलाएँ, द्वारिकाचरित, सांख्या कथा, प्रपञ्चसत्त्व तथा मार्कण्डेय का चरित वर्णित है। इस पुराण में अग्नि, सूर्य तथा प्रसिद्ध वैदिक देवताओं की अनेक स्थानो मे स्तुति की गयी है, और उनके सम्बन्ध मे अनेक आख्यान प्रस्तुत किए गये है। इसके कतिपय अंशो का 'महाभारत' के साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। इसका प्रारम्भ 'महाभारत' के कथा-विषयक चार प्रश्नो से ही होता है, जिनका उत्तर महाभारत में भी नहीं है। प्रथम प्रश्न द्रौपदी के पञ्चपतित्व से सम्बद्ध है एवं अन्तिम प्रश्न मे उसके पुत्रों का युवावस्था मे मर जाने का कारण पूछा गया है। इन प्रश्नो का उत्तर मार्कण्डेय ने स्वयं न देकर चार पक्षियों द्वारा दिलवाया है। इस पुराण में अनेक आख्यानों के अतिरिक्त गृहस्थधर्म, श्राद्ध, दैनिकचर्या, नित्यक्रम, व्रत एवं उत्सव के सम्बन्ध में भी विचार प्रकट किये गए है, तथा आठ अध्यायों मे (३६-४३) योग का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

'दुर्गासप्तशती' मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जिसके तीन विभाग हैं। इसके पूर्व मे मधुकैटभवध, मध्यमचरित में महिषासुरवध एवं उत्तर-चरित में शुम्भ-निशुम्भ तथा उनके सेनापतियों—चण्ड-मुण्ड एवं रक्तबीज—के वध का वर्णन है। इस सप्तशती मे दुर्गा या देवी को विश्व की मूलभूत शक्ति के रूप मे वर्णित किया गया है, तथा विश्व की मूल चितिशक्ति देवी को ही माना गया है। विद्वानो ने इसे गुप्तकाल की रचना माना है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "मार्कण्डेय-पुराण मे तद्‍युगीन जीवन की आस्था, भावनाएँ, कर्म, धर्म, आचार-विचार आदि तरङ्कित दिखाई पडते है। गुप्तयुगीन मानव एवं उसकी कर्म-शक्ति के प्रति आस्था की भावना का निदर्शन इस पुराण में है। यहाँ बतलाता गया है कि मानव मे वह शक्ति है जो देवताओ मे भी दुर्लभ है।" कर्मबल के आधिक्य के कारण ही देवता भी मनुष्य का शरीर धारण कर पृथ्वी पर आने की इच्छा करते है।" मार्कण्डेयपुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन। मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः। मार्क० ५७।६३। देवषीणामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः। अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ॥ ५७।६२। इसमे विष्णु को कर्मशील देव तथा भारतभूमि को कर्मशील देश माना गया है।

आधारग्रन्थ—१ मार्कण्डेयपुराण—(हिन्दी अनुवाद सहित) पं० श्रीराम शर्मा। २. मार्कण्डेयपुराण . एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ३. मार्कण्डेय-पुराण एक अध्ययन—पं० बदरीनाथ शुक्ल। ४ पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय।

मत्स्यपुराण—क्रमानुसार १६ वाँ पुराण। प्राचीनता एवं वर्ण्य-विषय के विस्तार तथा विशिष्टता की दृष्टि से 'मत्स्यपुराण' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुराण है। 'वामनपुराण' में इस तथ्य की स्वीकारोक्ति है कि 'मत्स्य' पुराणो में सर्वश्रेष्ठ है—'पुराणेषु तथैव मात्स्यम्'। 'श्रीमद्भागवत', 'ब्रह्मवैवर्त्त' तथा 'रेवामाहात्म्य' के अनुसार 'मत्स्यपुराण' की श्लोक संख्या १९००० सहस्र है। आनन्दाश्रम, पूना से प्रकाशित 'मत्स्यपुराण' में २९१ अध्याय एवं १४००० सहस्र श्लोक हैं। पाजिटर के अनुसार 'मत्स्यपुराण' का लेखन-काल द्वितीय शताब्दी का अन्तिम काल है। हाज़रा का कहना है कि 'मत्स्यपुराण' का रचनाकाल तृतीय शती का अन्तिम समय एवं चतुर्थ शताब्दी का प्रारम्भिक काल है। काणे के अनुसार 'मत्स्यपुराण' ६ ठी शताब्दी के बाद की रचना नही हो सकता। इस पुराण का प्रारम्भ प्रलयकाल की उस घटना से होता है जब विष्णु ने मत्स्य का रूप ग्रहण कर मनु की रक्षा की थी तथा प्रलय के बीच से नौकारूढ़ मनु को बचाकर उनके साथ संवाद किया था। इसमें सृष्टिविद्या, मन्वन्तर तथा पितृवंश का विशेष विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इसके तेरहवें अध्याय में वैराज पितृवंश का, १४ वे मे अग्निष्वात्त एवं १५ वे में बर्हिषद पितरो का वर्णन है। इसके अन्य अध्यायों में तीर्थयात्रा, पृथुचरित, भुवन-कोश, दान-महिमा, स्कन्दचरित, तीर्थमाहात्म्य, राजधर्म, श्राद्ध एवं गोत्रों का वर्णन है। इस पुराण में तारकासुर के शिव द्वारा वध की कथा अत्यन्त विस्तार

के साथ कही गयी है। भगवान् शङ्कर के मुख से काशी का माहात्म्य वर्णित कर विभिन्न देवताओं की प्रतिमा के निर्णय की विधि बतलायी गयी है। इसमें सोमवंशीय राजा ययाति का चरित अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित है तथा नर्मदा नदी का माहात्म्य १८७ से, १९४ अध्याय तक कहा गया है। इसके ५३ वें अध्याय मे अत्यन्त विस्तार के साथ सभी पुराणों की विषय-वस्तु का प्रतिपादन किया गया है जो पुराणो के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। इसमे भृगु, आङ्गिरा, अत्रि, विश्वामित्र, काश्यप, वसिष्ठ, पराशर तथा अगस्त्य आदि ऋषियों के वंश का वर्णन है जो १९५ से २०२ अध्याय तक दिया गया है। इस पुराण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग है राजधर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन जिसमे दैव, पुरुषकार, साम, दाम, दण्ड, भेद, दुर्ग, यात्रा, सहाय सम्पत्ति एवं तुलादान का विवेचन है जो २१५ से, २४३ अध्याय तक फैला हुआ है। इस पुराण में प्रतिभा-शास्त्र का वैज्ञानिक विवेचन है जिसमें कालमान के आधार पर विभिन्न देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण तथा प्रतिमापीठ के निर्माण का निरूपण किया गया है। इस विषय का विवरण २५७ से २७० अध्याय तक प्रस्तुत किया गया है।

आधारग्रन्थ—१ मत्स्यपुराण : ए स्टडी—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। २. पुराणम्—भाग ३, संख्या १, तथा पुराण भाग १ पृ० ८०-८८। ३. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ पुराण तत्त्व-मीमासा—श्री कृष्णमणि त्रिपाठी। ५. प्राचीन भारतीय साहित्य खण्ड १, भाग २—विण्टरनित्स।

मध्यमव्यायोग—यह महाकवि भास रचित एक अङ्क का नाटक है [दे० भास]। इसमे भीम और हिडिम्बा की प्रणय-कथा तथा घटोत्कच से सताये गये एक ब्राह्मण की भीम द्वारा मुक्ति का वर्णन है। घटोत्कच अपनी माता हिडिम्बा के आदेश से एक ब्राह्मण को सताता है। भीम ब्राह्मण को देखकर उसके पास जाते है और हिडिम्बा के पास पहुँच कर उसकी रक्षा करते हैं। हिडिम्बा अपने पति से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और अपना रहस्योद्घाटन करती हुई कहती है कि उसने भीम से मिलने के लिए ही षड्यन्त्र किया था। घटोत्कच भी पिता से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। इस नाटक मे मध्यम शब्द, मध्यम (द्वितीय) पाण्डव का द्योतक है। कवि ने इसके कथानक को 'महाभारत' से काफी परिवर्तित कर दिया है। इस नाटक में भीम का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, पर नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र घटोत्कच पर केन्द्रित है। यह नाटक व्यायोग की कोटि मे आता है। व्यायोग का कथानक तथा नाटक धीरोद्धत्त होता है। इसमे वीर और रौद्ररस प्रधान होते है तथा गर्भ और विमर्श सन्धियाँ नही होती। इसमे एक ही अङ्क और एक ही दिन की घटना होती है। शास्त्रीय दृष्टि से 'मध्यमव्यायोग' मे सभी तत्त्वों की पूर्ण व्याप्ति हुई है। रस परिपाक एवं भावोन्मेष की दृष्टि से यह नाटक सफल है।

मनुस्मृति—इसके रचयिता मनु है जिन्हे प्राचीन ग्रन्थों में मानवजाति का पिता कहा जाता है। इस कथन की पुष्टि 'ऋग्वेद' के कई मन्त्रों से होती है—१।८०।१६,

१।११४।२, २।३३।१३ । 'शतपथ ब्राह्मण' में मनु तथा प्रलय की कहानी का वर्णन है। 'तैत्तिरीय संहिता' तथा 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मनु के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने अपनी सम्पत्ति को पुत्रों में बाँट दिया है, पर एक पुत्र नाभानेदिष्ट को कुछ भी नहीं दिया। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में मनु को कहीं तो स्वयम्भुव मनु एवं कहीं प्राचेतस मनु कहा गया है [शान्तिपर्व २१।१२, ५७।४३]। इन विवरणों से मनु पुराणपुरुष सिद्ध होते हैं। शान्तिपर्व में (३३६।३८–४६) में इस प्रकार का कथन है कि ब्रह्मा ने एक सहस्र श्लोकों में धर्म पर लिखा था जिसे मनु ने धर्मशास्त्र के रूप में उद्‌घोषित किया और उस पर उशना तथा बृहस्पति ने शास्त्रों का निर्माण किया। 'मनुस्मृति' (१।३२–३३) के अनुसार ब्रह्मा से विराट् का उद्‌भव हुआ जिससे मनु उत्पन्न हुए तथा मनु से भृगु, नारद आदि ऋषियों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा द्वारा मनु से दस ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया [मनुस्मृति १।५८]। 'मनुस्मृति' के लेखक मनु ही माने जाते हैं, पर विद्वानों का कथन है कि मनु ने 'मनुस्मृति' की रचना नहीं की है बल्कि इस ग्रन्थ को प्रामाणिक एवं प्राचीन बनाने के लिए ही लेखक के रूप में मनु का नाम दे दिया है। मैक्समूलर एवं डॉ० बुह्लर के अनुसार 'मनुस्मृति' मानवचरण के धर्मसूत्र का ही संशोधित रूप है। 'महाभारत' में स्वायम्भुव मनु एवं प्राचेतस मनु नामक दो पृथक् व्यक्ति माने गए हैं। स्वायम्भुव मनु धर्मशास्त्रकार माने गये हैं एवं प्राचेतस मनु को अर्थशास्त्रकार कहा गया है। कहीं-कहीं केवल मनु को राजधर्म या अर्थविद्या का रचयिता कहा गया है। डॉ० काणे का अनुमान है कि "आरम्भ में मनु के नाम से दो ग्रन्थ रहे होंगे। जब कौटिल्य 'मानवों' की ओर सकेत करते हैं तो वहाँ संभवतः वे प्राचेतस मनु की बात उठाते हैं।" पृ० ४३ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ (हिन्दी अनुवाद)। 'नारदस्मृति' में मनु धर्मशास्त्र के प्रणेता कहे गए है और 'स्कन्दपुराण' में भी स्वयम्भुव मनु को धर्मशास्त्र का आदि प्रणेता कहा गया है। डॉ० श्यामलाल पाण्डेय ने मनु को ही 'मनुस्मृति' का मूल लेखक मानते हुए अपना निष्कर्ष दिया है—"इन समस्त प्रमाणों के आधार पर इस विषय में दो मत नहीं है कि स्वायम्भुव मनु आदि धर्मशास्त्र-प्रणेता है, और धर्मशास्त्रविषयक सम्पूर्ण ज्ञान उन्हीं के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। उन्हीं से गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा उस धर्मशास्त्र का विकास हुआ है, और यह कार्य उस काल तक चलता रहा, जिस काल में प्रस्तुत मानवधर्मशास्त्र की रचना हुई है।" प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेता पृ० २२।

मनुस्मृति' में बारह अध्याय तथा २६९४ श्लोक हैं। इसमें अध्यायानुसार उसका विषय दिया गया है। तदनुसार प्रथम अध्याय में संसार की उत्पत्ति, द्वितीय में जातिकर्म आदि संस्कारविधि, ब्रह्मचर्यव्रत विधि तथा गुरु के अभिवादन की विधि है। तृतीय अध्याय में ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति के पश्चात् गुरुकुल से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व स्नानरूप संस्कारविशेष का विधान किया गया है तथा इसी अध्याय में पंच-महायज्ञ और नित्य श्राद्धविधि का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में जीविकाओं (ऋत, अमृत आदि) के लक्षण गृह-आश्रमियों के नियम हैं। भक्ष्याभक्ष्य, शौच तथा जल-मिट्टी आदि के द्वारा द्रव्यों की शुद्धि का वर्णन पंचम अध्याय में है। वानप्रस्थधर्म, यतिधर्म

का वर्णन षष्ठ अध्याय में है। सप्तम अध्याय में व्यवहार (मुकदमों के नियम), कर एवं राजधर्म वर्णित हैं। अष्टम अध्याय में साक्षियों के प्रश्न करने का विधान तथा नवम मे पति-पत्नी का साथ तथा पृथक् रहने पर धर्म का वर्णन, धन-सम्पत्ति का विभाजन, द्यूतविधि, चोर, जेबकट तथा विष देकर यात्रियो के धन लेने आदि के निवारणो का कथन तथा वैश्य और शूद्रो के धर्म का अनुष्ठान वर्णित है। दशम अध्याय में वर्णसंकरो की उत्पत्ति तथा आपत्तिकाल मे जीविकासाधनोपदेश का कथन किया गया है। एकादश अध्याय में प्रायश्चित्त की विधि एवं द्वादश में तीन प्रकार की सासारिक गतियो, मोक्षप्रद आत्मज्ञान, विहित तथा निषिद्ध गुण-दोषो की परीक्षा, देशधर्म, जातिधर्म एवं पाखण्ड-धर्मों का विवेचन है [१।१११–११८]।

'मनुस्मृति' का वर्ण्यविषय अत्यन्त व्यापक है। इसमे राजशास्त्र, धर्मशास्त्र, सामाजिक नियम तथा समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं हिन्दूविधि की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। राजशास्त्र मे अन्तर्गत राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति, राजा का स्वरूप, मन्त्रि-परिषद्, मन्त्रि-परिषद् की सदस्य संख्या, सदस्य-योग्यता, कार्यप्रणाली, न्यायलयो का सघटन एवं कार्यप्रणाली, दण्डविधान, दण्डदान-सिद्धान्त, कोश-वृद्धि के सिद्धान्त, लाभकर, षाड्गुण्य मन्त्र, युद्धसंचालन, युद्धनियम आदि विषय वर्णित हैं। धर्मशास्त्र—इसमे धर्म की परिभाषा, धर्म के उपादान, वेद, स्मृति, भद्र लोगों का आचार, आत्मतुष्टि, कर्मविवेचन, क्षेत्रज्ञ, भूतात्मजीव, नरक-कष्ट, सत्व, रज, तम का विवेचन, निःश्रेयस की उत्पत्ति, आत्मज्ञान, प्रवृत्त एवं निवृत्त का वर्णन है। सामाजिकविधि—इसके अन्तगत वर्णित विषयो की सूची इस प्रकार है—पति-पत्नी के व्यवहारानुकूल कर्त्तव्य, बच्चे पर अधिकार का नियम, प्रथम पत्नी का कब अतिक्रमण किया जाय, विवाह की अवस्था, बँटवारा, इसकी अवधि, ज्येष्ठ पुत्र का विशेष भाग, गोद का पुत्र, पुत्रिका, दायभाग, स्त्रीधन के प्रकार, स्त्रीधन का उत्तराधिकार, वसीयत से हटाने के कारण, माता एवं पितामह उत्तराधिकारी के रूप में आदि। 'मनुस्मृति' के अनेक टीकाकार हो गए है— मेधतिथि, गोविन्दराजकुल्लूक।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य टीकाकार ऐसे हैं जिनकी कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं, पर उनके नाम मिलते है। 'मनुस्मृति' के निर्माणकाल के सम्बन्ध मे अभी तक कोई निश्चित मत नही निर्धारित किया जा सका है। डॉ० काणे के अनुसार अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इसका समय ई० पू० दूसरी शताब्दी है। डा० बूहलर ने अपनी शोधों के आधार पर यह निर्णय दिया कि 'महाभारत' के १२ वे तथा १३ वें पर्वों मे किसी मानवधर्मशास्त्र का कथन है। हॉप्किन्स के अनुसार 'महाभारत' के १३ वें पर्व मे 'मनुस्मृति' का उल्लेख है। इससे 'मनुस्मृति' 'महाभारत' से पूर्ववर्ती ज्ञात होती है। 'महाभारत' (३।५४) प्राचेतस का एक वचन उद्धृत है जो मनुस्मृति में भी प्राप्त हो जाता है।

आधारग्रन्थ—१. मनुस्मृति–(हिन्दी अनुवाद सहित)—चौखम्बा प्रकाशन, अनु० पं० हरिगोबिन्द शास्त्री। २. धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे (हिन्दी

अनुवाद भाग १)। ३. मनु का राजधर्म—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय। ४. प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य—पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक तथा विशुद्धाद्वैतवाद नामक वैष्णवमत के प्रचारक महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी को मध्यप्रदेश के अन्तर्गत रायपुर जिला के चम्पारन नामक ग्राम में हुआ था। उनके माता-पिता तैलंग ब्राह्मण थे जिनका नाम लक्ष्मणभट्ट एवं एल्लमागारू था। लक्ष्मणभट्ट काशी में हनुमान् घाट पर रहा करते थे। वल्लभाचार्य की सारी शिक्षा काशी मे ही हुई। आचार्य वल्लभ ने 'भागवत' के आधार पर नवीन भक्ति-मार्ग का प्रवर्त्तन किया जो पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने सिद्धान्त के प्रचार तथा प्रकाशन के लिए उन्होने कई ग्रन्थो की रचना की जिनमे मुख्य है—'अणुभाष्य' (ब्रह्मसूत्र के केवल ढाई अध्याओ पर भाष्य), 'पूर्वमीमांसाभाष्य', 'तत्वदीपनिबन्ध', 'सुबोधिनी', (श्रीमद्-भागवत की व्याख्या), 'षोडशग्रंथ' (सिद्धान्त विवेक सम्बन्धी १६ प्रकीर्ण ग्रंथ)। वल्लभाचार्य के पूर्व प्रधानत्रयी मे 'ब्रह्मसूत्र', 'गीता' और 'उपनिषद को स्थान मिला था; किन्तु उन्होने 'श्रीमद्भागवत' की 'सुबोधिनी' टीका के द्वारा प्रस्थानचतुष्टय के अन्तर्गत उसका भी समावेश किया। इनके दार्शनिक सिद्धान्त को शुद्धाद्वैतवाद कहते हैं जो शाकर अद्वैत की प्रतिक्रिया के रूप मे प्रवर्त्तित हुआ था। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म माया से आलिप्त होने के कारण नितान्त शुद्ध है। इसमें मायिक ब्रह्म की सत्ता स्वीकार नहीं की गयी है। मायासंबन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः। कार्यकारणरूप हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥ शुद्धाद्वैतमार्तण्ड २८।

आचार्य शंकर के अद्वैतवाद मे भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए इसमे शुद्ध विशेषण लगाया गया है। अद्वैतमत से माया-शबलित ब्रह्म ही जगत् का कारण है, किन्तु वल्लभ-मत के अनुसार अत्यन्त शुद्ध या माया से रहित ब्रह्म ही जगत् का कारण है। शकरा-चार्य ने ब्रह्म के दो रूपो की कल्पना की है—नामरूप उपाधिविशिष्ट सगुण ब्रह्म तथा उपाधिरहित निर्गुण ब्रह्म। इनमे से द्वितीय को ही शंकर श्रेष्ठ मानते है और प्रथम को माया मे युक्त होने के कारण हीन स्वीकार करते है। पर, वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म के दोनो ही रूप सत्य है। ब्रह्म विरुद्ध धर्मों का आश्रय होता है, वह एक ही समय में निर्गुण भी होता है और सगुण भी। भगवान् अनेक रूप होकर भी एक है तथा स्वतन्त्र होकर भी भक्तो के वश मे रहता है। उनके अनुसार श्रीकृष्ण ही परमसत्ता या भगवान् है जो अखिल रसामृत मूर्ति तथा निखिल लीलाधाम परब्रह्म है। वल्लभमत मे ब्रह्म जगत् का स्वाभाविक कर्त्ता है तथा इस व्यापार में वह माया की सहायता नहीं लेता। अर्थात् ससार की सृष्टि में माया का हाथ नहीं होता। भगवान् मे आविर्भाव और तिरोभाव की दो शक्तियाँ होती है। वे सृष्टि और प्रलय इन्हीं शक्तियों के द्वारा स्वभा-विक रूप मे करते है। जगत् की सृष्टि मे ब्रह्म की लीला ही क्रियाशील होती है। वे इच्छानुसार जगत् की सृष्टि एव प्रलय किया करते है। भगवान् आविर्भावशक्ति के द्वारा सृष्टि के रूप मे अपने को परिणत कर देता है, किन्तु तिरोभाव के द्वारा संसार को अपने में समेट कर प्रलय कर देता है। वल्लभमत से जीव और जगत् दोनों ही सत्य हैं, पर

अद्वैतवादियों के अनुसार इन्हे सत्य नहीं माना जाता। ब्रह्म के तीन रूप हैं—आधिदैविक (परब्रह्म), आध्यत्मिक (अक्षरब्रह्म) एवं आधिभौतिक (जगत्)। जगत् ब्रह्म रूप ही है। आविर्भाव की दशा मे वह जगत् एवं तिरोभाव के रूप में ब्रह्म हो जाता है।

इस प्रकार वह ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जगत् का आविर्भाव लीला मात्र है। भगवान् या श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दमय हैं। उनमें सत्, चित् और आनन्द तीनों का योग है, पर जीव में सत् और चित् का आविर्भाव तथा आनन्द का तिरोभाव होता है और जगत् मे केवल सत् रहता है, उसमें चित् (चेतनता) एवं आनन्द का अभाव होता है। अक्षर ब्रह्म मे आनन्द का किञ्चित् मात्र तिरोधान होता है, पर परब्रह्म मे आनन्द कीपरिपूर्णता होती है। उपर्युक्त दोनो ब्रह्मों की प्राप्ति के साधनों में भी भेद दिखाया गया है। अक्षरब्रह्म केवल विशुद्ध ज्ञान से ही प्राप्त होता है अर्थात् वह ज्ञानगम्य है, जब कि पुरुषोत्तम की प्राप्ति का एकमात्र लक्ष्य है अनन्या भक्ति। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो अपनी शक्तियो को परिवेष्टित कर 'व्यापीवैकुण्ठ' मे भक्तों के साथ नित्य लीला किया करते हैं। 'व्यापीवैकुण्ठ' वैकुण्ठ के ऊपर अवस्थित है और गोलोक इसी का एक अंश मात्र है।

जीव—रमण करने की इच्छा के उत्पन्न होने पर भगवान् आनन्द आदि गुणों का तिरोभाव कर जीव का रूप धारण करते है। इसमे केवल भगवान् की इच्छा या लीला का ही प्राधान्य है, इसमें माया का हाथ नही होता। जीव मे ऐश्वर्य, यश, श्री एवं ज्ञान का तिरोधान होता है जिससे उसम क्रमशः दीनता, सर्वहीनता का अभाव होता है और वह समस्त आपत्तियो तथा देहात्मबुद्धि का पात्र बना रहता है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते है उसी प्रकार ब्रह्म से जीव का आविर्भाव होता है। जीव की अनेक श्रेणियां है—शुद्ध, मुक्त तथा संसारी। आनन्दांश के तिरोधान न होने से अविद्या से सम्बद्ध होने के पूर्व जीव शुद्ध कहा जाता है। अविद्या से संसर्ग होने पर इसे संसारी कहते हैं। मुक्तदशा मे आनन्दांश को प्रकट करते हुए जीव भगवान् के साथ अभेद स्थापित कर सच्चिदानन्द बन जाता है। जीव नित्य है।

जगत्—वल्लभमत से जगत् भी नित्य है और यह ईश्वर के सदंश से आविर्भूत होता है। ईश्वर की इच्छा मे ही जगत् या सृष्टि का निर्माण होता है। वल्लभाचार्य ने जगत् या संसार में सूक्ष्म भेद उपस्थित किया है। भगवान् के सदंश से उत्पन्न होने वाले पदार्थ को जगत् तथा अविद्या के कारण जीव द्वारा कल्पित ममता स्वरूप पदार्थ को संसार कहते है जो ज्ञान के कारण स्वतः नष्ट हो जाता है। जगत् ब्रह्मरूप होता है, अतः इसका नाश कभी नहीं होता, पर अविद्या रूप होने के कारण नष्ट हो जाता है।

पुष्टिमार्ग—आचार्य वल्लभ द्वारा प्रवर्त्तित भक्ति को पुष्टिमार्ग कहते हैं जिसका अर्थ है—अनुग्रह या भगवान् की कृपा। अर्थात् जब तक भगवान् की कृपा नहीं होगी तब तक भक्त के हृदय मे भक्ति का स्फुरण नहीं होगा—पोषणं तदनुग्रहः। भागवत २।१०। भवदनुग्रह को ही मुक्ति का साधन मानने के कारण इसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। वल्लभमत

मे तीन मार्ग बताये गए हैं—पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग तथा मर्यादामार्ग। इनमें सर्वोत्तम पुष्टिमार्ग है। मर्यादामार्ग में वेद-विहित कर्मों एवं ज्ञान का संपादन किया जाता है। सांसारिक लौकिक प्रवाह में पड़े रहने को प्रवाहमार्ग कहते हैं। पुष्टिमार्ग का सम्बन्ध साक्षात् पुरुषोत्तम से है। मर्यादामार्ग की उत्पत्ति अक्षरब्रह्म की वाणी से हुई है जिसके साधक को सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति होती है। पुष्टिमार्ग का साधक आनन्द के धाम परमेश्वर के प्रति आत्मसमर्पण कर उनके अधरामृत का पान करना अपना मुख्य लक्ष्य मानता है। भक्ति दो प्रकार की होती है—मर्यादाभक्ति एवं पुष्टिभक्ति। भगवान् के चरणारविन्द की भक्ति मर्यादाभक्ति कही जाती है, पर उनके अधरारविन्द की भक्ति को पुष्टिभक्ति कहते है। मर्यादाभक्ति मे साधक को फल की अपेक्षा रहती है पर पुष्टि-भक्ति मे नहीं रहती। मर्यादाभक्ति के द्वारा सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति होती है पर पुष्टिभक्ति में अभेदबोधन का प्राधान्य होता है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन— पं० बलदेव उपाध्याय। २. भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. वल्लभाचार्य और उनका सिद्धान्त—पं० सीताराम चतुर्वेदी।

महानारायणोपनिषद्—इसका दूसरा नाम 'याज्ञिक्युपनिषद्' भी है। यह 'तैत्तिरीय आरण्यक' का दशम प्रपाठक है। नारायण को परमात्मा के रूप मे चित्रित करने के कारण इसकी अभिधा नारायणीय है। इसमे आत्मतत्त्व को परमसत्ता एवं विश्व सर्वस्व माना गया है [अनु० १० मण्डल २०]। 'महानारायणोपनिषद्' में सत्य, तपस् दम, शम, दान, धर्म, प्रजनन, अग्नि, अग्निहोत्र, यज्ञ एवं मानसोपासना आदि का प्रभावशाली वर्णन है। इसकी अनुवाक् संख्या के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतभेद है। द्रविडों के अनुसार ६४, आन्ध्रों के अनुसार ८० एवं कतिपय व्यक्तियो के अनुसार ७९ अनुवाक् हैं। पाठों की अनेकरूपता दिखाई पड़ती है तथा वेदान्त, सन्यास, दुर्गा, नारायण, महादेव, दन्ति एवं गरुड आदि शब्दों का प्रयोग है। इससे इसकी अर्वाचीनता सिद्ध होती है। किन्तु बौधायन सूत्रो में उल्लेख होने के कारण इसे उतना अर्वाचीन नहीं माना जा सकता। विण्टरनित्स इसे 'मैत्र्युपनिषद्' से प्राचीनतर स्वीकार करते हैं।

मयूरभट्ट—संस्कृत में मयूर नामक कई लेखको के नाम मिलते हैं। बाण के सम्बन्धी मयूरभट्ट, 'पद्मचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ के लेखक मयूर, सिंहल द्वीप के लेखक मयूरपाद थेर आदि [दे० संस्कृत सुकवि-समीक्षा]। 'सूर्यशतक' के रचयिता मयूर-भट्ट इन सबो से भिन्न एवं प्राचीन हैं। इनका समय बाण का ही हे और दोनों हर्षवर्धन के दरबार मे सम्मान पाते थे। ये बाण के सम्बन्धी, संभवतः जामाता कहे गए हैं। कहा जाता है कि इन्हें कुष्ठ रोग हो गया था और उसकी निवृत्ति के लिए इन्होंने 'सूर्य-शतक' लिखा था। यह ग्रन्थ स्रग्धरावृत्त में रचित है और इसकी भाषा अलंकृत एवं प्रौढ है। राजशेखर ने मयूर को कवियो में सर्वोच्च स्थान दिया है—दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्। विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निकृन्तति।

महावीराचार्य—बीजगणित तथा पाटीगणित के प्रसिद्ध आचार्य। इनका समय ८५० ई० है। ये जैनमतावलम्बी थे। इन्होंने गणित-ज्योतिष के ऊपर दो ग्रन्थों की

रचना की है—'ज्योतिषपटल' एवं 'गणितसारसंग्रह'। ये जैनधर्मी राजा अमोघवर्ष (राष्ट्रकूट वंश) के आश्रित थे। इनका 'ज्योतिषपटल' नामक ग्रन्थ अधूरा ही प्राप्त हुआ है जिसमें ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं के स्थान, गति, स्थिति एवं संख्या का विवेचन है। 'गणितसारसंग्रह' नौ प्रकरणों में विभक्त है जिसके प्रत्येक प्रकरण के नाम इस प्रकार हैं–संज्ञाधिकार, परिकर्मव्यवहार, कलासवर्ण व्यवहार, प्रकीर्ण व्यवहार, त्रैराशिक व्यवहार, मिश्रक व्यवहार, क्षेत्रगणित व्यवहार, खातव्यवहार एवं छायाव्यवहार। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में गणित की प्रशंसा की गयी है। कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गान्धर्वे नाटकेऽपि वा। सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु॥ छन्दोऽलङ्कारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु। कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम्॥ सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ। त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्राङ्गीकृतं हि तत्॥ (भारतीय ज्योतिष पृ० १२८ से उद्धृत)।

आधारग्रंथ—१. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद।

महिमभट्ट—काव्यशास्त्र के महान् आचार्य। इन्होंने 'व्यक्तिविवेक' नामक युग-प्रवर्त्तक ग्रंथ की रचना की है जिसमे व्यंजना या ध्वनि का खण्डन कर उसके सभी भेदों का अन्तर्भाव अनुमान मे किया गया है [दे० व्यक्तिविवेक]। महिमभट्ट की उपाधि राजानक थी और ये काश्मीर-निवासी थे। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का मध्य है। इनके पिता का नाम 'श्रीधैर्य' एवं गुरु का नाम 'श्यामल' था। महिमभट्ट ने अपने ग्रन्थ मे कुन्तक का उल्लेख किया है और अलंकारसर्वस्वकार रुय्यक ने 'व्यक्तिविवेक' की व्याख्या लिखी है। इससे इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का मध्य ही निश्चित होता है। महिमभट्ट नैयायिक हैं। इन्होंने न्याय की पद्धति से ध्वनि का खण्डन कर उसके सभी भेदों को अनुमान में गतार्थ किया है और ध्वनिकार द्वारा प्रस्तुत किये गए उदाहरणो मे अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ दोषान्वेषण कर उन्हें अनुमान का उदाहरण सिद्ध किया है। महिम ने 'ध्वन्यालोक' मे प्रस्तुत किये गए ध्वनि के लक्षण मे दस दोष ढूँढ़ निकाले है जिसमें इनका प्रौढ़ पाण्डित्य झलकता है। ध्वनि के चालीस उदाहरणों को अनुमान का प्रकार मान कर महिम ने ध्वनिकार की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। इनके समान ध्वनिसिद्धान्त का विरोधी कोई नहीं हुआ। यदि मम्मट ने काव्य-प्रकाश में महिमभट्ट के विचारो का खण्डन कर ध्वनिसिद्धान्त एवं व्यंजना की स्थापना नहीं की होती तो ध्वनिसिद्धान्त पर बहुत बड़ा धक्का लगता। महिम का प्रौढ़ पाण्डित्य एवं सूक्ष्मविवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र में अद्वितीय है। इन्होंने तीन शक्तियो के स्थान पर एक मात्र 'अभिधा' को ही शक्ति माना है और बताया है कि एकाधिक शक्तियों का रहना संभव नहीं है। इनके अनुसार शब्द की एकमात्र शक्ति अभिधा है और अर्थ की शक्ति है लिंगता या अनुमिति।

इस प्रकार (इनके अनुसार) अर्थ दो ही प्रकार का होता है—वाच्य और अनुमिति। महिम ने शंकुक की भाँति रस को भी अनुमेय माना है। अनुमेयार्थ के वस्तु, अलंकार एवं रसादि रूप तीन भेद होते हैं। वस्तु एवं अलंकार तो वाच्य भी

हो सकते हैं, पर रस सदा अनुमेय ही होता है। संबन्धतः कुतश्चित्, सा काव्यानुमिति ॥ एतच्चानुमानस्यैव लक्षणं, नान्यस्य।.......काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद्विमतिः। संज्ञाया सा केवलमेषापि व्यक्तयोत ऽतोऽस्य कृत.। शब्दस्यैकाभिधाशक्तिरर्थस्यैकैव लिंगता। न व्यंजकत्वमनयोः समस्तीत्युपपादितम्। व्यक्तिविवेक, प्रथम विमर्श १।२५–२६। अर्थोपि द्विविधः वाच्योऽनुमेयश्च। तत्र शब्दव्यापारविषयो वाच्यः, स एव मुख्य इत्युच्यते।.......तत एव तदनुमिताद्वा लिंगभूताद् यदर्थान्तरमनुभूयते सोऽनुमेयः। स च त्रिविधः, वस्तुमात्रमलंकारा रसादयश्च। तत्रादौ वाच्यावपि सम्भवतः अन्यस्त्वनुमेय एव इति वक्ष्यते।

महिमभट्ट ने व्यंग्यार्थ को अनुमेय स्वीकार करते हुए ध्वनि का नाम काव्यानुमिति दे दिया है। इनके अनुसार काव्यानुमिति वहाँ होती है जहाँ वाच्य या उसके द्वारा अनुमित अर्थ दूसरे अर्थ को किसी सम्बन्ध से प्रकाशित करे। वाच्यस्तदनुमितो वा यत्रार्थोऽर्थान्तरं प्रकाशयति। सम्बन्धतः कुतश्चित् सा काव्यानुमितिरित्युक्ता। व्यक्तिविवेक १।२५।

आधारग्रन्थ—१. हिन्दी व्यक्तिविवेक—व्याख्याकार-पं० रेवाप्रसाद त्रिपाठी। २ ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धान्त—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास। ३ संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। ४ भारतीय काव्यालोचन—राजवंश सहाय 'हीरा'।

महिमोदय—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका स्थिति-काल वि० सं० १७२२ है। लब्धिविजयसूरि नामक जैन विद्वान् इनके गुरु थे। इन्होंने 'ज्योतिष-रत्नाकर' नामक फलित ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जिसमे संहिता, मुहूर्त्त तथा जातक तीनों ही अंगों का विवेचन किया गया है। ये फलित एवं गणित दोनों के ही मर्मज्ञ थे। इन्होंने 'गणित साठ सौ' तथा 'पंचांगानयनविधि' नामक दो गणित ज्योतिषविषयक ग्रन्थों की रचना की है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

महेन्द्रसूरि—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका समय बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके गुरु का नाम मदनसूरि था। ये फीरोज शाह तुगलक के आश्रय में रहते थे। इन्होंने 'यन्त्रराज' नामक ग्रहगणित का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जिस पर इनके शिष्य मलयेन्दुसूरि ने टीका लिखी है। इस ग्रन्थ का रचना-काल सं० ११९२ है। इसमे पांच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय का नामकरण उसमे वर्णित विषयों के आधार पर किया गया है, जैसे—गणिताध्याय, यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्ररचनाध्याय, यन्त्रशोधनाध्याय तथा यन्त्रविचारणाध्याय। स्वयं लेखक ने इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए निम्नांकित श्लोक की रचना की है—यथा भटः प्रौढरणोत्कटोऽपि शस्त्रैर्विमुक्तः परिभूतिमेति। तद्वन्महाज्योतिषनिस्तुषोऽपि यन्त्रेण हीनो गणकस्तथैव ॥

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

मंखक—ये काश्मीरी कवि थे। इन्होंने 'श्रीकण्ठचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें २५ सर्ग हैं। ये 'अलंकारसर्वस्व' के रचयिता रुय्यक के शिष्य तथा काश्मीर नरेश जयसिंह (समय ११२९–५० ई०) के सभा-पण्डित थे। 'श्रीकण्ठचरित' में भगवान् शंकर एवं त्रिपुरासुर के युद्ध का वर्णन है। इसमें कथानक अल्प है पर महाकाव्य के नियमों का निर्वाह करने के लिए सात सर्गों में दोला, पुष्पावचय, जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रसाधन, पानकेलि, क्रीडा एवं प्रभात का सविस्तर वर्णन है। इस महाकाव्य के २५ वे सर्ग में तत्कालीन काश्मीरक कवियों का वर्णन है। इन्होंने 'मङ्खकोश' नामक एक कोश-ग्रन्थ भी लिखा था जो अप्रकाशित है। इसमें काश्मीरी कवियो द्वारा व्यवहृत शब्दों का चयन है। 'श्रीकण्ठचरित' का प्रकाशन काव्यमाला से १८८७ ई० मे हो चुका है। इस महाकाव्य के कतिपय स्थलों पर आलोचनात्मक उक्तियाँ भी प्रस्तुत की गयी हैं जिनमें मंखक की कवि एवं काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ निहित है। सूक्ती शुचावेव परे कवीनां सद्यः प्रमादस्खलितं लभन्ते। अधौतवस्त्रे चतुरं कथं वा विभाव्यते कज्जलबिन्दुपातः ॥ २।२९। यहाँ बताया गया है कि रमणीय कथन मे दोष की उसी प्रकार प्रतीति हो जाती है जिस प्रकार धुले हुए वस्त्र मे धब्बे का ज्ञान हो जाता है।

आधारग्रंथ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास - पं० बलदेव उपाध्याय।

माघ—इन्होंने 'शिशुपालवध' नामक युगप्रवर्तक महाकाव्य की रचना की है। अपनी विशिष्ट शैली के कारण 'शिशुपालवध' संस्कृत महाकाव्य की 'बृहत्त्रयी' में द्वितीय मान्य स्थान का अधिकारी रहा है। इनकी विद्वत्ता, महनीयता, प्रौढता एवं उदात्त काव्यशैली के सम्बन्ध मे संस्कृत ग्रन्थो में अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं—१ नैतच्चित्रमहं मन्ये माघमासाद्य यन्मुहुः। प्रौढतातिप्रसिद्धापि भारवेरवसीदति ॥ हरिहर (सुभाषितावली १४)। २. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥ अज्ञात। ३. विरक्तश्चेद् दुरुक्तिभ्यो निर्वृति वाञ्छ वाञ्छसि। वयस्य कथ्यते तथ्यं माघसेवां कुरुष्व तत् ॥ सोमेश्वर कीर्तिकौमुदी १।१३। ४ कृत्स्नप्रबोधकृत् वाणी भारवेरिव भारवेः। माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥ राजशेखर। ५. माघेन विघ्नितोत्साहा न सहन्ते पदक्रमम्। स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥ धनपाल तिलकमंजरी २८। ६ नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

माघ के जीवनचरित के सम्बन्ध मे प्राचीन सामग्री प्राप्त नहीं होती। स्वयं कवि ने 'शिशुपालवध' के अन्त मे अपने वंश का वर्णन पाँच श्लोको में किया है; जिसके अनुसार इनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था, और वे श्री वर्मल नामक किसी राजा के प्रधान मन्त्री थे। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्तक था; जो अत्यन्त गुणवान् थे, और इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ हुए जिन्होंने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य की रचना की। सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः। असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः

सुप्रभदेवनामा ॥१॥ कालेमितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः। विनानुरोधात् स्वहितेच्छयैव महीपतीर्यस्य वचश्चकार ॥२॥ तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः। यं वीक्ष्यवैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ॥३॥ सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन। यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवापनाम ॥४॥ श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्र चारु। तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥ ५ ॥

माघ का जन्म गुजरात राज्य के भीनमाल नामक स्थान में हुआ था। 'शिशुपालवध' की कतिपय प्राचीन प्रतियों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है—"इतिश्रीभिन्नमालवास्तव्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये" ''। विद्वानों का अनुमान है कि यही भिन्नमाल या भीनमाल कालान्तर में श्रीमाल हो गया था। प्रभाचन्द्र रचित 'प्रभावकचरित' में माघ श्रीमाल निवासी कहे गये हैं। प्रभाचन्द्र ने श्रीमाल के राजा का नाम वर्मलात एवं मन्त्री का नाम सुप्रभदेव लिखा है। यह स्थान अभी भी राजस्थान में श्रीमाली नगर के नाम से विख्यात है, तथा गुजरात की सीमा के अत्यन्त निकट है। माघ ने जिस रैवतक पर्वत का वर्णन किया है वह राजस्थान में ही है। इन सारे प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने इन्हें राजस्थानी श्रीमाली ब्राह्मण कहा है। अस्ति गुर्जरदेशोऽन्यराजजराजन्यदुर्जरः। तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुरं मुखमिव क्षितेः॥ तत्रास्ति हास्तिकाश्वीयापहस्तितनरिपुव्रजः॥ नृपः श्रीवर्मलाताख्यः शत्रुमर्मभिदक्षमः। तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मन्त्री मितनयाः किल॥ प्रभाकरचरित। १४।५–१०

माघ के स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है; फलतः इनका समय सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच माना जाता रहा है। राजस्थान के वसन्तपुर नामक स्थान में राजा वर्मलात का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसका समय ६२५ ई० है। यह समय माघ के पितामह का है। यदि इसमें पचास वर्ष जोड़ दिया जाय तो माघ का समय ६७५ ई० के निकट माना जा सकता है। 'शिशुपालवध' के द्वितीय सर्ग में एक श्लोक प्राप्त होता है, जिससे माघ के काल–निर्धारण में बड़ी सहायता मिलती है। अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना। शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥ २।११४। यहाँ कवि ने राजनीति की विशेषता बताते समय उद्धव के कथन में राजनीति एवं शब्दविद्या दोनों का प्रयोग एक साथ श्लिष्ट उपमा के रूप में किया है। इसमें काशिकावृत्ति (६५० ई०) तथा उस पर जिनेन्द्रबुद्धि रचित न्यासग्रन्थ (७०० ई०) का संकेत है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'शिशुपालवध' की रचना ७०० ई० के बाद हुई है। सोमदेव कृत 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ ई०) में माघ का उल्लेख प्राप्त होता है, तथा 'ध्वन्यालोक' में 'शिशुपालवध' के दो श्लोक उद्धृत हैं। (३।५३,५।२६)। 'शिशुपालवध' पर भारवि एवं भट्टि दोनों का प्रभाव लक्षित होता है। अतः इस दृष्टि से इनका समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध जान पड़ता है।

माघकृत एकमात्र ग्रन्थ 'शिशुपालवध' है जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा २० सर्गों में कही गयी है। इस महाकाव्य की कथावस्तु का आधार

महाभारतीय कथा है, जिसे महाकवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा विशद रूप दिया है [विशेष विवरण के लिए दे० शिशुपालवध]। माघ का व्यक्तित्व पण्डित कवि का है। इनका आविर्भाव संस्कृत महाकाव्य की उस परम्परा में हुआ था जिसमे शास्त्र, काव्य एवं अलंकृत काव्य की रचना हुई थी। इस युग में पाण्डित्य-रहित कवित्व को कम महत्त्व प्राप्त होता था; फलतः माघ ने स्थान-स्थान पर अपने अपूर्व पाण्डित्य का परिचय दिया। ये महावैयाकरण, दार्शनिक, राजनीतिशास्त्र-विशारद एवं नीतिशास्त्री भी थे। 'शिशुपालवध' के द्वितीय सर्ग में उद्धव, श्रीकृष्ण एवं बलराम के संवाद के माध्यम से अनेक राजनीतिक गुत्थियाँ सुलझाई गयी हैं तथा राज्यशास्त्र के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है। राजनीतिशास्त्रानुसार राजा के बारह भेदों का वर्णन, सात राज्यांगो तथा शत्रुपक्ष के अठारह तीर्थों का वर्णन इनके प्रगाढ़ अनुशीलन का परिणाम है। सम्राट् के गुणों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि 'बुद्धि ही जिसका शास्त्र है, स्वामी, अमात्य आदि प्रकृतियाँ ही जिसके अङ्ग हैं, मन्त्री ही जिसका दुर्भेद्य कवच है, गुप्तचर ही जिसके नेत्र है और दूत ही जिसका मुख है, ऐसा पृथ्वीपति विरला ही देखने को मिलता है।' बुद्धिशास्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंहृतिकञ्चुकः। चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥ माघ का पाण्डित्य सर्वगामी है और वे वेद, वेदान्त, सांख्य, बौद्ध प्रभृति दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित ज्ञात होते है। प्रातःकाल के समय अग्निहोत्र का वर्णन, हवनकर्म मे आवश्यक सामधेनी ऋचाओं का उल्लेख तथा वैदिक स्वरों का ज्ञान इनके वैदिक साहित्य-विषयक ज्ञान का परिचायक है ['शिशुपालवध' ११।४१]। स्वर-भेद के कारण उपस्थित होने वाले अर्थ-भेद का भी विवरण इन्होंने दिया है—संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति। शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥ १४।२४। शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाच्यया। याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥ १४।२०। प्रथम सर्ग मे नारदकृत श्रीकृष्ण की स्तुति में सांख्य-दर्शन के अनेक तत्त्वों का विवेचन है। उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन। बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वा पुरुषं पुराविदः॥ १।३३ तस्य सांख्यं पुरुषेण तुल्यता बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः। कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि॥ १४।१९। योगशास्त्र के भी कई पारिभाषिक शब्दों का वर्णन माघ ने किया है—चित्त-परिकर्म, सबीजयोग, सत्त्वपुरुषान्यताख्याति। मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्ध सबीजयोगः। । ख्यातिं च सत्त्वपुरुषाऽन्यतयाधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ४।५५ बौद्ध-दर्शन के सूक्ष्म भेदों का भी इन्हें ज्ञान था—सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपंचकम्। सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥ २।२८। इसमें एक ही श्लोक के अन्तर्गत राजनीति एवं बौद्ध-दर्शन के मूल सिद्धान्तों का विवेचन है। बौद्धों ने पाँच स्कन्धों—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा तथा संस्कार—के समूह को आत्मा कहा है उसी प्रकार राजाओं के लिए भी अंगपंचक—सहाय, साधनोपाय, देशकालविभाग, विपत्ति, प्रतिकार एवं सिद्धि—महामन्त्र माने गए हैं। इन शास्त्रों के अतिरिक्त

नाट्यशास्त्र, व्याकरण, संगीतशास्त्र तथा अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र एवं अश्वविद्या के भी परिशीलन का परिचय महाकवि माघ ने यत्र-तत्र दिया है।

महाकवि माघ अलंकृत शैली के कवि हैं। इनका प्रत्येक वर्णन, प्रत्येक भाव, अलंकृत भाषा मे ही अभिव्यक्त किया गया है। इनका काव्य कठिनता के लिए प्रसिद्ध है, और कवि ने कहीं-कहीं चित्रालंकार का प्रयोग कर इसे जानबूझ कर कठिन बना दिया है। राजराजीरुरोजाजेरजिरेऽजोऽजरोऽरजाः। रेजारिजूरजोर्जार्जी रराजर्जुरजर्जरः॥ १९।१०२ जहाँ तक महाकाव्य की इतिवृत्तात्मकता एवं महाकाव्यात्मक गरिमा का प्रश्न है, 'शिशुपालवध' सफल नहीं कहा जा सकता। माघ का ध्यान इति-वृत-निर्वाहकता की ओर नहीं है। इस दृष्टि से भारवि अवश्य ही माघ से अच्छे हैं। माघ की कथावस्तु महाकाव्य के लिए अत्यन्त अनुपयुक्त है। इन्होने विविध प्रकार के वर्णनो के द्वारा अल्प कथा को विस्तृत महाकाव्य का रूप दिया है। महाकाव्य के लिए प्रासंगिक वर्णनों का सन्तुलन एवं मूल कथा के साथ उनका सम्बन्ध होना चाहिए। 'शिशुपालवध' की कथावस्तु मे चतुर्थ से लेकर त्रयोदश सर्ग तक का वर्णन अप्रासंगिक-सा लगता है। मूलकथा प्रथम, द्वितीय, चतुर्दश एवं बीसवें सर्ग तक ही सीमित रहती है। कवि ने अप्रासंगिक गौण वर्णनों पर अधिक ध्यान देकर पुस्तक की कलेवरवृद्धि की है। निष्पक्ष आलोचक की निगाह से देखने पर, माघ मे यह बहुत बड़ा दोष दिखाई देता है, और शिशुपालवध के वीररसपूर्ण इतिवृत्त मे अप्रासंगिक शृङ्गार लीलाओं का पूरे ६ सर्ग मे विस्तार से वर्णन ऐसा लगता है, जैसे किसी पुरानी सूती रजाई के बीचो-बीच बड़ी सी रेशम की बढ़िया थिकली लगा दी है। माघ का शृङ्गार प्रबन्ध-प्रकृति का न होकर मुक्तक-प्रकृति का अधिक है, जिसे जबर्दस्ती प्रबन्ध-काव्य मे 'फिट इन' कर दिया गया है। इस थिकली ने रजाई की सुन्दरता तो बढ़ा दी है, पर स्वयं की सुन्दरता कम कर दी है। माघ निश्चित रूप से एक सफल मुक्तक कवि (अमरुक की तरह) हो सकते थे। भारवि के इतिवृत्त मे अप्सराओं की वनविहारादि शृङ्गार चेष्टाएँ फिर भी ठीक बैठ जाती है। पर राजसूय यज्ञ मे सम्मिलित होने वाले यदुओं की केवल पडाव की रात (रैवतक पर्वत पर का पडाव अधिक से अधिक दो-तीन दिन रहा होगा) मे की गई ऐसी विलासपूर्ण चेष्टाएँ काव्य की कथा मे कहाँ तक खप सकती हैं। संस्कृत-कवि-दर्शन पृ० १७७-७८ ॥ प्रथम सस्करण।

शिशुपालवध का अंगीरस वीर है, और अन्य रस-विशेषतः शृङ्गार-अंगरस है। पर पानगोष्ठी, जलविहार, रतिविलास आदि की बहुलता देख कर लगता है कि अगरस ने अंगीरस को धरदबोचा है। फिर भी किसी भी रस की व्यञ्जना मे माघ की कुशल लेखनी उसका चित्र उपस्थित कर देती है। वीररस का उदाहरण लीजिए—
आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनामित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः। आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्॥ १८।८०
"एक दूसरे की ओर बड़ी तेजी से बढ़ती हुई, शत्रु राजाओं की उद्धत सेनाओं का

श्रीकृष्ण की प्रबल तरङ्ग वाली सेना से, बड़े जोर का शब्द करते हुए दोलायुद्ध (जय पराजय की अनिश्चितता वाला गम्भीर युद्ध) हुआ, जैसे तेजी से आती हुई नदी की, गम्भीर तरङ्गों वाले समुद्र की प्रवाह की टक्कर से, टक्कर की होने पर घोरध्वनि का संघात पाया जाता है।" अन्यत्र भी कवि ने वीररस के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। माघ मूलतः शृङ्गार रस के कवि हैं और इनका मन वीररस की अपेक्षा शृंङ्गार रस के वर्णन में ही अधिक रमता है। एक शृङ्गार का चित्र देखिए —चिर-रतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखाना चरममपि शयित्वा पूर्वमेवप्रबुद्धाः। अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणामशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः॥ ११।१३। प्रातःकाल होने पर रात्रि-केलि के कारण थक कर सुख की नींद सोने पर दम्पतियों में से पहले नायिकाएँ जाग जाती हैं पर प्रिय की नींद टूटने के भय से वे अपने शरीर को इधर-उधर नहीं हिलाती। सम्भवतः वे स्वयं भी आलिंगनजन्य सुख से वंचित नहीं होना चाहतीं।

माघ का प्रकृति-चित्रण कृत्रिम एवं अलंकार के भार से बोझिल है। इन्होंने चतुर्थ एवं षष्ठ सर्ग के प्रकृति-वर्णन को यमकालंकार से भर दिया है, फलतः प्रकृति का स्वाभाविक रूप नष्ट हो गया है। इसी प्रकार नवम सर्ग के सूर्यास्त-वर्णन एवं एकादश सर्ग के प्रभात-वर्णन में अप्रस्तुत विधान का प्राधान्य होने के कारण प्रकृति का रूप अलंकृत एवं दूरारूढ कल्पना से पूर्ण है। इन्होंने मुख्यतः उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति-वर्णन किया है, पर कहीं-कहीं विशेषतः द्वादश सर्ग में—ग्रामीणों, खेतों तथा गायों के चित्र उपस्थित कर प्रकृति के स्वाभाविक रूप को सुरक्षित रखा गया है। इनके अप्रस्तुत विधान में शृङ्गारिकता एवं पाण्डित्य की झलक मिलती है, तथा मानवोचित शृङ्गारी चेष्टाओं का प्रकृति पर आरोप किया गया है। यमक—क—नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्। मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभि सुरभि सुमनोभरैः॥ ६।२ ख—उदयशिखरिशृङ्गप्रागणेष्वेषरिगन् सकमल-मुखहास वीक्षितः पद्मनीभिः। विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्यावयोभिः, परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥ 'आँगन के समान उदयाचल की चोटी पर यह सूर्य शिशु की भाँति रेंगता है। जिस प्रकार दासियाँ प्रसन्न मुख होकर आँगन में रेंगते हुए बच्चे को देखती है, उसी प्रकार कमलिनियाँ कमलों को विकसित कर के सूर्य का निरीक्षण करती है। जैसे शिशु माता के पुकारने पर अपने हाथों को फैलाकर उसकी गोद में चला जाता है, उसी प्रकार चिड़ियों के चहचहाने पर प्रातःकालीन सूर्य भी किरणों का प्रसार करके आकाश की गोद में जा पड़ता है।" माघ की कविता पदलालित्य के लिए विख्यात है। कहीं-कहीं तो इनमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जो कालिदास में भी दुर्लभ हैं। ऐसे छन्दों में शब्दालंकारों की भी छटा दिखाई पड़ती है। मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया। मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृता-क्षरमुज्जगे॥ ६।२०। माघ में वर्णन सौन्दर्य एवं चमत्कार-विधान चरम सीमा पर दिखाई पड़ता है। कवि ने तीस पद्यों में द्वारिकापुरी का चमत्कारपूर्ण वर्णन

किया है। इसी प्रकार प्रथम सर्ग में नारद का आकाश से अवतरण भी वर्णनकला की चारुता का परिचायक है।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—आ० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत-कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५. संस्कृत के महाकवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय। ६. संस्कृत काव्यकरण—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ७ महाकवि माघ—डॉ० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा। ८. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—गैरोला। ९. शिशुपालवध—संस्कृत हिन्दी टीका, चौखम्बा प्रकाशन।

माण्डूक्य उपनिषद्—यह अल्पाकार उपनिषद् है जिसमें कुल १२ खण्ड या वाक्य है। इसका सम्पूर्ण अंश गद्यात्मक है, जिन्हे मन्त्र भी कहा जाता है। इस उपनिषद् मे ॐकार की मार्मिक व्याख्या की गयी है। ओंकार मे तीन मात्रायें है, तथा चतुर्थ अंश 'अ' मात्र होता है। इसके अनुरूप ही चैतन्य की चार अवस्थायें हैं—जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति एवं अव्यवहार्य दशा। इन्ही का आधिपत्य धारण कर आत्मा भी चार प्रकार का है—वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ तथा प्रपंचोपशमरूपी शिव। इसमे भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनो कालो से अतीत सभी भाव ॐकार स्वरूप बताये गए है। इसका सम्बन्ध 'अथर्ववेद' से है। इसमे यह बतलाया गया है कि 'ॐ' ही आत्मा या परमात्मा है—'ओंकार आत्मैव' १२। इस पर शंकराचार्य के दादागुरु गौडपादाचार्य ने 'माण्डूक्यकारिका' नामक भाष्य लिखा है।

मातृचेट—ये महायानी बौद्धकवि है। इनके जीवन के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नही होती। ये महाराजा कनिष्क के समकालीन थे, और इन्होने बौद्धधर्म के मान्य सिद्धान्तो का विवरण उनके दरबार मे भेजा था। इनके ८५ पद्यो का यह विवरण इस समय 'कनिकलेख' के नाम से तिब्बती भाषा मे प्राप्त होता है। इसमे कवि ने मुख्यतः बुद्ध के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी है। इनके अन्य दो ग्रन्थ हैं—'चार सौ पद्यो का स्तुतिकाव्य' तथा 'अध्यर्धशतक'। प्रथम ग्रन्थ का अनुवाद तिब्बती भाषा मे सुरक्षित है; जिसका संस्कृत नाम है—'वर्णार्हं वर्ण स्तोत्र' (पूजनीय की स्तुति) इसमे तथागत की स्तुति बारह परिच्छेदो में की गयी हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द मे रचित है। द्वितीय ग्रन्थ 'अध्यर्धशतक' मे १५० अनुष्टुप् छन्दो मे बुद्धदेव की प्रार्थना की गयी है। कवि ने इसे १३ विभागों में विभक्त किया है। इनके काव्य की भाषा सरल, सरस एवं अकृत्रिम है तथा शैली प्रभावोत्पादक एवं हृदयग्राही। अव्यापारितसाधुस्त्वं त्वमकारणवत्सलः। असंस्तुतसखश्च त्वं त्वमसम्बन्ध-बान्धवः ॥११॥ इस श्लोक मे तथागत की अपूर्वता प्रदर्शित की गयी है।

माध्यन्दिनि— ये संस्कृत के प्राक्पाणिनि वैयाकरण है जिनका समय (पं० युधिष्ठिरमीमांसक के अनुसार) ३००० वि० पू० है। 'काशिका' की उद्धृत एक कारिका से ज्ञात होता है कि माध्यन्दिनि ने एक व्याकरणशास्त्र का प्रवर्त्तन किया था। (काशिका, ९।१।१४) इनके पिता का नाम मध्यन्दिन था—मध्यन्दिनस्यापत्यं

माध्यन्दिनिराचार्य'। पदमञ्जरी भाग २ पृ० ७३९। इनके नाम से दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—'शुक्लयजुःपदपाठ' तथा 'माध्यन्दिनशिक्षा'। कात्यायन कृत 'शुक्लयजुः प्रातिशाख्य' में 'माध्यन्दिनिसंहिता' के अध्येता माध्यन्दिनों का एक मत उद्धृत है। (८।३५) 'वायुपुराण' माध्यन्दिनि को याज्ञवल्क्य का साक्षात् शिष्य कहा गया है (६१।२४,२५) 'माध्यन्दिन-शिक्षा' में स्वर तथा उच्चारण सम्बन्धी नियमों का निरूपण है। इसके दो रूप हैं—लघु एवं बृहत्।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। २. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १—पं० भगवद्दत्त।

माधवनिदान—आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम माधव है। इनका समय सातवीं शताब्दी के आसपास है। 'माधवनिदान' आधुनिक युग में निदान का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ माना जाता है—निदाने माधवः श्रेष्ठः। ग्रन्थकर्त्ता माधव ने इसका नाम 'रोगविनिश्चय' रखा था पर कालान्तर में यह—'माधवनिदान' के ही नाम से विख्यात हुआ। ग्रन्थकार ने इसके प्रारम्भ में बताया है कि अनेक शास्त्रों के ज्ञान से रहित व्यक्तियों के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है—नानातन्त्रविहीनाना भिषजामल्पमेधसाम्। सुख विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति ॥ निदान ३। माधव के पिता का नाम इन्दु है। कविराज गणनाथसेन जी ने इन्हे बंगाली कहा है। 'माधवनिदान' की दो प्रसिद्ध टीकाएं हैं—श्रीविजयरक्षित एवं उनके शिष्य श्रीकण्ठ-कृत मधुकोशटीका तथा श्रीवाचस्पति वैद्य कृत आतंकदर्पण टीका। इसके तीन हिन्दी अनुवाद प्राप्त होते हैं—(१) माधवनिदान—मधुकोष संस्कृत एवं विद्योतिनी हिन्दी टीका—श्रीसुदर्शन शास्त्री, (२) मनोरमा हिन्दी व्याख्या, (३) सर्वांगसुन्दरी हिन्दी टीका।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

माध्वमत—वैष्णवमत का एक सम्प्रदाय जिसके प्रवर्त्तक आनन्दतीर्थ या मध्वाचार्य हैं। इस सम्प्रदाय को ब्रह्मसम्प्रदाय एवं इसके सिद्धान्त को द्वैतवाद कहा जाता है। मध्वाचार्य का जन्म दक्षिण भारत में 'उडुपी' नामक प्रसिद्ध स्थान के निकट ११९९ ई० में हुआ था। उन्होंने ३७ ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें १४ प्रमुख हैं—'ब्रह्मसूत्रभाष्य', 'अनुव्याख्यान', 'ऐतरेय', 'छान्दोग्य', 'केन', 'कठ', 'बृहदारण्यक' आदि उपनिषदों का भाष्य, 'गीताभाष्य', 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय', 'महाभारततात्पर्य-निर्णय', 'विष्णुतत्त्वनिर्णय', 'प्रपञ्चमिथ्यात्वनिर्णय', 'गीतातात्पर्यनिर्णय' तथा 'तन्त्रसारसंग्रह'। मध्वाचार्य का प्रामाणिक जीवनवृत्त नारायण पण्डित ने 'मध्वविजय' तथा 'मणिमञ्जरी' नामक ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। वे अद्वैतवाद के विरोधी तथा द्वैतवाद के समर्थक है। कहा जाता है कि यह मत सर्वप्रथम वायु को प्राप्त हुआ था। उनसे हनुमान् ने ग्रहण किया और हनुमान से भीम ने। तदनन्तर इसे आनन्द तीर्थ ने ग्रहण किया। समस्त वैष्णवदर्शनों की भाँति इस सम्प्रदाय में भी भक्ति को प्राधान्य देकर उसे ही मुक्ति का साधन माना गया है, और ईश्वर, जीव तथा जगत् तीनों की सत्यता स्वीकार की गयी है।

परमात्मा—माध्वमत में साक्षात् विष्णु ही परमात्मा हैं, जिनमें अनन्त गुणों का समावेश है। विष्णु ही उत्पत्ति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्ध तथा मोक्ष के कर्त्ता है, और वे ही भगवान् भी है। वे सर्वज्ञ है तथा जड प्रकृति और चेतन जीव से सदा विलक्षण भी। विष्णु परम तत्त्व है। वे शरीरी होकर भी नित्य एवं सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तथा एक होते हुए भी नानारूपधारी है। परमात्मा की शक्ति लक्ष्मी है। वे परमात्मा के अधीन रहती है तथा उनसे भिन्न भी है। परमात्मा के सदृश वे नित्यमुक्ता तथा नाना प्रकार का रूप धारण करनेवाली है। वे भगवान् की भार्या है, तथा भगवान् से गुण मे न्यून है। भगवान् की भाँति लक्ष्मी भी नित्यमुक्ता हैं, तथा दिव्य विग्रहधारी होने के कारण अक्षरा है।

जीव—जीव भगवान् के अनुचर तथा अल्पज्ञान एवं अल्पशक्ति से युक्त हैं। वे विष्णु के अधीन होकर ही सभी कार्य सम्पादित करते है। जीव अज्ञान, मोह तथा अनेक प्रकार के दोष से युक्त है, और वे संसारशील है। उनके तीन प्रकार हैं,—मुक्तियोग्य, नित्यसंसारी तथा तमोयोग। मुक्तियोग्य जीवों के अन्तर्गत देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती तथा उत्तम रूप मनुष्य आते हैं, और वे मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। नित्य संसारी जीव सदैव सुख-दुःख से युक्त एवं अपने कर्मानुसार स्वर्ग, नरक या भूलोक में विचरण कर ऊँच-नीच गति प्राप्त करते है। वे मध्यम मनुष्य की श्रेणी में आते हैं। तमोयोग व्यक्ति को कभी मुक्ति नहीं प्राप्त होती। इस श्रेणी में दैत्य, राक्षस एवं अधम श्रेणी के मनुष्य आते हैं।

जगत्—इस मत मे जगत् को सत्य माना गया है। भगवान् के द्वारा निर्मित जगत् असत्य नहीं हो सकता। माध्वमत मे वास्तविक सुख की अनुभूति को मुक्ति कहा जाता है। इस स्थिति में दुःख के क्षय के साथ-ही-साथ परमानन्द का उदय होता है। मोक्ष चार प्रकार का होता है—कर्म, क्षय, उत्क्रान्ति, अर्चिरादि मार्ग तथा भोग। भोग के भी चार प्रकार होते हैं— सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। इनमे सायुज्य मुक्ति सर्वश्रेष्ठ होती है क्योंकि इस स्थिति मे भक्त भगवान् में प्रवेश कर उनके शरीर मे ही आनन्द प्राप्त करता है। अमला या मलरहित भक्ति ही माध्वमत के अनुसार मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। हैतुकी भक्ति या किसी कारणविशेष से की गई भक्ति निकृष्ट होती है, एवं अहैतुकी भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

माध्वमत अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे द्वैतवाद की स्थापना करता है। इसके अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत नहीं है। इसमे पाँच नित्य भेदों की स्थापना की गयी है—ईश्वर का जीव से नित्यभेद, ईश्वर का जड पदार्थ से नित्यभेद, एक जीव का अन्य जीव के साथ नित्यभेद, एक जड पदार्थ का दूसरे जड पदार्थ के साथ नित्यभेद। माध्वमत में प्रमाण तीन माने गए है—प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द, तथा इन्हीं के आधार पर समग्र प्रमेयों की सिद्धि मानी गयी है।

आधारग्रन्थ—१. भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय। २ भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय।

मालती माधव—'मालती-माधव महाकवि भवभूति कृत दस अंकों का प्रकरण है। यह महाकवि की द्वितीय नाट्य रचना है। इस नाटक का प्रधान रस शृङ्गार है तथा मालती एवं माधव नामक नायिका एवं नायक की प्रणय-कथा वर्णित है। इसकी कथावस्तु कल्पित है। नाटक के प्रथम अंक मे मदनोत्सव का आयोजन कर मालती तथा माधव को परस्पर आकृष्ट किया गया है। प्राचीन काल मे भूरिवसु एवं देवरात नामक दो ब्राह्मण विद्यार्थियो मे गाढ़ी मित्रता थी। दानो ने निश्चय किया था कि यदि एक को पुत्र एवं दूसरे को पुत्री उत्पन्न हुई तो वे दोनों का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर देगे। उनके इस निश्चय को बौद्ध सन्यासिनी योगिनी कामन्दकी एवं उसकी शिष्या सौदामिनी जानती थी। कालान्तर में दोनो ही मित्र मन्त्रि-पद पर अधिष्ठित हुए। भूरिवसु पद्मावती के अधीश्वर के मन्त्रि हुए एवं देवरात विदर्भ-नरेश के मन्त्री नियुक्त किये गए। संयोगवश देवरात को पुत्र उत्पन्न हुआ एवं भूरिवसु को कन्या हुई, जिनका नाम क्रमशः माधव एवं मालती हुआ। जब दोनो बड़े होकर विद्या एवं कला मे प्रवीण हुए तो देवरात ने अपने पुत्र माधव को न्यायशास्त्र के अध्ययन के लिए पद्मावती भेजा, और भूरिवसु को अपने पूर्व निश्चय का स्मरण दिलाया। इसी बीच पद्मावती-नरेश के एक नर्म सचीव ने राजा से कहकर मालती का विवाह अपने पुत्र से करना चाहा। भूरिवसु अत्यन्त संकोच में पड़कर किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। उधर मित्र का पूर्व निश्चय वचन एवं इधर राजा का आदेश था। अन्ततः उसने श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कर वचन-चातुरी के द्वारा राजा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कामन्दकी को इन सारी बातो का पता चला और उसने दोनो को आकृष्ट करने की योजना बनाई। उसने माधव से कहा कि वह भूरिवसु के भवन के पास से नित्य प्रति होकर जाया करे। माधव ने ऐसा ही किया और मालती उस पर अनुरक्त हो गयी। इन सारी बातो का सूचना कवि ने कामन्दकी एव उसकी शिष्या अवलोकिता के वार्त्तालाप मे दी है। दोनो के वार्त्तालाप मे माधव के मित्र मकरन्द एवं नन्दन की बहिन तथा मालती की सखी मदयन्तिका के विवाह की भी चर्चा की गयी है। मदनोद्यान में मालती तथा माधव का मिलन होता है और उसके चले जाने पर माधव अपने मित्र मकरन्द से अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है।

द्वितीय अक मे पद्मावती-नरेश के मन्त्री भूरिवसु अपनी पुत्री मालती का विवाह नन्दन के साथ करने को प्रस्तुत होते हैं; पर कामन्दकी मालती को गुप्तरूप से, माधव के साथ विवाह करने के लिए तैयार कर लेती है। तृतीय अङ्क मे कामन्दकी द्वारा मालती एव माधव को मिलाने की योजना बना ली जाती है। वे शिव-मन्दिर के निकटवर्त्ती अशोक कुंज मे मिलेगे। माधव पहले से ही वहाँ छिपा रहता है और लवंगिका मालती को लेकर आती है, पर दोनो के मिलन होने के पूर्व पिंजरे से एक शेर के निकल भागने से भगदड मच जाती है, और मकरन्द शेर को मार डालता है। इस घटना के द्वारा माधव एवं मकरन्द दोनो ही घायल होकर बेहोश हो जाते है। चतुर्थ अंक मे मालती एवं मदयन्तिका के प्रयत्न से दोनों मित्र होश मे लाये जाते हैं। संज्ञा

प्राप्त करने पर मकरन्द मालती की सखी मदयन्तिका को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो जाता है। इसी अंक के विष्कम्भक के द्वारा यह सूचना दी गयी है कि मालती का विवाह पद्मावती-नरेश के साले नन्दन के साथ निश्चित हो गया है।

पंचम अंक में कापालिक अघोरघण्ट द्वारा मालती कराला देवी को बलि देने के लिए लाई जाती है। उसकी चिल्लाहट सुनकर पास के श्मशान से माधव आकर अघोरघण्ट को मार कर मालती की रक्षा करता है। छठे अंक के विष्कम्भक मे कपालकुण्डला अपने गुरु अघोरघट का बदला लेने की घोषणा करती है। इसी समय उसके पक्ष वे लोग विवाह के अवसर पर खोई हुई मालती को खोजने के लिए आकर कराला देवी के मन्दिर को घेर लेते है। मालती को वहाँ पाकर नन्दन के साथ उसके विवाह की तैयारी की जाती है। इसी बीच कामन्दकी की चतुरता से मकरन्द के साथ नन्दन का विवाह सम्पन्न हो जाता है और मालती एवं माधव का गन्धर्व-विवाह, शिव मन्दिर मे कामन्दकी द्वारा ही करा दिया जाता है। सप्तम अंक मे सुहागरात के समय दुलहिन बना हुआ मकरन्द नन्दन को पीटता है और नन्दन उसे गालियाँ देता हुआ निकल जाता है। इसी बीच अपनी भाभी को समझाने-बुझाने के लिए नन्दन की बहिन मदयन्तिका आती है और मालती-वेशधारी मकरन्द को देखकर आश्चर्य चकित होकर प्रसन्न हो जाती है। अष्टम अंक में मालती एवं माधव को उद्यान मे मदयन्तिका तथा मकरन्द की प्रतिक्षा करते हुए दिखाया गया है। उसी समय कलहस द्वारा सूचना मिलती है कि मदयन्तिका को भगाने के अपराध में मकरन्द को पकड लिया गया है। माधव मालती को अकेली छोडकर अपने मित्र मकरन्द की रक्षा के लिए चल पडता है और अवसर पाकर कपालकुण्डला, मालती को श्रीपर्वत पर ले जाती है। मकरन्द तथा माधव का सैनिकों के साथ समासान युद्ध होता है और राजा उनकी वीरता पर प्रसन्न होकर उन्हें छोड देता है।

नवम अङ्क मे माधव मकरन्द के साथ विक्षिप्तावस्था में विन्ध्य पर्वत पर घूमता हुआ दिखाई पडता है। वह मालती के वियोग मे व्यथित है। उसी समय कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी ने आकर सूचना दी कि मालती सुरक्षित होकर कुटिया में है। दशम अंक मे मकरन्द ने कामन्दकी के पास जाकर सूचना दी कि मालती कुटिया मे है। अमात्य भूरिवसु, कामन्दकी, लवंगिका, मदयन्तिका सभी मालती के लिए दुःखित होकर आत्महत्या करना चाहते है कि मकरन्द आकर मालती तथा माधव का शुभ समाचार देता है। दोनो आ जाते है और मकरन्द एवं मदयन्तिका का विवाह करा दिया जाता है और कामन्दकी की सारी नीति सफल हो जाती है। भरतवाक्य के पश्चात् प्रकरण समाप्त हो जाता है। शास्त्रीय दृष्टि मे 'मालतीमाधव' रूपक का एक भेद प्रकरण है। प्रकरणमे कथानक कल्पित होता है और सन्धियाँ पाँच होती है। इसका नायक धीर प्रशान्त एवं नायिका कुलवती या वेश्या होती है। इसमे नायक या तो अमात्य, विप्र अथवा वणिक् होता है तथा प्रधान रस शृङ्गार। नायक विद्यापूर्ण एवं धर्म, अर्थ और काम में तत्पर होता है। भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्॥ शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्यो-

अथवा वणिक्। सापापधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ॥ नायिका कुलजा क्वापि, वेश्या क्वापि, द्वयं क्वचित्। तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः ॥ कितवद्युतकारादिविटचेटकसंकुलः ॥ साहित्य-दर्पण ३।२२४-२२७। इसमें अंकों की संख्या पाँच से दस तक होती है तथा कैशिकी वृत्ति प्रयुक्त होती है।

इस प्रकरण का कथानक माधव एवं मालती के प्रणय-व्यापार पर आश्रित है। इसमे इसके साथ ही मकरन्द एव मदयन्तिका का प्रणयाख्यान भी बडी कुशलता के साथ उपन्यस्त है। यह मुख्य कथा का उपकथानक कहा जा सकता है। कथा मे कवि ने अनेक उत्तेजक एवं अतर्कित तथा भयंकर एवं अतिमानवीय घटनाओ का समावेश कर इस प्रकरण को अधिक आकर्षक बनाया गया है। मकरन्द द्वारा मालती का वेश बनाकर नन्दन को प्रताडित करने की घटना अत्यन्त आकर्षक एवं हास्यवर्द्धक भी है, जो भवभूति ऐसे गम्भीर कवि के लिए विरल मानी जा सकती है। आलोचको ने इसमें कतिपय दोषो का भी अन्वेषण किया है। उदाहरण के लिए; उपकथानक एव उसके नायक-नायिका को मुख्य कथा एवं उसके नायक-नायिकाओं पर छाये हुए प्रदर्शित किया गया है और माधव इनके समक्ष निस्तेज दिखाई पडता है। बुद्धिमती एवं चतुर मदयन्तिका के समक्ष लज्जाशील मालती हल्की दिखाई पडती है। मकरन्द के कार्य माधव की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं महनीय हैं। मुख्य कथा का धरातल भी दुर्बल दिखाई पडता है क्योंकि सम्पूर्ण प्रकरण का कार्य-विधान कामन्दकी की नीति द्वारा संचालित होते हुए दिखाया गया है। कवि ने बहुत-सी अतिमानवीय तथा अप्राकृतिक घटनाओ का समावेश कर इसे अविश्वसनीय बना दिया है। कन्याहरण, भूत-प्रेतो, श्मशान की घटना तथा कापालिको की बीभत्स क्रियाओ का बाहुल्य दिखाकर घटनाओ की स्वाभाविकता को नष्ट कर दिया गया है। "लोगो ने यह भी आक्षेप किया है कि मालती का हरण भी कथानक से उद्भूत नही है अपितु ऊपर से लाया गया प्रतीत होता है। पर यह आक्षेप युक्तिगत नही प्रतीत होता क्योंकि इसके अभाव मे अंक ९ तथा १० के कुछ अंश का भी वैयर्थ्य हो जायेगा और पूरा इतिवृत्त भी पंगु प्रतीत होगा।" महाकवि भवभूति-डॉ० गङ्गासागर राय पृ० ७६। आठवें अक के बाद कथानक को आगे बढ़ाकर नाटककार ने अनुपातहीनता प्रदर्शित की है। मूल कथा राजा द्वारा माधव को क्षमा करने के पश्चात् ही समाप्त हो जाती है। उसके बाद कपालकुण्डला द्वारा मालती-हरण की कथा का नियोजन अस्वाभाविक विकास का द्योतक है। इस प्रकार कथानक में यद्यपि पर्याप्त मनोरंजन, औत्सुक्य और मौलिकता है किन्तु संयम, अनुपात और स्वाभाविकता का अभाव है।

चरित्र-चित्रण के विचार से यह प्रकरण उत्कृष्ट रचना है। पात्रों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर अधिष्ठित किया गया है। तथा पात्रो ने कथावस्तु को अधिक प्रभावित किया है। कामन्दकी की योजनाओ की सफलता इस तथ्य का द्योतक है। "एक ओर प्रेम की प्रतिमूर्त्ति माधव है तो दूसरी ओर प्रेम के साथ ही शालीनता को समेटे मालती है। मकरन्द आदर्श मित्र जो मित्र-कार्यों की सिद्धि मे प्राणों के होम के लिए भी तत्पर

है। मालती-माधव तथा मदयन्तिका एवं मकरन्द के प्रेम भी उच्चतर भावभूमि पर अधिष्ठित हैं। मालती तथा मदयन्तिका के प्रेम शनैः शनैः प्ररूढ होते हैं। लवङ्गिका तथा बुद्धरक्षिता, उन दोनों की प्रेम प्रौढ़ि में योगदान करते हैं।" महाकवि भवभूति पृ० ७८। काव्य-कला की दृष्टि से 'मालती-माधव' की उच्चता असंदिग्ध है। इसमें कवि ने भावानुरूप शब्द-संघटन पर अधिक बल दिया है तथा प्रत्येक परिस्थिति को स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त किया है। भावों की उच्चता, रसों की स्पष्ट प्रतीति, शब्द-सौष्ठव, उदार गुणशालिता एवं अर्थगौरव 'मालती-माधव' के निजी वैशिष्ट्य है। प्रेयान्मनोरथसहस्रवृतः स एष सुप्तप्रमत्तजनमेतदमात्यवेश्म। प्रौढंतमः कुतशनयैव भद्र-मुत्क्षिप्तमूकमणिं पुरमेहियामः ॥७।३। 'सहस्र अभिलाषाओ से प्रार्थी ये ही वे प्रिय हैं, मन्त्रि-भवन मे कुछ व्यक्ति तो सोये हुए है और कुछ प्रमत्त पडे हुए है, अन्धकार घना है, अत: अपना मगल करो।' मणिनूपुरो को ऊपर, उठाकर तथा नि शब्द कर आओ हम चले।' 'मालती-माधव' का हिन्दी अनुवाद चौखम्भा मे प्रकाशित है।

मारुति विजय चम्पू— इस चम्पू काव्य के प्रणेता का नाम रघुनाथ कवि या कुप्पाभट्ट रघुनाथ है। इसके लेखक के सम्बन्ध मे अन्य बाते ज्ञात नही होती। यह काव्य सत्रहवी शताब्दी के आस-पास लिखा गया है। इसमे कवि ने सात स्तबको मे वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड की कथा का वर्णन किया है। कवि का मुख्य उद्देश्य हनुमान जी के कार्यों की महत्ता प्रदर्शित करना है। इसके श्लोकों की संख्या ८३६ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे गणेश तथा हनुमान् की वन्दना की गयी है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग, ४१०६ मे प्राप्त होता है। कवि ने काव्य के स्तबकों एवं श्लोकों की संख्या का विवरण इस प्रकार दिया है— चूर्णान्तरस्तबकसप्तविराजमानं षट्त्रिंशदुत्तरचतुश्शलपद्यपूर्णम्। चंपं परं सकलदेश-निवासिधीराः पश्यन्तु यान्तु च मुदं विधुनान्यसूयाः ॥ १।४। हनुमान् की वन्दना— समीरवेगं कुशकोटिबुद्धिं सीतासुतं राक्षसवशकालम्। नयाकरं नन्दितरामभद्रं नित्यं हनूमन्तमहं नमामि ॥ १।२।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

मार्गसहाय चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता नवनीत है। इनके पिता का नाम वेदपुरीश्वराध्वरि था। इनका समय १७ वी शताब्दी के आसपास है। इस चम्पू में छह आश्वासो मे आर्काट जिलान्तर्गत स्थित विरिंचिपुरम् ग्राम के शिव मन्दिर के देवता मार्गसहायदेव जी की पूजा वर्णित है। उपसंहार में कवि ने स्पष्ट किया है कि इस चम्पू मे मार्गसहायदेव के प्रचलित आख्यान को आधार बनाया गया है। एवं प्रभावपरिपाटिकया प्रपचे प्राचम्विरिंचिपुरमार्गसहायदेवः। अत्यद्भुतानि चरितान्यवनौ वितन्वन् नित्यं तरंगयति मंगलमंगभाजाम्। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग, ४०१६ में प्राप्त होता है।

आधारग्रंथ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

मालविकाग्निमित्र—यह कालिदास विरचित उनकी प्रथम नाट्यकृति है। इसमें विदर्भ नरेश की पुत्री मालविका तथा महाराज अग्निमित्र की प्रणयकथा का वर्णन किया है। नान्दी पाठ मे शिव की वन्दना करने के पश्चात् नाटक का प्रारम्भ होता है। प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा यह कथन कराया गया है कि कोई भी रचना प्राचीन होने से उत्कृष्ट नहीं होती और न हर नई कविता बुरी होती है। सज्जन पुरुष प्रत्येक वस्तु को बुद्धि की तुला पर परीक्षित कर अच्छी वस्तु का प्रयोग करते है, पर मूर्ख तो दूसरे के ही ज्ञान पर आश्रित रहते हैं। पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ १।२। इसका प्रारम्भ मिश्र विष्कम्भक से होता है जिसमे पूर्वघटित वृत्त के पश्चात् राजा अग्निमित्र को मंच पर प्रवेश कराया जाता है। वे विदूषक के आगमन की प्रतीक्षा करते है। यज्ञसेन द्वारा माधवसेन पर आक्रमण कर देने से भयाक्रान्त होकर माधवसेन की बहिन मालविका विदिशा की ओर भाग कर प्राण बचाती है। मार्ग मे वनवासियो द्वारा आक्रमण कर दिये जाने पर अत्यन्त कठिनता के साथ वह गन्तव्य स्थान पर पहुचती और वहाँ रानी धारिणी के आश्रय मे रहती है। धारिणी के यहाँ वह परिचारिका बन कर नृत्यकला की शिक्षा ग्रहण करती है। एक दिन अग्निमित्र मालविका का चित्र देखता है और उस पर अनुरक्त होकर उसको प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है। विदूषक द्वारा नृत्य का प्रबन्ध करने पर दोनो एक दूसरे को देखकर उल्लसित हो जाते है। दूसरे दिन जब मालविका धारिणी के लिए माला गूँथती है उसी समय अग्निमित्र, उसकी पत्नी इरावती तथा विदूषक झाडी मे छिपकर मालविका के रूप लावण्य को देखते है। अग्निमित्र को इरावती की विद्यमानता का भान नही होता और वे आगे बढ कर मालविका से मिलना चाहते है। उसी समय इरावती सामने आकर अपने पति के कार्य को अनुचित बताकर मालविका को कारागृह मे डाल देती है। कुछ क्षण के पश्चात् यह सूचना प्राप्त होती है कि विदूषक को सर्प ने डँस दिया है; अतः उसकी चिकित्सा के लिए राजमहिषी की अँगूठी मे लगे हुए एक पाषाण की आवश्यकता पडेगी, क्योंकि उसमे सर्प-मुद्रा चिह्नित थी। विष-प्रकोप को शान्त करने के बहाने उसे लेकर तथा दिखाकर मालविका को कारामुक्त किया जाता है। इस प्रकार पुनः दोनो प्रेमी एक बार मिल जाते हैं। इरावती पुनः मालविका का तिरस्कार करती है। राजकुमारी वसुलक्ष्मी को बन्दरो द्वारा पीडित होने की सूचना पाकर राजा उसके सहायतार्थ चले जाते है और दोनो का मिलन अधिक देर तक नहीं हो पाता। कुछ देर के पश्चात् यह सूचना प्राप्त हुई कि मालविका के भ्राता माधवसेन के द्वारा यज्ञसेन पराजित हो गया और मालविका के राजकुमारी होने का रहस्य भी प्रकट हो गया। महारानी धारिणी की दो गायिकाएँ भी मालविका को माधवसेन की बहिन बतलाती है। इसी बीच अग्निमित्र के पिता महाराज पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होता है। उनका पौत्र वसुमित्र सिन्धु तटवर्ती यवनो को परास्त कर घर आता है और इस अवसर पर उल्लास मनाया जाता है, तथा महाराज अग्निमित्र और मालविका प्रणय-सुख अनुभव करते हैं।

'मालविकाग्निमित्र' मे पाँच अंक हैं, पर कथावस्तु के संविधान की दृष्टि से यह नाटक न होकर नाटिका है। इसमें कथावस्तु राजप्रासाद एवं प्रमदवन के सीमित क्षेत्र में ही घटित होती है तथा इसका मुख्य वर्ण्य-विषय प्रणय-कथा है। शास्त्रीय दृष्टि से अग्निमित्र धीरोदात्त नायक है, पर उसे धीरललित ही माना जायगा। इसका अंगी रस शृङ्गार है तथा विदूषक की उक्तियों के द्वारा हास्यरस की सृष्टि हुई है। इसमे पाँच अंकों के अतिरिक्त अन्य तत्त्व नाटिका के ही हैं। नाटिका में चार अंक होते है। यह ऐतिहासिक नाटक है। इसमे कवि ने कई ऐतिहासिक घटनाओं का कुशलतापूर्वक समावेश किया है। इसकी भाषा मनोहर तथा चित्ताकर्षक है और बीच-बीच मे विनोदपूर्ण श्लेषोक्तियो का समावेश कर संवाद को अधिक आकर्षक बनाया गया है।

मित्र मिश्र—ये संस्कृत के राजधर्म निबन्धकार है। इन्होंने 'वीरमित्रोदय' नामक बृहद् निबन्ध का प्रणयन किया था जिसमे धर्मशास्त्र के सभी विषयों के अतिरिक्त राजनीतिशास्त्र का भी निरूपण है। इसी ग्रन्थ का एक अंश 'राजनीतिप्रकाश' है जिसमें राजशास्त्र का विवेचन किया गया है। मित्र मिश्र ओड़छानरेश श्री वीरसिंह के आश्रित थे जिनका शासनकाल सं० १६०५ से १६२७ तक था। उन्ही से प्रेरणा ग्रहण कर 'राजनीतिप्रकाश' की रचना हुई थी। इनके पिता का नाम परशुराम पण्डित एवं पितामह का नाम हंसपण्डित था। मित्रमिश्र ने याज्ञवल्क्यस्मृति के ऊपर भाष्य की भी रचना की है। 'वीरमित्रोदय' २२ प्रकाश में विभाजित है जिनके नाम इस प्रकार है—परिभाषा, संस्कार, आह्निक, पूजा, प्रतिष्ठा, राजनीति, व्यवहार, शुद्धि, श्राद्ध, तीर्थ, दान, व्रत, समय, ज्योतिष, शान्ति, कर्मविपाक, चिकित्सा, प्रायश्चित्त, प्रकीर्ण, लक्षण, भक्ति तथा मोक्ष। इस ग्रन्थ की रचना पद्यों मे हुई है और सभी प्रकाश अपने मे विशाल ग्रन्थ है। व्रतप्रकाश एवं संस्कारप्रकाश मे श्लोकों का संख्या क्रमशः २२६५० एवं १७४१५ है। 'राजनीतिप्रकाश' में राजशास्त्र के सभी विषयो का वर्णन है। इसमें वर्णित विषयो की सूची इस प्रकार है—राजशब्दार्थविचार, राजप्रशंसा, राज्याभिषेकविहितकाल, राज्याभिषेकनिषिद्धकाल, राज्याधिकार-निर्णय, राज्याभिषेक, राज्याभिषेकोत्तरकृत्य, प्रतिमास-प्रतिसंवत्सराभिषेक, राजगुण, विहितराजधर्म, प्रतिसिद्धराजधर्म अनुजीविवृत्त, दुर्गलक्षण, दुर्गगृहनिर्माण, राष्ट्र, कोश, दण्ड, मित्र, षाड्गुण्यनीति, युद्ध, युद्धोपरान्त व्यवस्था, देवयात्रा, इन्द्रध्वजोच्छ्रायविधि, नीराजशान्ति, देवपूजा,, लोहाभिसारिकविधि आदि।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय। २. धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) भाग—१ पी० वी० काणे।

मीनाक्षीकल्याण चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता का नाम कन्दुकुरी नाथ है। ये तेलुगु ब्राह्मण थे। इसमे कवि ने पाण्डदेशीय प्रथम नरेश कुलशेखर (मलयध्वज) की पुत्री मीनाक्षी का शिव के साथ विवाह का वर्णन किया है। मीनाक्षी स्वयं पार्वती है। इस चम्पू काव्य की खण्डित प्रति प्राप्त हुई है जिसमे इनके केवल दो ही आश्वास हैं। प्रारम्भ मे गणेश तथा मीनाक्षी की वन्दना की गयी है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३३७ में प्राप्त होता है।

इसकी भाषा सरल है—भ्रातः पतिर्मे शिव एव नान्यः स्वसुस्तवावेक्ष्य मुदा समेत्य। निवर्तनीयः खलु मे विवाहः त्वमेव मां बन्धुमती विधेहि॥

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

मीमांसादर्शन—महर्षि जैमिनि द्वारा प्रवर्तित भारतीयदर्शन का एक सम्प्रदाय जिसमें वैदिक कर्मकाण्ड की पुष्टि की जाती है। इस सिद्धान्त का मूल ग्रन्थ 'जैमिनीसूत्र' है। जैमिनी का समय वि० पू० ३०० वर्ष है। उन्होंने प्राचीन एवं समसामयिक आठ आचार्यों का नामोल्लेख किया है, जिससे पता चलता है कि उनके पूर्व भी मीमांसाशास्त्र का विवेचन होता रहा था। वे आचार्य हैं—आत्रेय, आश्मरथ्य, काष्णाजिनि, बादरि ऐतिशायन, कामुकायन, लाबुकायन एवं आलेखन। मीमांसा सूत्रों की संख्या २६४४ है। इसमें बारह अध्याय हैं तथा मुख्यतः धर्म के ही विषय में विचार किया गया है। 'जैमिनिसूत्र' पर शबरस्वामी ने विशद भाष्य लिखा है, जो 'शाबरभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। उनका समय २०० ई० है। कालान्तर में मीमांसा के तीन विशिष्ट मत हो गए जो भाट्टमत, गुरुमत तथा मुरारिमत के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके प्रवर्त्तक है—क्रमशः कुमारिल, प्रभाकर तथा मुरारिमिश्र।

कुमारिल का समय ६०० ई० है। उन्होंने 'शाबरभाष्य' पर तीन महत्त्वपूर्ण वृत्तिग्रन्थों की रचना की है, वे है—'श्लोक वार्तिक', 'तन्त्रवार्त्तिक' तथा 'टुप्टीका'। कुमारिल के सुप्रसिद्ध शिष्य है—मण्डनमिश्र। उनके ग्रन्थों के नाम है—'विधिविवेक', 'भावनाविवेक', 'विभ्रमविवेक', 'मीमांसासूत्रानुक्रमणी'। भाट्ट सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों मे पार्थसारथि मिश्र, माधवाचार्य तथा खण्डदेव मिश्र के नाम अधिक विख्यात है। पार्थसारथि मिश्र ने चार ग्रन्थों की रचना की है—'तर्करत्न', 'न्यायरत्नमाला', 'न्यायरत्नाकर' तथा 'शास्त्रदीपिका'। माधवाचार्य प्रसिद्ध वेदव्याख्याता हैं जिन्होंने 'न्यायरत्नमाला' नामक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ लिखा है। खण्डदेव मिश्र नव्यमत के उद्भावक है। उन्होंने तीन पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है—'भाट्टकौस्तुभ', 'भाट्टदीपिका' एवं 'भाट्टरहस्य'। गुरुमत के प्रवर्तक प्रभाकर मिश्र ने 'शाबरभाष्य' के ऊपर दो टीकाएँ लिखी हैं—'बृहती' 'एवं लघ्वी'। इस मत के प्रसिद्ध आचार्य है शालिकनाथ जो प्रभाकरभट्ट के पट्ट शिष्य थे। उन्होंने तीन पञ्जिकाओं का प्रणयन किया है-'ऋतुविमला', 'दीपशिखा' तथा प्रकरणपञ्जिका। इस सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों मे भवनाथ या भवदेव ने 'नयविवेक' तथा नन्दीश्वर ने 'प्रभाकरविजय' नामक ग्रन्थों की रचना की। मुरारि मत के उद्भावक मुरारिमिश्र हैं, जिनके सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही है। गंगेश उपाध्याय एवं उनके पुत्र वर्धमान उपाध्याय के ग्रंथों में उनका मत उल्लिखित है। 'मीमांसा' का शाब्दिक अर्थ है 'किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का निर्णय'। वेद के दो भागों—कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड—के आधार पर इसके दो विभाग किये गए है—पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा। पूर्वमीमांसा में कर्मकाण्ड की व्याख्या है तो उत्तरमीमांसा में ज्ञानकाण्ड की।

प्रमाण-विचार—मीमांसा का मुख्य उद्देश्य वेदों का प्रामाण्य सिद्ध करता है।

इसमे ज्ञान के दो प्रकार मान्य है— प्रत्यक्ष और परोक्ष। एकमात्र सत् पदार्थ को ही प्रत्यक्ष का विषय माना गया है। इन्द्रियो के साथ किसी विषय का सम्पर्क होने पर ही प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है। इसके द्वारा नानारूपात्मक जगत् का ज्ञान होता है और वह ज्ञान सत्य होता है। इसमे प्रत्यय के दो भेद मान्य है—निर्विकल्पक और सविकल्पक। इस दर्शन मे अन्य पाँच प्रमाण—अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि है। जिनमे अन्तिम प्रमाण को केवल भाट्ट मीमासक मानते है। न्याय की भाँति मीमांसा मे भी उपमान को स्वतन्त्र प्रमाण माना गया है, पर मीमासा मे यह दूसरे अर्थ मे ग्रहण किया जाता है। मीमांसा के अनुसार उपमान की स्थिति वहाँ होती है जब पूर्व दृष्ट पदार्थ के समान किसी पदार्थ को देखकर यह समझा जाय कि स्मृत पदार्थ प्रत्यक्ष पदार्थ के समान है। जैसे गाय को देखने वाले व्यक्ति के द्वारा वन मे नीला गाय को देखकर दोनो के सादृश्य के कारण गाय की स्मृति हो जाती है, और उसे यह ज्ञात हो जाता है, कि नील गाय, गाय के सदृश होती है।

अनुमान— मीमांसा म न्याय की तरह अनुमान की कल्पना की गयी है, पर भाट्ट मत की अनुमान-प्रक्रिया नैयायिको से कुछ भिन्न है। न्याय मे अनुमान के पञ्चावयव वाक्य मान्य है। [दे० न्याय दर्शन] पर मीमासा मे केवल तीन ही वाक्य स्वीकार किये गए है— प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त। शब्द—मीमांसा-दर्शन मे वेद का प्रमाण्य स्थापित करने के कारण शब्द-प्रमाण को अधिक महत्त्व दिया गया है। जो वाक्य ज्ञान प्राप्त करानेवाला हो तथा वह अनाप्त (अविश्वस्त) व्यक्ति के मुँह से न निकला हो उसे शब्द कहते है। इसके दो प्रकार है—पौरुषेय और अपौरुषेय। आप्त पुरुष के द्वारा व्यवहृत वाक्य पौरुषेय होता है और अपौरुषेय वाक्य वेदवाक्य या श्रुतिवाक्य होता है। वेदवाक्य के भी दो भेद होते है— सिद्धार्थवाक्य तथा विधायकवाक्य। जिस वाक्य के द्वारा किसी सिद्ध विषय का ज्ञान हो वह सिद्धार्थवाक्य तथा जिससे किसी क्रिया के लिए विधि या आज्ञा सूचित हो उसे विधायक वाक्य कहते है। वेदवाक्य को मीमासा मे स्वतःप्रमाण या अपौरुषेय माना जाता है। पौरुषेय वाक्य उसे कहते है, जो किसी पुरुष के द्वारा कहा गया हो तथा अपौरुषेय वाक्य किसी पुरुष द्वारा निर्मित न होकर नित्य होता है। मीमांसा-दर्शन के अनुसार वेद मनुष्य कृत न होकर अपौरुषेय हैं (ईश्वरकृत है)। इसके अनुसार वेद और जगत् नित्य है। वेद को अपौरुषेय मानने के लिए अनेक युक्तियां दी गयी है—

क— नैयायिकों के अनुसार वेद ईश्वर की रचना है, अतः वे वेद को पौरुषेय मानते हैं, किन्तु मीमांसा ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नही करती, फलतः इसके अनुसार वेद अपौरुषेय है। ख—वेद में कर्त्ता का नाम नही मिलता, किन्तु कतिपय मन्त्रो के ऋषियो के नाम आये हैं, पर वे मन्त्रो के व्याख्याता या द्रष्टा थे, कर्ता नहीं। ग— मीमासा मे 'शब्दनित्यतावाद' की कल्पना कर उसकी महत्ता सिद्ध की गयी है। वेद की नित्यता का सबसे प्रबल प्रमाण शब्द की नित्यता ही है। वेद नित्य शब्दों का भंडार है। लिखित अथवा उच्चरित वेद तो नित्यवेद के प्रकाश है। घ—वेदों में कर्म

के अनुष्ठान से फल की प्राप्ति का कथन किया गया है। पर, कर्म-फल-सम्बन्ध को प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि वेद की रचना पुरुष द्वारा नहीं हुई है।

अर्थापत्ति—मीमांसा में पंचम प्रमाण अर्थापत्ति है। अर्थापत्ति उस घटना को कहते हैं जो बिना दूसरे विषय के समक्ष में न आये। अर्थात् जिसके द्वारा कोई अन्यथा उपपन्न विषय उपपन्न हो जाय उस कल्पना को अर्थापत्ति कहते है। इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द के अन्तर्गत न आकर विलक्षण होता है। अनुपलब्धि—इसका अर्थ है किसी पदार्थ की अप्राप्ति। किसी विषय के अभाव का साक्षात् ज्ञान होने को अनुपलब्धि कहते हैं। मीमांसा-दर्शन में सभी ज्ञान को स्वत: प्रमाण माना गया है। इसमे बतलाया गया है कि पर्याप्त सामग्री के बिना ज्ञान की उत्पत्ति संभव नहीं है। वैदिक विधान को अधिक महत्त्व देते हुए उसे धर्म कहा गया है और वही अधर्म है जिसका वेद निषेध करता है। अत: वेद-विहित कर्मों का पालन तथा वेद-वर्जित कर्मों का त्याग ही धर्म माना जाता है। यदि निष्काम भाव से धर्म का आचरण किया जाय तो वही कर्त्तव्य माना जायगा। वेद-विहित कर्मों को वेद का आदेश मान कर करना चाहिए न कि किसी फल की आशा से। प्राचीन मीमांसकों ने स्वर्ग-प्राप्ति को हो परम सुख या मोक्ष माना था, किन्तु कालान्तर मे मोक्ष का अभिप्राय दु:खनाश एवं जन्म का नाश समझा जाने लगा।

मीमासा-दर्शन अनीश्वरवादी होते हुए भी वेद को नित्य मानता है। यह कर्म-प्रधान दर्शन है, जिसमे कर्मों की तीन श्रेणियां है—काम्य, निषिद्ध तथा नित्य। किसी कामना की पूर्ति के लिए किया गया कर्म काम्य कहा जाता है। जैसे, स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ करना। वेद-अविहित कर्म या वेद-असम्मतकर्म को निषिद्ध कहते हैं। नित्य कर्म वे है जिन्हें सभी व्यक्ति करें। ऐसे कर्म सार्वभौम महाव्रत आदि होते है। मुक्ति-लाभ के लिए नित्य कर्मों का सम्पादन आवश्यक माना गया है। मीमासा में आत्मा को नित्य तथा अविनश्वर माना जाता है। वेद स्वर्ग-प्राप्ति के लिए धार्मिक आचरण पर बल देते हैं। इस संसार के साथ आत्मा के सम्बन्ध का विनाश ही मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति मे आत्मा शरीर से विच्छिन्न हो जाती है, अत: साधन के बिना उस समय उसे सुख अनुभव या ज्ञान नही होता। मीमासा-दर्शन मानता है कि चैतन्य आत्मा का गुण नहीं है, बल्कि शरीर के सम्पर्क से ही उसमे चैतन्य आता है और सुख-दु:ख का ज्ञान होता है। मोक्ष की दशा में भी आत्मा आनन्द का अनुभव नहीं करता। इसमे भौतिक जगत् की सत्ता मान्य है, पर जगत् स्रष्टा या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नही किया जाता। मीमांसा के अनुसार जगत् अनादि और अनन्त है, जिसकी न तो सृष्टि होती है और न विनाश होता है। यह कर्म को अधिक महत्त्व देता है जो स्वतन्त्र शक्ति के रूप में संसार को परिचालित करता है। मीमांसा वस्तुवादी या यथार्थवादी दर्शन है। यह जगत् को सत्य मानते हुए परमाणुओं से ही उसकी उत्पत्ति स्वीकार करता है। यह आत्मवाद को स्वीकार करता है तथा जीवों की अनेकता मानता है। कर्म के ऊपर विशेष आग्रह और कर्म की प्रधानता के कारण

ईश्वर की सत्ता भी स्वीकार न करना इस दर्शन की अपनी विशेषता है। वैदिक धर्म के अनुशीलन के लिए मीमांसा एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में प्रतिष्ठित है।

आधारग्रन्थ—१ इण्डियन फिलॉसफी—डॉ० राधाकृष्णन्। २. भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. भारतीय-दर्शन—चटर्जी एवं दत्त (हिन्दी अनुवाद)। ४. मीमांसा-दर्शन—पं० मंडन मिश्र। ५ मीमांसासूत्र (हिन्दी अनुवाद)—श्रीराम शर्मा। ६. भारतीय-दर्शन की रूपरेखा—हिरियन्ना (हिन्दी अनुवाद)।

मुक्तक काव्य—संस्कृत में मुक्तक काव्य के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं—शृङ्गारी-मुक्तक, नीतिमुक्तक एवं स्तोत्रमुक्तक। [अन्तिम प्रकार के लिए दे०—स्तोत्रमुक्तक]। मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र रूप में चमत्कार उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। इसमें पद्यों में पौर्वापर्य सम्बन्ध नहीं होता। संस्कृत में शृङ्गारी मुक्तक या शृङ्गारकाव्य की सशक्त एवं विशाल परम्परा दिखाई पड़ती है। इसका प्रारम्भ पाणिनि एवं पतञ्जलि से भी पूर्व हुआ है। सुभाषित संग्रहों में पाणिनि के नाम से जो पद्य उपलब्ध होते हैं उनमें कई शृङ्गारप्रधान हैं।

तन्वङ्गीना स्तनौ दृष्ट्वा शिरः कम्पयते युवा।
तयोरन्तरसंलग्नां दृष्टिमुत्पाटयन्निव॥

शृङ्गार मुक्तकों का विधिवत् प्रारम्भ महाकवि कालिदास से ही माना जा सकता है। उनका 'ऋतुसंहार' ही इस श्रेणी के काव्यों में पहली रचना है। 'शृङ्गारतिलक', 'पुष्पबाणतिलक' तथा 'राक्षसकाव्य' तीन अन्य रचनायें भी शृङ्गारी काव्य के अन्तर्गत आती हैं और उनके रचयिता भी कालिदास कहे जाते हैं। पर, वे कालिदास नामधारी कोई अन्य कवि हैं। 'मेघदूत' के रचयिता नहीं। 'घटकर्पर' नामक कवि ने भी 'शृङ्गारतिलक' की रचना की थी जिसमें २२ पद्य हैं। इसमें यमक की कलाबाजी प्रदर्शित की गयी है, अतः इसका भावपक्ष दब गया है। शृङ्गारी मुक्तक लिखनेवालों में भर्तृहरि का नाम गौरवपूर्ण है। उन्होंने 'शृङ्गारशतक' में स्त्रियों के बाह्य एवं आभ्यन्तर सौन्दर्य एवं भंगिमाओं का अत्यन्त मोहक चित्र खींचा है।

'अमरुकशतक' नामक ग्रन्थ के रचयिता महाकवि अमरुक इस श्रेणी के मूर्धन्य कवि हैं। शृंगाररस के विविध पद्यों का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित कर उन्होंने अकृत्रिम एवं प्रभावोत्पादक रंग भरने का प्रयास किया है। ग्यारहवीं शताब्दी में विल्हण नामक काश्मीरी कवि ने 'चौरपंचाशिका' की रचना की जिसमें उन्होंने अपनी प्रणय-कथा कही है। संस्कृत शृङ्गार मुक्तक काव्य में दो सशक्त व्यक्तित्व गोवर्धनाचार्य एवं जयदेव का है। गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' में ७०० आर्याएँ लिखी हैं। जयदेव के 'गीतगोविन्द' में सानुप्रासिक सौन्दर्य, कलितकोमलकान्त पदावली एवं संगीतात्मकता तीनों का सम्मिश्रण है। 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर अनेक काव्यों की रचना हुई जिनमें हरिशंकर एवं प्रभाकर दोनों ही 'गीतराघव' नामक पुस्तकें (एक ही नाम की) लिखीं। श्रीहर्याचार्यकृत 'जानकीगीता', हरिनाथकृत 'रामविलास' आदि ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं। परवर्ती कवियों ने नायिकाओं के नखशिख-वर्णन को अपना विषय बनाया। १८ वीं शताब्दी के विश्वेश्वर ने 'रोमावलीशतक' की रचना की।

शृङ्गारीमुक्तक लिखने वाले कवियों में पण्डितराज जगन्नाथ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'भामिनीविलास' में उच्चकोटि के शृङ्गारपरक पद्य प्रस्तुत किये हैं। नीतिपरक मुक्तक काव्य लिखने वालों में चाणक्य (चाणक्यनीति), भर्तृहरि (नीतिशतक) तथा भल्लट (भल्लटशतक) के नाम प्रसिद्ध हैं।

मुकुलभट्ट कृत अभिधावृत्तिमातृका—अभिधावृत्तिमातृका काव्यशास्त्र का लघु किन्तु प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें अभिधा को ही एकमात्र शक्ति मान कर उसमें लक्षणा एवं व्यंजना का अन्तर्भाव किया गया है। मुकुलभट्ट का समय नवम शताब्दी है। अपने ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने अपने को कल्लटभट्ट का पुत्र कहा है—भट्टकल्लटपुत्रेण मुकुलेन निरूपिता। 'राजतरङ्गिणी' में भट्टकल्लट अवन्तीवर्मा के समकालीन कहे गए हैं—अनुग्रहाय लोकानां भट्टाः श्रीकल्लटादयः। अव न्तवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन् ॥ ५।५६। अवन्तिवर्मा का समय ८५५ से ८८४ ई० पर्यन्त है। उद्भटकृत 'काव्यालंकारसारसंग्रह' के टीकाकार प्रतीहारेन्दुराज ने अपने को मुकुलभट्ट का शिष्य कहा है तथा इन्हें मीमांसाशास्त्र, साहित्यशास्त्र, व्याकरण, एवं तर्क का प्रकाण्ड पण्डित माना है। 'अभिधावृत्तिमातृका' में केवल १५ कारिकायें हैं जिन पर लेखक ने स्वयं वृत्ति लिखी है। मुकुलभट्ट व्यंजना विरोधी आचार्य हैं। इन्होंने अभिधा के दस प्रकारों की कल्पना कर उसमें लक्षणा के छह भेदों का समावेश किया है। अभिधा के जात्यादि चार प्रकार के अर्थबोधक चार भेद किये गए हैं और लक्षणा के छह भेदों का अभिधा में ही गतार्थ कर उसके दस भेद माने गए हैं। व्यंजना शक्ति को इन्होंने स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार न कर उसके सभी भेदों का अन्तर्भाव लक्षणा में ही किया है। इस प्रकार इनके अनुसार एकमात्र अभिधा को ही शब्दशक्ति स्वीकार किया गया है—इत्येतदभिधावृत्तं दशधात्र विवेचितम् ॥ १३ ॥ आचार्य मम्मट ने 'काव्य-प्रकाश' के शब्दशक्ति प्रकरण में 'अभिधावृत्तिमातृका' के विचार का अधिक उपयोग किया है। आ० मम्मट ने मुकुलभट्ट के ग्रन्थ के आधार पर 'शब्दव्यापारविचार' नामक ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था।

आधारग्रन्थ—क—संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। ख—काव्यप्रकाश—हिन्दी भाष्य आचार्य विश्वेश्वर।

मुंजाल—ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य। इनका समय ८५४ शक् संवत् या ९३२ ई० है। इन्होंने 'लघुमानस' नामक सुप्रसिद्ध ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें आठ प्रकरण हैं। इसमें वर्णित विषय के अनुसार प्रत्येक अध्याय का नामकरण किया गया है—मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, तिथ्यधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार तथा शृङ्गोन्नत्यधिकार। ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में इनका महत्त्व दो कारणों से है। इन्होंने सर्वप्रथम ताराओं का निरीक्षण कर नवीन तथ्य प्रस्तुत करने की विधि का आविष्कार किया है। इनकी द्वितीय देन चन्द्रमा-सम्बन्धी है। 'इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने नहीं लिखा था कि चन्द्रमा में मन्दफल संस्कार के सिवा और कोई संस्कार भी करना चाहिए। परन्तु इन्होंने यह स्पष्ट कहा है।' भारतीय ज्योतिष का इतिहास पृ० १८७। म० म०

पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी अपने ग्रन्थ 'गणकतरंगिणी' में इस तथ्य को स्वीकार किया है। दे० गणकतरंगिणी पृ० २। इन्होंने बोधगम्य एवं हृदयग्राह्यशैली में अपने ग्रंथ की रचना की है। इन्हें मंजुल भी कहा जाता है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष—श्रीशंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद)। २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। ३. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद।

लघुमानस—मूल तथा परमेश्वर कृत संस्कृत टीका के साथ १९४४ ई० में प्रकाशित, सं० बी० डी० आप्टे। अंगरेजी अनुवाद एन० के० मजूमदार १९५१, कलकत्ता।

मुण्डकोपनिषद्—यह उपनिषद् 'अथर्ववेद' की शौनक शाखा की है। इसमें तीन मुण्डक या अध्याय हैं। इसकी रचना पद्य में हुई है। इसके प्रत्येक मुण्डक में दो-दो खण्ड हैं तथा ब्रह्मा द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया गया है। प्रथम भाग मे ब्रह्म तथा वेदों की व्याख्या, दूसरे मे ब्रह्म का स्वभाव एवं विश्व से उसका सम्बन्ध वर्णित है। तृतीय अध्याय मे ब्रह्मज्ञान के साधनों का निरूपण है। इसमे मनुष्यों को जानने योग्य दो विद्याओं का उल्लेख है—परा और अपरा। जिसके द्वारा अक्षरब्रह्म का ज्ञान हो वह विद्या परा एवं चारो वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि (छह वेदांग) अपरा विद्या हैं। अक्षरब्रह्म से ही विश्व की सृष्टि होती है। जिस प्रकार मकडी जाला को बनाती और निगल जाती है, जिस प्रकार जीवित मनुष्य के लोम और केश उत्पन्न होते है उसी प्रकार अक्षरब्रह्म से इस विश्व की सृष्टि होती है (१।१।७)। 'मुण्डकोपनिषद्' मे जीव और ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन दो पक्षियो के रूपक द्वारा किया गया है। एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर सख्यभाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष का आश्रय ग्रहण कर निवास करते हैं। उनमे से एक (जीव) उस वृक्ष के फल का स्वाद लेकर उसका उपयोग करता है और दूसरा भोग न करता हुआ उसे केवल देखता है। यहाँ जीव को शरीर के कर्म-फल का उपभोग करते हुए चित्रित किया गया है और ब्रह्म साक्षी रूप से उसे देखते हुए वर्णित है।

मुद्राराक्षस—यह संस्कृत का प्रसिद्ध राजनैतिक तथा ऐतिहासक नाटक है। जिसके रचयिता हैं महाकवि विशाखदत्त (दे० विशाखदत्त)। इस नाटक मे कुल सात अङ्क हैं तथा इसका प्रतिपाद्य है चाणक्य द्वारा नन्द सम्राट् के विश्वस्त एवं भक्त अमात्य राक्षस को परास्त कर चन्द्रगुप्त का विश्वासभाजन बनाना। इसके कथानक का मूलाधार है नन्दवंश का विनाश कर मौर्य-साम्राज्य की स्थापना करना तथा चाणक्य के विरोधियों को नष्ट कर चन्द्रगुप्त के मार्ग को प्रशस्त करना। नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा चन्द्रग्रहण का कथन किया गया है और पर्दे के पीछे से चाणक्य की गर्जना सुनाई पड़ती है कि उसके रहते कौन चन्द्रगुप्त को पराजित कर सकेगा। प्रथम अंक में चाणक्य मञ्च पर उपस्थित होता है एवं उसके कथन से कथानक की पूर्वपीठिका का आभास होता है तथा भावी कार्यक्रम की भी रूपरेखा

स्पष्ट होती है। चाणक्य के स्वगत-कथन से ज्ञात होता है कि उसने अपनी कूटनीति से नन्दवंश को समूल नष्ट कर चन्द्रगुप्त को सिंहासनाधिष्ठित किया है, पर चन्द्रगुप्त का शासन तब तक कण्टकाकीर्ण बना रहेगा, जब तक कि राक्षस को वश में न किया जाय। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया गया है, उनका भी वह वर्णन करता है। उसने स्वयं पर्वतक का नाश करा कर यह समाचार प्रसारित करा दिया कि राक्षस के षड्यन्त्र से ही पर्वतेश्वर की हत्या हुई है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए विषकन्या को भेजा था, किन्तु चाणक्य की चतुरता से उस (विषकन्या) से पर्वतेश्वर की ही मृत्यु हुई। वह अपने भावी कार्य का वर्णन करते हुए कहता है कि उसने अपने अनेक विश्वासपात्र पात्रों को, छद्मवेश में, अपने सहयोगियों तथा विरोधियों के कार्यों पर दृष्टि रखते हुए उनके रहस्य को जानने के लिए नियुक्त किया है। एतदर्थं उसने क्षपणक एवं भागुरायण तथा अन्य व्यक्तियों को इसलिए नियुक्त किया है कि वे मलयकेतु एवं राक्षस का विश्वासभाजन बन कर उनके विनाश में सहायक हो सकें। यद्यपि चाणक्य का स्वगत-कथन अत्यन्त विस्तृत है, तथापि कथावस्तु के बीज को उपस्थित करने एवं उसकी कूटनीति के उद्घाटन में इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है और नाटकीय पृष्ठाधार को उपस्थित करने के कारण सामाजिकों के लिए अरुचिकर प्रतीत नहीं होता। चाणक्य की स्वगत उक्ति के समाप्त होते ही एक दूत का प्रवेश होता है और वह उसे सूचित करता है कि कायस्थ शकटदास, क्षपणक जीवसिद्धि तथा श्रेष्ठी चन्दनदास ये तीनों ही राक्षस के परम हितकारी हैं। चाणक्य की उक्ति से ज्ञात होता है कि इन तीनों में से जीवसिद्धि तो उसका गुप्तचर है अतः इसे अन्य दो व्यक्तियों की चिन्ता नहीं है। दूत यह भी कहता है कि श्रेष्ठी चन्दनदास राक्षस का परम मित्र है और राक्षस अपना सारा परिवार उसके यहाँ रखकर नगर के बाहर चला गया है। दूत ने श्रेष्ठी चन्दनदास के घर में प्राप्त राक्षस की नामांकित मुद्रा चाणक्य को दी। चाणक्य राक्षस को वश में लाने के लिए नन्द के लेखाध्यक्ष शकटदास से एक कूटलेख लिखवाकर उस पर राक्षस की नामांकित मुद्रा लगवा देता है। चाणक्य शकटदास को फाँसी देने की घोषणा करता है, क्योंकि उसने राक्षस का पक्ष लिया है और सिद्धार्थक को शकटदास की रक्षा करने एवं राक्षस का विश्वासपात्र बनने की गुप्त योजना बनाता है। चाणक्य चन्दनदास को बुलाकर राक्षस के परिवार को सौंपने के लिए कहता है, पर चन्दनदास उसकी बात नहीं मानता, इस पर क्रुद्ध होकर चाणक्य उसको सपरिवार कारागार में डाल देने का आदेश देता है।

द्वितीय अङ्क में राक्षस की प्रतियोजनाओं का उपस्थापन किया गया है। यद्यपि राक्षस की कूटनीति असफल हो जाती है, फिर भी इससे उसकी राजनीतिक विज्ञता का प्रमाण प्राप्त होता है। राक्षस का विराधगुप्त नामक गुप्तचर सँपेरा के वेश में रङ्गमञ्च पर प्रकट होता है। वह राक्षस के पास जाकर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का वृत्तान्त कहता है। विराधगुप्त के कथन से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के विनाश की जो योजनाएँ बनी थीं, उन्हें चाणक्य ने अन्यथा कर दिया है और चन्द्रगुप्त के

वध की कौन कहे, षड्यन्त्रकारियों का ही नाश हो गया। किस प्रकार शकटदास, चन्दनदास एवं जीवसिद्धि के ऊपर आपत्तियों का पहाड़ लाद दिया है, इसकी चर्चा भी दूत करता है। इसी बीच सिद्धार्थक शकटदास के साथ प्रवेश करता है और शकटदास को सुरक्षित पाकर राक्षस उल्लसित हो जाता है। अपने मित्र को बचाने के लिए वह शकटदास को पारितोषिक प्रदान करता है। (अपने आभूषण देता है)। सिद्धार्थक राक्षस की मुद्रा भी देता है। दोनो चले जाते है और विराधगुप्त उसे सूचना देता है कि सम्प्रति चाणक्य-चन्द्रगुप्त मे विरोध चल रहा है। राक्षस भेद-नीति का आश्रय लेते हुए अपने एक वैतालिक को यह शिक्षा देकर नियुक्त करता है कि जब-जब चन्द्रगुप्त की आज्ञा की चाणक्य अवहेलना करे, तब वह चन्द्रगुप्त की प्रशस्ति का गान कर उसे उत्तेजित करे।

तृतीय अङ्क मे चाणक्य की कूटनीति का योग्यतम रूप प्रदर्शित किया गया है। इस अङ्क के प्रारम्भ मे कंचुकी के कथन से ज्ञात होता है कि राजा के कौमुदी महोत्सव मनाने की आज्ञा का चाणक्य ने निषेध कर दिया है। चन्द्रगुप्त को जब इसका पता चलता है तो वह चाणक्य को बुलाता है और उसका तिरस्कार करता है। वह चाणक्य पर धृष्टता एवं कृतघ्नता का आक्षेप करता है और चाणक्य कपट-कलह का स्वांग रच कर उसके मन्त्री पद को त्याग कर, क्रुद्ध होकर चला जाता है। प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त सभी किसी को ज्ञात नही होता कि यह चाणक्य की चाल मात्र है।

चतुर्थ अंक मे चाणक्य की पूर्वनियोजित योजनाएँ फलवती होती है। इस अंक मे मलयकेतु का कपटी मित्र भागुरायण मलयकेतु के मन मे यह विश्वास जमाना चाहता है कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य के साथ है, चन्द्रगुप्त से नही। चाणक्य के चन्द्रगुप्त के साथ से हट जाने पर बहुत सम्भव है, कि राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मिल जाय। इसी प्रकार की बाते करते हुए दोनों राक्षस के निकट जाते है। इसी समय करभक नामक व्यक्ति पाटलिपुत्र से आकर राक्षस को चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के मतभेद की सूचना देता है, जिससे हर्षित होकर राक्षस कहता है 'सखे शकटदास, हस्ततलगतो मे चन्द्रगुप्तो भविष्यति'। इसका अभिप्राय भागुरायण मलयकेतु को यह समझाता है कि अब राक्षस का अभीष्ट सिद्ध हो गया है, और वह चन्द्रगुप्त का मन्त्री बन जायगा। मलयकेतु के मन मे भी राक्षस के प्रति विरोध का भाव घर कर जाता है। तदनन्तर राक्षस तथा मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने की योजना बनाते है और एतदर्थ जीवसिद्धि क्षपणक से राक्षस प्रस्थान का मुहूर्त पूछता है।

पञ्चम अङ्क की घटनाएँ (कथानक के) चरमोत्कर्ष पर पहुच जाती हैं। राक्षस का कपटमित्र, सिद्धार्थक मंच पर प्रवेश करता है। सिद्धार्थक कहता है कि वह चाणक्य द्वारा शकटदास से लिखाये गये कूटलेख को लेकर पाटलिपुत्र जाने को प्रस्तुत है। क्षपणक उसे भागुरायण से मुद्रा प्राप्त करने की राय देता है, पर वह उसे नही मानता। तत्पश्चात् क्षपणक भागुरायण के पास मुद्रा लेने के लिए जाता है

और उससे कहता है कि राक्षस के कहने पर उसने ही विषकन्या के द्वारा पर्वतेश्वर को मरवाया है। इस समय वह दूसरा नीच कर्म भी कराना चाहता है जिसमे वह अत्यधिक भयभीत है। क्षपणक के वार्तालाप को सुनकर मलयकेतु के मन मे राक्षस के प्रति आशङ्काएँ उत्पन्न होने लगती है और वह राक्षस से विरोध करने लग जाता है। अभी तक मलयकेतु यही समझता था कि उसके पिता को चाणक्य ने मरवाया है, पर क्षपणक की बातो ('छुप कर श्रवण करने से) से उसे विश्वास हो गया कि राक्षस के ही द्वारा उसके पिता का वध कराया गया है। भागुरायण बडी कठिनता से उसे समझाने का प्रयास करता है, कि सम्भव है कि राक्षस का कार्य न्यायोचित हो, और चाहे जो भी हो, प्रतिशोध लेने मे शीघ्रता नही करनी चाहिए। इसी समय बिना मुद्रा (पारपत्र) के भागने की चेष्टा मे सिद्धार्थक पकड लिया जाता है और उससे कूटलेख छीन लिया जाता है। जब उससे इस रहस्यपूर्ण लेख के संबन्ध मे पूछा जाता है तो वह पीटे जाने के भय से बताता है कि इसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त को देने के लिए भेजा है। पीटे जाते समय राक्षस की नामांकित मुद्रा की आभूषणों की पेटी भी गिर जाती है तथा लेख मे अंकित मौखिक सन्देश उससे पूछा जाता है। वह मलयकेतु के मन की बात कहता है, जिसके अनुसार चाणक्य को हटा कर राक्षस को मन्त्री बनाने की बात है। मलयकेतु राक्षस के समक्ष सभी प्रमाण प्रस्तुत कर देता है तथा राक्षस के समीप भागुरायण के परामर्श से शकटदास के अन्य लेख से उसका मलान करता है। इस प्रकार की समानता देख कर राक्षस भी किंकर्तव्य-विमूढ हो जाता है। राक्षस पर्वतेश्वर का आभूषण पहने हुए दिखाई पडता है, पर उन्हे उसने आभूषण विक्रेताओ से क्रय किया था। राक्षस और चन्द्रगुप्त की कूटमंत्रणा प्रमाणित हो जाती है और मलयकेतु राक्षस को मन्त्रिपद से निष्कासित कर देता है। वह अन्य पाँच राजाओ को भी मार डालने का आदेश देता है। चाणक्य के कौशल की सफलता चरम सीमा पर पहुँच जाती है और मलयकेतु तथा राक्षस दोनो मे फूट हो जाती है।

षष्ठ अंक के प्रवेशक से विदित होता है कि पांच राजाओं के मारे जाने से अन्य नरेशो ने भी मलयकेतु का साथ छोड दिया है। इसी बीच भागुरायण आदि के द्वारा मलयकेतु बन्दी बना लिया जाता है और चाणक्य उसकी सेना पर भी अधिकार कर लेता है। अमात्य राक्षस मलयकेतु के सैन्य शिविर से हट कर कहीं पाटलिपुत्र मे ही छिपे हुए है, जहां चाणक्य का गुप्तचर उनके पीछे लगा हुआ है। चाणक्य सिद्धार्थक एवं सुसिद्धार्थक को आदेश देता है कि वे श्रेष्ठी चन्दनदास को बधभूमि मे लाकर मार डाले। अमात्य राक्षस अपनी स्थिति पर खिन्न है, तथा अपने मित्र चन्दनदास को नही बचा सकने के कारण चिन्तित है। अमात्य राक्षस पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में चिन्तित दिखाई पडते है, उसी समय एक व्यक्ति, जो चाणक्य का गुप्तचर है, गले मे रस्सी बांध कर आत्महत्या करना चाहता है। राक्षस के पूछने पर वह बताता है कि उसका मित्र जिष्णुदास अपने मित्र चन्दनदास की मृत्यु का समाचार सुनने के पूर्व ही अग्नि मे प्रवेश करने के लिये चला गया है, अतः वह मित्र के मरने के पूर्व ही आत्म-

हत्या करना चाहता है। यह सुनकर अमात्य राक्षस अपने मित्र चन्दनदास की रक्षा करने के लिए चल पड़ते हैं।

सप्तम अंक में चाणक्य की कूटनीति सफलता के सोपान पर पहुंच जाती है, और उसे अभीष्ट की सिद्धि होती है। चन्दनदास सपरिवार वध्यभूमि की ओर ले जाया जाता है और उसे चाणक्य के दो गुप्तचर, जो चाण्डाल बने हुए है, ले जाते हैं। चन्दनदास को शूली पर चढ़ाने को ले जाया जाता है और उसकी पत्नी और बच्चे विलाप करने लगते है। राक्षस इस दृश्य को देखकर दुःखित होकर अपने को प्रकट करता है और चाण्डालों को भगाकर चन्दनदास को बचा लेता है। चाणक्य वहाँ उपस्थित होता है और राक्षस के समक्ष अपना सारा कूटनीतिक रहस्य खोल देता है, जिससे राक्षस के समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करने का आग्रह करता है, पर राक्षस इसे स्वीकार नहीं करता। इस पर चाणक्य कहता है कि इसी शर्त पर चन्दनदास के प्राण की रक्षा हो सकती है, जब कि आप मन्त्रि-पद को ग्रहण करें। राक्षस विवश होकर अमात्य-पद को ग्रहण करता है और मलयकेतु को उसके पिता का राज्य लौटा दिया जाता है। चन्दनदास नगरसेठ बना दिया जाता है और सभी बन्दी कारामुक्त कर दिये जाते है। चाणक्य की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है और वह अपनी शिखा बाँधता है तथा भरतवाक्य के बाद नाटक की समाप्ति होती है।

नाट्यकला-विवेचन—'मुद्राराक्षस' विशाखदत्त की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी वस्तुयोजना एवं उसके संगठन मे प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों की अवहेलना करते हुए स्वच्छन्दवृत्ति का परिचय दिया गया है। विशुद्ध राजनीतिक नाटक होने के कारण इसमे माधुर्य तथा सौन्दर्य का अभाव है, और करुण तथा शृङ्गार रस नहीं दिखाई पड़ते। आद्यान्त इस नाटक का वातावरण गम्भीर बना रहता है। इसमें न तो किसी स्त्री पात्र का महत्त्वपूर्ण योग है और न विदूषक को ही स्थान दिया गया है। एकमात्र स्त्री-पात्र चन्दनदास की पत्नी है, किन्तु कथा के विकास मे इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है। संस्कृत में एकमात्र यही नाटक है जिसमे नाटककार ने रस-परिपाक की अपेक्षा घटना-वैचित्र्य पर बल दिया है। यह घटना-प्रधान नाटक है। इसमें नाटककार की दृष्टि अभिनय पर अधिक रही है और उसने सर्वत्र इसके अभिनेय गुण की रक्षा की है। 'चाणक्य की राजनीति इतनी विकासशीला है कि समस्त घटनाएँ एक दूसरी से शृङ्खलाबद्ध होती हुई एक निश्चित तारतम्य के साथ उसम समावेशित हो जाती हैं। कथानक मे जटिलता होते हुए भी गठन की चारुता और सम्बन्ध-निर्वाह की अपूर्व कुशलता लक्षित होती है।' संस्कृत नाटक समीक्षा पृ० १५७। कथावस्तु के विचार से 'मुद्राराक्षस' संस्कृत के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक मौलिक है। इसमें घटनाओं का संघटन इस प्रकार किया गया है कि प्रेक्षक की उत्सुकता कभी नष्ट नहीं होती। नाटक मे वीररस का प्राधान्य है, पर कहीं भी युद्ध के दृश्य नहीं हैं। वस्तुतः यहाँ शस्त्रों का द्वन्द्व न होकर, दो कूटनीतिज्ञों की बुद्धि का संघर्ष दिखाया गया है। प्रेक्षक की दृष्टि सदा चाणक्य द्वारा फैलाये गए नीति-जाल मे उलझती रहती है। इसके

कथानक में गत्यात्मकता, क्रमबद्धता, प्रवाहमयता, गठन की सुव्यवस्था, घटना-गुम्फन की चारुता तथा नाटकीय औचित्य का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। अंकों के विभाजन मे भी विशाखदत्त ने नवीनता प्रदर्शित की है। अन्य नाटककारों ने अंकों मे ही नाटक का विभाजन किया है, जबकि 'मुद्राराक्षस' में अकों के बीच दृश्यों का भी नियोजन किया गया है। उदाहरण के लिए, द्वितीय एवं तृतीय अंकों मे कई दृश्यों का विधान है। द्वितीय अंक मे दो दृश्य हैं—प्रथम जीर्णविष सँपेरा का मार्ग एवं द्वितीय राक्षस के गृह का। तृतीय अंक में भी तीन दृश्य है—दो सुगांगप्रासाद के एवं तृतीय चाणक्य की कुटिया का। इस नाटक मे भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए 'पताकास्थानक' का विधान है। इसमें अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ विभिन्न स्थानों पर घटित होती हैं, पर वे निरर्थक न होकर मूलकथा से अनुस्यूत दिखाई पड़ती हैं। 'मुद्राराक्षस' मे नाटककार का उद्देश्य है चन्द्रगुप्त के शासन एवं शक्ति को स्थायी बनाना और यह तभी संभव है, जबकि उसका प्रसिद्ध प्रतिद्वन्द्वी राक्षस चन्द्रगुप्त का परम मित्र बन जाय। नाटककार ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए घटनाओं का विकास किया है, और समस्त घटनाएँ त्वरित गति से इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होती हुई प्रदर्शित की गयी है। 'मुद्राराक्षस' में कथानक से सम्बद्ध घटनाओं का बाहुल्य है, पर नाटककार ने अपने कौशल के द्वारा विभिन्न साधनों का प्रयोग कर उनकी सूचना दी है। जैसे, प्रथम अंक के प्रारम्भ में चाणक्य के स्वगत-कथन मे अनेक कथाओं की सूचना प्राप्त होती है, जिससे दर्शक शेष कथा को सुगमता से समझ लेता है। अनेक अनावश्यक घटनाओं को सूचना दूत के संदेशों, पात्रों के स्वगत-कथनों एवं पात्रों की उक्तियों द्वारा देकर नाटककार ने अपनी कृति को अधिक आकर्षक तथा सुन्दर बनाया है।

संकलन-त्रय के विचार से 'मुद्राराक्षस' एक सफल नाट्यकृति है। इसमे ऐसी कोई भी घटना नही है, जिसमे एक दिन से अधिक समय लग सके। अल्प समय में अधिकाधिक घटनाओं को दर्शाया गया है। 'मुद्राराक्षस' का समस्त कथानक एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय का रखा गया है। इसमें मचीय आवश्यकता को दृष्टि में रखकर विभिन्न स्थानों के दृश्य नहीं प्रस्तुत किये गए हैं। घटनाओं के मुख्य रूप से तीन ही स्थल दिखाये गए है—पाटलिपुत्र नगर, मलयकेतु की राजधानी, सैन्यशिविर एवं अन्य निकटवर्त्ती स्थान। ये सारी दृश्य-योजनाएँ नाटक के कार्य व्यापार के ही अनुकूल हैं। विभिन्न प्रासंगिक क्रियाओं द्वारा एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के कारण इसमे प्रभान्विति का तत्त्व दर्शाया गया है।

यह वीररसप्रधान नाटक है और इसी की योजना में घटनाएँ गुम्फित की गयी हैं। प्रथम अक के प्रारम्भ मे चाणक्य द्वारा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने की अभिलाषा ही इसके कथानक का 'बीज' है। राक्षस की मुद्रा प्राप्त होना तथा शकटदास की ओर से लिखित पत्र को मुद्रांकित करना एवं मलयकेतु का छला जाना आदि घटनायें 'बिन्दु' है। इसी 'बिन्दु' के आधार पर इसका नामकरण 'मुद्राराक्षस' किया गया है। विराधगुप्त का राक्षस को उसके समस्त कार्यों की विफलता बताना

'पताका' है तथा चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के पारस्परिक मिथ्या मतभेद का सन्देश राक्षस को देना 'प्रकरी' है। अन्त मे राक्षस का चन्द्रगुप्त का अमात्य-पद ग्रहण करना 'कार्य' है। नाटककार ने कार्यावस्थाओं के नियोजन में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। नाटकीय कथावस्तु के विकास मे कार्यावस्थाएँ पाँच दशाओ को द्योतित करती है। प्रथम अंक मे चाणक्य के मन में चन्द्रगुप्त के राज्य को निर्विघ्न चलाने एवं उसमें स्थायित्व लाने का भाव ही 'प्रारम्भ' है। चाणक्य का अपने दूत द्वारा राक्षस की नामांकित मुद्रा पाना तथा कूटपत्र लिखकर भद्रभट आदि को विभिन्न कार्यों मे नियुक्त करना 'यत्न' है। चतुर्थ एव पंचम अंक मे राक्षस एव मलयकेतु मे मतभेद उत्पन्न होना तथा राक्षस का मलयकेतु के अमात्य-पद से निष्कासित किया जाना 'प्राप्त्याशा' है। इस स्थिति मे फल-प्राप्ति की सारी बाधाओं का निराकरण हो जाता है। षष्ठ अंक मे राक्षस का चन्दनदास को बचाने के लिए वध-भूमि की ओर जाना 'नियताप्ति' है, क्योकि अब यहाँ राक्षस का चाणक्य के समक्ष आत्म-समर्पण कर देना निश्चित हो जाता है। सप्तम अंक मे राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व ग्रहण करना 'फलागम' है। उपर्युक्त पंच अवस्था के अतिरिक्त 'मुद्राराक्षस' मे पंचसन्धियो का भी पूर्ण निर्वाह किया गया है। इसमे कथानक के अनुरूप ही चरित्रों की योजना की गयी है। इसके प्रमुख पात्र चाणक्य और राक्षस दोनो ही राजनैतिक दाव-घातो एवं कूटनीतिक चाल से सम्पन्न दिखाये गये हैं। मुद्राराक्षस के चरित्र प्रभावोत्पादक एवं प्राणवन्त है। इस नाटक मे प्रत्येक चरित्र का स्वतंत्र व्यक्तित्व पर कही वह नायक से प्रभावित होता है तो नायक भी उससे प्रभावित दिखलाया गया है। 'मुद्राराक्षस का चरित-चित्रण आदर्श और यथार्थ की सीमाओ का परस्पर सम्मेलन है। मानव-जीवन का लोक मे जो स्वरूप है वही मुद्राराक्षस के नाट्य-जगत् में अंकित और उन्मीलित है। नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए भी नाटककार विशाखदत्त ने ऐसे चरित की उद्भावना की है जो साधारण होते हुए भी विशिष्ट है, देशकाल से परिच्छिन्न होते हुए भी व्यापक है, नाटकीय होते हुए भी वास्तविक है और यथार्थ होते हुए भी आदर्श है।' मुद्राराक्षस समालोचना–भूमिका पृ० २, डॉ० सत्यव्रत सिंह।

इस नाटक का नामकरण 'मुद्राराक्षस' सार्थक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— मुद्रयागृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, मुद्राराक्षसम्। इस नाटक मे 'मुद्रा' (मुहर) के द्वारा राक्षस के निग्रह की घटना को आधार बनाकर इसका नामकरण किया गया है। इसका नामकरण वर्ण्यवस्तु के आधार पर किया गया है। राक्षस की नामांकित मुद्रा पर ही चाणक्य की समस्त कूटनीति केन्द्रित हुई है, जिससे राक्षस के सारे साधन व्यर्थ सिद्ध हुए।

नायकत्व—'मुद्राराक्षस' के नायकत्व का प्रश्न विवादास्पद है। नाट्यशास्त्रीय विधि के अनुसार इसका नायक चन्द्रगुप्त ज्ञात होता है, क्योकि उसे ही फल की प्राप्ति होती है। अर्थात् निष्कंटक राज्य एवं राक्षस ऐसे अमात्य को प्राप्त करने का वही अधिकारी होता है; पर कतिपय विद्वान्, कुछ कारणों से, चाणक्य को ही इसका नायक स्वीकार करते हैं। इस मत के पोषक विद्वान् विशाखदत्त को परम्परागत रूढ़ियों का

उल्लंघन करने वाला भी कह देते हैं। 'वास्तव में समस्त संस्कृत नाट्य-साहित्य में केवल विशाखदत्त एक ऐसा नाटककार है, जिसने परम्परागत रूढ़ियों का सम्मान नहीं किया। उसने समस्त सैद्धान्तिक परम्परागत रूढ़ियों का उल्लंघन किया है। वह चरित-नायक की एक अभिनव कोटि की प्रतिष्ठा करके अपनी मौलिकता का परिचय देता है।' संस्कृत के महाकवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय पृ० ३७४। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुसार नाटक का नायक उच्चकुलोद्भव, प्रतापी, गुणवान्, धीरोदात्त चरित वाला कोई अलौकिक एवं निरभिमानी व्यक्ति होना चाहिए। प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥ साहित्य-दर्पण ६।९

इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त तो इस नाटक का नायक हो सकता है, पर नाटककार ने वस्तुतः चाणक्य को ही इसका नायक बनाया है। चाणक्य का ही इस नाटक पर पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है और इसकी सभी घटनाओं का सूत्र-सञ्चालन वही करता है। चाणक्य का चरित्र-चित्रण करते समय नाटककार का विशेष ध्यान रहा है, क्योंकि उसे चाणक्य को ही इसका नायक बनाना अभीष्ट है। अन्त तक इस नाटक में चाणक्य की ही योजनाएँ फलवती सिद्ध होती हैं। पर, चाणक्य को इसका नायक मानने में शास्त्रीय दृष्टि से बाधा उपस्थित हो जाती है, क्योंकि इसकी वास्तविक फलोपलब्धि चन्द्रगुप्त को ही होती है। नाटक के अन्त में चाणक्य राजनीति से ही नहीं, अपितु समग्र भौतिक कार्यों से पृथक् होते हुए दिखाई पड़ता है। नाटक की समग्र घटना का फलोपभोग चन्द्रगुप्त ही करता है, और चाणक्य उसके राज्य को स्थिर एवं उसके शत्रुओं को परास्त कर उसकी समृद्धि को सुदृढ़ कर देता है। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त ही इसका नायक सिद्ध होता है। चन्द्रगुप्त के नायकत्व के विरुद्ध अनेक प्रकार के तर्क दिये गये है। नाटकार ने जान-बूझ कर चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व को उभरने नहीं दिया है और वह चाणक्य के इङ्गित पर ही चला करता है। चाणक्य के कृत्रिम क्रोध को देखकर भी वह काँप उठता है, अतः वह इसका नायक नहीं हो सकता। संस्कृत नाटकों की परिपाटी के अनुसार भरत-वाक्य का पाठ नायक द्वारा ही किया जाता है, किन्तु मुद्राराक्षस के भरतवाक्य का उच्चारण राक्षस करता है; क्योंकि उसे ही मन्त्रित्व की प्राप्ति होती है। पर वह नायक नहीं हो सकता, क्योंकि चाणक्य के समक्ष वह पराजित दिखलाया गया है। सभी दृष्टियों से विचार करने पर चाणक्य ही इसका नायक सिद्ध होता है; क्योंकि अन्ततः उसकी ही कूटनीति फलवती होती है और चन्द्रगुप्त के राज्य को निष्कण्टक कर उसे अपूर्व आह्लाद होता है। इस नाटक का समस्त कथानक चाणक्य में ही केन्द्रित दिखाया गया है। इसकी सारी घटनाएँ उसकी इच्छा के अनुरूप ही घटित होती हैं। इसका प्रमुख फल है, राक्षस को अपनी ओर मिलाकर चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना और इस कार्य के लिए चाणक्य सदा प्रयत्नशील रहता है। 'चाणक्य जैसे निःस्वार्थ राजनीतिज्ञ के लिए, अपने लिए ख्याति प्राप्त करना अभीष्ट न था; उसका लक्ष्य था, चन्द्रगुप्त के लिए निष्कण्टक राज्य की स्थापना और राक्षस को मन्त्री बनाना; और वह इस कार्य में सफल होता है। इस प्रकार

चाणक्य को नायक स्वीकार करने में आपत्ति के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।' संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ० १७०। अतः चाणक्य ही इसका नायक सिद्ध होता है। विशाखदत्त ने प्राचीन परम्पाटी की अवहेलना करते हुए भी ऐसे व्यक्ति को नायक बनाया है; जो सद्वंशोद्भव न होकर एक ऐसा ब्राह्मण है, जिसमें भारत का सम्राट बनाने की शक्ति है।

चाणक्य—'मुद्राराक्षस' का नायक चाणक्य अत्यन्त प्रभावशाली तथा शक्तिशाली है। वह एक सफल मन्त्री तथा महान् कूटनीतिज्ञ भी है। उसकी कूटनीतिज्ञता से चन्द्रगुप्त का साम्राज्य स्थायित्व प्राप्त करता है तथा राक्षस भी उसका वशवर्त्ती हो जाता है। नाटक की समस्त घटनाएँ उसी के इशारे पर चलती हैं। वह इस नाटक के घटना-चक्र का एकमात्र नियन्ता होते हुए भी निष्काम कर्म करता है। वह जो कुछ भी करता है, अपने लिए नहीं, अपितु चन्द्रगुप्त के लिए और मौर्य-साम्राज्य की दृढमूलता एवं सम्पन्नता के लिए। "अर्थशास्त्र और सम्भवतः प्राचीन ऐतिह्य और प्राचीन कथा-परम्परा का चाणक्य भले ही एक महत्त्वाकांक्षी, महाक्रोधी महानीतिज्ञ ब्राह्मण रहा हो किन्तु मुद्राराक्षस के चाणक्य में एक और विशेषता है और वह है उसकी 'निरीहता, निःस्वार्थमयता और लोकसंग्रह' की महाभावना।" मुद्राराक्षस—भूमिका, चौखम्बा समालोचना पृ० २१। वह निरीह, वीतराग एवं लोकोत्तर राजनीतिज्ञ है। चाणक्य मौर्य-साम्राज्य का मन्त्री होते हुए भी भौतिक सुख से दूर है। वह बुद्धि-कौशल की साक्षात् प्रतिमा है तथा किसी भी रहस्य को तत्क्षण समझ जाता है। चन्द्रगुप्त के प्रति उसके कृत्रिम कलह को देखकर, जब वैतालिक चन्द्रगुप्त को उत्तेजित करने के लिए उसकी स्तुति-पाठ करते हैं, तो वह भाँप जाता है कि यह राक्षस की चाल है। वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा जागरूक रहता है—आम्‌ज्ञातम्। राक्षसस्यायं प्रयोगः। आः दुरात्मन्! राक्षसहतक! दृश्यसे जागर्ति खलु कौटिल्यः—अंक ३। वह विषम स्थिति में भी विचलित नहीं होता और अपनी अपूर्व मेधा के द्वारा शत्रु के सारे षड्यन्त्र को व्यर्थ कर देता है। चन्द्रगुप्त के वध के लिए की गई राक्षस की सारी योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं। कवि ने उसके व्यक्तिगत जीवन का जो चित्र अंकित किया है उससे उसकी महानता सिद्ध होती है। वह असाधारण व्यक्ति है। उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः। शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥ ३।१५। 'एक ओर तो सूखे कण्डो को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, दूसरी ओर ब्रह्मचारियों के इकट्ठे किये कुशों की ढेर लगी है, चारों ओर छप्पर पर सुखाई जाने वाली समिधाओं से घर झुका जा रहा है और दीवारें गिरती-पड़ती किसी प्रकार खड़ी हैं।'

चाणक्य धैर्यवान् तथा अपने पौरुष पर अदम्य विश्वास रखने वाला है, जिससे सफलता तथा विजयश्री सदा उसके करतलगत रहती हैं। वह भाग्यवादी न होकर पौरुषवादी है—दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति। उसे अपनी बुद्धि पर दृढ़ विश्वास है। वह किसी की परवाह नहीं करता, सारे संकटों पर विजय प्राप्त करने के लिए

उसकी बुद्धि पर्याप्त है। एकाकेवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका। नन्दोन्मूलन-दृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥ १।२६। वह अपूर्व दूरदर्शी है क्योंकि राक्षस की बुद्धिमत्ता एवं पटुता को समझ कर ही उसे अपने बश में करना चाहता है। वह उसका संहार न कर उसे चन्द्रगुप्त के अमात्य-पद पर अधिष्ठित करने के लिए सारा खेल करता है। उसने अपने अनुचरों को कड़ा आदेश दे रखा है कि किसी भी स्थिति मे राक्षस के प्राण की रक्षा की जाय। उसे पूर्ण विश्वास है कि राक्षस की अपूर्व मेधा एवं चन्द्रगुप्त की शक्ति के समन्वय से ही मौर्य-साम्राज्य का दृढ़ीकरण सम्भव है। वह मानव मनोभावों का अपूर्व ज्ञाता है तथा राक्षस के महत्त्व को जितना समझता है उतना स्वयं राक्षस भी नहीं जानता। वह अहंवादी है तथा दूसरों की कभी भी चिन्ता नहीं करता। वह क्रोधी भी इस प्रकार का है कि उसके नाम से ही आतंक छा जाता है। चाणक्य सदा सावधान रहता है तथा छोटे शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करता—कायस्थ इति लध्वी मात्रा, तथापि न युक्तं प्राकृतमपि रिपु-मवज्ञातुम्। वह कार्यभारवाहकों को सदा पारितोषिक एवं प्रोत्साहन देता रहता है, और श्लेषयुक्त वचनों को भी पहचान लेता है। उसका प्रत्येक कार्य सप्रयोजन होता है। राक्षस उसे रत्नों का सागर कहता है। 'नहि प्रयोजनमनपेक्ष्य स्वप्नेऽपि चाणक्यश्चेष्टते। आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः। गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ॥ ७।७। उसके गुण की प्रशंसा शत्रु और मित्र दोनों ही करते हैं। भागुरायण उसकी नीति के सम्बन्ध में इस प्रकार कहता है—मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहु-रधिगमा भावगहना, मुहुः सम्पूर्णाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः। मुहुर्भ्रश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफलेत्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः ॥ ५।३। 'कभी तो चाणक्य की गूढ चालें प्रकाशित होने लगती हैं और कभी इतनी गहन हो जाती है कि बुद्धिगम्य नहीं हो पातीं, कभी अपने सम्पूर्ण रूप से दृष्टिगत होती हैं, कभी किसी कार्यविशेष से अत्यन्त धुँधली हो जाती है, कभी उनका बीज तक नष्ट होना प्रतीत होता है और कभी विविध फलों से युक्त हो जाती है। वास्तव में चाणक्य की नीति नियति की भांति विचित्र आकार प्रदर्शित करती है।' कुल मिलाकर चाणक्य महान् राजनीतिज्ञ, महामानव, कूटनीति-विशारद, दृढ़प्रतिज्ञ, एवं निस्पृह है। वह शत्रु के गुण को भी महत्त्व देता है। राक्षस के वशवर्त्ती हो जाने पर वह उसे 'महात्मा' कहता है और राक्षस के परिवार को जब चन्दनदास उसे नहीं सौंपता तो वह मन ही मन उसकी प्रशंसा करता है।

राक्षस—इस नाटक का दूसरा प्रसिद्ध पात्र राक्षस है जो चाणक्य के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित है। यह प्रतिनायक का कार्य करता है। कवि ने राक्षस ऐसे प्रतिनायक का चित्रण कर चाणक्य के महत्त्व को तो बढ़ाया ही है साथ ही इस नाटक को भी आकर्षक बना दिया है। राक्षस का व्यक्तित्व मानवीय रूप की विविध भाव-भङ्गियों का रङ्गस्थल है। वह आशाओं एवं निराशाओं के प्रतिघात में अडिग एवं अजेय बना रहता है। उसकी इसी स्वाभाविक महत्ता के कारण चाणक्य उसकी ओर आकृष्ट है, और येनकेन प्रकारेण उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना चाहता

है। वह चाणक्य के समक्ष पराभूत होकर भी अपनी महानता की छाप प्रेक्षकों के ऊपर छोड़ जाता है। चाणक्य के समान वह भी महान् राजनीतिज्ञ एवं कूटनीति-विशारद है, तथा जो कुछ भी करता है वह व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, अपितु स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर ही। नन्द के शासनकाल में उसकी कितनी सत्ता थी; तथा उसमें राज्य-संचालन की कितनी शक्ति रही होगी, इसका पता उसकी मुद्रा से ही चलता है। चाणक्य अपनी सारी चाल को उसकी मुद्रा पर ही केन्द्रित कर देता है। राक्षस ने चन्द्रगुप्त के संहार के लिए जो योजना बनायी थी वह अत्यन्त सुदृढ़ एवं उसके बुद्धिकौशल की परिचायक थी, पर उसकी असिद्धि मे राक्षस का उतना दोष नहीं था जितना कि उसके व्यक्तियों की असावधानी एवं आतुरता का था। राक्षस की पराजय आकस्मिक एवं अप्रत्याशित थी। चाणक्य के हाथ में राक्षस की मुद्रा का पड़ जाना एक अनहोनी घटना है; इससे उसका महत्त्व बढ़ता ही है, घटता नहीं।

वस्तुतः उसकी पराजय परिस्थितिजन्य थी। परिस्थिति की विपरीतता तथा अपनी योजनाओं की व्यर्थता के कारण राक्षस भाग्यवादी बन जाता है। विराधगुप्त के मुख से अपने दो गुप्तचरों के मारे जाने का समाचार प्राप्त कर वह भाग्य को दोषी ठहराता है—'नैताबुभौ हतौ, दैवेन वयमेव हताः।' नन्द वंश के विनाश में वह भाग्य-चक्र का ही हाथ स्वीकार करता है—'विधेर्विलसितमिदं, कुतः? भृत्यत्वे परिभव-धामनि सति स्नेहात् प्रभूणां सता पुत्रेभ्यः कृतवेदिना कृतधियां येषामभिन्ना वयम्। ते लोकस्य परीक्षकाः क्षितिभृतः पापेन येन क्षताः तस्येदं विपुलं विधेर्विलसितं पुंसां प्रयत्न-च्छिदः॥ ५।२०। 'यह तो उस भाग्य का फेर है जो मनुष्य के पुरुषार्थ का शत्रु है! अरे! यदि यह न होता तो वे न्याय-परायण राजराजेश्वर क्योंकर नष्ट हो जाते जिनके लिए जिन प्रभुत्वशालियों के लिए, जिन परोपकार-परायणों के लिए और जिन सत्सद्वि-वेक-कर्ताओं के लिए, सेवक होने से अपमानास्पद हो सकने पर भी, केवल उनके स्नेहवश हम पुत्रवत् ही निरन्तर रहते आये।' राक्षस की इस उक्ति में उसकी भाग्य-वादिता के अतिरिक्त नन्दवंश के प्रति उसकी भक्ति-भावना भी आभासित होती है। राक्षस भाग्यवादी होते हुए भी अकमर्ण्य नहीं है, और न अपने प्रयत्नों की असफलता के कारण अपने को कोसता है। निराशा की भावना से भर जाने पर भी उसके पुरुषार्थ में शिथिलता नहीं आती, और अन्त-अन्त तक वह कर्मठ एवं क्रियाशील बना रहता है। वह राजनीति-विशारद होते हुए भी कठोर नहीं है, और सहृदयता उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा गुण है। वह सहज ही अपने प्रति सहानुभूति प्रकट करने वालों को विश्वासभाजन समझ लेता है।

राक्षस का वास्तविक रूप उसकी मित्रता में प्रस्फुटित होता है। वह अपने मित्र चन्दनदास के प्राणों पर संकट देखकर उसकी रक्षा के लिए आत्म-समर्पण कर देता है। वह अपने मित्र के जीवन से बढ़ कर अपनी प्रतिष्ठा को नहीं समझता और चाणक्य का वशवर्ती हो जाता है। उसका आत्मसमर्पण उसकी असफलता का द्योतक न होकर उसकी सच्ची मैत्री का परिचायक है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में राक्षस असफल सिद्ध होते

हुए भी अपनी राजनीतिकपटुता, कठोर कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सच्ची मैत्री के कारण महान् सिद्ध होता है। इन सारे गुणों के अतिरिक्त उसे युद्धकला में निपुणता भी प्राप्त है। युद्ध-संचालन की क्षमता एवं सैन्य-संगठन की निपुणता उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है। एक योग्य मन्त्री के लिए जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सारे गुण राक्षस में भरे हुए हैं। इसके अन्य पात्रों में चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु हैं किन्तु चाणक्य एवं राक्षस के समक्ष इनका व्यक्तित्व उभर नहीं सका है।

आधारग्रन्थ—१. मुद्राराक्षस–हिन्दी अनुवाद सहित–डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा प्रकाशन। २ संस्कृत नाटक—डॉ० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ३. संस्कृत-कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ४. संस्कृत-नाटक-समीक्षा—डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'। ५. संस्कृत-काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ६. संस्कृत के कवि और काव्य—डॉ० रामजी उपाध्याय। ७ इन्ट्रोडक्शन टू मुद्राराक्षस—डॉ० देवस्थली। ८. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—गैरोला।

मुनीश्वर—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। प्रसिद्ध ज्योतिषी रंगनाथ इनके पिता थे [दे० रंगनाथ]। इनका स्थितिकाल १६०३ ई० है। इन्होंने 'सिद्धान्तसार्वभौम' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है तथा भास्कराचार्य विरचित 'सिद्धान्तशिरोमणि' एवं 'लीलावती' के ऊपर टीकायें लिखी है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

मुरारि—'अनर्घराघव' नामक नाटक के रचयिता [दे० अनर्घराघव]। उनके जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। 'अनर्घराघव' की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम वर्धमानभट्ट एवं माता का नाम तन्तुमती था। वे मौद्गल्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। सूक्तिग्रन्थों में इनकी प्रशंसा के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं— क. मुरारि-पदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा। भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु॥ ख. देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः। अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किं त्वस्य गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः॥ सदुक्तिकर्णामृत, ५।२७।५। सूक्तिग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि मुरारि माघ और भवभूति के परवर्त्ती थे। ये भवभूति की काव्यशैली से प्रभावित भी हैं, अतः उनका समय ७०० ई० के पश्चात् है। रत्नाकर ने अपने 'हरविजय' महाकाव्य के एक श्लोक में मुरारि की चर्चा की है, अतः वे रत्नाकर (८५० ई०) के पूर्ववर्त्ती हैं। मंख रचित 'श्रीकण्ठचरित' (११३५ ई०) में मुरारि राजशेखर के पूर्ववर्त्ती सिद्ध किये गए हैं। इन सभी प्रमाणों के आधार पर उनका समय ८०० ई० के आसपास निश्चित होता है।

मुरारि के सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि वे शुद्ध नाटक लेखक न होकर गीतिनाट्य के रचयिता थे। उन्हें नाट्यकला का पूर्ण ज्ञान नहीं था। उनके 'अनर्घराघव' में लम्बे-लम्बे अंक, कथावस्तु की विशृङ्खलता, नाटकीय-कौतूहल का अभाव, कृत्रिम शैली एवं संवादों का आधिक्य उन्हें सफल नाटककार की श्रेणी से गिरा देता

है। वे नाटककार के रूप मे नितान्त असफल तो हैं ही, कवि के रूप में भी पूर्ण सफल नहीं कहे जा सकते।

मुरारि-मिश्र--मीमांसा-दर्शन के अन्तर्गत [दे० मीमांसा-दर्शन] मुरारि या मिश्र-परम्परा के प्रतिष्ठापक आचार्य मुरारि मिश्र हैं। इनका समय १२ शतक माना है। इन्होने भवनाथ नामक प्रसिद्ध मीमांसक ['नयविवेक' नामक ग्रन्थ के रचयिता तथा गुरुमत के अनुयायी] के मत का खण्डन किया है, जिनका समय ११ वीं शताब्दी है। इस आधार पर ये भवनाथ के परवर्त्ती सिद्ध होते है। अत्यन्त खेद की बात है मुरारि मिश्र के सभी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते और जो प्राप्त भी हुए हैं, वे अधूरे हैं। कुछ वर्ष पूर्व डॉ० उमेश मिश्र को इनकी रचनाओं के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। ये हैं— त्रिपादनीतिनयम्' एवं 'एकादशाध्यायाधिकरणम्'। दोनों ही ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम मे जैमिनि के प्रारम्भिक चार सूत्रों की व्याख्या है एवं द्वितीय में जैमिनि के ग्यारहवें अध्याय मे विवेचित कुछ अंशो की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। प्रामाण्यवाद के सम्बन्ध मे इन्होने अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। इनके मत का उल्लेख अनेक दार्शनिकों ने किया है जिनमें प्रसिद्ध नव्यनैयायिक गंगेश उपाध्याय तथा उनके पुत्र वर्धमान उपाध्याय हैं।

आधारग्रन्थ-- १. भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २. मीमांसा-दर्शन— पं० मण्डन मिश्र।

मृच्छकटिक—महाकवि शूद्रक विरचित संस्कृत का सुप्रसिद्ध यथार्थवादी नाटक। शास्त्रीय दृष्टि से इसे प्रकरण कहा जाता है। इसमें चारुदत्त एवं वसन्तसेना नाम्नी वेश्या का प्रणय-प्रसंग दश अंको मे वर्णित है।

प्रथम अंक मे, प्रस्तावना के पश्चात्, चारुदत्त के निकट उसका मित्र मैत्रेय (विदूषक) अपने अन्य मित्र चूर्णवृद्ध द्वारा दिये गए जातीकुसुम से सुवासित उत्तरीय लेकर आता है। चारुदत्त उसका स्वागत करते हुए उत्तरीय ग्रहण करता है। वह मैत्रेय को रदनिका के साथ मातृ-देवियों को बलि चढ़ाने के लिए जाने को कहता है, पर वह प्रदोष काल में जाने मे भयभीत हो जाता है। चारुदत्त उसे ठहरने के लिए कहकर पूजादि कार्य मे संलग्न हो जाता है। इसी बीच वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार, विट और चेट पहुंच जाते हैं। शकार की उक्ति से ही वसन्तसेना को ज्ञात होता है कि पास मे ही चारुदत्त का घर है। वह अन्धकार मे टटोलते हुए चारुदत्त के घर मे घुस जाती है। चारुदत्त दीपक लेकर किवाड खोलता है और वसन्तसेना शीघ्रता से दीपक बुझाकर भीतर प्रवेश कर जाती है। इधर शकार रदनिका को ही वसन्तसेना समझ कर पकड लेता है, पर मैत्रेय डाँट कर रदनिका को छुड़ा लेता है। शकार विवाद करता हुआ मैत्रेय को धमकी देकर चला जाता जाता है। विदूषक एवं रदनिका के भीतर प्रवेश करने पर वसन्तसेना पहचान ली जाती है। वह अपने आभूषणों को चारुदत्त के यहां रख देती है और चारुदत्त एवं मैत्रेय उसे घर पहुँचा देते हैं। इस अंक में यह पता चल जाता है कि वसन्तसेना ने सर्वप्रथम जब चारुदत्त को कामदेवायतनोद्यान में देखा था, तभी से उस पर अनुरक्त हो गयी थी।

द्वितीय अंक में वसन्तसेना की अनुरागजन्य विरह-वेदना दिखलाई गयी है। इस अंक मे संवाहक नामक व्यक्ति का चित्रण किया गया है जो पहले पाटलिपुत्र का एक संभ्रान्त नागरिक था और समय के फेर से, दरिद्र होने के कारण, उज्जयिनी आकर संवाहक के रूप में चारुदत्त के यहाँ सेवक हो गया। चारुदत्त के निर्धन हो जाने से उसे बाध्य होकर हटना पडा और वह जुआडी बन गया। जूए मे दस मुहर हार जाने से उसके चुकाने मे असमर्थ होने के कारण वह छिपा फिरता है। उसका पीछा द्यूतकार और माथुर किया करते है। वह मन्दिर में छिप जाता है और वे दोनों एकान्त समझ कर वहीं जूआ खेलने लगते हैं। संवाहक भी वहाँ आकर सम्मिलित होता है, पर द्यूतकार द्वारा पकड़ लिया जाता है। वह भागकर वसन्तसेना के घर में छिप जाता है, और द्यूतकार तथा माथुर उसका पीछा करते हुए पहुँच जाते है। संवाहक को चारुदत्त का पुराना सेवक समझ कर वसन्तसेना उसे अपने यहाँ स्थान देती है और द्यूतकार को रुपए के बदले अपना हस्ताभरण भेज देती है, जिसे प्राप्त कर वे सन्तुष्ट होकर चले जाते हैं। संवाहक विरक्त होकर बौद्ध भिक्षु बन जाता है। तत्क्षण वसन्तसेना का चेट एक बिगड़ैल हाथी से एक भिक्षुक को बचाने के कारण चारुदत्त द्वारा प्रदत्त पुरस्कारस्वरूप एक प्रावारक लेकर प्रवेश करता है। वह चारुदत्त की उदारता की प्रशंसा करता है और वसन्तसेना उसके प्रावारक को लेकर प्रसन्न होती है।

तृतीय अंक मे शर्विलक, जो वसन्तसेना की दासी मदनिका का प्रेमी है, उसको दासता से मुक्ति दिलाने के लिए चारुदत्त के घर मे सेध मार कर वसन्तसेना के आभूषण को चुरा कर मदनिका को दे देता है। चारुदत्त जागने पर प्रसन्न एवं चिन्तित दिखाई पडता है। चोर के खाली हाथ न लौटने से उसे प्रसन्नता है, पर वसन्तसेना के न्यास को लौटाने की चिन्ता से वह दुःखित है। उसकी पत्नी धूता उसे अपनी रत्नावली लाकर देती है और मैत्रेय उसे लेकर वसन्तसेना को देने के लिए चला जाता है।

चतुर्थ अंक मे राजा के साले शकार की गाड़ी वसन्तसेना के पास उसे लेने के लिए आती है। वसन्तसेना की मां उसे जाने के लिए कहती है, पर वसन्तसेना नहीं जाती। शर्विलक वसन्तसेना के घर पर जाकर मदनिका को चोरी का वृत्तान्त सुनाता है। मदनिका वसन्तसेना के आभूषणों को देखकर उन्हें पहचान जाती है, और उन्हें अपनी स्वामिनी को लौटा देने के लिए कहती है। पहले तो शर्विलक उसके प्रस्ताव को अमान्य ठहरा देता है, किन्तु अन्ततः उसे मानने को तैयार हो जाता है। वसन्तसेना छिपकर दोनो प्रेमियो की बातचीत सुनती है और प्रसन्नतापूर्वक मदनिका को मुक्तकर शर्विलक के हवाले कर देती है। रास्ते मे शर्विलक को राजा पालक द्वारा गोपालदारक को कैद किये जाने की घोषणा सुनाई पडती है। वह रेमिल के साथ मदनिका को भेज कर गोपालदारक को छुडाने के लिए चल देता है। शर्विलक के चले जाने के बाद धूता की रत्नावली लेकर मैत्रेय आता है और कहता है कि चारुदत्त आपके गहनों को जूए में हार गया है, इसलिए उसने रत्नावली बदले मे भिजवाई है। वसन्तसेना मन-

ही-मन प्रसन्न होकर रत्नावली रख लेती है और सन्ध्या समय चारुदत्त से मिलने का सन्देश देकर मैत्रेय को लौटा देती है।

पंचम अंक में वसन्तसेना घोर वर्षा मे विट के साथ चारुदत्त के घर जाती है और रात वहीं बिताती है।

षष्ठ अंक में चारुदत्त पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में जाता है, और वसन्तसेना को भी वहीं मिलने को कहता है। रदनिका चारुदत्त के पुत्र को गोद मे लेकर आती है और उसको खेलने के लिए मिट्टी की गाडी देती है। लडका सोने की गाडी मांगता है और मिट्टी की गाडी नही लेता। वसन्तसेना उसे अपने आभूषण देकर सोने की गाडी बनवाने को कहती है। वसन्तसेना पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान मे जाने को तैयार होती है, किन्तु भूल कर वही खडी हुई शकार की गाडी मे बैठ जाती है। इसी बीच कारागार से भागकर गोपालदारक आता है और बचने के लिए वसन्तसेना की गाडी मे घुस जाता है। गाडीवान उसे ही वसन्तसेना समझकर गाडी हाक देता है। मार्ग मे चन्दनक एवं वीरक नामक राजपुरुष गाडी देखना चाहते हैं। चन्दनक गाडी मे आर्यक को देखता है और आर्यक उससे रक्षा की याचना करता है। चन्दनक उसे अभयदान दे देता है और वीरक को समझाकर गाडी नहीं देखने देता और चन्दनक के कहने पर गाडीवान गाडी बढ़ा देता है।

सातवें अंक में आर्यक उद्यान मे आकर चारुदत्त से मिलता है और चारुदत्त उसके बन्धनों को काटकर उसे अभयदान देता है। वह स्वयं भी घर चला जाता है और आर्यक को विदा कर देता है।

आठवें अंक मे शकार उद्यान मे आये हुए एक भिक्षुक को चीवर धोते देखकर उसे पीटता है, पर विट के कहने पर उसे छोड देता है। उसी समय स्थावर चेटक वसन्तसेना को लेकर पहुचता है। वसन्तसेना चारुदत्त के स्थान पर शकार को देखकर डर जाती है। शकार उससे प्रणय-निवेदन करता है, किन्तु वसन्तसेना उसके प्रस्ताव को स्वीकार नही करती। इस पर वह उसे गला दबोच कर मूर्च्छित कर देता है और उसे मरा हुआ जानकर वही पत्तो से ढँक देता है। वह न्यायालय मे जाकर चारुदत्त के ऊपर वसन्तसेना की हत्या का अपराध लगाकर मुकदमा कर देता है। इसी बीच बौद्ध भिक्षु संवाहक उद्यान मे आता है और वसन्तसेना को पहचान कर उसे संज्ञा में लाकर विहार मे ले जाता है।

नवें अंक में शकार न्यायालय मे जाकर चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या करने का अभियोग लगाता है। न्यायाधीश वसन्तसेना की मा को बुला कर पूछता है कि वसन्तसेना कहाँ गयी थी। वह बताती है कि वह चारुदत्त के पास गयी थी। तत्पश्चात् चारुदत्त आता है और वह वसन्तसेना के साथ अपनी मैत्री स्वीकार कर लेता है। मैत्रेय आकार शकार से लडने लगता है और लडते समय उसके पास रखा हुआ आभूषण गिर पडता है। शकार उसे उठाकर न्यायाधीश के समक्ष रख देता है और वसन्तसेना की मा स्वीकार कर लेती है, कि ये आभूषण उसकी पुत्री के है। चारुदत्त का अभियोग सिद्ध हो जाता है और राजाज्ञा के द्वारा उसे प्राणदण्ड मिलता है।

दशम अंक में चाण्डालों द्वारा चारुदत्त वधस्थान पर लाया जाता है। शकार के द्वारा बन्दी बनाया गया स्थावरक किसी तरह कूद कर कहता है कि वसन्तसेना की हत्या शकार ने की है। पर शकार उसे स्वर्ण का चोर बता कर उसकी बात को मिथ्या सिद्ध करता है। मैत्रेय के साथ चारुदत्त का पुत्र आता है और शकार उसे भी वध करने की राय प्रकट करता है। चाण्डाल चारुदत्त को वधस्थान पर ले जाकर खड्ग चलाता है, पर उसके हाथ से खड्ग गिर जाता है और चाण्डाल उसे शूली पर चढाना चाहता है। इसी बीच भिक्षु के साथ वसन्तसेना आ जाती है और उसको जीवित देखकर चाण्डाल चारुदत्त को छोड देते हैं। वे राजा को यह समाचार जाकर देते हैं। शकार भाग जाता है और राज्य मे क्रान्ति फैल जाती है। शर्विलक राजा पालक को मार देता है और आर्यक राजा बनाया जाता है। शकार को राजा की ओर से झूठे अभियोग के कारण प्राणदण्ड मिलता है, पर चारुदत्त के द्वारा उसे अभयदान मिलता है। उसी समय चन्दनक द्वारा यह सूचना प्राप्त होती है कि धूता पति के प्राण-दण्ड का समाचार सुनकर चिता मे जलना चाहती है। सभी लोग शीघ्रतापूर्वक जाकर उसे रोकते है और वसन्तसेना राजा के आदेश से चारुदत्त की वधू बना दी जाती है। चारुदत्त की इच्छा से भिक्षु को विहारों का अधिपति एवं दोनों चाण्डालों को चाण्डालो का अधिपति बनाया जाता है। चन्दनक पृथ्वीपालक का पद प्राप्त करता है और भरत-वाक्य के पश्चात् नाटक की समाप्ति हो जाती है।

नामकरण—'मृच्छकटिक' का नामकरण विचित्रता का द्योतक है। नाटक अथवा काव्य का नामकरण कवि, पात्र अथवा मुख्य घटना या वर्ण्यविषय के आधार पर किया जाता है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय तो वर्ण्यवृत्त के आधार पर इसकी अभिधा 'चारुदत्त' या 'दरिद्रचारुदत्त' होनी चाहिए थी। पर रचयिता ने किस आधार पर इसका यह नामकरण किया, इसका संकेत ६ ठे अंक में चारुदत्त के बालक की क्रीडा मे दिखाई पडता है। चारुदत्त का पुत्र रोहसेन अपने पडोसी के बच्चे को सोने की गाडी से खेलते हुए देखता है, और मिट्टी की गाडी से न खेल कर सोने की गाडी लेना चाहता है। चारुदत्त की चेटी रदनिका उसे बहलाती और कहती है कि जब तुम्हारे पिता जी पुनः समृद्ध हो जायेंगे तो तुम सोने की गाडी से खेलना। बालक जब इतने पर भी नही मानता है तो रदनिका उसे वसन्तसेना के घर ले जाती है। बालक को देखकर वसन्तसेना प्रसन्न हो गयी और उसने उसके रोने का कारण पूछा। वसन्तसेना ने कहा कि बेटा तुम सोने की ही गाडी से खेलना। वसन्तसेना की ममतामयी दृष्टि देखकर बालक ने पूछा कि रदनिके यह कौन है? इस पर वसन्तसेना ने कहा कि मैं तुम्हारे पिता के गुणो पर जीवित उन्ही की दासी हूँ। वह वसन्तसेना की यह बात न समझकर रदनिका की ओर उत्सुक होकर देखने लगा। इस पर रदनिका ने कहा कि ये तुम्हारी जननी है। पर बालक को उसकी बातो पर विश्वास नही हुआ और उसकी बातों में उसे संगति नही दिखाई पडी। उसकी मां के शरीर पर आभूषण नहीं थे, जब कि वसन्तसेना का शरीर गहनों से पूर्ण था। अतः वह रदनिका से कहता है कि तुम झूठ बोल रही हो, यह मेरी माँ नही है। यदि मेरी मां होती तो उसे इतने गहने

कैसे होते। बच्चे की बातें सुन कर वसन्तसेना का हृदय ममता से भर जाता है, और वह अपने सभी आभूषणों को उतार कर उसकी गाडी में भर देती है। वह बच्चे से कहती है कि अब तो मैं तेरी मां बन गयी न, ले इन गहनो से सोने की गाडी बनवा ले। (एषेदानीं ते जननी संवृत्ता ! तद् गृहाण तमलंकारम् । सौवर्णशकटिकां कारय !) ।

उपर्युक्त घटना ही इस नाटक के नामकरण का आधार है। पर, यहाँ प्रश्न उठता है कि इस घटना का नामकरण के साथ क्या सम्बन्ध है ? इस नाटक का 'मृच्छकटिक' नाम प्रतीकात्मक है तथा असन्तोष का प्रतीक है। 'मृच्छकटिक' के अधिकांश पात्र अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है और उनके असन्तोष की झलक इस नाटक में मिलती है। वसन्तसेना सुलभ शकार को प्यार न कर सर्वगुणसम्पन्न चारुदत्त को चाहती है, चारुदत्त भी धूता से असन्तुष्ट है और वह वसन्तसेना की ओर आकृष्ट होता है। बालक रोहसेन भी मिट्टी की गाडी से सन्तुष्ट नही है और वह सोने की गाडी चाहता है। कवि ने यह दिखाया है कि जो लोग अपनी परिस्थितियो से असन्तुष्ट होकर एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, वे जीवन मे अनेक कष्ट उठाते है। इस प्रकार इसके पात्रो का असन्तोष सर्वव्यापी है, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति को कष्ट उठाना पडता है। अतः इसका नाम सार्थक एवं मुख्य वृत्त का अंग है। इस अभिधा का दूसरा करण यह है कि रचयिता का ध्यान सुवर्ण की महिमा दिखाते हुए भी चारुदत्त की दरिद्रता एवं रोहसेन की मिट्टी की गाडी पर विशेषरूप से है। कवि ने वसन्तसेना की समृद्धि पर ध्यान न देकर उसके शील पर विचार किया है। इसी प्रकार चारुदत्त की दरिद्रता ही उसके शील का प्रतीक है जिसकी छाया रोहसेन की गाडी मे दिखाई पडती है। वस्तुतः कवि वसन्तसेना के वैभव को महत्त्व न देकर चारुदत्त की दरिद्रता की महत्ता स्वीकार करता है। अतः इसका नाम 'मृच्छकटिक' उपयुक्त सिद्ध होता है, क्योकि वह चारुदत्त की दरिद्रता का परिचायक है।

महाकवि शूद्रक ने भास रचित 'चारुदत्त' नामक नाटक की कथावस्तु को आधार बनाकर इसकी रचना की है, किन्तु दोनो के रचना-विधान एवं प्राकृत भाषा के प्रयोग मे पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। इसमे कवि ने अपनी प्रतिभा के प्रकाश मे कतिपय नवीनताएँ प्रदर्शित की है। भास ने 'चारुदत्त' मे केवल वसन्तसेना एवं चारुदत्त की प्रणय-कथा का ही सन्निवेश किया था, किन्तु शूद्रक ने राजनैतिक कथानक को गुंफित कर नवीनता प्रदर्शित की है। इसमे प्रेमियो का भाग्य नगर के राजनैतिक भाग्य के साथ सम्बद्ध हो गया है। द्वितीय अंक मे जुआडियो के दृश्य का नियोजन कवि की मौलिक कल्पना है, जिससे नाटक जीवन के अधिक निकट आ गया है और इसमे अपूर्व आकर्षण का समावेश हुआ है। कवि ने शकार के चरित्र के माध्यम से हास्य की योजना की है तथा अन्य पात्रो के माध्यम से भी हास्य की सृष्टि की है। अतः 'मृच्छकटिक' का हास्य शूद्रक की निजी कल्पना के रूप मे प्रतिष्ठित है। इसमे कवि ने अनेक नवीन पात्रो की कल्पना कर अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। 'मृच्छकटिक' मे सात प्रकार के प्राकृतो का प्रयोग हुआ है, और इस दृष्टि से यह संस्कृत की अपूर्व नाट्य-कृति है। टीकाकार पृथ्वीधर के अनुसार प्रयुक्त प्राकृतों के नाम है—शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या,

मागधी, शकारी, चाण्डाली तथा ढक्की। टीकाकार ने विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत का भी निर्देश किया है। १—शौरसेनी—सूत्रधार, नटी, बसन्तसेना, मदनिका, धूता, कर्णपूरक, रदनिका, शोधनक, श्रेष्ठी। २—अवन्तिका—वीरक, चन्दनक। ३—प्राच्या—विदूषक। ४—मागधी—संवाहक, स्थावरक, कुम्भीलक, वर्धमानक, रोहसेन, भिक्षु। ५—शकारी—शकार। ६—चाण्डाली—चाण्डाल। ७—ढक्की—सभिक (द्यूतकार), माथुर।

वस्तुविधान—'मृच्छकटिक' का वस्तु-विधान संस्कृत नाट्य-साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह संस्कृत का प्रथम यथार्थवादी नाटक है जिसे दैवी कल्पनाओं एवं आभिजात्य वातावरण से मुक्त कर कवि यथार्थ के कठोर धरातल पर अधिष्ठित करता है। शास्त्रीय दृष्टि से जहाँ यह एक ओर प्रकरण का रूप उपस्थित करता है, वहाँ पाश्चात्य ढङ्ग की कौमदी की भाँति भी मनोरंजकता से पूर्ण लगता है। प्रकरण में कविकल्पित कथावस्तु का विधान किया जाता है, और इसका नायक कोई इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति न होकर धीर प्रशान्त लक्षण से युक्त कोई ब्राह्मण, वणिक् अथवा अमात्य होता है। इसकी नायिका कुलजा अथवा वेश्या दोनों में से कोई एक या दोनों ही होती है। इसका कथानक मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से सम्बद्ध होता है, अतः उसमें मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताएँ प्रदर्शित की जाती हैं। इसके पात्रों में कितव (धूर्त), द्यूतकार, सभिक, विट, चेट आदि भी होते है। इस दृष्टि से 'मृच्छकटिक' प्रकरण सिद्ध होता है, नाटक नहीं। प्रकरण मे दस अंक होते हैं, जो इस प्रकरण मे भी है। पाश्चात्य कथा-विकास की दृष्टि से इसकी पाँच अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं—प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, निगति एवं अन्त। प्रथम अंक मे वसन्तसेना का चारुदत्त के घर अपने आभूषणो को रखने से कथा का प्रारम्भ होता है। इसके बाद कथानक का आगे विकास होता है। वसन्तसेना के आभूषणो का चुराया जाना तथा उसके बदले में धूता का रत्नमाला देना एव वसन्तसेना का अभिसार विकासावस्था के सूचक हैं। शकट परिवर्तन और वसन्तसेना की शकार द्वारा हत्या चरमसीमा के अन्तर्गत आएगी। अन्तिम अंक मे चारुदत्त का प्राणदण्ड निगति और वसन्तसेना तथा चारुदत्त के विवाह की राजाज्ञा अन्त है। भारतीय कथा-विधान के विचार से 'मृच्छकटिक' में अर्थ-प्रकृतियो, कार्यावस्थाओ एवं सन्धियो का नियोजन अत्यधिक सफलतापूर्वक किया गया है। इसके प्रथम अंक मे वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार के इस कथन में नाटक का 'बीज' प्रदर्शित हुआ है—'भाव! भाव! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मां कामयते' (पृष्ठ ५२, चौखम्बा संस्करण)। द्वितीय अंक मे कर्णपूरक का वसन्तसेना को चारुदत्त का प्रावारक दिखाना एवं उसका (वसन्तसेना) प्रसन्न होना, बिन्दु है।

तृतीय अंक मे जुआड़ियो का प्रसंग मूलकथा का विच्छिन्न कर देता है और यह घटना प्रासंगिक कथा के रूप मे प्रकट होती है। यहीं से शर्विलक का चरित्र प्रारम्भ होता है और मूलकथा के अन्त तक चलता है। अतः शर्विलक की कथा 'पताका' एवं परिव्राजक भिक्षु का प्रसङ्ग 'प्रकरी' है। अन्त में चारुदत्त द्वारा वसन्तसेना को पत्नी के रूप में स्वीकार करना 'कार्य' है। कार्यावस्था का विधान इस प्रकार है—प्रथम

अंक में वसन्तसेना का चारुदत्त के गृह मे आना तथा चारुदत्त का उसकी ओर आकर्षण 'आरम्भावस्था' है। वसन्तसेना का चारुदत्त के गृह में अपने आभूषण रखकर जाने से लेकर पंचम अंक पर्यन्त तक की घटना 'यत्न' है। इस बीच दो प्रयत्न दिखाई पडते हैं—वसन्तसेना का आभूषण छोडकर जाना तथा धूता के आभूषण को वसन्तसेना के पास चारुदत्त द्वारा भिजवाया जाना। छठे अंक से लेकर दसवें अंक तक की घटनाएँ 'प्राप्त्याशा' के रूप मे उपस्थित होती हैं। इन घटनाओ मे फल-प्राप्ति की आशा अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में दोलायमान रहती है। बौद्ध भिक्षु के साथ वसन्तसेना का सहसा आगमन 'नियताप्ति' है और वसन्तसेना तथा चारुदत्त का विवाह 'फलागम'। पंचसन्धियो का विधान भी उपयुक्त है। प्रथम अंक के प्रारम्भ मे वसन्तसेना के इस कथन मे 'चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः' (स्वगत कथन) 'मुखसन्धि' दिखाई पडती है। 'प्रतिमुखसन्धि' प्रथम अंक मे ही वसन्तसेना के इस कथन से प्रारम्भ होती है - 'आर्यः यद्येवमहमार्यस्य अनुग्राह्या' और पंचम अंक के अन्त तक दिखाई पडती है। छठे अंक के प्रारम्भ से लेकर दसवें अंक तक, चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूट जाने एवं वसन्तसेना के इस कथन मे—'आर्याः ! एषा अहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते'—'गर्भसन्धि' है। अन्तिम अंक मे चाण्डाल की उक्ति—त्वरित का पुनरेवा' एवं शकार के कथन में—'आश्चर्यः प्रत्युज्जीवितोऽस्मि' तक 'अवमर्श सन्धि' चलती है। इसी अंक मे 'नेपथ्ये कलकलः' से लेकर अन्त तक 'निर्वहण सन्धि' दिखाई पडती है। इस प्रकार 'मृच्छकटिक' का वस्तु-विधान अत्यन्त सुन्दर तथा शास्त्रीय स्वरूप का निर्वाह करने वाला है। इसमें कथावस्तु के तीन सूत्र दिखाई पडते हैं जो परस्पर गुम्फित है—१—वसन्तसेना एवं चारुदत्त का प्रणय-प्रसंग, २—शर्विलक तथा मदनिका की प्रेम-कथा, ३—राजनैतिक क्रान्ति।

जिसके अनुसार अत्याचारी राजा पालक का विनाश एवं गोपाल-पुत्र आर्यक का राज्याभिषेक होता है। इनमे वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणय-कथा आधिकारिक कथा है और शेष दोनो कथायें प्रासंगिक है। इनमें नाटक की आधिकारिक या मुख्य कथा की अपनी विशिष्टताएँ है। इसकी पहली विशेषता यह है कि यह प्रेम नायक की ओर से प्रारम्भ न होकर नायिका की ओर से होता है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रेम को प्राप्त करने के लिए अधिक क्रियाशील एवं सचेष्ट है, जब कि नायक निष्क्रिय दिखाई पडता है। इसकी दूसरी विशेषता यह कि मध्य मे आकर प्रेम पूर्णता को प्राप्त करता है तथा पुनः इसमे अप्रत्याशित रूप से नया मोड आता है और प्रेम मे बाधाएँ उपस्थित हो जाती है। किन्तु अन्त होते-होते नायिका का प्रेम पूर्ण हो जाता है। शर्विलक और मदनिका की प्रणय-कथा मुख्य कथा को गति देने वाली है, क्योकि शर्विलक ही राजनैतिक क्रान्ति का एक प्रधान अंग है। कथा को फल की ओर ले जाने मे उसका महत्वपूर्ण योग दिखाई पड़ता है। राजनैतिक क्रान्ति की घटना के सम्बन्ध मे कतिपय विद्वानो का मन्तव्य है कि यह स्वतन्त्र कथा है, और इसको पुस्तक से निकाल दिया जाय तो आधिकारिक कथा को किसी प्रकार की क्षति नही पहुचेगी। इसीलिए, संभवतः, भास ने अपने नाटक में इस कथा को स्थान नही दिया है। प्रो० राइडर का

विचार है कि यह रूपक अत्यन्त विस्तृत है तथा इसमें दो नाटकों की सामग्री है। उसके अनुसार राजनैतिक क्रान्ति की कथा के कारण अंक दो से पांच तक मुख्य कथा दब गयी है और प्रेक्षकों को पता नहीं चलता कि वे वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणय-कथा का अवलोकन कर रहे है। पर वस्तुतः यह बात नहीं है। इसकी प्रासंगिक कथा मुख्य घटना से पृथक् न होकर उसी में अनुस्यूत दिखलाई पड़ती है और क्रान्ति की घटना मुख्य कथा को फल की ओर अग्रसर करने में महत्त्वपूर्ण योग दिखाती है। इसके सभी मुख्य पात्र मुख्य घटना से सम्बद्ध है और वे फलागम मे सहायक होते हैं। आर्यक का राज्यारोहण चारुदत्त के अनुकूल पड़ता है और राजाज्ञा से ही वह वसन्तसेना को वधू के रूप में ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रासंगिक कथा मुख्य कथा पर शासन न कर उसके विकास में गति प्रदान करती है। कवि ने तीनो कथाओ को बड़ी कुशलता के साथ परस्पर संश्लिष्ट कर अपने प्रकरण को उत्तम बनाया है।

इन सारी विशिष्टताओं के बाद भी 'मृच्छकटिक' मे अभिनय-सम्बन्धी कतिपय दोष दिखलाई पड़ते है। चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के भवन एवं सात आँगन का वर्णन अधिक विस्तृत एवं दर्शकों के धैर्य की परीक्षा लेनेवाला है। पाँचवें अंक का वर्षा-वर्णन भी नाटकीय दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखता, और वह इतना विस्तृत है कि दर्शक ऊबने लगते है। काव्य की दृष्टि से अवश्य ही इस वर्णन का महत्त्व है पर रङ्गमंच के विचार मे यह ऊब पैदा करनेवाला है। किन्तु ये दोष बहुत अल्प है और 'मृच्छकटिक' का महत्त्व इनमे कम नहीं होता। पात्र एवं चरित्र-चित्रण—'मृच्छकटिक' में अनेक प्रकार के पात्रो का शील-निरूपण किया गया है। कवि ने समाज के ऐसे चरित्रो का भी चरित्रांकन किया है जो हेय एवं उपेक्षित है। चोर, द्यूतकार, चेट, विट आदि इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका उपस्थित करते है। इन पात्रो के व्यक्तित्व की निजी विशिष्टताएँ है तथा ऐसे पात्र अन्यान्य संस्कृत नाटको मे नहीं दिखाई पड़ते। इन पात्रों के अतिरिक्त धनी वेश्या, दरिद्र प्रेमी, राज-पदाधिकारी, न्यायाधीश, अत्याचारी राजा, विद्वान् तथा राजा का बिगड़ा हुआ साला का भी इसमे वर्णन किया गया है।

चारुदत्त—चारुदत्त इस नाटक का नायक और जन्मना ब्राह्मण है, किन्तु वह व्यवहार से व्यापारी है। प्रस्तावना में सूत्रधार ने इसे—'अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहः' कह कर इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है। दशम अंक में चारुदत्त ने स्वयं अपने को ब्राह्मण कहा है और दाय के रूप मे अपने पुत्र को यज्ञोपवीत देता है—'अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्'। उसके पूर्वज अत्यधिक सम्पत्तिवान् थे किन्तु वह समय के फेर मे दरिद्र हो गया है। उसकी दरिद्रता का एक बड़ा कारण उसकी दानशीलता भी है। इसके चरित्र के कतिपय ऐसे गुण हैं जिनके कारण यह उज्जयिनी के नागरिकों का श्रद्धा-भाजन बना हुआ है, वे हैं—दान, दया, उदारता तथा परोपकार आदि। इसकी प्रशंसा इसका प्रतिद्वन्द्वी शकार भी करता है—"दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी, आदर्शः शिक्षितानां सुचरित-निकषः शीलवेलासमुद्रः। सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो, ह्येकः श्लाघ्य स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥" "जो दरिद्र मनुष्यों की वांछित-पूर्ति के लिए कल्पतरु

है। अपने ही दयादि गुणों से विनम्र, साधुओं के परिपोषक, विनीतों के आदर्श, सच्चरित्रों की कसौटी, सदाचाररूपी मर्यादा के सागर, लोकोपकारी, किसी का भी अपमान न करने वाले, मानवों के गुणों के स्थान तथा सरल एवं उदार चित्त वाले—अनेकों गुणों से युक्त अकेले चारुदत्त का ही जीवन प्रशंसनीय है। और लोगों का जीवन तो व्यर्थ ही है।" चारुदत्त के इन्हीं गुणो के कारण वसन्तसेना उसकी ओर आकृष्ट होती है। जब मैत्रेय धूता का आभूषण लेकर उसके यहाँ पहुचाता है तो वह उसके गुणो की प्रशंसा करती हुई उसका समाचार पूछती है—"गुणप्रबालं विनयप्रशाखं, विस्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्। तं साधुवृक्षं स्वगुणैः फलाढ्यं सुहृद्विहङ्गाः सुखमाश्रयन्ति ॥" "उदारता आदि गुण जिसके पल्लव हैं, नम्रता ही विनम्र शाखाएँ है, विश्वास ही जड है, गौरव पुष्प है, परोपकार आदि अपने गुण ही से जो फलवान् हो रहा है उस चारुदत्तरूपी उत्तम वृक्ष पर मित्ररूपी पक्षी क्या अब भी सुखपूर्वक निवास करते हैं।" सवाहक चारुदत्त को प्रशंसा करते हुए कहता है कि इस पृथ्वी पर तो केवल आर्य चारुदत्त का ही जीवन है, अन्य तो व्यर्थ ही जीवित हैं।

समय के फेर से चारुदत्त दरिद्र हो गया है और उसे इसके लिए दुःख होता है। वह अपने घर की सफाई भी नहीं करा सकता तथा उसके द्वार पर लम्बे-लम्बे घास उग गए हैं। वह दरिद्रता के कारण न तो अतिथि-सत्कार कर सकता है और न दूसरों की सेवा ही करने मे समर्थ है। वह दारिद्रय से ऊब कर इस कष्टमय जीवन की अपेक्षा मृत्यु का वरण श्रेयष्कर मानता है। उसके मित्र तथा परिजन उसे छोडकर पृथक् हो गए हैं। उसे अपनी कीर्ति की चिन्ता सदा बनी रहती है। वह सत्यनिष्ठ है। शर्विलक द्वारा चुराए गए वसन्तसेना के गहनो को वह धोखा से छिपाना नही चाहता, बल्कि उसके बदले मे अपनी स्त्री की रत्नमाला भिजवा देता है। वह मैत्रेय द्वारा उसके लिए आभूषण भेजकर झूठी बात कहला देता है कि वह उसका आभूषण जूए मे हार गया है। किन्तु इससे उसकी सत्यनिष्ठता पर आँच नही आती; क्योंकि वह कभी-कभी असत्य भाषण करता भी है तो अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए या दूसरो के कल्याण के लिए।

वह अपने घर में चोर द्वारा सेंध लगाये जाने पर प्रसन्न होता है कि चोर खाली हाथ नही गया, क्योंकि उसे इस बात की चिन्ता होती कि इतने बड़े सार्थवाह के घर सेंध मारने पर भी चोर को कुछ नहीं मिलता और वह सब जगह जाकर चारुदत्त की दरिद्रता की चर्चा करता। वह इसीलिए दुःखित रहता है कि दरिद्रता के कारण ही परिजन उसका साथ छोड़ चुके है और अतिथि नहीं आते। "एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीय क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति। संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम् ॥" १।१२ दीनावस्था में भी वह अपने वंश की कीर्ति को सुरक्षित रखता है। वह मतवाले हाथी से भिक्षुक का प्राण बचाने के लिए कर्णपूरक को अपना प्रावारक पुरस्कार मे देता है। जब चेट के द्वारा उसे वसन्तसेना के आगमन की सूचना प्राप्त होती है तो वह उसे वस्त्र देता है किन्तु उसे पारितोषित न दे सकने के कारण दुःखित हो जाता है।

उसमें आत्म-सम्मान का भाव पूर्णरूप से भरा हुआ है। वह कलंकित होने से डरता है, किन्तु मृत्यु से नहीं डरता। 'न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः। विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥ १०।२७। वह धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति है तथा नित्य पूजन एवं समाधि मे निरत रहता है। विदूषक द्वारा देवपूजा में अश्रद्धा प्रकट करने पर वह उसे कहता है कि यह गृहस्थ का धर्म नहीं—'वयस्य! मा मैवम्। गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः।' इस प्रकरण का नायक होते हुए भी चारुदत्त का प्रत्यक्ष रूप से इसकी घटनाओं पर नियंत्रण नही है। वह प्रेम के भी क्षेत्र में निष्क्रिय-सा रहता है। वह गंभीर एवं चिन्तनशील प्रवृत्ति का व्यक्ति है और दरिद्रता ने ही उसे दरिद्रता का दार्शनिक बना दिया है। उसने निर्धनता के जिस दर्शन का निरूपण किया है, उससे इस तथ्य की पुष्टि होती है। "निर्धनता से लज्जा होती है, लज्जित मनुष्य तेजहीन हो जाता है, निस्तेज लोक से तिरस्कृत होता है, पुनः तिरस्कार के द्वारा विरक्त हो जाता है, वैराग्य होने पर शोक उत्पन्न होता है। शोकातुर होने से बुद्धि क्षीण हो जाती है, फिर बुद्धिहीन होने पर सर्वनाश की अवस्था आ जाती है—अहो! दरिद्रता सभी आपत्तियों की जड है।' 'सखे! निर्धनता ही मनुष्यों की चिन्ता का आश्रय है! शत्रुओ के अपमान का स्थान, दूसरा शत्रु, मित्रों का घृणापात्र तथा आत्मीयजनों के वैर का कारण है। दरिद्र की घर छोडकर बन में चले जाने की इच्छा होती है। यहाँ तक कि उसे स्त्री का भी अपमान सहना पडता है। और कहाँ तक कहूँ हृदयस्थित शोकाग्नि एक बार ही जला नहीं डालती किन्तु घुला-घुला कर मारती है।'

वह धर्म-परायण होने के कारण भाग्यवादी भी है। वह शकुनों में विश्वास करता है, क्योंकि ये मनुष्य के भाग्य को रहस्यमय ढंग से नियन्त्रित करते है। वह अपनी निर्धनता का मुख्य कारण भाग्य को मानता है—'भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः।' न्यायालय मे विदूषक की अनवधानता के कारण आभूषण के गिर जाने को भी वह भाग्य का ही खेल स्वीकार करता है—'अस्माकं भाग्यदोषात् पतितः पातयिष्यति।' प्रेमी के रूप मे उसका व्यक्तित्व नियन्त्रित है। वह प्रेम करता है किन्तु प्रेमिल भावनाओं के आवेश मे नही आता। वसन्तसेना से प्रेम करते हुए भी अपनी पत्नी धूता से उदासीन नहीं रहता। उसमें चारित्रिक दृढता भी पायी जाती है। अन्य स्त्री से अपने वस्त्र का स्पर्श होने से वह खेद प्रकट करता है—'अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा'। वसन्तसेना के प्रति उसका आकर्षण स्वाभाविक न होकर परिस्थितिजन्य है। वास्तविकता यह है वसन्तसेना ही उसकी ओर आकृष्ट है और इसीलिए चारुदत्त उसकी ओर आकृष्ट होता है। वसन्तसेना के प्रति उसका अन्ध-प्रेम नहीं दिखाई पडता, अपितु कर्तव्य-बुद्धि से परिचालित है। वह अपनी पत्नी की चारित्रिक उदारता से प्रभावित है, और इसके लिए उसे गर्व है। वह उसे विपत्ति की सहायिका मानता है और वसन्तसेना के आभूषण के बदले रत्नमाला प्राप्त कर हर्षित हो जाता है—'नाहं दरिद्रः यस्य मम विभवानुगता भार्या।' वसन्तसेना के रहते हुए भी उसके प्राणदण्ड की सूचना प्राप्त कर चितारोहण करनेवाली धूता को बचाने के लिए दौड़ पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि वसन्तसेना

का प्रेम उसके दाम्पत्य-जीवन की मधुरता को क्षीण नही करता। पुत्र के प्रति भी उसका स्नेह दिखाई पडता है और मृत्यु-दण्ड पाने पर पुत्र-दर्शन की ही अभिलाषा करता है।

चारुदत्त कलाप्रिय व्यक्ति है। वह रेभिल के संगीत की प्रशंसा करता है तथा सेध लगाने की कला को देख चोरी की चिन्ता छोडकर उसकी प्रशंसा करता है। इस प्रकार चारुदत्त दानी, उदार, गम्भीर, धार्मिक, सहृदय, प्रेमी, परोपकारी एवं शरणागत-वत्सल व्यक्ति के रूप मे उपस्थित होता है।

वसन्तसेना—वसन्तसेना 'मृच्छकटिक' प्रकरण की नायिका एवं उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या है। वह ऐसी वेश्या युवती के रूप मे चित्रित है जो अपने दृढ संकल्प एवं चारित्रिक शालीनता के कारण कुलवधू बन जाती है। प्रो० जागीरदार के अनुसार वह 'जीवन के आनन्द' का प्रतीक है। उसका प्रेम अदमनीय एवं उत्तरदायित्व की भावना से युक्त है। 'वह तथ्य ही कि वह गणिका से कुल-स्त्री बनने का अथक प्रयास करती रही है और प्राणो को संकट मे डाल कर भी वह पद प्राप्त कर लिया है, इस बात का प्रमाण है कि वसन्तसेना केवल-मात्र 'जोवन का आनन्द' नहीं है। वह, अपितु, 'आनन्दखोजी जीवन का संयम एवं साहस है।'''वसन्तसेना मे जीवनभोग की लालसा है, लेकिन वह वरणीय पात्र की पात्रता की भावना से अनुप्राणित है, मर्यादित है।' महाकवि शूद्रक पृ० २८६। उसने अपने चरित्र की दृढता, उदारता, त्याग एवं विशुद्ध प्रेम के कारण गणिकात्व के कालुष्य को प्रच्छालित कर भारतीय गृहिणी का पद प्राप्त कर लिया है। उसके पास अपार सम्पत्ति है पर वह दरिद्र चारुदत्त के प्रति आसक्त है। वह धन से प्रेम न कर गुण के प्रति आकृष्ट होती है। उसके अपार वैभव को देख कर विदूषक मैत्रेय आश्चर्यचकित हो जाता है, और उसकी अट्टालिकाओ को देखकर कह उठता है कि 'यह गणिका का गृह है या कुबेर का भवन है।' वैभवशालिनी वसन्तसेना का दरिद्र एवं गुणशाली चारुदत्त के प्रति आकृष्ट होना उसके हृदय के सच्चे अनुराग एवं पवित्रता का द्योतक है। वह राज के साले शकार के अपूर्व वैभव का त्याग कर चारुदत्त का वरण करती है और यहा तक कि अपनी माता द्वारा शकार के प्रति प्रेम के करने के अनुरोध का तिरस्कार करती है। वह उसके द्वारा प्रेषित दश सहस्र के मूल्य के स्वर्णाभूषणो को ग्रहण नही करती। वह माता को स्पष्ट शब्दो में कह देती है कि यदि वह उसे जीवित रहने देना चाहती है तो इस प्रकार का अनुरोध न करे। जीर्णोद्यान मे शकार द्वारा स्वयं प्रलोभन देने पर उसके आग्रह का तिरस्कार करती है तथा उसके हाथो मरना श्रेयस्कर समझ कर उसका प्रणय-निवेदन स्वीकार नही करती। चारुदत्त के प्रति उसका प्रेम इतना सच्चा है कि शकार द्वारा गला घोटे जाने पर उसी का स्मरण कर 'णमो अज्ज चारुदत्तस्स' कहती है। वह चारुदत्त के प्रति अपने आकर्षण को अपना गौरव मानती है और अपनी माँ से कहती है कि दरिद्र व्यक्ति के प्रति आसक्त गणिका संसार मे निन्दनीय नहीं मानी जाती। विट उसके प्रति अपना विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि यद्यपि वह वेश्या है किन्तु उसका प्रेमिल-व्यवहार वेश्याओ मे दिखाई नही पडता। उसके हृदय

मे सच्चा मातृवात्सल्य भरा हुआ है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के द्वारा यह कहने पर कि यह मेरी माता नही है, क्योकि यह तो आभूषणों से लदी हुई है, वह फूट पड़ती है और उसकी बातो पर मुग्ध होकर अपने आभूषण उसकी गाडी में भर देती है।

उसके चरित्र की अन्य विशेषताएँ हैं—कोमलता, विनम्रता, उदारता, स्निग्धता, विनोदप्रियता एवं बुद्धि की सतर्कता। मदनिका को दासीत्व से मुक्त कर वह शर्विलक को सौंपते हुए अपूर्व उदारता का परिचय देती है। वह अपने सारे आभूषण मदनिका को ही समर्पित कर अपनी वाग्चातुरी का भी परिचय देती है। वह बुद्धिमत्तापूर्ण असत्य भाषण करती है—"आर्य चारुदत्त ने मुझ से कहा कि—'जो कोई इस अलंकार को लौटावेगा उसके लिए मदनिका को समर्पित कर देना।' इसीलिए मदनिका आपको दी जा रही है"। शर्विलक को मदनिका को समर्पित करने मे वह मदनिका के लिए 'वन्दनीय' बन जाती है। चारुदत्त के प्रति अनुरक्त होते हुए भी उसे अपने गणिका होने का स्मरण होता है। वह कुलीन के घर में प्रवेश करने मे संकोच करती है तथा चारुदत्त के यह कहने पर कि अन्दर चलो वह मन ही मन कहती कि मैं आपके अन्तःपुर मे प्रवेश करने के लिए अभागिनी हूँ। इसमे पता चलता है कि वह मर्यादा का उल्लंघन करना नही जानती। राजमार्ग पर शकार उसका पीछा करता है और विट भी उसके साथ है। वह विट के अर्थगर्भित वचनों का अर्थ समझ कर चारुदत्त के घर पहुच जाती है। इसमे उसकी बुद्धिमत्ता का ज्ञान होता है। वह विदुषी है एवं यदा-कदा संस्कृत भाषण भी करती है। वह चित्र बनाने की कला मे भी निपुण है। चारुदत्त का चित्र बनाकर वह मदनिका को दिखाती है। उसमे एकमात्र वेश्या का गुण दिखाई पडता है और वह है प्रणय-क्षेत्र मे सक्रियता। सम्पूर्ण प्रणय-व्यापार मे चारुदत्त निष्क्रिय रहता है और वसन्तसेना की ओर से ही सारे प्रयास होते है। इस प्रकार शूद्रक ने वसन्तसेना का चित्रांकन कर उसमे स्त्रीत्व के उत्तम गुणो को दर्शाया है तथा गणिका होते हुए भी, सद्गुणों के कारण उसे कुलवधू के पावन पद पर अधिष्ठित कराया है।

शकार—वह चारुदत्त का प्रतिद्वन्द्वी तथा राष्ट्रियश्यालक है और इस प्रकरण मे *खलनायक के रूप मे उपस्थित किया गया है। वह अपने ढग का अद्भुत एव विरल* पात्र है जिसमे विदूषकत्व तथा खलनायकत्व का मिश्रण कराया गया है। उसकी हास्यास्पद एव मूर्खतापूर्ण उक्तियो से नाटक मे हास्य की सृष्टि करायी गयी है और अपनी बेवकूफी भरी बातो मे प्रेक्षकों को गुदगुदा देता है। वह दूषित प्रकृति का व्यक्ति है और प्रवचना, धृष्टता, नीचता, अज्ञता, असत्यता, हठधर्मिता, मूर्खता, कायरता, क्रूरता एवं विलासिता आदि परस्पर अनमिल तत्वो के मेल से उसके विचित्र व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। वह बोलने मे सदा 'स' के स्थान पर 'श' का प्रयोग करता है तथा पौराणिक घटनाओ एवं नामो को उलट कर अपनी मूर्खता प्रदर्शित करता है। वह राम से डरी हुई द्रौपदी की भाँति वसन्तसेना का पीछा कर रहा है तथा और वह उसे इस प्रकार हरण कर लेगा जैसे विश्वावसु की बहिन सुभद्रा को हनुमान् ने हर लिया था। वह मूर्ख एवं हास्यास्पद होते हुए भी धूर्त एवं दुष्ट है। वह वसन्तसेना को

आकृष्ट करने में असफल होकर उसकी हत्या कर देता है और उल्टे चारुदत्त पर हत्या का अभियोग लगाकर उसे प्राणदण्ड की राजाज्ञा करा देता है। राजा का साला होने के कारण राजपदाधिकारियों, यहाँ तक कि न्यायाधीश पर भी उसका प्रभाव है। उसके स्वभाव में स्थिरता किंचित् मात्र भी नहीं दिखाई देती और यह भी ज्ञात नहीं होगा कि वह कब क्या नहीं कर देगा। उसके इस अविवेकी तथा दुराग्रही स्वभाव के कारण उसके विट एवं चेट भी सदा उससे शंकित रहते हैं। वह विट को दीवार पर भी गाड़ी चढ़ा देने का मूर्खतापूर्ण आदेश देता है। वह गाड़ी में स्त्री को भी देखकर भयभीत हो जाता है और इसलिए दुःख प्रकट करता है कि एक स्त्री की हत्यारूपी वीरतापूर्ण कार्य को देखने के लिए उसकी माता विद्यमान नहीं है।

वह मूर्ख होते हुए भी धूर्त है और षड्यन्त्र में अपनी चतुरता प्रदर्शित करता है। वह चतुराई से विट को भगाकर वसन्तसेना की हत्या कर देता है और जब विट उसके इस क्रूर कर्म की भर्त्सना करता है तो वह उल्टे उस पर ही हत्या का झूठा आरोप लगाकर उसे भयभीत कर देता है। वह चेट को बाँध भी देता है और वह किसी प्रकार छूटकर उसके रहस्य का उद्घाटन करता है तो वह विट को आभूषण का प्रलोभन देकर न्यायाधीश के समक्ष उसे आभूषण चुरा लेने का अभियोग लगा देता है। इस प्रकार चारुदत्त के विपरीत अमानुषिक गुणों से समन्वित दिखाकर लेखक ने इसे खलनायक का रूप दिया है। इस प्रकरण के अन्य पात्रों में मैत्रेय विट, शर्विलक, रोहसेन, धूता आदि भी हैं, जिनका अपना निजी वैशिष्ट्य है। इस प्रकरण में कवि ने समाज के विविध वर्गों के व्यक्तियों का चरित्रांकन कर संस्कृत में सर्वथा नवीन शैली की कृति प्रस्तुत की है। अधिकांशतः निम्न श्रेणी के पात्रों का चरित्र वर्णित करने के कारण यह प्रकरण यथार्थवादी हो गया है। इसमें मुख्य पात्रों की भाँति गौण पात्रों की भी चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में समान रूप से ध्यान दिया गया है और सभी पात्रों का सफल रेखाचित्र उतारा गया है। इसके पात्रों की विशेषता यह है कि उनका निजी व्यक्तित्व है और वे 'टाइप' न होकर 'व्यक्ति' हैं। प्रो० राइडर के अनुसार इसके पात्र सार्वदेशिक हैं और वे संसार के किसी भी कोने में दिखाई पड़ते हैं। (अधिक विवरण के लिए दे० शूद्रक)।

रस—'मृच्छकटिक' एक प्रकरण है जिसमें गणिका वसन्तसेना के प्रेम का वर्णन करने के कारण शृङ्गार रस अंगी है। इसमें शृङ्गार रस के उभय पक्षों—संयोग एवं विप्रलम्भ—में से संयोग की ही प्रधानता है। शृङ्गार रस का स्थायीभाव रति वसन्तसेना के ही हृदय में अंकुरित होती है और चारुदत्त इसका आलम्बन होता है। उद्दीपन के रूप में प्रेम की अनेक घटनाओं का चित्रण है तथा पंचम अंक का प्रकृति वर्णन एवं वर्षा का सुन्दर चित्रण उद्दीपन के ही अन्तर्गत आता है। इसमें वसन्तसेना के विरह-वर्णन में वियोग का भी रूप प्रदर्शित किया गया है तथा हास्य एवं करुण रस की भी योजना की गयी है। शूद्रक के हास्य-वर्णन की अपनी विशेषता है जो संस्कृत साहित्य में विरल है। इसमें हास्य गंभीर, विचित्र तथा व्यंग्य के रूप में मिलता है। कवि ने हास्यास्पद चरित्र एवं हास्यास्पद परिस्थितियों के अतिरिक्त विचित्र वार्तालापों एवं

श्लेष वचनों से भी हास्य की सृष्टि की है। मैत्रेय (विदूषक) एवं शकार दो पात्रों के द्वारा हास्य उत्पन्न होता है। जुआडी संवाहक के चरित्र में भी हास्य का पुट दिया गया है। चारुदत्त की दरिद्रता के चित्रण मे करुण रस की व्यंजना हुई है। शकार द्वारा वसन्तसेना के गला घोंटने पर विट के विलाप में भी करुण रस की सृष्टि हुई है तथा धूता के चितारोहण एवं चारुदत्त के मृत्युदण्ड मिलने पर मैत्रेय तथा उसके पुत्र के रुदन मे करुण रस दिखाई पडता है।

आधारग्रन्थ—१ मृच्छकटिक-(हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा। २. महाकवि शूद्रक—डॉ० रमाशंकर तिवारी। ३. संस्कृत-काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ४. संस्कृत-नाटक-समीक्षा—डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'। ५ संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद) कीथ। ६. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर—डॉ० जागीरदार। ७. दी लिट्ल क्ले कार्ट—(भूमिका) ए० डब्ल्यू० राइडर। ८. शूद्रक—पं० चन्द्रबली पाण्डेय। ९ इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ मृच्छकटिक—श्री जी० वी० देवस्थली। १०. संस्कृत ड्रामा—श्री इन्दुशेखर। ११. प्रिफेस टु मृच्छकटिक—जी० के० भट्ट।

मेक्डोनेल—इनका पूरा नाम डॉ० आर्थर ऐंथनी मेक्डोनेल था और जन्म ११ मई १८५४ ई० मे मुजफ्फरपुर में हुआ था। इनके पिता अलेक्जण्डर मेक्डोनेल भारतीय सेना के एक उच्चपदस्थ अधिकारी थे। इनकी शिक्षा गोटिङ्गन (जर्मनी) में हुई थी। इन्होने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जर्मन, संस्कृत एवं चीनी भाषाओं का अध्ययन किया था। ये प्रसिद्ध वैयाकरण मोनियर विलियम्स, बेनफी (भाषाशास्त्री) रॉट एवं मैक्समूलर के शिष्य थे। इनका जन्म भारत मे हुआ था किन्तु इन्हे विदेशों में ही शिक्षा प्राप्त हुई थी। १९०७ ई० मे इन्होने छह-सात मास के लिए भारत की यात्रा की थी और इसी यात्राकाल में भारतीय हस्तलिखित पोथियों पर अनुसंधान भी किया था। एम० ए० करने के पश्चात् इन्होंने ऋग्वेद की कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी का पाठ शोधकर उस पर प्रबन्ध लिखा, जिसके ऊपर इन्हे लिपजिग विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। तत्पश्चात् इनकी नियुक्ति संस्कृत प्राध्यापक के रूप मे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई। इनके ग्रन्थो की नामावली—१. ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका का 'वेदार्थदीपिका' सहित सम्पादन, १८९६। २ वैदिक रीडर; १८९७। ३. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर; १९००। ४. टिप्पणी सहित बृहद्देवता का संपादन; १९०४। ५. वैदिक ग्रामर, १९१०। ६. वैदिक इण्डेक्स (कीथ के सहयोग से)।

मेघदूत—महाकवि कालिदास विरचित विश्व-विश्रुत गीतिकाव्य या खण्ड-काव्य जिसमें एक विरही यक्ष द्वारा अपनी प्रिया के पास बादल से संदेश प्रेषित किया गया है। वियोगविधुरा कान्ता के पास मेघ द्वारा प्रेम-संदेश भेजना कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है। पुस्तक पूर्व एवं उत्तर मेघ के रूप में दो भागों मे विभाजित हैं तथा श्लोको की संख्या (६३ + ५२) ११५ है। 'मेघदूत' में गीतिकाव्य एवं खण्डकाव्य दोनों के ही तत्त्व हैं; अतः विद्वानों ने इसे गीति-प्रधान खण्डकाव्य कहा है। इसमें विरही यक्ष की व्यक्तिगत सुख-दुःख की भावनाओं का प्राधान्य है एवं खण्डकाव्य के लिए अपेक्षित कथावस्तु की क्षीणता दिखाई पडती है। इसे 'व्यक्ति-

प्रधान' काव्य कहा जा सकता है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—धनाधीश कुबेर ने अपने एक यक्ष सेवक को, कर्त्तव्य-च्युत होने के कारण, एक वर्ष के लिए अलकापुरी से निर्वासित कर दिया है। वह कुबेर द्वारा अभिशप्त होकर, अपनी नवपरिणीता वधू से दूर हो जाता है और भारत के दक्षिणांचल में अवस्थित रामगिरि पर्वत के पास जाकर अपना निवास बनाता है। वह स्थान जनकतनया के स्नान से पावन तथा रुद्राक्ष की छाया से स्निग्ध है। वह अवधि-काल की दुर्दिन घड़ियों को वेदना-जर्जरित होकर गिनने लगता है। आठ मास व्यतीत हो जाने पर वर्षा ऋतु के आगमन से उसके प्रेम-कातर हृदय में उसकी प्राण-प्रिया की स्मृति हरी हो उठती है और वह मेघ के द्वारा अपनी कान्ता के पास प्रणय-सन्देश भेजता है।

प्रिया के वियोग में रोते रोते उसका शरीर सूख कर काँट हो जाता है और कृश होने के कारण कर का कंगन गिर जाता है। आषाढ़ के प्रथम दिन को, पहाड़ की चोटी पर बादल को खेलते हुए देखकर उसकी अन्तर्वेदना उद्वेलित हो उठती है और वह मेघ से सन्देश भेजने को उद्यत हो जाता है। कवि ने विरहियों के विषय में मेघदर्शन से उत्पन्न तीव्र वेदना का भी समर्थन किया है—'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥' ३ पूर्वमेघ। कामार्त्त यक्ष को चेतना-चेतन का भी भाव नहीं रहता और वह स्वभावतः मूढ़ बना हुआ धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत के सन्निपात से निर्मित मेघ को सन्देश-प्रेषण के लिए उपयुक्त समझ लेता है। वह अतिनूतन कुटज-पुष्प के द्वारा मेघ को अर्घ्य देकर उसका स्वागत करता है तथा उसकी प्रशंसा करते हुए उसे इन्द्र का 'प्रकृतिपुरुष' एवं 'कामरूप' कहता है। इसी प्रसंग में कवि ने रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक के भाग का अत्यन्त मनोरम भौगोलिक चित्र उपस्थित किया है। इस अवसर पर कवि मार्गवर्ती स्थानों, नदियों एवं प्रसिद्ध नगरियों का भी रसयुक्त वर्णन करता है। इसी रूप में पूर्वमेघ की समाप्ति हो जाती है।

मेघदूत का यात्रा-वर्णन अत्यन्त सरस एवं भारतवर्ष की प्राकृतिक छटा का शोभन चित्र है। डॉ० अग्रवाल के अनुसार—(वासुदेवशरण अग्रवाल) 'मेघदूत काव्य क्या है ? भारत की देवमातृक भूमि पर शृंगार और आत्मा के चैतन्य की परिपूर्ण भाषा है। इसमें तो मानों प्रकृति ने स्वयं अपनी पूरी कथा भर दी है।'—मेघदूत एक अध्ययन भूमिका पृ० १। पूर्वमेघ के माध्यम से महाकवि कालिदास ने भारतवर्ष की प्राकृतिक छटा का अभिराम वर्णन कर बाह्य प्रकृति के सौन्दर्य एवं कमनीयता का मनोरम चित्र खचित किया है।

मेघ का मार्ग-वर्णन—मेघ की यात्रा चित्रकूट से प्रारम्भ होती है। पवन-पदवी से चलता हुआ मेघ मार्ग में विरह-विधुरा पथिक वनिताओं के केश हटा कर स्निग्ध दृष्टि से अपने को देखने के लिए बाध्य कर देता है। रास्ते में जहाँ-जहाँ पर्वत मिलते हैं वहाँ-वहाँ वह विश्रम करता हुआ और जलप्रपातों के जल का पान करता हुआ चलता है। वह बलाकाओं एवं राजहंसों के साथ (जो मानसरोवर के यात्री हैं) मालवभूमि

एवं आम्रकूट पर्वत को लाँघता हुआ आगे बढ़ता है। वहाँ उसे अल्हड़ यौवना ग्वालिने ललचाई हुई आँखो से देखती हैं। मेघ तुरत जोती हुई भूमि पर जल बरसने से निकली हुई सोंधी गन्ध का घ्राण लेकर, आगे की ओर प्रस्थान करता है और ताम्रकूट की लता-कुञ्जों को पार कर बिन्ध्याचल के चरणतल मे प्रवाहित होनेवाली रेवा नदी को पार करता है, जो नायक चरणपतिता नायिका के सदृश प्रतीत होती है। वह रेवा के स्वच्छ जल का पान कर अपने को भारी बना लेता है और उसे हवा के उडाने का भय नही रहता। आगे चलकर उसे वेत्रवती के तीर पर स्थित 'दशार्ण' देश मिलता है। वह वेत्रवती के जल को पीकर 'नीच' नामक पर्वत की गुफाओं मे रुकता है, जहां उद्याम यौवन का उपभोग करनेवाली वेश्याओ के शरीर के सुगन्धित पदार्थों मे सारा वातावरण सुगन्धित हो रहा है; जिससे दशार्ण देश के नवयुवको की प्रणय-लीला प्रकट होती है। वहाँ वह नदीतीरवर्ती जूही की कलियो को सींचता हुआ और पुष्पलावियो (मालिनें) के सरस गुलाबी कपोलो पर शीतल छायादान करता हुआ आगे बढता है। वह निर्विन्ध्या नदी के पूरब स्थित अवन्ति-नरेश उदयन की महानगरी उज्जयिनी पहुँच कर शिप्रा नदी के सुरभित वायु का सेवन कर चण्डीश्वर महाकाल के पवित्र मन्दिर मे पहुँचता है। वहाँ गन्धवती नदी बहती है। मेघ महाकाल के मंदिर मे नृत्य करती हुई वेश्याओं के नखक्षतो पर शीतल बिन्दुपात कर उनके तीव्र कटाक्ष का आनन्द लेकर गम्भीरा नदी के पास पहुँच जाता है वहाँ से उडकर वह देवगिरि पर पहुँचता है, जहाँ स्वामी कार्त्तिकेय पर उमड-घुमड कर जल बरसाता हुआ उनके वाहन मयूर को नर्तित करा देता है। तदनन्तर गोमेध करानेवाले राजा रन्तिदेव की राजधानी दशपुर पहुँच कर ब्रह्मावर्त के निकट कुरुक्षेत्र मे आता है, जहा सहस्र बाण-वर्षी गाण्डीवधारी अर्जुन की याद आ जाती है। वह सरस्वती नदी का जलपान कर कनखल के समीप पहुंचता है और निर्मल स्फटिक के सदृश गंगा जल को पीकर उसमे झुकने के कारण गंगा-यमुना के संगम की अभिरामता ला देता है। वहाँ से हिमालय मे प्रवेश कर देवदारु के वनो मे चमरी गायो तथा कृष्णसारो से टकराकर पार्श्व मे अंकित महादेव के चरण-चिह्नो की परिक्रमा करता हुआ हिमालय के जंगलो में प्रवेश करता है। वहाँ से वह परशुराम के यशोमार्ग 'क्रौञ्चरन्ध्र' को पार कर उत्तर की ओर उडता है। तदनन्तर वह देवसुन्दरियो के मुकुरभूत तथा शिव के अट्टहास का पुंजीभूत कैलास पर्वत के पास पहुँच कर उसका अतिथि बनता है, जो कुमुद-श्वेत शृङ्गो से उत्तुङ्ग एवं नभव्यापी है। कैलास पर्वत पर सुर-रमणियाँ कौतूहलवश अपने कंकन के कोने मे उसे रगडकर उसका जल निकालती है, किन्तु कर्ण-कर्कश गर्जन से उन्हें रोक देता है। तत्पश्चात् वह कैलास पर्वत के पास पहुच जाता है वहाँ, उसकी गोद में बैठी हुई अलका गंगारूपी साड़ी के सरकने से अपने प्रेमी की गोद मे नंगी बैठी हुई नायिका की तरह दिखाई पड़ती है। यक्ष ने बताया कि इसी नगरी मे उसकी प्रियतमा वास करती है। इस प्रकार कवि ने चित्रकूट से अलकापुरी तक मेघ की भौगोलिक यात्रा का मनोरम एवं काव्यमय वर्णन कर भारतीय भूगोल का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

उत्तरमेघ में अलका का वर्णन, यक्ष के भवन एवं उसकी विरहविदग्धा प्रिया का चित्र खींचा गया है। तत्पश्चात् कवि ने यक्ष के सन्देश का वर्णन किया है 'जिसमे मानव-हृदय के सौन्दर्य एवं अभिरामता का विमल चित्रण' है।

उत्तरमेघ में वियोगी यक्ष का सन्देश-कथन अत्यन्त ही हृदय-द्रावक एवं प्रेमिल-भावोच्छ्वास से पूर्ण है। इसके प्रारम्भ से अन्त तक यौवन के विलासो की कल्पना सिंचित है तथा उसमे निहित वियोग का मधुर राग हमारी हृत्तन्त्री के तार को स्पंदित कर देता है। वियोगिनी यक्ष पत्नी के यथार्थ चित्र को अंकित कर उसके जीवन की करुण गाथा को अभिव्यक्ति दी गयी है। आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती। पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ उत्तरमेघ २२। उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा। तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्भूयो भूयः स्वयमपि कृता मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ २३। 'हे सौम्य, फिर मलिन वस्त्र पहने हुए गोद में वीणा रखकर नेत्रो के जल मे भीगे हुए तन्तुओ को किसी तरह ठीक-ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से संगीत मे प्रवृत्त वह अपनी बनाई स्वरविधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़ेगी।' २३।

महाकवि कालिदास ने वाल्मीकि रामायण मे 'मेघदूत' की प्रेरणा ग्रहण की है। उन्हे वियोगी यक्ष की व्यथा मे सीता-हरण के दुःख से दुःखित राम की पीडा का स्मरण हो आया है। कवि ने स्वयं मेघ की उपमा हनुमान् से तथा यक्ष-पत्नी की समता सीता से की है—'*इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा*' उत्तरमेघ ३७। रामचन्द्र ने हनुमान् को सीता के पास भेजते समय अपनी मुद्रिका पहचान के रूप मे दी थी, किन्तु कालिदास ने मूर्त चिह्न का विधान न कर यक्ष द्वारा मेघ को अनन्य-ज्ञात रति-विलास-रहस्य बताकर इस अभाव की पूर्ति कर दी है। इसकी कथा का आधार रामायण से ग्रहण करके भी कवि ने इसे सर्वथा नवीन रूप दिया है। मेघदूत के माध्यम से कवि ने प्रकृति के प्रति चेतनता मे विश्वास प्रकट कर उसमे अपने हृदय का अनुराग उड़ेल दिया है। कवि की प्रसन्न-मधुरा वाणी 'मन्दाक्रान्ता' छन्द मे अभिव्यक्त हुई है जिसकी प्रशंसा आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'सुवृत्ततिलक' में की है— 'सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति'।

१—मेघदूत मे प्रकृति के अत्यन्त सजीव स्वतः संवेद्य चित्र प्राप्त होते हैं जिन्हें 'ऋग्वेद' अथवा 'रामायण' के प्रकृति वर्णन की समता मे रखा जा सकता है। २—इसमे सुख, दुःख, विरह-संयोग एवं प्रणय-पीडा का अत्यन्त सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्र उरेहा गया है और इसे व्यक्त करने के लिए व्यंजक एवं मधुर भाषा प्रयुक्त हुई है। ३—मेघदूत मे अनेक मंजुल भावों का सन्निवेश कर बीच-बीच मे मुहावरो, वाक्य-खण्डो तथा अर्थान्तरन्यास एवं दृष्टान्त अलंकारो का प्रयोग कर भाषा को स्पष्ट एवं सरल बना दिया गया है। ४—इसमें कवि की शास्त्रीयदर्शिता तथा विचारों की परिपक्वता भी प्रदर्शित होती है। कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ उत्तर मेघ ४६। अर्थान्तरन्यास के उदाहरण

इस प्रकार है—याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ पूर्वमेघ ६ । रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ वही २० । स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ वही २८ । ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातुं समर्थः १ ॥ वही ४१।५—कवि ने वाल्मीकि के प्रकृति-चित्रण के रूप को मेघदूत में विकसित किया है तथा एक भूगोलविद् एवं रसज्ञ कवि के समन्वित व्यक्तित्व को उपस्थित कर भौगोलिक एवं रस-शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है । ६—कवि की सांस्कृतिक प्रौढ़ि के कारण मेघदूत की भाषा में गांभीर्य एवं निखार दिखाई पड़ता है । मेघदूत की भाषा 'आवेगमयी अकृत्रिम-स्वच्छन्द-धारा' है । इसमे प्रकृति के विविध चित्रों का अंकन कर विरह-भावना को अति तीव्र बना दिया है । इसमें पद-पद पर भावानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग मिलता है । ७—इसमें कथानक का आधार स्वल्प है । वह केवल कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति का आधार मात्र है ।

मेघदूत अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है और इसके अनुकरण पर संस्कृत में अनेक सन्देश-काव्यों की रचना हुई है । इस पर संस्कृत मे लगभग ५० टीकाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमे मल्लिनाथ की टीका सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है । विदेशी विद्वानों ने भी इसे आदर की दृष्टि से देखा है । संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं मे इसके पद्यानुवाद हुए हैं । एच० एच० विल्सन ने १८१३ ई० मे इसका आंग्ल अनुवाद प्रकाशित किया था । मल्लिनाथ की टीका के साथ मेघदूत का प्रकाशन १८४९ ई० मे बनारस से हुआ और श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने १८६९ ई० में कलकत्ता से स्वसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया । इसके आधुनिक टीकाकारों मे चरित्रवर्द्धनाचार्य एवं हरिदास सिद्धान्त-वागीश अत्यधिक प्रसिद्ध है । इनकी टीकाओं के नाम हैं—'चारित्र्यवर्द्धिनी' एवं 'चंचला' । अनेक संस्करणों के कारण मेघदूत की श्लोक संख्या में भी अन्तर पड़ जाता है और अब तक इसमें लगभग १५ प्रक्षिप्त श्लोक प्राप्त होते है । हिन्दी मे मेघदूत के अनेक गद्यानुवाद एवं पद्यानुवाद प्रकाशित हो चुके है । हिन्दी के प्रसिद्ध अनुवादों के नाम इस प्रकार है—

१—राजा लक्ष्मणसिंह—व्रजभाषा मे पद्यानुवाद । २—पं० केशवप्रसाद मिश्र—खड़ी बोली का पद्यानुवाद । ३—श्रीनागार्जुन । ४—जयकिशोर नारायण सिंह । ५—श्री दिवाकर साहित्याचार्य एवं सत्यकाम विद्यालंकार के पद्यानुवाद अधिक सुन्दर हैं । पटना (विक्रम) के श्रीपुण्डरीक जी ने इसका मगही मे पद्यानुवाद किया है । महापण्डित मैक्समूलर ने जर्मन भाषा में इसका पद्यानुवाद १८४७ ई० मे किया था तथा प्रसिद्ध जर्मन कवि शीलर ने मेघदूत के अनुकरण पर 'मेरिया स्टुअर्ट' नामक काव्य की रचना की थी । जर्मन भाषा मे श्री श्वेत्ज ने १८५९ ई० में इसका गद्यानुवाद किया है और अमेरिका के आर्थर राइडर ने इसका पद्यानुवाद किया । १८४१ ई० में बोन नामक विद्वान ने मेघदूत का लातीनी भाषा मे अनुवाद किया है और चीनी भाषा में इसका अनूदित संस्करण १९५६ ई० मे प्रकाशित हुआ है । आज से सात सौ वर्ष पूर्व तिब्बती भाषा में मेघदूत प्राप्त हुआ था तथा जापान के प्राध्यापक श्री एच० क्युमुरा ने जापानी भाषा में इसका अनुवाद अभी किया है । रूसी भाषा में इसका

अनुवाद श्री पी० रिसेर ने अगस्त क्रान्ति के चार वर्ष पूर्व किया था। इसका नैपाली अनुवाद 'मेघदूतछाया' के नाम से प्रकाशित है और अनुवादक है श्री चक्रपाणि शर्मा। हिन्दी के अन्य पद्यानुवादकों में राय देवी प्रसाद पूर्ण (ब्रजी में 'धाराधर-धावन' के नाम से) श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। श्रीरामदहिन मिश्र का 'मेघदूतविमर्श' तथा ललिताप्रसाद सुकुल द्वारा सम्पादित मेघदूत का संस्करण अत्यन्त उपादेय है।

आधारग्रन्थ— १. मेघदूत-संस्कृत-हिन्दी टीका—चौखम्बा संस्करण। २ मेघदूत-हिन्दी टीका सहित—श्रीसंसारचन्द्र। ३. मेघदूत एक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ४. मेघदूत : एक अनुचिन्तन—श्री रंजनसूरिदेव। ५. मेघदूत–सटीक एवं भूमिका—डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित। ६. कालिदास की सौन्दर्य भावना एवं मेघदूत—आचार्य शिवबालक राय। ७. मेघदूत-संस्कृत-हिन्दी टीका—पं शेषराज शर्मा (चौखम्बा) ८. महाकवि-कालिदास—डॉ० रमाशंकर तिवारी। ९. संस्कृत गीतिकाव्य का विकास—डॉ० परमानन्द शास्त्री। १०. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद)।

मेघदूत-समस्यालेख—इस सन्देश-काव्य के प्रणेता श्रीमेघ-विजयजी जैन मुनि है। इनका समय वि० सं० १७२७ है। इनके गुरु का नाम कृपाविजय जी था जिन्हें अकबर बादशाह ने जगद्गुरु की उपाधि प्रदान की थी। मेघविजय जी ने व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, धर्मशास्त्र आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने सप्तसन्धान, देवनन्दाभ्युदय तथा शान्तिनाथचरित नामक काव्यग्रन्थों का भी प्रणयन किया है। 'मेघदूतसमस्यालेख' में कवि ने अपने गुरु तपगणपति श्रीमान् विजयप्रभसूरि के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजा है। कवि के गुरु नव्यरंगपुरी (औरंगाबाद) में चातुर्मास्य का आरम्भ कर रहे है और कवि देवपत्तन (गुजरात) में है। वह गुरु की कुशलवार्त्ता के लिए मेघ द्वारा सन्देश भेजता है और देवपत्तन से औरंगाबाद तक के मार्ग का रमणीय वर्णन उपस्थित करता है। सन्देश में गुरुप्रताप, गुरु के वियोग की व्याकुलता एवं अपनी असहायावस्था का वर्णन है। अन्त में कवि ने इच्छा प्रकट की है कि वह कब गुरुदेव का साक्षात्कार कर उनकी वन्दना करेगा। इस काव्य की रचना 'मेघदूत' के श्लोक की अन्तिम पंक्ति की समस्यापूर्त्ति के रूप में हुई है। इसमें कुल १३१ श्लोक हैं और अन्तिम श्लोक अनुष्टुप् छन्द का है। कच्छदेश का वर्णन देखिए—
जम्बूद्वीपे भरतवसुधामण्डनं कच्छदेशो यत्राम्भोधिर्मुवमनुकलं पूजयत्येव रत्नैः। पृच्छन् पूना जननललनैः सूरिणा यैरमूनि कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥९५।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मेघप्रतिसन्देश कथा—इस सन्देश-काव्य के रचयिता मन्दिकल रामशास्त्री है। ये मैसूर राज्य के अन्तर्गत मन्दिकल संज्ञक नगरी में १८४९ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम वेंकट सुब्बाशास्त्री था जो रथीतरगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। कवि की माता का नाम अक्काम्बा था। ये धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, न्याय एवं साहित्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा ये बहुत दिनों तक शारदा-विलास-संस्कृत पाठशाला, मैसूर में अध्यक्ष पद पर विराजमान थे। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। वे हैं—आर्यधर्म-

प्रकाशिका, चामराजकल्याणचम्पू, चामराजराज्याभिषेक-चरित्र, कृष्णराज्याभ्युदय, भैमीपरिणय (नाटक), कुम्भाभिषेकचम्पू। इन्हें अनेक संस्थाओं एवं व्यक्तियों के द्वारा कविरत्न, कविकुलालंकार, कविशिरोमणि एवं कविकुलावतंस प्रभृति उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। 'मेघप्रतिसन्देश' की रचना १९२३ ई० के आसपास हुई थी। इसमें दो सर्ग हैं जिनमें ६८ + ९६ श्लोक (१६४) है और एकमात्र मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। 'मेघप्रतिसन्देश' में कवि ने मेघसन्देश की कथा का पल्लवन किया है। इसके प्रथम सर्ग मे यक्षी के प्रतिसन्देश का वर्णन एवं द्वितीय सर्ग में अलका से लेकर रामेश्वर तथा धनुष्कोटि तक के मार्ग का वर्णन है। यक्ष का सन्देश सुनकर यक्षी प्रसन्न होती है और विरह-व्यथा के कारण अशक्त होने पर भी किसी प्रकार मेघ से वार्त्तालाप करती है। वह मेघ को भगवान् का वरदान मानकर उसकी उदारता एवं करुणा की प्रशंसा करती हुई यक्ष के सन्देश का उत्तर देती है। प्रतिसन्देश में यक्ष के सद्गुणों का कथन कर अपनी विरह-दशा एवं घर की दुरवस्था का वर्णन कर शिव जी की कृपा से शाप के शान्त होने की सूचना देती है। अन्त मे वह यक्ष को शीघ्र ही लौट आने की प्रार्थना करती है। मेघ का यक्ष के प्रति वचन यह है—साभिज्ञानप्रहित-कुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः॥ २।५२।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

मेघविजयगणि—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ज्योतिषशास्त्र के महान् आचार्य मेघविजयगणि का समय वि० सं० १७३७ के लगभग है। इन्होंने 'मेघमहोदय' या वर्षप्रबोध', 'उदयदीपिका', 'रमलशास्त्र' एवं 'हस्तमंजीवन' प्रभृति ग्रन्थों की रचना की है। 'वर्षप्रबोध' १३ अधिकारों तथा ३५ प्रकरणो मे विभक्त हैं जिसमें उत्पात, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण का फल, प्रत्येक माह का वायु-विचार, संवत्सर का फल, ग्रहों का राशियो पर उदयास्त एवं वक्री होने का फल, अयन-मास-पक्ष-विचार, संक्रान्तिफल, वर्ष के राजा एवं मन्त्री, धान्येश, रसेश का वर्णन, आय-व्यय-विचार, सर्वतोभद्रचक्र तथा शकुन प्रभृति विषय वर्णित है। 'हस्तसंजीवन' तीन अधिकारों मे विभक्त है जिन्हें दर्शनाधिकार, स्पर्शनाधिकार तथा विमर्शनाधिकार कहा गया है। दर्शनाधिकार मे हाथ देखने की विधि तथा हस्तरेखाओं के फलाफल का विचार है। स्पर्शनाधिकार मे हाथ के स्पर्शमात्र से ही फलाफल का निरूपण है तथा विमर्शनाधिकार मे रेखाओं के आधार पर जीवन के आवश्यक प्रश्नो पर विचार किया गया है। यह सामुद्रिकशास्त्र का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

मेधाविरुद्र—काव्यशास्त्र के आचार्य। इनका दूसरा नाम मेधावी भी है। इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, किन्तु इनके विचार भामह, रुद्रट, नमिसाधु एवं राजशेखर आदि के ग्रंथो में प्राप्त होते हैं। मेधाविरुद्र भरत एवं भामह के बीच पड़ने वाले समय के सुदीर्घ व्यवधान में उत्पन्न हुए होंगे। इनका समय निश्चित नहीं है। उपमा के सात दोषों का विवेचन करते हुए भामह ने इनके मत का उल्लेख किया है। इनके अनुसार हीनता, असम्भव, लिंगभेद, वचनभेद विपर्यय, उपमानाधिक्य एवं उपमानासादृश्य

ये सात दोष हैं। काव्यालंकार २।३९, ४०। मेधावी को 'संख्यान' अलंकार की उद्भावना करने का श्रेय दण्डी ने दिया है—यथासंख्यमिति प्रोक्तं संख्यानं क्रम इत्यपि। काव्यादर्श २।२७३। नमिसाधु ने बताया है कि मेधावी के अनुसार शब्द के चार प्रकार होते हैं—नाम, आख्यान, उपसर्ग एवं निपात। इन्होंने कर्मप्रवचनीय को अमान्य ठहरा दिया है—एत एव चत्वारः शब्दविधाः इति येषां सम्यङ्मतं तत्र तेषु नामादिषु मध्ये मेधाविरुद्रप्रभृतिभिः कर्मप्रवचनीया नोक्ता भवेयुः। काव्यालंकार—(रुद्रट) नमिसाधु कृत टीका पृ० ९ (२।२) राजशेखर ने प्रतिभा के निरूपण मे इनका उल्लेख किया है और बताया है कि वे जन्मांध थे। नमिसाधु इन्हे किसी अलंकार ग्रन्थ का प्रणेता भी मानते हैं। प्रत्यक्षप्रतिभावतः पुनरपश्यतोपि प्रत्यक्ष इव, यतो मेधाविरुद्रकुमारदासादयो जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते। काव्यमीमांसा पृ० ११–१२। ननु दण्डिमेधाविरुद्रभामहादिकृतानि सन्त्येव अलंकारशास्त्राणि। काव्यालंकार की टीका १।२।

आधारग्रन्थ—१. हिन्दी काव्यप्रकाश—आ० विश्वेश्वर कृत (भूमिका) २ भारतीय साहित्यशास्त्र भाग—१ आ० बलदेव उपाध्याय।

मैक्समूलर–इन्होने अपना सारा जीवन संस्कृत–विशेषतः वैदिक वाङ्मय के अध्ययन एव अनुशीलन मे लगा दिया था। मैक्समूलर का जन्म जर्मन देश के देसाऊ नामक नगर मे ६ दिसम्बर १८२३ ई० को हुआ था। इनके पिता प्राथमिक पाठशाला के शिक्षक थे। उनका देहान्त ३३ वर्ष की अल्पायु मे ही हो गया था। उस समय मैक्समूलर की अवस्था चार वर्ष की थी। ६ वर्ष की अवस्था मे इन्होने ग्रामीण पाठशाला मे ही ६ वर्षों तक अध्ययन किया। इन्होने १८३६ ई० मे लैटिन भाषा के अध्ययन के लिए लिपजिग विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और वे पाँच वर्षों तक वहाँ अध्ययन करते रहे। छोटी अवस्था से ही इन्हें संस्कृत भाषा के अध्ययन की रुचि उत्पन्न हो गयी थी। विश्वविद्यालय छोडने के बाद ही ये जर्मनी के राजा द्वारा इङ्गलैण्ड से खरीदे गए संस्कृत साहित्य के बृहद् पुस्तकालय को देखने के लिए बर्लिन गए, वहाँ उन्होने वेदान्त एवं संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। बर्लिन का कार्य समाप्त होते ही वे पेरिस गए, वहाँ इन्होने एक भारतीय की सहायता से बंगला भाषा का अध्ययन किया और फ्रेंच भाषा मे बंगला का एक व्याकरण लिखा। यहीं रहकर इन्होने ऋग्वेद पर रचित सायण भाष्य का अध्ययन किया। मैक्समूलर ने ५६ वर्षों तक अनवरत गति से संस्कृत साहित्य एवं ऋग्वेद का अध्ययन किया और ऋग्वेद पर प्रकाशित हुई विदेशी की सभी टीकाओ को एकत्र कर उनका अनुशीलन किया। इन्होने सायणभाष्य के साथ ऋग्वेद का अत्यन्त प्रामाणिक एवं शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया, जो छह सहस्र पृष्ठो एवं चार खण्डो मे समाप्त हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से १४ अप्रैल, १८४७ ई० को हुआ। मैक्समूलर के इस कार्य की तत्कालीन यूरोपीय संस्कृतज्ञो ने भूरि-भूरि प्रशंसा की जिनमे प्रो० विल्सन एवं प्रो० बर्नफ आदि है। अपने अध्ययन की सुविधा देखकर मैक्समूलर इङ्गलैण्ड चले गए और मृत्युपर्यन्त लगभग ५० वर्षों तक वहीं रहे। इन्होंने १८५९ ई० मे अपना विश्वविख्यात ग्रन्थ संस्कृत साहित्य

का प्राचीन इतिहास लिखा और वैदिक साहित्य की विद्वत्तापूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की। जुलाई १९०० में मैक्समूलर रोगग्रस्त हुए और रविवार १८ अक्टूबर को उनका निधन हो गया। मैक्समूलर ने भारतीय साहित्य और दर्शन के अध्ययन एवं अनुशीलन में यावज्जीवन घोर परिश्रम किया। इन्होंने तुलनात्मक भाषा-शास्त्र एवं नृतत्त्वशास्त्र के आधार पर संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन का सूत्रपात किया था। इनके ग्रंथों की सूची—

१—ऋग्वेद का सम्पादन। २—ए हिस्ट्री ऑफ दि एंशियेंट संस्कृत लिटरेचर। ३—लेक्चर्स ऑफ दि साइन्स ऑफ लैंग्वेज (दो भाग)। ४—ऑन स्ट्रेटीफिकेशन ऑफ लैंग्वेज। ५—बायोग्राफीज ऑफ वर्ड्स ऐण्ड टीम ऑफ आर्याज। ६—इन्ट्रोडक्शन टु दि साइन्स ऑफ रेलिजन। ७—लेक्चरर्स ऑन ओरीजन ऐण्ड ग्रोथ ऑफ रेलिजन। ऐज इलस्ट्रेटेड बाई दि रेलिजन्स ऑफ इण्डिया। ८—नेचुरल रेलिजन। ९—फिजिकल रेलिजन। १०—ऐन्थ्रोपोलिजकल रेलिजन। ११—थियोसाफी : आर साइकोलाजिकल रेलिजन। १२—कंट्रीब्यूशन टु दि साइन्स ऑफ साइकोलोजी। १३—हितोपदेश (जर्मन अनुवाद)। १४—मेघदूत (जर्मन अनुवाद)। १५—धम्मपद (जर्मन अनुवाद)। १६—उपनिषद् (जर्मन अनुवाद)। १७—दि सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट सीरीज ग्रन्थमाला के ४८ खण्डों का सम्पादन।

मैत्री या मैत्रायणी उपनिषद्—यह उपनिषद् गद्यात्मक है तथा इसमें सात प्रपाठक हैं। इसमें स्थान-स्थान पर पद्य का भी प्रयोग हुआ है तथा साख्यसिद्धान्त, योग के षडङ्गों का वर्णन और हठयोग के मन्त्रसिद्धान्तों का कथन किया गया है। इसमें अनेक उपनिषदों के उद्धरण दिये गए हैं, जिससे इसकी अर्वाचीनता सिद्ध होती है। ऐसे उद्धरणों में 'ईश' 'कठ', 'मुण्डक' एवं 'बृहदारण्यक' के हैं।

मोरिका—ये संस्कृत की कवयित्री है। 'सुभाषितावली' तथा 'शार्ङ्गधरपद्धति' में इनके नाम की केवल चार रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पाम्बुधौतगण्ड-तला। अवधिदिवसावसानं मा भूदितिशङ्किता बाला॥

यजुर्वेद—यज्ञ-सम्पादन के लिए अध्वर्यु नामक ऋत्विज का जिस वेद से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है उसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। इसमें अध्वर्यु के लिए ही वैदिक प्रार्थनाएँ संगृहीत हैं। 'यजुर्वेद' वैदिक कर्मकाण्ड का प्रधान आधार है और इसमे यजुषों का संग्रह किया गया है। यजुष् शब्द के कई अर्थ हैं। कतिपय व्यक्तियों के अनुसार गद्यात्मक मन्त्रों की यजुः संज्ञा होती है। अतः गद्यप्रधान मन्त्रों के आधिक्य के कारण इसे 'यजुर्वेद' कहते है—गद्यात्मको यजुः। इस वेद मे ऋक् और साम से सर्वथा भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह है—शेषे यजुः शब्दः। जिसमे अक्षरों की संख्या निश्चित या नियत न हो वह यजुष् है—अनियताक्षरावसानो यजुः। कर्म की प्रधानता के कारण समस्त वैदिक वाङ्मय मे 'यजुर्वेद' का अपना स्वतन्त्र स्थान है। 'यजुर्वेद' से सम्बद्ध ऋत्विज् अध्वर्यु को यज्ञ का संचालक माना जाता है।

यजुर्वेद की शाखाएँ—'यजुर्वेद, का साहित्य अत्यन्त विस्तृत था, किन्तु सम्प्रति

उसकी समस्त शाखाएँ उपलब्ध नहीं होती। महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार इसकी सौ शाखायें थी। इस समय इसकी दो शाखाएँ प्रसिद्ध है—'कृष्णयजुर्वेद' एवं शुक्ल यजुर्वेद। इनमें भी प्रतिपाद्य विषय की प्रधानता के कारण 'शुक्लयजुर्वेद' अधिक महत्त्वशाली है। 'शुक्लयजुर्वेद' की मन्त्रसंहिता को 'वाजसनेयीसंहिता' कहते हैं, जिसमे ४० अध्याय हैं तथा अन्तिम १५ अध्याय 'खिल' होने के कारण परवर्ती रचना के रूप में स्वीकार किये जाते है। इसके (शुक्लयजुर्वेद) प्रारम्भिक दो अध्यायों दर्श एवं पौर्णमास यज्ञो से सम्बद्ध मन्त्र वर्णित हैं तथा तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र और चातुर्मास्य यज्ञो के लिए उपयोगी मन्त्र संगृहीत हैं। चतुर्थ से अष्टम अध्याय तक सोमयागों का वर्णन है। इनमें सवन (प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल के यज्ञ), एकाह (एक दिन में समाप्त होने वाला यज्ञ) तथा राजसूय का वर्णन है। राजसूय के अन्तर्गत द्यूत-क्रीडा, अस्त्रक्रीडा, आदि नाना प्रकार की राज्योचित क्रीडाएँ वर्णित है। ग्यारह से १८ अध्याय तक 'अग्निचयन' या यज्ञीय होमाग्नि के लिए वेदिका-निर्माण का वर्णन किया गया है। १९ से २१ अध्यायो मे सौत्रामणि यज्ञ की विधि का वर्णन है तथा २२ से २५ तक अश्वमेध का विधान किया गया है। २६ से २९ तक 'खिलमन्त्र' (परिशिष्ट) संकलित हैं और तीसवे अध्याय मे पुरुषमेध वर्णित है। ३१ वे अध्याय मे 'पुरुषसूक्त' है जिसमे 'ऋग्वेद' से ६ मन्त्र अधिक है। ३२ एवं ३३ वे अध्याय मे 'शिवसंकल्प' का विवेचन किया गया है। ३५ वे अध्याय मे पितृमेध तथा ३६ से ३८ तक प्रवर्ग्ययाग वर्णित है। इसके अन्तिम अध्याय मे 'ईशावास्य उपनिषद्' है। 'शुक्लयजुर्वेद' की दो संहिताएँ है—माध्यन्दिन एवं काण्व। मद्रास से प्रकाशित काण्वसंहिता मे ४० अध्याय, ३२८ अनुवाक् तथा २०८६ मन्त्र है। माध्यन्दिन संहिता के मन्त्रो की संख्या १९७५ है।

कृष्णयजुर्वेद—चरणव्यूह के अनुसार 'कृष्णयजुर्वेद' की ८५ शाखाएँ है जिनमे केवल चार ही उपलब्ध है—तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल कठशाखा।

तैत्तिरीयसंहिता—इस शाखा के सभी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र उपलब्ध है। तैत्तिरीयसंहिता मे ७ काण्ड है तथा वे ४४ प्रपाठक एवं ६३१ अनुवाक् मे विभक्त हैं। इसमे पौरोडाश, याजमान, वाजपेय, राजसूय आदि नाना प्रकार के यज्ञो का विधान है। मैत्रायणीसंहिता—इसमे गद्य एवं पद्य दोनों का मिश्रण है। इसके चार खण्ड है। प्रथम काण्ड मे ११ प्रपाठक है जिनमें दर्शपूर्णमास, अध्वर, आधान, पुनराधान, चातुर्मास्य एवं वाजपेय यज्ञ वर्णित हैं। द्वितीय काण्ड में १३ काण्ड है तथा काम्य ईष्टि, राजसूय एवं अग्निचिति का विस्तारपूर्वक वर्णन है। तृतीय काण्ड मे १६ प्रपाठक है तथा अग्निचिति, अध्वरविधि, सौत्रामणी एवं अश्वमेध का वर्णन किया गया है। चतुर्थ काण्ड को खिलकाण्ड कहते है जिसम १४ प्रपाठक है तथा पूर्व वर्णित सभी यज्ञो से सम्बद्ध सामग्रियो का विवेचन है। सम्पूर्ण मैत्रायणीसंहिता में २१४४ मन्त्र है जिनमे १७०१ ऋचाएँ 'ऋग्वेद' की है। कठसंहिता पाँच खण्डो में विभक्त है जिन्हें क्रमशः इठिमिका, मध्यमिका, ओरिमिका, याज्यानुवाक्या तथा अश्वमेधानुवचन कहा जाता है। इसमें ४० स्थानक, १३ अनु-

वचन, ८४३ अनुवाक्, ३०९१ मन्त्र तथा मन्त्रब्राह्मण (दोनों की सम्मिलित संख्या) १८ सहस्र है तथा दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, आधान, काम्यइष्टि, निरूढपशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, चातुर्मास्य, सौत्रामणि तथा अश्वमेध का वर्णन किया गया है।

कपिष्ठल कठसंहिता—इस संहिता की एकमात्र प्रति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में है, जो अधूरी है। इसका विभाजन अष्टक एवं अध्यायों में हुआ है।

आधारग्रन्थ—१—यजुर्वेद हिन्दी अनुवाद—श्रीराम शर्मा २—प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड १—विन्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद)। ३—संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैकडोनल (हिन्दी अनुवाद)। ४—वैदिक साहित्य—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी। ५—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय। ६—वैदिक वाङ्मय का इतिहास—भाग १—पं० भगवद्दत्त। ७—इण्डियन लिटरेचर—वेबर। ८—ऐंशियन्ट संस्कृत लिटरेचर—मैक्समूलर। ९—हम भारत से क्या सीखें—मैक्समूलर (हिन्दी अनुवाद)। १०—वैदिक साहित्य-प्रकाशन, शाखा भारत सरकार। ११—भारतीय प्रज्ञा—मोनियर विलियम (हिन्दी अनुवाद)।

यतिराजविजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता का नाम अहोबल सूरि है। उनके पिता का नाम वेंकटाचार्य एवं माता का नाम लक्ष्माम्बा था। उनके गुरु का नाम श्री राजगोपाल मुनि था। लेखक का समय १४ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। 'यतिराजविजयचम्पू' १६ उल्लासों में विभक्त है, पर अन्तिम उल्लास अपूर्ण है। इसमें रामानुजाचार्य के जीवन की घटनाएँ वर्णित हैं तथा स्थान-स्थान पर यमक का प्रयोग किया गया है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। कवि ने अन्य चम्पू 'विरूपाक्षवसन्तोत्सव' की भी रचना की है जो मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। इसमें चार काण्ड हैं तथा नौ दिनों तक होने वाले विरुपाक्ष महादेव के वसन्तोत्सव का वर्णन है। प्रारम्भिक तीन काण्डों में रथयात्रा एवं चतुर्थ काण्ड में आखेट या मृगया महोत्सव वर्णित है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

युधिष्ठिर मीमांसक—आधुनिक युग के प्रसिद्ध वैयाकरण। इनका जन्म २२ सितम्बर १९०९ ई० को राजस्थान के अन्तर्गत जिला अजमेर के विरकच्यावास नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने व्याकरण, निरुक्त, न्याय एवं मीमांसा का विधिवत् अध्ययन एवं अध्यापन किया है और संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। संस्कृत में अभी तक १४ शोधपूर्ण निबन्ध विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ के नाम है—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्, वैदिकछन्दःसंकलनम्, ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या, काशकृत्स्नीयो धातुपाठः, भारतीयं भाषाविज्ञानम्, वेदसंज्ञा-मीमांसा। इन्होंने संस्कृत के १० ग्रन्थों का सम्पादन किया है—निरुक्तसमुच्चयः, भागवृत्तिसंकलनम्, दशपाद्युणादिवृत्तिः, शिक्षासूत्राणि, क्षीर-तरङ्गिणी, दैवं पुरुषकारवार्तिकोपेतम्, काशकृत्स्न-

व्याकरणम्, उणादिकोष, माध्यन्दिन पदपाठ। सम्प्रति 'वेदवाणी' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक।

युधिष्ठिरविजय—(महाकाव्य)—इसके रचयिता वासुदेव कवि हैं। वे केरल निवासी थे। उन्होंने 'त्रिपुरदहन' तथा 'शौरिकोदय' नामक काव्यों का भी निर्माण किया था। 'युधिष्ठिरविजय' यमक काव्य है। इसके यमक क्लिष्ट न होकर सरल एवं प्रसन्न हैं। यह महाकाव्य आठ उच्छ्वासों में है। इसमें महाभारत की कथा संक्षेप में कही गयी है। इस पर काश्मीरवासी राजानक रत्नकण्ठ की टीका प्रकाशित हो चुकी है। टीका का समय १६७१ ई० है। पथिकजनानां कुरवान् कुर्वन् कुरवो बभूव नवां-कुरवान्। प्रेक्ष्य रुचं चूतस्य स्तबकेषु पिकश्चकार चञ्चू तस्य ॥ २।४४।

यशस्तिलक चम्पू—इसके रचयिता सोमदेव सूरि हैं। वे राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय के सभाकवि थे। इस चम्पूकाव्य का रचनाकाल ९५९ ई० है। अन्तः-साक्ष्य के आधार पर इसके रचयिता सोमदेव ही हैं—श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः, शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः। तस्याश्चर्यतपःस्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनां, शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रमः॥ यशस्तिलक भाग २ पृ० ४१८। सोमदेव की 'नीतिवाक्यामृत' नामक अन्य रचना भी उपलब्ध है। 'यशस्तिलक चम्पू' में जैन मुनि सुदत्त द्वारा राजा मारिदत्त को जैनधर्म की दीक्षा देने का वर्णन है। मारिदत्त एक क्रूरकर्मा राजा था जिसको धार्मिक बनाने के लिए मुनि जी के शिष्य अभयरुचि ने यशोधर की कथा सुनाई थी। जैनपुराणों में भी यशोधर का चरित वर्णित है। कवि ने प्राचीन ग्रंथों से कथा लेकर उसमें कई नवीन परिवर्त्तन किये हैं। इसमें दो कथाएं संश्लिष्ट हैं—मारिदत्त की कथा तथा यशोधर की कथा। प्रथम के नायक मारिदत्त हैं तथा द्वितीय के यशोधर। इसमें कई पात्रों के चरित्र चित्रित हैं—मारिदत्त, अभयरुचि, मुनिसुदत्त, यशोधर, चन्द्रमति, अमृतमति, यशोमति आदि। इस ग्रन्थ की रचना सोद्देश्य हुई है और इसे धार्मिक काव्य का रूप दिया गया है। इसमें कुल आठ आश्वास या अध्याय है, जिनमें पाँच आश्वासों में कथा का वर्णन है और शेष तीन आश्वासों में जैनधर्म के सिद्धान्त वर्णित हैं। निर्वेद का परिपाक ही इसका लक्ष्य है और अङ्गीरस शान्त है। धार्मिकता की प्रधानता होते हुए भी इसमें शृङ्गार रस का मोहक वर्णन है। इसकी गद्य-शैली अत्यन्त प्रौढ़ है तथा वर्ण्यविषयों के अनुरूप 'गाढबद्ध बृहत् समस्तपदावली' प्रयुक्त हुई है। कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार छोटे-छोटे वाक्य एवं सरल पदावली का भी प्रयोग हुआ है। इसके पद्य काव्यात्मक एवं सूक्ति दोनों ही प्रकार के हैं। इसके चतुर्थ आश्वास में अनेक कवियों के श्लोक उद्धृत हैं। प्रारम्भ में कवि ने पूर्ववर्त्ती कवियों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपना काव्य-विषयक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने नम्रतापूर्वक यह भी स्वीकार किया है कि बौद्धिक प्रतिभा किसी व्यक्ति विशेष में ही नहीं रहती। सर्वज्ञकल्पैः कविभिः पुरातनैरवीक्षितं वस्तु किमस्ति सम्प्रति। एदंयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि प्रवक्ति यत्तत्सदृशं स विस्मयः॥ १।११।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

यक्ष-मिलन काव्य—इस सन्देश-काव्य के रचयिता परमेश्वर झा हैं। इसका दूसरा नाम (यक्ष-समागम) भी है। कवि का समय वि० सं० १९१३ से १९८१ है। ये बिहार के दरभंगा जिला के तरवनी (तरौनी) नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम पूर्णनाथ झा या बाबूनाथ झा था जो व्याकरण के अच्छे पण्डित थे। परमेश्वर झा स्वयं बहुत बड़े विद्वान् थे और विद्वद्मण्डली ने इन्हें वैयाकरणकेसरी, कर्मकाण्डोद्धारक तथा महोपदेशक प्रभृति उपाधियां प्रदान की थीं। इन्हें तत्कालीन सरकार की ओर से महामहोपाध्याय की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों के नाम है—महिषासुर-वध नाटक, वाताह्वान काव्य, कुसुमकलिका-आख्यायिका, ऋतुवर्णन काव्य। 'यक्ष-समागम' में महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' के उत्तराख्यान का वर्णन है। कवि ने यक्ष एवं उसकी प्रेयसी के मिलन का बड़ा ही मोहक वर्णन किया है। देवोत्थान होने पर यक्ष प्रेयसी के पास आकर उसका कुशल-क्षेम पूछता है। वह अपनी प्रिया से विविध प्रकार की प्रणय कथाएँ एवं प्रणय लीलायें वर्णित करता है। प्रातःकाल होने पर बन्दीजन के मधुर गीतों का श्रवण कर उसकी निद्रा टूटती है और वह डरता-डरता कुबेर के निकट जाकर उन्हे प्रणाम करता है। कुबेर उस पर प्रसन्न होते है और उसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यभार देते हैं। यक्ष और यक्षपत्नी अधिक दिनों तक सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते है। यह सन्देश-काव्य लघु आकार का है और इसमे कुल ३५ श्लोक हैं। इसमे मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है। यक्ष-पत्नी का सौन्दर्य वर्णन देखिए—बाले भाले रुचिररुचिरः सूक्ष्मसिन्दूरबिन्दुः, कर्णे पुष्प दशनवसने गाढताम्बूलरागः। सौवीरन्ते दृशि नखततो यावकश्चित्रवासो गौरे गात्रे गुणिनि सुभगम्भावुकत्वं गृणन्ति ॥ २३। इस काव्य का प्रकाशन १८१७ शाके मे दरभगा से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—सस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

यतिराज विजय चम्पू—इसके रचयिता अहोबल सूरि थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः लक्ष्माम्बा एवं वेंकटाचार्य था। श्री राजगोपाल मुनि के ये शिष्य थे। इनका समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन्होंने 'विरूपाक्षवसन्तोत्सव चम्पू' नामक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की है। [दे० विरूपाक्षवसन्तोत्सव चम्पू] 'यतिराज-विजय चम्पू' सात्रह उल्लासों में विभक्त है पर अन्तिम उल्लास अपूर्ण है। कवि ने इस चम्पू में रामानुजाचार्य का जीवन वृत्त वर्णित किया है तथा विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा भी प्रस्तुत की है। इसकी शैली सरल एवं व्यासप्रधान है तथा स्थान-स्थान पर यमक का भी प्रयोग है और वाक्य-विन्यास की प्रवृत्ति सरलता की ओर है। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा का निदर्शन कवि के शब्दों में इस प्रकार है—आदौ सरश्शठरिपुप्रमुखान्वतारान् नाथार्ययामुनमुनिप्रवरप्रभावान्। रामानुजस्य चरितं निपुणं भणामि हृद्यैरवद्यविमुखैरथ गद्यपद्यैः ॥ १।१०। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। विवरण के लिए। दे० डि० कैट लॉग मद्रास १२३३८।

आधार ग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

यमस्मृति—इस स्मृति के रचयिता यम नामक धर्मशास्त्री हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार यम धर्मवक्ता हैं। 'वसिष्ठधर्मसूत्र' मे यम के उद्धरण प्रस्तुत किये गए है और यहा के चार श्लोकों मे तीन श्लोक 'मनुस्मृति' मे भी प्राप्त हो जाते हैं। जीवानन्द-सग्रह में 'यमस्मृति' के ७८ श्लोक तथा आनन्दाश्रम संग्रह में ९९ श्लोक प्राप्त होते है। इन श्लोको मे प्रायश्चित्त शुद्धि, श्राद्ध एवं पवित्रीकरण-विषयक मत प्रस्तुत है। इनके अतिरिक्त विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क एवं 'स्मृतिचन्द्रिका' तथा अन्य परवर्त्ती ग्रन्थो मे 'यमस्मृति' के ३०० के लगभग श्लोक प्राप्त होते हैं। 'महाभारत' (अनुशासनपर्व १०४, ७२–७४) मे भी यम की गाथाएं हैं। 'मिताक्षरा', हरदत्त तथा अपरार्क मे प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे बृहद् यम का उल्लेख करते है और हरदत्त तथा अपरार्क के ग्रथो मे लघु यम तथा वेदाचार्यकृत 'स्मृतिरत्नाकर' मे स्वल्प यम का नाम आया है। डॉ० काणे के अनुसार सभी ग्रन्थ एक ही ग्रथ के भिन्न-भिन्न नाम ज्ञात होते है। यम ने मनुष्यो के लिए कुछ पक्षियों के मांस-भक्षण की व्यवस्था की है तथा स्त्रियों के लिए सन्यास का निषेध किया है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पी० वी० काणे भाग १ (हिन्दी अनुवाद)।

याज्ञवल्क्यस्मृति—इसके रचयिता ऋषि याज्ञवल्क्य है। उन्होने राजा जनक को ज्ञानोपदेश दिया था। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' मे वे एक बड़े दार्शनिक के रूप म चित्रित है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' का 'शुक्लयजुर्वेद' के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा उनका नाम 'शुक्लयजुर्वेद' के उद्घोषक के रूप मे लिया जाता है। पाणिनिसूत्र के वार्त्तिक मे कात्यायन ने याज्ञवल्क्य को ब्राह्मणों का रचयिता कहा है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' मे भी (३।११०) याज्ञवल्क्य को आरण्यको का लेखक कहा गया है। पर, विद्वानो ने आरण्यक एवं स्मृति का लेखक एक व्यक्ति को नही माना, क्योकि दोनो की भाषा मे बहुत अन्तर दिखाई पडता है। विज्ञानेश्वर रचित मिताक्षरा के अनुसार याज्ञवल्क्य के किसी शिष्य ने ही धर्मशास्त्र को संक्षिप्त किया था। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' का प्रकाशन तीन स्थानो स हुआ है—निर्णयसागरप्रेस, त्रिवेन्द्रम् संस्करण तथा आनन्दाश्रम संस्करण। इनमे श्लोको की संख्या क्रमशः १०१०, १००३ तथा १००६ है। इसके प्रथम व्याख्याता विश्वरूप हैं जिनका समय ८००–८२५ ई० है। इसके द्वितीय व्याख्याता (विज्ञानेश्वर) 'मिताक्षरा' के लेखक है, जो विश्वरूप के २५० वर्ष पश्चात् हुए थे। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' 'मनुस्मृति' की अपेक्षा अधिक सुसंगठित है। इसमें विषयो की पुनरुक्ति नही है, किन्तु यह 'मनुस्मृति' से संक्षिप्त है। दोनों ही स्मृतियों के विषय एक है तथा श्लोको मे भी कहीं-कहीं शब्दसाम्य है। ऐसा लगता है कि याज्ञवल्क्य ने इसकी रचना 'मनुस्मृति' के आधार पर की है। इसमे तीन काण्ड है जिनकी विषय-सूची इस प्रकार है—

प्रथम काण्ड—चौदह विद्याओ तथा धर्म के बीस विश्लेषकों का वर्णन, धर्मोपादान,

परिषद्-गठन, गर्भाधान से विवाह पर्यन्त सभी संस्कार, उपनयनविधि, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य तथा वर्जित पदार्थ एवं कर्म, विवाह एवं विवाहयोग्य कन्या की पात्रता, विवाह के आठ प्रकार, अन्तर्जातीय विवाह, चारो वर्णों के अधिकार और कर्त्तव्य, स्नातक कर्त्तव्य, वैदिक यज्ञ, भक्ष्याभक्ष्य के नियम तथा मांस-प्रयोग, दान पाने के पात्र, श्राद्ध तथा उसका उचित समय, श्राद्ध-विधि, श्राद्ध-प्रकार, राजधर्म, राजा के गुण, मन्त्री, पुरोहित, न्यायशासन आदि । द्वितीय काण्ड— न्यायभवन के सदस्य, न्यायाधीश, कार्य-विधि, अभियोग, उत्तर, जमानत लेना, न्यायालय के प्रकार, बलप्रयोग, ब्याज दर, संयुक्त परिवार के ऋण, शपथग्रहण, मिथ्यासाक्षी पर दण्ड, लेख-प्रमाण, बँटवारा तथा उसका समय, विभाजन मे स्त्री का भाग, पिता की मृत्यु के बाद विभाजन, विभाजन के अयोग्य सम्पत्ति, पिता-पुत्र का संयुक्त स्वामित्व, बारह प्रकार के पुत्र, शूद्र और अनौरस पुत्र, पुत्रहीन पिता के लिए उत्तराधिकार, स्त्रीधन पर पति का अधिकार, जुआ एवं पुरस्कार-युद्ध, अपशब्द, मान-हानि, साझा, चोरी, व्यभिचार । तृतीय काण्ड— मृत व्यक्तियो का जल-तर्पण, जन्म-मरण पर तत्क्षण पवित्रीकरण के नियम, (समय, अग्निक्रिया संस्कार, वानप्रस्थ तथा यति) के नियम, भ्रूण के कतिपय स्तर, सत्त्व, रज एवं तम क आधार पर तीन प्रकार के कार्य । डॉ० पा० वा० काणे के अनुसार इसका समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी के बाद कही भी हो सकता है ।

आधारग्रन्थ—१ याज्ञवल्क्यस्मृति (हिन्दी अनुवाद सहित) अनुवादक डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय (चौखम्बा प्रकाशन) । २ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग—१ (हिन्दी अनुवाद) डॉ० पा० वा० काणे ।

यामुनाचार्य—विशिष्टाद्वैतवाद के प्रसिद्ध आचार्य । ये नाथमुनि के पौत्र हैं । इनका समय दशम शताब्दी का अन्तिम चरण है । ये श्रीरंगम् की आचार्य पीठ पर ९७३ ई० मे अधिष्ठित हुए थे । इन्होने काव्य एवं दर्शन दोनो ही प्रकार के ग्रन्थों की रचना की है । इनके द्वारा रचित ग्रन्थ है—गीतार्थसंग्रह, श्री चतुःश्लोकी (इसमे लक्ष्मी जी की स्तुति है) सिद्धित्रय (इसमे आत्मसिद्धि, ईश्वरसिद्धि, माया-खण्डन एवं आत्म-विषय-सम्बन्ध प्रतिपादक संवित् सिद्धि का वर्णन है), महापुरुषनिर्णय (इसमें विष्णु का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया है) आगमप्रामाण्य (यह पाञ्चरात्र की प्रामाणिकता का विवेचन करनेवाला महनीय ग्रन्थ है), आलबन्दारस्तोत्र (इसमें ७० श्लोकों में आत्मसमर्पण के सिद्धान्त का सुन्दर वर्णन है) ।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय ।

यूरोपीय विद्वान् और संस्कृत—विदेशो मे संस्कृत अध्ययन के प्रति निष्ठा बहुत प्राचीन समय से रही है । पंचतन्त्र के अनुवाद के माध्यम से सातवी शताब्दी से ही यूरोपीय विद्वान् सस्कृत से परिचित हो चुके थे । तथा धर्म प्रचारार्थ कितने ईसाई मिशनरी भारत आकर संस्कृत धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे । अब्राहम रोजर नामक एक ईसाई पादरी ने भर्तृहरि के श्लोको का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया

था। वारेन हेस्टिंग्स ने संस्कृत पण्डितो की सहायता से 'विवादार्णवसेतु' नामक धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ का संकलन करवाया था जो 'ए कोड ऑफ गेण्टोला' के नाम से अंग्रेजी में १७८५ ई० में प्रकाशित हुआ। चार्ल्स विल्किंस कृत गीता का अंगरेजी अनुवाद १७८५ ई० में इङ्गलैण्ड से प्रकाशित हुआ था। इसी ने 'महाभारत' मे वर्णित शकुन्तलोपाख्यान एवं 'हितोपदेश' का भी अंगरेजी मे अनुवाद किया था।

सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स ने ११ वर्षों तक भारतवर्ष मे रह कर संस्कृत भाषा और साहित्य का विधिवत् ज्ञान अर्जित किया। इन्हीं के प्रयास से १७८४ ई० में 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बङ्गाल' की स्थापना हुई जिसमे संस्कृत की हस्तलिखित पोथियों का उद्धार हुआ तथा अनुसधान सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ हुए। विलियम जोन्स ने १७८९ ई० मे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का अगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया, जिससे यूरोपीय विद्वान् संस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुए। विलियम जोन्स ने 'मनुस्मृति' एवं 'ऋतुसहार' का भी अंगरेजी मे अनुवाद किया था। इनके अंगरेजी अनुवाद के आधार पर जर्मन विद्वान जार्ज फोर्स्टर ने 'शकुन्तला' का जर्मन भाषा मे अनुवाद (१७९१ ई०) किया जिसकी प्रशंसा महाकवि गेटे ने मुक्तकण्ठ से की। इसी समय थामस कोलब्रुक ने 'अमरकोष' 'हितोपदेश' 'अष्टाध्यायी' तथा 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद किया। इन्होने ए डाइजेस्ट ऑफ हिन्दू ला ऑफ काट्रेक्ट्स' नामक ग्रन्थ की भी रचना की। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लीगल ने (आगस्टक) 'भगवद्गीता' एवं 'रामायण' (प्रथम भाग) का अनुवाद १८२९ ई० मे किया। श्लीगल के समकालीन फ्रेंच विद्वान् बोप हुए। इनका जन्म १७९१ ई० मे हुआ था। इन्होने १८१६ ई० म संस्कृत का तुलनात्मक भाषा-विज्ञान पर निबन्ध लिखा तथा 'नलदमयन्ती' आख्यान का लैटिन भाषा मे अनुवाद किया। इन्होने संस्कृत का एक व्याकरण एव कोष भी लिखा है। जर्मन विद्वान् वान हैंबोल्ट तथा उसके भाई अलेक्जेंडर हैंबोल्ट ने भारतीय दर्शनो का अध्ययन किया था। शलिंग, शिलर आदि ने जर्मन भाषा मे उपनिषदो का अनुवाद किया है। फर्गुसन जेम्स नामक विद्वान् ने दक्षिण भारतीय मन्दिरों के खंडहरो एवं देवालयो का निरीक्षण कर पुरातत्व-सम्बन्धी सामग्रियो का विवरण प्रस्तुत किया है और १८४८ ई० मे 'हिन्दू प्रिंसिपल ऑफ ब्यूटी इन आर्ट' नामक पुस्तक की रचना की है। पण्डित मक्समूलर का कार्य तो अप्रतिम महत्त्व का है [दे० मैक्समूलर] विल्सन नामक विद्वान् ने 'हिन्दू थिएटर' नामक पुस्तक लिखी तथा 'विष्णुपुराण' एवं 'ऋग्वेद' का ६ खण्डो मे अनुवाद किया। वेदार्थ अनुशीलन के क्षेत्र में जर्मन विद्वान् रॉथ रचित 'संस्कृत-जर्मन-विश्वकोश' का अत्यधिक महत्त्व है। १८७० ई० के आस-पास एच० ग्रासमैन एवं विल्सन ने सायणभाष्य के आधार पर 'ऋग्वेद' का अंगरेजी मे अनुवाद किया था। डॉ० पिशेल-कृत 'वैदिक स्टडीज' नामक ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व का है। ये बर्लिन विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक थे, वेबर एवं मैक्डोनल तथा कीथ की संस्कृत सेवाएँ प्रसिद्ध हैं। (इनका विवरण पृथक् है। इनके नाम के समक्ष देखें)। संस्कृत साहित्य के इतिहास-लेखकों में जर्मन विद्वान् विण्टरनित्स का नाम महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने चार खण्डों में संस्कृत साहित्य का बृहत् इतिहास लिखा है।

जर्मन पण्डित डॉ० थीबो मैक्समूलर के सम्पर्क में आकर संस्कृत अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए थे। ये १८८५ ई० में बनारस में अध्यापक होकर आये थे और वहाँ १८८८ ई० तक रहे। इन्होंने मीमांसा एवं ज्योतिष पर निबन्ध लिखा था शंकर एवं रामानुज सहित 'वेदान्तसूत्र' का भाष्य प्रकाशित किया। जैन साहित्य के मर्मज्ञ प्रो० जैकोबी ने जैनसूत्रों का अनुवाद किया है। पाणिनि के ऊपर गोल्डस्टूकर ने अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है। (अंग्रेजी में)। इसमें पाणिनि के स्थितिकाल पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

संस्कृत वाङ्मय के हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण तैयार कर डॉ० अफ्रेक्ट ने 'केटेलोगस केटेगोरम' नामक बृहद् सूचीग्रन्थ की रचना की। इसी प्रकार अंगरेज विद्वान् मुइर कृत 'ओरिजिनल संस्कृत टेस्ट' नामक ५ खण्डो मे समाप्त होने वाले ग्रन्थ का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमे संस्कृत साहित्य-विशेषतः वैदिक वाङ्मय—के मूल अंश एवं उनके अंगरेजी अनुवाद दिये हुए हैं। आउफेश्त नामक रोमन विद्वान ने 'ऋग्वेद' एवं ऐतरेयब्राह्मण' का रोमन मे अनुवाद किया है तथा एक अन्य रोमन विद्वान् एदारूक ने ऋग्वेद की समीक्षा रोमन में लिखी है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् विलियम ह्वाइट ह्विटनी ने (१८२७-९४) सर्वप्रथम अमेरिका मे संस्कृत अनुशीलन का कार्य किया। इन्होने १८७९ ई० मे संस्कृत का व्याकरण लिखा जो अपने क्षेत्र मे बेजोड है। ह्विटनी ने 'अथर्वप्रातिशाख्य' का अंगरेजी मे अनुवाद किया तथा 'सूर्यसिद्धान्त' नामक ज्योतिष ग्रन्थ का अंगरेजी मे रूपान्तर किया। इन्होने प्राच्यविद्या-सम्बन्धी लगभग ३६० निबन्ध लिखे है। प्रो० ओल्डेनवर्ग ने 'विनयपिटक' का अनुवाद एवं 'सांख्यायन, गृह्यसूत्रों' का सम्पादन किया है। प्रो० ब्लूमफील्ड कृत अथर्ववेद का अनुवाद अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होने 'वैदिक कंकारडेन्स' नामक एक विशाल ग्रन्थ की भी रचना की है। वेदज्ञ हिलेब्रैण्ट ने तीन खण्डो मे 'वैदिक मैथोलॉजी' नामक ग्रन्थ लिखा है और 'शिखायन श्रौतसूत्रो का सम्पादन भी किया है। सुप्रसिद्ध वैयाकरण बोथलिंक ने 'बृहदारण्यक' तथा 'छान्दोग्य उपनिषद्' का सम्पादन किया है तथा 'अष्टाध्यायी' एवं हेमचन्द्र रचित (अभिधान चितामणि का विशुद्ध संस्करण निकाला है। बौद्ध साहित्य पर राइज डेविड्स, मारिस हार्दि, स्पेयर आदि विद्वानो ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। मोनियर विलियम एवं टी० बरो ने संस्कृत के भाषाशास्त्रीय व्याकरण लिखे है। इनमे बरोकृत 'संस्कृत लैंग्वेज' नामक ग्रन्थ अधिक महत्त्वपूर्ण है। महाभारत के नामों और विषयो की अनुक्रमणिका सोरेन्सन नामक विद्वान् ने 'महाभारत इंडेक्स' के नाम से लिखी है। संस्कृत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषावैज्ञानिक व्याकरण जर्मन भाषा मे वाकरनेगल नामक विद्वान् ने लिखा है जो चार भागो मे समाप्त हुआ है। यूरोपीय विद्वान् अभी भी संस्कृत साहित्य के अनुशीलन मे लगे हुए हैं। फ्रेंच विद्वान् लूई रेनो ने 'वैदिक इण्डिया' एवं 'वैदिक बिब्लियोग्राफी' नामक पुस्तके फ्रेंञ्च भाषा मे लिखी है। ग्रिफिथ कृत वेदो का पद्यानुवाद एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सम्प्रति रूस मे संस्कृत पठन-पाठन के प्रति विद्वानो की अभिरुची बढ़ी है और कई ग्रन्थों के रूसी भाषा में अनुवाद किये गए हैं। हाल ही मे महाभारत का रूसी अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

योग-दर्शन—महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रवर्तित भारतीय दर्शन की एक धारा। इसमे साधना के द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध पर बल दिया जाता है। इसका मूलग्रन्थ 'योगसूत्र' है, जिसके रचयिता पतञ्जलि माने जाते हैं। विद्वानों का मत है कि महा-भाष्यकार पतञ्जलि और योग-दर्शन के प्रवर्तक पतञ्जलि दोनों एक थे। [दे० हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी भाग २ पृ० २२५–२३५ डॉ० दासगुप्त]। इस दृष्टि से 'योगसूत्र' का रचनाकाल ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी निश्चित होता है। पर यौगिक प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है और इसका निर्देश संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी प्राप्त होता है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' से विदित होता है कि 'हिरण्यगर्भ' नामक आचार्य योग के वक्ता थे और पतञ्जलि ने केवल इसका अनुशासन किया था, अर्थात् वे योग के प्रवर्त्तक न होकर उपदेशक या प्रचारक थे। 'योगसूत्र' के ऊपर व्यास कृत भाष्य उपलब्ध होता है जो 'व्यासभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर वाचस्पति मिश्र की टीका 'तत्ववैशारदी' है। विज्ञानभिक्षु ने 'व्यासभाष्य' के ऊपर 'योगवार्तिक' नामक टीका ग्रन्थ की रचना की थी। योगसूत्र की अन्य अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

पातञ्जल 'योगसूत्र' के चार विभाग (पाद) है—समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद एवं कैवल्यपाद। प्रथम पाद (समाधिपाद) के विषय है—योग का स्वरूप, उद्देश्य और लक्षण, चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय तथा अनेकानेक प्रकार के योगो का विवेचन। द्वितीयपाद मे क्रियायोग, क्लेश, कर्मफल, उनका दुःखात्मक स्वभाव, दुःख, दुःखनिदान, दुःखनिवृत्ति तथा दुःखनिवृत्ति के उपायो का निरूपण है। तृतीयपाद में योग की अन्तरङ्ग अवस्थाओ तथा योगाभ्यास द्वारा उत्पन्न होने वाली सिद्धियों का विवेचन है। चतुर्थ पाद मे कैवल्य या मुक्ति का विवेचन तथा आत्मा, परलोक आदि विषयो का वर्णन किया गया है। 'योग' शब्द 'युज्' धातु (युज् समाधौ) से बना है जिसका अर्थ समाधि है। पतञ्जलि के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते है—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। यहाँ चित्त का अभिप्राय अन्तःकरण (मन, बुद्धि एवं अहंकार) से है। योग-दर्शन मे यह विचार प्रकट किया जाता है कि आत्मा के यथार्थ स्वरूप को प्राप्त करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक वृत्तियो का दमन किया जाय अर्थात् शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि और अहंकार पर विजय प्राप्त की जाय। इसके बाद यह ज्ञान हो जायगा कि शरीर, मन आदि से आत्मा सर्वथा भिन्न है तथा देश, काल एवं कारण के बन्धन से परे है। आत्मा नित्य और शाश्वत है। इस प्रकार का अनुभव आत्मज्ञान कहा जाता है और इसकी प्राप्ति से मुक्ति होती है एवं दुःखो से छुटकारा मिल जाता है। आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग-दर्शन में अध्ययन, मनन और निदिध्यासन का भी निर्देश किया गया है।

योग का अर्थ आत्मा और परमात्मा का मिलन न होकर आत्मा के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान से है, और यह तभी सम्भव है जब कि चित्त की समस्त वृत्तियो का निरोध हो जाय। योग के आठ अङ्ग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन्हें योगांग कहा जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यम कहते हैं। सदाचार के पालन को नियम कहते हैं। इसके पाँच अङ्ग

हैं—शौच, संतोष, तप स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान। शौच से अभिप्राय बाह्य एवं आभ्यन्तर शुद्धि से है। ईश्वरप्रणिधान के अन्तर्गत ईश्वर का ध्यान एवं उन पर अपने को पूर्णतः आश्रित कर देना है। आसन—यह शरीर का साधन होता है। इसमें शरीर को इस प्रकार की स्थिति के योग्य बना दिया जाता है, जिससे कि वह निश्चल होकर सहज रूप से देर तक स्थिर रह सके। चित्त की एकाग्रता एवं अनुशासन के लिए आसन का विधान किया जाता है, जिसके कई भेद होते हैं—पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, सिद्धासन, शीर्षासन, गरुडासन, मयूरासन तथा शवासन आदि। योगासनों के द्वारा शरीर नीरोग हो जाता है और उसमे समाधि लगाने की पूर्ण क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इसके द्वारा सभी अंगों को वश में किया जा सकता है तथा मन मे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता।

प्राणायाम—श्वास-प्रश्वास के नियन्त्रण को प्राणायाम कहते हैं। इसके तीन अंग है—पूरक (भीतर की ओर श्वास खींचना), कुम्भक (श्वास को भीतर रोकना) तथा रेचक (नियत रूप से श्वास छोडना)। प्राणायाम के द्वारा शरीर स्वस्थ होता है और मन मे दृढ़ता आती है। प्रत्याहार—इन्द्रियों को बाह्यविषयों मे हटाकर उन्हें अपने वश मे रखने को प्रत्याहार कहते है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग के बहिरंग साधन माने जाते हैं तथा धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग साधन कहा जाता है। धारणा—चित्त को अभीष्ट विषय पर केन्द्रस्थ करना धारणा है। योग-दर्शन मे 'चित्त का देश में बांधना' ही धारणा है। किसी विषय पर चित्त को दृढ़तापूर्वक केन्द्रित करने के अभ्यास से समाधि में बडी सहायता मिलती है। ध्यान—ध्येय के निरन्तर मनन को ध्यान कहा जाता है। इस स्थिति में विषय का अविच्छिन्न ज्ञान होना रहता है और विषय अत्यन्त स्पष्ट होकर मन में चित्रित हो जाता है। योगी ध्यान के द्वारा ध्येय पदार्थ का यथार्थ रूप प्राप्त कर लेता है। समाधि—योगासन की चरम परिणति समाधि में होती है और यह इस विषय की अन्तिम स्थिति है। इस अवस्था मे आकर मन की, ध्येय वस्तु के प्रति, इतनी अधिक तन्मयता हो जाती है कि उसे उसके अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं होता और ध्येय मे ही अपने को लीन कर देना है। यह अवस्था ध्येय विषय मे आत्मलीन कर देने की है। समाधिस्थ होने पर योगी को यह भी ध्यान नहीं रहता कि वह किसके ध्यान में लगा हुआ है।

योगाभ्यास करने पर योगियों को नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है, जिनकी संख्या आठ है। अणिमा (अणु के समान छोटा या अदृश्य होना), लघिमा (अत्यन्त हल्का होकर उडने की शक्ति प्राप्त करना), महिमा (पर्वत की भांति बडा बन जाना), प्राप्ति (इच्छित फल को जहाँ से चाहे वहाँ से प्राप्त कर लेना), प्राकाम्य (योगी की इच्छा-शक्ति का बाधारहित हो जाना), वशित्व (सब जीवो को वश मे करने की शक्ति प्राप्त करना), यत्र कामावासायित्व (योगी के संकल्प की सिद्धि), योग दर्शन का स्पष्ट निर्देश है, कि योगी सिद्धियों के आकर्षण में न पड़कर केवल मोक्ष का प्रयास करे। यदि वह इनके चाकचिक्य मे पड़ेगा तो योगभ्रष्ट हो जायगा। इसका अन्तिम लक्ष्य आत्म-दर्शन है।

ईश्वर—योग-दर्शन के प्राचीन आचार्य ईश्वर को अधिक महत्त्व नहीं देते। स्वयं पतञ्जलि ने ईश्वर का जितना अधिक व्यावहारिक महत्त्व माना है—उतना सैद्धान्तिक नहीं। चित्त की एकाग्रता के लिए ईश्वर के ध्यान का महत्त्व अवश्य है, पर परवर्ती लेखकों ने ईश्वर-सिद्धि पर अधिक बल देकर योग-दर्शन मे उसके महत्त्व की स्थापना की। इसमे ईश्वर को सभी दोषो से परे तथा परमपुरुष माना गया है। वह नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा परमात्मा है। जीव सभी प्रकार के क्लेशो को भोगता है तथा अविद्या, अहंकार, राग-द्वेष और वासना आदि से अपने को मुक्त नहीं कर पाता। भाति-भाति के कर्म करते हुए उसे सुख-दुःख भोगना पड़ता है। योग-दर्शन में ईश्वर-सिद्धि के लिए निम्नांकित प्रमाण उपस्थित किये गए हैं— क. श्रुति एवं शास्त्र एक स्वर से ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते है तथा उसके साक्षात्कार को ही एकमात्र जीवन का लक्ष्य मानते है। ख. न्यूनाधिक मात्रावाली वस्तुओं की दो कोटियां होती है—अल्पतम एवं उच्चतम कोटि। वस्तु का अल्पतम रूप परमाणु एवं उच्चतम रूप आकाश है। इसी प्रकार ज्ञान तथा शक्ति की भी विभिन्न सीमायें दिखाई पड़ती हैं। अतः उनकी भी एक उच्चतम सीमा होनी चाहिए। यह अधिकतम सीमा ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं है। ईश्वर के रूप मे सर्वाधिक ज्ञान-सम्पन्न पुरुष की आवश्यकता है और उसके समान अन्य कोई नही है। यदि और कोई होता तो दोनो मे संघर्ष हो जाता जिसके कारण ससार में अव्यवस्था हो जाती। ग. ईश्वर की सत्ता की सिद्धि प्रकृति और पुरुष के संयोजक तथा वियोजक तत्त्व के रूप मे होती है। प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है और उनके विच्छेद से प्रलय होता है। दोनो का संयोग तथा वियोग स्वभावतः न होकर किसी सर्वशक्तिमान् पुरुष के ही द्वारा होता है, और वह ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा नही है। वही दोनो का सम्बन्ध घटित कर सृष्टि और प्रलय की स्थिति उत्पन्न करता है। अतः उसका (ईश्वर का) अस्तित्व निर्विवाद है।

योग-दर्शन का सांख्य के साथ अनेक दृष्टियो से साम्य है, पर जहा तक ईश्वर-सिद्धि का प्रश्न है, वह साख्य की भाति निरीश्वरवादी न होकर ईश्वरवादी है एवं साधना और सिद्धान्त दोनो ही दृष्टियो से ईश्वर की उपयोगिता सिद्ध करता है।

आधारग्रन्थ— १. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी भाग २—डॉ० दासगुप्त। २ भारतीय दर्शन—चटर्जी और दत्त (हिन्दी अनुवाद)। ३. भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ योग-दर्शन—डॉ० सम्पूर्णानन्द। ५. योगसूत्रम्—(हिन्दी अनुवाद) पं० श्रीराम शर्मा। ६ योगभाष्य (हिन्दी अनुवाद) श्री हरिहरानन्द। ७. योगसूत्र (हिन्दी अनुवाद)—गीता प्रेस, गोरखपुर। ८ वैदिक योगसूत्र—पं० हरिशंकर जोशी। ९. अध्यात्म योग और चित्तविकलन—श्री वेंकट शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)।

योगरत्नाकर—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। यह ग्रन्थ किसी अज्ञात लेखक की रचना है जो १७४६ ई० के आसपास लिखा गया है। इसका एक प्राचीन हस्तलेख १६६८ शकाब्द का प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का प्रचार महाराष्ट्र में अधिक है। इसमें

'योगरत्नाकर' मे रोगपरीक्षा, द्रव्यगुण, निघण्टु तथा रोगों का वर्णन है तथा वैद्यजीवन (लोलिम्बराज कृत दे० वैद्यजीवन) की भांति शृङ्गारी पदों का भी बाहुल्य है। सारं भोजनसारं सारं सारङ्गलोचनाधरतः। पिब खलु वारं वार नो चेन्मुधा भवति संसार.॥ 'योगरत्नाकर' की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है रोगो की पथ्यापथ्य विधि का वर्णन। इसके पूर्व किसी भी ग्रन्थ मे इस विषय का निरूपण नहीं किया गया है। इसके कर्त्ता ने भी इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है—आलोक्य वैद्यतन्त्राणि यत्नादेष निबध्यते। व्याधितानां चिकित्सार्थं पथ्यापथ्यविनिश्चियः॥ निदानौषधपथ्यानि त्रीणि यत्नेन चिन्तयेत्। तेनैव रोगाः शीयन्ते शुष्के नीरं इवाङ्कुराः॥ इस ग्रन्थ का प्रकाशन विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित चौखम्बा विद्याभवन से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्रीअत्रिदेव विद्यालंकार।

रघुनन्दन—ये बंगाल के अन्तिम धर्मशास्त्रकार माने जाते हैं। इन्होंने 'स्मृतितत्त्व' नामक बृहत् ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ धर्मशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है जिसमे ३०० ग्रथो तथा लेखको का उल्लेख है। इनके पिता का नाम हरिहर भट्टाचार्य था जो बन्धघटीय ब्राह्मण थे। रघुनन्दन का समय १४९० मे १५७० ई० के बीच है। 'स्मृतितत्त्व' २८ तत्त्वों वाला है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'तीर्थतत्त्व' 'द्वादशयात्रातत्त्व', 'त्रिपुष्करशान्ति-तत्त्व', 'गयाश्राद्धपद्धति', 'रासयात्रापद्धति' आदि ग्रन्थो की रचना की है। कहा जाता है कि रघुनन्दन एव चैतन्य महाप्रभु दोनो के ही गुरु वासुदेव सार्वभौम थे। रघुनन्दन ने दायभाग पर भाष्य की भी रचना की है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे भाग १, (हिन्दी अनुवाद)।

रघुनाथविजय चम्पू—इस चम्पू काव्य के रचयिता कवि सार्वभौम कृष्ण हैं। इसका रचनाकाल १८८५ ई० है। कवि के पिता का नाम तातार्य था जो दुर्गपुर के निवासी थे। इस काव्य में पाच विलास है और पंचवटी के निकटस्थ चित्रूरपुरनरेश रघुनाथ की जीवनगाथा वर्णित है। कवि ने यात्राप्रबन्ध एवं चरित्रवर्णन का मिश्रित रूप प्रस्तुत कर इस काव्य के स्वरूप को सँवारा है। स्वयं कवि के अनुसार इस काव्य की रचना एक दिन मे ही हुई। कविसार्वभौमविरुदाकलितः श्रीवेंकटार्यसहजातः। रघुनाथविजयमेनं व्यतनोद् दिनमेकमेव कृष्णाख्य.॥ ५।२४। इस काव्य का प्रकाशन गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

रघुनाथ शिरोमणि—नवद्वीप के नव्य नैयायिकों में रघुनाथ शिरोमणि का नाम महत्त्वपूर्ण है (नव्यन्याय के लिए दे० न्यायदर्शन)। इनका आविर्भाव १६ वीं शताब्दी में हुआ था। न्यायविषयक प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण नवद्वीप के तत्कालीन नैयायिकों ने इन्हें 'शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत किया था। इन्होंने प्रसिद्ध मैथिल नैयायिक एवं नव्यन्याय के प्रवर्त्तक आचार्य गणेश उपाध्याय कृत 'तत्त्वचिन्तामणि के

ऊपर 'दीधिति' नाम्नी विवरणात्मक टीका लिखी है। यह ग्रन्थ मूल ग्रन्थ के समान ही पाण्डित्यपूर्ण एवं रचयिता की मौलिक दृष्टि का परिचायक है।

आधारग्रन्थ—भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

रघुवंश महाकाव्य—यह महाकवि कालिदास विरचित महाकाव्य है। इसमे १९ सर्गों मे सूर्यवंशी राजाओं का चरित्र वर्णित है। इसकी सर्गानुसार कथा इस प्रकार है—प्रथम—इसमे विनय-प्रदर्शन करने के पश्चात् कवि ने रघुवंशी राजाओं की विशिष्टता का सामान्य वर्णन किया है। प्रथमतः राजा दीलीप का चरित्र वर्णित है। पुत्रहीन होने के कारण, राजा चिन्तित होकर अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम मे पहुँचते है तथा आश्रम मे स्थित नन्दिनी गाय की सेवा मे संलग्न हो जाते हैं। द्वितीय सर्ग मे राजा दिलीप द्वारा नन्दिनी की सेवा एवं २१ दिनो के पश्चात् उनकी निष्ठा की परीक्षा का वर्णन है। नन्दिनी एक काल्पनिक सिंह के चंगुल में फँस जाती है और राजा गाय के बदले अपने को समर्पित कर देते है। इस पर नन्दिनी प्रसन्न होकर उन्हे पुत्र देने का आश्वासन देती है। पत्नी सहित राजा ऋषि की आज्ञा से नन्दिनी का दूध पीकर उत्फुल्ल चित्त राजधानी लौट आते है। तृतीय सर्ग में रानी सुदक्षिणा का गर्भाधान, रघु का जन्म एवं यौवराज्य तथा दिलीप द्वारा अश्वमेध करने का वर्णन है। सर्ग के अन्त मे सुदक्षिणा सहित राजा दिलीप के वन जाने का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग मे रघु का दिग्विजय एवं पंचम मे उनकी असीम दानशीलता का वर्णन है। अत्यधिक दान करने के कारण उनका कोष रिक्त हो जाता है। उसी समय कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी आकर उनसे १४ करोड स्वर्णमुद्रा की माग करता है। राजा धनेश कुबेर पर आक्रमण कर उनसे स्वर्णमुद्रा ले आते है और कौत्स को समर्पित कर देते है, जिसे लेकर वह उन्हे पुत्र-प्राप्ति का वरदान देकर चला जाता है। ६ ठे सर्ग में रघु के पुत्र अज का इन्दुमती के स्वयंवर मे जाने एवं सातवें सर्ग में अज-इन्दुमती विवाह एवं अज की ईर्ष्यालु राजाओं पर विजयप्राप्ति का वर्णन है। आठवें सर्ग में अज की प्रजापालिता, रघु की मृत्यु, दशरथ का जन्म, नारद की पुष्पमाला गिरने से इन्दुमती की मृत्यु एवं वशिष्ठ का शान्ति-उपदेश तथा अज की मृत्यु का वर्णन है। नवम सर्ग मे राजा दशरथ के शासन की प्रशंसा, उनका विवाह, विहार, मृगया-वर्णन, वसन्तवर्णन तथा धोखे से मुनिपुत्र श्रवण का वध एवं मुनि के शाप का वर्णन है। दसवे सर्ग मे राजा दशरथ का पुत्रेष्टि (यज्ञ) करना तथा रावण के भय से देवताओं का विष्णु के पास जाकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए प्रार्थना करने का वर्णन है। ग्यारहवें एवं बारहवें सर्ग में विश्वामित्र एवं ताडका वध-प्रसंग से लेकर शूर्पणखा-वृत्तान्त एवं रावणवध तक की घटनाएँ वर्णित है, और तेरहवें सर्ग मे विजयी राम का पुष्पक विमान से अयोध्या लौटना एवं भरत-मिलन की घटना का कथन है। चौदहवे सर्ग मे राम-राज्याभिषेक एवं सीता-निर्वासन तथा पंद्रहवें मे लवणासुर की कथा, शत्रुघ्न द्वारा उसका वध, लव-कुश का जन्म, राम का अश्वमेध करना तथा सुवर्ण सीता की स्थापना, वाल्मीकि द्वारा राम को सीता को ग्रहण करने का आदेश, सीता का पातालप्रवेश एवं रामादि का स्वर्गारोहण वर्णित है।

सोलहवें सर्ग मे कुश का शासन, कुशावती मे राजधानी बनाना, स्वप्न में नगरदेवी के रूप में अयोध्या का दर्शन, कुश का पुनः अयोध्या आना तथा कुमुद्वती से विवाह का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग मे कुमुद्वती से अतिथि नामक पुत्र का जन्म एवं कुश की मृत्यु वर्णित है। अठारहवे सर्ग मे अनेक राजाओं का वर्णन तथा उन्नीसवें मे विलासी राजा अग्निवर्ण की राजयक्ष्मा से मृत्यु तथा गर्भवती रानी द्वारा राज्य सँभालने का वर्णन है।

'रघुवंश' मे कालिदास की प्रतिभा का प्रौढ़तम रूप अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने विस्तृत आधारफलक पर जीवन का विराट् चित्र अंकित कर इसे महाकाव्योचित गरिमा प्रदान की है। विद्वानो का अनुमान है कि संस्कृत के आचार्यों ने रघुवंश के ही आधार पर महाकाव्य के लक्षण निर्मित किये हैं। इसमे एक व्यक्ति की कथा न होकर कई व्यक्तियो की कहानी है, जिसके कारण 'रघुवंश' कई चरित्रो की चित्रशाला बन गया है। दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक कवि ने कई राजाओं का वर्णन किया है, किन्तु उसका चित्त दिलीप, रघु, अज, राम एवं अग्निवर्ण के चित्रण मे अधिक रमा है। मुख्यतः कवि का उद्देश्य राजा रघु एवं रामचन्द्र का उदात्त रूप ही चित्रित करना रहा है, जिसके लिए दिलीप, अज आदि अग रूप से प्रस्तुत किये गए है। अग्निवर्ण के विलासी जीवन का करुण अन्त दिखाकर कवि यह विचार व्यक्त करता है कि चरित्र की उदात्तता एवं आदर्श के कारण रघु एवं राम ने जिस वंश को उतना गौरवपूर्ण बनाया था वही वंश विलासी एवं रुग्णमनोवृत्ति वाले कामी अग्निवर्ण के कारण दुःखद अन्त को प्राप्त हुआ। अग्निवर्ण की गर्भवती पत्नी का राज्याभिषेक कराकर कवि काव्य का अन्त कर देता है।

कहा जाता है कि इस प्रकार के आदर्श चरित्रो के निर्माण मे महाकवि ने तत्कालीन गुप्त सम्राटों के चरित्र एवं वैभव से भी प्रभाव ग्रहण किया है तथा अपनी नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना का समावेश कर उसे प्राणवन्त बना दिया है। पुत्रविहीन दिलीप की गोभक्ति एवं त्यागमय जीवन बड़ा ही आकर्षक है। रघु की युद्धवीरता एवं दानशीलता, अज और इन्दुमती का प्रणय-प्रसग एवं चिरवियोग मे हृदयद्रावक दुःखानुभूति की व्यंजना तथा रामचन्द्र का उदात्त एवं आदर्श चरित्र सब मिलाकर कालिदास की चरित्र-चित्रणसम्बन्धी कला को सर्वोच्च सीमा पर पहुँचा देते हैं। इतिवृत्तात्मक काव्य होते हुए भी 'रघुवंश' मे भावात्मक समृद्धि का चरम रूप दिखलाया गया है। इसमें कवि ने प्रमुख रसों के साथ घटनावली को सम्बद्ध कर कथानक मे एकसूत्रता एवं चमत्कार लाने का प्रयास किया है। रघुवंश अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। इसकी संस्कृत मे ४० टीकाएं रची गयी है। इस पर मल्लिनाथ की टीका अत्यन्त लोकप्रिय है।

आधारग्रन्थ—१. रघुवंश महाकाव्य (संस्कृत, हिन्दी टीका) चौखम्बा प्रकाशन। २. महाकवि कालिदास—डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी।

रत्नाकर—ये काश्मीरक कवि एवं 'हरविजय' नामक महाकाव्य के प्रणेता हैं। इनके पिता का नाम अमृतभानु था। ये काश्मीरनरेश चिप्पट जयापीड (८०० ई०)

के सभापण्डित थे। कल्हण की 'राजतरंगिणी' में इन्हें अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में प्रसिद्धि प्राप्त करने का उल्लेख है। ये नवम शतक के प्रथमार्ध तक विद्यमान थे। मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः। प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥ 'हरविजय' में ५० सर्ग एवं ४३२१ पद्य हैं। (इसका प्रकाशन काव्यमाला संस्कृत सीरीज बम्बई से हो चुका है) । रत्नाकर ने माघ की ख्याति को दबाने के लिए ही इस काव्य का प्रणयन किया था। इसमें शंकर द्वारा अन्धकासुर के वध की कथा कही गयी है। कवि ने स्वल्प कथानक को अलकृत, परिष्कृत एवं विस्तृत बनाने के लिए जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन करने में १५ सर्ग व्यय किये हैं। कवि की गर्वोक्ति है कि इस काव्य का अध्येता अकवि कवि बन जाता है और कवि महाकवि हो जाता है—हरविजये महाकवेः प्रतिज्ञां शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे। अपि शिशुर कविः कविप्रभावात् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण॥

रत्नावली—यह हर्षवर्धन या हर्ष (दे० हर्ष) रचित नाटिका है। इस नाटिका में राजा उदयन तथा रत्नावली की प्रेम-कथा का वर्णन है। नाटिकाकार ने प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक में नाटिका की पूर्व कथा का आभास दिया है। उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण ज्योतिषियों की वाणी पर विश्वास कर लेता है कि राज्य की अभ्युन्नति के लिए सिंहलेश्वर की दुहिता रत्नावली के साथ राजा उदयन का परिणय आवश्यक है। ज्योतिषियों ने बतलाया कि जिससे रत्नावली परिणीत होगी उसका चक्रवर्तित्व निश्चित है। इस कार्य को सम्पन्न करने के निमित्त वह सिंहलेश्वर के पास रत्नावली का विवाह उदयन के साथ करने को संदेश भेजता है, पर राजा उदयन वासवदत्ता के कारण सिंहलेश्वर का प्रस्ताव स्वीकार करने में असमर्थ हो जाता है। पर, इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए यौगन्धरायण ने यह असत्य समाचार प्रचारित करा दिया कि लावाणक में वासवदत्ता आग लगने में जल मरी। इसी बीच सिंहलेश्वर ने अपनी दुहिता रत्नावली (सागरिका) को अपने मंत्री वसुभूति तथा कंचुकी के साथ उदयन के पास भेजा, पर दैवात् रत्नावली को ले जाने वाले जलयान के टूट जाने से वह प्रवाहित हो गयी तथा भाग्यवश कौशाम्बी के व्यापारियों के हाथ लगी। व्यापारियों ने उसे लाकर यौगन्धरायण को सौंप दिया। योगन्धरायण ने उसका नाम सागरिका रख कर, उसे वासवदत्ता के निकट इस उद्देश्य से रखा कि राजा उसकी ओर आकृष्ट हो सके। यहीं से मूल कथा का प्रारम्भ होता है।

प्रथम अङ्क का प्रारम्भ मदनोत्सव से होता है। जब उदयन अपने नागरिकों के साथ मदनोत्सव में आनन्द मग्न था, उसी समय उसे सूचना प्राप्त हुई कि रानी वासदत्ता ने उन्हें काम-पूजन में सम्मिलित होने की प्रार्थना की है कि वे शीघ्र ही मकरन्दोद्यान में रक्ताशोक पादप के नीचे आयें। पूजा की सामग्री को सागरिका द्वारा लाया देखकर वासवदत्ता उसको राजा की दृष्टि में बचाना चाहती है। अतः, वह पूजा की सामग्री कांचनमाला को दिला देती है एवं सारिका की देखभाल करने के लिए सागरिका को भेज देती है। सागरिका वहीं पर छिप कर काम-पूजा का अवलोकन करती है तथा

कन्दर्प सदृश सुन्दर राजा को देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो जाती है। यहीं से उसके मन में प्रणय का अंकुर जम जाता है।

द्वितीय अंक मे सागरिका, अपनी सखी सुसंगता से उदयन के प्रति, अपने प्रेमाकर्षण की बात कहती है। सागरिका ने चित्र-फलक पर राजा का चित्र बनाया था; सुसंगता ने उसके पार्श्व में उदयन का चित्र बना दिया। इसी बीच राज-पालित एक बन्दर उपद्रव मचाता हुआ वहाँ आया और सागरिका सुसंगता के साथ चित्र-फलक छोड कर भयभीत होती हुई भाग गयी। तभी राजा उदयन विदूषक के साथ घूमते हुए आता है और उसे चित्र मिल जाता है। जब दोनों युवतियाँ चित्र लेने के लिए आती हैं, तभी वे छिप कर राजा और विदूषक का विश्रभालाप सुनती है। सुसंगता राजा और सागरिका का मिलन करा देती है, पर रानी के आगमन के कारण उनका मिलन आगे चल नहीं पाता। रानी को विदूषक की असावधानी के कारण चित्र-फलक मिल जाता है और वह अंकित चित्र को देखकर अपने प्रबल क्रोध को प्रकट किये बिना चली जाती है। उसको शान्त करने के लिए राजा निष्फल प्रयत्न करता है, पर वासवदत्ता को सारी स्थिति का परिज्ञान हो जाता है।

तृतीय अक मे विदूषक द्वारा दोनो प्रेमियो को मिलाने की योजना सफल हो जाती है। सागरिका वासवदत्ता का तथा सागरिका का वेष धारण कर सुसंगता राजा से मिलने के लिए तैयार होती है, पर इस षड्यन्त्र का पता वासवदत्ता को लग जाता है और महाराज की इस कुत्सित भावना पर उसे अत्यधिक क्रोध होता है। जब सागरिका उसी वेश मे उदयन से मिलती है, उसी समय वासवदत्ता भी वहाँ पहुच जाती है और उसे बडा क्रोध आता है। वह उदयन का प्रणय-निवेदन भी सुन लेती है। वासवदत्ता दोनो प्रेमियो को संयुक्त देखकर प्रचंड क्रोध मे भर कर विदूषक और सागरिका को बन्दी बना कर चल देती है।

चतुर्थ अंक के प्रवेशक से पता चलता है कि सागरिका रानी वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाकर उज्जयिनी भेज दी गयी, पर यह घटना प्रचारित की गयी है, वास्तविक नहीं है। इसी बीच एक ऐन्द्रजालिक राजा को जादू दिखाने के लिये प्रवेश करता है। खेल दिखाते समय ही अन्तःपुर मे आग लग जाती है और उसकी लपटे चारों ओर फैलने लगती है। वासवदत्ता ने सागरिका को बन्दी बनाकर रखा था, अतः उसे उसके जल जाने की चिन्ता होने लगी। इसलिये उसने उसकी रक्षा के निमित्त राजा से याचना की। राजा उसकी सहायता के लिए आग में कूद पडता है और निगड-बद्ध सागरिका को सुरक्षित स्थिति मे लाकर बाहर आ जाता है। पर, यह आग भी ऐन्द्रजालिक खेल ही थी। तत्क्षण यौगन्धरायण प्रकट होकर समस्त घटना का रहस्योद्घाटन करता है। वसुभूति और बाभ्रव्य का आगमन होता है और दोनों ही पोत-भङ्ग की बात कहते हैं। वसुभूति राजकुमारी रत्नावली को पहचान लेता है और उसका वास्तविक परिचय देता है। वासवदत्ता रत्नावली को गले लगाती है और राजा से ब्याह करने की सहर्ष अनुमति दे देती है। वासवदत्ता की प्रार्थना पर राजा रत्नावली को पत्नी रूप मे स्वीकार करते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटिका की समाप्ति हो जाती है।

'रत्नावली' संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध नाटिकाओं में है, जिसे नाट्यशास्त्रियों ने अत्यधिक महत्त्व देते हुए अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इसमें नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से विनियोग किया गया है। 'दशरूपक' या 'साहित्य-दर्पण' प्रभृति शास्त्रीय ग्रन्थों में रत्नावली को आधार बनाकर नाटिका का स्वरूप-मीमांसन किया गया है तथा इसे ही उदाहरण के रूप में रखा गया है। 'द्वयोर्नायिकानायकयो.। यथा—रत्नावली विद्धशालभञ्जिकादिः।' साहित्य-दर्पण ३।७२। नाटिका के शास्त्रीय स्वरूप की मीमांसा 'साहित्य-दर्पण' के अनुसार इस प्रकार है—नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्किका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥ स्यादन्तःपुरसम्बद्धा संगीतव्यापृताथवा। नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा॥ संप्रवर्त्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥ पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः। वृत्तिः स्यात्कैसिकी स्वल्पविमर्शाः संधयः पुनः॥ ३।२६९-२७२। "नाटिका की कथा कवि-कल्पित होती है। इसमें अधिकांश स्त्रियां होती हैं, चार अङ्क होते हैं। नायक प्रसिद्ध धीरललित राजा होता है। रनवास से सम्बन्ध रखनेवाली या गानेवाली राजवंश की कोई नवानुरागवती कन्या इसमें नायिका होती है। नायक का प्रेम देवी (महारानी) के भय से शङ्कायुक्त होता है, और देवी राजवंशोत्पन्न प्रगल्भा नायिका होती है। यह पद-पद पर मान करती है। नायिका और नायक का समागम इसी के अधीन होता है। यहां वृत्ति कैशिकी होती है और अल्प विमर्शयुक्त अथवा विमर्श-शून्य सन्धियां होती हैं।"

उपर्युक्त सभी नियमों की पूर्ण व्याप्ति 'रत्नावली' में होती है। इसमें चार अंक हैं तथा स्त्री पात्रों की संख्या अधिक है। इसका नायक राजा उदयन धीरललित या संगीत एवं कलाप्रेमी व्यक्ति है। इसकी नायिका रत्नावली अनुरागवती एवं राजकन्या है जिसका सम्बन्ध रनवास से है। राजा और रत्नावली का प्रेम रानी वासवदत्ता के भय के कारण सम्पन्न नहीं हो पाता, और दोनों को वासवदत्ता की शंका लगी रहती है। वासवदत्ता राजवंशोद्भव प्रगल्भा नायिका है। इसके ही अधीन नायक एवं नायिका का समागम है तथा यह पद-पद पर मान करनेवाली है। इसमें सर्वत्र कैशिकी वृत्ति अपनायी गयी है। इसमें अंगी रस शृंगार है और धीरललित नायक की प्रणय लीलाओं के चित्रण के लिए सर्वथा उपयुक्त है। विदूषक की योजना कर हास्यरस की भी सृष्टि की गयी है। शृङ्गार और हास्य के अतिरिक्त वीर तथा भयानक रस का भी संचार किया गया है। कवि ने रुमण्वान के युद्ध का वर्णन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जहाँ तक नाटकीय कथानक के विकास का प्रश्न है, उस घटना का महत्त्व अर्थात् रुमण्वान द्वारा कोशल-विजय की घटना, अल्प है। इस घटना को नाटिका से निकाल देने पर रचना-सौष्ठव एवं कथानक के गठन में अधिक चारुता आ जायगी। अतः, कथानक के विकास की दृष्टि से यह घटना अनुपयुक्त है। ऐसा लगता है कि कवि ने वीररस की सृष्टि के लिए ही इसका समावेश किया है। सहसा राजकीय बन्दर के छूटने एवं अन्तःपुर में आग लगने की घटना से भयानक रस की सृष्टि हुई है। इस दृश्य का कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। "हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव

नित्यैरविषामादधानः सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः । कुर्वन् क्रीडा-महीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातैरेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥" ४।१४। "अरे, अन्तःपुर में अचानक अग्नि लग गई है, जिससे भयभीत होकर स्त्रियां आर्त्तनाद कर रही है। अग्नि की लपटों के फैल जाने से राजप्रासादों के शिखर स्वर्णकान्ति के सदृश हो गये है, उद्यान के घने वृक्षों को झुलसाकर अग्नि ने अपने तीव्र ताप को प्रकट कर दिया है तथा अग्नि से उठे हुए धुएँ के कारण क्रीडा पर्वत सजल मेघ के सदृश काला हो गया है।" ऐन्द्रजालिक के चमत्कारों से अद्भुत रस की तथा वसुभूति द्वारा रत्नावली के डूबने का समाचार सुनकर वासवदत्ता के रो पड़ने मे करुण रस की व्यंजना हुई है। कवि ने शृंगार के उभय रूपों—संयोग तथा वियोग—का सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। सागरिका और उदयन के प्रेम को पूर्वानुराग के रूप मे चित्रित किया गया है, जो वियोग शृङ्गार के ही अन्तर्गत आयेगा।

'रत्नावली' में नाट्य-रचना-कौशल का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें कवि ने शृङ्गार रस की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस नाटिका मे रंगमंच पर अभिनीत होने वाली सभी विशेषताएँ हैं। इसमे कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा ऐसी घटनाओं का नियोजन किया है जो न केवल चमत्कारिणी है, अपितु स्वाभाविक भी हैं तथा कथावस्तु के विकास मे तीव्रता लाने वाली हैं। सारी घटनाओ के नाटकीय ढङ्ग से घटित होने के कारण इसका कथानक कौतूहलपूर्ण है। द्वितीय अङ्क में सारिका द्वारा सागरिका एव सुसंगता के वार्त्तालाप की पुनरावृत्ति राजा के हृदय में सागरिका के प्रति प्रेमोद्रेक मे सहायक बनती है। कवि की यह कल्पना अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं कथा को गति देनेवाली है। वेष-विपर्यय वाला दृश्य अत्यन्त हृदय-ग्राही है। सागरिका द्वारा वासवदत्ता का वस्त्र धारण कर अभिसरण करना तथा उस घटना का रहस्य वासवदत्ता को प्राप्त हो जाने के वर्णन में हर्ष की कल्पनाशक्ति के उच्चतम रूप का परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रकार ऐन्द्रजालिक की घटना तथा राजकीय बन्दर के भागने की कल्पना मे हर्ष की प्रतिभा ने नाटिका मे अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि की है। काव्यत्व-चारुता तो इस नाटक की अपनी विशेषता है। कवि ने सरस, मृदुल तथा कोमल शब्दो के द्वारा समस्त कृति को आकर्षक बनाया है। स्थान-स्थान पर तो काव्य की मधुरिमा अवलोकनीय है, जहाँ कवि ने रमणीय पदावली का निदर्शन कर चित्र को अधिक सघन एवं मोहक बनाया है। इसमे कही भी दुरूह शब्दों का प्रयोग नही हुआ है, और न कठिन समासबन्ध ही है। इसके सभी पात्र प्राणवन्त एवं आकर्षक है। कवि ने विषय के अनुरूप इसकी नायिका रत्नावली को मुग्धा के रूप में चित्रित किया है। शृङ्गार रस की पुष्टि के निमित्त वसन्त, सन्ध्या आदि के मधुर चित्र उपस्थित किये गए है। वैदर्भी रीति का सर्वत्र प्रयोग करने के कारण नाटिका में माधुर्य गुण ओत-प्रोत है।

चरित्र-चित्रण—रत्नावली मे प्रधान पात्र तीन है—राजा उदयन, रत्नावली एवं वासवदत्ता। गौण पात्रों में यौगन्धरायण, विदूषक आदि आते हैं। राजा उदयन—इस

नाटिका का नायक राजा उदयन धीरललित नायक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। राजा राजनयिक तथा प्रशासनिक कार्यों को योग्य मन्त्रियों पर छोड़ कर तथा विश्वस्त चित्त से पूरी निश्चितता के साथ अपने मित्र विदूषक की सहायता लेकर वासवदत्ता के प्रणय में लीन हो जाना है। "राज्यं निर्जितशत्रुयोग्यसचिवे न्यस्त: समस्तो भर: सम्यक् पालनलालिता: प्रशमिताशेषेप्रसर्गाः प्रजाः। प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृति कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः॥" १।९। "राज्य के सभी शत्रु परास्त कर दिये गये, योग्य मन्त्री पर सम्पूर्ण कार्यभार सौंप दिया गया। प्रजायें अच्छी रीति से पालित होने के कारण निरुपद्रव है तब प्रद्योतसुता वासवदत्ता है, तुम हो, सब तरह से यह महोत्सव मेरे लिये है, कन्दर्प का तो इसके साथ नाममात्र का सरोकार है।"

राजा के इस कथन से उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष व्यंजित होता है, और वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक नहीं दिखाई पड़ता। पर, यहाँ कवि ने राजा के अन्य रूप का चित्रण न कर केवल उसके प्रेमिल व्यक्तित्व को ही प्रस्तुत किया है। यहाँ उदयन का व्यक्तित्व प्रेमी, कलाप्रिय तथा विलासी का है। जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, वह दक्षिण नायक के रूप मे चित्रित हुआ है। वह सागरिका के प्रति आसक्त होते हुए भी वासवदत्ता से अनुराग रखते हुए उसका सम्मान करता है तथा उसे रुष्ट करना नहीं चाहता। वासवदत्ता के प्रति उसका सच्चा प्रेम है तथा अपने प्रति वासवदत्ता के अनन्य प्रेम का विश्वास भी है। सागरिका के प्रति उदयन के प्रेम प्रकट होने तथा पाद-पतन के बाद भी राजा पर प्रसन्न न होने एवं उदयन की चिन्ता बढ़ जाने के वर्णन मे इस तथ्य की पुष्टि होती है। राजा अपनी विवर्धित चिन्ता का वर्णन विदूषक से करता है—प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति॥" ३।१५ "निश्चय ही मेरी प्रिया प्राण त्याग देगी क्योंकि गाढे स्नेह की त्रुटि भयानक होती है।" प्रथमतः सागरिका के प्रति उसका प्रेम वासनामय लगता है। वह आन्तरिक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि सागरिका के विरह मे व्यथित होने पर भी वास-वदत्ता के आगमन के कारण उसके प्रेम का भय मे परिणत हो जाना राजा के प्रेम को मांसल सिद्ध करता है। वह वासवदत्ता से ऐसी बातें करता है कि सागरिका के प्रति उसका आकर्षण शिष्टाचार मात्र तथा बाहरी है। उसके इस असत्याचरण मे उसका चरित्र दूषित हो जाता है, और वह कामलिप्सु व्यक्ति के ही रूप में प्रदर्शित होता है। "जिस समय वह सागरिका को अपने प्रेम का विश्वास दिलाने के बाद पुनः वास-वदत्ता के आने पर उसे अपने असत्य वचन से मनाने का यत्न करता है, उस समय वह धृष्ट नायक की कोटि मे पहुंचता प्रतीत होता है।" पर, सागरिका के विरह मे उसकी वासना जल जाती है और उसका प्रेम उस समय उज्ज्वल हो जाता है, जब सागरिका को जलने से बचाने के लिए वह विदूषक के रोकने पर भी अपने प्राणों की बाजी लगा कर भयंकर अग्नि की लपटों में कूद पड़ता है।

राजा व्यवहारपटु, कोमल तथा शिष्ट है। वह परिजनों तथा सामान्य दासी के प्रति भी सहृदयता प्रदर्शित करते हुए कोमल भाषा का प्रयोग करता है। उसके कथोप-

कथन में कहीं भी उसका अधिकार-मद प्रकट नहीं होता और वह सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है। अन्तःपुर की दासी सुसंगता के प्रति उसका कथन कितना शिष्ट है—सुसङ्गते ! स्वागतम् , इहोपविश्यताम् । यद्यपि 'रत्नावली' में उदयन प्रधानरूप से विलासी एवं प्रेमी के ही रूप में चित्रित है तथापि कतिपय अवसर पर उसकी राजनैतिक पटुता एवं वीरता के भी दर्शन होते हैं। वह अपने वीर वैरी कोशलपति की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता—"साधु कोशलपते साधु। मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयति।" "धन्य हो, कोशलपति तुम धन्य हो, तुम्हारी मृत्यु भी प्रशंसनीय है, जिसके शत्रु भी इस प्रकार तुम्हारी वीरता की सराहना करते हैं।" प्रणय-लीला के मधुर क्षणों तथा विरह-वेदना के पीडामय दिवसो मे भी वह राज्य की समस्याओ से विरत नहीं रहता। विजयवर्मा से कोशल का समाचार सोत्साह सुनना तथा अपने सेनापति रुमण्वान् की रण-चातुरी एवं शत्रु विजय के लिए उसे साधुवाद देने मे उसकी राजनीतिक पटुता झलकती है। राजा की आज्ञा के बिना सागरिका के लाने के प्रयत्न मे यौगन्धरायण भयभीत होता है, पर राजा के स्वगत-कथन से ज्ञात होता है कि वह राजनीति से उदासीन नहीं रहता—योगन्धरायणेन न्यस्ता ? कथमसौ मामनिवेद्य किंचित्करिष्यति।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष ने अत्यन्त पटुता के साथ उदयन के प्रेमी एवं राजनीतिज्ञ उभय रूपो का चित्रण किया है। रत्नावली—सिंहलेश्वर-सुता रत्नावली इस नाटिका की नायिका है। उसी के नाम पर इस नाटिका का नामकरण किया गया है। सागर मे निमज्जित होकर बच जाने के कारण उसका नाम सागरिका रखा गया है। वह यौगन्धरायण द्वारा लाई जाकर अन्तःपुर मे रानी वासवदत्ता की दासी के रूप मे रखी जाती है। नाटिका के अन्तिम अंश को छोडकर वह सर्वत्र सागरिका के ही नाम से अभिहित हुई है। वह असाधारण सुन्दरी थी, इसीलिए रानी सदा उसे राजा की दृष्टि से बचाती रही कि कहीं राजा इस पर आकृष्ट न हो जाय। वह मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित हुई है।

उदयन के प्रथम दर्शन से ही उसकी जो स्थिति होती है उससे उसके मुग्धत्व की व्यञ्जना होती है। वह अपने मन मे कहती है कि 'इन्हें देखकर अत्यन्त लज्जा के कारण मैं एक पग भी नहीं चल सकती'। सुसंगता द्वारा चित्रित उसके चित्र को देखकर राजा ने जो उद्गार व्यक्त किये है, उनसे उसके अप्रतिम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। "दृशस्तृ पृथुरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विषश्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम्। शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा विधाय ललना जगत्त्रयललामभूतामिमाम्।" २।१६। 'इस त्रिलोक सुन्दरी रमणी को बना चुकने पर ब्रह्मा भी आखे फाड कर देखने लगे होंगे उनके चारो मुखो से एक साथ साधुवाद निकला होगा, और विस्मय से निश्चय ही उनके शिर हिलने लगे होंगे।'

रत्नावली अत्यन्त भावुक नारी ज्ञात होती है। राजा को देखते ही, प्रथम दर्शन मे ही वह उन पर अनुरक्त हो जाती है। यह जान कर भी कि रानी की दासी होते हुए उसका राजा से प्रेम करना कितना खतरनाक है, अपने ऊपर नियंत्रण नहीं करती,

यह उसकी भावुकता नहीं तो क्या है ? उसकी भाव-प्रवणता का दूसरा उदाहरण प्राण-त्यागने के लिए उतारू हो जाना भी है। राजा को देखते ही उसकी काम-व्यथा इस प्रकार बढ़ जाती है कि वह यह कहने को भी उतारू हो गयी —'सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्'। राजा के हाथ चित्र-फलक पड़ने पर जब विदूषक राजा से पूछता है कि यह उन्हें कैसी लग रही है, तब रत्नावली अपने सम्बन्ध मे राजा की प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक होती है। वह लता-कुञ्ज में छिप कर उनका वार्त्तालाप सुनती है। यदि राजा ने हां कह दिया तो अच्छा, अन्यथा नहीं कहने पर वह अपना प्राण त्याग देगी। '(आत्मगत) किमेष भणिष्यतीति यत्सत्यं जीवितमरणयोरन्तराले वर्ते'। वह दुर्बल हृदय की नारी है। संकेत-स्थान पर आकर जब वह राजा को नहीं पाती, तब जान जाती है कि उसकी अभिसार-चेष्टा का परिज्ञान रानी को हो गया है, अतः वह मृत्यु का ही वरण करना श्रेष्ठ समझती है—'वरमिदानीं स्वयमेवात्मानमुद्बध्योपरता न पुनर्ज्ञातसंकेतवृत्तान्ततया देव्या परिभूता।'

रत्नावली कला-प्रेमिका है और उसे चित्र-कला की विशेष पटुता प्राप्त है। वह उदयन के प्रति आसक्त होकर चित्र द्वारा ही अपना मनोरंजन करती है। उसकी चित्र-कला की प्रशंसा सुसंगता भी करती है। उसमे वंशाभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। दासी के रूप मे जीवन-यापन करते हुए अपनी अभिन्न-हृदया सखी सुसंगता से अपने वंश का परिचय नहीं देती। इसमे वह अपने सद्वंश की अप्रतिष्ठा मानती है। परिस्थितिवश राजकुमारी होकर भी उसे दासी का घृणित कार्य करना पड़ता है, जिससे उसके मन मे आत्मग्लानि का भाव आता है और वह जीवित रहना भी नही चाहती, पर राजा के प्रेम को प्राप्त कर उसे जीने की लालसा हो जाती है। उसमे आत्मसम्मान का भाव इस प्रकार भरा हुआ है, कि उसका वंशाभिमान समय-समय पर जागरूक हो जाता है और किसी प्रकार का अपना अपमान होने पर वह निर्लज्ज जीवन व्यतीत करने से मरण को उपयुक्त मान लेता है।

उदयन के प्रति उसका प्रेम वासनाजन्य न होकर, वास्तविक है तथा उसमें अन्धत्व का अभाव एवं मर्यादा की भी भावना है। वह उदयन के रूप की प्रशंसक है, पर सहसा उनकी ओर आकृष्ट नहीं होती। जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि यह वही उदयन है जिसके लिए उसके पिता ने उसको भेजा था, तो राजा के सौन्दर्य का आकर्षण प्रेम मे परिणत हो जाता है। वह औचित्यपूर्ण प्रेम का समर्थन करती है— 'न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।' 'उसके हृदय मे उदयन के प्रति प्रेम, वासवदत्ता से भय, सुसंगता के प्रति भगिनीवत् स्नेह और अपने जीवन के प्रति ग्लानि और मोह एक साथ है।'

वासवदत्ता—वासवदत्ता उदयन की प्रधान महिषी है। वह अत्यन्त प्रीति-प्रवण एवं स्वभाव से मृदु है। राजा के प्रति उसके मन मे सम्मान एवं प्रेम का भाव है। वह प्रेमिल प्रतिमा के रूप में चित्रित हुई है। वह राजा के प्रति इस प्रकार अनुरक्त है कि उसे अपनी जान की भी सुधि नहीं रहती। राजा के मन मे भी उसके प्रति दृढ़ विश्वास है। इसी कारण जब वह मान करती है तो राजा उसके चरणों पर गिर

पड़ता है। राजा को बिना उसे मनाये चैन नहीं पड़ता, क्योंकि उनका विश्वास है कि उनके प्रेम में किंचित् अन्तर आने पर भी वह जीवित नहीं रह सकती—'प्रिया मुग्ध-त्वद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति।' वासवदत्ता राजा की रूपलिप्सा से परिचित है, अतः वह सागरिका को राजा के नेत्रों के सम्मुख नहीं होने देती, और असावधानी से वह राजा के सामने आने लगती है तो वह अपनी दासियों पर बिगड़ने लगती है—'अहो ? प्रमादः परिजनस्य।' राजा के प्रति प्रगाढ़ स्नेह होने के कारण वह उनके ऊपर एकाधिकार चाहती है। वह उदयन को सागरिका से प्रेम करते देखना नहीं चाहती। उदयन के साथ सागरिका का चित्र चित्रित देखकर वह सिर की पीड़ा का बहाना बनाकर मान करती है, तथा सागरिका के अभिसार के रहस्य को जानकर उदयन के पाद-पतन पर भी नहीं मानती। उसमें सपत्नी की ईर्ष्या की भावना भरी हुई है। राजा के प्रति अनुराग होने के कारण वह अधिक देर तक रुष्ट नहीं रह पाती। राजा की दीनता और अपनी कठोरता के प्रति उसे पश्चात्ताप होता है और राजा को प्रसन्न करने के लिए कहती है—'मैंने राजा को उस स्थिति में छोड़कर अच्छा नहीं किया, चलूं, उनके पीछे जाकर उनके गले से लिपट कर उनको मना लूँ।'

वह सरल एवं दयालु हृदय की नारी है, पर उसमें कठोरता का भाव परिस्थिति-जन्य है। वह सागरिका के अविनय के कारण उसे कारागार में बन्द कर अन्तःपुर के किसी निभृत स्थान पर रख देती है, पर अग्निकाण्ड के कारण उसके जीवन के अनर्थ की आशंका से उसको बचाने के लिए राजा से प्रार्थना करती है। सागरिका का रहस्योद्-घाटन होने पर अपने प्राचीन भावों को भुलाकर उसे गले से लगा लेती है। सागरिका के प्रति अपने व्यवहार से उसे पश्चात्ताप होता है, पर वह उसे अपने वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर राजा से पत्नी के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई समस्त वातावरण को मधुर बना देती है।

आधारग्रन्थ—१. रत्नावली (हिन्दी अनुवाद सहित)—चौखम्बा प्रकाशन। २. संस्कृत नाटक—(हिन्दी अनुवाद) श्री कीथ। ३. संस्कृत नाटक-समीक्षा—श्री इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'। ४. संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री।

रसरत्नाकर—आयुर्वेद का ग्रन्थ। यह रसशास्त्र का विशालकाय ग्रन्थ है जिसमें पाँच खण्ड हैं—रसखण्ड, रसेन्द्रखण्ड, वादिखण्ड, रसायनखण्ड एवं मन्त्रखण्ड। इसके सभी खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इसके लेखक का नाम नित्यनाथ सिद्ध है। इनका समय १३ वीं शती है। ग्रन्थ में औषधियोग का भी वर्णन है पर रसयोग पर विशेष बल दिया गया है। इसमें यत्रतत्र तान्त्रिक योग का भी वर्णन है। 'रसरत्नाकर' मुख्यतः शोधन, मारण आदि रसविद्या के विषयों से पूर्ण है और इसके आरम्भ में ज्वरादि की भी चिकित्सा वर्णित है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

रसरत्नसमुच्चय—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम वाग्भट है तो सिंहगुप्त के पुत्र थे। लेखक का समय १३ वीं शताब्दी है। यह रसशास्त्र

का अत्यन्त उपयोगी एवं विशाल ग्रन्थ है। रसोत्पत्ति, महारसों का शोधन, उपरस, साधारण रसो का शोधन आदि विषय पुस्तक के प्रारम्भिक ग्यारह अध्यायों में वर्णित हैं तथा शेष भागो मे ज्वरादि रोगो का वर्णन है। इसमे रसशालानिर्माण का भी निर्देश किया गया है तथा कतिपय अर्वाचीन रोगो का वर्णन है। इसमे खनिजो (रसशास्त्र में) को पांच भागों मे विभक्त किया गया है—रस, उपरस, साधारणरस, रत्न तथा लोह। इसका हिन्दी अनुवाद आचार्य अम्बिकादत्त शास्त्री ए० एम० एम० ने किया है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

रसरत्नाकर या रसेन्द्रमंगल—आयुर्वेद का ग्रन्थ। यह आयुर्वेदीय रसविद्या का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। इसके लेखक नागार्जुन है जिनका समय सातवीं या आठवीं शताब्दी है। इसका प्रकाशन १९२४ ई० मे श्रीजीवराम कालिदास ने गोंडल से किया है। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय थे किन्तु उपलब्ध ग्रन्थ खण्डित है और इसमें चार ही अध्याय हैं। इस ग्रन्थ का सम्बन्ध महायान सम्प्रदाय से है और इसका प्रतिपाद्य विषय रसायन योग है। लेखक ने रासायनिक विधियो का वर्णन संवादशैली मे किया है जिसमें नागार्जुन, मांडव्य, वटयक्षिणी, शालिवाहन तथा रत्नघोष ने भाग लिया है। ग्रन्थ मे विविध प्रकार के रसायनो की शोधनविधि प्रस्तुत की गयी है—जैसे राजावर्तशोधन, गन्धकशोधन, दरदशोधन, माक्षिक से ताम्र बनाना तथा माक्षिक एवं ताप्य से ताम्र की प्राप्ति। पारद और स्वर्ण के योग से दिव्य शरीर प्राप्त करने की विधि देखिए—रसं हेम समं मद्यं पीठिका गिरिगन्धकम्। द्विपदी रजनीरम्भा मर्दयेत् टंकणान्वितम्॥ नष्टपिष्टं च मुष्कं च अन्धमूष्या निधापयेत्। तुषाल्लघुपुटं दत्वा यावद् भस्मत्वमागतः। भक्षणात् साधकेन्द्रस्तु दिव्यदेहमवाप्नुयात्॥ ३।३०–३२। नागार्जुन रचित दूसरा ग्रन्थ 'आश्चर्ययोगमाला' भी कहा जाता है।

आधारग्रंथ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्रीअत्रिदेव विद्यालकार।

रसहृदयतन्त्र—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। यह ग्रन्थ रसशास्त्र का व्यवस्थित एवं उपयोगी ग्रन्थ है। इसके रचयिता का नाम गोविन्द है जो ग्यारहवीं शताब्दी में विद्यमान था। इसमें अध्यायों की संज्ञा अवबोध है तथा उनकी संख्या १९ है। प्रथम अवबोध में रसप्रशंसा, द्वितीय में पारद के १८ संस्कारों के नाम तथा स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, नियमन एवं दीपन आदि संस्कारों की विधि वर्णित है। तृतीय एवं चतुर्थ अवबोध मे अभ्रकग्रास की प्रक्रिया एवं अभ्रक के भेद और अभ्रक सत्वपातन का विधान है। पांचवें में गर्भद्रुति की विधि, छठे में जागरण तथा सातवें मे बिडविधि वर्णित है। इसी प्रकार क्रमश उन्नीसवें अवबोध तक रसरंजन, बीजविधान, वैक्रान्तादि से सत्वपातन, बीजनिर्वाहण, द्वन्द्वाधिकार, संकरबीजविधान, संकरबीजजारण, बाह्यद्रुति, सारण, क्रामण, वेधविधान तथा शरीर-शुद्धि के लिए रसायन सेवन करने वाले योगों का वर्णन है। इसमे पारद के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यवस्थित ज्ञान उपलब्ध होते हैं। इसका प्रथम प्रकाशन आयुर्वेद ग्रन्थमाला से हुआ था जिसे श्री यादव जी त्रिकमजी आचार्य ने प्रकाशित कराया था। इसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा विद्या भवन से हुआ है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

रसेन्द्रचिन्तामणि—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। इसके रचयिता ढुन्ढीनाथ है जो कालनाथ के शिष्य थे। इसका रचनाकाल १३ एवं १४वीं शती के आसपास है। यह रसशास्त्र का अत्यधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके लेखक ने लिखा है कि इसकी रचना अनुभव के आधार पर हुई है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन रायगढ़ से सं० १९९१ मे हुआ था जिसे वैद्य मणिशर्मा ने स्वरचित संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित किया था।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

रसेन्द्रचूड़ामणि—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। यह रसशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसके रचयिता सोमदेव है। इनका समय १२ वी एवं तेरहवी शताब्दी का मध्य है। इसमे वर्णित विषयो की तालिका इस प्रकार है—रसपूजन, रसशाला-निर्माणप्रकार, रसशालासंग्राहण, परिभाषा मूषापुटयन्त्र, दिव्योषधि, ओषधिगण, महारस, उपरस, साधारणरस, रत्नधातु तथा इनके रसायन योग एवं पारद के १८ संस्कार। इसका प्रकाशन लाहौर से १९८९ संवत् मे हुआ था।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—अत्रिदेव विद्यालकार।

रसेन्द्रसारसंग्रह—आयुर्वेद का ग्रन्थ। यह रसशास्त्र का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। इसके रचयिता महामहोपाध्याय गोपालभट्ट हैं। पुस्तक का रचनाकाल १३ वीं शताब्दी है। इसमे पारद का शोधन, पातन, बोधन, मूर्च्छन, गन्धकशोधन, वैक्रान्त, अभ्रक, ताल, मैन्सिल का शोधन एवं मारण आदि का वर्णन है। इसकी लोकप्रियता बङ्गाल मे अधिक है। इसके दो हिन्दी अनुवाद हुए है—क—वैद्य घनानन्दकृत संस्कृत-हिन्दी टीका। ख—गिरिजादयालु शुक्लकृत हिन्दी अनुवाद।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

राघवपाण्डवीय—(महाकाव्य)—यह श्लेषप्रधान महाकाव्य है, जिसके रचयिता है कविराज। इस महाकाव्य मे कवि ने प्रारम्भ से अन्त तक एक ही शब्दावली मे रामायण और महाभारत की कथा कही है। स्वयं कवि ने अपने को वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु एव बाणभट्ट की श्रेणी मे अपने को रखते हुए 'भङ्गिमामयश्लेषरचना' की परिपाटी मे निपुण कहा है, तथा यह भी विचार व्यक्त किया है कि इस प्रकार का कोई चतुर्थ कवि है या नही, इसमे सन्देह है। सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः। वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥ १।४१। इस कवि का वास्तविक नाम माधवभट्ट था और कविराज उपाधि थी। ये जयन्तीपुर में कादम्बवंशीय राजा कामदेव के सभा-कवि थे। कामदेव नरेश का शासन-काल ११८२–११८७ ई० है। इस महाकाव्य मे १३ सर्ग है और सभी सर्गों के अन्त मे कामदेव शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कवि ने रामायण तथा महाभारत की कथा का, श्लेष के सहारे, एक ही शब्द में निर्वाह किया है। राम-पक्ष का वर्णन युधिष्ठिर-पक्ष के साथ एवं रावण-पक्ष का वर्णन दुर्योधन-पक्ष के साथ किया गया है, पर कहीं-कहीं इसका विपर्यय भी दिखाई देता है। 'राघवपाण्डवीय' मे महाकाव्य के सारे लक्षण पूर्णतः घटित हुए हैं। राम एवं युधिष्ठिर धीरोदात्त नायक हैं तथा वीर रस अंगी या प्रधान है। यथा—

संभव सभी रसों का अङ्गरूप से वर्णन है। ग्रन्थारम्भ मे नमस्क्रिया के अतिरिक्त खलो की निन्दा एवं सज्जनों की स्तुति की गयी है।

सन्ध्या, सूर्येन्दु का संक्षिप्त किन्तु मृगया, शैल, वन एवं सागर का विशद वर्णन है। विप्रलम्भ शृङ्गार, संयोग, मुनि, स्वर्ग, नरक, युद्धयात्रा, विजय, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रप्राप्ति, एवं अभ्युदय का सांगोपांग वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य के प्रारम्भ में राजा दशरथ एवं पाण्डु दोनों की परिस्थियो मे साम्य दिखाते हुए मृगयाविहार, मुनिशाप आदि बाते बड़ी कुशलता से मिलाई गयी है। पुनः राजा दशरथ एवं पाण्डु के पुत्रों की उत्पत्ति की कथा मिश्रित रूप से कही गयी है। तदनन्तर दोनों पक्षों की समान घटनाएँ वर्णित हैं—विश्वामित्र के साथ राम का जाना तथा युधिष्ठिर का वारणावत नगर जाना, तपोवन जाने के मार्ग मे दोनों की घटनाएँ मिलाई गयी है। ताडका और हिडिम्बा के वर्णन मे यह साम्य दिखलाई पडता है। द्वितीय सर्ग म राम का जनकपुर के स्वयंवर में तथा युधिष्ठिर का राजा पाचाल (द्रुपद) के यहाँ द्रौपदी के स्वयंवर मे जाना वर्णित है। पुनः राजा दशरथ एवं युधिष्ठिर के यज्ञ करने का वर्णन है। फिर मंथरा द्वारा राम के राज्यापहरण एवं द्यूतक्रीडा के द्वारा युधिष्ठिर के राज्यापहरण की घटनाएँ मिलाई गयी है। अन्त में रावण के दसो मुखो के कटने एवं दुर्योधन की जंघा टूटने का वर्णन है। अग्निपरीक्षा मे सीता का अग्नि से बाहर होने तथा द्रौपदी का मानसिक दुःख से बाहर निकलने के वर्णन में साम्य स्थापित किया गया है। इसके पश्चात् एक ही शब्दावली मे राम एवं युधिष्ठिर के राजधानी लौटने तथा भरत एवं धृतराष्ट्र से मिलने का वर्णन है। कवि ने राम और पाण्डव-पक्ष के वर्णन को मिलाकर अन्त-अन्त तक काव्य का निर्वाह किया है, पर समुचित घटना के अभाव मे वह उपक्रम के विरुद्ध आचरण करने के लिए बाध्य हुआ है। क—रावण के द्वारा जटायु की दुर्दशा से मिलाकर भीम के द्वारा जयद्रथ की दुर्दशा का वर्णन। ख—मेघनाद के द्वारा हनुमान् के बन्धन से अर्जुन के द्वारा दुर्योधन के अवरोध का मिलान। ग—रावण के पुत्र देवान्तक की मृत्यु के साथ अभिमन्यु के निधन का वर्णन। घ—सुग्रीव के द्वारा कुम्भराक्षस-वध से कर्ण के द्वारा घटोत्कच-वध का मिलान।

आधारग्रन्थ—राघवपाण्डवीय (हिन्दी अनुवाद तथा भूमिका) अनु० पं० दामोदर झा, चौखम्बा प्रकाशन (१९६५ ई०)।

राजतरङ्गिणी—संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक महाकाव्य। इसके रचयिता महाकवि कल्हण है [दे० कल्हण]। इसमे आठ तरङ्ग है। जिनमे काश्मीर-नरेशो का इतिहास वर्णित है। कवि ने प्रारम्भ-काल से लेकर अपने समकालीन (१२ वी शताब्दी) नरेश तक का वर्णन किया है। इसके प्रथम तीन तरङ्गो मे ५२ राजाओं का वर्णन है। यह वर्णन ऐतिहासिक न होकर पौराणिक गाथाओ पर आश्रित है, तथा उसमें कल्पना का भी आधार लिया गया है। इसका प्रारम्भ विक्रमपूर्व १२ सौ वर्ष के गोविन्द नामक राजा से हुआ है, जिसे कल्हण युधिष्ठिर का समसामयिक मानते हैं। इन वर्णनों मे कालक्रम पर ध्यान नहीं दिया गया है, और न इनमें इतिहास और पुराण में अन्तर ही दिखाया गया है। चतुर्थ तरङ्ग में कवि ने करकोट वंश का वर्णन

किया है। यद्यपि इसका भी प्रारम्भ पौराणिक है, पर आगे चल कर इतिहास का रूप मिलने लगा है। ६०० ई० से लेकर ८५५ ई० तक दुर्लभवर्धन से अनङ्गपीड तक के राजाओं का इसमें वर्णन है। इस वंश का नाश सुखवर्मा के पुत्र अवन्तीवर्मा द्वारा पराजित होने के बाद हो जाता है। पांचवीं तरङ्ग मे वास्तविक इतिहास प्रारम्भ होता है, जिसका प्रारम्भ अवन्तीवर्मा के वर्णन से होता है। ६ ठी तरङ्ग में १००३ ई० तक का इतिहास वर्णित है जिसमे रानी दिद्दा तक का वर्णन है। सातवीं तरङ्ग का प्रारम्भ रानी दिद्दा के भतीजे से होता है जिसमे लोहर वंश का प्रारम्भ हुआ। इस तरङ्ग मे १००१ ई० तक की घटनाएं १७३१ पद्यो में वर्णित हैं। कवि राजा हर्ष की हत्या तक का वर्णन इस सर्ग में करता है। अन्तिम तरङ्ग अत्यन्त विस्तृत है तथा इसमे ३४४९ पद्य हैं। इसमें कवि उच्छल के राज्यारोहण से लेकर अपने समय तक की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करता है। इस विवरण से ज्ञात होता है कि 'राजतरङ्गिणी' मे कवि ने अत्यन्त लम्बे काल तक की घटनाओं का विवरण दिया है। इसमे सभी विवरण अशुद्ध एवं काल्पनिक है तथा उनमे निराधार कल्पना एवं जनश्रुति को आधार बनाया गया है। पर, जैसे-जैसे वे आगे बढते गए हैं उनके विवरणो मे ऐतिहासिक तथ्य आ गए है और कवि वैज्ञानिक ढंगसे इतिहास प्रस्तुत करने की स्थिति में आ गया है। ये विवरण पौराणिक एवं काल्पनिक न होकर विश्वसनीय एवं प्रामाणिक है।

[हिन्दी अनुवाद सहित राजतरङ्गिणी का प्रकाशन पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी से हो चुका है]।

राजशेखर—संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार एवं काव्यशास्त्री। इनका जीवनवृत्त अन्य साहित्यकारों की भांति धूमिल नहीं है। इन्होने अपने नाटको की प्रस्तावना मे विस्तारपूर्वक अपनी जीवनी प्रस्तुत की है। ये महाराष्ट्र की साहित्यक परम्परा से विमण्डित एक ब्राह्मण वंश मे उत्पन्न हुए थे। इनका कुल यायावर के नाम से विख्यात था। कीथ ने भ्रमवश इन्हें क्षत्रिय मान लिया है। इनकी पत्नी अवश्य ही, चौहान कुलोत्पन्न क्षत्रिय थी, जिनका नाम अवन्तिसुन्दरी था। ये प्राकृत तथा संस्कृत भाषा की विदुषी एवं कवयित्री थीं। राजशेखर ने अपने साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्य-मीमांसा' मे 'पाक' के प्रकरण मे इनके मत का आख्यान किया है। राजशेखर कान्य-कुब्ज नरेश महेन्द्रपाल एवं महीपाल के राजगुरु थे। प्रतिहारवंशी शिलालेखों के आधार पर महेन्द्रपाल का समय दसवी शती का प्रारम्भिक काल माना जाता है, अतः राजशेखर का भी यही समय है। उस युग में राजशेखर के पाण्डित्य एवं काव्यप्रतिभा की सर्वत्र तूती बोलती थी और वे अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति के अवतार मानते थे। बभूव वल्मीकिभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठ-ताम्। स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥ बालभारत। इनके सम्बन्ध में सुभाषित संग्रहो तथा अनेक ग्रन्थो मे जो विचार व्यक्त किये गए है उनको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—१. यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाजवर्यैः। नृत्यत्युदारं भणिते गुणस्था नटी वयस्योदरसा पदश्रीः॥ 'सोड्ढल'। २. पातुं कर्णरसायनं

रचयितुं वाचं सतां संमतां, व्युत्पत्ति परमामवाप्तुमवधि लब्धुं रसस्रोतस । भोक्तुं स्वादु फल च जीवितत्तरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं, तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः । शङ्करवर्मणः । सदुक्तिकर्णामृत ५।२७।३ । ३ समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः । यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तय. ॥ धनपाल तिलकमंजरी ३३ । ४. स्वयं कवि की अपने सम्बन्ध मे उक्ति—कर्णाटी-दशनाङ्कितः शितमहाराष्ट्री कटाक्षाहतः प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः । लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जित. सोयं संप्रति राजशेखरकविः वाराणसी वाञ्छति ॥

राजशेखर की अबतक दस रचनाओं का पता चला है, जिनमे चार रूपक, पाच प्रबन्ध एवं एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है । इन्होने स्वयं अपने षट्प्रबन्धो का संकेत किया है—विद्धिनः षट् प्रबन्धान्—बालरामायण १।१२ । इन प्रबन्धो मे पाँच प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं तथा एक 'हरविलास' का उद्धरण हेमचन्द्ररचित 'काव्यानुशासन' मे मिलता है । 'काव्यमीमासा' इनका साहित्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थ है । चार नाटकों के नाम है—'बालरामायण', 'बालमहाभारत', 'विद्धशालभञ्जिका' एवं 'कर्पूरमंजरी' । १ बालरामायण—इसकी रचना १० अंको मे हुई है तथा राम-कथा को नाटक का रूप दिया गया है [दे० बालरामायण] । २ बालमहाभारत—इसका दूसरा नाम 'प्रचण्डपाण्डव' भी है । इसमे महाभारत की कथा का वर्णन है । इसके दो प्रारम्भिक अंक ही उपलब्ध हैं [दे० बालमहाभारत] । ३. विद्धशालभञ्जिका—यह चार अंको की नाटिका है जिसमें लाट के सामन्त रामचन्द्रवर्मा का पुत्री मृगाङ्कावली का सम्राट् विद्याधर मल्ल के साथ विवाह होने का वर्णन है [दे० विद्धशालभंजिका] । ४. कर्पूरमंजरी—इसकी रचना चार यवनिकांतरो मे हुई है, अत यह भी नाटिका ही है, पर सम्पूर्ण रचना प्राकृत मे होने के कारण इसे सट्टक कहा जाता है ।

राजशेखर ने स्वयं अपने को कविराज कहा है और महाकाव्य के प्रणेताओ के प्रति आदर का भाव प्रकट किया है । ये भूगोल के भी महाज्ञाता थे और इन्होंने भूगोल-विषयक 'भुवनकोष' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी, किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है, और इसकी सूचना 'काव्यमीमासा' में प्राप्त होती है । राजशेखर बहुभाषाविज्ञ थे । इन्होने कविराज उसे कहा है जो समान अधिकार के साथ अनेक भाषाओ म रचना कर सके । इन्होने स्वय अनेक भाषाओं मे रचना की थी । इनकी उक्ति ध्यातव्य है—गिरः श्रव्या दिव्याः प्रकृतिमधुराः प्राकृतधुराः सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम् । विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयाश्च त इमे निबद्धा यस्त्वेषा स खलु निखिलेऽस्मिन् कविवृषा ॥ राजशेखर की रचनाओ के अध्ययन मे ज्ञात होता है कि वे नाटककार की अपेक्षा कवि के रूप मे अधिक सफल हैं । 'बालरामायण' की विशालता उसे अभिनेय होने मे बाधक सिद्ध होती है । इन्होंने वर्णन चातुरी का प्रदर्शन कर इस नाटक में अपनी अद्भुत काव्य-क्षमता का परिचय दिया है, पर यही गुण उसके नाटकीय रूप को नष्ट कर देने वाला सिद्ध होता है । 'बालरामायण' में कुल ७४१ पद्य हैं तथा इनमे भी २०० पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में एवं ८६ पद्य स्रग्धरावृत्त में हैं । अन्तिक अंक में कवि ने १०५ पद्यों मे रामचन्द्र के अयोध्या

प्रत्यावर्त्तन का वर्णन किया है, जो किसी भी नाट्य कृति के लिए अनुपयुक्त माना जा सकता है। राजशेखर शार्दूलविक्रीडित छन्द के सिद्धहस्त कवि हैं जिसकी प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में की है—शार्दूल-विक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः। शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥ राजशेखर ने अपने नाटकों के 'भणितिगुण' स्वयं प्रशंसा की है। 'भणितिगुण' से इनका तात्पर्य है उस गुण से जिसके कारण उक्ति सरस, सुन्दर एवं सुबोध बनती है। इन्होंने 'बालरामायण' के 'नाट्यगुण' को महत्त्व न देकर उसे पाठ्य एवं गेय माना है। ये अपने नाटकों की सार्थकता अभिनेय में न मानकर पढ़ने में स्वीकार करते हैं। ब्रूते यः कोऽपि दोषः महदिति सुमतिर्बालरामायणेऽस्मिन् प्रष्टव्योऽसौ पटीयान् इह भणितिगुणो विद्यते वा न वेति। यद्यस्ति स्वस्ति तुभ्यं भव पठनरुचिः ॥ १।१२ बालरामायण। आचार्यों ने राजशेखर को 'शब्द-कवि' कहा है। सीता के रूप का वर्णन अत्यन्त मोहक है—सीता के मुख के समक्ष चन्द्रमा ऐसा लगता है मानों उसे अंजन से लीप दिया गया हो। मृगियों के नेत्रों में मानों जड़ता प्रविष्ट कर गयी है तथा मूंगे की लता की लालिमा फीकी पड़ गयी है। सोने की कान्ति काली हो गयी है तथा कोकिलाओं के कलकण्ठ में मानों कला के रूखेपन का अभ्यास कराया गया है। मोरों के चित्र-विचित्र पंख मानो निन्दा के भार से दबे हुए हैं। इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव, प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः। पारुष्यं कलया च कोकिलावधू-कण्ठेष्विव प्रस्तुतं, सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव ॥ बालरामायण १।४२। राजशेखर मे प्रथमकोटि की काव्यप्रतिभा थी। वर्णन की निपुणता तथा अलंकारों का रमणीय प्रयोग इन्हें उच्चकोटि के कवि सिद्ध करते है। इनमें कल्पना का अपूर्व प्रवाह दिखाई पड़ता है तथा शब्द-चमत्कार पद-पद पर प्रदर्शित होता है। इन्होंने अपनी रचना में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी चमत्कारपूर्ण विन्यास किया है। 'नव नगद न तेरह उधार' का सुन्दर प्रयोग किया गया है—'वरं तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनः दिवसां तरिता मयूरी'। [दे० काव्यमीमांसा।]

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। २. संस्कृत नाटक—कीथ।

राजानक रुय्यक—साहित्यशास्त्र (काव्यशास्त्र) के आचार्य। इनका समय बारहवीं शताब्दी का मध्य है। ये काश्मीरक बताये जाते हैं और राजानक इनकी उपाधि थी। इनका दूसरा नाम रुचक था। 'काव्यप्रकाशसंकेत' नामक ग्रन्थ में (प्रारम्भिक द्वितीय पद्य) लेखक ने अपना नाम रुचक दिया है—काव्यप्रकाशसंकेतो रुचकेनेह लिख्यते। इसके अतिरिक्त अलंकारसर्वस्व के टीकाकार चक्रवर्ती ने भी रुचक नाम दिया है—और कुमारस्वामी (रत्नापणटीका, प्रतापरुद्रीय) अप्पय दीक्षित आदि ने भी रुचक नाम दिया है। मंखक के 'श्रीकण्ठचरित' महाकाव्य मे [दे० मंखक] रुय्यक अभिधा दी गयी है। अतः इनका दोनों ही नाम प्रामाणिक है और दोनों ही नामधारी एक ही व्यक्ति थे। रुय्यक के पिता का नाम राजानक तिलक था जिन्होंने 'काव्यालंकारसार-संग्रह' पर उद्भटविवेक या विचार नामक टीका लिखी थी। ये रुय्यक के गुरु भी थे।

मंखककृत 'श्रीकण्ठचरित' का निर्माणकाल ११३५–४५ के मध्य है। रुय्यक ने 'अलंकारसर्वस्व' में श्रीकण्ठचरित के ५ श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये हैं, अतः इनका समय १२ वीं शताब्दी का मध्य ही निश्चित होता है। 'अलंकारसर्वस्व' लेखक की प्रौढ़ कृति है अतः इनका आविर्भावकाल १२ वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

सर्वस्वकार ने साहित्य के विभिन्न अंगों पर स्वतन्त्र रूप से या व्याख्यात्मक ग्रन्थों की रचना की है। इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—सहृदयलीला (प्रकाशित), साहित्यमीमांसा, (प्रकाशित), नाटकमीमांसा, अलंकारानुसारिणी, अलंकारमंजरी, अलंकारवार्त्तिक, अलंकारसर्वस्व (प्रकाशित), श्रीकण्ठस्तव, काव्यप्रकाशसंकेत (प्रकाशित), हर्षचरितवार्तिक, व्यक्तिविवेकव्याख्यानविचार (प्रकाशित) एवं वृहती। सहृदयलीला अत्यन्त छोटी पुस्तक है जिसमे ४–५ पृष्ठ हैं। इसमे 'उत्कर्ष ज्ञान के द्वारा वैदग्ध्य और उसके द्वारा सहृदय बनकर नागरिकता की सिद्धि' का वर्णन है। साहित्यमीमांसा—यह साहित्यशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमें आठ प्रकरण हैं। ग्रन्थ तीन भागो में विभाजित है कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण। साहित्यपरिष्कार के दोषगुणत्याग, कवि एवं रसिकों का वर्णन, वृत्ति एवं उसके भेद, पददोष, काव्यगुण, अलंकार, रस, कविभेद एवं प्रतिभाविवेचन एवं काव्यानन्द आदि विषयो का इसमे विवेचन है। इसमे व्यंजनाशक्ति का वर्णन नहीं है और तात्पर्यवृत्ति के द्वारा रसानुभूति होने का कथन किया गया है—अपदार्थोऽपि वाक्यार्थो रसस्तात्पर्यवृत्तितः-सा० मी० पृ० ८५। 'अलंकारसर्वस्व' इनका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसमे अलंकारो का प्रौढ़ विवेचन है [दे० अलंकारसर्वस्व]। 'नाटकमीमांसा' का उल्लेख 'व्यक्तिविवेकव्याख्यान' नामक ग्रन्थ में किया गया है, सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है—अस्य च विधेयाविमर्शस्यानन्तेतरप्रसिद्धलक्ष्यपातित्वेनास्माभिर्नाटकमीमासाया साहित्यमीमासायां च तेषु तेष स्थानेषु प्रपंचो दर्शितः। पृ० २४१। अलकारानुसारिणी, अलंकारवार्त्तिक एवं अलंकारमंजरी की सूचना जयरथकृत विमर्शिणी टीका मे प्राप्त होती है। 'काव्यप्रकाशसंकेत' काव्यप्रकाश पर संक्षिप्त टीका है और 'व्यक्तिविवेकव्याख्यान' महिमभट्ट कृत 'व्यक्तिविवेक' की व्याख्या है जो अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध है।

रुय्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होने 'अलंकारसर्वस्व' के प्रारम्भ में काव्य की आत्मा के संबंध में भामह, उद्भट, रुद्रट, वामन, कुंतक, महिमभट्ट एवं ध्वनिकार के मत का सार उपस्थित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनके विवेचन का अत्यधिक महत्त्व है। परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ एवं शोभाकर मित्र ने रुय्यक के अलंकारसंबंधी मत से पर्याप्त सहायता ग्रहण की है।

आधारग्रन्थ—अलंकार-मीमांसा—डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी।

रामाचन्द्र—ये हेमचन्द्राचार्य के शिष्य तथा कई नाटको के रचयिता एवं प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ 'नाट्यदर्पण' के प्रणेता हैं, जिसे इन्होंने गुणचन्द्र की सहायता से लिखा है। ये गुजरात के रहने वाले थे। इनका समय बारहवीं शती है। इन्होने विभिन्न विषयों पर रूपक की रचना कर अपनी बहुविध प्रतिभा का निदर्शन किया है। इनके

समग्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते, पर छोटे-छोटे प्रबंधों को लेकर लगभग तीस ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं। इन्होंने रूपकों के अन्तर्गत नाटक, प्रकरण, नाटिका तथा व्यायोग का वर्णन किया है। इनमे नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—'नलविलास' एवं 'सत्यहरिश्चन्द्र' दोनों ही नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। 'यादवाभ्युदय', 'राघवाभ्युदय' तथा 'रघुविलास' नामक तीन ग्रन्थ अप्रकाशित हैं तथा इनके उद्धरण 'नाट्यदर्पण' में प्राप्त होते हैं। इन्होंने तीन प्रकरणों की भी रचना की है जिसमें 'कौमुदी मित्रानन्द' का प्रकाशन हो चुका है, किन्तु 'रोहिणीमृगांकप्रकरण' एवं 'मल्लिकामकरंद' 'नाट्यदर्पण' में ही उद्धृत हैं। इन्होने 'वनमाला' नामक नाटिका की भी रचना की थी जो अप्रकाशित है। इसके 'नाट्यदर्पण' मे उद्धरण प्राप्त होते हैं, जिससे पता चलता है कि इसमें नल-दमयन्ती की कथा वर्णित है। इन्होंने 'निर्भयभीम' नामक व्यायोग की रचना की है जो प्रकाशित हो चुका है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थों के प्रणयन से ज्ञात होता है कि रामचन्द्र प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, जिन्होने व्यापक रचना-कौशल एवं नाट्यचातुरी का परिचय दिया है। 'रघुविलास' की प्रस्तावना में इनकी प्रशस्ति इस प्रकार की गई है—पञ्चप्रबन्धमिपञ्च मुखानकेन विद्वन्मनःसदसि नृत्यति यस्य कीर्तिः। विद्यात्रयीचरणचुम्बितकाव्यतन्द्र कस्तं न वेद सुकृती किल रामचन्द्रम्॥

रामचन्द्रचम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता महाराज विश्वनाथ सिंह हैं। ये रीवा के नरेश थे और इनका शासनकाल १७२१ से १७४० ई० तक है। इसमे कवि ने आठ परिच्छेदों मे रामायण की कथा का वर्णन किया है। पुस्तक का प्रारम्भ सीता की वन्दना से हुआ है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण मित्रा कैटलॉग, वोल १, सं० ७३ मे प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

रामचन्द्र गुणचन्द्र—नाट्यशास्त्र के आचार्य। दोनों ही आचार्य हेमचन्द्राचार्य के शिष्य एवं प्रसिद्ध जैन विद्वान् थे। दोनों की सम्मिलित रचना 'नाट्यदर्पण' है। इनमे गुणचन्द्र की अन्य कृति प्राप्त नहीं होती पर रामचन्द्र के अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते है जिनमे नाटको की संख्या अधिक है। इनके ११ नाटकों के उद्धरण 'नाट्यदर्पण' में प्राप्त होते है। इन्हें 'प्रबन्धशतकर्त्ता' कहा जाता है। दोनों ही आचार्य गुजरात के तीन राजाओं—सिद्धराज, कुमरपाल तथा अजयपाल—के समय में विद्यमान थे। इनका समय १२ वी शताब्दी है। कहा जाता है कि अजयपाल के आदेश से रामचन्द्र को मृत्युदण्ड मिला था। 'नाट्यदर्पण' नाट्यशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी रचना कारिकाशैली में हुई है जिस पर स्वयं ग्रन्थकार ने वृत्ति लिखी है। ग्रन्थ चार विवेक (अध्याय) में विभक्त है। प्रथम विवेक में नाटक के तत्त्वों का विवेचन है तथा द्वितीय में प्रकरणादि रूपक के नौ भेद वर्णित हैं। तृतीय विवेक में नाट्यवृत्ति, अभिनय एवं रसों का विस्तृत विवेचन एवं चतुर्थ में नायक-नायिका-भेद, स्त्रियो के अलंकार तथा उपरूपक के भेदों का वर्णन है। इसमें रस को केवल सुखात्मक न मानकर दुःखात्मक भी सिद्ध किया गया है। इसमें लगभग ३५ ऐसे नाटकों के

उद्धरण हैं जिनका कहीं भी उल्लेख नही है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध होता है। श्रीविशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक अनुपलब्ध नाटक का उद्धरण इसमे प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि ने किया है।

आधारग्रन्थ—१. हिन्दी नाट्यदर्पण—अनु० आ० विश्वेश्वर, २ भारतीय साहित्य-शास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

रामचरित—यह श्लेष काव्य है। इसके रचयिता सन्ध्याकरनन्दी हैं जो बंगाल के निवासी थे। उनके पिता का नाम प्रजापतिनन्दी था। 'रामचरित' की रचना मदनपाल के राज्यकाल मे हुई थी जिनका समय एकादश शतक का अन्तिम भाग है। इसमे कवि ने भगवान् रामचन्द्र तथा पालवंशी नरेश रामपाल का एक ही साथ श्लेष के द्वारा वर्णन किया है। [वीरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी (कलकत्ता) से १९३९ ई० मे प्रकाशित, सम्पादक डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार]

रामदैवज्ञ—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इनका स्थिति-काल १५६५ ई० है। ये प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री अनन्तदैवज्ञ के पुत्र थे और नीलकण्ठ (ज्योतिष के आचार्य) इनके भाई थे। रामदैवज्ञ ने 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामक फलित ज्योतिष का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जो विद्वानो के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है। कहा जाता है कि अकबर की आज्ञा से इन्होने 'रामविनोद' संज्ञक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की थी और टोडरमल के प्रसन्नार्थ 'टोडरानन्द' का निर्माण किया था। 'टोडरानन्द' संहिताविषयक ग्रन्थ है जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द शास्त्री।

रामानुजाचार्य—श्री वैष्णव मत के प्रतिष्ठापक तथा विशिष्टाद्वैतवाद नामक वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक। इनका जन्म १०१७ ई० में (समय १०१७ से ११३७ ई०) मद्रास के निकटस्थ ग्राम तेरुकुदूर मे हुआ था। वे प्रसिद्ध आचार्य यामुनाचार्य के निकट सम्बन्धी थे। उनके पिता का नाम केशवभट्ट था। उन्होने यादवप्रकाश नामक अद्वैती विद्वान् से कांची मे जाकर शिक्षा ग्रहण की। किन्तु उपनिषद्-विषयक अर्थ मे गुरु-शिष्य में विवाद उपस्थित होने के कारण यह अध्ययन-क्रम अधिक दिनों तक नहीं चला सका, फलतः उन्होने स्वतन्त्ररूप से वैष्णवशास्त्र का अनुशीलन करना प्रारम्भ कर दिया। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'वेदार्थसंग्रह' (इसमे शांकर अद्वैत तथा भेदाभेदवादी भास्करमत का खण्डन किया गया है), 'वेदान्तसार' (यह ब्रह्मसूत्र की लघ्वक्षरा टीका है), 'वेदान्तदीप' (ब्रह्मसूत्र की विस्तृत व्याख्या), 'गीताभाष्य' (श्रीवैष्णवमतानुकूल गीता का भाष्य), ब्रह्मसूत्र का विशिष्टाद्वैतपरक भाष्य जिसे 'श्रीभाष्य' कहते है।

तत्त्वमीमासा—रामानुजाचार्य का मत विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है। इस मत मे पदार्थत्रय की मान्यता है—चित्, अचित् तथा ईश्वर। चित् का अर्थ भोक्ता जीव से है तथा अचित् भोग्य जगत् को कहते है। ईश्वर सर्वान्तर्यामी परमेश्वर है। रामानुज के अनुसार जीव और जगत् भी नित्य और सत्य हैं, क्योंकि ये ईश्वर के अंग हैं,

किन्तु इनकी सत्ता स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में है। उनके अनुसार ईश्वर सदा सगुण सविशेष होता है, किन्तु संसार के सभी पदार्थ गुण विशिष्ट होते हैं। रामानुज के अनुसार ईश्वर जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण दोनों ही है। वह चित् अचित् का नियमन करते हुए उन्हें कार्य में प्रवृत्त करता है। चिदचित् दोनों ही ईश्वर पर आश्रित होते हैं। ईश्वर विशेष्य होता है और जीव जगत् विशेषण होते हैं। विशेष्य या ब्रह्म की सत्ता पृथक् रूप से सिद्ध है किन्तु जीव और जगत् विशेषण रूप होने के कारण ईश्वर से सम्बद्ध होते हैं। अद्वैत ब्रह्म को सगुण और सविशेष मानने के कारण इनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रख्यात है।

ईश्वर—ईश्वर जगत् की उत्पत्ति लीला करने के लिए करता है और उसे इस कार्य से आनन्दानुभव होता है। ब्रह्म की सृष्टि होने के कारण जगत् उतना ही वास्तविक एवं सत्य है जितना कि ब्रह्म। वे सृष्टि और जगत् को भ्रम नहीं मानते। विशिष्टाद्वैतवाद मे ईश्वर दो प्रकार का माना गया है—कारणवस्थ ब्रह्म एवं कार्यावस्थ ब्रह्म। सृष्टिकाल मे जगत् स्थूल रूप में प्रतीत होता है, किन्तु प्रलयकाल मे उसकी प्रतीति सूक्ष्मरूप में होती है। अतः प्रलयकाल में जीव और जगत् का सूक्ष्म रूपापन्न होने से उनसे सम्बद्ध ईश्वर कारणब्रह्म कहा जाता है, किन्तु सृष्टि के समय चिदचिद् के स्थूल होने के कारण उसी चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर को 'कार्यब्रह्म' कहते है। ब्रह्म किसी भी स्थिति मे विशिष्टता से हीन नहीं होता। प्रलयकाल मे भी जब कि चित् और अचित् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं उस समय भी ईश्वर चित् और अचित् से विशिष्ट होने के कारण सगुण एवं सविशेष बना रहता है। वह भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए पाच रूप धारण करता है। पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार।

चित्—चित् जीव को कहते हैं जो देह-इन्द्रिय-मन-प्राण बुद्धि से विलक्षण, अजड़, आनन्दरूप, नित्य, अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव, निर्विकार तथा ज्ञानाश्रय होता है। वह अपने सभी कार्यों के लिए ईश्वर पर आश्रित होता है। रामानुज के अनुसार जीव और ईश्वर का सम्बन्ध देह और देही की भांति या चिनगारी और अग्नि की तरह है।

अचित्—अचित् जड और ज्ञानशून्य वस्तु को कहते है। इसके तीन भेद हैं—शुद्ध-सत्त्व, मिश्रसत्त्व एवं सत्वशून्य। सत्त्वशून्य अचित् तत्त्व 'काल' कहा जाता है। तम और रज से मिश्रित तत्त्व को मिश्रसत्त्व कहते है। इसी का नाम माया या अविद्या है। शुद्धसत्त्व में रज और तम का लेशमात्र भी नहीं रहता तथा वह शुद्ध, नित्य, ज्ञानानन्द का जनक तथा निरवधिक तेज स्वरूप द्रव्य होता है।

ईश्वर-भक्ति—रामानुज ने मुक्ति का साधन ईश्वर-भक्ति को माना है। कोरे ज्ञान या वेदान्त के अध्ययन से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। कर्म और भक्ति के द्वारा उत्पन्न भक्ति ही मुक्ति का साधन है। रामानुज वेदोक्त कर्मकाण्ड या वर्णाश्रम के अनुसार नित्य नैमित्तिक कर्म पर अधिक बल देते हैं। बिना किसी कामना या स्वर्गादि की प्राप्ति की इच्छा से भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। ईश्वर की अनन्य भक्ति के

द्वारा भक्त मे प्रपत्ति या पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव आता है। भक्ति और प्रपत्ति ही मोक्ष के साधन हैं। इनके द्वारा अविद्या और कर्मों का नाश हो जाता है तथा आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सदा के लिए मुक्त हो जाता है। साधक की भक्ति तथा प्रपत्ति से प्रसन्न होकर परमात्मा उसे मुक्ति प्रदान करते हैं और जीव आवागमन के चक्र से छुटकारा पा जाता है। मुक्ति का अर्थ परमात्मा में आत्मा का मिल कर एकाकार होना न होकर मुक्त आत्मा का शुद्ध एवं निर्मल ज्ञान से युक्त होकर ब्रह्म के समान निर्दोष हो जाना है। श्रीवैष्णवमत मे दास्यभाव की भक्ति स्वीकार की गयी है। अपने स्वामी नारायण के चरणों मे अपने को छोड़ देना तथा सभी धर्मों का त्याग कर शरणापन्न होना ही भक्ति का रूप है। रामानुजाचार्य ने भगवान् नारायण की उपासना की पद्धति चलाई। इस मत में गुरु या आचार्य का भी महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। जीव को अपने स्वामी भगवान् के पास पहुँचने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। इस सम्प्रदाय का जन्म शांकर अद्वैत की प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था और दार्शनिक जगत् मे इसी कारण यह विशेष महत्व का अधिकारी है।

आधारग्रन्थ—१. भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय। २. भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. वैष्णवमत—पं० परशुराम चतुर्वेदी। ४ रामानुज-दर्शन—डॉ० सरनाम सिंह।

रामायण—यह संस्कृत का आदि काव्य है जिसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि है [दे० वाल्मीकि]। 'रामायण' चतुर्विंशतिसंहिता' के नाम से विख्यात है क्योंकि इसमें २४ सहस्र श्लोक है। गायत्री मे भी २४ अक्षर होते हैं। विद्वानों का कथन है कि 'रामायण' के प्रत्येक हजार श्लोक का प्रथम अक्षर गायत्री मन्त्र के ही अक्षर से प्रारम्भ होता है। भारतीय परम्परा के अनुसार आदि कवि वाल्मीकि ने त्रेतायुग के प्रारम्भ में, राम के जन्म के पूर्व ही, रामायण की रचना की थी। भारतीय जन जीवन में आदि काव्य धार्मिक ग्रन्थ के रूप मे मान्य है। 'रामायण' की शैली प्रौढ़, काव्यमय, परिमार्जित, अलंकृत एवं प्रवाहपूर्ण है तथा इसमे अलंकृत भाषा के माध्यम से समग्र मानवजीवन का अत्यन्त रमणीय चित्र अंकित किया गया है एवं कवि की दृष्टि प्रकृति के अनेकविध मनोरम दृश्यो की ओर भी गयी है। रामायण का कवि प्रकृति की सुरम्य वनस्थली से अपने को दूर नही कर पाता और वर्णन की पृष्ठभूमि के रूप मे अथवा मन को रमाने के लिए या मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का सहारा ग्रहण करता है। सम्पूर्ण 'रामायण' सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड। इसके प्रत्येक काण्ड मे अनेक सर्ग हैं। जैसे, बाल में ७७, अयोध्या मे ११९, अरण्य में ७५, किष्किन्धा मे ६७, सुन्दर मे ६८, युद्ध में १२८ तथा उत्तरकाण्ड मे १११। रामायण एक ऐतिहासिक महाकाव्य होने के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं चिन्तन प्रणाली का अपूर्व कोश है, जिसमे भाषा और भाव का अत्यन्त उदात्त रूप तथा अलंकृत शैली का भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमे राम की मुख्य कथा के अतिरिक्त बाल एवं उत्तरकाण्ड में अनेक कथाये एवं उपकथायें हैं।

ग्रन्थ के आरम्भ में बाल्मीकि द्वारा यह प्रश्न किया गया है कि इस लोक में पराक्रमी एवं गुणवान् कौन व्यक्ति है ? नारद जी ने उन्हें दशरथसुत राम का नाम बतलाया। आगे के सर्ग मे अयोध्या, राजा दशरथ एवं उनके शासन तथा नीति का वर्णन है। राजा दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टियज्ञ करते हैं तथा ऋष्यशृङ्ग के द्वारा यज्ञ सम्पन्न होता है और राजा को चार पुत्र उत्पन्न होते हैं। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राजा से राम-लक्ष्मण को मांग कर ले जाते हैं, वहां उन्हें बला और अतिबला नामक विद्यायें तथा अनेक अस्त्र प्राप्त होते हैं। राम ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का बध कर विष्णु का सिद्धाश्रम देखते हैं।

बालकाण्ड—इस काण्ड में बहुत-सी कथाओं का वर्णन है जिन्हें विश्वामित्र ने राम को सुनाया है। विश्वामित्र के वंश का वर्णन तथा तत्सम्बन्धी कथायें, गंगा एवं पार्वती की उत्पत्ति की कथा, कार्त्तिकेय का जन्म, राजा सगर एवं उनके साठ सहस्र पुत्रों की कथा, भगीरथ की कथा, दिति-अदिति की कथा तथा समुद्र-मंथन का वृत्तान्त, गौतम-अहल्या की कथा, राम के चरणस्पर्श से अहल्या की मुक्ति, वसिष्ठ एवं विश्वामित्र का संघर्ष, त्रिशंकु की कथा, राजा अम्बरीष की कथा, विश्वामित्र द्वारा तपस्या करना एवं मेनका का तप-भंग करना, विश्वामित्र द्वारा पुनः तपस्या एवं ब्रह्मर्षि-पद की प्राप्ति। सीता और उर्मिला की उत्पत्ति की कथा, राम द्वारा धनुर्भङ्ग एवं चारो भाइयो का विवाह।

अयोध्याकाण्ड—काव्य की दृष्टि से यह काण्ड अत्यन्त महनीय है। इसमें अधिकांश कथाये मानवीय हैं। राजा दशरथ द्वारा राम-राज्याभिषेक की चर्चा सुनकर कैकेयी की दासी मंथरा को कैकेयी का बहकाना, कैकेयी का राजा से वरदान मांगना जिसके अनुसार राम को चौदह वर्ष का वनवास एवं भरत को राजगद्दी की प्राप्ति। इसके फलस्वरूप राम, सीता और लक्ष्मण का वनगमन एवं दशरथ की मृत्यु। ननिहाल से भरत का अयोध्या आगमन और राम को मनाने के लिए चित्रकूट प्रस्थान। राम-लक्ष्मण का सन्देह और वार्त्तालाप, भरत और राम का विलाप, जावालि द्वारा राम को नास्तिक-दर्शन का उपदेश तथा राम का उन पर क्रोध करना, पिता के वचन को सत्य करने के लिए राम का भरत को लौट कर राज्य करने का उपदेश, राम की चरणपादुका को लेकर भरत का नन्दिग्राम में वास, राम का दण्डकारण्य मे प्रवेश करना।

अरण्यकाण्ड—दण्डकारण्य में ऋषियों द्वारा राम का स्वागत तथा विरोध का सीता को छीनना, विराधवध, पंचवटी में राम का आगमन, जटायु से भेंट, शूर्पणखा वृत्तान्त, खर, दूषण एवं त्रिशिरा के साथ राम का युद्ध एवं तीनो की मृत्यु, मारीच के साथ रावण का आगमन तथा मारीच का स्वर्ण मृग बनना, स्वर्णमृग का राम द्वारा वध तथा रावण द्वारा सीता-हरण।

किष्किन्धाकाण्ड—पम्पा के तीर पर राम-लक्ष्मण का शोकपूर्ण संवाद, पम्पासर का वर्णन, राम तथा सुग्रीव की मैत्री, बाली का बध तथा सीता को खोजने के लिए सुग्रीव का बन्दरो को आदेश देना, बानरों का मायासुर-रक्षित ऋक्षबिल में जाना तथा वहां

से स्वयंप्रभा तपस्विनी की सहायता से सागर-तट पर पहुँचना, सम्पाती से बानरों की भेंट तथा उसके पंख जलने का कथा, जाम्बान द्वारा हनुमान् की उत्पत्ति का कथन करना।

सुन्दरकाण्ड—समुद्र-संतरण करते हुए हनुमान् का अलंकृत वर्णन तथा हनुमान् का लङ्का-दर्शन, लङ्का का भव्य वर्णन, रावण के शयन एवं पानभूमि का वर्णन, अशोक वन मे सीता को देखकर हनुमान् का विषाद करना, लङ्का-दहन तथा वाटिका-विध्वंस कर हनुमान् का जाम्बवान् आदि के पास लौट आना तथा सीता का कुशल राम-लक्ष्मण को सुनाना।

युद्धकाण्ड—राम का हनुमान् की प्रशंसा, लंका की स्थिति के सम्बन्ध मे प्रश्न, रामादि का लका-प्रयाण, विभीषण का राम की शरण में आना और राम की उसके साथ मन्त्रणा। अंगद का दूत बन कर रावण के दरबार मे जाना तथा लौटकर राम के पास आना, लंका पर चढ़ाई, मेघनाद का राम-लक्ष्मण को घायल कर पुष्पक विमान से सीता को दिखाना, सुषेण वैद्य एवं गरुड का आगमन एवं राम-लक्ष्मण का स्वस्थ होना, मेघनाथ द्वारा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर राम-लक्ष्मण को मूर्च्छित करना, हनुमान् का द्रोण पर्वत को लाकर राम-लक्ष्मण एवं बानरसेना को चेतना प्राप्त कराना, मेघनाद एवं कुम्भकर्ण का वध, राम-रावण-युद्ध, रावण की शक्ति मे लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, रावण के सिरों के कटने पर पुनः अन्य सिरों का होना, इन्द्र के सारथी मातलि के परामर्श से ब्रह्मास्त्र से राम द्वारा रावण का वध, राम के सम्मुख सीता का आना तथा राम का सीता को दुर्वचन कहना, लक्ष्मणरचित अग्नि में सीता का प्रवेश करना तथा सीता को निर्दोष सिद्ध करते हुए अग्नि का राम को समर्पित करना, दशरथ का विमान द्वारा राम के पास आना तथा कैकेयी एवं भरत पर प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करना, इन्द्र की कृपा से बानरों का जी उठना, वनवास की अवधि की समाप्ति के पश्चात् राम का अयोध्या लौटना तथा अभिषेक, सीता का हनुमान् को हार देना तथा रामराज्य का वर्णन एवं रामायण श्रवण करने का फल।

उत्तरकाण्ड—राम के पास कौशिक, अगस्त्य आदि महर्षियो का आगमन, उनके द्वारा मेघनाद की प्रशंसा सुनने पर राम को उसके सम्बन्ध मे जानने की जिज्ञासा प्रकट करना, अगस्त्य मुनि द्वारा रावण के पितामह पुलस्त्य एवं पिता विश्रवा की कथा सुनाना, रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की जन्म-कथा तथा रावण की विजयो का विस्तारपूर्वक वर्णन, रावण का वेदवती नामक तपस्विनी को भ्रष्ट करना और उसका सीता के रूप मे जन्म लेना, हनुमान् के जन्म को कथा, जनक, केकय, सुग्रीव, विभीषण आदि का प्रस्थान, सीता-निर्वासन तथा वाल्मीकि के आश्रम पर उनका निवास, मधु या लवणासुर के वध के लिए शत्रुघ्न का प्रस्थान तथा वाल्मीकि के आश्रम पर ठहरना, लव-कुश की उत्पत्ति, ब्राह्मणपुत्र की मृत्यु एवं शम्बुक नामक शूद्र की तपस्या तथा राम द्वारा उसका वध एवं ब्राह्मणपुत्र का जी उठना, राम का राजसूय करने की इच्छा प्रकट करना, वाल्मीकि का यज्ञ मे आगमन तथा लव-कुश द्वारा रामायण का गान, राम द्वारा सीता को अपनी शुद्धता सिद्ध करने के लिए शपथ लेने की बात कहना, सीता का

शपथ लेना, भूतल से सिंहासन का प्रकट होना और सीता का रसातल प्रवेश, तापस-धारी काल का ब्रह्मा का सन्देश लेकर राम के पास आना, दुर्वासा का आगमन एवं लक्ष्मण को शाप देना, लक्ष्मण की मृत्यु तथा सरयू तीर पर पधार कर राम का स्वर्गा-रोहण करना। रामायण के पाठ का फल-कथन।

'रामायण' के बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि ये प्रक्षिप्त अंश हैं। इस सम्बन्ध मे यूरोपीय विद्वानों ने ही ऐसे विचार प्रकट किये हैं। उनके अनुसार बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की रचना वास्तविक काव्य के बहुत बाद हुई। मूल ग्रन्थ की शैली एवं वर्णन-पद्धति के आधार पर भी दोनों काण्ड स्वतन्त्र रचना प्रतीत होते हैं।

बालकाण्ड के प्रारम्भ मे रामायण की जो विषयसूची दी गयी है उसमें उत्तरकाण्ड का उल्लेख नहीं है। जर्मन विद्वान् याकोबी के अनुसार मूल रामायण में पाच ही काण्ड थे। लंकाकाण्ड के अन्त में ग्रन्थ-समाप्ति के निर्देश प्राप्त हो जाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि उत्तरकाण्ड आगे चल कर जोडा गया। उत्तरकाण्ड में कुछ ऐसे उपाख्यानो का वर्णन है जिनका कोई संकेत पूर्ववर्त्ती काण्डों में नहीं मिलता। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि 'रामायण' के प्रक्षिप्तांश 'महाभारत' के 'शतसाहस्री' रूप प्राप्त होने के पूर्व रचे जा चुके थे। "केवल पहले और सातवे काण्डों में ही राम को देवता, विष्णु का अवतार माना गया है। कुछ ऐसे प्रकरणों के अलावा जो निस्सन्देह प्रक्षिप्त हैं, दूसरे काण्ड से छठे काण्ड तक राम सर्वदा मनुष्य के रूप में आते हैं। महाकाव्य के सारे निर्विवाद रूप से असली भागों मे राम के विष्णु अवतार होने का कोई भी संकेत नहीं मिलता। असली भागों मे, जहां पुराण-कल्पना का सहारा लिया गया है, विष्णु को ही नहीं बल्कि वेदों की तरह इन्द्र को सबसे बडा देवता माना गया है।" विन्टरनित्स—प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १, खण्ड २, पृ० १६७–१६८ (हिन्दी अनुवाद)।

'रामायण' का रचनाकाल बतलाने के लिए अभी तक कोई सर्वसम्मत प्रमाण उपस्थित नही हो सका है। प्रथम एवं सातवें काण्ड को आधार बनाते हुए मैक्डोनल ने अपनी सम्मति दी है कि यह एक व्यक्ति की रचना नही है। उन्होंने 'रामायण' का अन्त्येष्टिकाल ५०० ई० पू० तथा उसमे किये गए प्रक्षेपो का समय २०० ई० पू० स्वीकार किया है। 'रामायण' के सामाजिक-चित्रण के आधार पर भारतीय विद्वान् इसका समय ५०० ई० पू० मानते है। ए० श्लेगल के अनुसार रामायण की रचना ११०० ई० पू० हुई थी। जी० गोरेसियो के अनुसार १२०० ई० पू० तथा ह्वीलर एवं वेबर के अनुसार इस पर बौद्धमत का प्रभाव होने के कारण इसकी रचना और भी पीछे हुई है। याकोबी इसकी रचना ५०० ई० पू० से ८०० ई० पू० के बीच मानते हैं। पर, भारतीय परम्परा के अनुसार रामायण की रचना लाखों वर्ष पूर्व त्रेतायुग के प्रारम्भ में हुई थी, किन्तु इस सम्बन्ध में अभी पूर्ण अनुसन्धान की आवश्यकता है कि त्रेतायुग की काल-सीमा क्या हो? 'महाभारत' में 'रामायण' की कथा की चर्चा है। अतः इसकी रचना 'महाभारत' के पूर्व हुई थी। इसमें बौद्धधर्म

या बुद्ध का नाम भी नहीं है, अतः इसका वर्तमान रूप बौद्धधर्म के जन्म के पूर्व प्रचलित हो चुका होगा।

वर्तमान समय में 'रामायण' के तीन संस्करण प्राप्त होते हैं और तीनो में पाठ-भेद भी दिखाई पड़ता है। उत्तरी भारत, बंगाल एवं काश्मीर से 'रामायण' के तीन संस्करण उपलब्ध हैं जिनमे परस्पर श्लोकों का ही अन्तर नहीं है अपितु कहीं-कहीं तो इनके सर्ग के सर्ग भिन्न हैं। 'वाल्मीकि रामायण' की टीकाओं की संख्या डॉ० ऑफ्रेक्ट के अनुसार ३० है।

१—रामानुज की 'रामानुजीयम्' व्याख्या का समय १४०० ई० के आसपास है। वे वाधूलगोत्रीय वरदाचार्य के पुत्र थे। इस टीका का उल्लेख वैद्यनाथ दीक्षित तथा गोविन्दराज ने किया है। २—वेंकटकृष्णाध्वरी या वेंकटेश यज्वा लिखित 'सर्वार्थसार' नामक टीका का समय १४७५ ई० के लगभग है। ३—वैद्यनाथ दीक्षित—इनकी टीका का नाम 'रामायणदीपिका' है और समय १५०० ई० के आसपास है। ४—ईश्वर दीक्षित ने दो टीकाएँ लिखी है जिन्हें 'बृहद्विवरण' एवं 'लघुविवरण' कहा जाता है। प्रथम का रचनाकाल १५१८ ई० एवं द्वितीय का १५२५ ई० के आसपास है। ५—तीर्थीय—इनका नाम महेश्वर तीर्थ तथा टीका का नाम 'रामायणतत्त्व-दीपिका' है। ६—रामायणभूषण—इस टीका के रचयिता गोविन्दराज थे। ७—अहोबिल आत्रेय—इनकी टीका का नाम 'वाल्मीकिहृदय' है। इनका समय १६७५ ई० के लगभग है। ८—कतकयोगिन्द्र—इन्होने 'अमृतकतक' नामक टीका लिखी है। समय १६५० ई० के निकट। ९—रामायणतिलक—यह 'रामायण' की सर्वाधिक लोक-प्रिय टीका है। इसके रचयिता प्रसिद्ध वैयाकरण नागेश थे। निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित। १०—रामायण शिरोमणि—इसके रचयिता वंशीधर तथा शिवसहाय है। रचनाकाल १८५३ ई०। ११—मनोहरा—इसके रचयिता बंगदेशीय श्री लोकनाथ चक्रवर्ती हैं। १२—धर्मीकूतम—यह रामायण की आलोचनात्मक व्याख्या है। इसके रचयिता का नाम त्र्यम्बकमखी तथा रचनाकाल १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

'वाल्मीकि रामायण' काव्यमात्र न होकर दो भिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के संघर्ष की कहानी है। आदि कवि की सौन्दर्य-चेतना कवित्वमयी है। रामायण के प्रकृति-चित्रण में कवि की सौन्दर्य-संवेदना का प्रौढ़ रूप मिलता है। यदि इसमे प्रकृति के अधिकांश चित्र विवरणात्मक है तथापि उसमे कवि की चित्रणकला का अपूर्व कौशल दिखाई पड़ता है। विवरणात्मक स्थलों में ही कवि ने अधिक चित्र-विधान किये हैं। रामायज में प्रकृति-चित्रण प्रचुर मात्रा में है जिसमे निहित कवि की दृष्टि प्रकृति कवि का रूप प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए गङ्गा का वर्णन लिया जा सकता है—जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम्। क्वचिद् वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम् ॥ क्वचित्स्तिमितगम्भीरां क्वचिद् वेगसमाकुलक्वचिद्गम्भीरनिर्घोषां क्वचिद् भैरवनिःस्वनाम् ॥ अयोध्याकाण्ड ५०।१६।१७। "जल के आघात से गंगाजी उग्र अट्टहास-सा करती हैं, निर्मल फेनों में

वे हँसती हैं। कहीं उनका जल वेणी के आकार का लगता है, कहीं भँवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। गंगा का प्रवाह कहीं स्थिर और गम्भीर है, कहीं वेगवान् और चंचल।"

रामायण का कवि उपमा, उत्प्रेक्षा प्रभृति सादृश्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त शब्दालंकारों का प्रयोग कर अपनी शैली को अलंकृत करता है। वाल्मीकि संस्कृत काव्य के इतिहास में 'स्वाभाविक शैली' के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, जिसका अनुगमन अश्वघोष तथा कालिदास प्रभृति कवियों ने पूरी सफलता एवं मनोयोग के साथ किया है। 'रामायण' में सहज और अकृत्रिम शैली के अतिरिक्त कहीं-कहीं अलंकृत शैली का भी प्रयोग है। सुन्दरकाण्ड का 'चन्द्रोदय वर्णन' में अन्त्यानुप्रास की मनोरम छटा प्रदर्शित की गयी है, किन्तु वहाँ पद्य अलंकार के दुष्प्रयोग के कारण बोझिल नहीं हो सका है और न शैली की कृत्रिमता से मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। वाल्मीकि की सर्वाधिक विशेषता है उनका प्रकृत प्रेम। प्रकृति के कोमल भयंकर या अलंकृत रूपो का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उन्होने अपनी अपूर्व निरीक्षणशक्ति का परिचय दिया है। प्रकृति-चित्रण मे कवि ने कहीं बिम्बग्रहणवाली अनाविल अलंकृत शैली के द्वारा प्रकृति का यथावत् चित्र उपस्थित किया है तो कहीं मानवीय भावनाओं की तुलना प्रकृति के क्रिया-कलाप से करते हुए अलकृत शैली का निबन्धन कर स्वतःसंभवी अप्रस्तुत विधान का नियोजन किया है, किन्तु वह वैचित्र्यमूलक अकृत्रिम चित्र की ओर ध्यान नहीं देता। कवि वक्ता या पात्र की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की झलक बाह्य प्रकृति मे दिखाते हुए दोनो के बीच समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाल्मीकि प्रकृति का सच्चा चितेरा है जो बहुविध रंगो के द्वारा भावो के आधारफलक पर उसका चित्र उरेहने मे पूर्णतः सफल हुआ है जिसकी रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म एवं सहज हैं।

प्रकृति-चित्रण की भांति नारी के रूप-चित्रण मे या किसी विषय के वर्णन मे कवि की लेखनी भावों की नवीन उद्भावना करती हुई मनोरम चित्र उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है। रावण के अन्तःपुर मे शयनागार मे अस्तव्यस्त पडी हुई रतिश्रम से खिन्न नारियो का अनाविल चित्र अत्यन्त हृदयग्राही एवं स्वाभाविक है। इसी प्रकार मद-विह्वला तारा के मादक रूप और यौवन का चित्रण करने मे कवि की लेखनी थकना नहीं जानती। नितम्बो तक प्रलम्बमान कांची के लोल नृत्य के वर्णन मे कविप्रतिभा का सुन्दर रूप प्रदर्शित होता है। मानव प्रकृति के चित्रण मे भी वाल्मीकि ने सूक्ष्म पर्य-वेक्षणशक्ति का परिचय दिया है। राम, सीता, भरत, हनुमान्, विभीषण, रावण आदि के चरित्राकन मे चरित्र-चित्रण का वैविध्य दिखाई पडता है। इनके राम मानवसुलभ गुणो से युक्त है, किन्तु उनमे गुणो के अतिरिक्त मानवीय दुर्बलताएं भी हैं, जिससे वे अतिमानव नहीं बन पाते और पूरे मानव के रूप में उपस्थित होते है। कथानक के संयोजन में कवि की उत्कृष्ट वर्णनात्मक शक्ति प्रकट होती है। वर्णनात्मक धारा की पूर्ण कल्पना तथा घटना-सम्बन्धी सजीवता के लिए कवि ने अनेक विवरणों का प्रयोग किया है। कतिपय पात्रों के द्वारा देखे गए दुःस्वप्नो के द्वारा कथानक मे तीव्रता एवं मार्मिकता आ गयी है। भरत एवं त्रिजटा के दुःस्वप्न ऐसे ही हैं। भारतीय जीवन की

उदात्तता, सौन्दर्य, नीति-विधान, राजधर्म, सामाजिक आदर्श आदि की सुखकर अभिव्यक्ति रामायण में है जिससे इसकी महाकाव्यात्मक गरिमा में वृद्धि हुई है। वस्तु-व्यंजना, भावव्यंजना एवं शैली का सहज तथा अलंकृत रूप इसे महाकाव्य की उदात्त श्रेणी पर पहुँचाये बिना नहीं रहता। वाल्मीकि महाकाव्यात्मक कथानक के विस्तृत क्षेत्र के पूर्ण गीतात्मक और कवित्वमय रूप का वर्णन करने वाले प्रकृत कवि हैं।

आधारग्रन्थ—१—प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २—विन्टरनित्स (हिन्दी अनुवाद), । २—संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ३—संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—श्री कृष्ण चैतन्य (हिन्दी अनुवाद)। ४—संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री वाचस्पति शास्त्री गैरोला। ५—भारतीय संस्कृति—डॉ० देवराज। ६—रामायण कोष—श्री रामकुमार राय। ७—रामकथा—फादर कामिल बुल्के। ८—रामायणकालीन संस्कृति—डॉ० नानूराम व्यास। ९—रामायणकालीन समाज डॉ० नानूराम व्यास। १०—प्राचीन संस्कृत साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका—डॉ० रामजी उपाध्याय। ११—व्यास एण्ड वाल्मीकि—महर्षि अरविन्द (अँगरेजी)। १२—रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)—गीता प्रेस, गोरखपुर। रामायण के कुछ प्रसिद्ध अनुवाद एवं अन्य ग्रन्थ १—दस रामायण (जर्मन)—याकोबी, बोन १८९३ ई०। २—उबेर दस रामायण (जर्मन)—ए ए. वेबर, १८७० ई०। ३—दि रिडल्ल ऑफ रामायण—सी वी. वैद्य, बम्बई १९०६ ई०। ४—लैटिन भाषा में अनुवाद—स्लेगल (१८२९-३८ ई०) (दो भागों में)। ५—अँगरेजी पद्यानुवाद आर. टी. एच. ग्रीफिथ ५ भागो में। ६—मन्मथनाथ द्वारा अँग्रेजी गद्यानुवाद—कलकत्ता १८९२-९४ ई०। ७—संक्षिप्त पद्यानुवाद—रमेशचन्द्र दत्त, लंडन १९०० ई०। ८—इतालवी अनुवाद—जी० गोरेसियो (१८४७-५८)। ९—फ्रेंच अनुवाद—ए० रोसेल (१९०३-११०९, पेरिस)। १०—प्रथम काण्ड का जर्मन अनुवाद—जे० मनराड (१८९७)। ११—कुछ अंशों का जर्मन अनुवाद—फ्रे० रूकर्ट।

रामायणचम्पू—इसके रचयिता धाराधिप परमारवंशी राजा भोज है (दे० भोज)। इसकी रचना वाल्मीकि रामायण के आधार पर हुई है। इसमे बालकाण्ड से सुन्दरकाण्ड तक की रचना भोज ने की है तथा अन्तिम युद्धकाण्ड लक्ष्मणसूरि द्वारा रचा गया है। इसमें वाल्मीकि रामायण का भावापहरण प्रचुर मात्रा में है तथा बालकाण्ड के अतिरिक्त शेष काण्डों का प्रारम्भ रामायण के ही श्लोको से किया गया है। इसमें गद्यभाग संक्षिप्त एवं पद्य का बाहुल्य है। कवि ने स्वयं वाल्मीकि का आधार स्वीकार किया है—वाल्मीकिगीतिरघुपुंगवकीर्त्तिलेशैस्तृप्ति करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्। गंगाजलैर्भुवि भगीरथ यत्नलब्धैः किं तर्पणं न विदधाति नरः पितृनाम्। १.४

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

रामावतार शर्मा (महामहोपाध्याय)—बीसवीं शताब्दी के असाधारण विद्वान्। इनका जन्म ६ मार्च १८७७ ई० मे बिहार के छपरा जिले में हुआ था। इन्होंने प्रथम श्रेणी में साहित्याचार्य एवं एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की

थीं तथा पटना कालिज के संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राच्य-विभाग के प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए थे। इन्होने वैज्ञानिक विधि से सभी शास्त्रों का अध्ययन किया था। इनका देहान्त १९२९ ई० में हुआ। इन्होंने नाटक, गीत, काव्य, निबन्ध आदि के साथ-ही-साथ दर्शन (परमार्थ) तथा संस्कृत विश्वकोश का भी प्रणयन किया है। इनके 'परमार्थ-दर्शन' की ख्याति सप्तम दर्शन के रूप में हुई है। १५ वर्ष की अवस्था में शर्मा जी ने 'धीरनैषध' नामक नाटक की रचना की थी जिसमे पद्य का बाहुल्य है। 'भारतगीतिका' (१९०४) तथा 'मुद्गरदूत' (१९१४) इनके काव्य ग्रन्थ हैं। 'मुद्गरदूत' (१४८२ श्लोक) में 'मेघदूत' के आधार पर किसी व्यभिचारी मूर्खदेव का जीवन चित्रित किया गया है। इनका प्रसिद्ध पद्यबद्ध कोश 'वाङ्मयार्णव' के नाम से ज्ञानमण्डल, वाराणसी से (१९६७ ई०) प्रकाशित हुआ है। 'मुद्गरदूत' का प्रारम्भिक श्लोक—किं मे पुत्रैर्गुणनिधिरयं तात एवैष पुत्रः शून्यघ्या-नैस्तदहमधुना वर्त्तये ब्रह्मचर्यम्। कश्चिन्मूर्खश्चपलविधवा स्नानपूतोदकेषु स्वान्ते कुर्वन्निति समवसत्कामगिर्याश्रमेषु ॥

रावणार्जुनीयमहाकाव्य—इसके रचयिता भट्टभीम या भौमक है। यह संस्कृत के ऐसे महाकाव्यो में है जिनकी रचना व्याकरणिक प्रयोगों के आधार पर हुई है। इसकी रचना भट्टिकाव्य के अनुकरण पर हुई है [दे० भट्टिकाव्य]। इसमें रावण एवं कार्तवीर्य अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। कवि ने २७ सर्गों मे 'अष्टाध्यायी' के क्रम से पदों का निदर्शन किया है। क्षेमेन्द्र के 'सुवृत्ततिलक' मे (३।४) इसका उल्लेख है, अतः भट्टभीम का समय ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व सिद्ध होता है। भट्टभीम काश्मीरक कवि थे।

रुक्मिणीपरिणय चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता अम्मल या अमलानन्द है। इनका समय चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके निवासस्थान आदि के सम्बन्ध मे कोई निश्चत प्रमाण प्राप्त नहीं होता। अम्मल को अमलानन्द मे अभिन्न माना गया है जो प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य थे। इन्होंने 'वेदान्तकल्पतरु' (भामती टीका की व्याख्या) शास्त्रदर्पण तथा पंचपादिका की व्याख्या नामक पुस्तको का प्रणयन किया है। इस चम्पूकाव्य मे रुक्मिणी के विवाह की कथा अत्यन्त प्रांजल भाषा मे वर्णित है जिसका आधार 'हरिवंशपुराण' एवं श्रीमद्भागवत की तत्सम्बन्धी कथा है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण मैसूर कैटलग संख्या २७० में है।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

रुक्मणीहरणम् महाकाव्य—यह बीसवी शताब्दी के प्रसिद्ध महाकाव्यो में है। इसके रचयिता पं० काशीनाथ शर्मा द्विवेदी 'सुधीसुधानिधि' है। इनका निवासस्थान अस्सी (वाराणसी) १।२२ है। इस महाकाव्य का प्रकाशन १९६६ ई० में हुआ है। इसमें 'श्रीमद्भागवत' की प्रसिद्ध कथा 'रुक्मिणीहरण' के आधार पर श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के परिणय का वर्णन किया गया है। प्राचीन शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार

कवि ने महाकाव्य की रचना की है तथा विविध छन्दो का प्रयोग किया है। इसमें कुण्डिनपुर नरेश राजा भीष्मक का वर्णन, रुक्मिणी जन्म, नारद जी का कुण्डिनपुर में जाना, रुक्मिणी के पूर्वराग का वर्णन, कुण्डिनपुर में शिशुपाल का जाना, रुक्मिणी का कृष्ण के पास दूतसम्प्रेषण, श्रीकृष्ण की कुण्डिनपुर यात्रा एवं रुक्मिणी का हरण करना आदि घटनाओं का वर्णन है। इस महाकाव्य में कुल २१ सर्ग हैं तथा वस्तु-व्यजना के अन्तर्गत समुद्र, प्रभात एवं षड्ऋतुओं का मनोरम वर्णन किया गया है। प्रभात वर्णन का एक चित्र देखें—यामेष्वथ त्रिषु गतेषु निशीथिनी सा, निष्पन्दनीरवतराध्वनिताक्रमेण। निद्राऽलसेव रमणी रमणीयवाचा, वाचां भरेण रणिताऽभरणा बभूव ॥ १३।१।

रुद्रट—काव्यशास्त्र के आचार्य। इनका समय नवम शताब्दी का आरम्भिक काल है। इन्होंने 'काव्यालंकार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है (दे० काव्यालंकार)। इनके जीवन के सम्बन्ध मे अधिक सामग्री प्राप्त नहीं होती। नाम के आधार पर इनका काश्मीरी होना निश्चित होता है। 'काव्यलंकार' के प्रारम्भ एवं अन्त मे गणेश-गौरी तथा भवानी, मुरारि एवं गजानन की वन्दना करने के कारण ये शैव माने गए हैं। टीकाकार नमिसाधु के अनुसार इनका अन्य नाम शतानन्द था और ये वामुकभट्ट के पुत्र थे। शतानन्द पराख्येन भट्टवामुकसूनुना। साधितं रुद्रटेनेदं सामाजाधीमता हितम् ॥ काव्यालंकार ४।१२-१४ की टीका। इनके पिता सामवेदी थे। रुद्रट ने भामह, दण्डी, उद्भट की अपेक्षा अलंकारों का अधिक व्यवस्थित विवेचन किया है और कतिपय नवीन अलंकारो का भी निरूपण किया है। अतः ये उपर्युक्त आचार्यों से परवर्त्ती थे। इनके मत को दशमी शताब्दी के आचार्यों—राजशेखर, प्रतिहारेन्दुराज, धनिक एवं अभिनवगुप्त प्रभृति—ने उद्धृत किया है, अतः ये उनके पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रकार इनका समय नवम शतक का पूर्वार्द्ध उपयुक्त जान पड़ता है। रुद्रट ने काव्यलक्षण, भेद, शब्दशक्ति, वृत्ति, दोष, अलंकार, रस, नायक-नायिका-भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और अनेक नवीन तथ्य प्रकट किये है। इन्होने 'प्रेयान्' नामक दशम रस की उद्भावना की है और रस के बिना काव्य को निष्प्राण एवं रम्यताविहीन मान कर काव्य मे उसका (रस का) महत्त्व स्थापित किया है। भरत के बाद रुद्रट रससिद्धान्त के प्रबल समर्थक सिद्ध होते है। काव्यालंकार १६ अध्यायों का बृहत् काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है जिसमे सभी प्रमुख विषयों का निरूपण है। इसमे अलंकारों के चार वैज्ञानिक वर्ग बनाये गए है और वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष के रूप मे उनका विभाजन किया है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय काव्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय। २. काव्यालंकार की भूमिका (हिन्दी भाष्य) डॉ० सत्यदेव चौधरी।

रुद्र न्यायपञ्चानन—ये नवद्वीपनिवासी काशीनाथ विद्यानिवास के पुत्र थे। इनके पितामह का नाम रत्नाकर विद्यावाचस्पति था। ये सुप्रसिद्ध नैयायिक एवं बहुप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। इनका समय १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। श्रीपञ्चानन द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या ३९ है। अधिकरणचन्द्रिका, कारक-

परिच्छेद, कारकचक्र, विधिरूपनिरूपण, उदाहरणलक्षण-टीका, उपाधिपूर्वपक्षग्रन्थ-टीका, केवलान्वयि-टीका, पक्षतापूर्वग्रन्थ-टीका, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली टीका, व्याप्त्यनुगम-टीका, कारकाद्यर्थनिर्णय-टीका, सव्यभिचार-सिद्धान्त-टीका, भावप्रकाशिका, अनुमति-टीका, अनुमिति-टीका, कारकवाद, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति-टीका आदि। इनके द्वारा रचित तीन काव्य ग्रन्थ भी है—भावविलासकाव्य, भ्रमरदूत एवं पिकदूत। भ्रमरदूत में राम द्वारा किसी भ्रमर से सीता के पास सन्देश भेजने का वर्णन है। इसमे २३२ श्लोक हैं और समग्र ग्रन्थ मन्दाक्रान्ता वृत्त में ही लिखा गया है। 'पिकदूत' नामक सन्देशकाव्य में राधा ने पिक के द्वारा श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजा है। यह काव्य अत्यन्त छोटा है और इसमे कुल ३१ श्लोक हैं। कोकिल को दूत बनाने के कारण पर राधा के मुख से वर्णन सुनिये—सर्वास्वेव सभासु कोकिल भगवान् वक्ता यतस्त्वद्वचः। श्रुत्वा सर्वनृणां मनोऽपि रमते त्वं चापि लोकप्रियः॥ ४। इसमे राधा एवं श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेम का अत्यन्त सुन्दर रूप प्रदर्शित किया गया है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

रुद्रभट्ट—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'शृङ्गारतिलक' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसमें रस एवं नायक-नायिका-भेद का विवेचन है। इनका समय डॉ० एस के. डे के अनुसार दसवीं शताब्दी है। 'शृङ्गारतिलक' का सर्वप्रथम उद्धरण हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन' मे प्राप्त होता है। हेमचन्द्र का समय १०८८-११७२ ई० माना जाता है, अतः रुद्रट का समय दसवीं शताब्दी के आसपास ही है। बहुत दिनों तक रुद्रट एवं रुद्रभट्ट को एक ही व्यक्ति माना जाता रहा है किन्तु अब निश्चित हो गया है कि दोनो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। वेबर, बुहलर, औफ्रेड एवं पिशल ने दोनों को अभिन्न माना है। पर रुद्रटकृत 'काव्यालंकार' एवं 'शृंगारतिलक' के अध्ययन के उपरान्त दोनो का पार्थक्य स्पष्ट हो चुका है। 'शृङ्गारतिलक' की अनेक हस्तलिखित प्रतियो में इसका लेखक रुद्र या रुद्रट कहा गया है और कहीं-कहीं ग्रन्थ का नाम 'शृंगारतिलकाख्य-काव्यालंकार' भी प्राप्त होता है। 'भावप्रकाशन' एवं 'रसार्णवसुधाकर' नामक ग्रन्थों में रुद्रट के नाम से ही 'शृंगारतिलक' के मत उद्धृत हैं और अनेक सुभाषित ग्रन्थों में भी दोनो लेखको के सम्बन्ध मे भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। शृङ्गारतिलक में तीन परिच्छेद हैं और मुख्यतः इसमे शृङ्गार रस का विस्तृत विवेचन है। प्रथम परिच्छेद मे नौ रस, भाव एवं नायिका-भेद का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद में विप्रलम्भ शृंगार एवं तृतीय में शृङ्गारेतर आठ रस तथा वृत्तियों का निरूपण है। 'शृङ्गारतिलक' मे सर्वप्रथम काव्य की दृष्टि से रस को निरूपण किया गया है और चन्द्रमा के बिना रात्रि, पति के बिना नारी एवं दान के बिना लक्ष्मी की भाँति रस के बिना वाणी को अशोभन माना गया है—प्रायो नाट्यं प्रतिप्रोक्ता भरताद्यै रसस्थितिः। यथामति मयाप्येषा काव्यंप्रति निगद्यते॥ १।४ यामिनीवेन्दुना मुक्ता नारीव रमणं विना। लक्ष्मीरिव ऋते त्यागान्नो वाणी भाति नीरसा॥ १।६। 'शृङ्गारतिलक' एवं रुद्रटकृत 'काव्यालंकार' के अध्ययन के उपरान्त विद्वानों ने निम्नांकित अन्तर प्रस्तुत किये हैं—

क—रुद्रट के 'काव्यालंकार' के चार अध्यायों के वर्णित विषय 'शृङ्गारतिलक' से

पूर्ण साम्य रखते हैं अत: एक ही रचयिता के लिए एक ही विषय का दो बार लिखना युक्तिसंगत नहीं है। ख—'शृङ्गारतिलक' में नौ रसों का वर्णन है जब कि रुद्रट ने प्रेयान् नामक नवीन रस का निरूपण कर दश रसों का विवेचन किया है। ग—रुद्रट ने उद्भट के अनुकरण पर पांच वृत्तियों का निरूपण किया है—मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता एवं भद्रा। जब कि रुद्रभट्ट कैशिकी आदि चार वृत्तियों का ही वर्णन करते हैं। घ—नायक-नायिका-भेद के निरूपण में भी दोनों में पर्याप्त भेद है। रुद्रभट ने नायिका के तृतीय प्रकार वेश्या का बड़े मनोयोग के साथ विस्तृत वर्णन किया है किन्तु रुद्रट ने केवल दो ही श्लोक में इसका चलता हुआ वर्णन कर इसके प्रति तिरस्कार का भाव व्यक्त किया है। ङ—रुद्रट एक महनीय आचार्य के रूप में आते हैं। जिन्होंने 'काव्यालंकार' में काव्य के सभी अंगों का विस्तृत विवेचन किया है, पर रुद्रभट्ट की दृष्टि परिमित है और वे काव्य के एक ही अंग रस का वर्णन करते हैं। इनका क्षेत्र संकुचित है और वे मुख्यतः कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय। २. शृङ्गारतिलक—हिन्दी अनुवाद—पं० कपिलदेव पाण्डेय प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी १९६८। ३. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे।

रूपगोस्वामी—भक्ति एवं रसशास्त्र के आचार्य। ये प्रसिद्ध वैष्णव एवं चैतन्य महाप्रभु के शिष्य हैं। इन्होंने वैष्णव दृष्टि से ही अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनके मूलवंशज कर्नाटक ब्राह्मण थे और चौदहवीं शती के अन्तिम या पन्द्रहवीं शताब्दी के आदि चरण में बंगाल में आकर रह रहे थे। ये भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम श्रीमार और पितामह का नाम श्री मुकुन्द था। रूपगोस्वामी के अन्य दो भाई भी थे जिनका नाम सनातन एवं अनुपम था। सनातन गोस्वामी तथा रूपगोस्वामी दोनों ही प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य हैं। बंगाल में इनकी जन्मभूमि का नाम वफल था। वहाँ से ये महाप्रभु चैतन्य की प्रेरणा से वृन्दावन में जाकर बस गए। रूपगोस्वामी ने १७ ग्रन्थों की रचना की है जिनमें ८ ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—हंसदूत (काव्य), उद्धव-सन्देश (काव्य), विदग्धमाधव (नाटक), ललितमाधव (नाटक), दानकेलिकौमुदी, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि एवं नाटकचन्द्रिका। इनमें से अन्तिम तीन ग्रन्थ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इन्होंने 'विदग्धमाधव' का रचनाकाल १५३३ ई० दिया है। इनका समय १४९० से लेकर १५५३ ई० तक माना जाता है। चैतन्य महाप्रभु का समय १५ वीं शताब्दी का अन्तिम शतक है। अतः रूपगोस्वामी का उपर्युक्त समय ही उपयुक्त ज्ञात होता है। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—लघुभागवतामृत, पद्यावली, स्तवमाला, उत्कलिकामञ्जरी, आनन्दमहोदधि, मथुरामहिमा, गोविन्दविरुदावली, मुकुन्दमुक्तावली तथा अष्टादशछन्द। रूपगोस्वामी की महत्ता तीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के ही कारण अधिक है।

१ भक्तिरसामृतसिन्धु—यह ग्रंथ 'भक्तिरस' का अनुपम ग्रन्थ है। इसका विभाजन चार विभागों में हुआ है और प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त है। पूर्वविभाग में भक्ति का सामान्य स्वरूप एवं लक्षण प्रस्तुत किये गए हैं तथा दक्षिण विभाग में भक्ति रस

के विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्त्विक एवं संचारी भावों का वर्णन है। पश्चिम विभाग में भक्तिरस का विवेचन किया गया है तथा उसके शान्तभक्तिरस, प्रीति, प्रेम, वात्सल्य एवं मधुरभक्तिरस नामक भेद किये गए हैं। उत्तर विभाग में हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स एवं भयानक रसों का वर्णन है। इसका रचनाकाल १५४१ ई० है। २. उज्ज्वलनीलमणि—इसमें 'मधुरशृङ्गार' का निरूपण है और नायक-नायिका-भेद का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें शृङ्गार का स्थायीभाव प्रेमारति को माना गया है और उसके छह विभाग किये गए हैं—स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग एवं भाव। आचार्य ने 'उज्ज्वलनीलमणि' में नायक के चार प्रकारों के दो विभाग किये हैं—पति तथा उपपति एवं इनके भी दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल एवं शठ के नाम से ९६ प्रकारों का वर्णन किया है। इसी प्रकार नायिका के दो विभाग किये गए हैं—स्वकीया एवं परकीया और पुनः उनके अनेक प्रकारों का उल्लेख किया गया है। ३. नाटकचन्द्रिका—यह नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमें भरत मुनि के आधार पर नाटक के तत्त्वों का संक्षिप्त वर्णन है। रूपगोस्वामी के भतीजे जीवगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' एवं 'उज्ज्वलनीलमणि' पर क्रमशः 'दुर्गमसङ्गमिनी' तथा 'लोचनरोचनी' नामक टीकाओं की रचना की है। इनके उपर्युक्त तीनों ही ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

आधारग्रन्थ—१. भक्तिरसामृतसिन्धु—(१) हिन्दी व्याख्या—आ० विश्वेश्वर। (२) डॉ० रूपनारायण पाण्डेय। २. उज्ज्वलनीलमणि—हिन्दी टीका—डॉ० रूप-नारायण पाण्डेय। ३. नाटकचन्द्रिका—हिन्दी टीका—पं० बाबूलाल शुक्ल (चौखम्बा प्रकाशन)।

रंगनाथ—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। ये काशीनिवासी थे। इनका जन्म १५७५ ई० में हुआ था। रंगनाथ के माता-पिता का नाम मोजि एवं बल्लाल था। 'सूर्यसिद्धान्त' के ऊपर 'गूढार्थप्रकाशिका' नामक इनकी टीका प्रसिद्ध है।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

लक्ष्मीधर भट्ट—राजधर्म के निबन्धकार। ये कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के पितामह गोविन्दचन्द्र के महासन्धिविग्रहिक (विदेश मन्त्री) थे। इनका समय बारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इनका ग्रन्थ 'कृत्यकल्पतरु' अपने विषय का अत्यन्त प्रामाणिक एवं विशालकाय निबन्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ चौदह काण्डों में विभाजित है, किन्तु अबतक सभी काण्ड प्रकाशित नहीं हो सके हैं। इसका 'राजधर्म' काण्ड प्रकाशित हो चुका है जिसमें राज्यशास्त्रविषयक तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं। 'राजधर्मकाण्ड' इक्कीस अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भिक बारह अध्यायों में सप्तांग राज्य के सात अंग वर्णित हैं। तेरहवें तथा चौदहवें अध्यायों में षाड्गुण्यनीति तथा शेष सात अध्यायों में राज्य के कल्याण के लिए किये गए उत्सवों, पूजा-कृत्यों तथा विविध पद्धतियों का वर्णन है। इसके इक्कीस अध्यायों के विषय इस प्रकार हैं—राजप्रशंसा, अभिषेक, राजगुण, अमात्य, दुर्ग, वास्तुकर्मविधि, संग्रहण, कोश, दण्ड, मित्र, राजपुत्ररक्षा, मन्त्र, षाड्गुण्यमन्त्र, यात्रा,

अभिषिक्तस्यकृत्यानि, देवयात्राविधि, कौमुदीमहोत्सव, इन्द्रध्वजोच्छ्रायविधि, महानवमी-पूजा, चिह्नविधि, गवोत्सर्ग तथा वसोर्धारा। लक्ष्मीधर के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त शास्त्रनिष्ठ एवं धर्मशास्त्रों के पण्डित थे।

आधारग्रन्थ—भारतीय राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

लल्ल—ये ज्योतिषशास्त्र के आचार्य हैं। इन्होंने 'शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र' नामक प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की [सुधाकर द्विवेदी द्वारा संपादित एवं १८८६ ई० में बनारस से प्रकाशित] है जिसमें एक हजार श्लोक एवं १३ अध्याय हैं। यह मूलतः ज्योतिषशास्त्र का ही ग्रन्थ है और इसमें अंकगणित या बीजगणित को स्थान नहीं दिया गया है। इनके समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार इनका समय ४२१ शक संवत् है, पर शंकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६० शक मानते हैं। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त 'खण्ड-खाद्यक' की टीका (ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी रचित ग्रन्थ) की भूमिका में इनका समय ६७० शक मानते हैं जिसका समर्थन डॉ० गोरख प्रसाद ने भी किया है। लल्ल ने ग्रन्थ-रचना का कारण देते हुए बताया है कि आर्यभट्ट अथवा उनके शिष्यों द्वारा लिखे गए ग्रन्थों के दुरूह होने के कारण इन्होंने विस्तारपूर्वक (उदाहरण के साथ) कर्मक्रम में इस ग्रन्थ की रचना की है।

विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं तंत्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यैः।
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तैः कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तदुक्तम् ॥ २ ॥

मध्यमाधिकार 'पाटीगणित' एवं 'रत्नकोश' इनके अन्य दो ग्रन्थ भी है, पर वे प्राप्त नहीं होते।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद। २. भारतीय ज्योतिष श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित (हिन्दी अनुवाद, हिन्दी-समिति)।

लिंगपुराण—क्रमानुसार ११ वाँ पुराण। इसका प्रतिपाद्य है विविध प्रकार से शिवपूजा के विधान का प्रतिपादन एवं लिंगोपासना का रहस्योद्घाटन। 'शिवपुराण' में बताया गया है कि लिंग के चरित का कथन करने के कारण इसे 'लिंगपुराण' कहते हैं। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार भगवान शंकर ने अग्निलिङ्ग के मध्य में स्थित होकर तथा कल्पान्तर में अग्नि को लक्षित करते हुए धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों पदार्थों की उपलब्धि के लिए जिस पुराण में धर्म को आदेश दिया है, उसे ब्रह्मा ने लिंग या लैंगपुराण की संज्ञा दी है [मत्स्यपुराण अध्याय ५३]। इस पुराण से पता चलता है कि भगवान् शंकर की लिंग रूप में उपासना करने पर ही अग्निकल्प में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'लिंगपुराण' में श्लोकों की संख्या ग्यारह हजार एवं अध्यायों की संख्या १६३ है। इसके दो विभाग किये गए हैं—पूर्व एवं उत्तर। पूर्वभाग में शिव द्वारा ही सृष्टि की उत्पत्ति का कथन किया गया है तथा वैवस्वत मन्वन्तर से लेकर कृष्ण के समय तक के राजवंशों का वर्णन है। शिवोपासना की प्रधानता होने के कारण इसमें विभिन्न स्थानों पर उन्हें विष्णु से महान् सिद्ध किया गया है। इस पुराण में भगवान् शंकर के

२८ अवतार वर्णित हैं तथा शैव व्रतों एवं शैवतीर्थों का विशद विवेचन है। इसके उत्तर भाग मे शैवतन्त्रों के अनुसार ही पशु, पाश और पशुपति का वर्णन है। इसमें लिंगोपासना के सम्बन्ध में एक कथा भी दी गयी है कि किस प्रकार शिव के वनवास करते समय मुनि-पत्नियां उनसे प्रेम करने लगीं और मुनियों ने उन्हें शाप दिया। इसके ९२ वे अध्याय में काशी का विशद विवेचन है तथा उससे सम्बद्ध अनेक तीर्थों के विवरण दिये गये हैं। इसमें उत्तरार्द्ध के कई अध्याय गद्य में ही लिखित हैं तथा १३वें ध्याय मे शिव की प्रसिद्ध अष्टमूर्तियों के वैदिक नाम उल्लिखित हैं। इसकी रचना-तिथि के सम्बन्ध में अभी तक कोई सुनिश्चित विचार स्थित नहीं हो सका है, पर कतिपय विद्वान् इसका रचना-काल सातवी एवं आठवी शताब्दी स्वीकार करते हैं। इसमें कल्कि और बौद्ध अवतारों के भी नाम है तथा ९ वे अध्याय में योगान्तरायों का जो वर्णन किया गया है, वह 'व्यासभाष्य' से अक्षरशः मिलता-जुलता है। 'व्यासभाष्य' का रचना-काल षष्ठ शतक है, अतः इससे भी इसके समय पर प्रकाश पडता है। इसका निर्देश अलबेरुनी तथा उसके परवर्ती लक्ष्मीधर भट्ट के 'कल्पतरु' में भी प्राप्त होता है। अलबेरुनी का समय १०३० ई० है। 'कल्पतरु' मे 'लिंगपुराण' के अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये गए है। इन्हीं आधारो पर विद्वानो ने इसका समय आठवीं एवं नवीं शताब्दी के बीच स्वीकार किया है, किन्तु यह तिथि अभी प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती एवं इस पर अभी सम्यक् अनुशीलन अपेक्षित है। 'लिंगपुराण' शैवव्रतो एवं अनुष्ठानों का प्रतिपादन करने वाला अत्यन्त महनीय पुराण है जिसमे शैव-दर्शन के अनेक तत्त्व भरे हुए हैं।

आधारग्रन्थ—१ लिंगपुराण—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। २. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ३ पुराणतत्त्वमीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ४. पुराणम् (द्वितीय भाग १९६०) पृ० ७५–८१।

वत्सभट्टि—इनकी कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं होती कीर्त्ति के रूप मे एकमात्र मन्दसौर-प्रशस्ति प्राप्त होती है, जो कुमारगुप्त के राज्यकाल में उत्कीर्णित हुई थी। इसका रचनाकाल मालव संवत् ५२९ है। इस प्रशस्ति मे रेशम-बुनकरो द्वारा निर्मित एक सूर्य-मन्दिर का वर्णन किया गया है जिसका निर्माण ४३७ ई० मे हुआ था एवं इसका पुनरुद्धार ४७३ ई० में हुआ 'मन्दसौर-प्रशस्ति' में कुल ४४ श्लोक हैं। इसके प्रारम्भिक श्लोकों मे भगवान् भास्कर की स्तुति एवं बाद के छन्दो में दशपुर (मन्दसौर) का मनोरम वर्णन है। कवि ने इसमे तत्कालीन नरेश नरपतिबन्धुवर्मा का प्रशस्ति-गान किया है, जिनका समय पाँचवी शताब्दी है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यह प्रशस्ति उच्चकोटि की है तथा इस पर महाकवि कालिदास की छाया परिलक्षित होती है।

वत्सराज—ये संस्कृत के नाटककार हैं जो कालिंजर-नरेश परमर्दिदेव के मंत्री थे। इनका समय ११६३ से १२०३ ईस्वी तक के मध्य है। इनके द्वारा रचित छह नाटक प्रसिद्ध हैं। १. कर्पूरचरित—इसमें द्यूत के खिलाडी कर्पूर के मनोरंजक अनुभवों का वर्णन किया गया है। यह एकांकी भाण है। २. किरातार्जुनीय—इसकी रचना

महाकवि भारवि रचित 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के आधार पर हुई है। यह एकाकी व्यायोग है। ३. हास्यचूडामणि—यह एक अंक का प्रहसन है। ४. रुक्मिणीहरण—'महाभारत' की कथा के आधार पर इसकी रचना है। यह चार अंकों वाला ईहामृग है। ५. त्रिपुरदाह—इसमें भगवान् शंकर द्वारा त्रिपुरासुर की नगरी के ध्वंस होने का वर्णन है। यह चार अंकों का डिम है। ६. समुद्रमंथन—इसमें देवता एवं दानवों द्वारा समुद्रमंथन की कथा प्रस्तुत की गई है। अन्ततः चौदह रत्नों के प्राप्त करने पर विष्णु तथा लक्ष्मी के विवाह का वर्णन किया गया है। यह तीन अंकों का समवकार है। वत्सराज की शैली अत्यन्त सरस एवं मधुर है। स्थान-स्थान पर दीर्घसमास एवं दुरूह शैली का भी प्रयोग किया गया है। इनके रूपकों में क्रियाशीलता, रोचकता तथा घटनाओं की प्रधानता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।' संस्कृत नाटककार पृ० २०३।

वरदाम्बिका परिणयचम्पू—इस चम्पूकाव्य की रचयिता तिरुलम्बा नामक कवयित्री हैं जो विजयनगर के महाराज अच्युतराय की राजमहिषी थीं। इसका रचनाकाल १५४० ई० के आसपास है। अच्युतराय का राज्यकाल १५२९ से १५४२ ई० तक है। इस चम्पू काव्य की कथा विजयनगर के राजपरिवार से सम्बद्ध है और अच्युतराय के पुत्र चिन वेंकटाद्रि के युवराज पद पर अधिष्ठित होने तक है। कवयित्री ने इतिहास और कल्पना का समन्वय करते हुए इस काव्य की रचना की है। इसकी कथा प्रेमप्रधान है और भाषा पर लेखिका का प्रगाढ़ आधिपत्य दिखाई पड़ता है। इसमें संस्कृत गद्य की समासबहुल एवं दीर्घसमास की पदावली प्रयुक्त हुई है। दीर्घसमासवती गद्यरचना के साथ-ही-साथ मनोरम एवं सरस पद्यों की रचना इस चम्पू को प्राणवन्त बनाने में पूर्ण समर्थ है। गद्यभाग की अपेक्षा इसका पद्यभाग अधिक सरस एवं कमनीय है और उसमें लेखिका का कल्पना-वैभव प्रदर्शित होता है। अलंकारों का प्राचुर्य, शाब्दी क्रीडा, वर्णन-सौन्दर्य एवं कथावस्तु का विकास आदि का रासायनिक संमिश्रण इस काव्य में है। भावानुरूप भाषा में सर्वत्र परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है। 'सततसलिलवसतिजनितजडिमहरणकरणतरणिकिरणपरिचरणपरजलमानवमाणवकारोहावरोहसन्दितपुरन्दर ऊर्मिसन्ततिम्'। कावेरी के इस दृश्यचित्रण में कोमलकान्त पदावली संगुंफन दिखाई पड़ता है। डॉ० लक्ष्मणस्वरूप द्वारा सम्पादित होकर यह ग्रन्थ लाहोर से प्रकाशित हुआ था। इसका हस्तलेख तंजोर पुस्तकालय में है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ पाण्डेय।

वक्रोक्तिजीवित—यह वक्रोक्ति सिद्धान्त का प्रस्थान ग्रन्थ है जिसके रचयिता आचार्य कुन्तक हैं [दे० कुन्तक]। यह ग्रन्थ चार उन्मेष में विभक्त है तथा इसके तीन भाग हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। कारिका एवं वृत्ति की रचना स्वयं कुन्तक ने की है और उदाहरण विभिन्न पूर्ववर्त्ती कवियों की रचनाओं से लिए गए हैं। इसमें कारिकाओं की कुल संख्या १६५ है (५८+३५+४६+२६)। प्रथम उन्मेष में काव्य के प्रयोजन, काव्यलक्षण, वक्रोक्ति की कल्पना, उसका स्वरूप एवं छह भेदों का वर्णन है। इसी उन्मेष में ओज, प्रसाद, माधुर्य, लावण्य एवं आभिजात्य गुणों का निरूपण

है। द्वितीय उन्मेष में षड्विधवक्रता का विस्तारपूर्वक वर्णन है। वे हैं—रूढ़िवक्रता, पर्यायवक्रता, उपचारवक्रता, विशेषणवक्रता, संवृतिवक्रता एवं वृत्तिवैचित्र्यवक्रता। इन वक्रताओं के कई अवान्तर भेद भी इसी उन्मेष में वर्णित हैं। इस उन्मेष में वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्धवक्रता एवं प्रत्ययवक्रता का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए इनके अवान्तर भेद भी कथित हैं। [कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति के मुख्य छह भेद हैं—वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्धवक्रता, पदपरार्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता एवं प्रबन्धवक्रता। इनका निर्देश प्रथम उन्मेष में है]। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता का विवेचन है और चतुर्थ उन्मेष में प्रकरणवक्रता एवं प्रबन्धवक्रता का निरूपण किया गया है। 'वक्रोक्तिजीवित' मे ध्वनि सिद्धान्त का खण्डन कर उसके भेदों को वक्रोक्ति में ही अन्तर्भूत किया गया है और वक्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम सम्पादन डॉ० एस० के० डे ने किया था जिसका तृतीय संस्करण प्रकाशित हो चुका है। तत्पश्चात् आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि ने हिन्दी भाष्य के साथ 'वक्रोक्तिजीवित' को प्रकाशित किया (१९५५ ई० मे)। इसका अन्य हिन्दी भाष्य चौखम्बा विद्याभवन से निकला है। भाष्यकर्ता हैं— पं० राधेश्याम मिश्र।

वराहमिहिर—भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अप्रतिम आचार्य। इनका जन्म-समय ५०५ ई० है। भारतीय ज्योतिर्विदों में वराहमिहिर अप्रतिम प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य माने जाते हैं। इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है 'बृहज्जातक'। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ है—पञ्चसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता, लघुजातक, विवाह-पटल, योगयात्रा तथा समाससंहिता। बृहज्जातक मे लेखक ने अपने विषय मे जो कुछ लिखा है उससे ज्ञात होता है कि इनका जन्मस्थान कालपी या काम्पिल्ल था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था जिनसे वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था और उज्जैनी में जाकर 'बृहज्जातक' का प्रणयन किया। ये महाराज विक्रमादित्य के सभारत्नों (नवरत्नों) में से एक माने जाते है। इन्हे 'त्रिस्कन्ध ज्योतिशास्त्र का रहस्यवेत्ता तथा नैसर्गिक कवितालता का प्रेमाश्रय' कहा गया है। वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र को तीन शाखाओ मे विभक्त किया था। प्रथम को तन्त्र कहा है जिसका प्रतिपाद्य है सिद्धान्तज्योतिष एवं गणित सम्बन्धी आधार। द्वितीय का नाम होरा है जो जन्म-पत्र से सम्बद्ध है। तृतीय को संहिता कहते है जो भौतिक फलित ज्योतिष है। इनकी 'बृहत्संहिता' फलित ज्योतिष की सर्वमान्य रचना है जिसमें ज्योतिशास्त्र को मानव जीवन के साथ सम्बद्ध कर उसे व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। इनकी असाधारण प्रतिभा की प्रशंसा पाश्चात्य विद्वानो ने भी की है। इस ग्रन्थ में सूर्य की गतियों के प्रभावों, चन्द्रमा में होने वाले प्रभावो एवं ग्रहों के साथ उसके सम्बन्धों पर विचार कर विभिन्न नक्षत्रों का मनुष्य के भाग्य पर पड़नेवाले प्रभावों का विवेचन है। 'योगयात्रा' में राजाओं के युद्धों का ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इनके ग्रन्थों की शैली प्रभावपूर्ण एवं कवित्वमयी है। उनके आधार पर ये उच्चकोटि के कवि सिद्ध होते हैं। 'बृहज्जातक' मे लेखक ने अनेकानेक यवन ज्योतिष

के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है तथा अनेक यवनाचार्यों का भी उल्लेख किया है। डॉ० कीथ ने (ए० बी० कीथ) अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में इनकी अनेक कविताओं को उद्धृत किया है। 'बृहत्संहिता' मे ६४ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

पेपीयते मधुमधौ सह कामिनीभि-
जेंगीयते श्रवणहारि सवेणवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न-
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः॥

'वसन्त में कामिनियों के साथ मे अच्छी तरह मधुपान किया जाता है; वेणु और वीणा के साथ श्रवण-सुखद गीतो का प्रचुर गान किया जाता है। अतिथियो, सुहृदों और स्वजनो के साथ खूब भोजन किये जाते है और सित के वर्ष में कामदेव का जयघोष चलता है।'

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद। २. भारतीय ज्योतिष—(हिन्दी अनुवाद) शंकर बालकृष्ण दीक्षित। ३ भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ० कीथ (हिन्दी अनुवाद)।

वसवराजीयम्—आयुर्वेदशास्त्र का ग्रन्थ। इस ग्रन्थ के रचयिता वसवराज आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे। इनका समय बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। वसवराज शिवलिंग के उपासक थे—शिवलिगमूर्त्तिमहं भजे पृ० २९०। इनके पिता का नाम नमः शिवाय था। ग्रन्थकर्त्ता का जन्म नीलकण्ठ वंश मे हुआ था और इनके जन्मस्थान का नाम कोट्टूर ग्राम था। इस ग्रन्थ का प्रचार दक्षिण भारत मे अधिक है। इसमे २५ प्रकरण हैं तथा नाडीपरीक्षा, रस-भस्म-चूर्ण गुटिका, कषाय, अवलेह तथा ज्वरादि रोगो के निदान एवं चिकित्सा का विवेचन है। ग्रन्थ का निर्माण अनेक प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर किया है—कृते तु चरकः प्रोक्तस्त्रेतायां तु रसार्णवः। द्वापरे सिद्धविद्याभूः कलौ वसवकः स्मृतः। इस ग्रन्थ का प्रकाशन पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी ने नागपुर से किया है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

बल्लालसेन—ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य। ये मिथिलानरेश लक्ष्मणसेन के पुत्र थे। इन्होने ११६८ ई० मे 'अद्भुतसागर' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ उनके राज्याभिषेक के आठ वर्षों के पश्चात् लिखा गया था। इन्होने ग्रहों के सम्बन्ध मे जितनी बाते लिखी हैं उनकी स्वयं परीक्षा करके विवरण दिया है। यह अपने विषय का विशाल ग्रंथ है जिसमे लगभग आठ हजार श्लोक हैं। लेखक ने बीच-बीच मे गद्य का भी प्रयोग किया है। ग्रन्थ के नामकरण की सार्थकता उसके वर्णित विषयों के आधार पर होती है। इसमे विवेचित विषयो की सूची इस प्रकार है—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, भृगु, शनि, केतु, राहु, ध्रुव, ग्रहयुद्ध, संवत्सर, ऋक्ष, परिवेष, इन्द्रधनुष, गन्धर्वनगर, निर्घात, दिग्दाह, छाया, तमोधूमनीहार, उल्का, विद्युत्, वायु, मेघ, प्रवर्षण, अतिवृष्टि, कबन्ध, भूकम्प, जलाशय, देवप्रतिमा, वृक्ष, गृह, वस्त्रोपानहा-

सनाथ, गज, अश्व, बिडाल आदि [यह सूची 'भारतीय ज्योतिष' से उद्धृत है] इस ग्रन्थ का प्रकाशन प्रभाकरी यन्त्रालय काशी, से हो चुका है।

आधारग्रन्थ— १. भारतीय ज्योतिष —डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरख प्रसाद।

वसिष्ठधर्मसूत्र—कुमारिलभट्ट ने अपने 'तन्त्रवार्त्तिक' में 'वसिष्ठधर्मसूत्र' का सम्बन्ध ऋग्वेद' के साथ बतलाया है। इसमें सभी वेदों के उद्धरण प्राप्त होते है अतः 'वसिष्ठधर्मसूत्र' को केवल 'ऋग्वेद' का धर्मसूत्र नहीं माना जा सकता। इसके मूलरूप में कालान्तर मे परिबृंहन, परिवर्धन एवं परिवर्त्तन होता रहा है और सम्प्रति इसमे ३० अध्याय पाये जाते हैं। वसिष्ठधर्मसूत्र' का सम्बन्ध कई प्राचीन ग्रन्थों से है। इसमें 'मनुस्मृति' के लगभग ४० श्लोक मिलते हैं तथा 'गौतमधर्मसूत्र' के १९ वे अध्याय तथा 'वसिष्ठधर्मसूत्र' के २२ वे अध्याय में अक्षरशः साम्य दिखाई पड़ता है। प्रमाणों के अभाव मे यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कौन-सा ग्रन्थ परवर्त्ती है और कौन पूर्ववर्त्ती। 'वसिष्ठधर्मसूत्र' की विषयसूची इस प्रकार है—

(१) धर्म की परिभाषा तथा आर्यावर्त्त की सीमा, पापी के लक्षण, नैतिक पाप, एक ब्राह्मण का किसी भी तीन उच्च जातियों से विवाह करने का नियम, ६ प्रकार के विवाह, राजा का प्रजा के आचार को संयमित करने वाला मानना तथा उसे कर के रूप मे षष्ठांश ग्रहण करने की व्यवस्था। (२) चारो वर्णों के विशेषाधिकार एवं कर्त्तव्य का वर्णन, विपत्तिकाल मे ब्राह्मण का क्षत्रिय या वैश्य की वृत्ति करने की छूट, ब्राह्मण द्वारा कतिपय विशिष्ट वस्तुओं के विक्रय का निषेध, ब्याज लेना निषिद्ध एवं ब्याज के दर का वर्णन। (३) अपढ ब्राह्मण की निन्दा, धन-सम्पत्ति प्राप्ति के नियम, आततायी का वर्णन, पंक्ति का विधान आदि। (४) चारो वर्णों के निर्माण को कर्म पर आश्रित मानना, सभी वर्णों के साधारण कर्त्तव्य, जन्म, मृत्यु, एवं अशौच का वर्णन, अतिथि-सत्कार, मधुपर्क आदि। (५) स्त्रियों की आश्रितता तथा रजस्वला नारी के नियम। (६) आचार्य की प्रशंसा तथा मल-मूत्रत्याग के नियम, शूद्र तथा ब्राह्मण की विशेषताएँ, शूद्र के घर पर भोजन करने की निन्दा। (७) चारो आश्रमो तथा विद्यार्थी का कर्त्तव्य। (८) गृहस्थ-कर्त्तव्य एव अतिथि-सत्कार। (९) अरण्यवासी साधुओं का कर्त्तव्य। (१०) संन्यासियो के कर्त्तव्य एवं नियम (११) विशिष्ट आदर पानेवाले ६ प्रकार के व्यक्ति। उपनयनरहित व्यक्तियों के नियम। (१२) स्नातक के आचार-नियम। (१३) वेदाध्ययन प्रारम्भ करने के नियम। (१४) वर्जित एवं अवर्जित भोजन। (१५) गोद लेने के नियम, वेदो के निन्दक तथा शूद्रों के यज्ञ कराने वालो तथा अन्य पापो के नियम। (१६) न्यायशासन तथा राजा के विषय। (१७) औरसपुत्र की प्रशंसा, क्षेत्रजपुत्र के सम्बन्ध में विरोधी मत। (१८) प्रतिलोम जातियो तथा शूद्रो के लिए वेदाध्ययन का निषेध। (१९) राजा का कर्त्तव्य एव पुरोहित का महत्त्व। (२०) जाने या अनजाने हुए कर्मों के प्रायश्चित्त। (२१) शूद्रा एवं ब्राह्मण स्त्री के साथ व्यभिचार के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था। (२२) सुरापान तथा संभोग करने पर ब्रह्मचारी के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था। (२३) कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र। (२४)

गुप्तव्रत तथा हल्के पापों के लिए व्रत। (२५)–(२६) प्राणायाम के गुण। (२७)–(२८) नारी की प्रशंसा तथा दान सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों की प्रशंसा। (२९) दान-पुरस्कार एवं ब्रह्मचर्य व्रत आदि। (३०) धर्म की प्रशंसा, सत्य और ब्राह्मण का वर्णन। इसका समय ईसा पूर्व ३०० वर्ष एवं २०० के बीच है।

आधारग्रन्थ—१. धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे (भाग १ हिन्दी अनुवाद) २. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

वस्तुपाल—१३ वीं शताब्दी के जैन कवि। इन्होंने 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसमें १६ सर्ग है तथा कृष्ण और अर्जुन की मित्रता, उनकी गिरनार पर्वत पर क्रीड़ा तथा सुभद्राहरण का वर्णन है। ये गुजरात के राजा वीरधवल के मन्त्री थे और विद्वानों को सम्मान एवं आश्रय प्रदान करने के कारण 'लघुभोजराज' के नाम से प्रख्यात थे।

वसुचरित्र चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता कवि कालाहस्ति थे जो अप्पय-दीक्षित के शिष्य कहे जाते हैं। इनका समय सोलहवीं शताब्दी है। इस चम्पूकाव्य की रचना का आधार तेलगु में रचित श्रीनाथ कवि का 'वसुचरित्र' है। प्रारम्भ में कवि ने गणेश की वन्दना कर पूर्ववर्ती कवियों का भी उल्लेख किया है। ग्रन्थ की समाप्ति कामाक्षी देवी की स्तुति से हुई है। इसमें कुल छह आश्वास हैं। 'वाल्मीकि-पाराशरकालिदासदण्डिप्रहृष्यद्भवभूतिमाघान्। वल्गन्मयूरं वरभारविं च महाकवीन्द्रान् मनसा भजे तान्॥ यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलॉग संख्या ४१४६ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छवि-नाथ त्रिपाठी।

वसुबन्धु—बौद्धदर्शन के वैभाषिक मत के आचार्यों में वसुबन्धु का स्थान सर्वोपरि है। ये सर्वास्तिवाद (दे० बौद्धदर्शन) नामक सिद्धान्त के प्रतिष्ठापकों में से हैं। ये असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न कौशिकगोत्रिय ब्राह्मण थे और इनका जन्म पुरुषपुर (पेशावर) में हुआ था। इनके आविर्भावकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। जापानी विद्वान् तकासुकु के अनुसार इनका समय पाँचवीं शताब्दी है पर यह मत अमान्य सिद्ध हो जाता है; क्योंकि इनके बड़े भाई असग के ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद ४०० ई० में हो चुका था। धर्मरक्ष नामक विद्वान् ने जो ४०० ई० में चीन में विद्यमान थे, इनके ग्रन्थों का अनुवाद किया था। इनका स्थितिकाल २८० ई० से लेकर ३६० ई० तक माना जाता है। कुमारजीव नामक विद्वान् ने वसुबन्धु का जीवन-चरित ४०१ से ४०९ के बीच लिखा था, अतः उपर्युक्त समय ही अधिक तर्कसंगत सिद्ध होता है। ये तीन भाई थे असंग, वसुबन्धु एवं विरिञ्चिवत्स। कहा जाता है कि प्रौढ़ावस्था में इन्होंने अयोध्या का अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। इनकी प्रसिद्ध रचना 'अभिधर्मकोश' है जो वैभाषिक मत का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ आठ परिच्छेदों में विभक्त है जिसमें निम्नांकित विषयों का विवेचन है—१ धातुनिर्देश, २ इन्द्रियनिर्देश, ३ लोकधातु निर्देश, ४ कर्मनिर्देश, ५ अनुशयनिर्देश,

६ आर्य पुद्गलनिर्देश, ७ ज्ञाननिर्देश एवं ८ ध्याननिर्देश। यह विभाजन अध्यायानुसार है। जीवन के अन्तिम समय में इन्होंने अपने भ्राता असंग के विचारों से प्रभावित होकर वैभाषिक मत का परित्याग कर योगाचार मत को ग्रहण कर लिया था। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—

१ परमार्थ सप्तति—इसमे विन्ध्यवासी प्रणीत 'सांख्यसप्तति' नामक ग्रन्थ का खण्डन है। २. तर्कशास्त्र—यह बौद्धन्याय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो तीन परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें पञ्चावयव, जाति और निग्रह-स्थान का विवेचन है। ३. वाद-विधि—यह भी न्यायशास्त्र का ग्रन्थ है। ४. अभिधर्मकोश की टीका, ५. सद्धर्मपुण्डरीक की टीका, ६. महापरिनिर्वाणसूत्र-टीका, ७ वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिताटीका, ८. विज्ञप्तिमात्रासिद्धि।

तिब्बती विद्वान् बुस्तोन के अनुसार वसुबन्धु-रचित अन्य ग्रन्थ हैं—पंचस्कन्ध-प्रकरण, व्याख्यायुक्ति, कर्मसिद्धिप्रकरण, महायानसूत्रालंकार-टीका प्रतीत्यसमुत्पादसूत्र-टीका तथा मध्यान्तविभागभाष्य। 'अभिधर्मकोश' का उद्धार करने का श्रेय डाक्टर पुसें को है। इन्होने मूल ग्रन्थ तथा चीनी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन फ्रेंच भाषा की टिप्पणियो के साथ किया है। इसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी से हो चुका है जिसका अनुवाद एवं सम्पादन आ० नरेन्द्रदेव ने किया है। बौद्धधर्म के आकर ग्रन्थो में 'अभिधर्मकोश' का नाम विख्यात है। इस पर यशोमित्र ने 'स्फुरार्था' नामक संस्कृत-टीका लिखी है ['विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा सस्कृत सीरीज से हो चुका है। अनुवादक डॉ० महेश तिवारी]।

आधारग्रन्थ—१. बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २. भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास—डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय। ४ बौद्धदर्शन एवं अन्य भारतीय दर्शन—डॉ० भरतसिंह उपाध्याय। ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री वाचस्पति गैरोला।

व्यक्तिविवेक—इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य महिमभट्ट है [दे० महिमभट्ट]। इसकी रचना आनन्दवर्धन कृत 'ध्वन्यालोक' में प्रतिपादित ध्वनिसिद्धान्त के खण्डन के लिए हुई थी। इसके मंगलाचरण मे ही लेखक ने अपने उद्देश्य का संकेत किया है—'अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्। व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम्॥ 'व्यक्तिविवेक' मे तीन विमर्श है। प्रथम विमर्श मे ध्वनि की परीक्षा करते हुए उसके लक्षण में (आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित लक्षण मे) दस दोष प्रदर्शित किये गए है। लेखक ने वाच्य तथा प्रतीयमान अर्थ का उल्लेख कर प्रतीयमान अर्थ को अनुमिति ग्राह्य सिद्ध किया है। महिमभट्ट ने ध्वनि की तरह अनुमिति के भी तीन भेद किये हैं—वस्तु, अलंकार एवं रस। द्वितीय विमर्श में शब्ददोषों पर विचार कर ध्वनि के लक्षण मे प्रक्रमभेद तथा पौनरुक्ति आदि दोष दिखलाये गए है। तृतीय विमर्श में ध्वन्यालोक के उन उदाहरणों को अनुमान में गतार्थ किया गया है जिन्हें कि ध्वन्यालोककार ने ध्वनि का उदाहरण माना है। 'व्यक्तिविवेक' का मुख्य प्रतिपाद्य है—

'ध्वनि या व्यंग्यार्थ का खण्डन कर परार्थानुमान में उसका अन्तर्भाव करना।' यह संस्कृत काव्यशास्त्र का अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है जिसके पद-पद पर उसके रचयिता का प्रगाढ़ अध्ययन एवं अद्भुत पाण्डित्य दिखाई पड़ता है। इस पर राजानक रुय्यक कृत 'व्यक्तिविवेकव्याख्यान' नामक टीका प्राप्त होती है जो द्वितीय विमर्श तक ही है। इस पर पं० मधुसूदन शास्त्री ने 'मधुसूदनी' विवृति लिखी है जो चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है। 'व्यक्तिविवेक' का हिन्दी अनुवाद पं० रेवाप्रसाद त्रिवेदी ने किया है जिसका प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन से हुआ है। प्रकाशनकाल १९६४ ई०।

वाक्यपदीय—यह व्याकरण-दर्शन का अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है जिसके लेखक हैं भर्तृहरि [दे० भर्तृहरि]। इसमें तीन काण्ड है—आगम या ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड एवं पदकाण्ड। ब्रह्मकाण्ड मे अखण्डवाक्यस्वरूप स्फोट का विवेचन है। सम्प्रति इसका प्रथम काण्ड ही उपलब्ध है। 'वाक्यपदीय' पर अनेक व्याख्याएँ लिखी गयी हैं। स्वयं भर्तृहरि ने भी इसकी स्वोपज्ञ टीका लिखी है। इसके अन्य टीकाकारो मे वृषभदेव एवं धनपाल की टीकाएँ अनुपलब्ध है। पुण्यराज (११ वीं शती) ने द्वितीयकाण्ड पर स्फुटार्थक टीका लिखी है। हेलाराज (११ वीं शती) ने 'वाक्यपदीप' के तीनो काण्डों पर विस्तृत व्याख्या लिखी थी, किन्तु इस समय केवल तृतीय काण्ड ही उपलब्ध होता है। इनकी व्याख्या का नाम 'प्रकीर्ण-प्रकाश' है। 'वाक्यपदीय' मे भाषाशास्त्र एवं व्याकरण-दर्शन से सम्बद्ध कतिपय मौलिक प्रश्न उठाये गए है एवं उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। इसमें वाक् का स्वरूप निर्धारित कर व्याकरण की महनीयता सिद्ध की गयी है। इसकी रचना श्लोकबद्ध है तथा कुल १९६४ श्लोक है। प्रथम मे १५६, द्वितीय मे ४९३ एव तृतीय १३२५ श्लोक है। इसके तीनो काण्डो के विषय भिन्न-भिन्न है। वस्तुतः, इसका प्रतिपाद्य दो ही काण्डो मे पूर्ण हो जाता है तथा प्रथम दो काण्डो मे आए हुए प्राकरणिक विषयो का विवेचन तृतीय काण्ड मे किया गया है। इसके द्वितीयकाण्ड का नाम वाक्य काण्ड है और इसी मे इसके नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इस काण्ड में वाक्य एवं पद अथवा वाक्यार्थ एवं पदार्थ की सापेक्ष सत्ता का साधार विवेचन तथा भाषा की आधारभूत इकाई का निरूपण है।

१—**ब्रह्मकाण्ड**—इसमे शब्दब्रह्मविषयक सिद्धान्त का विवेचन है। भर्तृहरि शब्द को ब्रह्म मानते हैं। उनके अनुसार शब्द तत्त्व अनादि और अनन्त है। उन्होने व्याकरण का विषय इच्छा न मानकर भाषा को ही उसका प्रतिपाद्य स्वीकार किया है तथा बताया है कि प्रकृति-प्रत्यय के सयोग-विभाग पर ही भाषा का यह रूप आश्रित है। पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी को वाणी का तीन चरण मानते हुए इन्ही के रूप मे व्याकरण का क्षेत्र स्वीकार किया गया है। २—**द्वितीय काण्ड**—इस काण्ड में भाषा की इकाई वाक्य को मानते हुए उस पर विचार किया गया है। इसके विषय की उद्घोषणा करते हुए भर्तृहरि कहते है कि 'नादों द्वारा अभिव्यज्यमान आन्तरिक शब्द ही बाह्यरूप से श्रूयमाण शब्द कहलाता है'। अतः इनके अनुसार सम्पूर्ण वाक्य शब्द है। 'यदन्तः शब्दतत्त्वं तु नादैरेकं प्रकाशितम्। तमाहुरपरे शब्दे तस्य वाक्ये

तथैकता ।। २।३०। वाक्यं प्रति मतिभिन्ना बहुधा न्यायवादिनाम्' ।। २।२। भर्तृहरि के अनुसार श्रोता तथा ग्रहीता मे भाषा के आदान-प्रदान के चार चरण होते है, जिन्हें ग्रहीता में नाद, स्फोट, ध्वनि (व्यक्ति) तथा स्वरूप कहा जाता है। अर्थभावना एवं शब्द को अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपर्युक्त चार तत्त्वों पर ही आश्रित रहना पडता है। इसी काण्ड मे प्रासंगिक विषय के अन्तर्गत 'शब्दप्रकृतिरपभ्रंश' पर भी विचार किया गया है। वे शब्दशक्तियों की बहुमान्य धारणाओं को स्वीकार नहीं करते और किसी भी अर्थ को मुख्य या गौण नहीं मानते। उनके अनुसार अर्थ-विनिश्चय के आधार है—वाक्य, प्रकरण, अर्थ, साहचर्य आदि। उनके अनुसार जब कोशों में निश्चित किए गए अथवा प्रकृति-प्रत्यय विभाग के द्वारा प्राप्त अर्थों से कुछ भी निश्चय नहीं होता तो प्रतिभा, अभ्यास, विनियोग एवं लोक-प्रयोग के द्वारा अर्थ का विनिश्चय होता है।

तृतीयकाण्ड—इसे पदकाण्ड या प्रकीर्णक कहते हैं। इस काण्ड में पद से सम्बद्ध नाम या सुबन्त के साथ विभक्ति, संख्या, लिंग, द्रव्य, वृत्ति, जाति पर भी विचार किया गया है। इसमे चौदह समुद्देश है। प्रथम अंश का नाम जाति समुद्देश है। आगे के समुद्देशो मे गुण, साधन, क्रिया, काल, संख्या, लिंग, पुरुष, उपग्रह एवं वृत्ति के सम्बन्ध मे मौलिक विचार व्यक्त किये गए हैं।

आधारग्रन्थ—१. फिलॉसफी ऑफ संस्कृत ग्रामर—चक्रवर्त्ती। २. थियरी ऑफ मीनिंग इन इण्डियन फिलॉसफी—डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय। ३ अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी। ४ संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १, २—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५. वाक्यपदीय (हिन्दी टीका)—अनुवादक पं० सूर्यनारायण शुक्ल, चौखम्बा प्रकाशन। ६ भाषातत्त्व और वाक्यपदीय—डॉ० सत्यकाम वर्मा ७. वाक्यपदीय मे आख्यात विवेचन—डॉ० रामसुरेश त्रिपाठी (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)।

वाग्भट—संस्कृत मे वाग्भट नामधारी चार लेखक है—'अष्टांगहृदय' (वैद्यकग्रन्थ) के लेखक, 'नेमिनिर्माण' के कर्त्ता, 'वाग्भटालंकार' के रचयिता तथा 'काव्यानुशासन' के प्रणेता। यहां जैन कवि वाग्भट का परिचय दिया जा रहा है। इन्होंने 'नेमिनिर्माण' नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमे १५ सर्गो मे जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की कथा कही गयी है। इनका जन्म अहिछत्र (वर्तमान नागौद) मे हुआ था और ये परिवाटवंशीय छाहड़ या बाहड के पुत्र थे। 'नेमिनिर्माण' पर भट्टारक ज्ञानभूषण ने 'पंजिका' नामक टीका लिखी है।

वाग्भट—आयुर्वेद के महान् लेखक। समय ५ वीं शताब्दी। इन्होने 'अष्टांगसंग्रह' विख्यात ग्रन्थ की रचना की है। इनके पिता का नाम सिंहगुप्त एवं पितामह का नाम वाग्भट था। ये सिन्धु नामक स्थान के निवासी थे। इनके गुरु का नाम अवलोकितेश्वर था जो बौद्ध थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ मे स्वयं उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार किया है—भिषग्वरो वाग्भट इत्यभून्मे पितामहो नामधरोऽस्मि यस्य। सुतो भवत्तस्य च सिंहगुप्तस्तस्याप्यहं सिन्धुषु लब्धजन्मा॥ समधिगम्य गुरोरवलोकितात् गुरुतराच्च पितुः

प्रतिभां मया।' (संग्रह, उत्तर अध्याय ५०) वाग्भट स्वयं भी बौद्धधर्मावलम्बी थे। वाग्भट के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि इन्होने 'अष्टांगसंग्रह' एवं 'अष्टांगहृदय' नामक ग्रन्थों की रचना की है। पर इनकी एकमात्र रचना 'अष्टांगसंग्रह' ही है जो गद्यपद्यमय है। 'अष्टांगहृदय' स्वतन्त्र रचना न होकर 'अष्टांगहृदय' का पद्यमय संक्षिप्त रूप है। 'अष्टांगसंग्रह' का निर्माण 'चरक' एवं 'सुश्रुत' के आधार पर किया गया है और इसमें आयुर्वेद के प्रसिद्ध आठ अङ्गों का विवेचन है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में सर्वाधिक टीकाएँ 'अष्टांगसंग्रह' पर ही प्राप्त होती हैं। 'अष्टांगहृदय' के ऊपर चरक एवं सुश्रुत के टीकाकार जैज्जट ने भी टीका लिखी है। इस पर कुल ३४ टीकाओं के विवरण प्राप्त होते है जिनमे आशाधर की उद्योत टीका, चन्द्रचन्दन की पदार्थचन्द्रिका, दामोदर की सकेतमजरी, अरुणदत्त की सर्वांगसुन्दरी टीका अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। 'अष्टांगहृदय' मे १२० अध्याय हैं और इसके छह विभाग किये गए हैं—सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान तथा उत्तरतन्त्र। दोनों ही ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं। अष्टाङ्गसंग्रह—श्री गोवर्द्धन शर्मा छागाणीकृत अर्थप्रकाशिका हिन्दी टीका। अष्टाङ्गहृदय—हिन्दी टीकाकार श्री अत्रिदेव विद्यालङ्कार। प्रकाशनस्थान—चौखम्बा विद्याभवन।

आधारग्रन्थ—१. आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार। १. वाग्भट विवेचन—पं० प्रियव्रत शर्मा।

वाग्भट प्रथम—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'वाग्भटालंकार' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इनका समय बारहवीं शताब्दी का पूर्वभाग है। वाग्भट का प्राकृत नाम बाहड था और ये सोम के पुत्र थे। इनका सम्बन्ध जयसिंह (१०९३–११४३ ई०) से था। वाग्भट ने अपने ग्रन्थ में सस्कृत तथा प्राकृत दोनो भाषा के उदाहरण दिये हैं। 'वाग्भटालंकार' की रचना पांच परिच्छेदों में हुई है। इसमे २६० पद्य है जिनमें काव्यशास्त्र के सिद्धान्तो का संक्षिप्त विवेचन है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप तथा हेतु का वर्णन है। द्वितीय में काव्य के विविध भेद पद, वाक्य एवं अर्थदोष तथा तृतीय परिच्छेद में दस गुणों का विवेचन है। चतुर्थ में चार शब्दालंकार एवं ३५ अर्थालंकार तथा गौडी एव वैदर्भी रीति का वर्णन है। पंचम परिच्छेद मे नवरस एवं नायक-नायिका भेद का निरूपण है। इस पर आठ टीकाओं का विवरण प्राप्त होता है जिनमे दो ही टीकाएं प्रकाशित हैं। इसका हिन्दी अनुवाद चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित है। अनुवादक है डॉ० सत्यव्रत सिंह। वाग्भट जैनधर्मावलम्बी थे।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

वाग्भट द्वितीय—काव्यशास्त्र के आचार्य। इनका समय १४ वीं शताब्दी के लगभग है। इन्होने 'काव्यानुशासन' नामक लोकप्रिय ग्रन्थ (काव्यशास्त्रीय) की रचना की है। ये जैनमतावलम्बी थे। इनके पिता का नाम नेमकुमार था। इन्होंने 'छन्दोऽनुशासन' एवं 'ऋषभदेवचरित' नामक काव्य की भी रचना की थी। 'काव्यानुशासन' सूत्रशैली में रचित काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है जिस पर स्वयं लेखक ने 'अलंकारतिलक नामक'

वृत्ति लिखी है। ग्रन्थ पांच अध्यायों मे विभक्त है। प्रथम अध्याय में काव्य के प्रयोजन, हेतु, कवि समय एवं काव्यभेदों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में १६ प्रकार के पददोष, १४ प्रकार के वाक्य एवं अर्थदोष वर्णित हैं। तृतीय अध्याय मे ६३ अर्थालंकार एवं चतुर्थ में छह शब्दालंकारो का विवेचन है। पंचम अध्याय मे नौ रस, नायक-नायिकाभेद, प्रेम की दस अवस्था एवं रस-दोष का वर्णन है।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

वाचस्पति मिश्र—मैथिल नैयायिको में वाचस्पति मिश्र आते हैं। इन्होंने सभी भारतीय दर्शनों का प्रगाढ़ अनुशीलन किया था। न्यायदर्शन सम्बन्धी इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'*न्यायवार्त्तिक तात्पर्य टीका*'। इन्होने '*सांख्यकारिका*' के ऊपर '*सांख्यतत्त्व-कौमुदी*', योगदर्शन (व्यासभाष्य) के ऊपर '*तत्त्ववैशारदी*' तथा वेदान्तदर्शन के ऊपर भी ग्रन्थो की रचना की थी। शाङ्करभाष्य के ऊपर इनकी '*भामती*' नामक टीका प्रसिद्ध है जिसका नामकरण इनकी पत्नी के नाम पर हुआ है। इनके गुरु का नाम त्रिलोचन था। कहा जाता है कि वाचस्पति मिश्र गृहस्थ होते हुए भी गृहस्थ धर्म से सदा पराङ्मुख रहा करते थे। '*भामती टीका*' इनकी सर्वाधिक प्रौढ़ रचना है जो भारतीय दर्शनो मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। '*न्यायवार्त्तिक-तात्पर्यटीका*' नामक ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य बौद्ध आचार्य धर्मकीर्त्ति के मतों का खण्डन करना था [दे० धर्मकीर्त्ति]। धर्मकीर्त्ति ने ब्राह्मण नैयायिकों के विचार का खण्डन कर बौद्धन्याय की महत्ता सिद्ध की है, वाचस्पति मिश्र ने उनके मतों का निरास कर न्यायशास्त्र की प्रामाणिकता एवं प्रौढ़ता का निदर्शन किया है। इनका आविर्भाव काल ८४१ विक्रम संवत् के आसपास है। इन्होंने '*न्यायसूची*' नामक अन्य न्यायशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की है जिसका रचनाकाल ८९८ संवत् दिया है। '*न्यायसूचीनि-बन्धोयमकारि सुधियां मुदे। श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वंकवसु (८९८) वत्सरे॥*'

आधारग्रन्थ—१. भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २. हिन्दी तर्कभाषा—आ० विश्वेश्वर (भूमिका)। ३—हिन्दी *न्यायकुसुमाञ्जलि*—आ० विश्वेश्वर (भूमिका)।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य—यह 'शुक्लयजुर्वेद' का प्रातिशाख्य है जिसके रचयिता कात्यायन मुनि हैं। ये वार्तिककार कात्यायन से भिन्न तथा पाणिनि के पूर्ववर्त्ती हैं। इस प्रातिशाख्य में आठ अध्याय हैं तथा मुख्य प्रतिपाद्य है परिभाषा, स्वर एवं संस्कार का विस्तारपूर्वक विवेचन। प्रथम अध्याय मे पारिभाषिक शब्दों के लक्षण दिये गए हैं एवं द्वितीय में तीन प्रकार के स्वरों का लक्षण एवं विशिष्टता का प्रतिपादन है। तृतीय से सप्तम अध्यायों में सन्धि या संस्कार का विस्तृत विवेचन है। इनमे सन्धि, पदपाठ बनाने के नियम और स्वर-विधान का वर्णन है। अन्तिम अध्याय मे वर्णों की गणना एवं स्वरूप का विवेचन है। पाणिनि-व्याकरण में इसके अनेक सूत्र ग्रहण कर लिए गए हैं—वर्णस्यादर्शनं लोपः (१।१४१), अदर्शनं लोपः (१।१।६०)। इससे ये पाणिनि के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रातिशाख्य की दो शाखाएँ हैं जो प्रकाशित

हो चुकी है—उव्वट का भाष्य एवं अनन्त भट्ट की व्याख्या केवल मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित है और उव्वट भाष्य का प्रकाशन कई स्थानों से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

वादिराजसूरि—ये जैनदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका आविर्भाव नवम शताब्दी में हुआ है। वे दिगम्बर सम्प्रदाय के महनीय तर्कशास्त्री माने जाते हैं। वादिराज दक्षिण के सोलंकीवंशी नरेश जयसिंह प्रथम के समसामयिक माने जाते हैं जिनका समय शक संवत् ९३८ से ९६४ है। इन्होंने 'न्यायविनिश्चयनिर्णय' नामक महत्त्वपूर्ण जैनन्याय का ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ भट्ट अकलंक कृत 'न्यायविनिश्चय' का भाष्य है। इन्होने 'पार्श्वनाथचरित्र' नामक सुप्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ की भी रचना की है।

आधारग्रन्थ—भारतीयदर्शन—आचार्य बलदेव उपाध्याय।

वात्स्यायन—न्यायसूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकर्त्ता वात्स्यायन हैं। इनके ग्रन्थ में अनेक वार्तिकों के उद्धरण प्राप्त होते हैं जिससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्व भी न्यायसूत्र पर व्याख्या ग्रन्थों की रचना हुई थी, पर सम्प्रति वात्स्यायन का भाष्य ही एतद्विषयक प्रथम उपलब्ध रचना है। इनके भाष्य के ऊपर उद्योतकराचार्य ने विस्तृत वार्तिक की रचना की है [दे० उद्योतकर]। वात्स्यायन का ग्रन्थ 'वात्स्यायनभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका समय विक्रम पूर्व प्रथम शतक माना जाता है। संस्कृत में वात्स्यायन नाम के अनेक व्यक्ति हैं जिनमें कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन भी हैं। पर, न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन उनसे सर्वथा भिन्न हैं [दे० कामशास्त्र]। हेमचन्द्र की 'अभिधानचिन्तामणि' में वात्स्यायन के अनेक नामों का निर्देश है जिनमें चाणक्य का भी नाम आ जाता है। 'वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः। द्रामिलः पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः॥' यहाँ वात्स्यायन, पक्षिलस्वामी, चाणक्य और कौटिल्य एक व्यक्ति के नाम कहे गये हैं। 'वात्स्यायनभाष्य' के प्रथम सूत्र के अन्त में चाणक्यरचित 'अर्थशास्त्र' का एक श्लोक भी उद्धृत है, अतः विद्वानों का अनुमान है कि कौटिल्य ही न्यायसूत्र के भाष्यकार हैं। 'प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥' पर, यह मत अभी तक पूर्णतः मान्य नहीं हो सका है। वात्स्यायन ने 'न्यायदर्शन' अध्याय २, अ० १, सूत्र ४० की व्याख्या में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए भात बनाने की विधि का वर्णन किया है जिसके आधार पर विद्वान् इन्हें द्रविड देश का निवासी मानते हैं।

आधारग्रन्थ—१ इण्डियन फिलॉसफी—भाग २—डॉ० राधाकृष्णन् २. भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. हिन्दी तर्कभाषा—आ० विश्वेश्वर।

वात्स्यायन कामसूत्र—यह भारतीय कामशास्त्र या कामकलाविज्ञान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विश्वविश्रुत ग्रन्थ है। इसके लेखक वात्स्यायन के नाम पर ही इसे 'वात्स्यायन कामसूत्र' कहा जाता है। वात्स्यायन एवं चाणक्य के जीवन, स्थितिकाल तथा नामकरण के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही मतभेद दिखाई पड़ता है। कौटिल्य तथा वात्स्यायन 'हेमचन्द्र', 'वैजयन्ती', 'त्रिकाण्डशेष' तथा 'नाममालिका' प्रभृति कोशों

में एक ही नाम वाले व्यक्ति कहे गए हैं, पर ये नाम भ्रमवश एक साथ जुट गए हैं। 'नीतिसार' के रचयिता कामन्दक को चाणक्य का प्रधान शिष्य मानते हुए उसे वात्स्यायन से अभिन्न माना गया है। सुबन्धुरचित 'वासवदत्ता' में कामसूत्रकार का नाम मल्लनाग दिया हुआ है। कामसूत्र के टीकाकार (जयमंगला) यशोधर भी वात्स्यायन का वास्तविक नाम मल्लनाग स्वीकार करते हैं तथा बहुत से विद्वान् न्यायभाष्यकर्त्ता वात्स्यायन को कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन से अभिन्न मानते हैं। इसी प्रकार वात्स्यायन के स्थितिकाल के विषय में भी मतभेद दिखाई पड़ता है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार वात्स्यायन का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी है, पर शेष इतिहासकारों ने इनका आविर्भाव तीसरी या चौथी शती में माना है। पं० सूर्यनारायण व्यास (प्रसिद्ध ज्योतिर्विद) ने इनका स्थितिकाल कालिदास के पश्चात् ई० पू० प्रथम शताब्दी माना है। इस प्रकार वात्स्यायन के नामकरण तथा उनके आविर्भावकाल दोनों के ही सम्बन्ध में विविध मतवाद प्रचलित हैं जिनका निराकरण अभी तक न हो सका है। 'कामसूत्र' का विभाजन अधिकरण, अध्याय तथा प्रकरण में किया गया है। इसके प्रथम अधिकरण का नाम 'साधारण' है तथा इसके अन्तर्गत ग्रन्थ-विषयक सामान्य विषयों का परिचय दिया गया है। इस अधिकरण में अध्यायों की संख्या पांच है तथा पञ्च प्रकरण है—शास्त्रसंग्रह, त्रिवर्गप्रतिपत्ति, विद्यासमुद्देश, नागरकवृत्त तथा नायक सहाय-दूतीकर्म विमर्श प्रकरण। प्रथम प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य श्रुति, स्मृति आदि विभिन्न विद्याओं के साथ अनिवार्य रूप से कामशास्त्र का भी अध्ययन करे। कामसूत्रकार के अनुसार मनुष्य विद्या का अध्ययन कर अर्थोपार्जन में प्रवृत्त हो तत्पश्चात् विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करे। किसी दूती या दूत की सहायता से उसे किसी नायिका से सम्पर्क स्थापित कर प्रेम-सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए, तदुपरान्त उसी से विवाह करना चाहिए जिससे कि गार्हस्थ्य जीवन सदा के लिए सुखी बने।

द्वितीय अधिकरण की अभिधा साम्प्रयोगिक है जिसका अर्थ है सम्भोग। इस अधिकरण में दस अध्याय एवं सत्रह प्रकरण है जिनमें नाना प्रकार से स्त्री-पुरुष के सम्भोग का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि जब तक मनुष्य सम्भोग-कला का सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्त करता तब तक उसे वास्तविक आनन्द नहीं मिलता। तृतीय अधिकरण को कन्या साम्प्रयुक्त कहा गया है। इसमें पांच अध्याय तथा नौ प्रकरण है। इस प्रकरण में विवाह के योग्य कन्या का वर्णन किया गया है। कामसूत्रकार ने विवाह को धार्मिक बन्धन माना है। चतुर्थ अधिकरण को 'भार्याधिकरण' कहते है। इसमें दो अध्याय तथा आठ अधिकरण है तथा भार्या के दो प्रकार (विवाह होने के पश्चात् कन्या को भार्या कहते है) वर्णित है एकचारिणी तथा सपत्नी। इस अधिकरण में दोनों भार्याओं के प्रति पति का तथा पति के प्रति उनके कर्तव्य का वर्णन है। पाँचवें अधिकरण की संज्ञा 'पारदारिक' है। इस प्रकरण में अध्यायों की संख्या छह तथा प्रकरणों की संख्या दस है। इसका विषय परस्त्री तथा परपुरुष के प्रेम का वर्णन है। किन परिस्थितियों में प्रेम उत्पन्न होता है, बढ़ता एवं

टूट जाता है, किस प्रकार परदारेच्छा की पूर्ति होती है तथा स्त्रियों की व्यभिचार से कैसे रक्षा हो सकती है, आदि विषयों का यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन है। छठे प्रकरण को 'वैशिक' कहा गया है। इसमें छह अध्याय तथा बारह प्रकरण हैं। वेश्याओं के चरित तथा उनके समागम के उपायों का वर्णन ही इस अधिकरण का प्रमुख विषय है। कामसूत्रकार ने वेश्यागमन को दुर्व्यसन माना है। सप्तम अधिकरण की संज्ञा 'औपनिषदिक' है। इसमे दो अध्याय तथा छह प्रकरण है तथा तन्त्र, मन्त्र, औषधि, यन्त्र आदि के द्वारा नायक-नायिकाओं को वशीभूत करने की विधियां दी गयी हैं। रूपलावण्य को बढ़ाने के उपाय, नष्टराग की पुनः प्राप्ति तथा वाजीकरण के प्रयोग की विधि भी इसमे वर्णित है। औपनिषदिक का अर्थ 'टोटका' होता है। इस ग्रन्थ में कुल सात अधिकरण, ३६ अध्याय, ६४ प्रकरण एवं १२५० सूत्र (श्लोक) हैं। कामसूत्र में बताया गया है कि सर्वप्रथम इस शास्त्र का प्रवचन ब्रह्मा ने किया था जिसे नन्दी ने एक सहस्र अध्यायों मे विभाजित किया। उसने अपनी ओर से कुछ घटाव नहीं किया। श्वेतकेतु ने नन्दी के कामशास्त्र को सम्पादित कर इसका संक्षिप्तीकरण किया।

'कामसूत्र' मे मैथुन का चरमसुख तीन प्रकार का माना गया है—१—सम्भोग, सन्तानोत्पत्ति, जननेन्द्रिय तथा काम-सम्बन्धी समस्याओं के प्रति आदर्शमय भाव। २—मनुष्य जाति का उत्तरदायित्व—३—अपने सहचर या सहचरी के प्रति उच्चभाव, अनुराग, श्रद्धा और हितकामना। वात्स्यायन ने इसमे धर्म, अर्थ और काम तीनों की व्याख्या की है। कामसूत्र मे वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं के परस्पर कलह, अनशन, सम्बन्धविच्छेद, गुप्त-व्यभिचार, वेश्यावृत्ति, नारीअपहरण तथा अप्राकृतिक व्यभिचारो आदि के दुष्परिणामों का वर्णन कर अध्येता को शिक्षा दी गयी है जिससे कि वह अपने जीवन को सुखी बना सके। संस्कृत मे 'कामसूत्र' के आधार पर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। इनके लेखको ने 'कामसूत्र' के कतिपय विषयों को लेकर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ-रचना की है, जिन पर वात्स्यायन का प्रभाव स्पष्ट है। कोकपण्डित ने 'रतिरहस्य', भिक्षुपद्मश्री ने 'नागरसर्वस्व' तथा ज्योतिरीश्वर ने 'पंचसायक' नामक ग्रन्थ लिखे हैं। 'कामसूत्र' के आधार पर 'अनङ्गरङ्ग' 'कोकसार' 'कामरत्न' आदि ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।

आधारग्रन्थ—१. कामसूत्र (हिन्दी व्याख्या सहित)— (जयमङ्गला सहित) व्याख्याता श्रीदेवदत्त शास्त्री–चौखम्बा प्रकाशन। २. कामसूत्र परिशीलन–श्री वाचस्पति गैरोला (संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद) ३. कामकुञ्जलता—सं० आ० ढुण्ढिराज शास्त्री।

वामन—काव्यशास्त्र के आचार्य। ये रीतिसम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इन्होंने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें 'रीति' को काव्य की आत्मा माना गया है [दे० काव्यालंकारसूत्रवृत्ति]। ये काश्मीर निवासी तथा उद्भट के सहयोगी हैं। 'राजतरंगिणी' में वामन को जयापीड (काश्मीर नरेश) का मन्त्री लिखा गया है—

मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा। बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥ ४।४९७ जयापीड का समय ७७९ से ८१३ ई० तक है। वामन का उल्लेख अनेक आलंकारिकों ने किया है जिससे उनके समय पर प्रकाश पड़ता है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' मे 'वामनीयाः' के नाम से इनके सम्प्रदाय के आलंकारिकों का उल्लेख है तथा अभिनवगुप्त ने एक श्लोक [ध्वन्यालोक में उद्धृत—अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्-पुरःसरः। अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः ॥] के सम्बन्ध में बताया है कि वामन के अनुसार इसमे आक्षेपालंकार है। इस प्रकार राजशेखर एवं अभिनव से वामन पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में ३१९ सूत्र एवं पांच अधिकरण हैं। स्वयं वामन ने स्वीकार किया है कि उन्होने सूत्र एवं वृत्ति दोनों की रचना की है—प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया। काव्यालंकारसूत्राणां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते ॥ मंगलश्लोक। इसमे गुण, रीति, दोष एवं अलंकार का विस्तृत विवेचन है। वामन ने गुण एवं अलंकार के भेद को स्पष्ट करते हुए काव्यशास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इनके अनुसार गुण काव्य के नित्यधर्म हैं और अलंकार अनित्य। काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार एवं उसको अतिशायित करने वाले गुण हैं, सौन्दर्य ही अलंकार है। इन्होने उपमा को मुख्य अलंकार के रूप में मान्यता दी है और काव्य मे रस का महत्त्व स्वीकार किया है।

आधारग्रन्थ—१ हिन्दी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—आ० विश्वेश्वर। २. भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १, २—आ० बलदेव उपाध्याय।

वामनपुराण—पुराणों मे क्रमानुसार चौदहवाँ पुराण। 'वामनपुराण' का सम्बन्ध भगवान् विष्णु के वामनावतार से है। 'मत्स्यपुराण' मे कहा गया है कि जिस पुराण मे त्रिविक्रम या वामन भगवान् की गाथा का ब्रह्मा द्वारा कीर्त्तन किया गया है और जिसमें भगवान् द्वारा तीन पगो से ब्रह्माण्ड को नाप लेने का वर्णन है, उसे 'वामनपुराण' कहते है। इसमे दस सहस्र श्लोक एवं ९२ अध्याय है तथा पूर्व और उत्तर भाग के नाम से दो विभाग किये गए है। इस पुराण में चार संहिताएँ हैं—माहेश्वरीसंहिता, भागवतीसंहिता, सौरीसंहिता और गाणेश्वरीसंहिता। इसका प्रारम्भ वामनावतार से होता है तथा कई अध्यायो मे विष्णु के अवतारों का वर्णन है। विष्णुपरक पुराण होते हुए भी इसमे साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं है, क्योंकि विष्णु की अवतार-गाथा के अतिरिक्त इसमे शिव-माहात्म्य, शैवतीर्थ, उमा-शिव-विवाह, गणेश का जन्म तथा कार्त्तिकेय की उत्पत्ति की कथा दी गयी है। 'वामनपुराण' में वर्णित शिवपार्वतीचरित का 'कुमारसंभव' के साथ आश्चर्यजनक साम्य है। विद्वानों का कहना है कि कालिदास के कुमारसंभव से प्रभावित होने के कारण इसका समय कालिदासोत्तर युग है। वेंकटेश्वर प्रेस की प्रकाशित प्रति मे नारदपुराणोक्त विषयों की पूर्ण संगति नहीं बैठती। पूर्वार्द्ध के विषय तो पूर्णतः मिल जाते हैं किन्तु उत्तरार्द्ध की माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी नामक चार संहिताएँ मुद्रित प्रति में प्राप्त नहीं होतीं। इन संहिताओं की श्लोक संख्या चार सहस्र है। वामन पुराण की विषय-सूची—कूर्मकल्प के वृत्तान्त का वर्णन, ब्रह्माजी के शिरच्छेद की कथा, कपाल-

मोचन आख्यान, दक्षयज्ञ-विध्वंस, मदन-दहन, प्रह्लादनारायणयुद्ध, देवासुर संग्राम, सुकेशी तथा सूर्य की कथा, काम्यव्रत का वर्णन, दुर्गाचरित्र, तपतीचरित्र, कुरुक्षेत्र-वर्णन, अनुपमसत्या-माहात्म्य, पार्वती की कथा, जन्म एवं विवाह, कौशिकी उपाख्यान, कुमारचरित, अन्धकवध, साध्योपाख्यान, जाबालिचरित, अन्ध एवं शङ्कर का युद्ध, राजा बलि की कथा, लक्ष्मी-चरित्र, त्रिविक्रम-चरित्र, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा, धुन्धुचरित-प्रेतोपाख्यान, नक्षत्रपुरुष की कथा, श्रीदामाचरित। उत्तर भाग—माहेश्वरी संहिता—श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों का चरित्र, भागवती संहिता—जगदम्बा के अवतार की कथा—सौरी संहिता—सूर्य की पापनाशक महिमा का वर्णन, गाणेश्वरी संहिता—शिव एवं गणेश का चरित्र

आधारग्रन्थ—१—वामनपुराण ए स्टडी—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल। २—पुराणम्—वर्ष ४, पृ० १८९–१९२ वही-भाग ५, १९६३। ३—प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २—विन्टरनित्स। ४—पुराण विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ५—पुराणतत्त्वमीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ६—वामन पुराणांक—गीता प्रेस, गोरखपुर।

वामनभट्ट बाण—ये राज वेमभूपाल के राजकवि थे। इनका समय विक्रम का पंचदश शतक है। इन्होंने विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर पूर्ण सफलता के साथ लेखनी चलायी है। इनकी रचनाओं मे काव्य, नाटक, गद्यग्रन्थ एवं कोश ग्रन्थ प्राप्त होते है। १—नलाभ्युदय—इनमें नल-दमयन्ती की कथा वर्णित है। यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप मे त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। इसमे नवम सर्ग श्लोक संख्या ३ तक के ही अंश प्राप्त होते है। २—रघुनाथचरित—यह काव्य तीस सर्गों मे है, किन्तु अभी तक अप्रकाशित है। इसके दो हस्तलेख तंजौर हस्तलिखित पुस्तक संग्रह भाग ६, सं० ३७२१ एवं अड्यार पुस्तकालय २, २७ मे प्राप्त होते है। ३—हंसदूत—मेघदूत के अनुकरण पर रचित सन्देश काव्य जिसमें ६१ + ६० = १२१ श्लोक हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ मन्दाक्रान्ता वृत्त में लिखा गया है। ४—बाणासुर विजय—यह काव्य अप्रकाशित है और इसका विवरण ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास की त्रिवर्षीय हस्तलिखित पुस्तक सूची ६, सं० ७१८१ में प्राप्त होता है। ५—पार्वतीपरिणय—पाच अंको के इस नाटक में कुमारसम्भव के आधार पर शिव पार्वती-विवाह का वर्णन है। ६—कनकलेखा—इस नाटक की रचना चार अंकों मे हुई है और व्यासवर्मन् तथा कनकलेखा के विवाह का वर्णन है। ग्रंथ अप्रकाशित है। ७—शृङ्गारभूषण भाण—यह एक अङ्क मे समाप्त होने वाला भाण है। इसका नायक विलासशेखर नाम का धूर्त व्यक्ति है। ८—वेमभूपाल चरित—इसमें वेमभूपाल का जीवनचरित गद्य में वर्णित है। इसका प्रकाशन श्रीरंगम् से हो चुका है। ९—शब्दचन्द्रिका—यह कोश ग्रंथ है और अभी तक अप्रकाशित है। १०—शब्दरत्नाकर—यह कोश ग्रन्थ भी अभी तक अप्रकाशित है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

वायुपुराण—क्रमानुसार चौथा पुराण। इसे कतिपय विद्वान् 'शिवपुराण' भी कहते हैं। अर्थात् 'शिवपुराण' और 'वायुपुराण' दो पृथक् पुराण न होकर एक ही पुराण

के दो नाम हैं, पर कुछ विद्वानों के अनुसार दोनों भिन्न-भिन्न पुराण हैं। यही बात पुराणों में भी कही गयी है। 'विष्णु', 'मारकण्डेय', 'कूर्म', 'वाराह', 'लिङ्ग', 'ब्रह्मवैवर्त्त एवं 'भागवतपुराण' में 'शिवपुराण' का वर्णन है किन्तु 'मत्स्यपुराण', 'नारदपुराण' और 'देवीभागवत' मे 'वायु' का ही उल्लेख किया गया है। पर, इस समय दोनों ही पुराण पृथक्-पृथक् रूप में प्राप्त हैं और उनके विषय-विवेचन में भी पर्याप्त अन्तर है [दे० शिवपुराण] । 'वायुपुराण' मे श्लोक संख्या ग्यारह सहस्र है तथा इसमें कुल ११२ अध्याय हैं। इसमें चार खण्ड है, जिन्हें पाद कहा जाता है—प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात एवं उपसंहारपाद। अन्य पुराणो की भांति इसमे भी सृष्टि-क्रम एवं वंशावली का कथन किया गया है। प्रारम्भ के कई अध्यायो मे सृष्टि-क्रम का विस्तारपूर्वक वर्णन के पश्चात् भौगोलिक वर्णन है, जिसमें जम्बूद्वीप का विशेष रूप से विवरण तथा अन्य द्वीपों का कथन किया गया है। तदनन्तर अनेक अध्यायो में खगोल-वर्णन, युग, ऋषि, तीर्थ तथा यज्ञों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके ६० वें अध्याय मे वेद की शाखाओं का विवरण है और ८६ तथा ८७ अध्यायों में संगीत का विशद विवेचन किया गया है। इसमें कई राजाओ के वंशो का वर्णन है तथा प्रजापति वंश—वर्णन, कश्यपीय, प्रजा-सर्ग तथा ऋषिवंशों के अन्तर्गत प्राचीन ब्राह्म वशों का इतिहास दिया गया है। इसके ९९ अध्याय में प्राचीन राजाओ की विस्तृत वंशावलिया प्रस्तुत की गयी हैं। इस पुराण के अनेक अध्यायो मे श्राद्ध का भी वर्णन किया गया है तथा अन्त मे प्रलय का वर्णन है। 'वायुपुराण' का प्रतिपाद्य है,—शिव-भक्ति एवं उसकी महनीयता का निदर्शन। इसके सारे आख्यान भी शिव-भक्तिपरक हैं। यह शिवभक्तिप्रधान पुराण होते हुए भी कट्टरता-रहित है और इसमे अन्य देवताओं का भी वर्णन किया गया है तथा कई अध्यायों मे विष्णु एवं उनके अवतारों की भी गाथा प्रस्तुत की गयी है। 'वायुपुराण' के ११ से १५ अध्यायो मे यौगिक प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन है तथा शिव के ध्यान मे लीन योगियो द्वारा शिवलोक की प्राप्ति का उल्लेख करते हुए इसकी समाप्ति की गयी है।

रचनाकौशल की विशिष्टता, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित के समावेश के कारण इसकी महनीयता असंदिग्ध है। इस पुराण के १०४ से ११२ अध्यायों में वैष्णवमत का पुष्टिकरण है, जो प्रक्षिप्त माना जाता है। ऐसा लगता है कि किसी वैष्णव भक्त ने इसे पीछे से जोड दिया है। इसके १०४ वे अध्याय मे भगवान् श्रीकृष्ण की ललित लीला का गान किया गया है, जिसमें राधा का नामोल्लेख है। 'वायुपुराण' के अन्तिम आठ अध्यायो (१०५–११२) मे गया का विस्तारपूर्वक माहात्म्य-प्रतिपादन है तथा उसके तीर्थदेवता 'गदाधर' नामक विष्णु ही बताये गए हैं। इस पुराण के चार भागों की अध्याय संख्या इस प्रकार है—प्रक्रियापाद १–६, उपोद्घातपाद ७–६४, अनुषंगपाद ६५–९९ तथा उपसंहारपाद १००–११२। 'वायु-पुराण' की लोकप्रियता बाणभट्ट के समय मे हो गयी थी। बाण ने 'कादम्बरी' मे इसका उल्लेख किया है—'पुराणे वायु प्रलपितम्'। शंकराचार्य के 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' में भी इसका उल्लेख है (१।३।२८, १।३।३०) तथा उसमें 'वायुपुराण' के श्लोक उद्धृत

हैं (८।१२,३३)। 'महाभारत' के वनपर्व में भी 'वायुपुराण' का स्पष्ट निर्देश है—
एवं ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं मया। वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥
१९१।१६। इससे इस पुराण की प्राचीनता सिद्ध होती है।

आधारग्रन्थ—१—वायुपुराण (हिन्दी अनुवाद)—अनु० पं० रामप्रसाद त्रिपाठी। २—दी वायुपुराण—(अंगरेजी)—डॉ० हाजरा (इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली) भाग १४।१९३८। ३—पुराणतत्त्वमीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ४—पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ५—प्राचीन भारतीय साहित्य—विन्टरनित्स भाग १, खण्ड २। ६—इतिहास पुराणानुशीलन—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य। ७—वेदस्थ पुराणगत सामग्री का अध्ययन—डा० रामशंकर भट्टाचार्य।

वाराह या वराहपुराण—क्रमानुसार १२ वां पुराण। इस पुराण मे भगवान् विष्णु के वराह अवतार का वर्णन है, अतः उन्ही के नाम पर इसका नामकरण किया गया है। विष्णु ने वराह का रूप धारण कर पाताललोक से पृथ्वी का उद्धार कर इस पुराण का प्रवचन किया था। यह वैष्णवपुराण है। 'नारद' और 'मत्स्यपुराण' के अनुसार इसकी श्लोक संख्या २४ सहस्र है, किन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के प्रकाशित संस्करण मे केवल १०७०० श्लोक हैं। इसके अध्यायो की संख्या २१७ है तथा गौड़ीय और दाक्षिणात्य नामक दो पाठ-भेद उपलब्ध होते हैं, जिनके अध्यायो की संख्या में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। यहां तक कि एक ही विषय के वर्णन मे श्लोको में भी अन्तर आ गया है। इसमें सृष्टि एवं राजवंशावलियो की संक्षिप्त चर्चा है, पर पुराणोक्त विषयो की पूर्ण संगति नहीं बैठ पाती। ऐसा लगता है कि यह पुराण विष्णु भक्तो के निमित्त प्रणीत स्तोत्रो एवं पूजा-विधियों का संग्रह है। यद्यपि यह वैष्णवपुराण है, तथापि इसमे शिव एवं दुर्गा से सम्बद्ध कई कथाएँ विभिन्न अध्यायो मे वर्णित हैं। इसमे मातृ-पूजा और देवियो की पूजा का भी वर्णन ९० से ९५ अध्याय तक किया गया है तथा गणेश-जन्म की कथा एवं गणेशस्तोत्र भी दिया गया है। 'वाराहपुराण' मे श्राद्ध, प्रायश्चित, देव-प्रतिमा निर्माण-विधि आदि का भी कई अध्यायो मे वर्णन है तथा कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा-माहात्म्य के वर्णन मे १५२ से १६८ तक १७ अध्याय लगाये गए हैं। मथुरा-माहात्म्य में मथुरा का भूगोल दिया हुआ है तथा उसकी उपयोगिता इसी दृष्टि से है। इसमे नचिकेता का उपाख्यान भी विस्तारपूर्वक वर्णित है जिसमें स्वर्ग और नरक का वर्णन है। विष्णु-सम्बन्धी विविध व्रतो के वर्णन में इसमें विशेष बल दिया गया है, तथा द्वादशी व्रत का विस्तार-पूर्वक वर्णन करते हुए विभिन्न मासों में होने वाली द्वादशी का कथन किया गया है। इस पुराण के कई सम्पूर्ण अध्याय गद्य मे निबद्ध हैं (८१-८३, ८६-८७, ७४) तथा कतिपय अध्यायों में गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण है। 'भविष्यपुराण' के दो वचनों को उद्धृत किये जाने के कारण यह उससे अर्वाचीन सिद्ध होता है। [१७७।५१) इस पुराण मे रामानुजाचार्य के मत का विशद रूप से वर्णन है। इन्हीं आधारों पर विद्वानों ने इसका समय नवम-दशम शती के लगभग निश्चित किया है।

आधारग्रन्थ—१—प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २—विन्टरनित्स।

२—पुराणतत्त्वमीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ३—इतिहास पुराण का अनुशीलन—डॉ रामशंकर भट्टाचार्य। ४-पुराणम् वर्ष ४ (१९६२) पृ० ३६०–३८३ ५—पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय।

वाल्मीकि—संस्कृत के आदि कवि। इन्होंने 'रामायण' नामक आदि महाकाव्य की रचना की है [दे० रामायण]। वाल्मीकि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सर्वप्रथम इनके मुख से ही काव्य का आविर्भाव हुआ था। 'रामायण' के बालकाण्ड मे यह कथा प्रारम्भ में ही मिलती है। तमसा नदी के किनारे महर्षि भ्रमण कर रहे थे, उसी समय एक व्याधा आया और उसने वहा विद्यमान क्रौंच पक्षी के जोड़े पर बाण-प्रहार किया। बाण के लगने से क्रौंच मर गया। और क्रौंची करुण स्वर मे आर्त्तनाद करने लगी। इस करुण दृश्य को देखते ही महर्षि के हृदय में करुणा का नैसर्गिक स्रोत फूट पडा और उनके मुख से अकस्मात् शाप के रूप मे काव्य की वेगवती धारा प्रवाहित हो गयी। उन्होने व्याधे को शाप देते हुए कहा कि जाओ, तुम्हें जीवन मे कभी भी शान्ति न मिले क्योंकि तुमने प्यार करते हुए क्रौंच-मिथुन मे से एक को मार दिया। मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वतीः समाः। यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ कवि का शोक श्लोक म परिणत हो गया, जो सम-अक्षर युक्त चार पादो का था। इसी श्लोक के साथ संस्कृत वाग्धारा का जन्म हुआ और इसी मे महाकाव्य की गरिमा संपृक्त हुई। वाल्मिकी को सच्चा कवि-हृदय प्राप्त हुआ था और उनमे महान् कवि के सभी गुण विद्यमान थे। कहा जाता है कि 'मानिषाद' वाली कविता को सुनकर स्वयं ब्रह्माजी ऋषि के समक्ष उपस्थित होकर बोले कि—महर्षे! आप आद्यकवि हैं, अब आपके प्रातिभचक्षु का उन्मेष हुआ है। महाकवि भवभूति ने इस घटना का वर्णन 'उत्तररामचरित' नामक नाटक मे किया है—ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभाति। आद्यः कविरसि। समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा। सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥ १।२।४०। महाकवि कालिदास ने भी इस घटना का वर्णन किया है—तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः। निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥ रघुवंश १४।७०। ध्वनिकार ने भी अपने ग्रन्थ में इस तथ्य की अभिव्यक्ति की है—काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा। क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥ ध्वन्यालोक १।५।

वाल्मीकि ने 'रामायण' के माध्यम से महाराज रामचन्द्र के पावन, लोकविश्रुत तथा आदर्श चरित का वर्णन किया है। इसमे कवि ने कल्पना, भावना, शैली एवं चरित की उदात्तता का अप्रतिम रूप प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि नैसर्गिक कवि हैं। जिनकी लेखनी किसी विषय का वर्णन करते समय उसका चित्र खींच देती है। कवि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते समय उनका यथार्थ रूप शब्दों द्वारा मूर्तित कर देता है। बाल्मीकि रसपेशल कवि हैं और इनकी दृष्टि मुख्यतः रस-सृष्टि की ओर रही है। रामायण में मनोरम उपमाओ तथा उत्प्रेक्षाओ की विराट् दृश्यावली दिखाई पडती है। कवि किसी विषय का वर्णन करते समय, अप्रस्तुत विधान के रूप में, अलङ्कारों की

छटा छिटका देता है। वाल्मीकि प्रकृति के कवि हैं। इन्होंने अपनी रामायण में उन्मुक्त रूप से प्रकृति का चित्रण किया है। किसी भी स्थिति में कवि प्रकृति से दूर नहीं रहता और किसी-न-किसी रूप में प्रकृति को उपस्थित कर देता है। प्रकृति-चित्रण में विविधता दिखाई पड़ती है, फलतः कवि प्रकृति के न केवल कोमल दृश्यों का ही वर्णन करता है, अपितु भयंकर एवं कठोर रूपों का भी निदर्शन करते हुए दिखाई पड़ता है। व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम्। मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥ मेघाभिकामा:परिसंपतन्ति संमोदिताः भातिबलाकपंक्तिः। वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य ॥ किष्किन्धाकाण्ड २८।१८,२३। "शैल-नदियाँ उस जल को, जिसमें सर्ज और कदम्ब के फल बह रहे हैं, जो पर्वत की धातुओं से ताम्रवर्ण हो रहा है और जिसमें मोरों की केकावाणी की अनुगुञ्ज है, तेजी से बहा कर ले जाती हैं। मेघों की कामना रखने वाली, उड़ती हुई श्वेत बक-पंक्ति श्रेष्ठ श्वेत पक्षों से निर्मित, हवा में डोलती हुई, आकाश की सुन्दर माला-सी जान पड़ती है।" आदि कवि ने शब्द-क्रीडा की प्रवृत्ति भी प्रदर्शित की है। वर्षा वर्णन (किष्किन्धाकाण्ड) एवं चन्द्रोदय-वर्णन (लंकाकाण्ड) में यह प्रवृत्ति अधिक है। निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति। हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति। किष्किन्धाकाण्ड २८।२५। "धीरे-धीरे निद्रा केशव को प्राप्त होती है, नदी तेजी से सादर तक पहुचती है, हर्षभरी बगुली बादल के पास पहुँचती है है और कामनावती रमणी प्रियतम के पास।"

रामायण मे अधिकांशतः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, पर सर्ग के अन्त मे वसन्ततिलका, वंशस्थ या द्रुतविलंबित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसकी भाषा सरल एवं विषयानुसारिणी है। कवि ने सर्वत्र वर्णन-कौशल का प्रदर्शन कर अपनी अद्भुत काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। वाल्मीकि संस्कृत मे रस-धारा के प्रथम प्रयोक्ता महाकवि हैं। इनके सम्बन्ध मे अनेक प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं उनमे से कुछ को उद्धृत किया जाता है। १—यस्मादियं प्रथमतः परमामृतौघनिर्घोषिणी सरससूक्तितरङ्गभङ्गिः। गंगेव धूर्जटिजटाञ्चलतः प्रवृत्ता वृत्तेन वाकृतमहमादिकवि प्रपद्ये ॥ सूक्तिमुक्तावली ४।३९। २—चर्वाभिश्चारणानां क्षितिरमण! परां प्राप्य सम्मोदलीलां मा कीर्तेः सौविदल्लानवगणय कविव्रातवाणीविलासान्। गीतं ख्यातं न नाम्ना किमपि रघुपतेरद्य यावत् प्रसादाद्, वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशोमुद्रया रामचन्द्रः।

वासुदेव विजय—इस महाकाव्य के प्रणेता केरलीय कवि वासुदेव है, जिसमे भगवान् श्रीकृष्ण का चरित वर्णित है। यह महाकाव्य अधूरा प्राप्त है और इसमें केवल तीन सर्ग है। कवि ने पाणिनिसूत्रों के दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। इसकी पूर्त्ति नारायण नामक कवि ने 'धातुकाव्य' लिख कर की है। इसके कथानक का अन्त कंस-वध मे होता है।

विकटनितम्बा—ये संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। इनका जन्म काशी में हुआ था। अभी तक इनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है, और इनका जीवन-वृत्त तिमिराच्छन्न है। 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखर ने इनके सम्बन्ध मे अपने

विचार प्रकट किये हैं---के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रंजिताः । निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः । इनकी एक कविता दी जा रही है—अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग ! लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु । मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥ 'रे भौंरे ! तेरे मर्दन को सहनेवाली अन्य पुष्पलताओं मे अपने चंचल चित्त को विनोदित कर । अनखिली केसररहित इस नवमल्लिका की छोटी कली को अभी असमय में क्यों व्यर्थ दुःख दे रहा है । अभी तो उसमे केसर भी नहीं है, बेचारी खिली तक नहीं है । इसे दुःख देना क्या तुझे सुहाता है ? यहाँ से हट जा ।'

विक्रम चरित या सिंहासन द्वात्रिंशिका—यह संस्कृत का लोकप्रिय कथा-संग्रह है । इसके रचयिता का पता नहीं चलता । इसके तीन संस्करण उपलब्ध हैं—क्षेमंकर का जैन संस्करण, दक्षिण भारतीय पाठ एवं वररुचिरचित कहा जाने वाला बङ्गाल का पाठान्तर । इसमे ३२ सिंहासनों या ३२ पुतलियों की कहानी है । राजा भोज पृथ्वी मे गड़े हुए महाराज विक्रमादित्य के सिंहासन को उखाड़ता है और ज्योंही उस पर बैठने की तैयारी करता है कि बत्तीसो पुतलियाँ राजा विक्रम के पराक्रम का वर्णन कर उसे बैठने से रोकती हैं । वे उसे अयोग्य सिद्ध कर देती है । इसमे राजा की उदारता एवं दानशीलता का वर्णन है । राजा अपनी वीरता से जो भी धन प्राप्त करता था उसमे से आधा पुरोहित को दान कर देता था । क्षेमंकर जैन वाले संस्करण मे प्रत्येक गद्यात्मक कहानी के आदि एवं अन्त में पद्य दिये गए हैं, जिनमें विषय का संक्षिप्त विवरण है । इसके एक अन्य पाठ में केवल पद्य प्राप्त होते हैं । अंगरेज विद्वान् इडगर्टन ने सम्पादित कर इसे रोमन अक्षरो मे प्रकाशित कराया था, जो दो भागों में समाप्त हुआ है । इसका प्रकाशन हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज से १९२६ ई० में हुआ है । इसका हिन्दी अनुवाद सिंहासनबत्तीसी के नाम से हुआ है । विद्वानों ने इसका रचना काल १३ वीं शताब्दी से प्राचीन नहीं माना है । डॉ० हर्टेल की दृष्टि में जैन विवरण मूल के निकट एवं अधिक प्रामाणिक है, पर इडगर्टन दक्षिणी वचनिका को ही अधिक प्रामाणिक एवं प्राचीनतर मानते है । दोनों विवरणो में हेमाद्रि के 'दानखण्ड' का विवरण रहने के कारण इसे १३ वीं शताब्दी के बाद की रचना माना गया है । [हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्भा विद्याभवन से प्रकाशित] ।

विक्रमोर्वशीय—यह महाकवि कालिदास विरचित पांच अंकों का त्रोटक है [उपरूपक का एक प्रकार] । इसके नायक-नायिका मानवी तथा दैवी दोनों ही कोटियो से सम्बद्ध है । इसमें महाराज पुरूरवा एवं उर्वसी की प्रणय-कथा का वर्णन है । कैलाश पर्वत से इन्द्रलोक लौटते समय राजा पुरूरवा को ज्ञात होता है कि स्वर्ग की अप्सरा उर्वसी को कुबेर-भवन से आते समय केशी नामक दैत्य ने पकड़ लिया है । राजा उर्वसी का उस दैत्य से उद्धार करता है तथा उसके नैसर्गिक एवं उद्भुत सौन्दर्य पर अनुरक्त हो जाता है । राजा उर्वशी को उसके सम्बन्धियों को सौंप कर राजधानी लौट आता है और उर्वशी-सम्बन्धी अपनी मनोव्यथा की सूचना अपने मित्र विदूषक को दे देता है । इसी बीच भोजपत्र पर लिखा हुआ उर्वशी का एक प्रेमपत्र राजा को मिलता

है, जिसे पढ़कर वह आन्दातिरेक से भर जाता है। राजकीय प्रमदवन मे दोनों मिलते हैं। तत्पश्चात् भरत मुनि द्वारा लक्ष्मी स्वयंवर नाटक खेलने का आयोजन होता है, जिसमें उर्वशी को लक्ष्मी का अभिनय करना है। प्रमदवन में ही, संयोगवश, पुरूरवा की पत्नी, रानी औशीनरी, को उर्वशी का प्रेम-लेख मिल जाता है और वह कुपित होकर दासी के साथ लौट जाती है। अभिनय करते समय उर्वशी पुरूरवा के प्रेम मे निमग्न हो जाती है, और उसके मुंह से पुरुषोत्तम के स्थान पर, भ्रम से, पुरूरवा नाम निकल पड़ता है। यह सुनकर भरत मुनि क्रोधित होकर उसे स्वर्गच्युत होने का शाप देते है। तब इन्द्र उर्वशी को यह आदेश देते हैं कि जब तक पुरूरवा तेरे पुत्र का मुंह न देख ले, तब तक तुम्हें मर्त्यलोक में ही रहना पड़ेगा। राजधानी लौटकर राजा उर्वशी के विरह मे व्याकुल हो जाता है और वह मर्त्यलोक में आकर राजा की विरह-दशा का अवलोकन करती है। उसे अपने प्रति राजा के अटूट प्रेम की प्रतीति हो जाती है। उर्वशी की सखियां राजा के पास उसे सौंप कर स्वर्गलोक को चली जाती है और दोनों उल्लासपूर्ण जीवन व्यतीत करने लग जाते है।

कुछ समयोपरान्त पुरूरवा और उर्वशी गन्धमादन पर्वत पर जाकर विहार करते है, एक दिन मन्दाकिनी के तट पर खेलती हुई एक विद्याधर कुमारी को पुरूरवा देखने लगता है और उर्वशी कुपित होकर कार्त्तिकेय के गन्धमादन उद्यान मे चली जाती है। वहां स्त्री का प्रवेश निषिद्ध था। यदि कोई स्त्री जाती तो लता बन जाती थी। उर्वशी भी वहां जाकर लता के रूप म परिवर्तित हो जाती है और राजा उसके वियोग मे उन्मत्त की भांति विलाप करते हुए पागल की भांति निर्जीव पदार्थों मे उर्वशी का पता पूछने लगता है। उसी समय आकाशवाणी द्वारा यह निर्देश प्राप्त होता है कि यदि पुरूरवा सङ्गमनीय मणि को अपने पास रखकर लता बनी हुई उर्वशी का आलिंगन करे तो वह पूर्ववत् उसे प्राप्त हो जायगी। राजा वैसा ही करता है और दोनो लौटकर राजधानी में सुखपूर्वक रहने लगते हैं। जब वे दोनों बहुत दिनो तक वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हुए रहते हैं, तभी एक दिन वनवासिनी स्त्री एक अल्पवयस्क युवक के साथ आती है और उसे वह सम्राट् का पुत्र घोषित करती है। उसी समय उर्वशी का शाप निवृत्त हो जाता है और वह स्वर्गलोक को चली जाती है। उर्वशी के वियोग मे राजा व्यथित हो जाते हैं और पुत्र को अभिषिक्त कर वैरागी बनकर वन मे चले जाने को सोचते हैं। उसी समय नारद जी का आगमन होता है जिससे उसे यह सूचना मिलती है कि इन्द्र के इच्छानुसार उर्वशी जीवन पर्यन्त उसकी पत्नी बनकर रहेगी। महाकवि कालिदास ने इस त्रोटक में प्राचीन कथा को नये रूप मे सजाया है। भरत का शाप, उर्वशी का रूप परिवर्त्तन तथा पुरूरवा का प्रलाप आदि कवि की निजी कल्पना है। इसमे विप्रलम्भश्रृङ्गार का अधिक वर्णन है तथा नारी-सौन्दर्य का अत्यन्त मोहक चित्र उपस्थित किया गया है।

विक्रमसेन चम्पू—इस चम्पू के प्रणेता नारायण राय कवि हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण एवं अट्ठारहवीं शताब्दी का आदि चरण माना जाता है। इन्होंने ग्रन्थ में अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार ये मराठा शासन

के सचिव थे और इनके भाई का नाम भगवन्त था। ये गङ्गाधर अमात्य के पुत्र थे। इस चम्पूकाव्य मे प्रतिष्ठानपुर के राजा विक्रमसेन की काल्पनिक कथा का वर्णन है। "इति श्रीत्र्यम्बककार्यतार्तीयीकाधमर्ण्यपारीषगंगाधरामात्यनारायणरायसचिवविरचितो विक्रमसेनचम्पूप्रबन्धः समाप्तिमगमत्।" यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग मे ७,४१४८ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन— डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

विज्ञानेश्वर—इन्होंने 'मिताक्षरा' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जो भारतीय व्यवहार (विधि, लॉ) की महनीय कृति के रूप में समादृत है। 'मिताक्षरा' याज्ञवल्क्यस्मृति का भाष्य है जिसमें विज्ञानेश्वर ने दो सहस्र वर्षों से प्रवहमान भारतीय विधि के मतो का सार गुंफित किया है। यह याज्ञवल्क्यस्मृति का भाष्यमात्र न होकर स्मृति-विषयक स्वतन्त्र निबन्ध का रूप लिए हुए है। इसमे अनेक स्मृतियों के उद्धरण प्राप्त होते हैं तथा उनके अन्तर्निरोध को दूर कर उनकी संश्लिष्ट व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इसमे प्रमुख स्मृतिकारों के नामोल्लेख हैं तथा अनेक स्मृतियो के भी नाम आते हैं। विज्ञानेश्वर पूर्वमीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित थे। इस ग्रन्थ मे इन्होने स्थान-स्थान पर पूर्वमीमासा की ही पद्धति अपनायी है। 'मिताक्षरा' का रचनाकाल १०७० से ११०० ई० के मध्य माना जाता है। इस पर अनेक व्यक्तियो ने भाष्य की रचना की है जिनमें विश्वेश्वर, नन्दपण्डित तथा बालभट्ट के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। विज्ञानेश्वर ने दाय को दो भागों मे विभक्त किया है—अप्रतिबन्धु एवं सप्रतिबन्धु। इन्होंने जोर देकर कहा है कि वसीयत पर पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे भाग १ (हिन्दी अनुवाद)।

विज्ञानभिक्षु—साख्यदर्शन के अन्तिम प्रसिद्ध आचार्य विज्ञानभिक्षु है जिनका समय १६ वीं शताब्दी का प्रथमार्ध है। ये काशी के निवासी थे। इन्होंने सांख्य, योग एवं वेदान्त तीनो ही दर्शनों के ऊपर भाष्य लिखा है। सांख्यसूत्रों पर इनकी व्याख्या 'सांख्यप्रवचनभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। व्यासभाष्य के ऊपर इन्होंने 'योगवार्त्तिक' तथा ब्रह्मसूत्र पर 'विज्ञानामृतभाष्य' की रचना की है। इनके अतिरिक्त इनके अन्य दो ग्रन्थ है—'सांख्यसार' एवं 'योगसार' जिनमें तत्तत् दर्शनो के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन है।

आधारग्रन्थ—भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय

विज्जिका—ये संस्कृत की सुप्रसिद्ध कवयित्री है। इनकी किसी भी रचना का अभी तक पता नहीं चला है, पर सूक्ति संग्रहो मे कुछ पद्य पाप्त होते हैं। इनके तीन नाम मिलते है—विज्जका, विज्जिका एवं विद्या। 'शार्ङ्गधरपद्धति' के एक श्लोक मे विज्जिका द्वारा महाकवि दण्डी को डाँटने का उल्लेख है। 'नीलोत्पलदलश्यामा विज्जिकां मामजानता। वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती।" विज्जिका के

अनेक श्लोक संस्कृत आलंकारिकों द्वारा उद्धृत किये गए हैं। मुकुलभट्ट ने 'अभिधा-वृत्तिमातृका' में 'दृष्टि हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि' तथा मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' मे (चतुर्थ उल्लास अर्थमूलक वस्तु प्रतिपाद्य ध्वनि के उदाहरण में) 'धन्यासि या कथयसि' को उद्धृत किया है। मुकुलभट्ट का समय ९२५ ई० के आसपास है, अतः विज्जिका का अनुमानित समय ७१० से ८५० ई० के बीच माना जा सकता है। इनकी रचनाएँ शृङ्गारप्रधान हैं। कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्। वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैर्जनस्य तूष्णी भवतोऽयमञ्जलिः॥ यहाँ सहृदय भावुक का वर्णन है। वास्तविक कवि अपने भावो को अभिधा द्वारा प्रकट न कर व्यंजना की सहायता से व्यक्त करता है। शब्दो से भावो की अभिव्यक्ति नहीं होती, किन्तु रससिक्त मनोरम पदों के द्वारा भाव प्रकट होता है। ऐसे महाकवि के काव्य का मर्मज्ञ वह होता है जो रसभरी पदावली का अर्थ समझ कर शब्दो द्वारा प्रकट नहीं करता पर चुप रहकर रोमांचित अङ्गो के द्वारा कवि के गूढ़ भाव को व्यक्त कर देता है।

विद्याधर—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'एकावली' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है जिसमे काव्य के दशांगो का वर्णन है। इनका समय १३ वीं शताब्दी का अन्त या १४ वीं शताब्दी का आरम्भ है। एकावली' पर मल्लिनाथ (१४ वी शताब्दी का अन्त) ने 'तरला' नामक टीका लिखी है। इस ग्रन्थ के समस्त उदाहरण स्वयं विद्याधर द्वारा रचित है और वे उत्कलनरेश नरसिंह की प्रशस्ति मे लिखे गए हैं। 'एकावली' मे आठ उन्मेष है और ग्रन्थ तीन भागो में रचित है—कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण। तीनो ही भाग के रचयिता विद्याधर हैं। इसके प्रथम उन्मेष मे काव्य के स्वरूप, द्वितीय मे वृत्तिविचार, तृतीय में ध्वनि एवं चतुर्थ में गुणीभूतव्यङ्ग्य का वर्णन है। पंचम उन्मेष मे गुण एवं रीति, षष्ठ मे दोष, सप्तम मे शब्दालंकार एवं अष्टम में अर्थालंकार वर्णित हैं। इस ग्रन्थ पर 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' का पूर्ण प्रभाव है। अलंकार-विवेचन पर रुय्यक का ऋण अधिक है और परिणाम, उल्लेख, विचित्र एवं विकल्प अलंकारो के लक्षण 'अलंकारसर्वस्व' से ही उद्धृत कर दिये गए हैं। विद्याधर ने अलंकारों का वर्गीकरण भी किया है जो रुय्यक से प्रभावित है। लेखक ने पुस्तकरचना के उद्देश्य को इस प्रकार प्रकट किया है—एष विद्याधरस्तेषु कातासमितलक्षणम्। करोमि नरसिंहस्य चाटुश्लोकानुदाहरन्॥ एकावली १।४६। विद्याधर ने 'केलिरहस्य' नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की है। 'एकावली' का प्रकाशन श्रीत्रिवेदी रचित भूमिका एवं टिप्पणी के साथ बम्बे संस्कृत सीरीज से हुआ है।

आधारग्रन्थ—१. एकावली—श्री त्रिवेदी द्वारा सम्पादित प्रति। २ संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा० वा० काणे। ३ अलंकारानुशीलन—राजवंश सहाय 'हीरा'।

विद्यानाथ—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' या 'प्रतापरुद्रीय' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। विद्यानाथ (आन्ध्र प्रदेश के)

काकतीयवंशी राजा प्रतापरुद्र के आश्रित कवि थे जिनकी प्रशंसा में इन्होंने 'प्रतापरुद्रीय' के उदाहरणों की रचना की है। इनका समय १४ वीं शती का प्रारम्भ है। प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः। अलङ्कारप्रबन्धोऽयं सन्तः कर्णोत्सवोऽस्तु वः॥ प्रताप० ११९। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं—कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण एवं तीनों के ही लेखक विद्यानाथ हैं। इस पर 'काव्यप्रकाश' (मम्मट कृत) एवं 'अलंकारसर्वस्व' (रुय्यक रचित) का पूर्ण प्रभाव है। पुस्तक नो प्रकरणों मे विभक्त है और नायिका-भेद, नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा मिश्रालंकार का वर्णन है। इस पर कुमारस्वामी कृत रत्नायण टीका मिलती है और रत्नशाण नामक अन्य अपूर्ण टीका भी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का प्रचार दक्षिण में अधिक है। इसका प्रकाशन बम्बे संस्कृत सीरीज से हुआ है जिसके सम्पादक श्री के० पी० त्रिवेदी हैं।

आधारग्रन्थ—१.त्रिवेदी द्वारा सम्पादित—प्रतापरुद्रीय। २. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—काणे। ३. अलंकारानुशीलन—राजवंश सहाय 'हीरा'।

वियुधानन्द प्रबन्ध चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता का नाम वेंकट कवि है। इनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी के आसपास है। इनके पिता का नाम वीरराघव था। इस ग्रन्थ की कथा काल्पनिक है जिसमे बालप्रिय तथा प्रियंवद नामक व्यक्तियों की बादरिकाश्रम की यात्रा का वर्णन है जो मकरंद एवं शीलवती के विवाह मे सम्मिलत होने जा रहे है। दोनों ही यात्री शुक है। कवि वैष्णव है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे उसने वेदान्तदेशिक की वन्दना की है—कवितार्किककेसरिणं वेदान्ताचार्य-नामधेयजुषम्। आम्नायरक्षितारं कमपि प्रणमामि देशिकं शिरसा॥ यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३५१ मे प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—१. चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

विद्धशालभंजिका—राजशेखर कृत नाटिका है। इसमें चार अंक हैं तथा इसकी रचना 'मालविकाग्निमित्र', 'रत्नावली', एवं 'स्वप्नवासवदत्तम्' के आधार पर हुई है। इसमे कवि ने राजकुमार विद्याधरमल्ल एवं मृगांकावली और कुवलयमाला नामक दो राजकुमारियों की प्रणय-कथा का वर्णन किया है। प्रथम अंक मे लाट देश के राजा ने अपनी पुत्री मृगांकावली को मृगाकवर्मन नामक पुत्र घोषित कर राजा विद्याधरमल्ल की राजधानी मे भेजा। एक दिन विद्याधर ने अपने विदूषक से बतलाया कि उसने स्वप्न में देखा है कि जब वह एक सुन्दरी को पकडना चाहता है तो वह मोतियों की माला वहीं छोडकर भाग जाती है। विद्याधर का मंत्री इस बात को जानता था कि मृगाकवर्मन लडकी है और ज्योतिषियो ने उसके सम्बन्ध मे भविष्यवाणी की है कि जिसके साथ उसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती राजा बनेगा। इसी कारण उसने मृगांकवर्मन् को राजा के निकट रखा। जिस समय मृगांकवर्मन् राजा के पास आया उसने देखा कि राजा अपनी प्रेयसी विद्धशालभंजिका के गले मे मोतियों की माला डाल

रहा है। राजा मृगांकवर्मन की स्थिति से अवगत नहीं था। द्वितीय अंक में कुंतलराजकुमारी कुवलयमाला का विवाह मृगांकवर्मन् से करना चाहती है। राजा ने एक दिन मृगांकवर्मन् को वास्तविक स्थिति में क्रीडा करते तथा प्रणय लेख पढ़ते हुए देखा और उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। तीसरे अंक में राजा विदूषक के साथ मृगांकावली से मिला एवं उसके साथ प्रेमालाप करते हुए उस पर आसक्त हो गया। चतुर्थ अंक मे महारानी ने मृगांकवर्मन् को अपने प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसे स्त्री वेश में सुसज्जित कर उसका विवाह राजा के साथ करा दिया। महारानी को अपनी असफलता पर बहुत बडा आघात पहुंचता है और वह बाध्य होकर कुवलयमाला का विवाह राजा विद्याधर के साथ करा देती है।

विरूपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू—इसके रचयिता अहोबल है [इनके जीवन सम्बन्धी विवरण के लिए दे० यतिराजविजय चम्पू]। यह ग्रन्थ भी खण्डितरूप में ही प्राप्त है और श्री आर० एस० पंचमुखी द्वारा सम्पादित होकर मद्रास से प्रकाशित है। ग्रन्थ के अन्तिम परिच्छेद के अनुसार इसकी रचना पामुडिपट्टन के प्रधान के आग्रह पर हुई थी। यह चम्पूकाव्य चार काण्डो मे विभक्त है। इसमे कवि ने विरूपाक्ष महादेव के वसन्तोत्सव का वर्णन किया है। प्रथमतः विद्यारण्य यति का वर्णन किया गया है जो विजयनगर राज्य के स्थापक थे। इसके बाद काश्मीर के भूपाल एवं प्रधान पुरुष राशिदेशाधिपति का वर्णन है। कवि माधव नवरात्र मे सम्पन्न होनेवाले विरूपाक्ष महादेव के वसन्तोत्सव का वर्णन करता है। प्रारम्भिक तीन काण्डो मे रथयात्रा तथा चतुर्थकाण्ड मे मृगया महोत्सव वर्णित है। कवि ने अवान्तर कथा के रूप मे एक लोभी तथा कृपण ब्राह्मण की रोचक कथा का वर्णन किया है। स्थान-स्थान पर बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया गया है पर इसमें स्वाभाविकता एवं सरलता के भी दर्शन होते है। नगरो का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी के रूप मे किया गया है। व्यंग्यात्मकता एवं वस्तुओं का सूक्ष्म वर्णन कवि की अपनी विशेषता है।

आधारग्रन्थ——चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन——डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

विशाखदत्त—संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार और कवि। इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'मुद्राराक्षस' उपलब्ध है तथा अन्य कृतियों की भी सूचनाएं प्राप्त होती है, जिनमे 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटक प्रमुख है। इस नाटक के उद्धरण 'नाट्यदर्पण' तथा 'शृङ्गारप्रकाश' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे प्राप्त होते है। इस नाटक मे कवि ने ध्रुवस्वामिनी एवं चन्द्रगुप्त के प्रणय-प्रसंग का वर्णन किया है तथा चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की कायरता की कहानी कही है। 'मुद्राराक्षस' मे संघर्षमय राजनीतिक जीवन का कथा कही गयी है और चन्द्रगुप्त, चाणक्य एवं मलयकेतु के मन्त्री राक्षस के चरित्र को इसका वर्ण्य विषय बनाया गया है। अन्य संस्कृत लेखकों की भांति विशाखदत्त के जीवन का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इनके दो नाम मिलते हैं— विशाखदत्त एवं विशाखदेव। इन्होने 'मुद्राराक्षस' की प्रस्तावना मे अपने विषय में थोड़ा बहुत जो कुछ भी कहा है वही इनके विवरण का प्रामाणिक आधार है। इससे

पता चलता है कि विशाखदत्त सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र थे और इनके पिता का नाम पृथु था। पृथु को महाराज की उपाधि प्राप्त थी और इनके पितामह सामन्त थे। अद्य सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक् "पृथुसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम्।" प्रस्तावना पृष्ठ ७ [दे० मुद्राराक्षस]। इन व्यक्तियों का विवरण अन्यत्र प्राप्त नहीं होता अतः विशाखदत्त का जीवन विचित्र अनिश्चितता से युक्त है। इनके समय-निरूपण के सम्बन्ध मे भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। 'मुद्राराक्षस' के भरत वाक्य मे चन्द्रगुप्त का उल्लेख है, पर कतिपय प्रतियों में चन्द्रगुप्त के स्थान पर दन्तिवर्मा, अवन्तिवर्मा एवं रतिवर्मा का नाम मिलता है। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि संभवतः अवन्तिवर्मा मौखरी नरेश हो जिसके पुत्र ने हर्ष की पुत्री से विवाह किया था। इसे काश्मीर का भी राजा माना गया है, जिसका समय ८५५-८३ ई० तक है। याकोबी नाटक में उल्लिखित ग्रहण का समय ज्योतिष गणना के अनुसार २ दिसम्बर ८६० ई० मानते हैं तथा उनका यह भी विचार है कि राजा के मन्त्री शूर द्वारा इस नाटक का अभिनय कराया गया था। पर, इसके सम्बन्ध मे कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल (इण्डियन एन्टीक्वेरी (१९१३ पृ० २६५-६७ LXIII), स्टेन कोनो (इण्डियन एन्टीक्वेरी १९१४ पृ० ६६ XLII) तथा एस० श्रीकण्ठ शास्त्री (इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली भाग ७, १९३१ पृ० १६३-६९) ने इसे चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन माना है। जिसका समय ३७५-४१३ ई० है। चार्पेन्टियर इसे अन्तिम गुप्तवंशियों मे से समुद्रगुप्त का समकालीन मानते हैं, पर कीथ के अनुसार विशाखदत्त का समय नवीं शताब्दी है। कोनो चन्द्रगुप्त को गुप्तवंशी राजा समझते हैं और विशाखदत्त को कालिदास का कनिष्ठ समसामयिक मानते हैं। परन्तु यह उनकी हवाई कल्पना है। विशाखदत्त द्वारा रत्नाकर के अनुकरण का कुछ साक्ष्य अवश्य मिलता है, किन्तु यह उनके समय के विषय मे कदाचित् निर्णायक नहीं है। इस तथ्य मे कोई सार नहीं है कि हस्त-लिखित प्रति मे नांदी की समाप्ति के बाद नाटक का आरम्भ होता है, क्योंकि भास परम्परा का अनुसरण करने वाले दाक्षिणात्य हस्तलेखों की यह स्वाभाविक विशेषता मात्र है। ऐसा कोई बात नहीं है जो उन्हें नवीं शताब्दी का मानने मे अड़चन डाले, यद्यपि यह कृति और पहले की हो सकती है।" संस्कृत नाटक पृ० २१२ (हिन्दी) 'दशरूपक' एवं 'सरस्वतीकण्ठाभरण' मे 'मुद्राराक्षस' के उद्धरण प्राप्त होने के कारण इसका स्थितिकाल नवम शती से पूर्व निश्चित होता है, क्योंकि दोनों ग्रन्थों का रचना-काल दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी है। सम्प्रति विद्वानों का बहुसंख्यक समुदाय विशाखदत्त का समय छठी शती का उत्तरार्ध स्वीकार करने के पक्ष मे है। 'मुद्राराक्षस' की रचना बौद्धयुग के ह्रास के पूर्व हो चुकी थी। प्रो० ध्रुव के अनुसार 'मुद्राराक्षस' की रचना विशाखदत्त ने छठी शताब्दी के अन्तिम चरण मे एवं कन्नौज के मौखरी नरेश अवन्ति-वर्मा की हूणों के ऊपर की गयी विजय के उपलक्ष्य में की थी।

'मुद्राराक्षस राजनीतिक नाटक है पर इसमें कवि की कवित्व-शक्ति का अपूर्व विकास दिखाई पड़ता है। राजनीतिक दाव-पेंच को कथानक का आधार बनाने के

कारण इसमें शृंगाररस की मधुरिमा को अवकाश नहीं मिला है। इसमें कवि ने उत्कृष्ट कवित्व-कला एवं रचना-चातुरी का परिचय दिया है। इसकी काव्यशैली सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है तथा परवर्ती कवियों की यत्नसाध्य कृत्रिम शैली के दर्शन यहाँ नहीं होते। कवि ने वैदर्भी रीति का प्रयोग कर भाषा में प्रवाह लाने का प्रयास किया है और भावों की अभिव्यक्ति में यथासाध्य सरलता उत्पन्न करने की चेष्टा की है। इस नाटक का विषय बौद्धिक स्तर का है, फलतः इसमें जटिल एवं नीरस गद्य का प्रयोग है, पर काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है। चाणक्य के कथन में कवि ने वीररस का सुन्दर परिपाक किया है तथा उसकी राजनीति का भी आभास कराया है। केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी ? पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता ? केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरे ? भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोऽर्णवः। ७।६। किसने वस्त्र के छोर में ऊँची शिखा वाली अग्नि को बाँध लिया ? किसने तुरन्त ही अपने जाल से पवन को भी गतिहीन कर लिया ? किसने अनेक हाथियों के मदजल से गीली सटाओंवाले सिंह को पिंजड़े में बन्द कर दिया ? किसने नक्र और मगर से बिलोडित भयंकर महासमुद्र को हाथों से ही तैरकर पार कर लिया ?' 'मुद्राराक्षस' की शैली विषय के अनुरूप बदलती हुई दिखाई पडती है। अधिकांशतः कवि ने व्यास-प्रधान शैली का प्रयोग कर छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा भावाभिव्यक्ति की है।

'मुद्राराक्षस' के पद्यों में विचित्र प्रकार का पौरुष दिखाई पडता है। कवि ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है। इसमें अलकारों का प्रयोग भाषा की स्वाभाविकता को सुरक्षित करनेवाला है। 'अलंकारों का पद्यों मे उतना ही प्रयोग है जिससे भावों के प्रकटन में अथवा मूर्त्त की कल्पना में तीव्रता का वैशद्य से जन्म हो जाता है।' संस्कृत साहित्य का इतिहास—उपाध्याय पृ० ५११। चाणक्य की कुटिया का वर्णन अत्यन्त आकर्षक एवं स्वाभाविकता से पूर्ण है—उपलशकलमेतद् भेदकं गोयमानां बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्। शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥ ३।१५।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डे एवं दासगुप्त। ३. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ४ संस्कृत काव्यकार—डॉ०—हरिदत्त शास्त्री। ६. मुद्राराक्षस—(हिन्दी अनुवाद) अनुवादक डॉ० सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा प्रकाशन (भूमिका भाग)। ७. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—(हिन्दी अनुवाद) कृष्ण चैतन्य।

विश्वनाथ पञ्चानन—वैशेषिकदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ पञ्चानन बंगदेशीय थे। इनका समय १७ वीं शताब्दी है। ये नवद्वीप (बंगाल) के नव्यन्याय प्रवर्त्तक रघुनाथ शिरोमणि के गुरु वासुदेव सार्वभौम के अनुज रत्नाकर विद्यावाचस्पति के पौत्र थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ विद्यानिवास था जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् थे। विश्वनाथ पञ्चानन (भट्टाचार्य) ने न्याय-वैशेषिक के ऊपर दो ग्रन्थों की रचना की है 'भाषापरिच्छेद' एवं 'न्यायसूत्रवृत्ति'। भाषापरिच्छेद—यह

वैशेषिकदर्शन का ग्रन्थ है जिसकी रचना १६८ कारिकाओं में हुई है। विषय-प्रतिपादन की स्पष्टता एवं सरलता के कारण इसे अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इस पर महादेव भट्ट भारद्वाज कृत 'मुक्तावलीप्रकाश' नामक अधूरी टीका है जिसे टीकाकार के पुत्र दिनकरभट्ट ने 'दिनकरी' के नाम से पूर्ण किया है। 'दिनकरी' के ऊपर रामरुद्रभट्टाचार्य कृत 'दिनकरीतरंगिणी' नामक प्रसिद्ध व्याख्या है जिसे 'रामरुद्री' भी कहते हैं। न्यायसूत्रवृत्ति—इस ग्रन्थ की रचना १६३१ ई० में हुई थी। इसमें न्यायसूत्रों की सरल व्याख्या प्रस्तुत की गयी है जिसका आधार रघुनाथ शिरोमणि कृत व्याख्यान है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। २. भारतीय-दर्शन—डॉ० उमेश मिश्र।

विश्वेश्वर पण्डित—काव्यशास्त्र के आचार्य। इन्होंने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक अत्यन्त प्रौढ़ अलंकार ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इनका समय १८ वीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल है। ये उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के 'पटिया' नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी उपाधि पाण्डेय थी तथा पिता का नाम लक्ष्मीधर था। ये अपने समय के प्रतिष्ठित मूर्धन्य विद्वान एवं अलंकारशास्त्र के अन्तिम प्रौढ आचार्य थे। इन्होंने व्याकरण, साहित्यशास्त्र एवं तर्कशास्त्र पर समान अधिकार के साथ लेखनी चलायी है। 'व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि' व्याकरण का विशालकाय ग्रन्थ है जो अपनी उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध है। न्यायशास्त्र पर इन्होने 'तर्ककुतूहल' एवं 'दीधितिप्रवेश' नामक ग्रन्थों की रचना की है। साहित्यशास्त्रविषयक इनके पाँच ग्रन्थ हैं—अलंकार-कौस्तुभ, अलंकारमुक्तावली, अलंकारप्रदीप, रसचन्द्रिका एवं कवीन्द्रकण्ठाभरण। इनमे प्रथम ग्रन्थ ही इनकी असाधारण रचना है। 'अलंकारकौस्तुभ' मे नव्यन्याय की शैली का अनुसरण करते हुए ६१ अलंकारों का तर्कपूर्ण एवं प्रामाणिक विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ मे विभिन्न आचार्यों द्वारा बढ़ाये गए अलंकारो की परीक्षा कर उन्हें मम्मट द्वारा वर्णित ६१ अलंकारों में ही गतार्थ कर दिया गया है और रुय्यक, शोभाकरमित्र, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ के मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन किया गया है। ग्रन्थ के उपसंहार मे लेखक ने इसके उद्देश्य पर प्रकाश डाला है—

अन्यैरुदीरितमलंकरणान्तरं यत् काव्यप्रकाशकथितं तदनुप्रवेशात्। संक्षेपतो बहु-निबन्धविभावनेनालंकारजातमिह चारुमयान्यरूपि॥ अलंकारकौस्तुभ पृ० ४१९॥ 'अलंकारकौस्तुभ' पर स्वयं लेखक ने ही टीका की रचना की थी जो रूपकालंकार तक ही प्राप्त होती है। विश्वेश्वर अच्छे कवि थे। इन्होंने अलंकारों पर कई स्वरचित सरस उदाहरण दिये हैं।

विष्णुदत्त शुक्ल 'वियोगी'—इनका जन्म १८९५ ई० में हुआ है। इन्होने 'गंगा' एवं 'शौलोचनीय' नामक दो काव्यग्रन्थ लिखे हैं। 'गंगा' पांच सर्गों मे रचित खण्डकाव्य है। 'सौलोचनीय' का प्रकाशन १९५८ ई० में वाणीप्रकाशन, २०११ कस्तूरबा गांधी मार्ग, कानपुर से हुआ है। इसमें मेघनाद (रावण का पुत्र) की

पत्नी सुलोचना का वृत्त वर्णित है। कवि ने शैली की प्राचीन पद्धति न अपनाकर आधुनिक शैली का अनुगमन किया है। पक्षिव्रजानां कलकूजनेन, यथा वनान्तं मुखरं बभूव। कक्षाश्च सर्वेऽपि तथा गृहाणां बालैर्हसद्भिः मुखरा बभूवुः ॥ सौलोचनीय १।३।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण—इसकी गणना १८ उपपुराणों मे होती है। यह भारतीय कला का विश्वकोश है जिसमें वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला एवं अलंकारशास्त्र का वर्णन किया गया है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' मे नाट्यशास्त्र तथा काव्यालंकार-विषयक एक सहस्र श्लोक हैं। इसके चार अध्याय १८, १९, ३२, ३६—गद्य में लिखे गए हैं जिनमे गीत, आतोद्य, मुद्राहस्त तथा प्रत्यङ्गविभाग का वर्णन है। इसके जिस अंश में चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्यकला तथा काव्यशास्त्र का वर्णन है उसे चित्र-सूत्र कहा जाता। [इसका प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से शक सं० १८३४ में हुआ है तथा चित्रकला वाले अंश का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की सम्मेलन पत्रिका के 'कला अंक' में किया गया है]। इसका प्रारम्भ वज्र और मार्कण्डेय के संवाद से होता है। मार्कण्डेय के अनुसार 'देवता की उसी मूर्ति में देवत्व रहता है जिसकी रचना चित्रसूत्र के आदेशानुसार हुई है तथा जो प्रसन्नमुख है।' संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—काणे पृ० ८३। चित्रसूत्रविधानेन देवतार्चा विनिर्मिताम्। सुरूपां पूजयेद्विद्वान् तत्र संनिहिता भवेत् ॥ १।७। इसके द्वितीय अध्याय में यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि बिना चित्रसूत्र के ज्ञान के 'प्रतिमा-लक्षण' या मूर्तिकला समझ मे नही आ सकती तथा बिना नृत्तशास्त्र के परिज्ञान के चित्रसूत्र समझ में नहीं आ सकता। नृत्त वाद्य के बिना संभव नही तथा गीत के बिना वाद्य मे भी पटुता नही आ सकती। विना तु नृत्तशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्। आतोद्येन बिना नृत्तं विद्यते न कथंचन। न गीतेन विना शक्यं ज्ञातुमातोद्यमप्युत ॥' इसके तृतीय अध्याय में छन्द वर्णन तथा चतुर्थ अध्याय मे 'वाक्य-परीक्षा' की चर्चा की गयी है। पंचम अध्याय के विषय हैं—अनुमान के पांच अवयव, सूत्र की ६ व्याख्याएं, तीन प्रमाण (प्रत्यक्षानुमानाप्तवाक्यानि) एवं इनकी परिभाषाएं, स्मृति, उपमान तथा अर्थापत्ति। षष्ठ अध्याय मे 'तन्त्रयुक्ति' का वर्णन है तथा सप्तम अध्याय मे विभिन्न प्राकृतो का वर्णन ११ श्लोकों में किया गया है। अष्टम अध्याय मे देवताओ के पर्यायवाची शब्द दिये गए हैं तथा नवम् और दशम् अध्यायो मे भी शब्दकोश है। एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश अध्यायो में लिङ्गानुशासन है तथा प्रत्येक अध्याय में १५ श्लोक हैं। चतुर्दश अध्याय में १७ अलंकारों का वर्णन है।

पंचदश अध्याय मे काव्य का निरूपण है जिसमे काव्य एवं शास्त्र के साथ अन्तर स्थापित किया गया है। इसमे काव्य मे ९ रसों की स्थिति मान्य है। षोडश अध्याय मे केवल पन्द्रह श्लोक हैं जिनमें २१ प्रहेलिकाओ का विवेचन है। सप्तदश अध्याय मे रूपक-वर्णन है तथा उनकी संख्या १२ कही गयी है। इसमें कहा गया है कि नायक की मृत्यु, राज्य का पतन, नगर का अवरोध एवं युद्ध का साक्षात् प्रदर्शन नहीं होना चाहिए, इन्हें प्रवेशक द्वारा वार्त्तालाप के ही रूप में प्रकट कर देना चाहिए। इसी अध्याय मे आठ प्रकार की नायिकाओं का विवेचन किया गया है। [श्लोक संख्या

५६–५९]। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के अष्टादश अध्याय में गीत, स्वर, ग्राम तथा मूर्छनाओं का वर्णन है जो गद्य में प्रस्तुत किया गया है। उन्नीसवां अध्याय भी गद्य में है जिसमें चार प्रकार के वाद्य, बीस मण्डल एवं प्रत्येक के दो प्रकार से दस-दस भेद तथा ३६ अङ्गहार वर्णित हैं। बीसवें अध्याय में अभिनय का वर्णन है। इस अध्याय में दूसरे के अनुकरण को नाट्य कहा गया है, जिसे नृत्त द्वारा संस्कार एवं शोभा प्रदान किया जाता है।

अध्याय २१–२३ तक शय्या, आसन एवं स्थानक का प्रतिपादन एवं २४-२५ में आंगिक अभिनय वर्णित है। २६ वें अध्याय में १३ प्रकार के संकेत तथा २७ वें में आहार्याभिनय का प्रतिपादन है। आहार्याभिनय के चार प्रकार माने गए हैं—प्रस्त, अलंकार, अङ्गरचना एवं संजीव। २९ वें अध्याय मे पात्रों की गति का वर्णन एवं ३० वें में २८ श्लोकों में रस-निरूपण है। ३१ वें अध्याय में ५८ श्लोकों में ४९ भावों का वर्णन तथा ३२ वे मे हस्तमुद्राओं का विवेचन है। ३३ वें अध्याय में नृत्य-विषयक मुद्रायें १२४ श्लोकों में वर्णित हैं तथा ३४ वें अध्याय में नृत्य का वर्णन है। ३५ से ४३ तक चित्रकला, ४४–८५ तक मूर्त्ति एवं स्थापत्य कला का वर्णन है। विष्णुधर्मोत्तर के काव्यशास्त्रीय अंशों पर नाट्यशास्त्र का प्रभाव है, किन्तु रूपक और रसो के सम्बन्ध में कुछ अन्तर भी है। डॉ० काणे के अनुसार इसका समय पाँचवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं है।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोइटिक्स–म० म० काणे। २. उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद–मोतीलाल बनारसीदास। ३. सम कन्सेप्टस् ऑफ अलंकारशास्त्र–वी० राघवन्। ४. अलबेरूनी का भारत–हिन्दी अनुवाद (आदर्श पुस्तकालय)।

विष्णुपुराण—यह क्रमानुसार तृतीय पुराण है। इस पुराण में विष्णु की महिमा का आख्यान करते हुए उन्हें एकमात्र सर्वोच्च देवता के रूप में उपस्थित किया गया है। यह पुराण छह खण्डो मे विभक्त है, जिसमें कुल १२६ अध्याय एवं ६ सहस्र श्लोक हैं। इसकी श्लोक संख्या के सम्बन्ध मे 'नारदीयपुराण' एवं 'मत्स्यपुराण' में मतैक्य नहीं है और प्रथम के अनुसार २४ हजार तथा द्वितीय के अनुसार इसकी श्लोक-संख्या २३ हजार मानी गयी है। इस पुराण की तीन टीकायें उपलब्ध होती है—श्रीधरस्वामी कृत टीका, विष्णुचित्त कृत विष्णुचित्तीय तथा रत्नगर्भभट्टाचार्य कृत वैष्णवाकूत चन्द्रिका। इसके वक्ता एवं श्रोता पराशर और मैत्रेय हैं।

'विष्णुपुराण' के प्रथम अंश मे सृष्टिवर्णन तथा ध्रुव और प्रह्लाद का चरित्र वर्णित है तथा देवो, दैत्यों, वीरों एवं मनुष्यो की उत्पत्ति के साथ-ही-साथ अनेक काल्पनिक कथाओं का वर्णन है। द्वितीय अंश में भौगोलिक विवरण है जिसके अन्तर्गत सात द्वीपों, सात समुद्रों एवं सुमेरु पर्वत का कथन किया गया है। पृथ्वीवर्णन के अनन्तर पाताललोक का भी विवरण है तथा उसके नीचे स्थित नरकों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद द्युलोक का वर्णन है, जिसमें सूर्य, उनके रथ और घोड़े, उनकी गति एवं ग्रहों के साथ चन्द्रमा एवं चन्द्रमण्डल का वर्णन है। इसमें भारतवर्ष नाम के प्रसंग में राजा भरत की कथा कही गयी है।

तृतीय अंश में आश्रम-विषयक कर्त्तव्यों का निर्देश एवं तीन अध्यायों में वैदिक शाखाओं का विस्तृत विवरण है। इसी अंश में व्यास एवं उनके शिष्यों द्वारा किये गए वैदिक विभागों तथा कई वैदिक सम्प्रदायों की उत्पत्ति का भी वर्णन किया गया है। इसके बाद अठारह पुराणों की गणना, समस्त शास्त्र एवं कलाओं की सूची प्रस्तुत की गयी है। चतुर्थ अंश में ऐतिहासिक सामग्री का संकलन है जिसके अन्तर्गत सूर्य एवं चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावलियाँ हैं। इसमें पुरूरवा-उर्वशी, राजा ययाति, पाण्डवों एवं कृष्ण की उत्पत्ति, महाभारत की कथा तथा राम-कथा का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसी भाग में भविष्य में होनेवाले राजाओं—मगध, शैशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, काण्वायन तथा आन्ध्रभृत्य—के सम्बन्ध में भविष्यवाणियाँ की गयी हैं। पंचम अंश में 'श्रीमद्भागवत' की भांति भगवान् श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित का वर्णन किया गया है। षष्ठ अंश अपेक्षाकृत अधिक छोटा है। इसमें केवल आठ अध्याय हैं। इस खण्ड में कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग का वर्णन है और कलि के दोषों को भविष्यवाणी के रूप में दर्शाया गया है। इसका रचनाकाल ईस्वी सन् के पूर्व माना गया है।

आधारग्रन्थ—१. विष्णुपुराण—(हिन्दी अनुवाद सहित) गीता प्रेस, गोरखपुर। २. विष्णुपुराणकालीन भारत—डॉ० सर्वदानन्द पाठक। ३. विष्णुपुराण (अँगरेजी अनुवाद)—एच० एच० विल्सन। ४. पुराण-विमर्श—प० बलदेव उपाध्याय। ५. इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली भाग ७, कलकत्ता १९३१।

वीरनन्दी—इनका समय १३०० ई० है। ये जैनमतावलम्बी हैं। इन्होंने 'चन्द्रप्रभचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें १८ सर्ग हैं। इसमें सप्तम जैन तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवनचरित वर्णित है।

वेंकटनाथ—ये विशिष्टाद्वैतवाद नामक वैष्णव दर्शन के आचार्य थे। इनका समय १२६९-१३६९ है। इन्हें वेदान्ताचार्य भी कहा जाता है तथा 'कवि-तार्किकसिंह' एवं 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र' नामक उपाधियों से ये समलंकृत हुए थे। इन्होंने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के अतिरिक्त काव्यों की भी रचना की थी जिनमें काव्यतत्त्वों का सुंदर समावेश है। इनके काव्यों में 'संकल्प सूर्योदय', 'हंसदूत', 'रामाभ्युदय', 'यादवाभ्युदय', 'पादुकासहस्र' आदि हैं। वेंकटनाथ के प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है—तत्त्वटीका (यह 'श्रीभाष्य' की विशद व्याख्या है), न्यायपरिशुद्धि तथा न्याय-सिद्धाञ्जन (दोनों ग्रन्थों में विशुद्धाद्वैतवाद की प्रमाणमीमांसा का वर्णन है), अधि-करणसारावली (इसमें ब्रह्मसूत्र के अधिकरणों का श्लोक-बद्ध विवेचन किया गया है), तत्त्वमुक्ताकलाप, गीतार्थतात्पर्यचन्द्रिका, (यह रामानुजाचार्य के गीता-भाष्य की टीका है), ईशावास्यभाष्य, द्रविडोपनिषद्तात्पर्यरत्नावली, शतदूषणी, सेश्वरमीमांसा, पाञ्च-रात्ररक्षा, सच्चरित्ररक्षा, निक्षेपरक्षा, न्यासविंशति। दे० भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

वेणीसंहार—यह भट्टनारायण लिखित (दे० भट्टनारायण) नाटक है। 'वेणीसंहार' में महाभारत की उस प्रसिद्ध घटना का वर्णन है जिसमें द्रौपदी ने प्रतिज्ञा

की थी कि वह तबतक अपनी वेणी नहीं बाँधेगी जबकि उसके अपमान का बदला नहीं लिया जाता। कवि ने इसी घटना को नाटकीय रूप दिया है। इस नाटक में छह अंक हैं।

प्रथम अंक—नान्दी के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्राधार के द्वारा श्लिष्ट वचनों में पाण्डवों तथा कौरवों के बीच सन्धि कराने के लिए श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना दी गयी है। सन्धि के प्रस्ताव को सुनकर भीम तथा द्रौपदी को अत्यधिक क्रोध होता है। वे अपने अपमान का प्रतीकार युद्ध द्वारा करना चाहते हैं, सन्धि से नहीं। भीम स्पष्टतः यह कह देते हैं कि बिना प्रतिशोध लिए मैं रह नहीं सकता और सन्धि का प्रस्ताव करने पर युधिष्ठिर से भी सम्बन्ध-विच्छेद कर दूँगा। भीम को शान्त करने का सहदेव का प्रयत्न भी निष्फल सिद्ध होता है, और द्रौपदी अपने केशों को दिखाकर भीम के क्रोध को द्विगुणित कर देती है। भीम द्रौपदी को सान्त्वना देते हैं कि वे अपनी भुजाओं से गदा को घुमाते हुए दुर्योधन को जाँघ तोड डालेंगे तथा उसके रक्तरञ्जित हाथों से ही उसको (द्रौपदी को) वेणी बाँधेंगे। इस समय नेपथ्य से श्रीकृष्ण के असफल प्रयत्न की सूचना होती है और क्रुद्ध युधिष्ठिर रणघोषणा करते हैं। रण-घोषणा सुनते ही भीम एवं द्रौपदी उल्लसित होते हैं तथा भीम और सहदेव उमंग भरे चित्त से द्रौपदी से विदा लेकर रण-क्षेत्र की यात्रा करते हैं।

द्वितीय अंक का प्रारम्भ दुर्योधन की पत्नी भानुमती के अशुभ स्वप्न से होता है। वह रात्रि में देखे गए अमङ्गलजनक स्वप्न को अपनी सखियों से कह कर व्यथित हो जाती है और भावी आशंका की चिन्ता से उसके निवारण का उपाय जानना चाहती है। उसने देखा कि एक नकुल, सौ सर्पों का वध कर, उसके स्तनांशुक हरने के लिए प्रयत्न कर रहा है। दुर्योधन छिप कर इस घटना को सुनता है तथा माद्रीपुत्र नकुल एवं अपनी पत्नी के गुप्त प्रेम के प्रति संदेह होने से क्रोधित हो उठता है। पर सम्पूर्ण स्वप्न की घटना सुन कर उसके सन्देह का निराकरण हो जाता है। सखियाँ अमंगल के दोष को हटाने के लिए पूजा का विधान करती हैं। भानुमती सूर्य की पूजा मे रत होकर अपनी दासी से अर्घ्यपात्र मांगती है, पर वह अन्यत्र व्यस्त होने के कारण नहीं आती, उसी समय स्वयं दुर्योधन अर्घ्यपात्र लेकर प्रवेश करता है। वह व्रत मे संलग्न भानुमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करता है और उसके मना करने पर भी उसे आलिंगनपाश मे जकड लेता है। इसी समय तीव्र झंझावात के आ जाने से भानुमती भयभीत होकर दुर्योधन से लिपट जाती है। झंझावात के शान्त होने पर जयद्रथ की माता एवं पत्नी (दुर्योधन की बहिन) आकर उसे सूचित करती हैं कि अभिमन्यु की मृत्यु से दुःखित होकर अर्जुन ने सूर्यास्त होने तक जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है, अतः आप उसकी रक्षा की व्यवस्था करें। दुर्योधन उन्हें सान्त्वना देकर; रथारूढ़ हो; संग्राम स्थल की ओर प्रस्थान करता है।

तृतीय अंक के प्रवेशक में एक राक्षस एवं राक्षसी के वार्त्तालाप से भीषण युद्ध की सूचना प्राप्त होती है तथा यह भी ज्ञात होता है कि द्रोणाचार्य का वध हो चुका है। तत्पश्चात् पिता की मृत्यु से क्रुद्ध अश्वत्थामा का रंगमंच पर प्रवेश होता है।

कृपाचार्य उसे सान्त्वना देकर तथा द्रोणाचार्य के वध का प्रतीकार करने के लिए उसे दुर्योधन के पास ले आकर सेनाध्यक्ष बनाने के लिए अनुरोध करते हैं। पर, दुर्योधन ने इसके पूर्व ही कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दे दिया है। इस पर कर्ण एवं अश्वत्थामा के बीच भीषण वाग्युद्ध होता है और अश्वत्थामा प्रतिज्ञा करता है कि जब तक कर्ण जीवित रहेगा तब तक वह अस्त्र नहीं ग्रहण करेगा। इसी बीच नेपथ्य से भीमसेन की ललकार सुनाई पड़ती है और वे दुःशासन को पकड़कर उसे बचाने के लिए कौरवों को चुनौती देते हैं। दुर्योधन, कर्ण एवं अश्वत्थामा उसकी रक्षा के लिए आते हैं तब तक भीमसेन दु.शासन का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेता है।

चतुर्थ अंक में युद्ध मे आहत दुर्योधन घर आता है और उसे दुःशासन के वध की सूचना प्राप्त होती है। जब वह शोकग्रस्त होकर रुदन करता है। उसी समय सुन्दरक नामक दूत आकर उसे युद्ध की स्थिति का पता बताता है। दूत कर्ण का एक पत्र भी देता है जो दुःखातिरेक से पूर्ण है। दुर्योधन उसे पढ़कर पुनः युद्धस्थल में जाने को उद्यत होता है, किन्तु उसी समय गाधारी, धृतराष्ट्र तथा संजय के आगमन से रुक जाता है।

पंचम अंक मे धृतराष्ट्र एवं गान्धारी द्वारा दुर्योधन को समझाने एवं सन्धि कर युद्ध की विभीषिका को बन्द करने का प्रस्ताव वर्णित है, पर दुर्योधन उनसे सहमति नही प्रकट करता। उसी समय कर्ण के मारे जाने की सूचना प्राप्त होती है और दुर्योधन युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। दुर्योधन को खोजते हुए भीम एव अर्जुन आते हैं और गांधारी तथा धृतराष्ट्र को प्रणाम करते हैं। भीम प्रणाम करते हुए भी कटूक्तियो का प्रयोग करता है। दुर्योधन भीम को फटकारता है तथा दोनो मे वाग्ययुद्ध होता है। इसी बीच भीम और अर्जुन को युधिष्ठिर का आदेश प्राप्त होता है कि सन्ध्या हो गयी है और युद्ध-समाप्ति का समय हो गया है। तभी अश्वत्थामा आकर दुर्योधन से कर्ण की निन्दा कर स्वयं अपने बाहु-बल से पाण्डवो का संहार करने की बात कहता है। पर, दुर्योधन उसे उपालम्भ देते हुए कहता है कि जिस प्रकार उसने कर्ण के वध की प्रतीक्षा की है उसी प्रकार अब दुर्योधन की मृत्यु की भी प्रतीक्षा करे। अश्वत्थामा अपमानित होकर चला जाता है, पर धृतराष्ट्र संजय को भेज कर उसके क्रोध को शान्त करने का प्रयास करते है।

छठे अङ्क मे नाटककार ने अत्यन्त रोचकता के साथ कथानक में नया मोड़ दिया है। युधिष्ठिर चिन्तित मुद्रा मे दिखाई पड़ते हैं। उनकी चिन्ता का कारण है भीम की यह प्रतिज्ञा जिसके अनुसार यदि वे सन्ध्या समय तक दुर्योधन का वध न करें तो स्वयं प्राण दे देंगे। यह बात सुनते ही दुर्योधन छिप जाता है और बहुत खोज करने पर भी उसका पता नही चलता। उसी समय श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर एक दूत आता है और यह सूचना देता है कि भीम और दुर्योधन मे गदा-युद्ध हो रहा है जिसमें भीम की विजय निश्चित है, अतः वे शीघ्र ही राज्याभिषेक की तैयारी करें। युधिष्ठिर हर्षित हैं और द्रौपदी 'वेणीसंहार' का उत्सव मनाने के लिए तत्पर है। उसी समय

दुर्योधन के दल का चार्वाक नामम राक्षस संन्यासी का वेष धर कर आता है और कहता है कि उसने भीम एवं दुर्योधन का गदा-युद्ध तो देख लिया है पर प्रचण्ड धूप के कारण, तृषार्त हो जाने से, अर्जुन और दुर्योधन का युद्ध नहीं देख सका। उसने बताया कि भीम की मृत्यु हो चुकी है। कृष्ण को लेकर बलराम मथुरा चले गए हैं, अतः गदा-युद्ध में अर्जुन की मृत्यु निश्चित है। इस हृदय-विदारक समाचार को सुन कर युधिष्ठिर और द्रौपदी शोकाभिभूत होकर मरने को तत्पर होते हैं और चार्वाक की सहायता से चिता तैयार की जाती है। चार्वाक उन्हें और भी अधिक उकसाता है और चिता तैयार होने पर वहाँ से खिसक जाता है। वह छिप कर दोनों के चितारोहण की प्रतीक्षा करने लगता है। उसी समय नेपथ्य मे कोलाहल सुनाई पडता है और युधिष्ठिर दुर्योधन का आगमन जान कर शस्त्र धारण करते है तथा द्रौपदी छिपने का प्रयत्न करती है। तत्क्षण दुर्योधन के शोणित से रंजित भीमसेन आकर द्रौपदी को पकड कर उसका वेणी संहार करना चाहते हैं और युधिष्ठिर उन्हें दुर्योधन समझकर भुजा में कस कर मारना चाहते हैं। भीमसेन उन्हें अपना परिचय देता है और कृष्ण तथा अर्जुन भी आ जाते हैं। भरत वाक्य के पश्चात् नाटक की समाप्ति हो जाती है।

'वेणीसंहार' का उपर्युक्त कथानक 'महाभारत' पर आधृत होते हुए भी कवि द्वारा अनेक परिवर्त्तन कर लोकप्रिय बनाया गया है। इसमें भट्टनारायण की काव्यचातुरी तथा नाट्यकला दोनों परिलक्षित होती है। यह संस्कृत का अद्भुत नाटक है तथा इसका नायकत्व भी विवाद का प्रश्न बना हुआ है। विद्वानो ने युधिष्ठिर, भीम एवं दुर्योधन तीनो को ही इसका नायक मानकर अपने मत की पुष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के तर्क उपस्थित किये हैं। इसमें कोई भी पात्र ऐसा नहीं है जो नायक की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। पर साथ ही कई पात्र ऐसे हैं जो नायक के पद पर अधिष्ठित किये जा सकते है। अब यहां हमें विचार करना है कि इस पद के लिए कौन-सा पात्र अधिक उपयुक्त है। पहले दुर्योधन को लिया जाय—इस नाटक की अधिकाश घटनाएँ दुर्योधन से सम्बद्ध हैं तथा वह वीरता एवं आत्मसम्मान की मूर्ति है। वह स्नेही भ्राता, विश्वस्त मित्र तथा कट्टर शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के मंच पर वह अधिक से अधिक प्रदर्शित किया गया है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम अङ्क में तो वह प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित रहता है तथा प्रथम अङ्क में कृष्ण को बन्दी बनाने मे उसका उल्लेख किया गया है। अन्तिम अंक में भी भीमसेन के साथ गदा-युद्ध करने में उसका कई बार उल्लेख हुआ है। कौरवों का राजा होने के कारण वह नायक-पद के लिए सर्वथा उपयुक्त है। कतिपय विद्वान् 'वेणीसंहार' को दुःखान्त रचना मानकर उसका नायक दुर्योधन को ही स्वीकार करते हैं। पर, इस मत में भी दोष दिखाई पड़ता है, क्योंकि भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार नायक का वध वर्जित है—'नाधिकारिवधं क्वापि'। दशरूपक ३।३६, 'अधिकृतनायकवधं प्रवेशकादिनाऽपि न सूचयेत्।' वही धनिक की टीका

अन्य कई कारण भी ऐसे हैं जिनसे दुर्योधन इस नाटक का नायक नहीं हो सकता। नाट्यशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार नायक का धीरोदात्त होना आवश्यक है, जो महा-

सत्व, अति गम्भीर, क्षमावान्, अविकत्थन, स्थिर, निगूढ़ाहंकार और दृढ़व्रत होता है। दुर्योधन में उपर्युक्त गुण नहीं पाये जाते, अतः भारतीय परम्परा के अनुसार वह नायक नहीं हो सकता। भीमसेन की वीरता संग्रामस्थल मे दिखाई पड़ती है, किन्तु दुर्योधन का वीरत्व वचनों मे ही अभिव्यक्त होता है। द्वितीय अङ्क में अपनी पत्नी के साथ उसकी शृङ्गारिक भंगिमाओं का निदर्शन अनुपयुक्त है। जब युद्ध की तैयारी हो रही है वह भानुमती को आलिंगन-पाश मे बाँधे हुए है। इस नाटक में कवि का लक्ष्य दुर्योधन का विनाश दिखाना ही है। "ऐसे समृद्धिशाली व्यक्ति का विनाश चित्रित कर कवि ने दैव की परिवर्तनशील गति को प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। अधः-पतन की ओर जाता हुआ दुर्योधन वीररस की उक्तियों में यद्यपि किसी प्रकार भी कम नहीं है, पर जीवन के अन्तिम दिनों में किंचिदपि चमत्कार एवं पुरुषत्व न दिखाने से उसे आत्मसम्मान एवं वीरता की जाग्रत मूर्त्ति समझना उचित प्रतीत नहीं होता।" संस्कृत नाटककार पृष्ठ १७६।

'वेणीसंहार' के नायकत्व का दूसरा प्रत्याशी भीमसेन है। इस नाटक की प्रमुख घटना एवं शीर्षक का सम्बन्ध भीमसेन से ही है। इसकी प्रमुख घटना है द्रौपदी की वेणी का संहार (सँवारना), जिसे भीम ही दुर्योधन की जाघो को तोड़कर, उसके रक्त से ही, सम्पन्न करता है। अपने रक्तरंजित हाथो से, द्रौपदी की वेणी गूँथकर, वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करता है। यदि इसे ही नाटक का फल मान लिया जाय तो नाटक के फल का भोक्ता भीमसेन सिद्ध होता है। अपने लक्ष्य की पूर्ति में वह सतत प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है और आरम्भ मे अन्त तक उसी की दर्पोक्तियां सुनाई पड़ती है (द्वितीय अंक में कंचुकी दुर्योधन की जंघा के प्रसंग में 'भग्न भीमेन' कह कर सबका ध्यान आकृष्ट कर देता है। दुर्योधन की भांति भीम का भी प्रभाव सम्पूर्ण नाटक पर छाया रहता है, अतः उपर्युक्त कारणो से कतिपय आलोचक भीम को ही 'वेणीसंहार' का नायक स्वीकार करते हैं (दे० वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी प्रो० ए० बी० गजेन्द्रगडकर), आरम्भ से अन्त तक भीमसेन अपनी वीरता प्रदर्शित करता है और छठे अंक मे यह भी सूचना प्राप्त होती है कि दुर्योधन बांधवों एवं सहायकों के मारे जाने के पश्चात् प्राणो के भय से, किसी सरोवर मे छिपा हुआ है। क्षत्रियोचित कर्म की दृष्टि से दुर्योधन का यह कार्य श्लाघनीय नहीं है। यद्यपि भीमसेन का चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक उज्ज्वल तथा वीरता से पूर्ण है, तथापि भारतीय परम्परा उसे नायकत्व प्रदान करने को प्रस्तुत नहीं है। भीम धीरोदात्त नायक न होकर प्रतिपक्षी नायक धीरोद्धत का प्रतिनिधित्व करता है। वह क्रोधी, आत्मप्रशंसी तथा अहंकारी होने से नायक-पद के लिए उपयुक्त नहीं बैठता तथा धृतराष्ट्र एवं गान्धारी को कटूक्तियों से मर्माहत करने मे भी नहीं हिचकता। वह अपनी वाणी पर संयम नही रखता, अतः नायक पद के लिए अनु-पयुक्त सिद्ध होता है।

नायकत्व के तृतीय प्रत्याशी युधिष्ठिर हैं, ये भारतीय परम्परा के अनुसार धीरोदात्त नायक हैं, अतः इनमें नायकत्व की पूरी क्षमता है। वे धीर, शान्त तथा अविकत्थन हैं। युधिष्ठिर के पक्ष में अन्य अनेक तथ्य भी हैं जिनसे इनका

नायकत्व खण्डित नहीं होता। इस नाटक का नामकरण प्रमुख घटना पर हुआ है किन्तु वही इसका 'फल' नहीं है। इसका फल द्रौपदी का 'वेणीसंहार' न होकर 'शत्रु-संहार' एवं राज्य की प्राप्ति है। तथा इन दोनो के ही भोक्ता महराज युधिष्ठिर हैं। भरत वाक्य का कथन करने वाला व्यक्ति ही नायक होता है और इस नाटक में यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा सम्पादित कराया गया है, अतः इनके नायक होने में किसी प्रकार की द्विधा नहीं रह जाती। विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' मे युधिष्ठिर को ही 'वेणीसंहार' का नायक माना है। परम्परा के विचार से युधिष्ठिर ही इसके नायक सिद्ध होते हैं, पर कवि ने इनके चरित्र को पूर्णरूप से उभरने नहीं दिया है और नायक के चरित्र की पूर्ण उपेक्षा की है। युधिष्ठिर नाटक के अन्तिम अंक में ही सामने आते हैं, शेष अंकों में इनका व्यक्तित्व ओझल रहता है तथा प्रथम एवं पंचम अंक मे इनका उल्लेख नेपथ्य से होता है। निष्कर्ष यह कि परम्परा के विचार से भले ही इसके नायक युधिष्ठिर हो किन्तु कवि ने इनके नायकोचित विकास पर ध्यान नहीं दिया है।

वस्तु-योजना'—वेणीसंहार' संस्कृत के उन नाटकों मे है जिसमे शास्त्रीयता का पूर्ण निर्वाह है तथा नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे इसे उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। सन्धियो, अर्थप्रकृतियो एवं अवस्थाओ का इसमे सफल नियोजन किया गया है। पर, सन्ध्यङ्गो की योजना के सम्बन्ध में विद्वानों को कतिपय त्रुटियां दिखाई पडती हैं। उदाहरणस्वरूप—नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे मुखसन्धि के अंगो के पूर्व ही 'विलोभन' का उल्लेख किया जाता है तत्पश्चात् प्राप्ति का, पर 'वेणीसंहार' में पहले प्राप्ति का उदाहरण मिलता है तदुपरान्त विलोभन का। इसी प्रकार का व्यतिक्रम अन्य सन्धियों में भी दिखाई पडता है। इस नाटक का प्रधान कार्य है द्रौपदी का वेणी बांधना और इसका बीज है युधिष्ठिर का क्रोध। क्योंकि जब तक वे क्रोधित नहीं होते युद्ध की घोषणा सम्भव नही थी। 'वेणीसंहार' के प्रथम अंक के अन्तर्गत 'स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः' भीम के इस कथन से लेकर 'क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते' (१।२४) तक युधिष्ठिर के क्रोधस्वरूप बीज सूचित होता है, अतः प्रथम अंक मे मुखसन्धि का विधान है। द्वितीय अंक में प्रतिमुख सन्धि दिखाई गयी है, जहाँ युधिष्ठिर का क्रोधरूपी बीज बिन्दु के रूप मे प्रसरित होता है। तृतीय अंक में गर्भसन्धि है और यह पंचम अङ्क तक रहती है। छठे अङ्क में अवमर्श तथा निर्वहण दोनो सन्धियां चलती हैं। प्रारम्भ मे युधिष्ठिर की सन्देहास्पद अवस्था दिखाई पडती है और वह स्थिति भीम के पहचाने जाने तक चलती है, किन्तु कंचुकी द्वारा भीमसेन के पहचाने जाने पर निर्वहण सन्धि आती है और उसका विधान अन्त तक होता है। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से इस नाटक की कथावस्तु की योजना उपयुक्त प्रतीत होती है। पर नाटकीय दृष्टि से इसमे कतिपय दोष दिखाई पडते है। इस नाटक की प्रमुख घटना है दुर्योधन की जांघ तोडकर भीम द्वारा द्रौपदी की वेणी को सजाना, पर इसमें महाभारत की सम्पूर्ण कथा का नियोजन कर नाटककार ने कथानक को विशृंखल कर दिया है। इसमें अनेक असम्बद्ध घटनाओ का भी नियोजन कर दिया गया है, जिससे मूलकार्य तथा कथा की गति में व्यवधान उपस्थित हो जाता है। कार्य-व्यापार के

आधिक्य के कारण, नाटक में कार्यान्विति का अभाव है तथा सभी अङ्कों के दृश्य असम्बद्ध एवं बिखरे से प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार सभी अङ्कों के दृश्य परस्पर अनुस्यूत नहीं दिखाई पड़ते, और न एक अङ्क की कथा का दूसरे में विकास होता है। द्वितीय अङ्क में वर्णित भानुमती के साथ दुर्योधन का प्रणय-प्रसङ्ग नितान्त अनुपयुक्त एवं असम्बद्ध है तथा नाटक की मुख्य कथा के साथ इसका तुक भी नहीं बैठता और वीररस-प्रधान नाटक के लिए यह नितान्त अनुचित प्रतीत होता है। अतः आचार्य मम्मट ने इसे 'अकाण्डे प्रथनम्' नामक दोष में परिगणित किया है। 'वेणीसंहार' में घटनाओं का आधिक्य है, पर उनमें व्यापारान्विति (यूनिटी ऑफ एक्शन) का अभाव है। तृतीय अङ्क का कर्ण-अश्वत्थामा-विवाद मार्मिक भले ही हो, पर नाटकीय कथावस्तु के विकास की दृष्टि से अनावश्यक है तथा दोनों योद्धाओं की प्रतिस्पर्द्धा मे नाटकीय सम्भावनाओं का विकास नहीं हो सका है। चतुर्थ मे सुन्दरक द्वारा प्रस्तुत किया गया युद्ध का विस्तृत विवरण, नाटक के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि यहां नाटकीय गति अवरुद्ध हो गयी है। युद्ध के सारे व्यापार को मंच पर उपस्थित न कराकर सुन्दरक के ही मुंह से सूचित कराया गया है। इतना विस्तृत विवरण सामाजिको के लिए ऊब पैदा कर उनके कौतूहल को नष्ट कर देता है। अन्तिम अङ्क मे चार्वाक मुनि की उपकथा का समावेश भी अनावश्यक प्रतीत होता है तथा युधिष्ठिर का भीम को दुर्योधन समझ लेना अस्वाभाविक ज्ञात होता है। इस प्रकार कथावस्तु व्यापारान्विति के अभाव के कारण शिथिल एवं विस्तृत संवादों के समावेश से गतिहीन हो गयी है। इसके युद्धों के विस्तृत वर्णन श्रव्यकाव्य की दृष्टि से अवश्य ही महत्त्वपूर्ण हैं, पर रंगमंच पर उनका दिखाना सम्भव नहीं है। इन सारी त्रुटियों के होते हुए भी, यह नाटक, शास्त्रीय विधान की दृष्टि से, शुद्ध एवं लोकप्रिय है। अधिकांश आचार्यों ने शास्त्रीय विवेचन में—इसे स्थान देकर, इसकी वैधानिक शुद्धता की पुष्टि की है। नाटककार ने इसमे कार्यावस्था एवं अर्थप्रकृति की सुन्दर रूप से योजना की है। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पांच अर्थ प्रकृतियां हैं। इस नाटक का 'कार्य' या फल है द्रौपदी की वेणी का संहार या संवारना। 'वेणीसंहार' में भीम द्वारा उत्साहित युधिष्ठिर का क्रोध ही 'बीज' है और वही द्रौपदी के केश-संयमनरूप कार्य का हेतु है। इसके द्वितीय अङ्क मे दुर्योधन की प्रणय-चेष्टा 'बिन्दु' है क्योंकि यह प्रसङ्ग मुख्य इतिवृत्त को विच्छिन्न कर देता है, पर जयद्रथ की माता के आ जाने से पुनः उसका ध्यान युद्ध की ओर लग जाता है। तृतीय अङ्क मे अश्वत्थामा का पितृ-शोक तथा विलाप एवं कर्ण के साथ वाग्युद्ध 'पताका' है तथा सुन्दरक द्वारा किया गया युद्ध-वर्णन भी पताका की श्रेणी मे आता है। पंचम अङ्क में धृतराष्ट्र का सन्धि-प्रस्ताव एवं उसके लिए दुर्योधन को समझाना और चार्वाक राक्षस का प्रसङ्ग 'प्रकरी' के अन्तर्गत आते हैं। दुर्योधन-वध के पश्चात् द्रौपदी का केश-संयमन 'कार्य' हो जाता है।

कार्यावस्था का नियोजन—इसमे पाँचों अवस्थाओं आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम की सुन्दर ढंग से योजना की गयी है। प्रथम अंक में द्रौपदी के केश-संयमन के लिए भीमसेन का दुर्योधन के रक्त से उस क्रिया को सम्पन्न करने

की इच्छा व्यक्त करना 'आरम्भ' नामक अवस्था है। द्वितीय अंक में जयद्रथ की माता द्वारा अर्जुन के पराक्रम का वर्णन करना 'यत्न' है। तृतीय एवं चतुर्थ अंक में प्राप्त्याशा का रूप दिखाई पड़ता है। भीमसेन के इस कथन में 'सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवः' तथा चतुर्थ अंक में दुर्योधन की मृत्यु की संभावना के सूचक श्लोक (२, ३, ४, ९) इसी अवस्था के द्योतक हैं। छठे अंक में दुर्योधन का पता लग जाना तथा पांचालक का कृष्ण का सन्देश लेकर युधिष्ठिर के पास आना 'नियताप्ति' है। अन्तिम अवस्था 'फलागम' का रूप भीमसेन द्वारा द्रौपदी के केश-संयमन में दिखाई पड़ता है।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण—भट्टनारायण ने पात्रों के शील-निरूपण में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यद्यपि महाभारत से कथावस्तु लेने के कारण, भट्टनारायण पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं थे फिर भी उन्होंने यथासंभव उन्हें प्राणवन्त एवं वैविध्यपूर्ण चित्रित किया है। इसके प्रमुख पात्र हैं—भीम, दुर्योधन, युधिष्ठिर, कृष्ण, अश्वत्थामा, कर्ण एवं धृतराष्ट्र। नारी चरित्रों में द्रौपदी, भानुमती एवं गान्धारी है।

भीमसेन—'वेणीसंहार' नाटक में आद्यन्त भीमसेन का प्रभाव परिदर्शित होता है तथा प्रत्येक अंक मे उसकी रोषपूर्ण गर्जना तथा प्रतिज्ञा सुनाई पड़ती है। वह रोष, स्फूर्ति एवं उत्साह का प्रतीक एवं दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति के रूप में चित्रित है। युधिष्ठिर उसे 'प्रियसाहस' के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस नाटक का प्रारम्भ भीमसेन के ही प्रवेश से होता है तथा पूरे नाटक पर उसके व्यक्तित्व की अखण्ड छाप दिखाई पड़ती है। वह प्रारम्भ से ही प्रतिशोध की ज्वाला में संतप्त है एवं कौरवों के साथ श्रीकृष्ण की सन्धि-वार्ता उसके लिए असह्य है। उसका प्रतिशोध भयंकर है, और इसके लिए यदि उसके बड़े भाई युधिष्ठिर अवरोध उपस्थित करे, तो वह उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने को भी प्रस्तुत है। तृतीय अंक मे सारी कौरव सेना के समक्ष वह दुःशासन को पकड़ कर, कौरवों को उसकी रक्षा की चुनौती देता हुआ, उसे मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है। पंचम अंक में वह दुर्योधन के सम्मुख वृद्ध एवं विकल धृतराष्ट्र को कटूक्तियो के प्रहार से व्यथित कर देता है, जिसमे उसका जंगलीपन एवं उद्धत स्वभाव प्रकट होता है। वह ऐसा दर्पोन्मत्त उद्धत नायक है जिसके व्यक्तित्व की एकमात्र विशेषता है—प्रतिशोध एवं प्रतिज्ञा-पूर्ति। उसकी गर्वोक्तियों के द्वारा नाटककार ने रौद्ररस की सृष्टि में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। वह अपमान का बदला लेने के आवेश मे उचितानुचित को भी भूल जाता है और यही उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष है।

दुर्योधन—इस नाटक में दुर्योधन के चरित्र में विविधता दिखाई पड़ती है। बहुत अंशों में इसका चरित्र भीमसेन से साम्य रखता है। वह भीम की भाँति उद्धत स्वभाव का है तथा कभी भी, किसी परिस्थिति मे भी, हाथ-पर-हाथ धर कर नहीं बैठता। दृढ़ निश्चय उसके चरित्र की बहुत बड़ी विशेषता है। वह आत्मविश्वासी है, अतः उसे अपनी विजय पर दृढ़ विश्वास है। इस नाटक में वह सर्वप्रथम द्वितीय अंक में दिखाई

पड़ता है, जहाँ एक शृङ्गारी एवं विलासी व्यक्ति के रूप में चित्रित है। वह युद्ध की विभीषिका को भूल कर अपनी पत्नी के प्रति प्रणय-क्रीडा में व्यस्त हो जाता है तथा प्रेमावेशमें प्रिया के व्रत को भंग कर उसे दृढालिगन मे आबद्ध कर लेता है। द्वितीय अंक में ही वह वीरत्व से पूर्ण भी दिखाई पड़ता है तथा अपनी पत्नी की आशंकाओं का निराकरण करते हुए कहता है कि तुम सिंहराज की पत्नी होकर भयभीत क्यों होती हो। वह छुक-छिप कर युद्ध न कर शत्रु से प्रत्यक्ष रूप से लडना चाहता है। इस प्रकार वीरता मे वह निश्चित रूप से सिंहराज ही प्रतीत होता है। वह दयावान् भी है तथा अपने आश्रितों पर सदैव दया दिखाता है। वह वीरता का प्रतीक है तथा अचेतावस्था मे भी सारथी को रणक्षेत्र से अपने को हटा देने में कायरता समझता है। वह सहृदय भ्राता के रूप में चित्रित है तथा दुःशासन के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी प्रस्तुत रहता है। वह सच्चा मित्र भी है और कर्ण के प्रति अपूर्व प्रेम प्रदर्शित करता है। उसकी मृत्यु का समाचार सुन कर वह शोक विह्वल हो उठता है। माता-पिता के प्रति उसके मन में सम्मान का भाव है। उसका गर्वशील व्यक्तित्व कभी झुकना नहीं चाहता और वह जो कुछ भी करता है उसके लिए खेद नही करता। षष्ठ अंक मे जब यह प्रस्ताव आता है कि पाँचों पाण्डवो मे से वह किसी के साथ भी गदा-युद्ध करे तो वह दुर्बलों को न चुनकर भीमसेन से ही लड़ने को प्रस्तुत होता है। दुर्योधन का न झुकने वाला व्यक्तित्व ही इस नाटक मे आकर्षण का कारण है।

युधिष्ठिर—'वेणीसंहार' मे युधिष्ठिर का चरित्र थोड़ी देर के लिये उपस्थित किया गया है। नाटक के अन्तिम अंक में वे रंगमंच पर आते है। वे स्वभाव से न्यायप्रिय एवं सहनशील व्यक्ति हैं। वे क्रोध को यथासंभव शमित करना चाहते है पर अत्याचार के समक्ष झुकना नहीं चाहते और अन्ततः युद्ध के लिए तैयार हो जाते है। प्रथम अंक में कृष्ण द्वारा शान्ति-प्रस्ताव ले जाना युधिष्ठिर की शान्तिप्रियता का द्योतक है, पर कृष्ण के प्रयास के असफल होने पर वे युद्ध की घोषणा कर देते हैं। इनके चरित्र में वीरता के साथ न्यायप्रियता एवं शान्ति उनके व्यक्तित्व का असाधारण गुण है। इनका व्यक्तित्व करुणा तथा भावुकता का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। भीम की मृत्यु का समाचार सुनते ही वे अग्नि में जल जाने को तैयार हो जाते हैं और इस पर शान्त चित्त से विचार नहीं करते। नाटक की सारी कथा के केन्द्र रूप मे इनका चित्रण किया गया है।

श्रीकृष्ण, कर्ण एवं अश्वत्थामा का चरित्र अल्प समय के लिए चित्रित किया गया है। कृष्ण नाटक के अन्त मे दिखाई पडते हैं तथा राजनीति मे सिद्धहस्त पुरुष के रूप मे चित्रित किये गए है। वे सम्पूर्ण नाटक की घटना के सूत्रधार तथा भगवान् भी है।

द्रौपदी—यह वीरपत्नी के रूप में चित्रित की गयी है। इसमें आत्मसम्मान का भाव भरा हुआ है। वीरता के प्रति उसका इस प्रकार आकर्षण है कि उसे युधिष्ठिर की न्यायपरायणता भी दुर्बलता सिद्ध होती है। सच्ची क्षत्राणी के अनुरूप उसका क्रोध दिखाई पड़ता है। सहदेव एवं भीम के रणक्षेत्र में जाते समय उनकी मंगल-कामना करती है,

इसमें इसकी नारीसुलभ कोमलता प्रदर्शित होती है। वह पत्नी के रूप में भीम को अपने शरीर से असावधानी नहीं रखने पर जोर देती है और भीम एवं अर्जुन की मृत्यु का समाचार सुनकर जल मरने को प्रस्तुत हो जाती है। भानुमती आदर्श हिन्दू गृहिणी के रूप मे दिखाई पड़ती है जो सदा अपने पति के मंगल की कामना करती है तथा इसीलिए व्रत करती है। वह एक धर्मभीरु नारी की भाँति दुःस्वप्न पर विश्वास कर, भावी आशंका से पीड़ित होकर, उसके परिहार का उपाय करती है।

रस -- 'वेणीसंहार' वीररसप्रधान नाटक है। इसके प्रथम अंक में ही वीररस की जो अजस्र धारा प्रवाहित होती है वह अप्रतिहत गति से अन्त तक चलती है। बीच-बीच में शृङ्गार, करुण एवं अन्य रसों का भी समावेश किया गया है, किन्तु इनकी प्रधानता नहीं है। वीरो के दर्पपूर्ण वार्त्तालाप एवं कटूक्तियों मे रौद्ररस का भी रूप दिखाई पड़ता है। द्वितीय अंक में दुर्योधन की प्रेमिल-भंगिमाओं में शृङ्गाररस का वर्णन है। वीररस के साथ-ही-साथ इसमें करुण रस की सर्वत्र छाया दिखाई पड़ती है। वृषसेन एवं कर्ण की मृत्यु से दुर्योधन के शोकमग्न होने मे करुण रस की व्यञ्जना हुई है। षष्ठ अंक में चार्वाक द्वारा भीम और अर्जुन की मृत्यु का समाचार पाकर युधिष्ठिर और द्रौपदी के शोकग्रस्त होने में भी करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है। कतिपय विद्वान्, इस नाटक को दुःखान्त मानते हुए, करुण रस का ही प्राधान्य मानते हैं। तृतीय अंक के प्रवेशक में राक्षस और राक्षसी के वार्त्तालाप मे बीभत्सरस दिखाई पड़ता है। सम्पूर्ण नाटक मे वीररस की ही प्रधानता है और अन्य रस उसके सहायक रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। भीम की गर्वोक्ति मे वीररस की व्यंजना हुई है। योगिराज श्रीकृष्ण के दुर्योधन की सभा से असफल लौटने में भीमसेन की उक्ति मे शान्त रस की छटा दिखाई गयी है—

आधारग्रन्थ—१. वेणीसंहार-हिन्दी अनुवाद सहित—चौखम्बा प्रकाशन। २. वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी (अंगरेजी) ए० बी० गजेन्द्रगडकर। ३ ट्रजेडिज इन संस्कृत—प्रोसिडिंगस् ऑफ एट ओरिएन्टल कॉनफेरेन्स—१९३५, पृ० २९९ लेखक श्रीरामचन्द्रराव। ४. संस्कृत-काव्यकार—डॉ० हरिदत्तशास्त्री। ५. संस्कृत नाटककार—कान्तिकिशोर भरतिया। ६ संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद) कीथ। ७. संस्कृत नाटक-समीक्षा—इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'।

वेदांग-ज्योतिष—यह भारतीय ज्योतिषशास्त्र का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। विद्वानो ने भाषा एवं शैली के परीक्षण के आधार पर इसका समय ई० पू० ५०० माना है। इसमे कुल ४४ श्लोक हैं। इसके दो पाठ प्राप्त होते हैं—'ऋग्वेद ज्योतिष' तथा 'यजुर्वेद ज्योतिष' 'ऋग्वेद ज्योतिष' मे ३६ श्लोक हैं और 'यजुर्वेद ज्योतिष' में ४४। दोनो के अधिकांशतः श्लोक मिलने-जुलते हैं पर उनके क्रम में भिन्नता दिखाई पड़ती है। 'वेदांग-ज्योतिष' मे पंचाग बनाने के आरम्भिक नियमो का वर्णन है। इसमें महीनो का क्रम चन्द्रमा के अनुसार है और एक मास को तीस भागों मे विभक्त कर प्रत्येक भाग को तिथि कहा गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता पर ग्रन्थ के अनुसार किसी लगध नामक विद्वान् से ज्ञान प्राप्त करके ही इसके लेखक ने इसकी

रचना की थी। इसमें वर्णित विषयों की सूची प्रारम्भ में दी गयी है। पञ्चसंवत्सरम-ययुगाध्यक्षं प्रजापतिम्। दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ॥ ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये ॥ श्लोक १, २ ॥

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री। २. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद।

वीरभद्रसेन चम्पू—इसके रचयिता पद्मनाभ मिश्र हैं। इनके पिता का नाम बलभद्र मिश्र था। इन्होंने काव्य के अतिरिक्त दर्शन-ग्रन्थों की भी रचना की है। इनके सभी ग्रन्थों की संख्या ग्यारह है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—वीरभद्रदेवचम्पू (रचना काल १५७७ ई०) तथा जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' की शरदागम टीका। अपने चम्पू-काव्य के निर्माण-काल कवि ने स्वयं दिया है—युगरामतुंशशांके वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे। श्रीवीरभद्रचम्पूः पूर्णाभूच्छ्रेयसे विदुषाम् ॥ ७।७ यह ग्रन्थ सात उच्छ्वासों में विभक्त है जिसे कवि ने महाराज रीवा नरेश रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्रदेव के आग्रह पर लिखा था। वीरभद्र स्वयं भी कवि थे और इन्होंने १५७७ ई० में 'कन्दर्पचूडामणि' नामक काव्य की रचना की थी। कवि ने इस चम्पू में वीरभद्रदेव का चरित वर्णित किया है और कथा के क्रम में मन्दोदरी एवं विभीषण का भी प्रसंग उपस्थित कर दिया है। कवि ने रीवानरेश की तत्कालीन समृद्धि का अत्यन्त ही सुन्दर वर्णन किया है। इस चम्पू का प्रकाशन प्राच्यवाणी मन्दिर ३ फेडरेशन स्ट्रीट कलकत्ता ९, से हो चुका है। इसके गद्य एवं पद्य दोनों ही ललित हैं। सहजधवलमच्छं भाल्बालेन्दुयोगादपि च विमलकान्ति स्वर्धुनीवारिपूरैः। निजवपुरमृताभं निर्जितं यस्य कीर्त्या धवलयति नितान्तं भस्मना भूतनाथः ॥ १।११

आधारग्रन्थ—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

वेतालपञ्चविंशति—इसमें संस्कृत की २५ रोचक कथाओं का संग्रह है। इसकी रचना शिवदास नामक व्यक्ति ने की थी। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान हर्टेल के अनुसार इसकी रचना १४८७ ई० के पूर्व हुई थी। इसका प्राचीनतम हस्तलेख इसी समय का प्राप्त होता है। जर्मन विद्वान् हाइनरिश ऊले ने १८८४ ई० में लाइपजिग से इसका प्रकाशन कराया था। इसमें गद्य की प्रधानता है और बीच-बीच में श्लोक भी दिये गए हैं। डॉ० कीथ के अनुसार शिवदास कृत संस्करण १२ वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं है। इसका द्वितीय संस्करण जम्भलदत्त कृत है तथा इसमें पद्यात्मक नीतिवचनों का अभाव है। शिवदास के संस्करण में क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामञ्जरी' के भी पद्य प्राप्त होते हैं। [हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित, अनुवादक पं० दामोदर झा]

वेद का समय-निरूपण—वेद की रचनातिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद पाया जाता है। वेदों के निर्माण-काल के सम्बन्ध में अद्यावधि जितने अनुसंधान हुए हैं उनमें किसी प्रकार की निश्चितता नहीं है। भारतीय विश्वास के अनुसार वेद अनादि और अपौरुषेय हैं, अतः उन्हें समय की परिधि में आबद्ध नहीं किया जा सकता। कुछ आधुनिक दृष्टिवाले विद्वानों ने भी वेदों का काल अत्यन्त

प्राचीन या पचासो हजार वर्ष पूर्व निश्चित कर प्रकारान्तर से इस विचार का पोषण किया है। ठीक इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि वैज्ञानिक ढंग से इस प्रश्न के समाधान की ओर रही है। वे वेदों को ऋषियों की रचना मानकर उन्हें पौरुषेय स्वीकार करते हैं। वेदों को मनुष्य की कृति मान कर उन्होंने जो उनकी निश्चित सीमा निर्धारित की है उसे भी अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता, पर उनकी शोधात्मक पद्धति एवं निष्कर्ष सर्वथा निर्मूल एवं उपेक्षणीय भी नहीं है। विन्टरनित्स का कहना है कि "किन्तु वेद भारतीय वाङ्मय की प्राचीनतम कृति है, इण्डो-आर्यन सभ्यता का मूल आधार एवं स्रोत है, सो, प्रस्तुत प्रश्न का किंचित् समाधान ऐतिहासिकों, पुरातत्त्वविदों, अपि च भाषाविदों के लिए भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। और सचमुच, यदि इण्डो-आर्यन तथा इण्डो-यूरोपियन संस्कृतियों के ऐतिहासिक युगों का कुछ निश्चित क्रम बिठाया जा सकता है, तो वह भी भारतवर्ष में निष्पन्न आर्य-संस्कृति के प्राचीनतम अवशेषों के विभिन्न कालों को यथाक्रम स्थिर करके ही (सिद्ध किया जा सकता है); अन्यथा नहीं।' प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड १ पृ० २२४।

मैक्समूलर का विचार— पाश्चात्य विद्वानों में सर्वप्रथम मैक्समूलर ने इस प्रश्न की छानबीन में जीवन पर्यन्त शोध-कार्य किया। उन्होंने १८५९ ई० में अपने ग्रन्थ 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' मे सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण-काल खोजने का प्रयत्न किया और निर्णय दिया कि उसकी रचना विक्रमपूर्व १२०० वर्ष हुई थी। उन्होने अपने निर्णय का 'केन्द्रीय तिथि-बिन्दु' बौद्धधर्म के उदय को मान कर बताया कि उस समय तक सभी वैदिक साहित्य (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं कल्पादि) का निर्माण हो चुका था, क्योंकि ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों में वर्णित यज्ञानुष्ठान का ही बुद्धदेव द्वारा घोर विरोध किया गया था। उन्होंने समस्त वैदिक युग को चार भागों मे विभाजित किया—छन्दकाल, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल एवं सूत्रकाल तथा प्रत्येक युग के लिए दो-दो सौ वर्षों का समय निश्चित करते हुए सूत्रकाल को ६०० वर्ष पूर्व, ब्राह्मणकाल को ६०० से ८०० ई० पू० और मन्त्रयुग को १००० वि० पू० माना। उनके अनुसार १२०० वि० पू० से १००० तक वैदिक संहिताओं का रचना-काल है। मैक्समूलर की इस धारणा को पाश्चात्य विद्वानो ने मान्यसिद्धान्त के रूप मे ग्रहण किया। तीस वर्ष बाद मैक्समूलर ने 'भौतिकधर्म' शीर्षक जिफोर्ड भाषणमाला में बताया कि संसार की कोई भी ऐसी शक्ति नही है जो यह निश्चित कर दे कि वेदों की रचना १००० या १५०० या २००० या ३००० वर्ष ई० पू० हुई थी। उनका कहना है कि १००० ई० पू० तक वेद बन चुके थे; १५०० या २००० या ३००० ई० पू० तक प्रथम वैदिक कविता सुनी गई, इसे जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं।" मैक्समूलर का काल-निर्णय काल्पनिक आधारों पर प्रतिष्ठित है। तथा किसी भाषा या साहित्य के विकास के लिए दो सौ वर्षों की सीमा भी पर्याप्त अनुचित है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी मैक्समूलर के इस विचार की आलोचना की है। ह्विटनी ने उनकी इस अन्ध-परम्परा की स्पष्ट शब्दों में निन्दा की थी तथा वेबर ने १५००

या २००० वर्ष पूर्व वैदिक वाङ्मय को पहुँचाने का प्रयास किया। उसी समय याकोबी ने ज्योतिषविज्ञान की गणना के आधार पर वेदों का समय चार सहस्र वर्ष पूर्व निश्चित किया। भारतीय विद्वान् लोकमान्य तिलक ने भी ज्योतिषविज्ञान का आधार ग्रहण करते हुए वेद का रचना काल ६००० वि० पू० से २५०० वि० पू० तक निश्चित किया। तिलक के पूर्व प्रसिद्ध महाराष्ट्री विद्वान् शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय ज्योतिः शास्त्र' (पूना १८९६ ई०) में ज्योतिष-गणना के आधार पर ऋग्वेद का काल ३५०० वर्ष वि० पू० निर्धारित किया है।

उन्होंने 'शतपथब्राह्मण' में नक्षत्र–निर्देशक वर्णन प्राप्त कर उसके रचना-काल पर विचार किया है। जर्मन विद्वान् याकोबी ने कल्पसूत्र के विवाह-प्रकरण मे वर-वधू को ध्रुव दिखाने के वर्णन 'ध्रुवइव स्थिराभव' का काल २७०० ई० पू० का माना है। ऋग्वेद के विवाहमन्त्रों मे ध्रुव दिखाने की प्रथा का उल्लेख नहीं है। इसके आधार पर याकोबी ने ऋग्वेद का काल ४००० ई० पू० निश्चित किया। याकोबी के इस मत का पाश्चात्य विद्वानो द्वारा पूर्ण विरोध हुआ। लोकमान्यतिलक ने 'ओरायन' नामक ग्रन्थ में वेदों के कालनिर्णय पर विचार करते हुए ज्योतिर्विज्ञान का ही सहारा लिया है। उन्होंने नक्षत्र-गति के आधार पर ब्राह्मणों का रचना-काल २५०० वि० पू० निर्धारित किया। तिलक जी ने बताया कि जिस समय कृत्तिका नक्षत्र की सभी नक्षत्रों मे प्रमुखता थी तथा उसके आधार पर अन्य नक्षत्रो की स्थिति का पता चलता था, वह समय आज से ४५०० वर्ष पूर्व था। उन्होंने मन्त्र संहिताओं का निर्माण-काल मृगशिरा नक्षत्र के आधार पर निश्चित किया। उनके अनुसार मृग-शिरा नक्षत्र के द्वारा ही ऋग्वेद में मन्त्र संहिताओं के युग मे वसन्त-सम्पात् के होने का निर्देश प्राप्त होता है। खगोलविद्या के अनुसार मृगशिरा की यह स्थिति आज से ६५०० वर्ष पूर्व निश्चित होती है। यदि मन्त्र-संहिता के निर्माण से २००० वर्ष पूर्व वेदमन्त्रो की रचना की अवधि स्वीकार कर ली जाय तो वेद का समय वि० पू० ६५०० वर्ष होगा। उन्होंने वैदिक काल को चार युगों मे विभाजित किया है। १—अदितिकाल (६०००–४००० वि० पू०), २—मृगशिराकाल (४०००–२५०० वि० पू०), ३—कृत्तिकाकाल (२५००–१४०० वि० पू०) ४—अन्तिमकाल (१४००–५०० वि० पू०)।

शिलालेख का विवरण—१९०७ ई० में डाक्टर हुगो विनकलर को एशियामाइनर (टर्की) के 'बोघाज-कोइ' नामक स्थान में 'हित्तित्ति' एवं 'मितानि' जाति के दो राजाओ के बीच कभी हुए युद्ध के निवारणार्थ सन्धि का उल्लेख था। इस सन्धि की साक्षी के रूप मे दोनों जातियों के देवताओं की प्रार्थना की गयी है। देवों की सूची में हित्तित्ति जाति के देवो के अतिरिक्त मितानि जाति के देवताओं में वरुण, इन्द्र नासत्यौ (अश्विनू) के नाम दिये गए हैं। ये लेख १४०० ई० पू० के हैं। इसके द्वारा यूरोपीय विद्वानों ने मितानि जाति को भारतीय आर्यों की एक शाखा मान कर दोनों का सम्बन्ध स्थापित किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि १४०० ई० पू० भारतवर्ष में

वैदिक देवताओं की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इसके आधार पर वेद का रचना-काल २००० से २५०० ई० पू० तक माना जा सकता है।

डॉ० अविनाशचन्द्र दास ने 'ऋग्वेदिक इण्डिया' नामक ग्रन्थ में भौगोलिक तथा भूगर्भ-सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर इसकी रचना एवं वैदिक सभ्यता को ईसा से २५ हजार वर्ष पूर्व सिद्ध किया है, जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने वैज्ञानिक न मानकर भावुक ऋषियों की कल्पना कहा है। पण्डित दीनानाथ शास्त्री चुटेल ने अपने 'वेदकाल-निर्णय' नामक ग्रन्थ मे ज्योतिषशास्त्र के आधार पर वेदों का समय आज से तीन लाख वर्ष पूर्व सिद्ध करने का प्रयास किया है। डॉ० विन्टरनित्स ने वैदिक काल-गणना के विवेचन का सारांश प्रस्तुत करते हुए जो अपना निर्णय दिया है, वह इस प्रकार है—

१—नक्षत्र-विज्ञान के आधार पर वैदिक-काल निर्णय कुछ निश्चित नहीं हो पाता, क्योंकि ऐसे प्रकरणो की व्याख्या के सम्बन्ध मे ही अभी तक पर्याप्त मतभेद है। सो—वैज्ञानिक दृष्टि से ये तिथियां कितनी ही सही हो, काल-निर्धारण के लिए उनका मूल्य तब तक कुछ भी नहीं—जब तक कि उक्त प्रकरणो के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हो जाते। २—क्यूनिफार्म अभिलेखों मे अथवा बोगाजकोइ के सिक्कों में आये ऐतिहासिक तथ्य अपने आप में इतने अनिश्चित हैं, और वैदिक प्राचीनता का इण्डो-यूरोपियन युग के साथ परस्पर-सम्बन्ध भी एक ऐसी अस्थिर-सी युक्ति है—कि जिसके आधार पर विद्वान् अद्यावधि नितान्त विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते रहे हैं। हाँ, एशिया-माइनर तथा पश्चिमी एशिया के साथ भारतीयों के सम्बन्ध की युक्ति, अलबत्ता, वैदिक युग को दूसरी सहस्राब्दी ईसवी पूर्व से बहुत इधर नहीं ला सकती। ३—वेद और अवेस्ता में, वैदिक और लौकिक मे (भाषागत) परस्पर सादृश्य–विभेद की युक्ति भी हमे किन्ही निश्चित तथ्यो पर पहुँचाती प्रतीत नहीं होती। ४—अलबत्ता, भाषा की यही युक्ति हमे सचेत अवश्य कर देती है कि—व्यर्थ ही हम भूगर्भविद्या अथवा हिरण्यगर्भविद्या के झांसे मे आकर वेदों को कही बीस चालीस हजार साल ईसवी पूर्व तक ले जाने न लग जायें। ५—और अन्त मे, जब सभी युक्तियाँ-सभी साक्षियाँ—व्यर्थ सिद्ध हो जाती हैं, तब वेद की तिथि के सम्बन्ध में एक ही प्रमाण बच रहता है—और वह (प्रमाण) है : भारतीय वाङ्मय की ऐतिहासिक परम्परा का स्वतोऽभ्युदय। भारत के ऐतिहासिक पुराणपुरुष पार्श्व, महावीर, बुद्ध—सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय की सत्ता को अपने से पूर्व 'विनिश्चित' स्वीकार करते हैं, अर्थात् वैदिक वाङ्मय के किसी भी अंग को हम ५०० ई० के पू० से इधर (किसी भी हालत में) नहीं ला सकते; और सुविधा के लिए यदि १२०० या १५०० ई० पू० को हम वैदिक वाङ्मय का आरम्भ–बिन्दु मान ले, तो शेष साहित्य की विपुलता को हम ७०० वर्षों की छोटी-सी अवधि में फलता-फूलता नहीं देख सकते। सो, इस महान् साहित्यिक युग का श्रीगणेश २५००।२००० ई० पू० मे हुआ और अन्त ७५०।५०० ई० पू० मे—ऐसा मानने से हम दोनों प्रकार की अतियो से भी बच जाते हैं : इससे न तो वेद इतने प्राचीन हो जाते हैं कि उनमें पौरुषेयता का अंश निपट दुर्लभ हो जाय और न इतने

अर्वाचीन ही कि उनकी साहित्यिक संगति निपट आधुनिक प्रतीत होने लगे—अवैदिक ही प्रतीत होने लगे। प्राचीन भारतीय साहित्य–भाग १, खण्ड १ पृ० २१६–१७।

ऋग्वेद के काल-निर्णय के सम्बन्ध में ये ही प्रधान विचार हैं। इन खोजों के आधार पर पाश्चात्य विद्वान् भी इसे अब उतना अर्वाचीन सिद्ध नहीं करते और उनके विचार से भी वेदों का निर्माणकाल ईसा से २५०० वर्ष पूर्व निश्चित होता है। कतिपय भारतीय विद्वानों ने इधर कई दृष्टियों से वेद की रचना-तिथि पर विचार किया है, किन्तु उनके मत को पूर्ण मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी।

१. प्रो० लाट्टसिंह गौतम—४० लाख बीस हजार वर्ष पूर्व (आज से) २. श्री अमलनेकर—ई० पू० ४५०० वर्ष। ३. श्रीरघुनन्दन शर्मा—८८००० वर्ष ई० पू०। ४. पावगी—८००० वर्ष पूर्व (आज से) ५. वैद्य—३१०० वर्ष ई० पू०। ६. पाण्डुरङ्ग भण्डारकर—३००० ई० पू०। ७. जयचन्द्रविद्यालंर—३००० ई० पू०।

ग्रन्थ-सूची (जिनमें वैदिक काल-निर्णय पर विचार किया गया है) १. वेबर—हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर। २. ह्निटनी—ओरियन्टल एण्ड लिंग्विस्टिक स्टडिज, फर्स्ट सीरीज। ३. श्रेडर—इण्डियन लिटरेचर एण्ड कल्चर। ४. लुडविग—उबेर डे इरवाहृनंग सोन्नेन फिन्टटरनिस्सेन इन ऋग्वेद (जर्मन)। ५. मैक्समूलर—हिस्ट्री ऑफ एन्सियन्ट संस्कृत लिटरेचर। ६. अविनाशचन्द्र दास—ऋग्वेदिक इण्डिया। ७. वैद्य—हिस्ट्री ऑफ वैदिक लिटरेचर भाग १। ८. लुई रैनो—ऋग्वेदिक इण्डिया। ९. भारतीय विद्याभवन माला—सं. श्री के० एम० मुन्शी—वेदिक एज। १०. लोकमान्य तिलक—ओरायन। ११. विन्टरनित्स—प्राचीन भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड १ (हिन्दी अनुवाद)। १२. शंकर बालकृष्ण दीक्षित—भारतीय ज्योतिष (हिन्दी अनुवाद)। १३. पं० बलदेव उपाध्याय—वैदिक साहित्य और संस्कृति। १४ पं० भगवद्दत्त—वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १। १५. डॉ० राधाकृष्णन्—भारतीय दर्शन भाग १ (हिन्दी अनुवाद)। १६. पं० रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिक साहित्य। १७. श्रीअरविन्द—वेद रहस्य (हिन्दी अनुवाद)। १८. पं० रघुनन्दन शर्मा—वैदिक सम्पत्ति।

वेद के भाष्यकार—प्रत्येक वेद के अनेक भाष्यकर्त्ता हुए हैं। उनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। १. स्कन्दस्वामी—इन्होंने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा है। इनका काल सं० ६८२ (६२५ ई०) है। इन्होंने निरुक्त पर भी टीका लिखी थी। इनका ऋग्भाष्य अत्यन्त विस्तृत है जिसमें प्रत्येक सूक्त के देवता एवं ऋषि का भी उल्लेख है तथा अपने कथन की पुष्टि के लिए अनुक्रमणी ग्रन्थों, निघण्टु तथा निरुक्त आदि के उद्धरण दिए गए हैं। इसमें व्याकरण-सम्बन्धी तथ्यों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। यह भाष्य केवल चौथे अष्टक तक ही प्राप्त होता है। इसका प्रकाशन अनन्तशयन ग्रन्थावली से हो चुका है। २. नारायण—वेंकट माधव के ऋग्वेद भाष्य के एक श्लोक से पता चलता है कि स्कन्द स्वामी, नारायण एवं उद्गीथ ने क्रमशः सम्मिलित रूप से एक ही ऋग्भाष्य लिखा है। इनका आनुमानिक संवत् ७ वीं शताब्दी है। स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्। चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थ-

गोचरम् ॥ ३. उद्गीथ—इनका उल्लेख सायण एवं आत्मानन्द ने अपने भाष्यों में किया है। ४ माधवभट्ट—ऋग्वेद के माधव नामक चार भाष्यकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमे एक का सम्बन्ध सामवेद से तथा शेष का सम्बन्ध ऋग्वेद से है। एक माधव तो सायणाचार्य ही हैं। दूसरे माधव हैं वेंकटमाधव। एक अन्य माधव की प्रथम अष्टक की टीका प्रकाशित हुई है (मद्रास से)। यह टीका अल्पाक्षर है किन्तु मन्त्रों के अर्थ-ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ५. वेंकटमाधव—इन्होंने सम्पूर्ण ऋक् संहिता पर भाष्य लिखा है। भाष्य के अन्तिम अध्याय मे इन्होंने जो अपना परिचय दिया है उसके अनुसार इनके पितामह का नाम वेंकटमाधव पिता का नाम वेंकटाचार्य, मातामह का नाम भवगोल एवं माता का नाम सुन्दरी था। इनके दो पुत्र थे वेंकट एवं गोविन्द। ये चोलदेश (आन्ध्रप्रान्त) के निवासी थे। ये सायण के पूर्ववर्त्ती थे। सायण ने ऋ० १०।८६।१ के भाष्य मे माधवभट्ट का मत दिया है। निघण्टु के भाष्यकार देवराज यज्वा ने अपने भाष्य के उपोद्घात में वेंकटाचार्यतनय माधव का उल्लेख किया है—श्रीवेंकटाचार्यतनयस्य माधवस्य भाष्यकृतो नामानुक्रमण्याः पर्यालोचनात् क्रियते। इससे ये देवराज यज्वा (सं० १३७०) के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। इनका समय १२०० विक्रम से पूर्व निश्चित होता है। इनका भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त है जिसमें केवल मन्त्रो के पदो की ही व्याख्या है—'वर्जयन् शब्दविस्तारं शब्दैः कतिपयैरिति'। इसका प्रकाशन डॉ० लक्ष्मणस्वरूप के संपादन मे मोतीलाल बनारसीदास से हो चुका है। ६ धानुष्कयज्वा—इनका समय १३०० वि० सं० से पहले का है। इन्होंने तीनो वेदो पर भाष्य लिखा है। इनका उल्लेख वेदाचार्य की सुदर्शन 'मीमांसा' में है। ७. आनन्दतीर्थ—ये प्रसिद्ध द्वैतवादी आचार्य मध्व हैं। इन्होंने ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रो की व्याख्या की है जिनमे ४० सूक्त हैं तथा यह भाष्य पद्यात्मक है। ८ आत्मानन्द—इन्होने ऋग्वेद के अन्तर्गत 'अस्य-वामीय' सूक्त पर भाष्य लिखा है। इसमे स्कन्द भास्कर आदि का नामोल्लेख है पर सायण का नहीं। ये सायण के पूर्ववर्ती ज्ञात होते हैं। इन्होने स्वयं अपने भाष्य को अध्यात्मपरक कहा है—अधियज्ञविषयं स्कन्दादिभाष्यम्, निरुक्तमधिदैवतविषयम्; इदन्तु भाष्यमध्यात्मविषयमिति। न च भिन्नविषयाणां विरोधः। अस्य भाष्यस्य मूलं विष्णुधर्मोत्तरम्। ९. सायण—इनके परिचय के लिए दे० सायण।

सामभाष्य—१. माधव—ये साम-संहिता के प्रथम भाष्यकार हैं। इन्होंने 'विवरण' नामक भाष्य लिखा है। इनका भाष्य अभी तक अप्रकाशित है। इनका समय विक्रम की सातवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख महाकवि बाणभट्ट ने किया है। 'रजोजुषे जन्मनि सत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे। अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः। २. भरतस्वामी—भरतस्वामीकृत भाष्य अभी तक प्रकाशित नही हो सका है। इन्होंने अपना परिचय दिया है उससे पता चलता है कि इनके पिता का नाम नारायण एवं माता का नाम यज्ञदा था। इत्थं श्रीभरतस्वामी काश्यपो यज्ञदासुतः। नारायणार्यतनयो व्याख्यत् साम्नामृचोऽखिलाः॥ ये दक्षिण

भारत के निवासी थे तथा इनका रचनाकाल संभवतः १३४५ वि० सं० के लगभग है। इन्होंने साम ब्राह्मणों पर भी भाष्य की रचना की है। ३. गुणविष्णु—इन्होंने 'साममन्त्रव्याख्यान' नामक सामवेद का भाष्य लिखा है जिसकी प्रसिद्धि मिथिला और बंगाल में है। इनका 'छान्दोग्य मन्त्रभाष्य' संस्कृत-परिषद् कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। यह भाष्य सामवेद की कौथुम शाखा पर है। इनका समय १२ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग या १३ वीं शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है।

शुक्लयजुर्वेदभाष्य—१. ऊवट—इन्होंने राजा भोज के शासनकाल में अपना भाष्य लिखा था। ये आनन्दपुर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम वज्रट था। इनका रचना काल ११ वीं शताब्दी का मध्य है। इन्होंने भाष्य के अन्त में अपना परिचय दिया है—

आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना। ऊवटेन कृतं भाष्यं पदवाक्यैः सुनिश्चितैः॥
ऋष्यादींश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामूवटो वसन्। मन्त्राणां कृतवान् भाष्यं महीं भोजे प्रशासति॥

इनके अन्य ग्रन्थ हैं—ऋक्प्रातिशाख्य की टीका, यजुःप्रातिशाख्य की टीका, ऋक्-सर्वानुक्रमणी पर भाष्य, ईशावास्य उपनिषद् पर भाष्य। सभी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। २. महीधर—इन्होंने 'वेददीप' नामक भाष्य की रचना की है। ये काशी निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका समय वि० सं० १६४५ है। इनके भाष्य पर उवट-भाष्य की छाया है।

काण्वसंहिता भाष्य—अनन्ताचार्य एवं आनन्दबोध प्रभृति विद्वानों ने शुक्लयजुर्वेद की काण्व संहिता पर भाष्य लिखा है। ये सायण के परवर्त्ती थे। सायण के पूर्ववर्त्ती भाष्यकार हलायुध हैं जिनके भाष्य का नाम 'ब्राह्मण' सर्वस्व है। ये बंगाल के अन्तिम हिन्दू नरेश लक्ष्मणसेन के धर्माधिकारी थे। इनका समय वि० सं० १२२७–१२५७ है। अनन्ताचार्य माध्ववैष्णव विद्वान् थे। इनका समय १६ वीं शताब्दी है। इन्होंने काण्वसंहिता के उत्तरार्ध पर अपना भाष्य लिखा है। ये काशी निवासी थे।

आनन्दबोध भट्टाचार्य—इस भाष्य का प्रकाशन वाराणसेय विश्वविद्यालय की सारस्वती सुषमा नामक पत्रिका में सं० २००९–२०११ तक प्रकाशित हुआ है। अभी तक ३१–४० तक का ही अंश प्रकाशित हुआ है किन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध है। पाश्चात्य विद्वानों के कार्य—१८०५ ई० में सर्वप्रथम कोलब्रूक ने 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक पत्रिका में वेदविषयक एक विशद विवेचनात्मक निबन्ध लिखा जिसमें वैदिक साहित्य का विवरण एवं महत्व प्रतिपादित किया गया है। १८४६ ई० में रुडाल्फ राथ नामक जर्मन विद्वान ने 'वैदिक साहित्य और इतिहास' नामक छोटी पुस्तक लिखी। इन्होंने 'संस्कृत-जर्मन महाकोश' की भी रचना की है जिसमें प्रत्येक शब्द का ऐतिहासिक क्रम से विकास एवं अर्थ दिया गया है। पाश्चात्य विद्वानों का वेदविषयक अध्ययन तीन धाराओं में विभाजित है—वैदिक ग्रन्थों का वैज्ञानिक एवं शुद्ध संस्करण, वैदिक ग्रन्थों का अनुवाद एवं वेदविषयक अनुशीलनात्मक ग्रन्थ।

ग्रन्थों के वैज्ञानिक संस्करण—सर्वप्रथम मैक्समूलर ने (जर्मन विद्वान्) सायण

भाष्य के साथ ऋग्वेद का वैज्ञानिक संस्करण प्रकाशित किया। वैज्ञानिक सम्पादन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसका समय १८४९-१८७५ ई० का मध्य है। इसकी लम्बी भूमिका अत्यन्त उपादेय है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में तीन सहस्र पृष्ठ हैं। इनके वेदविषयक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—प्राचीन संस्कृत साहित्य (हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट संस्कृत लिटरेचर) वाट इंडिया कैन टीच अस आदि। वेबर (जर्मन विद्वान्) ने यजुर्वेद संहिता और तैत्तिरीय संहिता का संपादन किया तथा 'इन्दिशे स्तुदियन' नामक शोध पत्रिका का जर्मन में प्रकाशन कर वैदिक शोधकार्य को गति दी। आउफ्रेक्ट नामक विद्वान् ने रोमन लिपि में (१८६२-६३ ई०) ऋग्वेद का संस्करण सम्पादित किया। जर्मन विद्वान श्रोदर ने मैत्रायणी संहिता का एक वैज्ञानिक संस्करण प्रकाशित किया है तथा काठक संहिता का संस्करण १९००-११ मे। स्टेवेन्सन ने राणायनी शाखा की सामसंहिता को आंग्ल अनुवाद के साथ १८४२ ई० में प्रकाशित किया है। रॉथ और ह्वीटनी का अथर्ववेद का संयुक्त संस्करण १८५६ ई० मे प्रकाशित हुआ है। प्रो० ब्लूमफील्ड तथा गार्बे ने अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा का एक जीर्ण प्रति के आधार पर संपादन कर प्रकाशन कराया है।

वेद परिचय—वेद विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ तथा भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय धर्म, साहित्य, सभ्यता, दर्शन सबों की आधारशिला वेदों के राजप्रासाद पर अधिष्ठित है। 'वेद' शब्द का व्याकरणलब्ध अर्थ है 'ज्ञान', क्योंकि यह शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से निष्पन्न है। यहाँ ज्ञानार्थ प्रतिपादक वेद शब्द ईश्वरीय ज्ञान का द्योतक है। हिन्दूधर्म के अनुसार वेद तपःपूत महर्षियों के द्वारा दृष्ट ज्ञान हैं। वैदिक ज्ञान को ऋषियो ने मन्त्र द्वारा अभिव्यक्त किया है। ऋषियो को मन्त्रद्रष्टा कहा गया है, क्योंकि भारतीय परम्परा के अनुसार वेद किसी व्यक्तिविशेष की रचना न होकर अपौरुषेय कृति है। महर्षियों ने ज्ञान और तपस्या की चरम सीमा पर पहुँच कर प्रातिभज्ञान के द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया है, वही आध्यात्मिक ज्ञानराशि वेद है। विभिन्न स्मृतियो एवं पुराणो में भी वेद की प्रशंसा हुई है। मनु के अनुसार वेद पितृगण, देवता तथा मनुष्यों का सनातन तथा निरन्तर विद्यमान रहनेवाला चक्षु है। सायण के अनुसार प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान कराने में वेद की वेदता है—प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥ वेदके महत्त्व को ही ध्यान मे रखते हुए मनु ने वेदनिन्दकों को नास्तिक की संज्ञा दी है—नास्तिको वेदनिन्दकः। ब्राह्मणों ने भी वेदाध्ययन का महत्त्व बतलाया है। वेदो के स्वाध्याय पर जोर देते हुए 'शतपथ ब्राह्मण' का कहना है कि धन एवं पृथ्वी का दान करने से मनुष्य जिस लोक को प्राप्त करता है, तीनों वेदों के अध्ययन से उससे भी अधिक अक्षय लोक को प्राप्त करने का श्रेय उसे मिलता है। [शतपथ ब्राह्मण ११।५।६१]

आपस्तम्ब की 'यज्ञपरिभाषा' में (३१) वेद का प्रयोग मन्त्र और ब्राह्मण के लिए हुआ है—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदा नामधेयम्। जिसका मनन किया जाय उसे मन्त्र कहते हैं। इनके द्वारा यज्ञानुष्ठान एवं देवता की स्तुति का विधान होता है—मननात् मन्त्राः।

'ब्राह्मण' शब्द ग्रन्थविशेष का द्योतक है, 'ब्रह्मन्' के कई अर्थ होते हैं उनमे एक अर्थ यज्ञ भी है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ उन्हें कहते है, जिसमें यज्ञ की विविध क्रियाओं का वर्णन हो। ब्राह्मण के तीन विभाग किये गए हैं—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। स्वरूप-भेद से वेद के तीन प्रकार होते है—ऋक्, यजुः तथा साम। जिसमें अर्थवशात् पादव्यवस्था हो उसे ऋक् या ऋचा कहते है—तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था—जैमिनीसूत्र २।१।३५ इन ऋचाओ पर गाये जाने वाले गायन को गीतिरूप होने से साम कहा जाता है—गीतिषु सामाख्या—जैमिनीसूत्र २।१।३६। ऋचाओं और सामों से अतिरिक्त मन्त्रो को यजुष् कहा जाता है—शेषे यजुःशब्दः, जेमिनिसूत्र २।१।३७। इस प्रकार तीन तरह के मन्त्रो के होने से वेदत्रयी कहे जाते है। संहिता की दृष्टि से वेदों के चार विभाग किये गए है और मन्त्रो के समूह को 'संहिता' कहते हैं। यज्ञानुष्ठान को ध्यान मे रखकर विभिन्न ऋत्विजो के उपयोगार्थ मन्त्र संहिताओं के संकलन किये गए हैं। इस प्रकार का संकलन वेदव्यास द्वारा किया गया है जिनकी संख्या (मन्त्र संहिताओ की) चार है—ऋक्संहिता, सामसंहिता, यजुष्संहिता और अथर्वसंहिता। यज्ञ मे चार प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है और उन्हीं के आधार पर चारो संहिताओं का उपयोग किया जाता है। चार ऋत्विज है—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। होता नामक ऋत्विज होत्रकर्म का सम्पादन करता है। अर्थात् यज्ञानुष्ठान के समय वह 'ऋग्वेद' का पाठ करते हुए यज्ञानुरूप देवताओ का आह्वान करता है। होता का अर्थ है 'पुकारनेवाला'। यह देवताओ को मन्त्रो के द्वारा पुकार कर यज्ञ में आसीन कराता है। उद्गाता का अर्थ है 'गानेवाला'। यह औदगात्र कर्म का सम्पादक होता है। इसका सम्बन्ध 'सामवेद' से होता है और यह यज्ञीय देवताओ की स्तुति करता हुआ सामगान करता है। ये सामगान स्तोत्र के नाम से अभिहित होते हैं। उद्गाता के ही कार्य की सिद्धि के लिए 'सामवेद' के मन्त्रो का संकलन किया गया है। अध्वर्यु का काम यज्ञकार्यो का नियमपूर्वक सम्पादन ,करना है। इसका सम्बन्ध 'यजुर्वेद' से है। यह यज्ञकर्मों का सम्पादक प्रधान ऋत्विज हुआ करता है और 'यजुर्वेद' के मन्त्रो का उच्चारण कर अपना कार्य सम्पादित करता है, बह्मा का उत्तरदायित्व सर्वाधिक है। यह यज्ञ का सर्वोच्च अधिकारी होता है तथा इसकी ही देखरेख में यज्ञ का सारा काम सम्पन्न होता है। यज्ञ की बाहरी विघ्नो से रक्षा, स्वरो की अशुद्धियों का मार्जन तथा यज्ञीय अनुष्ठान मे उत्पन्न होने वाले दोषो का दूरीकरण आदि इसके प्रधान कार्य है। यह यज्ञ का अध्यक्ष होकर उसके सम्पूर्ण अनुष्ठान का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। इसका अपना कोई निजी वेद नही होता। इसे समस्त वेदों का ज्ञाता माना जाता था, पर कालान्तर में इसका प्रधान वेद अथर्ववेद माना जाने लगा। इन्ही चारो ऋत्विजो को दृष्टि में रखते हुए चार वेदो के रूप में मन्त्रो का संकलन किया गया है, जिसका संकेत 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र मे है—ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु‚ ब्रह्मा त्वो वदन्ति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥ १०।७१।११

वेदो के रूप में भारतवर्ष की अखण्ड साहित्यिक परम्परा ६ सहस्र वर्षों से सतत

प्रवहमान है। वैदिकयुगीन ऋषियों ने प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपने हृदय की भावधारा की जो तीव्र अभिव्यक्ति की है वह वैदिक साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रकृति के कोमल एवं रौद्र रूपों को देखते हुए उन पर दिव्यत्व का आरोप किया और अपने योग-क्षेम की कामना कर उनकी कृपा की याचना की। तद्युगीन आर्यों के जीवन में प्राकृतिक शक्तियाँ नित्य योग देती थीं। वरुण, सविता, उषा, अग्नि, इन्द्र आदि के प्रति उनके भावोद्गारो में उत्कृष्ट कोटि का काव्यतत्त्व विद्यमान है जिनमे रस, अलंकार छन्द-विधान एवं संगीततत्त्व की अपूर्व छटा दिखाई पड़ती है। चिरकुमारी उषा के अधखुले लावण्य को देखकर उनके हृदय में जो भावाभिव्यक्ति हुई है उसमें भावना और कल्पना का सघन तथा संश्लिष्ट आवेग प्रस्फुटित हुआ है। क्रमशः वैदिक काव्य मे चिन्तन तत्त्व का प्रवेश होता गया और 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के द्वारा वैदिक ऋषियो ने अपनी रहस्यमयी वृत्ति की अभिव्यक्ति की। वैदिकसूक्तों मे, नाना प्रकार के देवताओ का यज्ञ में आवाहन करने के लिए नाना प्रकार के छन्दों का विधान किया गया है। इन सूक्तों में भावों का वैविध्य तथा काव्यकला का भव्य एवं रुचिकर रूप अभिव्यक्त हुआ है। उषा-सम्बन्धी मन्त्रों में सौन्दर्यभावना का आधिक्य है, तो इन्द्र-विषयक मन्त्रों मे तेजस्विता का भाव स्पन्दित है। अग्नि के वर्णन में स्वाभाविकता प्रदर्शित की गयी है, तो वरुण के वर्णन मे हृदय के मधुर एवं कोमल भावो की व्यंजना है।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

वेदाङ्ग—वेदाङ्ग ऐसे ग्रन्थो को कहते है जो वेद का अर्थ जानने एवं उसके कर्मकाण्ड मे सहायक हो। वेद का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेदाङ्गों की रचना हुई है। ऐसे ग्रन्थों के ६ वर्ग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। अङ्ग का अर्थ उपकारक होता है। वेद का अङ्ग होने से इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है। वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने, कर्मकाण्ड का शुद्ध रूप से प्रतिपादन करने, वैदिक साहित्य मे उपन्यस्त शब्दों का निर्माण एवं उनकी शुद्धता का निर्णय करने, प्रत्येक वैदिक मन्त्र के छन्दो का ज्ञान प्राप्त करने, यज्ञ-सम्पादन का विशिष्ट समय जानने एवं वैदिक शब्दों के अर्थबोध के लिए छह पृथक् शास्त्रों की उद्भावना हुई जिससे उपर्युक्त सभी समस्याओं का निराकरण हुआ। इन्हें ही वेदाङ्ग कहा गया।

१. शिक्षा—स्वर एवं वर्णों के उच्चारण का नियम शिक्षा मे रहता है। इसमें उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन तीनों स्वरों की उच्चारण-विधि का वर्णन होता है। शिक्षाग्रन्थो की संख्या बहुल है, जिनमें आधुनिक ध्वनिविज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है [दे० शिक्षा]। २. कल्प—वेदों का मुख्य उद्देश्य है वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञों का विधान करना। वैदिक कर्मकाण्ड के विस्तार को देखते हुए उसे सूत्रबद्ध करने के लिए कल्पों की रचना हुई है। कल्प में यज्ञ के प्रयोगों का समर्थन किया जाता है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् कल्प है, जिनके चार विभाग किये गए हैं—क—श्रौतसूत्र—इनमें वेदविहित दर्शपूर्णमास प्रभृति नाना प्रकार के यज्ञों का प्रतिपादन

किया गया है। प्रत्येक वेद के अलग-अलग श्रौतसूत्र हैं। ख—गृह्यसूत्र—इनमें गृहाग्नि में सम्पन्न होने वाले यज्ञों, विवाह, उपनयन प्रभृति विविध संस्कारों का वर्णन होता है। प्रत्येक वेद के अपने-अपने गृह्यसूत्र हैं। ग—धर्मसूत्र—धर्मसूत्रों में चतुर्वर्ण एवं चारो आश्रमो के कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है। ये 'हिन्दूविधि' या स्मृतिग्रन्थों के मूल स्रोत हैं। घ—शुल्बसूत्र—इन ग्रन्थो मे वेदिका-निर्माण की क्रिया का विवेचन है। भारतीय ज्यामितिशास्त्र का रूप इन्हीं ग्रन्थों में प्राप्त होता है [दे० धर्मसूत्र]। ३—व्याकरण—व्याकरण मे पदो की प्रकृति एवं प्रत्यय का विवेचन कर उनके वास्तविक रूप का प्रतिपादन किया जाता है तथा उसके द्वारा ही शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। पदों का स्वरूप एवं अर्थ का निश्चय करने में व्याकरण की उपयोगिता दिखाई पड़ती है [दे० व्याकरण]। ४—छन्द—वैदिक संहिता का अधिकांश पद्यबद्ध है। अतः उसके वास्तविक ज्ञान के लिए वैदिक मन्त्रो के छन्दों का परिचय आवश्यक है। वैदिक छन्दो में लघु-गुरु की गणना नहीं होती, केवल अक्षरों की ही गणना होती है। वैदिक छन्दो के नाम है—गायत्री (८ + ८ + ८ अक्षर), उष्णिक् (८ + ८ + १२), अनुष्टुप् (८ अक्षरो के चार चरण) बृहती (८ + ८ + १२ + ८ अक्षर), पंक्ति (आठ अक्षरों के पांच पाद), त्रिष्टुप् (११ अक्षरो के चार पाद), जगती (१२ अक्षरो के चार पाद)। ५—ज्योतिष—वैदिक यज्ञो के विधान के लिए विशिष्ट समय का ज्ञान आवश्यक होता है। दिन, रात, ऋतु, मास, नक्षत्र, वर्ष आदि का ज्ञान ज्योतिष द्वारा ही प्राप्त होता है। यज्ञ-याग के लिए शुद्ध समय की जानकारी ज्योतिष से ही होती है। 'तैत्तिरीय आरण्यक' मे ऐसा विधान किया गया है, जिसके अनुसार ब्राह्मण को वसन्त मे अग्नि का आधान करना चाहिए, क्षत्रिय को ग्रीष्म मे तथा वैश्य को शरत् ऋतु मे। कुछ यज्ञ सायंकाल मे, कुछ प्रातःकाल मे, कुछ विशिष्ट मासो एवं विशिष्ट पक्षो मे किये जाते हैं। इन नियमो का वास्तविक निर्वाह बिना ज्योतिष के हो नहीं सकता। इसलिए विद्वानो ने ऐसा विधान किया कि ज्योतिष का जानकार ही यज्ञ करे। वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः। तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ॥ वेदाङ्गज्योतिष श्लोक ३। ज्योतिष को वेद पुरुष का चक्षु माना गया है। ज्योतिषज्ञान के बिना समस्त वैदिक कार्य अन्धा हो जाता है [दे० ज्योतिष]। 'वेदाङ्ग ज्योतिष' मे ज्योतिष को वेद का सर्वोत्तम अंग सिद्ध किया गया है। मयूरो की शिखा एवं सर्पों की मणि की तरह ज्योतिष भी वेदांगों का सिर है—यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा। तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥ वेदान्त ज्यो० ४।६-निरुक्त—निरुक्त पदों की व्युत्पत्ति या निरुक्ति करता है। इसमे मुख्यरूप से वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति जानने के नियम हैं। निरुक्त 'निघण्टु' संज्ञक वैदिक कोश का भाष्य है जिसमे सभी शब्दों की व्युत्पत्ति दी गयी है। निरुक्त के द्वारा वैदिक शब्दो के 'अर्थावगम' मे सहायता प्राप्त होती है [दे० निरुक्त तथा निघण्टु]। शिक्षा प्रभृति षडंगों का विभाजन 'पाणिनिशिक्षा' में इस प्रकार किया गया है—छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१, शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं

व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥ छन्द वेदों का पैर, कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त श्रवण, शिक्षा घ्राण एवं व्याकरण मुख होता है ।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय ।

वेदान्त—भारतीयदर्शन का एक महनीय सिद्धान्त । वेदान्त का अर्थ है वेद का अन्त । वेद के तीन विभाग किये गए हैं—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् । प्रारम्भ में वेदान्त उपनिषद् का ही बोधक था, क्योंकि उपनिषद् ही वेद का अन्तिम विभाग है । 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग उपनिषदों में भी हुआ है—वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः मुण्डकोपनिषद् ३।२।६। वेद के अध्यात्म-विषयक विचार जो विभिन्न उपनिषदों में बिखरे हुए है, उन्हें सूत्ररूप में एकत्र कर बादरायण व्यास ने वेदान्त सूत्र का रूप दिया जिसे ब्रह्मसूत्र भी कहते है । 'ब्रह्मसूत्र' मे चार अध्याय हैं तथा सूत्रों की संख्या साढ़े पाँच सौ है । ब्रह्मसूत्र का रचनाकाल वि० पू० षष्ठ शतक के बाद का नहीं है । 'गीता' मे भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है—ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः १३।४। इसके प्रथम अध्याय को समन्वयाध्याय कहते हैं, जिसमे ब्रह्म-विषयक समस्त वेदान्त वाक्यो का समन्वय है । प्रथम पाद के प्रथम अध्याय के चार सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हें 'चतुःसूत्री' कहा जाता है । द्वितीय अध्याय मे स्मृति, तर्क आदि सम्भावित विरोध का परिहार करते हुए अविरोध प्रदर्शित किया गया है । इस अध्याय का नाम अविरोधाध्याय है । तृतीय अध्याय को साधनाध्याय कहते हैं जिसमें वेदान्त-विषयक विभिन्न साधनो का विवेचन है तथा चतुर्थ अध्याय मे इनके फल पर विचार किया गया है । 'वेदान्तसूत्र' पर अनेक आचार्यों ने भाष्य लिखकर कई विचारधाराओं का प्रवर्त्तन किया है ।

क्रमनाम		भाष्य का नाम	मत
१—शंकर—	७८८–८२० ई०—	शारीरक भाष्य—	केवलाद्वैत या निर्विशेषाद्वैतवाद
२—भास्कर—	१००० ई०—	भास्कर भाष्य—	भेदाभेद
३—रामानुज—	११४० ई०—	श्रीभाष्य—	विशिष्टाद्वैतवाद
४—मध्व—	१२३८ ई०—	पूर्णप्रज्ञभाष्य—	द्वैतवाद
५—निम्बार्क—	१२५० ई०—	वेदान्तपारिजात—	द्वैताद्वैत
६—श्रीकण्ठ—	१२७० ई०—	शैवभाष्य—	शैवविशिष्टाद्वैत
७—श्रीपति—	१४०० ई०—	श्रीकरभाष्य—	वीरशैव विशिष्टाद्वैत
८—वल्लभ—	१४७९ ई०—	अणुभाष्य—	शुद्धाद्वैत
९—विज्ञानभिक्षु—	१६००—	विज्ञानामृत—	अविभागाद्वैत
१०—बलदेव—	१७२५—	गोविन्दभाष्य—	अचिन्त्यभेदाभेद ।

शंकराचार्य के पूर्व अनेक अद्वैत वेदान्ती आचार्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें गौडपाद का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने 'माण्डूक्य उपनिषद्' के ऊपर कारिकाबद्ध भाष्य लिखा है ।

तत्त्वमीमांसा— वेदान्त में ब्रह्म शब्द परमतत्त्व या मूल सत्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है तथा सृष्टिकर्त्ता के अर्थ में भी। ब्रह्म और ईश्वर दोनों पृथक् तत्त्व न होकर एक ही है। इसमे ईश्वर की सत्ता का ज्ञान श्रुति के आधार पर किया गया है, युक्ति पर नहीं। वेदान्त के अनुसार ईश्वर के सम्बन्ध में वैदिक मत ही प्रामाणिक है और वेदान्ती श्रुति के आधार पर ही तर्क देकर ईश्वर की सत्ता सिद्ध करता है। बादरायण के सूत्र का प्रतिपाद्य ब्रह्म है, अतः उनका ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' के नाम से विख्यात है। मनुष्य या शरीरी को महत्त्व देते हुए इस सूत्र का नाम शारीरकसूत्र भी दिया गया है।

शाङ्कर अद्वैत—जगत्—शंकर ने जगत् को मिथ्या माना है। उपनिषदों में जहाँ एक ओर सृष्टि का वर्णन किया गया है, वहाँ दूसरी ओर नाना विषयात्मक संसार को मिथ्या कहा गया है। सृष्टि को सत्य मानते हुए नानात्व को अस्वीकार कैसे किया जाय? शंकर ने इस समस्या का समाधान करने के लिए संसार की तुलना स्वप्न या भ्रम से की है। यह संसार मिथ्या ज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होता है, किन्तु ज्यों ही तत्त्वज्ञान का उदय होता है त्यों ही यह जगत् मिथ्या ज्ञात होता है। जैसे; स्वप्न की स्थिति में सारी घटनाएँ सत्य प्रतीत होती हैं, पर जाग्रत अवस्था में वे असत्य हो जाती हैं। भ्रम या अविद्या की सिद्धि के लिए शंकर ने माया की स्थिति स्वीकार की। माया को ईश्वर की शक्ति माना गया है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि की दाहकता भिन्न नहीं है, उसी प्रकार माया भी ब्रह्म से अभिन्न है। माया की सहायता से ही ईश्वर सृष्टि की लीला प्रकट करते हैं जो अज्ञानियों के अनुसार सत्य एवं तत्त्वदर्शियों के लिए असत्य है। इनके अनुसार इस संसार मे केवल ब्रह्म ही सत्य है। माया भ्रम या अविद्या है। इसके दो कार्य हैं—जगत् के आधार ब्रह्म के वास्तविक रूप को छिपा देना तथा उसे संसार के रूप में आभासित करना। यह माया अनादि है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ का कोई निश्चित समय नहीं है। शंकर ने माया को ब्रह्म का नित्य स्वरूप नहीं माना है, बल्कि वह ब्रह्म की इच्छा मात्र है जिसे वह इच्छानुसार त्याग भी सकता है।

ब्रह्म—शंकराचार्य ने ब्रह्म का विचार दो दृष्टियों से किया है—व्यावहारिक एवं पारमार्थिक। व्यावहारिक दृष्टि के अनुसार जगत् सत्य है तथा ब्रह्म इसका मूल कारण है। वही सृष्टिकर्त्ता, पालक, संहारक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है। इस रूप में वह सगुण और साकार है तथा उसकी उपासना की जाती है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म में जगत् या जीव के गुण को आरोपित नहीं किया जा सकता। वह विजातीय, सजातीय तथा स्वगत सभी भेदों से परे है। शंकर ब्रह्म को निर्गुण मानते है, क्योंकि वह सत्य एवं अनन्त ज्ञान-स्वरूप है। वह माया-शक्ति के द्वारा ही जगत् की सृष्टि करता है। सगुण और निर्गुण ब्रह्म एक ही हैं, दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। दोनों की एक ही सत्ता है, किन्तु व्यवहार या उपासना के लिए सगुण ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। शांकरमत को अद्वैतवाद कहते हैं। इसके अनुसार एकमात्र ब्रह्म की सत्ता है तथा जीव और ईश्वर (ज्ञाता और ज्ञेय) का भेद माया के कारण है।

इस सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म एक हैं, दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। इसे ही उपनिषदों में 'तत्त्वमसि' कहा गया है, जिसका अर्थ है जीवात्मा और ब्रह्म की एकता।

आत्मा—अद्वैत वेदान्त का मूल उद्देश्य है 'परमार्थ सत्ता रूप ब्रह्म की एकता तथा अनेकान्त जगत् की मायिकता की सिद्धि'। इस सिद्धान्त में आत्मज्ञान की स्वयं-सिद्धि अत्यन्त मौलिक तथ्य है। अनुभव के आधार पर आत्मा की सत्ता स्वतः सिद्ध होती है, क्योंकि जगत् के सारे व्यवहार अनुभव के ही आधार पर परिचालित होते हैं। विषय का अनुभव करते हुए चेतन विषयी की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है, क्योंकि जब तक ज्ञातारूप आत्मा की सत्ता नहीं मानी जाती तब तक विषय का ज्ञान संभव नहीं होता। शंकर के अनुसार आत्मा ही प्रमाण आदि सभी व्यवहारों का आश्रय है। आत्मा की सत्ता इसी से जानी जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मा की सत्ता मे विश्वास करता है। कोई भी ऐसा नहीं है जो यह विश्वास करे कि मैं नहीं हूँ। आत्मा के अभाव मे किसी को भी अपने न रहने में विश्वास नहीं होता। अतः आत्मा स्वतः सिद्ध है।

वेदान्त अत्यन्त व्यावहारिक दर्शन है जिसने संसार के कण-कण में एक ब्रह्मतत्त्व की सत्ता को स्वीकार कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा दी है। यह विश्व के भीतर प्रत्येक जीव या प्राणी में ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करता है तथा विषयसुख को क्षणिक या भ्रम मानकर आध्यात्मिक सुख या ब्रह्मसुख को शाश्वत स्वीकार करता है। वेदान्त के अनुसार प्रत्येक जीव अनन्त शक्तिसम्पन्न है, इस प्रकार का सन्देश देकर वह जीव को आगे बढ़ने की शिक्षा देता है। जीव को ब्रह्म बताकर वह नर को नारायण बना देता है।

वेदान्त-साहित्य—वेदान्त का साहित्य पाण्डित्य एवं मौलिक विचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद के प्रतिपादन के लिए 'ब्रह्मसूत्र', उपनिषद् एवं 'गीता' पर भाष्य लिखा था। शंकराचार्य के समकालीन विद्वान् मंडन-मिश्र ने अनेक विषयों पर पाण्डित्यपूर्ण मौलिक ग्रन्थों की रचना की है। इनका वेदान्त-विषयक ग्रन्थ है 'ब्रह्मसिद्धि'। वाचस्पतिमिश्र ने शंकर प्रणीत ब्रह्मसूत्र के भाष्य के ऊपर 'भामती' नामक पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखा है। इनका समय नवम शती है। सुरेश्वराचार्य ने उपनिषद् भाष्य पर वार्तिकों की रचना की है। इनका 'बृहदारण्यक-भाष्य' अत्यन्त प्रौढ़ एवं विशालकाय ग्रन्थ है। सुरेश्वर शंकर के शिष्य थे। सुरेश्वरा-चार्य के शिष्य 'सर्वज्ञात्ममुनि' की ब्रह्मसूत्र के ऊपर 'संक्षेपशारीरक' नामक पद्यबद्ध व्याख्या है। इस पर नृसिंहाश्रम ने 'तत्त्वबोधिनी' तथा मधुसूदन सरस्वती ने 'सार-संग्रह' नामक व्याख्या-ग्रन्थ लिखे हैं। 'नैषधचरित' महाकाव्य के प्रणेता श्रीहर्ष ने न्याय की शैली पर 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक उच्चस्तरीय ग्रन्थ की रचना की है। शंकर मिश्र जैसे नैयायिक ने इस पर टीका लिखी है। चित्सुखाचार्य की (१३ वीं शताब्दी) प्रसिद्ध रचना 'तत्त्वदीपिका' वेदान्त-विषयक प्रख्यात ग्रन्थ है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—

शारीरक भाष्य की टीका 'भावप्रकाशिका', ब्रह्मसिद्धि की टीका 'अभिप्रायप्रकाशिका' तथा 'नैष्कर्म्यसिद्धि' की टीका 'भावतत्त्वप्रकाशिका'। माधवाचार्य ने 'पंचदशी' नामक असाधारण ग्रन्थ लिखा है। मधुसूदन सरस्वती की 'अद्वैतसिद्धि' नामक पुस्तक वेदान्त-विषयक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। धर्मराजाध्वरीन्द्र कृत 'वेदान्त परिभाषा' अपने विषय की अत्यन्त लोकप्रिय रचना है जो वेदान्त प्रामाण्यशास्त्र पर लिखी गयी है। सदानन्द कृत 'वेदान्तसार' (१६ वीं शताब्दी) में वेदान्त के सभी सिद्धान्त पर प्रारम्भिक ज्ञान के रूप में वर्णित है। यह अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक है।

आधारग्रन्थ—१. भारतीयदर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। २. भारतीयदर्शन—चटर्जी और दत्त (हिन्दी अनुवाद)। ३. षड्दर्शनरहस्य—पं० रंगनाथ पाठक। ४. भारतीय ईश्वरवाद—डॉ० रामावतार शर्मा। ५. दर्शन-संग्रह—डॉ० दीवानचन्द, अन्य टीका ग्रन्थ—६. ब्रह्मसूत्र—(हिन्दी भाष्य)— गीता प्रेस, गोरखपुर। ७. हिन्दी ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य। (चतुःसूत्री)—व्याख्याता आ० विश्वेश्वर (चौखम्बा प्रकाशन)। ८. हिन्दी ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य–व्याख्याता–स्वामी हनुमान प्रसाद (चौखम्बा प्रकाशन)। ९. वेदान्त परिभाषा—(हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन। १० वेदान्तसार (हिन्दी टीका) चौखम्बा प्रकाशन। ११. वेदान्त-दर्शन—श्रीराम शर्मा (ब्रह्मसूत्र का हिन्दी अनुवाद)। १२. खण्डनखण्डखाद्य—(हिन्दी अनुवाद) अनुवादक—स्वामी हनुमान प्रसाद (चौखम्बा प्रकाशन)।

वेदान्त देशिक—[समय १२५० से १३५० ई० के मध्य] इन्होने 'यादवाभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य मे हृदयपक्ष गौण एवं बुद्धिपक्ष प्रधान है। इन्होंने 'हंसदूत' नामक सन्देश काव्य भी लिखा है [दे० हंसदूत]।

वेबर—जर्मनी निवासी संस्कृत के विद्वान्। इनका जन्म १८२५ ई० में हुआ था। इन्होने बर्लिन (जर्मनी) के राजकीय पुस्तकालय में संस्कृत की हस्तलिखित पोथियों का बृहत् सूचीपत्र प्रस्तुत किया है। संस्कृत-साहित्य के अनुशीलन के लिए इस सूचीपत्र का अत्यधिक महत्त्व है। इन्होंने अत्यधिक परिश्रम के पश्चात् १८८२ ई० में भारतीय साहित्य के सर्वप्रथम इतिहास का प्रणयन किया। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है 'इंदिस्केन स्तादियन' जिसके निर्माण में लेखक ने जीवन के ३५ वर्ष लगाये है तथा यह ग्रन्थ १८५० से १८८५ के बीच अनवरत गति से लिखा जाता रहा है। यह महाग्रन्थ सत्रह भागों मे समाप्त हुआ है। इस मनीषी के कार्यों एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक यूरोपीय एवं अमेरिकी विद्वान् इसके शिष्य हुए और भारतीय विद्या-विशेषकर सस्कृत-के अध्ययन मे निरत हुए। वेबर वैदिक वाङ्मय के असाधारण विद्वान् थे। वेद-विषयक रचित इनके ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—१– शतपथ ब्राह्मण का सायण, हरिस्वामी एवं गङ्गाचार्य की टीकाओ के साथ सम्पादन, १८४४। २—यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता का सम्पादन, १८४७। ३—शुक्ल यजुर्वेद की कण्वसंहिता का प्रकाशन, १८५२। ४—कात्यायन एवं श्रौतसूत्र

का प्रकाशन, १८५९ । ५. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, १८८२ । ६. इंदिस्केन स्तदियन, १८५०-१८८५ ।

वेंकटनाथ कृत हंससन्देश—वेंकटनाथ का समय १४ वीं शताब्दी है। ये रामानुज सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म तुप्पिल नामक ग्राम में कांजीवरम् के निकट हुआ था। इनके पिता का नाम अनन्तसूरि एवं माता का नाम तोतरम्मा था। ये वेदान्त के महान् व्याख्याता माने जाते हैं। इन्होंने 'हंससन्देश', 'यदुवंश', 'मारसंभव' एवं 'यादवाभ्युदय' (२१ सर्ग का महाकाव्य) नामक काव्यों की रचना की है। इनका 'संकल्पसूर्योदय' नामक एक महानाटक भी है। इनकी अन्य रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—हयग्रीवस्तोत्र, यथोक्तकारिस्तोत्र, दशावतारस्तोत्र, न्यासतिलक, गोदास्तुति, यतिराजसप्तति, देवराजपंचाशत्, अष्टभुजाष्टक, अभीतिस्तव, श्रीस्तुति, सुदर्शनशतक, धात्रीपंचक, गोपालविंशति, परमार्थस्तुति, न्यासदशक, भूस्तुति, षोडशायुधस्तुति, वैराग्यपंचक, देहली-स्तुति, भगवद्ध्यानसोपान, न्यासविंशति, नीलास्तुति एवं गरुडपंचक। वेंकटनाथ का दूसरा नाम वेदान्तदेशिक भी है। इनके 'हंससन्देश' का आधार रामायण की कथा है। इसमें हनुमान् द्वारा सीता की खोज करने के बाद रावण पर आक्रमण करने के पूर्व राम का राजहंस के द्वारा सीता के पास सन्देश भेजने का वर्णन है। यह काव्य दो आश्वासों में विभक्त है और दोनों में (६० + ५१) १११ श्लोक है। इसमे कवि ने संक्षेप मे रामायण की कथा प्रस्तुत की है और सर्वत्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। रावण के यहाँ बन्दिनी सीता का चित्र देखिए—शुद्धामिन्दोःश्वपचभवने कौमुदीं विस्फुरन्तीं आनीतां वा विषत-रुवने पारिजातस्य शाखाम्। सूक्ति रम्या खलपरिसरे सत्कवेः कीर्त्यमानां मन्ये दीनां निशिचर-गृहे मैथिलस्यात्मजाताम् ॥ २।१३ ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश-काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

वेंकटाध्वरि—इन्होंने संस्कृत के तीन प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय चम्पू काव्यों की रचना की है। वे है—'विश्वगुणादर्श चम्पू' (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से १९२३ ई० प्रकाशित), 'वरदाभ्युदय' या 'हस्तिगिरि चम्पू' (संस्कृत सीरीज मैसूर से १९०८ ई० मे प्रकाशित) तथा 'उत्तररामचरितचम्पू' (गोपाल नारायण एण्ड कं० बम्बई से प्रकाशित)। इनके पिता का नाम रघुनाथ दीक्षित था। वेंकटाध्वरि अप्पय गुरु नामक व्यक्ति के नाती थे। ये रामानुज के मतानुयायी तथा लक्ष्मी के भक्त थे। इनका रचनाकाल १६३७ ई० के आसपास है। इनका निवासस्थान कांचीपुर के निकट अर्शनफल (अर्सनपल्ली) नामक ग्राम था। 'विश्वगुणादर्श चम्पू' मे २५४ खण्ड तथा ५९७ श्लोक हैं। इसमे कवि ने विश्वदर्शन के लिए उत्सुक कृशानु तथा विश्वावसु नामक दो काल्पनिक गन्धर्वों का वर्णन किया है। सारा चम्पू कथोपकथन की शैली में निर्मित है। 'वरदाभ्युदय' मे लक्ष्मी एवं नारायण के विवाह का वर्णन है जो पाँच विलासों में विभक्त है। इस ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपना परिचय देते हुए अपनी माता का नाम सीताम्बा दिया है। 'उत्तररामचरितचम्पू' में

रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का वर्णन है। इसमें उक्तिवैचित्र्य एवं शब्दालंकारों की छटा दर्शनीय है। इन्होने 'लक्ष्मीसहस्रम्' नामक काव्य की भी रचना की थी। 'उत्तररामचरितचम्पू' कवि की प्रौढ़ रचना है जिसमे वर्णन-सौन्दर्य की आभा देखने योग्य है। चकितहरिणशावचंचलाक्षी मधुररणन्मणिमेखलाकलापम्। चलवलयमुरोजलोलहारं प्रसभमुमा परिषस्वजे पुरारिम्॥ ७८।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ छविनाथ त्रिपाठी।

वेंकटेश चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता धर्मराज कवि थे। इनका निवास-स्थान तजोर था। ये सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में विद्यमान थे। इसमें तिरुपति के अधिष्ठातृ देवता वेंकटेश जी की कथा वर्णित है। प्रारम्भ मे कवि ने मंगलाचरण, सज्जनशंसन एवं खलनिन्दा का वर्णन किया है। इसके गद्य भाग पर 'कादम्बरी' एवं 'दशकुमारचरित' की भाँति सौन्दर्य दिखाई पडता है तथा स्थान-स्थान पर तीखे व्यंग्य से पूर्ण सूक्तियों का निबन्धन किया गया है। यह चम्पू अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग संख्या ४१५८ में प्राप्त होता है। दोषाकरो भवतु वेंकटनाथचम्पूः सन्तस्तथापि शिरसा परिपालयन्तु। दोषाकरस्तु लभते निजमूर्ध्नि शम्भोः सर्वज्ञता न किमसौ सकलोपवन्द्या॥

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

वैद्यजीवन—आयुर्वेदशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इस ग्रन्थ के रचयिता कवि लोलिम्बराज हैं। इनका समय सत्रहवी शताब्दी है। लेखक के पिता का नाम दिवाकर भट्ट था। लोलिम्बराज ने 'वैद्यावतंस' नामक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की है। इस ग्रन्थ की रचना सरस एवं मनोहर ललित शैली में हुई है और रोग एवं ओषधि का वर्णन लेखक ने अपनी प्रिया को सम्बोधित कर किया है। इसमे शृङ्गार रस की प्रधानता है। इसके सम्बन्ध मे लेखक ने स्वयं लिखा है—गदभञ्जनाय चतुरैश्चरकाद्यैर्मुनिभिर्मुणांकरुणया यत्कथितम्। अखिल लिखामि खलु तस्य स्वकपोलकल्पितमिहास्ति न किञ्चित्॥

काव्यरचना-चातुरी का एक पद्य देखिए—भिदन्ति के कुञ्जरकर्णपालि किमव्ययं व्यक्तिरते नवोढा। सम्बोधनं किं नुः रक्तपित्तं निहन्ति वामोरु वदस्वमेव॥ वैद्यजीवन का हिन्दी अनुवाद (अभिनव सुधा—हिन्दी टीका) श्रीकालिकाचरण शास्त्री ने किया है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

वैदिक देवता—वैदिक देवताओं के तीन वर्ग किये गए है—द्युस्थान, अन्तरिक्ष-स्थान एवं पृथिवीस्थान के देवता। द्युस्थान के अन्तर्गत वरुण, पूषन्, सूर्य, विष्णु, अश्विन् एवं उषा हैं तथा अन्तरिक्षस्थान मे इन्द्र, रुद्र एवं मरुत का नाम आता है। पृथिवीस्थान के देव है—अग्नि, बृहस्पति तथा सोम। वैदिक देवता प्रायः प्राकृतिक वस्तुओं के रूप मात्र हैं; जैसे सूर्य, उषस्, अग्नि तथा मरुत्। इस युग के अधिकांश

देवता अपने भौतिक आधार से ही सम्बद्ध हैं और उनका मूर्त स्वरूप मानवीय है। उनके शारीरिक विविध अवयव भी— सिर, हाथ, पैर, मुख आदि भी बताये गए हैं, पर उनकी प्रतिमा केवल छायात्मक मानी गयी है तथा उनका वर्णन आलंकारिक रूप मे हुआ है। जैसे; अग्निदेव की जिह्वा एवं गात्र ज्वाला को कहना। वैदिक देवताओं का बाह्यस्वरूप स्पष्ट रूप से कल्पित है, पर उनकी आन्तरिक शक्ति का संबंध प्राकृतिक तत्त्वो के साथ स्थापित किया गया है। 'ऋग्वेद' मे देवताओ की प्रतिमा का वर्णन नही मिलता; सूत्र ग्रन्थो मे प्रतिमा का वर्णन किया गया है तथा कुछ देवता वीर भट के रूप मे उपस्थित किये गए हैं। उनका वर्णन शिरस्त्राण धारण करते हुए, भाला लिये हुए एवं रथ हांकते हुए किया गया है। उनके हाथ मे धनुष-बाण भी है तथा वे दिव्य रथ पर आरूढ होकर आकाश मे चलते रहते हैं। वे रथारूढ होकर यज्ञ में अपना भाग लेने के लिए आते हैं और कभी-कभी उनका भाग अग्निदेव के द्वारा पहुँचाया जाता है। सभी देवताओ को उपकारक, दीर्घायु एवं अभ्युदय प्रदान करने वाला चित्रित किया गया है, पर एकमात्र रुद्र ऐसे देवता है जिनसे भय या हानि की संभावना हो सकती है। देवताओ का चरित्र नैतिक दृष्टि से उच्च माना गया है। वे सत्यवादी, छल न करने वाले, धर्म एवं न्याय के पक्षपाती चित्रित किये गए हैं। वेदों में देवता और यजमान का रूप अनुग्राहक एवं अनुग्राह्य का है। भक्त बलि चढ़ा कर उनसे कुछ प्राप्त करने की कामना करता है। ऋग्वेद मे देवताओ की संख्या तीस है और कई स्थानो पर त्रिगुण एकादश के रूप मे उनका कथन किया गया है। किन्तु कहीं-कहीं अन्य देवताओ के भी संकेत है। ऋग्वेद के प्रधान देवता है—इन्द्र, अग्निदेव और सोम। शिव, विष्णु सरीखे देवता उस समय प्रमुख देवताओं से निम्न स्तर पर अधिष्ठित किये गए हैं। मूलतः ये देवता भौतिक जगत् के ही अधिष्ठाता हैं। ऋग्वेद के प्रारम्भिक युग मे बहुदेववाद का प्राधान्य था, किन्तु—जैसे-जैसे आर्यों का बौद्धिक विकास होता गया वैसे वैसे उनकी चेतना बहुदेवताओ के अधिपति या एक देवता की कल्पना की ओर गयी; अर्थात् आगे चलकर एकेश्वरवाद का जन्म हुआ। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त मे सर्वेश्वरवाद की स्थापना की गयी है। वैदिक देवताओं की एक विशेषता यह है कि जिस किसी देवता की स्तुति की जाती है उसे ही महान् समझ लिया जाता है, और वही सर्वाधिक व्यापक, जगत् का स्रष्टा एवं विश्व का कल्याणकर्त्ता सिद्ध किया जाता है। मैक्समूलर ने इसे अति प्राचीन धर्मों की एक विशेषता मानी है। उपर्युक्त तथ्य पाश्चात्य विद्वानो के आधार पर उपस्थित किये हैं, पर भारतीय विद्वानों की धारणा इसके विपरीत है। यास्क ने वैदिक देवताओ का विवेचन करते हुए एक ऐश्वर्यशाली एवं महत्त्वशाली शक्ति की कल्पना की है जिसे 'ईश्वर' कहते हैं। वह एक एवं अद्वितीय है तथा उसकी प्रार्थना अनेक देवो के रूप मे की जाती है।

माहाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधास्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ॥ ७।४।८।९। निरुक्त इनके अनुसार ऋग्वेद में एक सर्वव्यापी ब्रह्म सत्ता का ही निरूपण किया गया है। ऐतरेय आरण्यक में इस तथ्य का प्रतिपादन है

कि एक ही मूल सत्ता की ऋग्वेद में 'उक्थ' के रूप में, यजुर्वेद में याज्ञिक अग्नि के रूप मे तथा सामवेद मे 'महाव्रत' के नाम से उपासना की जाती है। ऋग्वेद में देवताओं के लिए 'असुर' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है 'असुविशिष्ट या प्राणशक्ति-सम्पन्न।'—तदेवस्य सवितुः असुरस्य प्रचेतसः (४।५३।१) (पर्जन्यः) असुरः पिता नः। (५।८३।६)। इन्द्र, सविता, वरुण, उषा आदि देवताओं की विशेषताएँ हैं उनकी स्थिरता (आतस्थिवांसः), अनन्तता (अनन्तासः) आदि। ये देव विश्व के समग्र प्राणियों मे स्थित रहते हैं। इनमे विद्यमान शक्ति एक ही मानी गयी है। ऋग्वेद में कहा गया है कि 'जीर्ण ओषधियो मे, नवीन उत्पन्न होने वाली ओषधियों में पल्लव तथा पुष्प मे सुशोभित ओषधियों मे तथा गर्भ धारण करने वाली ओषधियो में एक ही शक्ति विद्यमान रहती है। देवो का महत् सामर्थ्य वस्तुतः एक ही है। 'ऋग्वेद ३।५५।४। ऋग्वेद मे ऋत या सत्य या अविनाशी सत्ता की महिमा गायी गयी है तथा ऋत् के कारण ही जगत् की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसके कारण संसार में सुव्यवस्था, प्रतिष्ठा एवं नियमन होता है। यह ऋत् सत्यभूत ब्रह्म ही है तथा देवगण इसी के रूप माने गए हैं। सभी देवों एवं सभी कार्यों के भीतर इसी सार्वभौम सत्ता का निवास है जिससे जगत् के सारे क्रिया-कलाप होते रहते है। ऋग्वेद मे देवताओं के तीन रूपों का उल्लेख है—स्थूल (आधिभौतिक) सूक्ष्म या गूढ़ (आधिदैविक) एवं आध्यात्मिक। इन सारे तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि वेदों मे एक परम सत्य की सत्ता या ब्रह्मतत्व की मान्यता स्वीकार की गयी है तथा इसका आधार अद्वैतवाद है।

प्रमुख देवताओ का परिचय—वरुण—वरुण आर्यों के महत्वपूर्ण देवता हैं। वे जल के अधिपति या देवता है। ऋग्वेद मे उनकी स्तुति करते हुए कहा गया है, 'हे वरुण! जल के मध्य मे स्थित होते हुए भी तुम्हारे भक्त को तृषा सता रही है। हे ईश्वर! तू मुझे सुखी बना, मुझ पर दया कर।' ७।८९।४। अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्। मृळा सुक्षत्र मृळये ॥ ऋग्वेद मे वरुण का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर चित्रित किया गया है। उनका शरीर मांसल एवं पुष्ट है वे रथ हाँकते हैं; बैठते एवं खाते-पीते हैं, उनका कवच सोने के रंग का एवं दर्शकों को चकाचौंध करनेवाला है। उनके सहस्र नेत्र हैं जिनसे वे दूरस्थित पदार्थों को भी देखते हैं। सूर्य उनका नेत्र के रूप में चित्रित है वे सभी भुवन के पदार्थों को देखते है तथा मानव के हृदय में उद्बुद्ध होनेवाले सभी भावों का ज्ञान उन्हें रहता है। उनका रथ अत्यन्त चमकीला हैं जिसमे घोड़े जुते हुए हैं। वे ऊर्ध्वतमलोक मे स्थित अपने सुवर्ण प्रासाद में जिसमें सहस्रों खंभे एवं द्वार हैं, बैठ कर अतीत एवं भविष्य की घटनाओ का पर्यवेक्षण करते रहते है। वे सम्राट एवं स्वराट् की उपाधि से विभूषित हैं। क्षत्र या प्रभुत्व के अधिपति होने से उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है। वे अपनी अनिर्वचनीय शक्ति माया के द्वारा संसार का परिचालन किया करते हैं। माया वां मित्रावरुणा दिविश्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्। तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ऋग्वेद ५।६३।४। 'हे मित्रावरुण! आपकी मायाशक्ति आकाश का आश्रय लेकर निवास

करती है। चित्र-विचित्र किरणों से सम्पन्न होनेवाला ज्योतिष्मान् सूर्य इसी शक्ति के सहारे चलता है। आकाश में उस सूर्य को मेघ तथा वृष्टि से आप लोग छिपा देते हैं। जिससे पर्जन्य मधुमान् जलबिन्दुओं की वर्षा कर जगती को मधुमयी, मंगलमयी तथा मोदमयी बना देता है। यह समस्त गौरव है आपकी मायाशक्ति का।' वरुण सर्वशक्तिमान् देव के रूप में चित्रित किये गये हैं, जिनके अनुशासन से नक्षत्र आकाश में अपनी गति का निश्चय करते हैं एवं चन्द्रमा रात्रि मे चमकता है। उनके अनुशासन मे ही संसार के पदार्थ अणु से महत्तर बनते हैं और उनके नियम को उल्लंघन करने पर किसी भी व्यक्ति को क्षमा नहीं किया जाता। वे पाशधारी हैं जिससे दोषियों को दण्ड दिया करते है। नियम की निश्चितता एवं दृढ़ता के कारण वरुण 'धृतव्रत' कहे जाते हैं। वे सर्वज्ञ हैं। संसार का पत्ता-पत्ता उनके ही अनुशासन से डोलता है। वे अपने अनुग्रह के द्वारा अपराधी को क्षमा कर देते हैं, जब वह अपना अपराध स्वीकार कर ले।

वे कर्मद्रष्टा ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किये गए हैं। वरुण का लोक यह नीला आकाश है जिसके द्वारा वे जगत् पर आवरण डालते हैं; संसार को ढाँक लेते हैं। वरुण का अर्थ आवरणकर्ता है—वृणोतिसर्वम्। कालान्तर में वरुण की शक्ति में ह्रास होता है और वैदिक युग के अन्त होते-होते ये जल के देवता मात्र बन कर रह जाते है। उनका उल्लेख ग्रीस देश के देवताओं में भी हुआ है जहाँ उन्हें 'यूरेनस' कहा गया है। बोगाजकोई के शिलालेख में भी वरुण मितानी लोगों के देवता के रूप में विद्यमान हैं तथा ई० पू० १५०० वर्ष मे उनके उपास्य के रूप में उल्लिखित हैं। वरुण का रूप निम्नांकित उद्धरण में देखा जा सकता है—'वरुण के शासन से द्यौ और पृथिवी पृथक्-पृथक् रहते हैं; उसीने स्वर्ण चक्र (सूर्य) आकाश को चमकाने के लिए बनाया और इसी चक्र के लिए विस्तृत पथ का निर्माण किया। गगनमंडल मे जो पवन बहता है, वह वरुण का निःश्वास है। उसी के अध्यादेश से चमकीला चाँद रात मे सञ्चार करता है, और रात मे ही तारे चमकते हैं जो दिन में लुप्त से हो जाते है। वरुण ही नदियों को प्रवाहित करता है, उसी के शासन से वे सतत बहती है। उसी की रहस्यमयी शक्ति के कारण नदियाँ वेग से समुद्र मे जा मिलती हैं और फिर भी समुद्र में बाढ़ नहीं आती। वह उलटे रखे हुए पात्र से पानी टपकाता है और भूमि को आर्द्र करता है। उसी की प्रेरणा से पर्वत मेघ से आच्छन्न होते हैं। समुद्र से तो इसका सम्बन्ध बहुत स्वल्प है, संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैक्डोनल पृ० ६३।

सूर्य—सूर्य वैदिक देवताओं में अत्यन्त ठोस आधार पर अधिष्ठित है। वह ग्रीक देवताओं में 'हेलियॉस' का पर्याय है। वह प्रकाश से शाश्वत रूप से सम्बद्ध है तथा समस्त विश्व के गूढ़ रहस्य का द्रष्टा है। उसे आँखें भी हैं जिससे वह भी सभी प्राणियों के सुकृत एवं कुकृत को देखता है। वह सभी चराचर की आत्मा तथा अभिभावक के रूप मे चित्रित है। उसके उदय होते ही सभी प्राणी कार्यरत हो जाते हैं। वह सात अश्वों से युक्त एक रथ पर आरूढ़ रहता है। अस्तकाल में जब वह अपने घोड़ों को

विश्राम देता है तभी रात्रि का अन्धकार छा जाता है। यदेदयुक्त हरितः सधस्थाद् आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ऋग्वेद १।११५।४ ॥ उसे उषस्पति कहा जाता है। वह दिन का परिमाण एवं आयु को बढ़ानेवाला है। उसे मित्रावरुण का नेत्र कहा गया है तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षी, लाल पक्षी या गृद्ध के रूप में सम्बोधित किया गया है। वह रोग तथा दुःस्वप्नों को दूर कर देता है। उसे अपने गौरव एवं महत्त्व के कारण 'देवपुरोहित' (असुर्यं पुरोहितः) कहा गया है। उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्। चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ॥ ऋग्वेद ७।६३।१ ॥

विष्णु—वेदों में विष्णु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में चित्रित नहीं हैं। ऋग्वेद में सविता, पूषा, सूर्य प्रभृति देवों की अपेक्षा उनकी स्तुति कम हुई है। वे सूर्य के प्रतीक के रूप में चित्रित किये गए हैं। उन्हें त्रिविक्रम कहा गया है क्योंकि वे तीनों लोकों में संचरण करते हैं। विष्णु की कल्पना मूलतः सूर्य के ही रूप में की गयी है तथा वे सूर्य के क्रियाशील रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। सबमें व्याप्त होने के कारण उन्हें विष्णु कहा जाता है। उनका सर्वोच्च पदक्रम स्वर्ग माना गया है जिसको पाने के लिए आर्य लोगों ने प्रार्थना की है। उस स्थान पर देवता एवं पितृगण का निवास है। तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ऋग्वेद १।१५४।५। 'हे भगवन्! मैं विष्णु देवता के परमप्रिय धाम को प्राप्त कर सकूं जहाँ उसके भक्तगण देवताओं के मध्य आमोद-प्रमोद करते हैं। विष्णु हमारे परम बान्धव हैं, उनका पदक्रम बहुत ही शक्तिशाली है, उनके परमपद में अमृत का स्रोत है।' विष्णु ने तीन डग में पृथ्वी को माप डाला है—एको विममे त्रिभिरित् पदेभिः। इन विशाल पादों के कारण इन्हें 'उरुक्रम' या उरुगाय कहा गया है। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूळ्हस्य पांसुरे ॥ ऋ० १।२२।७। विष्णु का विकास पौराणिक युग में हुआ जिसका बीज वेदों में है।

उषा—उषा से सम्बद्ध सूक्तों में गीति-काव्य का मनोरम रूप मिलता है। उसके सौन्दर्य-वर्णन में उच्चकोटि की कविकल्पना के दर्शन होते हैं। वह नर्तकी सदृश प्रकाशमान वस्त्रों से आवेष्टित चित्रित की गयी है। प्राची क्षितिज पर उदित होकर वह रजनी के अन्धकार को दूर कर देती है। वह द्यौ की पुत्री तथा श्याम रजनी की भास्वर भगिनी है। वह सूर्य की प्रणयिनी है तथा उसी की प्रभा से उद्भासित होती है। सूर्य उसी के मार्ग का अनुसरण नवयुवक की भाँति करता है। वह प्राची क्षितिज पर भव्य वस्त्रों से सुसज्जित होती हुई अपनी मोहिनी क्रियायें प्रकट करती है। उसका रंग हिरण्यवर्ण का है तथा उसके सुवर्णमय रथ को लाल रंग वाले सुन्दर और सुदक्ष घोड़े खींचते हैं जिससे यह आकाश में पहुँच जाती है। यह लोगों को प्रातःकाल में जगाकर प्रातःकालीन अग्निहोत्र के लिए प्रेरित करती है। सूर्य से प्रथम उदित होने के कारण उसे कहीं-कहीं सूर्य की जननी कहा गया है तथा आकाश में उदित होने के कारण दिव की पुत्री के रूप में चित्रित की गयी है। उसे मघोनी (दानशील)

विश्ववारा (समस्त प्राणियों के द्वारा वरने योग्य), सुभगा तथा रेवती (धन से युक्त) आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। नित्य प्रति नियमित रूप से उदित होकर यह प्रकृति के नियम का पालन करती है।

इन्द्र—इन्द्र अन्तरिक्षस्थान के प्रधान देवता हैं। ऋग्वेद में उनकी स्तुति चतुर्थांश सूक्तों मे की गयी है। वे वैदिक आर्यों के लोकप्रिय एवं राष्ट्रीय देवता है। इनके स्वरूप का वर्णन आलंकारिक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। उनका रंग भूरा है और केश तथा दाढ़ी का भी रंग भूरा है। वे अत्यन्त शक्तिमान् होने के कारण सभी देवताओं को अभिभूत करते है। वे चंचल पृथ्वी एवं हिलनेवाले पर्वतों को स्थिर कर देते है। इन्द्र अत्यन्त बलशाली एवं गठीले शरीर के हैं। वे हाथ मे वज्र धारण करते हैं। उनकी हनु अत्यन्त सुन्दर एवं बाहु बलवान् हैं। उनका वज्र त्वष्टा द्वारा लोहे से निर्मित है जिसका रंग सुनहला भूरा, तेज तथा अनेक सिरों से युक्त है। वज्र धारण करने से 'वज्रबाहु' या 'वज्री' कहे गये हैं। वे भूरे रंग के दो घोड़ों से युक्त रथ पर चढ कर शत्रुओ के साथ युद्ध करते हैं। इन्द्र सोमपान के अधिक अभ्यासी हैं, अतः उन्हे 'सोमपा' कहते है। सोम-पान से उनमे उत्साह एवं वीरता का भाव आता है। वृत्र के युद्ध मे उन्होने सोमरस से भरे तीन तालाबो का पान कर लिया था। उनकी पत्नी इन्द्राणी का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वे शचीपति के रूप में वर्णित हैं। उन्होने वृत्र का नाश किया है जो अकाल का असुर है। उन्होने वृत्रासुर का बध कर अवरुद्ध जल को मुक्त किया तथा पर्वतो की उन्नति रोकी। वे पर्वतो को चूर-चूर कर जल को निकाल देते है। वृत्रकथा के कारण उनका नाम वृत्रहत् पडा है। ऋग्वेद के प्रारम्भिक युग मे इन्द्र और वरुण का महत्त्व समान था किन्तु उत्तर वैदिक युग मे इन्द्र की महत्ता अधिक हो गयी। ब्राह्मण एवं पौराणिक युग में इन्द्र की संज्ञा प्रदान की गयी। आर्यों को विजय प्रदान करनेवाले देवता के रूप मे इन्द्र की भूरिशः प्रशसा की गयी है तथा उनकी वीरता के भी गीत गाये गए हैं। 'इन्द्रदेव के सामने न बिजली टिक सकी, न मेघो की गर्जना। उसके सामने फैला हुआ हिम लुप्त हो गया तथा ओलों की वर्षा भी लुप्त से गयी। इनका वृत्रासुर के साथ भीषण संग्राम हुआ और अन्त में शक्तिशाली इन्द्र की विजय हुई।' ऋग्वेद १।३२।१३। 'अनवरत जल की धारा में वृत्रासुर जा गिरा और उसके शव को जलधारा प्रवाहित कर ले गयी। वह असुर सदा के लिए अन्धतमिस्र में अन्तर्हित हो गया।' ऋग्वेद १।३२।१४ 'जिसने इस विशाल पृथ्वी को काँपती हुई अवस्था में सुस्थिर किया, जिसने उपद्रव मचाने वाले पर्वतों का शमन किया, जिसने अन्तरिक्ष को माप डाला और आकाश का स्तम्भन किया, वही, हे मानवो! यह इन्द्र है।' ऋग्वेद २।१२।२।

रुद्र—ऋग्वेद के केवल तीन सूक्तो (प्रथम मण्डल का ११४ वां, द्वितीय मण्डल का ३३ वां तथा ७ मण्डल का ४६ वां सूक्त) मे रुद्र की स्तुति की गयी है। इनका महत्त्व, अग्नि, वरुण तथा इन्द्र आदि देवताओ की भांति नही है। पर यह स्थिति केवल ऋग्वेद मे ही है, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में उन्हें कुछ अवश्य ही अधिक महत्व प्राप्त हुआ है। यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय 'रुद्राध्याय' कहा जाता है। ऋग्वेद में

उनके स्वरूप का इस प्रकार वर्णन है—वे बलिष्ठ शरीर वाले तथा जटाजूट से युक्त मस्तक वाले हैं। उनके होठ अत्यन्त सुन्दर हैं जिससे उन्हें 'सुशिप्रः' कहा गया है। उनकी आकृति देदीप्यमान है तथा जटाओं का रङ्ग भूरा है। वे नाना प्रकार का रूप धारण करते हैं तथा उनके अङ्गों मे सुवर्ण के विभूषण चमकते रहते हैं। रुद्र रथ पर चढ़ते हैं। रुद्रसूक्तो में उनके भयंकर एवं दारुण रूप का वर्णन है। यजुर्वेद के रुद्राध्याय में उन्हें सहस्रनेत्र वाला कहा गया है और वे नीलग्रीव बताये गये हैं। उनके कंठ का रंग उजला है (शितिकण्ठ) तथा सिर पर जटाजूट है। उनके केशों का रङ्ग लाल या नीला है। कहीं-कहीं उन्हें मुण्डित केश भी कहा गया है। वे प्रायशः धनुष धारण किये हुए वर्णित हैं तथा कहीं-कहीं वज्र एवं विद्युन्मय अस्त्र धारण किये हुए चित्रित किये गये हैं। वे अन्तरिक्ष के 'लोहित वराह' हैं, उनका स्वरूप भीषण तथा घातक है। रुद्रसूक्तों मे वे प्रायः भयानक देवता के रूप मे वर्णित है, पर परवर्ती वैदिक साहित्य में उनका रूप और भी अधिक उग्र हो गया है तथा वे संहारकारी प्रकट हुए हैं। ऋग्वेद में 'शिव' नाम भी रुद्र के ही विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। उनका रूप कहीं भी अपकारी नहीं है, क्योकि वे कष्ट-शमन के साथ-ही-साथ वरप्राप्ति तथा मानव और पशुवर्ग के कल्याण के लिए भी स्तुत किये गए है। उनका नाम त्र्यम्बक भी है और इसका प्रयोग ऋग्वेद के एक मन्त्र में किया गया है—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। ७।५३।१४। रुद्र अग्नि के प्रतीक हैं और अग्नि के भौतिक आधार पर ही उनकी कल्पना की गयी है। अग्नि की उठती हुई शिखा के रूप मे ऊर्ध्व शिवलिंग की भावना की गयी है।

मरुत—मरुत देवता रुद्र के पुत्र के रूप में वर्णित हैं। ऋग्वेद के ३३ सूक्तो में स्वतन्त्र रूप से तथा ७ सूक्तों मे इन्द्र के साथ उनका वर्णन किया गया है। उनकी संख्या कहीं २१ और कहीं १०० बतलायी गयी है। रङ्ग-बिरङ्गे जलद-धेनु 'प्रश्नि' उनकी माता है। उनकी पत्नी का नाम रोदसी देवी है और वे उनके रथ पर आरूढ़ रहती हैं। उनका रङ्ग सुवर्ण के समान तथा अग्नि के सदृश प्रकाशपूर्ण है। उनका प्रभाव अपूर्व है जिसके समक्ष पर्वत एवं द्यावापृथिवी कांपते रहते हैं। उनका प्रधान कार्य जल की वर्षा करना है जिससे वे पृथ्वी को ढँक लेते हैं। वे इन्द्र के प्रधान सहायक होकर वृत्रासुर के वध में सहायता करते हैं। उनकी प्रार्थना विपत्तियों से रक्षा करने के लिए, रोग का निवारण करने के लिए तथा वृष्टि करने के लिये की गयी है। विद्युत से चमकते हुए सुवर्णमय रथ पर वे आरूढ़ रहते हैं। उनका स्वरूप वन्य वराह की भांति भीषण चित्रित किया गया है।

अग्नि—पृथिवी स्थान के देवताओं में अग्नि प्रधान हैं। वे यज्ञीय अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी स्तुति लगभग दो सौ सूक्तों मे की गयी है जिससे प्राधान्य की दृष्टि से उनका स्थान इन्द्र के बाद सिद्ध होता है। उनका स्वरूप गर्जनशील वृषभ के सदृश कहा गया है। उत्पत्ति काल में वे एक बछड़े की भांति एवं प्रज्वलित होने पर देवताओं को लानेवाले अश्व की तरह प्रतीत होते हैं। उनकी ज्वाला को

सौर की किरणों की तरह, उषा की प्रभा एवं विद्युत की छटा की भांति कहा गया है। उनके भोजन हैं—काष्ठ और घृत तथा आज्य पीनेवाले पदार्थ। उन्हें कभी तो द्यावापृथिवी का पुत्र कहा गया है और कभी वे द्यौः के सूनु कहे गए हैं। उनका निवासस्थान स्वर्ग है जहां से मातरिश्वा ने मानव-कल्याण के लिए उन्हें भूतल पर उतारा है।

सोम—सोम की स्तुति १२० सूक्तों में गयी है। उसका निवासस्थान स्वर्ग माना गया है पर कहीं उसे पर्वत से उत्पन्न होने वाला माना गया है। इसका पान कर इन्द्र मदमत्त होकर वृत्रासुर से युद्ध करते हैं। इसे स्वर्ग का पुत्र, स्वर्ग का दूध तथा स्वर्ग का निवासी कहा गया है। यह अमृत-प्रदायी है। इसे वनस्पति भी कहते हैं।

आधारग्रन्थ—१ वैदिक दर्शन—(२ भागों में)ए० बी० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. वैदिक मैथोलॉजी (हिन्दी अनुवाद) मैकडोनल एवं कीथ—अनु० श्री रामकुमार राय। ३. वैदिक देवताशास्त्र—वैदिक मैथोलॉजी का हिन्दी अनुवाद, अनु० डॉ० सूर्यकान्तशास्त्री। ४. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय। ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैक्डोनल (हिन्दी अनुवाद भाग १) ६. ऋग्वेदिक आर्य—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन।

वैदिक साहित्य—वेद और वैदिक साहित्य दो भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। वेद से केवल चार मन्त्र संहिताओं का ज्ञान होता है—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, तो वैदिक साहित्य वेद-विषयक समस्त वाङ्मय का द्योतक है जिसके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं वेदांग आते है। वेद के चार विभाग हैं—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। संहिता भाग में मन्त्रों का संग्रह है, जिसमें स्तुतियां हैं। इनमें विभिन्न ऋषि मुनियों के अनुभवसिद्ध आध्यात्मिक विचार संगृहीत हैं। संहिताभाग के चार खण्ड है—ऋक्, साम, यजुः और अथर्व। आगे चलकर कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड के आधार पर ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रन्थों का निर्माण हुआ। ब्राह्मणग्रन्थों में मन्त्रों के विधिभाग की व्याख्या की गयी है या याज्ञिक अनुष्ठानों एवं विधि-विधानों का वर्णन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थ उन व्यक्तियो के लिए उपयोगी हैं जो वीतराग होकर अरण्य का सेवन करते हुए शान्त वातावरण मे भगवद् उपासना में लीन रहते है। इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित वैदिक कर्मों या याज्ञिक कार्यों के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन किया गया है। उपनिषद् वेदो के अन्तिम भाग हैं और वे ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध है। इनमें वैदिक मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्या है।

ऋग्वेद—यह वैदिक साहित्यका सुमेरु है। अन्य तीन वेद किसी-न-किसी रूप से ऋग्वेद से प्रभावित हैं। प्रारम्भ मे इसकी पाँच शाखाएँ थी—शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूक्य पर इस समय केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध है। इसके दो क्रम है—अष्टक एवं मण्डल। प्रथम क्रम के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ अष्टकों में विभक्त है और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित है। अध्यायों की संख्या ६४ एवं वर्गों की संख्या २०६ है। मंडलक्रम

के अनुसार ऋग्वेद दस मण्डलों मे विभक्त है जिनमें १०१७ सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में कई मन्त्र हैं। मन्त्रों की संख्या १०५८० है। [दे० ऋग्वेद]।

यजुर्वेद—यजुष् शब्द का अर्थ है पूजा और यज्ञ। इसमें आध्वर्य कर्म के लिए प्रयुक्त याजुष संगृहीत है। यह दो भागों मे विभक्त है—कृष्ण एवं शुक्ल यजुर्वेद। ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र यजुर्वेद मे संगृहीत है [दे० यजुर्वेद]।

सामवेद—सामवेद मे सामगानो का संग्रह है जो उद्गाता नामक ऋत्विज के द्वारा उच्चस्वर मे गाये जाते थे। इसमे १८७५ ऋचाएं हैं जिनमें १०७१ ऋचायें तो ऋग्वेद की ही हैं, शेष १०५ मन्त्र नवीन हैं।

अथर्ववेद—इसमे अभिचार या मारण, मोहन, उच्चाटन मन्त्रों का संग्रह है। यह बीस काण्डों मे विभक्त है। इसमें भी ऋग्वेद के बारह सौ मन्त्र हैं।

ब्राह्मण—ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना गद्य में हुई है। प्रत्येक वेद के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण हैं। इनका प्रधान विषय है कर्मकाण्ड। इनमे यज्ञीय कर्मों तथा मन्त्रों के यज्ञ-सम्बन्धी विनियोग वर्णित हैं तथा अनेकानेक लौकिक एवं आध्यात्मिक आख्यानो का कथन किया गया है [दे० ब्राह्मण]।

आरण्यक—ये ब्राह्मण ग्रन्थो के ही परिशिष्ट है। इनमें दर्शन सम्बन्धी विचार भरे पड़े हैं [दे० आरण्यक]।

उपनिषद्—वेदो के अन्तिम भाग को उपनिषद् कहा जाता है। इनका प्रतिपाद्य है ब्रह्मविद्या। उपनिषदो की संख्या १०८ है पर उनमे ११ प्रमुख है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वतर [दे० उपनिषद]।

वेदाग—वेदागों की संख्या ६ है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदो की भाषा की शुद्धता एवं उच्चारण को सुरक्षित रखने के लिए शिक्षा-ग्रन्थो की रचना हुई है। कल्प के चार विभाग हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र। प्रत्येक वेद के अलग-अलग कल्पसूत्र है। श्रौतसूत्रो मे विविध यज्ञो का विधान तथा गृह्यसूत्रो मे सामाजिक संस्कारों—विवाह, उपनयन एवं श्राद्ध का वर्णन है। धर्मसूत्रो मे चारो वर्णों एवं आश्रमो के कर्त्तव्य-कर्म का विवेचन एवं शुल्ब सूत्रो मे वेदिकामापन-विधि का वर्णन है [दे० वेदांग]।

व्याकरण—सम्प्रति वैदिक व्याकरण उपलब्ध नहीं है। पाणिनि-व्याकरण मे ही वेदो का व्याकरण प्रस्तुत किया गया है।

निरुक्त—निरुक्त मे वैदिक शब्दो की व्युत्पत्ति दी गयी है। निघण्टु की टीका का नाम निरुक्त है और निघण्टु मे चुने हुए वैदिक शब्द हैं [दे० निरुक्त]।

छन्द—वेदों की रचना छन्दोबद्ध है। इनमे कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग है। जिनका विश्लेषण प्रातिशाख्यों तथा पिंगल कृत 'छन्दःसूत्र' मे किया गया है [दे० छन्द]।

ज्योतिष—यज्ञ-सम्पादन के लिए कालज्ञान की आवश्यकता को देखते हुए ज्योतिष-ग्रन्थों की रचना हुई है। इनमे दिन, रात, ऋतु, मास, वर्ष, नक्षत्र आदि का सम्यक्

अनुशीलन किया गया है। 'वेदांगज्योतिष' एकमात्र वैदिक ज्योतिष का ग्रन्थ है जिसके रचयिता लगध मुनि हैं। ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है [दे० ज्योतिष]।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

वैयाघ्रपाद—संस्कृत के प्राचीन वैयाकरण (पाणिनि के पूर्ववर्ती) जिनका समय मीमांसकजी ने ३१०० वि० पू० माना है। वैयाघ्रपाद का उल्लेख 'काशिका' में व्याकरण-प्रवक्ता के रूप में किया गया है। गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः। काशिका ७।१।९४। इनके पिता महर्षि वसिष्ठ थे इस बात का उल्लेख महाभारत के अनुशासनपर्व में है—व्याघ्रयोन्यां ततो जाता वसिष्ठस्य महात्मनः। एकोनविंशतिः पुत्राः ख्याता व्याघ्रपदादयः॥ ५३।३०। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण (१०।६) जैमिनि ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (३।७।३।२॥, ४।९।१।१) एवं शांख्यायन आरण्यक (९।७॥) में भी वैयाघ्रपाद का नाम उपलब्ध होता है। काशिका के एक उदाहरण से ज्ञात होता है कि वैयाघ्रपादीय व्याकरण में दस अध्याय रहे होंगे। 'दशकाः वैयाघ्रपदीयाः'। ४।२६।५। दशका वैयाघ्रपदीयम्' काशिका ५।१।५८। बंगला के प्रसिद्ध 'व्याकरण शास्त्रेतिहास' के लेखक श्रीहाल्दार ने इनके व्याकरण का नाम वैयाघ्रपद एवं इनका नाम व्याघ्रपात् लिखा है, किन्तु मीमांसकजी ने प्राचीन उद्धरणों के आधार पर इनके मत का खंडन करते हुए 'वैयाघ्रपाद' नाम को ही प्रामाणिक माना है। इस सम्बन्ध मे मीमांसकजी ने अपना मत स्थिर करते हुए कहा है कि 'महाभाष्य' म एक अन्य व्याघ्रपात् नामक वैयाकरण का उल्लेख है, किन्तु वे वैयाघ्रपाद से अभिन्न नहीं हैं। 'द्दा, महाभाष्य ६।२।२६ में एक पाठ है—आपिशलपाणिनीयव्याडीयगौतमीयाः'। इसमे व्याडीय का एक पाठान्तर 'व्याघ्रपदीय' है। यदि यह पाठ प्राचीन हो तो मानना होगा कि आचार्य 'व्याघ्रपत्' ने भी किसी व्याकरणशास्त्र का प्रवचन किया था। 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' पृ० १२४ (प्रथम भाग)। इनके सम्बन्ध में अन्य अधिक विवरण प्राप्त नहीं होते।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

वैशेषिक दर्शन—यह महर्षि कणाद द्वारा प्रवर्तित भारतीय दर्शन का एक सम्प्रदाय है। 'विशेष' नामक पदार्थ की विशद विवेचना करने के कारण इसे वैशेषिक कहा जाता है। कणाद का वास्तविक नाम 'उलूक' था, किन्तु कणो पर जीवन धारण करने के कारण उन्हें कणाद कहा गया। वैशेषिक दर्शन को 'औलूक्यदर्शन भी कहा जाता है। 'वैशेषिकसूत्र' इस दर्शन का मूल ग्रन्थ है, जिसकी रचना कणाद ने की थी। इसमे दस अध्याय है और सूत्रो की संख्या ३७० है। प्रत्येक अध्याय दो-दो आह्निकों में विभाजित है। इसके ऊपर रावण ने भाष्य लिखा था, जो 'रावणभाष्य' के नाम से प्राचीन ग्रन्थों में निर्दिष्ट है। किन्तु, यह अभी तक अनुपलब्ध है। इस पर प्रशस्तपाद का 'पदार्थधर्म-सग्रह' नामक प्रसिद्ध भाष्य है जो मौलिक ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित है। प्रशस्तपादभाष्य की दो टीकाएं हैं—उदयनाचार्य की 'किरणावली' एवं श्रीधराचार्य की 'न्यायकंदली'। इसके बाद वैशेषिक दर्शन के जितने भी ग्रन्थ लिखे गये सबों में न्याय और वैशेषिक का मिश्रण है। इनमें शिवादित्य की 'सप्तपदार्थी',

लौलाक्षिभास्कर की 'तर्ककौमुदी', वल्लभाचार्य की 'न्यायलीलावती' एवं विश्वनाथ पंचानन का 'भाषा-परिच्छेद' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

तत्त्वमीमांसा—वैशेषिक दर्शन में संसार की वस्तुओं को 'पदार्थ' कहा जाता है। पदार्थ का अर्थ 'नामधारण करनेवाली वस्तु' है। इसे (पदार्थ को) प्रमिति (ज्ञान) का विषय होना भी कहा गया है। अतः पदार्थ के दो लक्षण हुए ज्ञेयत्व एवं अभिधेयत्व।

द्रव्य—'जिसमें क्रिया और गुण हो और जो समवायी कारण हो, उसे द्रव्य कहते हैं। वैशेषिक सूत्र १।१।१५। द्रव्य से ही नयी वस्तुएं बनायी या गढ़ी जाती हैं, अतः यह किसी भी कार्य का उपादान कारण होता है। इसमें गुण और क्रिया का भी आधार रहता है। द्रव्य के बिना कोई भी कर्म और गुण नहीं रह सकते। इनके अनुसार द्रव्य नौ है—पृथ्वी, तेज, जल, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन। इनमें प्रथम पांच को 'पंचभूत' कहा जाता है। पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु के परमाणु नित्य होते हैं और इनसे निर्मित पदार्थ अनित्य।

पृथ्वी—इसका गुण गन्ध है। अन्य वस्तुओं, जैसे जल और वायु में भी जो गन्ध का अनुभव होता है वह पृथ्वी का ही तत्व या अंश है, जो उनमे मिल गया है। जल का गुण रस है, तेज का रूप, वायु का स्पर्श तथा आकाश का शब्द। इन पाँच गुणों का प्रत्यक्षीकरण पांच बाह्येन्द्रियों के द्वारा होता है। पृथ्वी दो प्रकार की है—नित्य तथा अनित्य। इसमें (पृथ्वी में) गन्ध के अतिरिक्त रूप, रस तथा स्पर्श भी हैं जो अग्नि, जल और वायु के तत्व हैं। वायु मे अपने गुण, स्पर्श के अतिरिक्त तेज और जल के कारण उष्णता तथा शीतलता भी पायी जाती है। आकाश मे किसी अन्य द्रव्य का गुण नहीं पाया जाता। तेज मे अपने स्वाभाविक गुण के अतिरिक्त वायु का गुण स्पर्श भी वर्त्तमान रहता है तथा जल मे भी अन्य द्रव्य के संयोग से रूप एवं स्पर्श भी प्रकट होते हैं। इनमे आकाश न तो किसी का गुण ग्रहण करता है और न अपना गुण किसी को देता है। आकाश सर्वव्यापी तथा अपरिमित है। वह शब्द का सर्वव्यापी आधार है और शब्द से ही उसका ज्ञान होता है। आकाश की तरह दिक् और काल भी अप्रत्यक्ष तथा अगोचर तत्व है। आकाश तो शब्द से जाना भी जाता है पर दिक् का ज्ञान नहीं होता। यहाँ, वहाँ निकट तथा दूर इन प्रत्ययों का कारण दिक् होता है। आकाश, काल और दिक् सभी निरवयव, सर्वव्यापी एवं उपाधि-भेद से अनेक ज्ञात होते हैं तथा इनके अंश भी परस्पर भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए घट का आकाश वास्तविक आकाश से भिन्न है तथा पूर्व-पश्चिम एवं 'दिन-घंटा' आदि भी दिक् और काल के औपाधिक भेद हैं [दे० भारतीय दर्शन—चटर्जी-दत्त पृ० १५३]।

आत्मा की सिद्धि—शरीर के कार्य या व्यापार के द्वारा जिस चेतनता का अनुमान या ज्ञान हो उसे आत्मा कहते हैं। यह चैतन्य का आधार तथा नित्य और सर्वव्यापी तत्त्व होता है। इसके दो प्रकार हैं—जीवात्मा तथा परमात्मा। जीवात्मा का ज्ञान सुख-दुःख के विशेष अनुभवों से ही होता है। भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न जीवात्माओं

के रहने से इसकी अनेकता सिद्ध हो जाती है। परमात्मा या ईश्वर जगत् का कर्त्ता है और उसका अनुमान इसी रूप में किया जाता है। वह एक है। जीवात्मा के आन्तरिक गुणों को प्रकट करने वाला जो साधन है, वह मन कहलाता है। यह परमाणु रूप होने के कारण दिखाई नहीं पड़ता, पर इसके अस्तित्व का दो कारणों से ज्ञान होता है। क—जिस प्रकार संसार के बाह्य पदार्थों का ज्ञान बाह्येन्द्रियों से होता है, उसी प्रकार आभ्यन्तरिक पदार्थों (सुखदुःखादि) का ज्ञान आन्तरिक साधन के द्वारा ही होगा और वह साधन मन ही है। ख—आत्मा, इन्द्रिय तथा विषय इन तीनों के रहने से ही किसी चीज का ज्ञान होता है, किन्तु कभी ऐसा भी होता है कि तीनों के रहने पर भी विषय का ज्ञान नहीं होता। उस समय आत्मा, इन्द्रिय और विषय तीनों ही विद्यमान रहते है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी विषय के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए उपर्युक्त तीनों साधन ही पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि उसके लिए मन की भी आवश्यकता होती है।

गुण—वैशेषिकसूत्र मे गुण की परिभाषा इस प्रकार है—'जो द्रव्य के आश्रित हो, जो आप गुणरहित हो, जो संयोग और वियोग का उत्पादक कारण न हो, और जो किसी अन्य गुण की उपेक्षा न करे, वह गुण है।' गुण द्रव्य पर आश्रित रहता है, पर उसमे कोई अन्य गुण नहीं होता। गुण की चार विशेषतायें प्रदर्शित की गयी हैं—क—द्रव्य और गुण सापेक्ष तथा एक दूसरे से मिले रहते हैं। गुण परतन्त्र होते हैं और द्रव्य के (रूप, रस, गन्ध आदि) बिना रह नहीं सकते। ख—गुण संयोग और वियोग का कारण नही होता। ग—वह अन्य गुण पर आश्रित नहीं होता। घ—इसमे कोई गुण या कर्म नही होता। गुणो की संख्या २४ है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रव्यत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म।

कर्म—'वैशेषिकसूत्र' मे कर्म का लक्षण इस प्रकार है—'जो द्रव्य पर आश्रित हो, गुण से रहित हो, और किसी अन्य पदार्थ की अपेक्षा न करता हुआ, संयोग-विभाग का कारण हो, वह कर्म है' (१।१।१७)। इससे यह स्पष्ट होता है कि कर्म स्वतन्त्र न होकर किसी कर्त्ता पर ही आश्रित रहता है। इसमे गुण नही होता, क्योंकि गुण कर्म नहीं कर सकता। गुण और कर्म दोनो ही द्रव्य पर आश्रित होते हैं। कर्म में गुण नहीं रहता। द्रव्य, गुण और कर्म मे, द्रव्य प्रधान होता है और शेष दोनो गौण होते हैं। कर्म पांच प्रकार का होता है—उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अवक्षेपण (नीचे फेकना), आकुञ्चन (सिकुडना), प्रसारण (फैलाना) और गमन (जाना)।

सामान्य—न्याय और वैशेषिक मे सामान्य सबन्धी मत 'वस्तुवाद' कहा जाता है। सामान्य 'जाति' को कहते हैं। वैशेषिक दर्शन के अनुसार सामान्य नित्य होता है तथा वस्तुओं मे भिन्न होकर भी उनमे समवेत रहता है। जैसे, मनुष्य रहे या मर जाएं, किन्तु मनुष्यत्व बराबर बना रहेगा। यह एक होते हुए भी अनेकानुगत होता है, जैसे,—एक गोत्व अनेक गौओं मे विद्यमान रहता है। इसके तीन भेद होते हैं—पर, अपर तथा परापर। जो सामान्य सबसे अधिक व्यक्तियो में विद्यमान हो वह पर, जो सबसे

कम व्यापक हो वह अपर और मध्यवालेको परापर कहते हैं। सत्ता पर सामान्य का, घटत्व अपर सामान्य का एवं द्रव्यत्व परापर सामान्य का उदाहरण है।

विशेष—यह सामान्य के विपरीत होता है। उस द्रव्य को विशेष कहते हैं जो निरवयव होने के कारण नित्य होता है। ऐसे द्रव्यों में आकाश, दिक्, काल, आत्मा और मन आते हैं। एक श्रेणी के समान गुणवाले व्यक्तियों के पारस्परिक भेद को सिद्ध करने वाला पदार्थ 'विशेष' ही है।

समवाय—सम्बन्ध के दो प्रकार होते हैं—संयोग और समवाय। भिन्न-भिन्न वस्तुओं का थोड़ी देर के लिए परस्पर मिल जाना संयोग है। यह सम्बन्ध अनित्य होता है। जैसे,—नदी के जल के साथ नाव का सम्बन्ध। समवाय सम्बन्ध नित्य होता है। 'यह दो पदार्थों का वह सम्बन्ध होता है जिसके कारण एक दूसरे में समवेत रहता है'। जैसे,—कार्य-कारण सबन्ध।

अभाव—यह दो प्रकार का होता है—संसर्गाभाव तथा अन्योन्याभाव। किसी वस्तु का किसी वस्तु में न होना संसर्गाभाव है। दो पदार्थों में होने वाले संसर्ग के अभाव या निषेध को ही संसर्गाभाव कहते हैं। जैसे, अग्नि में ठंडक का अभाव। एक वस्तु का अन्य वस्तु न होना अन्योन्याभाव है, जैसे अग्नि का जल न होना। संसर्गाभाव तीन प्रकार का होता है—प्रागभाव, ध्वंसाभाव तथा अत्यन्ताभाव। उत्पत्ति के पूर्व किसी वस्तु में किसी वस्तु के अभाव या कारण मे कार्य के अभाव को प्रागभाव कहते हैं। जैसे, उत्पत्ति के पूर्व मिट्टी में घट का अभाव। उत्पत्ति के बाद कारण मे कार्य का अभाव होना प्रध्वंसाभाव है। जैसे, फूटे हुए घड़े के टुकड़े मे घड़े का अभाव। दो वस्तुओं मे त्रैकालिक सम्बन्ध के अभाव का अत्यन्ताभाव कहते हैं। यह शाश्वत या अनादि और अनन्त होता है।

सृष्टि तथा प्रलय—वैशेषिक मत को परमाणुवाद भी कहा जाता है। इसके अनुसार संसार के सभी द्रव्य चार प्रकार के परमाणुओं से निर्मित होते हैं। वे हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। वैशेषिकमत में आकाश, दिक्, काल, मन और आत्मा के परमाणु नहीं होते। वैशेषिक के परमाणुवाद का आधार आध्यात्मिक सिद्धान्त है। इसके अनुसार ईश्वर के द्वारा ही परमाणुओं की गति नियन्त्रित होती है तथा वह जीवों के अदृष्ट के अनुसार ही कर्मफल का भोग कराने के लिए परमाणुओं को क्रियाशील करता है। सृष्टि और प्रलय ईश्वर की इच्छा के अनुसार होते है। जब दो परमाणुओं का संयोग होता है तो उसे द्व्यणुक एवं तीन द्व्यणुकों का संयोग त्र्यणुक या त्रसरेणु कहा जाता है। ये सभी सूक्ष्म होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते तथा अनुमान के द्वारा ही इनका ज्ञान होता है। सारा संसार इन्हीं परमाणुओं के संयोग से बना है। जीव अपने बुद्धि, ज्ञान तथा कर्म के द्वारा ही सुख-दुःख का भोग करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सुख-दुःख कर्म-फल के नियम पर भी अवलम्बित हैं, केवल प्राकृतिक नियमों पर नहीं। सृष्टि और प्रलय के कर्त्ता महेश्वर माने गए हैं। वे जब चाहते हैं तब सृष्टि होती है और उनकी इच्छा से ही प्रलय होता है। इसका प्रवाह अनन्त और

अनादि काल से चला आ रहा है। प्रलय के समय विश्वात्मा ब्रह्मा अपना शरीर त्याग कर देते हैं और महेश्वर सृष्टि का संहार करने की इच्छा करते हैं। प्रलय में केवल शरीर ही नष्ट होता है, किन्तु आत्मा अनित्य होने के कारण नष्ट नहीं होता। वैशेषिक दर्शन में ईश्वर, जीवात्मा एवं परमाणु तीनों की सत्ता मान्य है। इससे वह ईश्वरवादी होते हुए भी अनेकवादी सिद्ध होता है।

आधारग्रन्थ—१. वैशेषिकदर्शन—पं० हरिमोहन झा। २. पदार्थशास्त्र—पं० आनन्द झा। ३. भारतीयदर्शन—चटर्जी और दत्त (हिन्दी अनुवाद)। ४. भारतीय दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ५. दर्शन-संग्रह—डॉ० दीवानचन्द्र। ६. हिन्दी वैशेषिक दर्शन—पं० ढुण्ढिराज शास्त्री (चौखम्बा प्रकाशन)। ७. वैशेषिकसूत्र—श्रीराम शर्मा (हिन्दी अनुवाद सहित)।

व्याकरण—वेदांगो मे व्याकरण का तीसरा स्थान है [दे० वेदाङ्ग]। इसे वेद का मुख माना जाता है—मुखं व्याकरणं स्मृतम्। वेद-पुरुष का मुख होने के कारण इसकी वेदांगो में प्रमुखता है। वेदों में भी व्याकरण की प्रशंसा में अनेक मन्त्र उपन्यस्त है। ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र मे शब्दशास्त्र या व्याकरण वृषभ के रूप में वर्णित है। इसके नाम, आख्यात (क्रिया), उपसर्ग और निपात चार सींग हैं तथा वर्त्तमान, भूत और भविष्य तीनो काल तीन पाद कहे गए हैं। सुप् और तिङ् दो सिर है तथा सातो विभक्तिया सात हाथ हैं। यह उर, कण्ठ और सिर तीन स्थानों में बंधा है। चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥ ऋग्वेद ४।५८।६। 'ऋग्वेद' के एक अन्य मन्त्र में व्याकरण के विशेषज्ञ एवं अनभिज्ञ की तुलना करते हुए कहा गया है कि व्याकरण से अनभिज्ञ पुरुष देखकर भी नही देखता और सुन कर भी नहीं सुनता, पर वैयाकरण के समक्ष वाणी अपने स्वरूप को उसी प्रकार प्रकट कर देती है, जिस प्रकार कामिनी अपने पति के समक्ष शोभन वस्त्रों को उतार देती है। उतत्वः पश्यन् न ददर्श वाचम् उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः॥ ऋग्वेद १०।७१।४ आचार्य वररुचि ने व्याकरण के अध्ययन के पांच प्रयोजन बताये हैं। पतञ्जलि के अनुसार व्याकरण के तेरह प्रयोजन होते हैं। उन्होने इस विषय का विवरण 'महाभाष्य' (पस्पशाह्निक) के प्रारम्भ मे किया है। प्रधान पांच प्रयोजन हैं—रक्षा, ऊह, आगम, लघु तथा असन्देह। रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् (महाभाष्य-पस्पशाह्निक)।

१. रक्षा—वेद की रक्षा ही व्याकरण-अध्ययन का प्रधान उद्देश्य है। वेदो का उपयोग यज्ञो के विधान मे होता है। किस मन्त्र का किस यज्ञ में उपयोग हो तथा किसका कहा विनियोग किया जाय, इसे वही बना सकता है जो वेदमन्त्रों के पदों का अर्थ अच्छी तरह से जान सके। यह कार्य वैयाकरण ही कर सकता है इसलिए वेद की रक्षा व्याकरण से ही संभव है। २. ऊह—नये पदो की कल्पना को 'ऊह' कहते हैं। यज्ञानुरूप विविध वैदिक मंत्रों के शब्दों को विभक्ति एवं लिंग-निर्णय करना आवश्यक है और यह कार्य कोई व्याकरण का ज्ञाता ही कर सकता है। ३. आगम—श्रुति मे वैयाकरण का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए ब्राह्मण को अंगों सहित वेदों का अध्ययन

आवश्यक बताया गया है। ४. लघु—लघुता के लिए व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य है। इसके द्वारा सभी शास्त्रों का रहस्य अल्पकाल में जाना जा सकता है। (लघुता लघु उपाय का द्योतक है)। ५. असन्देह—वैदिक शब्दों के सम्बन्ध में उत्पन्न सन्देह का निराकरण व्याकरण के द्वारा ही होता है।

उपर्युक्त पांच प्रयोजनो के अतिरिक्त पतञ्जलि ने तेरह अन्य प्रयोजनों का भी उल्लेख किया है। वे हैं—अपभाषण, दुष्टशब्द, अर्थज्ञान, धर्मलाभ, नामकरण आदि।

क. अपभाषण—शब्दों के अशुद्ध उच्चारण से दूर हटाने का कार्य व्याकरण करता है। वर्णों एवं शब्दो का शुद्ध उच्चारण करना आर्य है एवं अशुद्ध उच्चारण म्लेच्छ। अत: म्लेच्छ होने से बचने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। ख. दुष्टशब्द—शब्दो की शुद्धता एवं अशुद्धि का ज्ञान व्याकरण द्वारा ही होता है। अशुद्ध शब्दों के प्रयोग से अनर्थ हो जा सकता है। अतः दुष्ट शब्दों के प्रयोग से बचने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। ग. अर्थज्ञान—व्याकरण के अध्ययन के बिना वेद का अर्थज्ञान नहीं हो सकता। अर्थज्ञान होने पर ही शब्द-ज्ञान होता है। घ धर्मलाभ—शुद्ध शब्दो का प्रयोग करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और अपशब्दों का प्रयोग करनेवाला पाप का भाजन होता है। अत: धर्म-लाभ के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। ङ नामकरण—गृह्यकारों के अनुसार नवजात शिशु का नाम दशम दिन होना चाहिए। नामकरण के विशिष्ट नियमों के अनुसार वह कृदन्त होना चाहिए तद्धितान्त नही। इस विषय का ज्ञान केवल व्याकरण द्वारा ही संभव है। संस्कृत में वैदिक और लौकिक दोनों रूपो के अनेकानेक व्याकरण है जिनमे पाणिनि-व्याकरण अत्यन्त प्रसिद्ध है [अन्य व्याकरणो के विवरण के लिए दे० व्याकरण का इतिहास]।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

व्याकरण-शास्त्र का इतिहास—भारतवर्ष का व्याकरण शास्त्र विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रौढ़ विद्या है जिसका मूल रूप ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है। वैदिक मन्त्रो मे अनेक पदों की व्युत्पत्तियाँ उपलब्ध होती है। रामायण, गोपथ ब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद् तथा महाभारत मे शब्दशास्त्र के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। सर्वार्थाना व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते। तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा॥ महाभारत, उद्योग ४३।६१। भारतवर्ष में व्याकरणशास्त्र का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ है और इसके अन्तर्गत आधुनिक भाषा-विज्ञान के सभी अङ्गों का समावेश होता है। ऋग्वेद मे 'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा' (४-५८-३) तथा 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि' ऋग्० (१-१६४-४५)। उल्लिखित मन्त्रो की व्याख्या वैयाकरणिक पद्धति से करते हुए पतंजलि ने नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात इन शब्द-विभागों तथा तीन कालों और सात विभक्तियों की ओर संकेत किया है, एवं सायण ने भी उनका वैयाकरणिक अर्थ प्रस्तुत किया है। षडङ्ग शब्द के साथ ब्राह्मण-ग्रन्थों मे व्याकरण का भी निर्देश है। शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प एवं ज्योतिष इन छह वेदांगों को गोपथ ब्राह्मण, बोधायनादि

धर्मशास्त्र तथा वाल्मीकि रामायण में षडङ्ग के रूप में निर्दिष्ट किया गया है षडङ्ग विदस्तत् तथाधीमहे। गो० ब्रा० पू० १।२७। नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो ना बहुश्रुतः॥ बालकाण्ड ६।१५। ब्राह्मणों मे कृत, कुर्वत् और करिष्यत् शब्दों का प्रयोग लिंग, वचन तथा भूत, वर्त्तमान एवं भविष्यत् के अर्थ में हुआ है तथा आरण्यकों एवं उपनिषदों में भी वाणी के प्रसङ्गों के अन्तर्गत स्वर, ऊष्मन्, स्पर्श, धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, प्रत्यय, विभक्ति आदि शब्द प्रयुक्त हुए है। गोपथ ब्राह्मण में व्याकरणशास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख है (५।१।२४) ओङ्कारं पृच्छामः—को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपात; किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कतिभागः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण काल तक व्याकरण की रूपरेखा तैयार हो चुकी थी। आगे चल कर वैदिक शब्दो के निर्वचन एवं विवेचन के लिए अनेक शिक्षा ग्रन्थ, प्रातिशाख्य, तन्त्र, निरुक्त एवं व्याकरण लिखे गए जिनमे वैदिक पदो के स्वर, उच्चारण, समास, सन्धि, वृत्त एवं व्युत्पत्ति पर विचार किया गया।

भारतीय मनीषा के अनुसार समस्त विद्याओ का प्रवचन ब्रह्मा जी द्वारा हुआ है तथा वे ही प्रथम वैयाकरण हैं। ब्रह्मा के बाद बृहस्पति ने व्याकरण का प्रवचन किया और उनके बाद इन्द्र ने। महाभाष्य मे भी इस बात का उल्लेख है कि बृहस्पति ने इन्द्र के लिए प्रतिपद पाठ का शब्दोपदेश किया था—बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं सहस्रवर्षं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां पारायणं प्रोवाच। १।१।१। पाणिनि से पूर्व अनेक वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है जिससे विदित होता है कि संस्कृत मे उनसे पूर्व व्याकरण की स्वस्थ परम्परा बन चुकी थी और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था, किन्तु पाणिनि व्याकरण की भास्वरता में वे सभी निस्तेज एवं नष्ट हो गये पर उनकी छाप अष्टाध्यायी पर पडी रही। प्राक्पाणिनि वैयाकरणों मे इन्द्र, वायु, भारद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि, चारायण, काशकृत्स्न, वैयाघ्रपद, माध्यन्दिनी, रौढ़ि, शौनक, गौतम, व्याडि आदि तेरह प्राचीनतम आचार्य आते हैं। इनके अतिरिक्त दस ऐसे वैयाकरण हैं जिनका उल्लेख अष्टाध्यायी मे किया गया है, वे हैं— आपिशलि, (६।१।९२)। काश्यप (१।२।२५ तथा ८।४।६७), गार्ग्य (७।३।९९, ८।३।२०, ८।४।६७), गालव (६।३।६१,७।३।९९, ८।४।६७), चाक्रवर्मण, (६।१।१३०), शाकल्य (१।१।१६, ६।१।१२७, ८।३।१९), शाकटायन (८।३।१२, ८।४।५०), सेनक (५।४।११२), स्फोटायन (६।१।१२३), भारद्वाज (७।२।६३)। इस प्रकार प्राक्पाणिनीय परम्परा के प्रवर्तक तेईस आचार्य आते है, जिन्होने विभिन्न सम्प्रदायो की स्थापना कर संस्कृत व्याकरण को प्रौढ़ बनाया था। प्रसिद्ध वैयाकरणिक सम्प्रदायो मे ऐन्द्र सम्प्रदाय, भागुरीय सम्प्रदाय, कार्मन्द विवरण, काशकृत्स्न सम्प्रदाय, सेनकीय सम्प्रदाय, काश्यपीय व्याकरण, स्फोटायन, चाक्रवर्मणीय व्याकरण, आपिशलि, व्याकरण तथा व्याडीय व्याकरण-सम्प्रदाय हैं। डॉ० बर्नेल के अनुसार इनमें ऐन्द्र व्याकरण-शाखा प्राचीनतम शाखा थी और पाणिनि ने बहुत कुछ उनके मन्त्रों को लिया भी था। आज प्राक्पाणि-

नीय आचार्यों के ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं और उनका व्यक्तित्व अब रचयिता की अपेक्षा वक्ता एवं प्रवक्ता के रूप में अधिक उपलब्ध है। पाणिनि ने इनके विवेचन से लाभ उठाते हुए अपने ग्रन्थ को पूर्ण किया है। पाणिनि के आविर्भाव से संस्कृत-व्याकरण का रूप स्थिर हो गया और उसे प्रौढत्व प्राप्त हुआ। संस्कृत व्याकरण के इतिहास को मुख्यतः चार कालों में विभाजित किया जा सकता है—१—पूर्वपाणिनि काल—प्रारम्भ से पाणिनि तक, २—मुनित्रय काल—पाणिनि से पतंजलि तक, ३—व्याख्या काल—काशिका से १००० ईस्वी तक, ४—प्रक्रिया काल—(१००० ई० से १७०० ईस्वी तक), ५—इसका पाचवाँ काल आधुनिक व्याख्याताओं का है जब संस्कृत व्याकरण का अध्ययन एवं अनुशीलन पाश्चात्य पण्डितों ने तथा आधुनिक भारतीय विद्वानों ने किया।

पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि संस्कृत व्याकरण के त्रिमुनि के रूप में प्रसिद्ध हैं जिन्होने सूत्र, वार्तिक एवं भाष्य की रचना की। जब अवान्तर काल मे उत्पन्न हुए भाषा-भेद के कारण पाणिनि के सूत्रों से काम न चला तो उनकी न्यूनताओं की पूर्ति के लिए कात्यायन या वररुचि ने वार्तिको की रचना की। इनका जन्म पाणिनि के लगभग २०० वर्षों के पश्चात् हुआ। इनके कुछ तो वार्तिक गद्य रूप में हैं और कुछ छन्दोबद्ध हैं। कात्यायन या वररुचि के नाम से महाभाष्य मे 'वाररुचं काव्यं' का निर्देश किया गया है, जिससे पता चलता है कि इन्होंने किसी काव्य ग्रन्थ की भी रचना की थी। इनके नाम से अनेक श्लोक 'सुभाषितावली' एवं 'शार्ङ्गधरपद्धति' मे उपलब्ध होते हैं। 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी वररुचि के पद्य प्राप्त होते हैं। कवि वररुचि तथा वार्तिककार कात्यायन एक ही व्यक्ति है पर प्राकृत-प्रकाश का रचयिता के मत से वररुचि कोई भिन्न व्यक्ति है। राजशेखर के अनुसार इनके काव्य का नाम 'नीलकण्ठचरित' था। आगे चलकर पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर अनेक वार्तिक लिखे गए जिनमे भारद्वाज एवं सोनाग के वार्तिक पाठ प्रसिद्ध हैं। पतंजलि (दे० पतंजलि एवं महाभाष्य) ने अष्टाध्यायी के अतिरिक्त वार्तिको पर भी भाष्य लिखा तथा महाभाष्य के बाद भी कई भाष्य वार्तिको पर लिखे गए—जिनमें हेलाराज, राघवसू और राजरुद्र के नाम उल्लेखनीय है। संस्कृत व्याकरण का प्रौढ़ रूप पाणिनि में दिखाई पडा और कात्यायन के वार्तिकों से विकसित होकर महाभाष्य तक आकर चरम परिणति पर पहुँच गया तथा इसकी धारा यहीं आकर अवरुद्ध हो गयी। कालान्तर मे संस्कृत व्याकरण की धारा में नया मोड उपस्थित हुआ और व्याख्या काल के अन्तर्गत नवीन विचार-सरणियो का जन्म हुआ, किन्तु इन्होंने पाणिनि की भाँति नवीन व्याकरणिक उद्भावनाएँ नहीं कीं। इस युग के आचार्य पाणिनि और पतंजलि की व्याख्याएं एवं टीकाएं करते रहे और उनके स्पष्टीकरण मे ही व्याकरण की कतिपय नूतन धाराओं का विकास हुआ।

अष्टाध्यायी के वृत्तिकारों ने कुणि, माथुर, श्वोभूति, वररुचि, देवनंदी, दुर्विनीत, चुल्लिभट्ट, निर्लूर, जयादित्य, वामन, विमलमति, भर्तृश्वर, जयंतभट्ट, अभिनन्द, केशव, इन्दुमित्र, मैत्रेयरक्षित, पुरुषोत्तमदेव, सृष्टिधर, भट्टोजी दीक्षित आदि के नाम विशेष

उल्लेखनीय हैं। (इनके विवरण के लिए दे० अष्टाध्यायी के वृत्तिकार)। इनमे वामन और जयादित्य की संयुक्त वृत्ति काशिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काशिका में आठ अध्याय हैं जिनमें प्रारम्भिक पांच जयादित्य द्वारा तथा शेष तीन वामन द्वारा लिखे गए हैं। इत्सिग के यात्रा-विवरण से पता चलता है कि वामन की मृत्यु विक्रम ७१८ मे हुई थी। अष्टाध्यायी की वास्तविक व्याख्या काशिका में ही उपस्थित की गयी है। इसमें अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों पर सरल व्याख्या तथा अनुवृत्तियों का निर्देश करते हुए उदाहरण भी प्रस्तुत किये गए हैं। आगे चलकर काशिका की भी टीका लिखी गयी और अष्टाध्यायी के विचार अधिक स्पष्ट हुए। काशिका की व्याख्या का नाम है न्यास या काशिका-विवरण-पंजिका जिसके लेखक हैं जिनेन्द्रबुद्धि। काशिका की अन्य टीकाएं भी लिखी गयीं जिनमें हरदत्त की 'पदमंजरी' उल्लेख्य है (दे० काशिका के टीकाकार)। अष्टाध्यायी के आधार पर उसके सूत्रों को स्पष्ट करने के लिए परवर्त्ती काल में अत्यधिक प्रयत्न हुए जिससे तद्विषयक प्रभूत साहित्य रचा गया। महाभाष्य के ऊपर भी असंख्य ग्रन्थ टीकाओ और भाष्यो के रूप मे रचे गए। इनमें से कुछ तो टीकाएं नष्ट हो गयी हैं। बहुत कुछ हस्तलेखो में विद्यमान हैं, और कुछ का कुछ भी परिचय नहीं प्राप्त होता। महाभाष्य के टीकाकारों में भर्तृहरि कृत 'महाभाष्यदीपिका', कैयट कृत 'महाभाष्य प्रदीप', के नाम विशेष प्रसिद्ध है। अन्य टीकाकारों के नाम है—ज्येष्ठ कलश, मैत्रेयरक्षित, पुरुषोत्तमदेव, शेषनारायण, विष्णुमित्र, नीलकण्ठ, शेषविष्णु, शिवरामेन्द्रसरस्वती, आदि। (इनके विवरण के लिए देखिए महाभाष्य)। महाभाष्य का साहित्य आगे चलकर बहुत विस्तृत हो गया और कैयटरचित, 'महाभाष्यप्रदीप' की भी अनेक व्याख्याएं रची गयी। इनमें (चिंतामणिकृत) महाभाष्य कैयटप्रकाश, (नागनाथ महाभाष्यप्रदीपोद्योतन, रामचन्द्रकृत विवरण, ईश्वरानन्दकृत महाभाष्यप्रदीप विवरण, अन्नंभट्ट महाभाष्य प्रदीपोद्योतन, नारायण शास्त्री कृत महाभाष्य प्रदीप व्याख्या, नागेश भट्ट कृत महाभाष्यप्रदीपोद्योतन, लघुशब्देन्दुशेखर, बृहद्शब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, लघुमंजूषा, स्फोटवाद तथा महाभाष्य प्रत्याख्यान संग्रह के नाम प्रसिद्ध हैं। नागेशभट्ट के शिष्य वैद्यनाथ पायगुडे ने महाभाष्यप्रदीपोद्योतन पर 'छाया' नामक टीका लिखी है। इस प्रकार महाभाष्य की टीकाएं एवं उनकी टीकाओ की भी टीकाएं प्रस्तुत करते हुए सहस्रो ग्रन्थ लिखे गए और महाभाष्य विषयक विशाल साहित्य प्रस्तुत हुआ।

प्रक्रिया ग्रन्थ—इसी बीच पाणिनि-व्याकरण के सम्बन्ध मे अत्यन्त महत्त्व पूर्ण घटना घटी जिससे इसके अध्ययन-अध्यापन एवं विवेचन में युगान्तर का प्रवेश हुआ। इसे 'प्रक्रिया काल' कहा जाता है। हम ऊपर देख चुके हैं कि पाणिनि एवं पतंजलि सम्बन्धी प्रभूत साहित्य की रचना होती गयी और व्याकरण का विषय दिनानुदिन दुरूह होता गया। फलतः विद्वानो को पठन-पाठन की रीति मे परिवर्त्तन आवश्यक दिखाई पडा। पाणिनि की अष्टाध्यायी का जब तक पूरा अध्ययन नही किया जाता तब तक उसे किसी भी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि 'अष्टाध्यायी' की रचना विषयवार नहीं हुई है। उसके विभिन्न विषयो के सूत्र और नियम एक स्थान पर न होकर अनेक स्थलों पर बिखरे हुए हैं। इसलिए अल्पमेधस् या अल्प समय में व्याकरण का ज्ञान

प्राप्त करने के लिए अनेक व्याकरण प्रक्रियाक्रमानुसार लिखे गए। इनकी विशेषता यह है कि छात्र इन ग्रन्थों का जितना अंश पढ़ जाय उसे उस अंश का पूर्ण ज्ञान हो जायगा। अतः व्याकरण को अधिक सरल बनाने के लिए 'रूपमाला' नामक व्याकरण की रचना १३५० ई० में हुई जिसे विमल सरस्वती ने लिखा। इस ग्रंथ की रचना विषयवार 'कौमुदी' के ढङ्ग पर हुई थी। बाद में रामचन्द्र ने 'प्रक्रिया कौमुदी' एवं विट्ठलाचार्य तथा शेषकृष्ण ने उसकी व्याख्याएं लिखी। आगे चलकर 'प्रक्रियाकौमुदी' के आधार पर भट्टोजि दीक्षित (सं० १५१०–१५७५ के मध्य) ने प्रयोगक्रमानुसारी 'सिद्धान्त कौमुदी' नामक अष्टाध्यायी की टीका लिखी जिसमे पाणिनि के समस्त सूत्रों का समावेश किया गया था। इनके पूर्व 'रूपमाला' तथा 'प्रक्रियाकौमुदी' में पाणिनि के सभी सूत्र सन्निविष्ट नहीं किए गए थे। उस समय से अद्यावधि समस्त भारतवर्ष में 'सिद्धान्तकौमुदी' का ही अध्ययन-अध्यापन होता है और उसकी जड़ें जम चुकी हैं। सिद्धान्तकौमुदी की 'प्रौढ़मनोरमा' एवं 'बालमनोरमा' नामक टीकाएं हैं। सिद्धान्त-कौमुदी की भी अनेक टीकाएं रची गयी हैं और इसके व्याख्याताओं में रामनन्द की तत्त्वदीपिका (सं० १६८०–१७२०) तथा नागेशभट्ट (सं० १७२०–१७८०) के 'बृहच्छब्देन्दुशेखर तथा लघुशब्देन्दुशेखर' नामक ग्रंथ अत्यधिक महत्त्व के हैं।

दीक्षित की ही परम्परा में वरदराजाचार्य हुए जिन्होंने छात्रोपयोगी तीन व्याकरण ग्रन्थ लिखे—'मध्यसिद्धान्त कौमुदी' 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' तथा 'सारसिद्धान्त कौमुदी'। तीनों ही ग्रंथ प्रारम्भिक कक्षा के छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं और सम्प्रति समस्त भारत की प्रथमा एवं मध्यमा परीक्षाओं में इनका अध्यापन होता है।

पाणिनि के उत्तरवर्ती व्याकरण के सम्प्रदाय—संस्कृत साहित्य में पाणिनि-व्याकरण की ही अमिट छाप है, किन्तु इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी व्याकरण-शास्त्र का विकास हुआ और तत्सम्बन्धी कई धाराओं का भी उद्योतन हुआ। पाणिनि के परवर्त्ती व्याकरणिक सम्प्रदायों में, जो आज भी विद्यमान है, निम्नांकित हैं—१ चान्द्र-सम्प्रदाय, २ जैनेन्द्र-सम्प्रदाय, ३ शाकटायन सम्प्रदाय, ४ हैम-सम्प्रदाय, ५ कातंत्र-सम्प्रदाय, ६ सारस्वत-सम्प्रदाय, ७ बोपदेव और उनका सम्प्रदाय, ८ क्रमदीश्वर तथा जैनर सम्प्रदाय, ९ सौपद्म-सम्प्रदाय।

चान्द्र सम्प्रदाय—बौद्ध विद्वान् चन्द्रगोमी ने चान्द्र व्याकरण की रचना की थी। इनका समय ५०० ई० है। यह सम्प्रदाय लंका में अधिक प्रचलित हुआ। १३ वीं शताब्दी के बौद्धाचार्य काश्यप ने 'बालावबोध' नामक ग्रन्थ की रचना कर चान्द्र व्याकरण का परिष्कार किया था।

जैनेन्द्र सम्प्रदाय—जैनधर्मावलम्बियों ने अपने व्याकरण को जैनेन्द्र सम्प्रदाय का व्याकरण कहा है, जिसके रचयिता महावीर जिन थे। कहा जाता है कि जब महावीर आठ वर्ष के थे तभी उन्होंने इन्द्र से व्याकरण-सम्बन्धी प्रश्न किये थे और उनसे उत्तर के रूप मे जो व्याकरणसम्बन्धी विचार पाया उसे 'जिनेन्द्र' व्याकरण का रूप दिया। जिन और इन्द्र के सम्मिलित प्रयास के कारण इसका नाम जिनेन्द्र पड़ा है। इसमें एक सहस्र सूत्र हैं जिनमें सात सौ सूत्र अपने हैं तथा तीन सौ सूत्र संकलित हैं। इस पर

सोमदेव की टीका है। इसमें मौलिकता अल्प है और पाणिनि के सूत्रों को अपने सम्प्रदायानुसार ग्रहण कर लिया गया है।

शाकटायन-संप्रदाय—श्वेताम्बरीय जैन विद्वान् शाकटायन ने 'शब्दानुशासन' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिख कर शाकटायन सम्प्रदाय की परम्परा का प्रवर्त्तन किया, जिनका समय नवम शताब्दी है। इस पर उन्होंने स्वयं टीका लिखी जो 'अमोघवृत्ति' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के उपजीव्य पाणिनि, चान्द्र व्याकरण एवं जैनेन्द्र व्याकरण रहे हैं।

हैम सम्प्रदाय—प्रसिद्ध जैनाचार्य सिद्ध हेमचन्द्र ने (१०८८–११७२ ई०) 'शब्दानुशासन' नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ लिखा है जिस पर इन्होने 'बृहद्वृत्ति' नामक टीका लिखी है। अष्टाध्यायी की भाँति इसमें भी आठ अध्याय हैं तथा सूत्रों की संख्या ४५०० है। इसके अन्त में प्राकृत का भी व्याकरण दिया गया है। इस पर अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनमें 'हैमलघुप्रक्रिया' (विनयविजयाग्नि कृत) तथा 'हैमकोमुदी' (मेधाविजय कृत) प्रसिद्ध है।

कातंत्र सम्प्रदाय—शर्वशर्मा या शिवशर्मा द्वारा 'कातंत्रशाखा' का प्रवर्त्तन हुआ है जो कातंत्र, कौमार और कलाप के नाम से प्रसिद्ध है। इसका समय ई० पू० प्रथम शताब्दी है। इसमे कुल १४०० सूत्र थे जिस पर दुर्गासिंह की वृत्ति है।

सारस्वत सम्प्रदाय—नरेन्द्र नामक व्यक्ति (१३ वीं शताब्दी का मध्य) ने ७०० सूत्रो मे 'सारस्वत व्याकरण' की रचना की थी जिसमे पाणिनि के ही मत का समावेश है। इसका उद्देश्य व्याकरण का शीघ्रबोध कराना था।

बोपदेव एवं उनका सम्प्रदाय—बोपदेव ने 'मुग्धबोध' नामक व्याकरण की रचना की है। इनका समय १३ वीं शताब्दी है। इनका उद्देश्य था व्याकरण को सरल बनाना जिसके लिए इन्होने कातंत्र एवं पाणिनि का सहारा ग्रहण किया है। यह व्याकरण बहुत लोकप्रिय हुआ था। अन्य सम्प्रदायों का महत्त्व गौण है। भोज कृत सरस्वतीकण्ठाभरण—धारानरेश महाराज भोज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक बृहद् व्याकरण-ग्रन्थ लिखा है (समय १००५ से १०५४ ई०)। इसमें आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय ४ पादो में विभाजित है। इसकी सूत्रसंख्या ६४११ है। इसके प्रारम्भिक सात अध्यायो में लौकिक शब्दों का तथा आठवें अध्याय मे वैदिक शब्दों का सन्निवेश किया गया है तथा स्वर का भी विवेचन है।

जौमर शाखा—१३ वीं-१४ वीं शताब्दी के मध्य क्रमदीश्वर नामक वैयाकरण ने पाणिनिव्याकरण को संक्षिप्त कर 'संक्षिप्तसार' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। ये जौमर सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनके ग्रन्थ पर जमूरनन्दी ने टीका लिख कर जौमर शाखा का परिष्कार किया।

व्याकरण-दर्शन—संस्कृत व्याकरण शास्त्र का चरम विकास व्याकरण-दर्शन के रूप में हुआ है और अन्ततः वैयाकरणों ने शब्द को ब्रह्म मान कर उसे शब्द-ब्रह्म की संज्ञा दी है। व्याकरण-दर्शन की महत्त्वपूर्ण देन हैं—स्फोट-सिद्धान्त। व्याकरण के दार्शनिक रूप का प्रारम्भ पतंजलि के महाभाष्य से हुआ और इसका पूर्ण विकास हुआ भर्तृहरि

(पद्यशतक) के 'वाक्यपदीय' में (दे० वाक्यपदीय)। मंडन मिश्र ने 'स्फोट-सिद्धि' नामक प्रौढ़ ग्रन्थ लिखा जिसमें ३६ कारिकाएं है। भरतमिश्र ने 'स्फोटसिद्धि' पुस्तक लिखी है जिसमें तीन परिच्छेद हैं—प्रत्यक्ष, अर्थ एवं आगम। मूल ग्रन्थ कारिका में लिखा गया है और उसकी व्याख्या गद्य में है, और वह भी भरतमिश्र का लिखा हुआ है।

कालान्तर मे स्फोट-सिद्धान्त के ऊपर अनेक ग्रन्थ लिखे गए जिनमे निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं—केशव कवि—'स्फोट प्रतिष्ठा', शेषकृष्ण कवि–'स्फोटतत्त्व', श्रीकृष्णभट्ट—'स्फोटचन्द्रिका', आपदेव–'स्फोटनिरूपण', कुन्दभट्ट–'स्फोटवाद'। कौण्डभट्ट रचित 'वैयाकरण भूषणसार' भी व्याकरण-दर्शन का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है तथा नागेशभट्ट की 'व्याकरणसिद्धान्त मंजूषा' भी दार्शनिक ग्रन्थों में आता है।

प्राकृत-व्याकरण—प्राकृत भाषा का प्रथम व्याकरण 'प्राकृतसूत्र' नामक ग्रन्थ है जिसके रचयिता आदि कवि वाल्मीकि माने जाते हैं। इसका दूसरा नाम 'वाल्मीकि-सूत्र' भी है। पर, आज यह जिस रूप में उपलब्ध है उसे विद्वान् परवर्ती रचना मानते है। इस पर त्रिविक्रम पण्डित ने 'प्राकृतसूत्रवृत्ति' नामक टीका लिखी है जिनका समय १४ वीं शताब्दी है। कुछ लोगों के अनुसार पंडित ही इसके मूल लेखक है।

प्राकृत-प्रकाश—इसके लेखक वररुचि हैं। इसमे ५०७ सूत्र है तथा इसकी चार प्राचीन टीकाएं प्राप्त होती है—'मनोरमा', प्राकृत मंजरी', 'प्राकृतसंजीवनी' तथा 'सुबोधिनी'। मनोरमा के रचयिता भामह हैं। प्राकृत के अन्य व्याकरणों के नाम इस प्रकार है—प्राकृत लक्षण-चण्डकृत–११७२ ई०, संक्षिप्त सार–क्रमदीश्वरकृत, प्राकृत-व्याकरण (शब्दानुशासन)—त्रिविक्रमदेव–१२३६–१३०० ई०, प्राकृतरूपावतार—सिंहराजकृत–१३००–१४०० ई०, षड्भाषाचन्द्रिका–लक्ष्मीधर–१५४१–१५६५ ई०, प्राकृत सर्वस्व–मार्कण्डेय कवीन्द्र।

आधारग्रन्थ—१. फिलॉसफी ऑफ संस्कृत ग्रामर—प्रो० चक्रवर्ती। २. इण्डिया इन पाणिनि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। ३. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—ए० बी० कीथ। ४. वैदिक ग्रामर—मैकडोनल। ५. संस्कृत ग्रामर—ह्वीटनी। ६. संस्कृत लैंग्वेज—टी० बरो। ७. लिंग्विस्टिक स्पेकुलेशनस् ऑफ संस्कृत—घटकृष्ण घोष। ८. फोनेटिक्स ऑब्जरवेशनस् इन एन्शियन्ट इण्डिया—डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा। ९. पाणिनिकालीन भारत—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। १०. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास भाग १,२—पं०युधिष्ठिर मीमांसक। ११. वैदिक स्वर-मीमांसा—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। १२. संस्कृत भाषा (हिन्दी अनुवाद टी० बरो कृत ग्रन्थ का) डॉ० भोलाशंकर व्यास। १३. संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन—डॉ भोलाशंकर व्यास। १४. पतंजलिकालीन भारत—डॉ० प्रभुदयालअग्निहोत्री। १५. वैदिक व्याकरण (मैकडोनल कृत वैदिक ग्रामर का हिन्दी अनुवाद) अनु० डॉ० सत्यव्रत। १६. वैदिक व्याकरण भाग १,२—डॉ रामगोपाल। १७. पाणिनि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल। १८. संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त इतिहास—पं० रमाकान्त मिश्र। १९. अर्थ विज्ञान और व्याकरण-दर्शन—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी। २०. प्रतिभा दर्शन—पं० हरिशंकर

जोशी। २१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ (हिन्दी अनुवाद) अनु० डॉ० मंगलदेव शास्त्री। २२. संस्कृत ग्रामर—मोनियर विलियम। २३. ग्रामेटिक डेसप्राकृत स्फुकुंन (मूल-ग्रंथ-जर्मन भाषा में)—ले० पिशेल। अंगरेजी अनुवादक—डॉ० सुभद्र झा, हिन्दी अनुवादक—डॉ० हेमचन्द्र जोशी। २४. इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत—ए० सी० उल्नर। २५ प्राकृत-प्रकाश—डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल।

व्यास—वेदव्यास का नाम अनेक दार्शनिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में विख्यात हैं। ये वेदों के विभागकर्त्ता, महाभारत, ब्रह्मसूत्र, भागवत तथा अन्य अनेक पुराणों के कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्राचीन विश्वास के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग मे आकर वेदव्यास वेदों का विभाजन करते हैं। इस प्रकार इस मन्वन्तर के अट्ठाईस व्यासो के होने का विवरण प्राप्त होता है। वर्त्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईस द्वापर बीत चुके है। 'विष्णुपुराण' में अट्ठाईस व्यासों का नामोल्लेख किया गया है—३।३।१०–३१। द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने। वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगते हितः॥ वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च। हिताय सर्वभूतानां वेदभेदं करोति सः॥ विष्णुपुराण ३।३।५–६। अट्ठाईसवे व्यास का नाम कृष्णद्वैपायन व्यास है। इन्होंने ही महाभारत एवं अठारह पुराणों का प्रणयन किया है। व्यास नामधारी व्यक्ति के संबंध मे अनेक पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि यह किसी का अभिधान न होकर प्रतीकात्मक, कल्पनात्मक या छद्म नाम है। मैक्डोनल भी इसी विचार के समर्थक है, पर भारतीय विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। प्राचीन ग्रन्थों में व्यास का नाम कई स्थानो पर आदर के साथ लिया गया है। 'अहिर्बुध्न्यसंहिता' में व्यास वेद व्याख्याता तथा वेदवर्गयिता के रूप मे उल्लिखित है। इसमे बताया गया है कि वाक् के पुत्र वाच्यायन या अपान्तरतमा नामक एक वेदज्ञ थे जो कपिल एवं हिरण्यगर्भ के समकालीन थे। इन तीनो व्यक्तियो ने विष्णु के आदेश से त्रयी (ऋग्यजुसाम), साख्यशास्त्र एवं योगशास्त्र का विभाग किया था। इससे सिद्ध होता है कि व्यास नाम कपिल एवं हिरण्यगर्भ की तरह एक व्यक्तिवाचक संज्ञा थी। अतः इसे भाववाचक न मानकर अभिधानवाचक मानना चाहिए। अहिर्बुध्न्य संहिता में व्यास का नाम अपान्तरतमा भी प्राप्त होता है और इसकी संगति महाभारत से बैठ जाती है। महाभारत मे अपान्तरतमा नामक वेदाचार्य ऋषि का उल्लेख है, जिन्होंने प्राचीनकाल मे एकबार वेद की शाखाओं का नियमन किया था। महाभारत के कई प्रसंगों म अपान्तरतमा नाम को व्यास से अभिन्न मान कर वर्णित किया गया है।

कतिपय विद्वान् व्यास को उपाधिसूचक नाम मानते हैं। विभिन्न पुराणों के प्रवचनकर्त्ता व्यास कहे गये है और ब्रह्मा से लेकर कृष्णद्वैपायन व्यास तक २७ से लेकर ३२ व्यक्ति इस उपाधि से युक्त बताये गए है। यदि पुराण ग्रन्थो की बाते सत्य मान ली जायँ तो 'जय' काव्य के रचयिता तथा कौरव-पाण्डव के समकालीन व्यास नामक व्यक्ति ३२ वी परम्परा के अन्तिम व्यक्ति सिद्ध होते हैं। इस प्रकार व्यास नाम का वैविध्य इसे भारतीय साहित्य की तरह प्राचीन सिद्ध करता है। म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का कहना है कि 'व्यास या वेदव्यास, किसी व्यक्ति-विशेष का

नाम नहीं, यह एक पदवी है अथवा अधिकार का नाम है। जब जो ऋषि-मुनि वेदसंहिता का विभाजन या पुराण का संक्षेप कर ले वही उस समय व्यास या वेदव्यास कहा जाता है। किसी समय वशिष्ठ और किसी समय पराशर आदि भी व्यास हुए। इस अट्ठाईसवें कलियुग के व्यास कृष्णद्वैपायन हैं। उनके रचित या प्रकाशित ग्रन्थ आज पुराण के नाम से चल रहे हैं।' इस कथन से प्रतीत होता है कि व्यास एक उपाधि थी जो वेदों एवं पुराणों के वर्गीकरण, विभाजन एवं संपादन के कारण प्रदान की जाती थी। आचार्य शंकर ने व्यास के संबंध मे एक नवीन मत की उद्भावना की है। 'वेदान्तसूत्रभाष्य' में इनका कहना है कि प्राचीन वेदाचार्य अपान्तरतमा ही बाद में (द्वापर एवं कलियुग के सन्धिकाल में) भगवान् विष्णु के आदेश से कृष्णद्वैपायन के रूप में पुनरुद्भूत हुए थे। कृष्णद्वैपायन व्यास के संबंध मे अश्वघोष ने तीन तथ्य प्रस्तुत किये हैं—क—इन्होंने वेदों को पृथक्-पृथक् वर्गों मे विभाजित किया। ख—इनके पूर्वज वसिष्ठ तथा शक्ति थे। ग—ये सारस्वतवंशीय थे तथा इन्होंने वेद-विभाजन जैसा दुस्तर कार्य सम्पन्न किया था। महाभारत में भी कृष्णद्वैपायन को व्यास कहा गया है और इन्हें वेदों का वर्गीकरण करने वाला माना गया है—व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रम कल्मषम्। पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे। नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ॥ भीष्मपर्व।

इन्ही कृष्णद्वैपायन का नाम बादरायण व्यास भी था। इन्होंने अपने समस्त ज्ञान की साधना बदरिकाश्रम मे की थी, अतः ये बादरायण के नाम से प्रसिद्ध हुए। व्यास-प्रणीत 'वेदान्तसूत्र' भी 'बादरायणसूत्र' के ही नाम से लोक-विश्रुत हुआ है। इनका अन्य नाम पाराशर्य भी है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम पराशर था। अलबेरूनी ने भी इन्हें पराशर का पुत्र कहा है और पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु नामक इनके चार शिष्यों का उल्लेख किया है, जिन्होंने क्रमश: ऋग्, यजु, साम एवं अथर्ववेद का अध्ययन किया था। पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' मे 'भिक्षुसूत्र' के रचयिता पाराशर्य व्यास ही कहे गए हैं। 'भिक्षुसूत्र' 'वेदान्तसूत्र' का ही अपर नाम है। कृष्णद्वैपायन की जीवनी सम्प्रति उपलब्ध होती है। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति थे और शक्ति के पुत्र पराशर। इन्ही पराशर के पुत्र व्यास हुए और व्यास के पुत्र का नाम शुकदेव था जिन्होने राजा परीक्षित को भागवत की कथा सुनाई थी। पराशर का विवाह सत्यवती से हुआ था। जिसका नाम मत्स्यगन्धा या योजनगन्धा भी था। इसी से व्यास का जन्म हुआ था। महाभारत के शान्तिपर्व मे इनका निवासस्थान उत्तरापथ हिमालय बताया गया है। व्यास प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने भारतीय विद्या को चार संहिताओं एवं इतिहास के रूप में विभाजित किया था। ये महान् दार्शनिक एवं उच्चकोटि के कवि थे इनकी रचनाओ मे 'महाभारत' एवं 'श्रीमद्भागवत' प्रसिद्ध हैं, [दे० महाभारत श्रीमद्भागवत]। अनेक प्राचीन ग्रन्थों मे व्यास की प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं—१. मर्त्यमन्त्रेषु चैतन्यं महाभारतविद्यया। अर्पयामास तत्पूर्व यस्तस्मै मुनये नमः ॥ अवन्ती सुन्दरी कथा ३।-२. प्रस्तावनादिपुरुषौ रघुकौरववंशयोः। वन्दे वाल्मीकिकानीनौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ तिलकमंजरी २०। ३. नमः सर्वविदे तस्मै

व्यासाय कविवेधसे। चक्रे सृष्टि सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ हर्षचरित १।३। ४. श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान् भारताख्यममृतं यः। तमहमरागमतृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥ नारायणभट्ट सुभाषितरत्नभाण्डागार २।१२२।

व्यासतीर्थ—ये माध्वदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका समय १५ वीं शताब्दी है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें टीकाएँ एवं मौलिक रचनाएँ दोनों ही हैं। इनका 'न्यायामृत' नामक मौलिक ग्रन्थ माध्वदर्शन का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है जिसमें अद्वैतवाद का खण्डन कर द्वैतमत (माध्वदर्शन) की स्थापना की गयी है [दे० माध्वदर्शन], इनके टीका-ग्रन्थ है—तर्कताण्डव, तात्पर्यचन्द्रिका, (यह जयतीर्थ रचित 'तत्त्वप्रकाशिका' की टीका है, जयतीर्थ माध्वमत के आचार्य थे), मन्दारमञ्जरी, भेदोजीवन, मायावाद-खण्डन। 'न्यायामृत' के ऊपर १० टीकाएँ लिखी गयी है इनमें रामाचार्य रचित 'तरंगिणी' तथा विजयीन्द्रतीर्थ कृत 'कण्टकोद्धार' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। दे० भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

व्यासस्मृति—इस स्मृति के रचयिता व्यास माने जाते है। जीवानन्द तथा आनन्दाश्रम के संग्रह मे 'व्यासस्मृति' के २५० श्लोक प्राप्त होते हैं। यह स्मृति चार अध्यायों में विभक्त है। विश्वरूप, मेधातिथि, अपरार्क आदि ने 'व्यासस्मृति' के लगभग २०० श्लोक उद्धृत किये है। वल्लालसेन कृत 'दानसागर' मे महाव्यास, लघुव्यास एवं दानव्यास का उल्लेख है। 'स्मृतिचन्द्रिका' ने गद्यव्यास का भी उल्लेख किया है। बृहद्व्यास के उद्धरण 'मिताक्षरा' 'प्रायश्चित्तमयूख' एवं अन्य ग्रन्थों मे भी प्राप्त होते है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थों के रचयिता एक थे या भिन्न-भिन्न इस संबंध में अभी तक कोई निश्चित मत नही है। डॉ० काणे ने 'व्यासस्मृति' का समय ईसा की दूसरी तथा पाँचवी शताब्दी माना है, अतः इसके रचयिता महाभारतकार व्यास से भिन्न सिद्ध होते है। इस स्मृति मे उत्तर के चार प्रकार वर्णित हैं—मिथ्या, सम्प्रतिपत्ति, कारण तथा प्राङ्न्याय। लेखप्रमाण के भी तीन प्रकार माने गए हैं—स्वहस्त, जानपद तथा राजशासन।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पी०वी० काणे भाग १, हिन्दी अनुवाद।

शबर स्वामी—मीमांसा-दर्शन के प्रसिद्ध भाष्यकर्ता आचार्य शबरस्वामी है। इनकी एकमात्र रचना 'मीमासाभाष्य' है। शबरस्वामी ने अपने भाष्य मे कात्यायन एवं पाणिनि का उल्लेख किया है—सद्वादित्वात् पाणिनेः वचनं प्रमाणम्, असद्वादित्वात् कात्यायनस्य, असद्वादी हि विद्यमानमपि अनुपलभ्य ब्रूयात् (पृ० १०८)। अतः इनका समय दोनों के बाद ही निश्चित होता है। इनका स्थितिकाल ई० पू० १०० वर्ष माना जाता है। मीमांसा-दर्शन का परवर्त्ती विकास शबरस्वामी रचित भाष्य को ही आधार मान कर हुआ। कतिपय विद्वान् इनका जन्मस्थान मद्रास एवं कार्य-क्षेत्र बिहार मानते हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। 'शाबरभाष्य' विचारों की स्पष्टता, शैली की सरलता एवं विषय-प्रतिपादन की प्रौढ़ता की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में विशेष स्थान का अधिकारी है। इसका गद्य संस्कृत गद्य-शैली के विकास मे, सरलता के कारण, अपना महत्त्व रखता है।

आचार्य ने अत्यन्त सरल शैली मे विषय का प्रतिपादन किया है। 'लोके येष्वर्थेषु प्रसिद्धानि पदानि, तानि सति संभवे तदर्थान्येव सूत्रेष्वित्यवगन्तव्यम्। नाध्याहारादिभिरेषां परिकल्पनीयोऽर्थः, परिभाषितव्यो वा। अन्यथा''' ''इति प्रयत्नगौरवं प्रसज्यते।' शाबरभाष्य १।१।१। यह शैली आडम्बरहीन भाषा का अपूर्व रूप उपस्थित करती है। शबरस्वामी ने मीमांसा-दर्शन को स्वतन्त्र दार्शनिक विचारधारा के रूप में प्रतिष्ठित कर भारतीय आत्मवाद, वेदों की प्रामाणिकता, धर्म एवं कर्मकाण्ड की महत्ता तथा हिन्दू वर्ण-व्यवस्था की रक्षा की।

आधारग्रन्थ—क. इण्डियन फिलॉसफी, भाग २—डॉ० राधाकृष्णन्। ख मीमांसा-दर्शन—पं० मंडन मिश्र। ग. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

शान्तिदेव—बौद्ध-दर्शन के शून्यवादी आचार्यों में शान्तिदेव आते हैं। ये सौराष्ट्र-नरेश कल्याणवर्मन् के पुत्र थे तथा तारादेवी द्वारा प्रोत्साहित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए थे। इन्होंने नालन्दा विहार के पण्डित जयदेव से दीक्षा ली थी। इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है। १. शिक्षा-समुच्चय—इसमे कुल २६ कारिकायें हैं तथा महायान के आचार एवं आदर्श का वर्णन है। स्वयं लेखक ने इस पर विस्तृत व्याख्या लिखी है। इसमे ऐसे ग्रन्थों (महायान के) उद्धरण प्राप्त होते है जो सम्प्रति नष्ट हो चुके हैं। २. बोधिचर्यावतार—इसमे लेखक ने षट्पारमिताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमे कुल नौ परिच्छेद हैं तथा अन्तिम परिच्छेद मे शून्यवाद का निरूपण है। इनकी तीसरी रचना का नाम 'सूत्र-समुच्चय' है। शून्यवाद के लिए दे० बौद्धदर्शन।

आधारग्रन्थ—बौद्धदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

शान्तरक्षित—बौद्धदर्शन के माध्यमिक सम्प्रदाय के आचार्यों मे शान्तरक्षित का नाम आता है। इनका समय अष्टम शतक है। इन्होंने ७४९ ई० में तिब्बत के राजा का आमन्त्रण प्राप्त कर वहाँ सम्मे नामक विहार का स्थापन किया था और वहीं १३ वर्षों तक रहे। ७६२ ई० मे इन्हें तिब्बत मे ही निर्वाण प्राप्त हुआ था। सम्बे विहार तिब्बत का प्रथम बौद्ध विहार माना जाता है। इनकी एकमात्र रचना 'तत्त्व-संग्रह' है जिसमे ब्राह्मण एवं अन्य सम्प्रदाय के मतों का खण्डन किया गया है। इस पर इनके शिष्य कमलशील द्वारा रचित टीका भी प्राप्त होती है। इसमे लेखक का प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं प्रतिभा का दिग्दर्शन होता है। माध्यमिक सम्प्रदाय के लिए दे० बौद्ध-दर्शन।

आधारग्रन्थ—बौद्ध-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

शारदातनय—नाट्यशास्त्र के आचार्य। इनका समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य चरण है। इन्होंने 'भावप्रकाशन' नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें दस अधिकार (अध्याय) है। इसमे वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—१ भाव, २ रसस्वरूप, ३ रसभेद, ४ नायक-नायिका, ५ नायिकाभेद, ६ शब्दार्थसम्बन्ध, ७ नाट्येतिहास, दशरूपक, ९ नृत्यभेद तथा ८ नाट्यप्रयोग। इस ग्रन्थ के निर्माण में भोजकृत 'शृङ्गार

प्रकाश' एवं 'काव्यप्रकाश' का अधिक हाथ है। 'भावप्रकाशन' नाट्यशास्त्र एवं रस का अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें स्थायीभाव, संचारी, अनुभाव, नायिका आदि के विषय में अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं तथा वासुकि, नारद एवं व्यास प्रभृति आचार्यों के मत का उल्लेख किया गया है।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्य शास्त्र भाग १,—आ० बलदेव उपाध्याय।

शाकटायन—संस्कृत के प्राचीन वैयाकरण जो पाणिनि के पूर्ववर्ती थे तथा इनका समय ३००० वि॰ पू० माना गया है। अष्टाध्यायी में इनका तीन बार उल्लेख किया गया है। लङ्: शाकटायनस्यैव। अष्टाध्यायी ३।४।१११। व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य। ८।३।१८ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य। ८।४।५०। वाजसनेय प्रातिशाख्य तथा ऋक् प्रातिशाख्य में भी इनकी चर्चा है एवं 'निरुक्त' में भी इनके मत उद्धृत हैं। तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च॥ १।१२। पतञ्जलि ने भी स्पष्टतः इन्हें व्याकरण शास्त्र का प्रणेता माना है तथा इनके पिता का नाम 'शकट' दिया है। व्याकरणो शकटस्य च तोकम्। महाभाष्य ३।३।१। पं० गोपीनाथ भट्ट ने शाकटायन नामधारी दो व्यक्तियों का उल्लेख किया है (निरुक्त १।१२)। उनमें एक वाग्र्यश्ववंश्य हैं एवं दूसरे काण्ववंश्य। मीमांसक जी काण्ववंशीय शाकटायन को ही वैयाकरण मानते है। इनका व्याकरण विषयक ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। तथा वे बहुज्ञ थे। इनके नाम पर विविध विषयो के ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—'दैवतग्रन्थ', 'निरुक्त', 'कोष', 'ऋक्तन्त्र', 'लघुऋक्तन्त्र', 'सामतन्त्र', 'पञ्चपादी', 'उणादिसूत्र' तथा 'श्राद्धकल्प'। उपर्युक्त नामावली में से कितने ग्रन्थ शाकटायन द्वारा विरचित है इसका निश्चित ज्ञान नहीं है। मीमांसक जी के अनुसार प्रथम दो ग्रन्थ ही वैयाकरण शाकटायन द्वारा प्रणीत है तथा शेष ग्रन्थो का रचयिता सन्दिग्ध है। 'बृहद्देवता' में शाकटायन के देवता-सम्बन्धी मतों के उद्धरण प्राप्त होते हैं, जिनसे विदित होता है कि इन्होने निश्चित रूप से एतद्विषयक कोई ग्रन्थ लिखा होगा। इनके व्याकरण-विषयक उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इन्होने लौकिक तथा वैदिक दोनो प्रकार के पदों का व्याख्यान किया था।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

शाकल्य—पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरण जिनका समय (मीमांसक जी के अनुसार) ३१०० वि० पू० है। अष्टाध्यायी में शाकटायन का मत चार स्थानों पर उद्धृत है—सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे, १।१।१६, [अष्टाध्यायी ६।१।१२७, ८।३।१९, ८।४।५१]। शौनक तथा कात्यायन के प्रातिशाख्यो मे भी शाकल्य के मतों का निर्देश किया गया है। संस्कृत में शाकल्य नामधारी चार व्यक्तियो का उल्लेख है—स्थविर-शाकल्य, विदग्धशाकल्य, वेदमित्र (देवमित्र) तथा शाकल्य। मीमासक जी के अनुसार वैयाकरण शाकल्य एवं ऋग्वेद के पदकार वेदमित्र शाकल्य दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसका कारण यह है कि ऋक्पदपाठ में व्यवहृत कतिपय नियमों को पाणिनि ने शाकल्य के ही नाम से अष्टाध्यायी में उद्धृत कर दिया है। प्रातिशाख्यों मे उद्धृत मतों से ज्ञात होता है कि शाकल्य ने लौकिक तथा वैदिक दोनों ही प्रकार के शब्दों का अन्वाख्यान किया है। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'शाकल्यचरण' भी माना जाता है।

इनके पिता का नाम शाकल था। वायुपुराण मे वेदमित्र शाकल्य को वेदवित्तम कहा गया है, इससे ज्ञात होता है कि शाकल्य ने ही 'पदपाठ' का प्रणयन किया था। वेद-मित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः। चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः॥ ६०।६३।

आधारग्रन्थ—व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग १।—पं० युधिष्ठिर मीमांसक

शार्ङ्गधरसंहिता—आयुर्वेदशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता शार्ङ्गधर हैं जिनके पिता का नाम दामोदर था। ग्रन्थ का रचना काल १२ वीं शताब्दी के आसपास है। यह ग्रन्थ तीन खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड के विवेच्य विषय हैं—औषध ग्रहण करने का समय, नाडीपरीक्षा, दीपनपाचनाध्याय, कल्कादिविचार, सृष्टिक्रम तथा रोगगणना। मध्यम खण्ड में निम्नाकित विषय हैं—श्वास, क्वाथ, फांट, हिम, कल्क, चूर्ण, गुग्गुल, अवलेह, आसव, धातुओ का शोधन तथा मारण, रसशोधन-मारण एवं रसयोग। इसमें ओषधिनिर्माण की प्रक्रिया तथा प्रसिद्ध योगों का भी निदर्शन है। तृतीय खण्ड के वर्णित विषय है—स्नेहपानविधि, स्वेदविधि, वमनविधि, विरेचनाध्याय, वस्ति, निरूहवस्ति, उत्तरवस्ति, नस्य, गण्डूष, कवल, धूमपान, लेप, अभ्यंग, रक्तस्रावविधि तथा नेत्रकर्मविधि। इस पर दो संस्कृत टीकाये उपलब्ध है—आढमल्लकृत 'दीपिका' तथा काशीराम वैद्य रचित 'गूढार्थदीपिका'। आढमल्ल का समय १३ वी शताब्दी है। शार्ङ्गधरसंहिता के कई हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके है। सुबोधिनी हिन्दी टीका—चौखम्बा प्रकाशन।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

शिङ्गभूपाल—नाट्यशास्त्र एवं संगीत के आचार्य। इन्होने 'रसार्णवसुधाकर' नामक प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय १४ वी शताब्दी है। इन्होने अपने ग्रन्थ मे अपना परिचय दिया है जिसके अनुसार ये रेचल्ल वश के राजा थे और बिन्ध्याचल से लेकर श्रीशैल पर्वत तक इनका राज्य था। ये शूद्र थे और इनकी राजधानी का नाम 'राजाचल' था। 'रसार्णवसुधाकर' का प्रचार दक्षिण भारत मे अधिक है। इसकी पुष्पिका मे लेखक ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—इति श्रीमन्दान्ध्रमण्डलाधीश्वरप्रतिगुणभैरवश्री अन्नप्रोतनरेन्द्रनन्दनभुजबलभीमशिङ्गभूपालविर-चिते रसार्णवसुधाकरनाम्नि ग्रन्थे नाट्यालंङ्काररञ्जकोल्लासो नाम प्रथमो विलासः। शिङ्ग-भूपाल ने 'सङ्गीतरत्नाकर' नामक संगीतशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ की टीका भी लिखी है जिसका नाम संगीतसुधाकर है। रसार्णवसुधाकर मे तीन विलास हैं। प्रथम विलास में (रञ्जकोल्लास) नायक-नायिका के स्वरूप, भेद एवं चार वृत्तियो का विवेचन है। द्वितीय विलास का नाम रसिकोल्लास है। इसमे रस का विस्तृत विवेचन है। तृतीय विलास को भावोल्लास कहते है। इसमे रूपक की वस्तु का वर्णन है।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय।

शिवचरित्र चम्पू—इस चम्पू-काव्य के प्रणेता कवि वादिशेखर है। इसमे कवि ने भगवान् शंकर के महनीय कार्यों का वर्णन किया है। इसकी मद्रास वाली प्रति तीन आश्वासों में प्राप्त होती है और तृतीय आश्वास भी मध्य में खण्डित है। इसमें

समुद्रमंथन, शिव का कालकूट पान करना तथा दक्षयज्ञ विध्वंस प्रभृति घटनायें विस्तारपूर्वक वर्णित है। इसके रचयिता के सम्बन्ध में अन्य बातें ज्ञात नहीं होतीं। इसकी शैली सरल एवं सीधी-सादी पदावली से युक्त है। कवि के अनुसार सुकुमार काव्य में कहीं-कहीं काठिन्य अधिक रमणीय होता है—'काव्येषु सुकुमारेषु काठिन्यं कुत्रचित्प्रियम् ॥' काव्य की रचना का उद्देश्य कवि के शब्दों में इस प्रकार है—तमादिशतापसवेशधारी स्वप्ने कदाचित्स्वयमेव शम्भुः। निजापदानैर्निखिलैरुपेतं प्रबन्धमेकं परिकल्पयेति। १।३। तत इदमभिजातगद्यपद्यप्रतिपदपल्लवितप्रसादरम्यम्। अकृत स कविवादिशेखरो यं शिवचरितं रसभासुरं प्रबन्धम्। १।४। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण तंजोर कैटलाग ४१५९ में प्राप्त होता है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

शिक्षा—वेदाङ्गों में प्रथम स्थान शिक्षा का है [दे० वेदाङ्ग]। शिक्षा का अर्थ है स्वर, वर्ण एवं उच्चारण का उपदेश देनेवाली विद्या। 'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'—ऋग्वेदभाष्य भूमिका पृ० ४९। वेद में तीन प्रकार के स्वर होते हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए तीनों स्वरों का सम्यक् ज्ञान एवं अभ्यास आवश्यक होता है, अन्यथा महान् अनर्थ हो जा सकता है। उच्च स्वर से उदात्त का, धीमे स्वर से अनुदात्त का एवं उदात्त और अनुदात्त के बीच की अवस्थाओं को स्वरित कहते हैं। वेद के प्रत्येक स्वर में कोई स्वर उदात्त अवश्य होता है और शेष अनुदात्त होते हैं। अनुदात्तों में कोई स्वर विशिष्ट परिस्थिति में स्वरित भी होता है। वेद में शब्द एक हो तब भी स्वर के भेद से उसमें अर्थ-भेद हो जाता है और स्वरों की साधारण त्रुटि के कारण अनर्थ हो जाने की संभावना हो जाती है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा प्रचलित है। वृत्रासुर ने इन्द्र का विनाश करने के लिए एक विराट यज्ञ का आयोजन किया था, जिसमें होम का मन्त्र था 'इन्द्र-शत्रुर्वर्धस्व' अर्थात् 'इन्द्र का शत्रु या घातक विजयी हो'। यह अर्थ तभी बनता जबकि 'इन्द्रशत्रुः' अन्तोदात्त होता, किन्तु ऋत्विजों की अनवधानता के कारण आदि उदात्त (इन्द्र शब्द में 'इ') का ही उच्चारण किया गया जिससे वह तत्पुरुष न होकर बहुव्रीहि बन गया और इसका अर्थ हो गया 'इन्द्रः शत्रुः यस्य' अर्थात् इन्द्र जिसका घात करने वाला है। इससे यह यज्ञ यजमान का घात करनेवाला सिद्ध हुआ। मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ॥ पा० शि० ५२। शिक्षा के ६ अंग है—वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान—शिक्षां व्याख्यास्यामः; वर्णः स्वरः, मात्रा, बलं, साम सन्तान इत्युक्तः, शिक्षाध्यायः, तैत्तिरीय १।२।

१—वर्ण—अक्षरों को वर्ण कहते हैं। वेद-ज्ञान के लिए संस्कृत की वर्णमाला का परिचय आवश्यक है। पाणिनि-शिक्षा के अनुसार संस्कृतवर्णों की संख्या ६३ या ६४ है। २—स्वर—इसका अभिप्राय उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित आदि स्वरों से है।

३—मात्रा—स्वरों के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। मात्राएं तीन प्रकार की हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। एक मात्रा के उच्चारण में लगने वाला समय ह्रस्व, दो मात्रा के उच्चारण के समय को दीर्घ तथा तीन मात्रा के उच्चारण में लगने वाले समय को प्लुत कहते हैं। ४—बल—स्थान और प्रयत्न को बल कहा जाता है। स्वर या व्यंजन का उच्चारण करते समय वायु टकराकर जिस स्थान पर से निकले उसे उन वर्णों का स्थान कहा जायगा। इस प्रकार के स्थान आठ हैं। अक्षरों के उच्चारण में किये गए प्रयास को प्रयत्न कहते है, जिनकी संख्या दो है—आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयत्न। आभ्यन्तर प्रयत्न के चार प्रकार होते हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत्त तथा संवृत्त। बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। ५—साम—इसका अर्थ दोष-रहित उच्चारण से होता है। अक्षरो के उच्चारण में उत्पन्न होने वाले दोषों का वर्णन शिक्षा ग्रन्थों में किया गया है। पाणिनि के अनुसार सुन्दर ढंग से पाठ करने के ६ गुण हैं—माधुर्य, अक्षरव्यक्ति, (अक्षरों का स्पष्टरूप से पृथक्-पृथक् उच्चारण), पदच्छेद (पदों का पृथक्-पृथक् प्रतिपादन), सुस्वर (सुन्दर रीति से पढ़ना), धैर्य (धीरता-पूर्वक पढ़ना) तथा लयसमर्थ (सुन्दर लय से पढना)। माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः॥ पा० शि० ३३। पाणिनि-शिक्षा में अधम पाठक के भी ६ लक्षण बतलाये गए है—गीति (गाकर पढ़नेवाला), शीघ्री (शीघ्रता से पढ़ने वाला), शिरःकम्पी (शिर हिलाकर पढ़ने वाला), लिखित-पाठक (लिपिबद्ध पुस्तक से पढने वाला), अनर्थज्ञ (बिना अर्थ समझे पढ़ने वाला) तथा अल्पकण्ठ (धीरे-धीरे धीमे से पढ़ने वाला)। गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः। अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः॥ पा० शि० ३२। इनके अतिरिक्त पाणिनि ने अन्य निन्दनीय पाठकों का भी विवरण दिया है—शंकित, भीत, उत्कृष्ट, अव्यक्त, सानुनासिक, काकस्वर, खींचकर, स्थानरहित, उपांशु—(मुँह में बुदबुदाना), दंष्ट, त्वरित, निरस्त, विलम्बित, गद्गद, प्रगीत, निष्पीडित, अक्षरो को छोड कर कभी भी दीन पाठ का प्रयोग न करना। पा० शि० ३४,३५। ६—सन्तान—संहिता को सन्तान कहते हैं जिसका अर्थ पदों की अतिशय सन्निधि या निकटता है। प्रत्येक वेद में वर्ण-उच्चारण एक सा न होकर भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। इन विषयों का वर्णन शिक्षाग्रन्थों में विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रत्येक वेद की अपनी शिक्षा होती है और उनमें तद्विषयक विवरण दिये गए है।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

शिक्षाग्रन्थ—वैदिक शिक्षाग्रन्थों की संख्या ३२ के लगभग है। उनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है।

१. पाणिनीय शिक्षा—इसमें ६० श्लोक हैं तथा उच्चारण-विधि से सम्बद्ध विषयों का वर्णन है। इसके रचयिता के रूप में दाक्षीपुत्र का नाम दिया गया है। शंकरः शांकरी प्रादाद् दाक्षीपुत्राय धीमते। वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः॥ ५६। इसके ऊपर अनेक टीकाएँ प्राप्तहोती हैं। २. याज्ञवल्क्य शिक्षा—इसमें २३२

श्लोक हैं तथा इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयी संहिता से है। इस ग्रन्थ में वैदिक स्वरों का सोदाहरण विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा लोप, आगम, विकार और प्रकृतिभाव नामक चार सन्धियाँ भी वर्णित हैं। वर्णों के भेद, स्वरूप एवं पारस्परिक साम्य-वैषम्य का भी इसमे वर्णन है। ३. वासिष्ठी शिक्षा—इसका सम्बन्ध वाजसनेयी संहिता से है। इसमें बताया गया है कि 'शक्लयजुर्वेद' में ऋग्वेद के १४६७ मन्त्र है और यजुषो की संख्या २८२३ है। ४ कात्यायनी शिक्षा—इसमे केवल १३ श्लोक हैं। इस पर जयन्त स्वामी की संक्षिप्त टीका प्राप्त होती है। ५. पाराशरी शिक्षा—इसमें कुल १६० श्लोक है तथा स्वर, वर्ण सन्धि आदि का विवेचन है। ६ माण्डव्य शिक्षा—यह यजुर्वेद का शिक्षाग्रन्थ है। इसमे केवल ओष्ठ्य वर्णों का संग्रह है। ७. अमोघानन्दिनी शिक्षा—इसमे १३० श्लोक है और स्वरों तथा वर्णों का विवेचन है। ८ माध्यान्दिनी शिक्षा—यह दो रूपो में प्राप्त होती है—गद्यात्मक एवं पद्यात्मक। इसमें द्वित्व नियमों का विवेचन है। ९. वर्णरत्न-प्रदीपिका—इसमे २२७ श्लोक है। इसके लेखक भरद्वाजवंशी अमरेश है। इसमे वर्णो और स्वरों का विस्तार के साथ विवेचन है। १०. केशवी शिक्षा—इसके रचयिता केशव दैवज्ञ हैं जो गोकुल दैवज्ञ के पुत्र है। इसके दो रूप प्राप्त होते हैं—प्रथम मे माध्यन्दिन शाखा-सम्बन्धी परिभाषाएँ तथा द्वितीय मे २१ पद्यों में स्वर का विचार है। ११. मल्लशर्म शिक्षा—इसमें कुल ६५ पद्य है तथा रचयिता का नाम है मल्लशर्मा। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम खगपति था (उपमन्युगोत्रीय)। इसका रचनाकाल १७८१ संवत् है। १२ स्वराङ्कुश शिक्षा—इसमे २५ पद्यो मे स्वरो का विवेचन है। रचयिता का नाम है जयन्त स्वामी। १३. षोडश-श्लोकी शिक्षा—इसमे १६ पद्यों मे वर्ण और स्वरो का विवेचन किया गया है। इसके लेखक रामकृष्ण नामक कोई विद्वान् हैं। १४. अवसान-निर्णय-शिक्षा—इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। लेखक का नाम है अनन्तदेव। १५. स्वर-भक्ति लक्षण-शिक्षा—इसमें स्वरभक्ति का सोदाहरण विवेचन है। लेखक का नाम है महर्षि कात्यायन। १६. प्रातिशाख्य-प्रदीप-शिक्षा—इसमें स्वर, वर्ण आदि के सभी विषयो का विवेचन अनेक प्राचीन शिक्षाग्रन्थों के मतो को देते हुए किया गया है। इसके लेखक हैं बालकृष्ण जिनके पिता का नाम सदाशिव है। १७. नारदीय शिक्षा—इसका सम्बन्ध सामवेद से है। इस पर शोभाकरभट्ट ने विस्तृत टीका लिखी है। १८. गौतमी शिक्षा—यह सामवेद की अत्यन्त छोटी शिक्षा है। १९. लोमशी शिक्षा—यह भी सामवेद की शिक्षा है। २० माण्डूकी शिक्षा—इसमे १७९ श्लोक हैं। इसका सम्बन्ध अथर्ववेद से है।

इनके अतिरिक्त क्रमसन्धानशिक्षा, गलदृक्शिक्षा, मनःस्वारशिक्षा नामक अन्य शिक्षाविषयक ग्रन्थ है जिनके रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि माने जाते हैं। अन्य ५० शिक्षाग्रन्थों का भी पता चला है जो हस्तलेख के रूप मे विद्यमान हैं। इन ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र एवं उच्चारणविद्या का गम्भीर अनुशीलन किया गया है। सभी ग्रन्थ 'शिक्षा-संग्रह' के नाम मे १८९३ ई० में बनारस संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हो चुके हैं।

आधारग्रन्थ—वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय ।

शिवपुराण—अष्टादश पुराणो के अन्तर्गत एक पुराण जिसमें भगवान् शिव का चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। शिवपुराण एवं वायुपुराण के सम्बन्ध मे विद्वानों के विभिन्न मत हैं। दे० वायुपुराण। कतिपय विद्वान दोनो को अभिन्न मानते हैं तथा कुछ के अनुसार विभिन्न पुराणों में निर्दिष्ट पुराणों की सूची में शिवपुराण ही चतुर्थ स्थान का अधिकारी है। पुराणों में भी इस विषय मे मतैक्य नहीं है। बहुसंख्यक पुराण शिवपुराण का अस्तित्व मानते हुए इसे चतुर्थ स्थान देते है, जैसे—'कूर्म,' 'पद्म', 'ब्रह्मवैवर्त', 'भागवत', 'मार्कण्डेय', 'लिंग', 'वाराह' तथा 'विष्णुपुराण'। पर, 'देवीभागवत', नारद' तथा 'मत्स्य' 'वायुपुराण' को ही महत्त्व प्रदान करते हैं। 'श्रीमद्भागवत' के बारहवें स्कन्ध के सातवें अध्याय में जो पुराणों की सूची दी गयी है उसमें 'वायुपुराण' का नाम नहीं है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम्। नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम्॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्। वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥ पर 'नारदीयपुराण' की सूची (अध्याय ९२) में 'वायुपुराण' का नाम है। ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च। भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयं च कीर्तितम्। आग्नेयञ्च भविष्यञ्च ब्रह्मवैवर्तलिंगके। वाराहं च तथा स्कान्दं वामनं कूर्मसंज्ञकम्। मात्स्यं च गारुडं तद्वद् ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्॥ सम्प्रति 'शिव' एवं 'वायुपुराण' संज्ञक दो ग्रन्थ प्रचलित हैं जो वर्ण्यविषय तथा आकार-प्रकार मे परस्पर भिन्न हैं। शिवपुराण का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से हुआ था (सं० १९८२)। इसके अन्य दो हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण पंडित पुस्तकालय, काशी तथा संस्कृति संस्थान खुर्जा से भी निकले हुए हैं। वायुपुराण के भी तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं—बिब्लिओथेका इण्डिका कलकत्ता (१८८०–८९ ई०), आनन्द संस्कृत ग्रन्थावली, पूना (१९०५ ई०) तथा गुरुमंडल ग्रन्थमाला कलकत्ता (१९५९ ई०)।

वेंकटेश्वर प्रेस से मुद्रित शिवपुराण मे सात संहिताएँ हैं—विद्येश्वर संहिता, रुद्रसंहिता शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलास संहिता तथा वायवीय संहिता। इसके विद्येश्वर संहिता मे २५ अध्याय हैं तथा रुद्र संहिता में १८७ अध्याय। इस संहिता के पाँच खण्ड है—सृष्टिखंड, सतीखंड, पार्वतीखंड, कुमारखंड, युद्धखण्ड। शतरुद्र संहिता मे ४२, कोटिरुद्र मे ४३, उमासंहिता में ५१, कैलास संहिता में २३ तथा वायवीय संहिता मे ७६ है। इसके श्लोकों की संख्या २४ हजार है। शिवपुराण के उत्तरखण्ड मे इसका वर्णन इस प्रकार है—यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु। शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञा वदन्ति च ह॥ शिवपुराण का एक अन्य संस्करण भी है जो लक्षश्लोकात्मक है तथा इसमे १२ संहिताएं हैं, किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। शिवपुराण की वायुसंहिता में ही इसका निर्देश है। इसकी संहिताओं के नाम और श्लोक दिए जाते हैं—

१ विद्येश्वर संहिता—१००००। २. रौद्रसंहिता—८०००। ३. विनायक संहिता—८०००। ४. औमसंहिता—८०००। ५. मातृसंहिता—८०००। ६.

रुद्रैकादश संहिता—१३००० । ७. कैलास संहिता—६००० । ८. शतरुद्रसंहिता—१०००० । ९. कोटिरुद्र संहिता—१०००० । १०. सहस्रकोटि संहिता—१०००० । ११ वायुप्रोक्त संहिता—५००० । १२. धर्म संहिता—४००० । योग १००००० ।

तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम् । ग्रन्थलक्षप्रमाणं तद् व्यस्तं द्वादशसंहितम् ॥ निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः । तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः ॥ एकजन्मनि मुच्यन्ते प्रसादात्परमेष्ठिनः । तस्माद्विमुक्तिमिच्छन् वै शिवमेव समाश्रयेत् ॥ कहा जाता है कि इस लक्षश्लोकात्मक शिवपुराण की रचना साक्षात् भगवान् शंकर ने की थी जिसका व्यास जी ने २४ सहस्र श्लोकों में संक्षिप्तीकरण किया । 'शिवपुराण' का निर्देश अल्बेरूनी के भी ग्रन्थ मे मिलता है । उसने पुराणों की दो सूचियां दी है जिनमे एक मे शिवपुराण का नाम है तथा दूसरी में वायुपुराण का । इससे विदित होता है कि शिवपुराण की रचना १०३० ईस्वी के पूर्व हो चुकी थी । इसकी कैलास संहिता मे (१६ से १७ वे अध्याय में) प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धान्तों का विवेचन है जिसमे शिवसूत्र के दो सूत्रों का स्पष्ट निर्देश है । चैतन्यमात्मेतिमुने शिवसूत्रं प्रवर्तितम् ॥ ४४ ॥ चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञान-क्रियात्मकम् । स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यः स आत्मा परिकीर्तितः ॥ ४५ ॥ इत्यादि शिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया । ज्ञानं बन्ध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितु ॥ ४६ ॥ (कैलास संहिता) इसमें शिवसूत्र के वार्तिकों का भी स्पष्टतः उल्लेख किया गया है । शिवसूत्र के रचयिता वसुगुप्त हैं जिनका समय ८५० ई० है । अतः शिवपुराण का समय दशमो शती युक्तिसंगत है । इस प्रकार यह वायुपुराण से अर्वाचीन हो जाता है । शिवपुराण में तान्त्रिक पद्धति का बहुत वर्णन प्राप्त होता है, अतः इसे तांत्रिकता से युक्त उपपुराण मानना चाहिए । शिवपुराण शिव-विषयक विशाल पुराण है जिसमे शिव से सम्बद्ध अनेक कथाओं, चरित्रों पूजा पद्धतियों तथा दीक्षा-अनुष्ठानों का विस्तारपूर्वक वर्णन है । इसके रुद्रसंहिता मे दक्षप्रजापति की पुत्री सती का चरित्र ४३ अध्यायों मे विस्तार के साथ दिया गया है जिसमे सती द्वारा सीता का रूप धारण करने तथा रामचन्द्र की परीक्षा लेने का वर्णन है । इसी प्रकार पार्वतीखण्ड मे पार्वती के जन्म, तपश्चरण एवं शिव के साथ उनके विवाह का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है । वायवीय संहिता में शैव-दर्शन के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है जिस पर तांत्रिकता का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इसमे शैवतन्त्र से सम्बद्ध उपासना-पद्धति का भी विवरण दिया गया है । शिवपुराण का यह विषय वायुपुराण से नितान्त भिन्न है । शिवपुराण मे पुराणपंच लक्षण की पूर्ण व्याप्ति नहीं होती तथा इसमे सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तरादि के विवरण नही प्राप्त होते । यत्र-तत्र केवल सर्ग के ही विवरण मिलते है । महाभारत मे वायुप्रोक्त तथा ऋषियों द्वारा प्रशसित एक पुराण का उल्लेख किया गया है जिसमें अतीतानागत से सम्बद्ध चरितो के वर्णन की बात कही गयी है । उपलब्ध वायुपुराण में इस श्लोक के विषय की संगति सिद्ध हो जाती है । अतः वायुपुराण निश्चित रूप से शिवपुराण से प्राचीनतर सिद्ध हो जाता है । शिवपुराण मे राजाओं की वंशावली नहीं है । इसके मुख्य विषय इस प्रकार हैं—शिवपूजाविधि, तारकोपाख्यान, शिव की

तपस्या तथा मदनदहन, पार्वती का जन्म, तपस्या, पार्वती के तप को देखकर देवताओं का शिव के पास जाना। ब्रह्मचारी के वेश में शिव का पार्वती के पास आना, शिव-पार्वती संवाद, शिव विवाह का उद्योग तथा शिव का विवाह, कार्त्तिकेय का जन्म, उनका देवताओं का सेनापतित्व ग्रहण तथा तारकासुर का वध, विष्णु के उपदेश से देवगणों का कोटिशिव मन्त्र का जाप, लिङ्गार्चन तथा उसका माहात्म्य, षोडशोपचार, गणेशचरित्र, गणेश का विवाह एवं उसे श्रवण कर कार्त्तिकेय को क्रोधित होकर क्रौंचपर्वत पर जाना, रुद्राक्षधारण माहात्म्य कथन, नन्दिकेश तीर्थ-माहात्म्य, शिवरात्रि व्रत का वर्णन तथा माहात्म्य, गौरी के प्रति शिव का काशी-माहात्म्य-कथन, रावण की तपस्या का माहात्म्य, वैद्यनाथ की उत्पत्ति, रामेश्वर माहात्म्य, नागेश माहात्म्य, वाराह रूप से हिरण्याक्ष का वध, प्रह्लादचरित्र, नृसिंह चरित्र एवं हिरण्यकश्यप वध, नलजन्मान्तर कथा, व्यास के उपदेश से अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर जाना, तपस्या तथा इन्द्र का समागम, भिल्लरूपधारी शिव का आना तथा अर्जुन के साथ उनका युद्ध। अर्जुन की वरदान प्राप्ति, पार्थिव शिवपूजा विधि, बिल्वेश्वर माहात्म्य, विष्णु द्वारा सहस्र कमल से शिव की पूजा, शिव की कृपा से विष्णु का सुदर्शन चक्र प्राप्त करना, शिवसहस्रनाम वर्णन, शिवरात्रि व्रत की प्रशंसा तथा अज्ञान में भी किये इस व्रत की प्रशंसा, चतुर्विध मुक्ति-का वर्णन, शिव द्वारा विष्णु प्रभृति की उत्पत्ति का वर्णन, एकमात्र भक्ति साधन से ही शिव भक्ति-लाभ, लिंग प्रतिष्ठा, लिंग निर्माण, ब्रह्मा-विष्णु द्वारा शिव की पूजा, लिंग पूजा का नियम, शिवतीर्थ सेवा माहात्म्य, पंचमहायज्ञ कथन, पार्थिव प्रतिमाविधि, प्रणवमाहात्म्य, शिवभक्तपूजा-कथन, षड्लिंग माहात्म्य, बन्धन मुक्ति-स्वरूपकथन, लिंगक्रमकथन, रुद्रस्तव, शिव-सर्वज्ञादिकथन, रुद्रलोक, ब्रह्मलोक तथा विष्णुलोक का कथन। शिवपुराण मुख्यतः भगवान् शंकर एवं उनके चरित्र से आच्छादित है।

आधारग्रन्थ—१. शिवपुराण—पंडित पुस्तकालय, वाराणसी। २ शिवपुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर (हिन्दी अनुवाद)। ३. शिवपुराण--हिन्दी अनुवाद सहित (संस्कृति संस्थान) श्रीराम शर्मा। ४. पुराण-तत्त्व-मीमांसा-श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ५. पुराण-विमर्श—पं बलदेव उपाध्याय। ६ भागवत-दर्शन—डॉ० हरवंशलाल शर्मा। ७. शैवमत—डॉ० यदुवंशी, राष्ट्रभाषा परिषद् पटना। ८. तान्त्रिकवाङ्मय में शाक्त दृष्टि—म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज। ९. भारतीय संस्कृति और साधना भाग १, २, म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज। १०. भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय।

शिवलीलार्णव—(महाकाव्य) इसके रचयिता सत्रहवीं शताब्दी के तंजोर-निवासी कवि नीलकण्ठ हैं। इसमें २२ सर्गों में मदुरा में पूजित शिवजी की ६४ लीलायें वर्णित हैं। नीलकण्ठ ने 'गंगावतरण' नामक एक अन्य महाकाव्य की भी रचना की है। 'शिवलीलार्णव' का प्रकाशन सहृदय संस्कृत जर्नल के १७, १८ भाग में हुआ है तथा 'गंगावतरण' काव्यमाला का ७६ वाँ प्रकाशन है। गंगावतरण' में ८ सर्ग हैं। नीलकण्ठ की भाषा अलंकृत, सरल एवं प्रभावशाली है। 'गंगावतरण'

में इन्होंने इस प्रकार गर्वोक्ति की है—अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत् । परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कविकुञ्जराः ॥ १।१७ ।

शिवस्वामी—ये 'कप्फिणाभ्युदय' नामक महाकाव्य के प्रणेता एवं काश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के सभापण्डित थे। अवन्तिवर्मा का शासनकाल ८५५ ई० से लेकर ८८४ ई० तक माना जाता है। राजतरंगिणी में इनका विवरण इस प्रकार है—मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः। प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ ५।३४। इस महाकाव्य (कप्फिणाभ्युदय) के चरितनायक 'कप्फण' हैं जो भगवान् बुद्ध के द्वारा पराजित होकर उनकी शरण में आते हैं, और तभी उनका अभ्युदय होता है। इसमें ऋतुवर्णन की शृङ्गारमयी परम्परा का पूर्ण पालन किया गया है। कप्फण या कप्फिण दक्षिणदेश या लीलावती के राजा थे जिनका आख्यान बौद्धसाहित्य में प्रसिद्ध है। इन्होंने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित को हराया था। कप्फण की ही कथा को शिवस्वामी ने २० सर्गों में वर्णित कर महाकाव्य का रूप दिया है। इस महाकाव्य में अलंकृत महाकाव्यों की तरह चित्रयुद्ध का वर्णन १८ वें सर्ग में (चित्रकाव्य के रूप में) किया गया है। १९ वें सर्ग में संस्कृत-प्राकृत मिश्रित भाषा का प्रयोग है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'शिव' शब्द का प्रयोग होने के कारण इसे शिवाङ्क कहा गया है। शिवस्वामी शैवमतावलम्बी थे। इनकी कविता में अनुप्रासमयी शैली, शब्दों का सुगुम्फन एवं सरस भावों का सुन्दर निदर्शन है।

शिवादित्य मिश्र—ये वैशेषिकदर्शन के आचार्य हैं। इनका समय १०वीं शताब्दी है। इन्होंने 'सप्तपदार्थी' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसमें न्याय एवं वैशेषिक सिद्धान्त का समन्वय किया गया है। इन्होंने 'लक्षणमाला' नामक एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जिसमें वैशेषिकदर्शन का स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया गया है। ये मिथिला-निवासी थे। शिवादित्य मिश्र ने 'अभाव' को सप्तम पदार्थ के रूप में वर्णित किया है। श्रीहर्ष ने 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक ग्रन्थ में इनके सिद्धान्तों (प्रमालक्षण) की आलोचना की है।

आधारग्रन्थ—१ इण्डियन फिलॉसफी, भाग २—डॉ० राधाकृष्णन्। २. भारतीय-दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. भारतीय-दर्शन—डॉ० उमेश मिश्र।

शिशुपालवध—महाकवि माघ द्वारा रचित महाकाव्य [दे० माघ]। इसमें कवि ने युधिष्ठिर के राजसूय के समय कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन किया है, जो २० सर्गों में समाप्त हुआ है।

प्रथम सर्ग—इसका प्रारम्भ देवर्षि नारद के आकाशमार्ग से उतर कर कृष्ण के पास आने से होता है। नारदजी उनसे शिशुपाल के औद्धत्य का वर्णन कर कहते हैं कि इन्द्र ने शिशुपाल का वध करने की इच्छा प्रकट की है। नारदजी शिशुपाल के वध की प्रार्थना कर आकाशमार्ग से पुनः चले जाते हैं। द्वितीय सर्ग—इस सर्ग में श्रीकृष्ण, बलराम एवं उद्धव मन्त्रणागृह में पहुँच कर तत्कालीन समस्याओं पर विचार करते हैं। श्रीकृष्ण उनसे शिशुपाल के वध की बात करते हैं। उसी समय युधिष्ठिर के राजसूय का भी निमन्त्रण आ जाता है। इस सर्ग में राजनीति का सुन्दर वर्णन है।

तृतीय सर्ग—इसमे सेना सहित श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग—इसमे श्रीकृष्ण की सेना के रैवतक पर्वत पर पहुँचने तथा रैवतक की शोभा का वर्णन है। पञ्चम सर्ग—श्रीकृष्ण सेना सहित रैवतक पर्वत पर विश्राम करते है। इस सर्ग में घोडो एवं यानो से उतरती हुई स्त्रियो का वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्ग—इसमे षड् ऋतुओ का आगमन तथा यमकालंकार के द्वारा ऋतु-वर्णन है। सप्तम सर्ग—इसमे वन-विहार का विलासपूर्ण चित्र तथा यदु-दम्पतियो का पुष्पचयन आदि वर्णित है। अष्टम सर्ग—इसमे जल-विहार का वर्णन है। नवमसर्ग—इसका प्रारम्भ सूर्यास्त से होता है। इसमे चन्द्रोदय, स्त्रियो के शृङ्गार, सूर्यास्त एवं दूती-प्रेषण का वर्णन है। एकादश सर्ग—मे प्रभात का मनोरम वर्णन तथा द्वादश सर्ग—मे श्रीकृष्ण के पुनः प्रयाण का वर्णन है। त्रयोदश सर्ग में श्रीकृष्ण एवं पाण्डवो का समागम तथा युधिष्ठिर-श्रीकृष्ण-वार्त्तालाप का वर्णन है। चतुर्दश सर्ग—इस सर्ग मे राजसूय आरम्भ होता है। इसमे कवि ने दर्शन, मीमासा एवं कर्मकाण्ड-विषयक अपने ज्ञान का परिचय दिया है। इसी सर्ग मैं युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है। भीष्म की ओर से श्रीकृष्ण को अर्घ्यदान देने का प्रस्ताव होता है। भीष्म श्रीकृष्ण की प्रार्थना करते है। पञ्चदश सर्ग—श्रीकृष्ण की पूजा से रुष्ट होकर शिशुपाल भीष्म, युधिष्ठिर एवं भीष्म को खरी-खोटी सुनाता है। भीष्म उसे चुनौती देते है और शिशुपाल-पक्ष के राजा क्षुब्ध हो जाते हैं। शिशुपाल की सेना युद्ध के लिए तैयार होती है। षष्ठदश सर्ग—इस सर्ग मे शिशुपाल के दूत द्वारा श्रीकृष्ण को श्लेषगर्भ सन्देश सुनाने का वर्णन है। जिसमे उनकी निन्दा और स्तुति दोनो का भाव है। श्रीकृष्ण की ओर से दूत का उत्तर सात्यकी देता है। सप्तदश सर्ग—इस सर्ग मे सेना की तैयारी एव वीरो का सन्नद्ध होना वर्णित है। अष्टदश सर्ग—इसमे दोनो सेनाओ का समागम एवं भयंकर युद्ध का वर्णन किया गया है। उन्नीसवे सर्ग मे चित्रबन्ध वाले श्लोको मे द्वन्द्वयुद्ध का वर्णन किया गया है तथा बीसवे सर्ग मे शिशुपाल एवं श्रीकृष्ण का अस्त्रयुद्ध तथा शिशुपाल का वध वर्णित है। अन्त मे कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है।

महाभारत की छोटी घटना के आधार पर इस महाकाव्य की कथावस्तु संघटित की गयी है। कवि ने मूलकथा मे अपनी उद्भावनाशक्ति एवं कल्पना के प्रयोग के द्वारा अनेक परिवर्तन उपस्थित किया है। प्रथम सर्ग मे आकाशमार्ग मे नारद का आगमन एवं कृष्ण से इन्द्र का सन्देश सुनाना, द्वितीय सर्ग मे बलराम, उद्धव एवं कृष्ण का राजनीतिक वार्त्तालाप, प्राकृतिक दृश्यो एवं यज्ञ का विस्तृत वर्णन, ये कवि की मौलिक उद्भावनाये है। जहाँ तक महाकाव्योचित कथानक का प्रश्न है, शिशुपाल-वध की कथावस्तु संक्षिप्त होने के कारण अपर्याप्त है। महाकाव्य के लिए जीवन का विस्तार अपेक्षित है किन्तु शिशुपालवध में जीवन के विस्तृत पक्षों का निदर्शन नहीं है। श्रीकृष्ण के जीवन की एक छोटी-सी घटना को महाकाव्य का रूप दिया गया है। वस्तुतः यह कथा एक खण्डकाव्य के लिए ही उपयुक्त है। इसके अनेक प्रसंग जैसे, पानगोष्ठी, रूप-विन्यास, प्रातः, संध्या एवं ऋतुवर्णन आदि कथानक से सम्बद्ध न होने के कारण स्वतन्त्र रूप से लिखे गए-से लगते हैं। कथावस्तु के विकास

मे इनका कोई योग नहीं है। तीसरे से लेकर तेरहवे सर्ग तक शिशुपालवध में अनेक वर्णन आनुषङ्गिक है। समष्टिरूप से विचार करने पर यह रचना असफल महाकाव्य सिद्ध होती है। इसमे कवि ने मुख्य और प्रासंगिक घटनाओ के चित्रण में अपना सन्तुलन खो दिया है। उसका ध्यान प्रबन्ध-निर्वाह की अपेक्षा अपने युग की प्रचलित साहित्यिक विशेषताओं की ओर अधिक होने के कारण ही शिशुपालवध में वन, नगर, पर्वत, चन्द्रोदय, सूर्योदय, युद्ध, नायिकाभेद, पानगोष्ठी, रात्रिक्रीडा, जलविहार एव विविध शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। इसमे पात्रो की संख्या भी अत्यल्प है। केवल दो ही प्रमुख पात्र हैं—श्रीकृष्ण एवं शिशुपाल, कुछ पात्र जैसे, नारद, युधिष्ठिर, उद्धव, बलराम प्रसंग-विशेष से ही सम्बद्ध है। कथानक की स्वल्पता ही पात्रों की न्यूनता का कारण है। इसमे कवि का ध्यान घटना की अपेक्षा पात्रो के चरित्र-चित्रण पर कम रहा है।

आधारग्रन्थ—१. शिशुपालवध (संस्कृत टीका एव हिन्दी अनुवाद) चौखम्बा प्रकाशन। २. शिशुपालवध (हिन्दी अनुवाद)—अनु० पं० रामप्रताप त्रिपाठी।

शीलदूत—इस सन्देश काव्य के रचयिता का नाम चारित्रसुन्दरगणि है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १४८७ है। इसके लेखक गुजरात राज्य के खम्भात नामक स्थान के निवासी थे। इनके गुरु का नाम श्रीरत्नसिंह सूरि था। स्वयं कवि ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है—सोऽयं श्रीमानवनिविदितो रत्नसिंहाख्यसूरिर्जीयाद् नित्यं नृपतिमहतः सतपोगच्छनेता॥ १२९। 'शीलदूत' की रचना मेघदूत के श्लोको के अन्तिम चरण की समस्यापूर्ति के रूप मे हुई है। यह काव्य पूर्वभाग एवं उत्तरभाग के रूप में विभक्त नही है। इसमे कुल १३१ श्लोक है तथा शान्तरस का प्राधान्य है। इस काव्य का नायक शीलभद्र नामक व्यक्ति है जो जैनधर्म मे दीक्षित हो जाता है। तदनन्तर गुरु का आदेश प्राप्त कर वह अपनी नगरी मे जाता है यहाँ उसकी पत्नी कोशा अपनी दीनावस्था का वर्णन कर उसे पुनः गृहस्थी बसाने के लिए कहती है। पर शीलभद्र उसको वैराग्य भरा वचन कह कर उसे भी जैनधर्म में दीक्षित होने के लिए प्रेरित करता है। उसकी पत्नी उसका वचन मान कर जैनधर्म मे दीक्षित हो जाती है। विरह-वर्णन मे कवि ने अनुभूति की तीव्रता एवं विरह-व्याकुलता के अतिरिक्त भाषा पर असाधारण अधिकार का परिचय दिया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस से हो चुका है। कोशा की सखी चतुरा द्वारा कोशा का विरह-वर्णन देखने योग्य है—

एषाऽनैषीत् सुभग ! दिवसान् कल्पतुल्यानियन्तं कालं बाला बहुल सलिलं लोचना-भ्यां स्रवन्ती। अस्याद् दुःस्था तव हि विरहे मामियं वार्त्तयन्ती कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥ ८२॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

शीला भट्टारिका—संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्री। इनका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता, केवल 'सुभाषितरत्नकोश' (८१५,८५०) में दो श्लोक उद्धृत हैं। राजशेखर ने इनकी प्रशस्ति की है जिससे ज्ञात होता है कि ये दशम शतक की परवर्ती नहीं हैं।

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते । शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥ [पांचाली रीति मे शब्द एव अर्थ दोनो का समान गुम्फन होता है । ऐसी रीति कहीं तो शीला भट्टारिका की कविता मे और कहीं बाणभट्ट की उक्तियों में है] । इनके कुछ श्लोक प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे प्राप्त होते हैं । निम्नांकित श्लोक काव्यप्रकाश मे उद्धृत है । यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालती-सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः । सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय ।

शुकसप्तति—संस्कृत का लोक-प्रचलित कथाकाव्य । इसमे कहानियों का अत्यन्त रोचक संग्रह है । इस पुस्तक मे एक सुग्गे द्वारा, अपनी स्वामिनी को कथा सुनाई गयी है, जो अपने स्वामी के परदेश जाने पर अन्य पुरुषो की ओर आकृष्ट होती है । सुग्गा उसे कहानी सुनाकर ऐसा करने से रोकता है । इसकी दो वचनिकाएँ उपलब्ध होती हैं—एक विस्तृत और दूसरी संक्षिप्त । विस्तृत वचनिका के रचयिता चिन्तामणिभट्ट नामक व्यक्ति हैं जिनका समय १० वीं शताब्दी है । चिन्तामणि ने पूर्णभद्र के पञ्चतन्त्र का उपयोग किया था । संक्षिप्त संस्करण का लेखक कोई जैन है । हेमचन्द्र ने भी शुकसप्तति का उल्लेख किया है । इसके अनेक अनुवाद अन्य भाषाओ मे हुए हैं । चौदहवीं शताब्दी मे इसका एक अपरिष्कृत फारसी अनुवाद हुआ था । फारसी अनुवाद के माध्यम से इसकी बहुत-सी कथाये एशिया से यूरोप मे पहुच गयी थीं । डॉ० स्मिथ ने शुकसप्तति के दोनो विवरणों का जर्मन अनुवाद के साथ लाइपजिग से प्रकाशित कराया था । इसका प्रकाशन-काल १८३६ ई० (संक्षिप्त विवरण) एवं १८४६ ई० (विस्तृत विवरण) है [हिन्दी अनुवाद सहित चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित, अनु० श्रीरमाकान्त त्रिपाठी]

शुकसन्देश—इस सन्देश काव्य के रचयिता कवि लक्ष्मीदास हैं । इनका समय १५ वीं शताब्दी है । कवि मालावार प्रान्त का रहने वाला है । इनकी एक मात्र रचना 'शुकसन्देश' है । इस काव्य में गुणकापुरी के दो प्रेमी-प्रेमिकाओ का वर्णन है । शरद् ऋतु की रात्रि मे दोनो ही प्रेमी-प्रेमिका सुखपूर्वक शयन कर रहे है । नायक स्वप्न मे अपने को अपनी प्रिया से दूर पाता है और वह रामेश्वरम् के निकट रामसेतु के पास पहुंच गया है । वह स्वप्न मे अपनी पत्नी के पास शुक के द्वारा सन्देश भेजता है । इसमे रामेश्वरम् से गुणकापुरी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है । यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर रचित है । इसमे भी दो भाग हैं और प्रथम मे मार्गवर्णन एवं द्वितीय में सन्देश-कथन है । सम्पूर्ण काव्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है । केरल प्रान्त के ऐतिहासिक एवं सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किये गए है । अपनी प्रेयसी का वर्णन नायक के शब्दों में सुनें—सा कान्तिः सा गिरि मधुरता शीलरत्वं तदङ्गे सा सौरभ्योद्गतिरपि सुधासोदरः सोऽधरोष्ठः । एकास्वादे भृशमतिशयादन्यलाभेन यस्मिन्नेकीभावं व्रजति विषयः सर्व एवेन्द्रियाणाम् ॥ २।३५ ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देश काव्य—डॉ रामकुमार आचार्य।

शुक्र—भारत के प्राचीन राजशास्त्र-प्रणेता। इन्होंने 'शुक्रनीति' नामक राजशास्त्र-सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। भारतीय साहित्य में शुक्र दैत्य-गुरु के नाम से अभिहित किये जाते हैं। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में शुक्र (उशना-ऋषि) को राजशास्त्र की एक प्रमुख धारा का प्रवर्त्तक माना गया है तथा अर्थशास्त्र (कौटिल्य कृत) में भी ये महान् राजशास्त्री के रूप मे उल्लिखित हैं। पर इस समय जो 'शुक्रनीति' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है वह उतना प्राचीन नहीं है। इस ग्रन्थ के लेखक का सम्बन्ध उशना या शुक्र से नहीं है। ये शुक्र नामधारी कोई अन्य लेखक हैं। विद्वानों ने इनको गुप्तकाल का राजशास्त्रवेत्ता स्वीकार किया है। 'शुक्रनीति' में वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—राज्य का स्वरूप, दैवीसिद्धान्त, राजा का स्वरूप, राजा के कर्त्तव्य, राजा की नियुक्ति के सिद्धान्त-पैत्रिक-अधिकार, ज्येष्ठता, शारीरिक परिपूर्णता, चारित्रिक योग्यता, प्रजा की अनुमति, राज्याभिषेक का सिद्धान्त, मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता, मन्त्रिपरिषद् की सदस्यसंख्या तथा उनकी योग्यताएँ, राजकर्मचारियों की नियुक्ति के सिद्धान्त, पदच्युति का सिद्धान्त, राज की आय के साधन, कोश-संग्रह के सिद्धान्त, न्यायव्यवस्था, न्यायालयों का संगठन, राष्ट्र एवं उसकी विभिन्न बस्तियाँ, कुम्भ, पल्ली, ग्राम, ग्राम के अधिकारी, पान्थशाला, सैन्यबल, सेना-संगठन, सेना के अङ्ग, युद्ध, युद्ध के प्रकार, दैविकयुद्ध, आसुरयुद्ध, मानवयुद्ध, शस्त्रयुद्ध, बाहुयुद्ध, धर्मयुद्ध, धर्मयुद्ध के नियम आदि। शुक्रनीति (विद्योतिनी हिन्दी टीका के साथ) का प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन मे हो चुका है।

आधारग्रन्थ—भारत के राजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।

शूद्रक—संस्कृत के नाट्यकारों में शूद्रक विशिष्ट महत्त्व के अधिकारी हैं। इन्होंने 'मृच्छकटिक' नामक महान् यथार्थवादी एवं रोमांटिक नाटक की रचना की है। यह अपने ढंग का संस्कृत का अकेला नाटक है। मृच्छकटिक एवं उसके रचयिता के संबंध में प्राक्तन तथा अद्यतन विद्वानों ने अनेक प्रकार के मत व्यक्त किये है। इसकी रचना कब हुई एवं कौन इसका रचयिता है, यह प्रश्न अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ विद्वान् मृच्छकटिक को ही संस्कृत का प्रथम नाटक मानते है और इसकी रचना कालिदास से भी पूर्व स्वीकार करते हैं। किन्तु यह मत मृच्छकटिक की भाषा, प्राकृत-प्रयोग, शैली एवं नाटकीय-सविधान की दृष्टि से खण्डित हो चुका है और इसका निर्माण-काल कालिदास के बाद माना गया है।

परम्परा से मृच्छकटिक प्रकरण के प्रणेता शूद्रक माने जाते रहे है। इसकी प्रस्तावना में बताया गया है कि इसके रचयिता द्विजश्रेष्ठ शूद्रक थे जो ऋग्वेद, सामवेद, हस्तिविद्या आदि मे पारंगत थे। उन्होने सौ वर्ष १० दिन तक जीवित रहने के बाद अपने पुत्र को राज देकर चिता में प्रवेश कर अपना अन्त कर दिया था। 'ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकी हस्तिशिक्षां ज्ञात्वा शर्वप्रसादात् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य। राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा-लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥ ४॥' पुनः उसमें कहा गया है कि शूद्रक संग्राम

में कुशल, जागरूक, वैदिकों में श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ तथा शत्रुओं के हाथी से मल्लयुद्ध करने की अभिलाषा करने वाले राजा थे। 'समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदो वेदविदां तपोधनश्च। परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥ ५ ॥ द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च। द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥ ६ ॥' शूद्रक राजा का उल्लेख अनेक संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में भी शूद्रक का वर्णन है और वेतालपञ्चविंशति, कथासरित्सागर एवं कादम्बरी में शूद्रक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। हर्षचरित मे शूद्रक को चकोर के राजा चन्द्रकेतु का शत्रु कहा गया है। स्कन्दपुराण में विक्रमादित्य के सत्तादस वर्ष पूर्व राज्य करने का शूद्रक का वर्णन है। इन सारे ग्रन्थों के विवरण से ज्ञात होता है कि शूद्रक नाम उदयन की भाँति लोककथाओ के नायक का है। यदि शूद्रक को इस प्रकरण का रचयिता माना जाय तो कई प्रकार की आपत्तियाँ उठ खडी हो जाती हैं। प्रसिद्ध नाटककार अपने मरण की बात स्वयं कैसे लिख सकता है ? अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तावना के पद्य शूद्रक-रचित नहीं हैं। तब प्रश्न उठता है कि ये पद्य किसके द्वारा और क्यों जोड़े गए हैं। इस प्रश्न के समाधान में अनेक प्रकार के विवाद उठ खड़े हुए हैं और अनेक पाश्चात्य पण्डित मृच्छकटिक को शूद्रक-कर्तृक होने मे सन्देह प्रकट करते हैं। डॉ० पिशेल के मतानुसार मृच्छकटिक का रचयिता दण्डी है। उनका कहना है कि दण्डी के नाम पर तीन प्रबन्ध प्रचलित हैं। उनमें दो है—दशकुमारचरित और काव्यादर्श, तथा तीसरी कृति मृच्छकटिक ही है। श्रीनेरूरकर ने भास को ही इसका रचयिता माना है। पर, ये दोनों ही कल्पनाएँ ठीक नही हैं क्योंकि मृच्छकटिक के रचयिता के रूप मे शूद्रक का ही नाम प्रचलित है, भास और दण्डी का नही। यदि वे दोनों इसके प्रणेता थे तो उनके नाम प्रचलित क्यो नही हुए ? मृच्छकटिक की प्रस्तावना मे शूद्रक राजा बतलाये गए है और न तो दण्डी ही राजा हैं और न भास ही। अतः ये कल्पनाये निराधार हैं। डॉ० सिलवाँ लेवी का मत है कि किसी अज्ञातनामा कवि ने मृच्छकटिक की रचना कर उसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। श्री लेवी शूद्रक को इसका रचयिता मानने के पक्ष मे नहीं हैं। इसके मूल लेखक ने इसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए ही लेखक के रूप में शूद्रक का नाम दे दिया है। डॉ० लेवी ने अपने मत की पुष्टि मे जो तर्क दिये हैं उनमें कोई बल नही है। डॉ० कीथ ने शूद्रक नाम को अजीब मान कर इसे काल्पनिक पुरुष कहा है। 'इन उल्लेखो से प्रतीत होता है कि शूद्रक एक निजंधरी व्यक्ति मात्र थे। उनका विचित्र नाम, जो असामान्य प्रकार के राजा के लिए हास्यास्पद है, इस तथ्य का समर्थन ही करता है।' संस्कृत-नाटक पृ० १२६।

कीथ के अनुसार इसका रचयिता कोई दूसरा व्यक्ति है। पर इनका प्रथम मत इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि शूद्रक का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थो में है, और वे काल्पनिक व्यक्ति नहीं हैं। उनका उल्लेख एक जीवन्त व्यक्ति के रूप में किया गया है। शूद्रक के नाम पर शूद्रकचरित, शूद्रकवध एवं विक्रान्तशूद्रक प्रभृति ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु ये उपलब्ध नहीं होते। शूद्रक के विषय मे अद्यतन मत इस प्रकार है। शूद्रक

ऐतिहासिक व्यक्ति हैं किन्तु आगे चल कर इनका व्यक्तित्व लोककथाओं के घटाटोप में आच्छन्न हो गया। मृच्छकटिक शूद्रक की रचना नहीं है, किसी दूसरे कवि ने रच कर इसे शूद्रक के नाम से प्रचलित कर दिया है। भास-रचित 'दरिद्रचारुदत्त' के आधार पर किसी कवि ने इसमें आवश्यक परिवर्त्तन एवं कुछ कल्पनाओं का समावेश कर इसका रूप निर्मित किया था। गोपालदारक आर्यक एवं पालक की कथा इसी कवि की देन है जिसका स्रोत उसे गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा में अथवा तत्कालीन प्रचलित अन्य लोककथाओं में प्राप्त हुआ होगा। किसी कारणवश उसने अपना नाम न देकर शूद्रक को इसके लेखक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। प्रस्तावना में शूद्रक के परिचय वाले अंश मे परोक्षभूते लिट् के द्वारा शूद्रक का वर्णन है तथा इन श्लोकों में ऐतिह्यसूचक 'किल' शब्द भी प्रयुक्त है। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि ऐसे कौन से कारण थे जिन्होने लेखक को अपना नाम नहीं देने को बाध्य किया था। इस सम्बन्ध मे दो कारणों की कल्पना की गयी है जो समीचीन भी हैं। प्रथम तो यह कि मूल नाटक के लेखक भास थे अतः इसे अपने नाम पर प्रचलित करने में लेखक हिचकिचा गया होगा, फलतः उसने शूद्रक का नाम देकर छुट्टी पा ली होगी। द्वितीय कारण यह है कि इस नाटक मे जिन नवीन राजनीतिक, सामाजिक कल्पनाओं का समावेश किया गया है उनसे तत्कालीन समाज एवं राजवर्ग पर कशाघात किया गया है और उनकी खिल्ली उड़ाई गयी है। इसमे नाटककार ने क्रान्तिकारी विचारों को चरमसीमा पर पहुँचा दिया है। यहाँ ब्राह्मण चोर, जुआरी एवं चापलूस के रूप में चित्रित किए गए हैं और क्षत्रियो को क्रूर एवं दुराचारी दिखलाया गया है। राजा क्रूर और दुराचारी है तथा नीच जाति की रखेलियो को प्रश्रय देता है और नीच जाति के लोग ही राज्य के उच्चपदस्थ पदाधिकारी हैं। न्याय केवल राजा की इच्छा पर आश्रित रहता है। अतः इन्ही क्रान्तिकारी विचारों के समावेश के कारण राजदण्ड के भय से कवि ने अपना नाम नहीं दिया। पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने इस समस्या के समाधान के लिए नवीन कल्पना की है, किन्तु उनकी स्थापनाएँ विश्वसनीय नहीं हैं। उनका कथन इस प्रकार है—"अधिक तो कह नहीं सकता, पर जी जानता है कि यदि भास को राजा शूद्रक का राजकवि मान लिया जाय तो 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' की उलझन भी बहुत कुछ सुलझ जाय × × × × × × × भाव यह कि प्रभूत प्रमाण इस पक्ष मे है कि भास को राजा शूद्रक का राजकवि माना जाय और खुलकर कह दिया जाय कि वास्तव मे स्वामी की प्रेरणा से कवि भास 'चारुदत्त' की रचना में लीन थे। किन्तु, दैवदुर्विपाक कहिए कि बीच ही में चल बसे। निदान शूद्रक को आप ही अपनी कामना पूरी करनी पड़ी और फलतः 'चारुदत्त' झट 'मृच्छकटिक' मे परिणत हो गया" शूद्रक पृ० ६०—६१। नवीनतम खोजो के आधार पर डॉ० रामशंकर तिवारी ने अपने तीन निष्कर्ष दिये है—

क—'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत मे राजसत्ता का उपभोग उस अवधि मे किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन (५०० ईसवी) से आरम्भ होती है और थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन के उदय-काल (६०६ ईसवी) मे समाप्त

में कुशल, जागरूक, वैदिकों में श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ तथा शत्रुओं के हाथी से मल्लयुद्ध करने की अभिलाषा करने वाले राजा थे। 'समरव्यसनी प्रमादशून्य' ककुदो वेदविदां तपोधनश्च। परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥ ५ ॥ द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च। द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥ ६ ॥' शूद्रक राजा का उल्लेख अनेक संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण मे भी शूद्रक का वर्णन है और वेतालपञ्चविंशति, कथासरित्सागर एवं कादम्बरी में शूद्रक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। हर्षचरित मे शूद्रक को चकोर के राजा चन्द्रकेतु का शत्रु कहा गया है। स्कन्दपुराण में विक्रमादित्य के सत्ताइस वर्ष पूर्व राज्य करने का शूद्रक का वर्णन है। इन सारे ग्रन्थों के विवरण से ज्ञात होता है कि शूद्रक नाम उदयन की भाँति लोककथाओं के नायक का है। यदि शूद्रक को इस प्रकरण का रचयिता माना जाय तो कई प्रकार की आपत्तियाँ उठ खड़ी हो जाती हैं। प्रसिद्ध नाटककार अपने मरण की बात स्वयं कैसे लिख सकता है ? अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तावना के पद्य शूद्रक-रचित नहीं हैं। तब प्रश्न उठता है कि ये पद्य किसके द्वारा और क्यों जोड़े गए हैं। इस प्रश्न के समाधान मे अनेक प्रकार के विवाद उठ खड़े हुए हैं और अनेक पाश्चात्य पण्डित मृच्छकटिक को शूद्रक-कर्तृक होने मे सन्देह प्रकट करते हैं। डॉ० पिशेल के मतानुसार मृच्छकटिक का रचयिता दण्डी है। उनका कहना है कि दण्डी के नाम पर तीन प्रबन्ध प्रचलित हैं। उनमे दो है—दशकुमारचरित और काव्यादर्श, तथा तीसरी कृति मृच्छकटिक ही है। श्रीनेरूरकर ने भास को ही इसका रचयिता माना है। पर, ये दोनों ही कल्पनाएँ ठीक नही है क्योंकि मृच्छकटिक के रचयिता के रूप मे शूद्रक का ही नाम प्रचलित है, भास और दण्डी का नही। यदि वे दोनों इसके प्रणेता थे तो उनके नाम प्रचलित क्यों नहीं हुए ? मृच्छकटिक की प्रस्तावना मे शूद्रक राजा बतलाये गए है और न तो दण्डी ही राजा हैं और न भास ही। अतः ये कल्पनायें निराधार हैं। डॉ० सिल्वाँ लेवी का मत है कि किसी अज्ञातनामा कवि ने मृच्छकटिक की रचना कर उसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। श्री लेवी शूद्रक को इसका रचयिता मानने के पक्ष मे नहीं हैं। इसके मूल लेखक ने इसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए ही लेखक के रूप में शूद्रक का नाम दे दिया है। डॉ० लेवी ने अपने मत की पुष्टि मे जो तर्क दिये हैं उनमें कोई बल नही है। डॉ० कीथ ने शूद्रक नाम को अजीब मान कर इसे काल्पनिक पुरुष कहा है। 'इन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि शूद्रक एक निजंधरी व्यक्ति मात्र थे। उनका विचित्र नाम, जो असामान्य प्रकार के राजा के लिए हास्यास्पद है, इस तथ्य का समर्थन ही करता है।' संस्कृत-नाटक पृ० १२६।

कीथ के अनुसार इसका रचयिता कोई दूसरा व्यक्ति है। पर इनका प्रथम मत इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि शूद्रक का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में है, और वे काल्पनिक व्यक्ति नहीं हैं। उनका उल्लेख एक जीवन्त व्यक्ति के रूप मे किया गया है। शूद्रक के नाम पर शूद्रकचरित, शूद्रकवध एवं विक्रान्तशूद्रक प्रभृति ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु ये उपलब्ध नहीं होते। शूद्रक के विषय में अद्यतन मत इस प्रकार है। शूद्रक

ऐतिहासिक व्यक्ति हैं किन्तु आगे चल कर इनका व्यक्तित्व लोककथाओं के घटाटोप मे आच्छन्न हो गया। मृच्छकटिक शूद्रक की रचना नहीं है, किसी दूसरे कवि ने रच कर इसे शूद्रक के नाम से प्रचलित कर दिया है। भास-रचित 'दरिद्रचारुदत्त' के आधार पर किसी कवि ने इसमें आवश्यक परिवर्तन एवं कुछ कल्पनाओं का समावेश कर इसका रूप निर्मित किया था। गोपालदारक आर्यक एवं पालक की कथा इसी कवि की देन है जिसका स्रोत उसे गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा में अथवा तत्कालीन प्रचलित अन्य लोककथाओं मे प्राप्त हुआ होगा। किसी कारणवश उसने अपना नाम न देकर शूद्रक को इसके लेखक के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। प्रस्तावना मे शूद्रक के परिचय वाले अंश में परोक्षभूते लिट् के द्वारा शूद्रक का वर्णन है तथा इन श्लोकों में ऐतिह्यसूचक 'किल' शब्द भी प्रयुक्त है। इस सम्बन्ध मे यह प्रश्न उठता है कि ऐसे कौन से कारण थे जिन्होने लेखक को अपना नाम नहीं देने को बाध्य किया था। इस सम्बन्ध मे दो कारणो की कल्पना की गयी है जो समीचीन भी हैं। प्रथम तो यह कि मूल नाटक के लेखक भास थे अतः इसे अपने नाम पर प्रचलित करने में लेखक हिचकिचा गया होगा, फलतः उसने शूद्रक का नाम देकर छुट्टी पा ली होगी। द्वितीय कारण यह है कि इस नाटक मे जिन नवीन राजनीतिक, सामाजिक कल्पनाओं का समावेश किया गया है उनसे तत्कालीन समाज एव राजवर्ग पर कशाघात किया गया है और उनकी खिल्ली उडाई गयी है। इसमें नाटककार ने क्रान्तिकारी विचारों को चरमसीमा पर पहुँचा दिया है। यहाँ ब्राह्मण चोर, जुआरी एवं चाटुलुस के रूप में चित्रित किए गए हैं और क्षत्रियो को क्रूर एवं दुराचारी दिखलाया गया है। राजा क्रूर और दुराचारी है तथा नीच जाति की रखेलियों को प्रश्रय देता है और नीच जाति के लोग ही राज्य के उच्चपदस्थ पदाधिकारी है। न्याय केवल राजा की इच्छा पर आश्रित रहता है। अतः इन्ही क्रान्तिकारी विचारों के समावेश के कारण राज-दण्ड के भय से कवि ने अपना नाम नहीं दिया। पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने इस समस्या के समाधान के लिए नवीन कल्पना की है, किन्तु उनकी स्थापनाएँ विश्वसनीय नहीं हैं। उनका कथन इस प्रकार है—"अधिक तो कह नहीं सकता, पर जी जानता है कि यदि भास को राजा शूद्रक का राजकवि मान लिया जाय तो 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' की उलझन भी बहुत कुछ सुलझ जाय × × × × × × × भाव यह कि प्रभूत प्रमाण इस पक्ष मे है कि भास को राजा शूद्रक का राजकवि माना जाय और खुलकर कह दिया जाय कि वास्तव में उन्ही की प्रेरणा से कवि भास 'चारुदत्त' की रचना में लीन थे। किन्तु, दैवदुर्विपाक कहिए कि बीच ही में चल बसे। निदान शूद्रक को आप ही अपनी कामना पूरी करनी पड़ी और फलतः 'चारुदत्त' झट 'मृच्छकटिक' मे परिणत हो गया" शूद्रक पृ० ६०–६१। नवीनतम खोजों के आधार पर डॉ० रामशंकर तिवारी ने अपने तीन निष्कर्ष दिये हैं—

क—'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत मे राजसत्ता का उपभोग उस अवधि मे किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन (५०० ईसवी) से आरम्भ होती है और थानेश्वर के महाराज हर्षवर्धन के उदय-काल (६०६ ईसवी) मे समाप्त

होती है। वह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है जब देश अनेक छोटे-छोटे स्वाधीन राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें हूणों द्वारा संस्थापित राज्य भी था जो विदेशी आक्रान्ता थे। शूद्रक ऐसे छोटे-छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता-प्राप्ति के लिए स्वयं कोई छोटा-मोटा संघर्ष करना पड़ा था या फिर, किसी सत्तापहरण वाले कांड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।

ख—शूद्रक का व्यक्तित्व रोमांटिक था।''''''उसे यह चिन्ता नहीं थी कि वह कोई मौलिक प्रणयन करे। भास की रचना उसे मिली और कुछ नवीन तत्वों को जोड़कर, उसने मिट्टी की गाड़ी रच दी क्योंकि वह साधारण मिट्टी का मनुष्य था''' 'मृच्छकटिक' का प्रणयन-काल ईसा की छठी शताब्दी का पूरा अन्तराल रहा होगा। महाकवि शूद्रक पृ० ११७-१८। दण्डी के 'काव्यादर्श में 'मृच्छकटिक' का पद्य 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' उद्धृत है। दण्डी का समय विद्वान् ७०० ई० मानते हैं, इस दृष्टि से भी शूद्रक का समय ईसा की छठी शताब्दी ही निश्चित होता है।

शूद्रक की एकमात्र यही रचना प्राप्त होती है। मृच्छकटिक में दस अंक हैं, अतः शास्त्रीय दृष्टि से इसे प्रकरण की संज्ञा दी गयी है। इसमें कवि ने ब्राह्मण चारुदत्त एवं वेश्या वसन्तसेना के प्रणय-प्रसंग का वर्णन किया है। 'मृच्छकटिक' कई दृष्टियों से संस्कृत का विशिष्ट नाटक सिद्ध होता है। इसमें रंगमंच का शास्त्रीय टेकनीक अत्यधिक गठित है और रूढ़ि एवं परम्परा को विशेष महत्त्व नहीं दिया है। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग इसका हास्य है। कथानक की विभिन्नता एवं वस्तु का वैचित्र्य, चरित्रों की बहुलता एवं उनकी स्वतन्त्र तथा स्पष्ट वैयक्तिकता घटनाचक्र का गतिमान संक्रमण, सामाजिक राजनीतिक क्रान्ति और उच्चकोटि का हास्य मृच्छकटिक को विश्व नाटक के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं [दे० मृच्छकटिक]। नाटककार एवं कवि दोनों ही रूपों में शूद्रक की प्रतिभा विलक्षण सिद्ध होती है। डॉ० कीथ का कहना है कि "इस रूपक के गुण इतने पर्याप्त हैं कि लेखक की अनुचित प्रशंसा अनावश्यक है। इसके रचयिता माने जाने वाले शूद्रक को सर्वदेशीय होने का गौरव प्रदान किया गया है। 'कविताकामिनी के विलास' कालिदास और वश्यवाक् भवभूति में चाहे जितना अन्तर हो किन्तु मृच्छकटिक के लेखक की तुलना में इन दोनों का परस्पर भावनासाम्य कहीं अधिक है; शकुन्तला और उत्तररामचरित की रचना भारत के अतिरिक्त किसी भी देश में संभव नहीं थी, शकुन्तला एक हिन्दू नायिका है, माधव एक हिन्दू नायक है, जब कि संस्थानक, मैत्रेय और मदनिका विश्वनागरिक है। परन्तु, यह दावा स्वीकार्य नहीं है। मृच्छकटिक अपने पूर्ण रूप में एक ऐसा रूपक है जो भारतीय विचारधारा और जीवन से ओतप्रोत है।" संस्कृत नाटक पृ० १३८। वस्तुतः मृच्छकटिक के पात्र भारतीय मिट्टी के पात्र होते हुए भी सार्वभौम भी है, इसमें किसी प्रकार की द्विधा नहीं है।

शूद्रक की शैली अत्यन्त सरल, आकर्षक तथा स्पष्टता एवं सादगी से पूर्ण है। इन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो क्लिष्ट पदावली से रहित तथा लम्बे-लम्बे समासों से मुक्त है। मुख्यतः इन्होंने वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है किन्तु यत्र-

तथ आवश्यकतानुसार गौडी रीति भी अपनायी गयी है। भावानुसार भाषा में परिवर्त्तन करने के कारण ही यह शैली-भेद दिखाई पड़ता है। इनकी अभिव्यक्ति सबल है। ये अल्प शब्दों के द्वारा चित्र खींचने की कला में दक्ष हैं। इन्होंने लम्बे-लम्बे चित्रणों से यथासम्भव अपने को बचाया है और इसी कारण इनकी रचना रङ्गमञ्चोपयोगी हो गयी है। पर कहीं-कहीं जैसे, वसन्तसेना के घर का विस्तृत वर्णन एवं वर्षा का विशद चित्रण मन को उबाने वाले सिद्ध होते है। शृङ्गार और करुण रसों के चित्रण में शूद्रक सिद्धहस्त हैं। इन्होंने दानों ही रसों के बड़े ही मोहक चित्र अंकित किये हैं—'धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्। आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ॥ ५।४९ ।' उन्हीं मनुष्यों का जीवन धन्य है, जो स्वयं घर मे आई हुई कामिनियों के वर्षा जल से भीगे एवं शीतल अङ्गों को अपने अङ्गों से आलिङ्गन करते है।' वसन्तसेना की शृङ्गारोद्दीपक ललित गति का चित्र देखने योग्य है—'किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदलं वहन्ती ॥ रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनः शिलगुहेव विदार्यमाणा ॥ १।२० ।' 'अस्त्र द्वारा विदारित मनःशिला के समान लाल-लाल समूहों को (पद-पद्मों से) अंकित कर रही हो, वायु के स्पर्श से अंचल चंचल हो रहा है। इस प्रकार लाल वस्त्र धारण कर नवीन केले के समान क्यों कांपती हुई जा रही है।'

कवि ने प्रकृति चित्रण उद्दीपन के रूप में किया है। पंचम अंक का वर्षा-वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। प्राकृत-प्रयोग की दृष्टि से मृच्छकटिक एक अपूर्व प्रयोग के रूप मे दिखाई पड़ता है। इसमें सात प्राकृतों का प्रयोग है—शौरसेनी, मागधी, प्राच्या, शकारी, चाण्डाली, अवन्तिका एवं ढक्की। इस नाटक में कवि ने अनेक ऐसे विषयों के वर्णन में सौन्दर्य ढूँढा है जिनकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। शर्विलक के मुख से यज्ञोपवीत की उपयोगिता का वर्णन सुनने योग्य है—'एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्गानेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्। उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनञ्च ॥ ३।१६ ।' 'इससे सेंध फोडते भीत नापी जाती है। इससे अंगों में संलग्न आभूषण निकाले जाते है। यह किल्ली द्वारा दृढतापूर्वक बन्द किवाड खोलने मे सहायक होता है तथा विषैले जीवों तथा सर्पों के काटने पर उसे बाँधने मे काम देता है।'

आधारग्रन्थ—१— हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—दासगुप्त एवं डे। २—संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ३—इण्डियन ड्रामा—स्टेन कोनो। ४—इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ मृच्छकटिक—जी० वी० देवस्थली। ५—प्रिफेस टु मृच्छकटिक—जी० के० भट। ६—द थियेटर ऑफ हिन्दूज—एम० एच० विल्सन। ७—संस्कृत ड्रामा—इन्दुशेखर। ८—संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ९—संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। १०—संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ११—संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। १२—मृच्छकटिक—चौखम्बा संस्करण (हिन्दी-टीका) भूमिका भाग—पं० कान्तानाथ शास्त्री तैलंग। १३—शूद्रक—पं० चन्द्रबली पाण्डेय। १४—महाकवि शूद्रक—डॉ०

रामशंकर तिवारी। १५—संस्कृत नाट्य समीक्षा—इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'। १६—संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—कृष्ण चैतन्य (हिन्दी अनुवाद)। १७—आलोचना त्रैमासिक अंक २७ मृच्छकटिक पर निबंध—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय। १८—मृच्छकटिक पर निबंध—पं० इलाचन्द्र जोशी संगम साप्ताहिक १९४८।

शैवतन्त्र—शिव की उपासना से सम्बद्ध तन्त्र को शैवतन्त्र कहते है। दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता के कारण इसके चार विभाग हो गए हैं—पाशुपतमत, शैवसिद्धान्तमत, वीरशैवमत एवं स्पन्द या प्रत्यभिज्ञामत। शिव या रुद्र की उपासना वैदिक युग मे ही प्रारम्भ हो चुकी थी और वेदो में रुद्रविषयक अनेक मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। 'यजुर्वेद' में 'शतरुद्रीय अध्याय' अपनी महत्ता के लिए प्रसिद्ध है और 'तैत्तिरीय-आरण्यक' में (१०।१६) समस्त जगत् को रुद्र रूप कहा गया है। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' मे (३।११) रुद्र को सर्वव्यापी तथा सर्वगत माना गया है, पर इन ग्रन्थों मे तन्त्रशास्त्र-संबंधी पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग नहीं मिलते। 'महाभारत' मे शैवमतों के वर्णन प्राप्त होते है। 'अथर्वशिरस्' उपनिषद् मे पाशुपतमत के अनेक पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं जिससे शैवमत की प्राचीनता सिद्ध होती है। शैवतन्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे प्रचलित थे। पाशुपतमत का केन्द्र गुजरात एवं राजपूताना में था और शैवसिद्धान्त तामिल देश में लोकप्रिय था। वीरशैवमत का क्षेत्र कर्नाटक था और प्रत्यभिज्ञादर्शन का केन्द्र काश्मीर।

१—पाशुपत मत—इस मत के संस्थापक लकुलीश या नकुलीश माने जाते हैं। 'शिवपुराण' के 'कारवण माहात्म्य' मे इनका जन्म स्थान 'भडोच' के निकटस्थ 'कारवन' संज्ञक स्थान माना गया है। राजपूताना एवं गुजरात में जो इनकी मूर्त्तियाँ प्राप्त होती हैं उनका सिर केशों से ढँका हुआ दिखाई पडता है। इनके दाहिने हाथ मे बीजपूर का फल एवं बायें मे लगुड रहता है। लगुड धारण करने के कारण ही ये लकुलीश या लगुडेश कहे गए। शिव के १८ अवतार माने गए है उनमे नकुलीश को उनका आद्यावतार माना जाता है। उनके नाम हैं—लकुलीश, कौशिक, गार्ग्य, मैत्र्य, कौरुष, ईशान, पारगार्ग्य, कपिलाण्ड, मनुष्यक, अपरकुशिक, अत्रि, पिंगलाक्ष, पुष्पक, बृहदार्य, अगस्ति, सन्तान, राशीकर तथा विद्यागुरु। पाशुपतो का साहित्य अत्यन्त अल्पमात्रा मे ही प्राप्त होता है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' मे माधवाचार्य ने 'नकुलीश पाशुपत' के नाम से इस मत के दार्शनिक सिद्धान्त का विवेचन किया है। राजशेखर सूरि-रचित 'षड्दर्शनसमुच्चय' मे भी 'योगमत' के रूप में इस सम्प्रदाय की आध्यात्मिक मान्यताएँ वर्णित है। इस सम्प्रदाय का मूलग्रन्थ 'पाशुपतसूत्र' उपलब्ध है जिसके रचयिता महेश्वर हैं। यह ग्रन्थ 'पञ्चार्थो भाष्य' के साथ अनन्तशयन ग्रन्थमाला (सं० १४३) से प्रकाशित है। इस भाष्य के रचयिता कौण्डिन्य है।

२—शैव सिद्धान्तमत—तामिल प्रदेश ही इस मत का प्रधान केन्द्र माना जाता है। इस प्रान्त के शैवभक्तों ने तामिल भाषा मे शिवविषयक स्तोत्रों का निर्माण किया है जिन्हें वेद के सदृश महत्त्व दिया जाता है। इस मत में ८४ शैव सन्त हो चुके है जिनमे चार अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—अप्पार, सन्त ज्ञानसम्बन्ध, सुन्दरमूर्ति एवं मणिक्कवाचक

ये सन्त चार प्रमुख शैव मार्गों के संस्थापक माने गए हैं—मार्गचर्या, क्रिया, योग एवं ज्ञान। इनका समय सप्तम एवं अष्टम शताब्दी है। इनकी रचनाएं मुख्यतः तमिल में ही है और कुछ संस्कृत में भी प्रकाशित हो रही हैं। इसके आगम को 'शैव सिद्धान्त' कहते हैं। शैवागमो की संख्या २०८ मानी जाती है। कहा जाता है कि भगवान् शिव के पांच मुखो से २८ तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है जिसे भगवान् ने अपने भक्तों के उद्धार के लिए प्रकट किया था। शैवाचार्यों के सद्योज्योति (८ वीं शताब्दी) हरदत्त शिवाचार्य (११ वी शताब्दी), रामकण्ठ (११ वीं शताब्दी) एवं अघोरशिवाचार्य आदि प्रसिद्ध आचार्य है। इनमें सद्योज्योति ने नरेश्वरपरीक्षा, गौरवागम की वृत्ति, स्वायम्भुव आगम पर उद्योत एवं तत्वसंग्रह तत्त्वत्रय, भोगकारिका, मोक्षकारिका एवं परमोक्षनिरासकारिका नामक ग्रन्थो की रचना की है। हरदत्त शिवाचार्य की प्रसिद्ध रचना है—श्रुतिसूक्तिमाला या चतुर्वेद तात्पर्य-सग्रह।'

३—वीर शैवमत—इस मत के अनुयायी लिंगायत या जंगम कहे जाते हैं। इन्हें वर्णव्यवस्था मान्य नही है। ये शंकर की लिंगायत मूर्त्ति सदा गले में धारण किये रहते हैं। इस मत का प्रचार कर्नाटक मे अधिक है। इनके आद्यप्रवर्तक (१२ वीं शताब्दी) 'बसव' कहे जाते हैं जो कलचुरि के राजा बिज्जल के मन्त्री थे। वीर शैवों के अनुसार इस मत की प्राचीनता असंदिग्ध है और इसका उपदेश पांच महापुरुषों ने विभिन्न समय पर दिया था। उनके नाम है—रेण्डकाचार्य, दारुकाचार्य, एकोरामाचार्य, पण्डिताराध्य एव विश्वाराध्य। शिवयोगी शिवाचार्यकृत 'सिद्धान्तशिखामणि' इस सम्प्रदाय का मान्य ग्रन्थ है।

४—प्रत्यभिज्ञादर्शन—इस मत का प्रचलन काश्मीर मे अधिक था। इसे स्पन्द या त्रिक् दर्शन भी कहा जाता है। पशु, पति एवं पाश तीन तत्त्वों की प्रधानता के कारण यह दर्शन त्रिक् के नाम से विख्यात है। अथवा ९२ आगमो में से सिद्धा नामक एवं मालिनी तन्त्र की प्रमुखता ही त्रिक् नाम का कारण है। अभिनवगुप्त ने 'तन्त्रालोक' मे इस दर्शन के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन किया है। कहा जाता है कि भगवान् शिव ने शैवागमो की द्वैतपरक व्याख्या को देखकर ही इस मत को प्रकट किया था जिसका उद्देश्य अद्वैततत्त्व का प्रचार था। भगवान् ने दुर्वासा ऋषि को इसके प्रचार का आदेश दिया था। इस दर्शन (अद्वैतवादी) का साहित्य अत्यन्त विशाल है जो काश्मीर ग्रन्थमाला से प्रकाशित है। त्रिक के मूल आचार्य वसुगुप्त माने जाते हैं जो ८०० ई० आसपास थे। इन्होने स्पन्दकारिका (५२ कारिका) मे शिवसूत्र की विशद व्याख्या की है। कहा जाता है कि 'शिवपल्' नामक चट्टान पर 'शिवसूत्र' उट्टङ्कित थे (जिनकी संख्या ७७ है) जिन्हें भगवान् शिव ने वसुगुप्त को स्वप्न में इनके उद्धार का आदेश दिया था। ये ही सूत्र इस दर्शन के मूल है। वसुगुप्त के दो शिष्यों महामाहेश्वराचार्य कल्लट (नवम शतक का उत्तरार्द्ध) एवं सोमानन्द ने क्रमशः स्पन्दसिद्धान्त एवं प्रत्यभिज्ञा मत का प्रचार किया। कल्लट की प्रसिद्ध रचना है 'स्पन्दकारिका' की वृत्ति जिसे 'स्पन्दसर्वस्व' कहा जाता है। सोमानन्द के ग्रन्थों के नाम हैं—'शिवदृष्टि' एवं 'परात्रिशिका-विवृत्ति'। उत्पलाचार्य प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रसिद्ध

आचार्य हैं (९०० ई०) ये सोमानन्द के शिष्य थे। इन्होंने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं—अजडप्रमातृसिद्धि, ईश्वर-सिद्धि, तथा सम्बन्ध-सिद्धि, शिवस्तोत्रावली। अभिनवगुप्त उत्पलाचार्य के शिष्य एवं लक्ष्मणगुप्त के शिष्य थे। इनका 'तन्त्रालोक' मन्त्रशास्त्र का महाकोश माना जाता है। इनके अन्य ग्रंथ है—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, तन्त्रसार आदि। दे० अभिनवगुप्त। इस दर्शन के अन्य प्रसिद्ध आचार्य क्षेमराज (९७५-१०२५) है। ये अभिनवगुप्त के शिष्य थे। इनके ग्रन्थ है—शिवसूत्रविमर्शिनी, स्वच्छन्दतन्त्र, विज्ञानभैरव, नेत्रतन्त्र पर उद्योत टीका, प्रत्यभिज्ञाहृदय, स्पन्दसन्दोह, शिवस्तोत्रावली की टीका सहित।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय साधना और संस्कृति भाग १,२—म० म० डॉ० गोपीनाथ कविराज। २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय। ३. शैवमत—डॉ० यदुवंशी।

शोभाकर मित्र—अलंकारशास्त्र के आचार्य। इनका समय संवत् १२५० से १३५० के बीच है। इन्होंने 'अलंकाररत्नाकर' नामक अलंकार-विषयक ग्रन्थ की रचना की है। इसमे सूत्रशैली में १३३ अलंकारो का विवेचन है तथा वृत्तियो के द्वारा उनका स्वरूप स्पष्ट किया गया है। लेखक ने अनेक अलंकारों—रूपक, स्मरण, भ्रान्तिमान्, सन्देह, अपह्नुति आदि—के सबंध मे नवीन तथ्य प्रकट किये हैं यथा ४१ नवीन अलंकारों का वर्णन है। 'अलंकार रत्नाकर' मे कुल १११ अलंकार वर्णित हैं। इसमे बढ़ाये गए अलकारो की सूची इस प्रकार है—असम, उदाहरण, प्रतिमा, विनोद, व्यासंग, वैधर्म्य, अभेद, वितर्क, प्रतिभा, क्रियातिपत्ति, निश्चय, विध्याभास, सन्देहाभास, विकल्पाभास, विपर्यय, अचिन्त्य, अशक्य, व्यत्यास, समता, उद्रेक, तुल्य, अनादर, आदर, अनुकृति, प्रत्यूह, प्रत्यादेश, व्याप्ति, आपत्ति, विधि, नियम, प्रतिप्रसव, तंत्र, प्रसंग, वर्धमानक, अवरोह, अतिशय, शृङ्खला, विवेक, परभाग, उद्भेद एवं गूढ। शोभाकर मित्र का अलंकार-विवेचन अत्यन्त प्रौढ़ है। इनके अलंकार-निरूपण के लिए दे० लेखक का शोधप्रबन्ध—"अलंकारो का ऐतिहासिक विकास : भरत से पद्माकर तक" अलंकार रत्नाकर का प्रकाशन ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना (१९४२ ई०) से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—अलंकारानुशीलन—राजवंश सहाय 'हीरा' चौखम्बा प्रकाशन।

शौनकोपनिषद्—इसका प्रकाशन आड्यार लाइब्रेरी की एकमात्र पाण्डुलिपि के आधार पर हुआ है। इसमे एकाक्षर 'ॐ' की उपासना का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है तथा असुरो पर देवो की विजय एवं इन्द्र का महत्त्व वर्णित है। इसके अन्त मे शौनक ऋषि का उल्लेख उपदेष्टा के रूप मे है और यही इसके नाम का रहस्य भी है।

श्रीकृष्णविलास चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता नरसिंह सूरि कवि हैं। इनके पिता का नाम अनन्त नारायण एवं माता का नाम लक्ष्मी था। इसमे कवि ने सोलह आश्वासो में भागवत की कथा का वर्णन किया है। रचना में वर्णन विस्तार पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होता है और इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण है। कलानिधि नामक

विद्वान् ने 'कल्लोल' नामक टीका इसके १४ आश्वासों पर लिखी है। रचना का समय १७ वीं शताब्दी के आसपास है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२२२९ में प्राप्त होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में वासुदेव की स्तुति की गयी है—'आनन्दे चिति सत्यनन्ययुजि च स्वस्मिन्नविद्याकृत-प्रारम्भादसतो निवृत्तमनसामस्मादबुद्धात्मनाम्। एतत्तथ्यमिव स्वसंगततया तन्वन् जगद्यस्वरा-ड्डात्मे-वात्मविदा विभाति स सदा वो वासुदेवोऽवनान्॥'

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

शंकरानन्द चम्पू—इस चम्पूकाव्य के प्रणेता का नाम है गुरु स्वयम्भूनाथ राम। इनके जीवन एवं समय के सबन्ध मे कुछ भी विवरण प्राप्त नहीं होता। यह ग्रन्थ पाँच उच्छ्वास मे विभक्त है जिसके अन्तिम कतिपय पृष्ठ नष्ट हो गए है। कवि ने 'महाभारत' के अनुकरण पर किरातार्जुनीय की कथा का वर्णन किया है। इनकी रचनाशैली पर पूर्ववर्त्ती कवियो की छाया देखी जाती है किन्तु ग्रन्थ उत्तम श्रेणी का है। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है और इसका विवरण डी० सी० मद्रास १२३७७ मे प्राप्त होता है। प्रारम्भ में कवि गणेश की वन्दना की है तथा कथा का प्रारम्भ कैलाशपर्वत के रमणीय वर्णन से किया गया है—'आरुह्य यत्र हरवाहमहोक्ष-मोहाद्-गण्डोपल गमनवीथिषु नेतुकामः। आस्फालनोत्तरलहस्ततलस्सहास-मालोकयते च सममम्बिकया कुमारः॥'

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

श्रीधर—ज्योतिषशास्त्र एवं बीजगणित के मर्मज्ञ विद्वानो मे श्रीधर का नाम लिया जाता है। इनका समय दशक शताब्दी का अन्तिम चरण है, पर कुछ विद्वान् इनका आविर्भाव-काल ७५० ई० मानते है। ये कर्णाटक प्रान्त के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम बलदेव शर्मा एवं माता का नाम अब्बोका था। पहले ये शैव थे किन्तु आगे चलकर जैनधर्मावलम्बी बन गए। इन्होने ज्योतिषशास्त्र-विषयक तीन ग्रन्थो—'गणितसार', 'ज्योतिर्ज्ञानविधि' एवं 'जातकतिलक'—की रचना की है जिनमें प्रथम दो ग्रन्थ संस्कृत में एवं अन्तिम कन्नड भाषा मे है। 'गणितसार' के वर्णित विषय है—अभिन्नगुणक, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घनमूल, भिन्न, समच्छेद, भागजाति, प्रभागजाति—भागानुबन्ध, भागमातृजाति, त्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, भाण्डप्रतिभाण्ड, मिश्रकव्यवहार, भाव्यव्यवहारसूत्र, एकपत्रीकरणसूत्र, सुवर्णगणित, प्रक्षेपकगणित, समक्रमविक्रमसूत्र, श्रेणीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितव्यवहार, कोष्ठ-व्यवहार, राशिव्यवहार एव छायाव्यवहार। 'ज्योतिर्ज्ञानविधि' मे ज्योतिषशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तो का वर्णन है। इसमे संवत्सरो के नाम, नक्षत्र, योगनाम, करणनाम एवं इनके शुभाशुभत्व, मासशेष, मासाधिपतिशेष, दिनशेष, दिनाधिपतिशेष आदि विषय वर्णित हैं।

आधारग्रन्थ—भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

श्रीनिवास चम्पू—इस चम्पूकाव्य के रचयिता वेंकट नामक कवि हैं। इनके विषय में कुछ भी विवरण प्राप्त नहीं होता है। 'श्रीनिवासचम्पू' के दो भाग हैं—पूर्वविलास तथा उत्तरविलास। पूर्वविलास पाँच उच्छ्‌वासों मे विभक्त है और उत्तर विलास में पाँच उल्लास है। पूर्वविलास मे कथावस्तु का विकास दिखलाया है तो उत्तरविलास मे वाग्विलास का चमत्कार। पूर्वविलास के प्रथम परिच्छेद मे राजा श्रीनिवास का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। द्वितीय में पद्मावती का राजा द्वारा दर्शन तथा तृतीय मे पद्मावती का विरह-वर्णन है। चतुर्थ मे राजा श्रीनिवास का नारायणपुर (पद्मावती का निवासस्थान) मे बकुला द्वारा संदेश प्रेषण तथा बकुला की सहायता से राजा श्रीनिवास एवं पद्मावती का मिलन वर्णित है। पञ्चम उच्छ्‌वास मे विधि-विधान के द्वारा दोनो का विवाह वर्णित है। उत्तरविलास में विभिन्न देशो से आये हुए कवियो का वाग्विलास तथा समस्यापूर्ति के साथ राजा श्रीनिवास की प्रशस्ति की गयी है। सम्पूर्ण काव्य मे उक्ति-चमत्कार तथा श्लेष एवं यमक की छटा प्रदर्शित होती है और कवि का मुख्य उद्देश्य काव्यकौशल का प्रदर्शन रहा है जिसमे वह पूर्ण सफल हुआ है। यमक का चित्र देखिए—*कमलाकमला यस्य ताक्ष्यंस्ताक्ष्यों धरापते। नन्दिनी नन्दिनी यस्य स ते राजन् वरोवरः* ॥ पृ० ८५। इस काव्य का प्रकाशन गोपालनारायण कं० से हो चुका है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

श्रीपति—ज्योतिषशास्त्र के आचार्य। इन्होने गणित एवं फलित दोनो प्रकार के ग्रन्थों की रचना की है। ये अपने समय के महान् ज्योतिर्विद् माने जाते थे। इनका समय १०३९ ई० के आसपास है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ है—'पाटीगणित', 'बीजगणित', 'सिद्धान्तशेखर' (तीनो ग्रन्थ गणित ज्योतिष के हैं), 'श्रीपतिपद्धति', 'रत्नावली', 'रत्नसार' एवं 'रत्नमाला' (सभी ग्रन्थ फलित ज्योतिष के है)। प्रबोधचन्द्रसेन ने 'खण्डखाद्यक' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की अंगरेजी टीका (पृ० ९३) मे बतलाया है कि 'श्रीपति के पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने काल-समीकरण के उस भाग का पता नहीं लगा पाया था जो रविमार्ग की तिर्यकृता के कारण उत्पन्न होता है'। भारतीय ज्योतिष का इतिहास पृ० १८८। ये न केवल गणित ज्योतिष के ही मर्मज्ञ थे, अपितु ग्रहवेध-क्रिया के भी जानकार थे। इन्होने 'सिद्धान्तशेखर' नामक ग्रन्थ में 'ग्रहवेध-क्रिया के द्वारा 'ग्रह-गणित' की वास्तविकला जानने की विधि का संकलन किया है। इन्होने सरल एव बोधगम्य शैली मे अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया है। सिद्धान्तशेखर, मक्किभट्ट कृत टीका के साथ कलकत्ता से १९४७ मे प्रकाशित, सम्पादक—बबुआ मिश्र।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद। २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री।

श्रीमद्भागवतपुराण—क्रमानुसार ५ वाँ पुराण। 'श्रीमद्भागवत' को महापुराण की संज्ञा से विभूषित करते हुए सम्पूर्ण पुराणो म इसका प्राधान्य प्रदर्शित किया गया है। इसे 'ब्रह्मसम्मित' कहा जाता है—'इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्'। स्वयं

भागवतकार ने भी इसे 'निगमकल्पतरु का गलित अमृतमय फल' कहा है। यह पुराण वैष्णव आचार्यों के बीच 'प्रस्थान-चतुष्टय' के नाम से विख्यात है और सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन-परम्परा में इसका स्थान 'ब्रह्मसूत्र' 'उपनिषद्' एवं 'गीता' की भाँति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह भक्तिरस का आधारग्रंथ एवं धर्म का रसात्मक स्वरूप उपस्थित करनेवाला शास्त्रीय ग्रन्थ भी है। श्रीमद्भागवत भारतीय वैदुष्य का चरमशिखर है जिसमे नैष्कर्म्य भक्ति का प्रतिपादन तथा भगवान् की चिन्मय लीला का चिन्मय संकल्प एवं दिव्य बिहार का वर्णन करते हुए प्रेमिल भावना का शास्त्रीय एवं व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमे ब्रह्मविषयक जिन तीन बातो का प्राधान्य प्रदर्शित किया गया है, वे हैं—अधिष्ठानता, साक्षिता और निरपेक्षिता, और उनके तीन रूपों—आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक की भी व्यंजना हुई है। इसमे यह सिद्ध किया गया है कि श्रीकृष्ण ही ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् है।' वदन्ति तत्तत्त्व विदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ॥' श्रीमद्भागवत, १।२।११

'श्रीमद्भागवत' मे १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय एवं लगभग १८ सहस्र श्लोक है। 'नारदीयपुराण', 'पद्मपुराण', 'कौशिकसहिता,' 'गौरीतन्त्र', 'स्कंदपुराण' आदि ग्रंथों के अनुसार इनमे १८ हजार श्लोक हैं तथा स्कन्धों एवं अध्यायों की संख्या भी उपरिवत् है। 'पद्मपुराण' में इसकी ३३२ शाखाएँ कही गयी हैं 'द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखा:'। श्रीमद्भागवत के प्राचीन टीकाकार चित्सुखाचार्य ने भी ३३२ अध्यायों का ही निर्देश किया है—'द्वात्रिंशत्त्रिशतं पूर्णमध्यायाः' कतिपय विद्वान् इसी कारण इसके तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानते है। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने भी दशम स्कन्ध के तीन अध्यायो ८८, ८९, ९० को प्रक्षिप्त माना है। किन्तु, रूपगोस्वामी ने इन्हे प्रामाणिक मानते हुए कहा है कि 'जो इन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानते हैं उनके ऐसा मानने का कोई कारण नहो है क्योंकि सब देशों मे वे प्रचलित हैं और 'वासनाभाष्य' 'सम्बन्धोक्ति', 'विद्वत्कामधेनु', 'शुकमनोहरा', 'परमहंसप्रिया' आदि प्राचीन एवं आधुनिक टीकाओ मे इसकी व्याख्या की गयी है। यदि अपने सम्प्रदाय अस्वीकृत होने के कारण ही वे उन्हें अप्रामाणिक मानते हैं तो दूसरे सम्प्रदायो में स्वीकृत होने के कारण प्रामाणिक ही क्यो नहो मानते ? यदि 'द्वात्रिंशत् त्रिशतं च' को प्रामाणिक माना है तो द्वंद्वैक्य स्वीकार करके उन पदो का अर्थ ३६५ हो सकता है अर्थात् 'द्वात्रिंशत् च त्रिपञ्चशतानि च' व्याख्या से ३३५ हो जाता है। इस प्रकार ३३५ अध्याय संख्या मानकर तत्तत्पुराणो की संगति लग सकती है।" भागवत-दर्शन पृ० ६४। वर्ण्य विषय— इसके १२ स्कन्धो का सार इस प्रकार है—

प्रथम स्कन्ध—प्रारम्भ मे नैमिषारण्य मे शौनकादि ऋषियो द्वारा सूत जी से मनुष्य के आत्यन्तिक श्रेय के साधन की जिज्ञासा एवं सूत जी द्वारा श्रीकृष्ण की भक्ति को ही उसका एकमात्र साधन बताना। चौबीस अवतारो की कथा, शुकदेव एवं परीक्षित की कथा, व्यास द्वारा श्रीमद्भागवत की रचना का रहस्य, नारदजी के पूर्व-जन्म का वर्णन एवं उन्हें केवल भक्ति को आत्म-शान्ति-प्रदान करने का साधन मानना,

महाभारत युद्ध की कथा तथा अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पाँच पुत्रों के सिर काटने की कहानी, भीष्म का देहत्याग, परीक्षित जन्म, यादवों का संहार, श्रीकृष्ण का परमधाम गमन, परीक्षित की दिग्विजय तथा उनकी मृत्यु।

द्वितीय स्कन्ध—शुकदेव द्वारा भगवान् के विराट् रूप का वर्णन, विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए विभिन्न देवताओं की उपासना का विधान, कच्छप एवं नृसिंहावतार की कथा, भगवद्भक्ति के प्राधान्य का निरूपण, सृष्टि-विषयक प्रश्न और शुकदेव जी द्वारा कथा का प्रारम्भ, सृष्टि-वर्णन, ब्रह्माजी द्वारा भगवद्धाम दर्शन तथा भगवान् द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश, भागवत के दस लक्षणों का वर्णन।

तृतीय स्कन्ध—उद्धव और विदुर की भेंट तथा उद्धव द्वारा भगवान् के बालचरित एवं अन्य लीलाओं का वर्णन, मैत्रेय द्वारा विदुर को सृष्टि-क्रम का वर्णन सुनाना, विराट् शरीर की उत्पत्ति, ब्रह्मा द्वारा भगवान् की स्तुति एवं दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन, मन्वन्तरादि काल-विभाग एवं सृष्टि का विस्तार, वाराह-अवतार की कथा, सनकादि द्वारा जय-विजय को शाप तथा जय-विजय का वैकुण्ठ से पतन, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथा तथा वाराह-भगवान् द्वारा हिरण्याक्ष का वध, कर्दम एवं देवहूति की कथा, कपिल का जन्म एवं सांख्य-दर्शन का वर्णन, अष्टाङ्गयोग-विधि, भक्ति का रहस्य और काल की महिमा, मनुष्य योनि प्राप्त करने वाले जीव की गति का वर्णन, देवहूति का तत्त्वज्ञान एवं मोक्ष-पद प्राप्ति का वर्णन।

चतुर्थ स्कन्ध—स्वायम्भुव-मनु की कन्याओं का वंश-वर्णन, दक्ष प्रजापति एवं शिव के मनोमालिन्य एवं सती की कथा, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा कैलाश पर जाकर शिव को मनाना, दक्षयज्ञ की पूर्ति, ध्रुव की कथा तथा उनका वंश वर्णन, राजा वेन की कथा, राजा पृथु की कथा, पुरञ्जनोपाख्यान-वर्णन, प्रचेताओं को विष्णु भगवान् का वरदान।

पञ्चम स्कन्ध—प्रियव्रत चरित्र, आग्नीध्र तथा राजा नाभि का चरित्र, ऋषभदेव की कथा, भरतचरित, भरत वंश का वर्णन, भुवनकोश-वर्णन, गंगावतरण की कथा, भिन्न-भिन्न वर्षों का वर्णन, किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन, ६ द्वीपों एवं लोकालोक पर्वत का वर्णन, सूर्य की गति, भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति का वर्णन, शिशुमार चक्र का वर्णन, संकर्षणदेव का विवरण, नरक वर्णन।

षष्ठ स्कन्ध—अजामिल की कथा, दक्ष द्वारा भगवान् की स्तुति, नारद जी के उपदेश से दक्षपुत्रों की विरक्ति एवं नारद का दक्ष को शाप, बृहस्पति द्वारा देवताओं का त्याग तथा विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण, नारायण कवच का उपदेश, विश्वरूप वध, वृत्रासुर द्वारा देवताओं की पराजय तथा दधीचि ऋषि की कथा, वृत्रासुर का वध, चित्रकेतु को अङ्गिरा और नारद का उपदेश, चित्रकेतु को पार्वती का शाप, अदिति एवं दिति की सन्तानों तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति का वर्णन, पुंसवन व्रत का विधान।

सप्तम स्कन्ध—नारद-युधिष्ठिर-संवाद एवं जय-पराजय की कथा, हिरण्यकशिपु की कथा, प्रह्लादचरित, मानवधर्म, वर्णधर्म तथा स्त्रीधर्म का वर्णन, ब्रह्मधर्म और

वानप्रस्थ आश्रमों के नियम, यतिधर्म का विवेचन, गृहस्थ संबन्धी सदाचार तथा मोक्षधर्म।

अष्टम स्कन्ध—मन्वन्तर वर्णन, गजेन्द्र कथा, समुद्र-मथन की कथा, मोहिनी अवतार एवं देवासुर संग्राम, आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन, मनु आदि के कर्मों का वर्णन, राजा बलि की कथा तथा वामनचरित, मत्स्यावतार की कथा।

नवम स्कन्ध—वैवस्वत मनु के पुत्र राजा सुद्युम्न की कथा, महर्षि च्यवन एवं सुकन्या का चरित्र, राजा शर्याति का वंश वर्णन, नाभाग और अम्बरीष की कथा, दुर्वासा की दुःख निवृत्ति, इक्ष्वाकु वंश वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा, राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा, सगर-चरित्र, भगीरथ-चरित्र एवं गंगावतरण, रामचरित्र, इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन, राजा निमि का वंश-वर्णन, चन्द्रवंश-वर्णन, परशुराम-कथा, ययाति चरित्र, पुरुवंश तथा दुष्यन्तशकुन्तलोपाख्यान, भरत-चरित्र एवं भरतवंश-वर्णन, राजा रन्तिदेव की कथा, पाचाल, कौरव एवं मगधवंशीय राजाओं का वर्णन, यदुवंश-वर्णन तथा विदर्भवंश वर्णन।

दशम स्कन्ध – वासुदेव-देवकी-विवाह तथा कंस द्वारा देवकी के ६ पुत्रों की हत्या, श्रीकृष्ण जन्म कथा, पूतना उद्धार, शकट भंजन एवं तृणावर्त्त की कथा, यमलार्जुन उद्धार एवं कृष्ण का ऊखल मे बाँधा जाना, वत्सासुर एवं बकासुर का उद्धार, अघासुर वध, ब्रह्माजी का मोह एव ब्रह्मा द्वारा भगवान् की स्तुति, धेनुकासुर का वध एवं कालियनाग की कथा, प्रलम्बासुर का उद्धार, गोपो का दावानल से रक्षा, वर्षा-शरद् ऋतु का वर्णन, वेणुगीत, चीरहरण, यज्ञपत्नियों पर कृपा, इन्द्रयज्ञ निवारण, गोवर्धनधारण, रासलीला, गोपिका गीत, सुदर्शन और शङ्खचूड का उद्धार, अरिष्टासुर का उद्धार एवं अक्रूर आगमन, श्रीकृष्ण-बलराम का मथुरा गमन, कंसवध तथा कुब्जा की कथा, श्रीकृष्ण बलराम का यज्ञोपवीत तथा गुरुकुल-प्रवेश, जरासन्ध के साथ युद्ध और कृष्ण का द्वारिकापुरी मे वास, बलराम का विवाह, रुक्मिणी कथा एवं कृष्ण के साथ विवाह, प्रद्युम्न का जन्म तथा शम्बरासुर का वध, जाम्बवती एवं सत्यभामा के साथ कृष्ण का विवाह, अन्यान्य विवाहो की कथा, उषा-अनिरुद्ध कथा, बाणासुर-पराभव राजा नृग की कथा, बलरामजी का ब्रजगमन, पौण्ड्रक एवं काशिराज का उद्धार, द्विविद का वध, कौरवो पर बलराम जी का कुपित होना एवं साम्ब का विवाह। पाण्डवो के राजसूय यज्ञ का आयोजन एवं जरासंधवध, शिशुपाल-वध, सुदामा की कथा, कृष्ण और बलराम का गोपियो से पुनः भेंट, वेद-स्तुति, शिव का संकटमोचन, कृष्ण के लीला-विहार का वर्णन।

एकादश स्कन्ध—ऋषियों द्वारा यदुवंशियो को शाप, माया, ब्रह्म एवं कर्मयोग का निरूपण, भगवान् के अवतारो का वर्णन, भक्तिहीन पुरुषो की गति तथा भगवान् के पूजा-विधान का वर्णन, देवताओ द्वारा भगवान् को परमधाम सिधारने के लिए प्रार्थना, अवधूतोपाख्यान, लौकिक और पारलौकिक भोगो की निःसारता का निरूपण, बद्ध, मुक्त एवं भक्तों के लक्षण, सत्संग की महिमा एवं कर्म तथा कर्मत्याग का विधान, सनकादि को दिये गए उपदेश का वर्णन-हंसरूप से, भक्तियोग एवं ध्यानविधि का वर्णन,

विभिन्न सिद्धियों के नाम तथा लक्षण, भगवान् की विभूतियों का वर्णन, वर्णाश्रमधर्म का विवेचन, वानप्रस्थ एवं सन्यासी के धर्मों का कथन, भक्ति, ज्ञान और यम-नियमादि साधनों का वर्णन, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग, गुणदोष व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य, तत्त्वों की संख्या तथा प्रकृति-पुरुष-विवेचन, सांख्ययोग, तीन गुणों की वृत्तियों का निरूपण, पुरूरवा का वैराग्य-कथन क्रियायोग का वर्णन तथा परमार्थ निरूपण, भागवतधर्म-निरूपण एवं उद्धव का बदरिकाश्रम प्रस्थान, यदुवंश का नाश, भगवान् का परमधाम-गमन।

द्वादश स्कन्ध—कलियुग की राजवंशावली, कलियुग का धर्म, राज्य, युगधर्म तथा कलियुग के दोषों से बचने के उपाय अर्थात् नाम संकीर्तन का वर्णन, चार प्रकार के प्रलय, श्रीशुकदेव का अन्तिम उपदेश, परीक्षित की परम गति, जनमेजय का नागयज्ञ तथा वेदों की शाखाओ (शाखा-भेद) का वर्णन, अथर्ववेद की शाखाएँ एवं पुराणों के लक्षण, मार्कण्डेय जी की तपस्या एवं वर-प्राप्ति, मार्कण्डेय जी का माया-दर्शन तथा शंकर द्वारा उन्हें वरदान देना, भगवान् के अंग, उपांग एवं आयुधों का रहस्य और विभिन्न सूर्यगणों का वर्णन। श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय-सूची तथा विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या एवं श्रीमद्भागवत की महिमा।

विवेचन—श्रीमद्भागवत मे वर्ण्यविषयों का अवलोकन करने से पता चलता है कि इस ग्रन्थ का निर्माण सुनियोजित ढंग से भक्ति-तत्त्व के प्रतिपादनार्थ किया गया है। प्रत्येक स्कन्ध में 'प्रेमलक्षणाभक्ति' का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि श्रीमद्भागवत में भक्ति के कई रूपों -- वैधीभक्ति, नवधाभक्ति एवं निर्गुणभक्ति का वर्णन एवं विशद विवेचन है पर इसके अनेक स्थलों पर यह बात दुहराई गयी है कि भक्त को परम सिद्धि की प्राप्ति 'प्रेमलक्षणाभक्ति' के ही द्वारा प्राप्त हो सकती है। इसमे कोरे ज्ञान की निन्दा की गयी है—'धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः। नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ १–२–८ क्षुद्राशा भूरि कर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ १०–२३ ९ धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्। धिक्कुलं धिक् क्रिया-दाक्ष्यं विमुखा येत्वधोक्षजे॥ १०–२३–३९।' इस पुराण का प्रधान लक्ष्य है समन्वयवाद अर्थात् सांख्य, मीमांसा, योग, न्याय, वेदान्त आदि सभी दर्शनों के सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए उनका पर्यवसान भक्ति में ही किया गया है। इसमे पांचरात्र मत का प्राधान्य है जिसमे बतलाया गया है कि 'क्रियायोग' को ग्रहण करके ही मनुष्य अमरत्व की उपलब्धि करता है। इसमें कई स्थलों पर शिव का भी महत्त्व प्रतिपादित किया गया है तथा उन्हें परम भागवत एवं वैष्णव बतलाया गया है। शिव को सभी विद्याओं का प्रवर्त्तक, सभी प्राणियों का ईश एवं साधु-जनों का एकमात्र आश्रय कहा गया है। 'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥' १२-१०-८। भागवत मे वेदान्त-तत्त्व को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है तथा इसका (भागवत का) चरम प्रतिपाद्य तत्त्व निर्गुण ब्रह्म को ही माना गया है। इसमें वेदान्त-मत को भक्ति-तत्त्व के साथ समन्वित करते हुए नवीन विचार व्यक्त किया गया है।

श्रीमद्भागवत की टीकाएँ—अर्थगाम्भीर्य एवं अन्य विशेषताओं के कारण इसकी टीकाएँ रची गयी हैं उनका विवरण इस प्रकार है—१—श्रीधर स्वामी—'भावार्थ-प्रकाशिका'—यह सभी टीकाओं मे श्रेष्ठ एवं प्राचीन है। इसका समय ११ वीं शताब्दी है। इसके सम्बन्ध मे निम्नांकित श्लोक प्रचलित है—'व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा। श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंह-प्रसादतः। २—सुदर्शन सूरि—'शुकपक्षीया'—यह विशिष्टाद्वैत टीका है। इनका समय १४ वीं शती है। ३—वीरराघवकृत 'भागवतचन्द्रिका'—यह अत्यन्त विस्तृत टीका है। इसका समय १४ वीं शताब्दी है। ४—वल्लभाचार्य की 'सुबोधिनी टीका'—यह टीका सम्पूर्ण भागवत की न होकर दशमस्कन्ध एवं प्रारम्भिक कई स्कन्धों की है। ५—शुकदेवाचार्य कृत 'सिद्धान्तप्रदीप'—यह निम्बार्कमत की टीका है। ६—सनातन गोस्वामी कृत 'बृहद्वैष्णवतोषिणी'—यह टीका चैतन्यमतावलम्बी टीका है और केवल दशम स्कन्ध पर ही है। ७—जीवगोस्वामीरचित 'क्रमसन्दर्भ' ८—विश्वनाथचक्रवर्ती विरचित 'सारार्थदर्शिनी'। चैतन्यमतानुयायी टीका।

श्रीमद्भागवत का रचना-विधान—श्रीमद्भागवत की रचना सूत और शौनक संवाद के रूप मे हुई है। इसे सर्वप्रथम शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को सुनाया था। इसकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़, पाण्डित्यपूर्ण एव गम्भीर है जिसका रूप ग्रन्थ के प्रारम्भ से अन्त तक अक्षुण्ण है। वह समास प्रधान, अलंकृत, प्रतीक-प्रधान तथा व्यंजना के गूढ साधनो से युक्त है। इनमें न केवल पद्य का प्रयोग है, अपितु प्रवाहपूर्ण गद्य का भी कतिपय स्थलो पर समावेश किया गया है, जो प्रौढता म कादम्बरी के समकक्ष है। इसकी भाषा को 'काव्यमयी ललितभाषा' कहा जा सकता है। इसमें अनेक स्थलों पर प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है एवं वृक्षों की नामावली भी प्रस्तुत की गयी है, विशेषतः रासलीला के वर्णन मे। वल्लभाचार्य ने इसकी भाषा को 'समाधि-भाषा' कहा है, अर्थात् व्यासजी ने समाधि-अवस्था में जिस परमतत्त्व की अनुभूति की थी उसका प्रतिपादन श्रीमद्भागवत मे किया गया है। 'वेदाः श्रीकृष्ण-वाक्यानि व्यास-सूत्राणि चैव हि। समाधिभाषा व्यासस्य प्रामाणं तद् चतुष्टयम् ॥' शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड पृ० ४९।

श्रीमद्भागवत की रचना-तिथि—इसके निर्माण-काल के सम्बन्ध मे विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसे बोपदेव (१३ वी शताब्दी) की रचना कहा, किन्तु अनेक विद्वानो ने इस मत को भ्रान्त सिद्ध करते हुए बताया कि यह बोपदेव से हजार वर्ष पूर्व लिखा गया था। बोपदेव ने भागवत की रचना न कर उससे सम्बद्ध तीन ग्रन्थो का प्रणयन किया था। वे है—'हरिलीलामृत' या 'भागवतानुक्रमणी।' इसमें भागवत के समस्त अध्यायों की सूची है। 'मुक्ताफल'—इसमें नवरस की दृष्टि से भागवत के श्लोको का वर्गीकरण किया गया है। इनका तृतीय ग्रन्थ 'हंसप्रिया' अप्रकाशित है। शंकराचार्यकृत 'प्रबोधसुधाकर' के अनेक पद्यों पर श्रीमद्भागवत की छाया है तथा उनके दादा गुरु आचार्य गोडपाद के ग्रन्थों पर भी इसका प्रभाव दिखाई पडता है। शंकराचार्य का समय सप्तम शतक है, अतः उनके दादा

गुप्त का काल षष्ठ शतक का उत्तरार्द्ध होगा। इस दृष्टि से श्रीमद्भागवत का षष्ठ शतक से अर्वाचीन होना सम्भव नहीं है। पहाड़पुर (राजशाही जिला, बंगाल) की खुदाई में प्राप्त राधाकृष्ण की मूर्ति (पंचम शतक) इसकी और भी प्राचीनता सिद्ध करती है। भागवत का काल दो सहस्र वर्ष से भी अधिक प्राचीन है और यदि यह किंवदन्ती सत्य हो कि इसकी रचना वेदव्यास ने की थी, तो इसकी प्राचीनता और भी अधिक सिद्ध हो जाती है। श्रीमद्भागवत के रचना-क्षेत्र के सम्बन्ध मे भी विद्वानों में मतभेद है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत के तीर्थस्थानो, नदियों एवं भौगोलिक विवरणों में आधिक्य दिखाई पडता है, अतः विद्वान् ऐसा निष्कर्ष निकालते हैं कि इसका रचयिता दाक्षिणात्य होगा। इसके एकादशस्कन्ध (५।३८–४०) मे द्राविड देश की पयस्विनी, कृतमाला, ताम्रपर्णी, कावेरी एवं महानदी का उल्लेख करते हुए यह विचार व्यक्त किया गया है कि कलियुग मे नारायण-परायण जन द्रविड देश मे बहुलता से होंगे एवं अन्य स्थानों मे कहीं-कहीं होंगे। इसमे यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि उपर्युक्त नदियों का जल पीनेवाले व्यक्ति वासुदेव के भक्त होंगे। विद्वानो ने इस कथन में द्रविड देश के आडवार भक्तो का संकेत माना है।

आधारग्रन्थ—१—श्रीमद्भागवत (हिन्दी टीका सहित)—गीता प्रेस, गोरखपुर। २—भागवत-दर्शन—डॉ० हरवंशलाल शर्मा। ३—पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ४—भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय। ५—भगवत्तत्त्व—स्वामी करपात्री जी महराज।

श्रीराघवाचार्य—इन्होने दो चम्पू काव्यो की रचना की है जिनके नाम हैं—'वैकुण्ठविजय चम्पू' (अप्रकाशित, विवरण के लिए दे० डी० सी० मद्रास १२३७४) तथा उत्तरचम्पूरामायण' (अप्रकाशित, विवरण के लिए दे० राइस, १८८४ कैटलाग संख्या २२८९ पृ० २४६)। ये वत्सगोत्रोद्भव श्रीनिवासाचार्य के पुत्र थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके गुरु अहोबिलम् मठ के प्रधान श्री रङ्गनाथ थे। श्रीराघवाचार्य रामानुजमतानुयायी थे। 'वैकुण्ठविजयचम्पू' में जय विजय का त्रिलोकी चरित को जानने के लिए अनेक तीर्थों के भ्रमण करने का वर्णन है। इसकी प्रति खण्डित है। 'उत्तरचम्पूरामायण' मे रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। श्री राघवाचार्य का जन्म स्थान तिरुवेल्लोर जि० चेंगलट में था। 'वैकुण्ठ-विजयचम्पू' की भाषा सरस एवं सरल है। 'गंगा सभंगा जडधीष्टसंगा कपालिनोऽगे कलितानुषंगा। सुरापगेति प्रथिता कथं नु तोष्टूयतेऽसौ भवता निकामम् ॥'

आधारग्रन्थ—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

श्रीरामानुज चम्पू—इस चम्पू काव्य के प्रणेता रामानुजाचार्य हैं जो विशिष्टा-द्वैतवाद के आचार्य रामानुज के वंशज थे। इनका समय सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके पिता का नाम भावनाचार्य था। इस चम्पू में दस स्तबक हैं तथा रामानुजाचार्य (विशिष्टाद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक) का जीवनवृत्त वर्णित है। इसके गद्य भाग में अनुप्रास एवं यमक का प्रचुर प्रयोग हुआ है और सर्वत्र गौडी रीति का

समावेश है। इसमें वर्णन-विस्तार तथा मार्मिक स्थलों का मनोरम वर्णन है। कवि ने भक्तिवश कहीं कहीं रामानुज के चरित को अतिमानवीय बना दिया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में विविध आचार्यों की वन्दना करता हुआ कवि ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य पर विचार करता है। प्रवृत्तोऽहं लब्धुं परमपुरुषानुग्रहमयं, महार्घं माणिक्यं यतिपतिचरित्राब्धि-जठरे १।५१। इसका प्रकाशन १९४२ ई० में मद्रास से हुआ है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का विवेचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

श्रीशंकुक—काव्यशास्त्र के आचार्य। ये 'नाट्यशास्त्र' के व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध है। इन्होंने भरत के रससूत्र पर व्याख्या लिख कर अनुमितिवाद नामक रस-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इनके अनुसार रस की अनुमिति (अनुमान) होती है, उत्पत्ति नहीं। इस सिद्धान्त की स्थापना कर इन्होंने भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद का खण्डन किया है (दे० भट्टलोल्लट) इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अभिनवभारती, काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों में इनके उद्धरण प्राप्त होते है। कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' में 'भुवनाभ्युदय' नामक काव्य के प्रणेता के रूप में श्रीशंकुक का नाम आया है। कविर्बुधमनः सिन्धुशशाङ्कः शङ्कुकाभिधः। यमुद्दिश्याकरोत् काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम्॥ ४।७०५। इनका समय ८२० ई० के आसपास माना जाता है। श्रीशंकुक का अनुमितिवाद न्यायशास्त्र पर आश्रित है जिसमें 'चित्रतुरगन्याय' के आधार पर रस का विवेचन किया गया है। इनके अनुसार रस का ज्ञान सामाजिक या दर्शक को होता है। इस व्याख्या के अनुसार नट कृत्रिम रूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है। परन्तु उनके सौन्दर्य के बल से उसमें वास्तविकता-सी प्रतीत होती है। उन कृत्रिम अनुभाव आदि को देखकर सामाजिक, नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी उसमें रस का अनुमान कर लेता है और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है। हिन्दी काव्यप्रकाश—आ० विश्वेश्वर पृ० १०२ (द्वितीय संस्करण)।

आधारग्रंथ—१—भारतीय साहित्यशास्त्र भाग १—आ० बलदेव उपाध्याय। २—हिन्दी काव्यप्रकाश—आ० विश्वेश्वर।

श्रीहर्ष—'नैषधचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता। संस्कृत के अन्य कवियों की भांति उनका जीवन धूमिल नहीं है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नैषधचरित' में कई स्थानों पर अपना परिचय दिया है। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में उन्होंने जो अपना परिचय दिया है उसके अनुसार उनके पिता का नाम श्रीहीर एवं माता का नाम मामल्लदेवी था। श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतम् श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या महाकाव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः॥ १।१४५। उनके पिता श्रीहीर काशी नरेश गहड़वालवंशी विजयचन्द्र की सभा के पण्डित थे। श्रीहर्ष ने अपने ग्रन्थ 'नैषधचरित' में लिखा है कि वे कान्यकुब्जेश्वर के सभापण्डित थे तथा उन्हें उनकी सभा में दो बीड़े पान के द्वारा सम्मानित किया जाता था। ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकु-

ञ्जेश्वरात् २२।१५३ वे अपनी माता के चरणोपासक थे, इसका संकेत इनके महाकाव्य हैं—मातृचरणाम्भोजालिमौले: १२।११३। श्रीहर्ष कान्यकुब्जेश्वर विजयचन्द्र एवं उनके पुत्र जयन्तचन्द्र दोनों के ही दरबार में थे। जयन्तचन्द्र इतिहास प्रसिद्ध कन्नौज नरेश जयचन्द्र ही हैं, किन्तु श्रीहर्ष के समय में इनकी राजधानी काशी मे थी। दोनो पिता-पुत्रों का समय ११५६ ई० से लेकर ११९३ ई० तक है। एक किंवदन्ती के अनुसार उनके पिता श्रीहीर का 'न्यायकुसुमांजलि' के प्रणेता प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें उनकी पराजय हुई थी। कहा जाता है कि इस पराजय से लज्जित होकर दुःख मे उन्होंने शरीर-त्याग कर दिया था और मरते समय अपने पुत्र को आदेश दिया था कि वह अपनी विद्वत्ता से शत्रु को परास्त कर उससे बदला ले। श्रीहर्ष ने एक वर्ष तक गङ्गातीर पर चिन्तामणिमन्त्र का जाप कर त्रिपुरसुन्दरी की आराधना की थी तथा देवी ने प्रकट होकर इन्हें अपराजेय पाण्डित्य का वरदान दिया था। श्रीहर्ष वर प्राप्त कर राजा के दरबार में गए किन्तु उनकी वाक्यावली इतनी दुरूह थी कि लोग उनकी बातें समझ न सके। कहते हैं कि उन्होंने पुनः देवी की आराधना की। देवी ने कहा कि तुम रात्रि में सिर गीला कर दही पी लेना, इससे तुम्हारा पाण्डित्य कम हो जायगा। श्रीहर्ष ने देवी के आदेश का पालन किया। तत्पश्चात् वे महाराज विजयचन्द्र की सभा में गए और उन्हें अपना यह श्लोक सुनाया—गोविन्दनन्दनतया च वपुःश्रिया च माऽस्मिन् नृपे कुरुत कामधियं तरुण्यः। अस्त्रीकरोति जगतां विजये स्मरः स्त्री रस्त्रीजनः पुनरनेन विधीयते स्त्री॥ "तरुणियां राजा विजयचन्द्र को केवल इसलिए कामदेव न समझ लें, कि यह गोविन्द का पुत्र है (कामदेव भी प्रद्युम्न रूप मे गोविन्द (कृष्ण) के पुत्र हैं) और शरीर स (कामदेव जैसे) सुन्दर हैं। कामदेव मे और इस राजा मे तात्त्विक भेद है। कामदेव तो ससार को जीतने के लिए स्त्रियो को अस्त्र बनाता है, और यह राजा युद्ध में लडने आये हुए अस्त्रधारी शत्रु-वीरो को पराजित कर (या भगाकर) स्त्री के समान पुरुषत्वरहित बना देता है।" श्रीहर्ष ने जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र के नाम पर 'विजयप्रशस्ति' की भी रचना की है। 'तस्य श्रीविजयप्रशस्तिरचनातातस्य नव्ये' महाकवि ने स्वयं अपने महाकाव्य में लिखा है कि ५।१३८ काश्मीर मे उसके काव्य को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ था—काश्मीरैर्महितें चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिर्महा। १६।१३१

दरबार मे अपने पिता के शत्रु को देखकर भी उन्होने यह श्लोक पढ़ा—साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती। शय्या वाऽस्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भांकुरैरास्तृता, भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम्॥ तथा उसे शास्त्रार्थ के लिए ललकारा जिसका अभिप्राय यह था कि सुकुमार साहित्य एवं न्यायबन्ध से जटिल तर्क पर उन्हें समान अधिकार है। श्रीहर्ष का पाण्डित्य देखकर वह व्यक्ति उनकी प्रशंसा करने लगा और उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। श्रीहर्ष की प्रतिभा पर मुग्ध होकर राजा ने उन्हें अपना सभा पण्डित बना दिया। श्रीहर्ष केवल उच्चकोटि के कवि ही नहीं थे, वे उन्नत योगी एवं महान् साधक भी थे। उन्होंने स्वयं भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—यः साक्षात्कुरुते

समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम् । यत्-काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः । श्रीहर्षस्य कवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥ २२।१५३

उन्होंने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में अपनी रचनाओं का नामोल्लेख किया है। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—१—स्थैर्यविचारण-प्रकरण—इसका संकेत चतुर्थ सर्ग (नैषध चरित) के १२३ वें श्लोक में है। यह रचना उपलब्ध नहीं है। नाम से ज्ञात होता है कि यह कोई दार्शनिक ग्रन्थ रहा होगा जिसमें क्षणिकवाद का निराकरण किया गया होगा। २—विजयप्रशस्ति—जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र की प्रशस्ति का इसमे गान किया गया है। यह ग्रन्थ भी अप्राप्य है। ३—खण्डनखण्डखाद्य—यह श्रीहर्ष रचित सुप्रसिद्ध वेदान्त ग्रन्थ है जो नव्यन्याय की शैली पर लिखा गया है। लेखक ने न्याय के सिद्धान्तों का खण्डन कर वेदान्त का इसमें मण्डन किया है। भारतीय दर्शन के इतिहास में इस ग्रन्थ का अत्यधिक महत्त्व है तथा यह श्रीहर्ष के प्रखर पाण्डित्य का परिचायक है। यह ग्रन्थ हिन्दी टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है। ४—गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति—इसमे किसी गोड नरेश की प्रशस्ति की गयी है, किन्तु ग्रन्थ मिलता नहीं। ५—अर्णववर्णन—इसमें समुद्र का वर्णन किया गया होगा, जैसा कि नाम से प्रकट है। यह रचना मिलती नहीं। ६—छिन्द-प्रशस्ति—छिन्द नामक किसी राजा की इसमें प्रशस्ति की गयी है। यह ग्रन्थ भी अनुपलब्ध है। ७—शिवशक्तिसिद्धि—यह शिव एवं शक्ति की साधना पर रचित ग्रन्थ है, पर मिलता नहीं। ८—नवसाहसांकचरितचम्पू—नाम से ज्ञात होता है कि 'नवसाहसांक' नामक राजा का इसमे चरित वर्णित होगा। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। ९—नैषधीयचरित—इसमे निषध नरेश नल एवं उनकी पत्नी दमयन्ती की प्रणय-गाथा २२ सर्गों में वर्णित है। यह संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य एवं श्रीहर्ष की कवित्वशक्ति का उज्ज्वल प्रतीक है [दे० नैषधीयचरित]।

महाकवि श्रीहर्ष कालिदासोत्तर काल के कलावादी कवियों मे सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। उनका महाकाव्य दूरारूढ़ कल्पना, पाण्डित्य-प्रदर्शन, आलंकारिक सौन्दर्य, रसपेशलता एवं अद्भुत अप्रस्तुत विधान का अपूर्व भाण्डागार है। उनका उद्देश्य सुकुमारमति पाठकों के लिए काव्य-रचना करना नहीं था। उन्होंने कोरे रसिकों के लिए काव्य की रचना न कर केवल पण्डितो के मनोविनोद के लिए अध्ययन-जन्य ग्रन्थिलता के भार से बोझिल 'ग्रन्थग्रन्थि' का निर्माण किया था। उनका दार्शनिक ज्ञान नितान्त प्रौढ़ था, अतः बीच-बीच में उन्होंने 'नैषधीयचरित' को दार्शनिक निगूढ़ रहस्यों से संपृक्त कर दिया है। नैषध का सत्रहवाँ सर्ग तो एकमात्र दार्शनिक सिद्धान्तों से ही आपूर्ण है। इस सर्ग में कवि ने चार्वाकमत का अत्यन्त सफलता के साथ खण्डन किया है तथा अपने प्रौढ पाण्डित्य का भी प्रदर्शन किया है। अपने ग्रन्थ के उद्देश्य पर विचार करते हुए स्वयं कवि ने ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये है जिनमे उसकी काव्य-विषयक मान्यताओं का निदर्शन होता है—ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया, प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु। श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृत-दृढग्रन्थिः समासादयत्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥ २१।१५२।

'मैंने जानबूझ कर प्रयत्नपूर्वक कहीं-कहीं इस काव्य में गूढ़ गुत्थियां रख दी हैं यह केवल इसीलिये कि कोई विद्वन्मन्य खल अवज्ञा के साथ यह न कह सके कि 'मैंने तो 'नैषधीयचरित' पूरा पढ़ लिया है इसमें कुछ है ही नहीं, और सहृदय सज्जन तो श्रद्धापूर्वक गुरुओं द्वारा गुत्थियों को सुलझा कर इस काव्यामृत का पूर्ण आनन्द लेंगे ही।' यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते। मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः, किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः॥ २२।१५०। 'अतिरम्य लावण्यमयी सुन्दरी जिस प्रकार युवक-वर्ग के हृदय में प्रवेश करती है क्या उसी प्रकार शिशुओं के भी मन को वश में करेगी ? उसी भाँति मेरी यह काव्य-वाणी यदि सहृदय विद्वानों के हृदय में अमृत बनकर आनन्ददायिनी होती है तो अरसिक नर पशुओं द्वारा इसका अपमान होने पर भी इसका क्या बिगड़ता है।' दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां नमन्तु सरस्वती, तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्। स परमपरः क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते, मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्॥ २२।१५१। 'पर्वत के पाषाण-खण्ड इधर-उधर ऊपर-नीचे गिरकर गर्जन आडम्बर करने वाले अपने स्रोत बहाया करें किन्तु क्षीरसागर में उनकी समता ही क्या जिसमें मन्थन करने वालों को परम सुखद, श्रमापहारी अमृत प्राप्त होता है। उसी प्रकार सूक्ति-रचना में जड़ कविगण अपने पद जोड़ा करें और उनमें ऊपरी अलंकार, ध्वनि आदि लाने का भी प्रयत्न करें, किन्तु क्षीरसागर के समान वह श्रीहर्ष नाम का कोई लोकोत्तर ही कवि है जिसके वाणीप्रवाह में परमानन्ददायी अमृत की प्राप्ति होती है।'

श्रीहर्ष ने सभी दर्शनों के मत को लेकर उन्हें काव्य-कल्पना के द्वारा मनोरम बनाया है। नल और दमयन्ती के मन को दो परमाणुओं के मिलने से नवीन सृष्टि निर्मित करने की बात वैशेषिक दर्शन के आधार पर कही गयी है—अन्योन्यसंगमवशादधुना विभातां तस्यापि तेऽपि मनसी विकसद्विलासे। स्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य तनु प्रवृत्त-मादाविव द्व्यणुककृत् परमाणुयुग्मम्॥ ३।१२५। 'इस समय परस्पर मिलकर नल के और तुम्हारे दोनों के मन अपनी विलास-कलाओं को व्यक्त करते हुए सुशोभित हों। मानो कामदेव के शरीर का पुनः निर्माण करने के लिए द्व्यणुक बनाने में दो परमाणु प्रवृत्त हुए हैं।' अद्वैत तत्त्व का भी इसी प्रकार प्रतिपादन करते हुए उसकी रसात्मक अभिव्यक्ति की गयी है। साप्तुं प्रयच्छति न पक्षचतुष्टये तां तल्लाभशंसिनि न पञ्चमकोटिमात्रे। श्रद्धां दधे निषधराड्विमतौ मतानामद्वैततत्त्व इव सत्यपरेऽपि लोकः॥ १३।३६। 'जिस प्रकार सांख्य आदि भिन्न मतों के कारण सत्, असत्, सदसत्, सदसद्विलक्षण इन चार प्रकार के सिद्धान्तों द्वारा मतैक्य स्थापित न हो सकने से लोगों की अत्यन्त सत्य तथा इन चारों वादों से परे पंचम कोटिस्थ 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि श्रुति प्रमाणित अद्वैत ब्रह्म में आस्था नहीं हो पाती, उसी प्रकार दमयन्ती को भी कई नल होने के कारण नलविषयक सन्देह होने पर पाँचवें स्थान में बैठे हुए वास्तविक नल में भी विश्वास न हुआ, क्योंकि दमयन्ती को पाने की अभिलाषा से चार समान रूप वाले नल उस विश्वास को होने ही नहीं देते थे।'

विशुद्ध कवित्व की दृष्टि से भारवि, माघ आदि से श्रीहर्ष बढ़कर हैं। भारवि और

माघ द्वारा उद्भावित एवं अतिशायित काव्यविधान को नैषधकार ने चरमोत्कर्ष प्रदान किया है। संस्कृत भाषा पर तो मानो इनका असाधारण अधिकार है और वाणी कवि की वशवर्त्तिनी हो गयी है। इनमें नवीन भावों, आकर्षक कल्पनाओं, नये शब्द-संगठनों, व्यंजनाओं एवं चित्रों को उत्सृष्ट करने की अद्भुत क्षमता दिखाई पड़ती है। श्रीहर्ष ने युगीन सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् करते हुए अपनी संवेदना को उससे प्रभावित किया है। इनमें कुछ नवीन कहने की प्रवृत्ति अत्यधिक बलवती है। तत्कालीन ह्रासोन्मुखी हिन्दूसमाज की भावनाओ का चित्रण नैषध मे पूरे प्रकर्ष पर है। इस संबंध में डॉ० देवराज का कथन ध्यातव्य है—'श्रीहर्ष का सौन्दर्यबोध तथा नीतिबोध बहुत दूर तक परम्परा का—उत्कर्षकालीन उदात्त परम्परा का अनुसरण करता है। ऐसे बोध के प्रकाशन में जहाँ-तहाँ पर्याप्त नवीनता तथा चमत्कार है। किन्तु इस बोध के साथ वह अपने युग के विशिष्ट बोध को अनजाने ही मिश्रित कर देता है, जिससे प्रसंगविशेष का समग्र प्रभाव मिश्रित, कुछ घटिया कोटि का बन जाता है। कहने का मतलब यह कि 'नैषधीयचरित' में ऊँचे तथा घटिया सौन्दर्य-बोध का संकुल मिश्रण है। जहाँ उसे बढ़िया सौन्दर्य-बोध का स्रोत भारतीय काव्य की उदात्त परम्परा है, वहाँ मानना चाहिए कि उस बोध की कमियो तथा जिह्मताओ का हेतु उसके युग का अपेक्षाकृत निचला सांस्कृतिक धरातल है।' भारतीय संस्कृति पृ० १७८।

श्रीहर्ष मुख्यत: शृंगार रस के कवि है और उन्होंने तद्विषयक विविध भंगिओ एवं स्वरूपो का अत्यन्त कुशलता के साथ वर्णन किया है इन्होंने शृंगार-वर्णन मे (दर्शनों के प्रगाढ़ अनुशीलन की भाँति) स्थान-स्थान पर वात्स्यायन का भी गंभीर अध्ययन प्रदर्शित किया है। उन्होंने अठारहवे तथा बीसवे सर्ग के रति-केलि के वर्णन मे, अनेक स्थलो पर, अपने कामशास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए अनेक अप्रस्तुत विधान किये है। सप्तम सर्ग मे किया गया दमयन्ती का नखशिख वर्णन विलासमय चित्रों से आपूर्ण है तथा कतिपय स्थलो पर तो मर्यादा का भी अतिक्रमण कर दिया गया है। सोलहवे सर्ग के ज्योनार-वर्णन में वारस्त्रियो की चेष्टाओं का अश्लील चित्रण इसका प्रमाण है। घृतप्लुते भोजनभाजने पुरः स्फुरत्पुरंध्रीप्रतिबिम्बिताकृतेः। युवा निधायोरसि लड्डुकद्वयं नखैलिलेखाथ ममर्द निर्दयम् ॥ १६।१०३। 'युवक के सामने घी से चिकने चमकते भोजन-पात्र मे सुन्दरी का प्रतिबिम्ब पड रहा है। युवक ने उस प्रतिबिम्ब के वक्षःस्थल दो लड्डू रखकर उन्हे नख मे कुरेदना प्रारम्भ किया, और अन्त मे सुन्दरी के देखते हुए उन दोनों लड्डुओ को निर्दयता के साथ मसल डाला।'

अप्रस्तुत विधान की दूरारूढ़ता के कारण कहीं-कहीं उनका विप्रलम्भ-वर्णन इस प्रकार भाराक्रान्त हो गया है कि वियोग की अनुभूति भी नहीं हो पाती। नखशिख-वर्णन की बहुलता नैषध की अन्यतम विशेषता है। कवि ने नल एवं दमयन्ती दोनों का ही नखशिख-वर्णन किया है। इनका नखशिख-वर्णन कथा के प्रवाह का अवरोधक तो है ही, साथ-ही-साथ पिष्टपेषण भी करने वाला है, जिससे पाठक का मन ऊबने लगता है। अप्रस्तुत-विधान के तो श्रीहर्ष अक्षय भंडार हैं और इस गुण के कारण वे सभी कवियो में अग्रणी सिद्ध होते हैं। उन्होंने उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अपह्नुति आदि अलंकारों

का आश्रय ग्रहण कर विचित्र कल्पनाएँ की हैं और कहीं-कहीं अप्रस्तुत-विधान के घटाटोप मे विषय की स्वाभाविकता को भी ओझल कर दिया है। नैषधकार अपने पदलालित्य गुण के कारण संस्कृत विद्वानों मे समादृत है और नैषध सुन्दर पदों का अपूर्व भाण्डागार भी दिखाई पड़ता है। उनका प्रकृति-चित्रण अनावश्यक पौराणिक विवरणों एवं आलंकारिक चमत्कार से भरा हुआ है। उन्नीसवें सर्ग का बन्दियों द्वारा किया गया प्रभात-वर्णन इन्हीं दोषों के कारण उबाने वाला सिद्ध होता है। कुल मिलाकर नैषधमहाकाव्य कृत्रिम एवं अलंकृत शैली को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाला एक महनीय ग्रन्थरत्न है जो श्रीहर्ष को उच्चकोटि का कवि सिद्ध करता है।

आधारग्रन्थ—१–संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। २–संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ३–भारतीय संस्कृति—डॉ० देवराज। ४–नैषधपरिशीलन—डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल। ५–नैषधीयचरित—डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल कृत हिन्दी टीका।

श्वेताश्वतर उपनिषद्—इसका सम्बन्ध शैवधर्म एवं रुद्र से है। इसमे रुद्र का प्राधान्य प्रदर्शित करते हुए उन्हे परमात्मा से तादात्म्य किया गया है। इस उपनिषद् में ६ अध्याय है तथा अनेक उपनिषदों के उद्धरण प्राप्त होते हैं; विशेषतः कठोपनिषद् के। अपेक्षाकृत यह उपनिषद् अर्वाचीन है। इसकी अर्वाचीनता के प्रतिपादक तथ्य हैं, इसमे निहित वेदान्त एवं योगशास्त्र के सिद्धान्त। इसके प्रथम अध्याय मे जगत् के कारण, जीवन का हेतु एवं सबके आधार के सम्बन्ध मे ऋषियों द्वारा प्रश्न पूछे गए है तथा एकमात्र परमात्मा को ही जगत् का आधार माना गया है। द्वितीय अध्याय में योग का विस्तारपूर्वक विवेचन तथा तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों मे शैवसिद्धान्त एवं सांख्य-तत्त्व का निरूपण है। अन्तिम अध्याय मे परमेश्वर तथा गुरु मे श्रद्धा-भक्ति दिखाने का वर्णन एवं गुरुभक्ति का तत्त्व निरूपित है। इसका मुख्य लक्ष्य, आत्म-तत्त्व का प्रतिपादन तथा शिव को परमात्मा के रूप मे उपस्थित करना—अमृताक्षर हर, १।१० । इसमें प्रकृति को माया तथा महेश्वर को माया का अधिपति कहा गया है जो कारण-कार्य समुदाय से सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त है—मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्। ४।१० ।

षड्विंश ब्राह्मण—यह 'सामवेद' का ब्राह्मण है। इसमें पाँच प्रपाठक तथा प्रत्येक के कई अवान्तर खण्ड हैं। यह 'पञ्चविंशब्राह्मण' का परिशिष्ट ज्ञात होता है इसीलिए इसका नाम षड्विंश है। इसमें भूकम्प एवं अकाल मे पुष्प, लता तथा फल उत्पन्न होने तथा अन्य उत्पातो के शमन की विधि वर्णित है। इसके प्रथम काण्ड के प्रारम्भ मे ऋत्विजो के वेष के वर्णन मे कहा गया है कि वे लाल पगड़ी एवं लाल किनारी के वस्त्रों को धारण करते थे—३।८।२२। इस उपनिषद् मे ब्राह्मणो के लिए सन्ध्या-वन्दन का समय अहोरात्र का सन्धिकाल बताया गया है—तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते, ४।५।४ ।

शंकरचेतोविलास चम्पू—इस चम्पू-काव्य के रचयिता शंकर दीक्षित (शंकर मिश्र) हैं। इनका समय १७७० ई० से १७८१ है जो काशीनरेश चेतसिंह

का समय है। कवि के पिता का नाम बालकृष्ण तथा पितामह का नाम ढुण्ढीराज था। कवि ने इस काव्य की रचना महाराज चेतसिंह से प्रोत्साहन प्राप्त कर की थी। यह रचना अपूर्ण है एवं अप्रकाशित भी। (इसके विवरण के लिए देखिए सी० सी० १४७)। इसकी रचना तीन उल्लासों में हुई है। ग्रन्थ के आरम्भ में राजा चेतसिंह के प्रति मंगलकामना करते हुए गणेश की वन्दना की गयी है—उद्यत्सिन्दूरदण्डप्रतिकृति-विलसद्भालबालेन्दुखण्डः प्रत्यूहव्यूहखण्डः पददलितबलीमण्डिताखण्डमण्डः। वेगाधुद्धूतशुण्डः सुररिपुविजयोद्दण्डदण्डः प्रचण्डः कुर्याच् श्रीचेतसिंह-क्षितिपतिभवने मंगलं वक्रतुण्डः ॥१।३।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी।

शंकर मिश्र—वैशेषिक दर्शन के प्रसिद्ध आचार्यों में श्रीशंकर मिश्र का नाम आता है। ये दरभंगा के निकटस्थ सरिसव ग्राम के निवासी थे। इनका समय १५ शतक है। इन्होंने अपने ग्राम में 'सिद्धेश्वरी' के मन्दिर की स्थापना की थी जो आज भी स्थित है। इनके पिता का नाम भवनाथ मिश्र था जो मीमांसा एवं व्याकरण प्रभृति अनेक शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। ये अयाची मिश्र के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके पितृव्य जीवनाथ मिश्र भी अपने समय के विख्यात विद्वान् थे। शंकर मिश्र ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनका विवरण इस प्रकार है—उपस्कार (यह कणाद सूत्रों पर रचित टीका है), कणादरहस्य, आमोद (यह 'न्यायकुसुमाञ्जलि' की व्याख्या है), कल्पलता (आत्मतत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ की टीका), आनन्दवर्धन (श्रीहर्ष-रचित खण्डनखण्डखाद्य के ऊपर रचित टीका), मयूख (चिन्तामणि नामक ग्रन्थ की टीका), कण्ठाभरण (न्यायलीलावती के ऊपर रचित व्याख्या ग्रन्थ), वादिविनोद (यह वादविवाद संबंधी स्वतन्त्र ग्रन्थ है), भेदरत्नप्रकाश (इसमें न्याय एवं वैशेषिक के द्वैतसिद्धान्त का निरूपण है तथा श्रीहर्षकृत खण्डनखण्डखाद्य का खण्डन किया गया है)।

आधारग्रन्थ—१—इण्डियन फिलॉसफी भाग—२—डॉ० राधाकृष्णन्। २—भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

शंकराचार्य—आचार्य शंकर भारतीय तत्त्वचिंतन के महान् विचारकों में से है। वे विश्व के महान् दार्शनिक तथा अद्वैतवाद नामक सिद्धान्त के प्रवर्त्तक हैं। उनका जन्म ७८८ ई० में (संवत् ८४५) तथा निर्वाण ८२० ई० में हुआ। केरल राज्य के कालटी नामक ग्राम में आचार्य का जन्म नम्बूद्री ब्राह्मण के घर हुआ था। उनके पितामह का नाम विद्याधिराज या विद्याधिप तथा पिता का नाम शिवगुरु था। उनकी माता का नाम 'सती' अथवा विशिष्टा था। शंकर बाल्यावस्था से ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। उन्होंने तीन वर्ष में अपनी मातृभाषा मलयालम सीख ली थी तथा पाँच वर्ष की उम्र में संस्कृत बोलने लग गए थे। वे आचार्य गौडपाद के शिष्य गोविन्द भगवत्पाद के शिष्य थे। आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया था तथा द्वादश वर्ष में सर्वशास्त्रविद् हो गए थे। सोलह वर्ष की अवस्था

में उन्होंने भाष्य की रचना की थी। इस सम्बन्ध मे एक श्लोक प्रचलित है—अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्। षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

कहा जाता है कि आठ वर्षों की अवस्था में शंकराचार्य ने माता से अनुमति माँग कर सन्यास ग्रहण किया था और तदनन्तर समस्त भारत का परिभ्रमण कर अद्वैतवाद का प्रचार किया। बदरिकाश्रम के उत्तर मे स्थित व्यासगुहा मे आचार्य ने चार वर्षों तक निवास कर 'ब्रह्मसूत्र,' 'गीता,' 'उपनिषद्' तथा 'सनत्सुजातीय' के ऊपर अपना प्रामाणिक भाष्य लिखा।

शंकराचार्य के नाम से २०० ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। पर इनमे से सभी उनके द्वारा रचित नहीं हैं। उनके ग्रन्थो को तीन भागो मे विभक्त किया जाता है—भाष्य, स्तोत्र एवं प्रकरणग्रन्थ। 'ब्रह्मसूत्र' के भाष्य को 'शारीरिकभाष्य' एवं गीता के भाष्य को 'शांकरभाष्य' कहा जाता है। उन्होंने १२ उपनिषदों पर भाष्य लिखा है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर तथा नृसिंहतापनीय। उनके अन्य ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—१ माण्डूक्यकारिका भाष्य—गौडपादाचार्य कृत 'माण्डूक्य उपनिषद' की कारिका के ऊपर भाष्य। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है। २—विष्णुसहस्रनामभाष्य। ३—सनत्सुजातीय भाष्य (महाभारत, उद्योगपर्व अध्याय ४२ तथा ४६ का भाष्य)। ४—हस्तामलक भाष्य (द्वादश पद्यात्मक श्लोक पर, भाष्य आचार्य हस्तामलक रचित)। ५ ललिता त्रिशती भाष्य (ललिता के तीन सौ नामो पर भाष्य)। ६ गायत्री भाष्य। ७ जयमङ्गलाटीका (सांख्यकारिका के ऊपर भाष्य। पर, यह रचना सन्देहास्पद है)। स्तोत्रग्रन्थ—आचार्य रचित स्तोत्रग्रन्थो की संख्या बहुत अधिक है। गणेशस्तोत्र (गणेशपंचरत्न ६ श्लोक, गणेशभुजंगप्रयात ९ श्लोक, गणेशाष्टक तथा वरद गणेश श्लोक), शिवस्तोत्र—(शिवभुजग ४० श्लोक, शिवानन्दलहरी १०० श्लोक, शिवपादादिके शान्तस्तोत्र ४१ श्लोक, शिवकेशादिपादान्तस्तोत्र २९ श्लोक, वेदसार शिवस्तोत्र ११२ श्लोक, शिवापराधक्षमापनस्तोत्र १५२ श्लोक, सुवर्णमालास्तुति ५० श्लोक, दक्षिणामूर्ति वर्णमाला ३५ श्लोक, दक्षिणामूर्त्यष्टक १० श्लोक, मृत्युञ्जय मानसिकपूजा ४६ श्लोक, शिवानमावल्यष्टक ९ श्लोक, शिवपञ्चाक्षर ५ श्लोक, उमामहेश्वरस्तोत्र १३ श्लोक, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र १९ श्लोक, कालभैरवाष्टक शिवपंचाक्षर-नक्षत्रमाला २८ श्लोक, द्वादशलिंगस्तोत्र, दशश्लोकीस्तुति)

देवीस्तोत्र—सौन्दर्यलहरी १०० श्लोक, देवीभुजङ्गस्तोत्र २८ श्लोक, आनन्द-लहरी २० श्लोक, त्रिपुरसुन्दरीवेदपादस्तोत्र ११० श्लोक, त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजा १२७ श्लोक, देवीचतुषष्ट्युपचारपूजा ७२ श्लोक, त्रिपुरसुन्दर्यष्टक ८ श्लोक, ललितापञ्चरत्न ६ श्लोक, कल्याणवृष्टिस्तव १६ श्लोक, नवरत्नमालिका १० श्लोक, मन्त्रमातृकापुष्प-मालास्तव १७ श्लोक, गौरीदशक ११ श्लोक, भवानीभुजङ्ग १७ श्लोक, कनकधारा-स्तोत्र ११ श्लोक, अन्नपूर्णाष्टक १२ श्लोक, मीनाक्षीपञ्चरत्न ५ श्लोक, मीनाक्षीस्तोत्र ८ श्लोक, भ्रमराम्बाष्टकम्, शारदाभुजङ्गप्रयाताष्टक।

विष्णुस्तोत्र—कामभुजङ्गप्रयात ११ श्लोक, विष्णुभुजङ्गप्रयात १४ श्लोक, विष्णु-

पादादिकेशान्त ५२ श्लोक, पाण्डुरङ्गाष्टक, अच्युताष्टक, कृष्णाष्टक, हरमीडेस्तोत्र ४३ श्लोक, गोविन्दाष्टक, भगवन्मानसपूजा १७ श्लोक, जगन्नाथाष्टक ।

युगलदेवतास्तोत्र—अर्धनारीश्वरस्तोत्र ९ श्लोक, उमामहेश्वरस्तोत्र १३ श्लोक, लक्ष्मीनृसिंह पञ्चरत्न, लक्ष्मीनृसिंहकरुणारसस्तोत्र १७ श्लोक ।

नदी-तीर्थ-विषयक स्तोत्र—नर्मदाष्टक, गङ्गाष्टक, यमुनाष्टक (दो प्रकार का), मणिकर्णिकाष्टक, काशीपञ्चक ।

साधारणस्तोत्र—हनुमत्पञ्चरत्न ६ श्लोक, सुब्रह्मण्यभुजङ्ग ३३ श्लोक, प्रातः-स्मरणस्तोत्र ४ श्लोक, गुर्वष्टक ९ श्लोक ।

प्रकरण ग्रन्थ—ऐसे ग्रन्थों की संख्या अधिक है, पर यहा मुख्य ग्रन्थों का विवरण दिया जा रहा है—१ अद्वैतपञ्चरत्न—अद्वैततत्त्व प्रतिपादक ५ श्लोक, २—अद्वैतानुभूति—८४ अनुष्टुप् छन्दों में अद्वैततत्त्व का निरूपण । ३—अनात्मश्री-विगर्हण प्रकरण—इसमे १८ श्लोक है तथा आत्मतत्त्व का साक्षात्कार न करने वालो की निन्दा है । ४—अपरोक्षानुभूति—१४४ श्लोक मे अपरोक्ष अनुभव के साधन तथा स्वरूप का वर्णन । ५—आत्मपञ्चक—अद्वैतपञ्चरत्न का अन्य नाम । ६—आत्मबोध—६८ श्लोको मे आत्मा के स्वरूप का वर्णन । ७—उपदेशपञ्चक—५ श्लोको में वेदान्त के आचरण का वर्णन । ८—उपदेशसाहस्त्री—इसमे गद्यप्रबन्ध एवं पद्यप्रबन्ध नामक दो पुस्तकें है । पद्यप्रबन्ध मे विविध विषयो पर १९ प्रकरण हैं । ९—कौपीन पञ्चक—वेदान्ततत्त्व मे रमण करने वाले व्यक्तियो का वर्णन । १०—चर्पटपञ्जरिका—१७ श्लोकों मे गोविन्दभजन । ११—जीवन्मुक्तानन्दलहरी—१७ शिखरिणी छन्द मे जीवन्मुक्त पुरुष का वर्णन । १२—तत्त्वबोध—वेदान्ततत्त्व का प्रश्नोत्तर के रूप मे वर्णन । १३—तत्त्वोपदेश—८७ अनुष्टुप् छन्द मे आत्मतत्त्व की अनुभूति । १४—दशश्लोकी—आत्मतत्त्व का १० श्लोको मे वर्णन । १५—द्वादशपञ्जरिका—वेदान्त की शिक्षा १२ पद्यो मे । १६—धन्याष्टक—१० श्लोको मे ब्रह्मज्ञान से धन्य बनाने वाले पुरुषो का वर्णन । १७—निर्गुणमानसपूजा—३३ अनुष्टुप् छन्द मे निर्गुणतत्त्व का वर्णन । १८—निर्वाणमञ्जरी—१२ श्लोक मे शिवतत्त्व का निरूपण । १९—निर्वाणाष्टक—६ श्लोक मे आत्मरूप का वर्णन । २०—परापूजा—परमात्मा की परापूजा का वर्णन ६ श्लोक मे । २१—प्रबोधसुधाकर—२५७ आर्यायो मे वेदान्ततत्त्व का निरूपण । २२—प्रश्नोत्तररत्नमालिका—६७ आर्यायो मे वेदान्ततत्त्व का निरूपण । २३—प्रौढ़ानुभूति—१७ बड़े पद्यो मे आत्मतत्त्व का निरूपण । २४—ब्रह्मज्ञानावलीमाला—२१ अनुष्टुप् छन्द मे ब्रह्म का निरूपण । २५—ब्रह्मानुचिंतन—२९ श्लोको मे ब्रह्म-स्वरूप का वर्णन । २६—मनीषापञ्चक—चण्डालरूपधारी शिव द्वारा शंकराचार्य को उपदेश देने का वर्णन । २७—मायापञ्चक—माया के स्वरूप का पांच पद्यो मे वर्णन । २८ मुमुक्षुपञ्चक—५ पद्यो में मुक्ति पाने का उपदेश । २९ योग तारावली—हठयोग का वर्णन २९ श्लोक मे । ३०. लघुवाक्यावृत्ति—जीव और ब्रह्म का ऐक्यप्रतिपादन, १८ अनुष्टुप् छन्द मे । ३१. वाक्यावृत्ति—५३ श्लोकों में 'तत्त्वमसि' वाक्य का विशद विवेचन । ३२. विज्ञान नौका—१० श्लोकों में अद्वैततत्त्व

का विवेचन । ३३. विवेकचूडामणि—५८१ पद्यों में वेदान्ततत्त्व का प्रतिपादन । ३४. वैराग्यपञ्चक—५ श्लोकों में वैराग्य का वर्णन । ३५. शतश्लोकी—१०० श्लोक में वेदान्त का वर्णन । ३६. षट्पदी—६ पद्यों का ग्रन्थ । ३७. सदाचारानुसन्धान—५५ श्लोकों में चित्ततत्त्व का प्रतिपादन । ३८. सर्ववेदान्तसिद्धान्त संग्रह—१००६ श्लोकों में वेदान्त के सिद्धान्त का निरूपण । ३९. स्वात्म-निरूपण—१५६ श्लोकों मे आत्मतत्त्व का विवेचन । ४०. स्वात्म-प्रकाशिका—६८ श्लोकों में आत्मतत्त्व का वर्णन ।

आचार्य शंकर के ग्रन्थो मे पाण्डित्य के अतिरिक्त सरल काव्य का भी सुन्दर समन्वय है । उनका 'सौन्दर्यलहरी' नामक ग्रन्थ संस्कृत के स्तोत्रग्रन्थो मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । उनकी कविताओ में कल्पनातत्त्व, भावतत्त्व, कलातत्त्व एव बुद्धितत्त्व का सम्यक् स्फुरण है । 'सौन्दर्यलहरी' मे कल्पना की ऊँची उड़ान, भावों की रमणीयता तथा अर्थो का नाविन्य देखने योग्य है । भगवती कामाक्षी का वर्णन काव्य की दृष्टि से अत्यन्त सरस एवं मनोरम है—तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहः स्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणी । वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर—द्विषां वृन्दैर्वन्दीकृतमिव नवीनार्क किरणम् । पद्य के अतिरिक्त गद्य लेखन मे भी आचार्य का पटुता दिखलाई पड़ती है । उनका 'शारीरकभाष्य' संस्कृत गद्य की महान् रचनाओं मे परिगणित होता है जिसमे प्रौढ़ गद्यशैली के दर्शन होते है । स्वयं अद्वैतवादी होते हुए भी आचार्य ने अपने स्तोत्रग्रन्थो मे विभिन्न देवी-देवताओ की उपासना की है । इससे पता चलता है कि वे सिद्धान्त अद्वैतवादी होते हुए भी व्यवहार भूमि मे उपासना का महत्त्व स्वीकार करते थे ।

शंकराचार्य का प्रधान लक्ष्य वैदिक धर्म का प्रचार करना था । उनके पूर्व अवैदिक धर्मावलम्बियो ने वैदिक धर्म की निन्दाकर तत्कालीन जनता के हृदय मे वैदिक मत के प्रति अश्रद्धा का भाव भर दिया था । आचार्य शंकर ने अपने अलौकिक वैदुष्य के द्वारा समस्त अवैदिक मतो की धज्जियां उड़ा दी तथा बड़े-बड़े बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ मे परास्त कर आर्यावर्त मे सनातन या वैदिक धर्म की ध्वजा फहरा दी । उन्होने धर्म-स्थापन को स्थायी बनाने के लिए सन्यासियो को संघबद्ध किया तथा भारतवर्ष की चारो दिशाओ मे चार प्रधान मठो की स्थापना की । इन्हे ज्योतिर्मठ (जोशी मठ बदरिकाश्रम के निकट), शृङ्गेरीमठ (रामेश्वरम् मे), गोवर्धनमठ (जगन्नाथपुरी) तथा शारदामठ (द्वारिकापुरी मे) कहते हैं । इन मठों का अधिकार-क्षेत्र निर्धारित कर आचार्य ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को चार क्षेत्रों मे विभाजित कर एक-एक क्षेत्र का अधिकार एक-एक मठाधिपति को प्रदान किया । मठ के अध्यक्षो का प्रधानकार्य था अपने अन्तर्गत पड़ने वाले क्षेत्रो में वर्णाश्रमधर्म के अनुसार व्यवस्था स्थापित करते हुए धर्मोपदेश देना तथा वैदिक धर्म की रक्षा करना । मठो के अध्यक्ष शंकराचार्य के प्रतिनिधि स्वरूप माने जाते है एवं उन्हें शङ्कराचार्य कहा जाता है । चार मठो के ऊपर इनके चार पट्टशिष्य अधिष्ठित हुए । उन्होंने गोवर्धन मठ का अध्यक्ष पद्मपाद को, शृङ्गेरी का अध्यक्ष पृथ्वीधर या हस्तामलक को, शारदापीठ का अध्यक्ष विश्वरूप या सुरेश्वर को

तथा ज्योतिर्मठ का अध्यक्ष तोटक को बनाया। आचार्य ने मठों की स्थापना को ही अपना कर्त्तव्य न मानकर मठाधीशों के लिए भी नियम निर्धारित कर व्यवस्था बनायी, जिसके अनुसार उन्हें चलना पड़ता था। उनके ये उपदेश 'महानुशासन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मठाधीश्वर के लिए पवित्र, जितेन्द्रिय, वेदवेदाङ्गविशारद, योगविद् तथा सर्वशास्त्रज्ञ होना आवश्यक था। आचार्य ने ऐसी भी व्यवस्था की थी कि जो मठाधीश्वर उपर्युक्त नियमों का पालन न करे, उसे अधिकारच्युत कर दिया जाय। मठाधीश्वर राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए सदा भ्रमण किया करते थे तथा एक मठ का अधीश्वर दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता था। इन सारी बातों से आश्चर्य की दूरदर्शिता एवं व्यावहारिक ज्ञान का पता चलता है।

शंकराचार्य को अपने मत का प्रचार-प्रसार करने में अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करना पड़ा था। उनमें मण्डन मिश्र के साथ उनका शास्त्रार्थ ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। मण्डन मिश्र प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। वे मिथिलानिवासी थे। उनकी पत्नी का नाम भारती था। आचार्य का मण्डन मिश्र के साथ जब शास्त्रार्थ हुआ तो उसकी मध्यस्थता भारती ने की। आचार्य की मृत्यु ३२ वर्ष की अवस्था में भगन्दर रोग के कारण हुई। वे महान् कवि, प्रौढ लेखक एवं युगप्रवर्त्तक दार्शनिक थे। 'उनके दार्शनिक सिद्धान्तों के लिए दे० वेदान्त'।

आधारग्रंथ—१ आचार्य शंकर—पं० बलदेव उपाध्याय। २ संस्कृत सुकवि समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ३ शंकर का आचार दर्शन—डॉ० रामानन्द तिवारी ४. भारतीय दर्शन—चटर्जी और दत्त (हिन्दी अनुवाद)।

शृङ्गारप्रकाश—यह काव्यशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके रचयिता आचार्य भोज हैं [दे० भोज]। यह ग्रन्थ अभी तक सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित नहीं हुआ है। इसके २४ प्रकाश दो खण्डों में श्री जी० आर० जोशयेर द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं (इन्टरनेशनल अकाडेमी ऑफ संस्कृत रिसर्च मैसूर १९५५)। डॉ० वे. राघवन् ने 'शृङ्गारप्रकाश' की हस्तलिखित प्रति के आधार पर अंगरेजी में विशालकाय ग्रन्थ की रचना की है जिसमें उसके प्रत्येक प्रकाश का सार एवं वर्णित विषयों का विवेचन है। 'शृङ्गारप्रकाश' के मत को जानने के लिए यह ग्रन्थ आधारग्रन्थ का कार्य करता है। 'शृङ्गारप्रकाश' भारतीय काव्यशास्त्र का सर्वाधिक विशालकाय ग्रंथ है जिसकी रचना ३६ प्रकाश एवं ढाई हजार पृष्ठों में हुई है। इसमें काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र दोनों का विवेचन है। वर्णित विषयों की प्रकाश-क्रम से सूची इस प्रकार है -१ काव्य, शब्द एवं अर्थ की परिभाषा तथा प्रत्येक के १२ कार्य का वर्णन। २. प्रातिपदिक के भेदोपभेद, ३. पद तथा वाक्य के अर्थ एवं उनके भेद, ४. अर्थ के १२ प्रकारों का वर्णन, ५. उपाधि का अर्थ, ६ ७ ८ में शब्दशक्तियों का विवेचन . प्रकाश में गुण एवं दोषविवेचन, १० वें प्रकाश में शब्दालंकार, अर्थालङ्कार एवं उभयालङ्कार का विवेचन, ११. एवं १२. वें प्रकाश में रस एवं नाटक तथा महाकाव्य का वर्णन, १३ वें में रति, मोक्षशृङ्गार, धर्मशृङ्गार, वृत्ति एवं रीतिविवेचन, १४ वें में हर्ष एवं ४८ भाव, १५. रति के आलम्बन विभाव, १६. रति के उद्दीपनविभाव,

१७. अनुभाव, १८. धर्मशृङ्गार, १९ अर्थशृङ्गार, २०. कामशृङ्गार, २१. मोक्ष-शृङ्गार एवं नायक-नायिका भेद, २२. अनुराग वर्णन, २३ संयोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार-वर्णन, २४ विप्रलम्भ वर्णन, २५. पूर्वानुरागविप्रलम्भ वर्णन, २६. प्राप्त नहीं होता, २७. अभियोग विधि का निरूपण, २८. दूती एवं दूतकर्म का वर्णन, २९. दूत-प्रेषण तथा सन्देशदान-वर्णन, ३०. भाव स्वरूप, ३१. प्रवास वर्णन, ३२. करुण रस का वर्णन, ३३. सम्भोग का स्वरूप ३४ प्रथमानुरागान्तर सम्भोग, ३५. मानप्रवास एवं करुण के अन्तर्गत सम्भोग वर्णन, ३६. चार प्रकार की सम्भोगावस्था का वर्णन।

शक्तिभद्र—ये संस्कृत के नाटककार हैं। इनका निवासस्थान केरल था और ये आद्य शंकराचार्य के शिष्य थे। इन्होंने 'आश्चर्यचूडामणि' नामक नाटक की रचना की है। इस नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि यह दक्षिण देश मे रचित सर्वप्रथम संस्कृत नाटक है। शंकराचार्य का शिष्य होने के कारण इन्हें दशम शतक से पूर्व होना चाहिए। 'आश्चर्यचूडामणि' के अतिरिक्त इनके अन्य नाटकों का भी विवरण प्राप्त होता है तथा 'वीणावासवदत्ता' नामक एक अधूरे नाटक का प्रकाशन भी हो चुका है। 'उन्मादवासवदत्ता' नामक नाटक के भी शक्तिभद्र ही प्रणेता माने जाते हैं। 'आश्चर्य-चूडामणि' में रामकथा को नाटकीय रूप में उपस्थित किया गया है। इसका प्रकाशन १९२६ ई० में श्री बालमनोरमा सीरीज, मद्रास से हुआ है। इस नाटक की अपनी विशिष्टता है, आश्चर्यरस का प्रदर्शन। इसमें कवि ने मुख्यतः आश्चर्यरस को ही कथा-वस्तु का प्रेरक मानकर उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सात अंकों मे आश्चर्यरस की रोचक परम्परा को उपस्थित किया गया है। नाट्यकला की दृष्टि से इसे राम-सम्बन्धी सभी नाटकों में उत्कृष्ट माना जाता है। कवित्व के विचार मे भले ही इसका महत्त्व कम हो लेकिन अभिनेयता की दृष्टि से यह एक उत्तम नाटक है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय।

शतपथ ब्राह्मण—यह यजुर्वेद का ब्राह्मण है। इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन एवं काण्व दोनों संहिताओं से है। सौ अध्याय से युक्त होने के कारण इसे 'शतपथ' कहते हैं। इसके ऊपर तीन भाष्य उपलब्ध होते हैं—हरिस्वामी, सायण एवं कवीन्द्र के। इन भाष्यों की भी अनेक टीकाएं हैं। शतपथ ब्राह्मण मे ३३ देवताओं का उल्लेख है—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ आकाश तथा १ पृथ्वी। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानों मे मतभेद है। तिलक तथा पावगी महाराज के अनुसार इसकी रचना २५०० ई० पू० हुई थी [दे० तिलक कृत 'आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज' पृ० ३८७, तथा पावगी रचित 'दि वैदिक फादर्स ऑफ जियोलॉजी' पृ० ७२ तथा 'दि आर्यावर्त्तिक होम एण्ड दि आर्यन क्रेडल इन द सप्तसिन्धुज' पृ० ५५, २७]। परन्तु प्रसिद्ध महाराष्ट्री विद्वान् श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इसका रचनाकाल शकपूर्व ३१०० वर्ष माना है [दे० भारतीय ज्योतिष, हिन्दी अनुवाद पृ० १८१, २०५]। इसमें विविध प्रकार के ऐसे यज्ञों का वर्णन है जो अन्य ब्राह्मणों में नहीं मिलते। यह ब्राह्मण सभी ब्राह्मणों में विशाल है। इसमें बारह हजार ऋचाएं, आठ हजार यजु तथा चार हजार साम हैं। इसमें अनेक

उपाख्यानों का संग्रह है—रामकथा पुरूरवाउर्वशी, जलप्लावन की कथा, अश्विनी कुमारों की कथा आदि । इन आख्यानों का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है । 'शतपथ' में यज्ञयाग-विधि के अतिरिक्त अनेक आध्यात्मिक तथ्य भी प्रस्तुत किये गए हैं तथा इसके उपाख्यान, अनेक ग्रन्थों के आधार रहे हैं [वेबर द्वारा १८५५ ई० में सायण तथा हरिस्वामी भाष्य के साथ प्रकाशित, पुनः १९१२ ई० में सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा प्रकाशित] ।

शाङ्खायन आरण्यक—यह ऋग्वेद का द्वितीय आरण्यक है । इसमें १५ अध्याय हैं और सभी ऐतरेय आरण्यक के ही समान है [दे० ऐतरेय आरण्यक] । इसके तीन से ६ अध्याय को 'कौषीतकि उपनिषद्' कहा जाता है [दे० कौषीतकि] ।

शाङ्खायन ब्राह्मण—यह ऋग्वेद से सम्बद्ध है । इसे 'कौषीतकि' भी कहते है । इसमे ३० अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय मे ५ से लेकर १७ तक खण्ड हैं, जिनकी सख्या २२६ है । इसका प्रतिपाद्य ऐतरेय के ही सदृश है, पर विषयों का विवेचन किंचित् विस्तार के साथ किया गया है । इसमे रुद्र की विशेष महिमा वर्णित है तथा उन्हें देवों म सर्वश्रेष्ठ माना गया है | रुद्रो वै ज्येष्ठश्च देवानाम्, २५।१३] । इस ब्राह्मण मे शिव के लिए रुद्र, महादेव, ईशान, भव, पशुपति, उग्र तथा अशनि शब्द प्रयुक्त हुए है और इन सभी नामो की विचित्र उत्पत्ति भी दी गयी है । इसमे शिव-सम्बन्धी व्रतो का वर्णन है । ७ वें अध्याय मे विष्णु को उच्चकोटि का देवता तथा अग्नि को निम्नस्तर का देवता माना गया है—अग्निरवरार्ध्यः विष्णुः परार्ध्यः । इसमे उदीच्य लोगो के संस्कृत-ज्ञान की प्रशंसा की गयी है तथा यह बतलाया गया है कि तत्कालीन व्यक्ति वहा जाकर संस्कृत सीखते थे, और उन्हें प्रभूत सम्मान प्राप्त होता था ८।६ । इसके २३।२ अध्याय मे शकरी (छन्द) का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । कहा जाता है कि इसी छन्द के कारण इन्द्र को वृत्रासुर के संहार करने में सफलता प्राप्त हुई थी । इसी मे शकरी का शकरीत्व है—इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुमाभिस्तस्मात् शक्वर्यः । इस ब्राह्मण में गोत्र की महत्ता प्रदर्शित की गयी है और एक स्थान पर (२५।१५) पर कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अपने ही गोत्र वालों के साथ निवास करें, अन्य के साथ नही । इसका प्रकाशन जेना से १८८७ ई० मे हुआ, सम्पादक लिण्डेनर ।

समन्तभद्र—जैनदर्शन के आचार्य । इनका समय विक्रम की तृतीय या चतुर्थी शताब्दी है । इनके द्वारा रचित ग्रन्थो का विवरण इस प्रकार है—१. आप्तमीमांसा—इसकी रचना ११४ कारिका मे हुई है । इसे 'देवागम स्तोत्र' भी कहते है । इस पर दो टीकाए प्राप्त होती हैं—भट्ट अकलङ्क कृत अष्टशती एवं विद्यानन्द की अष्टसहस्री । २ युक्त्यानुसन्धान—इसमें ६४ पद्य है और अपने मत तथा परमतों की आलोचना है । इस पर विद्यानन्द की टीका मिलती है । ३. स्वयंभूस्तोत्र—इसमे १४३ पद्य हैं तथा तीर्थंङ्करों की स्तुति एवं जैनमत का विवेचन है । ४. जिन-स्तुति-शतक—इसमें ११६ श्लोक हैं जो भक्ति-भाव से आपूर्ण हैं । ५. रत्नकरण्डश्रावकाचार्य—यह श्रावकाचार का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है । इनके अन्य तीन ग्रन्थों का भी उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु ये ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं ।

आधारग्रन्थ—१ भारतीय दर्शन—(भाग १)—डॉ० राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद) २. भारतीयदर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

सरस्वतीकण्ठाभरण—यह काव्यशास्त्र का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसके रचयिता आचार्य भोज या भोजराज हैं [दे० भोज]। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' मूलतः संग्रह ग्रन्थ है जिसमे विभिन्न आचार्यों के विचारों का संग्रह है। एकमात्र 'काव्यादर्श' के ही इसमे २०० श्लोक उद्धृत किये गए हैं। इसमें १५०० के लगभग श्लोक पूर्ववर्ती कवियों के उद्धृत किये गए हैं अतः संस्कृत साहित्य की कालानुक्रमणिका के विचार से इसका महत्व असंदिग्ध है। इसमे कई ऐसे अलंकारो का वर्णन है जिनका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। सम्पूर्ण ग्रन्थ पांच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्य-प्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यभेद तथा दोष-गुण का विवेचन है। भोज ने दोष के तीन प्रकार मानकर पददोष, वाक्यदोष एवं वाक्यार्थ दोष—प्रत्येक के १६ भेद किये हैं। इस प्रकार भोजकृत दोषो की संख्या ४८ हो जाती है। इन्होने गुण के भी ४८ प्रकार माने है और उन्हे शब्दगुण एवं वाक्य गुण के रूप में विभक्त किया है। द्वितीय परिच्छेद में २४ शब्दालङ्कारो का विवेचन है। वे हैं—जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुंफना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ़, प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य तथा अभिनव। तृतीय परिच्छेद में २४ अर्थालंकार वर्णित हैं—जाति, विभावना, हेतु, अहेतु, सूक्ष्म, उत्तर, विरोध, संभव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शन (दृष्टान्त), भेद (व्यतिरेक), समाहित, भ्रान्ति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और भाव। सरस्वती-कण्ठाभरण के चतुर्थ परिच्छेद मे २४ उभयालंकारो का निरूपण है। वे है—उपमा, रूपक, साम्य, संशयोक्ति, अपह्नुति, समाध्युक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतस्तुति, तुल्ययोगिता, लेश, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, विशेष, परिष्कृति, दीपक, क्रम, पर्याय, अतिशय, श्लेष, भाविक, तथा संसृष्टि। इसके पंचम परिच्छेद में रस, भाव, नायक-नायिकाभेद, नाट्य सन्धियों तथा चार वृत्तियो का निरूपण है। 'सरस्वती-कण्ठाभरण, में कुल ६४३ कारिकाएं हैं। इस पर जगद्धर एवं रत्नेश्वर की टीकाएं प्राप्त होती हैं। रत्नेश्वर की टीका का नाम 'रत्नदर्पण' है जिसकी रचना तिरहुत नरेश महाराज रामसिंहदेव के आदेशानुसार हुई थी। इनका समय १४ वीं शताब्दी के आसपास है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में चित्रालंकार का अत्यन्त विस्तृत विवेचन है जिसमें इसके लगभग ६५ भेदों का उल्लेख है। इसी प्रकार नायिकाभेद एवं शृङ्गाररस के निरूपण में भी अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं जो भारतीय काव्यशास्त्र की स्थायी निधि हैं। सम्प्रति सरस्वतीकण्ठाभरण का हिन्दी अनुवाद मुद्रणाधीन है।

आधारग्रन्थ—सरस्वतीकण्ठाभरण—रत्नेश्वर एवं जगद्धर टीका सहित।

संगीतशास्त्र—भारतीय संगीत अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है। वैदिककाल से ही इसके विकास के सूत्र प्रारम्भ हो जाते हैं। वेदों में सामवेद 'गेय' है, अतः संगीत के तत्त्व इसी मे प्राप्त होते हैं। चार वेदों के चार उपवेद माने जाते हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा स्थापत्य। इनमें गान्धर्व या संगीत शास्त्र का सम्बन्ध 'सामवेद' के साथ

स्थापित किया गया है। प्रारम्भ से ही काव्य और संगीत में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और संगीत का आधार छन्दोबद्ध काव्य ही माना जाता रहा है। सामवेद के द्वारा इस तथ्य की सत्यता सिद्ध हो जाती है। वह संसार का सर्वाधिक प्राचीन संगीतविषयक ग्रंथ माना जाता है। 'सामवेद' में 'सामन्' या गीत ऋग्वेद से लिये गए मन्त्र है। 'ऋग्वेद' के दशम मण्डल में भी 'सामन' शब्द का प्रयोग हुआ है तथा 'यजुर्वेद' में भी वैराज, बृहत् तथा रथन्तर प्रभृति अनेक प्रकार के 'सामनों' का उल्लेख है। ऋग्वेद मे अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्रो का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे दुन्दुभि, कर्करी, क्षोणी, वीणा, वाण आदि। ऋग्वेद ६–४७ २९–३१। वैदिक साहित्य मे संगीतविषयक अनेक पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग प्राप्त होते हैं और स्वरविधान संबंधी पुष्कल सामग्री मिलती है। पूर्वाचिक उत्तरार्चिक, ग्रामगेयगान, आरण्यगेयगान, स्तोव, स्तोम, आदि अनेक शब्द तत्कालीन संगीतशास्त्र की समृद्धि के द्योतक हैं। सामवेद के गेय छन्दो में स्वर-विधान के साथ गान-विधि का भी निर्देश प्राप्त होता है। शौनक मुनि के ग्रंथ 'चरणव्यूह' मे बताया गया है कि सामवेदिक संगीत एक सहस्र सम्प्रदायों मे विभक्त था—सामवेदस्य किल सहस्रभेदा भवन्ति (परिशिष्ट)। पर सम्प्रति उसके केवल तीन ही सम्प्रदाय रह सके हैं—कौथुम, राणायणीय एवं जैमिनीय। वैदिक युग मे तीन स्वर प्रधान थे—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, तथा इनसे ही कालान्तर मे सप्त स्वरो का विकास हुआ। निषाद और गांधार को उदात्त से ऋषभ और धैवत की अनुदात्त से तथा षड्ज, मध्यम एवं पंचम की स्वरित से उत्पत्ति हुई थी। उदात्त को तार भी कहा गया है और अनुदात्त को उच्च, मन्द या खाद कहते हैं। स्वरित को मध्य, समतारक्षकस्वर कहा जाता है। 'ऋक्प्रातिशाख्य' में बताया गया है कि किस प्रकार तार, मन्द एवं मध्य के द्वारा षड्ज आदि सप्त स्वरों का विकास हुआ था। वैदिक संगीत के सात विभागों का उल्लेख प्राप्त होता है—प्रस्तवा, हुंकार उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, विधान एवं प्रणव।

पुराणो तथा रामायण और महाभारत में संगीतशास्त्र के विकसित स्वरूप के निदर्शन प्राप्त होते हैं। इस युग मे संगीत के विधान, पद्धति, नीति-नियम तथा प्रकारो मे पर्याप्त विकास हो चुका था। 'हरिवंशपुराण' मे गांधार राग की प्राचीनता विभिन्न रागरागिनियो तथा वाद्य ग्रन्थो का भी परिचय दिया गया है और तत्कालीन अनेक नर्त्तकियो एवं उनके वाद्ययन्त्रों का भी उल्लेख है। 'मार्कण्डेयपुराण' मे सप्तस्वर, पंचविध ग्रामराग, पचविधगीत, मूर्च्छनाओं के इक्यावन प्रकार की तानों, तीन ग्रामों तथा चार पदों के विवरण प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 'वायुपुराण' मे भी संगीतविषयक अनेक तथ्य उपलब्ध होते हैं। रामायण और महाभारत युग मे संगीत विशिष्ट व्यक्तियों या जातियों की वस्तु न रहकर सर्वसाधारण का विषय हो गया था। रावण स्वयं उच्चकोटि का संगीतज्ञ था और उसने संगीतशास्त्र के ऊपर ग्रन्थ-रचना भी की थी। उसके द्वारा रचित 'रावणीयम्' नामक ग्रन्थ आज भी प्रचलित है किन्तु इसका रूप परिवर्त्तित हो गया है। 'रामायण' मे महर्षि वाल्मीकि की संगीतप्रियता सर्वत्र दिखाई पडती है। 'महाभारत' के समय में संगीतकला और भी अधिक विकसित हो गयी

थी और उस युग के सूत्रधार श्रीकृष्ण स्वयं भी बहुत बड़े संगीतज्ञ एवं वंशीवादक थे।

पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' तथा भास एवं कालिदास के ग्रन्थों में संगीत तथा अन्य ललितकलाओं के प्रसार के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुप्तयुग भारतीय कला का तो स्वर्णयुग माना ही जाता है और सम्राट् समुद्रगुप्त की संगीतप्रियता इतिहास प्रसिद्ध है। गुप्तयुग में संगीतशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। संगीतशास्त्र के ग्रन्थ—संस्कृत में संगीतशास्त्रविषयक प्रथम वैज्ञानिक ग्रन्थ भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' है। इसमें भरतमुनि ने तत्कालीन संगीतों की प्रविधि का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। भरत ने नाट्यशास्त्र के २८,२९ एवं ३० अध्यायों में इस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और कतिपय पूर्ववर्ती आचार्यों का भी उल्लेख किया है। भरत से पूर्व नारदमुनि ने संगीतशास्त्र का प्रतिपादन किया था जिनका ऋण 'नाट्यशास्त्र' में स्वीकार किया गया है (नाट्यशास्त्र ०४२८)। गान्धर्व के विवेचन में भरत ने नारद को ही अपना उपजीव्य माना है। अभिनवगुप्त ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—प्रीतिविवर्धनमिति नारदीय-निर्वचनं सूचितम्— अभिनवभारती अध्याय २८ श्लोक ९। संगीत के प्राक् भरत आचार्यों में विशाखिलाचार्य का भी नाम आता है। भरत ने अनेक समकालीन आचार्यों का भी उल्लेख किया है जिनमें नन्दिन्, कोहल, काश्यप, शार्दूल तथा दत्तिल प्रसिद्ध है। दत्तिल एवं कोहल की एक संयुक्त रचना 'दत्तिलकोहलीयम्' हस्तलिखित रूप में सरस्वती महल पुस्तकालय, तंजोर में सुरक्षित है। नवीं शताब्दी के उत्पलाचार्य को अभिनवगुप्त ने सङ्गीतशास्त्र का प्रामाणिक आचार्य माना है। भरतमुनि के पश्चात् संस्कृत में सङ्गीतशास्त्रविषयक स्वतन्त्र ग्रन्थों का लेखन प्रारम्भ हुआ। ऐसे लेखकों में मतङ्ग या मातङ्ग का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने 'बृहद्देशीय' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय छठीं शताब्दी है। मतङ्ग ने ग्राम रागों के सम्बन्ध में भरत को उद्धृत किया है। ये बांसुरी के आविष्कारक भी माने जाते हैं। शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ में कम्बल, अश्वतर तथा आंजनेय मुनि का उल्लेख किया है जो भरतोत्तर प्रसिद्ध आचार्यों में थे। इन्होंने भरत के मत में सुधार करते हुए पंचमी, मध्यमा एवं षड्ज मध्यमा के सम्बन्ध में नयी व्यवस्था दी थी। अभिनवगुप्त ने भट्टमातृगुप्त, लाटमुनि तथा विधात्राचार्य प्रभृति संगीतशास्त्रियों का उल्लेख किया है तथा 'संगीतरत्नाकर' की टीका में विश्वावसु, उमापति तथा पार्श्वदेव आदि शास्त्रकारों के भी नाम आते हैं। सम्प्रति इनके ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते किन्तु अभिनवगुप्त एवं शार्ङ्गदेव के समय में वे अवश्य ही उपलब्ध रहे होंगे। सङ्गीतशास्त्र के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य शार्ङ्गदेव का है जिनका समय १२१० ई० है। इनके पूर्व पार्श्वदेव ने 'संगीतसमयसार' एवं सोमनाथ ने 'रागविबोध' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। नान्यदेवकृत 'सरस्वती-हृदयालङ्कार' (१०९६–११३७ ई०) नामक ग्रन्थ में दाक्षिणात्य, सौराष्ट्री, गुर्जरी, बंगाली तथा सैन्धवी प्रभृति देशी रागों का विवेचन किया गया है। शार्ङ्गदेव का 'सङ्गीतरत्नाकर' अपने विषय का प्रौढ़ ग्रन्थ है। इस पर मल्लिनाथ (१४५६–१४७७ ई०) ने विस्तृत टीका लिखी है। शार्ङ्गदेव देवगिरि के राजा सिंघन के दरबार में रहते थे।

इनका ग्रन्थ भारतीय संगीतशास्त्र का महाकोश है जिसमें पूर्ववर्ती संगीतशास्त्रकारों के प्रामाणिक ग्रन्थों को उपजीव्य बनाकर इस विषय का प्रौढ़ विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने ग्रंथ के प्रारम्भ में ऐसे अनेक लेखकों की सूची दी है। इस ग्रन्थ में विभिन्न रसों की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हुये बताया गया है कि किस रस मे किस राग का प्रयोग करना चाहिए। इन्होंने 'संगीतसमयसार' नामक एक अन्य ग्रंथ का भी प्रणयन किया था। बड़ोदा के प्राच्यविद्यामन्दिर में 'वीणाप्रपाठक' नामक ग्रन्थ का हस्तलेख मिलता है जिस पर 'संगीतरत्नाकर' का अधिक प्रभाव है। दक्षिण के रामामात्य ने १६१० ई० में 'स्वरसुधानिधि' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी जो श्रीरङ्ग के राजा रामराज के आदेश से लिखा गया था। 'रामामात्य' ने अपने पूर्व-कालीन शास्त्रकारों के सिद्धान्तों का संशोधन इस रूप में किया कि वे तत्कालीन संगीत-कला के व्यावहारिक रूप के अनुकूल बन जाये।' स्वतन्त्रकलाशास्त्र (प्रथम संस्करण) पृ० ५६४ इन्होंने स्वरों की संख्या सात ही सिद्ध की है। राजा मानसिंह वर्त्तमान ध्रुपद रीति के आरम्भकर्ता माने जाते हैं। तदनन्तर भवदत्त (१८०० ई०) ने 'अनूपसंगीतरत्नाकर' नामक ग्रन्थ की रचना कर ध्रुपद की नवीन परिभाषा प्रस्तुत की। अकबर के काल मे संगीतकला की पर्याप्त उन्नति हुई। उस युग के प्रसिद्ध संगीतकारों मे स्वामी हरिदास एवं तानसेन के नाम आते है। अकबर के ही समसामयिक पुण्डरीक बिट्ठल ने संगीतविषयक चार ग्रन्थो की रचना की—षड्रागचन्द्रोदय, रागमाला, राग-मंजरी एवं नर्त्तननिर्णय। ये सभी ग्रन्थ हस्तलिखित रूप मे बीकानेर पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं। जहांगीर के समय में संगीतशास्त्र पर दो प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना हुई— 'संगीतदर्पण' एवं 'संगीतपारिजात'। इनके लेखक क्रमश. पण्डित दामोदर एवं अहोबल है। दोनो ग्रन्थों मे उत्तर एवं दक्षिण की सांगीतिक पद्धतियो का सुन्दर समन्वय किया गया है। पं० हृदयदेव नारायण ने 'हृदयकौतुक' एवं 'राजतरंगिणी' नामक दो ग्रन्थों की रचना की जिनके हस्तलेख बीकानेर राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं। पं० भावभट्ट ने (१६७४–१७०९ ई०) संगीत-सम्बन्धी तीन ग्रंथो का निर्माण किया— 'अनूपविलास', 'अनूपांकुश' तथा 'अनूपसंगीतरत्नाकर'। तीनो ही अपने विषय के महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं। इसी समय के वेंकटमुखी नामक भाट-रचित 'चतुर्दण्डप्रकाशिका' ग्रन्थ में ७१ थाट एवं ४५ रागो का विवेचन प्रस्तुत किया गया। तदनन्तर मेवाड के राणा कुम्भनदब ने 'वाद्यरत्नकोश' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमें वाद्यों का सुन्दर विवेचन है (१७४८ ई०)। श्रीकण्ठ नामक विद्वान् की 'रसकौमुदी' नामक रचना संगीतशास्त्र की सुन्दर कृति है जो १८ वीं शताब्दी की रचना है। दक्षिण की संगीतशा मधुरवाणी द्वारा रचित एक ग्रन्थ बंगलोर मे प्राप्त हुआ है जिसमे १४ सर्ग एवं १५०० श्लोक हैं। इसमें रामायणी कथा के आधार पर संगीत का वर्णन है। यह ग्रंथ तैलंग लिपि में है। पं० कृष्णानन्द व्यास ने १८४३ ई० मे 'रागकल्पद्रुम' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की, जिसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। दक्षिण के संगीतज्ञों मे तंजोर के राजा तुलज, त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षित श्यामशास्त्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। राजा तुलज ने (१७३५ ई०) 'संगीतसारामृत' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था।

भारतीय संगीत की अन्तिम कड़ी के रूप में विष्णु नारायण भातखण्डे का नाम उल्लेख-नीय है। इन्होंने 'लक्ष्यसंगीत' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। इसका प्रकाशन १९१० ई० में हुआ था। भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीतकला के बहुत बड़े मर्मज्ञ थे। इन्हें भारतीय संगीतकला का सर्वोच्च विद्वान् माना गया है।

आधारग्रन्थ—१. संगीतशास्त्र—श्री के० वासुदेव शास्त्री। २. भरत का संगीत सिद्धान्त—श्री कैलास चन्द्रदेव 'बृहस्पति'। ३. भारतीय संगीत का इतिहास—श्री उमेश जोशी। ४. भारतीय संगीत का इतिहास—श्री शरदचन्द्र श्रीधर परांजपे। ५. स्वतन्त्रकलाशास्त्र—डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय। ७. भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय। ८ संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला।

संवर्तस्मृति—इस स्मृति के रचयिता संवर्त्त नामक स्मृतिकार हैं। जीवानन्द तथा आनन्दाश्रम के संग्रहों मे 'संवर्तस्मृति' के २२७ तथा २३० श्लोक प्राप्त होते हैं। इस स्मृति का प्रकाशन हो चुका है, किन्तु प्रकाशित अंश मौलिक ग्रंथ का संक्षिप्त सार है। 'मिताक्षरा' एवं 'स्मृतिसार' (हरिनाथ कृत) मे बृहत्संवर्त स्वल्प संवर्त का भी उल्लेख है। संवर्त ने लेखप्रमाण के समक्ष मौखिक बातो को कोई भी महत्त्व नही दिया है। इनके अनुसार अराजकता के न रहने पर तथा राज्य की स्थिति सुदृढ होने पर अधिकार करनेवाला व्यक्ति ही घर, द्वार अथवा भूमि का स्वामी माना जायगा और लिखित प्रमाण व्यर्थ हो जाएंगे। भुज्यमाने गृहक्षेत्रे विद्यमाने तु राजनि। भुक्तिर्यस्य भवेत्तस्य न लेख्यं तत्र कारणम्। परा० मा० ३।

आधारग्रन्थ—धर्मशास्त्र का इतिहास—डॉ० पा. वा. काणे,भाग १ (हिन्दी अनुवाद)

संस्कृत कथा साहित्य—भारतवर्ष को संसार की महानतम कथा-शृङ्खलाओं को प्रारम्भ करने का श्रेय है। सर्वप्रथम यहीं ही कथा-साहित्य का जन्म हुआ था और यहीं से अन्य देशों मे इसका प्रचार एवं प्रसार हुआ। भारतीय (प्राचीन) आख्यायिका साहित्य को पशु-कथा तथा लौकिक आख्यायिका के रूप मे विभाजित किया जा सकता है। पशु-आख्यायिका का रूप वैदिक वाङ्मय मे भी दिखलाई पड़ता है। इसकी प्रथम छाया वैदिक साहित्य के उन स्थलों पर दिखलाई पड़ती है जहाँ नैतिक सन्देश देने के लिए अथवा व्यंग्य करने के लिए पशु मनुष्य की भांति बोलते या व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं। उपनिषदों मे सत्यकाम को बैल, हंस एवं जलपक्षी उपदेश देते हुए चित्रित किये गए हैं। 'छान्दोग्य उपनिषद्' मे पुरोहितों की तरह मन्त्रोच्चारण करने तथा भोजन के लिए भूंकने वाले कुत्तों का वर्णन है। 'महाभारत' एवं 'जातक कथाओं' में भी पशुकथा का वर्णन प्राप्त होता है। प्रारम्भिक बौद्ध आचार्यों ने अपने उपदेश के क्रम में पशु-आख्यायिकाओं का प्रयोग किया है। बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु ने 'गाथासंग्रह' के उपदेश में हास्य का पुट देकर उसे सजीव बनाने के लिए पशु-कथा का सहारा लिया है।

विश्व-पशु-कथा की परम्परा में 'पञ्चतन्त्र' भारत की महान् देन है। प्राचीन समय से ही इसके अनुवादों की धूम मची हुई है और फलस्वरूप चालीस प्रसिद्ध भाषाओं

में इसके दो सौ अनुवाद हो चुके हैं [दे० पञ्चतन्त्र]। फारस और भारत का सम्बन्ध स्थापित होने पर वहां के राजाओं ने अपने विद्वानों के द्वारा संस्कृत कथा-साहित्य का अनुवाद कराया था। 'बुरजोई' नामक हकीम ने ५३३ ई० में पहले-पहल 'पञ्चतन्त्र' का पहलवी या प्राचीन फारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद के पचास वर्षों के भीतर ही इसका अनुवाद सिरिअन भाषा में (५६० ई०) किसी पादरी द्वारा प्रस्तुत हुआ। इस अनुवाद का नाम 'कलिलग और दमनग' था जो करकट और दमनक नामक नामों का ही सीरिअन रूप था। सीरिअन अनुवाद के आधार पर इसका भाषान्तर अरबी में हुआ जिसका नाम 'कलीलह और दमनह' है। अरबी अनुवाद अब्दुल्ला बिन अलमुकफ्फा नामक विद्वान् ने ७५० ई० मे किया था। अरबी भाषा से इसके अनुवाद लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, स्पैनिश एवं अंगरेजी प्रभृति भाषाओं मे हुए। ग्रीक की सुप्रसिद्ध कहानिया 'ईशाप की कहानियां' एवं अरब की कहानी 'अरेबियन नाइट्स' का आधार पञ्चतन्त्र की ही कहानियां बनीं। इन कहानियों का मध्ययुग मे अत्यधिक प्रचार हुआ और लोगो को यह ज्ञान भी नहीं हुआ कि ये कहानियां भारतीय हैं। पञ्चतन्त्र का मूल संस्करण प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्टेल ने अत्यन्त परिश्रम के साथ प्रकाशित किया है। इसमें पाच विभाग हैं जिन्हे मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धि-विग्रह, लब्ध-प्रणाश एवं अपरीक्षित-कारक कहा जाता है। इसके लेखक विष्णु शर्मा नामक व्यक्ति हैं। ग्रन्थकार ने अपने प्रारम्भ में अन्त तक कहानियों के माध्यम से सदाचार की शिक्षा दी है।

पञ्चतन्त्र के आधार पर संस्कृत मे अनेक नीतिकथाएं लिखी गयीं जिनमें 'हितोपदेश' अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके रचयिता नारायण पण्डित हैं तथा इसका रचनाकाल १४ वीं शताब्दी के निकट है [दे० हितोपदेश]। संस्कृत लौकिक कथा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना 'बृहत्कथा' है। इसका मूल रूप पैशाची भाषा में गुणाढ्य नामक लेखक द्वारा रचित था जो राजा हाल के सभा-पण्डित थे। इसका मूल रूप नष्ट हो चुका है और इसके तीन संस्कृत अनुवाद प्राप्त होते हैं—बुधस्वामीकृत 'बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह', क्षेमेन्द्रकृत 'बृहत्कथा-मंजरी' तथा सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर'। इन तीनों अनुवादों मे गुणाढ्य रचित 'बड्डकहा' का मूल रूप कितना सुरक्षित है प्रमाण-भाव मे कुछ भी नही कहा जा सकता। बृहत्कथा की कहानियों के नायक नरवाहनदत्त है। वे अपने मित्र गोमुख की सहायता प्राप्त कर अपनी प्रियतमा मदनमंजूषा के साथ ब्याह करने में समर्थ होते है तथा उन्हें विद्याधरो का साम्राज्य भी प्राप्त होता है। बृहत्कथा का महत्त्व दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट एवं त्रिविक्रमभट्ट नामक कवियों ने भी स्वीकार किया है। १. भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्—काव्यादर्श १।२८। २. बृहत्कथालम्बैरिव सालभंजिकानिवहैः—वासवदत्ता। ३. धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः—नलचम्पू १४।

संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध लोक-कथाओं में 'वेतालपञ्चविंशति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका', 'शुकसप्तति' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'वेतालपंचविंशति' में २५ कथाओं का संग्रह है जिसके लेखक शिवदास नामक व्यक्ति हैं। इनका समय १४८७ के पूर्व है।

इसमें रोचक लोककथाओं का संग्रह है [दे० वेतालपंचविंशति]। 'विक्रमचरित' या 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' मे ३२ पुतलियों की ३२ कथाएं दी गयी हैं। इसमे राजाभोज को ३२ पुतलियों द्वारा उतनी ही कथाएं सुनाने का वर्णन है। इसके दो रूप मिलते है—पद्यबद्ध एवं गद्यबद्ध। इसका समय १३ वीं शताब्दी से प्राचीनतर नहीं है [दे० सिंहासन द्वात्रिंशिका]। 'शुकसप्तति' मे एक सुग्गे द्वारा अपनी गृहस्वामिनी को कथा सुनाने का वर्णन है जो अपने पति के परदेश-गमन पर भ्रष्टाचार मे प्रवृत्त होने जा रही है। इसका समय १० वी शताब्दी है [दे० शुकसप्तति]। संस्कृत में जैन लेखकों ने अत्यन्त ही मनोरंजक कहानियां लिखी हैं। इन्होने लोक-प्रचलित धूर्त, विट, मूर्ख एवं स्त्रियों से सम्बद्ध कथाएं लिखी हैं। 'भरटक द्वात्रिंशिका' इसी प्रकार की रचना है जिसमे प्रचलित लोकभाषा के भी पद्य यत्र-तत्र प्राप्त होते है। जैन लेखक हेमविजय गणि ने 'कथारत्नाकर' नामक २५६ छोटी-छोटी कथाओं का ग्रन्थ लिखा है, जिसका निर्माणकाल १७ वी शताब्दी है। जैन कथाओं का मुख्य उद्देश्य जैन सिद्धान्त के प्रचार का रहा है, अतः साहित्यिक तत्त्व गौण पड गया है।

जैन कवियो ने संस्कृत मे विशेष प्रकार के पद्य ग्रन्थों का निर्माण किया है जिन्हें 'जैनप्रबन्ध' कहा गया है। इन प्रबन्धों मे बोल-चाल की भाषा मे अर्ध ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनी लिखी गयी है। सरल शैली का प्रयोग होने के कारण इनकी लोक-प्रियता अधिक रही है। इन प्रबन्धग्रन्थों मे 'प्रबन्धचिन्तामणि' एव 'प्रबन्धकोश' नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। प्रबन्ध-चिन्तामणि की रचना मेरुतुगाचार्य ने १३०५ ई० में की थी। इसमें पाच प्रकाश या खण्ड हैं। प्रथम प्रकाश में विक्रमार्क, सातवाहन, मुंज तथा मूलराज-सम्बन्धी कथानक हैं। द्वितीय मे धारानरेश भोज का वर्णन है। तृतीय प्रकाश मे सिद्धराज और जयसिंह की कथाएं हैं तथा चतुर्थ मे कुमारपाल, वीरधवल तथा इनके महामन्त्री दानवीर जैन वस्तुपाल तथा तेजपाल का विवरण है। पंचम प्रकाश मे लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र, वराहमिहिर, भर्तृहरि, वैद्य वाग्भट आदि के प्रबन्ध हैं।

प्रबन्धकोश के रचयिता राजशेखर हैं। इसमें २४ प्रसिद्ध पुरुषो का वर्णन है तथा निर्माणकाल १४०५ संवत् है। इन पुरुषो मे १० जैनधर्म के आचार्य, ४ संस्कृत के कवि, ७ प्राचीन एवं मध्यकालीन राजा तथा ३ जैनधर्मानुरागी गृहस्थ है। इसकी भाषा व्यावहारिक एवं सीधी-सादी है। वल्लालसेन कृत 'भोजप्रबन्ध' संस्कृत की अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसका रचनाकाल १६ वी शताब्दी है [दे० भोजप्रबन्ध]। आनन्दा रचित 'माधवनलकथा' एवं विद्यापति कवि-विरचित 'पुरुष-परीक्षा' नामक पुस्तकें भी संस्कृत कथा साहित्य की उत्तम रचनाएं हैं।

संस्कृत गद्य—किसी भी साहित्य का प्रारम्भ पद्य से होता है। चूंकि पद्य में संगीत का तत्त्व सहज रूप से लिपटा रहता है, अतः मनुष्य नैसर्गिक रूप से उसकी ओर आकृष्ट होता है। गेयतत्त्व की ओर सहज आकर्षण होने के कारण मानवीय चेतना पद्य के परिवेश में आवेष्टित रहती है। पद्य में भावना का प्राधान्य होता है और गद्य में विचार के तत्त्व प्रबल होते हैं। संस्कृत साहित्य वैदिक गीतों के रूप में ही प्रस्फुटित

हुआ है, यह पद्य-बहुल साहित्य है। इसमें शास्त्रीय ग्रन्थों की भी रचना पद्य में ही हुई है। इतना होने पर भी, संस्कृत में गद्य का प्रचुर साहित्य विद्यमान है तथा इसका जितना भी अंश गद्य में लिखा गया है उसकी अपनी विशिष्टता है। संस्कृत गद्य-लेखन की परम्परा वैदिक संहिताओं की तरह ही प्राचीन है। कृष्ण यजुर्वेद में गद्य का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है। गद्य के कारण ही वैदिक संहिता में कृष्ण यजुर्वेद का स्वतन्त्र स्थान है। इसकी तैत्तिरीय संहिता गद्य का प्राचीनतम रूप उपस्थित करती है। अथर्ववेद का छठा भाग भी गद्यरूप में है। परवर्त्ती साहित्य में ब्राह्मणो, आरण्यकों तथा उपनिषदों मे गद्य का व्यावहारिक रूप उपलब्ध होने लगता है जो वैदिक गद्य की परम्परा का प्रौढ़ एव संवर्धनशील रूप प्रस्तुत करता है। कालान्तर में तत्त्वज्ञान, व्याकरण, विज्ञान-विषयक ग्रन्थ, ज्योतिष तथा टीका ग्रन्थों में गद्य का व्यवहारोपयोगी प्रौढ़ रूप सामने आया। इन ग्रन्थों का गद्य वैदिक साहित्य के गद्य का विकसित रूप प्रस्तुत करता है तथा इस स्थिति में गद्य जीवन के निकट फलने-फूलने लगता है। कथाकाव्य, आख्यायिका, चम्पूकाव्य एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे गद्य के साहित्यिक सहज एवं अलंकृत रूप के दर्शन होते है और इनके संस्कृत गद्य अपने परिनिष्ठित रूप मे पूर्णतः समृद्ध होकर प्रतिष्ठित होता है। संस्कृत मे गद्यकाव्यो की विशाल परम्परा रही है, किन्तु सम्प्रति अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध है। पतंजलि के महाभाष्य मे वासवदत्ता, 'भैमरथी' एवं 'सुमनोत्तरा' प्रभृति गद्यकाव्यों के उल्लेख प्राप्त होते है—अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' बहुलं लुग्वक्तव्यः' वासवदत्ता, सुमनोत्तरा। न च भवति। भैमरथी [४।३।८७]। पतंजलि के पूर्व प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन भी आख्यायिकाओ से परिचित दिखाई पडते हैं—लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्, आख्याना आख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च।

संस्कृत गद्य का वैशिष्ट्य—शास्त्रीय ग्रन्थो के माध्यम से संस्कृत आचार्यों ने सूत्रात्मक शैली के गद्य का निर्माण किया है। लाघव या लघुता संस्कृत गद्य की सर्वाधिक विशेषता है जिसमे पूरे वाक्य मे व्यक्त किये गए विचार को एक ही पद में रखा जाता है। संस्कृत भाषा मे समासबहुल गद्य का रूप प्राप्त होता है। वस्तुतः समास संस्कृत भाषा का प्राण है जिसके कारण गद्य मे भावग्राहिता, गाढ़बन्धता एवं प्रभान्विति आती है। ओजगुण संस्कृत गद्य की अन्य विशिष्टता है। दण्डी के अनुसार समास का बाहुल्य ही ओज है और ओज गद्य का जीवन है—ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्। संस्कृत गद्य के दो रूप प्राप्त होते है—बोलचाल का सरल या सादा गद्य तथा प्रौढ़ एवं अलंकृत गद्य। वैदिक साहित्य मे बोलचाल का सरल गद्य प्राप्त होता है, पर लौकिक साहित्य मे प्रौढ अलंकृत एवं प्रांजल भाषा प्रयुक्त हुई है। इन दोनों का मिश्रित रूप पौराणिक गद्य का है जिसमें अलंकृत गद्य प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत एवं विष्णुपुराण मे ऐसे ही गद्य है।

गद्य का विकास—वैदिक संहिता में संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक रूप प्राप्त होता है। इस युग का गद्य सरल, सीधा एवं बोलचाल की भाषा का है जिसमें छोटे-छोटे वाक्य एवं असमस्त पद प्रयुक्त होते हैं। उपमा एवं रूपक प्रभृति अलङ्कारों के समावेश से इसमें विशेष चारुता आ जाती है। "वात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।

स प्रजापति। सुवर्णमात्मन्नपश्यद् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्, तज्ज्येष्ठमभवत्; तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत्सत्यमभवत् तेन प्रजायत। अथर्व १५ काण्ड १ सूक्त शिलालेखों में संस्कृत गद्य का रूप अत्यन्त प्रौढ़ एवं अलंकृत एवं समासबहुल है। रुद्रदामन का जूनागढ़ का शिलालेख तथा समुद्रगुप्त का प्रयाग का शिलालेख प्रौढ़ गद्य का रूप उपस्थित करता है। "प्रमाणमानोन्मान-स्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतैर्कान्तमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्या स्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।" गिरनार का शिलालेख।

शास्त्रीय गद्य—समस्त भारतीय दर्शनग्रन्थों का लेखन गद्य में ही हुआ है, यद्यपि कतिपय अपवाद भी हैं। इन ग्रन्थों में लेखक का ध्यान भावाभिव्यक्ति एवं अर्थाभिव्यक्ति पर अधिक रहा है। शब्द शुष्क भले ही हों, पर उनमें अभिप्रेत अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति होनी चाहिए। कुछ ऐसे भी दर्शनकार हैं जिन्होंने अलंकृत एवं साहित्यिक शैली के गद्य व्यवहृत किये हैं। पतंजलि, शबरस्वामी, शंकराचार्य एवं जयन्तभट्ट के ग्रंथों में शास्त्रीय गद्य चरमसीमा पर पहुंच गया है। इन्होंने व्याकरण एवं दर्शन जैसे जटिल, गम्भीर एवं दुरूह विषय का सरल, बोधगम्य एवं प्रांजल शैली में विवेचन किया है। पतंजलि ने कथोपकथन की शैली में बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर महाभाष्य की रचना की है। इनके वाक्य अत्यन्त छोटे एवं पद असमस्त हैं। ऐसा लगता है कि आचार्य सम्मुख बैठे छात्रवर्ग को व्याकरण पढ़ा रहे हैं—के पुनः कार्याभावानिवृत्तौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यमीति। न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाह—कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति।" पस्पशाह्निक। शबरस्वामी ने 'मीमांसासूत्र' पर सरल भाषा में भाष्य लिखा है और शंकराचार्य का वेदान्त-भाष्य का गद्य सारगर्भ, प्रौढ एवं प्राञ्जल है। जयन्तभट्ट ने 'न्यायमञ्जरी' नामक न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है। इन्होने न्याय ऐसे जटिल विषय को सरस, व्यंग्ययुक्त एवं चटुल उक्तियों के द्वारा हृदयंगम बनाया है।

संस्कृत गद्य का वास्तविक विकास आख्यायिका एवं गद्य काव्यों से होता है। गुप्तकालीन तथा अन्य उपलब्ध शताधिक अभिलेखों में साहित्यिक गद्य का रूप दिखाई पड़ता है जिससे संस्कृत गद्य की प्राचीनता सिद्ध होती है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भट्टारक हरिश्चन्द्र नामक सिद्धहस्त गद्य-लेखक का उल्लेख किया है तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों में भी ऐसे शैलीकारों की नामावली दी गयी है जो अद्यावधि अज्ञात हैं। जल्हण ने वररुचि-रचित 'चारुमती', रोमिल्लसौमिल्ललिखित 'शूद्रककथा' तथा धनपाल ने श्री पालितकृत 'तरंगावतीकथा', 'सातकर्णीहरण' तथा 'नमोवन्तीकथा' आदि प्राचीन ग्रन्थों का वर्णन किया है। इन ग्रन्थों के नामोल्लेख से ज्ञात होता है कि सुबन्धु, दण्डी एवं बाणभट्ट से पूर्व अनेक महान् गद्य-लेखक हो चुके थे। सुबन्धु, दण्डी और बाण संस्कृत गद्यकाव्य के महान् दीपस्तम्भ हैं। सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' प्रथम साहित्यिक कृति है जिसमें उदयन एवं वासवदत्ता की प्रणयकथा वर्णित है। इनका आविर्भाव ६ ठी

शताब्दी के अन्त एवं सप्तम शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इसमें प्रत्यक्षरश्लेष-कौशल के द्वारा प्रबन्ध-रचना की चातुरी प्रदर्शित की गयी है। दण्डी ने 'दशकुमारचरित' एवं 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक दो गद्यकाव्यों की रचना की है। दण्डी के बाद बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी' की रचना कर संस्कृत गद्य का अत्यन्त प्रोज्ज्वल एवं प्रौढ़ रूप प्रस्तुत किया। बाण के अनुकरण पर संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें धनपाल-कृत 'तिलकमंजरी' (१००० ई०) बादीभसिंहरचित 'गद्यचिन्तामणि' (११ वीं शती) सोडल्लकृत 'उदयसुन्दरी' कथा (११०० ई०) अगस्तकृत 'कृष्णचरित' (१४०० ई०), वामनभट्टबाणरचित 'वेमभूपालचरित' (१६०० ई०) आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। पं हृषीकेश भट्टाचार्य (१८५०–१९१३ ई०) ने 'प्रबन्धमंजरी', पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' (१९०१ ई०) नामक ग्रन्थों की रचना की है।

बीसवीं शताब्दी में अनेक लेखकों ने संस्कृत में पाश्चात्य उपन्यासों के ढंग पर ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनैतिक गद्यग्रन्थों की रचना की है तथा कतिपय ग्रन्थ महापुरुषों तथा राष्ट्रीय नेताओं के चरित्र पर लिखे गए हैं। इस शताब्दी मे अनेक त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक एवं साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है जिनमें संस्कृत गद्य अत्यन्त व्यवहारोपयोगी होता जा रहा है। ऐसी पत्रिकाओं में 'संस्कृत-रत्नाकर', 'भारती' एवं 'गाण्डीव' प्रभृति प्रमुख है। मैसूर राज्य के श्री नरसिंहाचार्य ने 'सौदामिनी (बीसवीं शती का प्रारम्भ) नामक उपन्यास की रचना की है जिसमें मगधनरेश शूरसेन एवं विदर्भ की राजकुमारी सौदामिनी की प्रणयगाथा वर्णित है। आचार्य श्रीशैल ने (जन्म १८९३ ई०) 'मेनका' नामक पौराणिक उपन्यास की रचना की है। बीसवीं शती का उत्कृष्ट उपन्यास 'कुमुदिनीचन्द्र' है जिसके लेखक हैं मेघव्रताचार्य। यह उत्कृष्ट कोटि का काव्यात्मक उपन्यास है। इसमें वीरवर केसरीसिंह के पुत्र चन्द्रसिंह एवं कुमुदिनी के प्रणय का वर्णन है। यह उपन्यास १६ कलाओं मे विभक्त है। इसमें व्यंग्यरूप से वर्त्तमान युग की समस्याओं पर विचार किया गया है। सन् १९५६ ई० में शरदाश्रम विद्यामन्दिर के प्रधानाध्यापक श्रीकृष्ण वामन चितले ने 'लोकमान्य तिलकचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं आद्यन्त छोटे-छोटे वाक्यों से युक्त है। इसकी रचना १८ पर्वों में हुई है तथा तिलक के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। श्रीभगीरथ प्रसाद त्रिपाठी ने 'कथासंवर्तिका' नामक पुस्तक मे १६ कथाओं का वर्णन किया है। ये कथाएं बालकों के लिए विशेष रुचिकर है। पं० रामनारायण शास्त्री कृत 'कौमुदीकथा-कल्लोलिनी' नामक गद्यकाव्य का प्रकाशन १९६० ई० मे (चौखम्भा प्रकाशन) हुआ है। इसमें लेखक ने 'लघुकौमुदी' के सूत्रों का नरवाहनदत्त की कथाओं के आधार पर हृदयंगम कराया है। श्रीनिवास शास्त्री 'कृत 'चन्द्रमहीपति' नामक अन्यन्त सुन्दर उपन्यास प्रकाशित हुआ है [दे० चन्द्रमहीपति]। अनेक लेखकों ने संस्कृति, इतिहास, विज्ञान, मनोविज्ञान दर्शन, नीतिशास्त्र एवं व्याकरण पर भी ग्रन्थों का प्रणयन किया है जिनसे

संस्कृत गद्य परिमार्जित, प्रौढ़ एवं पुष्ट होता जा रहा है। ऐसे लेखकों में डॉ० रामजी उपाध्याय, आचार्य विश्वेश्वर एवं प्रज्ञा कुमारी के नाम उल्लेखनीय है।

इनके ग्रन्थों के नाम हैं क्रमशः—'भारतस्य सांस्कृतिकनिधिः', 'मनोविज्ञानमीमांसा', 'नीतिशास्त्रम्' एवं 'काशिकायाः समीक्षात्मकमध्ययनम्'। सम्प्रति संस्कृत की शोध संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों में शोधप्रबन्ध के रूप में मौलिक ग्रन्थ-लेखन का कार्यारम्भ हो गया है, जिनके ऊपर उच्च-उपाधियां प्रदान की जाती हैं। कई लेखकों ने गद्य में संस्कृत साहित्य के इतिहास भी लिखे हैं उनमें श्री हंसराज अग्रवाल, 'संस्कृत साहित्येतिहासः), द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री (संस्कृतसाहित्यविमर्शः), आचार्य रामचन्द्र मिश्र (संस्कृतसाहित्येतिहासः) तथा आचार्य रामाधीन चतुर्वेदी (संस्कृत-भाषा-विज्ञानम्) के नाम प्रख्यात हैं। इन ग्रन्थों के लेखन से संस्कृत गद्य को प्रभूत गति मिली है।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डे एवं दासगुप्त। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ३. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामजी उपाध्याय। ४ संस्कृत साहित्य का इतिहास पं० बलदेव उपाध्याय। ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री गैरोला।

संस्कृत नाटक—संस्कृत नाट्य साहित्य अत्यन्त विकसित एवं प्रौढ है। इसकी अविच्छिन्न परम्परा भास से लेकर आधुनिक युग तक चलती रही है। संस्कृत साहित्य की अन्य शाखाओं की अपेक्षा नाटकों की लोकप्रियता अधिक रही है। इसे कवित्व की चरमसीमा मानकर आचार्यों ने इसकी महत्ता सिद्ध की है—नाटकान्तं कवित्वम्। चूंकि नाटक रङ्गमंच पर अभिनीत होते थे अतः इनकी उपयोगिता सार्वजनिक थी, और ये सबके मनोरंजन के साधन बने हुए थे। आचार्य भरत ने तो नाटक को सार्ववर्णिक वेद कह कर इसकी सर्वजनोपकारिता का महत्त्व प्रदर्शित किया था। इसमें किसी एक विषय का वर्णन न होकर तीनो लोको के विशाल भावो का अनुकीर्तन किया जाता है—त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्वं नाट्यं भावानुकीर्तनम्। नाट्यशास्त्र १।१०४। इसमें कवि लोकवृत्त का अनुकरण कर जीवन की ज्वलन्त समस्याओं का संस्पर्श करता है तथा उन सभी विषयो का वर्णन करता है जो जीवन को सुखी एवं दुःखी बनाते हैं। भरत के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग एवं कर्म नहीं है जो नाटक में दिखाई न पड़े। नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्। लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥ नाट्यशास्त्र १।१०९। न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला। न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ वही १।११४। नाटक भिन्न रुचि के व्यक्तियो के लिए समान रूप से मनोरंजन का साधन होता है। नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्। कालिदास।

संस्कृत साहित्य मे नाटकों का लेखन बहुत प्राचीनकाल से होता रहा है और इसके सूत्र वेदो मे भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के अनेक संवादसूक्तों में नाटक के तत्त्व मिलते हैं। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि, सरमा-पणिस् आदि संवादों में नाट्यकला का यथेष्ट रूप देखा जा सकता है। ऋग्वेद में नाटक से सम्बद्ध अन्य तत्त्वों का भी रूप दिखाई पड़ता है। उषा के वर्णन में नृत्य का उल्लेख है और

उसे नर्त्तकी के रूप मे वर्णित किया गया है। विद्वानों ने भारतीय नाटक का बीज वेदकालीन नृत्य में ही माना है। नाटक के प्रमुख दो तत्त्वों—संवाद एवं अभिनय—की स्थिति पाश्चात्य विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य में स्वीकार की है। वैदिक युग में संगीत का भी अतिशय विकास हो चुका था और सामवेद तो इसके लिए प्रसिद्ध ही था। ऋग्वेद मे ऐसी नर्तकियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो सुन्दर वस्त्राभरण से सुसज्जित होकर नवयुवकों के चित्त को आकृष्ट करती हैं। अथर्ववेद में नाचने-गाने के भी संकेत है। इन विवरणो के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक युग में नाट्यात्मक अभिनय का सम्यक् प्रचार था। लेवी, मैक्समूलर एवं हर्तेल प्रभृति विद्वान् भी इस तथ्य का समर्थन करते है। यजुर्वेद में 'शैलूष' का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक काल मे नाटक के प्रमुख उपकरणो—नृत्य, संगीत, अभिनय एवं सवाद—का पूर्ण विकास हो चुका था।

रामायण एवं महाभारत मे भी नाटक के कई उपकरणो का उल्लेख है। रामायण के अनेक प्रसङ्गो मे 'शैलूष', 'नट' एवं 'नर्त्तक' का उल्लेख किया गया है। वाल्मीकि ने कहा है कि जिस जनपद में राजा नही रहता वहाँ नट एवं नर्त्तक सुखी नहीं रहते—नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः। रामायण २।६७।१५। महाभारत में ऐसे विवरण प्राप्त होते है—आनर्तादिच तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः। वनपर्व १५।१३। हरिवंश-पुराण जो महाभारत का एक अंश है, मे रामायण की कथा को नाटक के रूप में प्रदर्शित करने का वर्णन प्राप्त होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में शिलालि एवं कृशाश्व द्वारा रचित नटसूत्रो का भी वर्णन है—पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। ४।३।११०। कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ४।३।१११। इससे ज्ञात होता है कि पाणिनि के पूर्व नाटको का इतना विकास हो चुका था कि उनके नियमन के लिए नटसूत्रो के निर्माण की आवश्यकता हो गयी थी। पतंजलि के महाभाष्य मे कंसवध एवं बलिबन्ध नामक दो नाटकों का उल्लेख मिलता है तथा नाटक करनेवाले नट 'शोभानिक' एवं 'ग्रथास्तैभिक' शब्द से सबोधित किये गए है। वात्स्यायन कामसूत्र एवं चाणक्य के अर्थशास्त्र में भी कुशीलवों का उल्लेख है जो नागरको के मनोरंजनार्थ अभिनय किया करते थे। पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः। कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षकमेषां दद्युः—कामसूत्र। इस प्रकार वैदिककाल मे लेकर ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी तक नाटको के प्रचलन एवं नटो की शिक्षा के लिए रचे गये ग्रंथों के उल्लेख प्राप्त होते है, जिससे भारतीय नाट्य साहित्य की प्राचीनता का ज्ञान होता है। ई० पू० प्रथम शताब्दी मे कालिदास ने नाटको की रचना की थी।

भारत मे नाट्यकला की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो के अनेक मतवाद प्रचलित है। डॉ० रिजवे ने भारतीय नाटको की उत्पत्ति का स्रोत 'वीरपूजा' मे माना है (दे० ड्रामा एण्ड ड्रामेटिक डान्सेज ऑफ नॉन यूरोपीयन रेसेज)। पर यूरोपीय विद्वानो ने ही इस मत को अमान्य ठहरा दिया है। डॉ० कीथ के अनुसार प्राकृतिक परिवर्त्तनों को जनता के समक्ष मूर्त्त रूप से प्रदर्शित करने की अभिलाषा मे ही नाटकों की उत्पत्ति का स्रोत विद्यमान है। पर यह सिद्धान्त इस आधार पर खण्डित हो जाता है कि

भारतीय ग्रन्थों में इसके कहीं संकेत नहीं प्राप्त होते और स्वयं इस मत का उद्भावक (कीथ) भी इसके प्रति अधिक आस्थावान नहीं दिखाई पड़ता। जर्मन विद्वान् पिशेल ने नाटकों का उद्भव 'पुत्तलिकानृत्य' से माना है। उसके अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्व-प्रथम भारत में ही हुई थी और यहीं से इसका अन्यत्र प्रचार हुआ था। पर, भारतीय नाटकों के रससंवलित होने के कारण यह सिद्धान्त आधारहीन सिद्ध हो जाता है। कतिपय विद्वान् जैसे, पिशेल, डॉ० लूडर्स एवं डॉ० स्तेन कोनो ने छायानाटकों से भारतीय नाटक की उत्पत्ति मानी है, पर भारत मे छायानाटकों के प्रणयन के कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होते, और न इनकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है। 'दूतांगद' नामक अवश्य ही, एक छायानाटक का उल्लेख मिलता है, पर यह उतना प्राचीन नहीं है। भरत ने भारतीय नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे अत्यन्त सटीक हैं। उनके अनुसार सांसारिक मनुष्यों को अत्यन्त खिन्न देखकर देवताओं ने ब्रह्मा जी के पास जाकर एक ऐसे वेद के निर्माण की प्रार्थना की जो वेदाध्ययन के अनधिकारी व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी हो। यह सुनकर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर 'नाट्यवेद' नामक पंचम वेद का निर्माण किया और इन्द्रादि को इसके प्रचार का आदेश दिया। ब्रह्मा के कहने पर भरत-मुनि ने अपने सौ पुत्रों को नाट्यशास्त्र की शिक्षा दी। जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ नाट्यशास्त्र १।१७। इस विवरण से यह सिद्ध होता है कि नाटकों का आविर्भाव वेदों से ही हुआ है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत नाटक पर ग्रीक (यवन) नाटकों का प्रभाव माना है। भारतीय नाटकों में 'यवनिका' शब्द का प्रयोग देखकर उन्होंने इस मत की पुष्टि के लिए पर्याप्त आधार ग्रहण किया है, पर उनकी यह बेबुनियाद कल्पना अब खण्डित हो चुकी है। भारतीय विद्वानों ने बतलाया है कि वस्तुतः मूल शब्द 'जवनिका' है, 'यवनिका' नहीं। जवनिका का अर्थ दौड़कर छिप जाने वाला आवरण होता है या वेग से सिकुड़ने या फैलने वाले आवरण को जवनिका कहते हैं। यवनिका का अर्थ 'यवनस्त्री' है अतः इसका जवनिका से कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वानों ने भारतीय नाटकों की मौलिकता एवं ग्रीक नाटकों की प्रविधि से सर्वथा भिन्न तत्वों को देखकर ग्रीक प्रभाव को अमान्य ठहरा दिया है। संस्कृत नाटकों में ग्रीक नाटकों की तरह संकलनत्रय के सिद्धान्त का पूर्णत. परिपालन नहीं होता और दुःखान्तता का नितान्त अभाव रहता है। संस्कृत नाटकों में रस का प्राधान्य होता है और कवि का मुख्य उद्देश्य रस-सिद्धि को ही माना जाता है। कई भाषाओं का मिश्रण उनकी अपनी विशेषता होती है। इनके आख्यान नितान्त भारतीय तथा रामायण एवं महाभारत पर आश्रित हैं और इनका विभाजन अंकों मे किया जाता है। प्रारम्भ में नान्दी या मंगला-चरण का विधान होता है और अन्त मे भरत वाक्य की योजना की जाती है। संस्कृत मे रूपक एवं उपरूपक के रूप में नाटकों के २८ प्रकार होते हैं। रूपक के १० एवं उपरूपक के १८ भेद होते हैं। विदूषक संस्कृत नाटकों की निराली सृष्टि है और इसके जोड़ का पात्र ग्रीक नाटकों में नहीं मिलता। रंगमंच की दृष्टि से संस्कृत नाटक ग्रीक

नाटक से सर्वथा भिन्न होते हैं। ग्रीक में किसी प्रकार के रङ्गमंच का विधान नहीं है और वहां नाटक खुले आकाश में जनता के सामने किये जाते जाते थे। पर, संस्कृत नाटकों का अभिनय रङ्गशालाओं में होता था और राजाओं की राजधानियों मे नाटको के प्रदर्शन के लिए रंगमंच के स्वरूप-विधान पर विस्तारपूर्वक विचार प्राप्त होता है। इन सभी दृष्टियों से संस्कृत नाटकों पर ग्रीक-प्रभाव को नहीं स्वीकार किया जा सकता।

संस्कृत नाटकों की अखण्ड परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी से प्राप्त होती है। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में कविपुत्र, भास एवं सोमिल्ल नामक नाटककारो का उल्लेख किया है, किन्तु इनमें केवल भास की ही रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भास के नाटक १९१२ ई० के पूर्व प्रकाश में नहीं आ सके थे। सर्वप्रथम म० म० गणपति शास्त्री ने भासकृत तेरह नाटकों का प्रकाशन १९१२ ई० में किया, जो अनन्तशयन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुए। इन नाटको के भास रचित होने के सम्बन्ध में विद्वानो मे अनेक मतवाद हैं दे० भास। भास का समय ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के आसपास है। इनके नाटक हैं—'दूतवाक्य', 'कर्णभार', 'दूतघटोत्कच', 'ऊरुभङ्ग', 'मध्यमव्यायोग', 'पंचरात्र', 'अभिषेक', 'बालचरित', 'अविमारक', 'प्रतिमा', 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्तम्' तथा 'दरिद्रचारुदत्त'। इनमे ६ नाटकों का कथानक महाभारत से लिया गया है और दो का रामायण से, शेष पांच नाटक अनुश्रुतियों पर आधृत हैं। इनके नाटकों मे नान्दी का अभाव है तथा सुकुमार एवं उद्धत दोनो प्रकार के हास का प्रयोग है। इनका 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटकीय प्रविधि एवं भाषा-शैली की दृष्टि से अद्भुत सृष्टि है। इन्होंने चरित्र-चित्रण एवं संवादो के नियोजन में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। इनकी शैली सरस है और भाषा मे सरलता मिलती है।

भास के बाद दूसरे नाटककार हैं महाकवि कालिदास। इन्होंने संस्कृत नाटक की समृद्ध हो रही परम्परा को अपनी प्रतिभा के संस्पर्श मे आलोकित कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की है। कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटक हैं—'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'अभिज्ञानशाकुंतल'। शाकुन्तल मे, जो कि इनकी अन्तिम नाट्य कृति है, इनकी प्रतिभा का चूडान्त निदर्शन हुआ है। 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका एवं अग्निमित्र की प्रणय-कथा पाँच अंको मे वर्णित है। इसमें कवि ने राजाओं के अन्तःपुर मे विकसित होने वाले प्रेम, ईर्ष्या, राजा की कामुकता, सपत्नी-कलह तथा राजमहिषी की धीरता और उदात्तता का सफल निदर्शन किया है। यहाँ नाटकीय कौशल की अपेक्षा कवित्व का विलास अधिक प्रदर्शित होता है। इस नाटक का विषय-क्षेत्र अत्यन्त परिमित है। इनके द्वितीय नाटक 'विक्रमोर्वशीय' मे राजा पुरूरवा एवं उर्वशी की प्रणय-गाथा वर्णित है। इसका नायक पुरूरवा अग्निमित्र की तरह केवल विलासी न होकर पौरुष से सम्पन्न दिखाया गया है। यह धीरोदात्त नायक है और नाटक के प्रारम्भ एवं अन्त में इसके चरित्र की उदात्तता के दर्शन होते हैं। कवि ने ऋग्वेद एवं शतपथ ब्राह्मण में वर्णित उर्वशी एवं पुरूरवा की प्रणय-कथा को इस नाटक का

विषय बनाया है। इसका मुख्य रस है शृङ्गार जो उभय पक्षों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'अभिज्ञान-शाकुंतल' में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग एवं पुर्नमिलन की कथा कही गयी है। इसकी कथा महाभारत के आदिपर्व में वर्णित दुष्यन्त एवं शकुन्तला के उपाख्यान पर आधृत है, पर कवि ने कल्पना का आश्रय लेकर कई नवीन तथ्यों का सन्निवेश कर इस कथा को सुन्दर बना दिया है। दुर्वासा के शाप का नियोजन कवि की प्रतिभा की देन है जिससे दुष्यन्त लोलुप, कामी एवं कर्त्तव्यच्युत व्यक्ति न होकर उदात्त चरित्र का व्यक्ति सिद्ध होता हैं। 'शाकुंतल' में अन्य दो नाटकों की भांति सपत्नी-कलह एवं प्रणयद्वन्द्व को स्थान नहीं मिला है। इसमें कवि ने नियति-द्वन्द्व का समावेश कर नाटकीय गत्यात्मकता, औत्सुक्य एवं घटनाचक्र का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। महाभारत की हृदयहीन एवं स्वार्थी शकुन्तला महाकवि कालिदास की प्रतिभा के आलोक में भास्वर होकर महान् बन गयी है और कवि की प्रतिभा ने मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा उसके व्यक्तित्व को उन्नत कर दिया है। विरह की आंच मे जलकर दुष्यन्त एवं शकुंतला दोनों के ही चरित्र उज्ज्वल हो गये है और उनके हृदय की वासना का कलुष भस्मीभूत हो गया है। शकुन्तला मे कालिदास का शृङ्गार स्वस्थ एव भारतीय गरिमा के अनुकूल है, जिसका उद्देश्य पुत्रोत्पत्ति का साधन बनना है। इसमे सरस एवं मार्मिक स्थल अत्यधिक हैं तथा प्रकृति का बडा ही मनोरम चित्र अंकित किया गया है। सरस स्थलो मे चतुर्थ अंक का शकुन्तला की विदाई वाला दृश्य बडा ही हृदयहारी है। सुन्दर उपमाओ एवं हृदय की मार्मिक भावव्यंजना की तो 'शकुन्तला' खान है। कवि कालिदास ने अपने कवित्व पर पूर्णतः नियन्त्रण रखकर भावुकता के अतिरेक मे अपने को बहाया नही है और नाटकीय व्यापार की गत्यात्मकता पर ध्यान रखते हुए काव्य एवं नाटक दोनो के मिलन-बिन्दु को 'अभिज्ञानशाकुंतल' मे सफलतापूर्वक दर्शाया है। और यही उनकी सफलता का रहस्य भी है [दे० अभिज्ञान शाकुन्तल]।

संस्कृत के तृतीय प्रसिद्ध नाटककार हैं 'शूद्रक' जिन्होंने 'मृच्छकटिक' नामक यथार्थ-वादी नाटक की रचना की है। इन्होंने भासकृत 'चारुदत्त' के आधार पर अपने 'प्रकरण' का निर्माण किया है। 'मृच्छकटिक' मे दस अंक है और ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या बसन्तसेना की प्रेम-कहानी वर्णित है। इसका प्रतिनायक राजा का साला शकार है। इस प्रकरण में साथ-साथ दो प्रधान घटनाएं चलती है जिनमे एक का सम्बन्ध वसन्त-सेना तथा चारुदत्त से है तथा दूसरी आर्यक की राज्य-प्राप्ति से सम्बद्ध है। नाटककार ने प्रेम की कथा को राजनैतिक घटनाओं के साथ सम्बद्ध कर अनूठी चातुरी का परिचय दिया है और दो घटनाओ को इस प्रकार अनुस्यूत किया है कि वे पृथक् नहीं होती। 'मृच्छकटिक' में जीवन की यथार्थ भूमि को आधार बनाकर ऐसे चरित्र की अवतारणा की गयी है जो सार्वदेशिक हैं। यह संस्कृत की प्रथम यथार्थवादी रचना है जिसमे राजा-रानियों की प्रणय-गाथा प्रस्तुत न कर दरिद्र, ब्राह्मण, वेश्या, चोर, जुआरी एवं लुच्चों की वाणी मुखरित हुई है। 'मृच्छकटिक' अनेक प्रकार की प्राकृतों के प्रयोग,

अनूठा हास्य-चित्रण, सरस तथा सद्यः प्रत्यभिज्ञेय शैली एवं समकालीन समाज का वास्तविक चित्र उभारने के कारण संस्कृत नाटकों का आज भी शृङ्गार बना हुआ है।

महाकवि अश्वघोष-कृत तीन नाटक उपलब्ध हुए हैं जिन्हें डॉ० लूडर्स ने १९१० ई० मे मध्य एशिया के तूर्फान नामक स्थान मे प्राप्त किया था। इनमें दो अधूरे हैं और एक नौ अंकों 'शारिपुत्रप्रकरण' है जिस पर भगवान् बुद्ध के उपदेश का प्रभाव है। महाराज हर्षवर्धन की तीन रचनाए प्राप्त होती हैं, जिनमे दो नाटिकाएं—'प्रियदर्शिका' एवं 'रत्नावली'—हैं तथा एक रूपक है 'नागानन्द'। प्रथम दो नाटिकाओं मे वत्सराज उदयन की प्रेम-कथा है तथा 'नागानन्द' मे विद्याधर जीमूतवाहन द्वारा नागों को गरुड से बचाने की कथा वर्णित है। कथानक के गठन की दृष्टि से 'रत्नावली' उच्चकोटि की रचना सिद्ध होती है और इसमे शृङ्गाररसोपयुक्त प्रसाद गुण युक्त सरस शैली प्रयुक्त हुई है। भट्ट नारायण कृत 'वेणीसंहार' संस्कृत का वीररसप्रधान नाटक है। इसकी रचना ६ अंको मे हुई है और नाटक के शास्त्रीय नियमों का कठोरतापूर्वक नियोजन किया गया है। इसीलिए इसे नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में बडी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसकी कथा पौराणिक है और महाभारत की एक प्रसिद्ध घटन कोा कथा का विषय बनाया गया है, और वह है, दुर्योधन के रक्त से रंजित ह ाथोसेभीम-मेन का द्रौपदी के केशों को बांधना। इसकी शैली ओजगुण से युक्त है तथा कई ओज-पूर्ण संवादो का नियोजन किया गया है। द्वितीय अंक में कवि ने दुर्योधन एवं उसकी पत्नी भानुमती के प्रेम-प्रदर्शन का अस्वाभाविक चित्रण कर रस की दृष्टि से अनौचित्य उपस्थित कर दिया है, जिसे आचार्यों ने अकाण्ड-प्रथन दोष की संज्ञा दी है।

विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' नामक महान् नाट्यकृति की रचना की है जिसमे राज-नैतिक दांवपेंच एवं कूटनीति की प्रधानता है। इसमें चाणक्य एवं राक्षस की कूटनीतिक चालों का रसात्मक वर्णन है जिसे आचार्यों ने नाटकीय प्रविधि की सफलता के कारण शकुन्तला के समकक्ष माना है। इसमे शृङ्गार रस एवं स्त्री पात्रों तथा हास्य का अभाव है जो कवि की अनूठी कल्पना के रूप मे प्रतिष्ठित है। कवि ने विषय के अनुरूप शैली का गठन किया है। संस्कृत नाटककारो मे कालिदास के बाद महाकवि भवभूति का स्थान सर्वथा गौरवास्पद है। इनके तीन नाटक हैं—'मालतीमाधव', 'महावीरचरित' एवं 'उत्तररामचरित'। 'महावीरचरित' प्रथम नाट्यकृति है जिसमे रामचरित को नाटकीय रूप दिया गया है। राम-विवाह से लेकर रामराज्याभिषेक तक की घटनाएं इसमें वर्णित हैं। 'मालतीमाधव' दस अंकों का प्रकरण है तथा इसकी कथा काल्प-निक है। इसम मालती एवं माधव की प्रणय-कथा के माध्यम से कवि ने यौवन के उन्मादक प्रेम का चित्रण किया है। 'उत्तररामचरित' भवभूति की सर्वश्रेष्ठ रचना एवं संस्कृत नाट्यसाहित्य का गौरव है। इसमें कवि ने उत्तर सीता-चरित का अत्यन्त करुण वर्णन किया है। इस नाटक मे करुण रस का सफल चित्रण कर भवभूति ने उसकी रसराजता सिद्ध की है। इसकी रचना सात अंकों में हुई है। भवभूति ने गीतिनाट्य की रचना की है जिसमें कवित्व एवं पाण्डित्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। भवभूति प्रकृति से

गम्भीर हैं और इनकी यह गंभीरता इनकी बौद्धिकता के रूप में नाटकों में रूपायित हुई है। इन्होंने प्रकृति के उग्र रूप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। भाषा पर तो इनका असाधारण अधिकार है। इनके नाटकों में हास्य का अभाव है और रंगमंचीय दृष्टि से कई प्रकार के दोष दिखाई पड़ते हैं। भवभूति का कवि भावुकता की सीमा का अतिक्रमण कर अपने नाटकों को पाठ्य बना देता है। इन्होंने जीवन के कोमल, कटु, रौद्र एवं बीभत्स सभी पक्षों का समान अधिकार के साथ सुन्दर चित्रण किया है। दाम्पत्य जीवन के आदर्श रूप को चित्रित करने में भवभूति ने संस्कृत के सभी कवियों को पीछे छोड दिया है।

संस्कृत के अन्य नाटककारों में अनेक व्यक्ति आते हैं। परवर्त्ती नाटककारों की प्रवृत्ति अनावश्यक वर्णनों एवं काव्यशैली के चाकचिक्य की ओर गयी, फलतः संस्कृत में काव्य-नाटकों की बाढ़-सी आ गयी है। ऐसे नाटकों को ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी काव्यशैली का नाटक कहा है। ऐसे नाटककारों में मुरारि आते हैं जिन्होंने 'अनर्घराघव' नामक नाटक की रचना की है। इसमें रामचरित को नाटकीय विषय बनाया गया है तथा कवि का ध्यान विविध शास्त्रों के पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा पदलालित्य की ओर अधिक है। इसमें नाटकीय व्यापारों का सर्वथा अभाव है एवं नाटक अनावश्यक वर्णनों एवं ललित पदों के भार से बोझिल हो उठा है। कवि ने लम्बे-लम्बे छन्दों का अधिक वर्णन कर नाटकीय औचित्य एवं सन्तुलन को खो दिया है। इनके बाद के नाटककारों पर मुरारि का ही अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भवभूति के पश्चात् एक प्रकार से संस्कृत नाटकों का ज्वलन्त युग समाप्त हो जाता है और ऐसे नाटकों की रचना होने लगती है जो नाम भर के लिए नाटक हैं। नवम शताब्दी के आरम्भ में शक्तिभद्र ने 'आश्चर्यचूडामणि' नामक नाटक की रचना की जिस में शूर्पणखा-प्रसङ्ग से लेकर लंका-विजय एवं सीता की अग्नि-परीक्षा तक की राम-कथा वर्णित है। इसी शताब्दी के अन्य नाटककारों में 'हनुमन्नाटक' के रचयिता दामोदर मिश्र एवं राजशेखर हुए। राजशेखर ने तीन नाटक एवं एक सट्टक—'कर्पूरमंजरी'—लिखा। तीन नाटक है—'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण' एवं 'बालमहाभारत'। 'विद्धशालभंजिका' चार अंकों की नाटिका है तथा 'बालरामायण' दस अंकों का महा-नाटक है, जिसमें रामायण की कथा का वर्णन है। 'बालमहाभारत' के दो ही अंक उपलब्ध हुए है। राजशेखर ने अपने नाटकों मे लम्बे-लम्बे वर्णनों का समावेश किया है जो नाट्यकला की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इनकी प्रतिभा महाकाव्यलेखन के अधिक उपयुक्त थी। इन्होंने शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे छन्द का अधिक प्रयोग किया है। 'हनुमन्नाटक' १४ अंकों का महानाटक है जिसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं है और गद्य से अधिक पद्यों की संख्या है। बौद्ध आचार्य दिङ्नाग (१००० ई०) ने 'कुन्दमाला' नामक नाटक में उत्तररामचरित की कथा का वर्णन किया है जो ६ अंकों में समाप्त हुआ है। इन पर भवभूति की शैली का अधिक प्रभाव देखा जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृष्णमिश्र ने अपना प्रसिद्ध प्रतीकात्मक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' लिखा जिसमें शान्तरस की प्रधानता है। ये संस्कृत में प्रतीक नाटक के प्रवर्त्तक माने जाते

हैं। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुकरण पर संस्कृत में अनेक प्रतीकात्मक नाटक लिखे गए जिनमें यशःपाल (१३ वीं शती) रचित 'मोहपराजय', वेंकटनाथ (१४ वीं शती) विरचित 'संकल्प-सूर्योदय' तथा कर्णपूर (१६ वीं शती) कृत 'चैतन्यचन्द्रोदय' नामक नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। जयदेव (१२५० ई०) कविकृत 'प्रसन्नराघव' नाटक में रामचरित का वर्णन है। इस नाटक में भी ह्रासोन्मुखी नाटकों के सभी दोष विद्यमान हैं। संस्कृत में रूपक के दस एवं उपरूपक के १७ भेद किये गये हैं। इन सभी भेदों के आधार पर संस्कृत में विशाल नाट्य साहित्य प्रस्तुत हुआ है और प्रत्येक भेद की पृथक्-पृथक् ऐतिहासिक परम्परा रही है। इनमें प्रहसन एवं भाण की संख्या अधिक है। संस्कृत का प्राचीनतम प्रहसन 'मत्तविलास' है जिसके रचयिता महेन्द्रविक्रम वर्मा थे (५७६–६०० ई०)। अन्य प्रहसनकारों में कविराज शंखधर का नाम प्रसिद्ध है, इनके ग्रन्थ का नाम है 'लटकमेलक'।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत ड्रामा—कीथ। २. संस्कृत नाटक—कीथ (हिन्दी अनुवाद)। ३. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर—जागीरदार। ४ संस्कृत नाटककार—कान्तिकिशोर-भरतिया। ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ६. भारतीय नाट्यसाहित्य—सं० डॉ० नगेन्द्र। ७. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—दास गुप्त एवं डे। ८. संस्कृत ड्रामा—श्री इन्दुशेखर।

संस्कृत महाकाव्य—संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान महाकाव्य का है। इसका सर्वप्रथम स्वरूप-विश्लेषण दण्डी रचित 'काव्यादर्श' में प्राप्त होता है तब कालान्तर में रुद्रट (काव्यालंकार) एवं महापात्र विश्वनाथ द्वारा (साहित्यदर्पण) में इसे पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त होती है। महाकाव्य विषयप्रधान इतिवृत्तात्मक काव्य है जिसमे सानुबन्ध कथा, भावव्यंजना तथा वस्तुव्यंजना पर अधिक बल दिया जाता है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का स्वरूप इस प्रकार है—"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः॥ सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः। एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥ शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥ इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥ चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥ आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा। क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तनम्॥ एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः। नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥ नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते। सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥ सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥ संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः। रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥ वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह। कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥ नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु। अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः॥

साहित्य दर्पण ६।३१५–३२५ महाकाव्य सर्गबद्ध होता है जिसका नायक देवता या सद्वंशोद्भव क्षत्रिय धीरोदात्तगुणसमन्वित होता है। कहीं एक ही वंश के (सत्कुलीन) अनेक राजे भी इसके नायक होते हैं। शृङ्गार, वीर और शान्त में से एक

रस प्रधान तथा शेष रस गौणरूप से उपस्थित किये जाते हैं। इसमें सभी नाटक-सन्धियाँ होती हैं तथा कथा लोकप्रसिद्ध सज्जनधर्म-सम्बन्धी या ऐतिहासिक होती है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इनमे से एक इसका फल होता है। प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्णवस्तु का निर्देश होता है तथा कहीं खलों की निन्दा एवं सज्जन-शंसन होते हैं। न तो बहुत बड़े और न बहुत छोटे इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है, किन्तु सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। सर्गान्त मे भावी सर्ग की कथा होती है। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नामकरण कवि के नाम से, वृत्त के नाम से या चरित्रनायक के नाम से होना चाहिए। इनके अतिरिक्त भी नाम संभव है तथा सर्ग की वर्णनीय कथा के आधार पर ही सर्ग सर्ग का नाम रखा जाना चाहिए। संस्कृत महाकाव्यों में उपर्युक्त नियमों की पूर्ण व्याप्ति दिखाई पड़ती है।

संस्कृत महाकाव्यों के बीज वेदों के स्तुत्यात्मक काव्य की घटनाओं मे तथा संवादात्मक सूक्तों में निहित हैं। यम-यमी संवाद, पुरूरवा-उर्वशी संवाद, इन्द्र-अदिति-संवाद, इन्द्र-इन्द्राणि-संवाद, सरमा-पणीस-संवाद इन्द्र-मरुत संवाद नाटक एवं महाकाव्य के तत्त्वों से समन्वित हैं। ये सभी संवाद-सूक्त गद्य-पद्यात्मक थे, अतः ओल्डेन वर्ग ने यह विचार प्रकट किया कि अनुमानतः भारतीय महाकाव्यों का प्राचीनतम रूप गद्य-पद्यात्मक रहा होगा। संस्कृत महाकाव्य का प्रारम्भ 'रामायण' और 'महाभारत' से होता है। 'रामायण' ऐसा काव्य है जिसमे कला के माध्यम से जीवन की सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचना की गयी है। 'रामायण' और महाभारत मे विभिन्न प्रकार के उपाख्यान है और वे ही संस्कृत महाकाव्यों के स्रोत रहे हैं। इन्हीं उपाख्यानों, आख्यानों, कथाओं एवं आख्यायिकाओं का परिशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन करते हुए महाकाव्यों का स्वरूप-विकास हुआ। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की शैली एवं रूप-शिल्प के आधार पर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि 'महाभारत' की अपेक्षा 'रामायण' में काव्योत्कर्षकारक गुण एवं अन्विति का आधिक्य है। 'महाभारत' मे इतिहास के तत्त्व प्रधान हैं और काव्यगुण गौण है, पर 'रामायण' प्रधान रूप से काव्य है और इसमें इतिहास के गुण गौण हैं। 'महाभारत' के आधार पर पुराणों का विकास हुआ और अलंकृत एवं सौन्दर्यशास्त्रीय जीवन दृष्टि के कारण 'रामायण' ने महाकाव्यों को जन्म दिया। उत्तरवर्ती महाकाव्यों का प्रेरणास्रोत मुख्यतः रामायण ही रही है। संस्कृत के अधिकांश लक्षणग्रंथ 'रामायण' को ही ध्यान में रखकर महाकाव्य का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत महाकाव्यों का परवर्ती विकास रामायण के रूप-शिल्प एवं शैली के माध्यम से 'महाभारत' की विषय-वस्तु को लेकर हुआ है। महाकाव्यकारों ने अन्य पुराणों को भी अपना उपजीव्य बनाकर उनसे विषय-वस्तु ली है पर उन्होंने उसे 'रामायण' की ही शैली में सुसज्जित और अलंकृत किया। अवश्य ही, कुछ महाकाव्य 'महाभारत' की भी शैली पर निर्मित हुए, किन्तु वे विशुद्ध महाकाव्य की श्रेणी में

नहीं रखे जा सके क्योंकि उनमें इतिहास का प्राधान्य था और काव्य-तत्त्व हल्का पड़ गया। संस्कृत महाकाव्य का श्रेणी-विभाजन इस प्रकार किया गया है—
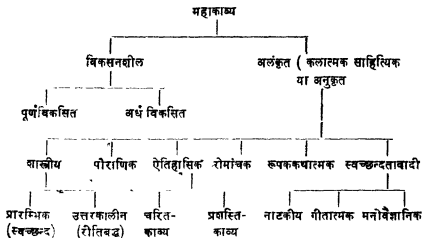
विकसनशील महाकाव्यों में 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों ही परिगणित किये जाते हैं। अलंकृत महाकाव्य के अन्तर्गत शास्त्रीय शैली में अश्वघोष तथा कालिदास के सभी महाकाव्य तथा कुमारदास कृत 'जानकीहरण' आते हैं। द्वितीय शैली के रीतिबद्ध शास्त्रीय महाकाव्यों में भारवि कृत 'किरातार्जुनीयम्' रत्नाकर का 'हरविजय', शिवस्वामी कृत कपिफणाभ्युदय' तथा मंखक विरचित 'श्रीकण्ठचरित' रखे जाते हैं। अलंकृत शैली के तृतीय रूप को शब्द चमत्कार-प्रधान महाकाव्य कह सकते हैं जिसके अन्तर्गत 'भट्टिकाव्य', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित' धनंजय का द्विसन्धान, सन्ध्याकरनन्दी का 'रामचरित', विद्यामाधव का 'पार्वती-रुक्मिणीय', तथा हरिदत्त सूरि कृत 'राघवनैषधीय' आदि हैं। अलंकृत शैली के पौराणिक महाकाव्यों में 'महाभारत' को स्थान दिया जा सकता है। इस शैली के अन्य महाकाव्य हैं—जिनसेन का 'आदिपुराण', गुणभद्र का 'उत्तरपुराण', जटासिंहनदी का 'वरांगचरित', क्षेमेन्द्र का 'रामायणमंजरी', 'महाभारतमंजरी' तथा 'दशावतारचरित' हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' अमरचन्दसूरि का 'बालभारत' वेंकटनाथ का 'यादवाभ्युदय', जयद्रथ का 'हरचरित-चिन्तामणि' कृष्णदास कविराज का 'गोविन्दलीलामृत', नीलकण्ठदीक्षित का 'शिवलीलार्णव', यशोधर का 'यशोधरचरित', अमरचन्द का 'पद्मानन्द', हरिश्चन्द्र का 'धर्मशर्माभ्युदय', अभयदेवसूरि का 'जयन्तविजय' तथा वाग्भट का 'नेमिनिर्माण' आदि।

अलंकृत शैली के ऐतिहासिक महाकाव्यों में अश्वघोषचरित 'बुद्धचरित', पद्मगुप्त का 'नवसाहसांकचरित', बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित', कल्हण की 'राजतरंगिणी', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित', अमरसिंह का 'सुकृतसंकीर्तन', बालचन्द सूरि का 'वसन्त-विलास' तथा जयचन्द्रसूरि कृत 'हम्मीरमहाकाव्य' आते हैं। अलंकृत शैली के रोमांचक महाकाव्यों के अन्तर्गत सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर', पद्मगुप्त कृत 'नवसाहसांकचरित'

वाग्भट का 'नेमिनिर्माणकाव्य', वीरनन्दी कृत 'चन्द्रप्रभचरित', सोमेश्वर का 'सुरथोत्सव', भववेवसूरि का 'पार्श्वनाथचरित' तथा मुनिभद्रसूरि कृत 'शान्तिनाथचरित' हैं।

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा—संस्कृत में ऐसे अनेक महाकाव्यों की सूचना प्राप्त होती है जो कालिदास के पूर्व लिखे जा चुके थे तथा उनकी विद्यमानता के सम्बन्ध में भी प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यद्यपि ये महाकाव्य आज प्राप्त नहीं होते, फिर भी उनके अस्तित्व को बतलाने वाले प्रबल साक्ष्य विभिन्न ग्रन्थों में दिखाई पड़ते है। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में 'देवर्षिचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता गार्ग्य कहे गए हैं। परम्परा मे 'जाम्बवतीविजय' या 'पातालविजय' नामक महाकाव्य पाणिनि द्वारा रचित बताया गया है। इसमें १८ सर्ग थे। लगभग ३३ ग्रन्थों में इसके अस्तित्व की सूचना प्राप्त होती है [दे० पाणिनि]। पाणिनिकालीन वैयाकरण व्याडि भी 'बालचरित' नामक महाकाव्य के प्रणेता माने जाते है। महाकाव्य के क्षेत्र में व्याडि-रचित ग्रन्थ 'प्रदीपभूत' माना जाता है। महाराज समुद्रगुप्त ने लिखा है कि व्याडि ने 'बालचरित' नामक महाकाव्य लिखकर व्यास और भारत को भी जीत लिया था [कृष्णचरित श्लोक १६,१७]। 'अमरकोश' के एक अज्ञातनामा टीकाकार ने भी व्याडि-कृत महाकाव्य का उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है कि 'भट्टिकाव्य' के १२ वें सर्ग की भांति व्याडि के भी महाकाव्य मे 'भाषा समावेश' नामक एक अध्याय था। [दे० ओरिएण्टल जर्नल, मद्रास पृ० ३५३, १९३२ ई०]। सूक्ति संग्रहों में वररुचिरचित महाकाव्य के अनेक उद्धरण प्राप्त होते है। पतञ्जलि ने भी 'महाभाष्य' मे 'वारुरुच-काव्यं' का उल्लेख किया है [महाभाष्य ४।३।११०] [दे० वररुचि]। इनके काव्य का नाम 'स्वर्गारोहण' था। महाभाष्यकार पतञ्जलि भी महाकाव्य के प्रणेता कहे गये है। उन्होंने 'महानन्द' नामक महाकाव्य की रचना की थी जिसका विवरण 'कृष्ण-चरित के प्रारम्भिक तीन श्लोको (प्रस्तावना) मे प्राप्त होता है। इस महाकाव्य का सम्बन्ध मगध सम्राट महानन्द से था। इस प्रकार देखा जाता है कि संस्कृत में महाकाव्यों का उदय अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु पाणिनि से विक्रमपूर्व प्रथम शताब्दी तक की रचनाओं के पूर्ण परिचय प्राप्त नही होते।

संस्कृत महाकाव्यों को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है—पौराणिक उत्थानकालीन या अभ्युत्थानयुगीन एवं ह्रासकालीन महाकाव्य। पौराणिक महाकाव्यों मे 'रामायण' और 'महाभारत' आते हैं। वाल्मीकि ने स्थान-स्थान पर इस काव्य को अलंकृत करने का प्रयास किया है। इससे उनका काव्य और भी अधिक भास्वर हो उठा है। अलंकारों के द्वारा रसाभिव्यक्ति करने में वाल्मीकि अत्यन्त पटु हैं। सरसता, स्वाभाविकता एवं प्रकृति-प्रेम उनकी अपनी विशेषताएं हैं। कालिदास ने वाल्मीकि का आधार ग्रहण करते हुए महाकाव्य के प्रकृत मार्ग की उद्भावना की है। उन्होंने प्रकृति-चित्रण की समस्त पद्धति वाल्मीकि से ही ग्रहण की, किन्तु उसमें अपनी प्रतिभा का प्रकाश भर कर उसे और भी जीवन्त बनाया। यमक के माध्यम से द्रुतविलंबित छन्द में प्रकृति-चित्रण की नवीन पद्धति उन्होंने ही चलाई। कालिदास के महाकाव्यों—

'रघुवंश' एवं 'कुमारसम्भव'—मे कथावस्तु का प्राचुर्य होते हुए भी भावव्यञ्जना, वस्तुव्यंजना एवं अभिव्यंजना-शिल्प का निखार दिखाई पड़ता है। उन्होंने मानव एवं प्रकृति के बीच एक ही भावधारा का पल्लवन कर दोनों में परस्पर सम्बन्ध दिखलाया है, और प्रकृति को मानवीय स्तर पर लाकर उसमें नवीन प्राणवत्ता ला दी है। उन्होंने 'रघुवंश' में रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है [दे० रघुवंश] तथा 'कुमार-सम्भव' में शिव-पार्वती-विवाह का वर्णन है [दे० कुमारसंभव]। कालिदास के बाद संस्कृत महाकाव्य मे नया मोड़ आया और 'विचित्रमार्ग' की स्थापना हुई। इस कोटि की रचनाएँ संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल की कृति हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की यशोगाथा का गान किया है। कालिदास ने जनसाधारण के अनुरंजन को लक्ष्य बनाकर सरस, सरल एवं बोधगम्य शैली मे जन-मानस का हृदयावर्जन किया था, किन्तु परवर्ती काल के कवियों ने पाण्डित्यमय वातावरण में साहित्यिक गरिमा प्रदर्शित करने का प्रयास किया। कालिदास के बाद प्राकृत भाषाएँ जनसाधारण मे बद्धमूल हो गयी थी और संस्कृत केवल पंडितो की भाषा रह गयी थी। अतः, युगचेतना एवं सामाजिक मान्यताओ के आधार पर साहित्य की विशिष्ट शैली का जन्म हुआ। कवियों ने युग की विशिष्टता एवं साहित्यिक चेतना के अनुरूप कालिदास की रसमयी पद्धति का परित्याग कर अलंकृत शैली को अपनाया जिसमे विषय की अपेक्षा वर्णन-प्रकार पर अधिक ध्यान दिया गया था, और सरलता के स्थान पर पांडित्य-प्रदर्शन की भावना की प्रबलता थी। इस युग के कवियो ने महाकाव्यों को अधिक अलंकृत, सुसज्जित एवं बोझिल बनाने के लिए दर्शन एवं कामशास्त्र जैसे शास्त्रों का भी उपयोग किया। महाकवि भारवि ही इस नवीन शैली (विचित्र मार्ग) के प्रवर्त्तक थे और माघ तथा श्रीहर्ष ने इसे और भी अधिक परिष्कृत तथा विकसित किया। महाकाव्य लेखन की इस नवीन शैली को कुंतक ने 'विचित्रमार्ग' की संज्ञा दी। कालिदास आदि के महाकाव्यों के विषय विस्तृत एवं जीवन का विस्तार लिये होते थे। उनमे विशाल पटभूमि पर जीवन की सारी समस्याओ का निदर्शन किया जाता था, पर भारवि आदि ने कथावस्तु के विस्तार की ओर ध्यान न देकर वस्तुव्यंजना पर ही अधिक बल दिया। सन्ध्या, सूर्य आदि तथा जलक्रीड़ा प्रभृति शृङ्गारी वर्णनो तथा अस्त्रशस्त्रों की फिहरिस्त जुटाने मे इन्होंने सर्ग-के-सर्ग खत्म कर दिये। उन्होने शैली के क्षेत्र मे वाल्मीकि और कालिदास की स्वाभाविक एवं रसपेशल शैली की अवहेलना कर अलंकार के भार से दबी हुई तथा श्लेष एवं यमक के प्रयोग से जटिल बनी हुई दुरूह शैली का प्रयोग किया और आगे चलकर महाकाव्य चित्रकाव्य बन गए और यमक तथा श्लेषप्रधान काव्य की रचना प्रारम्भ हुई। द्वयर्थक एवं त्र्यर्थक महाकाव्यों की रचना होने लगी फलतः 'राघव-पाण्डवीय', 'राघवनैषधीय' एवं 'राघवपाण्डवयादवीय' सदृश महाकाव्य लिखे गए। इस प्रकार कालिदासोत्तर काल के महाकाव्यों मे पाण्डित्यप्रदर्शन, शैली की विचित्रता, अक्षराडंबर, अलंकार-विन्यास एवं वर्णन-बाहुल्य की प्रधानता हुई और महाकाव्य सहज एवं सुकुमार मार्ग को छोड़कर विचित्र मार्ग की ओर उन्मुख हुए जिसे ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी रचना की संज्ञा दी है। इन महाकाव्यों में अलंकृत शैली का निकट रूप

प्राप्त हुआ और एक ही काव्य में राम, कृष्ण एवं पाण्डवों की कथा प्रकट होने लगी और सर्ग-के-सर्ग एक ही अक्षर मे लिखे जाने लगे।

संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्यों के नाम—कालिदास (रघुवंश एवं कुमारसंभव), अश्वघोष (बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द), बुद्धघोष (पद्यचूडामणि, १० सर्गों में), भीम या भीमक (रावणार्जुनीयम्, २७ सर्ग), भर्तृमेण्ठ (हयग्रीववध), भारवि (किरातार्जुनीयम्), भट्टि (भट्टिकाव्य), कुमारदास (जानकीहरण), माघ (शिशुपालवध), रत्नाकर (हरविजय ५० सर्ग), शिवस्वामी (कप्फिणाभ्युदय), अभिनन्द (रामचरित) शंकुक (भुवनाभ्युदय), क्षेमेन्द्र (दशावतारचरित, रामायणमंजरी एवं महाभारतमंजरी), मंखक (श्रीकण्ठचरित), हरिश्चन्द्र (धर्मशर्माभ्युदय), हेमचन्द्र (द्वयाश्रयकाव्य, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित), माधवभट्ट (राघवपाण्डवीय), चण्डकवि (पृथ्वीराजविजय), वाग्भट (नेमिनिर्माण) तथा श्रीहर्ष (नैषधचरित)। [उपर्युक्त सभी महाकाव्यों का परिचय इस 'कोश' मे उनके नामो पर देखिए]।

१३ वीं शती के महाकाव्य—कृष्णानन्द (सहृदयानन्द, १५ सर्ग), जयरथ (हरचरित चिन्तामणि, ३२ सर्ग), अभयदेव जैन कवि (जयन्तविजय, १९ सर्ग), अमरसिंह (सुकृत कीर्तन, ११ सर्ग), श्री बालचन्द्रसूरि (वसन्तविलास १४ सर्ग), सोमेश्वर (सुरथोत्सव १५ सर्ग), अमरचन्द्र (बालभारत, ४४ सर्ग), चन्द्रप्रभसूरि (पाण्डवचरित, १८ सर्ग), वीरनन्दी (चन्द्रप्रभचरित १८ सर्ग)।

१४ वीं शती के महाकाव्य—नयनचन्द्र (हम्मीर महाकाव्य १७ सर्ग), वासुदेव कवि (युधिष्ठिरविजय, नलोदय) अगस्त्य (बालभारत, २० सर्ग), गङ्गादेवी (मधुराविजय), मल्लाचार्य (उदारराघव), वेदान्तदेशिक (यादवाभ्युदय, २४)।

१५ वीं शती के महाकाव्य—वामनभट्ट (रघुनाथचरित, ३० सर्ग) नलाभ्युदय, ८ सर्ग), जोनराज (जैनराजतरंगिणी), श्रीवर (जैनराजतरंगिणी) तथा प्राज्यभट्ट कृत (राजा बलिपताका)।

१६ वीं शताब्दी के महाकाव्य—राजनाथ तृतीय (अच्युतारामाभ्युदय, २० सर्ग), उत्प्रेक्षावल्लभ (भिक्षाटन काव्य, अपूर्ण ३९ सर्ग), रुद्रकवि (राष्ट्रौढवंश, २० सर्ग), चन्द्रशेखर (सुर्जनचरित २० सर्ग)।

१७ वीं शताब्दी के महाकाव्य—यज्ञ नारायण दीक्षित (रघुनाथभूपविजय, १६ सर्ग), राजचूडामणि दीक्षित (रुक्मिणीकल्याण, १० सर्ग), राजा रघुनाथ की पत्नी रामभद्राम्बा (रघुनाथाभ्युदय, १२ सर्गों में अपने पति की वीरता का वर्णन), मधुरवाणी कवयित्री (रामायण १४ सर्ग), नीलकण्ठ दीक्षित, अप्पय दीक्षित के पुत्र (शिवलीलावर्णन, २२ सर्ग), जैन दार्शनिक मेघविजयगणि (सप्तसन्धान, ९ सर्ग), [यह श्लेष काव्य है और वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर स्वामी, कृष्ण तथा बलदेव पर समान रूप से घटता है], जैन विद्वान् देव विमलगणि (हीर सौभाग्य, १७ सर्ग), चक्रकवि (जानकीपरिणय, ८ सर्ग), अद्वैतकवि (रामलिंगामृत) मोहनस्वामी (रामचरित), श्रीनिवास (भूवराहविजय, ८ सर्ग), वरदेशिक [लक्ष्मीनारायण चरित तथा रघुवरविजय], भगवन्त (मुकुन्दविलास १० सर्ग)।

१८ वीं शताब्दी के महाकाव्य—तंजोर के राजमन्त्री महाकवि घनश्याम ने ('रामपाणिपादं, 'भववत्पादचरित' तथा वेकटेशचरित] १०० ग्रन्थों की रचना की है। केरल के महाकवि रामपाणिपाद ने ८ सर्गों में 'विष्णुविलास' संज्ञक महाकाव्य का प्रणयन किया जिसमे विष्णु के नौ अवतारों का आख्यान है। रामवर्मा ने (१८०० ई० मे) १२ सर्गों में रामचरित पर महाकाव्य लिखा जिसका नाम 'महाराज-चरित' है।

१९ वीं तथा बीमवी शती के महाकाव्य—त्रावणकोर के केरलवर्मा (१८४५–१९१०) को कालिदास की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने 'विशाखराज' नामक महाकाव्य लिखा है। महाकवि परमेश्वर शिवद्विज केरलनिवासी थे। इन्होने 'श्रीरामवर्ममहाराज-चरित' नामक महाकाव्य लिखा है। म० म० लक्ष्मणसूरि (मद्रासनिवासी) ने (१८५९–१९१९ ई०) 'कृष्णलीलामृत' नामक महाकाव्य की रचना की है। विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'उमापरिणय', एवं 'हरिश्चन्द्रचरित' तथा तंजोरनिवासी नारायण शास्त्री ने (१८६०–१९११ ई०) 'सौन्दरविजय' (२४ सर्ग) नामक महाकाव्य की रचना की। गोदावरी जिले के भद्राद्रिरामशास्त्री (१८५६–१९१५ ई०) ने 'रामविजय' तथा काठियावाड़ के महाकवि शंकरलाल (१८४४–१९१६) ने 'रावजी कीर्त्ति-विलास' तथा 'बालचरित' नामक महाकाव्य लिखा। हेमचन्द्रराय (बङ्गाल, जन्म १८८२ ई०) ने 'सत्यभामापरिग्रह', 'हैहयविजय', 'पाण्डवविजय' तथा 'परशुरामचरित' नामक महाकाव्यो का प्रणयन किया।

संस्कृत मे कालिदासोत्तर महाकाव्य-लेखन की परम्परा में युगान्तर के चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे थे। फलतः उसके कलेवर मे ही नहीं अन्तः प्रवृत्ति में भी परिवर्तन परिलक्षित हुआ। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार भारवि ने कालिदास की रससिद्ध लेखनी के स्थान पर आलंकारिक चमत्कार एवं अर्जित वैदुष्य का प्रदर्शन किया। संस्कृत महाकाव्यो के विकास मे यह परिवर्तन भारवि से आरम्भ होकर अन-वरत गति से प्रवाहित होता रहा जिसे हम माघ, भट्टि तथा श्रीहर्ष प्रभृति कवियों की रचनाओ मे देख सकते हैं। इनमे समान रूप से एकात्मकता, कथानक की स्वल्पता, वस्तु-वर्णन का आधिक्य, आलंकारिक चमत्कार-सृष्टि तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिदर्शित होती है। एक गुण इनमे अवश्य दिखाई पडा कि इन्होने 'वर्णन-विधि में कुछ-न-कुछ नवीन कल्पना जोडने की सतत चेष्टा की'। उत्तरवर्त्ती महाकाव्यकारों में तीन प्रकार की प्रवृत्तिया दिखलाई पड़ती है। प्रथमतः ऐसी कृतिया हैं जिन्हे पूर्णरूप से चित्रकाव्य कहा जा सकता है। ऐसे महाकाव्यो मे यमक काव्यों तथा द्वयाश्रय श्लेष काव्यो का बाहुल्य दिखाई पडा तथा महाकाव्य शाब्दिक क्रीड़ा के केन्द्र बन गए। 'नलोदय' एव 'युधिष्ठिरविजय' यमक काव्य के उदाहरण हैं जिनमे यमक के सभी भेदो के उदाहरण प्रस्तुत किये गए है। श्लेष काव्यो मे कविराजकृत 'राघवपाण्डवीय' प्रमुख है। इनमे प्रत्येक पद सभंग एवं अभङ्ग श्लेष के आधार पर रामायण एवं महाभारत की कथा से सम्बद्ध हो जाता है। द्वितीय श्रेणी के महाकाव्य सूक्तिप्रधान

हैं। इनमें कवियों ने दूर की उड़ान भरने तथा हेतूत्प्रेक्षा एवं प्रौढ़ोक्ति के आधार पर लम्बी कल्पना करने का प्रयास किया है। मंखक कृत् 'श्रीकण्ठचरित' तथा माघ की रचना में ऐसे अप्रस्तुत विधानों का बाहुल्य है पर, 'नैषधचरित' मे यह प्रवृत्ति चरम सीमा पर पहुच जाती है। महाकाव्य की तृतीय पद्धति चरित काव्यों की है जिसमें इतिहास कम एवं कल्पना का रङ्ग गाढ़ा है [दे० ऐतिहासिक महाकाव्य]।

संस्कृत महाकाव्य की ऐतिहासिक रूपरेखा का उपसंहार करते हुए यह कहा जा सकता है कि कालिदास ने जिस रससिक्त स्वाभाविक शैली का प्रारम्भ किया था उसका निर्वाह करने वाला उनका कोई भी उत्तराधिकारी न हुआ। कालिदास का शृङ्गार अन्ततः शृङ्गार-कला का रूप लेकर वात्स्यायन का अनुगामी बना, फलतः परवर्ती महाकाव्यकारों ने आंगिक सौन्दर्य का विलासमय चित्र उपस्थित कर मन को उत्तेजित करने का प्रयास किया।

बीसवीं शताब्दी—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्यों में भाषा, विषय एवं शिल्प-विधान की दृष्टि से नवीनता के दर्शन होते है। कतिपय कवियो ने राष्ट्रीय भावना का भी पल्लवन तथा कितनों ने आधुनिक युग में महापुरुषों के जीवन पर महाकाव्यों की रचना की है। इस युग के महाकाव्यो में प्राचीन तथा नवीन परम्पराओ का शैली और भाव दोनों में ही समाश्रय हुआ है। नोआखाली के अन्नदाचरण ने 'रामाभ्युदय' तथा 'महाप्रस्थान' दो महाकाव्य लिखे हैं। काशी के पं० बटुकनाथ शर्मा (१८४८–१९४४) ने 'सीतास्वयंवर', गुरुप्रसाद भट्टाचार्य ने 'श्रीरास', शिवकुमार शास्त्री ने 'यतीन्द्रजीवनचरित' (योगी भास्करानन्द का जीवन) नामक महाकाव्यो का प्रणयन किया। मैसूर के नागराज ने १९४० ई० 'सीतास्वयंवर' तथा स्वामी भगवदाचार्य ने २५ सर्गों में 'भारतपारिजात' नामक महाकाव्य लिखा। अन्तिम न महात्मा गान्धी का जीवनवृत्त वर्णित है। विष्णुदत्त कृत 'सौलोचनीय', 'गङ्गा' (१९५८) मेघाव्रतस्वामी कृत 'दयानन्ददिग्विजय', पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय रचित 'आर्योदय' नामक महाकाव्य इस युग की महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं। अन्य महाकाव्य इस प्रकार है—'पारिजातहरण' (उमापति शर्मा कविपति) प्रकाशन काल १९५८, श्रीरामसनेही कृत (जानकी-चरितामृत', द्विजेन्द्रनाथ कृत 'स्वराज्यविजय', श्री हरिनन्दन भट्ट कृत 'सम्राटचरितम्', पं० काशीनाथ शर्मा द्विवेदी रचित 'रुक्मिणीहरणम्' तथा पं० श्री विष्णुकान्त झा रचित 'राष्ट्रपतिराजेन्द्रवंश-प्रशस्ति'।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री कीथ (हिन्दी अनुवाद) २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर—डॉ० डे तथा डॉ० दासगुप्त। ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री गैरोला। ५. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामजी उपाध्याय। ६. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—(हिन्दी अनुवाद)—श्री कृष्णचैतन्य। ७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डॉ० शम्भुनाथ सिंह। ८. संस्कृत महाकाव्यो की परम्परा—निबन्ध, आलोचना, अक्टूबर १९५१, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

संस्कृत शब्द कोश—संस्कृत में कोश-लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक काल से ही कोशग्रन्थों का निर्माण होने लग गया था, पर वे ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते, कतिपय ग्रन्थों मे केवल उनके उद्धरण ही प्राप्त होते हैं। प्राचीन समय में व्याकरण और कोश के विषयों में अत्यधिक साम्य था और वैयाकरणों ने भी कोश-ग्रन्थो का प्रणयन किया था। उस समय व्याकरण और कोश दोनों ही शब्दशास्त्र के अंग माने जाते थे। उन विलुप्त कोशों में 'भागुरि-कोश' का एक उद्धरण 'अमरकोश' की टीका में प्राप्त होता है [दे० अमर टीका सर्वस्व, भाग १, पृ० १११, १२५, १९३ तथा अमरक्षीरटीका पृ० ९, ५, १२]। 'हैम अभिधानचिन्तामणि' की स्वोपज्ञ टीका मे भागुरि कृत कोश के उद्धरण प्राप्त होते हैं तथा सायण की 'धातुवृत्ति' (धातुवृत्ति, भू—धातु पृ० ३०) में भी भागुरि का एक श्लोक उद्धृत है। यही श्लोक 'अमरटीकासर्वस्व' में भी है (अमरटीका सर्वस्व, भाग १, पृ० १९३)। भागुरिकृत कोशग्रन्थ का नाम 'त्रिकाण्ड' था जिसकी पुष्टि पुरुषोत्तमदेव की 'भाषावृत्ति' (४।४। १४३), सृष्टिधर की 'भाषावृत्तिटीका' (४।४।१४३) तथा 'प्रभावृत्ति' से होती है। 'शौनकीय बृहद्देवता' में बतलाया गया है कि भागुरि ने 'त्रिकाण्ड कोश' के अतिरिक्त अनुक्रमणिका-विषयक कोई दैवत ग्रन्थ की भी रचना की थी [बृहद्देवता ३।१०, ५।४०, ६।९६, १०७]। भानुजी दीक्षित कृत 'अमरकोश' की टीका में आचार्य आपिशलि का एक वचन उपलब्ध है जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने भी कोश-विषयक ग्रन्थ लिखा था (अमरटीका, १।१।६६ पृ० २८)। शाकटायन तथा व्याधि के भी विलुप्त कोशो के उद्धरण कई ग्रन्थो में प्राप्त होते हैं, जिनके द्वारा उनके कोश-ग्रन्थों की पुष्टि होती है। केशवकृत 'नानार्थार्णव संक्षेप' मे शाकटायन के वचन उद्धृत हैं (नानार्थार्णव संक्षेप, भाग १, पृ० १९)। हेमचन्द्र की 'अभिधानचिन्तामणि' में इस प्रकार का उल्लेख है कि अपने कोशग्रन्थ मे व्याडि ने २४ बौद्धजातकों के नाम का उल्लेख किया है (अभिधानचिन्तामणि, देवकाण्ड, श्लोक १४७ की टीका पृ० १००–१०१)।

वैदिक कोश—वैदिक शब्दो का सर्वप्रथम कोश 'निघण्टु' है [दे० निघण्टु एवं निरुक्त]। यास्क ने 'निघण्टु' पर 'निरुक्त' नामक टीका लिखकर वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दी है। 'निरुक्त' से ज्ञात होता है कि उनके पूर्व अनेक निघण्टु एवं निरुक्तग्रन्थो की रचना हुई थी। आधुनिक युग मे कई भारतीय एवं यूरोपीय विद्वानों ने वैदिक कोशों की रचना की है। भारतीय विद्वानों में श्री विश्वबन्धु शास्त्री ने 'वैदिकशब्दार्थपारिजात' (प्रथम खण्ड १९२९ ई०), सात खण्डो मे 'वैदिकपदानुक्रम कोश' 'ब्राह्मणोद्धार कोश' तथा 'उपनिषदोद्धारकोश' नामक प्रसिद्ध कोशों की रचना की है। श्री चमूपतिकृत 'वेदार्थ शब्दकोश' (तीन खण्डों मे) भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कोश है। अन्य महत्त्वपूर्ण वैदिककोशों में श्री मधुसूदनशर्मा कृत 'वैदिक कोश' श्री हंसराज का 'वैदिक कोश', श्री केवलानन्द सरस्वती कृत 'ऐतरेय ब्राह्मण आरण्यक कोश', श्री गयानन्द शंभूसाधले कृत 'उपनिषद वाक्य महाकोश', श्री लक्ष्मण शास्त्री कृत 'धर्मकोश' के व्यवहारकाण्ड

१ तथा उपनिषद्काण्ड भाग ४ के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। ग्रासमैन ने 'लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद' नामक प्रसिद्ध कोश की रचना की है।

लौकिक संस्कृत-कोश—लौकिक-संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण कोश सम्प्रति प्राप्त नहीं होते। इन कोशों की शैली में भेद दिखाई पड़ता है। कुछ तो कोश पद्यबद्ध हैं तथा कुछ संज्ञाशब्दो एवं धातु शब्दों के संग्रह हैं। इन कोशों का भी क्रम श्लोकबद्ध है, अकारादि क्रम से नहीं। इसमें समानार्थक तथा नानार्थक दो प्रकार के शब्द हैं।

अमरकोश—संस्कृत का अत्यन्त लोकप्रिय कोश 'अमरकोश' है जिसे 'नामलिगानुशासन' भी कहा जाता है। इसका रचनाकाल चौथी या पांचवीं शती के बीच है। इसके रचयिता अमरसिंह हैं। इस पर लिखी गयी टीकाओं की संख्या पचास के लगभग है, जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। इन टीकाओं मे 'प्रभा', 'माहेश्वरी', 'सुधा', 'रामाश्रयी', तथा 'नामचन्द्रिका' प्रसिद्ध हैं। 'अमरकोश' तीन काण्डो एवं दस-दस तथा पांच वर्गों मे विभक्त है। यह कोश मुख्यतः पर्यायवाची कोश है। 'अमरकोश' के पश्चात् संस्कृत कोशों का निर्माण तीन पद्धतियों पर हुआ—नानार्थ कोश के रूप मे, समानार्थक शब्दकोश तथा अंशतः पर्यायवाची कोश। 'अमरकोश' के कुछ समय बाद शाश्वत कृत 'अनेकार्थसमुच्चय' नामक कोश की रचना ८०० अनुष्टुप् छन्द में हुई थी। तत्पश्चात् ७ वीं शती मे पुरुषोत्तमदेव ने 'त्रिकाण्ड कोश' तथा 'हारावली' नामक दो कोशों का निर्माण किया। वररुचि रचित एक कोश का हस्तलेख राजकीय पुस्तकालय, मद्रास में सुरक्षित है। १० वीं शती मे हलायुध ने 'अभिधानरत्नमाला' नामक कोश लिखा जो 'हलायुधकोश' के नाम से विख्यात है। इसमें स्वर्ग, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ पांच खण्ड तथा ९०० श्लोक है। इस पर 'अमरकोश' का प्रभाव है। यादवप्रकाश नामक दाक्षिणात्य विद्वान् ने १०५५ से ११३७ ई० के बीच 'वैजयन्ती' नामक प्रसिद्ध कोश लिखा जो बृहदाकार होने के साथ-ही-साथ प्रामाणिक भी है। इसमें पर्यायवाची, नानार्थक, तथा अकारादि क्रम तीनों पद्धतियां अपनायी गयी हैं। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र ने 'अभिधानचिन्तामणि' नामक प्रसिद्ध कोश-ग्रन्थ का प्रणयन किया जो ६ काण्डो में विभाजित है। इसका दूसरा नाम 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला' भी है। यह पर्यायवाची कोश है। महेश्वर (११११ ई०) ने दो कोशों की रचना की है—'विश्वप्रकाश' तथा 'शब्दभेदप्रकाश'। १२ वी शती में मंखक कवि ने 'अमरकोश' के आधार पर 'अनेकार्थ' नामक कोश की रचना की थी। १२ वी तथा १३ वीं शती के मध्य अजयपाल ने १००७ श्लोको में 'नानार्थसंग्रह' नामक कोशग्रन्थ लिखा। १२ वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे धनंजय ने 'नाममाला' नामक लघुकोश की रचना की और केशवस्वामी ने (१२ वी, १३ वीं शती) 'नानार्थार्णवसंक्षेप' तथा 'शब्दकल्पद्रुम' नामक कोश लिखा। १४ वी शताब्दी के लगभग मेदिनिकर का 'नानार्थ शब्दकोश' लिखा गया जो 'मेदिनिकोश' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर 'अमरकोश' का गहरा प्रभाव है। अन्य कोश-ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैं—जिन प्रभसूरि—'अपवर्गनाममाला' (१२ वीं शती), कल्याणमल्लकृत

'शब्दरत्नप्रदीप, ५ खण्डों में, (१३७४ ई०), पद्मरागदत्त—'भूरिक प्रयोग', रामेश्वर-शर्मा—'शब्दमाला', दण्डाधिनाथ—'नानार्थरत्नमाला' (१४ वीं शती), जटाधर—'अधिनतन्त्र', नामांगदसिंह–'अनेकार्थ', 'नानार्थमञ्जरी', रूपचन्द्र—'रूपमञ्जरी' (नाममाला, १६ वीं शती), हर्षकीर्त्तिधर कृत 'शारदीय नाममाला' (१६ वीं शती), वामनभट्टबाण–'शब्दरत्नाकर', अप्पय दीक्षित–'नामसंग्रहमाला'। मधुरेश–'शब्दरत्नावली' (१७ वीं शती), विश्वनाथ–'कोशकल्पतरु', सुजन–'नानार्थपदपीठिका' तथा 'शब्दलिंगार्थचन्द्रिका', क्षेमेन्द्र–'लोकप्रकाश', महीप–'अनेकार्थमाला', हरिचरण-सेन–'पर्यायमुक्तावली', वेणीप्रसाद–'पंचतत्वप्रकाश', 'अनेकार्थतिलक', राघव खाडे-कर–'कोशावतंस', महाक्षपणक–'अकेकार्थध्वनिमञ्जरी', हर्ष–'लिंगानुशासन', अनिरुद्ध–'शब्द-भेद-प्रकाश', शिवदत्त वैद्य–'शिवकोश' (वैद्यक का कोश), 'गणितार्थनाममाला' तथा 'लक्षणकोश'। भुवनेश–'लौकिकन्यायमुक्तावली', 'लौकिक न्यायकोश' तथा 'लौकिकन्यायसंग्रह'।

आधुनिक कोश—संस्कृत के आधुनिक कोशों मे 'शब्दकल्पद्रुम' एवं 'वाचस्पत्यम्' महान् उपलब्धियां । राजा स्यार राधाकान्तदेव रचित 'शब्दकल्पद्रुम' की रचना १८२८–१८५८ ई० मे हुई है। इसमें पाणिनि व्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति है तथा शब्द-प्रयोग के उदाहरण भी हैं। यह कोश समस्त भारतीय ज्ञान का बृहद्कोश है जो सात खण्डों में लिखा गया है।

वाचस्पत्यम्— यह 'शब्द कल्पद्रुम' की अपेक्षा बृहत्तर पृष्ठाधार लिये हुए है। इसके रचयिता तर्क वाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य है। इसका रचनाकाल १८७३ ई० है। दोनों ही कोशो मे शब्दकोश एवं विश्वकोश का मिश्रित स्वरूप प्राप्त होता है। इनमें साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, तन्त्र, दर्शन, संगीत, काव्यशास्त्र, इतिहास, चिकित्साशास्त्र आदि के पारिभाषिक शब्दों का विवेचन है। पाश्चात्य विद्वानों में मोनियर विलियम कृत 'संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी', बेनफे की 'संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी' तथा विल्सन एवं मेक्डानल्ड के कोश प्रसिद्ध हैं। भारतीय विद्वानो मे आप्टे ने 'संस्कृत अंगरेजी' बृहद्कोश की (तीन खण्डों में) रचना की है तो अत्यन्त प्रामाणिक कोश है। इन्होंने संस्कृत अँगरेजी' तथा 'अँगरेजी संस्कृत' नामक दो लघुकोश भी लिखे है। प्रथम का हिन्दी-अनुवाद हो चुका है। अन्य प्रसिद्ध कोश है—संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी—डब्ल्यू० यीट्स, १८४६ ई० तथा रॉथ एवं बोथलिंग कृत 'संस्कृत जर्मन कोश' (१८५८–७५ ई०)। यह सात खण्डों मे प्रकाशित भारतीय विद्या का महान् कोश है। हिन्दी मे 'अमरकोश' के अनेक अनुवाद है और मोनियर विलियम कृत कोश के भी दो अनुवाद हो चुके है। म० म० प० रामावतार शर्मा कृत 'वाङ्मयार्णव' बीसवीं शती का महान् कोश है जो १९६७ ई० मे प्रकाशित हुआ है। यह संस्कृत का पद्यबद्ध कोश है।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री वाचस्पति गैरोला। ३. हिन्दी शब्दसागर भाग १—भूमिका नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। ४. संस्कृत-हिन्दी-कोश—आप्टे (हिन्दी अनुवाद)।

संस्कृत साहित्य—संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं विश्व के महान् साहित्यों में है। इसे भारोपीय परिवार का सर्वोत्कृष्ट साहित्य कहा जा सकता है। मात्रा और गुण दोनों ही दृष्टियों से इसका साहित्य उत्कृष्ट है। जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तत्त्वों एवं विचारधाराओं की ओर संस्कृत-लेखकों की दृष्टि गयी है और उन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रकाश से सभी क्षेत्रों को प्रोद्भासित किया है। धर्मशास्त्र, नीति, दर्शन, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिष, गणित, सामुद्रिकशास्त्र, कर्मकाण्ड, भक्ति, कामशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, संगीत, नाट्यशास्त्र, काव्य, नाटक, कथासाहित्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि से सम्बद्ध संस्कृत में उच्चकोटि का साहित्य लिखा गया है और सभी क्षेत्रों मे यह साहित्य विपुल परिणाम में उपलब्ध है। [यहां उपर्युक्त सभी अंगों का परिचय न देकर केवल कलात्मक साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायगा]। [वैसे अन्य अंगो का विवेचन विभिन्न स्थलों पर देखा जा सकता है, अतः दर्शन, आयुर्वेद, संगीत, कामशास्त्र, व्याकरण आदि के लिए तत्तत् प्रसंगों को देखें]।

संस्कृत का साहित्य मुख्यतः दो भागों मे विभक्त है—वैदिक एवं लौकिक। [वैदिक साहित्य के लिए दे० वैदिक साहित्य]। लौकिक साहित्य का प्रारम्भ वाल्मीकि-'रामायण' से होता है जिसे विद्वानों ने आदि काव्य कहा है। विषय, भाषा, भाव, छन्द-रचना एवं अभिव्यक्ति-प्रणाली की दृष्टि से लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से कई अंशों मे भिन्न है तथा संस्कृत का परवर्ती विकास लौकिक साहित्य से ही सम्बद्ध रहा है। 'रामायण' तथा 'महाभारत' लौकिक साहित्य की आद्य रचनाएँ है एवं इनके द्वारा सर्वप्रथम मानवीय चरित्र का अंकन कर नवीन शैली का सूत्रपात किया गया है। दोनों ही ग्रन्थ केवल काव्य न होकर भारतीय संस्कृति, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र प्रभृति विद्याओ के सर्वांगीण आधार ग्रन्थ हैं [दे० रामायण तथा महाभारत]। विश्वधर्म और दर्शन के विकास मे संस्कृत साहित्य की अपार देन है। डॉ० मैकडोनल के अनुसार "भारोपीय वंश की केवल भारत निवासिनी ही शाखा ऐसी है जिसने वैदिक धर्म नामक एक बड़े सार्वभौम की रचना की। अन्य सभी शाखाओ ने एक क्षेत्र में मौलिकता न दिखाकर बहुत पहले से एक विदेशीय धर्म को अपनाया। इसके अतिरिक्त भारतीयों ने स्वतन्त्रता से अनेक दर्शन सम्प्रदायो को विकसित किया, जिनमे उनकी ऊँची चिन्तनशक्ति का प्रमाण मिलता है।" संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का पूर्ण परिपोषक है। विद्वानों ने इसकी पाँच विशेषताओं का उद्घाटन किया है। (१) यह स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रमधर्म का पूर्ण परिपोषक है। (२) इसमें 'वात्स्यायन कामसूत्र' मे वर्णित विलासी नागरिक जीवन का चित्र अंकित है। (३) इस पर भारतीय दर्शन की आस्तिक विचारधाराओं का पूर्ण प्रभाव है, किन्तु कतिपय ग्रन्थो में नास्तिक दर्शनों की भी मान्यताओं का आकलन किया गया है, फलतः चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शनो के आधार पर भी कतिपय काव्यों की रचना हुई है। मुख्यतः कवियों ने वेदान्त, सांख्य एवं न्याय-वैशेषिक के विचारों को अपनाया है। कालिदास का साहित्य सांख्ययोग से अनुप्राणित है, तो माघ पर सांख्य-योग के अतिरिक्त पूर्वमीमांसा

का भी प्रभाव है। श्रीहर्ष पर शांकरवेदान्त के अतिरिक्त न्याय-वैशेषिक एवं लोकायत मत का प्रभाव है। अश्वघोष आदि कवियों ने बौद्ध-दर्शन की मान्यताओं का अवलम्ब लिया है तथा काव्य के माध्यम से दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। (४) विभिन्न कवियों की कलात्मक मान्यताओं में अन्तर पड़ता है। कालिदास ने भावपक्ष की समृद्धि पर बल दिया है तो परवर्ती कवियों की दृष्टि कलात्मक वैभव की ओर लगी है, फलतः संस्कृत में प्रभूत मात्रा में द्वयर्थक, अनेकार्थक एवं चित्रकाव्यों की रचना हुई है। (५) संस्कृत की पाँचवीं विशेषता है उसकी सांगीतिकता। संस्कृत काव्य का संगीततत्त्व अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है तथा प्रत्येक कवि का संगीत व्यक्तिगत विशेषता से विभूषित है। "कालिदास का संगीत मधुर और कोमल है, माघ का गंभीर और धीर, भवभूति का कहीं प्रबल और उदात्त एवं श्रीहर्ष का संगीत एक कुशल गायक के अनवरत अभ्यास (रियाज) का संकेत करता है। दूसरी ओर विलासिता मे सराबोर है।" संस्कृत कवि-दर्शन पृ० ३३–३४।

महाकाव्य—संस्कृत पद्य-साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्यों की परम्परा अत्यन्त प्रबल, सशक्त एवं गरिमामयी है [दे० संस्कृत महाकाव्य]। संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्य प्रणेता हैं—अश्वघोष (बुद्धचरित, सौन्दरनन्द), कालिदास (रघुवंश, कुमारसम्भव), भारवि (किरातार्जुनीयम्), कुमारदास (जानकीहरणम्) भट्टि (भट्टिकाव्य), माघ (शिशुपालवध) तथा श्रीहर्ष (नैषधचरित)। अन्य महाकाव्यकारों की भी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक काल तक संस्कृत महाकाव्य-लेखन की परम्परा किसी-न-किसी रूप में अक्षुण्ण है। काव्य के अन्य रूपों मे खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, सन्देशकाव्य, मुक्तक, स्तोत्र, उपदेशकाव्य तथा ऐतिहासिक काव्य आते हैं। ऐतिहासिक काव्यप्रणेताओं मे पद्मगुप्तपरिमल (नवसाहसांकचरित), विल्हण (विक्रमांकदेवचरित), कल्हण (राजतरंगिणी) तथा जयचन्द्रसूरि (हम्मीर महाकाव्य) के नाम प्रसिद्ध हैं [दे० ऐतिहासिक महाकाव्य]।

खण्डकाव्य मे महाकवि कालिदास रचित 'मेघदूत' का गौरवपूर्ण स्थान है [दे० मेघदूत]। इसके आधार पर संस्कृत मे दूतकाव्य या सन्देशकाव्य लिखने की परम्परा का प्रवर्त्तन हुआ और अनेक ग्रन्थों की रचना हुई [दे० सन्देशकाव्य]। संस्कृत मे मुक्तककाव्य के कई रूप उपलब्ध होते हैं जिनमें शृङ्गार, नीति एवं वैराग्य-सम्बन्धी मुक्तकों की सशक्त परम्परा रही है। भर्तृहरि ने शृङ्गार, नीति एवं वैराग्य नामक तीन शतकों की रचना की है। अमरुक कवि कृत 'अमरुकशतक' तथा गोवर्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती' शृङ्गारी मुक्तकों की महत्त्वपूर्ण रचनाएं है। गीतिकाव्य के अन्तर्गत कवि जयदेव का 'गीतगोविन्द' अप्रतिम स्थान का अधिकारी है जिसमें शृङ्गार भक्ति एवं कलितकोमलकान्त पदावली का सम्यक् स्फुरण है। जयदेव के अनुकरण पर अनेक कवियों ने गीतकाव्यों की रचना की जिनमें 'अभिनव गीतगोविन्द', 'गीतराघव', 'गीतगङ्गाधर' तथा 'कृष्णगीता' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पण्डितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनीविलास' गीतिकाव्य की महत्त्वपूर्ण रचना है।

संस्कृत का 'स्तोत्रसाहित्य' अत्यन्त प्रौढ़ है [दे० स्तोत्रसाहित्य]। यह अत्यन्त विशाल, सरस एवं हृदयग्राही होने के साथ-ही-साथ अभिव्यक्तिकला की निपुणता के लिए प्रसिद्ध है। अनेक दार्शनिकों एवं भक्तों ने अपने इष्टदेव एवं देवियों की प्रार्थना में असंख्य स्तोत्रकाव्यों की रचना की है। इनमें शंकराचार्य, मयूर (सूर्यशतक) तथा बाणभट्ट (चण्डीशतक) की देन अत्यधिक महत्त्वशाली है। पण्डितराज जगन्नाथ की 'गङ्गालहरी' भी स्तोत्रसाहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत में उपदेशकाव्यों की प्रभूत रचनाएं प्राप्त होती हैं। ऐसे कवियों में क्षेमेन्द्र का नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है [दे० क्षेमेन्द्र]।

गद्य साहित्य—संस्कृत का अधिकांश साहित्य पद्यबद्ध है, किन्तु इसमें जिस परिमाण में गद्य की रचना हुई है, उसका अपना वैशिष्ट्य है। संस्कृत में गद्य-लेखन की कई शैलियां है। उपाख्यान, नीतिकथा तथा लोककथाओं के रूप मे अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है [दे० संस्कृत गद्य]। गद्य के दो रूप प्राप्त होते है—बोलचाल का सरल गद्य तथा लौकिक साहित्य का प्रौढ एवं अलंकृत गद्य। इसका प्रथम रूप शास्त्रीय तथा टीकाग्रन्थों में प्राप्त होता है। शबरस्वामी (पूर्वमीमांसाभाष्य), शंकराचार्य (वेदान्तभाष्य) तथा न्यायदर्शन के प्रख्यात भाष्यकार जयन्तभट्ट ने संस्कृत गद्य की शास्त्रीय शैली का परिनिष्ठित रूप प्रस्तुत किया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि का गद्य अकृत्रिम, सहज, सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। पुराणों मे विशेषतः 'श्रीमद्भागवत्' तथा 'विष्णुपुराण' में गद्य का अलंकृत रूप प्राप्त होता है। संस्कृत गद्य का प्रौढ़ रूप सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट तथा पं० अम्बिकादत्त व्यास के ग्रन्थों मे दिखाई पड़ता है। इनकी रचनाएं साहित्यिक गद्य का रूप प्रस्तुत करती है। संस्कृत मे चम्पूकाव्यों की अखण्ड परम्परा प्राप्त होती है जिसमे गद्य और पद्य का मिश्रित रूप प्रयुक्त होता है। शताधिक लेखकों ने चम्पूकाव्यों की रचना कर संस्कृत साहित्य मे नवीन शैली की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें भट्ट त्रिविक्रम (नलचम्पू), सोमदेवसूरि (यशस्तिलकचम्पू), भोजराज (चम्पूरामायण) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं [दे० चम्पूकाव्य]।

संस्कृत मे कथा-साहित्य के दो रूप प्राप्त होते है—नीतिकथा तथा लोककथा। नीतिकथा मे रोचक कहानियों द्वारा सदुपदेश दिया जाता है। इनमे 'हितोपदेश' एवं 'पञ्चतन्त्र' नामक ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हैं। लोककथाएँ मनोरंजनप्रधान होती है। संस्कृत मे गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा', सोमदेवरचित 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' आदि ग्रन्थ लोक-कथा के प्रतिनिधि हैं। संस्कृत का नाट्यसाहित्य अत्यन्त प्रौढ़ एवं विस्तृत है। नाट्य ग्रन्थों के साथ-ही-साथ इसमे नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों की भी विशाल परम्परा रही है। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' की रचना ईसा पूर्व कई शताब्दी की थी जिसमे ज्ञात होता है कि संस्कृत नाट्य साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। प्रसिद्ध नाटककारों मे भास, कालिदास, शूद्रक, अश्वघोष, विशाखदत्त, हर्ष, भट्टनारायण, भवभूति एवं राजशेखर आदि आते हैं। संस्कृत में रूपक के दस तथा उपरूपक के १८ प्रकार माने जाते है। इन सभी विधाओं के ऊपर इसमे प्रचुर साहित्य उपलब्ध है [दे० संस्कृत नाटक]। प्राचीन

शिलालेखो मे भी संस्कृत का प्रचुर साहित्य सुरक्षित है तथा गद्य एवं पद्य दोनों में ही विपुल साहित्य भरा पड़ा है। संस्कृत में साहित्यशास्त्र तथा काव्यालोचन की अत्यन्त सशक्त परम्परा रही है। काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरतमुनि हैं, किन्तु इनके पूर्व भी कई आचार्यों के नाम मिलते हैं। भरत से लेकर पण्डितराज एवं विश्वेश्वर पण्डित तक संस्कृत काव्यशास्त्र का अक्षुण्णप्रवाह दिखाई पड़ता है। काव्यशास्त्र के ६ सम्प्रदाय हैं—रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य। इन सिद्धान्तों के द्वारा संस्कृत आलोचकों ने काव्यालोचन के सार्वभौम रूप का मीमांसन किया है।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्रीकीथ (हिन्दी अनुवाद) २. संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद)—श्रीकीथ। ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १—सं० डॉ० राजबली पाण्डेय।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण—यह 'सामवेद' का ब्राह्मण है। इसमें पांच खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड सूत्रों मे विभाजित हैं। प्रथम खण्ड में तीन प्रकार की गानसंहिताओं के स्वरूप एवं फल का विवेचन है। तीन प्रकार की रचनाओं के नाम हैं—देवहू-संहिता, वाक्शवहू संहिता तथा अमित्रहू संहिता। इनमे प्रथम कल्याणकारण एवं अन्तिम दोनो अमङ्गलप्रद है। दूसरे और तीसरे खण्डों मे गान-संहिता की विधि, स्तोम, अनुलोम-प्रतिलोम स्वर तथा अन्यान्य प्रकार के स्वरों का प्रतिपादन किया गया है। चतुर्थ और पंचम खण्डो में पूर्ववर्णित विषयों के पूरक तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं। संहिता के उपनिषद् या रहस्य का वर्णन होने से इसकी अभिधा संहितोपनिषद् है। संहिता का यहाँ अभिप्राय 'सामगायनो की संहिता' से है, मन्त्रों के समुदाय से नहीं। इसके टीकाकार द्विजराज भट्ट ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि सामब्रह्म के रसज्ञो के लिए इसका अध्ययन विशुद्ध ज्ञान देने वाला है। इसके दो भाष्य हैं—सायणभाष्य तथा विष्णुभट्ट के पुत्र द्विजराजभट्ट का भाष्य। सायणभाष्य संक्षिप्त है एवं केवल प्रथम खण्ड तक ही प्राप्त होता है, पर द्विजराजभाष्य अत्यन्त विस्तृत एवं पूर्ण है। द्विजराजभट्ट का समय १५ वीं शती के आसपास है। १—इसका प्रथम प्रकाशन १८७७ ई० मे बर्नेल द्वारा मंगलोर से हुआ था (रोमन लिपि में)। २—१९६५ ई० में केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ तिरुपति से विशुद्ध समीक्षात्मक संस्करण डॉ० बे० रा० शर्मा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित।

सन्देशकाव्य—संस्कृत मे सन्देशकाव्यों का विशाल साहित्य है। सन्देशकाव्य को दूतकाव्य भी कहते है। इसमें विरही या नायिका द्वारा अपनी प्रेयसी या नायक के पास दूत द्वारा सन्देश भेजने का वर्णन होता है। इन सन्देशकाव्यों का स्रोत 'वाल्मीकिरामायण' में प्राप्त होता है, जहाँ हनूमान द्वारा राम के सन्देश को सीता तक पहुँचाने का वर्णन है। महाकवि कालिदास ही इस काव्यरूप के प्रथम प्रयोक्ता हैं, जिन्होंने 'मेघदूत' या 'मेघसन्देश' नामक प्रौढ़ सन्देशकाव्य की रचना की है। इनके अनुकरण पर अनेक सन्देशकाव्यों की रचना हुई है। सन्देशकाव्य के दो विभाग हैं—

पूर्व एवं उत्तर। पूर्वभाग में नायक या नायिका का वर्णन विरही के रूप में किया जाता है। इसके बाद दूत का दर्शन, उसका विरही द्वारा स्वागत एवं प्रशंसा तथा उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य का वर्णन किया जाता है। पुनः उससे सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना की जाती है और गन्तव्य स्थान का मार्ग बतलाया जाता है। यहाँ तक पूर्वभाग की समाप्ति हो जाती है। उत्तरभाग मे गन्तव्य नगरी का वर्णन, प्रिय या प्रिया के निवासस्थान का विवरण तथा नायक या नायिका की विरहदशा एवं तज्जन्य संभावना का कथन किया गया है। तदनन्तर सन्देश सुनाने की प्रार्थना की जाती है तथा सन्देश की सत्यता की पुष्टि के लिए उसे सन्देश भेजने वाले की विशेषताओं एवं अन्तरंग जीवन की गुप्त घटनाओं की चर्चा करनी पड़ती है। अन्त में सन्देशवाहक के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए काव्य की समाप्ति हो जाती है। महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का यही वर्ण्यविषय है तथा परवर्त्ती कवियों ने भी कतिपय परिवर्त्तनों के साथ यही कथानक रखा है। सन्देशकाव्य का प्रधान रस वियोग शृङ्गार होता है जिसमे प्रकृति को माध्यम बना कर नाना प्रकार की चेष्टाओं एवं भंगिमाओं का वर्णन किया जाता है।

कालान्तर मे सन्देशकाव्य मे नवीन भावो का समावेश हुआ और जैनकवियो तथा भक्तकवियों द्वारा धार्मिक, भक्तिपरक एवं दार्शनिक रचनाये प्रस्तुत की गयी। जैन मुनियो द्वारा नवीन उद्देश्य से अनुप्राणित होकर ही सन्देशकाव्य लिखे गए जिनमे शृङ्गारिक वातावरण को धार्मिक रूप देकर नई दिशा की ओर मोड दिया गया है। सन्देशकाव्य क्रमशः लोकप्रिय होते गए और उत्तरवर्त्ती भक्तकवियो ने 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'भागवत' के उदात्त चरितनायकों के जीवन को आश्रय बना कर सन्देशकाव्यों की रचना की। विप्रलम्भ शृंगार एवं भक्ति-भावना को लेकर चलनेवाले सन्देशकाव्यों में कोमल तथा मधुर भावनाओं का प्राधान्य है। इनमें विरह की अत्यन्त ही मार्मिक एवं सर्वाङ्गीण छवि चित्रित की जाती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। "गुरुवियोग मे शिष्य की भावविह्वलता, कृष्णवियोग मे गोपियो की आतुरता तथा भक्तकवियो का प्रभुपरायणता का इन काव्यों मे बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है। भावो की कोमलता तथा मधुरता के अनुरूप भाषा भी बड़ी सरल तथा प्रसादपूर्ण देखने में आती है। माधुर्य और प्रसादगुण के साथ-साथ वैदर्भी रीति का सन्देशकाव्यो मे परम उत्कर्ष पाया जाता है।" संस्कृत के सन्देशकाव्य पृ० ४१। सन्देशकाव्य मे अधिकतर मन्दा-क्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है, पर कतिपय कवियों ने शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया है।

सन्देशकाव्य की प्रथम रचना 'मेघदूत' एवं घटकर्पर कवि विरचित 'घटकर्परकाव्य' है। इनमे से किसकी रचना प्रथम है, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। 'मेघदूत' की भावानुभूति 'रामायण' से प्रभावित है, तो 'घटकर्परकाव्य' पर 'महाभारत' का ऋण है। इस कवि का वास्तविक नाम अभी तक अज्ञात है। अभिनवगुप्ताचार्य ने इस पर टीका लिखी है जिसमें उन्होंने इसे कालिदास की रचना माना है [दे० अभि-

नवगुप्त—ए हिस्टोरिकल एण्ड फिलोस्फिकल स्टडी पृ० ६५]। सन्देशकाव्य का परवर्त्ती विकास अधिकांशतः मेघदूत के ही आधार पर हुआ और उसमें 'घटकर्परकाव्य' का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा। कृष्णाचार्य का 'मेघसन्देशविमर्श', रामचन्द्र लिखित 'धनवृत्तम्', कृष्णमूर्तिकृत 'यशोल्लास', रामशास्त्री रचित 'मेघप्रतिसन्देश' तथा मैथिल कवि म० म० परमेश्वर झा प्रणीत 'यक्षसमागत' आदि काव्य उपर्युक्त ग्रन्थो से प्रभावित होकर ही लिखे गए हैं। सन्देशकाव्य की रचना में जैन कवियों का महत्त्वपूर्ण योग है। जिनसेन जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवनचरित को 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य में चार सर्गों में वर्णित किया गया है। इसमे ३६४ पद्य हैं जिनमे १२० श्लोक मेघदूत के हैं। इनका समय ८१४ ई० है। विक्रम कवि (१५ वी शती) ने 'नेमिदूत' की रचना की है जिसमे स्वामी नेमिनाथ के जीवन का वर्णन है। अन्य जैनकवियो की रचनायें है— 'शीलदूत' (सुन्दरगणिरचित)' चेतोदूत' (अज्ञातनामा कवि) तथा 'चन्द्रदूत' (विमल-कीर्ति, १७ वीं शती)।

सन्देशकाव्यों की प्रौढ़ परम्परा १३ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई। १२ वीं शताब्दी के धोई कवि विरचित 'पवनदूत' एक उत्कृष्ट रचना है। १३ वीं शताब्दी के अवधूत-रामयोगी ने १३८ श्लोकों में 'सिद्धदूत' नामक सन्देशकाव्य की रचना की। १५ वीं शताब्दी के विष्णुदास कवि कृत 'मनोदूत' तथा रामशर्मा का 'मनोदूत', माधव कवीन्द्र-भट्टाचार्यकृत 'उद्धवदूत' (१६ वी शताब्दी), रूपगोस्वामी का 'उद्धवसन्देश' (१७ वीं शताब्दी) आदि इस परम्परा की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। १७ वी शताब्दी मे रुद्रन्याय वाचस्पतिकृत 'पिकदूत', वादिराजकृत 'पवनदूत', श्रीकृष्ण सार्वभौम रचित 'पादाकदूत', लम्बोदरवैद्य का 'गोपीदूत' तथा त्रिलोचन का 'तुलसीदूत' आदि सन्देशकाव्य लिखे गए। राम-कथा को आधार बना कर अनेक दूतकाव्य लिखे गए है जिनके नाम हैं— वेदान्तदेशिककृत 'हंससन्देश', रुद्रवाचस्पति का 'भ्रमरदूत,' वेंकटाचार्य का 'कोकिलसन्देश' तथा योधपुर के नित्यानन्द शास्त्री (२० वीं शती) रचित 'हनुमत्दूत'।

संस्कृत मे दूतकाव्यो की रचना २० वी शताब्दी तक होती रही है। म० म० पं० रामावतार शर्मा ने 'मुद्गलदूत' नामक व्यंग्यकाव्य की रचना की थी। लगभग ७४ सन्देशकाव्यों का पता चल चुका है जिनमें ३४ प्रकाशित हो चुके हैं। यह विचित्र संयोग है कि अधिकांश दूतकाव्य बंगाल मे ही लिखे गए। डॉ० परमानन्द शास्त्री ने संदेशकाव्य-विषयक अपने अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए पाच तत्त्वों का आकलन किया है—१. दूतकाव्य की परम्परा मे मुख्यतः कालिदास का ही अनुकरण हुआ और भाषाशैली, छन्द तथा भाव की दृष्टि से मौलिकता का अंश अल्प रहा। २. दूतकाव्यो मे शृङ्गार के अतिरिक्त भक्ति एवं दर्शन से सम्बद्ध भावो की भी अभिव्यक्ति हुई। ३. ऐतिहासिक और पौराणिक व्यक्तियों तथा गाथाओ के आधार पर भी दूतकाव्य रचे गए किन्तु अधिकतर उनकी कथावस्तु कल्पित ही रही। ४. समस्यापूर्ति की कला के विकास को इस परम्परा से बड़ा भारी बल मिला और मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कई दूतकाव्य रचे गए। ५. मुक्तक काव्य की भांति रूढ़िपालन के

प्रति मोह, पाण्डित्य-प्रदर्शन, शब्दक्रीडा आदि विशेषताएँ युग की प्रवृत्ति के अनुसार इस परम्परा में भी समान रूप से समाविष्ट हुई। संस्कृत गीतिकाव्य का विकास पृ० २६६।

आधारग्रन्थ—१ हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—एम० कृष्णमाचारी। २ हिस्ट्री ऑफ दूतकाव्य ऑफ बंगाल—डॉ० जे० बी० चौधरी। ३. संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य। ४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—गैरोला (चौखम्बा)। ५. संस्कृत गीतिकाव्य का विकास—डॉ० परमानन्द शास्त्री। ६. इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी कैटलॉग भाग २, खण्ड १, २—डॉ० प्राणनाथ तथा डॉ० जे० बी० चौधरी। ७. हिस्टोरिकल एण्ड फिलोसिकल स्टडी ऑफ अभिनवगुप्त—डॉ० के० सी० पाण्डेय।

समयमातृका—इसके रचयिता क्षेमेन्द्र हैं। 'समयमातृका' का अर्थ है 'समय द्वारा माता'। दामोदर कृत 'कुट्टनीमतम्' से प्रभावित होकर क्षेमेन्द्र ने इसकी रचना की थी। यह वेश्याओं के सिद्धान्तों का प्रतिपादक सुन्दर व्यंग्यप्रधान ग्रन्थ है, जो सम्पत्तिशाली पुरुषों को वेश्याओं के मायाजाल से बचने के लिए लिखा गया है। पुस्तक के अन्त में इस बात का निर्देश है कि इसका प्रणयन काश्मीर नरेश अनन्तदेव के शासन-काल मे हुआ था (१०५० ई०)। इसमें आठ समय या परिच्छेद हैं। पुस्तक मे एक नापित कुट्टनी का वेश बनाकर किसी वृद्धा कुट्टनी से जिसका नाम कलावती है भविष्य में वेश्या बननेवाली एक स्त्री का परिचय कराता है और उसे शिक्षा दिलाता है। यहाँ कुट्टनी का उपयोग, कामुकजनों को आसक्त करने की कला तथा उनसे धन ऐंठने की विद्या की शिक्षा दी गयी है। [१८८३ ई० मे काव्यमाला संख्या १०, बम्बई से प्रकाशित]।

सम्राट्चरितम्—यह बीसवीं शती का महाकाव्य है जिसके रचयिता पं० हरिनन्दन भट्ट हैं। वे बिहार राज्य के अन्तर्गत गया जिला स्कूल के प्रधान पण्डित थे। इस ग्रन्थ का प्रकाशन संवत् १९९० (१९३३ ई०) में हुआ था। इस महाकाव्य मे आंग्ल सम्राट् पंचम जॉर्ज का चरित चार सौ पृष्ठ एवं २५०० श्लोकों मे वर्णित है। प्रारम्भ में कवि ने लंडन नगरी का भव्य वर्णन किया है और उसकी तुलना अयोध्या तथा अमरावती से की है। द्वितीय अध्याय मे रानी विक्टोरिया के शासन का वर्णन तथा तृतीय मे उसके राज्यकाल की प्रशंसा की गयी है। चतुर्थ अध्याय मे सप्तम एडवर्ड का विवरण तथा पंचम जॉर्ज के राज्याभिषेक का वर्णन है। पंचम अध्याय में पंचम जॉर्ज की भारत यात्रा एवं समुद्र-यात्रा का मोहक चित्रण किया गया है। षष्ठ अध्याय मे काशीनरेश द्वारा सम्राट् के वाराणसी आगमन की प्रार्थना तथा उनके वहाँ आने का वर्णन है। अष्टम अध्याय में दिल्ली दरबार का भव्य चित्रण तथा नवम में सम्राट् के लंडन प्रत्यावर्त्तन का वर्णन है। कवि की भाषा प्रवाहपूर्ण एवं प्रौढ़ है। लंडन नगरी का वर्णन—

सीमावनी किं रमणीयताया भूमण्डनं लण्डननाम धेया। पारे समुद्रं नगरी गरीयो-विद्येरुपेता जयतीह लोके ॥१।१। प्राप्तिस्थान—टाउन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, औरंगाबाद (बिहार)।

सांख्यदर्शन—भारतीय दर्शन का प्राचीनतम सिद्धान्त जिसके प्रवर्त्तक कपिल हैं। इस विचारधारा का मूल ग्रन्थ कपिल-रचित 'तत्त्वसमास' है जो अत्यन्त संक्षिप्त एवं सारगर्भित है। सांख्यदर्शन को अधिक स्पष्ट करने के लिए कपिल ने 'सांख्यसूत्र' नामक बिस्तृत ग्रन्थ का प्रणयन किया है। 'तत्त्वसमास' में छोटे-छोटे केवल २२ सूत्र हैं, किन्तु 'सांख्यसूत्र' ६ अध्यायो मे विभाजित है। उसकी सूत्रसंख्या ५३७ है। महर्षि कपिल के दो शिष्यो—आसुरि एवं पंचशिख—ने भी सांख्य-दर्शन पर पुस्तके लिखी थीं, किन्तु सम्प्रति वे अनुपलब्ध है। तत्पश्चात् ईश्वरकृष्ण ने 'सांख्यकारिका' नामक अत्यन्त प्रामाणिक एवं लोकप्रिय ग्रन्थ की रचना की जिस पर गौडपाद ने 'सांख्य-कारिका-भाष्य' एवं वाचस्पतिमिश्र ने 'सांख्यतत्त्व-कौमुदी' नामक व्याख्या-ग्रन्थ लिखे। सांख्यशास्त्र के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों मे विज्ञानभिक्षु-विरचित 'सांख्यप्रवचन-भाष्य' तथा 'सांख्यसार' है। इनका समय १५ वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। विद्वानों का मत है कि संख्या से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम सांख्य पडा है। इसमें तत्त्वों की संख्या निर्धारित की गयी है। अतः संख्या को ही मूल सिद्धान्त होने के कारण इसका नाम सांख्य पडा है। सांख्य द्वैतवादी दर्शन है, क्योकि यह प्रकृति तथा पुरुष दो तत्त्वो की ही मौलिकता सिद्ध करता है।

तत्त्व-मीमांसा—सांख्यदर्शन मे २५ तत्त्वों की मीमांसा की गयी है। इनके मर्म को जान लेने पर दुःखो से निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य मुक्त हो जाता है। इन २५ तत्त्वो को चार भागों मे विभाजित किया गया है। १—प्रकृति—यह तत्त्व सबका कारण होता है, पर किसी का कार्य नहीं होता। २—विकृति—कुछ तत्त्व किसी से उत्पन्न होते हैं, पर उनसे किसी अन्य की उत्पत्ति नहीं होती। ३—कुछ तत्त्व कार्य-कारण दोनों ही होते हैं—अर्थात् किसी से उत्पन्न होकर किसी के उत्पादक भी होते हैं, ये प्रकृति-विकृति कहलाते है। ४—कार्य एवं कारण दोनों प्रकार के सम्बन्ध से शून्य तत्त्व जो न प्रकृति न विकृति कहे जाते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—प्रकृति—इसका नाम प्रधान, अव्यक्त एवं प्रकृति है जो संख्या में एक है। (ख) विकृति—इनकी संख्या १६ है—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, मन और पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) (ग) प्रकृति-विकृति—इनकी संख्या सात है—महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्र (शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र, गन्धतन्मात्र)। (घ) न प्रकृति न विकृति—अर्थात् पुरुष १। कुल योग २५। इनका विवरण 'सांख्यकारिका' मे इस प्रकार है—मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ ३ सांख्यदर्शन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सत्कार्यवाद है।

सत्कार्यवाद—यह कार्य-कारण का विशिष्ट सिद्धान्त है जो सांख्यदर्शन का मूलाधार भी है। इसमें यह विचार किया गया है कि कार्य की सत्ता कारण मे रहती है या नहीं; अर्थात् विविध प्रकार की सामग्री एवं प्रयत्न से कार्य की उत्पत्ति होती है तो क्या उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण में विद्यमान रहता है या नहीं ? न्याय-वैशेषिक इसका

नकारात्मक उत्तर देते हैं। उनके अनुसार कुम्भकार द्वारा घट-निर्माण के पूर्व मिट्टी में घड़ा विद्यमान नहीं रहता, यदि पहले से ही उसकी स्थिति होती तो कुम्भकार को परिश्रम करने की आवश्यकता ही क्या थी ? इसी प्रकार यदि कार्य कारण मे पहले से ही विद्यमान है तो फिर दोनों में अन्तर ही क्या रह जायगा ? दोनो को भिन्न क्यों माना जाता है ? इस स्थिति मे मिट्टी और घट को भिन्न नाम क्यों दिया जाता है; दोनों का एक ही नाम क्यों नहीं रहता ? किन्तु व्यवहार में यह बात भिन्न हो जाती है। घड़े में जल रखा जा सकता है किन्तु मिट्टी के लोदे में इसका रखना सम्भव नहीं है। मिट्टी का लोंदा घडा का काम क्यों नही करता ? यदि यह कहा जाय कि दोनों का (घड़ा और मिट्टी का) भेद आकारगत है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कार्य मे ऐसी कोई वस्तु आ गयी जो कारण मे नहीं थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्य कारण में विद्यमान नहीं रहता। नैयायिको के इस सिद्धान्त को असत्कार्य-वाद कहते हैं।

सांख्यदर्शन असत्कार्यवाद का खण्डन करते हुए सत्कार्यवाद का स्थापन करता है। इसके अनुसार कार्य कारण मे विद्यमान रहता है। इसकी सिद्धि के लिए निम्नलिखित युक्तियाँ दी गयी हैं—असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्। शक्तस्य शक्य-करणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्॥ सांख्यकारिका ९। यहाँ पाच बातो पर विचार किया गया है—(१) असत् या अविद्यमान होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती, (२) कार्य की उत्पत्ति के लिए उसके उपादान कारण को अवश्य ग्रहण करना पड़ता है; अर्थात् कार्य अपने उपादान कारण से नियत-रूप से सम्बद्ध होता है। (३) सभी कार्य सभी कारण से उत्पन्न नहीं होते (४) जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में शक्त या समर्थ है, उससे उसी कार्य की उत्पत्ति होती है; और (५) कार्य कारणात्मक अर्थात् कारण से अभिन्न या उसी के स्वरूप का होता है। हिन्दी सांख्य-तत्त्वकौमुदी पृ० ६७।

(१) असदकरणात्—यदि कार्य कारण में विद्यमान न रहे तो किसी भी प्रकार से उसका आविर्भाव नहीं होता; कारण कि अविद्यमान पदार्थ की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। कर्त्ता कितना भी प्रयत्न क्यों न करे, किन्तु कार्य उत्पन्न होता ही नहीं। उदाहरण के लिए; क्या बालू से तेल निकाला जा सकता है ? किन्तु, तिल से तेल निकाला जाता है, क्योंकि तिल में तेल का कारण विद्यमान है; पहले से ही उसमें तेल रहता है। वह विशेष स्थिति अर्थात् कोल्हू मे डालने पर प्रकट हो जाता है। निमित्त कारण के द्वारा उपादान कारण में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान कार्य प्रत्यक्ष हो जाता है।

२. उपादानग्रहणात्—द्रव्य की निष्पादक वस्तु को उपादान कहते है, जैसे; घट के लिए मिट्टी उसका उपादान कारण है। किसी विशिष्ट कार्य का आविर्भाव किसी विशेष कारण से ही होता है। जैसे; दही का जमाना दूध से ही सम्भव है ता तेल का तिल या तेलहन से निकलना। किसी खास कारण से किसी खास कार्य की उत्पत्ति यह सूचित करती है कि कार्य विशेष कारण विशेष में पहले से ही वर्तमान रहता है।

३. सर्वसम्भवाभावात्—सभी कार्य सभी कारण से उत्पन्न नहीं होते। केवल समर्थ कारण से ही ईप्सित कार्य की उपलब्धि सम्भव होती है। इससे यह ज्ञात होता है कि कारण में कार्य पहले से ही सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है और उत्पन्न होने के पूर्व वह (कार्य) अव्यक्तावस्था मे रहता है।

४. शक्तस्य शक्यकरणात्—शक्त या शक्तिसम्पन्न वस्तु में किसी खास वस्तु को उत्पन्न करने की शक्ति रहती है; अर्थात् जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में शक्त या समर्थ है, उससे उसी कार्य की उत्पत्ति होती है। जैसे; तिल से तेल ही निकल सकता है, घी नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि कार्य और कारण परस्पर सम्बद्ध होते हैं।

५. कारणभावात्—इसका अभिप्राय यह कि कार्य कारण से अभिन्न है या उसी का स्वरूप है। उदाहरण के लिए, घड़ा मिट्टी से पृथक् न होकर अभिन्न है और उसका स्वभाव मिट्टी का ही होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि कारण का जैसा स्वभाव होगा कार्य का भी वैसा ही होगा। फलतः, कार्य-कारण में स्वभाव भी एकता बनी रहेगी। इस दृष्टि से सत्कार्यवाद की युक्तियुक्तता सिद्ध हो जाती है।

सत्कार्यवाद के दो रूप हैं—परिणामवाद और विवर्तवाद। परिणामवाद का अर्थ है कारण से उत्पन्न कार्य का वास्तविक होना। यहा कार्य की उत्पत्ति से अभिप्राय है कारण के वास्तविक रूपान्तर से। जैसे, दूध से दही का उत्पन्न होना। यहां दही को दूध का परिणाम कहा जायगा। दूध का वास्तविक विकार ही दही के रूप में आ जाता है। यह मत सांख्य का है। दूसरा मत विवर्तवाद वेदान्त का है। इसके अनुसार कारण मे विकार या रूपान्तर वास्तविक न होकर, आभास मात्र है। नाना प्रकार के परिलक्षित होने वाले विकार भ्रम या आभास मात्र हैं। जैसे; अन्धकार में पड़ी हुई रस्सी को देखकर उसे सर्प समझते हुए हम भाग खड़े होते हैं, किन्तु दीपक से देखने पर यह भ्रम दूर हो जाता है और हम रस्सी को ही देखते हैं, सर्प को नहीं। यहाँ रस्सी में सर्प की प्रतीति मात्र होती है, सर्प के रूप मे रस्सी परिणत नहीं होती। इसी प्रकार कार्य कारण का वास्तविक रूपान्तर न होकर विवर्तमात्र होता है; यहां कारण से कार्य का असत्य रूपान्तर होता है। वेदान्त के अनुसार नामरूपात्मक जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से ही होती है, किन्तु जगत् भ्रम या कल्पनामात्र है, वह असत्य है, स्वप्नवत् झूठा है। जगत् की केवल प्रतीति होती है और एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है।

प्रकृति और उसके गुण—सांख्यदर्शन परिणामवाद को मानता है। इसके अनुसार प्रकृति और पुरुष दो ही प्रधान तत्त्व हैं, जिनके सम्बन्ध से ही जगत् की सृष्टि होती है। प्रकृति जड़ एवं एक है किन्तु पुरुष चेतन तथा अनेक। जगत् के आविर्भाव के लिए उभय तत्त्व को मानने के कारण सांख्य द्वैतवादी दर्शन है। मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय की उत्पत्ति किस मूल तत्त्व से हुई है, इसी का अन्वेषण दर्शन का विषय होता है। बौद्ध, जैन, न्याय-वैशेषिक तथा मीमांसा के अनुसार यह मूल तत्त्व सूक्ष्म 'परमाणु' ही है। पर, सांख्य इस मत को स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार भौतिक परमाणु

से जगत् ऐसा स्थूल पदार्थ भले ही उत्पन्न हो जाय किन्तु मन, बुद्धि प्रभृति सूक्ष्मपदार्थ कैसे उत्पन्न होंगे ? अतः स्थूल एवं सूक्ष्म सभी कार्यों को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति को ही माना गया। सांख्यशास्त्र में प्रकृति की सत्ता सिद्ध करने के लिए अनेक युक्तियां दी गयी हैं।

(१) विश्व के समस्त विषय—बुद्धि से लेकर पृथ्वी तक—सीमित एवं परतन्त्र है, अतः इनका मूल कारण अवश्य ही असीमित एवं स्वतन्त्र होगा। (२) संसार के सभी विषय सुख, दुःख एवं मोह उत्पन्न करते है, अतः सभी पदार्थों में तीन गुणो की सत्ता परिलक्षित होती है। इससे यह सूचित होता है कि इनके मूल कारण में भी त्रिविध गुणों की विद्यमानता होगी। (३) संसार के सभी कार्य कारण से समुद्भूत होते है; अर्थात् संसार कार्यों का विशाल समूह है जो किसी कारण जगत् के रूप मे अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है, और वह अव्यक्त तत्त्व प्रकृति ही है। (४) कार्य कारण से उत्पन्न होकर पुनः उसी मे विलीन हो जाता है, अर्थात् कार्य का आविर्भाव और तिरोभाव दोनों ही कारण में होता है। जिस प्रकार प्रत्येक कार्य अपने कारण से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वह कारण भी सूक्ष्मतर कारण मे उत्पन्न होगा। इस प्रकार क्रमशः कारणों की शृङ्खला बढ़ती जाती है और जहाँ यह शृंखला समाप्त हो जाती है वहाँ सबका सूक्ष्मतम कारण प्रकृति ही सिद्ध होती है। सबसे ऊपर जगत् का एक मूल कारण होता है, जो प्रकृति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रलयावस्था में स्थूल कार्य या भौतिक पदार्थ अपने कारण या सूक्ष्म परमाणुओं में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार की परम्परा चल कर जहाँ समाप्त होती है, वही प्रकृति या सूक्ष्मतम अव्यक्त तत्त्व है। इसे ही सांख्य आदि कारण परा या मूल प्रकृति कहता है।

प्रकृति के गुण—प्रकृति के तीन गुण हैं सत्त्व, रज और तम। इन तीनो की साम्यावस्था ही प्रकृति कही जाती है। जगत् के पदार्थों मे भी यही तीनो गुण वर्तमान रहते हैं। सांख्यदर्शन मे प्रकृति को मूलतत्त्व एवं नित्य माना जाता है। वह संसार को उत्पन्न करती है, किन्तु स्वयं किसी से उत्पन्न नहीं होती। वह एक, व्यापक तथा किसी पर आश्रित नहीं होनेवाली तथा स्वतन्त्र होती है। उसका कोई रूप नहीं होता। वह केवल कारण है और कार्य को उत्पन्न करती है। वह सभी कार्यों की जड है, इसकी कोई जड़ नहीं है। उसका भी कारण माना जाय तो अनवस्था दोष हो जायगा। उसके कई नाम हैं—अव्यक्त, प्रधान एवं प्रकृति।

गुण—प्रकृति के तीनों गुण (सत्त्व, रज ओर तम) प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं पडते पर कार्यों या सासारिक विषयो को देख कर उनके स्वरूप का अंदाज लगाया जा सकता है। संसार के सभी (सूक्ष्म और स्थूल) पदार्थों में तीनो गुण पाये जाते हैं। ये प्रकृति के मूल तत्त्व हैं और इन्हीं के द्वारा संसार के विषयों का निर्माण होता है। ये संसार में सुख, दुःख एवं मोह उत्पन्न करने वाले हैं। एक ही वस्तु एक के मन में सुख, दूसरे के मन में दुःख एवं तीसरे के मन में औदासीन्य का भाव ला देती है। उदाहरण के लिए; संगीत को लिया जा सकता है जो रसिक को सुख, रोगी को कष्ट एवं तृतीय

व्यक्ति को न तो सुख और न कष्ट ही देता है। सांख्य कार्य और कारण के धर्म में संगति स्थापित करता है; अर्थात् जो गुण कार्य में होते हैं वही कारण में भी विद्यमान रहते हैं। इसीलिए संसार के मूल कारण प्रकृति में भी तीनों गुणों की सत्ता है। सत्त्वगुण लघु या हल्का, प्रकाशक तथा इष्ट या आनन्द स्वरूप होता है। यह जहाँ भी रहेगा वहाँ इसी प्रकार रहेगा। सत्त्वगुण के ही कारण आग की ज्वाला तथा भाप की गति ऊर्ध्वगामिनी होती है। सभी प्रकार के सुख, हर्ष, उल्लास आदि सत्त्वगुण के ही कारण होते हैं। रजोगुण प्रवृत्तिशील या चंचल होता है तथा उत्तेजक होने के कारण दूसरों को भी चचल बना देता है। यह क्रिया का प्रवर्त्तक होता है। रजोगुण के कारण वायु मे चचलता एवं गतिशीलता आ जाती है और रज के ही कारण इन्द्रियाँ विषय की ओर जाती है, तथा मन चंचल रहता है। सत्त्व और तम निष्क्रिय होते हैं, उनमें रज के ही कारण गतिशीलता आती है। यह दुःखात्मक होता है, अतः वस्तु मे इसका प्राधान्य होने पर दुःख उत्पन्न होता है। तमोगुण भारी एवं अवरोधक या नियामक होता है। यह सत्त्वगुण का विरोधी तथा रजोगुण की प्रवृत्ति को रोकनेवाला है जिससे वस्तु की गति नियन्त्रित हो जाती है। इसके कारण ज्ञान का प्रकाश फीका पड जाता है और अज्ञान या अन्धकार उत्पन्न होता है। यह मोह और अज्ञान को उत्पन्न करनेवाला तथा निद्रा, तन्द्रा और आलस्य का उत्पादक है। यह दुःख एवं उदासीनता का कारण होता है। सत्त्वगुण का रंग शुक्ल (उज्ज्वल), रजोगुण का लाल तथा तमोगुण का काला होता है। उपर्युक्त तीनो गुण विरोधी होते हुए सहयोगी भी हैं। इनमें एक स्वयं कोई कार्य कर नहीं पाता। ये परस्पर विरुद्ध होते हुए भी पुरुष का कार्य सम्पन्न करते हैं।

पुरुष या आत्मा—'साख्यकारिका' मे पुरुष का अस्तित्व सिद्ध करते हुए कहा गया है कि "संघात के परार्थ होने से, त्रिगुणादि से विपरीत होने से, सभी त्रिगुणात्मक वस्तुओ के लिए (चेतन) अधिष्ठाता एवं भोक्ता की अपेक्षा होने तथा मोक्ष की ओर प्रवृत्ति होने से पुरुष की पृथक् सत्ता सिद्ध होती है।" १७ सांख्यदर्शन मे आत्मा का अस्तित्व स्वयं सिद्ध होता है तथा उसके अस्तित्व का किसी प्रकार खंडन नहीं होता। वह (पुरुष) शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से भिन्न शुद्धचैतन्य स्वरूप है। वह प्रकृति के घेरे से पृथक् रहता है तथा निष्क्रिय और उदासीन है। वह नित्य, व्यापक, कूटस्थ तथा अविकारी है, उसमे विकार नही उत्पन्न होता। उसे सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता, क्योकि वह प्रकृति के घेरे से बाहर होता है। वह सभी विषयों से असम्पृक्त तथा राग-द्वेष मे रहित है। साख्य पुरुष का अनेकत्व स्वीकार करता है। इसके अनुसार प्रत्येक जीव की आत्मा पृथक् पृथक् है। जन्म, मरण तथा इन्द्रियों की व्यवस्था, एक साथ प्रवृत्ति के अभाव तथा गुणो के भेद के कारण पुरुष की अनेकता सिद्ध होती है।

सृष्टि—प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है। प्रकृति जड़ होती है और पुरुष निष्क्रिय होता है। अतएव, सृष्टिनिर्माण के लिए दोनों का संयोग आवश्यक

होता है। परस्पर भिन्न एवं विरुद्धधर्मक पदार्थों से सृष्टि का होना एवं उनका संयोग कैसे सम्भव है। इसका उत्तर देते हुए सांख्य कहता है कि "पुरुष के द्वारा प्रधान का दर्शन तथा प्रधान के द्वारा पुरुष का कैवल्य सम्पन्न होने के लिए पंगु और अंधे के समान दोनों का संयोग होता है जिससे सृष्टि होती है।" प्रलय की स्थिति में तीनों ही गुण साम्यावस्था में होते हैं, किन्तु प्रकृति और पुरुष के संयोग से उनमें क्षोभ या विकार उत्पन्न होता है। सभी गुण परस्पर विरोधी गुणों को दबाने में संलग्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनका पृथक्करण हो जाता है। अतः भिन्न-भिन्न अनुपातों में उनके संयोग के कारण सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। सबसे पहले महत्तत्व या बुद्धि उत्पन्न होती है। यह सृष्टि की उत्पत्ति में बीज रूप से स्थित रहता है; अर्थात् प्रत्येक जीव में विद्यमान रहता है। संसार के विकास मे महत्त्वशाली कारण होने से इसे 'महत्' कहा जाता है। तदनन्तर अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। 'मैं' और 'मेरा' का भाव ही अहंकार है। इसी के कारण पुरुष अपने को कर्त्ता, कामी तथा स्वामी समझ लेता है, जो उसका मिथ्या भ्रम है। यह सात्त्विक, राजस तथा तामस के रूप से तीन प्रकार का होता है। सात्त्विक अहंकार से एकादश इन्द्रियों की तथा तामस से पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। राजस इन दोनों अहंकारों का सहयोगी होता है। एकादश इन्द्रियों के अन्तर्गत पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय एवं मन आते है। पंच-तन्मात्राओं के अन्तर्गत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। शब्द तन्मात्रा से आकाश की, शब्द और स्पर्श के संयोग से वायु की, रूप और शब्द-स्पर्श तन्मात्राओं से अग्नि या तेज की, रस तन्मात्रा तथा शब्द, स्पर्श, रूप तन्मात्राओं से जल की तथा गन्ध-तन्मात्रा एवं शब्द, स्पर्श, रूप रस तन्मात्राओं के संयोग मे पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।

प्रमाण-मीमांसा—सांख्य की ज्ञानमीमांसा द्वैत तत्त्व पर आश्रित है। इसमे केवल तीन प्रमाण मान्य हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तथा उपमान, अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि को इन्हीं मे गतार्थ कर लिया गया है।

मोक्ष या कैवल्य—संसार मे दुःख का कारण अविवेक एवं दुःख-निवृत्ति का साधन विवेक है। सभी सदा के लिए दुःख से छुटकारा चाहते है। सभी प्रकार के दुःखों मे मुक्ति ही अपवर्ग या मोक्ष है। मोक्ष-प्राप्ति का एकमात्र साधन विवेक-ज्ञान है। इसे पुरुष और प्रकृति से पृथक् होने का ज्ञान कहते है। इससे (विवेक से) पुरुष और प्रकृति दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। आगे चल कर दुःख से निवृत्ति होकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। पुरुष शारीरिक और मानसिक विकारों मे निर्लिप्त रहता है। इसमें सुख-दुःख की व्याप्ति नही होती। वह शुद्ध, चैतन्य, नित्य, अविनाशी तथा मुक्त होता है। पुरुष का न तो बन्धन होता है और न मोक्ष। अनेक पुरुषों के आश्रय से रहनेवाली प्रकृति का ही बन्धन और मोक्ष होता है। मृत्यु के उपरान्त देह से मुक्ति हो जाती है और इस अवस्था मे स्थूल, सूक्ष्म सभी प्रकार के शरीरों से सम्बन्ध छूट कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

ईश्वर—ईश्वर के प्रश्न को लेकर सांख्यमतानुयायियों मे मतभेद है। प्राचीन सांख्यानुयायी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। (१) उनके अनुसार जगत्

का कारण नित्य परिणामी (परिवर्त्तनशील) प्रकृति है, ईश्वर नहीं। ईश्वर नित्य, निर्विकार (अपरिणामी) तथा परमात्मा माना गया है। जो स्वयं परिणामी नहीं है वह किसी पदार्थ का निमित्त कारण कैसे होगा ? (२) यदि यह कहा जाय कि जड़ प्रकृति का संचालन करने के लिये किसी चेतन शक्ति की आवश्यकता है; और वह ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं है, तो यह भी ठीक नहीं। सांख्य के अनुसार प्रकृति का नियमन और संचालन तो क्रिया है और ईश्वरवादी कहते हैं कि ईश्वर क्रिया नहीं करता। यदि ईश्वर का कोई उद्देश्य नहीं रहता तो फिर वह क्रिया करने में प्रवृत्त क्यों होगा ? यदि कहा जाय कि उसका कोई उद्देश्य नहीं रहता तो पूर्ण परमात्मा में अपूर्ण इच्छा या मनोरथ का रहना असंभव है। इसी प्रकार अन्य जीवों की उद्देश्यपूर्त्ति को ही ईश्वर का उद्देश्य माना जाय तो यह मत भी समीचीन नहीं है, क्योंकि बिना स्वार्थ के कोई दूसरे के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता। अतः ईश्वर की सत्ता असंदिग्ध है। संसार दुःख और पाप से पूर्ण है, अतः कहना ठीक नहीं कि ईश्वर प्राणियों के हितसाधन के लिए सृष्टि करता है। (३) ईश्वर मे विश्वास करने पर जीवों की अमरता एवं स्वतन्त्रता खण्डित हो जाती है। जीव को ईश्वर का अंश माना जाय तो उसमे वह शक्ति दिखाई नहीं पडती। इन सब तथ्यों के आधार पर ईश्वर की सत्ता संदिग्ध हो जाती है, और प्रकृति को ही जगत् का मूल कारण मानना पडता है। अतः सांख्य निरीश्वरवादी दर्शन है। पर, विज्ञानभिक्षु तथा अन्य टीकाकार इसे ईश्वरवादी दर्शन स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार सृष्टि-क्रिया के प्रवर्त्तक के रूप में भले ही ईश्वर को न माना जाय पर ऐसे ईश्वर की कल्पना तो करनी ही पड़ेगी जिसके सामीप्य या सम्पर्क मे प्रकृति में क्रियाशीलता आ जाती है। ऐसा ईश्वर नित्य तथा पूर्ण है, पर सांख्य इस मत को नहीं मानता।

सांख्यदर्शन वस्तुवाद तथा द्वित्ववाद का प्रतिपादक है। इसके अनुसार प्रकृति और पुरुष के द्वारा ही जगत् की सृष्टि होती है। प्रकृति भौतिक जगत् का मूल कारण है। वह सदा क्रियाशील तथा परिवर्त्तनशील है, किन्तु साथ-ही-साथ जड भी है। अतः उसकी जड़ता को दूर करने के लिए चैतन्यशक्ति पुरुष की आवश्यकता होती है। चेतन पुरुष के सम्पर्क से ही प्रकृति सृष्टि करती है तथा पुरुष की छाया प्राप्त करके ही उसमें ज्ञान आदि क्रियाएँ आती हैं। पर, पुरुष की सन्निधि से प्रकृति में ही क्यो विकार उत्पन्न होता है और पुरुष मे क्यो नही होता, तथा जड बुद्धि मे ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है, इसका समाधान सांख्य की युक्तियों से नही होता। फिर भी आत्मोन्नति, मुक्ति के साधन, दुःख-निवृत्ति तथा सृष्टि-प्रक्रिया के सिद्धान्त के कारण सांख्यदर्शन का महत्त्व असंदिग्ध है।

आधारग्रन्थ—१. इण्डियन फिलासफी—डॉ० एस० राधाकृष्णन्। २. भारतीय दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. दर्शन-संग्रह—डॉ० दीवान चन्द। ४. भारतीय दर्शन—चटर्जी एवं दत्त (हिन्दी अनुवाद)। ५ सांख्यतत्त्वकौमुदी (हिन्दी व्याख्या)—डॉ० आद्या प्रसाद मिश्र। ६. सांख्यसूत्र-(हिन्दी अनुवाद) श्रीराम शर्मा। ७. सांख्यकारिका—

(हिन्दी अनुवाद) चौखम्भा प्रकाशन । ८ सांख्य दर्शन का इतिहास—श्री उदयवीर शास्त्री । ९. सांख्यतत्त्व-मीमांसा—श्री उदयवीर शास्त्री । १०. सांख्यदर्शनम्—श्री उदयवीर शास्त्री । ११. प्राचीन सांख्य एवं योगदर्शन का पुनरुद्धार—पं० हरिशंकर जोशी । १२. सांख्यदर्शन की ऐतिहासिक परम्परा—डॉ० आद्या प्रसाद मिश्र ।

सागरनन्दी—प्रसिद्ध नाट्यशास्त्री । इन्होने 'नाटकलक्षणरत्नकोश' नामक नाट्यशास्त्र-विषयक ग्रन्थ की रचना की है । इनका समय ११ वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है । इनका वास्तविक नाम सागर था किन्तु नन्दी कुल मे उत्पन्न होने के कारण सागरनन्दी हो गया । इन्होने आधारभूत आचार्यों का नाम अपने ग्रन्थ में दिया है—श्रीहर्ष-विक्रमनराधिप-मातृगुप्तगर्गाश्मकुट्टनखकुट्टक-बादराणाम् । एषां मतेन भरतस्य मतं विगाह्य घुष्टं मया समनुगच्छत रत्नकोशम् ॥ अन्तिम श्लोक । इस ग्रन्थ की रचना मुख्यत: भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर हुई है और 'नाट्यशास्त्र' के कई श्लोक ज्यों के त्यो उद्धृत कर दिये गए है । इसमे नाट्यशास्त्र मे सम्बद्ध निम्नांकित विषयों पर विचार किया गया है—रूपक, अवस्थापञ्चक, भाषाप्रकार, अर्थप्रकृति, अंक, उपक्षेपक, सन्धि, प्रदेश, पताकास्थानक, वृत्ति, लक्षण, अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद तथा नायिका के गुण, रूपक एवं उपरूपक के भेद । इन्होंने शास्त्रीय दृष्टि से कई नवीन तथ्य प्रकट किये हैं । जैसे वर्तमान नृपति के चरित्र को सागरनन्दी ने ग्रन्थ का विषय बनाने का विचार प्रकट किया है पर अभिनवगुप्त के अनुसार वर्तमान नरपति के चरित को नाट्य की वस्तु नहीं बनाया जा सकता । इसकी पाण्डुलिपि सर्वप्रथम श्री सिलवांलेवी को नैपाल मे प्राप्त हुई थी (१९२२ ई० में) । तदनन्तर एम० डिलन द्वारा सम्पादित होकर यह ग्रन्थ लन्दन से (ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय) १९३७ ई० मे प्रकाशित हुआ । हिन्दी अनुवाद चौखम्भा विद्याभवन से प्रकाशित अनु० पं० बाबूलाल शास्त्री ।

आधारग्रन्थ—भारतीय साहित्यशास्त्र—आचार्य बलदेव उपाध्याय ।

सामवेद—वैदिक संहिताओ मे 'सामवेद' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमे 'गीतितत्त्व' की प्रधानता है जिसे उद्गाता नामक ऋत्विज् उच्चस्वर से गाता था [दे० वेदपरिचय] । इसका महत्त्व एक विशिष्ट कारण से भी अधिक है, जो अन्य वेदों मे प्राप्त नहीं होता । इसकी ऋचाएं गेयता के कारण एक रूप होकर भी, अनेकात्मक होकर, विविध रूप धारण कर लेती है । 'बृहद्देवता' में बताया गया है कि जो व्यक्ति साम को जानता है वही वेद का रहस्य जानता है । 'गीता' मे श्रीकृष्ण ने अपने को 'सामवेद' कह कर इसकी महत्ता प्रदर्शित की है—'वेदाना सामवेदोऽस्मि' १०।४२ । 'ऋग्वेद' और 'अथर्ववेद' भी 'सामवेद' की प्रशसा करते हैं । 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि जागरणशील व्यक्ति को ही साम की प्राप्ति होती है । निद्रा मे लीन रहने वाला सामगान में प्रवीणता नही प्राप्त कर सकता [५।४४।१४] ।

साम का अर्थ—ऋक्मन्त्रो के ऊपर गाये जाने वाले गान 'साम' शब्द के बोधक हैं तथा ऋक्मन्त्रों के लिए भी साम शब्द प्रयुक्त होता है । 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में 'साम' की व्युत्पत्ति दी गयी है । 'सा' का अर्थ है ऋचा और 'अम' का स्वर । इस

प्रकार 'साम' का अर्थ हुआ 'ऋक् के साथ सम्बद्ध स्वरप्रधानगायन'। सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्। तया सह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः यत्र वर्तते तत्साम [१।३।२२]। मन्त्र और स्वर का समवाय ही साम कहा जाता है। स्वर मे गीतितत्त्व का समावेश होता है। साम शब्द के अनेक अर्थ किये गए हैं—'छन्द की पवित्र पुस्तक', 'गेयभाषण' तथा संगीत ग्रन्थ आदि। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'मैजिक सौंग' कहा है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के आधार पर इसके असंख्य भेद किये गए हैं। अंग्रेज विद्वान् साइमन ने स्वरो की संख्या आठ हजार बतलायी है।

सामवेद का परिचय—'सामवेद' के दो विभाग हैं—आर्चिक एवं गान। आर्चिक शब्द का अर्थ ऋक्-समूह होता है जिसके दो भाग है—पूर्वार्चिक एवं उत्तरार्चिक। दोनों की मन्त्र-सख्या १८१० है जिनमे, २६१ मन्त्रो की पुनरावृत्ति हुई है जिससे मन्त्रो की संख्या १५४९ होती है। इनमें ७५ नये मन्त्र हैं, शेष सभी मन्त्र 'ऋग्वेद' के हैं। ये मन्त्र अष्टम और नवम मण्डल से लिये गए हैं। इस दृष्टि से 'सामवेद' के अपने मन्त्र केवल ७५ हैं और यह सभी वेदो में छोटा है। विन्टरनित्स का कहना है कि "ऋग्वेद मे न मिलने वाले ७५ मन्त्र अन्य संहिताओ मे जहां-तहां, और कभी-कभी कर्मकाण्डपरक ग्रन्थो मे भी, प्रकीर्ण मिलते है। सम्भव है इनमे कुछ किसी अज्ञात संस्करण से भी लिये गए हो। वैसे यही प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की बिखरी पंक्तियों को मिलाकर इनका एक और अर्थहीन-सा संस्करण स्थापित कर दिया गया है, बस। 'ऋग्वेद' और 'सामवेद' मे कुछ पाठ-भेद भी मिलते है जिनका अभिप्राय यह कहा जाता है कि कोई और प्राचीनतर संहिता थी जो आज हमे नही मिलती।" प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग १, खण्ड १ पृष्ठ १२६। ऑफ्रेख्त नामक जर्मन विद्वान् ने इन पाठ-भेद के कारणो की भी खोज की है और बताया है कि ये पाठ-भेद जानबूझ कर गान की सुविधा के लिये किये गए हैं। 'सामवेद' का विभाजन 'प्रपाठक' मे किया गया है। पूर्वार्चिक मे ६ प्रपाठक है तथा प्रत्येक प्रपाठक दो 'अर्ध' या 'खण्ड' मे विभाजित है और प्रत्येक खण्ड 'दशति' मे विभक्त है। प्रत्येक दशति का विभाजन 'मन्त्र' में हुआ है। पर, प्रत्येक 'दशति' मे दस मन्त्रों का सभी जगह निर्वाह नही किया गया है; कही-कही इनकी सख्या ८ और ९ भी है। सम्पूर्ण पूर्वार्चिक मे ५८५ मन्त्र हैं। उत्तरार्चिक मे नौ प्रपाठक है, जिनमे प्रारम्भिक पाँच प्रपाठक दो अर्ध भागो मे तथा शेष चार मे तीन अर्धक है। नौ प्रपाठको म २२ अर्ध, ११९ खण्ड एवं ४०० सूक्त है तथा मन्त्रो की सख्या १८१० है। 'सामवेद' के मूल मन्त्रो का 'योनि' के नाम से अभिहित किया जाता है। योनि स्वरो की जननी को कहते हैं। कतिपय पुराणो मे 'सामवेद' की एक सहस्र शाखाओ का उल्लेख किया गया है, पर आज कल इसकी तीन ही शाखाएं प्राप्त होती है—कौथुमीय, राणायनीय तथा जैमिनीय। 'महाभाष्य' मे भी 'सामवेद' की सहस्र शाखाओ की पुष्टि होती है—सहस्रवर्त्मा सामवेदः। कौथुमशाखा अत्यन्त लोकप्रिय है और इसका प्रचार गुजरात मे है। इसकी 'ताण्ड्य' नाम की एक शाखा भी प्राप्त होती है। 'ताण्ड्यब्राह्मण' एवं 'छान्दोग्य उपनिषद्' का सम्बन्ध इसी शाखा से है। सूत्र-ग्रन्थों में 'कलशकल्पसूत्र', 'लाट्यायन श्रौतसूत्र' तथा

गोभिल 'गृह्यसूत्र' का सम्बन्ध इसी शाखा से है। [इसका सम्पादन कर बेन्फी नामक जर्मन विद्वान् ने जर्मन अनुवाद के साथ १८४८ ई० में प्रकाशित किया था]।

राणायनीयशाखा—इसका प्रचार महाराष्ट्र में अधिक है। 'कौथुमशाखा' से यह अधिक भिन्न नहीं है । इसमें कहीं-कहीं उच्चारण की भिन्नता दिखाई पड़ती है। जैसे; कौथुमीय उच्चारण 'हाउ'और 'राई' 'राणायनीय' में 'हावु' और 'रायी' हो जाता है। [जी० स्टेवेन्सन द्वारा १८४२ ई० में अँगरेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित]।

जैमिनीयशाखा—इसका सम्बन्ध 'जैमिनीय संहिता' 'जैमिनीय ब्राह्मण', 'केनोपनिषद्' जैमिनीय उपनिषद्', 'जैमिनीयश्रौतसूत्र' और 'जैमिनीय गृह्यसूत्र' से है। ब्राह्मणो एवं पुराणों मे साममन्त्रों, उनके पदों तथा गायनों की संख्या इस समय प्राप्त अंशों से कहीं अधिक कही गयी है। 'शतपथब्राह्मण' मे सामगानो के पद की संख्या चार सहस्र बृहती तथा साममन्त्रों के पद एक लाख ४४ हजार कहे गए है। सामों की संख्या आठ सहस्र और गायनों की एक हजार आठ सो बीस है। अष्टौ साम सहस्राणि छन्दोगार्चिकसंहिता। गानानि तस्य वक्ष्यामि सहस्राणि चतुर्दश ॥अष्टौ शतानि गेयानि दशोत्तरं दशैव च। ब्राह्मणं चोपनिषदं सहस्र-त्रितयं तथा ॥ चरणव्यूह।

सामवेद की गान-पद्धति—सामगान को चार भागो मे विभाजित किया गया है—ग्रामगेयगान, आरण्यकगान, अहगान और ऊर्ध्वगान। 'सामवेद' के गान की प्राचीन पद्धति क्या रही होगी तथा उसमे किन स्वरो मे गान होता था; इसके लिए कोई प्रामाणिक आधार नहो है। वर्तमान युग के सात स्वर उस समय प्रचलित थे अथवा नहीं इसका कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता। 'छान्दोग्य उपनिषद्' से पता चलता है कि उस समय सामगान के सात अंग थे—हिंकार, आदि, उपद्रव, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन। इनके अतिरिक्त अन्य पाँच विकारों का भी उल्लेख है—विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम और स्तोभ। प्रस्ताव—मन्त्र के प्रारम्भिक भाग को प्रस्ताव कहते हैं और यह 'हु' से आरम्भ होता है। इसका गान प्रस्तोता नामक ऋत्विज् द्वारा होता है। उद्गीथ—इसके प्रारम्भ मे 'ॐ' लगता है। यह उद्गाता द्वारा गाया जाता है। प्रतिहार—दो को जोड़ने वाले को प्रतिहार कहते है। इसका गायक प्रतिहार नामक ऋत्विज् होता है। उपद्रव—इसका गायक उद्गाता होता है। निधन—इसमें मन्त्र के दो पद्यांश तथा 'ॐ' लगा रहता है। इसके तीन ऋत्विज्—प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्त्ता—मिलकर गाते है। उदाहरण के लिए एक मन्त्र लिया जा सकता है। अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १—हुँ ओग्नाई (प्रस्ताव), २—ओम आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ), ३—नि होता सत्सि बर्हिषि ओम् (प्रतिहार)। प्रतिहार के दो भेदों को दो प्रकार से गाया जायगा। ४—निहोता सत्सि ब (उपद्रव) ५—र्हिषि ओम् (निधन)। इस साम को जब तीन बार गाया जायगा तब उसे 'सोम' कहा जायगा। गायन के लिये कभी-कभी निरर्थक पदो को भी जोड़ा जाता है, जिन्हें 'स्तोभ' कहते है। वे हैं—औ, हो, वा, हा आदि। 'सामवेद' के गाने की लय के नाम हैं—कुष्ट, प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थी, मन्द्र और अतिस्वार्य।

'सामवेद' के प्रमुख देवता सविता या सूर्य हैं। इसमे अग्नि और इन्द्र की भी प्रार्थना की गयी है, पर उनका प्राधान्य नहीं है। इसमे उपासना काण्ड की प्रधानता है तथा अग्निरूप, सूर्यरूप, सोमरूप ईश्वर की उपासना की गयी है। विश्वकल्याण की भावना से भरे हुए इसमे अनेक मन्त्र हैं। गेयता एवं अन्य विषयो की प्रधानता के कारण 'सामवेद' का स्थान अवश्य ही महनीय है। ऋषियों ने प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से गीतात्मकता को प्रश्रय देते हुए 'ऋग्वेद' के मन्त्रों का चयन कर 'सामवेद' का संकलन किया और उसे गतिशैली मे ढाल दिया, जिससे मन्त्रो मे स्वर-सन्धान के कारण अपूर्व चमत्कार का समावेश हुआ।

सामवेद के हिन्दी अनुवाद—क सामवेद (हिन्दी अनुवाद)—श्री तुलसीरामस्वामी। ख—सामवेद (हिन्दी अनुवाद)—श्री जयदेव विद्यालंकार। ग—सामवेद (हिन्दी अनुवाद)—श्री रामशर्मा।

आधारग्रन्थ—१. प्राचीन भारतीय साहित्य—विन्टरनित्स भाग १, खण्ड १ (हिन्दी अनुवाद)—विन्टरनित्स। २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—(हिन्दी अनुवाद) मैक्डोनल। ३. वैदिक साहित्य—सूचना विभाग, भारत सरकार १९५५ ई०। ४. भारतीय संस्कृति—(वैदिकधारा) डॉ० मगलदेवशास्त्री। ५. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेवउपाध्याय।

सायण—आचार्य सायण विजयनगरम् के महाराज बुक्क तथा महाराज हरिहर के मन्त्री एवं सेनानी थे। वे बुक्क के यहाँ १३६४–१३७८ ई० तक अमात्यपद पर आसीन रहे तथा हरिहर का मन्त्रित्व १३७९–१३८७ ई० तक किया। उनकी मृत्यु १३८७ ई० मे हुई। उन्होने वेदो के अतिरिक्त ब्राह्मणो पर भी भाष्य लिखा है। उनके लिखे हुए सुप्रसिद्ध भाष्यो के नाम इस प्रकार है—संहिता—'तैत्तिरीय संहिता' (कृष्ण-यजुर्वेद की), 'ऋग्वेदसंहिता', 'सामवेद', 'काण्व संहिता', 'अथर्ववेदसंहिता'। कुल ५। ब्राह्मण—'तैत्तिरीयब्राह्मण', 'तैत्तिरीयआरण्यक', 'ऐतरेयब्राह्मण', 'ऐतरेयआरण्यक', 'ताण्ड्य' (पञ्चविंश ब्राह्मण), 'सामविधानब्राह्मण', 'आर्षेयब्राह्मण', 'देवताध्याय,' 'उपनिषद्ब्राह्मण', 'संहितोपनिषदब्राह्मण', 'वंशब्राह्मण' तथा 'शतपथब्राह्मण'। कुल १३। 'तैत्तिरीयसंहिता' के प्रारम्भ मे भाष्य-रचना का उपक्रम दिया हुआ है; जिसके अनुसार महाराज बुक्क के अनुरोध पर सायणाचार्य ने भाष्यो की रचना की थी। महाराज ने वैदिक साहित्य की व्याख्या लिखने के लिए अपने आध्यात्मिक गुरु माधवाचार्य से प्रार्थना की। वे 'जैमिनीय न्यायमाला' नामक ग्रन्थ के रचयिता थे, पर अन्य कार्यों मे व्यस्त रहने के कारण यह कार्य न कर सके और उन्होने अपने अनुज सायण से ही यह कार्य सम्पन्न कराने के लिये राजा को परामर्श दिया। माधवाचार्य की इच्छा के अनुसार आचार्य सायण को इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया और उन्होने वेदो का भाष्य लिखा। तत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः। आदिशन्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥ स प्राह नृपति 'राजन्! सायणाचार्यो ममानुजः। सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम्॥ इत्युक्तो माधवाचार्येण वीरो बुक्कमहीपतिः। अन्वशात्

सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥ यै पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात् । कृपालुः सायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः ॥ (तैत्तिरीयसंहिताभाष्योपक्रमणिका) ।

सायणाचार्य के भाष्य-लेखन का विशेष क्रम है, जिसकी सूचना उनके ग्रन्थो के उपोद्घातों से प्राप्त होती है । सर्वप्रथम 'तैत्तिरीय संहिता' तथा उसके ब्राह्मणो की रचना की गयी है । सायण ने इसका कारण यह दिया है कि यज्ञ-संचालन के समय चार ऋत्विजों में अध्वर्यु की सर्वाधिक महत्ता सिद्ध होती है, अतः सर्वप्रथम इसी की संहिता; अर्थात् यजुर्वेद का भाष्य लिखा गया । 'तैत्तिरीयसंहिता' सायणाचार्य की अपनी संहिता थी, क्योंकि वे तैत्तिरीयशाखाध्यायी ब्राह्मण थे । तदनन्तर उन्होने 'तैत्तिरीयब्राह्मण' एवं 'तैत्तिरीयआरण्यक' की व्याख्या की । इसके बाद 'ऋग्वेद' का भाष्य लिखा गया । सायण ने होत्रकर्म को महत्त्व देते हुए 'ऋग्वेद' को द्वितीय स्थान दिया । 'ऋग्वेद' के पश्चात् 'सामवेद' एवं 'अथर्ववेद' की व्याख्याएं रची गयीं । सभी भाष्यों में 'शतपथब्राह्मण' का भाष्य पीछे लिखा गया है । उन्होने अपने वेदभाष्य का नाम 'वेदार्थप्रकाश' रखा है तथा उसे अपने गुरु विद्यातीर्थ को समर्पित किया । भाष्यों के रचना-काल के सम्बन्ध मे विद्वानो का कहना है कि वि० सं० १४२० से लेकर १४४४ तक के बीच ही इनका लेखन हुआ है, और २४ वर्षों का समय लगा । स्वयं सायण के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उन्होंने राजा बुक्क एवं उनके पुत्र महाराज हरिहर के यहाँ २४ वर्षों तक अमात्य पद का संचालन किया था । बड़ोदा की सेन्ट्रल लाइब्रेरी मे सायणरचित 'ऋग्वेदभाष्य' की एक प्रति सं० १४५२ की सुरक्षित है, जिसे सायण का हस्तलेख माना जाता है । सायणाचार्य का निधन वि० सं० १४४४ ई० मे हुआ था, अतः उनकी मृत्यु के आठ वर्ष पूर्व उक्त प्रति तैयार की गयी होगी । सायण ने 'ऋग्वेद-भाष्य' की पुष्पिका मे बुक्क महाराज का उल्लेख किया है तथा महाराज हरिहर के सम्बन्ध मे भी लिखा है—तत्कटाक्षेण तद्रूपं दधतो बुक्कभूपतेः । अभूद् हरिहरो राजा क्षीराब्धेरिव चन्द्रमाः ॥ वेदभाष्यसंग्रह पृ० ११९ । वेदभाष्यों की रचना के समय सायण की अवस्था लगभग ४८ वर्षों की थी । सायणाचार्य के कतिपय ग्रन्थों म ग्रन्थो के नामो के पूर्व 'माधवीय' शब्द लिखा हुआ है तथा उनके द्वारा निर्मित 'धातुवृत्ति' 'माधवीयधातुवृत्ति' के नाम मे विख्यात है । 'ऋक्संहिता' का भाष्य भी माधवीय के नाम से प्रसिद्ध है । इन नामो को देखकर विद्वानो को भ्रम हुआ है कि उपर्युक्त ग्रन्थो के रचयिता माधव ही हैं । पर वास्तविक रचयिता तो सायण ही है । माधवीय नाम का रहस्य है माधव द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त कर सायण का वेद-भाष्य की रचना मे प्रवृत्त होना ।

विपुल वेदभाष्यो को देखते हुए आधुनिक विद्वानो ने यह सन्देह प्रकट किया है कि अमात्य जैसे व्यस्त पद को सँभालते हुए सायण ने इतने ग्रन्थो का भाष्य कैसे लिख दिया, अतः ये भाष्य उनकी कृति न होकर उनके निर्देशन मे लिखे गए विभिन्न विद्वानो के ग्रन्थ है । संवत् १३८६ मे लिखित एक शिलालेख से इस मत की पुष्टि होती है कि नारायण वाजपेयी जी, नरहरि सोमयाजी तथा पण्ढरि दीक्षित को विद्यारण्य श्रीपाद स्वामी के समक्ष चतुर्वेदभाष्य-लेखन के लिए अग्रहार देकर सम्मानित किया गया था ।

इससे ज्ञात होता है कि उपर्युक्त तीन पण्डितों ने भाष्य-लेखन में सायण को सहायता दी थी। इसी शिलालेख की साक्षी पर नरसिंहाचार्य तथा डॉ० गुणे ने अन्तरंग परीक्षा के आधार पर भाष्यों का रचयिता एक व्यक्ति को नहीं माना है [दे० मैसूर आरक्लॉजिकल रिपोर्ट १९०८ पृ० ५४ तथा इण्डियन ऐटिक्वेरी, वर्ष १९१६, पृ० १९]। डॉ० गुणे के अनुसार वेदभाष्य के विभिन्न अष्टकों की भिन्न-भिन्न व्याख्याशैली के द्वारा उन्हे एक व्यक्ति की रचना नहीं माना जा सकता [दे० आशुतोष जुबिली काममोरेशन वाल्युम, भाग ५ पृ० ४३७—४७३]। पण्डित बलदेव उपाध्याय ने भाष्यों का रचयिता सायण को ही माना है। 'वेदों के भिन्न-भिन्न संहिता-भाष्यों के अनुशीलन करने से हम इसी सिद्धान्त पर पहुचते है कि ये सब भाष्य न केवल एक ही पद्धति से लिखे गए है; बल्कि इनके मन्त्रो के अर्थ मे भी नितान्त सामञ्जस्य है। मात्र अर्थ मे विरोधाभास को देखकर भले ही कतिपय आलोचक चक्कर में पड जायें और सायण के कर्तृत्व मे अश्रद्धालु हो, परन्तु वेदभाष्यों की विशालता देखकर, मन्त्रार्थों की व्याख्या का अनुशीलन कर, वेदभाष्यो के उपोद्घातो का मनन कर, हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचते है कि कतिपय बाह्य विरोधो के अस्तित्व होने पर भी इनके ऊपर एक ही विद्वान् रचयिता की कल्पना की छाप है और वह रचयिता सायणाचार्य से भिन्न कोई व्यक्ति नहीं है।' वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ० ८६।

सायण-भाष्य वेदार्थ-अनुशीलन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। उन्होंने पूर्ववर्त्ती सभी वेदभाष्यो से सहायता लेकर परम्परागत पद्धति के आधार पर अपना भाष्य निर्मित किया है। वेदो का अर्थ करते हुए उन्होने वेदांगों की भी सहायता ग्रहण की है तथा अपने कथन की पुष्टि के लिए पुराण, इतिहास, स्मृति तथा महाभारत आदि ग्रन्थों से भी उद्धरण दिये हैं। सायण ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक की व्याख्या मे महत्त्वपूर्ण शब्दो के प्रयोग, उत्पत्ति एवं सिद्धि के लिए पाणिनि-व्याकरण के लिए अतिरिक्त प्रातिशाख्यों का भी आधार ग्रहण किया है। सूक्तो की व्याख्या करते हुए उन्होंने ऋषि, देवता आदि का निर्देश किया है तथा सूक्त-विषयक अलभ्यमान आख्यायिकाएँ भी दे दी है। वेद-विषयक समस्त विषयो का प्रतिपादन करते हुए सायण ने उसके रहस्य को सुलझाया है तथा प्रत्येक वेद के प्रारम्भ में उपोद्घात के रूप मे महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। उनके भाष्य में तत्कालीन याज्ञिक पद्धति का भी समावेश है। सारांश यह कि अपने समय की आवश्यकता के अनुसार सभी आवश्यकता एवं उपयोगी विषयो का समावेश कर सायण ने अपने भाष्य को पूर्ण बनाया है, अतः वेदार्थ-अनुशीलन के इतिहास में इसकी देन अमर है। वैदिक भाषा और साहित्य के सौन्दर्योद्घाटन के लिए सायण का आज भी वही महत्त्व है और वही एक प्रामाणिक साधन है जिसके द्वारा वेदो का अर्थ सुगमतापूर्वक जाना जा सकता है।

आधारग्रन्थ—१. आचार्य सायण और माधव—पं० बलदेव उपाध्याय। २. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय।

साहित्यदर्पण—यह महापात्र विश्वनाथ-रचित काव्य के दशांगों का वर्णन करने वाला प्रौढ़ ग्रन्थ हैं [दे० विश्वनाथ]। 'साहित्यदर्पण' लोकप्रियता की दृष्टि

से सभी अलंकारशास्त्रविषयक ग्रन्थों में प्रमुख है। इसमें दस परिच्छेद हैं तथा श्रव्य काव्य के भेदों के साथ-ही-साथ दृश्यकाव्य का भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। प्रथम परिच्छेद मे काव्य का स्वरूप एवं भेद का वर्णन तथा द्वितीय में वाक्य, पद एवं शब्दशक्तियो का निरूपण है। तृतीय परिच्छेद मे विस्तारपूर्वक रस का वर्णन है जिसके अन्तर्गत रसस्वरूप, अङ्ग, भाव, नौ रस, नायक-नायिकाभेद तथा रस-सम्बन्धी अन्यान्य विषयों का समावेश किया गया है। चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य का एवं पंचम में व्यंजना की स्थापना की गयी है। षष्ठ परिच्छेद मे विस्तार-पूर्वक श्रव्यकाव्य के भेदो—मुक्तक, महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि एवं रूपक तथा उपरूपक के भेदों एवं नाट्यविषयक सभी प्रमुख तथ्यों का विवेचन है। सप्तम परिच्छेद में ७० काव्यदोषों एवं अष्टम में गुण-विवेचन है। नवम परिच्छेद में वैदर्भी, गौडी, लाटी तथा पांचाली वृत्तिया वर्णित हैं और दशम परिच्छेद मे विस्तार के साथ शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, एवं मिश्रालङ्कार का निरूपण है। इसमे वर्णित अलङ्कारो की संख्या ७७ है—शब्दालङ्कार—१ पुनरुक्तवदाभास, २ अनुप्रास, ३ यमक, ४ वक्रोक्ति, ५ भाषासमक, ६ श्लेष एवं ७ चित्रालङ्कार,। अर्थालङ्कार—१ उपमा, २ अनन्वय, ३ उपमेयोपमा, ४ स्मरण, ५ रूपक, ६ परिणाम, ७ सन्देह, ८ भ्रान्तिमान्, ९ उल्लेख १० अपह्नुति, ११ निश्चय, १२ उत्प्रेक्षा, १३ अतिशयोक्ति, १४ तुल्ययोगिता १५ दीपक, १६ प्रतिवस्तूपमा, १७ दृष्टान्त, १८ निदर्शना, १९ व्यतिरेक, २० सहोक्ति, २१ विनोक्ति, २२ समासोक्ति, २३ परिकर, २४ श्लेष, २५ अप्रस्तुतप्रशंसा, २६ पर्यायोक्ति, २७ अर्थान्तरन्यास, २८ काव्यलिङ्ग, २९ अनुमान, ३० हेतु, ३१ अनुकूल, ३२ आक्षेप, ३३ विभावना, ३४ विशेषोक्ति, ३५ विरोध, ३६ असङ्गति, ३७ विषम, ३८ सम, ३९ विचित्र, ४० अधिक, ४१ अन्योन्य, ४२ विशेष, ४३ व्याघात, ४४ कारणमाला, ४५ मालादीपक, ४६ एकावली, ४७ सार, ४८ यथासंख्य, ४९ पर्याय, ५० परिवृत्ति, ५१ परिसंख्या, ५२ उत्तर, ५३ अर्थापत्ति, ५४ विकल्प, ५५ समुच्चय, ५६ समाधि, ५७ प्रत्यनीक, ५८ प्रतीप, ५९ मीलित, ६० सामान्य, ६१ तद्गुण, ६२ अतद्गुण, ६३ सूक्ष्म, ६४ व्याजोक्ति, ६५ स्वभावोक्ति, ६६ भाविक, ६७ उदात्त, ६८ संसृष्टि, ६९ सङ्कर। इनके अतिरिक्त सात रसवत् अलङ्कारो का भी वर्णन है—रसवत्, ऊर्जस्वी, प्रेयसमाहित, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता।

'साहित्यदर्पण' में तीन नवीन अलङ्कारों का वर्णन है—भाषासम, अनुकूल एवं निश्चय तथा अनुप्रास के दो नये भेद वर्णित हैं—श्रुत्यनुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास। इस पर चार टीकाएँ उपलब्ध हैं—मथुरानाथ शुक्ल कृत टिप्पण, गोपीनाथ रचित प्रभा, अनन्तदास (विश्वनाथ कविराज के पुत्र) कृत लोचन तथा रामचरण तर्कवागीश कृत विवृति। आधुनिक युग मे भी 'लक्ष्मी' नामक टीका रची गयी है जो चौखम्भा विद्या-भवन से प्रकाशित है। 'साहित्यदर्पण' के दो हिन्दी अनुवाद हुए हैं—क—पं० शालग्रामशास्त्रिकृत 'विमला' टीका। ख—डॉ० सत्यव्रत सिंह कृत 'शशिकला' हिन्दी व्याख्या चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

सीतास्वयंवर (महाकाव्य)—इसके प्रणेता श्री नागराज हैं जिन्होंने १९४० ई० में 'सीतास्वयंवर' की रचना की थी। इसका प्रकाशन मैसूर से हुआ है। इसकी अन्य रचनाएं हैं—'*स्तोत्रमुक्ताफल*', '*भारतीय देशभक्तचरित*', '*शबरीविलास*' आदि। 'सीतास्वयंवर' मे १६ सर्ग हैं। इसका कथानक वाल्मीकि रामायण पर आधृत है। इसके प्रमुख प्रकरण हैं—विश्वामित्रागमन, सगरोदन्त, गङ्गावतरण, अहल्योद्धरण, कार्मुक-भंजन तथा जानकी-परिणय। इसकी शैली अलंकृत होकर भी सरल है। शरदि गगनसंस्थं चन्द्रिकेवामृतांशुं नवजलदमनल्पं चञ्चलेवातिनीलम्। कनकखचित-वल्ली मेरुशैलं यथा वा नरवरमभिपेदे जानकी जीवितेशम् ॥ १५।१०१।

सिद्धयोग—आयुर्वेदशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ। इसके रचयिता का नाम वृन्द है। इनका समय नवम शतक के आसपास है। इस ग्रन्थ की रचना 'चरक', 'सुश्रुत' एवं 'वाग्भट' के आधार पर की गयी है। इसमें रोगों का क्रम 'माधवनिदान' के अनुसार रखा गया है तथा अपने अनुभवसिद्ध योगो का भी संग्रह है—नानामतप्रथित-दृष्टफलप्रयोगैः प्रस्तावयवाक्यसहितैरिह सिद्धयोगः। वृन्देन मन्दमतिनात्महितार्थिनाऽयं संलिख्यते गदविनिश्चयप्रक्रमेण ॥ वृन्द के एक टीकाकार के अनुसार इसमें पश्चिम में उत्पन्न होने वाले रोगों का अधिक वर्णन है, अतः इसका लेखक मारवाड़ या पश्चिम भारत का रहा होगा। इस ग्रन्थ मे सरल एवं ललित भाषा मे योगों का संग्रह किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना मुख्यतः चिकित्सा के दृष्टिकोण से हुई है और रोगो का निदान नहीं है। लेखक ने खनिज धातुओं का भी प्रयोग कम किया है किन्तु लोह तथा मण्डूर के प्रयोग का बाहुल्य दर्शाया है। इसकी एकमात्र टीका श्रीकण्ठरचित 'कुसुमावली' प्राप्त होती है।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार।

सिद्धसेन दिवाकर—जैनदर्शन के आचार्य। इनका समय ५ वीं शताब्दी है। वृद्धवादी नामक व्यक्ति इनके गुरु थे। सिद्धसेन दिवाकर जैन-न्याय के प्रस्थापक माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं—१. न्यायावतार जिसकी टीका १० वीं शताब्दी मे सिद्धर्षि द्वारा लिखी गयी है। २—सन्मति-तर्क—इस पर अभयसूरि ने टीका लिखी है। ३—तत्त्वार्थ टीका ४—कल्याण-मन्दिर स्तोत्र।

आधारग्रन्थ—भारतीय दर्शन—आचार्य बलदेव उपाध्याय।

सुबन्धु—संस्कृत गद्यकाव्य के प्रौढ़ लेखक एवं 'वासवदत्ता' नामक पुस्तक के रचयिता। इनका जीवनवृत्त एवं तिथिक्रम ज्ञात नहीं है। इनकी एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' उपलब्ध है, किन्तु उससे भी इनके जीवनवृत्त की जानकारी प्राप्त नहीं होती। इनके सम्बन्ध मे विद्वानों में मतैक्य नही है। कुछ विद्वान् इन्हें काश्मीरी स्वीकार करते हैं तो कुछ के अनुसार ये मध्यदेशीय हैं। बाण के 'हर्षचरित' में उत्तरांचल के कवियो की श्लेषप्रियता का उल्लेख है। सुबन्धु ने अपनी रचना को 'प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्ध' कहा है, अतः इस दृष्टि से ये काश्मीरी सिद्ध होते हैं। यह श्लेषप्रियता संभवतः इनकी प्रान्तगत विशेषता के कारण हो सकती है। यदि सुबन्धु की रचना में श्लेषाधिक्य का कारण उनका उदीच्य होना स्वीकार करें तो उन्हें काश्मीरी माना जा सकता है।

'संस्कृत-काव्यकार पृ० २५९। इनके माता-पिता, जाति, वंश आदि के सम्बन्ध मे कहीं कोई भी सूचना प्राप्त नहीं होती। अनुमान से ज्ञात होता है कि ये वैष्णव थे क्योकि 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में इन्होंने सरस्वती की वन्दना करने के पश्चात् दो श्लोकों में कृष्ण की भी स्तुति की है और एक श्लोक शिव के सम्बन्ध मे लिखा है। दण्डी, बाण एवं सुबन्धु की पूर्वापरता के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नहीं है। डॉ० कीथ एवं एस० के० डे को दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट का क्रम स्वीकार है—तथा डॉ० पिटर्सन बाण को सुबन्धु का पूर्ववर्त्ती मानते हैं। इन्होने अपने कथन की पुष्टि के लिए अनेक तर्क दिये है और बतलाया है कि सुबन्धु ने बाण की शैली एवं वर्ण्यविषय का अनुकरण किया है। [दे० पिटर्सन द्वारा सम्पादित कादम्बरी की भूमिका (अंगरेजी) पृ० ७१–७१ तथा संस्कृतकाव्यकार-डॉ० हरिदत्त शास्त्री पृ० २६०–६१]। अनेक भारतीय विद्वान् भी सुबन्धु को बाण का परवर्त्ती मानने के पक्ष म है। पर, सुबन्धु को बाण का पूर्ववर्त्ती स्वीकार करने वाले विद्वानो के भी तर्क बेजोड है। इनके अनुसार वामन कृत 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में सुबन्धु एवं बाणभट्ट दोनो के ही उद्धरण है। वामानाचार्य का समय ८०० ई० से भी पूर्व है, अतः दोनो ही लेखक इससे पूर्व हुए होगे। 'राघवपाण्डवीय' नामक महाकाव्य के प्रणेता कविराज ने सुबन्धु, बाण तथा अपने को वक्रोक्ति में दक्ष बतलाया है। कविराज का समय १२०० ई० है। इन्होने नामो के क्रम मे सुबन्धु को पहले रखा है, अतः सुबन्धु की पूर्वभाविता निश्चित हो जाती है। सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः। वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा॥ प्राकृत काव्य 'गउडवहो' मे सुबन्धु का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु बाण का नहीं। इस काव्य की रचना ७००–७२५ ई० के मध्य हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि अष्टम शताब्दी के आरम्भिक काल मे बाण प्रसिद्ध नहीं हो सके थे, जब कि सुबन्धु को प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। मंखककृत 'श्रीकण्ठचरित' मे क्रमानुसार सुबन्धु का नाम प्रथम है और बाण का पीछे। बाण ने अपनी 'कादम्बरी' में 'अतिद्वयी' का समावेश कर गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' एवं 'वासवदत्ता' का संकेत किया है। 'अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा।' इन मन्तव्यो के आधार पर सुबन्धु बाण के समकालीन या परवर्त्ती न होकर पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते है। स्वयं बाण ने भी 'हर्षचरित' मे 'वासवदत्ता' का नामोल्लेख किया है पर विद्वान् उसे किसी अन्य वासवदत्ता का मानते हैं। विभिन्न ग्रन्थो एवं सुभाषित संग्रहो मे 'सुबन्धु' एवं उनकी कृति के सम्बन्ध मे अनेकानेक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। १. कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया। शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥ हर्षचरित। १।११। २. सुबन्धुः किल निष्क्रान्तो बिन्दुसारस्य बन्धनात्। तस्यैव हृदयं बद्ध्वा वत्सराजो'''॥ दण्डी, अवन्तिसुन्दरीकथा ६। ३ रसैनिरंन्तरं कण्ठे गिरा श्लेषैकलग्नया। सुबन्धुर्विदधे हृष्टा करे बदरवज्जगत्॥ सुभाषितावली १६, हरिहर।

सुबन्धु ने ग्रन्थ के आरम्भ में अपनी श्लेष-प्रियता का उल्लेख किया है। श्लोक संख्या १३। सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः। प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्॥ 'सरस्वती देवी ने वर प्रदान कर जिस पर अनुग्रह किया

है और जो सज्जनों का एकमात्र बन्धु है उस सुबन्धु ने प्रत्येक अक्षर में श्लेष-द्वारा सप्रपञ्च रचना की निपुणता का परिचायक वासवदत्ता नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है।' सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता' का सम्बन्ध उदयन एवं वासवदत्ता से नहीं है। इसमें कवि ने ऐसी काल्पनिक कथा का वर्णन किया है जो उसके मस्तिष्क की उपज है। सुबन्धु अलंकृत गद्यशैली के प्रणेता एवं श्लेष-प्रिय गद्य-काव्य-लेखक हैं। इन्होंने अपनी रचना के प्रत्येक अक्षर को श्लेषमय बनाने की प्रतिज्ञा की है और इसमें वे पूर्णतः सफल हुए हैं। इनकी शैली में बौद्धिकता का प्राधान्य एवं रागात्मकता का कम निर्वाह किया गया है। इन्होंने पात्रों के हर्ष-दुःखादि भावों के चित्रण में अपनी वृत्ति को लीन न कर शाब्दी-क्रीडा-प्रदर्शन की ओर अधिक ध्यान दिया है। सुबन्धु प्रेम-कथा का वर्णन करते हुए भी नायक-नायिका के हृदय के भावों को पूर्णतः अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हो सके, कारण कि इनका ध्यान श्लेष-बाहुल्य एवं शैली पक्ष के अलंकरण की ओर अधिक था। इन्होंने नाना विद्याओं—मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि दर्शनों—के पाण्डित्य प्रदर्शन के चक्कर में पड़कर तथा यत्नसाधित अलंकार-योजना के कारण पाठक की बुद्धिमात्र को ही चमत्कृत करने का प्रयास किया है। भाव-पक्ष के चित्रण में इन्होंने उत्कृष्ट कवित्वशक्ति का परिचय नहीं दिया है और इनकी शैली कृत्रिम अलंकार-प्रयोग के कारण बोझिल हो गयी है। वासवदत्ता के विरह-वर्णन में कवि सानुप्रासिक छटा को ही अधिक महत्त्व देता है—'सुकान्ते कान्तिमति! मन्दं मन्दमपनय बाष्पबिन्दून्। यूथिकालङ्कृते यूथिके। संचारय नलिनीदलतालवृन्तेनार्द्रवातान्। एहि भगवति निद्रे। अनुगृहाण माम्, धिक्, इन्द्रियैरपरैः, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यङ्गानि विधिना। भगवन् कुसुमायुध तवायमञ्जलिः, अनुवशो भव भावयति माद्दशे जने। मलयानिल सुरतमहोत्सवदीक्षागुरो वह यथेष्टम्, अपगता मम प्राणाः, इति बहुविधं भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं संमुमूर्च्छ। पृ० १४३—४४। 'सुन्दरी कान्तिमती! धीरे-धीरे आँसू पोछ दो। जूही के पुष्पों से अलंकृत यूथिके! कमल-पत्र के पंखे से शीतल हवा करो। भगवति निद्रे! आओ, मुझ पर कृपा करो। अन्य (नेत्रातिरिक्त) इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है, ब्रह्मा ने सब इन्द्रियाँ नेत्र स्वरूप क्यों नहीं बनाई। (अतः) उसे धिक्कार है। भगवन् कुसुमायुध! यह हाथ जोड़ती हूँ, इस अनुरक्तजन पर कृपा करो। सुरतरूपी महोत्सव के प्रवर्तक! मलयानिल! अब तुम इच्छानुकूल चलो, मेरे तो प्राण निकल ही गए, इस तरह अनेक प्रकार से कहती हुई सखियों के साथ मूच्छित हो गयी'। पाण्डित्य-प्रदर्शन के मोह में सुबन्धु रसों का सम्यक् परिपाक नहीं करा सके और अवसर का बिना विचार किये ही श्लेष, यमक, विरोधाभास, परिसंख्या एवं मालादीपक की इन्होंने सेना तैयार कर दी है अवश्य ही, इन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों की रचना कर तथा श्लेष-प्रेम का त्याग कर रोचक शैली में इस काव्य का प्रणयन किया है वहाँ सहृदयों के मनोरंजन का पर्याप्त साधन प्रस्तुत हो गया है, परन्तु ऐसे स्थल क्वचित् कदाचित् ही दिखाई पड़ते हैं। बाण की भाँति इन्होंने लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग न कर अधिकांशतः छोटे-छोटे वाक्यों का ही सन्निवेश किया है। इन्होंने लम्बे-लम्बे समासान्त पदावली के प्रति भी अधिक रुचि प्रदर्शित नहीं की है। किसी विषय का वर्णन करते

समय इनके वाक्य बड़े हो जाते हैं तथा कहीं-कहीं तो ये बीस पृष्ठों तक के भी वाक्य लिख देते हैं। अनेक स्थलों पर इन्होंने स्वाभाविकता का भी निर्वाह किया है।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत क्लासिकल लिटरेचर—डॉ० दासगुप्त एवं डॉ० डे। ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५. संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ६. वासवदत्ता—(संस्कृत-हिन्दी-टीका)—हिन्दी अनुवादक पं० शंकरदेव शास्त्री (चौखम्बा प्रकाशन)।

सुदर्शन सूरि—विशिष्टाद्वैतवाद नामक वैष्णव दर्शन के आचार्य सुदर्शन सूरि हैं। इनका समय १३वीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनके गुरु का नाम वरदाचार्य था। इन्होने रामानुजाचार्य रचित श्रीभाष्य के ऊपर 'श्रुत-प्रकाशिका' नामक व्याख्या-ग्रंथ की रचना की थी। इसके अन्य ग्रंथ हैं—'श्रुतदीपिका', 'उपनिषद्-व्याख्या', 'तात्पर्यदीपिका' (यह 'वेदार्थसंग्रह' की टीका है) तथा श्रीमद्भागवत की 'शुकपक्षीय-टीका'।

दे० भारतीय दर्शन—आ० बलदेव उपाध्याय।

सुधाकर द्विवेदी—बीसवीं शताब्दी के असाधारण ज्योतिर्विद्। इन्हें वर्तमान ज्योतिशास्त्र का उद्धारक माना जाता है। ये ज्योतिष के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के भी मर्मज्ञ थे। फ्रेंच, अँगरेजी, मराठी तथा हिन्दी आदि भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। इनका जन्म १८६० ई० मे हुआ था और मृत्यु १९२२ ई० में हुई। ये बनारस के संस्कृत कॉलिज में ज्योतिष तथा गणित के अध्यापक थे। इन्हे सरकार की ओर से महामहोपाध्याय की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इन्होने अनेक प्राचीन ग्रन्थों (ज्योतिष-विषयक) की शोधपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं तथा अर्वाचीन उच्च गणित-विषयक कई ग्रन्थों की रचना की है। इनके ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैं—१. दीर्घवृत्त लक्षण। २. वास्तव चन्द्रशृंगोन्नतिसाधन—इसमें प्राचीन भारतीय ज्योतिष शास्त्रियो—लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर प्रभृति—के सिद्धान्तों में दोष दर्शाते हुए तद्विषयक यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुशार विचार प्रस्तुत किये गए हैं। ३ विचित्र प्रश्न—इसमे ज्योतिष संबंधी २० कठिन प्रश्नों को हल किया गया है। ४. चुचरचार—इसमे यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रहकक्ष का विवेचन है। ५. पिंडप्रभाकर—इसमे भवन-निर्माण संबंधी बातों का वर्णन है। ६. धराभ्रम—इसमे पृथ्वी की दैनिक गति पर विचार किया गया है। ७. ग्रहग्रहण में ग्रहों का गणित वर्णित है। ८. गणक-तरंगिणी—इसमे प्राचीन भारतीय ज्योतिषशास्त्रियों की जीवनी एवं उनकी पुस्तकों का विवरण है। इनके अन्य मौलिक ग्रन्थो मे 'गोलीय रेखागणित' एवं पाश्चात्य ज्योतिषशास्त्री यूक्लिड की ६ठी, ११वीं एवं १२वीं पुस्तक का संस्कृत में श्लोकबद्ध अनुवाद है। इनके द्वारा रचित टीका ग्रन्थो का विवरण इस प्रकार है। क—यंत्रराज के ऊपर 'प्रतिभाबोधक' नामक टीका। ख—भास्कराचार्य रचित 'लीलावती' एवं 'बीजगणित' की 'सोपपत्तिक टीका'। ग—भास्कराचार्य-रचित 'करण-कुतूहल' नामक ग्रन्थ की 'वासनाविभूषण' टीका। घ—वराहमिहिर की 'पंचसिद्धान्तिका' पर 'पंचसिद्धान्तिका-

प्रकाश' नाम्नी टीका । ङ—'सूर्यसिद्धान्त' की 'सुधावर्षिणी' टीका । च—'ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त' की टीका । छ—'महासिद्धान्त' (आर्यभट्ट द्वितीय रचित) की टीका । ज—'ग्रहलाघव' की सोपपत्तिक' टीका । इन्होंने हिन्दी में भी 'चलनकलन', 'चकराशिकलन', एवं 'समीकरणमीमांसा' नामक उच्चस्तरीय गणित ग्रन्थों का प्रणयन किया है ।

आधारग्रन्थ—१. भारतीय ज्योतिष का इतिहास—डॉ० गोरखप्रसाद । २. भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ।

सुभद्रा—ये संस्कृत की कवयित्री हैं । इनकी रचनाओं का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता, पर वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में इनका केवल एक पद्य उद्धृत है । राजशेखर ने इनके कविताचातुर्य का वर्णन इस प्रकार किया है—पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे मधु सुभद्रया । कवीनां च वचोवृत्ति-चातुर्येण सुभद्रया ॥ सूक्तिमुक्तावली ४।९५ । इनके निम्नांकित श्लोक में स्नेह के दुष्परिणामों का वर्णन है—दुग्धं च यत्तदनु यत् क्वथितं ततोनु, माधुर्यमस्य हृतमुन्मथितं च वेगात् । जातं पुनर्घृतकृते नवनीतवृत्ति-स्नेहो निबन्धनमनर्थपरम्पराणाम् ॥ स्नेह अनर्थ की परम्परा है । बेचारे दूध के ऊपर स्नेह के कारण ही इतनी आपत्तियां आती हैं । उसे खूब औटा जाता है तथा कांजी या खटाई डालकर इसकी मिठास दूर की जाती है । पुनः इसे जोरों से मथा जाता है तब यह घी के लिए मक्खन का रूप धारण करता है ।

सुश्रुतसंहिता—आयुर्वेदशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ । इस ग्रन्थ के उपदेष्टा का नाम काशिराज धन्वन्तरि है । सम्पूर्ण ग्रन्थ सुश्रुत को सम्बोधित कर रचा गया है । सुश्रुत ने धन्वन्तरि से शल्यशास्त्र-विषयक प्रश्न पूछा है और धन्वन्तरि ने इसी विषय का उपदेश दिया है । इसमें पाँच स्थानों—सूत्र, निदान, शरीर, चिकित्सा एवं कल्प—में से शल्य का ही प्राधान्य है । वर्तमान रूप में उपलब्ध 'सुश्रुतसंहिता' के प्रतिसंस्कर्त्ता नागार्जुन माने जाते हैं । ये द्वितीय शताब्दी में हुए थे और दक्षिण के राजा सातवाहन के मित्र थे । सुश्रुत में १२० अध्याय हैं किन्तु इसमें उत्तरतन्त्र की गणना नहीं होती, यह इसका परिशिष्ट या खिल है । अध्यायों का विवरण इस प्रकार है—सूत्रस्थान ४६, निदान १६, शारीर १०, चिकित्सास्थान ४०, कल्पस्थान ८ तथा उत्तरतन्त्र ६६ । शल्यतन्त्र का क्रियात्मक ज्ञान देना इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है । इसमें शवच्छेद सीखने की विधि भी बतलायी गयी है । इसमें वणितागार (अस्पताल) का विवरण, यन्त्रशस्त्र (इनकी संख्या १०० है) तथा इनके प्रकार—स्वस्तिक, सन्देश, ताल, नाडी-शलाका एवं उपयन्त्र, शस्त्र की तीक्ष्णता की पहचान, प्लास्टिक सर्जरी आदि विषयों के वर्णन अत्यन्त विस्तृत हैं । सुश्रुत में रोगियों के पास स्त्रीपरिचारिकाओं का रहना निषिद्ध है । इसके अनेक टीकाकारों के विवरण प्राप्त होते हैं । प्रथम टीकाकार जेज्जट थे । दूसरे टीकाकार हैं गयदास, इनकी टीका का नाम पंजिका है । इस पर अन्य १४ टीकाग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । हिन्दी में कविराज अम्बिकादत्त शास्त्री ने इसकी टीका लिखी है ।

आधारग्रन्थ—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास—श्री अत्रिदेव विद्यालंकार ।

सूक्तिसंग्रह या सुभाषित-संग्रह—संस्कृत में ऐसे कतिपय पद्य-संग्रह हैं जिनमें ऐसे कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं होतीं। इन संग्रहो में शताधिक कवियों के लुप्त ग्रन्थों के संग्रह विद्यमान हैं। इनमे मुक्तकों के अतिरिक्त प्रबन्धकाव्यों के भी अंश उपलब्ध होते हैं। इन सूक्तिग्रन्थों ने अनेक विस्मृत कवियो को प्रकाश मे लाकर उनका परिचय दिया है संस्कृत साहित्य के इतिहास-लेखन में इन ग्रन्थो की उपादेयता असंदिग्ध है।

१—सुभाषित रत्नकोष—इसके संग्रहकर्त्ता के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, पर जिन कवियों की रचनाएँ इसमें संकलित हैं वे एक हजार ईस्वी से इधर की नहीं हैं। इसका रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। २—सुभाषितावली—इसके संग्रहकर्त्ता काश्मीरनिवासी वल्लभदेव थे। यह विशाल संग्रहग्रन्थ है जिसमें १०१ पद्धतियों से ३५२७ पद्यों का संग्रह है। इसमें अवान्तर कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। अतः इसका संग्रह १५वीं शती से पूर्व नहीं हुआ होगा। इसमे कवि तथा काव्यों की संख्या ३६० है। [बम्बई संस्कृत सीरीज से प्रकाशित]। ३—सदुक्तिकर्णामृत—इसका संकलन १२०५ ई० में किया गया था। इसके संकलनकर्त्ता का नाम श्रीधरदास है, जो बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष बटुकदास के पुत्र थे। इसमे बंगाल के बहुत से अज्ञात कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। इसका विभाजन पाँच प्रवाहों में किया गया है—अमर, शृंगार, चाटु, उपदेश तथा उच्चावच। प्रत्येक प्रवाह वीचियों में विभाजित है, जिनकी संख्या ४७६ है। प्रत्येक वीचि मे पाँच श्लोक हैं। श्लोको की कुल संख्या २३८० है। इसमें उद्धृत कवियों की संख्या ४८५ है जिनमें ५० सुप्रसिद्ध कवि हैं और शेष ४३५ कवि अज्ञात है। [म० म० रामावतार शर्मा द्वारा सम्पादित तथा पंजाब ओरियण्टल सीरीज सं० १५ से प्रकाशित]। ४—सूक्तिमुक्तावली—इसके संग्रहकर्त्ता का नाम जल्हण था। वे दक्षिण भारत नरेश कृष्ण के मन्त्री थे तथा इनके पिता का नाम लक्ष्मीदेव था। इनका समय १३वीं शती है। इसमें संस्कृत कवियों की प्रशस्तियाँ हैं। ५—शार्ङ्गधरपद्धति—इसके रचयिता दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर हैं। इसका रचनाकाल १३६२ ई० है। इसमें श्लोको की संख्या ४६८९ है तथा ये श्लोक १६३ विषयो मे विभक्त हैं। ६—पद्यावली—इसके संग्रहकर्त्ता श्री रूपगोस्वामी हैं। इसमें कृष्णपरक सूक्तियों का संग्रह है। पद्यावली मे १२५ कवियों के ३८६ पद्य हैं। इसका प्रकाशन ढाका विश्वविद्यालय से १९३४ ई० में हुआ है। ७—सूक्तिरत्नहार—१४वीं शती के पूर्वार्द्ध में सूर्यकलिंगराय ने इसका संकलन किया था। ये दाक्षिणात्य थे। यह अनन्तशयन ग्रन्थमाला से १९३९ ई० में प्रकाशित हो चुका है। ८—पद्यवेणी—इसके संकलनकर्त्ता का नाम वेणीदत्त है जो नीलकण्ठ के पौत्र तथा जगज्जीवन के पुत्र थे। 'पद्यवेणी' मे मध्ययुगीन कवियों की रचनाओं का संकलन है जिसमें १४४ कवियो की रचनाएँ संगृहीत हैं जिनमें कई स्त्री कवियों की भी रचनाएँ हैं। ९—पद्यरचना—इसके रचयिता लक्ष्मणभट्ट आंकोलर हैं। इसमें १५ परिच्छेद है—देवस्तुति, राजवर्णन, नायिकावर्णन, ऋतु, रस आदि। कुल पद्यों की

संख्या ७५६ है। इसका समय १७वीं शताब्दी का प्रथमार्ध है। १९०८ ई० में काव्य-माला ग्रन्थमाला ८९, बम्बई से प्रकाशित। १०—पद्यामृततरंगिणी—हरिभास्कर इसके संग्रहकर्त्ता हैं। समय १७वीं शती का उत्तरार्द्ध। ११—सूक्तिसुन्दर—इसके संकलनकर्ता का नाम सुन्दरदेव है। इसका समय १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। १२—कवीन्द्र वचन समुच्चय—१२वीं शताब्दी की हस्तलिखित (नेपाल की) प्रति के आधार पर श्री एफ० डब्ल्यू० टॉमस द्वारा इसका सम्पादन हुआ है। इसमे ५२५ पद्यों का संग्रह है।

आधारग्रन्थ—१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री ए० बी० कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—डॉ० दासगुप्त एवं डे। ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ४. संस्कृत सुकवि समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय।

सोड्ढल कृत उदयसुन्दरीकथा—इस चम्पूकाव्य के रचयिता सोड्ढल, गुजराती कायस्थ थे। ये कोंकण के तीन राजाओं—चित्तराज, नागार्जुन तथा मुम्मुनि के राजदरबार मे समादृत थे। इनका शिलालेख १०६० ई० का प्राप्त होता है। चालुक्यनरेश वत्सराज की प्रेरणा से इन्होंने 'उदयसुन्दरीकथा' की रचना की थी। 'सुभाषितमुक्तावली' मे इनकी प्रशस्ति की गयी है। तस्मिन् सुवंशे कविमौक्तिकाना-मुत्पत्तिभूमौ क्वचिदेकदेशे। कश्चित् कविः सोड्ढल इत्यजातनिष्पत्तिरासीज्जलबिन्दु-रेखा॥ अङ्केन तेनोदयसुन्दरीति कथा दुरालोकिनि काव्यमार्गे। सारस्वतालोककलैकदृष्टा सृष्टा कविमन्यमनोरथेन॥ 'उदयसुन्दरीकथा' में प्रतिष्ठाननगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह वर्णित है। इसमें बाणकृत 'हर्षचरित' का अनुकरण किया गया है। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, संख्या ११ काव्यमीमांसा के अन्तर्गत १९२० ई० मे हुआ है।

आधारग्रन्थ—चम्पूकाव्य का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन—डॉ० छवि-नाथ त्रिपाठी।

सोमदेव सूरि—प्राचीन भारत के राजशास्त्रप्रणेता एवं कवि। इन्होंने 'नीति-वाक्यामृत' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इनका लिखा हुआ 'यशस्तिलकचम्पू' नामक ग्रन्थ भी है। ये जैनधर्मावलम्बी थे। इनके द्वारा रचित तीन अन्य ग्रन्थ भी हैं किन्तु वे अभी तक अनुपलब्ध है—युक्ति-चिन्तामणि, त्रिवर्गमहेन्द्रमातलि संकल्प तथा षण्णव-तिप्रकरण। इसका रचनाकाल १०१६ वि० सं० के आसपास है। नीतिवाक्यामृत गद्यमय है जिसमें छोटे-छोटे वाक्य एवं सूत्र हैं। इसका विभाजन बत्तीस समुद्देश्यों (अध्यायों) में हुआ है जिसमें कुल सवा पन्द्रह सौ सूत्र हैं। इसमें वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—विद्या का विभाजन—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता एवं दण्डनीति, राज्य की उत्पत्ति, राजा का दिव्यपद, दैवी राजा की विशेषता, राज्य का स्वरूप, राजा की नियुक्ति के सिद्धान्त—क्रमसिद्धान्त, आचारसम्पत्ति सिद्धान्त, विक्रमसिद्धान्त, बुद्धिसिद्धान्त, संस्कारसिद्धान्त, चरित्रसिद्धान्त, शारीरिक परिपूर्णतासिद्धान्त उत्तरा-

धिकारविधि, राजा के कर्त्तव्य, वर्णाश्रमव्यवस्था का सम्यक् संचालन, प्रजापरिपालन, न्यायव्यवस्था की स्थापना, असहाय तथा अनाथ–परिपोषण, राजा की दिनचर्या, राजा की रक्षा, मन्त्रियों की आवश्यकता, मन्त्रिसंख्या, मन्त्र-निर्णय, मन्त्रिपद की योग्यता–निवासयोग्यता, आचार-शुद्धि, अभिजन-विशुद्धि, अव्यसनशीलता, अव्यभिचार-विशुद्धि, व्यवहारतन्त्रज्ञता, अस्त्रज्ञता, उपधाविशुद्धि, मन्त्रसाध्यविषय दूतपद, दूत की योग्यता, भेद, कर्त्तव्य एवं दूत की अवध्यता, चर एवं उसकी उपयोगिता, चर-भेद न्यायालय एवं उसके भेद, शासन-प्रमाण, कोश एवं उसके गुण, विविध कर, दुर्ग-भेद, षाड्गुण्यनीति, सैन्यबल, युद्ध-निषेध, युद्धविधि आदि ।

आधारग्रन्थ—भारतीयराजशास्त्र प्रणेता—डॉ० श्यामलाल पाण्डेय ।

सौन्दरनन्द (महाकाव्य)—इसके रचयिता महाकवि अश्वघोष हैं [दे० अश्वघोष]। इस महाकाव्य की रचना १८ सर्गों मे हुई है। इसके दो हस्तलेख नेपाल के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित हैं, जिनके आधार पर हरप्रसाद शास्त्री ने इसका प्रकाशन 'बिब्लिओथेका इण्डिका' मे कराया था। इसका सम्बन्ध बुद्ध के चरित से ही है। उसमे कवि ने यौवनजनित उद्दाम काम तथा धर्म के प्रति उत्पन्न प्रेम के विषम संघर्ष की कहानी को रोचक एवं महनीय भाषा मे व्यक्त किया है। यह 'बुद्धचरित' की अपेक्षा काव्यात्मक गुणो से अधिक मण्डित तथा उससे सुन्दर एवं अधिक स्निग्ध है [दे० बुद्धचरित]। इस काव्य मे अश्वघोष ने बुद्ध के सौतेले भाई नन्द एव उनकी पत्नी सुन्दरी की मनोरम गाथा का वर्णन किया है। 'बुद्धचरित' में कवि का ध्यान मुख्यतः उनके सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने, बौद्धधर्म के उपदेशों तथा दर्शन पर ही केन्द्रित था पर 'सौन्दरनन्द' मे वह अपने को संकीर्ण धरातल से ऊपर उठाकर काव्य के विशुद्ध पक्ष की ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई पड़ता है। इसकी कथा इस प्रकार है—प्रथम से तृतीय सर्ग मे बताया गया है कि बुद्ध के विमातृज भ्राता नन्द परम सुन्दर थे और उनकी पत्नी सुन्दरी अत्यन्त रूपवती थी। दोनों एक दूसरे के प्रति चक्रवाकी एवं चक्रवाक की भाँति आसक्त थे। मंगलाचरण के स्थान पर बुद्ध का उल्लेख कर कपिलवस्तु का वर्णन किया गया है। शाक्यों की वंशपरम्परा, सिद्धार्थ का जन्म आदि 'बुद्धचरित' की कथा यहाँ संक्षेप में वर्णित है। द्वितीय सर्ग में राजा शुद्धोदन का गुण-कीर्तन एवं बुद्ध के जन्म की कथा है। इसी सर्ग में नन्द के जन्म का भी वर्णन है। तृतीय सर्ग मे गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति आदि घटनाएँ वर्णित हैं। चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ नन्द एवं सुन्दरी के विहार एवं रति-विलास से होता है। कामासक्त नन्द एवं सुन्दरी को कोई दासी आकर सूचित करती है कि उसके द्वार पर बुद्ध भिक्षा माँगने के लिए आये थे, पर भिक्षा न मिलने के कारण लौट कर चले गए। चूँकि दोनो प्रणय-क्रीडा में निमग्न थे, अतः किसी का ध्यान तथागत की ओर न गया। बुद्ध के चले जाने के पश्चात् नन्द लज्जित एवं दुःखित होकर उनसे क्षमा-याचना के लिए चल पड़ता है। पंचम सर्ग में नन्द मार्ग मे बुद्ध को देखकर प्रणाम करता है और बुद्ध उसके हाथ में भिक्षा का पात्र रख कर उसे धर्म में दीक्षित होने का उपदेश देते हैं, तथा नन्द काषाय धारण कर लेता है। षष्ठ सर्ग में कवि ने पति की प्रतीक्षा

करती हुई सुन्दरी का करुण चित्र अंकित किया है। सप्तम सर्ग में नन्द अपनी प्रिया का स्मरण कर दुःखी होकर घर लौटने की चेष्टा करता है। अष्टम सर्ग में वह अपने दुःख का कारण किसी श्रमण से पूछता है और वह भिक्षु उसे उपदेश देता है, तथा स्त्रियों की निन्दा करते हुए उसे तपस्या का विघ्न बतलाता है। दशम सर्ग में बुद्ध द्वारा नन्द को समझाने का वर्णन है। जब बुद्ध को ज्ञात हुआ कि नन्द व्रत तोडना चाहता है तो वे उसे आकाश मे लेकर उड जाते हैं और उसे एक बन्दरी को दिखाकर पूछते हैं कि क्या तुम्हारी पत्नी इससे भी सुन्दर है तो नन्द उत्तर देता है कि 'हाँ'। इस पर बुद्ध रूपवती देवांगनाओं को दिखाकर पूछते हैं कि क्या तुम्हारी पत्नी इनसे भी सुन्दर है ? इस पर नन्द कहता है कि मेरी पत्नी इनके सामने कानी बन्दरी की भाँति है। अप्सराओ को देखकर नन्द अपनी पत्नी को भूल जाता है और उन्हें प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है। बुद्ध उसे बताते हैं कि तपस्या करने पर ही तुम उन्हें प्राप्त कर सकोगे। एकादश सर्ग मे आनन्द नामक एक भिक्षु उसे अप्सरा की प्राप्ति के लिए तपस्या करने पर उसकी खिल्ली उडाता है। बारहवें सर्ग मे नन्द तथागत के पास जाकर निर्वाण की प्राप्ति का उपाय पूछता है। त्रयोदश सर्ग में बुद्ध द्वारा नन्द को उपदेश देने का वर्णन है। चतुर्दश सर्ग म इन्द्रियो पर विजय-प्राप्ति के कर्त्तव्य का वर्णन तथा पचदश सर्ग मे मानसिक-शुद्धि की विधि बतलायी गयी है। षष्ठदश सर्ग में बोद्धधर्मानुसार चार आर्य सत्य-वर्णन एवं सप्तदश सर्ग में अमृत-तत्त्व की प्राप्ति का निरूपण है। अन्तिम सर्ग मे नन्द की तपस्या, मार पर विजय एवं उसके अज्ञान का नष्ट होकर ज्ञानोदय होने का वर्णन है। अन्तिम दो श्लोकों में ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य पर विचार किया गया है—इत्यर्हतः परमकारुणिकस्य शास्तुः मूर्ध्ना वचश्च चरणौ च समं गृहीत्वा। स्वस्थः प्रशान्त हृदयो विनिवृत्तकार्यः पार्श्वान्मुनेः प्रतिययौ विमदः करीव ॥ १८।६१ ॥

स्कन्दपुराण—क्रमानुसार तेरहवाँ पुराण। 'स्कन्दपुराण' पुराणों में बृहत्काय पुराण है जिसमें ८१ हजार श्लोक हैं। इस पुराण का नामकरण शिव के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय तथा देवताओ के सेनानी के नाम पर हुआ है। इसमें स्वयं स्वामी कार्त्तिकेय ने ही शैव तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। यह पुराण ६ संहिताओं एवं सात खण्डों मे विभाजित है। इसके दो संस्करण उपलब्ध होते हैं—खण्डात्मक तथा संहितात्मक। 'मत्स्यपुराण' के ५३ वे अध्याय मे इस पुराण का जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार स्कन्द ने तत्पुरुष कल्प के प्रसंग म 'स्कन्दपुराण' में नाना चरित उपाख्यान एवं माहेश्वरधर्म का विवेचन किया था, जिसमें ८१ हजार एक सौ श्लोक थे। यत्र माहेश्वरान् धर्म्मानधिकृत्यच षण्मुखः। कल्पे तत्पुरुषे वृत्ते चरितैरुपबृंहितम् ॥ स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीति निगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते। खण्डात्मक विभाजन मे इसके खण्डो की संख्या सात है—माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, रेवाखण्ड, तापीखण्ड और प्रभासखण्ड। इसकी संहितानुसार श्लोक संख्या इस प्रकार है—

१. सनत्कुमार संहिता—	३६,०००
२ सूत संहिता —	६,०००
३. शंकर संहिता—	३०,०००
४ वैष्णव संहिता—	५,०००
५. ब्राह्म संहिता—	३,०००
६. सौर संहिता—	१,०००
	८१,०००

संहिताओ में 'सूतसंहिता' का शिवोपासना के कारण सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें वैदिक एवं तान्त्रिक दोनो प्रकार की पूजाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस संहिता के ऊपर माधवाचार्य ने 'तात्पर्य दीपिका' नामक अत्यन्त प्रामाणिक एवं विस्तृत टीका लिखी है जो आनन्दाश्रम से प्रकाशित हो चुकी है। इस संहिता के चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड को 'शिवमाहात्म्य' कहते हैं जिसके १३ अध्यायों में शिवमहिमा का निदर्शन किया गया है। इसके द्वितीय खण्ड को 'ज्ञानयोग' खण्ड कहते हैं जिसके बीस अध्यायों में आचार धर्म तथा हठयोग की प्रक्रिया का विवेचन है। इसके तृतीय खण्ड को 'मुक्तिखण्ड' कहते है जिसमे मुक्ति के साधनों का वर्णन नौ अध्यायो में है। चतुर्थ खण्ड का नाम है 'यज्ञवैभवखण्ड' जो सभी खण्डों में बडा है तथा इसके पूर्व एव उत्तर भाग के नाम से दो विभाग किये गए हैं। इसके पूर्व भाग में ४७ अध्याय एवं उत्तर भाग मे २० अध्याय है। पूर्व भाग में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तो को शिवभक्ति से संपृक्त करते हुए वर्णित किया गया है। इस संहिता के उत्तर खण्ड में दो गीताएँ मिलती हैं, जो १२ एवं ८ अध्यायों में समाप्त हुई हैं। इनमें प्रथम का नाम 'ब्रह्मगीता' एवं द्वितीय का नाम 'सूतगीता' है।

'शंकरसंहिता' कई खण्डों मे विभाजित है। इसका प्रथम खण्ड सम्पूर्ण संहिता का आधा है, जिसमें १३००० हजार श्लोक हैं। इसमे सात काण्ड हैं—सम्भवकाण्ड, आसुरकाण्ड, माहेन्द्रकाण्ड, युद्धकाण्ड, देवकाण्ड, दक्षकाण्ड तथा उपदेशकाण्ड। सनत्कुमार संहिता के अतिरिक्त अन्य संहितायें सम्प्रति उपलब्ध नही होती।

खण्डक्रम से स्कन्दपुराण का परिचय—१. माहेश्वरीखण्ड—इसमे केदार एवं कुमारिका नामक दो खण्ड हैं। इनमें शिव-पार्वती की बहुविध लीलाओं का वर्णन किया गया है। २. वैष्णवखण्ड—इसमें जगन्नाथ जी के मन्दिर, पूजाविधान, माहात्म्य तथा तद्विषयक अनेक उपाख्यान दिये गए हैं और शिवलिंग के आविर्भाव एवं माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन है। ३. ब्रह्मखण्ड—इस खण्ड मे ब्रह्मारण्य एवं ब्रह्मोत्तर नामक दो खण्ड हैं। प्रथम मे धर्मारण्य नामक स्थान की महत्ता का प्रतिपादन है तो द्वितीय खण्ड मे उज्जैनी के महाकाल की प्रतिष्ठा एवं पूजन-विधि का वर्णन है। ४ काशीखण्ड—इसमें काशी स्थित समस्त देवताओ तथा शिवलिंग का माहात्म्य वर्णित है और काशी का भूगोल दिया गया है। ५. रेवाखण्ड—इस खण्ड में नर्मदा नदी के उद्भव की कथा दी गयी है तथा उसके तटवर्ती समस्त तीर्थों का वर्णन है। रेवाखण्ड में ही सुप्रसिद्ध 'सत्यनारायणव्रत' की कथा वर्णित है। ६ अवन्तिखण्ड—इस खण्ड में अवन्ती या

उज्जैन स्थित विभिन्न शिवलिङ्गों के माहात्म्य एवं उत्पत्ति का वर्णन किया गया है, तथा महाकालेश्वर का विस्तारपूर्वक वर्णन है। ७ ताप्तीखण्ड—इसमें ताप्ती नदी के तीरवर्ती सभी तीर्थों का वर्णन किया गया है। इसके तीन परिच्छेद हैं—विश्वकर्मा उपाख्यान, विश्वकर्मावंशाख्यान तथा हाटकेश्वर माहात्म्य। इस खण्ड में नागर ब्राह्मणों का वर्णन मिलता है। ८. प्रभासखण्ड—इसमें प्रभास क्षेत्र का विस्तारपूर्वक विवेचन है जो द्वारिका के भौगोलिक विवरण के कारण महत्त्वपूर्ण है।

इस पुराण में पुराणविषयक अन्य सभी विषयों का विस्तारपूर्वक विवेचन है। यह शैव पुराण है। इसके समय-निरूपण के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की बातें कही गयी हैं। जगन्नाथ मन्दिर का वर्णन होने के कारण विल्सन प्रभृति विद्वान् इसका रचनाकाल ११ वीं शताब्दी निश्चित करते है, पर यह मत युक्ति-संगत नहीं है। संसार के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' के 'यदारुप्लवते' मन्त्र में जगन्नाथ जी के मन्दिर का वर्णन है। इस पुराण के प्रथमखण्ड मे 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रसिद्ध श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' की छाया पर लिखित श्लोक प्राप्त होता है तथा काशी-खण्ड के २४ वें अध्याय में बाणभट्ट की शैली का अनुकरण करते हुए कई श्लोक रचित हैं, जिनमे परिसंख्या अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं—विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वत्सु च कर्हिचित्। नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः॥ २४।९। विद्वानों ने इसका समय सप्तम एवं नवम शती के मध्य माना है। इस पुराण में वेदविषयक सामग्री पर्याप्तरूपेण प्राप्त होती है।

आधारग्रन्थ—१. स्कन्दपुराण (प्रथम प्रकाशन) बनारस १८८६ ई०। २. स्कन्दपुराण (द्वितीय प्रकाशन) कलकत्ता १८७३–८०। ३ स्कन्दपुराण (तृतीय प्रकाशन) बम्बई १८८१ ई०। ४ स्कन्दपुराणांक (हिन्दी)—गीता प्रेस, गोरखपुर। ५. प्राचीन भारतीय साहित्य—श्रीविन्टरनित्स भाग १, खण्ड २ (हिन्दी अनुवाद)। ६. पुराण-तत्त्व-मीमांसा—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी। ७ पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय। ८ पुराणस्थ वैदिक सामग्री का अनुशीलन—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य। ९. पुराणविषयानुक्रमणिका—डॉ० राजबली पाण्डेय। १०. स्कन्दपुराण—ए स्टडी (अंगरेजी) भाग १, २ (शोधप्रबन्ध) डॉ० ए० बी० एल० अवस्थी।

स्तोत्रकाव्य या भक्तिकाव्य—संस्कृत मे स्तोत्रसाहित्य अत्यन्त विशाल एवं हृदयग्राही है। धार्मिक भावना का प्राधान्य होने के कारण स्तोत्रकाव्य का प्रचार जनसाधारण एवं भक्तजनो में अधिक हुआ है। इसमे अनुराग तथा विराग दोनों प्रकार की भावनाएँ परिव्याप्त है। अतः आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से इसकी लोकप्रियता सर्वव्यापक है। अपने आराध्य की महत्ता और अपनी दीनता का निष्कपट भाव से प्रदर्शन करते हुए संस्कृत भक्त कवियों ने अपूर्व तन्मयता के साथ हृदय के स्वतःस्फुरित उद्‌गारो को व्यक्त किया है। वह भगवान् की दिव्य विभूतियो का दर्शन कर आश्चर्य-चकित हो जाता है एवं उनकी विशालहृदयता तथा असीम अनुकम्पा को देखकर उनके अहेतुक स्नेह का गान करते हुए आत्मविस्मृत हो जाता है। अपने जीवन की क्षुद्रता और भगवान् का अकारण स्नेह उसके हृदय में भावों का उद्वेलन कराने लगते

हैं, फलतः वह इष्टदेव की गाथा गाकर अपूर्व आत्मतोष प्राप्त करता है। इन स्तोत्रों में मोहकता, हृदयग्राहकता, गेयता तथा कलात्मक समृद्धि का ऐसा रासायनिक सम्मिश्रण है, जिससे इसकी प्रभावोत्पादकता अधिक बढ़ जाती है। सांगीतिक तत्त्वों के अतिरिक्त शब्द-सौष्ठव एवं अभिव्यक्ति-सौन्दर्य स्तोत्रों की व्यंजना मे अधिक आकर्षण भर देते हैं। संगीतात्मक परिवेश में काव्यात्मक लालित्य की योजना कर संस्कृत के भक्त कवियों ने ऐसे साहित्य का सर्जन किया है जिसका मादक आकर्षण आज भी उसी रूप मे है।

स्तोत्रसाहित्य की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है जिसमें कुछ का तो प्रकाशन हुआ है, किन्तु अधिकांश साहित्य अभी तक अप्रकाशित है, और वह हस्तलेखों के रूप में वर्त्तमान है। मद्रास सरकार की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मे ही पाण्डुलिपियों की सूची तीन भागों मे प्रकाशित हो चुकी है (भाग १८–२०)। श्री एस० पी० भट्टाचार्य ने १९२५ ई० में 'इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली' भाग १ (पृ० ३४०–६०) मे इस साहित्य का सौन्दर्योद्घाटन कर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया था, किन्तु इस सम्बन्ध मे व्यापक अध्ययन अभी शेष है।

स्तोत्रसाहित्य की परम्परा का प्रारम्भ वेदो से ही होता है। वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे मन्त्र है 'जिनमे मानव आत्मा का ईश्वर के साथ बालक अथवा प्रेमिका जैसा सम्बन्ध स्थापित' किया गया है। "ये गीत कोमल और मर्मस्पर्शी आकांक्षाओ, तथा पाप की चेतना मे उत्पन्न सत्तानिवृत्ति की दु:खद भावना से युक्त है। यह गीतात्मक विशुद्धता कदाचित् ही कभी पूर्णतया निखर सकी है, फिर भी, सूक्तो का विकास एक अभिजात परम्परा के रूप मे हुआ है, जिसने क्रमशः एक साहित्यिक प्रकार के रूप मे एक विशिष्ट रूप तथा स्वतन्त्र मर्यादा अर्जित कर ली है।" संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास पृ० ४४२। 'रामायण', 'महाभारत' तथा पुराणो मे भी ऐसे स्तोत्र प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते हैं। 'रामायण' मे 'आदित्यहृदयस्तोत्र' मिलता है जिसे अगस्त्य मुनि ने राम को बतलाया था। [रामायण लंकाकाण्ड]। 'महाभारत' में 'विष्णुसहस्रनाम' प्रसिद्ध स्तोत्र है जिसे भीष्म ने युधिष्ठिर को उपदेशित किया था। 'मार्कण्डेयपुराण' मे भी प्रसिद्ध 'दुर्गास्तोत्र' है। इन ग्रन्थो मे स्तोत्रकाव्य का रूप तो अवश्य दिखाई पड़ता है, किन्तु कालान्तर मे स्वतन्त्र रचनाओ के रूप में पृथक् साहित्य लिखा गया। कालान्तर में हिन्दू भक्तो के अतिरिक्त जैन एवं बौद्ध कवियो ने भी स्तोत्र-काव्य की रचना की। संख्या एवं गुण दोनो ही दृष्टियो से हिन्दू भक्तिकाव्यो का साहित्य जैन एवं बौद्धो की कृतियों से उत्कृष्ट है।

हिन्दू-स्तोत्र-साहित्य—स्तोत्रों में प्रमुख स्थान 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' को दिया जाता है। इसकी रचना शिखरिणी छन्द मे हुई है तथा प्रत्येक पद्य में शिव की महिमा का बखान करते हुए एक कथा दी गयी है। सम्प्रति इसके ४० श्लोक प्राप्त होते हैं, पर मधुसूदन सरस्वती ने ३२ श्लोकों पर ही अपनी टीका लिखी है। मालवा में नर्मदा नदी के तट पर स्थित अमरेश्वर महादेव के मन्दिर मे 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' के ३१

श्लोक उत्कीर्ण हैं जिसका समय ११२० संवत् (१०६३ ई०) है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि उस समय तक इसके ३१ श्लोक ही प्रचलित थे तथा अन्तिम ९ श्लोक आगे चल कर बढ़ा दिये गए हैं। इसके टीकाकारों ने 'पुष्पदन्त' को इसका रचयिता माना है, पर मद्रास की कई पाण्डुलिपियों में कुमारिल भट्टाचार्य ही इसके रचयिता के रूप में हैं। इसका रचनाकाल ८वीं शताब्दी है। मयूरभट्ट और बाणभट्ट की दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। दोनों सगे सम्बन्धी थे तथा दोनों की प्रतिष्ठा कान्यकुब्ज नरेश हर्षवर्धन के यहाँ थी। कहा जाता है कि किसी कारण मयूर एवं बाण दोनों को कुष्ठरोग हो गया था, जिसके निवारण के लिए उन्होंने क्रमशः 'सूर्यशतक' एवं 'चण्डीशतक' की रचना स्रग्धरावृत्त में की। दोनों में ही १००-१०० श्लोक हैं तथा ह्रासोन्मुखयुग की विशेषताओं का आकलन है। श्लेषसमासान्त पदावली की गाढ़-बन्धता तथा आनुप्रासिक सौन्दर्य के द्वारा संगीतात्मक संक्रान्तता की व्यंजना इनकी अपनी विशेषता है। दोनों मे बाण की रचना कलात्मक समृद्धि की दृष्टि से बढ़कर है।

कालान्तर में जब स्तोत्र-सम्बन्धी प्रचुर साहित्य की रचना हुई तो कवियों का ध्यान उत्तान शृंगार, उक्तिवैचित्र्य एवं सुष्ठु शब्द-विन्यास की ओर गया। फलतः लक्ष्मण आचार्य कृत 'चण्डी-कुच-पंचाशिका' प्रभृति रचनाओं का निर्माण हुआ, जिसमें पचास श्लोकों मे देवीजी के कुचों का वर्णन है। शंकराचार्य ने दो सौ वेदान्त-विषयक स्तोत्रों की रचना की है। अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक होते हुए भी उन्होंने विष्णु, शिव, शक्ति, गंगा आदि देवों का स्तवन किया है। इनमे दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ भक्ति का मणिकांचन योग दिखाई पड़ता है। 'शिवापराधक्षमापन' 'मोहमुद्गर', 'चर्पटमंजरिका', 'दशश्लोकी', 'आत्मशतक' आदि श्लोकों में 'दार्शनिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि मे भक्ति की मधुर अभिव्यक्ति हुई है।' [दे० शंकराचार्य]। उन्होंने 'सौन्दर्यलहरी' में देवीजी का दिव्य सौन्दर्य अंकित किया है। कुलशेखर कृत 'मुकुन्दमाला' एवं यामुनाचार्य के 'आलम्बन्दारस्तोत्र' श्रीवैष्णवमत के स्तोत्रों मे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। 'मुकुन्दमाला' में केवल ३४२ श्लोक हैं एवं इनमें हृदयावर्जन की अपूर्व क्षमता है। लीलाशुक रचित 'कृष्णकर्णामृत' महाप्रभु चैतन्य का परमप्रिय स्तोत्र है। इसमे भाव सुन्दर एवं चमत्कारी हैं तथा भाषा रसपेशल है। इसमें ३०० श्लोक तथा तीन आश्वास हैं। यह संस्करण दाक्षिणात्य है पर बंगाल वाले संस्करण में एक ही आश्वास है, जिसमें ११२ श्लोक हैं।

वेंकटध्वरी—ये मद्रास निवासी श्रीवैष्णव थे। इनका स्थितिकाल १७वीं शताब्दी है। इन्होंने 'लक्ष्मीसहस्र' नामक स्तोत्र काव्य मे लक्ष्मीजी की स्तुति एक सहस्र श्लोकों में की है। इनकी कविता मे पाण्डित्य-प्रदर्शन का आग्रह है तथा श्लोक के प्रति प्रबल आकर्षण दिखाई पड़ता है।

सोमेश्वर—इन्होंने १०० श्लोकों में 'रामशतक' की रचना स्रग्धरा वृत्त में की है। इसमे राम की जीवन-कथा का वर्णन कर स्तुति की गयी है। भगवान् विष्णु के ऊपर अनेक स्तोत्र लिखे गए हैं। शंकराचार्य नामक कवि कृत 'विष्णुपदादिकेशान्तवर्णन'

नामक ५१ स्रग्धरावृत्त में लिखित स्तोत्र में भगवान् विष्णु का नखशिख वर्णित है। इसके रचयिता आद्यशंकराचार्य न होकर कोई पीठाधीश हैं। मधुसूदन सरस्वती (१६वीं शती) ने 'आनन्दमन्दाकिनी' नामक स्तोत्र में विष्णु के स्वरूप का मधुर चित्रण किया है। इसमें १०२ पद्य हैं। माधवभट्ट कृत 'दानलीला' कृष्ण एवं गोपियों की विशेष लीला के आधार पर रचित है। इसमे ४८ पद्य हैं तथा रचनाकाल १६२८ संवत् (१५७१ ई०) है। अप्पय दीक्षित ने 'वरदराजस्तव' नामक स्तोत्र की रचना कांची के भगवान् वरदराज की स्तुति में की है। इसमें १०६ श्लोकों में भगवान् के रूप का वर्णन किया गया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने 'भामिनीविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें पाँच लहरियाँ हैं—करुणा, गंगालहरी, अमृतलहरी (यमुनालहरी), लक्ष्मीलहरी एवं सुधालहरी (सूर्यलहरी) [दे० पण्डितराज जगन्नाथ]। इन स्तुतियों में कविता का स्वाभाविक प्रवाह तथा कल्पना का मोहक चित्र है।

शैवस्तोत्र—भगवान् शंकर की स्तुति अनेक कवियों ने लिखी है। काश्मीरी कवियो ने अनेक शिवस्तोत्रों की रचना कर स्तोत्र साहित्य को समृद्ध किया है। इनमें उत्पलदेव कृत 'शिवस्तोत्रावली' एवं 'जगद्धरभट्ट' रचित 'स्तुतिकुसुमांजलि' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। 'शिवस्तोत्रावली' में २१ विभिन्न स्तोत्र संकलित हैं तथा 'स्तुतिकुसुमांजलि' में ३८ स्तोत्र हैं, जिनमे १४१५ श्लोक हैं। अन्य शैव स्तोत्र हैं—नारायण पण्डिताचार्य की 'शिवस्तुति' (१३ श्लोक) तथा गोकुलनाथ कृत 'शिवशतक'। ये १८वीं शती मे हुए थे।

जैन स्तोत्र—जैन स्तोत्रो में मानतुंग कृत 'भक्तामर' तथा सिद्धसेन दिवाकर रचित 'कल्याणमन्दिर' भाषा-सौष्ठव एवं भावों की मंजुल अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। चौबीस तीर्थंकरों के पृथक् पृथक् समय में स्तोत्र लिखे गए हैं। समन्तभद्र से जिन प्रभसूरि तक के आचार्यों ने 'चतुर्विंशिका' मे स्तोत्रो का संग्रह किया है। इसके अतिरिक्त श्रीवादिराज कृत 'एकीभावस्तोत्र' सोमप्रभाचार्य रचित 'सूक्तिमुक्तिवली' तथा जम्बूगुरु कृत 'जिनशतक' है।

बौद्धस्तोत्र—महायान सम्प्रदाय के बौद्धों ने संस्कृत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इस सम्प्रदाय में शुष्कज्ञान की अपेक्षा भक्तितत्त्व पर अधिक बल दिया गया है। शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन ने भी भक्तिस्तोत्रो की रचना की थी। इनके चार स्तोत्र 'चतुःस्तव' के नाम से विख्यात हैं। इन पर कालिदास की छाया दिखाई पड़ती है। नवम शती के वज्रदत्त ने 'लोकेश्वरशतक' स्तोत्र की रचना की, जिसमें स्रग्धरा छन्द मे अवलोकितेश्वर की स्तुति है। कहा जाता है कि इन्होंने कुष्ठरोग के निवारणार्थ ही इस ग्रन्थ की रचना की थी। सर्वज्ञमित्र (८ वीं शताब्दी) ने देवी तारा-सम्बन्धी स्तोत्र की रचना ३७ श्लोकों में की है। ये काश्मीरक थे। इनकी रचना का नाम है 'आर्यातारा-स्रग्धरास्तोत्र'। बंगाल-निवासी रामचन्द्र कविभारती (१२४५ ई०) ने 'भक्तिशतक' की रचना कर भगवान् बुद्ध की स्तुति की है। यह भक्ति-सम्बन्धी प्रौढ कृति है। आचार्य हेमचन्द्रकृत 'अन्ययोगव्यवच्छेदिका' नामक स्तोत्रग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक स्तोत्र प्रसिद्ध हैं, जैसे—'देवीपुष्पांजलि' तथा

'शिवताण्डवस्तोत्र' आदि। इनके लेखकों का पता नहीं चलता है, पर इनकी लोकप्रियता अधिक है। अधिकांश स्तोत्रग्रन्थों में श्रृङ्गारिकता, शब्दजाल एवं श्लेष तथा यमक के प्रति आकर्षण दिखाई पड़ता है। स्तोत्र-साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि इस पर कामशास्त्र का भी प्रभूत प्रभाव पड़ा और नखशिख की परिपाटी का समावेश हुआ। उत्तरकालीन ग्रन्थों मे पाण्डित्य-प्रदर्शन, चमत्कार-सृष्टि, शब्द-चमत्कार एवं उक्तिवैचित्र्य की प्रधानता दिखाई पड़ी। इस पर तन्त्रशास्त्र का भी प्रभाव पड़ा।

आधारग्रन्थ—१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री कीथ (हिन्दी अनुवाद)। २. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत क्लासिकल लिटरेचर—डॉ० दास गुप्त एवं डे। ३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ संस्कृत साहित्य का नूतन इतिहास श्रीकृष्ण चैतन्य। ५. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री गैरोला।

स्फोटायन—पाणिनि के पूर्ववर्त्ती संस्कृत वैयाकरण जिनका समय मीमांसकजी के अनुसार २९५० वि० पू० है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं चलता। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' के एक स्थान पर इनके मत को उद्धृत किया है। अवङ् स्फोटायनस्य। ६।१।१२३। पदमञ्जरीकार हरिदत्त ने 'काशिका' मे इस सूत्र की व्याख्या करते हुए बताया है कि स्फोटायन स्फोटवाद के प्रवर्तक आचार्य हैं। भारद्वाज के 'वैमानिकशास्त्र' मे स्फोटायन विमानशास्त्र के भी विशेषज्ञ माने गए हैं—बृहद्विमानशास्त्र पृ० ७४। इनके सम्बन्ध मे अन्य विवरण प्राप्त नहीं होते। स्फोटवाद (व्याकरणशास्त्र का) अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है। इसका प्रवर्तक होने के कारण इनका महत्त्व असंदिग्ध है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—भाग १—पं० युधिष्ठिर मीमांसक।

स्मृति (धर्मशास्त्र)—स्मृतियों का निर्माण हिन्दू-धर्म की व्यापकता एवं चरम विकास का द्योतक है। 'स्मृति' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता था जिसके अन्तर्गत षड्वेदांग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र सभी विषयों का समावेश हो जाता है। कालान्तर मे स्मृति का प्रयोग संकीर्ण अर्थ मे, धर्मशास्त्र के लिए होने लगा जिसकी पुष्टि मनु के कथन से भी होती है—श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। मनुस्मृति २।१०। 'तैत्तिरीय आरण्यक (१।२) मे भी स्मृति शब्द का उल्लेख है और गौतम (१।२) तथा वसिष्ठ (१।४) भी स्मृति को धर्म का उपादान मानते हैं। प्रारम्भ में स्मृतिग्रन्थों की संख्या कम थी, किन्तु आगे चलकर पुराणों की भाँति इनकी भी संख्या १८ हो गयी। गौतम ने (११।१९) मनु के अतिरिक्त किसी भी स्मृतिकार का उल्लेख नही किया है। बौधायन ने अपने को छोड़कर जिन सात धर्मशास्त्रकारों के नाम लिये हैं, वे हैं—औपजंघनि, काश्य, काश्यप, गौतम, प्रजापति, मौदगल्य तथा हारीत। वसिष्ठ ने केवल पाँच नामों की परिगणना की है—गौतम, प्रजापति, मनु, यम तथा हारीत। मनु ने ६ स्मृतिकारों का उल्लेख किया है—

अत्रि, उतथ्य के पुत्र, भृगु, वसिष्ठ, वैखानस एवं शौनक। सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य ने २० धर्मशास्त्रकारों का नामोल्लेख किया है तथा कुमारिल ने १८ धर्मसंहिताओं के नाम दिये हैं। 'चतुर्विंशतिमत' नामक ग्रन्थ में २४ धर्मशास्त्रकारों के नाम हैं। पैठीनसि ने ३६ स्मृतियों का उल्लेख किया है तथा 'वृद्धगौतमस्मृति' में ५७ धर्मशास्त्रों का नाम आया है। 'मित्रोदय' में १८ स्मृति, १८ उपस्मृति तथा २१ अन्य स्मृतिकारों के नाम आये हैं। स्मृतिकार—मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अंगिरा, योगीश्वर, प्रचेता, शातातप, पराशर, संवर्त, उशना शंख, लिखित, अत्रि, विष्णु, आपस्तम्ब एवं हारीत। उपस्मृतिकार—नारदः पुलहो गार्ग्यः पौलस्त्यः शौनकः क्रतुः। बौधायनो जातुकर्णो विश्वामित्रः पितामहः॥ जाबालिर्नाचिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षिकश्यपौ। व्यासः सनत्कुमारश्च शान्तनुर्जनकस्तथा॥ व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातूकर्ण्यः कपिञ्जलः। बौधायनश्च कणादो विश्वामित्रस्तथैव च॥ पैठीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मृतिविधायकाः। अन्य २१ स्मृतिकार—वसिष्ठो नारदश्चैव सुमन्तुश्च पितामहः। विष्णुः कार्ष्णाजिनिः सत्यव्रतो गार्ग्यश्च देवलः॥ जमदग्निर्भारद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। आत्रेयश्च गवेश्च मरीचिर्वत्स एव च। पारस्करश्चर्ष्यशृङ्गो वैजवापस्तथैव च॥ इत्येते स्मृतिकर्तार एकविंशतिरीरिताः॥ वीरमित्रोदय, परिभाषा प्र०, पृ० १८।

वैसे प्रमुख स्मृतियाँ १८ हैं जिनके निर्माताओं के नाम इस प्रकार हैं—मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस्, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वसिष्ठ, नारद, भृगु तथा अंगिरा। उपर्युक्त सभी स्मृतियां उपलब्ध नहीं होतीं। 'मानवधर्मशास्त्र' नामक स्मृतिग्रन्थ सर्वाधिक प्राचीन है जिसके प्रणेता मनु हैं। इसके कतिपय अंश प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, किन्तु इस समय 'मनुस्मृति' के नाम से जो ग्रन्थ प्राप्त है उसका मेल 'मानवधर्मशास्त्र' के प्राप्तांश से नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मानवधर्मशास्त्र' के सूत्रों के आधार पर 'मनुस्मृति' का निर्माण हुआ है [दे० मनुस्मृति]।

स्मृतियों की परम्परा—'महाभारत' के शान्तिपर्व में 'मनुस्मृति' से मिलते-जुलते विषय का वर्णन है। उसमें ब्रह्मा द्वारा रचित एक 'नीतिशास्त्र' नामक ग्रन्थ का उल्लेख है, जिसमें एक लाख अध्याय थे तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का विस्तृत विवेचन था। आगे चल कर भगवान् शंकर ने उसे दस हजार अध्यायों में संक्षिप्त किया तथा पुनः इन्द्र ने उसे पांच हजार अध्यायों में संक्षिप्त कर 'बाहुदन्तकशास्त्र' की संज्ञा दी। तदनन्तर यही ग्रन्थ 'बार्हस्पत्यशास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसे शुक्राचार्य ने एक हजार अध्यायों में निर्मित किया। कालान्तर में यही ग्रन्थ ऋषि-मुनियों द्वारा मनुष्य की आयु के हिसाब से संक्षिप्त होता रहा [दे० महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ५९]। 'महाभारत' के इस विवरण से ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, शिल्प एवं रसायनशास्त्र का समावेश था। बृहस्पति ने धर्मशास्त्र के ऊपर बृहद्ग्रन्थ की रचना की थी। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी विविध ग्रन्थों से संग्रह कर लगभग २३०० श्लोकों का संग्रह बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है, जो 'बार्हस्पत्यशास्त्र' का ही अंश है। इसके संपादक श्रीरंगाचार्य का कथन है कि 'बृहस्प-

तिस्मृति' के अधिकांश उपलब्ध वचन ईशा पूर्व दूसरी शती के हैं। सम्प्रति 'मनुस्मृति' के अतिरिक्त 'नारदस्मृति', 'याज्ञवल्क्यस्मृति' एवं 'पराशरस्मृति' उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त अन्य स्मृतियां भी प्राप्त होती हैं जिनका प्रकाशन एवं हिन्दी अनुवाद तीन खण्डों में श्रीराम शर्मा द्वारा हो चुका है। कई स्मृतियो का प्रकाशन कलकत्ता से भी हुआ है।

स्मृतियों का विषय—धर्मशास्त्र के अन्तर्गत राजा-प्रजा के अधिकार-कर्त्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, व्यवस्था, वर्णाश्रमधर्म, नीति, सदाचार तथा शासन सम्बन्धी नियमों का विवेचन किया जाता है। स्मृतियों के माध्यम से भारतीय मनीषियों ने हिन्दूजीवन के सुदीर्घकालीन नियमों का क्रमबद्ध रूप प्रस्तुत किया है। शताब्दियों से प्रचलित सामाजिक रीति-नीति एवं व्यवस्था को सुव्यवस्थित करते हुए उन्हें प्रामाणिकता प्रदान करने का श्रेय स्मृतिग्रन्थों को ही है। अधिकांश स्मृति-ग्रन्थ श्लोकबद्ध हैं, किन्तु 'विष्णुस्मृति' मे गद्य का भी प्रयोग है। इन ग्रन्थों मे प्राचीन भारतीय समाज के रीति-रिवाजो तथा धार्मिक एवं राजनीतिक नियमों पर विस्तार-पूर्वक प्रकाश डाला गया है। स्मृतिग्रन्थो मे सामाजिक नियमों, वर्णाश्रम-व्यवस्था, पति-पत्नी के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का प्रतिपादन, प्रायश्चित्त, खाद्याखाद्य-विवेचन, दण्डनीति, उत्तराधिकार का नियम, शुद्धि, विवाह, उपनयन आदि सोलह संस्कार, राजधर्म आदि का विवेचन है। स्मृतिग्रन्थों मे वर्णित विधान आज के विधि-ग्रन्थो की तरह उस समय राजकीय नियम के रूप में प्रचलित थे। उनका महत्त्व आज भी हिन्दूसमाज के लिए उसी रूप मे विद्यमान है। स्मृतिग्रन्थ अपने युग के विधि ग्रन्थ ही थे, जिनकी स्वीकृति तत्कालीन शासनयन्त्र द्वारा हुई थी और इन्ही के आधार पर दण्डादि विधान किये जाते थे। स्मृतियों की रचना ६०० ई० पू० से लेकर १८०० ई० तक क्रमबद्ध रूप से होती रही है। इनके प्रमुख विषय या अंग चार हैं—आचार-विषयक, व्यवहार-सम्बन्धी, प्रायश्चित तथा कर्मफल। इनमें चतुर्वर्ण एवं चार आश्रमों के आधार पर विविध विधियो का विश्लेषण किया गया है। इस समय स्मृतियों की संख्या १५२ मानी जाती है। 'मनुस्मृति', 'याज्ञवल्क्यस्मृति', 'नारदस्मृति', 'पराशरस्मृति', 'बृहस्पतिस्मृति' के अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—'धर्मरत्न' (जीमूतवाहन, १२वीं शती), 'स्मृतिकल्पतरु' (लक्ष्मीधर), 'ब्राह्मणसर्वस्व' (हलायुध, १२वीं शती), 'स्मृतिचन्द्रिका' (देवण्णभट्ट, १३वीं शती), स्मृतिसंग्रह' (वरदराज), 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' (हेमाद्रि), 'मदनपारिजात' (विश्वेश्वर, १४वी शती), 'स्मृतिरत्नाकर' (चण्डेश्वर), 'कालमाधवीय' (माधव), 'चिन्तामणि' (वाचस्पति, १५वी शती), 'सरस्वतीविलास' (प्रतापरुद्रदेव, १६वीं शती), 'अग्निपरीक्षा' (रघुनन्दन), 'स्मृतिमुक्ताफल' (वैद्यनाथ दीक्षित), 'तिथिनिर्णय' (भट्टोजिदीक्षित, १७वीं शती), 'निर्णयसिन्धु' (कमलाकर भट्ट), 'भगवन्त-भास्कर' (नीलकण्ठ), 'वीरमित्रोदय' (मित्र मिश्र)।

आधारग्रन्थ—१. धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १—काणे (हिन्दी अनुवाद)। २. प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीदत्त ठाकुर।

स्वप्नवासवदत्त—यह महाकवि भास रचित उनका सर्वश्रेष्ठ नाटक है [दे० भास]। इसमें ६ अंक हैं तथा वत्सराज उदयन की कथा वर्णित है। उदयन राजा प्रद्योत के प्रासाद से वासवदत्ता का हरण कर विषय-वासना मे लिप्त हो राजकीय कार्यों से विरत हो जाता है। इसी बीच उसका शत्रु आरुणि उस पर आक्रमण कर देता है, पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण सचेत होकर सारी समस्याओ का समाधान निकाल लेता है। यौगन्धरायण मगधनरेश की पुत्री पद्मावती से राजा का (उदयन का) विवाह करा कर उसकी शक्तिविस्तार करना चाहता है, पर राजा वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त अनुरक्त है, अतः वह दाव-पेंच के द्वारा यह कार्य सम्पन्न करना चाहता है। वह वासवदत्ता से सारी योजना बनाकर इस कार्य में उसकी सहायता चाहता है। एक दिन जब राजा मृगया के लिए जाते हैं तो यौगन्धरायण यह अफवाह फैला देता है कि वासवदत्ता और वह दोनों ही आग में जल गए। जब राजा आखेट से आते हैं तो अत्यधिक संताप से पीडित होकर प्राणत्याग करने को उद्यत हो जाते हैं, पर अमात्यो के समझाने पर विरत होते हैं। अमात्य रुमण्वान् राज्य का संरक्षण करने लगता है। यौगन्धरायण परिव्राजक का वेष बनाकर वासवदत्ता को लेकर मगधनरेश की राजधानी मे घूमता है। उसी समय पद्मावती अपनी माता के दर्शन के लिए जाती है और कंचुकी आश्रमवासियो से पूछता है कि जिसे जो वस्तु अभीष्ट हो, वह मांगे। यौगन्धरायण आगे आकर पूछता है कि यह मेरी भगिनी प्रोषितपतिका है आप इसका संरक्षण करें। उसने दैवज्ञों से सुन रखा था कि पद्मावती के साथ उदयन का विवाह होगा, अतः वह वासवदत्ता को पद्मावती के साथ रखना उपयुक्त समझता है। पद्मावती के साथ उदयन का विवाह हो जाता है। राजा को वासवदत्ता की स्मृति आ जाती है और वे उसके वियोग में बेचैन हो जाते हैं। उनके नेत्रों मे आँसू आ जाते हैं। उसी समय पद्मावती आ जाती है और उदयन उससे बहाना बनाते हुए कहता है कि उसकी आँखों मे पुष्प-रेणु पड गए थे। पद्मावती शिरोवेदना के कारण चली जाती है और राजा सो जाता है। वह स्वप्न मे वासवदत्ता का नाम लेकर बडबडाने लगता है। उसी समय वासवदत्ता आती है और राजा को पद्मावती समझकर उसके पास सो जाती है। राजा वासवदत्ता का नाम पुकारने लगता है। वासवदत्ता वहाँ से चल देती है, पर नींद टूटने पर उदयन उसका पीछा करता है और धक्का लगने पर द्वार के पास गिर पडता है। विदूषक उसे बतलाता है कि यह स्वप्न था। एक दूत महासेन के यहाँ से आकर राजा उदयन एवं वासवदत्ता का चित्र-फलक लाकर राजा को देता है। पद्मावती उसे देखकर कहती कि ऐसी ही स्त्री एक मेरे पास भी है जिसे एक ब्राह्मण ने प्रोषितपतिका कह कर मेरे पास रखा था। राजा उससे तुल्य-रूपता की संभावना की बात कहता है, अतः वह कोई अन्य स्त्री होगी। इसी बीच यौगन्धरायण आ जाता है और पद्मावती से अपना न्यास मांगता है। वासवदत्ता आ जाती है और सभी लोग उसे पहचान लेते हैं। यौगन्धरायण राजा के चरणों पर गिर पडता है और अपने अविनय के लिए क्षमा मांगता है। राजा द्वारा इस रहस्य को पूछने पर वह बतलाता है कि दैवज्ञो ने पद्मावती के साथ आपके विवाह की बात

कही थी। इस समय मगध राज्य की सहायता से आपको पद्मावती और राज्य दोनों ही प्राप्त हुए। सभी लोग महासेन को यह संवाद सुनाने के लिए उज्जयिनी जाने को उद्यत होते हैं और भरतवाक्य के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है। राजा द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता को देखने के कारण इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया है।

'स्वप्नवासवदत्त' मे भास की कला की चरम परिणति दिखाई पड़ती है। नाटकीय संविधान, चरित्रांकन, संवाद, प्रकृति-चित्रण तथा रसोन्मेष सभी तत्त्वों का इस नाटक मे पूर्ण परिपाक हुआ है। यों तो इसके सभी दृश्य आकर्षक है, पर स्वप्न वाला दृश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसे देखकर दर्शक विशेष रूप से अभिभूत हो जाते हैं। धीरललित नायक उदयन की कलाप्रियता जहाँ एक ओर दर्शकों का आवर्जन करती है, वहीं कूटनीतिज्ञ यौगन्धरायण का बुद्धि-कौशल उन्हें चमत्कृत कर देता है। इसमे प्रधान रस शृंगार है तथा गौण रूप से हास्य एवं वीररस की भी उद्भावना की गयी है। वासवदत्ता तथा उदयन की कथा के आधार पर इसमे विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है। पद्मावती एवं वासवदत्ता के विनोद मे शिष्ट हास्य की झलक है तथा विदूषक के वचनो से हास्य की सृष्टि की गयी है।

चरित्र चित्रण—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह नाटक सफल है। इसमे प्रधान हैं—उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती एवं यौगन्धरायण।

उदयन—इस नाटक के नायक उदयन हैं। शास्त्रीय दृष्टि से वे धीरललित नायक हैं। वे कलाप्रेमी, विलासी तथा रूपवान् हैं और वीणा-वादन की कला मे दक्ष हैं। जब वे आखेट के लिए जाते हैं तभी लावाणक गृह की घटना घटती है। वे बहुपत्नीक होते हुए भी दाक्षिण्य गुण से युक्त हैं। एक पत्नी के रहने पर वे जान बूझकर द्वितीय विवाह नहीं करते, अपितु परिस्थितिवश वैसा करने को प्रस्तुत होते हैं। वासवदत्ता के प्रति उनका प्रगाढ प्रेम है और पद्मावती से परिणय होने पर भी वासवदत्ता की स्मृति उन्हे बनी रहती है। पद्मावती से विवाह करने के पश्चात् जब विदूषक उनसे वासवदत्ता के सम्बन्ध मे पूछता है तो वे उत्तर देते हैं कि पद्मावती वासवदत्ता की भाँति उनके मन को आकृष्ट नही करती। वासवदत्ता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् भी उसका प्रेम उनके हृदय मे विद्यमान रहता है। वे वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम का भाव रखते हुए भी पद्मावती के प्रति उदार बने रहते है और उसे किसी प्रकार से दुःख नही पहुँचाते। वासवदत्ता के वियोग में अश्रुसिक्त नेत्र होने पर वे पद्मावती से अश्रुपूर्णनेत्र होने का कारण पुष्पों के पराग नेत्रो मे पड जाने को कहते है। दाक्षिण्य गुण उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है और वे वासवदत्ता के प्रति अपने प्रेम को पद्मावती पर प्रकट नहो होने देते। राजा अत्यधिक कलापरायण है और मृदु होने के कारण उनमे क्रोध का अभाव है। पर, इनमे शौर्य की कमी नहीं है। पंचम अंक मे आरुणि पर रुमण्वान् द्वारा आक्रमण करने की बात सुन कर वे युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनमे गुरुजनों के प्रति सम्मान की भावना है। महासेन तथा अंगारवती के यहाँ

से आये हुए ब्राह्मण का सन्देश सुनने के लिए वे आसन से उठ जाते हैं। भास ने इस नाटक में उनके चरित्र को सुन्दर, उदात्त एवं मनोवैज्ञानिक बना दिया है।

वासवदत्ता—वासवदत्ता त्याग की प्रतिमूर्ति एवं रूपयौवनवती पतिप्राणारमणी है। वह स्वामी के हित के लिए अपना सर्वस्वत्याग देने मे भी नहीं हिचकती। वह उज्जयिनी-नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री है। जब उदयन उसके पिता के यहाँ बन्दी थे तभी उसका उनसे परिचय हुआ था, और अन्ततः यह परिचय प्रगाढ़ प्रेम के रूप मे परिणत हो गया। वासवदत्ता में स्वाभिमान का भाव भरा हुआ है। वह अत्यन्त उदार है तथा पद्मावती के प्रति ईर्ष्या का भाव प्रकट नहीं करती। वह पद्मावती के विवाह के समय स्वयं माला गूँथती है। वासवदत्ता काफी चतुर है तथा किसी भी स्थिति में अपनी मृत्यु के रहस्य को खोलती नहीं। वह धैर्य के साथ सारी परिस्थितियों का सामना करती है और अपने पति के लिए यौगन्धरायण के साथ दर-दर भटकती रहती है। वह गुणग्राहिणी भी है तथा सदैव पद्मावती के रूप की प्रशंसा किया करती है। उदयन का प्रेम ही उसके जीवन का संबल है और उनके मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह उल्लसित हो जाती है। वह भोजन बनाने के कार्य में काफी कुशल है और मिष्टान्न बनाकर विदूषक को प्रसन्न करती है। आदर्श रानी, पत्नी एवं सौत के रूप मे उसका चरित्र उज्ज्वल है। उसे पतिव्रता नारी के धर्म का पूर्ण परिज्ञान है, अत. वह परपुरुष के दर्शन से दूर रहती है।

पद्मावती—पद्मावती मगधनरेश की भगिनी है और वासवदत्ता की सौत होते हुए भी उसके प्रति अत्यधिक उदार है। वह अत्यन्त रूपवती है। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा वासवदत्ता किया करती है। विदूषक के अनुसार वह 'सर्वसद्गुणों का आकर' है। राजा भी उसके रूप की प्रशंसा करता है। वह राजा के प्रति प्रेम, अपनी सौत वासवदत्ता के प्रति आदर तथा अन्य जनों के प्रति सहानुभूति रखती है। वह वासवदत्ता की भांति आदर्श सौत है तथा उसके माता-पिता को अपने माता-पिता की भाँति आदर एवं सम्मान प्रदान करती है। वह बुद्धिमती नारी है। वासवदत्ता का रहस्य प्रकट होने पर वह अपने अविनय के लिए उससे क्षमा मागती है।

यौगन्धरायण—यौगन्धरायण आदर्श मन्त्री के रूप मे चित्रित है। इस नाटक की सारी घटना उसी की कार्यदक्षता एवं बुद्धिकौशल पर चलती है। उसमे स्वामिभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है और वह राजा के हित-साधन के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार रहता है। ज्योतिषियों के कथन को ही सत्य मान कर कि राजा पद्मावती का पति होगा यौगन्धरायण सारा खेल रच देता है। उसके बुद्धिकौशल एवं स्वामि-भक्ति के कारण राजा को उसका खोया हुआ राज्य प्राप्त होता है। सारे भेद के खुल जाने पर वह राजा के पैरों पर गिर पड़ता है।

आधारग्रन्थ—१. महाकविभास एक अध्ययन—पं० बलदेव उपाध्याय। २. संस्कृत नाटक—(हिन्दी अनुवाद)—कीथ।

हनुमन्नाटक—इस नाटक के रचयिता दामोदर मिश्र हैं। 'हनुमन्नाटक' को महानाटक भी कहा जाता है। इसके कतिपय उद्धरण आनन्दवर्द्धन रचित 'ध्वन्यालोक'

में हैं। आनन्दवर्द्धन का समय ८५० ई० है, अतः दामोदर मिश्र का समय नवीं शताब्दी ई० का प्रारम्भ माना जाता है। इस नाटक की रचना रामायण की कथा के आधार पर हुई है। यह दीर्घविस्तारी नाटक है तथा इसमें एक भी प्राकृत पद्य का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके दो संस्करण प्राप्त होते हैं—प्राचीन और नवीन। प्राचीन के प्रणेता दामोदर मिश्र माने जाते हैं तो नवीन का रचयिता मधुसूदनदास को कहा जाता है। प्राचीन मे १४ तथा नवीन मे ९ अंक प्राप्त होते हैं। इसमें गद्य की न्यूनता एवं पद्य का प्राचुर्य है। इसकी अन्य विशेषताएँ भी द्रष्टव्य हैं; जैसे विदूषक का अभाव तथा पात्रों का आधिक्य। इसमें विष्कम्भ भी नहीं है तथा सूत्रधार का भी अभाव है। मैक्समूलर के अनुसार यह नाटक न होकर नाटक की अपेक्षा काव्य के अधिक निकट है तथा इससे प्राचीन भारतीय प्रारम्भिक नाट्यकला का परिचय प्राप्त होता है। पिशेल तथा ल्यूडर्स ने इसे 'छायानाटक' की आरम्भिक अवस्था का द्योतक माना है। स्टेनकोनो, विंटरनित्स तथा अन्य पाश्चात्य विद्वान् भी इसी मत के समर्थक है, पर कीथ के अनुसार यह मत प्रामाणिक नहीं है। उन्होने बताया है कि इसकी रचना प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं हुई थी। इसके अन्तिम पद्य मे इसके रचयिता दामोदर मिश्र ज्ञात होते है। "रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकं यत्। सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत् क्रमेण ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥" १४।९६ [इस नाटक का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से हो चुका है]

हम्मीर महाकाव्य—इसके रचयिता है नयनचन्द्रसूरि। इसमें कवि ने अल्लाउद्दीन एवं रणथम्भोर के प्रसिद्ध राणा हम्मीर के युद्ध का आँखो देखा वर्णन किया है, जिसमें हम्मीर लड़ते-लड़ते काम आये थे। इस महाकाव्य मे १४ सर्ग एवं १५७२ श्लोक है। इसकी प्रमुख घटनाएँ है—अल्लाउद्दीन का हम्मीर से क्रुद्ध होने का कारण, रणथम्भोर के किले पर मुसलमानों का आक्रमण, नुसरत खाँ का युद्धस्थल में मारा जाना, अल्लाउद्दीन का स्वयं युद्ध क्षेत्र में आकर युद्ध करना, रतिपाल का विश्वासघात, राजपूतो की पराजय तथा जौहरव्रत एवं 'साका'। इन सारी घटनाओं का चित्र अत्यन्त प्रामाणिक है जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी होती है। यह महायुद्ध १३५७ विक्रम संवत् में हुआ था। कहा जाता है कि नयनचन्द्रसूरि ने इस युद्ध को स्वयं देखा था और उसके देखनेवालों से भी जानकारी प्राप्त की थी। यह वीररस प्रधान काव्य है। इसमें ओजमयी पदावली में वीररस की पूर्ण व्यंजना हुई है। कवि ने विनम्रतापूर्वक महाकवि कालिदास का ऋण स्वीकार किया हैं। नीचे के श्लोक पर 'रघुवंश' का प्रभाव है—"क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं क्वैषा पुनर्मे धिषणाऽनुरूपा। ततोऽस्मि-मोहाद् भुजयैकयैव मुग्धस्तितीर्षामि महासमुद्रम्" ॥ १।११ इसका प्रकाशन १८१८ ई० में बम्बई से हुआ है, सम्पादक हैं श्री नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने।

हरचरित चिन्तामणि—इस महाकाव्य के रचयिता हैं काश्मीर निवासी कवि जयद्रथ। इसमें भगवान् शंकर के चरित्र एवं लीलाओं का वर्णन है। इसकी रचना

अनुष्टुप् छन्द में हुई है। जयद्रथ 'अलंकारसर्वस्व' के टीकाकार जयरथ (विमर्शिनी टीका) के भाई हैं। ये काश्मीरनरेश राजा राजदेव या राज के सभा-कवि थे, जिनका शासनकाल १२०४ से १२२६ ई० है। इस काव्य की भाषा सरस एवं सुबोध है।

हरिवंश पुराण—हरिवंश पुराण महाभारत का परिशिष्ट कहा जाता है जिसे महाभारत का 'खिल' पर्व कहते हैं। विद्वानों का ध्यान हरिवंश को स्वतन्त्र पुराण मानने की ओर कम गया है। इसका स्थान न तो अठारह पुराणों में और न अठारह उपपुराणों में ही स्वीकार किया गया है। मुख्यतः पुराणों की संख्या १८ ही मानी गयी, फलतः हरिवंश को इससे वंचित हो जाना पड़ा। हरिवंश मे सभी पौराणिक तत्त्व विद्यमान हैं। इसीलिए कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने इसे महापुराणों मे परिगणित किया है। भारतीय विद्वान् इसे महाभारत का ही अंग मानते हैं। पर, डॉ० विन्टरनित्स का कहना है कि "हरिवंश शुद्ध रूप से एक पुराण है यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि बहुधा शब्दशः समान अनेक उक्तियाँ इस सबंध मे कई पुराणों में उपलब्ध हैं।" भारतीय साहित्य भाग १, खण्ड २ पृ० १२९॥ इन्होंने इसे खिल के अतिरिक्त स्वतन्त्र पुराण के भी रूप मे स्वीकार किया है। फर्कुहर ने हरिवंश की गणना पुराणों मे की है तथा इसे बीसवाँ पुराण माना है। (आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया पृ० १३६) हॉपकिंस के अनुसार 'हरिवंश' 'महाभारत' के अर्वाचीन पर्वों मे एक है। हाजरा ने रास के आधार पर इसका समय चतुर्थ शताब्दी माना है। 'हरिवंश' तीन बड़े पर्वों में विभाजित है और इसकी श्लोक संख्या १६३७४ है। प्रथम पर्व 'हरिवंश' पर्व कहा जाता है जिसमें ५५ अध्याय हैं। इसके द्वितीय पर्व को विष्णु पर्व कहते हैं जिसमें ८१ अध्याय हैं तथा तृतीय (भविष्य) पर्व के अध्यायों की संख्या १३५ है। इसमे विस्तारपूर्वक विष्णु भगवान् का चरित्र वर्णित है तथा कृष्ण की कथा एवं व्रज मे की गयी उनकी विविध लीलाओं का मोहक वर्णन किया गया है। इसमे पुराण पंच लक्षण का पूर्णतः विनियोग हुआ है तथा इसका प्रारम्भ सृष्टि की उत्पत्ति से ही किया गया है। इसमे प्रलय का भी वर्णन है तथा वंश और मन्वन्तरों के अनुरूप राजाओं की वंशावलियाँ तथा ऋषियों के विविध आख्यान प्रस्तुत किये गए हैं। इसमें पुराणों मे वर्णित अनेक साम्प्रदायिक प्रसंग भी मिलते हैं; जैसे वैष्णव, शैव एवं शाक्त विचार धाराएँ। हरिवंश मे योग तथा सांख्य-संबंधी विचार भी हैं तथा अनेक दार्शनिक तत्त्वों का भी विवेचन प्राप्त होता है। इसके प्रथम पर्व (हरिवंश) मे ध्रुव की कथा, दक्ष तथा उनकी पुत्रियों की कथा, वेद और यज्ञविरोधी राजा वेन की कथा, उनके पुत्र तथा पृथु विश्वामित्र एवं वसिष्ठ के आख्यान वर्णित हैं। अन्य विषयों के अन्तर्गत राजा इक्ष्वाकु एवं उनके वंशधरों तथा चन्द्रवंश का वर्णन है। द्वितीय (विष्णु) पर्व में मानव रूपधारी विष्णु अर्थात् कृष्ण की कथा अत्यन्त विस्तार के साथ कही गयी है। इसमें विष्णु और शिव से सम्बद्ध स्तोत्र भी भरे पड़े हैं। भविष्य पर्व में आने वाले युगों के संबंध में भविष्य वाणियाँ की गयी हैं। इसी पर्व में वाराह, नृसिंह एवं वामन अवतार की कथा अत्यन्त विस्तार के साथ दी

गयी है तथा शिव और विष्णु को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया गया है। शिव और विष्णु को एक दूसरे की स्तुति करते हुए दिखाया गया है। इसी अध्याय में कृष्ण द्वारा राजा पौण्ड्र के वध का वर्णन है। इसके अंत में महाभारत एवं हरिवंश पुराण की महिमा गायी गयी है।

महाभारत मे भी इस तथ्य का संकेत है कि हरिवंश महाभारत का 'खिल' या परिशिष्ट है तथा हरिवंश पर्व एवं विष्णु पर्व को महाभारत के अन्तिम दो पर्वों के रूप में ही परिगणित किया गया है। "हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्। भविष्यत् पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत् ॥" महा० १।२।६९ ॥ हरिवंश में भी ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि इसका सम्बन्ध महाभारत से है। 'उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च'। हरि० ३।२ ॥

इसके साथ ही अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है। जैसे अग्निपुराण मे रामायण, महाभारत एवं पुराणों के साथ हरिवंश का भी उल्लेख है। "सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह। हरिवंशो भारतं च नव सर्गाः प्रदर्शिताः ॥ आगमो वैष्णवो गीतः पूजादीक्षाप्रतिष्ठया।" अग्निपुराण ३८३।५२-५३ ॥ गरुडपुराण मे महाभारत एवं हरिवंशपुराण का कथासार दिया गया है। ऐसा लगता है कि उत्तरकाल में हरिवंश स्वतन्त्र वैष्णव ग्रन्थ के रूप मे स्वीकार किया जाने लगा था। इस सम्बन्ध में डॉ० वीणापाणि पाण्डे ने अपने शोध-प्रबन्ध मे यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। "महाभारत विषयक अनेक प्रमाण दो निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। पहले निष्कर्ष के अनुसार हरिवंश पुराण महाभारत का अन्तरंग भाग है। द्वितीय निष्कर्ष के परिणामस्वरूप खिल हरिवंश एक सम्पूर्ण वैष्णव पुराण के रूप मे दिखलाई देता है। हरिवंश के पुराण पञ्चलक्षणों के साथ पुराणों में समानता रखनेवाली कुछ स्मृति सामग्री भी मिलती है। इसी कारण खिल होने पर भी हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है।" हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक विवेचन पृ० ७ हरिवंश मे अन्य पुराणों की अपेक्षा अनेक नवीन एवं महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन है जिससे इसकी महनीयता सिद्ध होती है। इसमे अन्य पुराणों की अपेक्षा कृष्ण के चरित्र-वर्णन में नवीनता है; जैसे 'छालिक्यगेय' नामक वाद्य मिश्रित संगीत तथा अभिनय का कृष्ण चरित के अन्तर्गत वर्णन तथा पिण्डारकतीर्थ में यादवों एवं अन्तःपुर की समस्त रानियों के साथ कृष्ण की जलक्रीडा। हरि० २।८८।८९ इसमें वज्रनाभ नामक दैत्य की नवीन कथा है जिसमे वज्रनाभ की कन्या प्रभावती के साथ प्रद्युम्न के विवाह का वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में भद्र नामक नट द्वारा 'रामायण' एवं 'कौबेराभिसार" नामक नाटकों के खेलने का उल्लेख भारतीय नाट्यशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण सूचना है। हर्टेल और कीथ प्रभृति विद्वान् इसी प्रसंग के आधार पर ही संस्कृत नाटकों का सूत्रपात मानते हैं। हरिवंश मे वर्णित 'छालिक्य' विविध वाद्यों के साथ गाया जानेवाला एक भावपूर्ण संगीत है जिसके जन्मदाता स्वयं कृष्ण कहे गए हैं। "छालिक्यगान्धर्व गुणोदयेषु, ये देवगन्धर्वमहर्षिसंघाः। निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छ बुद्धया,

कालियमेव मधुसूदनेन ॥" हरिवंश २।८९।८३ । "यत्र यत्रे वर्त्तमाने सुनाट्यैन नटस्तदा । महर्षीस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥" वही २।९१।२६ इसमें 'द्वारवती' के निर्माण में भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट रूप मिलता है तथा वास्तुकला-सम्बन्धी कई पारिभाषिक शब्द भी प्राप्त होते हैं जो तद्युगीन वास्तुकला के विकसित रूप का परिचय देते हैं। जैसे 'अष्टमार्गमहारथ्या' तथा 'महाषोडशचत्वर'। इसके दार्शनिक विवेचन में भी अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं तथा सर्ग और प्रतिसर्ग के प्रसंग मे भारतीय दर्शन की सुव्यवस्थित परम्परा का पूर्वकालिक रूप प्राप्त होता है। हरिवंश के काल-निर्णय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। हापकिंस, हाजरा एवं फर्कुहर के अनुसार इसका समय चतुर्थशताब्दी है, पर अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर इसका समय तृतीयशताब्दी से भी पूर्व निश्चित होता है। अश्वघोष ने हरिवंश के कतिपय श्लोकों को ग्रहण किया है। अश्वघोष कृत 'वज्रसूची' के कुछ श्लोक हरिवंश में भी प्राप्त होते हैं, अतः इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। अश्वघोष का समय प्रथम से द्वितीय शती है। इससे ज्ञात होता है कि प्रथम शती मे भी हरिवंश विद्यमान था। वेबर एवं रे चौधरी ने इस मत को स्वीकार किया है।

आधारग्रन्थ—१. हरिवंश पुराण—(हिन्दी अनुवाद सहित) गीताप्रेस गोरखपुर। २. जे० एन० फर्कुहर—ऐन आउटलाइन ऑफ रेलिजस लिटरेचर ऑफ इंडिया। ३. एफ० डब्ल्यू० हॉपकिंस—द ग्रेट एपिक्स ऑफ इन्डिया। ४ ए० बी० कीथ—संस्कृत ड्रामा। ५. एस० कोनो—दस इन्डिका ड्रामा—बर्लिन १९२०। ६ हरिवंश पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वीणापाणि पाण्डेय।

हरिविलास (महाकाव्य)—इस महाकाव्य के रचयिता प्रसिद्ध वैद्यराज लोलिम्बराज हैं। इसमें श्रीकृष्ण की ललित लीलाएँ वर्णित हैं तथा पाँच सर्गों में बाल-लीला का वर्णन है। विशेष विवरण के लिए दे० [लोलिम्बराज] इनका समय ११ वीं शताब्दी का मध्य है। ये दक्षिणनरेश हरिहर के समकालीन थे। इन्होने 'वैद्यजीवन' नामक प्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थ की रचना की है।

हरिश्चन्द्र—ये जैनकवि थे। इनका समय १२ शतक माना जाता है। ये मक नामक वंश मे उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम आर्द्रदेव एवं माता का नाम रथ्या देवी था। ये जाति के कायस्थ थे। इन्होंने 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य एवं 'जीवन्धरचम्पू' की रचना की है। 'धर्मशर्माभ्युदय' २१ सर्गों का महाकाव्य है जिसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ जी का वर्णन किया गया है। इसमे कवि ने अपने को रस-ध्वनि का पथिक कहा है—रसध्वनेरध्वनि सार्थवाहः-प्रशस्तिश्लोक ७। इसका प्रकाशन काव्यमाला (सं० ८) बम्बई से १८९९ ई० मे हुआ है। इस महाकाव्य की रचना वैदर्भी रीति मे हुई है। 'जीवन्धरचम्पू' में राजा सत्यंधर तथा विजया के पुत्र जैन राजकुमार जीवनधर का चरित वर्णित है। इसके आरम्भ मे जिनस्तुति है तथा कुल ११ लम्बक हैं—सरस्वतीलम्भ, गोविन्दालम्भ, गन्धर्वदत्तालम्भ, गुणमालालम्भ, पद्मालम्भ, लक्ष्मणालम्भ तथा मुक्तिलम्भ। इसमें स्थान-स्थान पर जैनसिद्धान्त के अनुसार धर्मोपदेश दिये गए हैं। इस चम्पू का उद्देश्य जीवन्धर के चरित के माध्यम से जैनधर्म के सिद्धान्तों

का-प्रतिपादन कर उसे लोकप्रियता प्रदान करना है। इसमें सरल तथा अलंकृत दोनों ही प्रकार की भाषा के रूप दिखाई पड़ते हैं, फलतः भाषा में एकरूपता का अभाव है। सरस्वती-विलास सीरीज, तञ्जौर से १९०५ ई० में प्रकाशित।

हरिषेण—ये संस्कृत के ऐसे कवियों में हैं जिनकी रचना पाषाण-खण्डों पर प्रशस्तियों एवं अन्तर्लेखों के रूप में उत्कीर्णित है। इनकी जीवनी एवं काव्यप्रतिभा का पता इनके द्वारा रचित प्रयाग-प्रशस्ति पर उत्कीर्णित है। ये समुद्रगुप्त के आश्रित कवि थे और इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में एक लेख की रचना ३४५ ई० में की थी, जो प्रयाग के अशोक-स्तम्भ पर विराजमान है। इस प्रशस्ति मे सम्राट् समुद्रगुप्त की दिग्विजय तथा असाधारण एवं ऊर्जस्वी व्यक्तित्व का पता चलता है। इस प्रशस्ति में कवि की जीवनी भी सुरक्षित है, जिससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम ध्रुवभूति था जो तत्कालीन गुप्त नरेश के महादण्डनायक, एक उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ एवं प्रकाण्ड पण्डित थे। हरिषेण भी अपने पिता की भाँति सम्राट् के पदाधिकारी थे जो क्रमशः उन्नति करते हुए साधिविग्रहिक, कुमारादित्य तथा महादण्डनायक के उच्चपद पर अभिषिक्त हुए। ये समुद्रगुप्त की राजसभा के शीर्षस्थ विद्वान् थे। हरिषेण रचित 'प्रयाग प्रशस्ति' उत्कृष्ट कोटि की काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। इसका आरम्भ स्रग्धरा छन्द मे हुआ है तथा अन्य अनेक छन्दों के अतिरिक्त इसमें गद्य का भी प्रयोग किया गया है, जो अलंकृत कोटि की गद्य शैली का रूप प्रदर्शित करता है। इसका पद्यात्मक विधान कालिदास की प्रतिभा का संस्पर्श करता है तो गद्यात्मक भाग में बाणभट्ट की सी शैली के दर्शन होते हैं। इनकी अन्य कोई कीर्ति उपलब्ध नहीं होती।

हर्ष-चरित—यह बाणभट्ट रचित गद्य-रचना है। इसमे कवि ने आठ उच्छ्वासों मे तत्कालीन भारत सम्राट् हर्ष के जीवन का वर्णन किया है। इस कृति को स्वयं बाण ने आख्यायिका कहा है। "तथाऽपि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वर्णनाकुलः। करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥" हर्षचरित १९। इसके प्रथम उच्छ्वास मे वात्स्यायन-वंश का वर्णन है। प्रारम्भ मे मंगलाचरण, कुकवि-निन्दा, काव्य-स्वरूप एवं आख्यायिकाकार कवियों का वर्णन है। बाण ने भूमिका भाग मे (जो श्लोकबद्ध है) वासवदत्ता, व्यास, हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा, आढ्यराज आदि का उल्लेख किया है। पुन: कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है। बाण ने अपने वंश का सम्बंध सरस्वती से स्थापित करते हुए बताया है कि ब्रह्मलोक में एक बार दुर्वासा ऋषि ने किसी मुनि से कलह करते हुए सामवेद के मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण कर दिया। इस पर सरस्वती को हँसी आई और दुर्वासा ने अपने ऊपर हँसते देखकर उन्हे शाप दे दिया कि वह मर्त्य लोक मे चली जाय। ब्रह्मलोक से प्रस्थान कर सरस्वती मर्त्यलोक में आई और शोणनद के तट पर अपना निवास बनाकर रहने लगी। उसके साथ उसकी प्रिय सखी सावित्री भी रहती थी। एक दिन उसने घोड़े पर चढ़े हुए एक युवक को देखा जो च्यवन ऋषि का पुत्र दधीच था। सरस्वती उससे

प्रेम करने लगी और दोनों के संयोग से सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शाप की समाप्ति के पश्चात् दोनों सखियाँ ब्रह्मलोक चली गईं तथा दधीच ने अपने पुत्र सारस्वत को अक्षमाला नामक एक ऋषि पत्नी को लालन-पालन के लिए सौंप दिया। अक्षमाला के पुत्र का नाम वत्स था, बाण ने इसी के साथ अपना संबंध जोड़ा है। उसने अपने साथियों का भी परिचय दिया है तथा बताया है कि प्रारम्भ से ही वह घुमक्कड़ था। द्वितीय उच्छ्वास में राजदर्शन का वर्णन है। द्वितीय उच्छ्वास के प्रारम्भ में ग्रीष्म ऋतु का अत्यन्त विस्तृत वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् बाण का प्रीतिकूट (निवास-स्थान) से बाहर जाने तथा मल्लकूट और बनग्रामक पार करके राजद्वार पर पहुँचने का वर्णन है। इस प्रसंग मे गजशाला, अश्वशाला, दर्पशात हाथी तथा सम्राट् हर्ष का वर्णन किया गया है। बाण ने एक सौ चालीस पंक्तियों के एक लंबे वाक्य में महाराज हर्ष का वर्णन किया है और अन्त में बाण और हर्ष की भेंट तथा दोनो की तीखी बातचीत का वर्णन है। तृतीय उच्छ्वास में राजवंश वर्णन किया गया है। बाण राजधानी से लौट कर घर आता है और अपने भ्राता (चचेरा भाई) श्यामल के अनुरोध पर हर्ष का चरित सुनाता है। प्रथमतः श्रीकण्ठजनपदवर्णन, स्थाण्वीश्वर, पुष्पभूति, भैरवाचार्य के शिष्य एवं भैरवाचार्य का वर्णन किया गया है। पुष्पभूति राजा बाण की कल्पना है तथा इसी के साथ हर्ष का संबंध स्थापित किया गया है। चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्द्धन का जन्म लेना वर्णित है। तत्पश्चात् प्रभाकरवर्द्धन की रानी यशोमती के स्वप्न एवं राज्यवर्द्धन की उत्पत्ति का वर्णन है। हर्ष की उत्पत्ति एवं राज्यश्री का जन्म होने पर होनेवाले महोत्सव का भी वर्णन किया गया है। राज्यश्री के युवती होने पर उसका विवाह मौखरिनरेश ग्रहवर्मा के साथ होता है। पंचम उच्छ्वास मे महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु वर्णित है। राजा प्रभाकरवर्द्धन हूणों से युद्ध करने के लिए राज्यवर्द्धन को भेजते हैं। हर्ष भी उनके साथ जाता है और बीच में आखेट के लिए ठहर जाता है। वहीं पर उसे समाचार प्राप्त होता है कि उसके पिता रोगग्रस्त हैं। मरणासन्न राजा अपने पुत्र को देख कर गले लगाता है। राजा की मृत्यु के कारण शोकाकुल राजभवन तथा रानी के सती होने का वर्णन, प्रभाकरवर्द्धन द्वारा हर्ष को सान्त्वना देना तथा प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु आदि घटनाएँ इसी उच्छ्वास में वर्णित हैं। षष्ठ उच्छ्वास—राज्यवर्द्धन का लौटना तथा हर्ष को समझाना, हर्षचिन्ता, मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा की मृत्यु तथा राज्यश्री को कारावास दिये जाने का समाचार, राज्यवर्धन का क्रोध करना और युद्ध के लिए प्रस्थान, राज्यवर्धन की मृत्यु एवं हर्ष की दिग्विजय की प्रतिज्ञा, गजसेनाध्यक्ष स्कन्द गुप्त को हस्तिसेना संगठित करने का आदेश, स्कन्दगुप्त द्वारा हर्ष को राजाओं के छल-कपट का वर्णन आदि घटनाएँ षष्ठ उच्छ्वास में वर्णित हैं। सप्तम उच्छ्वास—हर्ष का विशाल रणवाहिनी के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान, सैनिक-प्रयाण से जनता को कष्ट तथा हर्ष द्वारा सेना का निरीक्षण, प्राग्ज्योतिषेश्वर (आसाम नरेश) द्वारा हर्ष को दिव्य छत्र की भेंट तथा भास्करवर्मा द्वारा भेजे गए अन्य उपहारों का वर्णन। राज्यश्री का परिजनों के साथ विन्ध्य-प्रवेश करने की सूचना तथा हर्ष का अश्वारूढ़ होकर

उसे खोजने के लिए जाना, विन्ध्याटवी का वर्णन। अष्टम उच्छ्वास—निर्घात नामक शबर युवक का राज्यश्री की खोज में सहायता देने का वचन तथा हर्ष एवं शबर युवक का दिवाकर मित्र के आश्रम में जाना, हर्ष का आगमन-प्रयोजन का कथन, एक भिक्षु का राज्यश्री की दशा का वर्णन तथा हर्ष का राज्यश्री के निकट जाना, दिवाकर मित्र का हर्ष को एकावली देना, दिवाकर मित्र का राज्यश्री को उपदेश देना तथा राज्यश्री को लेकर हर्ष का सेना मे आना, सूर्यास्त-चन्द्रोदय-वर्णन।

अन्तिम घटना के वर्णन से ज्ञात होता है कि कवि ने हर्ष की सम्पूर्ण जीवन-गाथा का वर्णन न कर केवल उनके जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं का ही वर्णन किया है। कवि ने 'हर्षचरित' का प्रारम्भ पौराणिक कथा के ढंग पर किया है। ब्रह्मलोक मे खिले हुए कमल के आसन पर ब्रह्माजी बैठे हैं जिन्हे इन्द्रादि देवता घेरे हुए हैं। ब्रह्मा की सभा में विद्यागोष्ठियो के चलने का भी वर्णन है। 'हर्षचरित' की रचना आख्यायिका शैली पर हुई है। स्वयं लेखक ने भी इसे आख्यायिका कहा है। 'बाण के अनुसार हर्षचरित' आख्यायिका है और कादम्बरी कथा। आख्यायिका मे ऐतिहासिक आधार होना चाहिए। कथा कल्पनाप्रसूत होती है। कम-से-कम हर्षचरित और कादम्बरी के उदाहरण मे ऐसा ज्ञात होता है। किन्तु कथा और आख्यायिका के सम्बन्ध मे बाण और दण्डी के समय में बहुत कुछ वाद-विवाद था। दण्डी ने उन दोनों का भेद बताने की कोशिश की—जसे, आख्यायिका का वक्ता स्वयं नायक होता है, कथा का नायक या अन्य कोई; किन्तु यह नियम सब जगह लागू नहीं। फिर नायक स्वयं वक्ता रूप में हो अथवा अन्य कोई व्यक्ति, इसमे कोई बात नही होती, इसलिए यह भेद अवास्तविक है। कुछ विद्वानो का मत था कि आख्यायिका मे वक्त्र और अपर वक्त्र छन्दों का प्रयोग किया जाता है और उसमें कथांश उच्छ्वासो मे बँटा रहता है। यद्यपि दण्डी ने प्रसंगवश कथा मे भी इन लक्षणो का होना कहा है और इस भेद को अस्वीकार किया है, तथापि बाण के हर्षचरित मे यह लक्षण अवश्य घटित होता है। दण्डी के मत से तो कथा और आख्यायिका में केवल नाम का ही भेद है, दोनों की जाति एक ही है। पर बाण ने हर्षचरित को आख्यायिका और कादम्बरी को कथा माना है। हर्षचरित के आरम्भ में कहा है कि चपलतावश मैं इस आख्यायिकारूपी समुद्र मे अपनी जिह्वा का चप्पू चला रहा हूँ। कादम्बरी की भूमिका मे उसे वासवदत्ता और बृहत्कथा इन दोनों को मात करनेवाली [अतिद्वयी] कथा कहा है। हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ५। 'हर्षचरित' के कई हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं, यहां चौखम्बा प्रकाशन की प्रति से सहायता ली गयी है।

आधार ग्रन्थ—१ हर्षचरित हिन्दी अनुवाद] आचार्य जगन्नाथ पाठक। २. हर्षचरित [हिन्दी अनुवाद] सूर्यनारायण चौधरी।

हर्ष या हर्षवर्धन—प्रसिद्ध सम्राट् तथा कान्यकुब्ज के राजा। उन्होने ६०६ ई० से लेकर ६४८ ई० तक शासन किया था। उन्होने जहाँ बाणभट्ट, मयूर प्रभृति कवियों को अपने यहाँ आश्रय देकर संस्कृत साहित्य की समृद्धि मे योग दिया, वहीं स्वयं

साहित्य-सर्जन कर भारती की सेवा की। उनके जीवन की जानकारी बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' एवं चीनीयात्री ह्वेनत्सांग के यात्रा-विवरण से प्राप्त होती है। इस सामग्री के अनुसार उनके पिता का नाम प्रभाकरवर्धन एवं माता का नाम यशोमती था। इनकी बहिन का नाम राज्यश्री था जिसका विवाह मौखरि नरेश ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। उनके बड़े भाई महाराज राज्यवर्धन थे, पर वे अधिक दिनों तक शासन न कर सके, फलतः महाराज हर्षवर्धन को शासनसूत्र संभालना पड़ा। हर्ष की राजधानी थानेश्वर या स्थाण्वीश्वर मे थी। वे धीर, वीर एवं चतुर शासक के अतिरिक्त ललित कलाओ के भी उपासक थे। अनेक ग्रन्थों तथा सुभाषितावलियों मे इनके सम्बन्ध में विविध प्रकार के विचार व्यक्त किये गए हैं—१. सचित्र वर्णविच्छित्ति-हारिणोरवनीपति । श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ॥ नवसाहसांकचरित २।१८। २ श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु । गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा संपूजितः कनककोटिशतेन बाण. ॥ सोड्ढल । ३. हेम्नो भार-शतानि वा मदमुचो वृन्दानि वा दन्तिनां श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् । या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तयस्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम् ॥ सारसमुच्च, सुभाषितावली १८० ॥ ४. श्रीहर्षो वितार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम् ॥ सुभा० ॥ ५ अर्थाथिना प्रिया एव श्रीहर्षोदीरिता गिरः । सारस्वते तु सौभाग्ये प्रसिद्धा तद्विरुद्धता ॥ हरिहर [सुभा० १९] ६ सुश्लिष्टसन्धिबन्ध सत्पात्रसुवर्ण-योजितं सुतराम् । निपुणपरीक्षकदृष्ट राजति रत्नावली रत्नम् ॥ कुट्टनीमत-आर्या ९४७ ।

हर्षवर्धन रचित तीन कृतियो का पता चलता है —'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' एवं 'नागानन्द'। इनमें 'प्रियदर्शिका' तथा 'रत्नावली' नाटिकाए है और 'नागानन्द' नाटक है। 'रत्नावली' के कर्तृत्व को लेकर साहित्य-संसार म बहुत बडा आन्दोलन उठा है कि इसके रचयिता हर्ष न होकर धावक थे। इस भ्रम को जन्म देने का श्रेय आचार्य मम्मट को है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' मे 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' नामक वाक्य लिखा है जिसका अर्थ अनेक टीकाकारों ने यह किया कि धावक ने 'रत्नावली' की रचना कर हर्ष से असंख्य धन प्राप्त किया है। इस कथन पर विश्वास कर बहुसंख्यक यूरोपीय विद्वानो ने 'रत्नावली' का रचयिता धावक को ही मान लिया। 'काव्यप्रकाश' की किसी-किसी प्रति [काश्मीरी प्रति] में धावक के स्थान पर बाण का भी नाम मिलता है, जिसके आधार पर विद्वान् बाणभट्ट को ही 'रत्नावली' का रचयिता मानते है। पर, आधुनिक भारतीय पण्डित इस विचार से सहमत हैं कि तीनों कृतियों [उपर्युक्त] के लेखक हर्षवर्धन ही थे। 'कुट्टनीमतम्' के रचयिता दामोदरगुप्त ने स्पष्ट रूप से रत्नावली को हर्ष की कृति होने का उल्लेख किया है। [दे० 'कुट्टनीमतम्-आर्या ९४७]।

१—रत्नावली—यह संस्कृत की प्रसिद्ध नाटिका है, जिसके अनेक उद्धरण एवं उदाहरण नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों मे प्राप्त होते है। इसमे चार अंक हैं तथा वत्सराज उदयन एवं रत्नावली के प्रणय-प्रसंग का वर्णन है [दे० रत्नावली] २—प्रियदर्शिका—इसका सम्बन्ध भी उदयन के जीवन-चरित से है। [दे० प्रियदर्शिका] ३—नागानन्द—इस नाटक में राजकुमार जीमूतवाहन द्वारा गरुड़ से नागों के बचाने की कथा है। इसकी

नान्दी में भगवान् बुद्ध की स्तुति की गयी है जिससे ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन बौद्धमतानुयायी थे। [दे० नागानन्द]

हर्ष की काव्यप्रतिभा उच्चकोटि की है तथा वे नाटककार एवं कवि दोनों ही रूपों मे प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता मे माधुर्य एवं प्रसाद दोनों गुणों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। कवि ने रसमय वर्णन के द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है तथा स्थल-स्थल पर प्रकृति के अनेक मोहक चित्रों का मनोहर शब्दों में चित्र उपस्थित किया है। परम्परा-प्रथित वर्णनों के प्रति उन्होंने अधिक रुचि दर्शायी है, फलतः संध्या, मध्याह्न, उद्यान, तपोवन, फुलवारी, निर्झर, विवाहोत्सव, स्नान-काल, मलय पर्वत, वन, प्रासाद आदि इनके प्रिय विषय हो गए हैं। डॉ० कीथ के अनुसार "प्रतिभा और लालित्य में वे कालिदास से निश्चय ही घटकर हैं, परन्तु अभिव्यंजना और विचारों की सरलता का महान् गुण उनमे विद्यमान है। उनकी संस्कृत परिनिष्ठित और अर्थगर्भित है। शब्दालंकारो एवं अर्थालंकारो का प्रयोग संयत तथा सुरुचिपूर्ण है।" संस्कृत नाटक पृ० १८०। उनकी शैली सरल तथा प्रभावाभिव्यंजक है और पद्यों में दीर्घ समासों का अभाव तथा सरलता है। सरल शब्दो के नियोजन तथा अप्रतिहत प्रवाह के कारण कवि भाषा को आकर्षक बनाने की कला मे निपुण है। उनका गद्य भी सरल तथा अर्थाभिव्यक्ति की क्षमता से आपूर्ण है और भाषा मे रसानुकूल प्रवाह तथा अभीष्ट अर्थ को अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है। उन्होने अलंकारो का स्वाभाविक रूप मे प्रयोग किया है। "अभीष्ट अर्थ की अभिव्यंजना मे अलंकार सहायक हुए हैं। अलंकारो का प्रयोग कविता के माधुर्य के साथ हुआ है। ऐसे स्थलो पर भाषा सरल, सरस और माधुर्य-गुण-मण्डित है।" संस्कृत के महाकवि और काव्य पृ० २७०। उदाहरणस्वरूप चाटुकार उदयन की उक्ति के द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य-वर्णन को रखा जा सकता है—"देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्। श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनिताभृङ्गाङ्गना लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ॥" रत्नावली १।२५ 'देवि! चन्द्रमा की शोभा को तिरस्कृत करने वाले तुम्हारे मुख-रूप कमल ने जलस्थ कमलो को जीत लिया है। इसी कारण इनमें सहसा म्लानता आ रही है। तुम्हारे इन परिजनो तथा गणिकाओ का मधुर-संगीत सुनने में भृङ्गाङ्गनायें कलियो में छिपती जा रही है, मानो उन्हे अपनी हीनता पर लज्जा आ रही हो। इनके नाटको मे श्लेष तथा अनुप्रासादि शब्दालंकार अधिक प्रयुक्त हुए हैं, पर वे भावो के उत्कर्षक तथा स्वाभाविक है। छन्दों के प्रयोग के संबंध मे हर्ष की निजी विशिष्टताएँ हैं। उन्होने अधिकांशतः लम्बे एवं जटिल छन्दो के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है जो नाटकीय दृष्टि से उपयुक्त नहीं माने जा सकते। उनका प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है जो 'रत्नावली' मे २३ बार, 'प्रियदर्शिका' में २० बार तथा 'नागानन्द' में ३० बार प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसंततिलका, मालिनी, शिखरिणी आदि छन्दों के प्रति भी कवि का विशेष आग्रह है। इतना अवश्य है कि उनके छन्द लम्बे होते हुए भी सांगीतिकता से पूर्ण हैं। प्राकृतों में हर्ष ने विशेषतः शौरसेनी एवं

महाराष्ट्री का प्रयोग किया है जो प्राकृत व्याकरण-सम्मत हैं। नाटकीय दृष्टि से उनकी तीनों कृतियों में अभिनेयता का तत्त्व विपुल मात्रा में दिखाई पड़ता है। उनके संवाद छोटे एवं पात्रानुकूल हैं तथा नाटकों की लघुता उन्हें रंगमंचोपयोगी बनाने में सक्षम है। प्रायोगिक कठिनाई उनके नाटकों में नहीं दिखाई पड़ती। रोमांचक 'प्रणयनायिका' के निर्माता की दृष्टि से हर्ष का स्थान संस्कृत के नाटककारों में गौरवास्पद है। उन्होंने भास एवं कालिदास से प्रेरणा ग्रहण कर अपने नाटकों की रचना की है। "रोमान्टिक ड्रामा के जितने कमनीय तथा उपादेय साधन होते हैं उन सबका उपयोग हर्ष ने इन रूपकों में किया है। कालिदास के ही समान हर्ष भी प्रकृति और मानव के पूर्ण सामरस्य के पक्षपाती हैं। मानव भाव को जाग्रत करने के लिए दोनों ने प्रकृति के द्वारा सुन्दर परिस्थिति उत्पन्न की है।" संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय सप्तम संस्करण पृ० ५३७।

आधारग्रन्थ—१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—डॉ० दासगुप्त एवं डे २. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय। ३. संस्कृत सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय। ४ संस्कृत कवि-दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास। ५ संस्कृत-काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री। ६. संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद)—डॉ० ए० बी० कीथ।

हरिभद्र—जैन दर्शन के आचार्य। इनका समय विक्रम की आठवीं शताब्दी है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'षड्दर्शन समुच्चय' एवं 'अनेकान्त जयपताका'।

आधार ग्रन्थ—भारतीय दर्शन—आचार्य बलदेव उपाध्याय।

हलायुध कृत कविरहस्य—भट्टिकाव्य के अनुकरण पर ही 'कविरहस्य' महाकाव्य की रचना हुई है। यह शास्त्रकाव्य है। इसमें राष्ट्रकूटवंशीय राजा कृष्णराज तृतीय (९४०–९५३ ई०) की प्रशंसा है। कवि ने संस्कृत व्याकरण के आधार पर इसका वर्णन किया है तथा सभी उदाहरण आश्रयदाता की प्रशंसा मे निबद्ध किये हैं।

हितोपदेश—'पंचतन्त्र' से निकला हुआ कथा-काव्य। यह पशुकथा अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसके लेखक नारायण पण्डित हैं। ये बंगाल नरेश धवलचन्द्र के सभा-कवि थे तथा इनका समय १४वीं शताब्दी के आसपास है। स्वयं ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थ का मूलाधार 'पंचतन्त्र' है। इस ग्रन्थ की एक हस्त-लिखित प्रति १३७३ ई० की प्राप्त होती है। नारायण ने भट्टारक वार (रविवार) का उल्लेख ऐसे दिन के रूप में किया है जिस दिन कोई काम नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर विद्वानों ने कहा कि ऐसी शब्दावली के प्रयोग का रिवाज ९०० ई० तक नहीं था। 'मित्रलाभ' के चार परिच्छेद हैं—मित्रलाभ, सुहृद्-भेद, विग्रह एवं सन्धि। इसमें लेखक ने शिक्षाप्रद कथाओं के माध्यम से नीतिशास्त्र, राजनीति एवं अन्य सामाजिक नियमों की शिक्षा दी है। इस पुस्तक की रचना मूलतः गद्य में हुई है पर स्थान स्थान पर प्रचुर मात्रा में पद्यों का प्रयोग किया गया है। इसमें लगभग ६७९ नीति-विषयक पद्यों का समावेश किया गया है जिन्हें लेखक ने, अपने कथन की पुष्टि के लिए, 'महाभारत', 'धर्मशास्त्र', पुराण आदि से लिया है। 'हितो-

पदेश' के प्रत्येक खण्ड के अन्त में शिव के अनुग्रह की कामना करने वाले आशीर्वादात्मक वचन प्राप्त होते हैं, इससे ज्ञात होता है कि इसका लेखक शैव था। इसमें 'पंचतन्त्र' के गद्य का लगभग ⅔ भाग एवं पद्य ⅓ भाग प्राप्त होता है। शिक्षा देने की शैली का प्रयोग करने के कारण इसकी भाषा अत्यन्त सरल है और यही इसकी लोकप्रियता का कारण भी है। इस समय प्रायः सारे भारतवर्ष मे संस्कृत-शिक्षण का प्रारम्भ इसी पुस्तक से होता है। इसकी शैली सीधी-सादी एवं सरल है—विशेषतः गद्य की भाषा, पर श्लोकों की भाषा अपेक्षाकृत कठिन है। इसके अनेक हिन्दी अनुवाद प्राप्त होते हैं।

हेमचन्द्र—जैन धर्म के प्रसिद्ध आचार्य एव काव्यशास्त्री। आचार्य हेमचन्द्र जैन लेखको मे अत्यधिक प्रौढ़ पद के अधिकारी हैं। इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद जिले के अन्तर्गत धुन्धुक ग्राम मे हुआ था। इनका जन्मकाल ११४५ वि० सं० एवं मृत्युकाल १२२९ स० है। इनके माता-पिता का नाम चाचिग एव पाहिनी था। इनका वास्तविक नाम चगदेव था किन्तु जैन धर्म मे दीक्षित हो जाने पर ये हेमचन्द्र के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अनेक विषयो पर अनेक ग्रन्थो की रचना की है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—सिद्धहेमचन्द्र या शब्दानुशासन (व्याकरण का विख्यात ग्रन्थ) काव्यानुशासन (काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ) छन्दोनुशासन, द्वयानुश्रयकाव्य, अभिधानचिन्तामणि (कोश) देशीनाममाला, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित तथा योगशास्त्र। 'काव्यानुशासन' की रचना आठ अध्यायो में एव सूत्रशैली मे हुई है। इस पर लेखक ने 'विवेक' नामक टीका भी लिखी है। इसमे वर्णित विषयो का विवरण इस प्रकार है—प्रथम अध्याय—काव्य-प्रयोजन, काव्यहेतु, प्रतिभा के सहायक, काव्यलक्षण तथा शब्दशक्ति विवेचन। द्वितीय अध्याय—रस एवं उसके भेदों का वर्णन। तृतीय अध्याय में दोष तथा चतुर्थ मे माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण का निरूपण। पंचम अध्याय में छह शब्दालंकार एवं षष्ठ मे २९ अर्थालंकारों का विवेचन। सप्तम अध्याय में नायक-नायिकाभेद एवं अष्टम में अध्याय प्रेक्ष्य तथा श्रव्य काव्य के दो भेद वर्णित हैं। 'काव्यानुशासन' मौलिक ग्रन्थ न होकर अनेक ग्रन्थों के विचार का संग्रह ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न ग्रन्थों में १५०० श्लोक उद्धृत हैं। 'शब्दानुशासन' अत्यन्त प्रौढ़ व्याकरण ग्रन्थ है। इस पर डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'शब्दानुशासन एक अध्ययन' नामक खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। [चौखम्बा प्रकाशन] काव्यानुशासन काव्यशास्त्र की साधारण रचना है।

आधारग्रन्थ—संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० काणे।

हंस सन्देश—इस सन्देश काव्य के रचयिता का नाम पूर्णसारस्वत है। कवि का समय विक्रम त्रयोदशशतक का प्रारम्भ है। लेखक के संबंध मे कुछ भी ज्ञात नहीं होता केवल निम्नांकित श्लोक के आधार पर उसके नाम का अनुमान किया गया है।
अयं विष्णोः पदमनुपतन् पक्षपातेन हंसः पूर्णज्योतिः पदयुगजुषः पूर्णसारस्वतस्य।
क्षीबत्येव स्फुटमकलुषे मानसे सज्जनानाम् मेघेनोच्चैर्निजरसभरं वर्षता धर्षितेऽपि॥ १०२
इस काव्य का रचयिता केरलीय ज्ञात होता है। 'हंस सन्देश' में कांचीपुर नगर की

किसी स्त्री के द्वारा श्रीकृष्ण के पास हंस द्वारा सन्देश भेजा गया है। हंस के वंश, निवासस्थान एवं सामर्थ्य की प्रशंसा कर विभिन्न स्थानों में श्रीकृष्ण की खोज करते हुए अन्ततः उसे वृन्दावन में जाने को कहा गया है। ग्रन्थ में १०२ मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से हो चुका है। काव्य का प्रारम्भ मेघदूत की भाँति किया गया है—काचित् कान्ता विरहशिखिना कामिनी कामतप्ता निध्यायन्ती कमपि दयितं निर्दयं दूरसंस्थम्। भूयो भूयो रणरणकतः पुष्पवाटीं भ्रमन्ती लीलावापीकमलपथिकं राजहंसं ददर्श ॥ १ ॥

आधारग्रन्थ—संस्कृत के सन्देशकाव्य—डॉ० रामकुमार आचार्य।

हृदयदर्पण—यह काव्यशास्त्र का ग्रन्थ है। इसके प्रणेता भट्टनायक हैं। [दे० भट्टनायक] यह ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है। 'हृदयदर्पण' की रचना ध्वनि सिद्धान्त के खण्डन के लिए हुई थी। 'हृदयदर्पण' ११वीं शताब्दी से अप्राप्त है। इसका उल्लेख ध्वनिविरोधी आचार्य महिमभट्ट ने किया है। उनका कहना है कि बिना 'दर्पण' को देखे ही मैंने ध्वनिसिद्धान्त का खण्डन किया है यदि मुझे 'हृदयदर्पण' के देखने का अवसर प्राप्त हुआ होता तो मेरा ग्रन्थ अधिक पूर्ण होता—सहसा यशोऽभिसर्तुं समुद्यताऽदृष्टदर्पणा मम धीः। स्वालङ्कारविकल्पप्रकल्पनेवेत्ति कथमिवावद्यम् ॥ 'हृदय-दर्पण' को 'ध्वनिध्वंस' भी कहा जाता है।

परिशिष्ट

अखिलानन्द कविरत्न—इनका जन्म बदायूं (उत्तर प्रदेश) जिले के अन्तर्गत चन्द्रनगर ग्राम में हुआ था। [जन्मतिथि तृतीया माघ शुक्ल वि० सं० १९३७] इनके पिता का नाम टीकाराम शास्त्री था। इन्होंने 'दयानन्द दिग्विजय' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य की रचना की है जिसका प्रकाशनकाल १९१० ई० है। इनके द्वारा रचित काव्यों की संख्या २२ है और समस्त काव्यों की श्लोक संख्या ९५००० है। ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'विरजानन्दचरितम्', 'भामिनीभूषण-काव्य', 'ईश्वरस्तुति-काव्य', 'धर्मलक्षणवर्णन-काव्य', 'गुरुकुलोदय-काव्य', 'विद्याविनोद-काव्य', 'उपनयनवर्णन-काव्य', विवाहोत्सववर्णन काव्य', 'आर्यवृत्तेन्दुचन्द्रिका', परोपकारकल्पद्रुम', 'रमामहर्षिसंवाद-काव्य', 'दशावतारखण्डन-काव्य', 'दैवोपालम्भकाव्य', 'आर्यसंस्कृतगीतयः', 'द्विजराज-विजयपताका-काव्य', 'भारतमहिमावर्णन-काव्य', 'आर्यविनोद-काव्य', 'संस्कृतविद्या-मन्दिर काव्य', आर्यसुताशिक्षासागर-काव्य', 'महर्षिचरितादर्श-काव्य', 'आर्यशिरोभूषण-काव्य', शोकसम्मूर्छन-काव्य'। अखिलानन्द शर्मा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना 'दयानन्ददिग्विजय' है जिसकी रचना २१ सर्गों मे हुई है। इसमे महर्षि दयानन्द की जीवनगाथा वर्णित है। प्रथम सर्ग मे स्वामी दयानन्द के आविर्भावकाल की परिस्थितियों तथा महर्षि के प्रभाव का वर्णन है। द्वितीय तथा तृतीय सर्गों मे कवि ने चरितनायक के बाल्यकाल एवं विद्याध्ययन का वर्णन किया है। चतुर्थ सर्ग में दयानन्द जी के आविर्भावकाल में विद्यमान सम्प्रदायों—शैव, शाक्त, वैष्णव आदि का वर्णन एवं पंचम मे स्वामी जी के प्रमुख उपदेशों का निदर्शन है। षष्ठ सर्ग मे स्वामी जी के वाराणसी शास्त्रार्थ का वर्णन है जिसमे काशीस्थ स्वामी विशुद्धानन्द एवं बालशास्त्री के साथ महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ का उल्लेख है। सप्तम सर्ग मे स्वामी जी का बम्बई-प्रवास एवं अष्टम में दयानन्द जी के ग्रन्थों का विवरण है। नवम सर्ग मे चरितनायक की प्रशंसा एवं दशम मे मृत-श्राद्ध, तीर्थ-पुराण एवं मूर्तिपूजा का खण्डन है। इसी सर्ग मे महाकाव्य का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है और उत्तरार्द्ध मे ११ सर्ग हैं। एकादश सर्ग मे आर्यसमाज के दस नियमों का उल्लेख एवं स्वामी जी के लाहौर-गमन का वर्णन है। द्वादश सर्ग में दयानन्द जी की कलकत्ता-यात्रा एवं त्रयोदश में आर्यसमाज की स्थापना का वर्णन किया गया है। चतुर्दश सर्ग की रचना चित्रकाव्य की शैली में हुई है जिसमे सर्वतोगमनबन्ध, षोडशकमलबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, छत्रबन्ध, हारबन्ध के प्रयोग किये गए हैं। पंचदश सर्ग में परोपकारिणी सभा की स्थापना वर्णित है और षष्ठदश सर्ग में सभासदों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। सप्तदश सर्ग में विभिन्न मतों—शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, वेदान्त, शाक्कुर, गाणपत्य—की आलोचना की गयी है। अष्टदश सर्ग मे महर्षि दयानन्द के जोधपुर निवास का वर्णन एवं उन्नीसवें सर्ग मे उनके स्वर्गारोहण का उल्लेख है। बीसवें सर्ग में स्वामीजी की मृत्यु

के उपरान्त उनके अनुयायियों के शोक का अत्यन्त करुण वर्णन है। अन्तिम सर्ग में कवि ने अपना परिचय दिया है। इस महाकाव्य में कुल २३४८ श्लोक हैं और शान्त रस का प्राधान्य है। यत्र-तत्र प्रकृति की मनोरम छटा प्रदर्शित की गयी है और कतिपय स्थानों पर कवि अलंकृत वर्णन प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य मे सर्वत्र प्रसादमयी शैली का प्रयोग हुआ है। दयानन्दजी का परिचय प्रस्तुत करते हुए भाषा की प्रासादिकता स्पष्ट हो गयी है—अभूदभूमिः कलिकालकर्मणाम् अशेषसौन्दर्यनिवासवासः। जगत्त्रये दर्शितवेदभास्करः प्रभो दयानन्द इति प्रतापवान् ॥ १।२ ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देन पृ० १३७–१४७।

अम्बिकादत्तव्यास—[१८५९ से १५ नवम्बर १९०० ई०] जयपुर (राजस्थान) के निकट भानपुर ग्राम में जन्म। पिता का नाम श्री दुर्गादत्त (गौड ब्राह्मण)। काश्मीर संस्कृत कॉलेज मे अध्ययन और वहीं व्यास की उपाधि मे विभूषित। १८९३ ई० में भारतरत्न की उपाधि प्राप्त। १८८० ई० मे एक घड़ी में सौ श्लोकों की रचना करने के कारण 'घटिकाशतक' की उपाधि। १८९७ ई० मे छपरा कॉलेज मे संस्कृत के अध्यापक अन्त में गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज पटना में संस्कृत के प्राध्यापक। ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—गणेशशतकम्, शिवविवाहः (खण्डकाव्य), सहस्रनामरामायणम्, पुष्पवर्षा (काव्य), उपदेशलता (काव्य), साहित्यनलिनी, रत्नाष्टक (हास्य रस की ८ कहानियाँ), कथाकुसुमम्, शिवराजविजयः (उपन्यास) १२ निश्वासों में कादम्बरी की शैली पर रचित वीररसात्मक उपन्यास। समस्यापूर्त्तयः, सामवतम् (नाटक), ललितानाटिका, मूर्त्तिपूजा, गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, क्षेत्रकौशलम्, प्रस्तारदीपिका, सांख्यसागरसुधा। सखि हे नन्दतनय आगच्छति। मन्दं मन्दं मुरलीरणनैः समधिकसुखं प्रयच्छति। भैरवरूपः पापिजनानां सतां सुखकरो देवः कलितललितमालती मल्लिकः सुरवरवांछितसेवः॥ दे० आधुनिक संस्कृत साहित्य—डॉ० हीरालाल शुक्ल।

अर्हद्दास—जैनधर्मावलंबी संस्कृत महाकाव्यकार। कवि का परिचय अभी तक उपलब्ध नही होता। विद्वानो ने 'मुनिसुव्रत' महाकाव्य का रचनाकाल सं० १३०१ से १३२५ के मध्य माना है। अर्हद्दास के अद्यावधि तीन काव्यग्रन्थ उपलब्ध हैं—'मुनिसुव्रतकाव्य', 'पुरुदेवचम्पू' तथा 'भव्यकण्ठाभरण'। इनके काव्यगुरु का नाम आशाधर था। 'मुनिसुव्रतकाव्य' का अन्य नाम 'काव्यरत्न' भी है। इसमें बीसवें तीर्थंकर (जैन) मुनिसुव्रत स्वामी की जीवनगाथा दस सर्गों मे रचित है। इसमें कवि ने शास्त्रीय तथा पौराणिक महाकाव्य की उभय शैलियो का समावेश किया है। यह महाकाव्य लघु कलेवर का है जिसमे छन्दों की संख्या ४०८ है। प्रथम सर्ग में मंगलाचरण, मगध एवं राजगीर का वर्णन तथा द्वितीय में मगधनरेश राजा सुमित्र और उनकी रानी पद्मावती का वणन है। तृतीय एवं चतुर्थ सर्गों मे पद्मावती के गर्भ से जिनेश्वर के अवतीर्ण होने एवं पुंसवनादि संस्कारो का कथन है। पंचम में इन्द्राणी का जिन माता की गोद मे कपट शिशु को डालना तथा जिनेन्द्र को उठाकर उन्हें इन्द्र को दे देना एवं इन्द्र

द्वारा उन्हें ऐरावत पर बिठाकर मंदराचल पर जाने की घटना वर्णित है। षष्ठ में इन्द्र जितेन्द्र का अभिषेक कर उन्हें पुन: माता के पास दे देते हैं और उनका नाम मुनिसुव्रत रखते हैं। सप्तम में मुनिसुव्रत का विवाह एवं राज्यारोहण तथा अष्टम सर्ग मे एक विशेष घटना के कारण मुनि के वैराग्य ग्रहण करने का वर्णन है। नवम सर्ग मे मुनि द्वारा एक वर्ष तक कायक्लेश नामक तपस्या करना एवं दशम में मुनि की मोक्ष-प्राप्ति की घटना वर्णित है। इस महाकाव्य का कथानक सुनियोजित विकासक्रम से युक्त है। इसमे न तो किसी घटना का अतिविस्तार है और न अति संक्षेप। इसी कारण यह ग्रन्थ महाकाव्योचित अन्विति (कथानक में), धारावाहिकता एवं गतिशीलता से युक्त है। इसका कथानक पुराणसम्मत है। कवि प्रकृति-सौन्दर्य के अतिरिक्त मानवीय-सौन्दर्य के वर्णन में भी सुदक्ष दिखाई पड़ता है। इसमे कुल १२ छन्द प्रयुक्त हुए हैं और अलंकारों का बाहुल्य है। भ्रान्तिमान् अलंकार का वर्णन देखें—रतिक्रियायां विपरीतवृत्ती रतावसाने किल पारवश्यम्। बभूव मल्लेषु गदाभिघातो भयाकुलत्वं रवि-चन्द्रयोश्च ॥ ५।३२। द्रे० तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी के जैन-संस्कृत-महाकाव्य—डॉ० श्यामशंकर दीक्षित।

गर्गसंहिता—इसके रचयिता ज्योतिषशास्त्र के आचार्य गर्ग हैं। इसमें श्रीराधा और कृष्ण की माधुर्यभावमिश्रित लीलाओं का वर्णन सरस एवं प्राञ्जल शैली में किया गया है। महाभारत [शल्यपर्व ३७।१४–१८] मे ज्ञात होता है कि गर्गाचार्य ने कुरुक्षेत्र के गर्गस्रोत नामक स्थान मे अपना आश्रम बनाया था जो सरस्वती के तट पर स्थित था। यही पर इन्होने ज्योतिषविषयक सभी ग्रन्थों का प्रणयन किया था। 'गर्गसंहिता' नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना गर्गाचल पर हुई थी। महाभारत एवं भागवत महापुराण के अनुसार ये महाराज पृथु तथा यदुवंशियो के गुरु थे [महा० शान्ति, ५९।११, भागवत, १०।८]। गर्गसंहिता मे केवल श्रीकृष्ण का वर्णन होने के कारण इसे पुराण न कह कर इतिहास कहा गया है। इसके श्लोक काव्यगुणों से समन्वित है। यह ग्रन्थ गोलोक खण्ड (२० अध्याय), श्रीवृन्दावन खण्ड (२६ अध्याय), गिरिराज खण्ड (११ अध्याय), माधुर्यखण्ड (२४ अध्याय), श्रीमथुराखण्ड (२६ अध्याय), द्वारका खण्ड (२२ अध्याय), विश्वजित खण्ड (५० अध्याय), श्रीबलभद्रखण्ड (१३ अध्याय), श्रीविज्ञान खण्ड (१० अध्याय) तथा अश्वमेध (६२ अध्याय), खण्डों के रूप मे १० भागो मे विभक्त है। गर्गाचार्य ने 'गर्गमनोरमा' तथा 'बृहद्गर्ग-संहिता' नामक ज्योतिष के ग्रन्थो की रचना की है। यो राधिकाहृदयसुन्दरचन्द्रहारः श्रीगोपिकानयनजीवनमूलहार.। गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेवः स त्वं विपत्सु विबुधान् परिपाहि पाहि ॥ गोलोक ३।२१। गर्गसंहिता का हिन्दी अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित, १९७०,१९७१

गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी (महामहोपाध्याय)—चतुर्वेदी जी का जन्म २९ सितम्बर १८८१ मे जयपुर में हुआ था। ये बीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठ संस्कृत विद्वान् एवं वक्ता थे। इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों ही भाषाओ मे समान अधिकार के

साथ उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री एवं जयपुर से व्याकरणाचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। इन्हें भारत सरकार की ओर से महामहोपाध्याय की एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे साहित्य वाचस्पति की उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। इन्हें राष्ट्रपति द्वारा भी सम्मान प्राप्त हुआ था। चतुर्वेदी जी १९०८ से १९१७ तक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में आचार्य थे और सनातनधर्म कॉलेज लाहौर मे १९१८ से १९२४ तक आचार्य पद पर विद्यमान रहे। सन् १९२५ से १९४४ तक ये जयपुर महाराजा संस्कृत कॉलेज के दर्शनाचार्य के पद पर रहने के पश्चात् १९५० से १९५४ तक वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय मे संस्कृत अध्ययन एवं अनुशीलन के अध्यक्ष रहे। १९६० ई० मे वे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में सम्मानित अध्यापक पद को सुशोभित करते रहे। आपने अनेक संस्कृत पत्रिकाओं का संपादन किया था। आपको 'वैदिक विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति' नामक ग्रन्थ पर १९६२ ई० मे साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। चतुर्वेदी जी वेद, व्याकरण एवं दर्शनशास्त्र के असाधारण विद्वान् थे। आपने अनेक महनीय ग्रन्थो का सम्पादन किया है जिनमे पतञ्जलिकृत 'महाभाष्य' भी है। आपकी संस्कृत रचनाओं के नाम इस प्रकार है—'महाकाव्य संग्रह', 'महर्षिकुलवभव', 'ब्रह्मसिद्धान्त', 'प्रमेयपारिजात', 'चातुर्वर्ण्य', 'पाणिनीय परिचय', 'स्मृतिविरोधपरिहार', 'गीताव्याख्यान', 'वेदविज्ञानविन्दु' एवं 'पुराणपारिजात'। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का हिन्दी मे प्रणयन किया है। 'गीताव्याख्यान', 'उपनिषद्-व्याख्यान', 'पुराण परिशीलन', 'वैदिकविज्ञान' एवं भारतीय 'संस्कृति' आदि। 'चतुर्वेदसंस्कृतरचनावलि:' भाग १ एवं 'निबन्धादर्श' नामक पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखित विविध विषयो से सम्बद्ध निबन्ध-संग्रह हैं। 'पुराणपारिजात' नामक ग्रन्थ दो खण्डों मे है। चतुर्वेदी जी का निधन १० जून १९६६ ई० को हुआ।

गुरुगोविन्दसिंहचरितम्—यह बीसवीं शताब्दी का सुप्रसिद्ध महाकाव्य है जिसके रचयिता डॉ० सत्यव्रत शास्त्री है [दे० सत्यव्रतशास्त्री]। इस ग्रन्थ के ऊपर लेखक को १९६८ ई० का साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। यह महाकाव्य चार खण्डों मे विभक्त है जिसमें कवि ने गुरुगोविन्द सिंह के विशाल व्यक्तित्व का परिचय दिया है। प्रथम खण्ड मे गुरुगोविन्द सिंह के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा, उनके पिता गुरुतेगबहादुर के बलिदान, गुरुगोविन्द सिंह की गुरुपद-प्राप्ति तथा गुरु द्वारा शिष्यों की सैनिक शिक्षा का वर्णन है। द्वितीय खण्ड मे गुरुगोविन्द सिंह के विवाह, पोण्टासाहब नामक रमणीय पर्वतीय स्थान मे निवास, ५२ पण्डितो के द्वारा विद्याधर नामक विशाल ग्रन्थ की रचना, विलासपुर के राजाओं की औरङ्गजेब के प्रतिनिधि स्याँ खाँ के विरुद्ध सहायता, पहाड़ी राजाओ का उनके साथ युद्ध एवं उनकी पराजय आदि का वर्णन है। तृतीय खण्ड मे खालसा पन्थ के संगठन, औरङ्गजेब के सामन्तों की पहाड़ी राजाओ के साथ सांठगांठ से गुरुगोविन्दसिंह की नगरी आनन्दपुर पर आक्रमण एवं गुरुजी का उस नगरी से निष्क्रमण आदि घटनाएँ वर्णित हैं। चतुर्थ खण्ड में पीछा

करती हुई मुगलसेना का चालीस सिखों द्वारा चमकोर नामक ग्राम में सामना करने, गुरुजी के दोनों ही बड़े पुत्रों के उसमे मारे जाने, दो छोटे पुत्रों के सरहिन्द के दरबार में मारे जाने, बन्दा वैरागी से भेंट, उसे उपदेश देकर पंजाब ले जाने, उनके देशाटन, एक पठान द्वारा गुरुजी पर प्रच्छन्न रूप से प्रहार एवं उनकी निर्वाणप्राप्ति आदि की घटनाओं का विवरण है। इस महाकाव्य की भाषा प्रवाहपूर्ण एवं अलंकृत है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार परिलक्षित होता है। अनुप्रास एवं यमक का चमत्कार स्थल-स्थल पर दिखाई पड़ता है। पर सर्वत्र ही अलंकारों का समावेश अनायास एवं स्वाभाविक रीति से हुआ है। यत्र-तत्र कवि ने प्राकृतिक छटा का सुरम्य वर्णन प्रस्तुत किया है। पोण्टा साहिब की प्राकृतिक छटा का वर्णन अवलोकनीय है— एकान्तरम्यं वनखण्डमाराद् दृष्ट्वा स हृष्टोजनि सौम्यदृष्टिः। अदृष्टपूर्वा प्रकृतेर्मनोज्ञा छटा बलात्तस्य जहार चेत ॥ कूले क्वचिद् भानुसुताऽऽगतायाः क्रीडन्ति वृन्दानि सुखं पशूनाम्। क्वचिल्लतामण्डपमण्डितानि रम्याणि सान्द्राणि च काननानि ॥

जयन्तविजय—संस्कृत के प्रसिद्ध जैन कवि अभयदेवसूरि विरचित पौराणिक महाकाव्य जिसमें मगधनरेश जयन्त एवं उनकी विजयगाथा का वर्णन १९ सर्गों में किया गया है [दे० अभयदेवसूरि]। इस महाकाव्य मे श्लोकों की संख्या २२०० है, पर निर्णय सागर, प्रेस की प्रकाशित प्रति में १५४८ छन्द हैं। इसके प्रथम सर्ग में तीर्थंकरों की प्रार्थना के पश्चात् राजा विक्रमसिंह तथा उनकी पत्नी प्रीतिमती एवं सुबुद्धि नामक मन्त्री का परिचय है। इस सर्ग का नाम 'प्रस्तावनानिरूपण' है। द्वितीय सर्ग मे रानी सरोवर मे अपने गज को करिणी के साथ क्रीडा करते हुए देख कर सन्तानाभाव के कारण चिंतित होती है किन्तु राजा उसकी इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता है। तृतीय सर्ग मे राजा सभा मे अपनी प्रतिज्ञा की चर्चा सुबुद्धि नामक मंत्री से करता है और वह इसकी पूर्ति का एकमात्र साधन 'श्रीपंचपरमेष्ठिनमस्कारमंत्र' को बता कर राजा को इसे ग्रहण करने का परामर्श देता है। चतुर्थ सर्ग में श्मशानवासी सुर द्वारा राजा को वन्ध्या स्त्री को संतान प्राप्ति होने वाले हार की उपलब्धि एवं पंचम तथा षष्ठ सर्ग मे सुर द्वारा विक्रमसिंह के पूर्वजन्म वृत्तान्त, प्रीतिमती की बहिन से राजा का विवाह तथा उससे पुत्ररत्न की प्राप्ति का वर्णन है। पुत्र का नाम जयन्त रखा जाता है जो सुर-प्रदत्त हार के प्रभाव से उत्पन्न होता है। सप्तम एवं अष्टम सर्गों मे जयन्त का युवराज होना तथा दोलाविलास पुष्पावचयजलकेलि और सूर्यास्त चन्द्रोदय का वर्णन है। नवें से ग्यारहवे सर्ग मे सिंहलभूपति के हाथी का विक्रमसिंह की राजधानी मे भाग आने तथा सिंहल-भूप के दूत के माँगने पर हाथी देने से राजा की अस्वीकारोक्ति, फलतः सिंहल नरेश हरिराज का जयन्त पर आक्रमण करने की घटना वर्णित है। जयन्त द्वारा सिंहल नरेश की युद्ध मे मृत्यु एवं जयन्त की दिग्विजय का वर्णन। बारहवें एवं तेरहवें सर्गों मे जयन्त का जिनशासन देवता द्वारा कनकावती के लिए अपहरण एवं दोनों का विवाह वर्णित है। चौदहवें सर्ग में महेन्द्र का जयन्त से युद्ध एवं जयन्त की विजय तथा सोलहवें सर्ग तक जयन्त का हस्तिनापुर के नरेश वीरसिंह की पुत्री

रतिसुन्दरी के साथ विवाह का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में विद्यादेवी द्वारा जयन्त एवं रतिसुन्दरी के पूर्वजन्म की कथा, अठारहवें सर्ग में ऋतुवर्णन के अतिरिक्त हस्तिनापुर के राजा द्वारा जयन्त को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग मे राजा विक्रमसिंह ससमारोह जयन्त को अपना राज्य देकर स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। यह महाकाव्य भारतीय काव्यशास्त्रियों द्वारा निरूपित महाकाव्य के लक्षण पर पूर्णतः सफल सिद्ध होता है। इसकी भाषा शुद्ध, सरल एवं स्वाभाविक है। कवि प्रसगानुकूल भाषा मे मृदुलता एवं कर्कशता का नियोजन करने मे सुदक्ष है। श्रुतिमधुर अनुप्रास का प्रयोग देखें—बहुविहगनिनादैर्बन्दिवृन्दैरिवोक्ते विकटविटपवीथीच्छायया शीतमार्गे। पृथुसरसि स हंसीमण्डलेनेव हंसः समचरदथ तस्मिन्साद्धं-मन्तःपुरेण ॥ ५।५७।

जिनपाल उपाध्याय—संस्कृत के प्रसिद्ध जैन कवि एवं 'सनत्कुमारचक्रिचरित्र' महाकाव्य के प्रणेता। इनके दीक्षागुरु का नाम जिनपतिसूरि था। जैनधर्म मे दीक्षित हो जाने के पश्चात् इनका नाम जिनपालगणी हो गया। कवि का निधन सं० १३११ ई० में हुआ। जिनपाल ने षट्स्थानकवृत्ति नामक ग्रन्थ की रचना सं० १२६२ में की थी। 'सनत्कुमारचरित' की रचना स० १२६२ से सं० १२७८ के मध्य हुई थी। 'सनत्कुमारचक्रिचरित्र' चौबीस सर्गों में रचित पौराणिक महाकाव्य है जिसमे सनत्कुमार-चक्री के चरित्र का वर्णन किया गया है। यह महाकव्य अभी तक अप्रकाशित है। आलकारिकों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के सभी लक्षणो का इसमे सफल निर्वाह किया गया है। कवि ने सर्गबद्ध कृति के रूप मे इसकी रचना कर महाकाव्योचित विस्तार किया है। इसका नायक सनत्कुमार धीरोदात्त है और अंगी रस शान्त है एवं शृङ्गार, वीर, रौद्र एवं बीभत्स रसों का परिपाक अंगरूप मे है। इसका कथानक ऐतिहासिक एवं लोकप्रिय जैनसाहित्य एवं धर्म में विख्यात है। प्रकृतिचित्रण, समाजचित्रण, धर्म एवं दर्शन, रस-परिपाक, भाषा-सौष्ठव, अलंकृति तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की दृष्टि से एक महनीय कृति है। तस्यावभौ वमश्रुविनीलपंक्तिः सौरभ्यपात्र परितो मुखाब्जम्। भृंगावली नूनमपूर्वगन्धलुब्धोपविष्टा प्रविहाय पद्मम् ॥ १५।१७।

जिनप्रभसूरि—ये संस्कृत के प्रसिद्ध जैन महाकाव्यकार हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना है 'श्रेणिकचरित्र' जो शास्त्रीय महाकाव्यों की श्रेणी मे आता है। इस महाकाव्य का रचना-काल सं० १३५६ वि० है। जिनप्रभसूरि श्रीजिनसिंहसूरि के शिष्य थे। इन्होंने अनेक स्तोत्र काव्यों की रचना की है जिनमें 'पंचपरमेष्ठिस्तव', 'सिद्धान्तागमस्तव', 'तीर्थकल्प' आदि प्रसिद्ध है। कवि ने आचार्य नन्दिषेण विरचित 'अजित शान्तिस्तव' पर 'सुबोधक' टीका लिखी है। 'श्रेणिकचरित्र' १८ सर्गों मे विभक्त है। इसमे श्लोकों की कुल संख्या २२६७ है। इस महाकाव्य मे भगवान् महावीर के समसामयिक राजा श्रेणिक की जीवनगाथा वर्णित है। इसका नायक राजा श्रेणिक धीरोदात्त गुण समन्वित है। इसमें प्रधान रस शान्त है तथा शृङ्गार, वीर, करुण एवं रौद्र रसों का वर्णन अंग रस के रूप मे हुआ है। कवि ने वृषभनाथ का स्मरण करते हुए अपने काव्य में मंगलाचरण का विधान

किया है। इस महाकाव्य के प्रथम सात सर्ग जैनधर्म-विद्याप्रसारकवर्ग, पालिताना से प्रकाशित हो चुके हैं। इसका एक हस्तलेख जैनशालानो भण्डार, खम्भात में सुरक्षित है। इस महाकाव्य में धार्मिक तत्त्व एवं विविध ज्ञान के अतिरिक्त सौन्दर्य-विधान तथा रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। इसके प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, पर सर्ग के अन्त में अन्य छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

त्रिपुरदहनम्—महाकाव्य। इसके प्रणेता वासुदेव हैं। वासुदेव ने 'युधिष्ठिर-विजय' नामक एक अन्य यमकप्रधान महाकाव्य की भी रचना की है। इस महाकाव्य में आठ आश्वास हैं और महाभारत की कथा का संक्षेप में वर्णन है। कवि पाण्डु की मृगया वर्णन की घटना से काव्य का प्रारम्भ कर युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन करता है। 'त्रिपुरदहनम्' में असुरों द्वारा त्रैलोक्य के पीड़ित होने पर देवताओं का शंकर भगवान् से प्रार्थना करना एवं भगवान् श्री हरि का कैलाश पर्वत पर जाकर शंकर जी की आराधना करने का वर्णन है। धर्मभ्रष्ट असुरों पर शिव जी का क्रुद्ध होना एवं असुरों का उनकी क्रोधाग्नि में भस्मीभूत होने की घटना को इस महाकाव्य का कथानक बनाया गया है। इस पर पंकजाक्ष नामक व्यक्ति ने 'हृदय-हारिणी' व्याख्या की रचना की है। इस महाकाव्य में तीन आश्वास हैं।

दयानन्द सरस्वती—आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म काठियावाड़ (गुजरात) के मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में (१८८१ वि० सं० में) हुआ था। इनका मूल नाम मूल शंकर था। स्वामी जी के पिता का नाम करसन जी त्रिवेदी था जो सामवेदी सहस्र औदीच्य ब्राह्मण थे। महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना कर वेद एवं संस्कृत-साहित्य का पुनरुत्थान किया। वस्तुतः आधुनिक युग में वेदों का महत्त्व प्रदर्शित करने का श्रेय स्वामी जी को ही है। आपने संस्कृत ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त संस्कृत पठन-पाठन की विधि का निर्माण, संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना एवं संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ आन्दोलनात्मक कार्य भी किये। आपका संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था और भाषा वाग्वशा थी। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—क—ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका तथा वेदभाष्य,—ख—खण्डनात्मक ग्रन्थ, ग—वेदाङ्गप्रकाश प्रभृति व्याकरण ग्रन्थ। आपने सायणाचार्य की तरह 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' की रचना की है। इस ग्रन्थ का संस्कृत साहित्य के इतिहास में महनीय स्थान है। आपने 'यजुर्वेदभाष्य' (समाप्ति काल १९३९ वि० सं०), 'ऋग्वेदभाष्य' (ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक), 'चतुर्वेदविषयसूची', 'पञ्चमहायज्ञविधि', 'भागवत-खण्डनम्', 'वेदविरुद्धमतखण्डनम्', 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण', 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' (संलापशैली में ५२ प्रकरण) 'वेदाङ्गप्रकाश' (संस्कृत व्याकरण को सर्वसुलभ बनाने के लिए १४ भागों में निर्मित), 'वर्णोच्चारणशिक्षा' तथा 'अष्टाध्यायी-भाष्य' नामक ग्रन्थ लिखे हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने संस्कृत में अनेक पत्र भी लिखे हैं जिनका अत्यधिक महत्त्व है। गद्य के अतिरिक्त स्वामी जी ने अनेक श्लोकों की भी रचना

की है जिनमें इनका कवि रूप अभिव्यक्त हुआ है। स्वामी जी के पद्य अधिकांशतः नीतिप्रधान हैं—विद्याविलासमनसो धृतिशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः। संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥ दयानन्द जी का संस्कृत गद्य परिनिष्ठित, उदात्त एवं श्रेष्ठशैली का उदाहरण उपस्थित करता है। उनकी ग्रन्थराशि के द्वारा संस्कृत साहित्य के शास्त्रीय, धार्मिक एवं व्यावहारिक साहित्य की समृद्धि हुई है। वे संस्कृत के महान् एवं युगप्रवर्त्तक लेखक एवं शैलीकार थे। स्वामी जी का निर्वाण ३० अक्टूबर १८८३ ई० (दीपावली) को हुआ।

आधारग्रन्थ—ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन—डॉ० भवानीलाल भारतीय।

दामोदर शास्त्री—(सं० १९५७-१९९८) ये गया जिले (बिहार) के अन्तर्गत करहरी नामक ग्राम के निवासी (औरंगाबाद) थे। इनका जन्म शाकद्वीपीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। छात्र-जीवन से ही कवि में चित्रकाव्य-रचना की प्रतिभा विद्यमान थी। इन्होंने 'चित्रबन्ध-काव्यम्' नामक चित्रकाव्य का प्रणयन किया है जो सं २००० में प्रकाशित हुआ है। शास्त्री जी कवि के अतिरिक्त प्रख्यात तांत्रिक भी थे। ये अनेक राजाओं के आश्रय में रहे। रायगढ़ नरेश की छत्रछाया इन्हें लम्बी अवधि तक प्राप्त हुई थी। 'चित्रबन्ध काव्यम्' की 'प्रमोदिनी' नामक टीका स्वयं कवि ने लिखी है। कवि की अधिकांश रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं और वे उनके पुत्र प० बलदेव मिश्र के पास है, (औरंगाबाद गया)। उदाहरण चन्द्रबन्ध का— मध्यतः परितो गच्छेत्रेमावपि ततः परम्। इति शैली विजानन्तु बन्धेऽत्र चन्द्रसंज्ञके ॥ रक्ष त्वं धरणीधीर ! रघुराज ! रमेश्वर ! जन्मकर्मधर्माधार ! रमयस्व रतान् व्रज ॥

दिलीप शर्मा—इनका जन्म कृष्णपुर जिला बुलन्दशहर में हुआ था। इनका निधन २८ नवम्बर १९५२ ई० को हुआ है। इनके पिता का नाम श्री भेदसिंह है। इनकी शिक्षा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में हुई थी। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मुनिचरितामृत' महाकाव्य है। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ हैं—'प्रतापचम्पू', 'संस्कृतालोक', 'ऋतुवर्णन', 'योगरत्न' आदि। 'मुनिचरितामृत' में महर्षि दयानन्द का चरित है। इस महाकाव्य के पूर्वार्द्ध का प्रकाशन सं० १९७१ वि० में दर्शन प्रेस ज्वालापुर से हुआ था। उत्तरार्द्ध अद्यावधि अप्रकाशित है। ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध ११ बिन्दुओं में विभाजित है। प्रथम बिन्दु में मंगलाचरण, अपनी विनम्रता, सज्जनशंसा, दुर्जननिन्दा तथा महर्षि दयानन्द के जन्मकाल एवं बालचरित का वर्णन है। द्वितीय बिन्दु में शिवरात्रिव्रत-कथा तथा बालक मूलशंकर की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख है तथा तृतीय में मूलशंकर को वैराग्य उत्पन्न होने एवं उनके गृहत्याग का वर्णन किया गया है। इसी सर्ग में मूलशंकर की बहिन एवं चाचा की मृत्यु का हृदयस्पर्शी वर्णन है जिसमें करुण रस का परिपाक हुआ है। चतुर्थ बिन्दु में मूलशंकर के गृहत्याग एवं उनकी माता के विलाप का तथा पंचम में ब्रह्मचारी के पिता की अन्तिम भेंट वर्णित है। षष्ठ एवं सप्तम बिन्दुओं में शुद्ध चैतन्य का क्रमशः सिद्धपुर से पलायन एवं वेदान्त अध्ययन

तथा उनके संन्यास ग्रहण की घटनायें उल्लिखित हैं। अष्टम बिन्दु में महर्षि दयानन्द द्वारा हरिद्वार तथा उत्तराखण्ड के भ्रमण का वर्णन है। नवम बिन्दु मे प्राकृतिक सौन्दर्य एवं महाकाव्योचित ऋतु-वर्णन का निदर्शन हुआ है। दशम बिन्दु मे ऋषि द्वारा नर्मदा स्रोत का अन्वेषण एव अन्तिम बिन्दु मे दण्डी विरजानन्द पाठशाला मे स्वामी जी के अध्ययन का वर्णन हुआ है। इस महाकाव्य की भाषा प्रसादगुणमयी एवं अलंकार मे पूर्ण है। इसमें सर्वत्र अनुप्रास एव यमक अलकारो का चमत्कारपूर्ण संगुंफन हुआ है। यत्र तत्र कवि ने सुन्दर सूक्तियो का भी प्रयोग किया है। वसन्त ऋतु का मनोरम चित्र देखिए—नानारसास्वादनायासशीला फुल्लप्रसूनव्रजासक्तिलाला। गुञ्जद्द्विरेफावली क्वापि धीर कर्त्तुं वसन्तोद्भवसज्जितेव ॥ ९।१७।

आधारग्रन्थ—ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देन—डॉ० भवानीलाल भारतीय।

नरनारायणानन्द—संस्कृत का प्रसिद्ध शास्त्रीय महाकाव्य जिसमे महाभारत की कथा के आधार पर अर्जुन तथा कृष्ण की मैत्री एव सुभद्राहरण की घटना का ७४० श्लोको एव १६ सर्गो मे वर्णन है। इसके रचयिता जैन कवि वस्तुपाल हैं [दे० वस्तुपाल]। ग्रन्थ के अन्तिम सर्ग मे प्रशस्ति है जिसमे कवि ने अपनी वंश-परम्परा एवं गुरु का परिचय प्रस्तुत किया है। प्रथम सर्ग मे समुद्र के मध्य स्थित द्वारवती नगरी एवं श्रीकृष्ण का वर्णन है। इसका नाम 'पुरनृपवर्णन सर्ग' है। द्वितीय सर्ग 'सभापर्व' मे पाण्डुपुत्र अर्जुन के प्रभासतीर्थ मे आगमन की सूचना श्रीकृष्ण की सभा मे किसी दूत द्वारा प्राप्त होती है। तृतीय सर्ग 'नरनारायणसगम' मे श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के मिलन एव रैवनक पर्वत का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग का नाम 'ऋतुवर्णन' है जिसमे षड्ऋतुओ का परम्परागत वर्णन किया गया है। 'चन्द्रोदय' नामक पंचमसर्ग में सन्ध्या एवं चन्द्रोदय का वर्णन है। षष्ठ सर्ग मे द्वारवती के नवयुवक एवं नवयुवतियों का सुरापान तथा सुरतविलास वर्णित है। इस सर्ग का नाम 'सुरापानसुरतवर्णन' है। सप्तम सर्ग का नाम 'सूर्योदय' है जिसमे कवि ने रात्रि के अवसान एवं सूर्योदय का वर्णन किया है। अष्टमसर्ग मे बलराम का सपरिवार अपनी सेना के साथ रैवतक पर्वत पर आगमन दिखलाया गया है। इस सर्ग का नाम 'सेनानिवेशवर्णन' है। नवें सर्ग 'पुष्पावचयप्रपंच' मे श्रीकृष्ण एव अर्जुन की वनक्रीडा वर्णित है। दसवें सर्ग का नाम 'सुभद्रादर्शन' है जिसमे जलक्रीडा के अवसर पर अर्जुन एव सुभद्रा के प्रथम दर्शन एवं परस्पर आकर्षण का वर्णन किया गया है। ग्यारहवें 'दूतिकाघातक' सर्ग में अर्जुन एवं सुभद्रा के विरह एव श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को आसुर विधि से सुभद्राहरण का संकेत दिलाया गया है। 'सुभद्राहरण' नामक बारहवे सर्ग मे अर्जुन का सुभद्रा को रथ पर चढ़ा कर भागना एव क्रुद्ध बलराम का सात्यकि सहित सेना के साथ अर्जुन को पकड़ने का आदेश एवं अन्त मे श्रीकृष्ण के समझाने पर उनका शान्त होना वर्णित है। तेरहवे सर्ग (संकुलकलिसकलन सर्ग) मे सात्यकि की सेना के साथ अर्जुन का युद्ध तथा चौदहवे सर्ग 'अर्जुनावर्जन' मे बलराम एव श्रीकृष्ण द्वारा दोनों पक्षो को युद्ध से

विरत करने का वर्णन है। 'विवाह-वर्णन' नामक पंद्रहवें सर्ग मे स्वयं बलराम सुभद्रा एवं अर्जुन का विवाह कराते है। इसके अन्तिम सर्ग मे कवि वंश वर्णन है। चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, सौन्दर्य-चित्रण, रसपरिपाक, पाडित्यप्रदर्शन, अलंकार-विधान, छन्दयोजना, भाषाशैली एवं शब्दक्रीडा की दृष्टि से यह महाकाव्य शिशुपालवध के समकक्ष है। प्रातःकाल की प्रकृति का सुरुचिपूर्ण चित्र देखने योग्य है—स्वप्ने निरीक्ष्य चरणप्रणतं युवानं सद्यः प्रसादरभसादुषसि प्रबुद्धा। अभ्यागतं चकितमेव चिराय काचिदाश्चर्यमभ्रमनयत्परिरभ्य तल्पे॥ ९।४।

नेमिचन्द्र शास्त्री—पौष कृष्ण द्वादशी संवत् १९७९ में बसई घियाराम ग्राम धौलपुर (राजस्थान) मे जन्म। पिता का नाम बलबीर जी। जैनधर्मावलम्बी। न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, ज्योतिषतीर्थ, ज्योतिषाचार्य प्रभृति उपाधियाँ। एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत एवं जैनोलॉजी) पी-एच० डी०, डी० लिट्०। सम्प्रति एच० डी० जैन कॉलेज, आरा (मगधविश्वविद्यालय) मे संस्कृत-प्राकृत विभाग के अध्यक्ष। हिन्दी, संस्कृत और अँगरेजी तीनों भाषाओ मे रचना। 'संस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियों का योगदान' विषय पर मगधविश्वविद्यालय से डी० लिट्०। [भारतीय ज्ञान-पीठ, दिल्ली से उक्त पुस्तक का प्रकाशन १९७१ ई०]। संस्कृत भाषा मे 'संस्कृतगीति-काव्यानुचिन्तनम्' तथा 'बाणशब्दानुशीलनम्' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना। प्रथम ग्रन्थ पर गंगानाथ झा पुरस्कार (हिन्दी समिति) प्राप्त। 'संस्कृतगीतिकाव्या-नुचिन्तनम्' में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में पाश्चात्य विचारकों द्वारा अभिमत गीतिकाव्य की परिभाषाओ की समीक्षा तथा भारतीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गीति तत्त्वों का निर्देश। द्वितीय अध्याय में संस्कृत गीतिकाव्यों की उत्पत्ति तथा विकास-क्रम में ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि मे समाहित गीतिकाव्यों के विश्लेषण के अनन्तर ऋतुसंहार, घटकर्पर, पवनदूत, नेमिदूत, शतकत्रय, शृङ्गारतिलक, अमरुक-शतक, पञ्चाशिका, आर्यासप्तशती, गीतगोविन्द के गीतितत्त्वो का विश्लेषण और विवेचन। तृतीय अध्याय मे संस्कृत नाटकों मे समाहित गीतियों के विवेचन के पश्चात् स्तोत्रगीतिकाव्य, मेघदूत, पार्श्वाभ्युदय, अमरुक, गीतगोविन्द के गीति एवं काव्यमूल्यों के विवेचन के पश्चात् अनेक नवीन ग्रन्थो के गीतितत्त्वों का मूल्यांकन। चतुर्थ अध्याय मे संस्कृत गीतिकाव्यों के आदान-प्रदान पर विचार करते हुए थेरी गाथाएँ तथा गाथा सप्तशती के अभाव का विश्लेषण किया गया है। पंचम अध्याय मे संस्कृत गीतिकाव्यों का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। सुशीला प्रकाशन, धौलपुर, १९७० ई०। शास्त्री जी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने गद्य के अतिरिक्त संस्कृत मे श्लोकों की भी रचना की है। बापू शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ—न वाहानां व्यूहः श्रयति न च सैन्यं करिघटा, न यानं शास्त्राणामपि न च समीपे परिकरः। अहिंसा-व्याख्यानैः सकलमरिलोकं विघटयन् अपूर्वः कोऽप्येवं समरभुवि वीरो विजयते॥ आपने व्रततिथिनिर्णय, केवल ज्ञानप्रश्नचूडामणि, भद्रबाहुसंहिता, मुहूर्तदर्पण, रिट्ठसमुच्चय (प्राकृत) रत्नाकरशतक (दो भाग) तथा धर्मामृत का हिन्दी में अनुवाद कर इनका

संपादन किया है। मागधम् (संस्कृतशोधपत्र) जैनसिद्धान्तभास्कर (हिन्दी शोधपत्र) जैन एण्टीक्वेरी एवं भारती जैन साहित्य-परिवेशन के आप संपादक हैं।

पद्मानन्द—पौराणिक शैली मे रचित संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य जिसके प्रणेता जैनकवि अमरचन्द्रसूरि हैं [दे० अमरचन्द्रसूरि]। 'पद्मानन्द' कवि के अन्य महाकाव्य 'बालमहाभारत' की भाँति 'वीराङ्क' महाकाव्य है। इसमें प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का चरित १९ सर्गों मे वर्णित है तथा छन्दो की संख्या ६३८१ है। इस ग्रन्थ की रचना हेमचन्द्रसूरि विरचित 'त्रिषष्टिशलाकासत्पुरुषचरित्र' के आधार पर हुई है। स्वयं इस तथ्य की स्वीकारोक्ति कवि ने की है—मया श्रीहेमसूरीणां त्रिषष्टिचरितक्रमः। वृषप्रभोरिभस्याब्धा कलमेनेव सेव्यते ॥ १९।६०-६१। 'पद्मानन्द' मे पौराणिक महाकाव्य के सभी तत्त्व विद्यमान है। इसकी कथावस्तु प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर ऋषभदेव से सम्बद्ध है जो धीरप्रशान्त गुण समन्वित हैं। यह ग्रन्थ शान्तरसपर्यवसायी है और शृंगार, करुण, वीर आदि अंगरस के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। महाकाव्य के अन्तर्गत कवि ने षड्ऋतु, नगर, अर्णव, शैल, मन्त्री, दूत, पुत्रोत्सव, सूर्योदय एवं प्रयाण आदि का यथोचित वर्णन किया है। इसमें ऋषभदेव के तेरह भवों का वर्णन है तथा कवि स्वधर्मप्रशंसा एवं अन्य मतों के खण्डन में भी प्रवृत्त हुआ है। तृतीय सर्ग में मन्त्री स्वयं बुद्ध द्वारा चार्वाक, बौद्ध एवं शांकर मत का खण्डन कर जैनधर्म की सर्वोच्चता प्रतिपादित की गयी। इसकी भाषा प्रसादगुणयुक्त एवं असमस्त पदावली से गुंफित है किन्तु युद्ध के प्रसंग में भाषा ओजगुणयुक्त हो जाती है।

परमेश्वर झा—[१५५६–१९२४ ई०] ये दरभंगा (बिहार) जिले के तरौनी नामक ग्राम के निवासी थे। इसके पिता का नाम पूर्णनाथ झा था। इन्होने क्वींस कॉलेज, वाराणसी मे अध्ययन किया था। इन्हे 'वैयाकरणकेसरी' तथा 'कर्मकाण्डोद्धारक' प्रभृति सम्मानित उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं तथा सरकार की ओर से (१९१४ ई० में) महामहोपाध्याय की उपाधि भी मिली थी। इन्होंने कई ग्रन्थो की रचना की है—(१) महिषासुरवधम् (नाटक), (२) वाताह्वान (काव्य), (३) कुसुमकलिका (आख्यायिका), (४) यक्षसमागम (खण्डकाव्य), (५) ऋतुवर्णन काव्य, (६) मिथिलेश प्रशस्ति, (७) परमेश्वरकोष। नवकिसलयदम्भाक्षिप्त-सिन्दूर-मुष्टिः प्रतिनवति लक्ष्म्याऽऽक्रीड्य होल्युत्सवेऽसौ। कमलदलमिषेणोत्कीर्य सौवीरमभ्रं सरसिकविसहायः स्नाति किंसिबद्धसन्तः ॥ दे० आधुनिक सस्कृत साहित्य–डॉ हीरालाल शुक्ल

बलदेव उपाध्याय—जन्म आश्विन शुक्ल द्वितीया, सं० १९५६ (१०।१० १८९९ ई०)। बलिया जिले (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत सोनबरसा नामक ग्राम के निवासी। पिता का नाम पं० राममुचित उपाध्याय। ११२२ ई० में संस्कृत एम्० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी मे प्रथम (हिन्दू विश्वविद्यालय)। साहित्यचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी मे ३८ वर्षों तक अध्यापन और रीडर पद से १९६० ई० मे अवकाश ग्रहण। पुनः संस्कृत विश्वविद्यालय (वाराणसी) में दो वर्षों तक पुराणेतिहास विभाग के अध्यक्ष तथा चार वर्षों तक वहीं शोधप्रतिष्ठान

के निदेशक। १९७० में अवकाश प्राप्त। हिन्दी में संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन तथा भारतीय साहित्य पर दो दर्जन पुस्तकों का लेखन। 'भारतीयदर्शन' नामक पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त तथा 'बौद्धदर्शन' पर डालमियाँ पुरस्कार। 'भारतीयदर्शन' एवं 'आचार्य शंकर' नामक पुस्तकों का कन्नड में अनुवाद हुआ। बरमी और सिंहली भाषा में 'बौद्ध दर्शन-मीमांसा' नामक पुस्तक का अनुवाद प्रकाशित। 'नाट्यशास्त्र', भामह कृत 'काव्यालंकार' 'नागानन्द' नाटक, 'शंकर दिग्विजय', 'प्राकृत-प्रकाश', 'वेदभाष्यभूमिकासंग्रह', 'अग्निपुराण', 'कालिकापुराण' एवं 'भक्तिचन्द्रिका' का सम्पादन। संस्कृत में 'देवभाषानिबन्धावली' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ की रचना। 'वेदभाष्यसंग्रह' एवं 'भक्तिचन्द्रिका' की संस्कृत में विस्तृत भूमिका-लेखन। संस्कृत में श्लोक-रचना— दिनकरतनयातीरे प्रतिफलितात्मरूप इव नीरे। जयति हरन् भवताप-कोऽपि तमालश्चिदेकदृढमूल.॥ यमुना के तीर पर अपने रूप के प्रतिबिम्बित होने से नील रंग के जल में चैतन्यरूपी दृढ मूलवाला कोई तमाल वृक्ष खिला हुआ है। संसार के सन्ताप को दूर करनेवाले इस वृक्ष की जय हो। विशिष्ट संस्कृत सेवा के लिए 'राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित'। सम्प्रति 'विद्याविलास', रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी में स्वतन्त्र साहित्यसेवा।

बालचन्द्रसूरि—संस्कृत के प्रसिद्ध जैन महाकाव्यकार। इन्होंने 'वसन्तविलास' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य का प्रणयन किया है जिसमें धोलका के (गुजरात) राजा वीरधवल के अमात्य वस्तुपाल (प्रसिद्ध कवि) की जीवनगाथा वर्णित है [दे० वस्तुपाल]। कवि का रचनाकाल वि० सं० १२९६–१३३४ के मध्य तक है। इनके पिता का नाम धरादेव एवं माता का नाम विद्युतगर्भ था। कवि के पिता गुजरात के मोढेरक ग्राम के निवासी थे। प्रारम्भ में कवि का नाम मुंजाल था, पर हरिभद्रसूरि से दीक्षित होने के उपरान्त इसका नाम बालचन्द रखा गया। 'वसन्त-विलास' के अतिरिक्त बालचन्दसूरि ने 'करुणावज्रायुध' नामक ५ अंकों के एक नाटक की भी रचना की है। 'वसन्तविलास' के प्रथम सर्ग में कवि ने अपना वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। बालचन्द ने आसड कविरचित 'विवेकमंजरी' तथा 'उपदेशकंदली' नामक ग्रन्थों की टीका भी लिखी है। वसन्तविलास की रचना १४ सर्गों एवं १५१६ छन्दों में हुई है। वस्तुपाल का अन्य नाम वसन्तपाल भी था अतः चरितनायक के नाम पर ही इस महाकाव्य की संज्ञा 'वसन्तविलास' है। इसमें अणहिल्लपत्तन नामक राजधानी के दुर्ग तथा दुर्लभराजनिर्मित सरोवर का वर्णन कर मूलराज से लेकर भीमदेव द्वितीय तक गुजरात के राजाओं का वर्णन है (सर्ग २–३)। पुनः वस्तुपाल के मन्त्रिगुण-वर्णन के पश्चात् वीरधवल द्वारा वस्तुपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति का उल्लेख किया गया है। वीरधवल का वस्तुपाल को खम्भात का शासक नियुक्त करना तथा वस्तुपाल द्वारा मारवाड नरेश को पराजित करने का वर्णन है (सर्ग ४–५)। तदनन्तर परम्परागत ऋतुवर्णन, पुष्पावचयदोलाजलकेलिवर्णन, सन्ध्या, चन्द्रोदय एवं सूर्योदय वर्णन के उपरान्त वस्तुपाल के स्वप्नदर्शन का उल्लेख है जिसमें धर्म कलियुग में एक पाद

पर खड़ा होकर उसके पास आकर तीर्थाटन करने का आदेश देता है (सर्ग ६–९)। दसवें से लेकर तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्रा का विस्तृत वर्णन कर चौदहवें सर्ग में वस्तुपाल के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख हुआ है। इसी सर्ग में वस्तुपाल सद्गति को प्राप्त कर स्वर्गारोहण करते हैं। इस महाकाव्य की कथावस्तु अत्यन्त क्षीण है, पर कवि ने वस्तुव्यंजना के द्वारा इसका विस्तार किया है। इसकी भाषा समासयुक्त पदावलीसंवलित एवं अस्वाभाविक है, पर पदविन्यास (यत्र तत्र) प्रसंगोचित एवं भावानुकूल हैं। कवि ने आनुप्रासिक प्रयोग के द्वारा पदावली में श्रुतिमधुरता भरने का प्रयास किया है। वसन्तक्रीडा के वर्णन में भाषा की मृदुलता द्रष्टव्य है। प्रतिदिशं लवलीलवलीधुताऽद्भुततमालतमाल तरुत्तरः। अभिसार ससारसकूजितो धृतलवङ्गलवङ्ग-लताध्वजः॥ ६।४५।

आधारग्रन्थ—तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन-संस्कृत महाकाव्य—डॉ० श्यामशंकर दीक्षित।

बालशास्त्री रानडे—[१८१९–१८८० ई०] उन्नीसवीं के शताब्दी अद्वितीय विद्वान् तथा सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् शिवकुमार शास्त्री एवं दामोदर शास्त्री के गुरु। इनका जन्म महाराष्ट्र में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा ग्वालियर में हुई। बाजीराव पेशवा ने इन्हें बालसरस्वती की उपाधि से विभूषित किया था। गवर्नमेन्ट कॉलेज, वाराणसी में संस्कृत का अध्यापन। इन्होंने 'महाभाष्य' की टिप्पणी लिखी है। इनके अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—'मारासारविवेक', 'बृहज्ज्योतिष्टोमपद्धति', 'वेदान्तसूत्रभाष्य' (भामती टिप्पणी सहित), 'सुमनोऽञ्जलिः' (वाराणसी, १८७० ई०, पृ० ३) ड्यूक ऑफ एडिनबरा की ५ श्लोकों में प्रशस्ति। इन्होंने 'काशीविद्यासुधानिधि' में कई उत्कृष्ट कोटि के निबन्ध लिखे थे।

बुद्धघोष—संस्कृत के बौद्ध कवि [समय ३८६ से ५५७ ई० तक]। बौद्धधर्म की एक किंवदन्ती के आधार पर बुद्धघोष ३८७ ई० में बुद्ध के त्रिपिटक का पाली अनुवाद लाने के लिए लंका गए हुए थे। 'पद्यचूडामणि' में दश सर्गों में भगवान् बुद्ध के जन्म, विवाह एवं उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन है। कवि ने विभिन्न अलंकारों एवं छन्दों का प्रयोग कर अपने ग्रन्थ को अलंकृत किया है। इस पर 'रघुवंश' एवं 'बुद्धचरित' का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें शान्तरस की प्रधानता है एवं अन्य रस अंग रूप से प्रयुक्त हुए हैं। ग्रन्थ में अलंकृति एवं विदग्धता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। कृताभिषेका प्रथमं धनाम्बुभिधृतोत्तरीयाः शरदभ्रसंचयैः। विलिप्तगात्र्यः शशरश्मि-चन्दनैर्दिशो दधुस्तारकहारकामाः॥ ५।४७।

मंगलदेव शास्त्री (डाक्टर)—ये गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के उपकुलपति रह चुके हैं। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया है। शास्त्री जी ने 'ऋग्वेद-प्रातिशाख्य' का तीन भागों में सम्पादन किया है। ग्रन्थ का तृतीय भाग 'ऋग्वेद प्राति-शाख्य' का अंग्रेजी अनुवाद है। ये भारत के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री भी माने जाते हैं।

इन्होंने भारतीय संविधान के उत्तरार्द्ध का संस्कृत में अनुवाद किया है। शास्त्री जी ने कई शोधनिबन्धों का भी प्रणयन किया है जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हो चुके हैं—जैसे—ऐतरेय ब्राह्मण पर्यालोचन, ऐतरेयारण्यक पर्यालोचन, कौषीतकि ब्राह्मण पर्यालोचन, एवं शतपथब्राह्मण पर्यालोचन। इन्होंने 'रश्मिमाला' एवं 'अमृतमंथन' नामक दो नीतिउपदेशप्रधान काव्यों की रचना की है। 'रश्मिमाला' में १६ रश्मियाँ है और नीति, सदाचार, लोकनीति, राजनीति, अध्यात्मक एवं ईश्वरभक्ति-विषयक पद्य हैं। 'अमृत-मंथन' के तीन विभाग हैं—लक्ष्यानुसन्धान, जीवनपाथेय तथा प्रज्ञा-प्रवाह। उनकी 'प्रबन्ध प्रकाश' नामक संस्कृत गद्यरचना दो भागों में प्रकाशित है। इनकी पद्यरचना सरस एवं प्रौढ़ है। अवाप्य विद्यां विनयेन शून्या अहंयवो दुर्जनतां व्रजन्ति। दुग्धस्य पानेन भुजङ्गमानां विषस्य वृद्धिर्भुवनप्रसिद्धा॥ सप्तरश्मि २९।

मधुसूदनसरस्वती—इनका जन्म बंगलादेश के कोठालीपाद नामक स्थान (जिला फरीदपुर) में १६ वीं शताब्दी में हुआ था। ये गो० तुलसीदास के समकालीन थे और वाराणसी में रहकर ग्रन्थलेखन करते थे। इनके पिता का नाम पुरन्दराचार्य था। यहाँ से ये नवद्वीप मे न्यायशास्त्र के अध्ययन के निमित्त गये थे और वहाँ से वाराणसी गए। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या आठ है—वेदान्तकल्पलतिका, अद्वैतरत्न रक्षण, सिद्धान्तबिन्दु, संक्षेपशारीरकसारसंग्रह, गीता गूढार्थदीपिका, भक्तिरसायन, भागवतपुराणप्रथमश्लोकव्याख्या, महिम्नस्तोत्रटीका। इनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना गीता का भाष्य है। भक्तिरसायन भक्ति रस की महनीय रचना है जिसमें एकमात्र भक्ति को ही परम रस सिद्ध किया गया है। मधुसूदन अद्वैतवादी आचार्य थे। इन्होंने अद्वैतसिद्धान्त के आधार पर ही भक्तिरस को सर्वोत्कृष्ट रस माना है। इनके अनुसार परमानन्द-रूप परमात्मा के प्रति प्रदर्शित रति ही परिपूर्ण रस है और शृंगारादि क्षुद्ररसों से उसी प्रकार प्रबल है जिस प्रकार कि खद्योतों मे सूर्य की प्रभा। परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रतिः। खद्योतेभ्य इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा॥ भगवद्भक्तिरसायन, २।७८। दे० स्टडीज इन द फिलॉसफी ऑफ मधुसूदनसरस्वती—डॉ० संयुक्ता गुप्ता।

मधुसूदन ओझा (विद्यावाचस्पति)—(समय १८४५ ई० १९१८ ई०)। इनका जन्मस्थान बिहार राज्य के अन्तर्गत मुजफ्फरपुर जिले का गाढ़ा गाँव है। इनके पिता वैद्यनाथ ओझा संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। ओझाजी अपने पिता के बड़े भाई के दत्तक पुत्र थे। इन्होंने वाराणसी मे शिक्षा पायी थी और १८६८ ई० में महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर में वेदान्त के अध्यापक नियुक्त हुए। ये १९०२ ई० में एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर इंग्लैण्ड गए। इन्हें समीक्षाचक्रवर्त्ती, विद्यावाचस्पति तथा महामहोपदेशक की उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। इन्होंने लगभग १३५ ग्रन्थों का प्रणयन किया है। दिव्यविभूति, आर्यहृदयसर्वस्व, निगमबोध, विज्ञानमधुसूदन, यज्ञविज्ञानपद्धति, प्रयोगपारिजात, विश्वविकास, देवयुगयुगाभास, ज्योतिश्चक्रधर, आत्मसंस्कारकल्प, वाक्पदिका, गीताविज्ञानभाष्यस्य प्रथमरहस्यकाण्डम्, गीताविज्ञानभाष्यस्य द्वितीयमूल-

काण्डम् , गीताविज्ञानभाष्यस्य तृतीयाचार्यकाण्डम् , गीताविज्ञानभाष्यस्य चतुर्थहृदय-काण्डम् , शारीरिकविज्ञानभाष्यस्य प्रथमभागः, शारीरिकविज्ञानभाष्यस्य द्वितीय-भागः, ब्रह्मविज्ञानप्रवेशिका, ब्रह्मविज्ञानम्, पुराणोत्पत्तिप्रसङ्ग, पुराणनिर्माणाधिकरणम्, कादम्बिनी, जगद्गुरुवैभवम्, वेदार्थभ्रमनिवारणम्, सदसद्वाद, व्योमवाद, कालवाद, आवरणवाद, अम्भोवाद, अहोरात्रवादः, ब्रह्मसमन्वय, वेदधर्मव्याख्यानम्, वैदिककोष, महर्षिकुलवैभव, रजोवादः, दैववादः, सिद्धान्तवादः आदि ।

माणिक्यदेव सूरि—संस्कृत के प्रसिद्ध जैन महाकाव्यकार । इनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता । कवि का रचनाकाल सं० १३२७ से १३७५ के मध्य है । इन्होंने 'नलायनम्' 'अनुभवसारविधि', 'मुनिचरित', 'मनोहरचरित', 'पंचनाटक' तथा 'यशोधरचरित्र' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमें 'नलायनम्' प्रमुख है । 'नलायनम्' पौराणिक शैली का महाकाव्य है जिसमें सौ सर्ग एवं दस स्कंध हैं । इसमे कवि ने राजा नल एवं दमयन्ती के प्राचीन आख्यान का वर्णन किया है । राजा नल की कथा जन्म से मृत्यु पर्यन्त वर्णित है । कथा का विभाजन स्कन्धों एवं सर्गों में हुआ है और श्लोकों की संख्या ४०५० है । प्रथम मे १५ सर्ग, द्वितीय में १६, तृतीय में ९, चतुर्थ मे १३, पंचम मे २१, षष्ठ मे ७, सप्तम मे ७, अष्टम में ४, नवम में ४ एवं दशम स्कंध मे ४ सर्ग हैं । इसमें महाभारत मे उपलब्ध नल की कथा मे अनेक परिवर्त्तन किये गए हैं और जन-परम्परागत नलचरित की कथा को ग्रहण किया गया है । इसके अनेक स्थल पर नैषध की छाप दृष्टिगोचर होती है । अनेक स्थलों पर शब्दक्रीड़ा एवं पाण्डित्य-दर्शन में कवि चित्रकाव्य की योजना कर भाषा के सहज स्वारस्य को नष्ट कर डालता है । पर सर्वत्र भाषा मे सरलता विद्यमान है । तदेतत् तिलकं भाले बालारुणसमप्रभम् । विभावरीव विक्षिप्ता कबरी यस्य सन्निधौ ॥ २।९।२ ।

मेघव्रत आचार्य—बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् एवं प्रतिभा-शाली कवि । इनका जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के येवला नामक ग्राम में ७ जनवरी १८९३ ई० को हुआ । इनकी निधन तिथि २१ नवम्बर १९६४ ई० है । इनके पिता का नाम श्री जगजीवन एवं माता का नाम सरस्वती देवी था । इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी । इन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, उपन्यास तथा नाटक साहित्य की विविध विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । इनके ग्रन्थों मे 'दयानन्ददिग्विजय' (महाकाव्य) एवं 'कुमुदिनीचन्द्र' (उपन्यास) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं । मेघव्रताचार्य रचित अन्य ग्रन्थ हैं—ब्रह्मर्षि विरजानन्द चरित—इसमें स्वामी दयानन्द के शिक्षा-गुरु स्वामी विरजानन्द का चरित १० सर्गों में वर्णित है जिसमें कुल ४२४ श्लोक है । ग्रन्थ का रचनाकाल आश्विन २००९ संवत् है । प्रकाशन-काल २०१२, गुरुकुल झज्जर । नारायणस्वामिचरित (महात्ममहिममणि-मंजूषा)—इस काव्य में आर्यसमाज के संन्यासी महात्मा नारायण स्वामी का चरित १२ अलंकारों (सर्गों) में वर्णित है । इसमें ३०० श्लोक है । गुरुकुलशतक—इसमें ११६ श्लोकों में गुरुकुल के आदर्श का वर्णन हैं । दयानन्दलहरी—गंगालहरी के अनुकरण पर ५२ श्लोकों

में दयानन्दलहरी की रचना हुई है। दिव्यानन्दलहरी—इसमें भी ५२ श्लोक हैं तथा अध्यात्मतत्त्व एवं ईश्वर-महिमा प्रभृति विषयों का निरूपण है। प्रकृति-सौन्दर्य—यह छह अंकों का नाटक है। कुमुदिनीचन्द्र—इस उपन्यास का प्रणयन किसी गुजराती कथा के आधार पर हुआ है। इसका प्रकाशन १९७६ वि० सं० में हुआ था। इसका कथानक हिन्दी के लोकप्रिय उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' से मिलता-जुलता है। इसमें अजितगढ़ दुर्ग के स्वामी केसरी सिंह के पुत्र चन्द्रसिंह एवं विजयनगर के राजा विजयसिंह की कन्या कुमुदिनी की प्रणयगाथा वर्णित है। उपन्यास में नायक-नायिका की कथा के अतिरिक्त विजय सिंह (नायक) के अनुज रणवीर सिंह तथा अमरकण्टक की राजकुमारी रत्नप्रभा की भी कथा समानान्तर चलती है। इसका खलनायक सूर्यपुर के पदच्युत राजा का पुत्र क्रूरसिंह है। इस उपन्यास का विभाजन सोलह कलाओं में हुआ है। लेखक ने ऋतुवर्णन के मनोरम प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। लेखक ने 'शुद्धिगङ्गावतार' नामक एक अन्य उपन्यास भी लिखना प्रारम्भ किया था पर वह पूर्ण न हो सका। दयानन्द दिग्विजय—इस महाकाव्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती की जीवनगाथा २७ सर्गों में वर्णित है जिसमें २७०० श्लोक हैं। महाकाव्य पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के रूप में दो भागों में विभक्त है जिनका प्रकाशन क्रमशः १९९४ वि० सं० एवं २००२ में हुआ। इसमें शान्त रस की प्रधानता है। कतिपय स्थलों पर कवि ने प्रकृति का रमणीय चित्र अंकित किया है। इसमें सर्वत्र आलंकारिक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं तथा काव्य विभिन्न प्रकार की प्रेरणादायक सूक्तियों से सुगुंफित है। वसन्तवर्णन द्रष्टव्य है—नभः प्रसन्नं सलिलं प्रसन्नं निशाः प्रसन्ना द्विजचन्द्ररम्याः। इयं वसन्ते रुरुचे वसन्ती प्रमाद-लक्ष्मीः प्रतिवस्तु दिव्यगा॥ ८।१६। दे० ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य की देन, पृ० १५२-१७०।

यागेश्वर शास्त्री—(१८४० ई०–१९०० ई०)। इनका जन्म बलिया जिले में रुद्रपुर नामक ग्राम में हुआ था। व्याकरण के विद्वान्; विशेषतः प्रक्रिया शैली के। इन्होंने 'हैमवती' (व्याकरण) नामक ग्रन्थ की रचना की है जो नागेशभट्ट के 'परि-भाषेन्दुशेखर' की प्रमेयबहुल तथा पाण्डित्यपूर्ण टीका है। इसमें इनके मौलिक विचार भी निविष्ट हैं। यह प्रक्रिया पद्धति के अनुसार महत्त्वशाली व्याख्यान तथा वैयाकरण तथ्यों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, से १९७२ ई० में प्रकाशित।

रामचन्द्र झा (व्याकरणाचार्य)—जन्म १९१२ ई०। जन्मस्थान 'नरौनी' (दरभंगा : बिहार) वर्तमान निवासस्थान डी २/९ जयमंगलाभवन, धर्मकूप, वाराणसी। अध्ययनोपरान्त १९३१ ई० में अर्थविमुख होकर आपने सारा जीवन संस्कृत साहित्य के प्रचार-प्रसार में लगा दिया है। आपके मौलिक ग्रन्थों के नाम हैं—संस्कृत व्याकरणम्, सन्धिचन्द्रिका, रूपलता, सम्पूर्ण सिद्धान्तकौमुदी, मध्यकौमुदी तथा लघुकौमुदी के बालकोपयोगी सविवरण नोट्स। शिक्षाजगत् में आपकी 'इन्दुमती' नाम की टीका प्रसिद्ध है। आपने लघुकौमुदी, मध्यकौमुदी, तर्कसंग्रह, रामवनगमन, पञ्चतन्त्र, अनङ्गरंग (कामशास्त्र) आदि ग्रन्थों की अत्यन्त सरल सुबोध सविमर्श टीका लिखी है। चौखम्बा-संस्थान के अन्तर्गत संस्थापित 'काशी मिथिला ग्रन्थमाला' के आप

प्रधान सम्पादक हैं। इस ग्रन्थमाला से प्रकाशित सभी ग्रन्थों के सविमर्श सटिप्पण सानुवाद सम्पादक आप ही हैं। आपने अपनी प्रथम स्व० पत्नी 'इन्दुमती' के नाम पर शताधिक संस्कृत ग्रन्थों की सविमर्श टीका-टिप्पणी लिखी है और अहर्निश लिख रहे हैं।

रामनाथ पाठक 'प्रणयी'—शाहाबाद जिले (बिहार) के धनछूहाँ नामक ग्राम में जन्म। साहित्य, व्याकरण तथा आयुर्वेद में आचार्य की उपाधि तथा संस्कृत एवं प्राकृत में एम० ए०। सम्प्रति एच० डी० जैन कॉलेज आरा मे संस्कृत-प्राकृत के प्राध्यापक। 'राष्ट्र-वाणी' नामक पुस्तक में नवीन शैली के संस्कृत गीत। संस्कृत में गद्य एवं पद्य दोनों में रचना। हिन्दी एवं भोजपुरी के सुप्रसिद्ध कवि। 'राष्ट्र-वाणी' की कविता आधुनिक विचारो से पूर्ण है। इसमें देश-देश की प्राकृतिक निधि, देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम को आधार बनाकर नवगीतों की रचना की गयी है। भावो और छन्दों में जीवन्तता एवं भाषा मे सरलता है। 'अहम्' नामक कविता देखें—अहमस्मि रणभेरी-रव. ? प्रतिपक्ष-हृदय-विदारकः, मदमत्त-कुञ्जर-मारकः, पवि-पुरुष-हृदय-स्पन्दनो वन-नन्दनः कण्ठीरवः। अहमस्मि रणभेरीरवः। इसमें कुल ७५ गीत हैं तथा 'अहम्' और 'जननि' शीर्षक दो आत्मपरक गीत भी संकलित हैं। पुस्तक संवत् २००८ मे प्रकाशित हुई है।

रामरूप पाठक—इनका जन्म बिहार राज्य के शाहाबाद जिलान्तर्गत सासाराम शहर मे दिनांक २६।१०।१९३१ ई० को हुआ था। इनके पिता पं० विश्वेश्वर पाठक संस्कृत के विद्वान् एवं हिन्दी के सुकवि थे जिन्होंने व्रजभाषा मे 'भागवतचूर्णिका' नामक पुस्तक का प्रणयन किया है। श्रीरामरूप पाठक जी साहित्याचार्य हैं। इन्होने 'चित्र-काव्यकौतुकम्' नामक अत्यन्त प्रौढ चित्रकाव्य की रचना की है जिस पर इन्हें १९६७ ई० मे साहित्यअकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। कवि कृत अन्य काव्य-ग्रन्थ है—'दासार्हचरितम्' 'समस्यासंग्रहः' 'तेजोलिङ्गकथा', 'एकलिङ्गकथा', 'धर्मपाल-कथा' 'कामेश्वरकथा' तथा 'श्रीरामचरितम्'।

विश्वेश्वर आचार्य—ये वृन्दावनस्थ गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य एवं अनुसन्धान संचालक थे। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के पीलीभीत जिले के मकतुल ग्राम में हुआ था। इन्होने एम०ए० एवं सिद्धान्तशिरोमणि परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। इन्होंने संस्कृत मे 'दर्शनमीमांसा', 'नीतिशास्त्रम्', 'मनोविज्ञानमीमांसा', 'पाश्चात्यतर्कशास्त्रम्' 'साहित्यमीमांसा' एवं 'वैदिकसाहित्यकौमुदी' नामक ग्रन्थो का प्रणयन किया है। ये दर्शन एव काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्होने हिन्दी मे ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, काव्यालंकारसूत्र, अभिनवभारती, अभिधावृत्तिमातृका, नाट्यदर्पण, वक्रोक्तिजीवित, भक्तिरसामृतसिन्धु, तर्कभाषा, न्यायकुसुमाञ्जलि एवं निरुक्त का विस्तृत भाष्य प्रस्तुत किया है। इनका निधन ३० जुलाई १९६२ ई० को हुआ।

विष्णुकान्त झा—बिहार के प्रसिद्ध ज्योतिषी एवं हस्तरेखाविद्। पटना जिले (बिहार) के बैकुण्ठपुर नामक ग्राम मे संवत् १९६८ आश्विन कृष्ण मातृनवमी शनिवार को मैथिलब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ था। पिता पं० उग्रनाथ झा सुप्रसिद्ध विद्वान्

एवं ज्योतिषी थे। अभी तक उनकी चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। (१) गंगाभारत संस्कृति, (२) उग्रवंशप्रशस्तिः, (३) श्रीवैद्यनाथप्रशस्तिः, (४) राष्ट्रपतिराजेन्द्र-वंशप्रशस्तिः। श्रीदुर्गापूजापद्धतिः (नानातन्त्रवेद पुराणधर्मशास्त्र के आधार पर रचित) तथा ज्योतिषविषयक ग्रन्थ प्रकाश्यमान है। अन्तिम ग्रन्थ में ६२ वर्षों के ज्योतिष-सम्बन्धी अनुभव का उल्लेख है। 'राजेन्द्रवंशप्रशस्तिः' में राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के जीवन-चरित्र के अतिरिक्त उन सभी व्यक्तियों और उनके कार्य-कलापों का भी वर्णन है जिन्होंने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया। ग्रन्थ की शैली प्रसाद गुण समन्वित एवं प्रौढ़ है। गणतन्त्रदिवसोत्सव का वर्णन देखें। सारी रचना प्रवाहपूर्ण शैली में निर्मित है। इसमें कुल ५५५ श्लोक हैं। तस्मिन् रथे महविधौ वरराष्ट्रपोऽसौ स्थित्वा सुखं स्वभवनात् सह सैनिकैस्तैः। संचलमान इह याति मुदा प्रपश्यन् नाना-विधान् नृपपथस्थितदर्शकौस्तान्॥ ५५४ ग्रन्थकार को राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री की उपाधि प्राप्त है।

वस्तुपाल—संस्कृत के जैनधर्मावलम्बी महाकाव्यकार। इनका रचनाकाल सं० १२७७ से १२८७ के मध्य है। कवि ने 'नरनारायणानन्द' नामक प्रसिद्ध शास्त्रीय महाकाव्य की रचना की है जिसमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन की मैत्री एवं महाभारतीय प्रसंग के आधार पर 'सुभद्राहरण' की प्रसिद्ध घटना वर्णित है। [दे० नरनारायणानन्द] कवि के पिता का नाम आशाराज या अश्वराज था और माता का नाम कुमारदेवी (नर-नारायणानन्द प्रशस्ति सर्ग श्लोक १६) इनके गुरु का नाम विजयसेन सूरि था। महा-कवि वस्तुपाल धोलका (गुजरात) के राजा वीरधवल एवं उनके पुत्र वीसलदेव का महामात्य था। वह कवि, विद्वान्, वीर, योद्धा एवं निपुण राजनीतिज्ञ के रूप में विख्यात था। उनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ है—'शत्रुञ्जयमंडन', 'आदिनाथस्तोत्र', 'गिरिनार-मण्डन', 'नेमिनाथस्तोत्र', तथा 'अम्बिकास्तोत्र' आदि। संस्कृत के सुभाषित ग्रन्थों एवं गिरनार के उत्कीर्ण लेख में वस्तुपाल 'कविकुंजर' 'कविचक्रवर्ती' 'वाग्देवतासुत', 'सरस्वतीकण्ठाभरण' आदि उपाधियों से विभूषित हैं। सोमेश्वर ने अपने 'उल्लाघराघव' नामक नाटक में वस्तुपाल की सूक्तियों की प्रशंसा की है (८ वाँ अंक)। अम्भोज-सम्भवसुता वक्त्राम्भोजेऽस्ति वस्तुपालस्य। यद्वीणारणितानि श्रूयन्ते सूक्तिदम्भेन॥ कवि का अन्यनाम वसन्तपाल भी था।

शान्तिनाथ चरित्र—यह जैनभद्रसूरि (संस्कृत के जैन कवि) रचित पौराणिक महाकाव्य है। इसमें महाकाव्य एवं धर्मकथा का समावेश है। जैनभद्रसूरि का रचना-काल स० १४१० विक्रम है। इस महाकाव्य की रचना १९ सर्गों में हुई है तथा सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ जी की जीवनगाथा वर्णित है। इसके नायक अलौकिक व्यक्ति हैं, फलतः महाकाव्य में अलौकिक एवं अतिप्राकृतिक घटनाओं का बाहुल्य है। इस महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत है जिसका आधार परम्परागत चरित्रग्रन्थ है। इसके नायक धीरप्रशान्तगुणोपेत हैं और शान्तरस अंगी रस है। कवि ने धर्म और मोक्ष की प्राप्ति को ही इस महाकाव्य का प्रधान फल सिद्ध किया है। प्रारम्भ में मंगला-

चरण स्वरूप जिनेश्वर की स्तुति की गयी है तथा वस्तुव्यंजना के रूप में नगर, वन, षड्ऋतु, संयोग, वियोग, विवाह, युद्ध आदि विविध विषय वर्णित हैं। महाकाव्य में जातीय जीवन की अभिव्यक्ति एवं प्रौढ़ भाषाशैली के दर्शन होते हैं। प्रसादगुणमयी भाषा के प्रयोग से यह ग्रन्थ दीप्त है। पुत्रं बिना न भवनं सुषमां दधाति चन्द्रं विनेव गगनं समुदग्रतारम्। सिंहं विनेव विपिनं विलसत्प्रतापम् क्षेत्रस्वरूपकलितं पुरुषं विनेव ३।७१।

शिवकुमार शास्त्री—[१८४७-१९१८ ई०] इनका जन्म वाराणसी से उत्तर बारह मील की दूरी पर स्थित उन्दी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता का नाम मतिरानी एवं पिता का नाम रामसेवक मिश्र था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इन्होंने बाणीदत्त चौबे से व्याकरण का अध्ययन किया था तथा १८५१ ई० में गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज, वाराणसी में प्रवेश किया। इन्हें तत्कालीन सरकार द्वारा महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई तथा शृंगेरी के जगद्गुरु शंकराचार्य ने 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-पण्डितराज' की उपाधि से अलंकृत किया। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। (१) लक्ष्मीश्वरप्रताप :—यह महाकाव्य है जिसमें महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह तक दरभंगा नरेशों की वंश गाथा का वर्णन है। यतीन्द्रजीवनचरितम्—यह १३२ श्लोकों का खण्डकाव्य है। इसमें भास्करानन्दसरस्वती का जीवन चरित वर्णित है। (३) शिव-महिम्नश्लोक की टीका, (४) परिभाषेन्दुशेखर की व्याख्या, (५) लिङ्गधारणचन्द्रिका श्लोक है—दिने दिने कालफणी प्रकोपं कुर्वन् समागच्छति सान्प्रधानम्। निपीतमोहासव-जातमादो न भीतिमायाति कदापि कोऽपि॥ दे० आधुनिकसंस्कृत-साहित्य डॉ० हीरालाल शुक्ल।

सत्यव्रत शास्त्री (डाक्टर)—इनका जन्म १९३० ई० में लाहौर में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता एवं संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० चारुदेव शास्त्री के निर्देशन मे प्राप्त की। डॉ० सत्यव्रत ने १४ वर्ष की अल्पावस्था में ही पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा १९४४ ई० मे उत्तीर्ण की। १९५३ ई० में इन्होंने संस्कृत एम० ए० की परीक्षा पंजाब विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की और प्रथम श्रेणी मे प्रथम रहे। इन्हें १९५५ ई० में हिन्दूविश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इनके अनुसन्धान का विषय था—'सम इम्पॉर्टेन्ट एस्पेक्टस् ऑफ द फिलॉसफी ऑफ भर्तृहरि—टाइम एण्ड स्पेस'। ये १९७० ई० से दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग मे अध्यक्ष हैं। इन्होंने 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' नामक महाकाव्य की रचना एक सहस्रश्लोकों में की है। इनका अन्य महाकाव्य 'गुरुगोविन्दसिंहचरितम्' है, जिसमे सिखों के गुरु गुरुगोविन्द सिंह की जीवनगाथा वर्णित है। इस ग्रन्थ पर कवि को १९६८ ई० के साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। [वि० 'गुरुगोविन्दसिंह-चरितम्'] लेखक की अन्य रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—मैकडोनल कृत 'वैदिकग्रामर' का हिन्दी अनुवाद 'एसेज ऑन इण्डोलॉजी', 'द रामायण : ए लिंग्विस्टिक स्टडी', 'द कन्सेप्ट ऑफ् टाइम एण्ड स्पेस इन इण्डियन थॉट' एवं 'द लैंगुएज एण्ड पोइट्री ऑफ द योगवासिष्ठ'।

नामानुक्रमणिका